# भाग : ३

## सीखना या अधिगम के सिद्धांत
## मानव-अधिगम और विस्मरण
## भाषा और विचारण या चिंतन

वाचिक प्रसंग; इकाइयों की आवृत्ति; इकाइयों का क्रम; शब्दावली; शब्दगत अनेकता; रूप-संकेत अनुपात; क्रिया और विशेषण अनुपात; भाषा का अर्थ; संदर्भ में अर्थ; दोषपूर्ण भाषा; जंतुओं में जटिल प्रक्रम; प्रकाश-कंपस प्रतिक्रिया; मधुमक्खियों की भाषा; प्रत्यावर्तन; व्यवस्थिता या क्रमबद्धता; गणना; सारांश; पठनार्थ सुझाव । ]

# भाग : ४

## प्रत्यक्षण और अवधान

## दृष्टि

## श्रवण और अवर इंद्रिय

## अध्याय : ११



## अध्याय १२

त्वचा संवेदन; चार संवेदन; दबाव अथवा स्पर्श; दबाव के संग्राहक; तापमान उद्दीपन; पीड़ा; ऊत्तकों की चोट; अनुकूलन; अंतःसंवेदनाएँ; अधस्त्वक संवेद्यता; आंगिक संवेदनाएँ; गतिबोधक संवेदना; प्रघाण प्रतिक्रियाएँ; गतिजन्य रुग्णता; वाणी-संवेदन; आयाम; वाणी की गत्यात्मकता; सारांश; पठनार्थ सुझाव ।]

# भाग ५

## मनोवैज्ञानिक मापन

## बुद्धि और अभिक्षमता

## व्यक्तित्व

### अध्याय : १३

अध्याय १४

बुद्धि और अभिक्षमत्ता ७५७-८१२

[ योग्यताओं का परिमापन; अच्छे परीक्षण की विशेषताएँ; योग्यता बनाम उपलब्धि; योग्यताओं के प्रकार; परीक्षणों के प्रकार; १. समूह बनाम व्यक्ति; २. वाचिक बनाम कार्यगत; ३. क्षिप्रता बनाम क्षमता; बुद्धि-परीक्षाएँ; स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षा; मानसिक आयु; बुद्धि-भजनफल या लब्धि; परीक्षा की सीमाएँ; वेशलर की वयस्क बुद्धि-मापनी; बुद्धि की समूहगत परीक्षाएँ; बुद्धि का स्वरूप; परीक्षाओं का अर्थनिर्णय या भाषांतर व्याख्या; बुद्धि की चरम सीमाएँ; बुद्धि-दौर्बल्य; सामाजिक परिपक्वता; बुद्धि-दौर्बल्य का उपचार; बुद्धि-दौर्बल्य के कारण; प्रतिभासंपन्न व्यक्ति; प्रतिभासंपन्न नेता और लेखक; टरमैन के प्रतिभासंपन्न बच्चे; प्रतिभासंपन्न बच्चों की समस्याएँ; योग्यताओं में समूहगत अंतर; पुरुषों और स्त्रियों के मध्य भिन्नता; स्त्रियों की योग्यताएँ; पुरुषों की योग्यताएँ; स्त्री-पुरुष की भिन्नताओं का अर्थनिर्णय करना; योग्यता में आयु का अंतर; व्यावसायिक स्तर; पारिवारिक पर्यावरण; सांस्कृतिक पर्यावरण; अभिक्षमता और रुचि; शैक्षिक अभिक्षमताएँ; व्यावसायिक अभिक्षमताएँ; परीक्षाओं का प्रामाण्य निर्धारण; यांत्रिक योग्यता परीक्षाएँ; मनोपेशीय परीक्षाएँ; तर्कसंगत चिंतन के लिए अभिक्षमता; अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग; व्यावसायिक रुचियाँ; स्ट्रांग की व्यावसायिक रुचि-परीक्षा; कुडर अधिमान रेकार्ड; रुचि-परीक्षाओं का प्रयोग; सारांश; पठनार्थ सुझाव ।]

अध्याय : १५

व्यक्तित्व ८१३-८६५

[ व्यक्तित्व की विशेषताएँ; विशेषक; प्रकार; योग्यता; अभिवृत्तियाँ और रुचियाँ; अभिप्रेरक; समायोजन की विधियाँ; व्यक्तित्व-परिमापन; पेंसिल-एवं-कागज परीक्षण; प्रामाण्य समस्या; मिनीसोटा बहुरूपात्मक व्यक्तित्व सूची; आलपोर्ट-वर्नन-लिंजे अंक मापनी; परिवेशी परीक्षण; प्रयोगात्मक

## अध्याय : १७



## अध्याय : १८

सुविधा; प्रगति के अवसर; कर्मचारियों का आपसी संबंध; कार्य में निपुणता; कार्य-वक्र; पूर्व तत्परता; अंतःस्फुरण; श्रांति का प्रभाव; उत्पादन; शारीरिक प्रभाव; अभिप्रेरण में परिवर्तन के रूप में श्रांति; निद्रा; कार्य और विश्राम; श्रांति से स्वस्थ होना; विश्रामकाल; कार्य-दिवस और कार्य-सप्ताह की लंबाई; मानव उपयोगार्थ इंजीनियरी; मनुष्य-मशीन समस्याएँ; मशीनों की तुलना में मनुष्य; बोध ग्रहण करना (संवेदनशीलता); दत्त-सामग्री प्रक्रम; नियंत्रित करना; प्रतिरूपों की रचना; चित्रात्मक बनाम प्रतीकात्मक प्रतिरूप; सूचकों के प्रकार; (१) स्थिति-पठन सूचक, (२) गुणात्मक सूचक; (३) परिमाणात्मक सूचक; डायल परिरूप; नियंत्रकों के परिरूप; नियंत्रकों के वर्ग; नियंत्रकों का नियत स्थान; नियंत्रकों का संकेतीकरण; सारांश; पठनार्थ सुझाव ।]

# भाग : ७

## तंत्रिका-तंत्र और आंतरिक पर्यावरण,

## व्यवहार का कायिक आधार

### अध्याय : १६



[आंतरिक पर्यावरण; उपापचयन प्रक्रिया; हार्मोन; गलग्रंथि (थायरायड ग्रंथि); उप-गलग्रंथियाँ (पैराथायरायड ग्रंथियाँ); अग्न्याशय ग्रंथि (पैनाक्रियाटिक ग्रंथि); अधिवृक्क ग्रंथियाँ (एड्रिनल ग्लैंड्स); जनन ग्रंथियाँ (गोनद); पिट्युटरी ग्रंथि; प्रकिण्व (एंजाइम्स); विटामिन; जीन; तंत्रिका-कोशिकाएँ तथा अंतर्ग्रंथन; तंत्रिका-कोशिकाएँ; तंत्रिका-आवेग; संपूर्ण-अथवा-बिलकुल नहीं का सिद्धांत; आवेग की क्रम-गति; अंतर्ग्रंथन संबंध; प्रतिवर्त; आकुंचन प्रतिवर्त; पारस्परिक अंतर्बाधा; चालक-इकाई; प्रतिक्रिया काल; तंत्रिका-तंत्र; परिधि तंत्रिका-तंत्र; केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र; श्वेत तथा धूसर द्रव्य; मेरु-रज्जु; मस्तिष्क; प्रमस्तिष्क प्रांतस्था; चेतक, उत्प्रेरक-जालीदार तंत्र; अधश्चेतक; विभाजक भित्ति और वातामी; अध्ययन की विधियाँ; तंत्रिक-रचना-वैज्ञानिक विधियाँ; विद्युतीय अभिलेखन; इलेक्ट्रोएंसेफेलोग्राम; क्रिया-विभव; सूक्ष्म विद्युद्ग्र; उद्दीपन विधियाँ; हार्मोन एवं जीव रासायनिक विधियाँ; ग्रंथि को निकालना; प्रतिस्थापन चिकित्सा; सारांश; पठनार्थ सुझाव । ]

# भाग : १

मनोविज्ञान : एक विज्ञान

परिपक्वता एवं परिवृद्धि

अध्याय १

# मनोविज्ञान : एक विज्ञान

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के मन में यह भाव उठा करता है कि यदि 'वह लोगों को कुछ अधिक अच्छी तरह समझ सकता' तो वह जीवन में और अधिक सुखी एवं सफल होता। हर व्यक्ति अन्य लोगों के संपर्क में अनिवार्य रूप से आता है। व्यवसायी को लोगों के व्यवहार को प्रभावित करना पड़ता है, विक्रेता को अन्य लोगों के हाथ अपना माल बेचना पड़ता है और चिकित्सक को केवल लोगों के शारीरिक रोगों से ही नहीं, वरन् रोगियों के व्यवहार से भी जूझना पड़ता है। यहाँ तक कि जिस व्यक्ति के काम-धंधे में दूसरे लोगों से नहीं के बराबर संबंध होता है, उसे भी अपनी पत्नी, अपने बच्चों, संबंधियों, सहकर्मियों, मित्रों एवं पड़ोसियों के साथ निर्वाह करना आवश्यक होता है। वस्तुतः व्यावसायिक सफलता एवं वैयक्तिक सुख के लिए अन्य लोगों से सफल व्यवहार विविध रूपों में महत्त्वपूर्ण है।

## मनोविज्ञान का क्षेत्र :

अन्य व्यक्तियों को और अच्छी तरह समझने की यह आवश्यकता, मनोविज्ञान के अध्ययन में एक ओर सहायक है, तो दूसरी ओर बाधक भी। यह सहायक है; क्योंकि यह अभिप्रेरक है और अधिगम के लिए अभिप्रेरण आवश्यक है। यह यों भी सहायक है कि इसके कारण विषय-शिक्षक एवं शिक्षार्थी—दोनों के लिए अधिक रुचिकर बन जाता है। मनोविज्ञान में पूर्व-प्रस्तुत रुचि दो प्रकार से व्यवधान भी उपस्थित कर सकती है। प्रथमतः इससे कुछ विद्यार्थियों के मन में यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि वे मनोविज्ञान के विषय में बहुत अधिक जानते हैं, जबकि वस्तुतः वे उतना नहीं जानते। वे इसलिए ऐसा सोचते हैं; क्योंकि उन्होंने इसके पूर्व कुछ व्यक्तियों का तीव्र रुचि से प्रेक्षण किया है। अपरिपक्व प्रेक्षक होने के कारण ऐसे विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक विषयों के संबंध में कुछ भ्रांत धारणाएँ बन जाती है, जिन्हें ठीक करना अत्यंत आवश्यक होता है। वस्तुतः मनोविज्ञान के पठन का एक महत्त्वपूर्ण कार्य हर व्यक्ति की उन भ्रांत धारणाओं को ठीक करना है, जिन्हें वह दैनिक जीवन में अनायास अर्जित कर लेता है। अतः, इस ग्रंथ के अनुशीलन में

आपको यह जानने के लिए तैयार रहना चाहिए कि आपकी कुछ धारणाएँ मिथ्या और अयथार्थ हो सकती हैं।

मनोविज्ञान में अभिरुचि के कारण विद्यार्थियों को मनोविज्ञान की पाठ्यचर्या से मिथ्या आशाएँ भी हो सकती हैं। वे इससे अत्यधिक अथवा अत्यल्प—दोनों ही प्रकार की अपेक्षाएँ कर सकते हैं।

यदि वे उसमें वैयक्तिक समस्याओं के समाधानार्थ अथवा सुख और सफलता की प्राप्ति के लिए भी कुछ एकस्व उपचार ढूँढ़ते हैं, तो भी वे अत्यधिक अपेक्षा करते हैं। कोई भी व्यक्ति एक ही पाठ्य-पठन से चिकित्सक, वकील, इंजीनियर या संगीतज्ञ नहीं बन सकता। इसी तरह एकबारगी ही वह मनोविज्ञानवेत्ता भी नहीं बन सकता। प्रत्येक स्थिति में वृत्तिक प्रवीणता प्राप्त करने के लिए विषयविशेष में तथा उससे संबद्ध अनेक विषयों में दीर्घकालीन प्रशिक्षण अनिवार्य है। यद्यपि आप इस ग्रंथ से ऐसा बहुत कुछ सीख सकेंगे, जो अपने को और अन्य लोगों को समझने के लिए उपादेय होगा। मनोविज्ञान का प्रारंभिक पठन भी संभवतः किसी भी प्रारंभिक महाविद्यालयी पाठ्यक्रम के ही सदृश उपयोगी होगा। आपको इससे विषय के केवल मूलभूत सिद्धांतों को ही जानने की आशा करनी चाहिए, न कि उसके गहन ज्ञान की अथवा उसमें अत्यंत प्रवीणता की।

मनोविज्ञान के विषय-परास को संकुचित दृष्टि से ग्रहण करने की संभावना है। अन्य व्यक्तियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए अथवा अपनी वैयक्तिक समस्याओं का कैसे सामना किया जाए, यह मनोविज्ञान के क्षेत्र का एक लघु आंशिक क्षेत्र मात्र है। इसके विस्तृत क्षेत्र के अंतर्गत सामाजिक समूहों, बुद्धि और योग्यताओं, कार्य एवं दक्षता, अधिगम तथा प्रत्यक्षण, शरीर-क्रियात्मक घटनाओं एवं जान्तव-व्यवहार से संबंधित समस्याएँ भी हैं और यह सब उसके विषयों में से कुछ ही हैं तथापि ये सब विषय कुछ अंशों में मनुष्यों को समझने से किसी-न-किसी रूप में संबंधित हैं। इसमें से अनेकों का सभ्य जीवन के विविध क्षेत्रों में व्यावहारिक महत्त्व है। अतः, आपको एक ऐसे विषय के अधिगम के लिए प्रस्तुत रहना होगा, जो अधिक विस्तृत है और अनेक व्यक्तियों की सूझ से भी अधिक व्यापक एवं विन्यस्त होते हुए भी विविध समस्याओं के विशदतर धरातल को स्पर्श करता है।

## मनोविज्ञान की परिभाषा :

अब हमें मनोविज्ञान का विशिष्ट स्वरूप देखना चाहिए। यदि आप मनोविज्ञानवेत्ता से पूछें कि उसके विषय[1] की परिभाषा क्या है, तो संभवतः वह

१. ऐसी एक परिभाषा के लिए देखिए—केलर, १९३७।

कहेगा—मनोविज्ञान मानव और जान्तव-व्यवहार का विज्ञान है; क्योंकि उसकी सामान्यतः स्वीकृत परिभाषा यही है। किंतु, इस परिभाषा को सुनकर मनोविज्ञान से अनभिज्ञ व्यक्ति इसमें प्रयुक्त तीन महत्त्वपूर्ण शब्दों पर संभवतः आश्चर्य करेगा —'विज्ञान', 'जान्तव' एवं 'व्यवहार'। संभव है वह पूछे—क्या मनोविज्ञान वास्तव में विज्ञान है ? मन विचार अथवा भावना न होकर 'व्यवहार' ही क्यों ? और 'जान्तव' व्यवहार क्यों ? मनोविज्ञान से उसका क्या संबंध है ?

'विज्ञान' शब्द से आरंभ कर हम इन तीनों शब्दों पर पृथक्-पृथक् विचार करेंगे। विज्ञान व्यवस्थित ज्ञान के निकाय को कहते हैं। ऐसे ज्ञान की संवृति घटनाओं के ध्यानपूर्ण प्रेक्षण एवं मूल्यांकन द्वारा प्राप्त की जाती है – अनिवार्यतः नहीं, तब भी कभी-कभी ऐसे प्रयोगों में जिनकी व्यवस्था वैज्ञानिक उन घटनाओं को उत्पन्न करने के लिए करता है, जिनका वह अध्ययन कर रहा है। प्रेक्षित पदार्थों एवं घटनाओं को कई प्रकार से सुव्यवस्थित किया जाता है। मुख्यतः उनका वर्गगत विभाजन किया जाता है एवं उनका वर्णन करने वाले तथा उनका यथासंभव पूर्वकथन करने वाले सामान्य नियम अथवा सिद्धांतों को प्रतिस्थापित किया जाता है। कला और विज्ञान का अंतर स्पष्ट करते हुए यह कहा जा सकता है कि कला कुछ करने का वह कौशल अथवा कमाल है जिसे अध्ययन एवं अभ्यास से उपार्जित किया जाता है।

इन परिभाषाओं के अनुसार मनोविज्ञान कला एवं विज्ञान दोनों है; क्योंकि कला का विकास व्यक्ति के अपने करने से होता है, ग्रंथों अथवा कक्षाध्ययन से इसका परिज्ञान कठिन है। इसके अतिरिक्त मनोविज्ञान की कलात्मक संधियों के संधान का काय-चिकित्सा और इंजीनियरिंग के सदृश आधारभूत विज्ञान की विषय-सामग्री पर अधिकारप्राप्ति के उपरांत ही सर्वोत्तम विकास होता है। मनोवैज्ञानिक कलाओं के जैसे रूप हम राजनीति, राजनय नीति, विक्रयकला एवं अन्य क्षेत्रों में देखते हैं, अभी मानवीय संबंधों की गंभीरतम समस्याओं को सुलझाने में असफल एवं प्रभावहीन रहे हैं। दूसरी ओर गत तीन चौथाई शताब्दी से अधिक समय से अनुसंधानकर्त्ताओं के उत्साहपूर्ण सत्प्रयत्नों के परिणामस्वरूप अब 'मनोविज्ञान' नामक एक विज्ञान व्यवस्थित ज्ञान का विशद् निकाय विद्यमान है, जो पढ़ाया जा सकता है और जो व्यवहार के सम्यक् बोध के विकास का सर्वोत्तम आधार है। इन्हीं कारणों से हमने मनोविज्ञान की अपनी परिभाषा में और इस ग्रंथ में 'विज्ञान' शब्द पर कुछ बल दिया है।

अब हम 'व्यवहार' शब्द पर आते हैं। मनोविज्ञान का विषय व्यवहार है न कि मन, विचार या भावना; क्योंकि केवल इसी का अवलोकन, अभिलेखन एवं

अध्ययन किया जा सकता है। किसी भी व्यक्ति ने आज तक न मन को देखा है, न सुना है और न स्पर्श किया है, जबकि व्यवहार व्यक्ति द्वारा देखा, सुना और स्पर्श किया जा सकता है। कोई व्यक्ति क्या करता है इसे वह देख सकता है, उसका मापन कर सकता है, अथवा कोई व्यक्ति क्या बोलता है, इसे वह सुन सकता है और उसका अभिलेखन कर सकता है, जिसे 'शब्द-व्यवहार' कहते हैं। अन्य सब कुछ केवल अनुमित है। निस्संदेह हम मानव मात्र के मानसिक प्रक्रमों, उनके विचारों एवं उनके अनुभवों के होने का अनुमान करते हैं। किंतु, मनोवैज्ञानिक घटनाओं के व्यवस्थित ज्ञान के लिए हमें केवल व्यवहार के अवलोकन पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक मानव-व्यवहार के अतिरिक्त जंतुओं का भी अध्ययन करते हैं।

**चित्र १.१. चूहों में अधिगम का प्रयोगात्मक अध्ययन। प्रयोगकर्त्ता चूहे को ध्वनिरोधक यंत्र में रखता है। भीतर तल की शलाकाओं से आने वाले हल्के विद्युत्-आघात से बचने के लिए चूहे को प्रत्येक कुछ सेकंड के पश्चात् उत्तोलक को दबाना पड़ता है। प्रयोगावधि समाप्त होने पर अनुसंधान-सहायक स्वचालित यंत्रों की नामिक पर आनेवाले उन अंकों को पढ़ता और लिख लेता है, जो चूहे के किए कार्य का माप व्यक्त करते हैं।**

अंत में, अब हम 'जान्तव' शब्द पर आते हैं। विज्ञान अपने को मनमाने ढंग से किसी एक विशेष क्षेत्र की घटनाओं तक या जिसका तात्कालिक व्यावहारिक मूल्य होता है ऐसे ज्ञान तक, सीमित नहीं कर लेता। वास्तव में प्रायः हर व्यक्ति, यहाँ तक कि अति व्यवहारकुशल, राजनीतिज्ञ एवं व्यवसायी भी, अब सीख गया है कि ज्ञान का ज्ञान के लिए ही यदि अध्ययन किया जाए, तो भी अंततोगत्वा उसका महान्

व्यावहारिक मूल्य होता है। और यदि अधिक नहीं, तो भी जान्तव-व्यवहार यदि मानव-व्यवहार से अधिक नहीं, तो उसके जितना आकर्षक तो हो ही सकता है। अतः, जिस प्रकार प्राणिविज्ञ (Zoologist) जान्तव-जगत के सब सदस्यों के आकार और प्रकार्य का अध्ययन करता है, उसी प्रकार मनोविज्ञानवेत्ता जान्तव एवं मानव-व्यवहार दोनों का व्यवस्थित रूप से अवलोकन करता है। अतः, जान्तव-व्यवहार मनोविज्ञान के अध्ययन का उचित क्षेत्र है। देखिए चित्र १.१
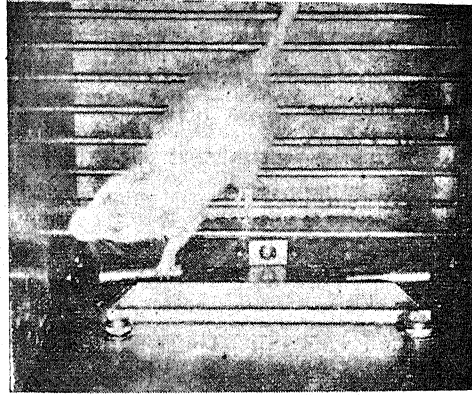
किंतु, जान्तव-व्यवहार के अध्ययन का एक और उतना ही महत्त्वपूर्ण कारण है। जान्तव एवं मानव-व्यवहार में अनेक समानताएँ हैं। वास्तव में जंतु या पशु मनुष्यों के ही समान अनेक क्रियाएँ करते हैं या प्रयोगशाला में निश्चित ही अविकसित रूप में अनेक वैसी क्रियाएँ, उन्हें सिखाई जा सकती हैं, जिन्हें मानव-व्यवहार में देखा जाता है। अतः, जान्तव-व्यवहार का अध्ययन मानव-व्यवहार को समझने में बड़ा सहायक है। हम पशुओं पर अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग कर सकते हैं, जिन्हें मनुष्यों पर करना संभव नहीं; क्योंकि मनुष्य 'गिनी पिग' बनना नहीं चाहते। इसीलिए मनोविज्ञानवेत्ता व्यवहार-संबंधी सामान्य प्रश्नों के समाधान के लिए प्रायः पशुओं का उपयोग करते हैं। यही कारण है कि इस पुस्तक में आप मानव-व्यवहार के अतिरिक्त जान्तव-व्यवहार के भी अनेक अध्ययन पाएँगे।
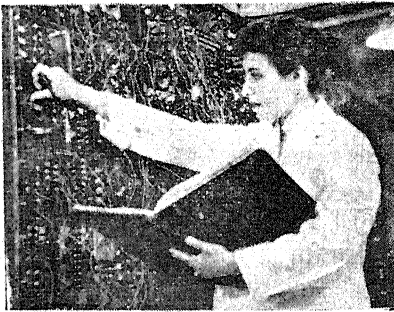
### व्यवहारपरक विज्ञान :

यद्यपि व्यवहार मनोविज्ञान का विषय है, परंतु निश्चय ही वह केवल मनोविज्ञान की ही संपत्ति नहीं है। अन्य अनेक शास्त्र भी मानव एवं जान्तव-व्यवहार के अध्ययन को अपना विषय बना लेते हैं। इन शास्त्रों में मनोविकार चिकित्सा-विज्ञान, मानव-विज्ञान, समाज-विज्ञान, अर्थ-विज्ञान, राजनीति-विज्ञान एवं इतिहास है। सामूहिक रूप में आजकल इन्हें व्यवहारपरक विज्ञान की संज्ञा दी जाती है। इनमें से प्रत्येक व्यवहार के कुछ निश्चित अंगों पर अपना ध्यान केंद्रित करता है। परंतु, उनमें आपस के अंतर सदा स्पष्ट नहीं रहते।

### अपनी परीक्षा कीजिए :

कागज के एक टुकड़े पर एक से बीस तक की संख्या लिखिए, फिर प्रत्येक निम्नलिखित वक्तव्य को ध्यानपूर्वक पढ़ कर लिखिए कि उन्हें आप ठीक समझते हैं या गलत।

1. प्रतिभाशाली व्यक्ति सामान्य बुद्धिवाले व्यक्ति से साधारणत: अधिक विचित्र होते हैं। (14)
2. सोचने की योग्यता केवल मनुष्य में है, पशु में नहीं। (9)
3. मानव के अधिकांश व्यवहार मूल प्रवृत्ति-जन्य होते हैं। (3)
4. मंद गति से सीखने वाले जिसे अच्छी तरह सीखते हैं, उसे वे शीघ्र सीखने वालों की अपेक्षा अधिक स्मरण रखते हैं। (8)
5. बुद्धिमान व्यक्ति तर्क द्वारा अपने अधिकांश निर्णय स्थिर करते हैं। (9)
6. मनोविज्ञानवेत्ता वह व्यक्ति है, जिसने मानव-मनोविश्लेषण का अभ्यास किया है। (1,6)
7. समालाप द्वारा आप व्यक्ति को अच्छी तरह पहचान सकते हैं। (15,18)
8. अनेक घंटों तक कार्य करने वाले व्यक्ति के लिए बहुत से अल्पकालीन विश्रामों की अपेक्षा कुछ दीर्घकालीन विश्राम अधिक लाभप्रद होंगे। (18)
9. गणित का अध्ययन मानव-मस्तिष्क को अन्य विषयों पर तर्कपूर्ण या वैज्ञानिक ढंग से विचार करने के लिए अभ्यस्त करता है। (8)

10. व्यावसायिक सफलता के लिए कॉलिज की श्रेणियों का महत्व बहुत कम होता है। (8)
11. कम मात्रा में अलकोहल उत्तेजनावर्द्धक होता है। (5)

12. सामान्य व्यक्ति और मानसिक रोग से ग्रस्त व्यक्ति में अंतर स्पष्ट प्रकट होता है। (5)
13. पूर्ण सूचना का अभाव पूर्वग्रहों का मुख्य कारण है। (17)
14. प्रतियोगिता की भावना, अधिकांश मानव-समाजों की विशेषता है। (16)
15. कर्मचारी के लिए कार्य का अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग उसका वेतन है, जिसे वह अपने कार्य के प्रतिदानस्वरूप प्राप्त करता है। (18)
16. मनुष्यों को अंतर्मुखी और बहिर्मुखी वर्गों में अच्छी तरह विभक्त करना संभव है। (15)
17. बच्चों के अनुचित व्यवहार को दूर करने के लिए दंड एक प्रभावपूर्ण साधन है। (7)
18. एक व्यक्ति के व्यंजक-भाव को निकट से देखने पर आप उसके मनोभावों को, जिन्हें वह अनुभव कर रहा है, बता सकते हैं। (4)
19. मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य जितनी ऊँचाई पर निर्धारित करेगा, उतनी ही अधिक प्राप्ति की उसे संभावना है और उसी के अनुसार वह और अधिक सुखी होगा। (3,5)
20. यदि कोई व्यक्ति आपके प्रति निष्कपट है, तो साधारणतः वह अपने प्रयोजन या लक्ष्य को आपको बता सकेगा।

पृष्ठ ४९ पर लिखित पाद-टिप्पणी इन प्रश्नों के उत्तर प्रस्तुत करती है। प्रत्येक प्रश्न के अंत में कोष्ठों में दिए गए अंक इस पुस्तक के उन अध्यायों के हैं, जिनमें उक्त प्रश्नों पर विचार किया गया है।

समाज-विज्ञान और सामाजिक मानव-विज्ञान का संबंध मानव-समूहों के व्यवहार से है। इन विषयों के विशेषज्ञ एक साथ रहने वाले मनुष्यों के विविध समाजों या लोकसमूहों की संस्कृतियों और सामाजिक संरचनाओं का अध्ययन करते हैं। समाजविज्ञ विशेष रूप से हमारे जैसी आधुनिक साक्षर संस्कृतियों का अध्ययन करता है और मानवविज्ञ अपेक्षाकृत अधिक आदिम संस्कृतियों का। प्रत्येक विज्ञान ने अपनी पद्धतियाँ विकसित की हैं और अपना ज्ञान-भंडार उपार्जित किया है। तो भी आज जैसे-जैसे उनका ज्ञान मिलकर एक दूसरे की प्रणालियों या पद्धतियों का प्रयोग करता है, उनकी विभाजन-रेखाएँ धूमिल होती जा रही हैं।

इतिहास निश्चय ही एक व्यवहारपरक विज्ञान है; क्योंकि यह इतिहास का निर्माण करने वाली घटनाओं के मुख्यतः मानव-व्यवहार की घटनाओं के पुनर्निर्माण

हो सकने योग्य होने चाहिए। वे सिद्धांत किसी वर्गीकरण प्रणाली के रूप में हो सकते हैं, जैसे कि हम प्राणि-विज्ञान में पाते हैं। वे प्रेक्षित घटनाओं के क्रम या संबंध को व्यक्त करने वाले यथार्थ नियम हो सकते हैं, जैसे, उदाहरणार्थ, भौतिकी में मिलते हैं। हर हालत में विज्ञान में हम अपने प्रेक्षणों को संक्षिप्त और क्रमबद्ध रूप में सुव्यवस्थित करने का प्रयास करते हैं।

विज्ञान को विकसित करने का प्रयास वृत्ताकार पथ में अवलोकनों से सिद्धांतों की ओर तथा पुनः अवलोकनों की ओर चला करता है। इस वृत्त का प्रथम भाग 'आगमन' कहलाता है। जहाँ भी संभव होता है, हम बिना विशेष सामंजस्य या कारणों की चिंता के अवलोकन करते हैं और फिर ऐसे अनुमित सिद्धांतों को रूप देने का प्रयास करते हैं, जो हमारे विचार से अवलोकनों की संक्षिप्त अभिव्यक्ति कर सकते हैं। इसके बाद हम वृत्त के उस भाग पर चलते हैं, जिसे 'निगमन' ( Deduction ) कहा जाता है। हम तर्क करते हैं कि यदि हमारे सिद्धांत ठीक हैं, तो हमने जो प्रेक्षण अभी नहीं किए हैं, हम उनके संबंध में भी पूर्वकथन कर सकेंगे। तब हम किसी योजना के अनुसार ऐसे नए प्रेक्षणों को एकत्रित करने की चेष्टा करते हैं, जिनके द्वारा अपने अनुमित सिद्धांतों की परिशुद्धता की परीक्षा हो जाए। कभी-कभी हमारे अनुमित सिद्धांत पूर्ण या आंशिक रूप में गलत सिद्ध होते हैं और कभी वे पूर्ण तथा सही होते हैं। किंतु व्यवस्थित रूप से—अवलोकनों से सिद्धांतों की ओर पुनः अवलोकनों की ओर के पथ का अनुगमन करके हम निरंतर अपने सिद्धांतों को अवलोकनों के अनुसार रूप देते, बदलते और विकसित या उन्नत करते हैं।

विज्ञान के अनेक विशिष्ट लक्षण हैं, किंतु अंतिम, जिसका हम यहाँ उल्लेख करेंगे, वह है परिमापन। हम में से प्रायः सभी इसे मानते हैं कि विज्ञान पदार्थों को मापता है। हम विज्ञानों में उस विज्ञान को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, जिसमें मापनों का सूक्ष्मतम विकास हुआ हो। भौतिक विज्ञान को इसी कारण से विज्ञानों में सर्वाधिक 'वैज्ञानिक' माना जाता है; क्योंकि उसके मापन बहुत ही यथार्थ और सूक्ष्म होते हैं। वास्तव में विज्ञान में मापन सदा अनिवार्य नहीं होता। उदाहरणार्थ, प्राणि-विज्ञान-जैसे क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सिद्धांत जान्तव-जगत के सदस्यों के व्यवस्थित वर्गीकरण के रूप में हैं। ऐसा वर्गीकरण वास्तविक शाब्दिक अर्थों में 'मापन' नहीं है। मनोविज्ञान में भी हम व्यवहार के विविध प्रकारों के वर्गीकरणों का अधिगम करेंगे। फिर भी हमारी अधिकांश समस्याएँ 'अधिक' और 'न्यून' के प्रश्नों को लेकर हैं। वैसे, हम जानना चाहेंगे कि अधिक बुद्धिमान माता-पिता के बच्चे कम बुद्धिवाले माता-पिता के बच्चों की अपेक्षा क्या अधिक तीव्र बुद्धि वाले होते हैं ? इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर देने में हमें ऐसे मापनों की आवश्यकता पड़ेगी, जो बता सकें कि माता-पिता और

बच्चे दोनों कितनी बुद्धिवाले हैं। चूँकि अधिकांश मनोवैज्ञानिक समस्याएँ काफी जटिल हैं, उनके अध्ययन के लिए मापन की विधियों का निर्माण भी सरल नहीं रहा है। १३वें अध्याय में हम उन विधियों का संक्षिप्त विवरण देंगे, जिनका निर्माण हुआ है। यद्यपि हम ऐसे मापनों की सूक्ष्म गहराई में नहीं गए हैं, तो भी इस पुस्तक में उल्लिखित लगभग हर बात का मूल आधार व्यवहार के परिमापन में ही है।

## वैज्ञानिक मनोविज्ञान के उद्गम :

किसी भी विज्ञान ने तब तक पूर्ण स्थायित्व प्राप्त नहीं किया, जब तक कि प्रेक्षणों और परिमापनों को इंद्रियानुभवाश्रित करने का प्रयास निरंतर न किया गया हो। इन प्रयासों को निश्चित रूप से ऐसे लोगों के विरोध का सामना करना पड़ता है, जो यह सोचते हैं कि इन नवीन प्रेक्षणों से यों इन पर आधारित सिद्धांतों से उनके पुराने जमाने से चले आए सिद्धांतों को या उनके आपत्त पुरुषों के वचनों को खुली चुनौती मिलती है। ऐतिहासिक दृष्टि में यह प्रतिरोध सर्वप्रथम भौतिक जगत के प्रश्नों के समाधान के संबंध में टूटा था। अतः, विज्ञान के रूप में सर्वप्रथम भौतिक और रसायन-विज्ञान प्रतिष्ठित हुए थे। चेतन-जगत के रहस्यों को समझने में आने वाले विरोधों को दूर करने में अधिक समय लगा। अतः, जीव-विज्ञान, मनोविज्ञान इंद्रियानुभवाश्रित और समाज-विज्ञानों को बनाने में अधिक समय लगा। आज भी जब कोई वैज्ञानिक प्रचलित अभिवृत्तियों के विपरीत मनोवैज्ञानिक प्रदत्त प्रस्तुत करता है, तो उसका प्रतिवाद होने लगता है। फिर भी मनोविज्ञान अनुभवाश्रित विज्ञान के रूप में निरंतर समृद्ध होता रहा है।

## प्राकृतिक-प्रेक्षण :

यद्यपि हर विज्ञान की अपनी विशेष प्रणालियाँ होती हैं, तथापि सामान्यतया अपने चारों ओर के परिवेश में क्या हो रहा है, उसे सावधान प्रेक्षक होकर देखने से भी व्यक्ति बहुत कुछ सीखने की योग्यता प्राप्त करते रहे हैं। आगे उल्लिखित प्रयोग प्रणाली से भिन्न होने के नाते इस विधि को 'प्राकृतिक-प्रेक्षण विधि' कहा जाता है। जैसे, केवल गंभीर प्रेक्षक बनकर ही हमारे पूर्वजों ने पशुओं और पौधों का विवरण दिया और उनका वर्गीकरण किया, नवीन समुद्रों और स्थानों की खोज की एवं उनका चित्रांकन किया तथा मानव-व्यवहार के अनेक सत्यों का उल्लेख किया। आधुनिक विज्ञान के प्रारंभ होने से पूर्व दत्त-सामग्री के प्रेक्षण और अर्थनिर्णय का कार्य दार्शनिकों का कार्य समझा जाता था। प्राचीन यूनानियों ने, दार्शनिकों ने, अपने चारों ओर फैले विश्व के संबंध में बहुत कुछ जान लिया था, अपने ज्ञान को सुव्यवस्थित या सुक्रमित करने का प्रयास किया था और

उसके अर्थ की परिकल्पना की थी। अतः, दर्शन आधुनिक ज्ञान-विभागों का जनक बन गया। जैसे-जैसे दार्शनिकों ने अपने ज्ञान को विकसित किया, उन्होंने दर्शन के क्षेत्र में विविधि विशेषताओं का भी विकास किया। प्राकृत-दर्शन के विषय वे थे जो आज भौतिक, रसायन और प्राकृत विज्ञानों के विषय हैं। मानस-दर्शन का संबंध उस विषय से था, जो आज मनोविज्ञान का क्षेत्र है, नैतिक-दर्शन उन अनेक सामाजिक समस्याओं पर विचार करता था, जो आज समाज-विज्ञानों के अंतर्गत हैं। अतः, दर्शन हमारे आधुनिक प्राकृत और समाजविषयक विज्ञानों दोनों का जनक है। रसायनशास्त्र, मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र आदि विषयों के स्नातकोत्तर छात्रों को आज भी पी-एच० डी० (डाक्टर ऑफ फिलासफी) की उपाधि प्रदत्त करने में यही तथ्य परिलक्षित होता है।

## प्रयोगात्मक मनोविज्ञान :

नए विज्ञानों को भी, बच्चों की भाँति देर या सबेर माँ का वह आँचल छोड़ना ही था। किंतु, नई प्रयोगात्मक विधि के आविष्कार ने इस स्वातंत्र्य आंदोलन को अमित गति दी। प्राकृतिक प्रेक्षण-विधि वैज्ञानिक को प्रकृति द्वारा उपलब्ध किए गए घटनाओं और वस्तुओं के प्रेक्षण और वह भी प्राकृतिक परिस्थितियों में प्रेक्षण तक सीमित रखती है। इसके विपरीत प्रयोग-विधि वैज्ञानिक को वह सुयोग देती है, जिसके द्वारा वह जब चाहे, अपनी इच्छा के अनुरूप उन घटनाओं को घटा सकता है, जिनके प्रेक्षण की उसे विज्ञान के विकास में आवश्यकता पड़ती है।

प्रयोग-विधि का आविष्कार और प्रयोग सर्वप्रथम भौतिक एवं रसायन-शास्त्रियों ने किया। उन्होंने इस विधि द्वारा भौतिक एवं रसायनशास्त्र के उन सिद्धांतों को सूत्रबद्ध किया, जिनका अध्ययन आज भी किया जाता है।

कालांतर में भौतिक एवं शरीर-विज्ञानशास्त्रियों ने, आज मनोविज्ञान के अंतर्गत आने वाले विषयों, जैसे वर्ण-दृष्टि, श्रवण और मस्तिष्क-क्रियाकलाप पर प्रयोग आरंभ किए। इनका अध्ययन, इस पुस्तक में यथास्थान आगे किया जाएगा। जैसे-जैसे मनोविज्ञान की यह सीमांतक समस्याएँ प्रयोग-विधि द्वारा अध्येय सिद्ध होने लगीं, वैसे-वैसे यह धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा कि अन्य विज्ञानों की भाँति मनोविज्ञान भी अपनी विशिष्ट समस्याओं के उपर्युक्त प्रयोगात्मक विधियों के विकास द्वारा ही विशेष प्रगति कर सकता था।

अंत में, प्रो० विलहेम वुण्ट (Prof. Wilhelm Wundt) ने १८७९ ई० में जर्मनी के लीपजिग विश्वविद्यालय (University of Leipzig) में मनोविज्ञान की प्रथम प्रयोगशाला स्थापित की। संभवतः प्रथम प्रयोगशाला की स्थापना इससे पूर्व ही हो

चुकी थी; क्योंकि हारवर्ड (Harvard) में विलियम जेम्स (William James) भी प्रयोग करते रहे थे। कुछ भी हो, एक बार प्रारंभ होने के बाद मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ तीव्र गति से बढ़ने लगीं। संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रथम औपचारिक प्रयोगशाला जान्स हापकिंस विश्वविद्यालय ( The Johns Hopkins University ) में १८८३ ई० में स्थापित की गई। कुछ ही वर्षों में देश के हर बड़े विश्वविद्यालय में ऐसी प्रयोगशालाएँ स्थापित हो गईं।

वुण्ट ( Wundt ), जेम्स ( James ), ड्यूई ( Dewey ) और फ्रायड (Freud) आधुनिक मनोविज्ञान के प्रवर्त्तकों में हैं।

वुण्ट
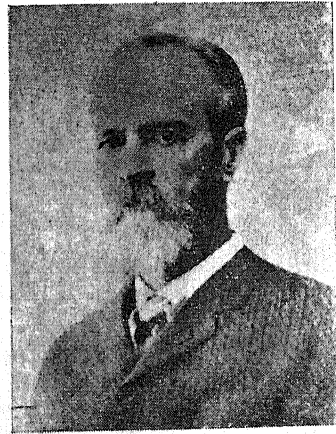
जेम्स

**चित्र १ : २ विलहेम वुण्ट (बाएँ ऊपर) ने लिपजिग (Leipzig) में १८८९ ई० में प्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना की।**

**विलियम जेम्स ( दाएँ ऊपर ) ने हारवर्ड विश्वविद्यालय में प्रयोगों को प्रोन्नत किया और प्रभावकारी पुस्तकें लिखीं।**

**जान ड्यूई ( मध्य : पृष्ठ १४ ) प्रकार्यवाद के एक नेता हैं और आधुनिक शिक्षा पर उनका महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है।**

**सिगमंड फ्रायड (मध्य : पृष्ठ १५) ने मनोवश्लेषण (Psychoanalysis) का विकास किया, जिससे व्यक्तित्व की एक नवीन धारणा और मानसिक रोग के उपचार की नवीन प्रणालो उपलब्ध हुई।**

बालक की भाँति विज्ञान को भी परिपक्व होने के लिए समय की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिक प्रेक्षणों और सिद्धांतों का कोई सुदृढ़ निकाय स्थापित करने के लिए विभिन्न विधियों से अनेक परिस्थितियों में किए गए सहस्रों प्रयोगों की आवश्यकता होती है। इस बीच, विशेषतः जब प्रेक्षण बहुत कम होते हैं और नवीन विधियाँ विकसित हो रही होती हैं, तब ऐसे वादों के युग बीतने की संभावना रहती है, जिसमें भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण पर्याप्त उत्साह सहित प्रतिपादित किए जाते हैं। मनोविज्ञान ऐसे काल में से निकला है, जिसमें अनेक संप्रदायों की प्रधानता रही। निम्नांकित अनुच्छेदों में हम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संप्रदायों में से कुछ की व्याख्या करेंगे। इन संप्रदायों में से चार के प्रणेताओं के चित्र दिए गए हैं।

ड्यूई

## संरचनावाद ( Structuralism ) :

प्रथम संप्रदाय या 'वाद' अपने उद्भव के लिए उस समय का ऋणी है, जिसमें प्रयोगात्मक मनोविज्ञान आरंभ हुआ था। तात्कालिक पदार्थ विज्ञानवेत्ताओं ने इतनी सफलता केवल अपनी प्रयोगात्मक पद्धति के कारण ही नहीं, वरन् अपने भौतिकत्व के आणुविक सिद्धांत के कारण भी प्राप्त की थी। उस सिद्धांत या सिद्धांत-समूह का कथन था कि सभी जटिल तत्त्वों का विश्लेषण आंशिक तत्त्वों में हो सकता है, जैसे प्राथमिक पदार्थ-विज्ञान या रसायन- विज्ञान में आज किया जाता है।

प्रथम प्रयोगात्मक मनोवैज्ञानिकों के लिए यही स्वाभाविक था कि वे इस उदाहरण का अनुगमन करते और ऐसा ही उन्होंने किया भी। उन्होंने उन मानसिक

तत्त्वों का संधान आरंभ किया, जिसमें उनकी धारणा थी कि सभी मानसिक अंतर्विषयों का विश्लेषण किया जाता है। उन्होंने सोचा कि यह तत्त्व संवेदना ही होना चाहिए जैसे लाल, शीतल, मधुर या गलित आदि। इन तत्त्वों की तथा उनके संयोजन के नियमों की खोज के लिए उन्होंने एक विशेष प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग किया, जिसे 'अंतर्दर्शन' कहते हैं (बोरिंग-१९५३)। किसी प्रयोज्य को होने वाले किसी उद्दीपन (Stimulus) विशेष के अनुभव का यथासंभव उद्दीपन से उसके मन में संबंधित अर्थों की अवहेलना करते हुए वस्तुगत रूप (Objectively) से विवरण देने का अभ्यास करवाया जाता था। उदाहरणतः, उसके सामने कोई रंगीन प्रकाश, कोई संगीतमय स्वर (तान) अथवा कोई सुगंध प्रस्तुत करके उससे उसका यथासंभव सूक्ष्मता से विवरण देने के लिए कहा जाता। यह आशा की जाती थी कि इस प्रकार मूल संवेदनों से किसी अनुभव के मानसिक अंतर्विषय की पुनर्रचना हो सकेगी।
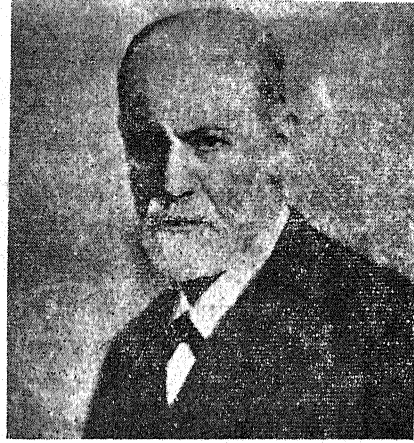
फ्रायड

इस प्रकार अनेक मूल्यवान् प्रेक्षण संकलित किए गए और उस प्रणाली के कुछ पक्षों का आज भी उपयोग किया जाता है। किंतु, यह उपागम किसी व्यक्ति के अनुभव के विवरण तक सीमित रहने के कारण बहुत संकीर्ण सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि मन (Mind) मूल संवेदनों की ही एक संरचना (Structure) है, यह मान्य नहीं हो सकता। अतः, संरचनावाद ने मनोवैज्ञानिक संहतियों के अध्ययन के निमित्त अन्य उपागमों को मार्ग दे दिया।

### प्रकार्यवाद (Functionalism) :

इन नवीन उपागमों में एक को 'प्रकार्यवाद' कहते हैं। इसके दो सर्वाधिक प्रभावशाली पुरस्कर्त्ता थे —विलियन जेम्स (James, 1890) और जान ड्यूवी। इन्हें इस विषय में रुचि थी कि मनोवैज्ञानिक गतिविधियों में क्या हो रहा है और इनके द्वारा कौन-सा उद्देश्य संपन्न हो रहा है। जैसा कि, 'प्रकार्यवाद' शब्द में निहित है। वे व्यवहार और मानसिक प्रक्रियाओं की केवल रचना का ही नहीं, उनके प्रकार्यों का भी अध्ययन करते थे। प्रकार्यों के अध्ययन के लिए प्रकार्यवादियों

ने केवल प्रयोगात्मक प्रणालियों का प्रबंधन अंतदर्शन विधि को सम्मिलित करने के लिए ही नहीं, बल्कि व्यवहार के प्रेक्षण के लिए भी किया, जिसे कोई व्यक्ति करता है। संवेदक अनुभव और मानसिक अंतर्विषय के वितरण तथा विश्लेषण तक ही अपने को सीमित रखने की अपेक्षा उन्होंने व्यक्ति की समग्र क्रियाओं पर बल दिया -- वह कैसे अधिगम करता है; वह कैसे अभिप्रेरित होता है, वह समस्याओं का समाधान कैसे करता है, वह कैसे भूलता है। अतः, प्रकार्यवाद की दो प्रमुख विशेषताएँ थीं—किसी व्यक्ति के समग्र व्यवहार और अनुभवों का अध्ययन तथा किसी व्यक्ति द्वारा वस्तुओं की सहायता से किए गए प्रकार्यों में रुचि।

### व्यवहारवाद ( Behaviorism ) :

प्रकार्यवाद व्यवहार के प्रेक्षण पर बल देने के लिए प्रवृत्त हुआ, किंतु इस पर भी उसने मानसिक प्रक्रिया के अंतर्दर्शन को तर्कसंगत विधि स्वीकार किया। आज के दूसरे प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जान बी० वाटसन ( J. B. Watson, 1925 ) एक कदम और आगे बढ़े। उन्होंने अंतर्दर्शन-विधि को पूर्णतः अस्वीकार किया और इस पर बल दिया कि मनोवैज्ञानिक प्रयोगों को व्यवहार के अध्ययन तक ही सीमित रहना चाहिए। इसी विशेषता के कारण इस वाद को 'व्यवहारवाद' की संज्ञा मिली।

व्यवहारवाद की और भी तीन महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ थीं— प्रथम अनुबंधित प्रतिवर्त पर बल, जो व्यवहार के निर्माणकारी तत्त्व हैं। वास्तव में व्यवहारवाद ने जिस संरचनावाद को अस्वीकार किया, स्वयं वह बहुत कुछ उसी के समान है, जब वह स्वीकार करता है कि जटिल अंतर्विषय अनेक प्रारंभिक छोटे-छोटे अंतर्विषयों से बनते हैं। पर, इसके तत्त्व, संवेदन न होकर, अनुबंधित प्रतिवर्त हैं। अनुबंधित प्रतिवर्त की विस्तृत व्याख्या को हमें आगे के अध्याय के लिए छोड़ देना चाहिए, पर यहाँ हम स्थूल रूप से उसकी व्याख्या—उद्दीपन की अपेक्षाकृत साधारण अधिगत प्रतिक्रिया—कर सकते हैं। वाटसन ने अनुभव किया कि मनुष्य के जटिल व्यवहार पूर्णतः अनुबंधित प्रतिवर्त समूहों से ही निर्मित हैं।

व्यवहारवाद की दूसरी विशेषता थी—उसका अनधिगत की अपेक्षा अधिगत व्यवहार पर बल देना। उसने साहसपूर्वक मूल प्रवृत्ति या जन्मजात प्रवृत्तियों के अस्तित्व को अस्वीकार किया। वाटसन के अनुसार लगभग जो कुछ भी मनुष्य बनता है, वह प्रतिवर्तों के अनुकूलन का प्रतिफल है। वास्तव में उसका एक अति प्रसिद्ध कथन है कि वह किसी भी बालक को उचित अभ्यास के द्वारा—जो वह चाहे, एक भिखारी, वकील या किसी भी अन्य प्रकार का मनुष्य बना सकता है।

व्यवहारवाद की अंतिम विशेषता थी—जान्तव-व्यवहार पर बल देना। उसके अनुसार मनुष्य और पशु में महत्त्वपूर्ण अंतर नहीं है और हम पशुओं के अध्ययन से

मनुष्य के संबंध में बहुत कुछ सीख सकते हैं; क्योंकि पशुओं पर प्रयोग सरलता से किए जा सकते हैं। वाटसन और उसके शिष्यों के इस दृढ़ विश्वास के कारण पशुओं पर बहुत से प्रयोग किए गए और आज तक किए जा रहे हैं तथा उनसे अनेक मनोवैज्ञानिक समस्याएँ सुलझाने में महत्त्वपूर्ण सहायता मिली है।

व्यवहारवाद की इन विशेषताओं ने आधुनिक मनोविज्ञान पर अपनी छाप अंकित कर दी है। यद्यपि व्यवहारवाद बहुधा अतिरंजना तक पहुँच जाता है, फिर भी इसमें एक महत्त्वपूर्ण ध्येय निहित है कि अन्य विज्ञानों के ही सदृश मनोविज्ञान की दत्त-सामग्री भी सबके समक्ष निरीक्षणार्थ प्रकट रहनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, मनोवैज्ञानिक प्रेक्षण को सार्वजनिक प्रेक्षण होना चाहिए, जिसे अन्य लोग दोहरा सकें और जिसकी परीक्षा कर सकें। अतः, व्यवहारवाद को ऊपरलिखित एवं इस पुस्तक में सर्वत्र प्रयुक्त मनोविज्ञान की परिभाषा की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए ऐतिहासिक रूप में बहुत कुछ करना पड़ा।

## समग्राकृति-मनोविज्ञान :

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान (Gestalt Psychology)—जबसंयुक्त राज्य अमेरिका में व्यवहारवाद अंतर्दर्शनवाद को विस्थापित कर रहा था, उस समय जर्मनी में विचारों का एक अन्य संप्रदाय पनप रहा था। यह गेस्टाल्ट मनोविज्ञान था (कोहलर, १९४७)। गेस्टाल्ट एक जर्मन शब्द है, जिसका ठीक-ठीक अनुवाद संभव नहीं है, पर इसका अर्थ कुछ-कुछ 'रूप', 'संश्लिष्ट-गठन' अथवा संरूप या समग्र-रूप के समान है। पूर्ववर्ती संरचनावाद के समान गेस्टाल्ट मनोविज्ञान भी पदार्थ-विज्ञान में विकसित संप्रत्ययों के द्वारा अत्यधिक प्रभावित हुआ था। तीस वर्ष उपरांत किसी प्रकार, ये नवीन संप्रत्यय अब चुंबकीय क्षेत्र की रेखाओं के समान एक क्षेत्रीय संप्रत्यय थे। यही कारण है कि गेस्टाल्ट मनोविज्ञानवेत्ताओं को, और विशेषतः उनके आधुनिक अनुवर्त्तियों को, कभी-कभी 'क्षेत्रीय-सिद्धांतवादी' कहा जाता है।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञानविदों ने सर्वप्रथम अणुवाद अथवा कणीकरणवाद का विरोध किया। इन्होंने अनुभव किया कि संरचनावाद और व्यवहारवाद दोनों ने संवेदनाओं तत्त्वों-जैसे संवेदना या अनुबंधित प्रतिवर्त की खोज कर गलत मार्ग को अपनाया था। इनके अनुसार हमारे अनुभव और व्यवहार साधारण तत्त्वों के योग से नहीं बने हैं। वरन् वे प्रतिरूप या 'संश्लिष्ट-गठन' हैं, जो आकर्षण-शक्तियुक्त चुंबकीय-क्षेत्र के अनुरूप है, जिसमें एक भाग की घटनाएँ दूसरे भाग की घटनाओं से प्रभावित होती हैं। जैसे धूसर वर्ण के एक कागज का टुकड़ा अपनी पृष्ठभूमि के सापेक्ष में अथवा किसी वस्तु की तुलना में केवल धूसर वर्ण का होता है। काली

पृष्ठभूमि में उसका रंग हलका या मंद और सफेद पृष्ठभूमि में उसका रंग गहरा प्रतीत होता है। अनेक बिंदु क्रमबद्ध व्यवस्था में एक प्रतिरूप या अभिकल्प रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे जब आप चित्र १.३ में बिंदुओं को देखते हैं, तो आप उन्हें केवल विच्छिन्न बिंदु-रूप में नहीं देखते, वरन् आप चतुर्भुज और त्रिभुज पंक्तिबद्ध अभिकल्प के रूप में देखते हैं। संश्लिष्ट अवधारणा को अच्छे ढंग से स्पष्ट करना या निदर्शन करना तब संभव होगा, जब हम प्रत्यक्षण पर विचार करेंगे। किंतु, गेस्टाल्ट मनोविज्ञानवेत्ताओं के अनुसार हमारे अनुभवों के प्रतिरूपों या रूपों को तत्त्वों के योग करने से स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों की एक और भी विशेषता है—घटना-विज्ञान प्रणाली का प्रयोग। एक महत्त्वपूर्ण अंतर के साथ यह संरचनावादियों के अंतर्दर्शन के उपयोग के समान है। संरचनावादी अनुभव के संभावित तत्त्वों को पृथक् करने के लिए प्रशिक्षणगत अंतर्दर्शन में विश्वास करते हैं। दूसरी ओर गेस्टाल्टवादी सहज अंतर्दर्शन में विश्वास करते हैं अर्थात् जैसी कोई वस्तु दिखाई देती है या प्रेक्षक को प्रतीत होती है, उसी का वे अध्ययन करना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, उनका मत है कि अनुभव की जो अपक्व घटनाएँ बिना विस्तार या विश्लेषण के कही जाती हैं, वे तर्कसंगत प्रेक्षण हैं। अतः, घटना-विज्ञान एक प्रकार की प्राकृतिक प्रेक्षण की प्रणाली है, जिसका प्रयोग मानव प्रत्यक्ष ज्ञान पर किया जाता है।

घटना-विज्ञान विधि पर बल देने के कारण प्रारंभिक गेस्टाल्टवादियों ने मानव-अनुभव एवं प्रत्यक्षण के अध्ययन पर बल देने के लिए अग्रसर किया, वे अनुभवाश्रित वैज्ञानिक थे, जिन्होंने कई एक समस्याओं का अध्ययन किया। उदाहरणार्थ, उन्होंने अधिगम के अवबोधन, विचार-क्रिया एवं समस्या-समाधान—जिनके विषय में उचित स्थान पर विचार किया जाएगा—के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण अनुदान दिया है।

**गेस्टाल्ट मनोविज्ञान (Gestalt Psychology) संस्थानों (Configurations) के प्रत्यक्षण पर बल देता है।**
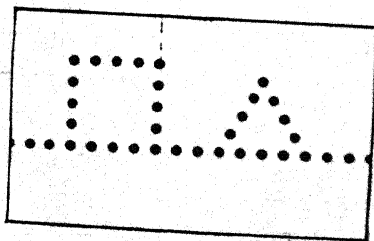
**चित्र १.३—बिंदु अनेक विच्छिन्न तत्त्वों के रूप में दिखाई नहीं देते, लेकिन रेखा पर चतुष्कोण और त्रिकोण के रूप में दिखाई देते हैं।**

### मनोविश्लेषण ( Psychoanalysis ) :

मनोविश्लेषण मनोविज्ञान की एक प्रमुख विचारधारा नहीं है; क्योंकि इसका उद्‌भव उसके बाहर चिकित्सा-क्षेत्र की प्रयोगशाला में हुआ। किंतु, मुख्यतः पिछले वर्षों में, इसका प्रभाव मनोविज्ञान पर भी पड़ा।

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को विदित है कि मनोविश्लेषण के प्रवर्त्तक सिगमंड-फ्रायड (१९३८) थे। फ्रायड वियनानिवासी एक मनश्चिकित्सक थे और उन्हें बहुधा अपने रोगियों की ऐसी समस्याओं का सामना करना पड़ता था, जिन्हें समझने में अपने को वे असमर्थ पाते थे। मानसिक विकारों के वर्गीकरण के लिए मनोविकार-विज्ञान ( Psychiatry ) को एक सुसंपादित प्रणाली के रूप में महत्त्व दिया गया, किंतु इस प्रणाली ने लोगों को विकृति के कारणों की स्पष्ट व्याख्या या उपचार की प्रभावपूर्ण विधि दिए बिना अंधकार में डाल दिया।

फ्रायड ने अपने को बोध (Understanding) और उपचार दोनों समस्याओं से संबद्ध किया। एक चिकित्सक के नाते उन्होंने वैज्ञानिक मनोविज्ञान की विधि और संप्रत्ययों का नहीं के बराबर प्रयोग किया। यों कहना चाहिए कि वे प्रकृत-प्रेक्षण प्रणाली तक सीमित रहे, अर्थात् जो कुछ उन्होंने रोगियों की उपचार-अवधि में देखा, उसी तक वे सीमित रहे। किंतु, वे एक प्रबुद्ध प्रेक्षक थे। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़े, उन्होंने प्राक्कल्पनाएँ बनाईं और उनकी जाँच भी करते रहे। इस दृष्टि से वे अंशतः अनुभवाश्रितवादी थे और कुछ-कुछ प्रयोगवादी भी थे, यद्यपि वे वास्तव में व्यवस्थित ढंग से प्रयोग नहीं कर सके थे। एक बहुप्रज्ञ लेखक होने के कारण उन्होंने मनश्चिकित्सकों और मनोवैज्ञानिकों की विचारधारा एवं आधुनिक साहित्य और साधारण जनता को भी अपनी पुस्तकों द्वारा व्यापक रूप से प्रभावित किया।

फ्रायड ने अपने अनुभवों से दो महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्रदान कीं। सर्वप्रथम उन्होंने एक उपचार-विधि विकसित की, जिसकी ओर 'मनोविश्लेषण' शब्द मुख्यतः निर्देश करता है। यह उपचार 'मुक्त साहचर्य' पर आधारित है, यह ऐसे रोगी को—जो अपने उन्मुक्त विचारों और अनुभवों से साहचर्य करता हो—लक्ष्य रूप में लेकर मनश्चिकित्सक की सहायता से उसकी कठिनाइयों का विश्लेषण करता है। द्वितीय, उन्होंने व्यक्तित्व-सिद्धांत को जन्म दिया, जो 'फ्रायडवाद' या 'मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत' के नाम से प्रसिद्ध है। यह सिद्धांत काफी विस्तृत है, जो समाज तथा व्यक्ति द्वारा दमित अभिप्रेरकों के कार्यों पर बल देता है।

फ्रायड की उपचार-विधि की अपेक्षा उनका व्यक्तित्व-सिद्धांत मनोविज्ञान के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है ( डोलार्ड और मिलर, १९५० ) इस सिद्धांत में अनेक अप्रामाणिक उपलब्धियाँ हैं, फिर भी यह महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यह आगामी व्यवस्थित

शोध-कार्य के लिए प्रेरक रहा है। शोध-कार्य ने फ्रायड की धारणाओं का कुछ उदाहरणों में अनुमोदन किया है और कुछ में नहीं। इसीलिए मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धांत का पूर्ण समर्थन नहीं किया। उन्होंने इसे केवल व्यक्तित्व के अन्य सिद्धांतों के ही सदृश समझा—और अन्य सिद्धांत भी हैं—जो व्यक्तित्व की प्रकृति पर शोध-योजना में निगमनिक मार्ग-दर्शक (Deductive Guide) हैं।

यहाँ हमने पाँच स्कूलों या वादों का वर्णन किया है, जो आधुनिक मनोविज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण रहे हैं। इनमें से प्रत्येक ने मनोविज्ञान के विभिन्न पक्षों पर या प्रेक्षण की विविध विधियों पर बल दिया है। कोई पूर्णतः ठीक या पूर्णतः गलत नहीं है। प्रत्येक ने मनोविज्ञान के विकास में लाभप्रद योग दिया है।

आज ये प्रमुख स्कूल या वाद मिट-से गए हैं। केवल कुछ मनोवैज्ञानिक ही इनमें से किसी एक से अपना संबंध जोड़ते हैं। कुछ एक की अपेक्षा दूसरे की ओर झुकते हैं। किंतु यह दृष्टिकोण, मनोविज्ञान की उस सीमा-रेखा पर, जहाँ घटनाओं के स्पष्टीकरण के लिए एकाधिक सिद्धांतों का विकल्प दृष्टिगत होता है, पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करता है। परंतु यह वांछनीय है; क्योंकि यह लोगों का विविध प्रकार के प्रयोगों के लिए मार्ग दर्शन करता है। मनोवैज्ञानिकों में सैद्धांतिक भिन्नताएँ होती हैं और भौतिक विज्ञान एवं जीव-विज्ञान की भाँति मनोविज्ञान में भी अनेक असाधित समस्याएँ हैं। हम सैद्धांतिक भिन्नताओं पर या असाधित समस्याओं पर बल नहीं देंगे, यद्यपि यत्र-तत्र यदा-कदा हम उनका उल्लेख अवश्य करेंगे। इसके अतिरिक्त हम अपने ध्यान को सुव्यवस्थित और मूलतत्त्वों पर तथा आधुनिक वैज्ञानिक मनोविज्ञान के सिद्धांतों पर केंद्रित रखेंगे।

### प्रेक्षण-विधियाँ (Methods of observation) :

वैज्ञानिक मनोविज्ञान के उद्गम का आलेखन करते हुए हमने प्रयोगात्मक विधि के विकास पर बल दिया है, क्योंकि मनोविज्ञान को वैज्ञानिक धरातल पर लाने के लिए यह अनिवार्य था। वैसे प्रयोगात्मक प्रणाली ही केवल प्रेक्षण के लिए उचित प्रणाली नहीं है और विज्ञान में तब तक सिद्धांत ( Theory ) तथा परिकल्पना (Speculation) के लिए भी यथायोग्य स्थान होता है, जब तक कि यह सत्यापन योग्य (Verifiable) प्रेक्षणों से समर्थित होता है। वैज्ञानिक प्रणाली को पूर्ण परिप्रेक्ष्य से देखने के लिए, हम अधिक विस्तार के साथ विविध प्रणालियों के गुण और दोष देखेंगे।

### प्रयोगात्मक-प्रणाली (Experimental Method) :

इस पुस्तक में सर्वत्र हम बार-बार उन प्रयोगों का उल्लेख करेंगे, जो विशेष

सभी नैदानिक समस्याओं के लिए गंभीर अध्ययन की आवश्यकता नहीं होती, लेकिन जब आवश्यकता होती है, तब मनोवैज्ञानिक व्यक्ति एवं उसके परिवार के विगत इतिहास का विस्तृत विवरण प्राप्त करके ही कार्य प्रारंभ करता है। साधारणतः इस सामग्री को वह व्यक्ति व उसके निकट परिचितों से समालाप द्वारा एकत्रित करता है। बहुधा वह किसी विशेष रूप से प्रशिक्षित सामाजिक कार्यकर्त्ता से संपर्क रखता है, जो कि उस व्यक्ति की सामाजिक पृष्ठभूमि एवं पर्यावरण की खोज करता है।

तब मनोविज्ञानवेत्ता पूर्व—शोध से विकसित विभिन्न प्रकार के परीक्षणों, का प्रयोग करता है। वह बुद्धि-परीक्षाओं, पठन-परीक्षाओं, रुचि-परीक्षाओं, भावनात्मक परिपक्वता और व्यक्तित्व की परीक्षाओं का अथवा अपनी जानकारी की अन्य परीक्षाओं का प्रयोग करता है। ( देखिए—चित्र १.६ ) इनसे और आत्मकथात्मक सूचनाओं से वह समस्या का निदान पाने की चेष्टा करेगा और तब वह उसके उपचार के लिए कदम उठाएगा। परीक्षण, निदान और उपचार प्रत्येक व्यक्ति के संबंध में भिन्न प्रकार के होंगे। बाद में हम मनोवैज्ञानिकों द्वारा उल्लिखित कुछ समस्याओं का अध्ययन करेंगे।

नैदानिक विधि से यहाँ हमारा संबंध विज्ञान के एक साधन के रूप में है। एक विधि के रूप में इसमें प्राकृत-प्रेक्षण, प्रयोग और सर्वेक्षण के लक्षण निहित हैं। हर भिन्न उदाहरण पर कार्य करते हुए निदान-विज्ञ कुछ ऐसी दत्त-सामग्री का प्रेक्षण कर सकता है, जिसे वह महत्त्वपूर्ण समझता है। उदाहरणार्थ, व्यक्तियों के प्रेक्षण द्वारा सिगमंड फ्रायड ने खोज की थी कि मनुष्यों के स्वप्न बहुधा उनकी (तीव्र) अचेतन किंतु बलवती इच्छाओं को प्रतिबिंबित करते हैं। साधारणतः, नैदानिक प्रेक्षण वैज्ञानिक सूचनाएँ प्रस्तुत नहीं करते। वे बहुधा आत्मपरक, विषयगत, आकस्मिक और अनियंत्रित होते हैं तथा उनमें परिमापन की स्पष्टता का अभाव होता है।

एक व्यक्ति के जो हेतु-परिणाम दिखाई देते हैं, वे दूसरे के नहीं हो सकते। यहाँ तक कि एक व्यक्ति में ही महत्त्वपूर्ण आकस्मिक तथ्यों को निश्चित रूप से पृथक् करना अति कठिन है। संभवतः नैदानिक प्रेक्षण का सबसे बड़ा अनुदान फलीभूत विचारों का संकेत देना है, जिन पर प्रयोगात्मक और सर्वेक्षण-विधियों द्वारा अधिक अध्यवसाय से शोध किया जा सकता है।

## मनोविज्ञान में सिद्धांत (Theory in Psychology ) :

मनोविज्ञान में प्रेक्षणों को एकत्रित करने वाली विधियों पर विचार करते हुए हमें मनोविज्ञान में सिद्धांत की भूमिका प्रस्तुत करके विषय को पूर्ण करना चाहिए।

साधारण व्यक्ति या व्यवसायी के लिए 'सिद्धांत' शब्द का अर्थ कभी-कभी निरर्थक ( Unsavory ) गुणवाची शब्द मात्र होता है। इसका अर्थ केवल, किसी व्यक्ति द्वारा किसी काम को कैसे करना चाहिए, बताने वाले असमर्थित और निराधार विचार मात्र भी हो सकता है। अथवा इसका अभिप्राय पुस्तकों से संकलित सिद्धांतों का समूह अथवा अत्यधिक कृत्रिम स्थितियों का समूह-मात्र हो सकता है, जो व्यावहारिक रूप में कारगर नहीं होता। विज्ञान में भी ऐसे सिद्धांत रहे हैं, जो गलत, भ्रामक और गुमराह करने वाले सिद्ध हुए हैं।

किंतु, 'सिद्धांत' विज्ञान का महत्त्वपूर्ण भाग है। वास्तव में यह विज्ञान के मुख्य उद्देश्यों में से एक है; क्योंकि विज्ञान का सबसे अधिक विकास तब होता है, जब वह ऐसे सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है, जिनके द्वारा अनेक प्रेक्षणों का सारभूत रूप प्रकट होता है और नवीन परिस्थितियों में होनेवाली संभावनाओं का स्पष्ट निर्देश होता है। विज्ञान में सिद्धांत के तीन प्रमुख कार्य हैं—

प्रथम—यह एक प्रकार की वैज्ञानिक आशुलिपि का कार्य करता है। एक सिद्धांत अनेक प्रेक्षणों का संक्षिप्तीकरण तथा सामान्यीकरण कर सकता है। उदाहरणार्थ, भौतिक-विज्ञान में गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत सेव, पत्थर और परों का पृथ्वी की ओर गिरना तथा ग्रहों का अपने परिक्रमा-पथों में घूमना आदि अनेक प्रेक्षणों का सरल संक्षिप्तीकरण है। भौतिक प्रेक्षणों के एक विराट रचना-व्यूह का विवरण अलग-अलग न करके गुरुत्वाकर्षण-सिद्धांत बहुत स्पष्टता और संक्षिप्तता से उन सबको अपने में घेर लेता है। मनोविज्ञान में हमने एक सिद्धांत विकसित किया है—प्रबलन व पुनर्बलन सिद्धांत ( Reinforcement Principle )—मनुष्यों और जंतुओं का व्यवहार पुरस्कार और दंड द्वारा क्रमशः समुन्नत अथवा दुर्बल किया जा सकता है। एक अर्थ में यह एक ऐसा सिद्धांत है, जो पूरी तरह सही न हो किंतु उपयोगी है; क्योंकि यह वस्तुतः अधिगम के सैकड़ों प्रयोगों के निचोड़ को संक्षिप्त करता है। अतः, जहाँ तक यह नियमों या सारतत्त्वों को व्यक्त करे, वहाँ तक यह सिद्धांत प्रेक्षणों के संक्षिप्तीकरण की एक उपयोगी आशुलिपि है।

सिद्धांत एक भविष्यवक्ता भी है। दी हुई निश्चित परिस्थितियों में, इसके द्वारा भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को पहले से ही बता सकने की योग्यता हमें देता है। सब विज्ञानों का अंतिम लक्ष्य भावी घटनाओं का पूर्व-कथन करना है। यदि विज्ञान प्रेक्षणों का केवल समूह मात्र होता और यदि प्रेक्षणों के एक वर्ग द्वारा दूसरे के विषय में कोई कुछ भी पूर्व-कथन न कर सके, तो विज्ञान में बहुत कम तथ्य रह जाएगा। किसी नवीन शोध-कार्य में यह बिलकुल सहायक नहीं होगा, यदि यह

दूसरी स्थिति पर लागू न हो । एक सुविकसित सिद्धांत, एक आदर्श-गृह अथवा पथ के मानचित्र के समान है । उदाहरणार्थ, एक मानचित्र भौगोलिक क्षेत्र के सब नहीं, किंतु अधिकांश लक्षणों को प्रदर्शित करता है । इसका प्रमुख उद्देश्य हमें यह बताना है कि हम उस क्षेत्र में किस प्रकार भ्रमण कर सकते हैं । इसी प्रकार एक सिद्धांत हमारे लिए ज्ञान-क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण लक्षणों की पूर्व-सूचना तैयार कर देता है । एक अच्छे मानचित्र को पर्याप्त रूप से शुद्ध होना चाहिए, किंतु यह हमें किसी क्षेत्र के विषय में सब कुछ नहीं बता सकता । इसी तरह एक सिद्धांत को उपयोगी होने के लिए उसमें संपृक्त प्रेक्षणों को अच्छी तरह निरूपित करना चाहिए, किंतु यह आवश्यक नहीं है कि वह पूर्णरूपेण विशुद्ध हो अथवा प्रत्येक संभावित बात को सविस्तर पहले से कह दे ।

**चित्र १.६ मनोवैज्ञानिक योग्यता-मापन के लिए और व्यक्तित्व की समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग करते हैं ।**

सिद्धांत का एक और महत्त्वपूर्ण उपयोग है, सिद्धांत अशुद्ध या अपूर्ण हो, तो भी यह शोधकार्य के लिए आगामी प्रेक्षणों को एकत्रित करने में हमारा पद-प्रदर्शन करता है । यह परमाणु की प्रकृति से संबंधित सिद्धांत ही था, जिसने परमाणुविक

वैज्ञानिकों को उन प्रयोगों को करने के लिए प्रेरित किया, जिनका परिणाम परमाणु-बम है। इस सिद्धांत ने कि ज्ञान-प्राप्ति के लिए पुरस्कार और दंड अनिवार्य हैं, अनेक प्रयोग करवाए और फलस्वरूप हमारी शिक्षा-प्रणालियाँ पूर्णतया बदल गईं। इनमें तथा अन्य उदाहरणों में सिद्धांत ही मूल आधार हैं, जिन पर वैज्ञानिक निर्णय करते हैं कि उन्हें आगे के प्रेक्षणों के लिए क्या और कैसे कदम उठाने चाहिए। जब कोई सिद्धांत गलत या अपूर्ण होता है, तो प्रयोगों द्वारा इसका पता चल जाता है और हम उसे त्याग देते हैं। यदि वह ठीक है या उसका अधिकांश ठीक है, तो हम उसे ग्रहण करते हैं और अपने अन्य प्रयोगों में मार्ग-दर्शक के रूप में उसका उपयोग करते हैं तथा उससे हमारे ज्ञान में वृद्धि होती है।

## मनोविज्ञान के उपयोग :

वैज्ञानिक मनोविज्ञान जब जन्मा, तब इसकी उपयोगिता भी नवजात-शिशु के समान बहुत कम थी। अपने अधिकांश प्रारंभिक वर्ष इसने प्रयोगशाला में प्रेक्षण करते हुए और उनके स्पष्टीकरण के लिए सिद्धांतों को जुटाते हुए व्यतीत किया। धीरे-धीरे किसी प्रकार, इसका कुछ व्यावहारिक उपयोग होने लगा। इसका प्रथम महत्त्वपूर्ण दत्त-कार्य प्रथम महायुद्ध के समय बुद्धि-परीक्षणों को विकसित करना था। उसके बाद से ही यह निरंतर अधिक-से-अधिक व्यावहारिक जीवन की समस्याओं को उठाता रहा है और आज यह अपनी अधिकांश शक्ति को लाभप्रद रूप में व्यय करता है। इस अनुच्छेद में संक्षेप में यही बताया जाएगा कि यह कैसे लाभदायक है।

प्रथम : हमें मनोविज्ञान के तत्त्वसंबंधी विकास और संयुक्त राज्य अमरीका के मनोवैज्ञानिकों की संख्या पर विचार करना चाहिए। यद्यपि इस विकास को पूर्णत: संतोषजनक रूप से परिमापित नहीं किया जा सकता, पर विभिन्न क्षेत्रों में वृत्तिक संस्थाओं (Professional Societies) की संख्या से सूचना प्राप्त की जा सकती है। सारणी १.१ में प्रधान वैज्ञानिक संस्थाओं की सदस्यता के सापेक्ष स्वरूप को अंकित किया गया है। प्रथम विश्वयुद्ध के तुरत बाद १९२० से इसे आरंभ किया है, इसकी परिगणन संख्या १ है। सारणी के अन्य स्तंभों में दस वर्ष के अंतर में सदस्यता कितनी गुनी बढ़ गई है, दिखाया गया है। स्पष्टत.मनोविज्ञान का विकास अन्य अंकित संस्थाओं की तुलना में अत्यधिक है, ३० वर्ष के समय में इसका गुणज १८·५ बढ़ा। शैक्षिक अथवा शास्त्री उपाधियों के वितरण की संख्या आदि, अन्य प्रणालियों के उपयोग करें, तो हम इससे कुछ भिन्न परिणाम पर पहुँचेंगे, किंतु प्राय: हर एक प्रणाली यही सिद्ध करती है कि वैज्ञानिक वृत्ति में मनोविज्ञान के विकास की गति प्रतिशत तुलना में तीव्रतम है। यह विकास जीवन के विविध क्षेत्रों में मनोविज्ञान

की उपयोगिता को प्रमाणित करता है। सन् १९६० ई० में अमरीकी मनोवैज्ञानिक संस्था (Americal Psychological Association) के १९,००० से अधिक सदस्य थे। यदि विकास की गति आज की ही भाँति रही, तो भावी दस वर्षों में सदस्यों की क्षंख्या प्रायः द्विगुनित हो जाएगी।

सारणी १.१

| संस्था | १९२० | १९३० | १९४० | १९५० |
|---|---|---|---|---|
| मनोविज्ञान | १.० | २.८ | ७.० | १८.५ |
| जीव-विज्ञान | १.० | १.८ | ३.१ | ७.४* |
| भौतिक विज्ञान | १.० | १.९ | २.९ | ६.९ |
| मनोविकार विज्ञान | १.० | १.४ | २.६ | ६.३ |
| नृविज्ञान | १.० | १.९ | २.२ | ५.९ |
| गणितशास्त्र | १.० | २.७ | ३.१ | ५.५ |
| सांख्यिकी | १.० | २.३ | ३.२ | ४.४ |
| रसायन विज्ञान | १.० | १.२ | १.६ | ४.० |
| समाजशास्त्र | १.० | १.९ | १.२ | ३.९ |
| राजनीति विज्ञान | १.० | १.४ | २.२ | ३.९ |
| विधि | १.० | २.२ | २.५ | ३.५ |
| अर्थशास्त्र | १.० | १.४ | १.६ | ३.३ |
| भूगर्भशास्त्र | १.० | १.२ | १.६ | २.७** |

सारणी—१.१ १९२० को आधारवर्ष मानकर विभिन्न राष्ट्रीय संस्थाओं में सदस्यता की सापेक्ष वृद्धि ( क्लार्क के अनुसार, १९५७ )।

सारणी १. २. मनोविज्ञान के अंतर्गत विशेषज्ञताप्राप्ति के विविध क्षेत्र प्रदर्शित करती है और इस प्रकार यह हमें उन क्षेत्रों को दिखाती है, जिनमें मनोविज्ञान का प्रयोग होता है। इस तालिका में प्रदर्शित विविध क्षेत्र आगे के अनुच्छेदों में स्पष्ट किए गए हैं।

---

*१९४९ **१९४८

सारणी १.२

| विशेषज्ञता | पुरुष | महिला | योग |
|---|---|---|---|
| नैदानिक मनोविज्ञान | २६.३ | ११.८ | ३८.१ |
| परामर्श | ९.६ | २.४ | १२.० |
| शैक्षिक और विद्यालयीय मनोविज्ञान | ६ ८ | ३.४ | १०.२ |
| कामगर एवं औद्योगिक मनोविज्ञान | ९.३ | ०.८ | १०.१ |
| प्रयोगात्मक मनोविज्ञान | ८.७ | १.२ | ९.९ |
| समाज मनोविज्ञान | ४.३ | ०.६ | ४.९ |
| परीक्षण एवं मापन | ३.० | ०.६ | ३.६ |
| विकासात्मक एवं बाल-मनोविज्ञान | १.६ | १.८ | ३.४ |
| व्यक्तित्व | २.७ | ०.५ | ३.२ |
| अकार्यकुशल | १.४ | ०.५ | १.९ |
| मानव अभियांत्रिक | १.३ | ०.१ | १.४ |
| अ-मनोवैज्ञानिक | १.० | ०.२ | १.२ |
| | ७६.० | २३.९ | ९९.९ |

**सारणी—१.२ : मनोविज्ञान में विशेषज्ञता के क्षेत्र। १०,००० से अधिक प्रश्नावली पर आधारित विभिन्न क्षेत्रों में स्त्रियों और पुरुषों की प्रतिशतता, जो नेशनल साइंस फाउंडेशन को लौटाई गई थी ( आग के अनुसार १९५५ )।**

आजकल मनोविज्ञान के क्षेत्र में नैदानिक मनोविज्ञान में विशेषीकरण का क्षेत्र सर्वाधिक व्यापक है। इसके अंतर्गत संपूर्ण मनोवैज्ञानिकों में ३८ प्रतिशत मनो-वैज्ञानिक आते हैं (वाल्फले १९४८, सेनफोर्ड १९५१, क्लार्क १९५७)। नैदानिक मनोविज्ञान और परामर्श मनोविज्ञान में निकट संबंध है : अतः, यदि नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की संख्या में परामर्श-मनोवैज्ञानिकों की संख्या सम्मिलित कर दी जाए, तो इनकी संख्या संपूर्ण मनोवैज्ञानिकों की संख्या की आधी हो जाती है।

नैदानिक मनोविज्ञान क्या है, इसे अच्छी तरह से समझने के लिए नैदानिक कार्य करने वाले उन तीन प्रकार के—नैदानिक मनोवैज्ञानिक, मनश्चिकित्सक और मनोविश्लेषज्ञ—विशेषज्ञों में अंतर देखना चाहिए।

मनश्चिकित्सक और मनोविश्लेषज्ञ दोनों ही एम० डी० ( M. D ) की उपाधि प्राप्त करते हैं यद्यपि कुछ मनोविश्लेषज्ञ ऐसे भी हैं, जो चिकित्सक नहीं हैं। साधारणतः डाक्टरी प्रशिक्षण के बाद वे व्यक्तित्व-विकृतियों के निदान और उपचार में विशेषज्ञताप्राप्ति का प्रशिक्षण लेते हैं। इस प्रकार के प्रशिक्षण की व्यवस्था मुख्यतः मनश्चिकित्सालयों और चिकित्सालयों में होती है तथा साधारणतः इसका कोई विशेष संबंध मनोविज्ञान से नहीं रहता। एक मनोविश्लेषज्ञ वास्तव में मनश्चिकित्सक ही है, किंतु जब वह सिगमंड फ्रायड और उसके अनुयायियों द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व और उसकी विकृति के उपचार के सामान्य सिद्धांत का समर्थन करता है, तब वह अन्य मनश्चिकित्सकों से भिन्न हो जाता है।

दूसरी ओर नैदानिक मनोविज्ञानवेत्ता अपना बुनियादी प्रशिक्षण चिकित्सा में नहीं, वरन् सामान्य मनोविज्ञान में प्राप्त करते हैं, तदंतर साधारणतः स्नातकोत्तर शिक्षा के अंतिम दो-तीन वर्षों में वह निदान·मनोवैज्ञानिक और मनश्चिकित्सा में विशेषज्ञता प्राप्त करता है। निदान प्रशिक्षिण शासन, परिमापन और मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के अर्थनिर्णय पर बल देता है। उसका प्रशिक्षण मनश्चिकित्सा में मनश्चिकित्सक और मनोविश्लेषक के ही समान मनोविश्लेषणात्मक प्रक्रियाओं तथा अन्य समालाप-विधियों द्वारा रोगियों की भावनात्मक समस्याओं को सुलझाने में सहायता करने में होता है। आघात-चिकित्सा (Shock therapy) और औषधि-चिकित्सा (Drug therapy) तथा उपचार की अन्य चिकित्सात्मक विधियों से भिन्न मनश्चिकित्सा शब्द मानसिक विकारों और कुसमायोजन (Maladjustment) के उपचारों की मनोवैज्ञानिक विधियों की ओर संकेत करता है। उपचार की इन विधियों का विस्तृत विवरण हम छठे अध्याय में देंगे।

दीर्घकाल से मानसिक रोगों के वर्गीकरण और उपचार का दायित्व मनश्चिकित्सकों का था। जब बुद्धि-परीक्षाओं ने उसे वही सहायता दी, जो वह मनश्चिकित्सा की सहायता और उपचार से प्राप्त करता था, तब उसने मनोवैज्ञानिकों से सहायता लेनी प्रारंभ की। वह मनोवैज्ञानिकों पर और भी विश्वास करने लगा, जब वे व्यक्तित्व-मूल्यांकन की परीक्षाओं को विकसित करने लगे। आज व्यक्तित्व-निदान (Personality-diagnosis) के लिए वह उनसे बराबर सहायता लेता है। उनकी परीक्षाओं और विषय-संबंधी विचारों के साथ रोगी व्यक्ति-वृत्त जनित अपने ज्ञान और अपने समालापों के द्वारा वह निदान पा सका और मानसिक रोग की उपचार-विधि तक पहुँचा।

कुछ मनश्चिकित्सक केवल निदान में ही मनोवैज्ञानिकों से सहायता की अपेक्षा करते हैं और कुछ अन्य उन्हें मनश्चिकित्सा में भी सहायक समझते हैं।

निश्चय ही आज के अधिकांश नैदानिक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा-कार्य में प्रशिक्षित और दक्ष हैं। अनेक चिकित्सालयों में, विशेषतया सैनिक शासन संस्थाओं (वेटरंस ऐडमिनिस्ट्रेशन) एवं अन्य लोक-संस्थाओं में, एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सक की आवश्यकता समझी जाती है।

ऐसी संस्थाओं में नैदानिक मनोवैज्ञानिक अक्सर मनश्चिकित्सा का दायित्व लेते हैं। किंतु, प्राइवेट प्रैक्टिस और प्राइवेट अस्पतालों में अभी इसका प्रचार कम है। यहाँ यह कार्यभार मनश्चिकित्सक पर निर्भर करता है। यह भी ध्यान देने की बात है कि अस्पताल में तथा प्राइवेट प्रैक्टिस करनेवाले अनेक मनोवैज्ञानिक अपने दायित्व पर मनश्चिकित्सा करते हैं। ऐसी स्थिति में पहले वे अपने रोगियों को डाक्टर को दिखा लेते हैं कि उन्हें किसी शारीरिक कष्ट के उपचार की आवश्यकता तो नहीं है।

यद्यपि मनोविकारों के निदान और उपचार में बहुत उन्नति हुई है, फिर भी यह निश्चय करने के लिए कि समस्याएँ अच्छी तरह से हमारी पकड़ में हैं, हमें बहुत परिश्रम करना पड़ता है। अतः, इस क्षेत्र में शोधकार्य की बहुत आवश्यकता है। जो इस तथ्य को जानता है, वह इसका समर्थन करेगा। जब कि मनश्चिकित्सक शोध के लिए नहीं, प्रधानरूप से प्रैक्टिस के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करता है, मनोवैज्ञानिक विशेष रूप से शोध एवं उसकी विधियों में प्रशिक्षण प्राप्त करता है। मनोवैज्ञानिक ने मनश्चिकित्सा-शोध क्षेत्र में अग्रसर होते हुए उत्तरदायित्वपूर्ण महत्ता प्राप्त की है।

इधर कुछ वर्षों से यह विचार महत्ता प्राप्त कर रहा है कि मनोविकारों के निदान और उपचार का भार सामूहिक रूप से मनश्चिकित्सक, मनोवैज्ञानिक और समाज-सेवक पर होना चाहिए। ऐसे दल में रोगी की देखभाल का प्रमुख दायित्व मनश्चिकित्सक पर होता है। मनोवैज्ञानिक की प्रमुखता निदान और चिकित्सा में सहायता करने में है। समाज-सेवक का कार्य रोगी के परिवार और उसकी पृष्ठभूमि के विषय में सूचनाएँ देना है।

**परामर्श** (Counseling) :

जिन व्यक्तियों की समस्याएँ मनश्चिकित्सक दल की सेवाओं के लिए कम गंभीर होती हैं, उनकी सहायता परामर्शदाता व पथ-प्रदर्शक मनोवैज्ञानिक करते हैं। जिन्हें भावनात्मक अथवा व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने के लिए उचित मार्ग-दर्शन की आवश्यकता होती है, उन्हें वे परामर्श देते हैं। वे उन लोगों में भेद करने वाली रेखा या परदे का कार्य करते हैं, जिन व्यक्तियों को विवेकपूर्ण परामर्शदाता की या जिनको गंभीर मनश्चिकित्सक की सहायता की आवश्यकता है।

परामर्श एवं मार्गदर्शन मनोवैज्ञानिक व्यावसायिक और शैक्षिक समस्याओं में भी लोगों की सहायता करते हैं। वे उद्योगों में, स्कूल एवं कालेजों में, और व्यक्तिगत प्रैक्टिस के क्षेत्रों में, कार्य करके लोगों की अभिरुचियों रुचियों और व्यक्तित्व को परीक्षणों द्वारा परख कर लोगों को आवश्यकतानुसार निदेशन या मार्गदर्शन देते हैं। बहुधा वे माता-पिता को उनके बच्चों की योग्यता और सीमाओं की सूचना देने का, या विद्यार्थी में अध्ययन की आदत को विकसित करने में सहायता देने का, या किसी को उसकी व्यावसायिक रुचि के विषय में परामर्श देने का या किसी व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत साधारण समस्याओं को सुलझाने में सहायता देने का, कार्य करते हैं। परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक मनश्चिकित्सा भी कर सकते हैं। किंतु, मनश्चिकित्सा करते समय उन्हें रोगी की गंभीर भावनात्मक समस्याओं के प्रति सावधान रहना चाहिए और उस संबंध में अंतिम निर्णय के लिए मनश्चिकित्सक अथवा नैदानिक मनोवैज्ञानिक से सहयोग लेनी चाहिए।

इधर कुछ वर्षों से परामर्शदाता-मनोवैज्ञानिकों की नियुक्ति का पर्याप्त प्रचार हो रहा है। अनेक महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों ने मनोवैज्ञानिक निदानालय या परामर्श केंद्र स्थापित किए हैं। बड़ी औद्योगिक और निर्माणकारी संस्थाओं में भी व्यक्तिगत समस्याओं को सुलझाने में सहायक परामर्शदाताओं की व्यवस्था है। अनेक स्कूल, विशेषतः हाई स्कूल, परामर्शदाताओं को नियुक्त करते हैं, जिनका मुख्य कार्य विद्यार्थियों की शिक्षा-संबंधी और व्यक्तिगत समस्याओं में सहायता करना है। अतः, मनोविज्ञान का यह क्षेत्र बड़ी तीव्र गति से फैल रहा है।

### शिक्षा (Education) :

शिक्षकों को प्रशिक्षण-कार्य करते समय अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिन्हें मनोविज्ञान के ज्ञान द्वारा सुलझाया जा सकता है। एक बच्चे के विकास का अध्ययन यह समझने में हमारी सहायता करता है कि किस प्रकार से बालक की योग्यता और उसके व्यक्तित्व में विकासकाल द्वारा परिवर्तन होता है। ऐसे ज्ञान का यदि उपयोग किया जाए, तो इसके द्वारा हम जान सकते हैं कि हमें क्या पढ़ाना चाहिए, कब पढ़ाना चाहिए और कैसे पढ़ाना चाहिए। बुद्धि और व्यक्तित्व-परीक्षणों का प्रयोग यह निश्चित करने के लिए हम कर सकते हैं कि बच्चा किस दिशा की ओर और कितनी तेजी से प्रगति कर सकता है। अधिगम और शिक्षण की विविध प्रणालियाँ प्रभावपूर्ण हों, इसके लिए पाठ्यक्रम की पुस्तकें लिखाने और क्लास में पढ़ाई की विधियाँ अपनाने के लिए मनोवैज्ञानिक अनुसंधान की सहायता ली जाती है। अधिगम और शिक्षा की विभिन्न प्रणालियों की प्रभावोत्पादकता पर मनोवैज्ञानिक खोज ने पाठ्य-पुस्तकों तथा पाठन-विधियों पर इसके प्रभाव को

स्वीकार किया है। कालेजों और विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के चयन की विधियाँ, विशेषकर वे विधियाँ, जो अभिरुचियों और विशेष योग्यताओं पर निर्भर करती हैं, मनोविज्ञान में प्रशिक्षित व्यक्ति की अपेक्षा रखती हैं। इसमें तथा अन्य रूपों में मनोविज्ञान शैक्षणिक व्यवस्था में उपयोगी सिद्ध होती हैं।

## उद्योग (Industry) :

कुछ वर्ष पूर्व तक व्यापार और उद्योग वैज्ञानिक मनोविज्ञान का अपेक्षाकृत बहुत कम प्रयोग करते थे। किंतु, आजकल परिस्थिति बदल रही है। सारणी १.२ स्पष्ट करती है कि अब कर्मचारियों की नियुक्ति और उद्योग में प्रचुर संख्या में मनोवैज्ञानिकों की नियुक्ति में वृद्धि हुई है। वृद्धि की यह गति अब भी बढ़ रही है और संभवतः नैदानिक परामर्श एवं शिक्षा मनोविज्ञान के बाद विस्तार में इसी का उल्लेख होगा।

औद्योगिक समस्याओं के निदान में मनोविज्ञान का प्रथम उपयोग बुद्धि और अभिरुचि की परीक्षाओं के प्रयोग द्वारा हुआ था। आज बृहद् औद्योगिक प्रतिष्ठानों में से कुछ में कर्मचारियों के चुनाव और उपयुक्त नियुक्ति की पूर्ण व्यवस्था के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का प्रचुर प्रयोग किया जाता है। मनोविज्ञान का उपयोग प्रशिक्षण की समस्याओं में, कर्मचारियों के निरीक्षण में, व्यवहार की सुव्यवस्था में, कर्मचारियों को सलाह देने में तथा औद्योगिक झगड़ों को शांत करने में किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों को प्रबंधकों में बहुत कम रखा जाता है, और उक्त समस्याओं से उनका सीधा संबंध नहीं रहता। किंतु, उन्हें परामर्शदाता के रूप में बुलाया जाता है।

व्यावसायिक एवं औद्योगिक मनोविज्ञान में प्रशिक्षण लेने वाले व्यवसायियों की संस्था भी दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है। औद्योगिक मनोवैज्ञानिकों की भी संस्थाएँ हैं, जिनकी संख्या और सम्मान में वृद्धि हो रही है। उनसे बहुधा सहयोग लिया जाता है। वे विविध व्यावसायिक संस्थाओं की सहायता रुपए लेकर करती हैं। एक व्यवसाय के लिए वे किसी सुव्यवस्थित कार्यक्रम को निर्धारित कर सकती हैं, दूसरे के लिए उसके प्रशिक्षण-कार्यक्रम पर सुझाव दे सकती हैं, तीसरे के लिए निरीक्षण-समस्याओं एवं कंपनी के साथ कर्मचारियों के व्यवहार का परीक्षण तथा अन्य के लिए वे उपभोक्ता की उत्पादन-क्षमता के प्रति धारणा या कंपनी के विज्ञापनों की प्रभावोत्पादकता का सर्वेक्षण कर सकती हैं। अपने कर्मचारी-वर्ग में मनोवैज्ञानिकों को स्थायी रूप से नियुक्त करने की अपेक्षा अनियुक्त मनोवैज्ञानिकों की सेवाओं की उपयोगिता अनेक उद्योगपतियों को अधिक रुचिकर प्रतीत होती है। इसमें मनो-

वैज्ञानिकों का भी लाभ होता है; क्योंकि नियमित नियुक्ति में होने पर नियमित रूप से अमनोवैज्ञानिक कार्यों में फँसने की संभावना रहती है, उसकी अपेक्षा वह अनियुक्त रह कर विभिन्न व्यावसायिक संस्थाओं की समान प्रकार की समस्याओं से परिचित होने का अवसर पाता है और उन समस्याओं के समाधान को व्यावहारिक रूप देने का वह पर्याप्त समय प्राप्त करता है। मनोवैज्ञानिकों की संस्थाएँ अधिक स्थायी रूप से मनोविज्ञान को उद्योग में उपयोगी बनाने में सार्थक हो रही हैं।

शासन (Government) :

संयुक्त राज्य अमरीका में सबसे बड़ा नियोक्ता संघीय शासन (Federal Government) है। राज्य और स्थानीय शासन ( Local Government ) के कर्मचारियों को उसमें जोड़ दिया जाए, तो प्रायः एक करोड़ दस लाख व्यक्तियों की सामूहिक शक्ति आपको प्राप्त हो जाएगी। ये कर्मचारी विशेष योग्यता प्राप्त व्यक्ति हैं। वे चाहे डाक-विभाग, राजनयिक विभाग ( Diplomatic ), वन-विभाग, (Forestry) यंत्र-विभाग (Power), विधि-विभाग, कर-संग्रह-विभाग में हों अथवा सैनिक-विभाग में, अपने-अपने कार्य की विशेष योग्यता और उपयुक्त प्रशिक्षण उन्होंने प्राप्त किया है। अधिकतर सिविल सर्विस (असैनिक-सेवा) या योग्यता-प्रणाली से कार्य करने के कारण गवर्नमेंट कर्मचारियों का चुनाव और पदोन्नति उचित तथा ठीक उद्देश्यगत मानक से होती है। एतदर्थ, इसमें आश्चर्य नहीं कि गवर्नमेंट विकास-कार्य में अग्रणी है तथा वह वैज्ञानिक विधियों का उपयोग कर्मचारियों के चयन एवं नियुक्तिकरण में करती है।

इस पुस्तक में हम अनेक स्थलों पर यह संकेत करते चलेंगे कि किस प्रकार परीक्षणों का उपयोग सैनिक-सेवाओं में किया जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम दिनों में टैंकचालक, तोपची, विमानचालक, बम गिरानेवालों, बंदूक चलाने वालों और मिस्त्रियों की लंबी सूची में से विशेषज्ञों के लिए चयन-परीक्षण सुलभ थे। इन चयन-विधियों पर व्यापक रूप से अनुसंधान हो रहे हैं। इस अनुसंधान-कार्य में परीक्षणों को लागू करने और उन्हें नवीन प्रयोगों में व्यवहृत करने के लिए मनोवैज्ञानिकों की आवश्यकता है। सरकार के विभिन्न अभिकरणों ने, जिनमें संयुक्त राज्य नियुक्ति आयोग ( United States Employment Service ) भी है। निष्पत्ति-परीक्षणों (Achievement tests) को कर्मचारियों की योग्यता-परीक्षा और पदोन्नति के लिए भी विकसित किया है। इन अभिकरणों में से अनेक की स्थापना नौकरी खोजने वालों की सहायता के लिए और निजी-नियोक्ता को उपयुक्त कार्य के लिए उपयुक्त कर्मचारी नियुक्त करने में सहायता देने के लिए हुई।

द्वितीय विश्वयुद्ध ने सरकार की समस्याओं के लिए मनोविज्ञान के दूसरे उपयोग का मार्ग प्रशस्त किया। इसे कभी-कभी मानव-अभियांत्रिक या अभियांत्रिक मनोविज्ञान (Human Engineering or Engineering Psychology) भी कहा जाता है। यह यंत्रों की अभिकल्पना से और उन यंत्रों का परिचालन करने वाले व्यक्तियों से संबंधित है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक हवाई जहाजों की बनावट से, चालक-स्थान के परिरूप से, बंदूकों अथवा उपकरणिकाओं से संबंधित हो गए। इन समस्याओं को सुलझाने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने 'प्रत्यक्षण' और 'अधिगम' के अपने ज्ञान को विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य की कार्य-योग्यता के अनुमापन की प्रयोगात्मक विधियों को प्रयोगार्थ प्रस्तुत किया। सैनिक सेवाओं के लिए यह प्रयोग निःसंदेह महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि उस पर अति जटिल यंत्रों में से अत्यधिक ग्रहण करने का अभियोग रहा है। दूसरी ओर मानव-अभियंता मोटरगाड़ी, स्टोव, खराद, क्रेन (भार उठाने वाली मशीनों), रेल-इंजिन और मुद्रण-यंत्र आदि सिविलियन मशीनों के निर्माण में सहायता करते हैं। इस दिशा में अधिक प्रयोगों का आरंभ हम देख रहे हैं। (द्रष्टव्य, चित्र १.७)।

सरकारी नौकरी में मनोविज्ञान के दो अन्य उपयोगों का उल्लेख भी आवश्यक है। प्रथम सैनिक शासन ( Veterans Administration ) के अस्पतालों और अन्य चिकित्सा-केंद्रों में इसका उपयोग होता है। यहाँ नैदानिक और परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक विविध कार्यों में सहयोग देते हैं। द्वितीय यह जनता की मनोवृत्ति और आर्थिक समस्याओं से संबंध रखने वाले अनेक सरकारी अभिकरणों की सहायता करता है। सीधे या किसी निर्वाचन केंद्र से अनुबंध के माध्य से ये अभिकरण आर्थिक और अन्य सरकारी नीतियों का मार्गदर्शन करनेवाली सूचनाओं को एकत्रित करने के लिए सामाजिक मनोविज्ञान की विविध विधियों का नियमित उपयोग होता। हम आगे के परिच्छेदों में इस विषय में और ज्ञान प्राप्त करेंगे।

## सामाजिक समस्याएँ ( Social Problems ) :

अंततः मनोविज्ञान का उपयोग सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के समाधान में किया जाता है। अनेक प्राइवेट अभिकरण जैसे National Conference of Christians and Jews, The American Jewish Congress, and The National Association for The Advancement of Colored People. मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित पूर्वाग्रह आदि विषयों के स्पष्टीकरण के तथ्यों और सिद्धांतों से परिचित हैं। कुछ स्थितियों में पूर्वाग्रह पर जिन्होंने शोध किया है, वे उन मनोविज्ञानिकों को नियुक्त करते हैं, जो उन्हें उसके समाघात की विधि का परामर्श

देते हैं। अपराधों और अपचारों (Delinquency) से संबंधित नगरपालिका व राज्य-अभिकरण भी मनोवैज्ञानिकों और उनके ज्ञान का उपयोग स्वस्थतर समाज के निर्माणार्थ करते हैं।

पूर्वाग्रह, अपराध, अपचार-जैसी सामाजिक समस्याओं से भिन्न हमारे नेतागण शासन में भी मतगणना विधि ( Polling Technique ) द्वारा जानना चाहते हैं कि महत्त्वपूर्ण विषयों के संबंध में लोग क्या सोचते हैं और इस प्रकार वे अधिक-से-अधिक सूचनाओं को एकत्रित करते हैं। मंदीकाल में जब सरकार कृषकों की दयनीय आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए उनकी सहायता करना चाहती है, तो मनोवैज्ञानिक सावधानी से सर्वेक्षण करके बतलाते हैं कि कृषकों को सबसे अधिक किस वस्तु की आवश्यकता है, किस प्रकार के नियंत्रणों को वे अपने सुधार-हेतु स्वीकार करने के लिए तैयार हैं और उनकी स्थिति को उन्नत करने के लिए जो नीतियाँ निर्धारित की गई हैं, उनके प्रति उनका क्या दृष्टिकोण है। इन सर्वेक्षणों ने बहुधा इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि ठोस आर्थिक सिद्धांतों पर आधारित योजनाएँ भी असफल हो जाएँगी, यदि जनता का दृष्टिकोण उनके विपरीत हो। हमारा कोषागार विभाग युद्धकालीन बचत को बढ़ाने के प्रयत्नों में और मुद्रा-स्फीतीकरण के समाधान में लोगों के बचत की आदत की सूचना पर उनके दृष्टिकोणों को मतगणना-विधि ( द्वारा जान कर ) पर, बहुधा राजकीय बॉण्डों को बेचने की योजना के निर्णय को आधारित करता है। ये कुछ उदाहरण हैं, जिन पर सामाजिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित सर्वेक्षण-विधियों को सर्वसाधारण के हितार्थ और सामाजिक समस्याओं को बेहतर ढंग से सुलझाने में प्रयुक्त किया जाता है।

## जान्तव (प्राणि) मनोविज्ञान ( Animal Psychology ) :

जान्तव मनोविज्ञान का क्षेत्र सामाजिक मनोविज्ञान और उपभोक्ता-सर्वेक्षण से बहुत भिन्न होकर भी मनोविज्ञान के उपयोगों के लिए तर्कसम्मत है। इसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं कि जान्तव-व्यवहार अपने-आप में एक रोचक विषय है और यह मानव-व्यवहार को समझने में हमारी सहायता करता है। इसके अतिरिक्त इसके व्यावहारिक उपयोग भी हैं, समय के साथ-साथ ये उपयोग और बढ़ते जाते हैं।

अनेक स्थितियों में पशुओं का उपयोग अधिक लाभप्रद हो सकता है; क्योंकि मानव की अपेक्षा उनमें अधिक संवेदनात्मक तीक्ष्णता होती है और साथ ही वे बहुधा अधिक विश्वसनीय भी हैं। पररक्षी कुत्ते घर और संपत्ति की रक्षा के लिए सुनने व सूँघने की तीक्ष्ण शक्ति के कारण ही नियुक्त किए जाते हैं। रक्त-

पहचाननेवाले ( रक्तपरिचायी कुत्ते ) ( Blood-hounds ) अपराधी और छुपे हुए मनुष्यों को खोज सकते हैं; क्योंकि उनकी घ्राणशक्ति बहुत तीव्र है। अन्य कुत्तों में इसी प्रकार की विशेष योग्यताओं ने उन्हें शिकार के लिए लाभप्रद बना दिया है। 'सशक्त-दृष्टि-कुत्ते' मनुष्य की दृष्टि-योग्यता का स्थान ले सकते हैं। वे और ऐसे अनेक उदाहरण प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुपरिचित हैं।
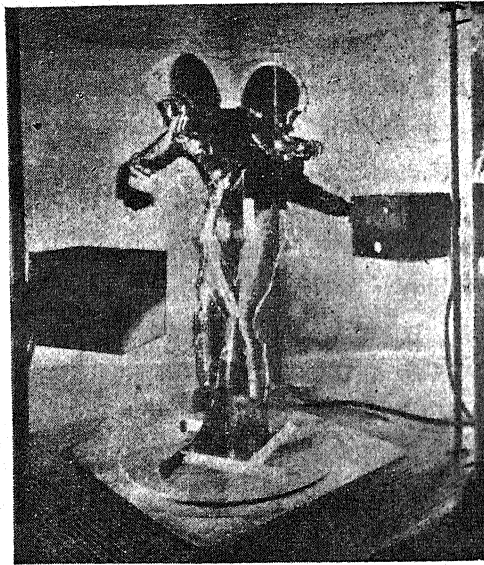
**चित्र १.७ अंतरिक्ष में पुरुषों का सप्रयत्न अनुकरण (Simulation)। यूनाइटेड स्टेट्स एयर फोर्स के मानव-अभियंताओं ने अंतरिक्ष में घटित होने वाली स्थितियों में से एक में पुरुषों की कुछ प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया। पहले में एक पुरुष स्थिर मंच पर है। वह ऐसी स्थितियों में है, जो अंतरिक्ष की भारहीनता का अनुकरण करती हैं और वह अपनी भुजाओं को बलपूर्वक घुमाने में ही केवल घूम सकता है। इन स्थितियों में उसकी क्रिया एवं नियंत्रण करने की योग्यता का भी अध्ययन किया गया है (विलियम वेडीवर्ट Cc)। पृष्ठ-४३—दीर्घकालीन भारहीनता का प्रभाव—जलाशय में ऐसी स्थिति बनाकर तरह-तरह के क्रिया-कलापों पर अध्ययन किया गया। (आर० एम० चेम्बर्स, यू० एस० नेवल एयर डेवलपमेंट सेंटर )**

परिकर्मी भेदक ( Detectors ) के रूप में जंतुओं के कुछ विशेष उपयोग होते हैं। अभी वे बहुत प्रचलित नहीं हैं। केनारी चिड़ियाँ (Canaries) विषैली गैसों के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं और ऐसी गैसों को पहचानने के लिए उनका उपयोग कोयले की खानों और सुरंगों में किया जाता है। यूरोप में मौसमी मेढ़क ( Weather Frog ) का उपयोग बहुधा वर्षा के भविष्यवक्ता के रूप में होता है। इसे पानी से कुछ भरी हुई जलजीवशाला में रखा जाता है और वर्षा की सूचना देने के लिए यह सीढ़ियो पर चढ़ेगा; क्योंकि वायु में आर्द्रता अधिक होने पर ही यह ऊपर चढ़ता है। इधर कुछ वर्षों से मिनो मछलियों ( Minnows ) का उपयोग नदियों के प्रदूषण का पता लगाने के लिए होने लगा है, जो कि बढ़ती हुई औद्योगिक महत्त्व की एक समस्या है। प्रदूषणयुक्त क्षेत्र से दूर रहने के लिए जलजीवशाला में मिनो मछलियों को प्रशिक्षण दिया जाता है।

जान्तव-व्यवहार के अन्य अनेक उपयोगों में से दो अति नवीन अथवा अपूर्व उपयोग चित्र १·८ में चित्रित हैं। एक में, कबूतर उत्पादन कार्य निरीक्षक (Production-line-inspector) के रूप में कार्य करता है। वह अपनी खिड़की की ओर जाता हुआ विविध रंगीन चित्रों के भागों का निरीक्षण करता है, दूसरे में एक कबूतर का उपयोग एक ग्रहपरता अस्त्र (Homing Missile) मार्गदर्शक के रूप में होता है, जिससे अस्त्र के लक्ष्य का मार्ग परिवर्तित करने के लिए जटिल भौतिक साधन बदल दिए जाते हैं। दोनों दृष्टांतों में सुप्रशिक्षित कबूतरों की अति-दृष्टि-तीक्ष्णता और विश्वसनीयता का उपयोग किया जाता है।

चूहों, कुत्तों, बंदरों के अंतरिक्ष-अनुसंधान में उपयोग के विषय में भी हम प्रतिदिन पढ़ते हैं। हम उनसे सीखते हैं कि अपनी अंतरिक्ष यात्रा में मनुष्य से क्या करने की आशा की जा सकती है तथा क्या करने की योग्यता उसमें नहीं है।

मनुष्य के कार्यों में जान्तव-व्यवहार के अनेक उपयोगों अथवा संभावित उपयोगों में से केवल कुछ का यहाँ उल्लेख किया गया है। निःसंदेह हम आने वाले वर्षों में कुछ अधिक उपयोग देखेंगे।

एक पक्षी निरीक्षक है, और ड्राइवर (चालक) भी है।
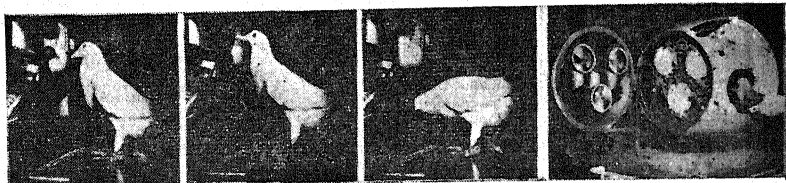
**चित्र—१.८ (१) कबूतर एक निरीक्षण और नियंत्रक के रूप में। एक कबूतर अपनी खिड़की के सामने रुक कर पेण्ट-कार्य को देखता है. (२) जब वह अशुद्ध कार्य देखता है, वह खिड़की पर चोंच मारता है। इसके लिए उसे पुरस्कृत किया जाता है (डब्लू० डब्लू० कमिंग, कोलंबिया विश्व-विद्यालय, लियोनार्ड कामस्लेर द्वारा चित्र)। (३) एक कबूतर को नियंत्रित बम की नोक पर कार्य करने के लिए रख दिया गया है। (४) जब भी यन्त्र-बम चलाने की सूचना देते हैं, वह बटन पर अपनी चोंच मार कर बम को उसके लक्ष्य की ओर चालित कर देता है। (बी०एफ० स्कीनर, १९५०)**

## मनोविज्ञान में वृत्ति-क्षेत्र ( Career in Psychology ) :

हमने ऐसा देखा है कि मनोविज्ञान तीव्र गति से बढ़ता हुआ वह क्षेत्र है, जिसमें विशेषज्ञता के लिए अनेक रुचिकर संभावनाएँ हैं तथा विविध विन्यासों में अधियोजन के अनेक अवसर हैं। उदारमति कला-महाविद्यालयों में यह एक जनप्रिय ( Popular ) प्रमुख विषय है और स्नातक कालेजों में एम० ए० और डी० फिल० ( D. Phil. ) की उपाधियाँ लेने वाले विद्यार्थियों में प्रायः दस प्रतिशत विद्यार्थी मनोविज्ञान के क्षेत्र के होते हैं। अतः संक्षेप में इस पर विचार करना रुचिकर है कि एक व्यक्ति मनोवैज्ञानिक कैसे बनता है और मनोवैज्ञानिकों की नियुक्ति किस प्रकार होती है ( द्रष्टव्य, सारणी — १.३ )।

उस व्यक्ति को, जिसकी योजना मनोवैज्ञानिक बनने की है, प्रकृत और समाज-विज्ञानों में प्रशिक्षण लेने का विस्तृत कार्यक्रम अपनाना चाहिए। मनोविज्ञान इन विज्ञान-समूहों को जोड़ने वाला सेतु है, इसलिए इनके संबंध में कुछ ज्ञान अपेक्षित

है । अतः, यह उचित है कि गणित, भौतिकी, रसायन-विज्ञान, जीव-विज्ञान, समाज-विज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति में प्रशिक्षण अवश्य लिया जाए। प्रयोगात्मक मनोविज्ञान और जैव-विज्ञान के विषयों में अधिक रुचि लेने वाले विद्यार्थियों को प्रकृत-विज्ञान में अतिरिक्त कार्य करना चाहिए तथा सामाजिक, नैदानिक और औद्योगिक क्षेत्रों में अधिक रुचि लेने वालों में सामाजिक एवं व्यवहारिक-विज्ञानों में और अधिक कार्य करना चाहिए। किसी भी रूप में किसी को मनोविज्ञान पर ही बहुत अधिक ध्यान केंद्रित नहीं करना चाहिए; क्योंकि इसे स्नातक-प्रशिक्षण के लिए छोड़ा जा सकता है। उसे विस्तृत अध्ययन के लिए अपेक्षित पाठ्यक्रमों को लेना चाहिए जिसमें प्रयोगात्मक मनोविज्ञान और सांख्यिकी ( Statistics ) भी सम्मिलित है, अथवा उसे विज्ञान में विस्तृत बुनियादी प्रशिक्षण प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।

अन्य क्षेत्रों से भिन्न यदि किसी के पास केवल स्नातक-उपाधि है, तो उसे मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवसाय या काम-धंधा मिलने का अवसर बहुत कम या बिलकुल ही नहीं मिलता। सहायक क रूप में इस क्षेत्र में इधर-उधर कुछ स्थान होते हैं, जो उस लड़की के लिए आकर्षक हो सकते हैं, जिसकी योजना कुछ ही दिनों बाद विवाह करने की हो, अथवा उस लड़के के लिए जिसे उच्चतर प्रषिक्षण में जाने के पहले, अस्थायी अधियोजन की आवश्यकता हो। लेकिन, स्थायी रूप से कार्य करने के लिए इसमें उज्ज्वल भविष्य की संभावना नहीं है। कुछ औद्योगिक स्थान मुख्यतः कर्मचारी-वर्ग के कार्यांतर्गत भी होते हैं, जो उनके लिए हैं, जिनके पास अवर-स्नातक उपाधियाँ हैं। साधारणतः यदि कोई मनोविज्ञान को वृत्ति-रूप में अपनाने की योजना बनाता है, तो उसे स्नातक स्कूल में अवश्य जाना चाहिए।

स्नातक स्कूलों में मनोविज्ञान में प्रवेश-प्राप्ति के स्तर ऊँचे होते हैं। प्रवेश-प्राप्ति के लिए साधारणतः अभ्यार्थी में साधारण कालेज-छात्र की अपेक्षा अधिक अभि-रुचि होनी चाहिए। अनेक स्नातक स्कूल चाहते हैं कि अभ्यार्थी अभिरुचि-परीक्षण दें और साधारणतः उन्हें अच्छा स्तर भी प्राप्त होना चाहिए। जिन्हें प्रवेश प्राप्त होता है, उनमें से अधिकांश का औसत स्तर 'बी' से 'ए' की ओर होता है और अनेक स्नातक स्कूल 'सी' स्तर के छात्रों को प्रवेश नहीं देते, जब तक कि विश्वास योग्य लघुकारक परिस्थितियाँ न हों।

स्नातक कालेज में जाने के लिए किसी को धनी होने की अथवा उसमें कालेज का साधारण व्यय देने की योग्यता का होना आवश्यक नहीं है। योग्य विद्यार्थियों

के लिए अनेक शिक्षा-वृत्तियाँ और सहायता-वृत्तियाँ सुलभ हैं। प्रवेश प्राप्त करते ही स्नातक विद्यार्थियों को अनेक वृत्तियाँ दी जाती हैं और ऐसा विद्यार्थी कोई ही होगा, जिसे एक बार भर्ती होने पर और एक वर्ष तक संतोषजनक कार्य करने पर प्रचुर सहायता न मिल जाती हो। लगभग सभी विद्यार्थी 'डॉक्टर' की उपाधि प्राप्त करने के समय तक शिक्षा-वृत्ति या सहायता-वृत्ति द्वारा आत्मनिर्भर होते हैं।

स्नातक स्कूलों में दो उपाधियाँ प्राप्त होती हैं। 'मास्टर' की उपाधि (साधारणतः मास्टर ऑफ आर्ट्स, पर कभी-कभी मास्टर ऑफ साइन्स) ही अधिक-से-अधिक छोटे स्नातक स्कूल देते हैं। इसके लिए एक से दो वर्ष का पूर्णकालिक कार्य या उसके समानांतर कार्य अपेक्षित होता है। इस उपाधि के लिए जो कार्यक्रम है, उसके अंतर्गत नियंत्रित रूप से पूर्ण पाठ्यक्रम रहता है, जिसे प्रत्येक स्नातक-विद्यार्थी लेता है, और वह उस क्षेत्र की विशेषज्ञता को प्राप्त करने का सुअवसर भी प्राप्त करता है, जिस क्षेत्र में वह भविष्य में नियुक्ति की आशा करता है। साधारणतः डॉक्टर की उपाधि, मास्टर की उपाधि के लिए किए गए कार्यसहित तीन से पाँच वर्ष तक पूर्णकालिक कार्य की अथवा उसके समानांतर कार्य की अपेक्षा करती है। यह मास्टर की उपाधि की अपेक्षा बहुत उच्च और विशेषज्ञतापूर्ण कार्य को तथा किसी महत्त्वपूर्ण शोधकार्य की पूर्ति को संपृक्त करती है। मास्टर की उपाधि लेने वालों में से लगभग आधे छात्र रुचि की कमी या योग्यता की कमी के कारण डॉक्टरेट नहीं करते।

मास्टर-डिग्री-प्राप्त लोगों के लिए सार्वजनिक, वैयक्तिक, औद्योगिक और सरकारी स्कूलों में अनेक प्रकार के सुअवसर हैं। किंतु, उन्हें डॉक्टर-डिग्री-प्राप्त लोगों की अपेक्षा कम आय एवं पदोन्ननि की सीमित संभावनाओं को स्वीकार करके ही कार्य करना होगा। कुछ क्षेत्रों में, विशेषतः सरकारी और औद्योगिक क्षेत्रों में, उन्हें डॉक्टर-डिग्री-प्राप्त लोगों के समान भी सुविधाएँ प्राप्त रहती हैं। किंतु, दूसरी ओर, कालेज, विश्वविद्यालयों एवं शोध-संस्थानों में नियमित अध्यापन-कार्य के लिए डॉक्टर की डिग्री अनिवार्य है। अतः, जिस व्यक्ति को मनोविज्ञान के अध्यापन को वृत्तिक के रूप में ग्रहण करना हो, उसे डॉक्टरेट की डिग्री के लिए अवश्य प्रयत्नशील रहना चाहिए।

## सारणी १.३

| प्रधान नियोक्ता | प्रधान कार्य | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | शिअण | परीक्षण | प्रशासन | शोध | नैदानिक अभ्यास | परामर्श | विविध | योग |
| कालेज या विश्व-विद्यालय | २०·० | २·१ | ५·८ | ७·४ | २·९ | १·० | ०·४ | ३९·६ |
| अन्य शैक्षणिक संस्थान | १·० | ३·५ | १·७ | ०·४ | १·५ | १·० | ०·१ | ९·२ |
| संघीय सरकार, सशस्त्र सैन्य सहित | ०·३ | ३·३ | ३·५ | ४·६ | ४·१ | ०·५ | ०·४ | १६·७ |
| राज्य एवं स्थानीय सरकार | ०·२ | ५·० | २·१ | ०·६ | ३·४ | ०·४ | ०·२ | ११·९ |
| अलाभकर संस्थाएँ चिकित्सालय समेत | ०·३ | २·३ | १·३ | १·६ | २·९ | ०·५ | ०·२ | ९·१ |
| निजी एवं स्वनियुक्त | १·१ | १·० | १·४ | २·१ | १·९ | १·८ | ०·२ | ९·५ |
| विविध | ०·० | ०·० | ०·० | ०·० | ०·१ | ०·० | ३·९ | ४·० |
| वोग | २२·९ | १७·२ | १५·८ | १६·७ | १६·८ | ५·२ | ५·४ | १००·० |

सारणी १.३ : करीब १३,००० मनोवैज्ञानिकों के प्रतिदर्श की प्रतिशतता के रूप में प्रधान नियोक्ता और प्रधान कार्य (१९५४—१५५५ के नेशनल साइंस फाउंडेशन के रजिस्टर के अंकों पर आधारित )।

मनोवैज्ञानिक व्यवसाय में भिन्न-भिन्न पदों के अनुसार वेतन में पर्याप्त अंतर रहता है। साधारणतः शिक्षा के क्षेत्र में वेतन सबसे कम है, सरकारी क्षेत्र में कुछ अधिक है और औद्योगिक क्षेत्र में सर्वाधिक है। अंत में, यह स्वीकार करना होगा कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में आर्थिक लाभ, यद्यपि अन्य व्यवसायों की तुलना में कम होता है, किंतु वह कमी बहुधा शोधकार्य करने, लिखने और स्वतंत्र कार्य करने की अधिक स्वच्छंदता द्वारा पूर्ण हो जाती है।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में अतिरिक्त व्यवसायों की सूचना प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी को अपने अध्यापक से पूछना चाहिए और 'अमेरिकन साइकोलॉजिस्ट' पत्र देखना चाहिए। इस पत्र में प्रति वर्ष भावी स्नातक छात्रों को उपलब्ध होने वाली शिक्षा-वृत्तियों एवं सहायता-वृत्तियों की सूची प्रकाशित होती है। इसमें

विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले मनोविज्ञावेत्ताओं की वेतन-संबंधी सूचनाएँ भी प्रकाशित होती हैं।

सारांश ( Summary ) :

१. यद्यपि मनोविज्ञान की प्रारंभिक पाठ्यचर्या पर्याप्त व्यावहारिक महत्त्व रखता है, किंतु छात्र को इससे केवल प्रारंभिक ज्ञान की ही आशा करनी चाहिए, गंभीर ज्ञान की नहीं।

२. मनोविज्ञान के अंतर्गत समस्याक्षों का विस्तृत परास आता है, न केवल व्यक्ति और उसे समझने वाली समस्याएँ ही वरन् इसके अंतर्गत सामाजिक समूहों, बुद्धि, योग्यता, कार्यनिपुणता, अधिगम-संबंधी तथा अनेक अन्य समस्याएँ भी आती हैं। मनोविज्ञान मानव और जंतु के व्यवहार या आचरण का विज्ञान है।

३. मनोविज्ञान व्यवहारपरक विज्ञानों में से एक है। इस नए विषय में इतिहास, अर्थ-विज्ञान, समाज-विज्ञान एवं राजनैतिक विज्ञान के कुछ तत्वों को भी समाविष्ट करते हैं और कभी-कभी शरीर-विज्ञान और भौतिक विज्ञान-जैसे प्रकृत विज्ञानों के क्षेत्रों से भी इसका पारस्परिक संबंध होता है।

४. अन्य प्रकृत और समाज-विज्ञानों की भाँति मनोविवान भी अपने जन्म के लिए दर्शनशास्त्र का ऋणी है। प्रयोगात्मक प्रणाली को स्वीकार करने तथा मनोवैज्ञानिक शोधकार्य के लिए प्रयोगशालाएँ निर्मित करने के पूर्व तक विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान ने बहुत कम प्रगति की थी।

५. अनेक वर्षों तक मनोवैज्ञानिक शोधकार्य का निदेशन संरचनावाद, व्यवहारवाद, गेस्टॉल्ट मनोविज्ञान, प्रकार्यवाद एवं मनोविश्लेषणात्मक विचार-प्रणालियों द्वारा होता रहा। मनोविज्ञान की वस्तुगत सामग्री के एकत्रित होने के साथ-साथ ये सब प्रणालियाँ लुप्त होती गईं अथवा एक में घुलमिल गईं।

६. प्रयोगात्मक प्रणाली आधुनिक मनोविज्ञान के उद्भव का मूल-आधार है; क्योंकि यह प्रणाली ( a ) आवर्तन ( b ) चरों पर नियंत्रण तथा ( c ) चरों के परिमापन की सुविधाएँ प्रस्तुत करती है। इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं. । जैसे—(१) हर स्थिति में इसका प्रयोग न हो पाना ( २ ) कृत्रिम रूप से स्थितियों को प्रतिबद्ध करना और ( ३ ) कभी ऐसे चर से परिणाम पर पहुँचना, जिसका परिमापन होना अभी शेष है।

७. प्रयोगात्मक प्रणाली को बहुधा सर्वेक्षण-विधियों एवं नैदानिक विधियों की सहायता की भी आवश्यकता रहती है। जब प्रसंगानुकूल चर तथ्य का परिमापन संभव हो, तो सर्वेक्षण एवं नैदानिक दोनों विधियों का प्रयोग हो सकता है। जब प्रयोग

कठिन हो या असंभव हो, तब केवल ये ही विधियाँ हैं, जिनका उपयोग हो सकता है।

८. अन्य विज्ञानों की ही भाँति वैज्ञानिक मनोविज्ञान के लिए भी शास्त्रीय सिद्धांत अनिवार्य हैं। यह ( a ) एक वैज्ञानिक आशुलिपि (Shorthand) ( b ) तथ्यों के एक भविष्यवक्ता एवं (c) शोधकार्य को आगे बढ़ाने वाले एक पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है।

९. अपने जन्म के कुछ वर्षों बाद तक मनोविज्ञान प्रमुख रूप से एक विशुद्ध शास्त्रीय विज्ञान मात्र था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय इसका व्यावहारिक उपयोग प्रारंभ हुआ। आज तो यह सबसे तेजी से विकसित होने वाले विज्ञानों में एक यद्यपि यही एक मात्र तीव्र गति से विकासशील विज्ञान नहीं है।

१०. नैदानिक मनोविज्ञान आजकल एक सबसे बड़ा ऐसा क्षेत्र है, जिसमें मनोविज्ञान का प्रयोग होता है। यह विकारग्रस्त व्यवहार की समस्याओं के शोध, निदान एवं चिकित्सा से संबंधित है।

११. अन्य महत्त्वपूर्ण क्षेत्र, जिनमें मनोविज्ञान का प्रयोग होता है, वे हैं —निर्देशन और परामर्श, शिक्षा, उद्योग, शासन, सामाजिक समस्याएँ तथा जान्तव-मनोविज्ञान।

[ पृष्ठ ६ एवं ७ पर 'अपनी परीक्षा कीजिए' के उत्तर : सत्य और मिथ्या परीक्षण में दिए गए सभी कथन मिथ्या हैं। कुछ इसलिए कि उनमें अतिशयोक्ति और कुछ इसलिए कि उनमें शब्दों का प्रयोग शिथिल है। ये विवरण अपने में स्वीकृति के विशिष्ट उदाहरण हैं, कारण बहुधा उन व्यक्तियों से सुने जाते हैं, जो मनोविज्ञान में प्रशिक्षित नहीं हैं। ]

## पठनार्थ सुझाव :

Boring, E. G. A History of Experimental Psychology ( 2d ed.) New York : Appleton—Century—Crofts, 1950.

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का प्रामाणिक और सुव्यवस्थत इतिहास, अपने क्षेत्र में मानक-सामग्री युक्त ग्रंथ।

Brown, C. W , & Ghiselli, E. E. Scientific Menthod in Psycholoy. New York : McGraw—Hill, 1955.

मानव-व्यवहार के अनेक क्षेत्रों की समस्याओं के लिए वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करने वाली अद्वितीय पुस्तक।

Clark, K. E. America's Psychologists : A Survey of a Growing Profession. Washington, D. C. : American Psychologtcal Association, 1957.

मनोवैज्ञानिकों की विशेषताओं का सांख्यिकीय सर्वेक्षण, प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों के विकास के प्रभावित करनेवाले महत्त्वपूर्ण घटकों का विशेष विवरण।

Conant, J. B. On understanding Science. New Haven, Conn, Yole University Press, 1947.

प्रसिद्ध रसायनशास्त्री एवं शिक्षक द्वारा लिखित भौतिक-विज्ञानों में वैज्ञानिक विधि के विकास का संक्षिप्त एवं रोचक विवरण।

Daniel. R. S., and Louttit, C. M. Professional Problems in Psychology. Englewood Cliffs, N. J. : Prentice-Hall, 1953.

वृत्तिक के रूप में मनोविज्ञान के विकास का विवरण, साथ ही इस पुस्तक से मनोवैज्ञानिक लेख व पुस्तकें लिखने के लिए सूचना प्राप्त करने के स्रोत ज्ञात हो सकते हैं।

Gray, J. S Psychology Applied to Human Affairs ( 2d ed.) New York : McGraw-Hill, 1954

मनोविज्ञान के प्रयोग के विविध क्षेत्रों का विवरण प्रस्तुत करने वाली पुस्तक।

McCormick, E. J. Human Engineering. New York : Mc Graw-Hill, 1957.

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान और उसकी विधियों का, मानव-उपयोग में आने वाले इंजिनियरिंग उपकरणों की समस्याओं में प्रयोग।

Murphy, G. Historied Introduction to Modern Psychology (Revised ) New York : Harcourt Brace, 1949.

मनोविज्ञान के विस्तृत इतिहास पर पठनीय पुस्तक : इसमें आधुनिक मनोविज्ञान के अनेक क्षेत्रों की भूमिका का विशद् चित्रण है।

Robinstein, E. A., & Lorr, M. (eds.) Survey of Clinical Practice in Psychology, New York : International University Press, 1954.

विविध क्षेत्रों में नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के कार्यों पर अनेक अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखित विवरण।

Underwood, B. J. Psychological Research, New York : Appleton-Century-Crofts, 1957.

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान-कार्य में प्रयुक्त विधियों का विवरण ।

Watson, R. I. Psychogy as a Profession, Garden City, New york : Doubleday, 1954.

मनोविज्ञान के प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिए मनोविज्ञान का व्यावसायिक रूप में संक्षिप्त विवरण ।

Wilson, J. T. et al. Current Trends in Psychology and the Behavioural Sciences. Pittsburgh : University. Pittsburgh Press, 1955.

विविध क्षेत्रों के छह अधिकारी विद्वानों द्वारा व्यवहारी विज्ञानों और मनोविज्ञान के सिद्धांत पर आधुनिकतम अनुसंधान-कार्य का विवेचन ।

Woodworth, R. S. Contemporary Schools of Psychology (Rev. ed.) New York : Ronald, 1948.

मनोविज्ञान के विविध स्कूलों का, उनके ऐतिहासिक विकास और मनोवैज्ञानिक सिद्धांत में उनके महत्त्वपूर्ण अनुदान का संक्षिप्त विवरण ।

अध्याय २

# परिपक्वता एवं परिवृद्धि

व्यवहार का अध्ययन प्रारंभ करने का एक अच्छा तरीका यह है कि व्यक्ति के जीवन में इसके प्रारंभ से ही इसका अध्ययन किया जाए। व्यवहार का प्रारंभ व्यक्ति के जन्म से बहुत पहले होता है। शरीर की प्रथम गति वास्तव में गर्भागमन के केवल आठ सप्ताह बाद और जन्म से सात माह पूर्व होती है। इसे बहुधा व्यवहार-बिंदु कहा गया है, किंतु व्यक्ति के व्यवहार को समझने के लिए जिन तथ्यों की आवश्यकता होती है, उसका वास्तविक प्रारंभ यह बिंदु नहीं है। इसके लिए हमें व्यक्ति की उत्पत्ति, उसके गर्भागमन के क्षण तक लौटना होगा। उस बिंदु पर, दो जनन-कोशिकाएँ—पिता की शुक्राणु कोशिका तथा माता की अंडाणु कोशिका—मिल कर एक नवीन व्यक्ति का आकार ग्रहण करती हैं, जिसे 'युग्मज' कहा जाता है। यह युग्मज पिता और माता से आनुवंशिक तत्त्व (Genetic Material) प्राप्त करता है, जो न केवल उसकी शारीरिक संरचना को, वरन् नवीन व्यक्ति की बहुत-सी मनोवैज्ञानिक विशिष्टताओं को भी निर्धारित करता है। इसी कारण से आनुवंशिकता के प्रक्रम के अध्ययन के साथ ही व्यवहार के अध्ययन का उपयुक्त प्रारंभ होता है।

### आनुवंशिकता की क्रिया-विधि ( Mechanisms of Heredity ) :

दोनों जीवाणु-कोशिकाओं में, (शुक्राणु तथा अंडाणु) जिनके मिलने से युग्मज बनता है, प्रत्येक में अंध-नाभिक (Dark-nucleus ) होता है, जो चारों ओर से एक हल्के पनीले पदार्थ से घिरा रहता है और यह एक झिल्ली के अंदर बद रहता है। जब दो कोशिकाओं से युग्मज बनता है, तो दोनों अपने-अपने अंशों को मिलाकर सामान्य संरचना की एक कोशिका को रूप देती हैं।

एक नए व्यक्ति का निर्माण माता के अंडाणु तथा पिता के शुक्राणु के योग से होता है।

हमारे अध्ययन का प्रमुख विषय युग्मज में केंद्र का है; क्योंकि इसमें वह आनुवंशिकी तत्त्व रहता है, जो आनुवंशिक विशेषताओं को माता-पिता से नए प्राणी में संचारित करता है।

पर्यावरण में जीवित रहने के अयोग्य कर देते हैं। बहुत ही कम, संभवतः लाखों में एक, ऐसा परिवर्तन होता है, जो ऐसे गुणों को उत्पन्न करता है कि जीव और उप-जीव के लिए परिजीवन सहज-संगत होता है।

जीन (Genes) में ऐसे परिवर्तन उत्परिवर्तन (Mutations) कहलाते हैं। उत्परिवर्तन इस अर्थ में स्वतः स्फूर्त होते हैं कि हम प्रायः यह नहीं जानते कि उनके होने के कारण क्या हैं ? केवल एक कारण ज्ञात है। यह जीवाणु कोशिकाओं का आवेशित कणों (Charged-particles) द्वारा किरणीयन (Irradition) है। ऐसे कण पृथ्वी से २०-६०० मील ऊपर आयनमंडल (Inosphere) की अंतरिक्ष किरणों (Cosmic rays) में अत्यधिक विद्यमान हैं। शायद ही कभी ये कण हमारे वायुमंडल को पार कर पृथ्वी तक आते हैं, पर ऐसा कभी ही होता है, और जब वे शरीर में प्रवेश कर जीन से टकराते हैं, तो वे उसके किसी अंश का ध्वंस कर देते हैं या उसकी संरचना का पुनर्गठन इस प्रकार करते हैं कि उसमें परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार जिस विशेषक को वे निर्धारित करते हैं, वह भी बदल जाता है। उत्परि-वर्तन के अन्य कारण भी हो सकते हैं। किंतु, यह एक स्वीकृत और सुनिर्धारित कारण है। वास्तव में इसकी पुनरावृत्ति 'एक्स' किरणों का प्रयोग कर प्रयोगशालाओं में की गई है, जो कि अंतरिक्ष किरणों के समान ही कण उत्पन्न करते हैं और पशुओं में आनुवंशिक उत्परिवर्तन करते हैं। आनुवंशिकी विज्ञों का अनुमान है कि ऐसे स्वतः-स्फूर्त उत्परिवर्तन पिछले कई शत-लक्ष वर्षों में काफी हुए हैं, जो पशुओं और वृक्षों की नवीन उप-जातियों के निर्माण के लिए उत्तरदायी हैं।

## पारिवारिक वंशानुक्रमणता (Family Inheritance) :

मानव जाति सहित प्राणिजगत की हर उपजाति के गुणसूत्रों का और उस उपजाति के विशेषगुणों को निर्धारित करने वाले जीन का एक निश्चित समूह होता है। एक उपजाति में, एक प्राणी जिस प्रकार जीन का संयोजन प्राप्त करता है, केवल संयोग पर निर्भर करता है। प्रथमतः यह एक संयोग है, जो यह निश्चित करता है कि जब गुणसूत्रों के युग्म एक-एक में विभाजित होते हैं, तब जीन-युग्म का कौन-सा सदस्य शुक्राणु अथवा अंडाणु में प्रविष्ट होगा। फलतः कोई दो शुक्राणु अथवा दो अंडाणु समान-रूपा नहीं होते; क्योंकि प्रत्येक अनिर्धारित जीन-समूह प्राप्त करता है। द्वितीय, यह विशुद्ध संयोग है कि एक विशेष शुक्राणु एक युग्मज निर्मित करने के लिए एक विशेष अंडाणु से मिलता है। जीन की संख्या बहुत अधिक होने के कारण जीन के संभावित संयोजन की संख्या खगोलीय होती है। अतः दो व्यक्तियों की समान आनुवंशिक संरचना होने की अत्यंत कम संभावना होती है।

इसलिए हम यही आशा कर सकते हैं कि सब व्यक्ति अपनी आनुवंशिकता में और अपने गुणों में एक-दूसरे से बहुत भिन्न होंगे।

एक ही परिवार के व्यक्तियों में जीन और गुणों की समानता की फिर भी आशा की जा सकती है। हर माता और हर पिता अपने बच्चे में आधे-आधे जीन संचरित करते हैं और अपनी बारी में वह बालक अपने बच्चों को आधे जीन देता है। यद्यपि हर आधा भाग अद्वितीय होता है, किंतु फिर भी भाई और बहन के कुछ जीन समान होने की संभावना रहती है। इसी प्रकार माता-पिता और बच्चे में भी समानता हो सकती है। अतः, यह आशा की जा सकती है कि भाइयों-बहनों और उनके माता-पिता के कुछ गुणों में समानता होगी। पितामह और पितामही तथा नाती-नतनी के गुणों में भी समानता होगी, किंतु अनुपात में यह समानता कम होगी; क्योंकि सामान्यतः पितामह या पितामही से बालक केवल आधे से आधे अर्थात् चौथाई जीन को ग्रहण करता है।

केवल एक ही ऐसा उदाहरण प्रस्तुतः किया जा सकता है, जिसमें दो व्यक्तियों की आनुवंशिकता पूर्णतः तादात्म्य रखती हो। यह उदाहरण है समरूप (Identical) दो जुड़वाँ बच्चों का (अथवा समरूप तीन-जुड़वाँ बच्चों का और समरूप चार जुड़वाँ बच्चों का, आदि) समरूप जुड़वाँ वे होते हैं जो एक ही युग्मज से विकसित होते हैं। यदि एक युग्मज दो कोशिकाओं में विभाजित हो जाते हैं और प्रत्येक कोशिका एक नए व्यक्ति की संरचना करती है। जब प्रत्येक कोशिका का वही जीन है, जो युग्मज का है, तो दो व्यक्तियों की आनुवंशिकता समरूप होगी। इससे हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि समरूप-जुड़वाँ बच्चों का लिंग सदा समान होगा; क्योंकि मूल-युग्मज के अनुरूप ही हर एक बच्चे का लिंग-गुणसूत्र होता है।

सब जुड़वाँ बच्चे समरूप नहीं होते। यथार्थ में अधिकांश जुड़वाँ बच्चे भ्रातृ-जुड़वाँ (**Fraternal Twins**) होते हैं। ये माता के दो भिन्न अंडाणुओं से विकसित होते हैं और दो स्वतंत्र शुक्राणुओं द्वारा निषेचित दो युग्मजों के रूप में बढ़ना प्रारंभ करते हैं। इस कारण से भ्रातृरूप जुड़वाँ बच्चों में भिन्न-भिन्न समय में उत्पन्न दो सहोदरों (Siblings) की तुलना में आनुवंशिकता में अधिक समानता नहीं होती है। इसी कारण से उन दोनों का लिंग समान भी हो सकता है और भिन्न भी। अतः, जब जुड़वाँ बच्चों का लिंग समान नहीं होता, तब वे भ्रातृरूप होते हैं, समरूप नहीं। भ्रातृरूप जुड़वाँ बच्चों की केवल यही एक विशेषता है कि वे एक ही समय में पैदा होते हैं और जन्म से पहले तथा बाद में भी भिन्न-भिन्न समय में उत्पन्न अन्य भाइयों और बहनों की अपेक्षा अधिक समान पर्यावरण पाते हैं। आनुवंशिकता और पर्यावरण उसकी समस्याओं के अध्ययन, जो आगे हमारा विवरणीय विषय रहेगा,

उसमें जुड़वाँ बच्चे बहुत अधिक उपयोगी होते हैं। समरूप जुड़वाँ बच्चों की आनुवंशिकता एकरूप होती है, तब उनमें जो अंतर होते हैं, उनको पर्यावरण के अंतर के आधार पर ही समझना होगा। दूसरी ओर भ्रातृरूप जुड़वाँ बच्चे साधारण सहोदरों से आनुवंशिकता में अधिक समान नहीं होते। यदि उनका पर्यावरण एकरूप है, तो उनके अंतर का कारण उनकी आनुवंशिकता है।

## आनुवंशिकता और पर्यावरण (Heredity & Environment) :

आनुवंशिकता की क्रियाविधि (Mechanism of Heredity) पर विचार करते हुए अब हम ऐसी समस्या पर विचार करने के लिए प्रस्तुत हैं, जिसने मानव-व्यवहार को समझने की चेष्टा करने वाले प्रायः हर एक व्यक्ति को आकर्षित किया है। यह आनुवंशिकता बनाम पर्यावरण अथवा प्रकृति बनाम पोषण की समस्या है। इन वाक्यांशों में 'बनाम' शब्द का प्रयोग हुआ है; क्योंकि लोग प्रायः तर्क में एक को दूसरे के विपरीत अर्थ में प्रयोग करते हैं, या तो वे यह दृष्टिकोण रखते हैं कि मानव की आनुवंशिकता यह बहुत अधिक निर्धारित करती है कि व्यक्ति किस प्रकार का होगा अथवा इसके विपरीत दृष्टिकोण रखते हैं कि मनुष्यों की आनुवंशिकता प्रायः समान होती है और यह पर्यावरण ही है, जिसमें मनुष्य का पोषण होता, जो यह निर्धारित करता है कि वह किस प्रकार का होगा। ऐसे तर्क सारहीन होते हैं; क्योंकि वास्तव में आनुवंशिकता और पर्यावरण अथवा प्रकृति और पोषण दोनों मिल कर ही व्यक्ति की योग्यता, कार्यदक्षता और उसके मनोवैज्ञानिक विशेषकों की संरचना करते हैं। समस्या यह नहीं है कि इनमें से किसे चुना जाए, वरन् समस्या यह है कि स्पष्टतापूर्वक निरूपित किया जाए कि ये दोनों कैसे परस्पर कार्य करते हुए उक्त विशेषताओं की संरचना करते हैं।

## आनुवंशिकता की भूमिका (Role of Heredity) :

व्यक्ति के जीन का उसके व्यवहार या आचरण से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। अतः, यह विचारणीय है कि उन दोनों में क्या संबंध है। यह संबंध शरीर के अंगों की संरचना और क्रिया का निश्चय ही है, इससे भिन्न अन्य कोई संबंध युक्तियुक्त अथवा प्रतीयमान भी नहीं है। जीन शरीर के उत्तक तथा अंगों के विकास को नियंत्रित करते हैं और इस तरह वे शरीर की क्रियाशीलता को भी नियंत्रित करते हैं। शरीर की ये क्रियाएँ स्पष्टतः व्यवहार को प्रभावित करती हैं; क्योंकि मस्तिष्क, ज्ञानेंद्रियाँ एवं मांसपेशियाँ आदि अंग-व्यवहार में योग देती हैं। अतः, जीन और व्यवहार का संबंध स्पष्ट है। इसे ध्यान में रखते हुए हम जान सकते हैं कि कब व्यवहार में आनुवंशिकता योग की अपेक्षा करनी चाहिए और कब नहीं।

ऐसे कई तरीके है, जिनमें यह संबंध कार्य कर सकता है। प्रथम है—सामान्य संरचना के द्वारा। यदि एक व्यक्ति वंशानुक्रम से छोटी टांगें, ठूँठदार अंगुलियाँ (Stubley fingers) अथवा बधिर कान प्राप्त करता है, तो निश्चय ही कुछ क्षेत्रों में उसकी योग्यताएँ सीमित हो जाएँगी। यह स्पष्ट है और साथ ही यह कुछ वंशगत मनोवैज्ञानिक दोषों तथा व्यक्ति द्वारा प्राप्त की जानेवाली योग्यताओं की आनुवंशिक सीमाओं का भी कारण है। द्वितीय है—रासायनिक क्रियाओं द्वारा। शारीरिक क्रियाओं में सहस्रों रासायनिक तत्त्व कार्य करते हैं—दृष्टि के लिए प्रकाशसंवेदी तत्त्वों का सहयोग मिलता है और मस्तिष्क की सामान्य क्रियाशीलता के लिए भी अन्य तत्त्व अनिवार्य होते हैं। रक्त जमने में कुछ अन्य तत्त्व योग देते हैं एवं इसी प्रकार अन्य क्रियाओं के लिए ऐसे तत्त्व आवश्यक होते हैं। जीन यह निश्चित करते हैं कि ये तत्त्व उपस्थित हैं या नहीं तथा उनकी मात्रा पर्याप्त है या नहीं। कुछ मनोवैज्ञानिक गुण जैसे—वर्णांधता और मानसिक दुर्बलताओं के कुछ विशेष प्रकार वंशगत हैं; क्योंकि वे ऐसे ही तत्त्वों पर आश्रित होते हैं।

बुद्धि, चित्त प्रकृति, अभिक्षमता-जैसे जटिल मनोवैज्ञानिक गुण, जो केवल आंशिक रूप से आनुवंशिकता पर आश्रित हैं, उनमें ये दोनों संबंध निश्चय ही अनेक प्रकार से मिले हुए हैं। हम जानते हैं कि ये गुण बहुविध निर्धारित हैं अर्थात् इनसे अनेक जीन संबंधित हैं। संभवत: वे इन तथ्यों पर आश्रित हैं; जैसे—मस्तिष्क में विशेष क्रियापथों ( Pathways ) की संरचना, ज्ञानेंद्रियों की संवेदनशीलता, मस्तिष्क की क्रियाशीलता का सामान्य स्तर और विशेष ग्रंथियों के स्राव जब तक हम पूर्णतः वंशगत मनोवैज्ञानिक गुणों के शारीरिक आधार को न समझेंगे तथा यह भी पूर्णत: न जान लेंगे कि अंगों की संरचना ( या गठन ) और क्रिया को जीन बहुविध रूप में कैसे नियंत्रित करते हैं। इसकी संभावनाएँ स्पष्ट हैं कि हम इसे अच्छी तरह बताने में असमर्थ रहेंगे कि जीन व्यावहारिक प्रतिमानों से कैसे संबद्ध है। अत:, हमारे पास पर्याप्त कारण हैं कि हम यह विश्वास करें कि आचरण में आनुवंशिकता का योग है।

सहजप्रवृत्ति की समस्या ( The Instinct Problem) :

वार्तालाप में प्रायः प्रतिदिन हम 'सहजप्रवृत्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं। हम कहते हैं कि एक माता सहजप्रवृत्ति से अपने बच्चे की देखभाल करती है, एक पुरुष में झगड़ने की सहजप्रवृत्ति है अथवा एक पिता अपने डूबते हुए बच्चे को बचाने के लिए सहजप्रवृत्ति के कारण जल में कूद पड़ता है। दुर्भाग्य से इस शब्द के ये प्रयोग असंगत, अवैज्ञानिक एवं अशुद्ध हैं। ये प्रयोग आवेगी (Impulsive) या स्वतः प्रवृत्त

(Automatic) आचरण को वंशगत और अनधिगत (Unlearned) आचरण के साथ मिलाने की भूल करते हैं। उनसे यह भी अर्थ निकलता है कि सहजप्रवृत्ति एक ऐसा तथ्य है, जो आचरण को किसी-न-किसी तरह स्पष्ट करता है।

इस भ्रांति के कारण मनोविज्ञानवेत्ताओं के बीच सहजप्रवृत्ति शब्द दीर्घकाल तक विवादग्रस्त रहा है। जॉन बी० वाट्सन-जैसे कुछ मनोवैज्ञानिक इसका विरोध करते रहे; क्योंकि वे विश्वास नहीं करते थे कि साधारण प्रतिवर्तों (Simple Reflexes) के अतिरिक्त कोई व्यवहार जन्मजात अथवा अनर्जित होता है। अन्य व्यक्तियों ने इसका समर्थन भी किया था; क्योंकि उनका विश्वास था कि सहज-प्रवृत्तिजन्य व्यवहार होते हैं। आचरण के सहजप्रवृत्तिजन्य प्रतिरूपों के बढ़ते हुए प्रमाणों के कारण तथा कुछ इस शब्द को हमारे अधिक स्पष्ट रूप में समझाने और प्रयोग करने के कारण, आज यह विवाद बहुत हद तक समाप्त हो चुका है।

आज इस पर प्रायः सब सहमत हैं कि सहजप्रवृत्तिजन्य व्यवहार ( आचरण ) वंशगत है। आज भी हम 'सहजप्रवृत्ति' शब्द के प्रयोग से बचने का प्रयास करते हैं; क्योंकि यह व्यक्ति के भीतर ऐसे 'कुछ' की ओर इंगित करता है, जो उससे कार्य करवाता है, जब कि वास्तव में ऐसा कुछ नहीं होता। बहुधा सहजप्रवृत्तिजन्य व्यवहार का संबंध काम (Sex) जैसी क्रिया के साथ जोड़ा जाता है। किंतु, यह सहज प्रवृत्ति को नहीं, वरन् व्यवहार को स्पष्ट करने वाले अनेक कारणों में से एक है। सहजप्रवृत्तिजन्य व्यवहार होने के लिए एक प्रतिरूप को निम्नांकित तीन शर्तों को पूर्ण करना चाहिए :

( १ ) सामान्यतः इसे एक पूरी उपजाति या एक पूरी नस्ल ( Breed ) का विशेषगुण होना चाहिए। दूसरे शब्दों में इसके लिए समुचित प्रमाण होने चाहिए कि आचरण आनुवंशिकता से नियंत्रित है।

( २ ) इसे प्रथम उपयुक्त अवसर पर ही बिना किसी पूर्व-प्रशिक्षण-अभ्यास के पूर्ण रूप से स्पष्ट दीख पड़ना चाहिए। यह भी इससे प्रमाणित हो जाता है कि वह अर्जित नहीं, वरन् आनुवंशिक है।

( ३ ) इसे कुछ समय तक अपने उत्पन्न करने वाली अवस्थाओं की अनुपस्थिति में भी बने रहना चाहिए, अर्थात् यह किसी उद्दीपन उत्तेजक द्वारा उत्तेजित या उद्दीप्त हो सकता है, किंतु उद्दीपन द्वारा नियंत्रित नहीं होता। यह इसे सामान्य प्रतिवर्तों से जो उद्दीपन की स्वतः प्रवृत्त प्रतिक्रिया होते हैं, पृथक् करता है।

यदि यह कहा जाए कि सहजप्रवृत्तिक व्यवहार को आनुवंशिक कहने का अर्थ यह नहीं होगा कि यह जन्म के समय अनिवार्यतः वर्तमान रहता है। वास्तव में

इसकी प्रतीप्ति, यौन-परिक्वता (Sexual Maturity) या उसके भी बाद तक किसी भी अवस्था में हो सकती है। जीन द्वारा निर्धारित क्रम के अनुरूप विकसित और परिपक्व होने में शरीर समय लेता है। ( परिपक्वता के विषय में हम आगे लिखेंगे )

चित्र २·५
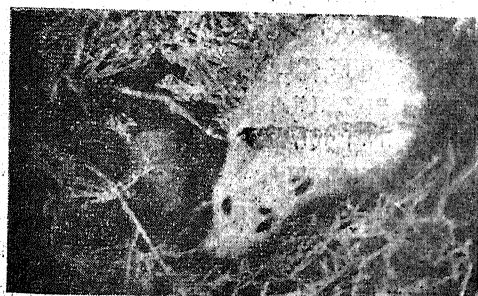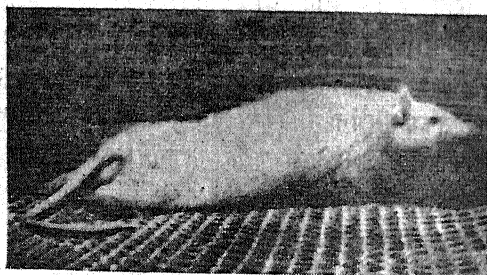
चित्र—२.५ (१) बच्चे के पैदा करने के कुछ ही पहले विषाद-प्रतिक्रिया।
(२) बच्चे के पैदा होने के पश्चात् माता उन्हें साफ करती है और जेर को खा लेती है।
(३) माता ने उन सब को एक साथ निलय में रख दिया है।

अतः व्यावहारिक प्रतिरूप जो वृद्धि और विकास पर निर्भर करते हैं, आनुवंशिक हो सकते हैं या होते हैं, चाहे वे जन्म के समय न भी वर्त्तमान हों।

आनुवंशिक आचरण का एक उदाहरण है, चुहिया का मातृव्यवहार या मातृक व्यवहार (देखिए चित्र २.५)। एक गर्भवती चुहिया बच्चों के जन्म से कुछ पूर्व अपना घर (बिल) बनाती है। जब वे पैदा होते हैं, तो वह उन्हें साफ करके बिल में सुरक्षित रखती है। जब वे बिल से बाहर निकलने लगते हैं, तो वह उन्हें पुनः भीतर लाती है। दिन के अनेक घंटे वह उन्हें गर्म रखने में और उनका पोषण करने में व्यतीत करती है। यद्यपि एक उपजाति से दूसरी उपजाति के मातृ-आचरण के प्रतिरूपों में भिन्नता होती है, तथापि एक उपजाति में अपेक्षाकृत सुनिश्चित प्रतिरूप होता है। जब इसकी अभिव्यक्ति पहली बार होती है, तब भी बिना किसी प्रयास या शिक्षण के ही यह पूर्ण सुविकसित और स्पष्ट रूप में प्रकट होता है। अतः, यह पूर्णतः, सहजप्रवृत्तिक व्यवहार सिद्ध होता है।

अनेक उपजातियों में सहजप्रवृत्तिक व्यवहार के प्रतिरूप मिलते हैं। सामान्यतः इनका निम्न श्रेणी के जंतुओं जैसे कीट, मछली एवं चिड़िया आदि में स्तनपायी जंतुओं की अपेक्षा अधिक प्रचलन है। स्तनपायियों में सर्वाधिक उल्लेखनीय सहजप्रवृत्तिक प्रतिरूप, अभी चुहिया के बारे में बताए मातृ-प्रतिरूप के समान है; क्योंकि स्तनपायी माता अपने बच्चों की तब तक देखभाल करती है, जब तक वे स्वयं अपनी देखभाल करने योग्य नहीं हो जाते। मातृक-प्रतिरूप के अतिरिक्त अन्य प्रतिरूपों की संभवतः इन्हें अनेक निम्न जंतुओं की अपेक्षा बहुत कम आवश्यकता होती है। जब हम मानव-जाति पर विचार करते हैं, तो हम उसके सहजप्रवृत्त व्यवहार-प्रतिरूपों के अस्तित्व के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते। मनुष्य इस संसार में उचित अनुकूलन ( Adaptation ) के लिए और अपने बच्चों को सिखाने के लिए अपने व्यवहार में इतना आडंबरपूर्ण ( Sophisticated ) हो गया है कि सहजप्रवृत्तिक व्यवहार उसका प्रमुख गुण नहीं रह गया है।

## जननिक और व्यवहार (Genetics and Behaviour) :

सहजप्रवृत्तिक व्यवहार केवल एक आनुवंशिक मनोवैज्ञानिक विशेषता है। प्रतिक्रिया की विशेष प्रवृत्तियाँ अथवा कुछ विशेष कार्य सीखने की योग्यताएँ यद्यपि सहजप्रवृत्त नहीं हैं, किंतु ये आनुवंशिक हो सकती हैं। यथार्थतः ऐसी प्रवृत्तियाँ या योग्यताएँ सहजप्रवृत्त प्रतिरूपों की अपेक्षा कुछ ऐसी प्रमुख विशेषताएँ हैं, जिन्हें श्रेष्ठतर जंतु और मनुष्य आनुवंशिकता से प्राप्त करते हैं।

ऐसे अनेक साधन हैं, जिनसे परीक्षण किया जा सकता है कि कोई प्रवृत्ति आनुवंशिक है अथवा अधिगत। एक है साधन कि एक आनुवंशिकता के कुछ व्यक्तियों

को भिन्न पर्यावरण में रखना। पर्यावरण को कृत्रिम रूप से परिवर्तित किया जा सकता है जैसा निम्नांकित उदाहरण में है। ( स्काट से उद्धृत १९५८, पृष्ठ ११४)

हम सामान्यतः देखते हैं कि कुत्ते प्रायः मानव-व्यवहार पर उद्दीपन प्रसूत व्यवहार करते हैं। इस उदाहरण में यह संभव है कि कुत्तों को मानव-पर्यावरण से पृथक् रखा जाए। अपनी प्रयोगशाला में हमने यह जानने का प्रयत्न किया कि उनका व्यवहार कहाँ तक सहज था और कहाँ तक मानव-पर्यावरण का परिणाम था। हमने वयस्क कुत्तों के समूहों को बड़े मैदानों में रखा, जहाँ उन्हें मनुष्यों से पृथक् रखकर देखा जा सका और हमने पाया कि एक दूसरे के प्रति उनका वही व्यवहार-प्रतिरूप ( Behavior pattern ) था, जो मनुष्यों के प्रति उनमें होता था। वे एक दूसरे के प्रति पूँछ हिलाते, गुर्राते और भौंकते, और जिन कुत्तों के अधिकार में खाद्य-सामग्री थी, उनकी चापलूसी करते। जब ये सब व्यवहार-प्रतिरूप लिखे गए, तो वे पूर्णतः वही पाए गए, जो उनके जंगली पूर्वजों—भेड़ियों में थे। इन कुत्तों के नवजात शिशुओं को मनुष्यों के संपर्क से दूर रखा गया। उनमें भी वही व्यवहार पाया गया, जो उनके पूर्वजों में था। वे केवल मनुष्य के प्रति बहुत खूँखार और भयातुर थे। ये पिल्ले अक्षरशः एक ही पीढ़ी में पुनः जंगली हो गए। स्पष्टतः अपरिचित के प्रति भय का विकास उनकी आनुवंशिक प्रवृत्ति थी। हम अधिगत भय को चिरकालिक सहज प्रवृत्ति की संभावना के अनुरूप पाते हैं कि पिल्लों में जब एक बार भय का विकास हो जाता है, तो उनके माता-पिता का स्नेहशील व्यवहार भी उसे दूर करने में बहुत कम सफल होता है।

अथवा विपर्यय-पोषण (Cross-fostering) के द्वारा पर्यावरण को परिवर्तित किया जाए—वास्तविक माता-पिता से भिन्न गुणों वाले पालक माता-पिता ( Foster parents ) के द्वारा नवजात शिशुओं का पालन-पोषण कराया जाए। इस प्रक्रिया का प्रयोग जंतु और मनुष्य दोनों के अध्ययन में किया गया है। यह बच्चों में बुद्धि की आनुवंशिकता के अध्ययन का एक श्रेष्ठ साधन है, जिसे आगे स्पष्ट किया गया है। जान्तव-शोध में प्राप्त विपर्यय-पोषण का एक उदाहरण देखिए—(स्काठ, १९५८ ११७ पृष्ठ से उद्धृत )।

भूखे चूहे जो 'सी' प्रभेद के थे, साथ-साथ शांतिपूर्वक एक ही गुटिका से भोजन करते हैं, जब कि 'सी ५७/१०' प्रभेद के चूहों में तीव्र प्रतिस्पर्धा होती है। जब दोनों प्रभेदों के चूहों का जन्म से ही विपर्यय-पोषण किया गया, तब 'सी' शिशु चूहे अपने पालक माता-पिता की स्पर्धा प्रकृति को ग्रहण न कर अपनी शांत आनुवं-शिकता के प्रति ईमानदार रहे। दूसरे प्रभेद के चूहे भी उसी तरह अपनी आनुवं-

शिकता के अनुरूप रहे और अपने शांत पालक माता-पिता से भोजन को छीनते तथा दूर ले जाते ।

इस प्रयोग द्वारा हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि झगड़ने अथवा न झगड़ने का स्वभाव आनुवंशिक होता है और पोषण-संस्कारों द्वारा वह परिमार्जित नहीं होता ।

विशेष प्रवृत्तियों के मूल के अध्ययन का दूसरा साधन यह है कि नितांत भिन्न आनुवंशिकता के जंतुओं को लेकर एक ही पर्यावरण में उनका पोषण किया जाए । यहाँ विभिन्न आनुवंशिकताओं पर बल दिया गया है । जब आनुवंशिकता की भिन्नताएँ स्पष्ट प्रकट करना संभव हो, तब यह प्रणाली अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती है । समान विशेषताओं वाले कुछ चुने हुए जंतुओं से अंतःप्रजनन कराकर यह प्रयोग बहुत अच्छी तरह होता है, जो केवल जान्तव-शोध प्रयोगशाला में ही संभव है । विशेषताओं के निर्धारण के लिए कोई विद्वान वस्तुगत परीक्षणों का संस्थापन करता है एवं उन परीक्षणों पर अधिक और कम उतरने वाले जंतुओं के अलग-अलग अंतः-प्रजनन की व्यवस्था करता है । यदि परिमापन की जाने वाली विशेषता आनुवंशिक हो, तो उन दोनों प्रकार के जंतुओं की आने वाली पीढ़ियों के भी परीक्षण पर भिन्न प्रकार से ही घटित होना चाहिए (स्कॉट से उद्धृत १९५८, पृष्ठ, ११६) ।

'पिंजरों में पालित चूहे बहुधा डरपोक और भीरु प्रकृति के होते हैं । यदि उन्हें बड़ी और खुली मेज पर रखें, तो उनका मल-मूत्र निकलने लगता है, जो उनकी भीरु प्रकृति को प्रकट करता है । कुछ चूहे इस स्थिति में निर्विकार, तटस्थ और निर्भय रहते हैं । इन दो प्रकार के चूहों में सात-आठ पीढ़ियों तक अंतःप्रजनन के उपरांत नवीन प्रभेद उत्पन्न होते हैं । एक प्रभेद भीरु और भावुक होता है तो दूसरा न भीरु, न भावुक । यह और ऐसे अन्य प्रयोग स्पष्ट करते हैं कि चुना हुआ अंतः-प्रजनन······चूहों के व्यवहार के ···अनेक प्रकारों पर तीव्र प्रभाव डाल सकता है । वाह्य व्यवहार एवं अंतःशारीरिक तथा संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ भी आनुवंशिकता के द्वारा परिवर्तित हो जाती हैं ।

**जातीय भेद (Species Differences) :**

भिन्न आनुवंशिकों के जंतुओं की समान पर्यावरण में तुलना करते हुए इस अंतिम प्रणाली का विस्तार भिन्न उपवर्गों या जातियों की तुलना तक ले जाना तर्कसंगत है । निश्चित है कि जंतुओं के दो उपवर्गों का अंतर आनुवंशिक अंतर है और उन्हें अधिगम एवं विकास के समान अवसर देने पर हम उनके व्यवहारों की भिन्नता में आनुवंशिकता के महत्त्व को निर्धारित कर सकते हैं । मनुष्य और (वनमानुष) चिंपांजी—इन दो अति निकट पाई जाने वाली जातियों के साथ ठीक यही किया

गया है। अनुवर्ती परिच्छेद में ऐसा एक उदाहरण प्रस्तुत है (केलाग एवं केलाग, १९३३ )

एक नौ मास का लड़का डोनाल्ड और एक सात मास की चिंपांजी कन्या का पोषण बहन-भाई की तरह साथ-साथ किया गया। प्रयोगकर्त्ताओं ने भरसक प्रयत्न किया कि दोनों का लालन-पालन बिलकुल एक तरह से हो। दोनों को समान स्नेह, दोनों को समान वेश-भूषा और दोनों को खड़े होने, चलने, द्वार खोलने, चम्मच से खाने, साबुन-तेल के उपयोग-जैसे व्यवहारों के लिए समान अवसर दिए। निश्चय ही दोनों की आनुवंशिकता में बहुत अधिक अंतर है। अतः, प्रयोग द्वारा यह जानना सहज हो जाता है कि अभ्यास के द्वारा वह अंतर कितना मिटाया जा सकता है।

**चित्र २६ चिंपांजी और मानव-शिशु को एक साथ पाला गया और दोनों के साथ एक-सा व्यवहार किया गया। अनेक रूपों में चिंपांजी गुआ शिशु डोनाल्ड की अपेक्षा अधिक तीव्रता से विकसित हुई, लेकिन डोनाल्ड ने उसकी बराबरी की और गुआ को पीछे छोड़ दिया, विशेषकर भाषा के विकास में ( केलाग एवं केलाग, १९३३ )।**

आशानुरूप बालक डोनाल्ड की अपेक्षा चिंपांजी कन्या गुआ में अनेक व्यवहार पहले विकसित हो जाएँगे। चिंपांजी का जीवन-यापन मानव के जीवन-यापन का एक तिहाई होता है और वह मानव की अपेक्षा बहुत पहले प्रौढ़ हो जाता है। इस प्रयोग के प्रारंभ में डोनाल्ड की अपेक्षा गुआ खड़े होने, चलने आदि बातों में अधिक अच्छी थी। (देखिए चित्र २·६) गुआ ने चम्मच का प्रयोग भी डोनाल्ड से पहले

सीखा और आदेशों के पालन की योग्यता भी उससे पहले प्राप्त की। किंतु, नौ महीने के बाद जब अध्ययन समाप्त हुआ, डोनाल्ड ने शारीरिक शक्ति को छोड़ और सब व्यापारों में अधिक योग्यता प्राप्त कर ली और वह भाषा के व्यवहार ऐसी योग्यताएँ भी विकसित करने लगा, जिनके विकास का कोई भी चिह्न गोआ में नहीं पनपा।

इस प्रयोग में महत्त्व की बात यह है कि चिपांजी और बालक का विकास अपनी-अपनी आनुवंशिकता के अनुरूप हुआ। यद्यपि चिपांजी में विशेष शिक्षण के द्वारा उन व्यापारों को विकसित किया गया, जो सामान्यतः केवल मनुष्यों में ही पाए जाते हैं, किंतु बहुत शीघ्र ही वह अपनी आनुवंशिक योग्यता की सीमा तक पहुँच गया और बालक से बहुत पीछे छूट गया।

## बोलने वाले बानर :

प्रायः यह कहा जाता है कि भाषा के व्यवहार की योग्यता मनुष्य को पशु से भिन्न करती है। निश्चय ही दुनिया में जितना कि हम उसे जानते हैं, यह सत्य है। किंतु, हम प्रश्न कर सकते हैं कि यह आनुवंशिकगत है अथवा अधिगमगत? मनुष्य ने,

**चित्र २·६ के क्रम में**

भाग्य से भाषा सीख ली हो और उसके बाद अपने बच्चों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी वह सिखाता रहा हो। कुछ जंतुओं में भाषा सीखने की योग्यता हो सकती है, किंतु वे कभी उसे विकसित नहीं कर सके।

अनेक पक्षी, जैसे तोते, स्पष्ट है कि बोलने की योग्यता वंशगत प्राप्त करते हैं; क्योंकि वे बहुत अच्छी तरह स्पष्ट शब्द बोलते हैं, किंतु भाषा में बोलने मात्र से बहुत कुछ अधिक होता है। भाषा, जैसे हम उसका प्रयोग करते हैं, शब्दों को तथ्यों और स्थितियों के संदर्भ में व्यवहृत करती है और शब्दों को नए रूपों से जोड़ती है। तोते, केवल नकल करते हैं। वे बार-बार कुछ सहज वाक्यांशों को, जिन्हें वे रट लेते हैं, दोहराते रहते हैं। यद्यपि अनेक व्यक्ति अपने पालतू तोते या अन्य बोलने वाले पक्षियों के साथ भाषा सिखाने में घंटों व्यस्त रहते हैं, किंतु एक भी व्यक्ति यह दावे के साथ नहीं कह सकता कि वे पक्षी भाषा का अर्थपूर्ण प्रयोग करते हैं। स्पष्ट है कि वे इसे आनुवंशिक योग्यता के रूप में प्राप्त नहीं करते।

बानर अन्य जंतुओं की अपेक्षा, विशेषतः शरीर-गठन और मानसिक संरचना में, मनुष्य के बहुत निकट हैं। अतः, प्रयोगकर्त्ताओं ने उन्हें भाषा सिखाने का प्रयास किया। आज तक इसमें किसी को विशेष सफलता नहीं मिली।

एक प्रयोगकर्ता ने एक बोलनेवाले जंतु ( Orangutan ) को 'पापा' और 'प्याला' शब्द और उन शब्दों का सार्थक प्रयोग करना सिखाया। किंतु, यह प्रक्रिया परिश्रमसाध्य थी (फ्राइँन एट० एल०, १९३६)। अभी कुछ दिन पहले एक संतानहीन दंपत्ति एक नवजात चिंपांजी बच्चे को घर ले आए और उसका उसी तरह पोषण करने लगे, जैसा अपने बच्चे का करते (हेज एवं हेज १९५१)। उनकी धारणा थी कि शायद वह चिंपांजी बोलना सीख जाए, यदि उसके साथ ठीक मानव-बालक जैसा व्यवहार किया जाए और उसे वांछित स्नेह दिया जाए तथा उसका ध्यान रखा जाए। लगभग तीनवर्ष बाद यद्यपि वह चिंपांजी, विकी, कभी-कभी 'मामा', 'पापा', 'कप' शब्दों का सार्थक प्रयोग करने लगा। पर, वह उससे अधिक अपनी भाषागत योग्यता नहीं बढ़ा सका।

अब तक, जैसा कि हम जानते हैं, चिंपांजी केवल कुछ सरल शब्दों का प्रयोग बहुत कष्टसाध्य और धीमे अभ्यास से कर सकते हैं। ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि वे कभी भी बहुत से शब्दों को या वाक्यों को सीख सकते हैं। अतः, चिंपांजी में भाषा सीखने की बहुत सीमित योग्यता है और बहुत धीमे तथा कठिन परिश्रम से नाम मात्र के शब्द वह सीख सकता है। मानव-बालक की बात ही दूसरी है, उसकी आनुवंशिक भाषा-व्यापार योग्यता सिद्ध है।

## बुद्धि ( Intelligence ):

मनुष्य और जंतु दोनों की आनुवंशिक प्रवृत्तियों और योग्यताओं का संवेदनात्मकता, अधिगम, योग्यता, मानसिक विकार और बुद्धि का बहुत अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन का कुछ भाग अनुवर्ती अध्यायों में लिखा जाएगा। यहाँ आनुवंशिकता और पर्यावरण पर अपना विचार-विमर्श मानव-व्यवहार में आनुवंशिकता के महत्त्व को प्रतिपादित करने वाले एक और उदाहरण को देकर हम यह प्रसंग समाप्त करेंगे।

'बुद्धि' एक सामान्य व्यवहृत शब्द है, जिसके अंतर्गत मनुष्य की विविध योग्यताएँ आती हैं। जैसे—शब्दज्ञान, संख्याज्ञान, समस्या-समाधान, प्रत्यय आदि। मानकीकृत परीक्षणों के द्वारा इसका परिमापन होता है, जिनमें साधारणतः विशेष योग्यताएँ भी निहित रहती हैं, किंतु बहुधा शाब्दिक योग्यताओं ( Veroal ability) पर बल रहता है। बुद्धि-परीक्षण के परिणाम को बुद्धिलब्धि में परिवर्तित किया जा सकता है, जो एक नहीं, अनेक योग्यताओं को प्रकट करती है, और प्रत्येक योग्यता भी पर्याप्त जटिल होती है, तो हमें मानना चाहिए कि बुद्धि की आनुवंशिकता बहुगुण-निर्णीत होगी। वह जीन के एक या दो युग्मों से अधिक पर आधारित होगी।

एक सामान्य परिवार, जो खून के रिश्तों पर माता-पिता एवं बच्चों द्वारा बनता है, हमें भिन्न अनुपात में आनुवंशिक अंतर वाले और अपेक्षाकृत समान पर्यावरण में रहने वाले प्राणियों से तुलना कर सकने का अवसर देता है। इस प्रकार की तुलना में हम उस सांख्यिकीय सूचक का प्रयोग करते हैं, जिसे सह-संबंध गुणांक ( Correlation Co-efficient ) कहते हैं। यह उस अनुपात को स्पष्ट करता है, जिससे प्राणी युग्म समान अंक प्राप्त करते हैं। एक शत-प्रतिशत (१·००) सह-संबंध पूर्ण संगति की सूचना देता है। (परीक्षण कभी भी पूर्ण विश्वसनीय नहीं होते, इसीलिए शत-प्रतिशत सह-संबंध का फल नहीं मिलता ) शून्य (.००) सह-संबंध किसी भी संबंध की सूचना नहीं देता। प्राप्तांक का प्रत्येक युग्म संयोग से जितना मिलता-जुलता होता है, उससे अधिक की उससे आशा नहीं की जा सकती। शून्य और शत-प्रतिशत सह-संबंध के मध्य अनेक अनुपातों के सह-संबंध ही संभव होते हैं।

तीन पीढ़ियों के एक सामान्य परिवार में सात संभावित युग्म, सारिणी २.२ में गिनाए गए हैं। ये युग्म आनुवंशिक-समानता अथवा पर्यावरण-समानता के आधार पर किए जा सकते हैं। यदि बुद्धि में आनुवंशिकता बलवती होती है, तो हम अनुमान करेंगे कि आनुवंशिकता में अत्यधिक समानता वालों का बौद्धिक अंक अधिक मात्रा में सह-संबंधित होगा। यदि प्रमुखता पर्यावरण की हो, तो हमारा अनुमान होगा कि अत्यधिक समान पर्यावरण वालों में सह-संबंध गुणांक उच्चतम होगा।

वास्तव में दोनों संभावनाएँ देखी गई हैं और कोई भी उन्हें सारणी २·२ में भिन्न समूहों की तुलना करके देख सकता है। उच्चतम सह-संबंध .८८ एकरूप जुडवाँ-बच्चों में पाया गया है, जिनकी आनुवंशिकता और पर्यावरण प्रायः एकरूप है। सह-संबंध का अनुपात कम होकर एक ही लिंग के भ्रातृ-जुड़वाँ बच्चों में, ·६३ रह जाता है। ये बच्चे समरूप जुड़वाँ बच्चों की तरह प्राय: समान पर्यावरण में पलते हैं, मगर आनुवंशिकता में उनकी समानता कम होती है। यह स्पष्ट करता है कि आनुवंशिकता एक कारक है। भ्रातृ-जुड़वाँ से सहोदरों (भाई या बहन) में यह अनुपात और भी कम हो जाता है जिनमें आनुवंशिकता की समानता का एक ही स्तर होता है। पर, पर्यावरण में कम समानता होती है। यह स्पष्ट करता है कि पर्यावरण एक कारक है। सहोदर-

युग्मों और पितृ-बालक युग्मों ( Parent-child-pairs ) में आनुवंशिक समानता एक-सी होती है पर पर्यावरण में पर्याप्त समानता होते हुए भी कुछ अंतर होता है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सह-संबंध गुणांक प्रायः वही होता है, पर पितृ-बालक युग्मों में वह कुछ कम होता है। दादा-पोता-युग्म ( Grand-parent-grand child ) और चाचा-भतीजा-युग्म, जिनमें आनुवंशिकता और पर्यावरण की समानता प्रायः एक ही अनुपात (स्तर) में होती है, किंतु दोनों में ही (आनुवंशिकता और पर्यावरण) सहोदरों और पितृ-बालक ग्मों से कम ही रहती है। चचेरे-भाइयों में चाचा-भतीजा या दादा-पोता की अपेक्षा आनुवंशिकता में कम समानता होती है, इसलिए सह-संबंध भी कम होता है।

यह नोट करना चाहिए कि ऊँचाई का प्रायः वही सह-संबंध होता है, जो बुद्धि का। निकट-संबंधित प्राणियों में यह कुछ अधिक होता है और दूर-संबंधित प्राणियों में कुछ कम होता है। यह तथ्य कि दोनों प्रकारों में सह-संबंध समान है, हमें इस परिणाम पर पहुँचाता है कि आनुवंशिकता ऊँचाई-जैसी शारीरिक विशेषता में भी उतना ही महत्त्वपूर्ण योग देती है, जितना बुद्धि में।

सारणी : २.२ आनुवंशिकता और पर्यावरण की समानता की भिन्न मात्रा से खून के रिश्ते वाले व्यक्तियों के लिए बुद्धिलब्धि (IQS) और लंबाई का परस्पर संबंध। ब्रासेस ने उन संबंधों को निर्देशित किया है, जिसमें आनुवंशिकता या पर्यावरण की मात्रा लगभग एक समान थी।

सारणी २.२

| आनुवंशिकता की तुल्यता | संबंध | बुद्धि का सह-संबंध | ऊँचाई का सह-संबंध | वातावरण की तुल्यता |
|---|---|---|---|---|
| { | समरूप युग्म* | .८८ | .९३ | } |
| | भ्रातृ-युग्म (समानलिंगीय)* | .६३ | .६४ | |
| | सहोदर,‡ | .५१.५३ | .५४.६० | } |
| | माता-पिता और बच्चे‡ | .४९ | .५१ | |
| { | दादा-पोते-युग्म‡ | .३४ | .३२ | } |
| | चाचा (चाची) और भतीजे‡ (भतीजियाँ) | .३५ | .२९ | |
| | चचेरे, मौसेरे, फुफेरे | .२९ | .२४ | |

*Newman et al., 1937 †McNemar, 1942 ‡Burt and Howard, 1956.

इस प्रकार के अध्ययन द्वारा हम देखते है कि जब आनुवंशिकता परिवर्तित होती है, पर्यावरण प्राय: वही रहता है, तब बुद्धि और बुद्धि लब्धियों का सह-संबंध कम हो जाता है। दूसरी ओर आनुवंशिकता की समानता का वही अनुपात रहता है और पर्यावरण की समानता बदल जाती है, तब भी सह-संबंध कम हो जाता है। अतः, पर्यावरण भी एक कारक है। दुर्भाग्यवश हम इससे यह नहीं कर सकते कि कौन-सा कारक अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनमें से एक के अधिक महत्त्वपूर्ण होने पर भी हम इतना कहेंगे कि दोनों का ही योग है।

बुद्धि में आनुवंशिकता और पर्यावरण के सापेक्ष योग का मूल्यांकन करने के लिए हमें अन्य प्रकार से परिशीलन करना होगा, जिसे करना कुछ कठिन है। इस प्रकार का परिशीलन भिन्न पर्यावरण में पोषित समरूप-जुड़वाँ बच्चों की बुद्धि की तुलना की अपेक्षा करता है, अर्थात् आनुवंशिकता को स्थिर रख कर केवल पर्यावरण में परिवर्तन किया गया है (न्यूमैन एट० एल०, १९३७)।

१९ युग्मों में से अधिकांश जुड़वें बालक दो से कम वर्ष की आयु में अलग कर दिए गए थे, यद्यपि एक युग्म ६ वर्ष की अवस्था में अलग किया गया था। बाद में प्रत्येक जुड़वाँ युग्म की बुद्धि का, भिन्न अवस्थाओं, ११ से ५९ वर्ष की अवस्था तक, परीक्षण किया गया। किंतु, प्रत्येक युग्म का परीक्षण एक ही आयु में किया। हर जुड़वाँ युग्म के भिन्न पर्यावरण के परिमापन को प्राप्त करने के लिए, निर्णायकों ने स्वतंत्र रूपसे उनके पर्यावरण के शैक्षिक गुणों को, उनकी १ से १० की मापनी पर मापा। इस परिमापन के अनुसार जुड़वाँ समूहों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) बहुत भिन्न पर्यावरण वाले (२) बहुत समान पर्यावरण वाले, माध्यमिक स्थिति वाले (द्रष्टव्य, २.३ सारणी) प्रायः समान पर्यावरण वालों की बुद्धि में शायद ही कोई अंतर होता है। दूसरी ओर बहुत भिन्न पर्यावरण वालों में प्रचुर अंतर पाया गया, जो १५ पोइंट था। मध्य स्थिति वालों में प्रायः ५ पोइंट का अंतर पाया गया, जो विशेष महत्त्व का नहीं है। अतः, हम यह निर्णय ले सकते हैं कि सापेक्ष अभावपूर्ण पर्यावरण व्यक्ति की बुद्धिलब्धि में बाधा डालता है। किंतु, यह रोचक तथ्य है कि भिन्न पालित समरूप जुड़वाँ में बुद्धि भजनफल में सह-संबंध की मात्रा .७७ थी। सम-पालित समरूप जुड़वाँ के .८८ की मात्रा से यह कुछ कम है। किंतु, यह सम-पालित भ्रातृजुड़वाँ और समपालित सहोदर जुड़वाँ से फिर भी बेहतर है। अतः, बुद्धि में आनुवंशिकता और पर्यावरण दोनों महत्त्वपूर्ण हैं।

योग्यताओं के विषय में ऐसा सोचना भूल होगा कि इतनी आनुवंशिकता और इतना पर्यावरण पाक-विधि के सदृश बुद्धि बन जाता है। कहना यह चाहिए कि

आनुवंशिकता और पर्यावरण एक परस्पर-क्रिया ( **Interaction** ) है। इसका अर्थ है कि दो सामान्य चर--आनुवंशिकता और पर्यावरण, साथ मिलकर किसी गुण अथवा योग्यता को निर्धारित करते हैं। एक का महत्त्व दूसरे पर आश्रित है। उदाहरणतः एक उच्च आनुवंशिकता का व्यक्ति यदि निम्न पर्यावरण को प्राप्त करता है, तो उसकी परिमापित योग्यता भी कम या निम्न होगी। दूसरी ओर यदि उसकी आनुवंशिक योग्यता भी कम या निम्न होगी, चाहे वह उच्चतम पर्यावरण प्राप्त करे। अतः, उच्च परिमापित योग्यता को प्राप्त करने लिए उसे उच्च आनुवंशिक योग्यता और उत्तम पर्यावरण दोनों ही आवश्यक है।

सारणी २.३ अलग-अलग पोषित एक समान जुड़वाँ बच्चों के बुद्धि भजनफल की तुलना ( न्यूमैन एट एल, १९३७ पर आधृत)।

| जुड़वों की जोड़ी की संख्या | शैक्षिक लाभ | अलग होते समय की उम्र (महीनों में) | यमजों में बुद्धि-लब्धि का औसत अंतर | बुद्धिलब्धि में विशेष लाभ के साथ समूह का गुणाधिक्य |
|---|---|---|---|---|
| ६. | अति असमान (१०-बिंदु के परिमाप पर ५.१) | १५ | १५.२ | १५.२ |
| ७. | कम-वेश असमान १० बिंदु के परिमाप पर २.४) | ९ | ५.४ | ४.६ |
| ६. | सापेक्षिक समाकृति (१० बिंदु के परिमाप पर १.६) | २४ | ४.५ | १.० |

## परिपक्वता और वृद्धि (Maturation & Growth) :

आनुवंशिकता प्राणी के विकास का परिचालन करने में योग देती है। यह विकास समय लेता है। वास्तव में यह प्राणी के वयस्क होने तक पूर्ण नहीं होता। यह जीवनपर्यंत क्रमशः बढ़ता है—जन्म से पूर्व और शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था और पूर्ण वयस्कता—और प्रत्येक क्रम में भिन्न प्रक्रियाएँ प्रमुख होती हैं। इन विविध प्रक्रियाओं और क्रमों के अध्ययन द्वारा, आनुवंशिकता से व्यवहार किस प्रकार

संबंधित है, उसे हम अच्छी समझ सकते हैं। एक वयस्क आगे चल कर कैसा व्यक्ति बनेगा, इसका पूर्वाभास हमें हो जाता है। इस संबंध में हम अपनी खोज को व्यक्ति के भ्रूण रचनात्मक (**Embryological**) विकास से प्रारंभ करेंगे; क्योंकि व्यवहार का मूल आधार यही है, और इसके बाद हम व्यवहार के विकास पर विचार करेंगे।

कोशिका-विभाजन और अंगों के निर्माण के लिए कोशिका के विभेदीकरण से एक नया व्यक्ति विकसित होता है।
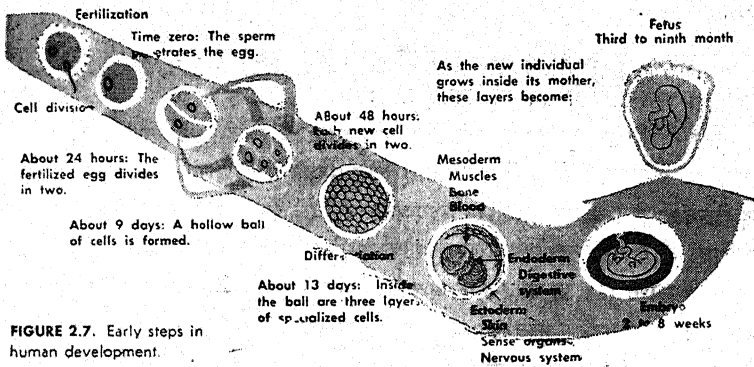
FIGURE 2.7. Early steps in human development.

**चित्र २.७ मानव-विकास की प्रारंभिक अवस्थाएँ।**

प्रथम हमें परिपक्वता के संप्रत्यय (Concept of Maturation) से परिचित होना चाहिए; क्योंकि यह संप्रत्यय विकास की प्रक्रियाओं को समाहित करता है। वास्तव में परिपक्वता एक प्रक्रिया है, जो प्राणी के विविध अंगों का पूर्ण विकास करती है। यथार्थतः यह एकमुखी प्रक्रिया नहीं, वरन् बहुमुखी है; क्योंकि अलग-अलग अंग भिन्न-भिन्न क्रमों में विकसित होते हैं और कुछ का पूर्ण विकास दूसरों से पहले हो जाता है। उदाहरणार्थ हम तंत्रिकातंत्र ( Nervous System ) लिंग ग्रंथियों अथवा चलने की योग्यता की परिपक्वता और प्रत्येक स्थिति के संदर्भ में जिन प्रक्रियाओं के द्वारा अंग अथवा व्यावहारिक योग्यता अपने पूर्ण विकास पर पहुँचती है, के विषय में कहेंगे।

## अंग एवं इंद्रियों का विकास (Organ Development) :

अंड का निषेचन शुक्राणु द्वारा उस ट्यूब या नलिका में होता है, जो माता के अंडाशय या ओवरी, जहाँ वह उत्पन्न हुआ था, से प्रारंभ होकर गर्भाशय से जुड़ी है। निषेचन के २४ घंटे बाद युग्मज अपने ही समान दो कोशिकाओं में विभाजित

हो जाता है। ( देखिए, चित्र २.७ ) इनमें से प्रत्येक कोशिका पुनः दो में विभाजित होती है और यह प्रक्रिया अनेक कोशिकाओं के होने तक चलती है। जब कोशिका-विभाजन का प्रक्रम चलता है, तब कोशिका-गुच्छ धीरे-धीरे माता के गर्भाशय की ओर बढ़ता जाता है। बहुत कम दशाओं में वह ट्यूब में ही रह जाता है ( नलिकीय गर्भावस्था में प्रारंभ हो जाती है )। साधारणतः वह गर्भाशय में ९ दिन में पहुँच जाता है और वह एक कोशिकाओं के खोखले पिंड का आकार ले लेता है। यह पिंड, जिसका व्यास अभी केवल २/१०० इंच होता है, अपने को गर्भाशय की दीवार से सटा देता है।

जीवन के ये प्रथम दो सप्ताह, जिनमें उपर्युक्त घटनाएँ घटती हैं, अंडाणुकाल कहलाते हैं। इस काल में सब कोशिकाएँ प्रायः समान होती हैं। इसके बाद नया काल प्रारंभ होता है, जिसे भ्रूणकाल कहते हैं। यह प्रायः ६ सप्ताह में समाप्त होता है। इस काल के प्रारंभ में पिंड की कोशिकाएँ तीन परतों में विभाजित होती हैं। प्रत्येक में कुछ भिन्नता है। ये अंतर्जनस्तर, मध्यजनस्तर, बहिर्जनस्तर कहलाती हैं। प्रत्येक परत पेशियाँ और अंग बनाने के लिए अनेक कोशिकाओं में विभाजित होती हैं, जो चित्र २·७ में स्पष्ट है। भ्रूणकाल के अंत में, गर्भधारण के दो मास बाद, कोशिकाएँ और अंग मोटे तौर पर मनुष्य का आकार ग्रहण कर लेते हैं और तब भ्रूण गर्भ (Fetus) बनता है। फीटस का काल सात माह तक चलता है दूसरे से नवम् माह तक जन्म के समय गर्भ एक 'शिशु' बनता है।

## विकास का कालक्रम ( Timing of Development ) :

भ्रूण जब ६ सप्ताह का होता है, तब उसके हृदय का स्पंदन प्रारंभ होता है। उसी समय के लगभग व्यवहार के लिए अनिवार्य अंगों में भी क्रिया प्रारंभ होती है : पहले तंत्रिकातंत्र, मांसपेशियाँ, ज्ञानेंद्रियाँ और ग्रंथियाँ बिना एक दूसरे से संबंध रखे पृथक्-पृथक् विकसित होती हैं। विकास की इस स्थिति में मांसपेशियाँ विद्युतीय रूप से उत्तेजित या उद्दीप्त या आकुंचित की जा सकती हैं। इसके कुछ बाद की स्थिति में तंत्रिकातंत्र नाड़ियों को मांसपेशियों तक नीचे पहुँचाता है और तब तंत्रिकातंत्र को विद्युतीय प्रणाली से उद्दीप्त किया जा सकता है तथा माँसपेशियों का आकुंचन देखा जा सकता है। अंत में ज्ञानेंद्रियाँ तंत्रिकातंत्र से जुड़कर संवेदी—प्रेरक चाप का निर्माण करती हैं। इस अवस्था में इंद्रियों को उद्दीप्त करके मांस-पेशीय प्रतिक्रिया उत्पन्न की जा सकती है। ऐसी प्रतिक्रिया प्रायः व्यवहार के सब प्रतिरूपों का मूलरूप है।

इन विकासों का कालक्रम तंत्रिकातंत्र के भिन्न भागों, भिन्न मांसपेशियों, भिन्न संवेदी इंद्रियों में विभिन्न होता है। गर्भाधान के तीन महीनों में त्वचा की मांस-

पेशियों और संवेदी इंद्रियों में कुछ संबंध स्थापित हो जाता है और इस समय कुछ प्रतिवर्तों की संभावना भी होती है। आँख और कान के संबंध और भी देर से विकसित होते हैं एवं इन इंद्रियों के प्रतिवर्त सातवें महीने से पहले नहीं होते।

## परिपक्वता और व्यवहार ( Maturation & Behaviour ) :

इस विकास के संबंध में सुरक्षा के लिए काफी गुंजाइश इसकी एक रोचक और महत्त्व विशेषता है, जिसका यह प्रबंध करता है। आवश्यकता से पहले ही अंग विकसित होते हैं और वे पारस्परिक संबंध जोड़ लेते हैं। मानव गर्भ यदि ६ माह से पहले ही जन्म ले ले, तो उसके जीवित रहने की कोई संभावना नहीं रहती। किंतु, चौथे माह से ही वह श्वास-क्रिया प्रारंभ करता है। इसी तरह वह पाँचवें माह में चालन-क्रिया करने लगता है, छठे माह में वह चूसने लगता है। यदि उसके ओंठ और गाल छुए जाएँ, तो उस पर प्रतिक्रिया होगी और वह अपनी हथेली पर रखी वस्तु को अनुभव करने लगेगा तथा कंठ-स्वर निकालने की चेष्टा करेगा। जन्म से पूर्व गर्भ को इन व्यवहार-क्रियाओं की आवश्यकता नहीं होती, फिर भी समय से २,३ या ४ माह पूर्व वे तैयार हो जाती हैं।

जब तक शिशु **जन्म** लेता है, अधिकांश प्रतिवर्त और व्यवहार के प्रारंभिक रूप प्रयोग के लिए तैयार हो जाते हैं। श्वास-प्रतिक्रिया, चूषण प्रतिवर्त, ठंड और व्यथा से रुदन-प्रतिक्रिया एवं अन्य व्यवहार प्रतिवर्त, जिनकी शिशुओं को दुनिया में काम चलाने के लिए आवश्ककता पड़ती है, पूर्ण विकसित होते हैं। जिन प्रतिवर्तों की उन्हें तत्काल आवश्यकता नहीं होती, वे जन्म के वाद जब तक बालक दस या बारह वर्ष का होता है या उसके भी बाद तक, धीरे-धीरे विकसित होते रहते हैं।

## तंत्रिकातंत्र ( The Nervous System ) :

शरीर के सब अंगों में तंत्रिकातंत्र तथा अंतःस्रावी ग्रंथियाँ जिनका विवरण नीचे दिया जाएगा; सबसे धीरे-धीरे विकसित होती है। यद्यपि मेरुरज्जु, तंत्रिकाएँ एवं मस्तिक का अधोभाग अपेक्षाकृत जन्म के समय ही परिपक्व होता हैं किंतु मस्तिष्क विशेषतः उसकी वाह्य-त्वचिका या प्रमस्तिष्क-वल्कुट (Cerebralcortex) कुछ समय तक विकसित होता रहता है। उदाहरणतः अधिकांश शिशु कई सप्ताह तक गतिमान वस्तुओं को अपनी आँखों से समझने में असमर्थ रहते हैं; क्योंकि मस्तिष्क के वे तंत्र, जो इस क्रिया के लिए आवश्यक हैं, अभी परिपक्व नहीं होते।

**प्रमस्तिष्क-वल्कुट ( देखिए, अध्याय—१९ ) जो अधिगम के लिए आवश्यक हैं तथा अधिक जटिल व्यवहार के लिए तो और भी, धीरे परिपक्व होता है ( मन,**

१९५५ )। वैज्ञानिकों ने बार-बार अनुभव किया है कि जन्म के समय वल्कुट का हटाया जाना ( या उसका कम होना ) उसके व्यवहार में उस समय और उसके कई माह बाद तक नगण्य अंतर लाता है, अतः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उस समय वल्कुट क्रियाशील नहीं होता (शेरमन एट० एल०, १९३६) । बैठने, रेंगने और चलने की सब योग्यताएँ वल्कुट पर आश्रित हैं और जब तक शिशु परिपक्व नहीं हो जाता, वह इन क्रियाओं को नहीं कर सकता। वल्कुट की अधिकांश परिपक्वता बालक के एक से दो वर्ष की अवस्था में होती है, किंतु मस्तिष्क की क्रिया के विद्युतीय अभि-लेखों से वैज्ञानिक यह बता सकते हैं कि वल्कुट की कुछ परिपक्वता दस या पंद्रह वर्ष की आयु तक चलती रहती है ( स्मिथ, १९४१ ) ।

अंतःस्रावी ग्रंथियाँ ( The Endocrine Glands ) :

शरीर की वे ग्रंथियाँ हैं जो अपने स्राव, 'हारमोन' को शरीर के विवरों में भेजे बगैर ही सीधे रक्त में मिलाती हैं। विवरों में स्राव मिलाने वाली ग्रंथियों को बहिःस्रावी (Exocrine) ग्रंथियाँ कहते हैं। अंतःस्रावी ग्रंथियों के उदाहरण हैं—लिंग ग्रंथियाँ ( जनन-ग्रंथि और अंड-ग्रंथि ), अग्न्याशव ( Pancreas ) जो इंसुलिन नामक हारमोन स्रावित करता है, और गले की थॉयरॉयड ग्रंथि । बहिस्रावी ग्रंथि का सुपरिचित उदाहरण है लाल-ग्रंथियाँ (Salivary Clands) जो मुँह में लाल स्रावित करती हैं । ग्रंथियों के इन दोनों प्रकारों में मनोविज्ञान के लिए अंतःस्रावी ग्रंथियाँ अधिक महत्त्व की हैं; क्योंकि उनके हारमोंस, जैसा कि हम देखेंगे ( अध्याय ३ और १९ में ) व्यवहार को अनेक रूपों में प्रभावित करते हैं ।

अंतःस्रावी ग्रंथियाँ धीरे-धीरे परिपक्व होती हैं। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि गर्भ में माता के द्वारा गर्भस्थ फीट्स को इतने हारमोन दे दिए जाते हैं कि उसे अपने हारमोन स्रावित करने की आवश्यकता नहीं होती। साथ ही अंतःस्रावी ग्रंथियों द्वारा स्रावित अनेक हारमोनों की जीवन में काफी समय तक आवश्यकता नहीं होती ।

लिंग-ग्रंथियाँ इसका एक अच्छा उदाहरण हैं । वे यौवनारंभ तक परिपक्व नहीं होती, जब तक कि लड़के और लड़कियाँ १२-१३ वर्ष की आयु में वयस्क नर एवं नारी के लक्षण पाने नहीं लगते हैं। इस अवस्था में लड़कों की दाढ़ी उगने लगती है, कंठ-स्वर भारी होने लगता है, लड़कियों का वक्ष-स्थल उभरने लगता है । ये परि-वर्तन लिंग-हारमोन द्वारा किए जाते हैं । यौन-अभिप्रेरण तथा यौन-व्यवहार के प्रतिवर्त भी इसी के परिणाम हैं। अनेक प्रयोगों के उपरांत इस तथ्य को स्थापित किया गया है। विभिन्न प्रकार के जान्तव-शिशुओं में लिंग-हारमोन अंतःक्षेप करके देखा

गया कि उनमें यौन-व्यवहार के जो लक्षण बहुत बाद में विकसित होने चाहिए थे, वे उन हारमोनों के द्वारा अल्प आयु में ही विकसित हो गए ( बीच, १९४९ )। यह केवल इसका एक प्रमाण है कि यौन-व्यवहार की निश्चित परिपक्वता लिंग-ग्रंथियों की परिपक्वता द्वारा नियंत्रित ।

## बिना अभ्यास के परिपक्वता ( Maturation without Practice ) :

शरीर के विविध अंगों की परिपक्वता दो सामान्य रूपों में संबद्ध की जा सकती है। प्रथमत: बिना अधिगम की सहायता या अभ्यास के भी इसके द्वारा व्यवहार को सामने लाया जा सकता है। प्रतिवर्तों और सहजप्रवृत्तियों के प्रतिरूपों में निश्चित रूप से यही होता है; क्योंकि परिपक्वता के विकसित होने पर ये बिना अधिगम के ही होते हैं। ऐसे प्रतिरूपों के लिए हम कह सकते हैं कि इनका व्यवहार स्वत: परिपक्व होता है। द्वितीयत:, परिपक्वता से व्यवहार के कुछ रूप संभव हो सकते हैं, किंतु उनके विकास के लिए उन्हें अधिगम या अभ्यास का आश्रय लेना पड़ता है। यह भी निश्चित रूप से होता है, और हम कहते हैं कि योग्यता या तत्परता की परिपक्वता है, व्यवहार की नहीं। योग्यताओं की चर्चा में इसका विवेचन नहीं किया गया है। किंतु, हम शीघ्र ही उसके विशिष्ट उदाहरणों का उल्लेख करेंगे। इन दो संभावनाओं के बीच एक ऐसी स्थिति भी है, जिसमें व्यवहार संभवत: परिपक्व हो जाता है। किंतु, उसकी निपुणता के लिए उसे थोड़े से अभ्यास की आवश्यकता होती है। हम देखेंगे कि वास्तव में व्यवहार का विकास इन सब रूपों में होता है।

व्यवहार के अनेक प्रतिरूप अपनी पूर्णता को बिना अभ्यास के प्राप्त कर लेते हों, ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलते हैं; क्योंकि थोड़े अभ्यास से व्यवहार प्राय: कुछ अधिक पुष्ट या निपुण हो जाता है। अभ्यास का प्रभाव, प्राय: नगण्य-सा होता है। किंतु, जब इस प्रभाव से व्यवहार उत्पन्न होता है, तो परिपक्वता को प्रमुख श्रेय मिल जाता है। आगे के परिच्छेदों में इस प्रश्न का सैद्धांतिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा ( कार माइकेल, १९२७ )।

> "एक मनोविज्ञानवेत्ता ने सैलामैंडर (छिपकली के प्रकार का जंतु, जो जल में रहने वाला माना जाता था ) के दो समूह, उनके तैरना प्रारंभ करने से पहले लिए। एक समूह को उसने स्वच्छ जल के तालाब में बढ़ने के लिए डाल दिया, किंतु दूसरे समूह को उनके पानी में क्लोरेटोन डालकर अचेत कर दिया। क्लोरेटोन ने विकास में बिना बाधा पहुँचाए, उन्हें गतिहीन रखा; क्योंकि जन्म के समय ही सैलामैंडर एक अडंपीत झिली की थैली से मुक्त होता है, जो उसे कुछ समय तक खाद्य पदार्थ प्रदान करती रहती है।

प्रयोक्ता ने तब तक प्रतीक्षा की, जब सामान्य सैलामैंडरों ने तैरना प्रारंभ किया और पाँच दिन तक तैरते रहे। तब उसने अचेतन सैलेंडरों को स्वच्छ जल में डाला।

आधे घंटे में वे सब सामान्य रूप से तैर रहे थे। यह जानने के लिए कि इस समूह में आधे घंटे में ही शीघ्रता से तैरना सीखा है या उन्हें केवल अचेतन द्रव्य के प्रभाव को मिटाने के लिए कुछ समय की आवश्यकता थी, उसने जो पहले से तैर रहे थे, उन नियंत्रित जंतुओं को अचेतन किया गया। इस समूह के जंतुओं को जब पुन: स्वच्छ जल में डाला गया, तब आधे घंटे में वे सब भी पुन: अच्छी तरह तैरने लगे, ठीक उसी प्रकार जैसे बहुत समय तक अचेतन द्रव्य में रहने वाले जंतुओं ने किया था। इस प्रकार उसने प्रमाणित किया कि परिपक्वता यदि एक मात्र नहीं तो भी सैलेमैंडर के तैरने के व्यवहार के लिए एक महत्त्वपूर्ण कारक था। उस आधे घंटे में, जिसमें अचेतन द्रव्य का प्रभाव मिटा, अभ्यास या अधिगम के लिए स्थान न था।"

इस विषय का दूसरा प्रयोग मुर्गी के बच्चों के साथ किया गया था ( क्रूज १९३८ )। अंडे से तुरंत निकले हुए मुर्गी के बच्चे प्राय: ठीक तरह से दाने चुगते हैं, पर दाने को चोंच लगाने में वे २५ प्रतिशत असफल रहते हैं। वे जब दाने पर चोंच लगाते हैं, तब उसे पकड़ नहीं पाते, और यदि पकड़ भी पाते हैं, तब निगल नहीं सकते। अत:, खाने की पूर्ण प्रतिक्रिया का बहुत संवेदनशील व्यापार, जिसके अंतर्गत चुगना, पकड़ना और निगलना है, निगलने की प्रतिक्रियाओं की संख्या से चुगने के प्रयत्नों की संख्या का अनुपात है। चुगने की परिशुद्धता के आधार पर निगलने की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन हो सकता है।

"प्रयोगकर्त्ता ने अंडे से तुरत निकले हुए मुर्गी के चूजों के दो समूहों को अंधकार में रखा। एक समूह को वहाँ २४ घंटे रखा और दूसरे को पाँच दिन। इस बीच हाथ से उन्हें दाने दिए गए। अंधेरे कक्ष की अवधि समाप्त होने पर, हर समूह को प्रतिदिन २५ बार दाना चुगने के प्रयोग का अवसर दिया गया। प्रथम परीक्षण में दोनों समूह प्राय: दाने को पकड़ने ( दाने पर चोट करने ) में सफल हुए। अत:, निगलने से भिन्न चुगने की क्रिया लगभग पूर्णत: परिपक्वता पर आश्रित है। किंतु, हर समूह ने निगलने की प्रतिक्रियाओं (चित्र २·८) में अपेक्षाकृत कम अंक प्राप्त किए। २५ बार निगलने की चेष्टाओं में पाँच से कम बार सफलता से निगल सके। परीक्षण के साथ-साथ हर समूह उन्नति करता गया, किंतु दूसरे समूह ने, जो अंधेरे में पाँच

दिन रहा था, पहले समूह की अपेक्षा तीव्रता से उन्नति की। करीब दो दिन में वह इस क्रिया को सीख गया। इस तथ्य के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निगलने की प्रतिक्रियाएँ परिपक्वता और अधिगम दोनों पर आश्रित हैं।"

मुर्गी के बच्चों में परिपक्वता और अधिगम, चोंच मार कर चुगे हुए दानों को प्रवीणता से निगलने में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं।
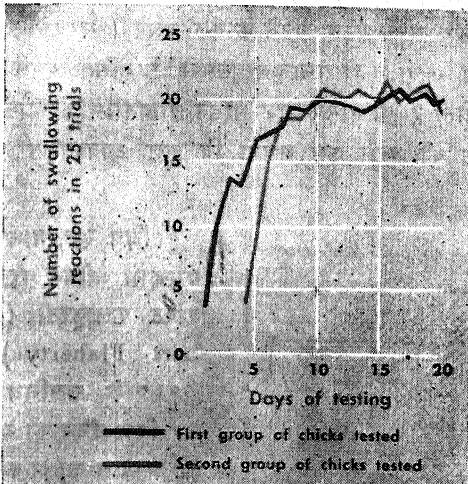
**चित्र २·८ मुर्गी के बच्चों में निगलने की प्रतिक्रिया में विकास। मुर्गी के बच्चों को तब तक अंधकार में रखा गया, जब तक पहले उनका परीक्षण नहीं हुआ। प्रथम समूह का परीक्षण अंडे से निकलने के २४ घंटे बाद हुआ, द्वितीय समूह का अंडे से बाहर आने के पाँच दिन पश्चात् दोनों समूहों में दानों को चुगने में व्यावहारिक दक्षता थी, लेकिन बार-बार प्रयत्न करने पर पहले उन्होंने केवल अल्पांश में दानों को निगला। इस पर ध्यान दें कि द्वितीय समूह परीक्षण के दो दिन बाद ही पहले समूह के बराबर आ गया था।** ( क्रूज, १९३५ )

ये प्रयोग प्रमाणित करते हैं कि सैलेमैंडर में तैरने की और मुर्गी के बच्चे में दाना चुगने की सरल तथा अनिवार्य क्रियाएँ ठीक समय पर आवश्यक होने के कारण बिना अभ्यास के परिपक्व हो जाती हैं, किंतु मुर्गी के बच्चों में निगलने का कौशल अभ्यास के साथ उन्नत होता है।

मनुष्यों पर यह प्रयोग इतना स्पष्ट या असंदिग्ध रूप से नहीं होता; क्योंकि बच्चों के साथ नियंत्रित प्रयोग करने की कठिनाई है। किंतु, इस परिणाम को यह प्रयास पुष्ट करता है कि मूल क्रियाएँ यदि पूर्णतः नहीं, तो भी अधिकांशतः परिपक्वता पर आधारित हैं।

हॉपी इंडियंस अपने बच्चों का व्यवहार शैशव में जिस प्रकार नियंत्रित करते हैं, उसका अध्ययन ( डेनिस, १९४० ) लाभदायक और महत्त्वपूर्ण है।

"हॉपी इंडियंस अपने शिशुओं को कसकर एक तख्ते से बाँध देते हैं, जिससे कि वे दिन के अधिकांश समय में हिलडुल नहीं सकते। ( दूसरी जातियाँ, जैसे एस्किमों, भी यही करती हैं, देखिए, (चित्र २·९) । अक्सर शिशु एक या दो घंटों के लिए, जिस समय उसे नहलाया-धुलाया जाता है, खोला जाता है। अतः, उसे बैठने, घुटनों के बल चलने और खड़े होने का अभ्यास करने का वह अवसर नहीं मिलता, जो सामान्य मुक्त शिशुओं को मिलता है। फिर भी बाँधे गए बच्चे बैठने, घुटने के बल चलने ( सरकने ) और चलने की योग्यता, अन्य बच्चों के ही समान तीव्रता से विकसित करते हैं। अतः, इससे स्पष्ट होता है कि मानव-शिशु में इन योग्यताओं को विकसित करने के लिए अभ्यास की बहुत कम अथवा बिलकुल आवश्यकता नहीं होती।"

**चित्र २·९ नानूक के एस्किमों जीवन पर बने रॉबर्ट फलाहरटी (Robert Flaherty) के १९२२ के चलचित्र का यह चित्र बच्चे को बाँधने के अभ्यास का अंकन है, यह रीति कुछ भारतीय और एस्किमों समूहों में एक समान है। बाँधने से बच्चे को पकड़ने, बैठने, रेंगने, चलने के अभ्यास के सुअवसर में बाधा पड़ती है, लेकिन उससे गत्यात्मक विकास में बाधा नहीं पड़ती है।** ( Robert Flaherty Revilpon Frerce)

निम्नांकित प्रयोग ( गेसेल और थांपसन, १९२९ ) में सह-यमज नियंत्रण ( Co-twin control ) प्रणाली का उपयोग किया गया है :

"इस प्रयोग में ली गई दो लड़कियाँ समरूप जुड़वाँ थीं, जिनकी आनुवंशिकता अभिन्न थी और दोनों का परिपक्वता-क्रम भी एक ही था। एक

लड़की, यमज-टी को चढ़ाई-जैसी विशेष क्रिया में प्रशिक्षित किया गया, जब कि दूसरी, यमज-सी को उस क्रिया का अवसर नहीं दिया गया। ६ सप्ताह बाद यमज-टी ने चढ़ने की क्रिया से प्रारंभ करके २६ सेकेंड में पाँच सीढ़ी चढ़ने की उन्नति की। इस स्तर पर नियंत्रित यमज-सी को सीढ़ी पर चढ़ने का प्रयास करने की अनुमति दी। अपने प्रथम प्रयास में, पूर्वअभ्यास बिना ही वह ४५ सेकेंड में पाँचों सीढ़ियाँ चढ़ गई। केवल दो सप्ताह के अभ्यास से यमज-सी दस सेकेंड में सीढ़ियाँ चल सकती थीं। अन्य दो प्रकार की मूल क्रियाओं का परिणाम भी यही रहा (देखिए, चित्र २·१०)
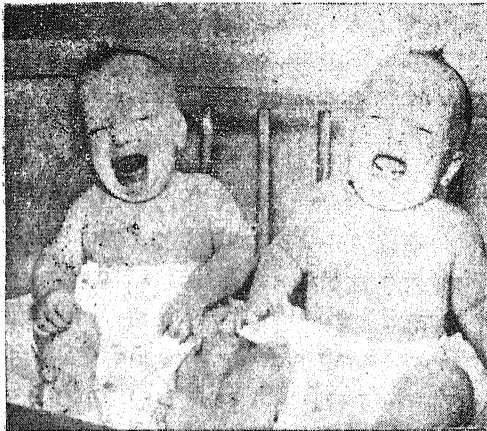
चित्र २·१० एक समान जुड़वाँ बच्चे करीब-करीब एक समान व्यवहार करते हैं (Pinney, from Monkmeyer)।

इस प्रकार के प्रभाणों के आधार पर दो परिणाम निकाले जा सकते हैं : (१) अधिगम नहीं, वरन् परिपक्वता ही चलने, चढ़ने, तैरने (सैलेमेंडरों में) या चुगने (मुर्गी के बच्चों में)-जैसे बुनियादी व्यवहारों के प्रतिरूपों के विकास के लिए मूलतः उत्तरदायी है। (२) जिस सीमा तक प्रशिक्षण या अभ्यास ऐसे प्रतिरूपों को पूर्णता प्राप्त करने में सहायता देता है, परिपक्व व्यक्ति में वह कहीं जल्दी उस योग्यता या कौशल को विकसित करता है।

## अधिगम की तत्परता (Readiness for Bearning) :

स्पष्ट है कि कुछ वस्तुएँ केवल परिपक्वता से नहीं आती, उन्हें सीखना ही पड़ता है। एक व्यक्ति केवल परिपक्वता से बोलना, पढ़ना या गणित के सवाल हल करना नहीं सीखता, उन्हें करना, उसे सीखना पड़ता है। ऐसी योग्यताओं में परिपक्वता का भी आवश्यक योग होता है; क्योंकि यहाँ परिपक्व होने का अर्थ है, सीखने की योग्यता की परिपक्वता। जब तक नियमित परिपक्वता में यह तैयारी जाग्रत न होगी, इन्हें सीखने का प्रयत्न विफल होगा।

निम्नांकित उदाहरण में डेविस (१९४७) ने इस तथ्य को नाटकीय ढंग से स्पष्ट किया है :

> "एक गूंगी-बहरी माता ने अपनी शिशु-कन्या को सब प्रकार के बाहरी संबंधों से ६ वर्ष की अवस्था तक छिपा कर रखा। बच्ची को बोलने की भाषा सीखने के सब अवसरों से वंचित किया गया। पड़ोसियों ने बालिका को जब ६ वर्ष की आयु में जाना, तो वह बोलने में असमर्थ थी। वह केवल कुछ अस्पष्ट ध्वनि उच्चरित कर सकी। किंतु, दो माह के प्रशिक्षण में उसने बहुत से शब्द सीख लिए। इतने समय में उसने वैसा वाक्य बनाना भी तीव्रता से सीख लिया, जैसा साधारणतः एक बच्चा तीन साल की आयु में वाक्य बनाता है। यद्यपि उसे अंग्रेजी के शब्द और उन्हें जोड़ कर वाक्य बनाने की विधि सीखनी पड़ी, किंतु उसने तीव्रता से उन्नति की। यह उदाहरण स्पष्ट प्रमाणित करता है कि भाषा सीखने की योग्यता या तैयारी धीरे-धीरे बिना अभ्यास के परिपक्व होती है, तथापि इस कौशल को विकसित होने के लिए अधिगम की आवश्यकता है।"

तत्परता या तैयारी के अनेक प्रकार हैं। प्रत्येक प्रकार का विशेष आयु में आविर्भाव होता है। बोलना सीखने की तैयारी प्रायः बच्चे के दूसरे वर्ष में और पढ़ना सीखने की तैयारी छठे वर्ष में जाग्रत होती है। हर स्थिति में यह तैयारी प्रायः एकाएक दिखाई देती है। साधारणतः कुछ सप्ताहों में ही यह स्पष्ट होती है। इसके स्पष्ट होते ही बालक की सीखने की उन्नति स्फुरित हो उठती है। तैयारी से पूर्व वह बहुत धीरे-धीरे सीखता है और प्रशिक्षण बहुधा व्यर्थ होता है। जब वह तैयार है, तब यदि उसे सीखने का अवसर दिया जाए, तो वह तेजी से सीखता है। इस तथ्य से, जिसका विवरण शीघ्र ही दिया जाएगा, हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि किसी योग्यता या तैयारी के पूर्ण होने के लिए परिपक्वता के लिए विशेष समय होता है।

सब बच्चे प्रायः एक ही क्रम से परिपक्व नहीं होते। कुछ धीरे-धीरे और कुछ तीव्रता से परिपक्व होते हैं। साधारणतः यदि एक योग्यता धीरे-धीरे परिपक्व होती है, तो अन्य भी धीरे ही होगी, यद्यपि ऐसा सदैव नहीं होता। एक बच्चे की योग्यताओं की परिपक्वता का सामान्य क्रम ऐसा होता है कि जिसका परिमापन किया जा सकता है। वास्तव में इसे (बच्चों के लिए) बुद्धि-परीक्षण परिमापित करते हैं। अधिकांश बुद्धि-परीक्षण बच्चे की कई योग्याताओं की परीक्षा करते हैं और एक समावेशी अंक प्रस्तुत करते हैं, जिसे मानसिक-आयु ( MA ) कहते हैं। 'एमए'

को, एक बच्चे के द्वारा प्राप्त अंकों के विविध आयु के सामान्य बच्चों द्वारा प्राप्त अंकों से तुलना करके प्राप्त किया जाता है। उदाहरणत: यदि एक बच्चे की समावेशी योग्यता वही है, जो एक सामान्य ६ वर्षीय बालक की होती है, तो उसकी कालिक आयु (सीए) जो कुछ भी हो उसकी मानसिक आयु ( एमए ) ६ वर्ष ही निर्धारित की जाती है। बुद्धिलब्धि ( IQ ) सामान्यत: एमए-सीए का सौ से गुणा मात्र है। अत:, व्यक्ति की सामान्य योग्यताओं की परिपक्वता के स्तर का परिमापन ही एमए है।

पुन: हम अपने विषय पर आएँ कि प्रत्येक तत्परता आकस्मिक रूप से नहीं, वरन् परिपक्वता से आती है। इस तथ्य को 'एमए' द्वारा बच्चों के परिपक्वता-स्तरों को मिलाकर उसके बाद उनकी किसी योग्यता, जैसे पठन की, योग्यता की तुलना करके स्पष्ट कर सकते हैं। इसका उदाहरण ( मोफेट और वाशवर्न, १९३१ ) देखिए :—

> "१४१ बच्चों का, जब वे प्रथम श्रेणी में आए, बुद्धि-परीक्षण किया गया। परीक्षण ने हर बच्चे की 'एमए' प्रस्तुत की। कुछ महीनों के बाद बिना बुद्धि-परीक्षण के फल को जाने, अध्यापकों ने हर बच्चे की पठन-उन्नति के संबंध में 'संतोषजनक' अथवा 'असंतोषजनक' मंतव्य दिया। चित्र २·११ में परीक्षण-फल अंकित है। इससे स्पष्ट है कि पठन में संतोषजनक उन्नति करने वाले बच्चों की संख्या बहुत तीव्रता से शून्य से लगभग ९० तक बढ़ती है। वास्तव में अधिकांश प्रगति ६ माह में होती है—५½ वर्ष की मानसिक आयु 'एमए' से ६ वर्ष की 'एमए' तक। यदि बच्चों की 'सीए' का उपयोग किया जाता तो इस तीव्र उन्नति को हम देख भी न पाते; क्योंकि वे सभी प्राय: ६ वर्ष के थे और 'सीए' के थोड़े अंतर से परिणाम में कोई भिन्नता नहीं आती।"

ऐसे प्रयोगों का व्यावहारिक उपयोग यह है कि ऐसा कौशल, जो तैयारी पर आश्रित है, उसे तब तक नहीं सिखाना चाहिए, जब तक वह योग्यता या तैयारी परिपक्व न हो जाए। दुर्भाग्य से यूनाइटेड स्टेट्स में 'सीए' के आधार पर बच्चों को स्कूलों में भर्ती करते समय और शिक्षण के कार्यक्रम निर्धारित करते समय इस दृष्टिकोण पर ध्यान नहीं दिया जाता। ६ वर्ष के बच्चों में तैयारी में बहुत अंतर होता है अर्थात् उनकी 'एमए' ४½ या ५ से लेकर ८ या ९ तक होती है। निम्न एमए का बच्चा शिक्षण से कोई लाभ नहीं उठा सकता, जब तक वह उच्च एमए के बच्चे से आयु में काफी बड़ा नहीं हो जाता। पठन सीखने की मानसिक आयु ६ से ६½ है।

इसलिए सामान्य या औसत बच्चों को स्कूल में ६ वर्ष की सीए में भर्ती करने का साधारण प्रचलन है, किंतु मंद बुद्धि या तीव्र बुद्धि बच्चों के लिए यह ठीक नहीं है।

**अभ्यास के लिए इष्टतम समय ( Optimum Time for Practice ) :**

हम देख चुके हैं कि सीखने की तैयारी की परिपक्वता से पूर्व किसी कौशल को सिखाने से कोई लाभ नहीं होता। इसलिए व्यावहारिक दृष्टि से हमें योग्यता या तैयारी की परिपक्वता तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। ऐसा करने पर एक और प्रश्न उपस्थित होता है। क्या बहुत अधिक समय तक प्रतीक्षा करना संभव है ? यदि

बहुत पहले नहीं, किंतु ६ वर्ष की मानसिक आयु में बच्चा पढ़ना सीखने के लिए तत्पर रहता है।
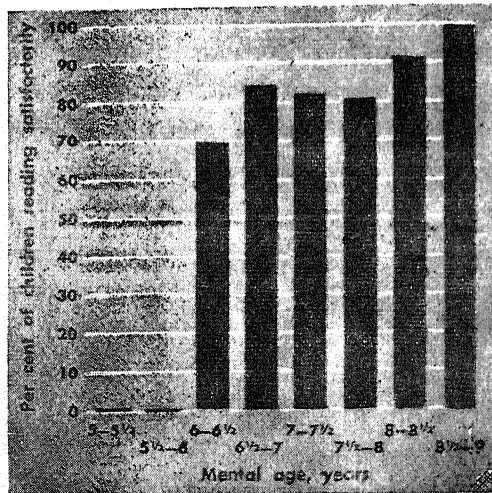
चित्र २·११ पढ़ने के लिए तत्परता और मानसिक आयु। अनेक बच्चे जो पढ़ना सीखने में संतोषजनक उन्नति करते हैं, ५½ और ६ वर्ष की मानसिक आयु (एम ए) के मध्य तीव्र उन्नति करते हैं। (मोर्फेट एवं वाशबर्न, १९३१)।

परिपक्वता द्वारा प्रस्तुत सुविधा के बाद किसी कौशल को सीखा या अभ्यास न किया जाए, तो क्या बाद में उसे सीखने अथवा उसमें दक्षता प्राप्त करने में अधिक कठिनाई होगी ?

प्रमाण उपलब्ध है कि कुछ योग्यताओं और कौशलों के लिए यह बात ठीक है। प्राय: हर कार्य सीखने के लिए इष्टतम समय होता है। उन व्यवहार-प्रतिरूपों का, जो बिना सीखे या थोड़ा सीखने पर परिपक्व हो जाते हैं, अभ्यास करना चाहिए। यदि अभ्यास नहीं किया जाएगा, तो उसे करने की योग्यता कम होती जाएगी।

अनभ्यासजन्य ह्रास :

इस प्रकार का अनभ्यासजन्य ह्रास संभवत: अनेक ऐसे व्यवहारों में होता है, जो बिना सीखे या बहुत कम सीखने से परिपक्व होते हैं।

एक प्रयोग में (डेनिस, १९४१) चिड़ियों के उड़न-व्यवहार का अध्ययन किया गया।

"शिशु-चिड़ियों के पंखों पर लकड़ी के भारी प्रतिबंध पहनाए गए, जिससे कि वे उस विशेष आयु तक उड़ न सकें, जिसमें मुक्त चिड़ियाँ उड़ती हैं। ठीक उसी तरह जैसे सैलैमेंडर ने तैरना और मुर्गी के बच्चे ने दाने चुनना शुरू किया। चिड़ियों ने भी प्रतिबंधों से मुक्त होते ही सामान्य रूप में

संस्कार अंकित बत्तक के बच्चे एक लकड़ी के प्रतिरूप के आकार और ध्वनि का अनुसरण करते हैं।
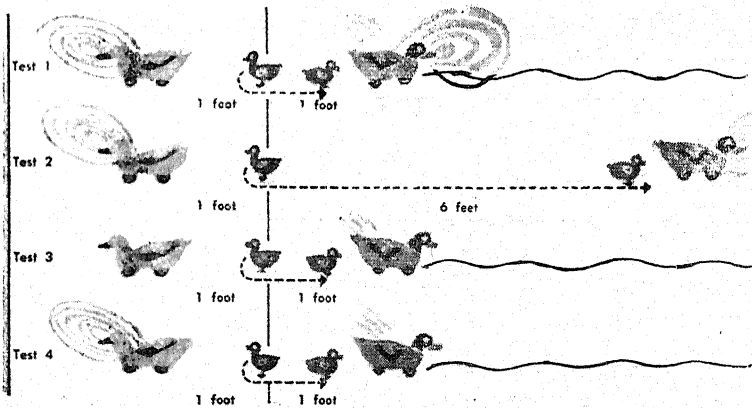
**चित्र २·१२ नर वत्तक के प्रतिरूप ( काले सिरवाले ) पर अनुकरण-योग्यता प्राप्त बत्तक के चार परीक्षण। पहले तीन परीक्षणों में बत्तक के बच्चे को पहले चयन के लिए दो मिनट दिए गए, और तब चुने हुए प्रतिरूप को यह निश्चित करने के लिए चलाया गया कि बत्तक का बच्चा उसका अनुसरण करता है या नहीं। पहले परीक्षण में दोनों प्रतिरूप एक फुट की दूरी पर के, द्वितीय परीक्षण में नर ६ फुट और मादा १ फुट दूर थी। तृतीय परीक्षण में दोनों प्रतिरूप स्थिर थे। चतुर्थ परीक्षण में मादा प्रतिरूप परीक्षा प्रारंभ होने पर चलना प्रारंभ कर देती है ( रेमजे एव हैस, १९५४ )।**

तत्काल उड़ना शुरू किया। प्रयोगकर्त्ता ने यदि चिड़ियों को बहुत समय तक लकड़ी के प्रतिबंधों में रहने के लिए बाध्य किया, तो मुक्त करने पर वे नहीं उड़ीं। दीर्घकाल के बंधन ने उन्हें दुर्बल नहीं बनाया, पर वे उड़ी नहीं।"

इस प्रकार के प्रयोगों में, योग्यता के परिपक्व होने के समय तक यदि प्रतिबंध लगाया जाता है, तो उस कौशल या योग्यता के विकास में बाधा नहीं पहुँचती। किंतु उसके बाद, यदि प्रतिबंध लगा रहा, तो उस योग्यता का विकास रुक जाएगा या उसमें बिलंब होगा।

## अनुकरण अथवा संस्कार-अंकन :

अधिगम के कम-से-कम कुछ प्रकारों के लिए भी यही निष्कर्ष लागू होता है। इसका एक उदाहरण है एक विशेष अधिगम, जिसे 'संस्कार-अंकन' कहा जाता है, जो कुछ चिड़ियों—जैसे बत्तक, कलहंस, मुर्गी के बच्चे में पाया जाता है। संस्कार-अंकन बहुत जल्दी सीख लिया जानेवाला अधिगम है, जिसमें जंतु किसी वस्तु या विशेष क्रिया पर प्रतिक्रिया देना सीखता है। उदाहरण के लिए, कलहंस का बच्चा या मुर्गी का बच्चा कुछ ही प्रयोगों के बाद अपनी माता के पीछे-पीछे घूमना सीख लेता है। इस अधिगम का उद्दीपन माता की क्रियाएँ और उसकी कंठध्वनि है। यदि प्रयोगकर्ता संस्कार ग्रहण करने के समय माता के स्थान पर स्वयं या किसी अन्य को रखे, तो शिशु-चिड़िया प्रतिस्थापक का अनुकरण करना सीख जाएगी। यह संस्कार-अंकन यदि चिड़ियाँ के जीवन में ठीक समय पर न किया गया, तो वह उसे कभी नहीं सीखेगी।

निम्नलिखित उदाहरण (रेमजे और हैस—१९५४) इस प्रकार के अधिगम को स्पष्ट करता है :

"प्रयोगकर्त्ता एक लकड़ी का बत्तक का प्रतिमान बनाते हैं, जिससे बत्तक के बच्चे संस्कार ग्रहण करें। दूरस्थ नियंत्रण द्वारा वे उस बत्तक को एक पथ पर चलाते और गाक, गाक, गाक, गाक (टेप पर रेकार्ड की हुई) ध्वनि, जो प्रायः मादा-बत्तक बोलती है (चित्र २·१२) को प्रकट करवाते हैं। मानक प्रक्रिया का उपयोग कर वे ९२ बत्तकों के बच्चों में से प्रत्येक को प्रतिमान बत्तक से संस्कार ग्रहण करने का अवसर देते हैं। बाद में, व्यवस्थित परीक्षणों में बत्तक के बच्चों के, प्रतिमानबत्तक के अनुकरणों का प्रेक्षण करके वे यह निर्धारित करते है कि क्या वास्तव में उस प्रतिमाम से बच्चों ने संस्कार ग्रहण किए हैं। बत्तक के बच्चों के विविध समूहों को भिन्न-भिन्न समयों में संस्कार-अंकन के लिए चुना गया। एक समूह अंडे से निकलने के चार घंटे बाद के

बच्चों का था, दूसरा ५ से ८ घंटे बाद का। इसी क्रम से २९ से ३२ घंटे के बच्चों पर प्रयोग हुआ। बाद के परीक्षणों से प्रयोगकर्त्ता जिन परिणामों पर पहुँचे, वे चित्र २·१३ में द्रष्टव्य हैं। जन्म के कुछ घंटों बाद वाले बच्चों में संस्कार-क्षमता काफी अच्छी थी, किंतु उसका इष्टतम समय १३ से १६ घंटे की आयु था। ३० घंटे आयु के बच्चों में संस्कार-क्षमता शायद ही थी।"

विशेष प्रशिक्षण :

दुर्भाग्य से इस प्रकार की नाटकीय दत्त-सामग्री मनुष्य जाति के लिए उपलब्ध नहीं है। जहाँ तक हमें ज्ञान है, मनुष्य में संस्कार-लेखन नहीं होता। किंतु, यह प्रश्न अभी विचारणीय है। बहुत संभव है, इससे मिलती-जुलती कोई दूसरी विशेषता उसमें हो। जहाँ तक अधिगम के अन्य प्रकारों का संबंध है, हम अनुमान करते हैं कि कठिन कौशलों को सीखने के लिए इष्टतम काल अपेक्षित होता है। किंतु, इसका निश्चित प्रमाण प्राप्त नहीं है। जो लोग अधिक उम्र में व्यायाम, संगीत, भाषा-विज्ञान-जैसे कौशलों को सीखने का प्रयास करते हैं, उन्हें जो कम उम्र में इन्हें सीखने की तैयारी के परिपक्व होते ही सीखते हैं, उनकी अपेक्षा बहुत कम सफलता मिलती है। दूसरा प्रमाण निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत करता है (मेकग्रा, १९३५)

"जानी और जिमी जुड़वाँ बच्चे थे और बाद में मालूम हुआ कि वे समरूप जुड़वाँ नहीं, वरन् भ्रातृरूप जुड़वाँ हैं। शैशव के डेढ़ वर्ष तक जानी को कौशलों के क्रमिक विकास में गहन, शिक्षण दिया गया। पहले चलने में बाद में तैरने, बर्फ पर सरकने, तीन पहिये की साइकिल चलाने आदि सिखाया गया। जिमी को अपने-आप बढ़ने दिया गया। जितना सामान्य रूप में अभ्यास करवाया या शिक्षण दिया जाता है, उससे भी उसे कम दिया गया। जब जानी उन कौशलों में दक्ष हो गया, तो जिमी का भी परीक्षण हुआ। जब दोनों जुड़वाँ बालक २२ महीने के हुए, तो जिन कौशलों या क्रियाओं में जानी को गहन शिक्षण दिया गया था, उनमें जिमी भी दक्ष पाया गया। इसके बाद जब तक वे ६ वर्ष के हुए, दोनों का नियमित रूप से समय-समय पर परीक्षण होता गया।

चलने-जैसी मूल क्रियाओं में जिमी बहुत कम समय में जानी के बराबर पहुँच गया। अवसर देने पर जिमी ने प्रमाणित किया कि बहुत कम या बिना अभ्यास के ही जानी की बराबरी कर सकता है। कुछ क्रियाओं में, जो विशेष कौशलपूर्ण थीं, जिमी पिछड़ गया और कभी-कभी जानी की बराबरी कर सकने में असफल रहा। उदाहरणतः एक बार जानी ने एक खंभे से

नीचे उतरना सीखा कि हाथ लटका कर नीचे पड़े गद्दे पर कूद जाए। जिमी ने यह कौशल नहीं सीखा। बाद में जब स्केटिंग सिखाया गया, तो वह जानी के समान अच्छी तरह नहीं कर सका, जिसे कुछ माह पूर्व ही उसने सीखा था। सामान्यत: जानी सदा जिमी से उन सब क्रियाओं में श्रेष्ठतर रहा, जिनमें मांसपेशियों के योग की आवश्यकता होती है।"

इस उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि व्यायाम-कौशल शिक्षण प्रारंभ करने का समय प्रथम दो वर्ष है और यदि इस अवसर पर प्रारंभ करने में चूक जाएँ, तो इसे बाद में पूर्णत: विकसित करना असंभव न हो, तो भी कठिन अवश्य है।

१३ से १६ घंटे की आयु में बत्तक के बच्चे सबसे अधिक अनुकरण-योग्यता प्राप्त करते हैं।
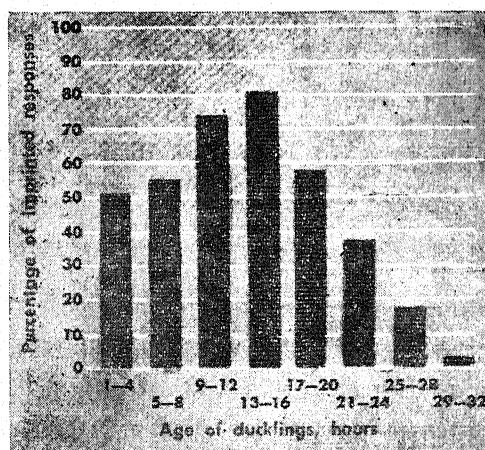
चित्र २.१३ बत्तक के बच्चों की अनुकरण-योग्यता प्राप्त करने के लिए इष्टतम आयु (हेज, १९५९)।

संवेदनात्मक वर्जन और पृथक्करण (Sensory Deprivation & Isolation) :

अभी हमने देखा कि कौशलों के पूर्ण विकास के लिए परिपक्वता के निर्धारित क्रम में ठीक समय पर अभ्यास करना आवश्यक है। यह भी सत्य है कि प्रकृत विकास के लिए संवेदनात्मक अनुभूति अपेक्षित है। एक व्यक्ति में देखने, सुनने एवं चतुर्दिक फैली हुई वस्तुओं को समझने की योग्यता का होना आवश्यक है, जिससे कि उनके प्रति सही अनुक्रिया संभव हो सके। अभी तक हम यह कहने में समर्थ नहीं हैं कि इस अनुभव को प्राप्त करना कब आवश्यक होता है अथवा किसी विशेष योग्यता की

परिपक्वता पर यह कैसे निर्भर करता है। किंतु, उसकी सामान्य विशेषता के प्रमाण हमें उपलब्ध हैं। हमारे अन्य प्रमाणों के ही समान यह भी जान्तव-प्रतिक्रियाओं के प्रेक्षण से ही उपलब्ध हुआ है; क्योंकि शिशुओं और बच्चों पर प्रयोग करना कठिन है। एक प्रयोग के ( रेजन, १९५० ) जो वास्तव में कई एक प्रयोगों की शृंखला थी, उसमें विषयी चिंपांजी थे।

"जन्म के कई माह उपरांत तक ये जंतु सीमित दृष्टि-पर्यावरण में रखे गए। कुछ पूर्ण अंधेरे में रखे गए। कुछ को प्रतिदिन कुछ समय के लिए दृष्टिगत अनुभव का सुयोग दिया गया—जैसे कुछ क्षणों के लिए उन पर प्रकाश डालना या भोजन आदि के समय उन्हें प्रकाश में लाना। एक चिंपांजी की आँखों पर पारमासी चश्मा चढ़ाकर उसका पोषण किया, इससे वह रोशनी तो देख सकता था। पूर्ण अंधेरे में कई माह तक रखे गए जंतुओं को हमें छोड़ देना होगा; क्योंकि उनके दृष्टिपटल में दोष हो गया था। यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि दृष्टि की परिपक्वता के लिए थोड़ी-बहुत प्रकाश-उत्तेजना आवश्यक है।

बाद में जब चिंपांजियों के विविध दृष्टि-परीक्षण लिए गए, तो जिन्हें दिन में करीब एक घंटा प्रकाश देखने का सुयोग दिया गया था, वे परीक्षण में सफल हुए। वस्तुतः प्रकृत विकास के लिए इतना प्रकाश ही अपेक्षित था। इससे अधिक सीमित स्थिति में रखना उनके विकास को मंद करना है। वे अपने पर्यावरण से अच्छी तरह समन्वय नहीं कर सकते। उनकी ओर आने वाली वस्तुओं के प्रति कोई अनुक्रिया उनमें जागृत नहीं हुई, जब तक उन्होंने इन वस्तुओं को स्पर्श नहीं किया। प्रतिरूपों के अंतर को समझना सीखने में भी सामान्य जंतुओं की अपेक्षा घंटों के अभ्यास के बाद वे गतिशील और घटने-बढ़ने वाली वस्तुओं में दृष्टि की सहायता लेना सीख सके। पारमासी चश्माधारी चिंपांजी भी अन्य साथियों के समान ही मंद रहा। वह केवल रोशनी देख सकता है, वर्ण-वस्तु नहीं। अतः, महत्त्वपूर्ण कारक उसके संबंध में वस्तु के आकार और विशेषता का अज्ञान है।"

दूसरा प्रयोग (थामसन और मैलजेक, १९५६) जो भावात्मक और सामाजिक व्यवहार में अनुभवों के योग पर प्रकाश डालता है :—

"इस प्रयोग में कुत्ते के बच्चों को ऐसे स्थान में अलग-अलग रखा गया, जो चारों ओर से बंद था और जिसमें छत से प्रकाश आता था। वे बच्चे किसी अन्य के संपर्क में आने के अथवा आपस में भी परस्पर मिलने

के अवसर से वंचित रखे गए। उनके अन्य साथी नियंत्रित 'प्रयोग-पात्र' के रूप में पालतू कुत्तों की तरह पाले गए। जन्म के बाद ६ से ९ माह तक उन्हें इन स्थितियों में रखा गया। इस बीच एकांत में रखे गए कुत्ते के बच्चों को कठघरों से 'प्रयोग-पात्र' के रूप में निकाला गया। दोनों समूहों की भिन्नताओं को देखा गया और लिख लिया गया।

पृथक् और एकाकी रखे गए कुत्ते के बच्चों में दर्शनीय अंतर था। अनेक व्यवहारों में वे अपरिपक्व और अनाड़ी थे। नई वस्तुएँ जैसे छतरी या बैलून, सहज ही उन्हें उत्तेजित कर देतीं, जबकि 'प्रयोग-पात्र' कुत्ते के बच्चे इन वस्तुओं में कोई विशेष रुचि नहीं लेते। पृथक् रखे गए कुत्ते के बच्चे इन वस्तुओं के चारों ओर उत्तजित होकर चक्कर काटते हैं और प्रायः 'प्रयोग-पात्र' अन्य कुत्तों की अपेक्षा अधिक उत्तेजित होते हैं। कई वर्षों के बाद भी दोनों समूहों में यह अंतर देखा गया।"

ये प्रयोग अपेक्षाकृत नए ही हैं तथा और अभी भी चल रहे हैं। हमें ऐसे अनुभवों को अधिक जानने की अभी आवश्यकता है, जो प्रारंभिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण होते हैं। अब तक हुआ कार्य यह स्पष्ट करता है कि उद्दीपन में अपेक्षाकृत अधिक सक्षम पर्यावरण प्रकृत विकास के लिए आवश्यक है। यह प्रमाणित हो सकता है कि मानव-बालक के प्रथम दो वर्षों में, उसकी योग्यताओं और रुचियों की विभिन्नताओं के लिए उसके बाद के जीवन की अपेक्षा, संवेदनात्मक पर्यावरण अधिक महत्त्व रखता है।

### संवेदनात्मक गतीय विकास ( Sensory Motor Development ) :

विकास में आनुवंशिकता, परिपक्वता और अधिकगम के योग को कुछ समझने के उपरांत अब हम अधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं की चर्चा करेंगे, जिनका विकास में स्थान है। इस प्रसंग में हम संवेदनात्मक गतीय विकास पर विचार करेंगे। गतीय का अर्थ है—गति या चाल से संबंधित। अतः, मनोवैज्ञानिक एवं शरीर-क्रिया वैज्ञानिक इस शब्द का चलना, तैरना, जहाज चलाना ( मोटर चलाना, हवाई जहाज चलाना, नाव खेना) पकड़ना, टाइप करना इत्यादि मानव और जान्तव व्यवहारों में इस शब्द का प्रयोग करते हैं। वाचिका एवं बौद्धिक व्यापारों से, जिनमें कुछ करना नहीं पड़ता, ये क्रियाएँ भिन्न होती है।

### जन्म-पूर्व विकास ( Prenatal Development ) :

प्रसव के पूर्व के काल में व्यक्ति का अस्तित्व जलीय जीव के रूप में और माता के शरीर में परजीवी के रूप में रहता है। यहाँ वह हानिकारक उद्दीपन पदार्थों

से सुरक्षित रहता है और उसकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। संक्षेप में गर्भाशय-परिवेश प्रायः स्थायी रहता है एवं सब माताओं का प्रायः समान प्रकार का होता है।

मनोवैज्ञानिक के लिए इस गर्भकाल का इतना ही महत्त्व है कि इसमें व्यवहार प्रकट होना प्रारंभ होता है। कुछ ही महीनों में ही—जो माता को एक दीर्घ काल प्रतीत होते हैं—स्नायुसंस्थान तथा अनुक्रिया-प्रक्रम के अन्य अंग प्रायः पूरी तरह परिपक्व हो जाते हैं। प्रसव के पूर्व सातवें महीने तक जीव के अधिकांश सहज-क्रिया प्रतिरूप पूर्णतः विकसित हो जाते हैं। जैसे—शरीर और सिर को घुमाना, छूने पर अंगों का सिकोड़ना और फैलाना, हथेली से जो वस्तु स्पर्श करे, उसे पकड़ना, मुँह जब स्तनाग्र या उसके समान कोई वस्तु छू जाए, तो उसे चूसना और व्यथा होने पर रोना।

शैशव ( Infancy )।

जन्म-पूर्व पर्यावरण के अधिकांश लक्षण गर्भ, अंधकारपूर्ण, शांत, जलीय परिवेश, अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं और उन्हें गर्भ की ओर से किसी प्रकार के समायोजन की आवश्यकता नहीं होती। जन्म उन्हें बदल देता है। शिशु एकाएक ऐसे तीव्र परिवर्तनशील पर्यावरण में पहुँच जाता है, जहाँ कालांतर से वह भोजन प्राप्त करता है, जहाँ समय-समय पर तापमान परिवर्तित होता है, जहाँ प्रकाश-ध्वनियाँ एवं अन्य उद्दीपन-पदार्थ समय-समय पर उसके संपर्क में आते हैं। नवजात शिशु को निश्चय ही ऑक्सीजन पाने के लिए स्वयं श्वास लेना, समायोजन करना और अपने अनुकूल स्वतंत्र पर्यावरण बनाना प्रारंभ करना पड़ेगा। उसे अपना भोजन स्वयं खाना और पचाना होगा और अपने शरीर का ताप स्वयं नियंत्रित रखना होगा। साधारणतः शिशु कुछ ही दिनों में ये समायोजन भली प्रकार से करने में अभ्यस्त हो जाता है। यह सब नवजात शिशु की शैशवावस्था में होता है, जो प्रायः दो वर्ष तक रहती है।

संवेदनात्मक विकास ( Sensory Development ) :

जन्म के समय शिशु की इंद्रियाँ सुविकसित होती हैं, कुछ पूर्णतः परिपक्व होती हैं और कुछ नहीं। स्वाद और घ्राण-संवेदनाएँ परिपक्व मालूम होती हैं; क्योंकि नवजात शिशु दुर्गंध आने पर अथवा दूध के खट्ठे होने पर उसे नहीं पीता। स्पर्श और ताप की संवेदनाएँ भी जन्म के समय या उसके कुछ ही समय बाद सुविकसित जान पड़ती हैं; क्योंकि शिशु अनुचित ताप के दूध को नहीं पीते और पर्यावरण के तापमानों के प्रति वे संवेदनशील होते हैं। पीड़ा-संवेदना जन्म के समय उतनी भली-भाँति विकसित प्रतीत नहीं होती जितनी कुछ सप्ताह बाद, जैसा कि शिशु को

धीरे से पिन चुभाने या अन्य हानिकारक पीड़ा-उद्दीपनों की प्रतिक्रिया से निर्धारित होता है। इसी कारण से जन्म के प्रारंभिक कुछ दिनों में बेहोशी की दवा दिए बिना ही नवजात शिशु का परिच्छेदन (Operation) किया जा सकता है।

श्रवण और दृष्टि दो ऐसी इंद्रियाँ हैं, जिनका विकास देर से होता है। जन्म के समय वे पूर्णतः विकसित नहीं होती और उसकी आवश्यकता भी नहीं रहती; क्योंकि जन्म के कुछ प्रारंभिक सप्ताहों में शिशु के लिए खाना और आराम से सोना ही प्रमुख है। यद्यपि शिशु की किसी भी संवेदना का ठीक-ठीक परीक्षण कठिन होता है, किंतु हम देखते हैं कि वह विविध ध्वनियों से अप्रभावित रहता है। तीन या चार सप्ताह के पश्चात् वह ध्वनियों या आवाजों से प्रभावित होने लगता है ( या उत्तर देने लगता है ) और संभवतः, काफी दूर तक स्वाभाविक श्रवण करने लगता है। जहाँ तक दृष्टि का प्रश्न है, हम जानते हैं कि जन्म के समय शिशु ठीक तरह से नहीं देखता है; क्योंकि उसका दृष्टिपटल पूर्णतः विकसित नहीं होता। किंतु, दस दिन के लगभग वह प्रकाश देखने लगता है और बहुधा उसकी दृष्टि वस्तु के साथ-साथ घूमने लगती है। गतिशील वस्तु को ठीक से देखने में उसे कुछ सप्ताह भी लग सकते हैं; क्योंकि दृष्टि-प्रक्रिया के समन्वय को परिपक्व होने में कुछ समय लग सकता है। दृष्टि के पूर्ण परिपक्व होने में, जैसा कि हम जानते हैं, संभवतः शिशु को एक वर्ष या उससे भी अधिक समय से कम नहीं लगता है।

**गतीय विकास का अनुक्रम ( Sequence of Motor Development ) :**

शिशु के प्रारंभिक विकास की प्रमुख घटनाएँ हैं—गतिशीलता। प्रारंभिक दो वर्षों में शिशु धीरे-धीरे शरीर के अंगों को नियंत्रित करने का कौशल सीखता है। नवजात शिशु की तुलना में दो वर्ष के बच्चे की मांशपेशियाँ परिशुद्धता चमत्कारपूर्ण होती हैं। अंगों की विविध स्थितियों और मुद्राओं पर उसे अच्छा अधिकार होता है। बहुधा वह ऐसी आंगिक मुद्राओं को कर लेता है, जो वयस्कों के लिए असंभव होती हैं। वह आगे, पीछे, दाएँ-बाएँ चल सकता है और सीढ़ियों पर वह तीव्रता से चढ़-उतर सकता है। भुजाओं का कौशल भी वह काफी विकसित कर लेता है, वह एक छोटी गोली को अपने अंगूठे या अंगुलियों के अग्रभाग से उठा लेता है।

कई मनोवैज्ञानिकों ने चार्ट बनाए हैं। यदि हम भी सावधानी से शिशु द्वारा महीने-दर-महीने और साल-दर-साल की जाने वाली क्रीड़ाओं का चार्ट बनाएँ, तो हम उसके बिकास का एक प्रतिरूप देख सकते हैं। शिशु बैठने से पहले अपना सिर उठाता है, घुटनों के बल रेंगने से पहले बैठता है और चलने से पहले घुटनों के बल रेंगता है। वास्तव में माता-पिता के लिए शिशु के इस विकास में अनेक छोटी-छोटी

और महत्त्वपूर्ण घटनाएँ होती हैं। ये सब घटनाएँ एक व्यवस्थित क्रम में होती हैं, उनका एक विशेष प्रतिरूप होता है। यह प्रतिरूप हर मानव-शिशु में प्रायः समान होता है और हर शिशु अपने विकास में उसी क्रम को पार करता है। हम यह निर्णय कर सकते हैं कि यह प्रतिरूप अविकारी होता है; क्योंकि यह प्रतिक्रिया, प्रक्रिया की परिपक्वता का परिणाम है।

कुछ बच्चे मंद गति होते हैं, और कुछ तीव्र गति, लेकिन गतीय या पेशीय कौशल एक निश्चित क्रम में प्रस्तुत होता है।
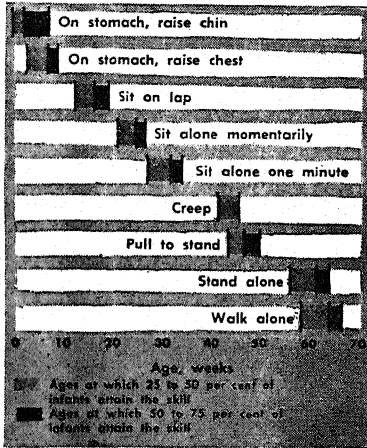
**चित्र २.१४ मानव-शिशु में विशिष्ट कौशल के विकास के लिए मानक (शर्ले, १९३३)।**

शैशवकाल में विकास के प्रतिरूप होते हैं, अतः विकास के मानक बनाना संभव है। उदाहरण के लिए हम कह सकते हैं कि सात महीने की अवस्था में शिशु मटर जितनी बड़ी वस्तु को उठा सकता है, साढे नौ महीने में वह सरकने (रेंगने) लगता है आदि। ऐसी अवस्थाएँ हैं, जिनमें सामान्य शिशु विशेष कौशल को प्रदर्शित करता है, इन्हें ही हम 'मानक' कहते हैं। अनेक माता-पिता ऐसी पुस्तकें खरीदते हैं, जिनमें मानकों के विषय में विस्तार से लिखा होता है और अपने बच्चे की क्रीड़ाओं पर ध्यान केंद्रित रखते हैं कि क्या वह उन मानकों के अनुसार उन्नति करता है। उन्हें ध्यान रखना चाहिए कि वे मानक सामान्य बच्चों के हैं और कभी-कभी शिशु उनसे धीरे या तीव्र गति से भी कौशल के क्रम को प्राप्त कर सकते हैं। उन्हें यह भी समझना चाहिए कि गति के विकास का बुद्धि से बहुत कम संबंध है। (शर्ले—१९३३) एक बच्चे का जिसका गति-विकास मंद होता है ( पर सामान्य परास में ), बौद्धिक विकास उतना ही तीव्र अथवा सामान्य हो सकता है, जितना उस बच्चे का, जिसका गति-विकास तीव्र होता है, ( अध्याय १४ देखिए। )।

शिशु के कौशल के विकास एवं विकास-क्रम के वैविध्य के मानकों को चित्र २·१४ स्पष्ट करता है। निर्धारित कौशल बहुत विस्तृत क्षेत्र से चुने गए हैं, जिनसे मानक बनाए जा सकें। हर मापक के मध्य भाग के पास एक रेखा है, जो कौशल को प्राप्त करने की सामान्य अवस्था प्रकट करती है। मापक का बायाँ सिरा सबसे तेज शिशुओं की कौशल-प्राप्ति की आयु बताता है और दाएँ-हाथ का सिरा तीन-चौथाई बच्चों की कौशल-प्राप्ति की आयु इंगित करता है। ध्यान रखें कि शिशु की तीव्रतम और मंदतम गतियाँ इस मापक के विन्यास के बाहर हैं। उदाहरणार्थ बैठने के कौशल पर केवल विचार कीजिए। सामान्य अवस्था, जिसमें शिशु अकेला बैठ सकता है, ३१ सप्ताह या लगभग सात माह है, किंतु एक चौथाई शिशु २७ सप्ताह की आयु में अकेले बैठने लगते हैं और दूसरी ओर एक चौथाई ऐसे भी शिशु हैं कि ३४ सप्ताह की आयु से पहले बैठने में सफल नहीं होते। इस कौशल की प्राप्ति का विन्यास इससे काफी अधिक विस्तृत है।

हम कौशल के विकसित होने के क्रम को जानते हैं और यह भी कि हर कौशल परवर्त्ती कौशल के विकास के लिए किस प्रकार भूमिका तैयार कर देता है। फिर भी किसी विशेष बालक के विशेष कौशल के विकास के संबंध में पहले से कहने का प्रयास करना बुद्धिमता नहीं है।

सामान्य शिशु के विकास के सामान्य प्रतिरूपों को स्पष्ट करने के लिए चित्र २·१५ में हमने चित्रमाला प्रस्तुत की है। यह चित्रमाला बहुत स्पष्ट है, इसलिए उसे और समझाने की आवश्यकता नहीं है। पर, विद्यार्थियों को इस विकास-क्रम का अध्ययन भली प्रकार करना चाहिए।

एक बार बच्चा आगे बढ़ने की कला जान लेता है, तो बड़ी तीव्रता से अधिक उन्नत कौशलों में उन्नति करता है, जैसे सीढ़ियाँ चढ़ना और उतरना, कूदना, उछलना, छलांग मारना और भागना। वह जैसे-जैसे गति और यथार्थता में बढ़ता है, वह इन कौशलों को अधिक जटिल कृत्यों में प्रयोग करने लगता है। वह नन्हीं बालिका, जो संतुलन के लिए गुड़िया की गाड़ी रोकती थी, अब वह कभी-कभी अपनी 'गुड़िया' को 'खरीदारी' के निमित्त किसी दूकान में चक्कर कटा लाती है। वह बालक, जो पहले अपनी तीन पैर की साइकिल पर संतुलन रख कर संतुष्ट था, अब वह एक ठेले को ठेलता है और फायर इंजिन का खेल खेलते हुए सड़क तक उसे ले जाता है।

### परिग्रहण (Prehension) :

परिग्रहण का अर्थ है—वस्तु पकड़ना। परिग्रहण का सबसे सरल प्रकार है हस्तामलकता, हाथ की हथेली के द्वारा वस्तु पकड़ी जाती है, जैसे, कोई व्यक्ति पेड़

की डाल पकड़ कर लटक जाए या सीढ़ी के डंडे को पकड़ ले। अंगूठे का तर्जनी को सहयोग देना-जैसी सूक्ष्म पकड़ भी संभव है। जैसे जब कोई व्यक्ति पेंसिल उठाता है या कैंची चलाता है। इस प्रकार का परिग्रहण या आकलन जो केवल मनुष्यों और कुछ बानरों तक सीमित है, हमें वस्तुओं में काफी सूक्ष्मता से हेरफेर करने का अवसर देता है। यह उन अनेक कौशलों की कलाबाजियों या चतुरकृत्यों को भी स्पष्ट करता है, जिन्हें केवल मनुष्य कर सकता है।

परिग्रहण-योग्यताएँ शिशु में अपेक्षाकृत धीरे विकसित होती हैं। चलन या गमन, आदि क्रियाएँ ऐसे अधिक मूल प्रतिरूपों से विकसित होती हैं, जिनका पहले से विकसित होना आवश्यक है ( हालवर्सन, १९३१ )।

प्रथम (देखिए चित्र २·१६ में 'ए') शिशु कम या अधिक अटकलपच्चू क्रियाएँ करता है, वस्तु की ओर पूरा बाँह फैलाने से प्रायः वह उसे पकड़ने में असफल होता है। कभी-कभी उसकी क्रियाएँ वस्तु को पकड़ने की चेष्टा में लीन होती हैं और बाँह को, कम या अधिक, वस्तु को बटोर कर इकट्ठा करने में पेचीदे तरीके से काम में लाया जाता है। शीघ्र ही (देखिए 'बी') जब शिशु बाँह की विविध मांसपेशियों पर अधिक नियंत्रण प्राप्त कर लेता है, वह बाँह के अगले भाग को पिछले भाग से स्वतंत्र रूप में व्यवहार में ला सकता है और धीरे-धीरे बाँह से भिन्न केवल कलाई तक हाथ का उपयोग करने लगता है। इस समय तक वस्तु तक पहुँचने की जो क्रिया पेचींदा थी, वह सीधी हो जाती है।

जब शिशु वस्तु तक पहुँचने की क्रिया में सिद्धहस्तता प्राप्त कर रहा होता है, एक अन्य महत्त्वपूर्ण योग्यता भी स्वतः विकसित होती है। यह योग्यता है, अंगूठे का अन्य अंगुलियों के संपर्क से क्रियाशील होना। यह योग्यता कुछ बानरों के अतिरिक्त और किसी जंतु में नहीं होती। शिशु में यह योग्यता वस्तु पकड़ने की चेष्टा के समय विकसित होते हुए हम देखते हैं। पहले ( चित्र 'सी' ) शिशु बिना अंगूठे के योग के अंगुलियों से वस्तु को दबाने लगता है। बाद में ( देखिए 'डी' ) वह वस्तु पर अपनी अंगुलियाँ मोड़ता है और उन्हें अपने अंगूठे के सामने लाता है। अंत में (देखिए 'इ') वह केवल अपनी अंगुलियों के अग्र भाग को काम में लेता है और वस्तु को अंगूठे से पकड़ता और उसमें हेरफेर करता है।

प्रचुर प्रमाण मिलता है कि अधिगम की अपेक्षा, चलन एवं गमन और परिग्रहण दोनों क्रियाओं के विकास में, परिपक्वता अधिक महत्त्वपूर्ण कारक है ( मैकग्रा, १९४६ ) सब बच्चों में इसी क्रम से ये कौशल विकसित होते हैं और किसी विशेष व्यवहार-प्रतिरूप की अभिव्यक्ति के प्रकार में अपेक्षाकृत बहुत कम परिवर्तन मिलता

सामान्य बच्चा अपने प्रेरक कौशल को इस सूची के अनुसार विकसित करता है।

1 month
Chin up

2 months
Chest up

चित्र २·१५ प्रेरक विकास का अनुक्रम।
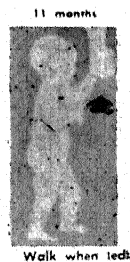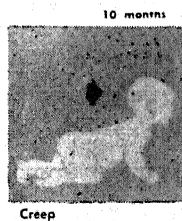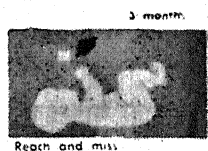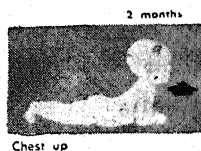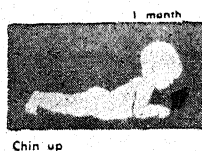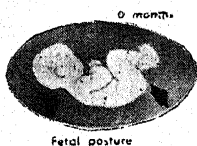
है। जब शिशु मूल योग्यता को 'पूर्णतः' (down pat) प्राप्त कर लेता है, तब हर बच्चे में उस योग्यता के उपयोग में काफी विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इस स्थिति में पर्यावरण का प्रभाव सामने आता है और अधिगम का महत्त्व भी बढ़ जाता है। इसे बालक और बालिकाओं के विविध प्रकार के खिलौनों तथा विविध खेलों में बहुत स्पष्टता से देखा जा सकता है।

## भाषा-विकास ( Language Development ) :

संवेदनात्मक प्रेरक विकास के अतिरिक्त विकास के तीन अन्य अंग भी हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक है—भाव-विकास, भाषा-विकास और व्यक्तित्व-विकास। भाव-विकास पर विस्तार से भावना और भाव के अध्याय में विचार किया गया है और व्यक्तित्व-विकास पर व्यक्तित्व-प्रकरण में लिखना उचित होगा। यहाँ हम केवल भाषा-प्रकरण पर विचार करेंगे। यद्यपि भाषा लिखित या मौखिक या विशेष सांकेतिक पद्धति-जैसे मोर्स कोड या बहरे-और गूँगे के संकेत, की हो सकती है, किंतु वाणी भाषा की वह प्रकार है, जो सामान्यतः प्रारंभिक जीवन में विकसित और प्रयुक्त की जाती है। अतः, इस प्रसंग में वाक्‌शक्ति के विकास पर विचार किया जाएगा।

## प्रारंभिक वाचोच्चारण ( Early Vocalization ) :

यद्यपि शिशु पहले वर्ष तक अपनी अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का प्रयोग नहीं करता है, प्रथम या द्वितीय माह से ही अभिव्यक्ति के अन्य रूप प्रकट होने के प्रमाण मिलते हैं। नवजात शिशु का वाचोच्चारण सामान्य और पृथक् न किए जाने वाले रोने और शायद कुछ चिग्घाड़ने-सी ध्वनियों तक सीमित रहता है। शिशु के निकट जो भी होगा, उसके ऐसे व्यवहार से अप्रभावित न रह सकेगा। अपनी विविध व्यथाओं की स्थितियों को अभिव्यक्त करने के लिए दूसरे महीने में शिशु भिन्न प्रकार से रोता है। उसके रुदन से उसके कष्ट का प्रकार सदा ठीक समझ सकना, एक किसी व्यक्ति के लिए संभव नहीं। किंतु, यह स्पष्ट है कि वह किसी-न-किसी कष्ट की निश्चित रूप से अभिव्यक्ति है। दूसरी ओर उसके गले की किलकारी की ध्वनि और वैसी अन्य ध्वनियाँ उसके सुख और स्वास्थ्य को प्रकट करती हैं। अतः, प्रथम माह के अंत तक शिशु ऐसी ध्वनियों के द्वारा अपनी आवश्यकताओं एवं भावनाओं को अपने निकटवर्त्ती व्यक्ति पर अभिव्यक्त करने लगता है।

एक बच्चा पकड़ सकने के पूर्व पहुँचना सीखता है, तब अपने अंगूठे और अँगुलियों से पकड़ सकने के पूर्व वह अपनी हथेली और अँगुलियों से पकड़ता है।
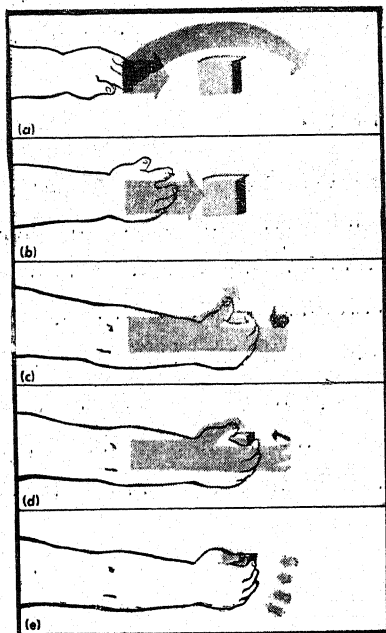
**चित्र २·१६ पहुँचने और पकड़ने के विकास की पाँच अवस्थाएँ—(ए), (बी), (सी), (डी) और (इ) (हावर्सन, १९३१)**

जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, उसकी प्रसंगानुकूल मांसपेशियाँ परिपक्व होने लगती हैं। शिशु एक ऐसा कोष विकसित कर लेता है, जिसमें अनेक प्रकार की ध्वनियाँ निकलने लगती हैं। सारणी २:४ में ऐसी कुछ ध्वनियों की सूची दी गई है। कुछ ही समय में जब वह इन ध्वनियों को बार-बार मुखर करने से सुखानुभव करने लगता है, तब वह 'एकाक्षर-अवस्था' को पहुँचता है। शिशु द्वारा अभिव्यक्त अनेक ध्वनियाँ लिखी नहीं जा सकतीं, ध्वन्यात्मक वर्णमाला में भी नहीं। किंतु, यह बब्लिग ध्वनियाँ आवश्यक और महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि ये वाचिक मांसपेशियों को अभ्यास और शिशु को अपनी आवाज सुनने का अवसर देती हैं। वास्तव में ध्वनियों को मुखर कैसे किया जाता है, इसकी अनुभूति और साथ-साथ ध्वनि सुनने से शिशु संबद्ध वस्तु से संबंधित शब्दों से उन ध्वनियों को जोड़ने में सहायता प्राप्त करता है (लेविस, १९३६)। छह माह की अवस्था तक शिशु स्वरों और व्यंजनों की प्रायः सब ध्वनियों को प्रकट कर सकता है। ये ध्वनियाँ प्रायः सरल तरीके से जोड़ी और दोहराई जाती हैं। ध्वनियों के महत्त्व को बिना समझे ही वह 'मःमा' या 'दादा' या 'रे-रे-रे' कहने लगता है। अपने नौवें या दसवें महीने में वह दूसरों द्वारा अभिव्यक्त ध्वनियों का अनुकरण करने लगता है। इसके उपरांत इनमें से कोई भी ध्वनि पर्यावरण में उपस्थित किसी वस्तु से संबंधित की जा सकती है, विशेषतः यदि ध्वनि और वस्तु साथ-साथ शिशु के

सामने बार-बार उपस्थित की जाए, चित्र २.१७ कैसे किया जा सकता है, स्पष्ट करता है ।

## अर्थग्रहण (Comprehension) :

अनेक उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि स्वयं ध्वनि प्रकट कर सकने से बहुत पहले ही शिशु दूसरों की ध्वनि भी समझ सकता है (मैकार्थी, १९४६) । चार माह का शिशु निश्चय ही मानव-ध्वनियों का उत्तर जिस दिशा से वह ध्वनि सुनता है, उस ओर अपना सिर घुमाकर देखता है । ६ माह की अवस्था में वह ध्वनि के अर्थों में अंतर समझने लगता है । वह क्रोधपूर्ण और स्नेहपूर्ण आवाजों का भिन्न रूप में प्रत्युत्तर देता है और चेतावनी की ध्वनि पर वह जो कुछ कर रहा होगा, उसे करना छोड़ देगा ।

दस माह की अवस्था में वह यथेष्ट रूप में आदेशों का प्रत्युत्तर देने लगता है, यदि वे आदेश या संकेत भाव-भंगिमा के साथ कहे गए हों । विदा देने के लिए ( bye-bye ) वह अपना हाथ हिला सकता है, यदि उसके हाथ को पकड़ कर पहले दो चार बार उसे बता दिया गया हो । यदि उसकी माता उसे कहे 'चम्मच को प्याले में रख दो' और चम्मच तथा प्याले की ओर संकेत भी कर दे, तो वह शब्दों को प्रासंगिक वस्तु से जोड़ना शीघ्र सीख लेता है ।

## आंगिक संकेत ( इंगित, Gestures ) :

शिशु अपने प्रारंभिक जीवन में आंगिक संकेतों का प्रयोग करता है और ये वाक्-भाषा-व्यवहार प्रकट होने के पूर्व के महत्त्वपूर्ण अंग होते हैं । संकेत द्वारा या पकड़कर बच्चा दूसरों को सूचित कर सकता है और अपनी आवश्यकता को पूर्ण कर सकता है । अपने सिर को घुमाकर या केवल चम्मच को दूसरी ओर हटाकर वह प्रकट करता है कि उसे और खाने की आवश्यकता नहीं है । वास्तव में, यदि बच्चा अपने पर्यावरण को सामान्य रूप से नियंत्रित कर सके और अपने आंगिक संकेतों द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता हो, तो वह शब्दों का व्यवहार बहुत मंद गति से सीखेगा ।

## शब्दों का प्रयोग ( The Use of Words ) :

यद्यपि ऐसा प्रकट नहीं होता कि सामान्य बच्चे किस आयु में प्रथम शब्द उच्चरित करते हैं; क्योंकि इसका निर्णय करना अपेक्षाकृत कठिन होता है । प्रथम शब्द से हमारा क्या अभिप्राय है ? क्या हमारा अर्थ उस उच्चरित शब्द से है, जिसका किसी वस्तु से संबंधित होना आवश्यक है । जब बच्चा 'बाल' कहता है, तो उसका

सारणी २.४

| भाषा समनुष्ठान | औसत अवस्था जन्मोपरांत माह |
| --- | --- |
| वह चीखता, गुर्राता और श्वास-प्रक्रिया से अन्य प्रकार की ध्वनियाँ करता है | ० |
| कोई पीड़ा होने, भूख लगने और कुछ कष्ट होने पर तरह-तरह की ध्वनियाँ व्यक्त करता है | १ |
| स्वर-वर्णात्मक ध्वनियाँ उच्चारता है। जैसे—**आह, अह, आय** | १-२ |
| मनुष्य की ध्वनि की ओर देखता है | २-४ |
| हाँ-हूँ और **कू-कू** करता है | ३-४ |
| **'मा, मु, दो, ना'** आदि ध्वनियों को उच्चारता हुआ अपने-आप से बातें करता है | ४-६ |
| आनंद और कष्टसूचक ध्वनियाँ व्यक्त करता है | ५-६ |
| किसी परिचित की बोली सुनते ही चुप हो जाता है | ६ ७ |
| ध्वनियों को साथ-साथ कर लेता और उन्हें लगातार दुहराता चलता है। जैसे—**मा मा मा-मामा-बू-बू-दा दा दा** | ६-९ |
| दूसरों की ध्वनि की नकल करता है | ९-१० |
| अंग-विक्षेपण को समझने लगता है (विदासूचक हाथ हिला सकता है और बहुधा बोल भी सकता है) | ९-१२ |
| साधारण आदेशों को समझता और पालन भी करता है (चम्मच लो, गुड्डे को देखो) | ११-१५ |

| | |
|---|---|
| छोटे-छोटे शब्दों और शब्द-खंडों की नकल करता है (पहला शब्द ?) | ११-१५ |
| दो भिन्न शब्द बोलता है | १२ |
| तीन से पाँच तक भिन्न शब्द बोलता है | १३-१८ |
| समझता और पालन करता है—निषेधसूचक 'मत' ('उसे मत छुओ', 'इसे मत उगलो') | १६-२० |
| पुस्तक में किसी बिंब अथवा चित्र को देख कर उसका नाम लेता है (प्याला, गेंद, कुत्ते का बच्चा, शिशु आदि) | १७-२४ |
| शब्दों को मिला कर संक्षिप्त वाक्य बना लेता है ('बाहर जाओ', 'मुझे दूध दो' 'गेंद कहाँ') | १८-२४ |
| तीन से पाँच तक परिचित बिंबों अथवा चित्रों को पहचान लेता है | २४ |
| संक्षिप्त एवं सरल वाक्य का व्यवहार करने लगता है | २३-२४ |

**सारणी : २.४ शिशु में भाषा का विकास, शिशु के विकास के आठ प्रमुख प्रयोगों के परिणामों पर आधारित है। औसत आयु, जिस पर कि भाषा व्यवहार का प्रत्येक प्रकार प्रस्तुत होता है, महीनों में दिया गया है। दो संख्याएँ विभिन्न प्रयोगों से प्राप्त औसत आयु की शृंखला को निर्देशित करती हैं (Modified from McCarthy—1946)।**

अभिप्राय बाल से कुछ मिलती-जुलती वस्तु से हो सकता है। 'दादा' शब्द कहने पर उसका अभिप्राय किसी व्यक्ति से ही होना चाहिए। यदि उस समय उसके पिता उपस्थित हों, तो उसे इस शब्द का व्यवहार अटकलपच्चू नहीं करना चाहिए। वाणी का विकास एक क्रमिक प्रक्रम है, और यदि असंभव नहीं, तो भी प्रथम शब्द के उच्चारण की आयु को इंगित कर सकना कठिन अवश्य है। (कभी-कभी दो या तीन शब्द एक ही समय में उच्चरित हो जाते हैं) अनेक प्रेक्षणों को देखने पर हम साधारणतः यह पाते हैं कि प्रथम शब्द दस से तेरह महीनों के बीच बच्चे द्वारा बोला जाता है।

एक बालक ध्वनि को वस्तु के साथ संबद्ध करना भिन्न अवस्थाओं में सीखता है।
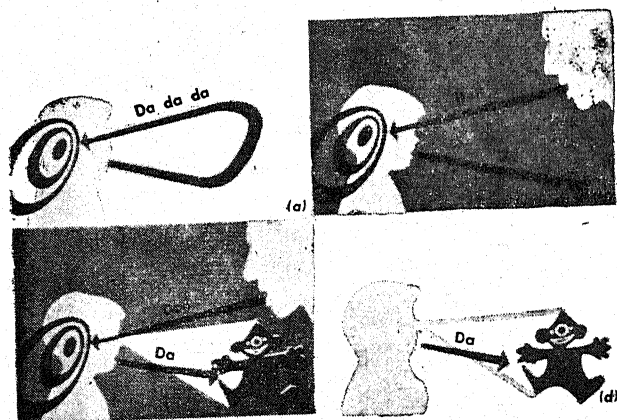
**चित्र २.१७ वस्तु के साथ ध्वनि को संबद्ध करना। (ए) ध्वनि का उच्चारण उसे सुनने के साथ संबद्ध है। (बी) एक वयस्क भी इसी प्रकार की ध्वनि का उच्चारण करता है, जिसका अनुकरण बच्चा करता है। (सी) जिसके विषय में ध्वनि होती है, वह उसी वस्तु के साथ-साथ उसका उच्चारण (डी) ध्वनि को उत्पन्न करने के लिए वस्तु को देखना पर्याप्त है।**
( After All Port, 1924 )

एक बार जब प्रथम शब्द अभिव्यक्त हो जाता है, तब बच्चे का शब्द-भंडार बड़ी तीव्रता से बढ़ने लगता है। तात्कालिक पर्यावरण से सामान्यतः संबंधित संज्ञाएँ वह पहले सीखता है, तब क्रियाएँ, उसके बाद विशेषण और क्रिया-विशेषण सर्वनाम

सबसे बाद में आते हैं ( मेकार्थी, १९३० )। बच्चे सर्वनामों के सही प्रयोगों में अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक कठिनाई अनुभव करते हैं। 'मेरे को उठा दो' या 'मुझे बाहर जा रहा हूँ।'-जैसे प्रयोग प्रारूपिक हैं।

जैसे-जैसे बच्चे का शब्द भंडार बढ़ता है, वह अपने सीखे हुए शब्दों को वाक्यों में जोड़ना प्रारंभ करता है। उसके वाक्यों का प्रथम प्रकार एक शब्द का होता है, वह कहेगा 'खाना', जिसका अर्थ होगा 'मुझे कुछ खाने के लिए दो', या 'बाहर', जिसका अभिप्राय होगा 'मैं बाहर जाना चाहता हूँ।' कभी-कभी लोग ऐसे वाक्यों को गलत समझ लेते हैं, किंतु ये काफी उचित होते हैं। बाद में बच्चा दो या तीन शब्द साथ जोड़ने लगता है। दो वर्ष की आयु में वह ऐसे वाक्य बोलने लगता है, जो अपूर्ण होते हुए भी सभी आवश्यक शब्दों से युक्त होते हैं, जैसे 'कुत्ता कहाँ जाता ?' 'रात-रात नहीं', 'मुझे झूला पर जाता।' 'जब बेबी उठता, मैं बोतल देगा।'

## बुद्धि और लिंग ( Intelligence and Sex ) :

शिशु के भाषा-व्यापार के विकास के मुख्य सोपानों का हमने निरूपण किया है। परिपक्वता और अधिगम का उसमें महत्त्वपूर्ण योग है। इनके अतिरिक्त अन्य घटकों का भी हाथ होता है और हमें उनके विषय में भी कुछ कहना चाहिए।

बुद्धि एक ऐसा ही घटक है। लोग साधारणतः विश्वास करते हैं कि वे बच्चे, जो बहुत जल्दी बोलने लगते हैं, सबसे अधिक बुद्धिमान होते हैं। आंशिक रूप में यह ठीक है। उदाहरणार्थ, एक मनोवैज्ञानिक जिसने प्रतिभासंपन्न बच्चों, जिनकी बुद्धिलब्धि सामान्य से ऊपर थी, के साथ प्रयोग किया और इस निर्णय पर पहुँचा कि ऐसे बच्चे सामान्यतः साधारण बच्चों की अपेक्षा ४ माह पूर्व बोलने लगते हैं (टर्मन, १९२५)। दूसरी ओर अव-सामान्य बुद्धि वाले बच्चे साधारण बच्चों की अपेक्षा कई माह बाद बोलना प्रारंभ करते हैं। बहुत दुर्बल बुद्धि के बच्चे संभवतः कभी बोलना सीखते ही नहीं। बच्चे के देर से बोलने के अनेक कारण हैं। यदि वह देर से बोलना आरंभ करता है, तो यह अनिवार्य नहीं है कि वह मंद बुद्धि हो।

बोलना सीखने में लिंग भी एक कारक है। इस कारक का अध्ययन करते हुए मनोवैज्ञानिक प्रयोग स्पष्ट करते हैं कि साधारणतः भाषा-कौशल के अनेक सोपानों में लड़कियाँ, लड़कों से आगे रहती हैं। ऐसे प्रयोगों में बुद्धि और सामाजिक-आर्थिक भूमिकाओं को नियंत्रित रखना होगा और इसका भी पूरा ध्यान रखना होगा कि ऐसी स्थितियों को, जो एक लिंग को दूसरे से अधिक सुविधा दे ( जैसे, ऐसे खिलौने से परीक्षण करना, जिनमें लड़कों की अधिक रुचि होती है) प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। भिन्न आयु के बच्चों पर किए गए प्रयोगों से सिद्ध हुआ है कि लड़कों की अपेक्षा

लड़कियाँ हर वाक्य में अधिक शब्दों का प्रयोग करती हैं। वे लड़कों की अपेक्षा जल्दी बोलने लगती हैं। उनका उच्चारण स्पष्टतर होता है, उनकी बात अधिक अच्छी तरह समझ में आती है, उनका शब्द-भंडार विशालतर होता है, विशेषत: जबकि वे अपेक्षाकृत छोटी होती हैं। एक प्रयोग तो, लोकप्रचलित कथन की पुष्टि करते हुए कहता कि लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक बातूनी होती हैं, और बहुत कम उम्र से ही वे लड़कों की अपेक्षा अधिक बोलती हैं, यद्यपि यह अंतर बहुत कम होता है (जरसिल्ड और रित्जमान, १९३८)।

**सामाजिक पर्यावरण ( Social Environment ) :**

जब बच्चा अपनी भाषा-प्रकिया को नियंत्रित्त करने में काफी परिपक्व हो जाता है, तब आगे की उन्नति के लिए उसे अधिगम पर काफी निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रारंभिक आयु में वह किस तीव्र गति से सीखता है, यह इस पर निर्भर करता है कि वह अपने चतुर्दिक पर्यावरण से किस प्रकार प्रोत्साहन प्राप्त करता है।

पर्यावरण अनेक कारकों और व्यक्तियों का समूह है। माता-पिता इसके महत्त्वपूर्ण अंग हैं। यदि बच्चा अपने आंगिक-विक्षेपों द्वारा अपने माता-पिता से वह प्राप्त करता रहे, जो वह चाहता है, तो इस अभिव्यक्ति-माध्यम को वह शब्द-व्यवहार के बदले छोड़ने के लिए सहज तैयार नहीं होता। यदि माता-पिता वस्तु को दिखाते हुए शब्दों का व्यवहार करके उसे बोलने के लिए प्रोत्साहित नहीं करेंगे, तो वह अपने-आप अपेक्षाकृत बहुत धीरे-धीरे शब्द सीखेगा। यदि वे बच्चे की तुतलाती भाषा में ही उससे बराबर बोलेंगे ( क्योंकि वह अच्छी लगती है ) या यदि वे अपने उच्चारण में और वाक्य-रचना में अस्पष्ट रहते हैं, तो बच्चा भाषागत बुरी आदतें सीखता है, जिन्हें बाद में मिटाना बहुत कठिन हो जाता है। एक बार जब बच्चा इस स्थिति को पहुँच जाता है कि वह संगत ध्वनियों का उच्चारण कर सके, तो 'धन्यवाद' और 'ट्रेन' शब्दों को कहना सीखना उसके लिए उतना ही सरल होता है, जैसे 'टा-टा' या 'चू-चू' शब्दों को कहना। किंतु, यदि वह किसी शब्द का सही उच्चारण करने योग्य न हो, उस योग्यता को प्राप्त करने तक प्रतीक्षा करने में कोई हानि नहीं होगी।

अनेक प्रयोगों से स्पष्ट हुआ है कि जुड़वाँ-बच्चों के भाषा-विकास में एकाकी एकाकी उत्पन्न-बच्चों की अपेक्षा अधिक अड़चन होती है। एक प्रयोगकर्त्ता ने बताया कि पाँच वर्ष के जुड़वाँ बच्चे उतने ही बड़े वाक्य बोलते थे, जितने तीन वर्ष की अवस्था के एकाकी उत्पन्न-बच्चे (डे, १९३२) 'अन्य प्रयोग ने बताया कि जब जुड़वाँ बच्चे स्कूल जाने लगे, तो वे एकाकी उत्पन्न बच्चों से इतने अधिक पिछड़े हुए नहीं रहे। (डेविस, १९३२)।

इन तथ्यों की संभावित व्याख्या है कि जुड़वाँ बच्चे प्रायः घर में, एकाकी उत्पन्न-बच्चों की अपेक्षा, बहुधा अकेले छोड़ दिए जाते हैं और परिणामस्वरूप उन्हें प्रोत्साहन देने वाले भाषाकुशल बड़े बच्चों के सहयोग की सुविधा प्राप्त नहीं होती।

सामाजिक पर्यावरण का एक अंग द्विभाषिकता है, जो भाषा-विकास को प्रभावित करती है। यदि घर में दो भाषाएँ बोली जाती हों या बच्चे को मातृभाषा सीखने के साथ-साथ, यदि एक विदेशी भाषा भी सीखनी पड़े, तो वह घबरा जाता है और दोनों भाषाओं में ही उसकी प्रतिभा अवबाधित हो जाती है। एक प्रयोग से यह स्पष्ट हुआ कि ऐसे घर में जहाँ दो भाषाएँ बोली जाती हैं, वहाँ यह उचित होगा कि बच्चे एक व्यक्ति से सदा एक ही भाषा सुनें और दूसरी भाषा सदा दूसरे व्यक्ति से सुनें ( स्मिथ, १९३५ )।

एक प्रयोग ने परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति और भाषा-विकास के स्वरूप में घनिष्ठ संबंध सिद्ध किया है। निम्नांकित उदाहरण ( युंग, १९४१ ) इस तथ्य को स्पष्ट करता है—

> "गरीब बच्चों की भाषा की तुलना संपन्न बच्चों की भाषा से ६ घंटे तक बातचीत में की गई। परिणाम यह निकला कि संपन्न बच्चे भाषा के हर दृष्टिकोण से दरिद्र बच्चों से अच्छे थे। प्रारंभिक सभी अवस्थाओं में सुशिक्षित और संपन्न परिवारों के बच्चों की भाषा योग्यता के स्तर दरिद्र और कम शिक्षित परिवार के बच्चों से, जब कि बुद्धि के घटक को इस प्रसंग से दूर रखा गया, बेहतर थे।"

यदि प्रोत्साहनबर्द्धक पर्यावरण तीव्र भाषा-विकास के लिए आवश्यक है, तब सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की दत्त-सामग्री समझना सरल है। सुशिक्षित व्यक्तियों के परिवार में पुस्तकों, चित्रों, संगीत एवं अन्य घर सजाने की सामग्री के होने की अधिक संभावना होती है। यदि परिवार संपन्न है तो घूमने के स्थान, व्यस्त होने की क्रियाएँ एवं अन्य वस्तुएँ सभी उसी अनुपात में बढ़ जाती हैं। वास्तव में, यह देखा गया है कि एक बच्चे के पास जितने अधिक खिलौने होंगे, यात्रा का जितना अधिक अनुभव होगा. उसका शब्द-भंडार भी उतना ही अधिक होगा और वह उनका प्रयोग वाक्यों में कर सकेगा। और भी साधारणतः संपन्न माता-पिता के पास अपने बच्चों के शिक्षा-उपसंहार में हम कह सकते हैं कि विविध अनुभवों की जितनी बड़ी संख्या बच्चों को उपलब्ध करायी जाएगी और जितना अधिक समय उन्हें दुनिया के विषय में बताने के लिए दिया जाएगा, साधारणतः उनका मानसिक विकास भी उतना ही होगा और विशेषतः उतना ही उनकी भाषा का भी विकास होगा।

## सारांश

१. गुणसूत्र और उनके द्वारा वहित्र जीन आनुवंशिकता के प्रेषा है और हर नये व्यक्ति की जैविक विशेषताओं को परिचालित करते हैं।

२. जीन सदा युग्मों में कार्य करते हैं। उनके द्वारा परिचालित लक्षण या तो प्रबल होंगे या सुप्त। जब प्रबल जीन सुप्त जीन के साथ युग्म बनाता है, प्रबल जीन की विशेषता प्रकट होती है, सुप्त जीन की विशेषता तभी प्रकट होती है, जब दो सुप्त जीन युग्म बनाते हैं। अधिकांश विशेषताएँ, लंबाई, बुद्धि, भावात्मकता आदि अनेकविध परिचालित हैं, वे जीन के सम्मिश्रण पर निर्भर हैं।

३. जीन एक पीढ़ी से उत्तरवर्त्ती पीढ़ियों में होते हुए संचरण की अटूट श्रृंखला बनाते हैं। जो विशेषताएँ आनुवंशिकता द्वारा संचरित हैं, वे केवल जीन के उत्परिवर्तन द्वारा ही बदली जा सकती हैं, अर्जित विशेषताएँ संचरित नहीं की जा सकतीं।

४. क्योंकि माता और पिता दोनों से प्राप्त गुणसूत्र बच्चे में आकस्मिक ढंग से युग्म बनाते हैं। अतः, एक कोशिका से जीव प्रारंभ करने वाले एक रूप जुड़वाँ को छोड़कर हर व्यक्ति आनुवंशिकता में एक दूसरे से भिन्न होता है। (एक ही माता-पिता के अन्य बच्चे) अन्य व्यक्ति जिनका एक रक्त से संबंध है, सामान्य आनुवंशिकता के परिमाण में उनमें भिन्नता होती है।

५. आनुवंशिकता और पर्यावरण दोनों मिलकर, व्यक्ति के व्यवहार के विकास को परिचालित करते हैं, यद्यपि व्यवहार के कुछ प्रकार आनुवंशिकता द्वारा अधिक नियंत्रित होते हैं और अन्य पर्यावरण द्वारा।

६. सहजवृत्तिक व्यवहार, व्यवहार का जन्मजात प्रतिरूप है, जो प्रथम उपयुक्त अवसर पाते ही पूर्ण विकसित हो जाता है और वातावरण के किसी उद्दीपन द्वारा उत्तेजित हो जाता है। मुख्य व्यावहारिक विशेषताएँ, जो आनुवंशिक होती हैं, ऐसी योग्यताएँ हैं, जिनमें किसी विशेष से प्रतिक्रिया होती है अथवा जिनके द्वारा विशेष बातें सीखी जाती हैं।

७. उपजातियों के अंतर मुख्यतः आनुवंशिकता द्वारा नियंत्रित या परिचालित होते हैं। आनुवंशिकता ऐसी योग्यता को भी परिचालित करती है, जिससे भाषा तथा अन्य जटिल कौशल को सीखा जाता है। यही कारण है कि बानरों को भाषा सिखाने के प्रयत्न में विशेष सफलता नहीं मिली।

८. समरूप जुड़वाँ बच्चों की बुद्धि में बहुत अधिक सह-संबंध होता है; उससे कम भाइयों और बहनों में और भी कम दूर के संबंधित व्यक्तियों में होती है।

प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि आनुवंशिकता और पर्यावरण दोनों मिलकर मनुष्य की बुद्धि को परिचालित करते हैं।

९. जन्म-पूर्व के कुछ महीनों तथा जन्मोपरांत के कुछ महीनों में विविध अंग सामान्य क्रियाओं की तैयारी के लिए बच्चे में परिपक्व होते रहते हैं। परिपक्वता का विकास एक ही निश्चित क्रम से होता है और एक उपजाति के सभी लोगों में वह उसी क्रम से होता है। हर व्यवहार से पहले परिपक्वता इस प्रकार होती है कि जब क्रिया की आवश्यकता होती है, तो उसको करने वाला अंग पहले ही परिपक्व हो जाता है।

१०. सहज क्रियाओं और गतीय योग्यताओं—जैसे बैठना, खड़ा होना, चलना तथा जंतुओं में तैरना, चिड़ियों में उड़ना का विकास पूर्णतः परिपक्वता पर आधारित है और इन्हें अभ्यास की बहुत कम अथवा विलकुल आवश्यकता नहीं होती।

११. अधिगम की योग्यता या पूर्व-तत्परता भी परिपक्वता द्वारा परिचालित होती है। अभ्यास और अधिगम—दोनों किसी कौशल में निपुणताप्राप्ति के लिए आवश्यक है। किंतु, उन्हें भी संगत योग्यता की परिपक्वता की प्रतीक्षा आवश्यक होती है।

१२. कुछ कौशलों के अभ्यास और अधिगम के लिए कोई इष्टतम अवधि निश्चित नहीं है। यदि यह अवसर कोई व्यक्ति चूक जाता है, तो फिर उस कौशल को सीखना उसके लिए बहुत कठिन या असंभव हो जाता है।

१३. गतीय कौशल एक ऐसे प्रतिरूप में विकसित होते हैं, जो सब बच्चों में सामान्य होते हैं। इससे उन अवस्थाओं के लिए मानक निर्धारित करना संभव हो जाता है जिनमें पकड़ना, बैठना, चलना आदि योग्यताओं को होना चाहिए। कुछ बच्चे इन क्रियाओं के विकास में पिछड़ सकते हैं, पर यह आवश्यक नहीं कि उनकी बुद्धि भी मंद हो।

१४. गतीय विकास का विशेष महत्त्वपूर्ण अंग है आकलन या परिग्रहण; क्योंकि अन्य कौशलों को सीखने के लिए विषयों में हेरफेर करना आवश्यक होता है।

१५. शिशु रोने और चिग्घाड़ने के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा से अपने जीवन का प्रारंभ नहीं करते। जैसे-जैसे उनके भाषा-प्रक्रम में विकास होता है, वे अधिक ध्वनियाँ व्यक्त करने लगते हैं। भाषा के रूप में इन ध्वनियों के प्रयोग करने से पहले ही वे सुनने पर अर्थ ग्रहण करने कगते हैं। वे अपनी कुछ आवश्यकताओं को भाव-भंगिमाओं एवं रुदन के द्वारा भी अभिव्यक्त कर सकते हैं।

१६. प्राय: एक वर्ष की अवस्था में शिशु प्रथम शब्द को अभिव्यक्त करता है, और इस शब्द का प्रयोग वह एक पूरे वाक्य के रूप में करता है, सामान्यत: उसका अर्थ होता है—"मुझे अमुक-अमुक वस्तु चाहिए।" उसके बाद उसका शब्द-भंडार बड़ी तीव्रता से बढ़ने लगता है।

१७. भाषा-योग्यता आंशिक रूप से परिपक्वता पर निर्भर करती है, पर इसके विकास के अन्य कारक भी हैं। वे बच्चे, जो बहुत जल्दी बोलने लगते हैं, आगे चलकर बहुत बुद्धिमान सिद्ध होते हैं।

१८. लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ जल्दी बोलने लगती हैं। एकाकी-उत्पन्न-बच्चे भी जुड़वाँ बच्चों की अपेक्षा जल्दी बोलने लगते हैं। दरिद्रता के पर्यावरण में रहने वाले बच्चों की अपेक्षा संपन्न और भरे-पूरे परिवार के पर्यावरण में रहने वाले बच्चों का भाषा-विकास अधिक शीघ्र होता है।

## पठनार्थ सुझाव

Breckenridge, M. E., and Vincent, E. L. Child Development, ( 3d. ed ) Philadelphia : Saunders, 1955.
बाल-विकास के अध्ययनार्थ बहुत प्रचलित ग्रंथ।

Carmichael, L. ( ed. ) Manual of Child Psychology (2nd. ed.) New York, Wiley, 1954.
श्रेष्ठतम अधिकारियों द्वारा बाल-विकास पर लिखित सामग्री का विशद् संकलन।

Gesell, A. T. and LLg , F. L. Infant and Child in the Culture of Today. New-York : Harper, 1943.
बालक के विकास पर रोचक और पठनीय सामग्री।

Hurlock, E. B. Developmental Psychology ( 2d. ed.) New York : McGraw-Hill, 1959.
गर्भकाल से वृद्धावस्था तक मानव-विकास के विविध सोपानों का विवरण।

Munn, N. L. Evolution and Growth of Human Behaviour. Boston : Houghton Mifflin, 1955.
मनोवैज्ञानिक विकास पर विस्तृत सामग्री, इसके अंतर्गत जान्तव-विकास के विकासात्मक व्यवहारों पर लिखित सामग्री भी है।

Mussen, P. H , and Conger, J. J. Child Development and Personality New York : Harper, 1956.

१६. प्राय: एक वर्ष की अवस्था में शिशु प्रथम शब्द को अभिव्यक्त करता है, और इस शब्द का प्रयोग वह एक पूरे वाक्य के रूप में करता है, सामान्यत: उसका अर्थ होता है—"मुझे अमुक-अमुक वस्तु चाहिए ।" उसके बाद उसका शब्द-भंडार बड़ी तीव्रता से बढ़ने लगता है ।

१७. भाषा-योग्यता आंशिक रूप से परिपक्वता पर निर्भर करती है, पर इसके विकास के अन्य कारक भी हैं । वे बच्चे, जो बहुत जल्दी बोलने लगते हैं, आगे चलकर बहुत बुद्धिमान सिद्ध होते हैं ।

१८. लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ जल्दी बोलने लगती हैं । एकाकी-उत्पन्न-बच्चे भी जुड़वाँ बच्चों की अपेक्षा जल्दी बोलने लगते हैं । दरिद्रता के पर्यावरण में रहने वाले बच्चों की अपेक्षा संपन्न और भरे-पूरे परिवार के पर्यावरण में रहने वाले बच्चों का भाषा-विकास अधिक शीघ्र होता है ।

## पठनार्थ सुझाव

Breckenridge, M. E., and Vincent, E. L. Child Development, ( 3d. ed ) Philadelphia : Saunders, 1955.
बाल-विकास के अध्ययनार्थ बहुत प्रचलित ग्रंथ ।

Carmichael, L. ( ed. ) Manual of Child Psychology (2nd. ed.) New York, Wiley, 1954.
श्रेष्ठतम अधिकारियों द्वारा बाल-विकास पर लिखित सामग्री का विशद् संकलन ।

Gesell, A. T. and LLg , F. L. Infant and Child in the Culture of Today. New-York : Harper, 1943.
बालक के विकास पर रोचक और पठनीय सामग्री ।

Hurlock, E. B. Developmental Psychology ( 2d. ed.) New York : McGraw-Hill, 1959.
गर्भकाल से वृद्धावस्था तक मानव-विकास के विविध सोपानों का विवरण ।

Munn, N. L. Evolution and Growth of Human Behaviour. Boston : Houghton Mifflin, 1955.
मनोवैज्ञानिक विकास पर विस्तृत सामग्री, इसके अंतर्गत जान्तव-विकास के विकासात्मक व्यवहारों पर लिखित सामग्री भी है ।

Mussen, P. H , and Conger, J. J. Child Development and Personality New York : Harper, 1956.

बाल-विकास में अधिगम और समाजीकरण पर इस पुस्तक में बल दिया गया है।

Scheinfeld, A. The New Heredity and You. Philadelphia : Lippincott, 1950.

मानव-आनुवंशिकता के प्रक्रम का आकर्षक विवरण।

Zubek, J., and Solberg, P. A. Human Development. New York : McGraw-Hill, 1954.

मनोवैज्ञानिक विकास के प्रत्येक विषय का पृथक् विवेचन किया गया है और प्रत्येक में पृष्ठभूमि को स्पष्ट करने के लिए जान्तव-व्यवहार का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।
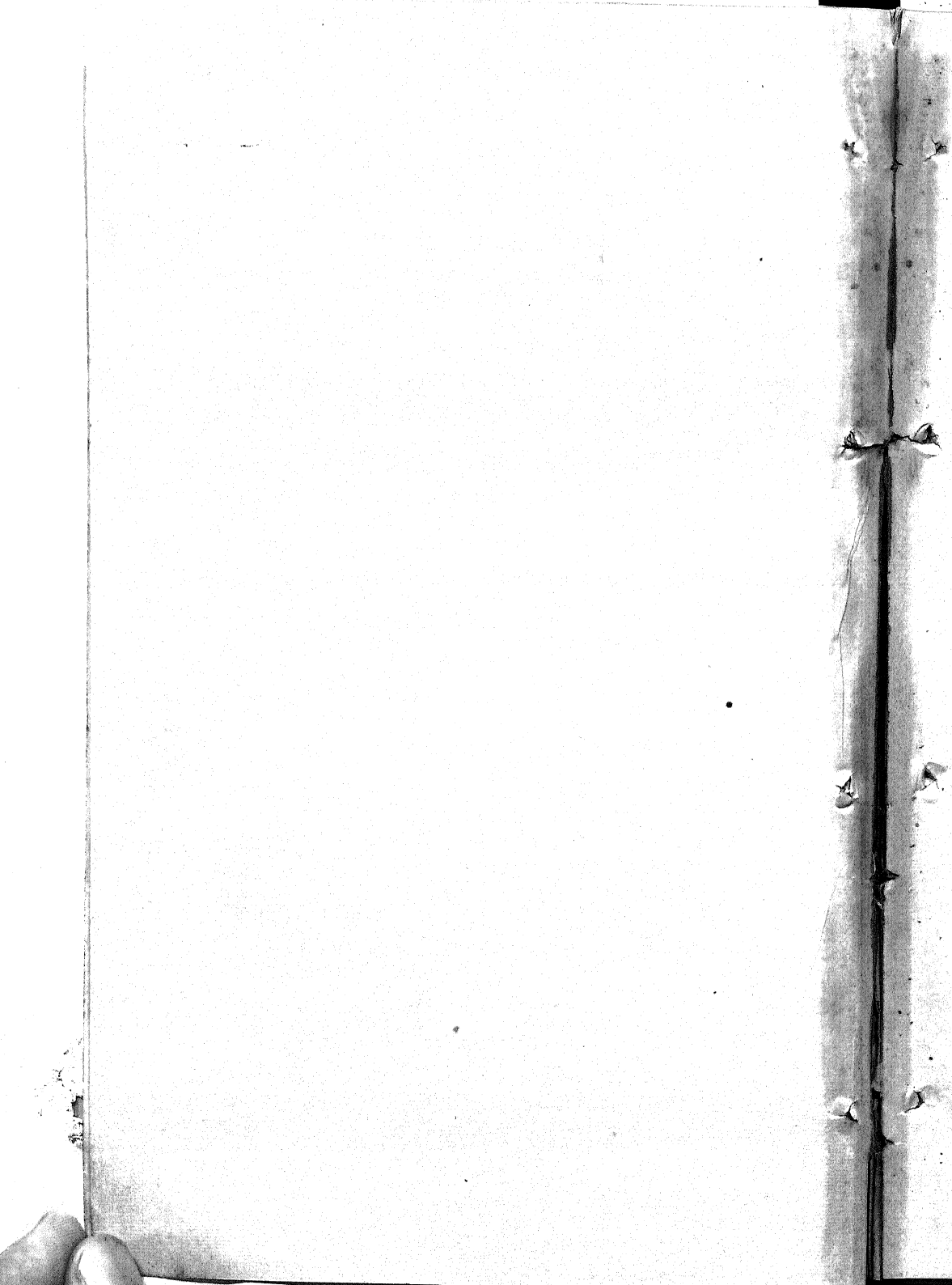
# भाग : २

अन्तर्नोद और अभिप्रेरण

भाव और संवेग

मनोरथ-भंग (कुण्ठा) और अन्तर्द्वन्द्व

मानसिक स्वास्थ्य और मनश्चिकित्सा

अध्याय ३
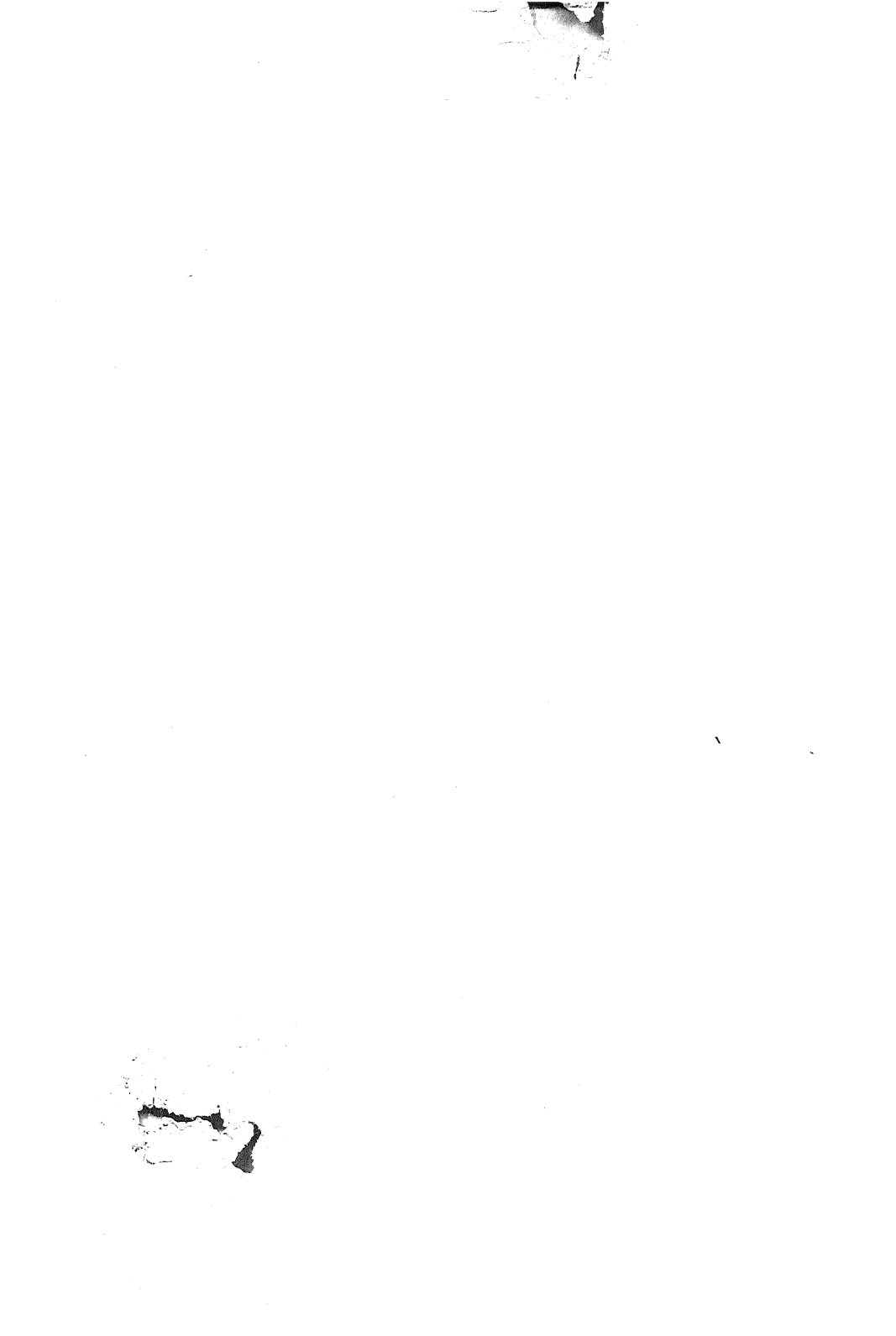
# अंतर्नोद और अभिप्रेरण

एक व्यक्ति डाक्टर बनना चाहता है। दूसरा राजनीति के क्षेत्र में सत्ता पाने का प्रयत्न करता है। एक ऐसा व्यक्ति भी है, जो अत्यंत भूखा है और इस समय खाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता। एक लड़की एकाकी है, वह साथी चाहती है। एक व्यक्ति ने अभी हत्या की है, और हम कहते हैं कि उसने प्रतिशोध के लिए हत्या की। ये कुछ उदाहरण हैं कुछ अभिप्रेरकों या अभिप्रेरणों (Motives) के, जिनका मानव-व्यवहार में महत्त्वपूर्ण योग रहता है। ये ही क्षुधा एवं यौन-जैसी मूल इच्छाओं, राजनैतिक अभिलाषा और विवाह करने की इच्छा-जैसे जटिल दीर्घकालीन उद्देश्यों तक, को परिचालित करती हैं। ये इच्छाएँ स्पष्ट व्यक्त नहीं होतीं। व्यक्ति क्या करते हैं, क्या कहते हैं और किस उद्देश्य से काम करते दीख पड़ते हैं, इसे वे अपनी अनुभूति के आधार पर जानते हैं।

## अभिप्रेरण का स्वरूप (The Nature of Motivation) :

हमारे प्रतिदिन के व्यवहार में आने वाले शब्दों में कई सौ शब्द व्यक्तियों के अभिप्रेरकों से संबद्ध रहते हैं। ऐसे कुछ बहुप्रचलित शब्द हैं—इच्छा, प्रयत्न, लालसा, आवश्यकता, लक्ष्य, आकांक्षा, अंतर्नोद, कामना, उद्देश्य, महत्त्वाकांक्षा, क्षुधा, पिपासा, प्रेम, प्रतिशोध। इनमें से प्रत्येक शब्द का अपना-अपना अर्थ है और ये विशेष संदर्भ में प्रयुक्त होते हैं। इनमें से अनेक पर्याप्त सूक्ष्मता से स्पष्ट किए जा सकते हैं और अभिप्रेरण के वैज्ञानिक अध्ययन में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। पारिभाषिक शब्दावली की समस्या कठिन है और विद्यार्थी को विशेष ध्यान मे अध्ययन करना होगा कि इस अध्याय में किस संदर्भ में शब्दों का प्रयोग हुआ है।

## अभिप्रेरणात्मक चक्र (Motivational Cycle) :

'अभिप्रेरण' एक साधारण शब्द है, जिसका संबंध उन अवस्थाओं से है, जो व्यवहार को अभिप्रेरित करती हैं एवं उन व्यवहारों और लक्ष्यों से है, जो इन अवस्थाओं द्वारा अभिप्रेरित होते हैं। इस प्रकार अभिप्रेरण के तीन पक्ष हैं—अवस्थाओं को अभिप्रेरित करना, व्यवहार को अभिप्रेरित करना और व्यवहार को अभिप्रेरित

करने वाले हेतुओं को संतुष्ट या उपशमित करना। इनमें से प्रत्येक पक्ष अपने में एक चक्र का एक क्रम है; क्योंकि प्रथम से द्वितीय तक, द्वितीय से तृतीय तक और तृतीय से पुनः प्रथम तक यह क्रम चलता है। ( द्रष्टव्य : चित्र ३-१ ) इन तीनों क्रमों के लिए एक या उससे अभी अधिक शब्दों का प्रयोग होता है।

अभिप्रेरण चक्रीय होता है :

**चित्र ३.१**
**अभिप्रेरणात्मक चक्र**
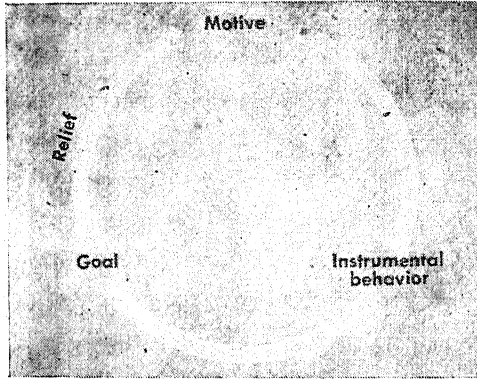
प्रथम क्रम के लिए बहुधा प्रेरक, प्रेरण और आवश्यकता शब्दों का प्रयोग होता है। प्रेरक ही सबसे सामान्य एवं अधिक व्यवहृत शब्द है। 'मोटिव'(Motive) शब्द को उन्हीं फ्रेंच और लैटिन धातुओं से व्युत्पत्ति हुई है, जिनसे 'मोशन' शब्द की। 'मोशन' का अर्थ है गति, और 'मोटिव' का अर्थ भी उत्तेजित करने, आवेगित या गति को तीव्रता देने के रूप में गति ही है। अतः, अभिप्रेरण का अर्थ है—कार्य करने के लिए गति देने या उत्तेजित करने वाला। 'अंतर्नोद' शब्द का भी कभी-कभी अभिप्रेरण के अर्थ में प्रयोग होता है; क्योंकि अंतर्नोद शब्द का गुणार्थ भी व्यवहार को गति देना है। इस अध्याय में 'अंतर्नोद' शब्द का प्रयोग अभिप्रेरण के अर्थ में अनेक बार हुआ है।

एक अभिप्रेरण या अंतर्नोद अनेक कारणों से उत्पन्न हो सकता है। **प्रथमतः** इसकी उत्पत्ति का कारण है 'आवश्यकता'— अर्थात् वह अभाव, जिसकी आवश्यकता परिजीवन, स्वास्थ्य, और व्यक्ति की संपन्नता के लिए होती है। शारीरिक आवश्यकताओं का अर्थ है—खाद्य और जल-जैसे पदार्थों का शरीर के उत्तकों में अभाव। और भी अनेक प्रकार की आवश्यकताएँ हैं; जैसे साहचर्य, सम्मान और उपलब्धि। द्वितीयतः अंतर्नोद या अभिप्रेरक व्यक्ति के अंतः अथवा बाह्य उद्दीपनों से भी उत्तेजित होता है। क्षुधार्थ पीड़ा, पर्यावरण में बहुत अधिक ऊष्मा या बहुत अधिक शीत कष्टपूर्ण उद्दीपन या नवीन उद्दीपन, जो ध्यान आकर्षित करते हैं—ये समस्त अभिप्रेरित कर सकने योग्य उद्दीपनों के उदाहरण हैं। कुछ शारीरिक अंतर्नोदों में,

रक्त में हारमोन भी अभिप्रेरणात्मक हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, यौन और मातृत्व अंतर्नोद अंशत: विशेष हारमोनों की उपस्थिति पर निर्भर रहते हैं। ऐसा प्रकट होता है कि हारमोन स्नायु-संस्थानों को उत्तेजित कर देते हैं। अभिप्रेरणात्मक हेतुओं को संगठित करने के कारण ये इंद्रियों को उत्तेजित करनेवाले उद्दीपनों से भिन्न होते हैं। वास्तव में, वे प्रेरणात्मक स्थितियों का निर्माण करते हैं।

अभिप्रेरणात्मक चक्र का द्वितीय सोपान व्यवहार है, जो अंतर्नोद या अभिप्रेरण द्वारा उत्तेजित होता है। यह व्यवहार अभिप्रेरण या अंतर्नोद को द्रुत या विलंब गति से काम करने में बहुधा साधनभूत होता है। उदाहरणार्थ, क्षुधा-अंतर्नोद (Hunger-drive) एक व्यक्ति को भोजन की खोज के लिए अभिप्रेरित करता है। अत:, उसका अन्वेषणात्मक व्यवहार अंतर्नोद को तृप्त करने या कम करने का उपकरण बनता है, किंतु यह केवल साध्य की प्राप्तिहेतु साधन मात्र है। इसी अध्याय में आगे चलकर इन साधनभूत व्यवहारों के अनेक प्रकारों का विवरण दिया जाएगा।

अंतर्नोद या अभिप्रेरण को न्यून या संतुष्ट करना अभिप्रेरणात्मक चक्र का तृतीय सोपान है। साधारणत: साध्य तक पहुँचने पर इसकी पूर्ति होती है। उदाहरणार्थ, पिपासा-अंतर्नोद (Thirst-drive) शरीर के पानी की कमी की पूर्ति एक आवश्यकता है, (प्रथम सोपान) जो मनुष्य को अभिप्रेरित करती है। यह आवश्यकता जलप्राप्ति के लिए साधनभूत व्यवहार (द्वितीय सोपान) को उद्दीप्त करती है। पेय जल की प्राप्ति लक्ष्य था, (तृतीय सोपान) उसकी प्राप्ति पर पिपासा तृप्त हो जाती है और अभिप्रेरणात्मक चक्र तब तक के लिए समाप्त हो जाता है, जब तक पुन: शरीर को जल की आवश्यकता नहीं होती।

साधारणत: साध्य अंतर्नोद, जो सक्रिय है, उसके प्रकार पर निर्भर करता है। क्षुधा द्वारा अभिप्रेरित व्यक्ति का साध्य भोजन है, तो यौन-अंतर्नोद द्वारा अभिप्रेरित व्यक्ति का साध्य है यौन-तृप्ति। स्नेह की आवश्यकता में साहचर्य उसका साध्य बनता है, इसके लिए वह विवाह करता है, किसी क्लब का सदस्य बनता है अथवा किसी स्थानीय निकाय-कक्ष (Pool-room) में जाता है। साध्य धनात्मक और ऋणात्मक दो प्रकार के होते हैं। उपर्युक्त उदाहरण धनात्मक साध्यों के हैं। इन साध्यों को जब व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है, तब उसके लिए प्रयत्नशील होता है। ऋणात्मक साध्य वे हैं, जिनसे व्यक्ति बचाव का या दूर रहने का प्रयत्न करता है। जैसे—घातक या अरुचिकर परिस्थितियाँ।

प्रतिदिन की भाषा में 'प्रोत्साहन' शब्द का प्रयोग प्राय: अभिप्रेरणात्मक चक्र के तृतीय क्रम के लिए होता है। इसका अतिरिक्त निहितार्थ भी है—किसी के द्वारा

जानबूझ कर अभिप्रेरित व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए अथवा प्रेरकों को व्यवहृत करने के लिए उनका जानबूझ कर प्रयोग करना। प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक एक चूहे को भूलभुलैया समझाना चाहता है। चूहे, को भूखा रखने के अनंतर वह भोजन का 'प्रोत्साहन' तत्त्व के रूप में उपयोग करता है, जिससे चूहा उस भूलभुलैए के निकटतम पथ को सीख सके। धन के 'प्रोत्साहन' के महत्त्व को समझ कर एक नियोक्ता अपने कर्मचारी के लिए लाभांश को उत्तेजक के रूप में प्रस्तुत करता है और कर्मचारी में अतिरिक्त परिश्रम करने के भाव को उत्तेजित कर उसे अच्छा कार्य करने की अभिप्रेरणा देता है।

मूल शारीरिक अंतर्नोदों में साध्य अपेक्षाकृत निश्चित और अपरिवर्तनशील रहते हैं। तृषित व्यक्ति के लिए जलप्राप्ति ही एकमात्र साध्य है। हाँ, जल की प्राप्ति के अनेक जरिए हो सकते हैं। इसी प्रकार क्षुधित को भोजन के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। अधिक जटिल अभिप्रेरकों के लिए अनेक विकल्पों में कोई भी साध्य हो सकता है! चर्च-अधिकारी या राजनीतिक नेता बनकर अथवा नगर का सर्वश्रेष्ठ गोल्फ खिलाड़ी बनकर लोग सम्मानप्राप्ति की लालसा तृप्त करते हैं। अतः, यह निश्चित है कि साध्य, अभिप्रेरकों के अनुसार होते हैं, तथापि साध्यों का विश्लेषण अभिप्रेरण के अध्ययन में एक जटिल प्रसंग है।

कई वर्ष पूर्व चिकित्सालय में हुए एक शारीरिक अभिप्रेरक-संबंधी एक घटना के उदाहरण को इन तीन क्रमों को स्पष्ट करने के लिए वर्णित करना समीचीन होगा (विलकिंस एवं रिचर, १९१०)।

> "तीन वर्ष के एक शिशु के शारीरिक विकास में कुछ विकृतियाँ प्रकट हो रही थीं। अतः, वह प्रेक्षणार्थ चिकित्सालय में लाया गया। सात दिन तक चिकित्सालय का नियमित भोजन करने के पश्चात् वह बालक अचानक मर गया। शव-परीक्षा से पता चला कि उसके गुर्दे पर स्थित अधिवृक्क-ग्रंथियों (Adrenal Glands) में विकार था। सामान्यतः अधिवृक्क-ग्रंथियों का स्राव शरीर से मूत्र के साथ लवण का निःसरण नहीं होने देता, किंतु इस विकारग्रस्त बालक में, चिकित्सालय के सामान्य भोजन से उस लवण की स्थान-पूर्ति नहीं हो सकी, जितना वह प्रवाहित हो जाता था। यह स्पष्ट हो गया कि बालक लवण की कमी के कारण मरा।
>
> मृत्यु के अनंतर बालक के माता-पिता ने बताया कि उसने कभी भी ठीक से भोजन नहीं किया। अधिकांश बच्चों से भिन्न, हर मीठी वस्तु से उसे घृणा थी और नमकीन चीजों के लिए वह लालायित रहता था। वह नमकीन पदार्थों का नमक चाट लेता था, पर उन पदार्थों को सेवन नहीं

करता था, केवल उन्हें हमेशा माँगता रहता था। जब वह अठारह महीने का था, तब एक दिन उसने मेज से नमकदानी उठा ली और एक भुक्खड़ की तरह उसने खूब नमक खाया। उसके बाद जब भी वह पाकशाला की ओर जाता और नमक का पात्र देखता, वह उस आलमारी की ओर संकेतकरता। वह तब तक चिल्लाता रहता, जब तक कि उसे कोई नमक न दे देता। इस समय तक उसके माता-पिता को यह भी ज्ञान हो गया था कि यदि उसके भोजन में साधारण परिमाण से तीन-चार गुना अधिक नमक डाल दिया जाए, तो वह ठीक से भोजन कर लेता था, इसके अतिरिक्त भी करीब एक चाय का चम्मच भर कर वह खाली नमक खाना चाहता था।"

यह दुर्भाग्यपूर्ण उदाहरण अभिप्रेरण के उन क्रमों को, जो शारीरिक अंतर्नोदों से संबंधित हैं, प्रस्तुत करता है, (१) बालक की शारीरिक आवश्यकता थी नमक, (२) इस आवश्यकता के कारण अनेक साधनभूत व्यवहार उत्पन्न हुए, जिनमें मेज और आलमारी से नमक प्राप्त करने की चेष्टाएँ भी थीं, (३) नमक की प्राप्ति साध्य था, जब वह उसे मिल जाता, उसकी इच्छा संतुष्ट हो जाती। पर, यह अस्थायी होता। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि सबकी अभिप्रेरणा का आधार तात्कालिक और शारीरिक नहीं होता। अनेक आवश्यकताएँ, विशेषतः जटिल सामाजिक आवश्यकताएँ तो आजीवन अतृप्त रह जाती हैं और यह आवश्यक नहीं कि उनकी परिणति मृत्यु में ही हो, जैसा कि उपर्युक्त बालक में हुआ। फिर भी ये तीन सोपान सहज और जटिल—दोनों अभिप्रेरणात्मक व्यवहार के आदर्शभूत प्रतिरूप बन जाते हैं।

**अभिप्रेरक-वर्गीकरण :**

अंतर्नोद दो साधारण वर्गों में सहज ही विभाजित किए जा सकते हैं। (१) प्राथमिक अंतर्नोद, जिनके अंतर्गत वे अनधिगत अंतर्नोद आते हैं, जो परिपक्वता-काल में विकसित होते हैं। (२) गौण अंतर्नोद, जो अधिगम द्वारा अर्जित किए जाते हैं। वस्तुतः अंतर्नोद स्वयं नहीं सीखे जाते, वरन् अंतर्नोदों को तृप्त करने वाले साध्यों और उन साध्यों की प्राप्ति में योग देनेवाले व्यवहार सीखे जाते हैं। जो भी हो, गौण प्रेरकों में पर्याप्त अधिगम निहित रहता है।

प्राथमिक अंतर्नोदों को भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है— (१) शारीरिक अंतर्नोद और (२) सामान्य अंतर्नोद। शारीरिक अंतर्नोदों का उद्भव किसी आभ्यांतरिक आवश्यकता से होता है, अथवा शरीर के भीतर किसी शारीरिक स्थिति से। किंतु, सामान्य प्रेरकों का मूल किसी निश्चित और आभ्यांतरिक शारीरिक आवश्यकता में नहीं होता, तथापि ये अधिगत प्रतीत नहीं होते। गौण अंतर्नोदों के अंतर्गत अधिगतमय और अनेक ऐसे सामाजिक अंतर्नोद निहित हैं, जो मानवीय

अभिप्रेरण के गुण-दोष का निरूपण करते हैं। इस वर्गीकरण का सविस्तर वर्णन आगे के परिच्छेदों में किया जाएगा।

शारीरिक अंतर्नोद (Physiological Drives) :

जैसा कि हमने देखा, शारीरिक अंतर्नोद तीन कारणों से उत्पत्ति हो सकती है। (१) उद्दीपन (Stimuli), (२) ऋत आवश्यकता (Tissueneed), (३) रक्त का हारमोन तत्त्व (Hormonal Substances)। कुछ स्थितियों में कोई अंतर्नोद इनमें से कई कारणों से भी उद्भूत होता है, और कुछ ऐसे भी हैं, जिनके कारण अबतक निश्चित नहीं हो पाए। हम जिन अंतर्नोदों पर विचार कर रहे हैं, वे प्रायः उपरोक्त तीनों श्रेणियों के ही अंतर्गत आते हैं।

समस्थिति (Homeostatic) :

शारीरिक अंतर्नोदों को समझने के लिए हमें 'समस्थिति' नामक संप्रत्यय (Concept) का अर्थ समझना आवश्यक है ( केनन, १९३२ ) यह अंतःस्थ शारीरिक स्थितियों को संतुलित रखने वाली प्रवृत्ति है। यह संतुलन मनुष्य के जीवित रहने के लिए आवश्यक है। शरीर का तापमान बहुत अधिक या बहुत कम नहीं होना चाहिए। रक्त-चाप के एक निश्चित सीमा से अधिक या कम नहीं होना चाहिए। रक्त न तो अधिक अम्लीय (Acidic) हो और न क्षारीय (Alkaline)। उसमें अधिक विषैली गैस (Carbon Dioxide) नहीं होनी चाहिए। उसे बहुत अधिक घना भी नहीं होने देना चाहिए। शक्कर की संतुलित मात्रा भी आवश्यक है। यदि उक्त द्रव्यों की मात्राओं में अति हो जाती है, तो व्यक्ति अस्वस्थ ही नहीं रहता, मर भी सकता है।

शारीरिक अनुसंधान है कि इन स्थितियों को सामान्य और संतुलित रखने में अनेक समस्थित-प्रक्रमों (Homeostatic Mechanisms) का योग रहता है ( केनन, १९३२ )। उदाहरण के लिए शरीर के तापमान पर विचार करें। एक व्यक्ति का सामान्य शरीर-तापमान ९८.६° है। साधारणतः इस बिंदु के आसपास तापमान रहता है; क्योंकि शरीर स्वतः अपने को गर्म या ठंडा कर सकता है। यदि किसी व्यक्ति के शरीर का तापमान बहुत अधिक होने लगता है, तब उसे स्वेदन होता है, और इस तरल द्रव्य का वाष्पीकरण (Evaporation) शरीर को शीतलता पहुँचाता हैं। यदि उसका तापमान कम होने लगता है, तो वह कंपित होकर उपायच्चयन (Metabolism) का सहयोग लेता है। कंपन से शारीरिक ईंधन (Feul of the body ) तीव्रतर होकर अतिरिक्त गर्मी उत्पन्न करती है।

अपने फर फैला अपनी त्वचा के निकट की वायु का निरोध कर अनेक जंतु अपने शरीर के ताप को कम होने से बचाते हैं। परंतु, अधिक शीत के कारण मनुष्य

के शरीर में जो चर्मांकुरण (Goose-pimples) हो जाते हैं, उन्हें यह समस्थित प्रक्रम नहीं रोक सकता।

शारीरिक प्रक्रम् समस्थित संतुलन को बनाए रखने की अनेक समस्याओं को सँभालने में समर्थ है। शरीर 'नियत व्यवहार' (Regulartory Behaviour) का भी प्रयोग करता है ( रीचटर, १९४३ )—यह वह व्यवहार है जिसके प्रभाव से आंतरिक शारीररिक स्थितियों को संतुलित किया जाता है। यह 'नियत व्यवहार' शारीरिक आवश्यकताओं की तृप्ति के लिए साधनभूत होता है। उदाहरणार्थ, जब शरीर में जल या भोजन का ह्रास (Depleted) होता है, तब वह उसे केवल शारीरिक प्रक्रम के आधार पर संतुलन नहीं रख सकता। उसे बाहर से अधिक जल और अधिक भोजन भी प्राप्त करना पड़ता है, जो अभिप्रेरित व्यवहार के द्वारा होता है। इससे प्रायः अधिक जल और अधिक भोजन उपलब्ध होता है, जिससे समस्थित संतुलन पुनः स्थापित हो जाता है। महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि शारीरिक अंतर्नोद शरीर की आंतरिक समस्थित संतुलन को बनाए रखने के लिए अधिक व्यापक और अपेक्षाकृत सामान्य शारीरिक प्रक्रम के ही अंग है।

अब हम कुछ महत्त्वपूर्ण शारीरिक अंतर्नोद पर विचार करें।

### ताप, शीत और पीड़ा (Warmth, Cold & Pain) :

ताप, शीत और पीड़ा ऐसे संवेदन हैं, जो विश्व से संबद्ध हमारे प्रत्यक्षीकरण में भाग लेते हैं, (अध्याय-१२ में उनका विवेचन किया गया है) इन्हें भी अंतर्नोद कहा जा सकता है; क्योंकि ये शक्तिशाली अंतर्नोद के रूप में व्यक्ति को संतोषजनक स्थिति के लिए सतत् प्रयत्नशील रख सकते हैं। पहले हम ताप और शीत पर विचार करेंगे और उसके बाद पीड़ा पर।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, ताप और शीत समस्थिति के शारीरिक प्रक्रम द्वारा अपनी सीमा में नियमित किए जाते हैं। जब शरीर अधिक उष्म होता है, तब स्वेदन तथा अन्य क्रियाएँ करता है, जिससे ताप का उत्पादन ही कम हो जाए, जब वह बहुत ठंडा होता है, तब ऐसी क्रियाएँ करता है, जिससे ताप का उत्पादन अधिक हो और उसकी क्षति यथासंभव कम हो। उसके अतिरिक्त व्यक्ति ऐसा व्यवहार कर सकता है, जिससे वह सुखद तापमान प्राप्त कर सके। जब बहुत गर्मी होती है, तब वह कपड़े उतार देता है। जब बहुत शीत होता है, तव वह अधिक वस्त्र धारण करता है। वह कमरे के तापमान को अधिक या कम करता है। कभी कमरे की खिड़कियाँ खोलता है, तो कभी बंद करता है, इत्यादि। अत्यंत ताप और शीत होने पर अपने आराम के लिए प्रयत्नों को बढ़ाता है। इसके उदाहरण इतने

सुपरिचित हैं कि उनका विवरण देने की आवश्यकता नहीं है। महत्त्वपूर्ण यही है कि ताप और शीत शारीरिक अंतर्नोदों में ही हैं।

मस्तिष्क के एक भाग में, जिसे अधश्चेतक (**Hypothalamus**) कहते हैं, शरीर के तापमान को नियमित करने का केंद्र है। अधश्चेतक अपेक्षाकृत एक छोटा भाग है, जिसकी स्थिति मस्तिष्क के नीचे और मुख के पिछले भाग के ठीक ऊपर है। संवेद ( Emotion ), पिपासा, क्षुधा, निद्रा और रति में या यों कहना चाहिए कि प्रायः सभी शारीरिक अभिप्रेरणों में इसका योग रहता है। संपूर्ण शरीर में रक्त के प्रवाह को तीव्र और मंद करके, इस केंद्र की रक्त के तापमान पर प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया होती है।

इसके अतिरिक्त शरीर की सतह पर काफी मात्रा में ताप और शीत के संग्राहक फैले हुए हैं। ये संग्राहक (Receptors) शरीर के तापमान के इतने अनुकूल होते हैं कि साधारण और सुखद स्थितियों में वे शांत रहते हैं। जब उनके चारों ओर का तापमान अधिक गरम या अधिक ठंडा होता है, तब ताप और शीत के भिन्न-भिन्न संग्राहक क्रियाशील हो जाते हैं। संग्राहकों से आवेग ( Impulses ) मस्तिष्क को हैं पहुँचते और तब वह कष्ट दूर करने की चेष्टाओं को उत्तेजित करता है।

अंतर्नोद के रूप में पीड़ा का शारीरिक प्रक्रम ताप और शीत के समान है, केवल पीड़ा की प्रतिक्रियाएँ कुछ अधिक विशिष्ट हैं। पीड़ा की इंद्रियाँ, जो संभवतः तंत्रिका (Nerve) के मुक्त छोर हैं, संपूर्ण त्वचा, रुधिर-वहिकाओं (Blood-vessels) और आंतरिक अंगों में व्यापक रूप से फैली हुई हैं। ये इंद्रियाँ साधारणतः शरीर के उत्तकों पर थोड़ा आघात होने से ही उद्दीप्त हो जाती हैं। व्यक्ति तब उद्दीपन को दूर करने का प्रयत्न करता है। यदि यह संभव नहीं होता, तो वह पीड़ा से मुक्त होने के अन्य उपाय सोचता है और ग्रहण करता है। पीड़ा दूर करने वाले कुछ स्वचालित प्रक्रमों (Automatic Mechanisms) से शरीर युक्त है। उदाहरणतः किसी अंग में अचानक पीड़ा होते ही व्यक्ति प्रतिवर्त्यात्मक (Reflexly) संचरण से उत्तेजक कारणों से इस अंग को दूर कर लेता है। उस पर उसे सोचना नहीं पड़ता। वह तत्काल और शीघ्रता से अंग खींच लेता है। कभी-कभी जब पीड़ा का कारण शरीर में भी गहन रूप से वर्त्तमान होता है, तब उससे शरीर को दूर कर सकना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में मनुष्य अनेक उपाय करके पीड़ा कम करने का प्रयत्न करता है। आधुनिक पीड़ा-निवारक औषधियाँ ऐसी पीड़ा में सबसे अधिक सहायक होती हैं। किंतु वे भी कभी-कभी असफल हो सकती हैं, या समय पर उपलब्ध नहीं होतीं। व्यक्ति तब अंगड़ाइया लेता है, पीड़ित अंग के उत्तकों को फैलाता है,

नीचे लेट जाता है, सोने का प्रयत्न करता है, हिलने-डुलने से बचता है अथवा अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने का प्रयत्न करता है। यदि ये सब उपाय व्यर्थ सिद्ध हों, तब वह अपनी पीड़ा में लीन होकर उसे मिटाने की निरंतर चेष्टा करता रहता है। यह पीड़ा एक ऐसा सशक्त अंतर्नोद है जो एक ही लक्ष्य, पीड़ा को कम करने के लिए तीव्र चेष्टा करने का बल देता है।

अब हम पिपासा, क्षुधा, निद्रा और रति पर विचार करेंगे। ये अंतर्नोद शरीरगत उत्तकों की आवश्यकताओं पर प्रधानत: निर्भर रहते हैं।

### पिपासा (Thirst) :

हमें निरंतर जल की आवश्यकता होती है; क्योंकि वह निरंतर त्वचा, श्वास और मूत्र के माध्यम से शरीर में कम होता रहता है। जल की इस आवश्यकता के संबंध में क्या कहा जाए, जिससे प्यास लगती है और जल के लिए अभिप्रेरण होता है। तीस वर्ष पूर्व कुछ शरीर-क्रिया-वैज्ञानिकों ने घोषणा की थी कि जब हमें पानी की आवश्यकता होती है, हमारा कंठ और मुँह सूखने लगता है और कंठगत कष्टकर संवेदन को दूर करने के लिए ही हम जल पीते हैं (केनन, १९३४)। परंतु, वास्तव में यह समस्या इतनी सहज नहीं है।

निश्चय ही कुछ व्यक्ति यह कहेंगे कि मुँह को आर्द्र करने के लिए वे जल-सेवन करते हैं। स्पष्टत: ही मुँह का सूखना और पिपासा दो भिन्न वस्तुएँ हैं। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति था, जिसके लार-ग्रंथियाँ (Salivary glands) नहीं थीं (स्टेग्रड, १९४१)। उसका मुँह हमेशा शुष्क रहता था और वह अक्सर मुँह को आर्द्र करने के लिए एक-एक घूँट पानी पीता रहता था। उसका मुँह सूखने पर भी इस तथ्य को ठीक प्रमाणित करने वाला सत्य नहीं था कि उसे कितनी प्यास लगती है। समय-समय पर वह पिपासा का अनुभव करता था। इसके अतिरिक्त भी वह सदा जैविक आवश्यकताओं (Biological-needs) को पूरा करने के लिए उचित मात्रा में जल पीता था। सामान्य व्यक्तियों के मुँह का शुष्क होना प्यास लगने का एक अच्छा लक्षण है, किंतु प्यास को उद्दीप्त करनेवाले अन्य कारकों का क्रियाशील होना भी आवश्यक है, और आवश्यक है कि वे कारक पिपासु की आवश्यकता को नियमित करने में सहायक हों। श्वास पर प्रयोग द्वारा इस तथ्य को स्पष्ट किया गया है (एडोल्फ, १९४१)।

"इस प्रयोग में बहुत सावधानी से कंठ की शल्य-चिकित्सा द्वारा प्रत्येक कुत्ते की ग्रासनली (गले से आमाशय तक की नली) काट दी गई और उसमें इस प्रकार छिद्र किए गए कि कुत्ता जो कुछ पीए, ऊपर के हिस्से के छिद्र से वह बाहर निकल

जाए, किंतु नीचे के हिस्से के छिद्र द्वारा खाना और पानी पेट में पहुँचा कर कुत्ते को जीवित रखा गया। जब कुत्ते को पानी दिया गया, तो उसने आवश्यकतानुसार पानी पिया और रुक गया। वह पानी शरीर में बिलकुल नहीं गया। इसके थोड़ी ही देर बाद उसने फिर पानी पिया और तदंतर जब तक उसके आमाशय में पानी नहीं पहुँचाया गया, वह निरंतर पीता रहा। यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है कि जैविक आव-श्यकता की वास्तविक पूर्ति पर अनिर्भर रहते हुए भी कुत्ते को पिये हुए जल की परिमात्रा का आभास था।"

चित्र ३.२ शरीर में जल की आनुपातिक कमी ही प्यास है।
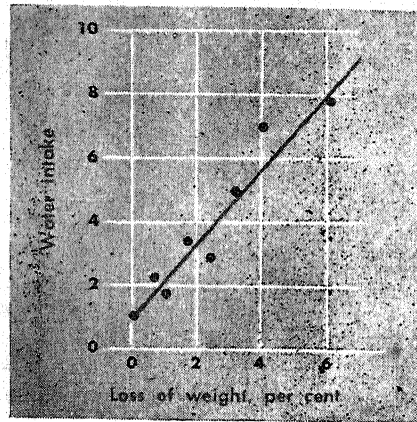
"प्रयोग का द्वितीय क्रम था कुत्ते के आमाशय में काफी मात्रा में सीधा जल पहुँचा कर उसकी जैविक आवश्यकता को तृप्त करने के तुरंत उपरांत उसे पीने के लिए जल देना। आमाशय भरने पर तुरंत जब उसने जल पिया, तब उस जल की मात्रा उतनी ही थी, जिसकी उसे आवश्यकता थी। उसके गले के छिद्र से प्रवाहित जल की मात्रा भी उतनी ही थी, जिसकी उसे आवश्यकता थी। ( द्रष्टव्य चित्र ३.२) किंतु, आमाशय में पानी भरने के १५ से ३० मिनटों के बाद जब उसे पीने के लिए पानी दिया गया, तब उसने बिलकुल नहीं पिया। इससे प्रमाणित होता है कि आमाशय में कुछ देर पानी रहने के बाद पिपासा तृप्त हो गई थी।"

आमाशय में पानी भरने से या भर पेट पानी पी लेने से किस प्रकार पिपासा तृप्त हो जाती है—यह हम निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते। सर्वोत्तम अनुमान हैं :—पानी की कमी होने पर शरीर की सब कोशिकाएँ पानी दे देती हैं। अधश्चेतक के केंद्र में, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, कुछ कोशिकाएँ हैं, जो पानी के अभाव के लिए विशेषतः संवेदनशील होती हैं ( वर्नी, १९४७ )। मस्तिष्क के अन्य भागों से संबद्ध होकर वे शरीर के लिए जल की अपेक्षित मात्रा को नियमित कर सकती हैं।

## क्षुधा ( Hunger ) :

जल की आवश्यकता के सदृश ही भोजन की आवश्यकता भी स्पष्ट है। शरीर सदा अपनी पुष्टि के लिए, उत्तकों को दृढ़ करने के लिए और संचित प्रदाय (Reserve supply) के लिए भोजन का उपयोग करता है। किंतु, महत्त्व की बात यह है कि हमारे शरीर को, हृदय की धड़कनों से लेकर मस्तिष्क की चिंतन-क्रियाओं तक के लिए ऊर्जा चाहिए। यह ऊर्जा भोजन के उपापचयन से ही अंततः प्राप्त होती है।

जब मनुष्यों को भोजन की आवश्यकता होती है, तब बहुधा वे 'भूख लगने' की बात कहते हैं। कुछ व्यक्तियों के लिए क्षुधा का अर्थ आमाशय में तीव्र समंचन का बोध होता है, अन्य व्यक्तियों को आमाशय में किसी प्रकार के विशेष समंचन की अनुभूति न होकर केवल दुर्बलता और सिर में हल्केपन का संवेदन होता है। कुछ व्यक्ति इन दोनों को एक साथ अनुभव करते हैं। शरीर-विज्ञानवेत्ता स्वर्गीय वाल्टर बी० केनन ( केनन, १९३४ ) ने निपुण प्रयोगों से प्रमाणित किया कि क्षुधा और आमाशय का समंचन परस्पर-संबद्ध है।

आमाशय के संकुचन से भूख का अनुभव होता है।
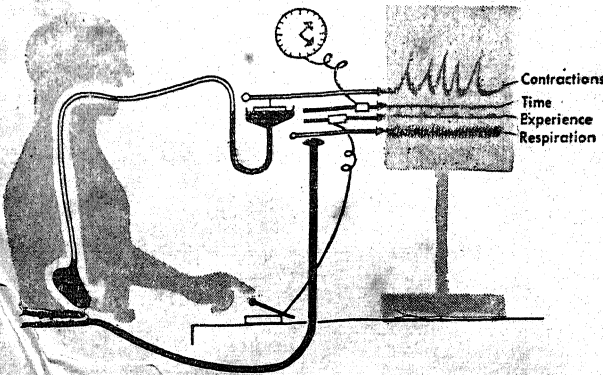
चित्र ३.३ केनन और उसके सहयोगियों ने कुछ व्यक्तियों को रबड़ का बेलून निगलने का अभ्यास करवाया और उसके छोर पर रबड़ की एक सूक्ष्म नलिका जोड़ दी। प्रयोक्ता ने बैलून में तब तक हवा भरी, जब तक वह सहजरूप से आमाशय में फैल नहीं गया। तदंतर उस नलिका के छोर पर तरंग-अभिलेखन-यंत्र बाँध दिया, जो आमाशय-समंचन से दबने वाले बेलून की हवा की गति को चिह्नित करने लगा।

विषयी साथ-साथ तारयंत्र ( टेलीग्राफ ) की कुंजी को दबाकर प्रत्येक बार क्षुधा-संवेदना भी दूसरी कलम से चिह्नित करता रहा। अतः, यह स्पष्ट करना सरल हो गया कि आमाशय की सिकुड़न और क्षुधाजन्य पीड़ा साथ-साथ होती हैं अथवा नहीं। वे एक साथ हुईं। इतना ही नहीं, ज्यों-ज्यों पिछला भोजन करने के पश्चात् समय व्यतीत होता गया, आमाशय का समंचन और क्षुधा-पीड़ा की मात्रा भी अनुपाततः बढ़ती गई। किंतु, आमाशय की सिकुड़न ही में बात समाप्त नहीं होती। सर्वप्रथम कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें आमाशय के आकुंचन की अनुभूति नहीं होती। किंतु, फिर भी वे क्षुधा का अनुभव करते हैं। द्वितीय और संभवतः अधिक विश्वस्त तथ्य उन लोगों से प्राप्त किए गए हैं, जिनका संपूर्ण आमाशय ही शल्य-चिकित्सा से बाहर निकाल दिया गया हो ( Wangensteen & Carison, 1931 )। उनके आमाशय का आकुंचन नहीं होता था, फिर भी उन्हें क्षुधा लगती है। यही बात उन चूहों के साथ भी है, जिनके आमाशय निकाल दिए गए हैं ( सांग, १९३८ )। ये जंतु बहुत उत्सुकता से भोजन करते हैं और भोजन का समय होने पर बेचैन हो जाते हैं एवं भोजन को प्राप्त करने के लिए सामान्य चूहों की तरह ये भी संधान करना सीख लेते हैं। अतः, बिना आमाशय या आमाशय की सिकुड़न के भी क्षुधा होती है, इसीलिए क्षुधा के स्पष्टीकरण के हेतु अन्य कारणों को देखना चाहिए। दुर्भाग्य से अन्य कारणों के स्वरूप का सम्यक् ज्ञान अभी हमें नहीं है। जब व्यक्ति क्षुधित होता है, तब शरीर में अनेक प्रकार के रासायनिक परिवर्त्तन होते हैं। निःसंदेह उनमें से कुछ, उसे समझने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इन रासायनिक परिवर्तनों के हेतु स्वरूप और प्रकार एवं उनकी क्रियाओं का अभी तक हमें साधारण ज्ञान है।

## विशिष्ट क्षुधाएँ ( Specific Hungers ) :

प्राणी केवल इसमें ही नियमितता नहीं लाता कि उसे कब और कितना खाना चाहिए, वरन् वह यह भी चुनाव करता है कि उसे क्या खाना चाहिए। अवसर देने पर पशु और मनुष्य अपना आहार-संतुलन कर लेते हैं, वे लगभग उसी आहार को लेते हैं, जिसकी उन्हें आवश्यकता होती है। ये हैं :—प्रोटीन, वसा ( Fat ) शर्करा ( Carbohydrates ) विटामिन और लवण पदार्थ ( Minerals )। अतः, प्राणी केवल क्षुधा से ही नहीं, वरन् विशिष्ट आहारों के लिए भी विशेष रूप से अभिप्रेरित होते हैं। वास्तव में इस पर प्रश्न उठाया गया है कि विविध खाद्य-पदार्थों के लिए विशिष्ट क्षुधाओं के योग से भिन्न कोई सामान्य क्षुधा (General Hunger) भी है क्या ? किंतु, अभी हम सामान्य क्षुधा और विशिष्ट क्षुधाओं के अंतर को स्पष्ट करके इस प्रश्न का साधिकार उत्तर देने में असमर्थ हैं।

विशिष्ट क्षुधाओं को स्पष्ट करने की सर्वोत्तम पद्धति कुछ ऐसे प्रयोगों का वर्णन है (डेबिस, १९२८), जिनमें मानव-शिशु को अपने आहार के चयन की सुविधा दी गई थी।

"प्रयोक्ता ने ६ माह से १२ माह की आयु के बच्चों को लिया और १२ से २० प्रकार के आहारों को भिन्न-भिन्न बड़े पात्रों में बच्चों के सामने रखा और उन्हें अपना आहार स्वयं चुनने दिया। शिशुओं ने पूरी अव्यवस्था कर दी। पर, अपना संतुलित भोजन करने की व्यवस्था वे कर सके। भोजन के समय कभी शिशु केवल मक्खन ही खाता या केवल सब्जी ही। कभी-कभी कई दिनों तक वह एक ही आहार लेता रहता। किंतु, कुछ ही दिनों में ये शिशु संतुलित आहार लेना सीख गए और भिन्न-भिन्न बर्तनों से अपना आहार चुनने लगे। आहार-विज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार पाले गए शिशुओं के सदृश्य ही इनकी स्वास्थ्य-वृद्धि हुई।"
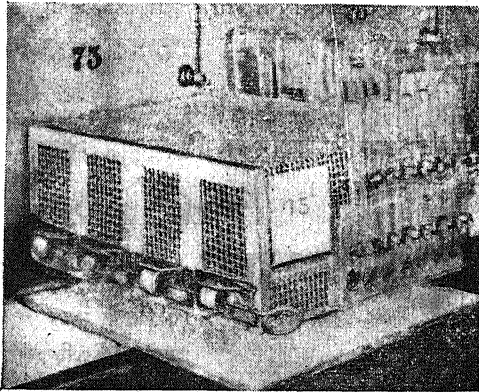
**चित्र ३·४—चहों में विशिष्ट क्षुधा के अध्ययनार्थ उपयोग किए गए संयंत्र। प्रत्येक नलिका में भोज्य-आहार का घोल रखा रहता है। चहे द्वारा चयन किए गए प्रत्येक आहार की मात्रा किसी भी समय नलिका पर लगे क्रमिक चिन्हों से पढ़ी जा सकती है।**

चूहों पर जो प्रयोग किए गए, उनसे भी यही परिणाम निकला ( पिलग्रिम, १९४७ )।

चूहों को भिन्न बर्तनों में भिन्न आहार दिए गए (देखिए चित्र ३.४)। परंतु, अनेक चूहे अपने आहार का उचित चयन कर सके और उन चूहों के समान ही या उनसे भी स्वस्थ उनका विकास हुआ, जिन्हें ठीक से आहार दिया जाता था। किंतु, एक तिहाई चूहे हितप्रद आहार का चयन करने में असफल रहे। इसका कारण दिए गए प्रोटीन को चूहे नहीं खा पाए थे। यदि उन्हें दूसरा प्रोटीन दिया जाता, तो वे प्रायः संतुलित आहार खाते और उनका सामान्य विकास होता।

ये प्रयोग स्पष्ट करते हैं कि जंतुओं और मनुष्यों का रचना-प्रक्रम इस प्रकार का है कि वे उसी आहार का चयन कर सकते हैं, जिसकी उन्हें आवश्यकता होती है। (द्रष्टव्य चित्र ३.४)

## आवश्यकता एवं खाद्य-सामग्रियों की पसंद :

नमक के अभाव वाला एक बच्चे का पृष्ठ १२०-१२१ पर दिया गया उदाहरण इसका भी अच्छा प्रमाण है कि विशेष आवश्यकता किस प्रकार विशिष्ट आहार को पसंद करने का कारण होती है। ऐसी आवश्यकता, प्रयोगार्थ चूहों की एडरनल ग्रंथियों को शल्य-चिकित्सा द्वारा निकाल कर उत्पन्न की जा सकती। (रीचर, १९३६) (इन ग्रंथियों का विवरण १९ वें अध्याय में दिया गया है) जब चूहों की एडरनल ग्रंथियाँ निकाल दी जाती हैं, तो जीवित रहने के लिए उन्हें अतिरिक्त नमक खाना आवश्यक हो जाता है और वे अधिक मात्रा में नमक खाते हैं। इसके लिए शुद्ध पानी न पीकर उसकी जगह अधिक नमकीन पानी पीकर अपने को जीवित रखते हैं। नमक की आवश्यकता के बढ़ने के साथ-साथ नमक को प्राप्त करने की प्रेरणा भी बढ़ती है। फलस्वरूप वे सामान्य और अनभिप्रेरित ( Unmotivated ) चूहों की अपेक्षा कहीं अधिक पेट भर नमक खाते हैं। (देखिए, चित्र ३.५)

नमक के प्रति रुचि अथवा अरूचि शरीर में स्थित नमक की मात्रा (कम अथवा अधिक) पर निर्भर करता है।
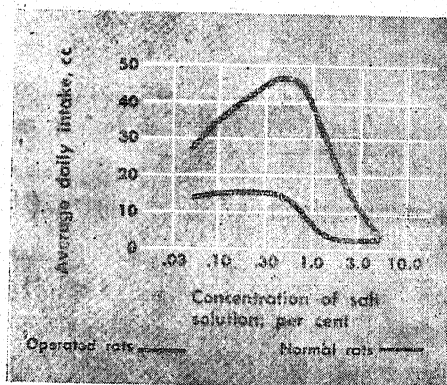
**चित्र ३.५ एडरनल ग्रंथियों के निकाल लेने पर चूहे नमक के प्रति विशेष रुचि दिखलाते हैं। शल्य-क्रिया के उपरांत जंतुओं ने नमकमिश्रित घोल तब तक खूब पिया, जब तक वे तृप्त न हो गए, जबकि सादा जल सदैव उपलब्ध था।**

शारीरिक आवश्यकता को पैदा करके अन्य विशिष्ट क्षुधाएँ भी उत्पन्न की जा सकती हैं (स्कॉट एवं वर्नी, १९४९)। उदाहरणार्थ, यदि आहार से सब विटामिन 'बी' निकाल दिया जाए, तो व्यक्ति में विटामिन बी के लिए तीव्र क्षुधा जाग्रत हो

जाएगी। गर्भावस्था में स्त्री को अधिक वसा, प्रोटीन और कुछ लवण की आवश्यकता होती है। अतः, उसमें ऐसे आहारों की तीव्र प्रेरणा होती है, जिनमें ये तत्त्व पाए जाते हैं। कभी-कभी यह अभिप्रेरण इतना तीव्र हो जाता है कि उसे विकृत लालसा समझा जाता है। गर्भिणियों के ऐसे असाधारण उदाहरण पाए जाते हैं, जो दीवारों का प्लास्तर या मिट्टी खाती हैं। यह संभवतः ऐसे लवणों को प्राप्त करने के लिए ही करती हैं, जिन्हें वे अपने सामान्य आहार में प्राप्त नहीं कर सकतीं।

विशिष्ट आहारों के प्रति विशिष्ट क्षुधाएँ उत्पन्न करने के अतिरिक्त विशिष्ट आहारों के प्रति अभिरुचिहीनता भी उत्पन्न की जा सकती है। जैसे गर्दन की थायरायड ग्रंथियों ( Thyroid Glands ) के ऊपर स्थित पैराथायरायड ग्रंथियाँ ऐसा हारमोन स्रावित करती हैं, जो शरीर के कैलशियम (Calcium) और फास्फोरस ( Phosphorus ) के स्तरों को नियंत्रित करता है।

जब पैराथायरायड ग्रंथियाँ शल्य-चिकित्सा से निकाल दी जाती हैं, तब कैलशियम का अनुपात कम हो जाता है और फास्फोरस बढ़ जाता है। इसलिए अधिक कैलशियम और कम फास्फोरस की आवश्यकता होने लगती है। यह बड़ा ही रोचक है कि वे जंतु, जिनकी पैराथायरायड ग्रंथियाँ निकाल दी जाती हैं, अति अभिरुचि से कैलशियम खाते हैं और उतनी ही विरक्ति से फास्फोरस छोड़ देते हैं।

कुछ क्षण पूर्व खाया गया आहार भी प्राणी द्वारा छोड़ दिया जाता है ( यंग, १९४४ )। यदि एक प्राणी की प्रोटीन की आवश्यकता तृप्त हो गई हो, तो वह प्रोटीन की ओर से विमुख हो जाता है, चाहें वह अभी काफी भूखा ही हो और उस समय वह वसा या शक्कर खाने के लिए प्रेरित होगा। अतः, विशिष्ट तृप्तियाँ (Specific Satiations) भी विशिष्ट क्षुधाओं के साथ वर्त्तमान हैं।

### आदत और आहार-रूचि (Habit and Food-preference) :

प्राणी अपनी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही आहार का चुनाव करते हैं, तब अनुचित (Inappropriate) आहार क्यों किया जाता है ? हम लोग सब ऐसे उदाहरणों से परिचित हैं। एक मधुमेह-रोगी (Diabetic-patient) जिसकी रक्त-शर्करा ( Blood-sugar) गंभीर स्थिति तक बढ़ गई हो, अधिक शक्कर खाकर अपनी स्थिति को और भी अधिक बिगाड़ता है। ऐसे व्यक्ति भी हैं, जो चीनी बहुत अभिरुचि से खाते हैं, प्रोटीन और वसा को छोड़ देते हैं, जिनके अभाव में स्वास्थ्य की हानि होती है।

हानिकर आहार को पसंद करने के दो कारण हैं। पशुओं और शिशुओं में आहार का स्व-चयन ( Self-selection ) दोषमुक्त नहीं होता। चूहों पर किए गए

प्रयोगों की चर्चा में यह स्पष्ट किया जाएगा कि अनेक चूहों ने उपयुक्त आहार का चयन नहीं किया और वे अपने स्वास्थ्य एवं विकास को ठीक नहीं रख सके। दूसरा कारण है कि बुरी आदत सीख ली जाती हैं और ये बुरी आदतें हमारे उपयुक्त आहार के चयन में बाधक होती हैं। जंतुओं पर किए गए अनेक प्रयोगों से यह तथ्य स्पष्ट होता है ( स्कॉट एवं वर्नी, १९४९ )।

"ऐसे एक प्रयोग में चूहों को विटामिन 'बी' से वंचित रखा गया। उन्हें ऐसा आहार चुनने का अवसर दिया गया, जिनमें एक विटामिन से युक्त था और दूसरा उससे मुक्त। उन्होंने विटामिनयुक्त आहार ही चुना। प्रयोक्ता ने इस विटामिनयुक्त आहार में कुछ **लिकोरिस** ( Licorice ) मिला दिया। साधारणतः चूहे इसे पसंद नहीं करते; क्योंकि उसमें बड़ी तीक्ष्ण सुगंध होती है। इस स्थिति का काफी अभ्यास करवाने के बाद चूहों के सामने दो प्रकार के आहार फिर रखे गए, एक था विटामिनमुक्त पर लिकोरिसयुक्त और दूसरा लिकोरिसमुक्त पर, विटामिनयुक्त। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि लिकोरिस का स्थान एक प्रकार के आहार से दूसरे में बदल दिया था। उस परिवर्तन से चूहे मूर्ख बन गए। अब उन्होंने विटामिनरहित भोजन को पसंद किया, यद्यपि उन्हें विटामिन की प्रचुर आवश्यकता थी। चूहों ने लिकोरिस की तीव्र गंध के साथ उस आहार को संबद्ध कर लिया, इसी के कारण वे लिकोरिसयुक्त गलत आहार के भ्रम में पड़ गए।"

उपर्युक्त प्रयोग में चूहों ने अंततः यह भी जान लिया कि लिकोरिस का परिवर्तन किया गया है। वे पुनः विटामिन-युक्त आहार का ही चयन करने लगे। इसमें महत्त्वपूर्ण यही है कि कुछ समय के लिए वे आदत के शिकार हो गए थे और आवश्यक आहार का चुनाव छोड़ विपरीत भोजन करने लगे। दैनिक जीवन में ऐसी सरल स्थितियाँ शायद ही कभी आती हैं। ऐसे अनेक अवसर आते हैं, जब लोग आदत के अनुकूल ही आहार पसंद करते हैं।

निद्रा :

निद्रा हर प्रकार से एक शारीरिक अंतर्नोद है, परंतु उसमें चेतन क्रियाशीलता ( Active Striving ) की अपेक्षा शरीर के अचेतन विश्राम का महत्त्व है। इसलिए हम निद्रा को शारीरिक आवश्यकता ही मानते हैं और उसकी तुलना जल या आहार-जैसी आवश्यकताओं से करते हैं। कभी-कभी ऐसा भी कोई व्यक्ति होता है, जो निद्रा की आवश्यकता पर विश्वास ही नहीं करता और निद्राहीन रहने का प्रयत्न करता है।

"उदाहरण, एक युवक की धारणा थी कि निद्रा एक बुरी आदत है, और उसे प्रामाणित करने के लिए उसने प्रतिज्ञा की, कि अनिश्चित काल

तक वह जागृत ही रहेगा। वह घड़ी के निकट बैठा रहा। इस प्रकार ७ दिनों तक और प्रत्येक दस मिनट के अंतर वह उसे पंच करता रहा। अंत में उसके जागरण की अवधि शेष हुई; क्योंकि वह लगभग पागल हो गया था। वास्तव में वह उस अवधि के भीतर भी अनेक बार कुछ समय के लिए बराबर सोता रहा था और अंतिम भाग में तो वह काफी देर तक सोता ही रहा। इस स्थिति पर वह विश्वास ही नहीं कर पाया कि वह सोता भी था। उसकी यही धारणा थी कि किसी रहस्यमय ढंग से घड़ी की सुई बढ़ जाती थी।"

निद्रा की आवश्यकता वास्तविक है। फिर भी-हम निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकते कि शरीर के किस तत्त्व के विनाश होने से या किन विशेष रसायनों से निद्रा आती है। वैज्ञानिकों ने जागृत कुत्तों में निद्रित कुत्तों का रुधिराधान ( Blood Transfusion ) किया, मगर उससे वे निद्रालु नहीं हुए ( Kleitman, 1939 )। सियामीज जुड़वाँ बच्चे ( Siamese Twins ) संयुक्त रक्तपरिभ्रमण के कारण भी एक ही समय नहीं सोते। कुछ मास तक जीवित रहने वाले द्विमुख बच्चे की सूचना के अनुसार, उनका एक मुख सोता था, तो दूसरा जागृत रहता था (चित्र ३·६) ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि रक्त की स्थिति से निद्रा का स्वतंत्र अस्तित्व था। हमें यह मानना चाहिए कि मस्तिष्क के किसी केंद्र द्वारा निद्रा नियंत्रित है। उन केंद्रों का विवरण २० वें अध्याय में आगे किया जाएगा। अभी हम केवल इतना ही कहना चाहेंगे कि निद्रा देने वाली शारीरिक अवस्थाओं का ज्ञान भी बहुत अल्प है।

**चित्र ३·६ एक दो सिर वाला बालक। एक सिर सोता है, जबकि दूसरा जगता है। यह इस तथ्य का संकेत करता है कि यह निद्रा मस्तिष्क द्वारा ( रक्त अथवा शारीरिक तत्त्वों की अपेक्षा ) नियंत्रित होती है।**

### काम ( Sex ) :

काम (रति) अभिप्रेरण एक अनुपम जैविक अभिप्रेरण है। यह एक शक्तिशाली प्रेरक है, किंतु किसी भी अर्थ में व्यक्ति अपने परिजीवन (Survival) के लिए इस पर निर्भर नहीं रहता। काम-अभिप्रेरण अद्वितीय है; क्योंकि अन्य जैविक

अभिप्रेरणों की अपेक्षा हमें इसके शारीरिक आधार का अधिक ज्ञान है। इसके संबंध में बहुत कुछ ज्ञान बाकी है—विशेष रूप से सामाजिक यौन-व्यवहार को जानना। आज अब हमें विभिन्न पशुओं के यौन-व्यवहार की और विभिन्न मानव-समाजों के यौन-व्यवहार को काफी अधिक सूचनाएँ प्राप्त हैं। यौन-व्यवहार को इन दो प्रमुख कारकों के आधार पर समझा जा सकता है—१. यौन-हारमोन और २. अर्जित आदत।

**यौन-हारमोन ( Sex-hormones ) :**

पुरुष के वृषणों और स्त्री के डिंबाशय से हारमोन स्रावित होता है। ये गौण यौन-विशेषताओं ( Secondary Sex Characterstics ) के विकास के लिए एवं नर-नारी के यौन-व्यवहार के लिए उत्तरदायी हैं। यौवनारंभ ( Puberty ) में जब यौन-ग्रंथियाँ परिपक्व होती हैं, तब उनके शरीर का आकार पुरुषोचित एवं स्त्रियोचित होने लगता है, केश-वितरण ( Hair Distribution ), कंठगत विशिष्टताओं ( Vocal Characteristics) और लैंगिक अंगों का विकास होता है। इसी समय पशुओं और मनुष्यों में भिन्न-लिंगीय ( Opposite Sex ) व्यक्तियों के प्रति आकर्षण तीव्रता से विकसित होता है। यदि ये ग्रंथियाँ ठीक से विकसित होने में असफल हो जाएँ या प्रयोगमात्र के लिए पशुओं से उन्हें निकाल दिया जाए, तो उनमें इस प्रकार के विशेष यौन-व्यवहार बहुत कम प्रकट होंगे।

एक बात स्पष्ट होनी चाहिए। यौन हारमोनों में विशेषतः मनुष्यों में कोई जादू नहीं होता। ये हारमोन ही अकेले यौन-व्यवहार के लिए उत्तरदायी न होकर केवल सहायक होते हैं। जब यौन-अभिप्रेरण दुर्बल हो, तो अतिरिक्त यौन-हारमोन भी सहायता न कर सकेंगे। यह सत्य नहीं है कि गलत यौन-हारमोनों के कारण समलिंगी कामुकता ( Homosexuality ) होती है। यदि किसी समलिंगी व्यक्ति को उसके जैव-लिंग के अनुकूल अतिरिक्त हारमोन भी दिए जाएँ, तो उसका प्रभाव यही होगा कि सुधार के स्थान पर समलिंगीय कामुकता की वृद्धि होगी (Beach, 1949)।

चूहे-जैसे छोटे जंतुओं ( Lower Animals ) में यौन-हारमोन चिंपांजी जैसे बड़े जंतुओं की अपेक्षा अधिक संकटपरक ( Crucial ) होते हैं (Beach, 1947 a)। चुहिया का डिंबाशय निकाल देने पर वह रतिकर्म कभी नहीं करेगी, जब तक कि पुनः इस व्यवहार को उत्पन्न करने के लिए कृत्रिम हारमोन न दिए जाएँ। चूहा अंडोच्छेदन (Castration) के बाद भी कुछ समय तक रतिकर्म कर सकता है, किंतु उसके बाद बिना यौन-हारमोनों की सहायता के वह यौन-अभिप्रेरण में असमर्थ हो जाता है। तुलनात्मक दृष्टि से मनुष्य की कहानी इतनी सरल नहीं है। स्त्री और पुरुष दोनों में अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिनमें यौन-ग्रंथियों को निकाल देने से यौन-

अभिप्रेरण समाप्त हो जाता है। इसके विपरीत ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं, जिनमें अंडोच्छेदन या डिंबाशयोच्छेदन (Ovariectomy) का यौन-अभिप्रेरण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। यह स्थिति और भी जटिल प्रकट होती है, जब स्त्रियों में यौन-प्रशीतन (Frigidity) और पुरुष में नपुंसकता (Impotency) के होने पर भी उनमें यौन-हारमोन की पूर्णतः सामान्य संप्राप्ति (Supply) होती है। जो सूचनाएँ बानरों और चिपांजियों की प्राप्त हुई है, वे स्पष्ट करती हैं कि उच्चतर प्राणी (Higher Animals) वास्तव में यौन-हारमोनों पर बहुत अवलंबित नहीं रहते। इन जातियों के नरों का अंडोच्छेदन किया जा सकता है और उसका विशेष प्रभाव यौन-प्रेरणा पर नहीं पड़ता। यह स्पष्ट है कि मादा-बानर तथा मादा-चिपांजी में यौन-हारमोन की बहुत कम संप्राप्ति होने पर भी यौन-प्रेरणा प्रकट होती है। यह निम्नजातीय मादाओं के लिए नहीं है, पर स्त्री के लिए यह सत्य है। अतः, शारीरिक यौन-विकास और यौन-अभिप्रेरण के लिए यौन-हारमोनों का महत्त्व निर्विवाद है। निम्नतर जातीय प्राणियों के यौन-व्यवहार में उनका महत्त्व उच्चतर-जातीय प्राणियों की अपेक्षा अधिक होता है।

## आदत और यौन-अभिप्रेरण :

मनुष्य और बानर-जैसे उच्चतर प्राणियों में हारमानों का आदत और अनुभव से कम महत्त्व होता है। इसे चूहे और वानर की तुलना करके स्पष्ट किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, एकांत में पाले गए चूहे, प्रथम अवसर देने पर ही प्रकृतविधि से मैथुन करते हैं। चूहा संवेदनात्मक परिस्थितियों से घबरा जाता है, किंतु चुहिया बहुत उत्पातपूर्ण वातावरण के अतिरिक्त अन्य सभी परिस्थितियों में निश्चिंत रहती है।

बानरों और चिपांजियों की कथा भिन्न है (Yerkes, 1943)। इन जातियों के नरों को अनुभवी मादाओं से मैथुन सीखना पड़ता है। दूसरी ओर मादा चिपांजी अलैंगिक क्रियाओं (Non-Sexual Functions) में भी यौन-व्यवहार का प्रयोग करना सीखती हैं। वे बहुधा भोजन प्राप्त करने में बहुत बड़े और लंबे नर से भी आगे रहती हैं; क्योंकि अपने को समर्पण के लिए प्रस्तुत कर वे जब नर का ध्यान अपनी ओर केंद्रित करती हैं, तब इसी बीच में वे भोजन पर हाथ साफ कर लेती हैं।

अध्ययन से यह स्पष्ट है कि मानव-समाज के यौन-आचरण में सामाजिक स्तर के अनुसार बहुत भिन्नता होती है। उदाहरणार्थ किंसे (Kinsey, 1948) ने प्रमाणित किया है कि विवाह-पूर्व (Pre-Marital) मैथुन का अभ्यास सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से निम्नस्तरीय जातियों में उच्च स्तरीय लोगों की अपेक्षा अधिक है। हस्तमैथुन (Masturbation) का प्रचलन इसके विपरीत है। विविध संस्कृतियों

के अध्ययन ने यह भी प्रमाणित किया है कि कुछ समाजों में किशोरों को समलिंगीय मैथुन के लिए बहुत उत्साहित किया जाता है। दूसरे समाजों में अमरीकी समाज से भी कहीं अधिक समलिंगीय कामुकता का घोर विरोध किया जाता है। ( Ford and Beach, 1951)।

मानवीय तथा उच्चतर प्राणियों के यौन-व्यवहार में निम्नतर जंतुओं की अपेक्षा आदत का महत्त्व बहुत अधिक होता है। यौन-हारमोन की अनुपस्थिति में भी आदत के कारण कामुकता (यौन-भावना) का अस्तित्व रह सकता है। मानव के यौन-अभिप्रेरणों की अभिव्यक्ति का तथा रुचिप्रद मैथुन की विधियों का निर्धारण प्रायः आदतें ही करती हैं।

## मातृक प्रेरणा (Maternal Drive ) :

द्वितीय अध्याय में चूहे जैसे कुछ प्राणियों के मातृक व्यवहार को 'सहज-प्रवृत्तिजन्य व्यवहार' कहा गया है, यह व्यवहार का अनधिगत ( Unlearned ) प्रतिरूप है और उसकी जातिगत विशेषता है। मातृक व्यवहार, यौन-व्यवहार के

**चित्र ३·७ सहज मातृक व्यवहार। यह एक नवजात 'गौर' है, पूर्वी भारतीय नस्ल का एक जंगली पशु : अपनी माता की सहज ममता की छाँव में।**

समान, शारीरिक अंतर्नोद द्वारा उत्पन्न एक अभिप्रेरित व्यवहार ( Motivated Behaviour ) है। वास्तव में, सहज-प्रवृत्तिजन्य व्यवहार अपने प्राकृत रूप में अभिप्रेरित व्यवहार ही होता है, जिसका संबंध किसी तदृश अंतर्नोद से होता है (देखिए ऊपर, चित्र ३.७ )।

मातृक प्रेरणा का मूल, गर्भावस्था में एवं उसके कुछ समय बाद तक स्रावित हारमोनों के मिश्रण में है। इसमें एक महत्त्वपूर्ण हारमोन प्रोलैक्टिन (Prolactin) है, जो पिट्युटरी ग्रंथि (Pituitary gland) से स्रावित होता है। यह ग्रंथि अधश्चेतक से निकट संबंधित है और अनेक शारीरिक प्रक्रियाओं को नियमित करने में भी इसका हाथ है—विशेषतः यौन और मातृत्व में। गर्भाशय में गर्भ की उपस्थिति से उद्दीप्त हो प्रोलैक्टिन स्रावित होता है। प्रोलैक्टिन दुग्ध-ग्रंथियों (Mammary glands) को उद्दीप्त करता है, जो शिशु के पोषण में सहायक होती हैं। पर, ये मातृक व्यवहार के लिए भी महत्त्वपूर्ण हैं। यदि यह हारमोन कुमारी चुहिया को दिया जाए, तो वे प्रकृत माताओं के ही समान दूसरों के बच्चों का पालन-पोषण करेंगी (Riddle et. al., 1935)।

## सामान्य प्रेरणाएँ (General Drives) :

यदि हम अपने चतुर्दिक वयस्कों, बच्चों और पशुओं के दैनिक व्यवहार को देखें, तो हम इससे भिन्न संभवतः नहीं सोच सकेंगे कि दैनिक व्यवहार शारीरिक प्रेरणाओं से अपेक्षाकृत बहुत कम अभिप्रेरित होता है। यह ठीक है, कि लोग कहते हैं, कि वे अपने और अपने परिवार के भोजन तथा आराम के लिए कार्य करते हैं, अर्थात् वे कहना चाहते हैं कि शारीरिक प्रेरणाओं की संतुष्टि के लिए वे कार्य करते हैं। परंतु, यह केवल कहने का ढंग है। वस्तुतः उनके अनेक कार्यों को इस आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

उस समय पर विचार कीजिए जिसे लोग समाचारपत्रों, पुस्तकों, टेलीविजन, खेलों, खेल-कूदों, प्रपात, पर्वत और रुचिकर स्थलों को केवल देखने में व्यतीत करते हैं। उन सब क्रियाओं (Activities) पर विचार कीजिए जो खेल खेलने, बर्फ पर चलने, नाव चलाने, घूमने, शिकार खेलने और भ्रमण करने में होती हैं। इनमें से स्पष्ट रूप से अधिकांश शारीरिक अंतर्नोदों से संबद्ध नहीं किए जा सकते। बिल्ली के बच्चे का खेलना और मानव-बालकों का कोलाहलपूर्ण खेल-खेलना और चिल्लाना भी इस आधार पर स्पष्ट नहीं किया जा सकता।

किसी शारीरिक आधार के अभाव के बावजूद कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इन अंतर्नोदों का आधार खोजने का प्रयत्न किया है। कुछ उदाहरणों में उन्हें सफलता भी मिली है। इसके अतिरिक्त वे यह भी प्रमाणित कर सकते हैं कि अनेक जटिल सामाजिक एवं शारीरिक अभिप्रेरणाएँ भी वस्तुतः मूल-प्रेरणाओं पर आश्रित हैं। इनके विषय में इसी अध्याय में आगे लिखा जाएगा। इसके और भी प्रमाण मिल रहे हैं कि कुछ मूल अनधिगत प्रेरणाओं का अस्तित्व है, जो शारीरिक प्रेरणाओं से भिन्न है,

पिछले परिच्छेद में उनका उल्लेख हो चुका है। जब तक ऐसी प्रेरणाओं के लिए कोई एक संतोषजनक शब्द निश्चित नहीं किया जा सका है। अतः, हम इन्हें समझने के लिए सामान्य प्रेरणाएँ कहेंगे। क्रिया-व्यापार, प्रत्यक्ष दर्शन, किसी वस्तु के संबंध में अनुसंधान, और किसी वस्तु को जोड़-तोड़ करना आदि व्यक्तियों एवं वस्तुओं से संबंध स्थापित करने वाली प्रेरणाएँ हैं। इन्हीं के अंतर्गत भय भी है। इनमें से कुछ का संबंध शारीरिक प्रेरणाओं से है और कुछ का नहीं। ये सभी मूल अनधिगत प्रेरणाएँ प्रतीत होती हैं और सामान्य व्यवहार में इनका योग महत्त्वपूर्ण रहता है।

**क्रिया-व्यापार (Activity) :**

सभी प्राणियों में विद्यमान रहने वाले अंतर्नोदों में एक अनिवार्य अंतर्नोद शारीरिक क्रिया-व्यापार है। केवल क्रिया-व्यापार की प्रेरणा को तृप्त करने के लिए मनुष्य और पशु दोनों ही अकारण बहुत-सा समय इधर-उधर घूमने में व्यतीत करते हैं। ऊपर से देखने में धोखा खाने की आशंका है; क्योंकि क्रिया-व्यापार कभी-कभी शारीरिक प्रेरणा की उपस्थिति से भी किया जा सकता है, जैसा कि अभी एक उदाहरण में हम देखेंगे।

पशुओं में शारीरिक प्रेरणा की अनुपस्थिति क्रिया-व्यापार को और बढ़ा देती है। सामान्यतः जब पशु (या मनुष्य) भूख, प्यास या शारीरिक आवश्यकता अनुभव करता है, वह अधिक क्रियाशील हो जाता है। वह भागता है, इधर-उधर चलता है, तीव्र श्वास-प्रश्वास लेता है या वातारवण का संधान करता है। क्रिया-व्यापार के इन परिवर्तनों का जो शारीरिक प्रेरणा से संपृक्त होते हैं, काफी अध्ययन हुआ है ( रीड, १९४७ )।

> "एक प्रविधि (Technique) यह है कि एक जानवर को ऐसे पिंजरे में बंद किया जाए, जो जानवर के चलने के साथ घूमे। पिंजरे के एक ओर एक यंत्र लगा दिया जाए, जो नियमित समय में लगाए गए चक्करों की गणना अंकित करता रहे। ( चित्र ३.८ : पृष्ठ १३९ ) में दौड़ने की क्रिया ( Running activity ) का अंकन किया गया है, जो एक चुहिया की तीव्र यौन-आवश्यकता (गर्मी) की प्रारंभिक स्थिति, बीच की स्थिति और बाद की स्थिति को प्रकट करता है। लिप्सा की अत्यधिक स्थिति में चुहिया सैकड़ों या हजारों चक्कर एक दिन में लगाती है, किंतु लिप्सा की मध्यस्थिति में क्रियाशीलता काफी कम हो जाती है। जब चुहिया १२२ दिन की हो जाती है, तो डिंबाशय-उच्छेदन द्वारा उसकी यौन-ग्रंथियाँ निकाल दी गई और उसका यौन-चक्र समाप्त हो गया। उसके बाद उसका यह व्यापार सदा

के लिए बहुत कम हो गया। प्यास और भूख जैसी प्रेरणाओं के संबंध में भी ऐसे अंकन प्राप्त किए गए हैं। जब तक प्राणी का स्वास्थ्य अच्छा होता है, तब तक शारीरिक प्रेरणा की उपस्थिति क्रिया को तीव्रतर कर देती है।"

यौन-ऊष्मा में मादा-पशु प्रायः विशेष सक्रिय दीखते हैं।
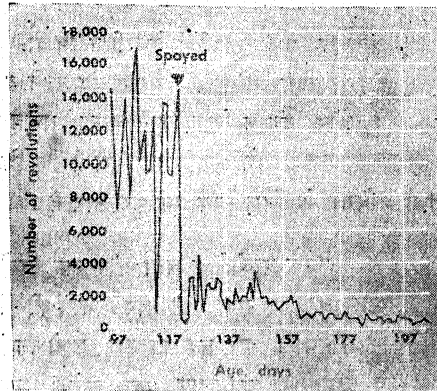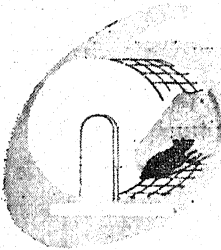
**चित्र ३·८—गतिविधि एवं यौन-अभिप्रेरण। यौन-ऊष्मा का अनुभव होने पर चुहिया बार-बार अपनी दुम उठा लिया करती है और ऐसा प्रायः प्रत्येक चार रोज पर देखा जाता है। बध्यकरण करके यौन-ग्रंथि निकाल लेने पर यह गतिविधि बहुत कम रह जाती है।**

कार्य-व्यापार का उद्गम संवेदीय उत्तेजना ( Sensary Stimulation) से भी है (Hill, 1956) प्रकाश, भोंपू या अन्य तीव्र उद्दीपन प्रायः प्राणी को अधिक क्रियाशील होने के लिए उत्तेजित करते हैं। कुछ दूर तक इसका कारण स्पष्ट है, उद्दीपन विक्षुब्ध करने वाला और व्यवधान डालने वाला है। दूसरी ओर आवश्यक नहीं कि उत्तेजना विक्षुब्ध करने वाली ही हो, यह केवल अनूठी प्राणी में रुचि और जिज्ञासा उप्पन्न करने वाली भी हो सकती है। ऐसी जिज्ञासा स्वयं एक अंतर्नोद है। अगले परिच्छेद में उसका विवरण दिया जाएगा।

अंत में, हम इस प्रश्न पर आते हैं कि क्या क्रिया-व्यापार निरपेक्ष क्रिया-व्यापार किसी शारीरिक या संवेदी उत्तेजना के बिना भी एक अंतर्नोद हैं? प्रमाण इसे सिद्ध करते हैं। इस निर्णय के लिए एक और प्रमाण यह है कि क्रिया-व्यापार को रोका जा सकता है, इसे समाप्त किया जा सकता है ( Hill. 1956 )।

"चूहों के कुछ समूह छोटे-छोटे पिंजरों में बंद किए गए, जहाँ उनके खड़े होने और लेटने की काफी जगह थी, पर घूमने के लिए जगह न थी। एक समूह को ५ घंटे, दूसरे को २४ घंटे और तीसरे को ४६½ घंटे तक बंद रखा। एक नियंत्रित समूह को बिलकुल बंद नहीं रखा गया। बंद रखने के बाद प्रायोगिक चूहे क्रिया-परिमापक चक्र पर रखे गए और डेढ़ घंटे तक उनके क्रिया-व्यापार का परिमापन किया गया। बंद रहने के समय के अनुसार इस काल में परिमापित क्रिया-व्यापार की मात्रा में भी अंतर प्रकट हुआ। सबसे अधिक समय तक बंद रहने वाले चूहे सबसे अधिक क्रियाशील थे, और बंद न किए जाने वाला समूह सबसे कम क्रियाशील था।"

एक अन्य प्रमाण भी सिद्ध करता है कि क्रिया-व्यापार स्वयं भी एक अंतर्नोद है तथा अधिगम के लिए स्वयं एक पुरस्कार है।

"एक प्रायोगिक चूहा और एक प्रयोगनियंत्रित चूहा दोनों को गतिशील चक्र पर रखा गया और दोनों की क्रियाओं का साथ-साथ अध्ययन किया गया। हर चूहे को एक उत्तोलनदंड दिया गया, जिसे प्रेक्षणकाल में वे अपनी इच्छानुसार दबा सकें। प्रयोगनियंत्रित चूहे का उत्तोलनदंड दबाने पर दबान के चिह्न के अतिरिक्त और कुछ रिकार्ड नहीं किया गया। दूसरी ओर प्रायोगिक चूहे ने उत्तोलनदंड चक्कर के ब्रेकों को ढीला कर दिया, जिससे वह भाग सकें। इस प्रकार तीस सेकेंड के अंत में ब्रेक पुनः तब तक लगे रहे, जब तक कि प्रायोगिक चूहे ने पुनः उत्तोलनदंड को दबाया नहीं।

इस प्रायोगिक योजना में दोनों चूहों को अपने-अपने चक्करों पर दौड़ने का समान अवसर मिला था। प्रायोगिक चूहे के लिए दौड़ का अवसर उत्तोलनदंड के कारण एक पुरस्कार हो सका। क्या यह पुरस्कार था? प्रायोगिक चूहा उत्तोलनदंड को सोद्देश्य अधिक दबाता, प्रयोगनियंत्रित चूहे की अपेक्षा कभी-कभी दो-तीन बार अधिक दबाता। तब ऐसा प्रकट होता है कि चक्कर में दौड़ना स्वयं एक ऐसा पुरस्कार है जो क्रिया-व्यापार के अंतर्नोद को तृप्त करता है।"

### भय (Fear) :

पर्यावरण की प्रतिक्रिया के रूप में भय का विवेचन दूसरे अध्याय में किया गया है। यहाँ हमें अंतर्नोद के रूप में भय पर विचार करना चाहिए। व्यवहार को अभिप्रेरित (Motivate) करने के कारण यह भी एक अंतर्नोद है। भय प्रदत्त

परिस्थिति या वस्तु से बचने के लिए प्रेरित करता है। दूसरे शब्दों में यह 'अकरणरूप लक्ष्य' (Negative Goal) के लिए प्रेरित करता है। जैसा हम देखेंगे, भय इतनी प्रबल अंतर्नोद है कि यह अन्य अंतर्नोदों की तृप्ति में भी व्यवधान उपस्थित कर सकती है।

हम भय की उपस्थिति के विषय में सदा नहीं बता सकते। विशेषत: परिष्कृत (Sophisicrated) प्राणियों में; क्योंकि उसे छिपाना उन्होंने सीख लिया है। भय का संकेत देने वाले दो सामान्य चिह्न हैं—(i) विनिवर्तित प्रतिक्रिया (Withdrawal Response)—उस स्थिति से दूर हटने या बचने की चेष्टा करना। (ii) वाह्य संवेगात्मक प्रतिकिया (Overemotional Response)—जैसे मलोत्सर्जन, मूत्रोत्सर्जन, चिल्लाना। अतः, इनका प्रयोग संवेगात्मक व्यवहार के वस्तुगत मापक के रूप में हो सकता है।

अनेक भय अर्जित हैं। किंतु, कुछ अनधिगत भी प्रतीत होते हैं, ये व्यक्ति में स्थितिविशेष की प्रतिकिया के रूप में प्रकट होते हैं। सामान्यतः उन परिस्थितियों के अंतर्गत, जो पशुओं और बच्चों में अनधिगत भय को उत्तेजित करती हैं, विचित्र ध्वनि, विचित्र दृश्य या विचित्र वस्तु होती हैं। दो वर्ष की आयु से कम के शिशु विचित्र वस्तु या तेज आवाज सुनकर भय प्रदर्शित करने लगते हैं। शिशु-चिंपांजी भी ऐसे ही भय प्रदर्शित करते हैं. जब वे पहली बार कोई नई वस्तु देखते हैं, यहाँ तक कि नए आदमी के चेहरे को देखकर भी चूहे भी भयमीत होते हैं। जब उन्हें अपरिचित पिंजरों में, विशेषत: यदि वे अपेक्षाकृत बड़े हों, रखा जाए, तो वे भयभीत होते हैं और उनका भय मूत्र एवं मलोत्सर्जन के रूप में प्रकट होता है। अतः, हम कह सकते हैं कि बच्चों और सरल प्राणियों में अपरिचित और विचित्र परिस्थिति भय उत्पन्न करने का प्रमुख कारण है।

अब जब हम कौतूहल (Curiosity) और समन्वेषी (Exploratory) प्रेक्षणों पर विचार करेंगे, तो हमें उक्त तथ्य को स्मरण रखना चाहिए।

### कौतूहल (Curiosity) :

कई वर्ष पूर्व इस तथ्य की खोज हो गई थी कि बक्स में रहने वाले चूहे के लिए तीव्र प्रकाश अंतर्नोद के गुणों से संपन्न है। यदि वस्तुओं को इस प्रकार सँजोया जाए कि सिर पर आलोकित प्रकाश-बक्स में उत्तोलनदंड को दबाकर बंद किया जा सके, तो चूहा उत्तोलनदंड को दबाना सीख लेता है। अतः, इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि चूहे को प्रकाश विक्षुब्ध करता है। संभवतः प्रकाश उसमें भय उत्पन्न करता है। संप्रति यह प्रदर्शित किया गया है कि प्राणियों (इस उदाहरण में चूहे, किंतु यह मानने का कोई कारण नहीं है कि इससे कोई अंतर यहाँ पड़ा है) को इसी

तरह बहुत जल्दी प्रकाश जलाना भी सिखाया जा सकता है (Kish, 1955)। वास्तव में, उन्हें उत्तोलनदंड दबा कर कोई भी नवीन उत्तेजना-क्रिया, जैसे स्विच को चलाना, अस्तबल के कोलाहल या प्लेटफार्म के शोरगुल से परिचित होना, सिखाया जा सकता है। कभी-कभी अभ्यास के लिए समय की आवश्यकता होती है। वह समय, जिसमें प्राणी परिस्थिति से परिचित और भय पर विजय लाभ करता है, तदंतर ही नई उत्तेजना लाभप्रद सिद्ध होती है।

नवीन उद्दीपन के प्रति रोचकता का यह भाव 'कौतूहल-अंतर्नोद' (Curiosity Drive) कहलाता है। पशुओं के साथ किए गए अनेक प्रयोगों तथा कभी-कभी बच्चों एवं वयस्कों के साथ किए गए प्रयोगों के प्रेक्षणों द्वारा यह निर्दशित किया जाता है। चूहे नवीन भूलभुलैया, नए स्थान और अपने पर्यावरण में नई वस्तु की खोज करते हैं। कुत्ते, बानर और बच्चे अपने निकट नई वस्तु देखने पर उलट-पलट कर उसकी छानबीन करते हैं। पशुओं के लिए खोज का अवसर पाना लाभदायक होता है। इससे वे उत्तोलनदंड चलाना, संकीर्ण पथों में दौड़ना और खोज करने के लिए अन्य तदृश कार्य करेंगे एवं बहुत शीघ्र उन्हें सीख लेंगे। अन्य प्रेरणाओं के समान कौतूहल-वृत्ति (अंतर्नोद) भी तृप्त की जा सकती है। हम देखते हैं कि नई वस्तु या नई स्थिति को समझने में कुछ समय व्यतीत कर लेने पर उनके संबंध में रुचि कम हो जाती है।

निम्नांकित प्रयोग (Welker—1956) कौतूहल-वृत्ति को प्रदर्शित करता है :—

> "चिपांजियों को एक के बाद एक नई वस्तुएँ दी गईं। भिन्न आकारों के लकड़ी के टुकड़े, घुमाई जा सकने वाली लंबी छड़ियाँ, ऐसी बत्ती, जिसे जलाया और बुझाया जा सके और इसी प्रकार की कुछ अन्य वस्तुएँ। हर चिंपाजी ने कितना समय हर वस्तु को उलट-पलट कर देखने में लगाया। इसे रिकार्ड करने पर पता चला कि यह समय पाँच सेकेंड था। वस्तुओं का हर समूह प्रतिदिन मिनट के लिए लगातार कई दिनों तक उन्हें दिया गया। जब प्रयोग समाप्त हो गया, तब समय की गणना की गई, जिसे वस्तुओं के हर समूह को उलटने पलटने और निरीक्षण में चिंपाजी ने व्यतीत किया था। यह स्पष्ट हो गया कि प्रारंभ में रुचि की मात्रा अधिकतम रही और बाद के मिनटों में वह निरंतर कम होती रही (देखिए चित्र, ३.९)। जब वस्तु को दूसरे दिन दुबारा दिया गया, तब रुचि पुनः उद्दीप्त हुई। पर, प्रथम दिन की रुचि के समान तीव्र नहीं। धीरे-धीरे यह मात्रा भी न्यून होती गई।"

ठीक यही स्थिति बच्चों को खिलौने देने पर होती है। खिलौनों की नवीनता प्रारंभ में रुचि को खूब तीव्र करती है, किंतु यह नवीनता धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है। सभी अभिप्रेरणाओं की तृप्ति का यही रूप हैं। जानवरों पर किए गए प्रयोग

यह प्रमाणित करते हैं कि शारीरिक अंतर्नोद के समान कौतूहल-प्रेरणा भी अनधिगत है और वह वंचित करने पर तीव्र तथा तृप्ति के साथ क्षीण होती रहती है।

चिंपांजी नए बिंबों अथवा पदार्थों के साथ हस्त-प्रयोग करना पसंद करते हैं, किंतु शीघ्र ही उनमें उनकी रुचि नहीं रह जाती।
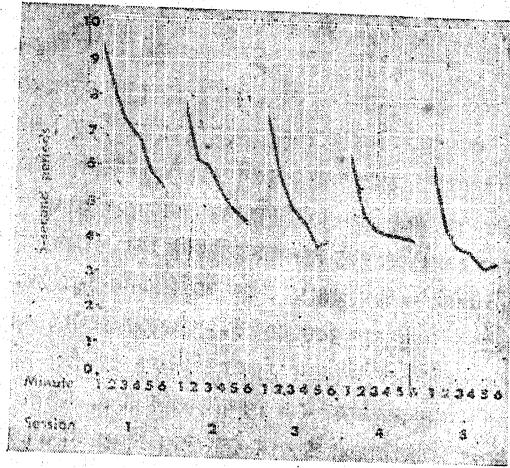
**चित्र ३.९ चिंपांजियों में हस्तादि-प्रयोगी अंतर्नोद। इस चित्र में यह दिखलाया गया है कि एक चिंपांजी ने छह सेकेंड में से पाँच सेकेंड की अवधि में (प्रतिदिन) नए बिंबों के प्रति कुछ प्रतिचेष्टाएँ कीं। यहाँ यह ध्यातव्य है कि प्रारंभ काल में रुचि उच्चतम है और बाद में क्षीण।**

### हस्तादि-प्रयोगी अंतर्नोद (Manipulative Drives) :

यह बताना यदि असंभव नहीं है, किंतु कठिन अवश्य है कि नई स्थिति की छानबीन और अनुभूत स्थिति में क्या अंतर है। अभिप्राय यह है कि अभी तक हम यह निर्धारित नहीं कर पाए हैं कि विभिन्न अंतर्नोद, एक ओर अपने पर्यावरण को मात्र देखने या अनुभव करने में संलग्न है अथवा दूसरी ओर वे उसके हस्तादि-प्रयोग में भी। अतः, यह कह सकना संभव नहीं है कि क्या कौतूहल और खोज करने की अभिप्रेरणाओं से भिन्न कोई हस्तादि-प्रयोग अंतर्नोद भी है। हमने ऐसे प्रयोग किए हैं, जिनसे प्रमाणित हुआ है कि वस्तु को हस्तादि-प्रयोग की प्रेरणा कौतूहल के ही समान, सबल है और अधिगम के लिए वह अभिप्रेरित करती है। निम्नांकित एक उदाहरण देखिए (Harlow & Maclenrn 1954)।

"तीन बंदरों पर अधिगम के लिए सात प्रयोग किए गए। एक बोर्ड में दो पेंच लगा दी गई, पेंच की आँखें बंदर के सामने रखी गई। एक पेंच अपनी जगह से हटाई जा सकती थी और दूसरी नहीं। हर पेंच की आँख भिन्न रंग की थी। उदाहरणार्थ, पहले प्रयोग में लाल आँख वाली पेंच हटायी जा सकती थी, हरी आँख वाली नहीं। क्रमागत प्रयोगों में रंगों के युग्म इस प्रकार थे—भूरा-पीला, गुलाबी-नीला, काला-नारंगी, श्वेत-लाल, हल्का बैंगनी-मोतिया और हल्का, हरा गदरा, नीला। प्रत्येक प्रयोग में प्रथम लिखित रंग हटाया जा सकता था। बंदर ने दूसरे को हटाने या प्रयत्न किए बिना ही हटाए जाने वाले रंग को हटा कर पूर्ण अंक प्राप्त किए। बंदर को पुरस्कार-स्वरूप केवल यही प्राप्त हुआ। उसने पर्याप्त कुशलता से इस अंतर को सीख लिया और यह स्पष्ट किया कि बिना किसी अभिप्रेरण या पुरस्कार के, साधारण भेद करना केवल रंगों के हस्तादि-प्रयोग के लिए सीखा जा सकता है।"

अनेक प्रयोगों में से कुछ यह प्रमाणित करते हैं कि ऐसी प्रेरणा या प्रेरणाओं का अस्तित्व है, जिन्हें भिन्न नाम दिए गए हैं—'कौतूहल-प्रेरणा', 'अनुसंधान-प्रेरणा', या 'हस्त-प्रयोगी-प्रेरणा' में प्रयोग जानवरों पर ही किए गए हैं; क्योंकि प्रयोगकर्त्ता यह जानकर किन-किन स्थितियों में वे क्रियाशील होते हैं, प्रयोग की स्थितियों को नियंत्रित भी कर सकते हैं। बच्चों के साथ ऐसा नहीं किया जा सकता। इन प्रयोगों से हम निश्चित होकर कह सकते हैं कि मनुष्यों में जब-तब देखी गई तुलनात्मक प्रेरणाएँ व्यवहार के अभिप्रेरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अनधिगत प्रेरणाएँ हैं।

## अनुरागात्मक प्रेरण ( Affectional Drive ) :

बिना किसी तर्क के इससे हम सब सहमत होंगे कि प्रेम ( Love ) मानव-व्यापारों में एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक है। हम अपने माता-पिता, भाई-बहन, पत्नी और पति, अपने बच्चों, मित्रों और पालतू जाननरों से प्रेम करते हैं और इस सीमा तक उसे प्रेम करते हैं कि प्रायः प्रत्येक रचना-कहानी, नाटक, और पत्रिका जो मनुष्य के कार्य-कलाप पर आधारित है—प्रेम का प्रमुख स्थान होता है।

प्रेम है क्या? जहाँ नारी और पुरुष के संबंध का प्रश्न है, वहाँ प्रायः यौन-भावना का ही अधिकांश समावेश इसमें रहता है। पर, इसके अतिरिक्त भी प्रेम या स्नेह एक महत्त्वपूर्ण अंतर्नोद समझा जाता है। प्रश्न उठता है कि यह अनुरागात्मक अंतर्नोद है क्या? यह कैसे उत्पन्न होती है? यह अंतर्जात (innate) है या अधिगत? इसका साध्य क्या है?

## अनुरागात्मक अंतर्नोद का स्रोत (उद्गम) (Origin of Affectional Drive):

उन अंतर्नोदों के समान, जिनका मूल शारीरिक आवश्यकताओं या हारमोंस में नहीं है, अनुरागात्मक प्रेरणा भी इनमें से किसी एक या दोनों से उत्पन्न हो सकती

है। यह अनधिगत अंतर्नोद ( **Unlearned Drive** ) भी हो सकती है, जो अवसर देने पर परिपक्वता के साथ सामान्य रूप से विकसित होती है। दूसरी ओर यह लोगों के सान्निध्य से भी अधिगत है; क्योंकि खान-पान आदि शारीरिक अंतर्नोदों की तृप्ति में लोग ही साधन होते हैं। जैसे परिपक्वता और अधिगम परस्परबाधक नहीं हैं, यह आवश्यक नहीं कि ये दोनों स्रोत परस्परविरोधी बाधक हों। अनधिगत होते हुए भी अनुराग के विशिष्ट विषयों को अधिकांश में अधिगत किया जाता है। वास्तव में जहाँ तक हमें ज्ञात है, यही सत्य है। किंतु इस निर्णय पर हम कैसे पहुँचे, उसके वैज्ञानिक प्रमाणों पर हम विचार करें।

अनुरागात्मक प्रेरणा के उद्गम के अध्ययन के लिए यह तर्क संगत होगा कि मानव-शिशु में जन्म से ही इस अंतर्नोद के विकास का प्रेक्षण किया जाए। ऐसे अनेक प्रयोगों के अध्ययन में हमें मानव-शिशु के अनुभवों को नियंत्रित करने की सुविधा नहीं होती। उसके अतिरिक्त मानव-शिशु में गतीय योग्यताएँ इतनी धीरे-धीरे विकसित होती हैं कि प्रारंभिक अवस्था में उनकी विविध स्थितियों की प्रतिक्रियाओं का परिमापन संभव नहीं होता है। एक प्रयोगकर्त्ता (Harlow, 1958) का कथन है—"जब तक मानव-शिशु की गतीय प्रतिक्रियाएँ स्पष्टतः परिमापन योग्य होती हैं, तब तक उन दशाओं के निर्धारित करने वाले पूर्व हेतुओं के विषय में जानना कठिन हो जाता है, वे अस्पष्ट चरों के अव्यवस्थित घने जंगल और जाल में खो जाते हैं।"

इन्हीं कारणों से हमें पुनः पशुओं पर आश्रित होना है। एक बानर-शिशु अच्छा प्रयोग-पात्र है। केवल इसलिए नहीं कि वह आकार और अन्य सजातीय सदस्यों के प्रति प्रतिक्रिया में मानव-शिशु से मिलता-जुलता है, बल्कि इसलिए कि उसकी गतीय योग्यताएँ बहुत कम उम्र में विकसित हो जाती हैं। जन्म से २ से १० दिन के बीच बानर-शिशु अपने चारों ओर घूमने लगता है और वस्तुओं का हस्तादि-प्रयोग प्रारंभ कर देता है, तभी से वह अपनी उन्मुखता का भी परिचय देने लगता है। बानर-शिशु को बोतल से दूध पिलाया जा सकता है, अतः उसे अन्य बानरों या मनुष्यों के संपर्क से अलग रख कर पाला जा सकता है। नीचे इन प्रयोगों ( Harlow, 1958) को संक्षेप में दिया जा रहा है, जो बानर-शिशु की अनुराग-वृत्ति के विकास को जानने के लिए किए गए थे—

> "बंदरों को अकेले ही ऐसे पिंजरों में रख कर पाला गया, उनके लिए सुविधाजनक वातावरण दिया गया था और उनकी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान भी यथासंभव रखा गया था। एक प्रयोग में प्रत्येक पिंजरे में माता के पुतले (**Mother surrogate**) रखे गए। (देखिए, चित्र ३.१०)

एक माता का पुतला बेलनाकार (Cylindrical) तार की जाली की नाली की तरह था, जिस पर सिर के स्थान पर लकड़ी का एक ब्लाक था। इसे 'तार-माता' (Wire-mother) कहा गया। दूसरा एक लकड़ी का ब्लाक था, स्पंजी रबड़ से ढक कर उस पर भूरे रंग के सूती कपड़े की चादर लपेट दी थी। इसे 'वस्त्र-माता' कहा गया। 'तार-माता' की अपेक्षा 'वस्त्र-माता' का आकार वास्तविक माता से अधिक मिलता-जुलता था। इन पुतलों के पीछे एक-एक प्रकाश-बल्ब था, जो शिशु को विकीर्ण-ऊष्मा देता था।
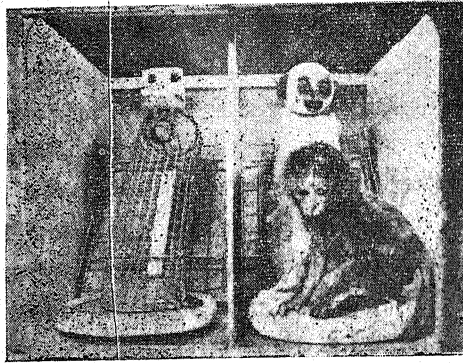
**चित्र—३.१० बंदरों में अनुरागात्मक प्रेरण पर किए गए प्रयोगों में प्रयुक्त तार और कपड़े से बनायी हुई प्रच्छन्न प्रतिनिधित्व करने वाली माँ।** ( H. F. Harlow )

बंदर का बच्चा 'कपड़े की माँ' को पसंद करता है।

**चित्र ३.११ कपड़े की माँ के लिए बंदर के बच्चे की पसंद** ( After Harlow, 1958 )।
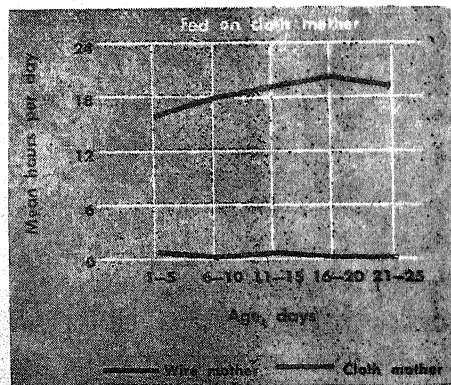
प्रत्येक 'माता-पुतले' में 'वक्षस्थल' के बीचोबीच दूध की बोतल लगाने की व्यवस्था थी। बंदरों के एक समूह के लिए दूध की बोतल वस्त्र-माताओं

में लगाई गई और दूसरे समूह के लिए तार-माताओं में। कितना समय उन्होंने किस माता के साथ व्यतीत किया, इसका परिमापन किया गया। चित्र ३·११ में उस परिमापन का परिणाम प्रकट है।
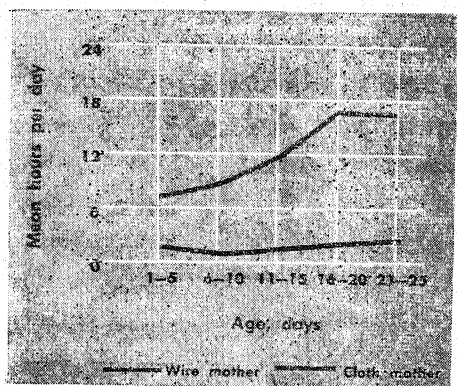
चित्र ३·११ के क्रम में

संभावना के अनुकूल ही जिनका पोषण 'वस्त्र-माता' के दूध पर हुआ था, वे अधिकांश समय उसी के साथ व्यतीत करते और 'तार-माता' के निकट बहुत कम रहते। जिनका पोषण 'तार-माता' के दूध पर हुआ, वे पहले समूह की अपेक्षा कुछ अधिक समय 'तार-माता' के साथ अवश्य रहते, किंतु प्रारंभ से ही वे 'वस्त्र-माता' के साथ तार-माता की अपेक्षा अधिक समय तक रहते। जैसे-जैसे प्रयोग-काल बढ़ा, तार-माता के साथ रहने की उनकी अवधि कम होती गई। अतः, दोनों समूहों ने वस्त्र-माता पुतले के प्रति तीव्र पसंद व्यक्त की।''

यह प्रयोग दो रोचक बातें स्पष्ट करता है। प्रथम, ऐसा प्रतीत होता है कि बंदरों में माता से संपर्क रखने या उसके निकट रहने का अंतर्नोद होता है। भोजन और पानी के शारीरिक अंतर्नोदों के अतिरिक्त यह मातृ-संपर्क अंतर्नोद था; क्योंकि एक दिन में १५ या उससे भी अधिक घंटे वे 'माता' के साथ व्यतीत करते थे, जब कि दूध पीने के लिए लगभग एक घंटा पर्याप्त था। दूसरी बात यह स्पष्ट हुई कि माता का चुनाव दूध पीने से संबंधित नहीं था। यदि माता के प्रति अनुराग-वृत्ति दूध पीने से संबंधित होती, तो यह धारणा होनी चाहिए थी कि 'तार-माता' के दूध पर पले बंदरों को उसी के प्रति अधिक स्नेह होता। किंतु, वे भी अधिक समय 'वस्त्र-माता' के ही साथ व्यतीत करते थे। स्पष्ट है कि एक ऐसी अनधिगत प्रवृत्ति है, जो प्रकृत माता से मिलती-जुलती आकृति से सुखकर संपर्क स्थापित करने की खोज किया करती है।

भय, कौतूहल और अनुराग-अंतर्नोदों के संबंध में अन्य प्रयोग यह प्रमाणित करते हैं कि इनमें किस प्रकार परस्परविरोध भी होता है। (Harlow, 1958)

"मातृपुतलों के साथ बंदरों पर किए गए परीक्षणों की शृंखला में एक शिशु-बंदर को एक बड़े ६ फुट के समचतुर्भुज कमरे में, जिसकी छत भी ६ फुट ऊँची थी, रखा गया, उसका वातावरण भय उत्पन्न करता था और अनुसंधान-प्रेरणा को भी जन्म देता था ( चित्र ३.१२ )। कमरे में अनेक विचित्र वस्तुएँ थीं, जो प्रायः शिशु-बंदर को हस्तकौशल और अनुसंधान के लिए प्रेरित करती थीं। कमरे के आकार और विचित्र वस्तुओं से भी उसमें भय की आशा थी। ऐसी स्थितियों में भी कुछ में मातृ-पुतले रखे गए और कुछ में नहीं।"

**चित्र ३.१२ बंदर के बच्चों में भय और समन्वेषी अंतर्नोद का अध्ययन करने के लिए मुक्त क्षेत्र। प्रच्छन्न माँ की अनुपस्थिति में आस-पास की अद्भुत वस्तुओं के भय से बंदर कोने में सिकुड़ कर बैठ जाता है। (H. F. Harlow)**

"मातृ-पुतले की उपस्थिति और अनुपस्थिति का बहुत प्रभाव पड़ा। उसकी उपस्थिति में संवेग के चिह्न जो शब्दोच्चारण, झुकने, झूलने या दोलने और चूसने पर आधारित हैं, उनकी मात्रा बहुत कम हो जाती है। शिशु उस माता को क्रियाओं के आधार के रूप में भी प्रयोग करता है। वह कभी माँ से लिपट जाएगा, कभी हस्तादि-प्रयोग करेगा और कमरे की तथा उसमें रखी गई विचित्र वस्तुओं की खोज करने का साहस करेगा, और फिर माँ के निकट लौट आएगा। मातृजन्य-सुरक्षा की भावना एक ऐसा आश्रय है, जो भय की अपरिचित स्थिति को भी शांत करने में सहायता करता है और शिशु को भय तथा कौतूहल के द्वंद्व से मुक्त करता है।"

यह प्रयोग अनुराग, भय और कौतूहल-प्रेरणाओं के अन्योन्य व्यापार को स्पष्ट करता है। हम पहले देख चुके हैं कि भय और कौतूहल एक नवीन स्थिति के समय द्वंद्वात्मक होते हैं। जब भय तीव्रतर होता है, तो कौतूहल और अनुसंधान कम कर देता है। विलोमतः यदि भय कुछ कम हो, तो कौतूहल तीव्र हो उठता है और

व्यवहार को प्रभावित करता है। भयप्रद वस्तुओं की निकटता के अभ्यास से भय कम हो सकता है। किसी प्रिय व्यक्ति की उपस्थिति से भी यह कम हो सकता है। ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति से उसमें सुरक्षा का भाव उत्पन्न कर देती है, जिससे भय के अभ्यसन की गति तीव्र हो जाती और कौतूहल को भय पर विजय पाने में सहायता देती है। ऐसा व्यक्ति कौतूहल को तृप्त करने में सहायक सिद्ध होता है।

इन प्रयोगों से प्राप्त यह तथ्य अनियमित प्रेक्षणों में भी इसी रूप में देखा जाता है। बिल्ली के बच्चे अपनी माँ से दूर खेलने का साहस करते हैं, किंतु प्रायः वे माँ के आसपास ही रहते हैं और बीच-बीच में माँ के निकट आते रहते हैं। मानव-शिशु माँ की गोद में कुछ समय रहने के बाद प्रसन्नता से उसके आसपास खेलता है, किंतु बीच-बीच में आकर उसके आँचल का छोर पकड़ लेता है। अकेले छोड़ देने पर, विशेषतः अपरिचित वातावरण में, उसके खेलना छोड़ देने की संभावना अधिक रहती हैं और वह भयभीत हो जाता है।

संक्षेप में, ये प्रमाण हमें अनुराग के संबंध में इन निर्णयों की ओर ले जाते हैं: इस अंतर्नोद का उदय शिशु के जीवन में अपेक्षाकृत बहुत शीघ्र होता है। यह अनधिगत है और परिपक्वता के प्रकृत विकास-क्रम में उदय होता है। यह अनिवार्यतः दुग्धपान या अन्य शारीरिक आवश्यकताओं से संबद्ध नहीं है। यह एक ऐसी प्रेरणा है, जो किसी का सान्निध्य चाहती है, जिससे उसे सुख मिलता है। व्यक्तिविशेष से यह सान्निध्य-वस्तु कितनी मिलती-जुलती हो, इस संबंध में निश्चित रूप से नहीं कह सकते। शायद उसका कोमल और गरम होना आवश्यक है। अनुराग की वस्तु अपरिचित वातावरण के भय को शांत करती है, सुरक्षा की भावना को बल देती है और कौतूहल-अंतर्नोद की सहायता करती है।

**वंचन ( Deprivation ) :**

एक व्यक्ति के जीवन के किसी विशेष क्षण में कुछ अंतर्नोद स्थिर या मंद होते हैं और अन्य अपेक्षाकृत तीव्र। जो तीव्र हैं, वे प्रायः ऐसा व्यवहार उत्पन्न करते हैं, जिनसे वे तृप्त हो सकें। इस बीच अन्य अंतर्नोद अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति से वंचित रहते हैं और उनकी शक्ति में वृद्धि होती रहती है। विविध अंतर्नोदों की शक्ति प्रायः प्रवाह की स्थिति में रहती है, कुछ में वंचन के कारण वृद्धि होती रहती है और कुछ तृप्ति के कारण मंद होती जाती हैं।

इस सतत् परिवर्तनशीलता के अनेक कारण हैं। सबसे पहला कारण है, एक बार जब भूख या प्यास-जैसा अंतर्नोद अल्पकाल के लिए तृप्त हो जाता है, तो व्यवहार को प्रभावित करने योग्य शक्ति प्राप्त करने के लिए उन्हें काफी समय की आवश्यकता

होती है। शरीर की क्रियात्मक बचत में यह अनुक्रम स्थापित किया गया है और यह प्रकृत क्रम या लय में गतिशील रहता है। द्वितीय, मनुष्य और प्रकृति दोनों अंतर्नोद की तृप्ति की योजना बनाते हैं। आहार, जल और अन्य सामग्री विशेष कालों तथा स्थानों में अंतर्नोदों को तृप्त करने के लिए उपलब्ध होती है और हमें अपने अंतर्नोद की तृप्ति के लिए इन अवसरों की प्रतीक्षा करनी चाहिए। अत्यधिक बचत में ये काल और स्थान बहुत हितकर होते हैं, जिससे प्रेरणाएँ दीर्घकाल तक वंचित नहीं रहतीं। अतः वे तृप्त हो सकने के पहले बहुत तीव्र नहीं होतीं। तृतीय, कुछ अंतर्नोदों में स्वाभाविक द्वंद्व विद्यमान रहता है। हम एक ही समय में खा और सो नहीं सकते; एक को दूसरे के समाप्त होने की प्रतीक्षा करनी ही होगी। अपरिचित स्थिति में भय और कौतूहल में द्वंद्व होता है तथा एक को दूसरे के लिए राह बनानी पड़ती है। आर्थिक और सामाजिक स्थितियाँ बहुधा कुछ प्रेरणाओं की तृप्ति में बाधा उपस्थित करती हैं और उनके तीव्र से तीव्रतर होने का कारण बनती हैं।

अंतिम विंदु के अतिरिक्त वंचन की सब स्थितियाँ व्यावहारिक दृष्टि से कम महत्त्व की हैं। बच्चे को यह सीखने में कुछ समय लग सकता है कि उसे आहार की प्रतीक्षा करनी चाहिए, गुसलखाने में जाना चाहिए अथवा जो उसे चाहिए, वह उसे तत्क्षण प्राप्त नहीं हो सकता। किंतु शनैः-शनैः वह सीख जाता है और तब वंचन-विशेष का दुखानुभव नहीं करता। वास्तव में, हममें से अधिकांश लोग अंतर्नोदों के थोड़े वंचन को, काफी समय तक बिना किसी महत्त्वपूर्ण परिणाम के सहन कर लेते हैं। दीर्घकालीन एवं गंभीर वंचन की समस्या सचमुच विचारणीय है। इससे प्रश्न उपस्थित होते हैं—अंतर्नोदों के गंभीर वंचन का क्या प्रभाव होता है? एक वंचित अंतर्नोद किस सीमा तक प्रबल हो सकता है?

## प्रेरणाओं की तुलनात्मक प्रबलता (Comparative Strength of Drive):

विचार करने पर अंतिम प्रश्न सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। मानव-व्यवहार समझने की चेष्टा में हमें यह जानना चाहिए कि कौन-सी प्रेरणाएँ व्यवहार को नियंत्रित करने में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मनुष्य भय, क्षुधा, अनुराग या और किस अभिप्रेरणा के द्वारा अधिक अभिप्रेरित होते हैं? यदि इस प्रश्न का सरल उत्तर होता, तो यह कह सकना अपेक्षाकृत सहज हो जाता कि किस स्थिति में मनुष्य कैसा व्यवहार करेगा और इसका व्यावहारिक महत्त्व बहुत होता। दुर्भाग्य से इसका उत्तर अनेक बातों पर निर्भर करता है।

प्रथम—मनुष्यों में व्यष्टिगत भेद। कुछ लोग क्षुधा का अनुभव इतना नहीं करते, जितना अन्य। कुछ लोगों में कौतूहल, भय या अनुराग-भाव उतना नहीं होता, जितना दूसरों में। अतः, इन सबके लिए एक उत्तर नहीं दिया जा सकता।

द्वितीय एवं संभवत: सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, प्रेरणा को वंचित रखने की मात्रा। स्वाभाविक है कि कोई भी अंतर्नोद काफ़ी तृप्त होकर बहुत प्रबल नहीं होगा। ऐसे समाज में जहाँ क्षुधा और पिपासा-जैसे शारीरिक अंतर्नोद सहज तृप्त हो जाते हैं, वहाँ इनका कोई महत्त्व नहीं होता, मात्र इसलिए कि वे वहाँ प्रबल हो ही नहीं सकते। एक गरीब समाज में, जहाँ अनेक व्यक्ति क्षुधा-अंतर्नोद को दीर्घकाल तक और गंभीर स्थिति में रख उसकी तृप्ति से वंचित रहते हैं, वहाँ क्षुधा मानव-व्यवहार को साकार करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण प्रेरणा हो सकती है। कौन-सा अंतर्नोद प्रबलतम है ? तृप्ति से सर्वाधिक वंचित रखे गए अंतर्नोद के संबंध में ही यह प्रश्न किया जा सकता है।

जब अंतर्नोदों को वंचित रखा जाता है और जब वे अपनी अधिकतम सीमा तक प्रबल हो जाते हैं, तभी यह पता लगाया जा सकता है कि उनमें प्रबलतम कौन है।

लक्ष्य तक पहुँचने के लिए विद्युत्युक्त जाली पार करना प्रेरण की प्रबलता के परिमापन को प्रस्तुत करता है।
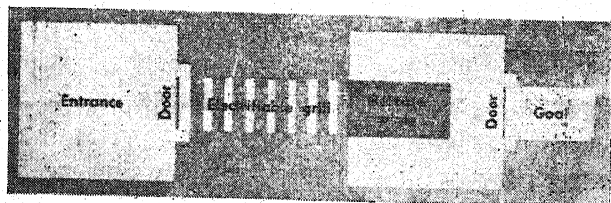
चित्र ३·१३

आकस्मिक प्रेक्षणों से हम जानते हैं कि अनुसंधान, कौतूहल या अनुराग-जैसे अंतर्नोद कभी-कभी क्षुधा या भय से अधिक प्रबल हो सकते हैं। अन्यथा मनुष्य अपने प्राणों की बाजी लगा कर पहाड़ों को न मापता, नए क्षेत्रों की खोज न करता और जिनसे प्रेम करता है, उनकी सुरक्षा न करता। इस प्रकार के आकस्मिक प्रेक्षण घटनात्मक होते हैं और वैज्ञानिकों के लिए वे विशेष उपयोगी नहीं होते। दुर्भाग्य से मनुष्यों पर किए गए प्रयोगों के प्रमाण इस संबंध में नहीं मिलते हैं और हमें पशुओं पर ही निर्भर करना होगा। इस अध्याय में जिन ६ प्रेरणाओं का विवेचन किया गया है, कई वर्ष पूर्व उनकी तुलनात्मक शक्ति का प्रयोग चूहे पर किया गया था ( Warden, 1931 )।

"एक प्रेरणा की सापेक्षिक शक्ति के परिमापन के लिए प्रयोगकर्त्ता ने किसी प्रतिरोध-उपकरण ( Obstruction-box ) में चूहों को प्रशिक्षित किया, जिसे चित्र ३.१३ में दिखाया गया है। इस उपकरण में एक प्रारंभिक बक्स, एक बिजली-युक्त जाली और लक्ष्य-बक्स होते हैं, जिसमें उपयुक्त साध्य रखा जाता है। साध्य वस्तु तक पहुँचने के लिए चूहों की राह में बिजलीयुक्त जाली बाधक थी, जिसे पार करना आवश्यक था। अभीष्ट वस्तु को प्राप्त करने के निमित्त चूहा एक निर्धारित समय में कितनी बार वह जाली पार करता है, उससे अंतर्नोद की शक्ति का परिमापन किया गया। इन ६ अंतर्नोदों की तुलना की गई : मातृक, पिपासा, क्षुधा, यौन (मादा), यौन (नर) एवं अनुसंधान। मातृक-प्रेरणा के परिमापन के लिए प्रयोगकर्त्ता ने चुहिये को प्रारंभिक बक्स में और उसके बच्चों को लक्ष्य-बक्स में रखा। यौन-प्रेरणा के परीक्षण के लिए प्रयोगकर्त्ता ने भिन्न लिंगी जंतु को लक्ष्य-बक्स में रखा। मादा जंतुओं पर प्रयोग जब किया, तब उनमें तीव्र यौन-ऊष्मा थी और यौन-अंतर्नोद प्रबलतम था। अनुसंधान प्रेरणा के परीक्षणार्थ प्रयोगकर्त्ता लक्ष्य-बक्स में नई वस्तुओं को रखता है—जैसे लकड़ी का बुरादा और लकड़ी के ब्लॉक। परिणाम भी ठीक इसी क्रम में मिले (चित्र ३·१४ में देखिए), अर्थात मातृक-प्रेरणा प्रबलतम थी और अनुसंधान-प्रेरणा मंदतम।"

इस तुलना में संभवतः सबसे रोचक बात यह प्रमाणित हुई कि क्षुधा और पिपासा को वंचन द्वारा अत्यधिक तीव्र या शक्तिशाली कर देने के बाद भी उनसे मातृक अंतर्नोद तीव्रतर है। मनुष्य-जाति में भी यही परिणाम सिद्ध होगा, यह जानने की कोई पद्धति नहीं है। किंतु, यह तो प्रकट है कि चूहे-जैसे छोटे जंतु में भी मातृक-अंतर्नोद जैसी 'निस्वार्थ' अंतर्नोद तथा कथित आत्म-रक्षा', क्षुधा और पिपासा से तीव्रतर है। यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है। उक्त ६ अंतर्नोदों में अनुसंधान-अंतर्नोद सबसे कमजोर होने पर भी इतना शक्तिशाली है कि चूहे केवल दूसरे छोर पर लगे बक्स और नई वस्तुओं की खोज के लिए अनुसंधान में पीड़ा पहुँचने वाली विद्युत्-जाली को पार करते हैं। मातृक-अंतर्नोद की तृप्ति के प्रयत्न में उक्त जाली को जितनी बार पार किया, अनुसंधान-अंतर्नोद के लिए उससे एक चौथाई बार और यौन-अंतर्नोद से आधी बार उन्होंने उस जाली को पार किया। जैसा कि पहले कहा गया है यह प्रयोग प्रमाणित करता है कि अनुसंधान ( या कौतूहल ) अंतर्नोद भी एक शक्तिशाली अभिप्रेरक सिद्ध हो सकता है।

**मनुष्य में अर्द्ध-क्षुधा ( Semi-starvation in Man ) :**

मनुष्य में अंतर्नोदों की यद्यपि ऐसी सापेक्षिक तुलना नहीं हुई है, किंतु हमने कुछ प्रयोग किए हैं, जिनसे मनुष्य पर अंतर्नोदों के अत्यधिक वंचन का प्रभाव देखा जा

सका है। इनमें से एक प्रयोग द्वितीय महायुद्ध के समय प्रतिपक्षियों के एक विवेकशील समूह पर किया गया, जिन्होंने स्वेच्छा से ६ माह की अर्द्ध-क्षुधा को स्वीकार किया ( Keys et. al., 1950 )।

"पात्रों को इतना सीमित आहार दिया गया कि औसतन उनका २० प्रतिशत से अधिक वजन ६ माह में कम हो गया। वे हर समय क्षुधातुर रहते। उनके जीवन में आहार और तत्संबंधी विचारों की प्रमुखता देने और आहार उनके अन्य सभी अंतर्नोदों पर छा जाए, इसके पूर्व ही पथ्य के इस नियम से उन्हें मुक्त कर दिया। उनमें अपेक्षाकृत शिथिलता आ गई थी और उन्होंने प्राय: सब मनोरंजनात्मक क्रीड़ाओं को छोड़ दिया था, उनका यौन-अंतर्नोद दुर्बल हो गया, उनके प्रणय-संबंध टूट गए। वे शांत और अपेक्षाकृत असामाजिक हो गए, नवागतों को वे विरोध और संदेह-भाव से देखते। उनकी हास्यरसज्ञता समाप्त हो गई, उन्हें कोई वस्तु हास्यास्पद नहीं जान पड़ती। संक्षेप में, आहार के अतिरिक्त सब वस्तुओं के प्रति उनकी रुचि समाप्त हो गई। वे भोजन की ही बहुधा बात करते, भोजन-संबंधी और पाक-शास्त्र-संबंधी पुस्तकों के पढ़ने में उनमें विशेष रुचि उत्पन्न हो गई। वे खाने के और प्रयोग के लिए स्वीकर किए गए पथ्य-नियम को तोड़ने के स्वप्न देखते। एक प्रयोग-पात्र तो यहाँ तक बढ़ा कि उसने कुछ आहार की चोरी भी की।"

हम यह निर्णय ले सकते हैं कि जब एक प्रेरणा, जैसे क्षुधा-अंतर्नोद, बहुत शक्तिशाली हो जाती है, तो मनुष्य के सारे व्यवहार पर छा जाती है, व्यक्ति के जीवन में वही प्रमुख हो जाती है और अन्य सभी अंतर्नोदों पर उसका आधिपत्य हो जाता है। जिन समाजों में खाद्य-सामग्री का निरंतर अभाव रहा है या जिन क्षेत्रों में प्राय: अकाल पड़ता है, उनकी कथाओं की पुष्टि यह प्रयोग करता है। पाश्चात्य देशों में क्षुधा का यह प्रभाव दिखाई नहीं देता; क्योंकि शायद ही कभी वहाँ कुछ लोगों को क्षुधा-अंतर्नोद का तीव्र वंचन अनुभव करना पड़ता है। हमारे देश में अनेक लोगों में किसी-न-किसी कारण से, दीर्घकाल तक कुछ अंतर्नोद तृप्ति से वंचित रहते हैं। इन अंतर्नोदों से, जिनमें यौन, कौतूहल, अनुसंधान और अनुराग-अंतर्नोद भी हैं, व्यवहार को प्रभावित करने की आशा की जा सकती है।

### संवेदी पृथक्करण या संवेदी विविक्ति (Sensory Isolation ) :

कभी-कभी हमें ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है, जिनमें मानव के कुछ सामान्य अंतर्नोदों से उसे वंचित रखा जाता है। उदाहरणार्थ, एक प्राचीन और कठोर दंड है कि मनुष्य को एकांत में बंद रखना, जहाँ न वह कुछ कर सके और न कुछ देख सके। विवरणों से पता चलता है कि अधिकांश कैदी शारीरिक यंत्रणा के समान

या उससे भी अधिक इस दंड से भयभीत थे, जबकि उन्हें काफी आहार मिलता था और शरीर की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती थी। इसीलिए **एकांत में बंद रखना** कठोरतम दंडों में से एक समझा जाता है। युद्धनीति में इस दंड का सफल प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ, कोरिया के युद्ध में चीनियों ने कैदियों से गुप्त सूचनाएँ पाने के लिए, या उन्हें कुछ कहने को बाध्य करने के लिए, या मिथ्या स्वीकारोक्ति के लिए इसका प्रयोग किया था ( Lilly, 1956 )। इस प्रकार के वंचन का प्रभाव देखने के लिए कालेज के विद्यार्थियों पर कुछ दिन पूर्व प्रयोग किए गए (Bexton et. al; 1954 )।

क्षुधा अथवा पिपासा की प्रेरणा की अपेक्षा मातृक प्रेरणा प्रबलतम हो सकती है।
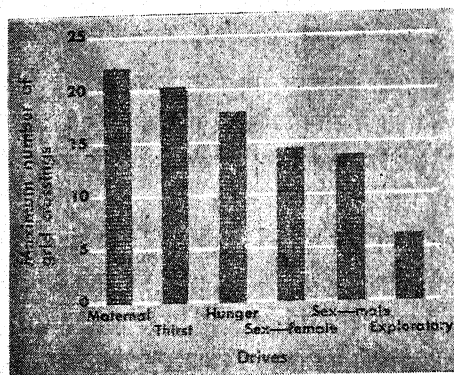
**चित्र ३.१४ यहाँ प्रेरणा के संयोजक वेग को अवरोधक पेटिका के रूप में माप कर दिखलाया गया है। शलाकाएँ उन अवधियों की गिनती संकेतित करती हैं, जबकि २० मिनट के समय में चूहों ने विद्युत्युक्त जालियों को अपने लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए पार किया जबकि प्रत्येक अंतर्नोद अपने अधिकतम वेग पर था।**

"इन विद्यार्थियों ने इस प्रयोग को स्वेच्छा से प्रतिदिन २० डालर के प्रलोभन में स्वीकार किया था। नहाने-धोने व भोजन के समय को छोड़कर २४ घंटे वे सुखद पलंग पर लेटे रहते थे। यह पलंग एक छोटे कक्ष में था, जिसमें प्रकाश था और जहाँ पंखे की मंद ध्वनि के अतिरिक्त और कोई ध्वनि या स्वर न था। उनकी आँखों पर अर्द्धपारदर्शक काला चश्मा लगा था, जिससे वे प्रकाश के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं देख सकते थे। हाथों में उन्होंने दस्ताने पहने थे और अग्रबाहु में कफ लगाए थे, जिससे वह हस्त-चालन और हिलना-डुलना कम कर सकें। संक्षेप में, ऐसी व्यवस्था की गई कि उनके संवेदी उद्दीपन तथा उनकी गतिशीलता यथासंभव कम हो जाए।"

धर्नाजन का यह उपाय सहज भले ही प्रतीत हो, किंतु यह प्रयोग बहुत दिन तक नहीं चल सका। अधिकांश प्रयोग-पात्रों ने इसे असह्य अनुभव किया और दो या तीन दिन से अधिक इसे करने से अस्वीकार कर दिया। उन्हें विभ्रम (Hallucination) होने लगे, जिनमें से कुछ भयपूर्ण ऊलजलूल प्रतिमानों के थे सौर कुछ स्वप्नों से मिलते-जुलते थे। उनका दिक और काल का अभिविन्यास (Orientation) बिगड़ गया। उनकी यह ज्ञानशून्यता कक्ष छोड़ने के कुछ समय बाद समाप्त हुई। उनकी स्पष्ट विचार-योग्यता नष्ट हो गई। जो हिसाब उन्हें करने के लिए दिए गए, उनकी अंक-गणना ठीक न कर सके और किसी विषय पर अधिक समय तक ध्यान लगाना उनके लिए संभव न रहा। संक्षेप में, वे मनोविकार के रोगियों के समान हो गए, अपनी इस स्थिति से मुक्त होने के अतिरिक्त उनकी और कोई चाह नहीं रह गई।"

**चित्र ३.१५ हवाबाज एक अंधेरे एवं ध्वनिहीन कमरे में है। वह वायुसेना के उस प्रयोग में हिस्सा ले रहा है कि प्रकाश एवं ध्वनि से बिलकुल पृथक् हो जाने पर क्या प्रभाव होता है। अंतरिक्ष-उड़ान में वैसे प्रभावों से सामना हो सकता है। ( संयुक्त राष्ट्र वायुसेना )**

वंचन का प्रभाव देखने के सामान्य उद्देश्य से पानी के तालाब में प्रयोग-पात्रों को रख कर भी प्रयोग किए गए ( Lilly, 1956 )।

"विषयी पानी में तैरता हुआ लेटता है और मुखौटे (Face-mask) से साँस लेता , और उसका वातावरण ऐसा रखा जाता है कि संवेदी उद्दीपन एवं गतिशीलता यथासंभव मंद रहे। विषयी तालाब में कुछ घंटों से अधिक नहीं रह सकता। अधिक समय व्यतीत होने से पूर्व ही कुछ न करने, कुछ न देखने और ध्यान को किसी ओर न लगाने की स्थिति असह्य हो जाती

है। उद्दीपन के अनुकूल और क्रियाशीलता के लिए अंतर्नोद तीव्रता से जागृत होता है और प्रयोग छोड़ना पड़ता है।"

इस प्रकार के प्रयोग नाटकीय ढंग से प्रकट करते हैं कि तथाकथित 'पर्यावरण-परक अंतर्नोद' ( Enviromental Drives ) को वंचित रखने पर अत्यंत तीव्र हो जाते हैं और व्यक्ति उसकी तृप्ति के बिना जीवित भले ही रह जाए, पर शारीरिक अंतर्नोदों के ही समान इस अभाव का महत्त्वपूर्ण प्रभाव उनके स्वास्थ्य और उनकी कुशलता पर पड़ता है।

### अभिप्रेरकों का परिष्करण ( Modification of Motives )

एक बंदर और मनुष्य के एक बच्चे तथा वयस्क के अभिप्रेरकों में जमीन-आसमान का अंतर है। जिन अंतर्नोदों की चर्चा हमने की है, जैसे क्षुधा, पिपासा, कौतूहल, अनुराग, वे सब वयस्क मनुष्यों में विद्यमान हैं। किंतु, इनके अतिरिक्त भी अंतर्नोद होते हैं। वयस्क व्यक्ति शक्ति, प्रतिष्ठा, धन, उपलब्धि और सामाजिक प्रशंसा आदि जैसी बातों से भी अभिप्रेरित होता है। हम पूछ सकते हैं कि सामान्य परिपक्वता से उद्भूत अंतर्नोदों और मानव-व्यवहार तथा आचरणों से उत्पन्न अंतर्नोदों में क्या अंतर है ?

इस अंतर का प्रमुख अंश निश्चित ही अधिगम है। बचपन से युवावस्था तक और तत्पश्चात् वयस्क जीवन में भी दीर्घकालीन शिक्षण-प्रक्रिया के द्वारा लोग नए लक्ष्य और नए भय सीखते हैं। शारीरिक और सामान्य अंतर्नोदों को, जिनसे वह जीवन प्रारंभ करता है, अनेक प्रकार से तृप्त करना सीखता है। अतः, अधिगम के द्वारा सहज अंतर्नोद को अभिप्रेरण की जटिल प्रणाली में रूपांतरित कर देता है। किंतु, अधिगम एक ऐसा शब्द है जो एक व्यापक क्षेत्र को अपने में समाविष्ट करता है। यह कहना कि अधिगम सहज अंतर्नोद और जटिल अभिप्रेरकों में अंतर उपस्थित करता है, उक्त प्रश्न के उत्तर पाने की दिशा में संकेत है। इस तथ्य का वास्तविक ज्ञान पाने के लिए कि किस प्रकार जटिल अभिप्रेरक विकसित होते हैं, हमें विविध कारकों को, जो उससे संबद्ध हैं, निकटता से देखना होगा। दुर्भाग्य से अभी हम इस समस्या को पूर्णतः सुलझा नहीं सके हैं कि जटिल अभिप्रेरक कैसे उद्भूत होते हैं। इस संबंध में केवल कुछ रोचक दिशा-संकेत हमें उपलब्ध हैं।

### अर्जित भय (Acquired Fear) :

अगले अध्याय में जब हम अधिगम का अध्ययन करेंगे, हम देखेंगे कि अधिगम के अनेक प्रकार हैं और उससे अनेक प्रक्रम संबद्ध हैं। इनमें से एक 'अनुबंधन' ( Conditioning ) है। अनुबंधन के प्रक्रमों में तीन तत्त्व सन्निहित हैं। एक अन-

नुबंधित प्रतिक्रिया (Unconditioned Response) अननुबंधित उद्दीपन (Unconditioned Stimulus) और अनुबंधित उद्दीपन (Conditioning Stimulus)। अननुबंधित प्रतिक्रिया साधारणतः एक अननुबंधित उद्दीपन के प्रति एक अनधिगत प्रक्रिया है। तथाकथिक अनुबंधित उद्दीपन ऐसा उद्दीपन है, जिसका अनुबंधन से पूर्व व्यक्ति पर बहुत कम या बिलकुल भी प्रभाव नहीं होता। अनुबंधनकाल में इसे अनुबंधित उद्दीपन के साथ उपस्थित किया जाता है। जब ये दोनों उद्दीपन साथ-साथ उपस्थित किए जाते हैं—एक बार या दर्जनों बार, तो अनुबंधित उद्दीपन अननुबंधित प्रतिक्रिया के समान किसी प्रतिक्रिया को प्रकट करने की योग्यता अर्जित करता है। अनुबंधन-प्रक्रिया, भय-प्रतिक्रिया के अनुबंधन के द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। विद्युत्-आघात ( Electrical-shock ), जो पीड़ा पहुँचाने वाला है, मनुष्य और जानवर —दोनों में अनधिगत भय-प्रतिक्रया को उत्पन्न करता है। यह आघात अननुबंधित प्रतिक्रिया—भय—के प्रति अननुबंधित उद्दीपन का कार्य करता है। इस आघात को किसी अकष्टकर उद्दीपन—घंटे, प्रकाश या बक्स दिखाने की क्रिया के साथ संबद्ध करके हम अनुबंधित भय-प्रतिक्रिया को (जो पहले अकष्टकर उद्दीपन था ) उससे प्राप्त कर सकते हैं, जैसा कि निम्नांकित प्रयोग ( मिलर,१९४८) स्पष्ट करता है :

"सफेद चूहों को, एक-एक करके एक ऐसे सफेद बक्स में रखा गया, जो एक काले बक्स से एक दरवाजे के द्वारा अलग किया गया था ( देखिए चित्र ३.१६ )। बक्स का निचला तला जालीदार था, जिसमें से आघात दिया जा सकता था। पहले हर चूहे को सफेद बक्स में ६० सेकेंड तक बिना आघात पहुँचाए, रखा गया। तब ६० सेकेंड तक हर पाँच सेकेंड बाद हलके आघात दिए गए। इस समय के अंत में बक्स के बीच का विभाजक-द्वार हटा दिया गया और आघात तीव्रता से होने लगे। काले बक्स में भागकर चूहे आघात से बच सकते थे। यह अनुक्रम दस बार भिन्न-भिन्न अवसरों पर दोहराया गया, उसके बाद फिर प्रयोग नहीं किया गया।

पाँच क्रमागत अवसरों पर चूहे सफेद बक्स में बीच के द्वार को खोल कर रखे गए थे। संभावनानुसार सफेद बक्स में अनुकूलित चूहों को काले बक्स में भागने की अभिप्रेरणा देने के लिए भय पर्याप्त तीव्र था। इन पाँच प्रयोगों के बाद बीच का द्वार बंद कर दिया गया। किंतु, यदि द्वार पर लगे एक चक्र को चूहा घुमा देता, तो वह खोला जा सकता था। बचने के प्रयत्न में अनायास चूहों से चक्र घूम गया और इस प्रकार बचने के उपाय का अन्वेषण उन्होंने कर लिया। यह सामान्य प्रक्रिया १६ प्रयोगों में दोहराई गई। इन प्रयोगों के मध्य चूहों ने जल्दी-से-जल्दी चक्र को घुमाना सीख

लिया। दरवाजा खोलने वाले चक्र को जाम कर दिया गया, ताकि उससे फिर दरवाजा नहीं खुले। उसके स्थान पर उत्तोलनदंड लगाया गया, जिसके दबाने से द्वार खुलता था। चूहों ने शीघ्र ही यह प्रतिक्रिया भी सीख ली।"

यह प्रयोग स्पष्ट करता है कि अन्य उद्दीपनों से भय-प्रेरक अनुबंधित किया जा सकता है, जैसे इस उदाहरण में सफेद बक्स से। तब अनुबंधित उद्दीपन प्रोत्साहन बन जाता है—एक ऋणात्मक प्रोत्साहन, जो व्यक्ति को प्रोत्साहन से मुक्त होने की आदत सीखने के लिए अभिप्रेरित करता है। जिस मनोवैज्ञानिक ने प्रयोग किया, वह परिणाम को 'अधिगत-अंतर्नोद' की संज्ञा देता है, जो इस सारे प्रक्रम को व्यक्त करने का एक सहज संक्षिप्त रूप है। किंतु, वास्तव में यह उचित संज्ञा नहीं है। संबंधित अंतर्नोद भय को सीखा नहीं गया, वह आघात के प्रतिक्रियास्वरूप अनधिगत प्रेरणा है। जो नवीन था, वही प्रोत्साहन था—सफेद बक्स—और उसे सीखा गया। अब वह भय को उत्तेजित करने लगा, यद्यपि अनुबंधन से पूर्व सफेद बक्स भय को उद्दीप्त नहीं करता था। इस भय-अंतर्नोद के प्रभाव के अंतर्गत चक्र को घुमाने और उत्तोलनदंड को दबाने की नवीन और अधिगत प्रतिक्रियाएँ भी हैं।

सफेद बक्स का अर्जित भय भाग कर काले बक्स में चले जाने का उपाय सिखला देता है।
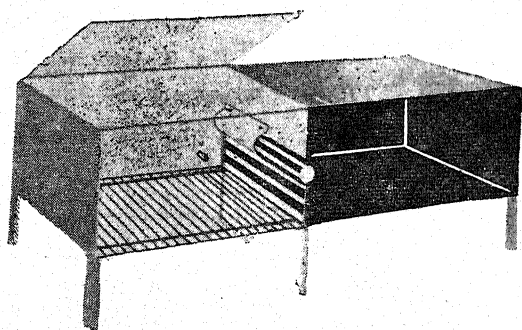
**चित्र ३.१६ चूहों में अर्जित भय के अध्ययनार्थ संयंत्र।**

यह विशिष्ट प्रक्रिया है। बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिनसे हम वयस्क होने पर भयभीत होते हैं, जबकि शैशवकाल में हम उनसे नहीं डरते थे। हमने अनुबंधन-प्रक्रिया द्वारा उनसे डरना सीखा। ये अधिगत भय अनेक घटनाओं में तीव्र प्रेरणात्मक होते हैं और हमें नई आदतें सीखने की अभिप्रेरणा देते हैं। भाव के अध्याय में हम अधिगत भय के अन्य उदाहरण देखेंगे और विस्तार से उन तरीकों पर विचार करेंगे, जिनसे भय प्रेरणात्मक हो सकता है।

## गौण लक्ष्य ( Secondary Goals ) :

अनुबंधन द्वारा हम केवल नई वस्तुओं और स्थितियों से भयभीत होना ही नहीं सीखते, वरन् हम नवीन धनात्मक लक्ष्यों को भी सीखते हैं। इसकी प्रक्रिया वही है, परंतु रूप भिन्न होता है। इसमें वस्तुओं और कार्यों से बचना सीखने के स्थान पर हम उन्हें ग्रहण करना और कार्य करना सीखते हैं। हम नव लक्ष्यों को अर्जित ( या ग्रहण ) करते हैं, ये ही गौण-लक्ष्य कहलाते हैं, पहले ये हमारे लक्ष्य नहीं होते। यदि कोई अवस्था नियमित रूप से प्रमुख लक्ष्य से पूर्व घटित होती रहे, तब यह अवस्था स्वयं भी लक्ष्य बन सकती है। उदाहरणार्थ, यदि माँ अपने बच्चे को हर बार रोने पर ( भूख के कारण ) उसे दूध पिलाने के लिए गोद में उठा लेती है तो थोड़े ही समय में बच्चा गोद में पहुँचने के लक्ष्य को ग्रहण कर लेता है और बिना भूख के भी रोना प्रारंभ कर देता है। इस प्रक्रिया को चिंपांजी पर किए गए कुछ प्रयोगों से स्पष्ट किया जा सकता है। ( Wolfe, 1936 )

"चिंपांजियों को सिखाया गया था कि अंगूर या द्राक्ष को चिंपोमेट (Chimpomat) नामक एक छोटी वैंडिग-मशीन में लकड़ी के सिक्के (टुकड़े) घुसाकर उन्हें कैसे निकाला जा सकता है ! ( चित्र ३.१७ ) प्रयोगकर्त्ता ने भूखे चिंपांजी को केवल इतना दिखा दिया कि चिंपोमेट के छेद में टुकड़े को कैसे डाला जाता है और इच्छित वस्तु को कैसे निकाला जा सकता है। चिंपांजियों ने इस क्रिया को बहुत जल्दी सीख लिया। हमारे कार्य के लिए जो अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, वह यह तथ्य है कि इस प्रारंभिक अधिगम के बाद, चिंपांजी स्पष्टतः उन लकड़ी के टुकड़ों के महत्त्व को समझने लगे और वे उस लकड़ी के लिए भी उतना ही परिश्रम करने लगे, जितना अंगूरों के लिए। एक बार इस प्रयोग में प्रयोगकर्त्ता ने उस लकड़ी के सिक्के को एक बहुत भारी बक्स के नीचे छिपा दिया। चिंपांजी उस भारी बक्स को अपने पिंजरे में खींच कर ले गए और वे उस लकड़ी के टुकड़े को खोज निकाले। वास्तव में, चिंपांजी उस भारी बक्स में से उन टुकड़ों को निकाल कर रख लेते, जबकि उनका उपयोग उस समय उन्हें नहीं करना था। वे केवल लकड़ी के सिक्के को एकत्रित करते रहते हैं और धैर्य से उपयोग का अवसर पाने की प्रतीक्षा करते हैं।

बाद में प्रयोगकर्त्ता ने प्रयोग को और जटिल बना दिया और चिंपांजियों को आहार-प्राप्ति के लिए लाल टुकड़े, पानी की प्राप्ति के लिए नीले टुकड़े और पिंजरे से बाहर निकल कर स्वच्छंद घूमने के लिए सफेद

टुकड़ों के प्रयोग को सिखाने लगा। चिंपांजी सीख भी गए। तब, उस समय की प्रमुख आवश्यकता को तृप्त करने के लिए चिंपांजी विशेष रंग की लकड़ी के टुकड़ों को प्राप्त करने का यथासंभव कठोर परिश्रम करते।''

धन और लकड़ी के सिक्कों की समानता स्पष्ट है; क्योंकि चिंपांजी उन लकड़ियों के लिए उसी प्रकार परिश्रम करते थे, जिस प्रकार मनुष्य धन के लिए करते हैं। धन वास्तव में, एक गौण लक्ष्य है, जिसके महत्त्व को हम सीखते हैं; क्योंकि इसका प्रयोग हमारी सहज प्रेरणाओं को तृप्त करने में हो सकता है, और बाद में अन्य वस्तुओं में भी, जो स्वयं गौण लक्ष्यों के रूप में अधिगत की जाती हैं, इसका प्रयोग होता है। यह सिद्धांत केवल धन तक ही सीमित नहीं है। प्रायः हर बात या हर स्थिति, जो बुनियादी प्रेरणाओं की तृप्ति से बराबर संबद्ध है, गौण लक्ष्य के रूप में सीखी जाएगी। यह सिद्धांत केवल धन या वस्तुओं पर ही नहीं, वरन् पद, उपलब्धि, मान-जैसे अपेक्षाकृत अस्पष्ट लक्ष्यों पर भी लागू होता है।

## सामाजिक मूल्य ( Social Values ) :

अर्जित किए गए कुछ मूल्य अन्य व्यक्तियों से संबंधित होते हैं और कुछ नहीं। जिनसे अन्य व्यक्ति संबद्ध होते हैं, उन्हें 'सामाजिक मूल्य' कहते हैं। उक्त प्रयोगों में चिंपांजियों ने लकड़ी के सिक्के का मूल्यांकन करना सीखा। एक बढ़ई अपने औजारों का, नाविक अपनी नाव का और समुद्र का बालक अपने खिलौनों का और कृषक अपनी जमीन का मूल्य समझता है। हम शीघ्र ही मनुष्यों द्वारा मूल्यांकन की जाने वाली वस्तुओं की सूची का गुणन कर सकते हैं। थोड़े से परिश्रम से हम अनेक सामाजिक मूल्य सोच सकते हैं—जैसे नियम-पालन, स्वच्छता, उचित वेशभूषा, स्कूल में सफलता, ईमानदारी, विनय, काम-संयम, बड़ों का सम्मान आदि। व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों, प्रयत्नों, परिश्रमों एवं मानव-व्यापारों की अनेक जटिल व्यवहारों पर ये सामाजिक मूल्य प्रभाव डालते हैं।

व्यक्ति निश्चय ही सामाजिक मूल्यों को अर्जित करता है; क्योंकि उसके जन्म के क्षण से ही अन्य लोग उसके खाने, गर्म रहने, गीला न रहने और आराम से रहने की आवश्यकताओं की पूर्ति में संलग्न रहते हैं। अतः, माता बालक के लिए सामाजिक मूल्य अर्जित करती है। कुछ दिनों के बाद जब बच्चे को इतनी शारीरिक सुरक्षा की आवश्यकता नहीं रहती, तब भी वह अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माता-पिता, भाइयों और बहनों पर निर्भर रहता है। ये ही व्यक्ति निर्धारित करते हैं कि उसे कब और कहाँ खेलना चाहिए, वह कब जा सकता है, उसे कौन से कपड़े पहनने हैं, उसे किन खिलौनों की आवश्यकता है, उसे मिठाई मिलनी चाहिए या नहीं

इत्यादि । इसमें आश्चर्य नहीं कि वह बहुत जल्दी अनेक सामाजिक मूल्यों और लक्ष्यों को सीख लेता है ।

**चित्र ३·१७ : एक चिंपांजी भोज्य-पदार्थ पाने के लिए टोकन का उपयोग कर रहा है। चिंपांजी ने भोज्य-पदार्थ प्राप्त करने लिए लकड़ी के सिक्के मशीन में डालना सीख लिया है। जैसे—कुछ फल। इस प्रकार यह ज्ञान हो जाने पर कि इन सिक्कों से खाने की चीजें प्राप्त होती हैं, वह सिक्कों की प्राप्ति के लिए अन्य उपाय करना सीख जाएगा।**

इनके अतिरिक्त अधिक या कम सामाजिक मूल्यों का अधिगम अनिवार्य है और हमें ध्यान रखना चाहिए कि उन्हें सिखाने के निमित्त व्यक्ति के लिए सोच-विचार कर शिक्षा-प्रक्रिया की व्यवस्था की जाती है। कथनी और करनी द्वारा माता-पिता सधैर्य अपने बच्चों को सिखाते हैं कि 'सही' क्या है और 'गलत' क्या है। संसार में साध्य किसे चुना जाए, किसे महत्त्व दिया जाए ? किसका परिहार किया जाए ? किससे प्यार और किससे घृणा की जाए। प्रत्येक माता-पिता मूल्य-संबंधी अपने दृष्टि-कोण को अपने बच्चे पर आरोपित करते हैं। इसके अतिरिक्त समाज की अपनी माँगें भी हैं। प्रथमतः, समाज अप्रत्यक्ष रूप से माता-पिता द्वारा अपने बच्चों को सिखाए गए मूल्यों के प्रकारों को कुछ सीमा तक सिखाता है। बाद में, जब बड़े होने पर बच्चा घर से बाहर अनेक अन्य लोगों के साथ मिलने-जुलने लगता है, तो समाज अपने मूल्यों को स्कूल, चर्च, साथियों, क्लबों, कार्यालयों और विविध सामाजिक कृत्यों, जिनमें वह व्यस्त रहता है, के माध्यम से आरोपित करता है।

मूल्यों के विकास में सामाजिक प्रभावों पर विचार करते हुए हमें भाषा के योगदान को भी स्वीकार करना चाहिए। शब्द उद्दीपन हैं, वे मूल्य ग्रहण कर सकते हैं और अन्य शब्दों, व्यक्तियों और विषयों तक उन्हें पहुँचा सकते हैं। अतः, एक बच्चे के प्रशिक्षण में 'ऐसा नहीं' शब्द दंड के समान निषेधात्मक मूल्य और 'अच्छा लड़का' या 'अच्छी लड़की' शब्द धनात्मक मूल्य ग्रहण करते हैं। ये दो शब्द तब दंड और पुरस्कार के स्थान पर प्रयोग किए जा सकते हैं। माता-पिता इनका उपयोग अपने बच्चे के विचार, मूल्य और भावी-व्यवहार का रूप देने में कर सकते हैं। समय-समय पर यह भी आवश्यक हो जाता है कि इन शब्दों से संबद्ध मूल्यों को जैव-दंड और पुरस्कारों से माता-पिता को तीव्र करना पड़े और माता-पिता प्रायः ऐसा करते भी हैं। किंतु, महत्त्वपूर्ण बात जिसे याद रखना चाहिए, वह यह है कि अंत में जब शब्द-मूल्य ग्रहण कर लेते हैं, वे नवीन मूल्यों को ग्रहण करने की संपूर्ण प्रकियाओं को सरल बना देते हैं। उदाहरणार्थ पोकर लकड़ियों की अपेक्षा शब्दों को अपने साथ ले जाना सरल होता है, अतः वे किसी भी स्थिति में पुरस्कार और दंड के रूप में, उपयोग में लाने के लिए सहज उपलब्ध होते हैं।

## सामाजिक तकनीक या प्रविधि (Social Technique) :

किसी व्यक्ति के निषेधात्मक और विध्यात्मक दोनों नवीन लक्ष्य ग्रहण करने पर ही अभिप्रेरक परिष्कृत नहीं होते, वरन् उन लक्ष्यों की प्राप्ति के नए अभ्यास को अपनाने से भी होते हैं। उपर्युक्त भय-अनुबंधन के उदाहरण में चूहे शीघ्र ही उत्तोलनदंड को बक्स से, जिससे वे डरना सीख चुके थे, दूर भागने के लिए दबाना सीख लेते हैं। इसी प्रकार अपनी क्षुधा-प्रेरणा को तृप्त करने के लिए चिंपांजी वैंडिंग-मशीन को चलाना सीख गए थे। प्रेरणाओं को तृप्त करने वाली क्रियाएँ पशुओं और मनुष्यों में जटिल रूप से चलती ही रहती हैं। कभी-कभी लक्ष्य तक पहुँचाने वाली ये अधिगत क्रियाएँ इतनी जटिल और उलझी हुई होती हैं कि यह बताना कठिन हो जाता है कि वास्तव में लक्ष्य क्या है। और, लक्ष्यप्राप्ति के लिए सीखी गई क्रियाओं को ही लक्ष्य मानने की सहज भ्रांति हो जाती है। यह विशेषतः सामाजिक व्यवहारों—ऐसे व्यवहार, जिनसे अन्य लोग संबंधित होते हैं— के लिए सत्य है।

एक मनोवैज्ञानिक ने (Bechterev, 1949), जिसने अनेक वर्षों तक जान्तव-व्यवहार का अध्ययन किया, एक कबूतर और एक घोड़े की कहानी कही : घोड़े के गले में बँधे झोले में कुछ दाने थे और कबूतर भूखा था। कबूतर घोड़े के सिर के चारों ओर मंडरा रहा था और उसकी किसी क्रिया से घोड़े ने भयभीत होकर कुछ दाने अपने

झोले से लेकर नीचे थूक दिए। कबूतर जमीन पर उतर आया और उन दानों को खा गया। कबूतर बहुत जल्दी इसे सीख गया। वैज्ञानिक ने देखा कि इस क्रिया को कबूतर तब तक दोहराता रहा, जब तक उसने पेट भर दाने नहीं खा लिए।

यह कहानी अंतर्नोदों की तृप्ति में सामाजिक प्रविधि के उपयोग को स्पष्ट करती है। कबूतर ने 'प्रतिक्रिया-प्राप्ति आदत' स्थिर की, घोड़े का दूसरे व्यक्ति के रूप में अपनी इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए उपयोग किया। स्पष्ट ही मनुष्य भी ऐसी सामाजिक प्रविधियों को सीखते हैं। उदाहरणार्थ, एक बच्चा, जो मिठाई प्राप्त करने के लिए क्रोध के आवेश का प्रयोग करता है, यदि उसका आवेश काम कर जाए, तो वह उसे आवेश का प्रयोग बहुत जल्दी सीख लेगा और मिठाई या अन्य किसी वस्तु की जरूरत होने पर वह आवेश प्रकट करेगा। यह उदाहरण बहुत सामान्य है कि माँ से आहार पाने के लिए बच्चा रोता है। ऐसे अनेक उदाहरण हम सोच सकते हैं।

पाश्चात्य समाज में या अन्य किसी सुसगठित समाज में, अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सामाजिक प्रविधियाँ जीवन का अनिवार्य अंग हैं। स्कूल में पढ़ने वाला बच्चा अपनी अध्यापिका का स्नेह-भाजन बनने की इच्छा से उसके लिए मशहूर किस्म के सेव ले जाता है। एक कर्मचारी वेतन-वृद्धि की आशा से अपने मालिक की चापलूसी करता है। विक्रेता अपने ग्राहक बनाए रखने के लिए उनके प्रति विनय और आदर प्रदर्शित करता है। एक विज्ञापक अपनी उत्पादित वस्तु के अल्प मूल्य और श्रेष्ठ गुणों का वर्णन अपने जीविकोपार्जन के लिए करता है। एक प्रचारक सूचना को इस ढंग से प्रस्तुत करता है कि अपने मित्र को अपनी ओर मिला लेता है और उन्हें अपने शत्रुओं के विरुद्ध कर देता है। ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि लोग अपनी जैवी और सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक सामाजिक प्रविधियों का प्रयोग सीख लेते हैं। हमारे समाज में हर वयस्क व्यक्ति को इस सत्य को जान लेना चाहिए कि वह ऐसी प्रविधियों का प्रयोग करता है और अन्य लोग उस पर भी उनका प्रयोग बराबर करते हैं।

## सामान्यीकरण और स्थिरीकरण (Generalization & Fixation) :

निरंतर गतिशील अधिगम में लक्ष्यप्राप्ति के लिए जो नए लक्ष्य और नई प्रविधियाँ विकसित होती हैं, उनमें दो प्रक्रियाएँ हैं, जो कभी-कभी महत्त्वपूर्ण होती हैं।

एक है 'सामान्यीकरण'। अधिगम के अध्याय में इस पर हम विस्तार से विचार करेंगे। यहाँ हम केवल इसके अर्थ को समझाएँगे और यह बताएंगे कि अभिप्रेरण

की परिष्कृति में इसका क्या महत्त्व है। सामान्यीकरण एक-सी मिलती-जुलती सब स्थितियों के प्रति एक-सी प्रतिक्रिया करनेवाली एक प्रवृत्ति है। एक उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि एक चूहे का भय श्वेत बक्स के प्रति अनुबंधित किया गया है, जैसा कि पूर्वकथित एक उदाहरण में किया गया था। यदि, अनुबंधन के फल-स्वरूप चूहा भूरे या बड़े या भिन्न आकार के बक्स से भयभीत होने लगे, तो हम कहेंगे कि भय का सामान्यीकरण हो गया। जबकि स्थितियाँ मिलती-जुलती होने पर भी भिन्न हैं पर चूहे की प्रतिक्रिया एक-सी ही है। अथवा, मान लीजिए कि चिंपांजी, जिन्हें चिंपोमेट मशीन चलानी सिखायी गई थी, मशीन से पत्थर निकालने पर भी वे लकड़ी के सिक्के से उसे चलाते रहेंगे। हम फिर कहेंगे, कि अधिगत प्रतिक्रिया मूल अधिगम से मिलती-जुलती है, पर भिन्न वस्तुओं के प्रति सामान्यीकृत हो जाती है।

सामान्यीकरण की प्रक्रिया कुछ जटिल अभिप्रेरित व्यवहार में होने वाली क्रियाओं में देखी जाती है। एक व्यक्ति, जो समुद्र के निकट जाने में सांघातिक रूप से भयभीत हो, अपने बचपन में कभी बाथ-टब में प्रायः डूबने के अनुभव का सामान्यी-करण करता है। अथवा एक व्यक्ति, जो दूसरे लोगों को, चाहे वे अध्यापक हों, बस में बैठे हुए अपरिचित लोग से या कोई हो, प्रसन्न करने में अभिप्रेरित व्यवहार करता है, संभवतः वह अपने पिता के प्रति किए गए अपने व्यवहार का सामान्यीकरण करता है, जिन्हें प्रसन्न करना बड़ा कठिन होता था और जो नाराज होते ही बराबर कठोर दंड देते रहते थे। अनुभवों से ऐसे उदाहरणों का सोचना भी कठिन नहीं है। सामान्यीकरण अधिकांश अधिगत प्रतिक्रियाओं की विशेषता है। एक बार एक प्रति-क्रिया सीख ली जाती है, यह अन्य अनेक वस्तुओं के प्रति, जो मूल वस्तु से एकदम मिलती-जुलती नहीं होती, होने लगती है। सामान्यीकरण मुख्यतः अधिगत भयपुञ्ज की विशेषता है। एक स्थिति में अर्जित भय का प्रायः अनेक स्थितियों में सामान्यी-करण हो जाता है। केवल अतिरिक्त अधिगम के द्वारा, एक व्यक्ति जब एक स्थिति और दूसरी स्थिति के अंतर का समझाना सीखता है, सामान्यीकरण को मूल अधिगम की स्थिति के अत्यंत समान स्थितियों तक सीमित करना संभव हो सकता है। सामान्यीकरण की क्रिया-प्रपंच अनेक स्थितियों और लक्ष्यों के प्रति हमारी प्रतिक्रियाओं को स्पष्ट करती है, जब कि उनको स्पष्ट करने का और कोई विशेष कारण नहीं मिलता।

स्थिरीकरण : दूसरी विचारार्थ प्रक्रिया है। कुछ सीमा तक यह सामान्यीकरण के विपरीत है। जैसा कि यहाँ तात्पर्य है, वैकल्पिक लक्ष्यों के समान होने पर भी,

यह प्रवृति है, जो कुछ निश्चित लक्ष्य ग्रहण करती है। एक प्राणी जब अपने अंतर्नोद तृप्त करना सीखता है और एक विशेष वस्तु द्वारा बार-बार संतोषजनक परिणाम प्राप्त करता है, तब वह उस विशेष वस्तु को स्वीकार कर लेता है और अन्य का परित्याग। परित्यक्त वस्तुएँ भी उतनी ही संतोषजनक सिद्ध हो सकती थीं। कुछ उदाहरण हम लें :

जब हम भूखे होते हैं, आहारप्राप्ति हमारा सामान्य लक्ष्य होता है। अनेक प्रकार के खाद्य-पदार्थ हैं, जो हमारी भूख को तृप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ यदि एक चूहे को बहुत समय तक दाने खिलाए जाएँ, तो साधारणत: वह चूर्ण भोजन बदलना पसंद नहीं करेगा, यद्यपि उसके रूप में थोड़ा-सा अंतर है, अन्यथा वह एक ही खाद्य-पदार्थ है। शाकाहार लेने वाले बच्चे मांसाहार की चाह नहीं करते और हममें से कुछ व्यक्ति मांसाहार को ही पसंद करना सीख लेते हैं। साथियों, ऋतुओं, खेलों, घरों आदि की पसंद में हम अनेक ऐसे उदाहरण खोज सकते हैं। एक अंतर्नोद को तृप्त करने में अनेक साधन समान रूप से महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं, किंतु पिछले अनुभवों ने जिन साधनों की उपादेयता प्रमाणित की है, हम उन्हें अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक पसंद करते हैं। इस प्रकार हम निश्चित साधनों को पसंद करना सीख लेते हैं, इससे चाहे हमारे प्रेरकों में परिवर्तन आ जाए।

### प्रेरणा की स्थानापन्नता ( Substitution of Drives ) :

जिन मनोवैज्ञानिकों ने जानवरों और बच्चों के गौण-लक्ष्यों पर प्रयोग किया है, वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यदि ये मूल (बुनियादी) अंतर्नोदों की तृप्ति द्वारा पोषित न हों, तो ये लक्ष्य बहुत समय तक लक्ष्य के रूप में स्थिर नहीं रहते। उदाहरणार्थ, यदि चिंपांजी को लकड़ी के सिक्के घुसाने के फलस्वरूप समय-समय पर हम आहार न दें, तो लकड़ी के सिक्के को पाने के लिए उसकी रुचि समाप्त हो जाएगी। इसी तरह सफेद बक्स से जिस चूहे का भय अनुबंधित किया गया है, यदि उसे बीच-बीच में आघात न दिया जाए, तो धीरे-धीरे उस बक्स से बचने की प्रवृत्ति समाप्त हो जाएगी। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं; क्योंकि हम मानव-व्यापारों के भी ऐसे उदाहरण उद्धृत कर सकते हैं। धन या अन्य वस्तुओं में हमारी रुचि समाप्त हो जाती है यदि वे व्यर्थ सिद्ध हों और हमारे किसी अभिप्रेरक की तृप्ति न करें।

दूसरी ओर, प्राणी कुछ लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए क्षुधा, पिपासा और ऐसी अन्य अधिक महत्त्वपूर्ण प्रेरणाओं के महत्त्व के समाप्त होने पर भी निरंतर कार्य करते रहते हैं। गरीब लड़का, जिसने अपनी भूख और चिंता से मुक्त होने के लिए प्रथम पैसा कमाया था, वह शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद भी, पर्याप्त

धन अर्जन करने पर भी दिन-रात धनोपार्जन में लगा रहता है। एक व्यापारी, जो अवकाशप्राप्ति की आयु के निकट पहुँच गया है, जिसके पास काफी पूँजी जमा है, उसे काम की आवश्यकता नहीं है, फिर भी वह काम करने की इच्छा रख सकता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। वास्तव में, हमारे जैसे समाज में, जहाँ अधिकांश शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है, वहाँ हर व्यक्ति के परिश्रम का अधिकांश ऐसे लक्ष्यों से संबंधित है, जिनका मूल प्रेरणाओं से बहुत ही कम संबंध है। ऐसा क्यों है ? इस प्रश्न का हम अभी कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सकते। एक सुझाव है कि गौण लक्ष्य, एक बार अर्जित हो जाने पर 'स्वायत्त-शासी क्रिया-परक्' (Functionally Autonomous) बन जाते हैं अर्थात् शारीरिक अंतर्नोदों की तृप्ति द्वारा प्रबलन (Reinforcement) प्राप्त किए बगैर बराबर क्रियारत रहते हैं, ऑलपोर्ट (Allport, 1937)। यह सुझाव अस्पष्ट है एवं यह तथाकथित 'सामान्य प्रेरणाओं' की शक्ति के संबंध में ज्ञान प्राप्त करने से पहले किया गया था, जिससे स्पष्ट कर दिया है कि एक अंतर्नोद दूसरे को सहायता देता है या दूसरे के लिए स्थानापन्न हो जाता है, और यही अधिक उपयुक्त और विश्वस्त है। एक लक्ष्य, जो प्रारंभ में एक अंतर्नोद की तृप्ति के लिए सीखा गया, पर वही बाद में अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण अंतर्नोद को भी तृप्त कर सकता है।

कुछ उदाहरण इसे स्पष्ट करेंगे। एक धनहीन दरिद्र लड़का लक्षाधिपति बनता है और शारीरिक तथा सामान्य दोनों प्रकार के अंतर्नोदों से कार्यरत रहता है। क्षुधामुक्त होने के लिए यद्यपि वह कार्य प्रारंभ करता है, पर धनोपार्जन गौण-लक्ष्य होता है। तदंतर अपने कार्य में उसे क्रिया-अंतर्नोद की तृप्ति मिलती है और जब कार्य अनेक नई स्थितियाँ उसके सामने प्रस्तुत करता है और उसके कौतूहल-अंतर्नोद को भी अपने साथ क्रियाशील कर लेता है, कार्य उसे अन्य लोगों के संपर्क में लाता है, जो उसके मित्र बन जाते हैं और इस तरह यह उसके अनुराग-अंतर्नोद को भी तृप्त कर सकता है। अन्य कारक भी कार्य कर सकते हैं, पर इतने से ही बात स्पष्ट हो जाती है। उसने लाखों रुपए कमाए और अब भी वह कार्य की ओर अभि-प्रेरित है। केवल इसलिए कि वह अब उसकी अन्य ऐसी अभिप्रेरणाओं को तृप्त करता है, जो सशक्त हैं और आहार एवं आवास की आवश्यकताओं की तरह सहज ही तृप्त होनेवाली नहीं हैं। अतः, जिन बातों को उसने प्रारंभ में एक अंतर्नोद की तृप्ति के लिए सीखा था, वे अब अन्य अभिप्रेरणाओं को भी तृप्त करती हैं। वह चाहे अभ्यासवश अपने से कहता रहे कि वह धनोपार्जन के लिए अभिप्रेरित है, किंतु वह अपने वास्तविक अभिप्रेरकों से अनभिज्ञ ही है।

## आयु-वृद्धि ( Aging ) :

हमने अभिप्रेरकों में बदल लाने वाले अनेक कारकों पर विचार किया है। जिन पर हमने अब तक विचार किया है, वे सब अधिगम कारक हैं। ऐसे भी कुछ महत्त्वपूर्ण कारक हैं, जो केवल आयु से संबंधित हैं। क्रिया-अंतर्नोद निश्चय रूप से आयु से संबंधित है और इसे हम बिल्ली के बच्चों, मानव-बच्चों और वयस्कों के उदाहरणों से प्रमाणित कर सकते हैं। यद्यपि अनेक वयस्क लोगों ने प्रयत्न किए, किंतु ऐसे बहुत कम हैं, जो किशोरों की क्रियाएँ लगातार कर सकें। जैसे-जैसे एक व्यक्ति वयस्क होता है, उसकी गति मंद हो जाती है, यद्यपि कुछ लोग काफी उम्र तक अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक क्रियाशील रहते हैं। यौन-अंतर्नोद भी आयु से संबंधित है। यह व्यक्ति के यौवन-काल से पूर्व जागृत नहीं होता और प्रौढ़ हो जाने के बाद लुप्त हो जाता है। यौन-अंतर्नोद में यह परिवर्तन शरीर में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों से ज्ञातव्य है। अन्य अंतर्नोद आयु से किस प्रकार प्रभावित होते हैं, यह स्पष्ट नहीं है, किंतु निश्चित रूप से जीवन भर अभिरुचियों में प्रगतिशील परिवर्तन होता रहता है और संभवत: इनमें से कुछ परिवर्तन अधिगम के कारण नहीं; वरन् आयु के कारण होते हैं।

## जटिल अभिप्रेरक ( Complex Motives ) :

शारीरिक और सामान्य अंतर्नोदों के अध्ययन एवं आयु तथा अधिगम द्वारा अभिप्रेरित व्यवहार के परिवर्तनों के तरीकों को जान लेने पर हम इस स्थिति में हैं कि जटिल अभिप्रेरकों पर विचार करें, जो प्रतिदिन लोगों के कार्यों और खेलों में मिलते हैं। मुख्य लक्ष्यों की प्राप्ति के तरीकों को सीखते हुए हम अनेक गौण लक्ष्यों की आशा कर सकते हैं। हम यह भी आशा कर सकते हैं कि अनेक अंतर्नोद और लक्ष्य अनेक तरीकों से इस प्रकार संबंधित है कि बहुत-सी अभिप्रेरणाएँ और लक्ष्य अनेक तरीकों से इस प्रकार संबंधित हैं कि अनेक गौण लक्ष्य एक मुख्य गौण लक्ष्य से जुड़े हैं। और, विलोमत: एक ही लक्ष्य से अनेक अंतर्नोद की तृप्ति भी हो सकती है।

अंतर्नोदों और लक्ष्यों का यह मिश्रण जटिल अभिप्रेरकों के वर्गीकरण की समस्या को असंभव नहीं, तो दुष्कर अवश्य बना देता है। यह उचित होता, यदि हम केवल मनुष्य में पाए जाने वाले अभिप्रेरकों की सूची बनाकर उनका वर्गीकरण कर सकते। वास्तव में मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार के वर्गीकरणों की खोज की है, जिनमें से कुछ का विवरण अगले अध्याय में दिया जाएगा। ऐसे वर्गीकरण विशेष प्रयोजनों के लिए उपयोगी होते हैं—जैसे व्यक्तित्व-परीक्षण निर्मित करने के लिए, लोगों की वैयक्तिक या व्यावसायिक समस्याओं पर परामर्श देने के लिए और ऐसी

ही अन्य बातों के लिए—मगर ये बहुधा यदृच्छ (Arbitrary) होते हैं। ऐसे बहुत अधिक तरीके हैं, जिनमें प्रेरणाएँ और लक्ष्य संबंधित हो सकते हैं और हर व्यक्ति में अपने ढंग से इनका गठन होता है। उदाहरणार्थ, एक ही लक्ष्य वाले दो व्यक्ति बिलकुल भिन्न अभिप्रेरणाओं को तृप्त कर सकते हैं या समान अभिप्रेरणाओं वाले व्यक्ति बिलकुल भिन्न लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

इसीलिए यहीं उचित होगा कि यहाँ मानवीय जटिल अभिप्रेरणाओं के वर्गीकरण की चेष्टा न की जाए। इसके बदले, हम कुछ प्रमुख अभिप्रेरकों पर विचार करें और देखें कि वे किस प्रकार प्रमुख अंतर्नोदों से उत्पन्न होते हैं और लक्ष्यों को अधिगत करते हैं। यह सीमित सूची भी असंबद्ध और बिलकुल स्वतंत्र नहीं है; क्योंकि हर अभिप्रेरक में एक या एक से अधिक अभिप्रेरकों से कुछ-न-कुछ समानता होती है। यह सूची केवल मनुष्य के कुछ सामान्य अभिप्रेरकों का चित्रांकन कर सकेगी।

संबद्धता ( Affiliation ) :

मनुष्य मुख्यतः सामाजिक समूह में रहने वाला प्राणी है। जाग्रतावस्था में वह अधिकांश समय अन्य लोगों के साथ व्यतीत करता है, जैसे--माता-पिता, परिवार, मित्र, पड़ोसी, क्लब के सदस्य आदि आदि। आधुनिक सभ्य समाज, लोगों को साथ-साथ काम करने, मनोरंजन और साथ रहने की सुविधा देता है। किंतु, ये उनकी संबद्धता-प्रवृत्तियों के कारण नहीं हैं। असभ्य समाज के लोग भी समूहों में रहने वाले ही हैं। प्रायः हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का साथ खोजता है, यद्यपि उस पर इसके लिए कोई दबाव नहीं डाला जा सकता।

एक प्रकार की संबद्धता का मुख्य आधार—विवाह—को समझना कठिन नहीं है; क्योंकि उसमें यौन-अंतर्नोदों का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। विवाह अंशतः यौन-अंतर्नोद की तृप्ति का साधन है, किंतु यह और भी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, जिनमें शारीरिक और सामान्य आवश्यकताएँ भी सम्मिलित हैं। इनमें से एक अनुराग्र-अंतर्नोद है, जिसका अनेक प्रकार की संबद्धता में समावेश है। क्लबों, चर्चों या विशेष-प्रतिष्ठित संस्थाओं के द्वारा अन्य जटिल अभिप्रेरक तृप्त हो सकते हैं, जैसे प्रतिष्ठा-अभिप्रेरक ( Status Motives ), जिसका विवरण नीचे दिया जाएगा। संसार की सभी मानवीय संस्कृतियों में इसीलिए संबंध स्थापित करने के भाव को हम पाते हैं। (अनेक पशुओं की भी यही विशेषता है)।

संबद्धता के बहुत निकट, और संभवतः इसी की एक उपशाखा 'पराश्रयी-आवश्यकता' (Dependency-need)। यह दूसरों पर आश्रित रहने वाली आवश्यकता या अंतर्नोद है, कोई देखभाल करे, कोई सहायता करे, किसी को अपना

बनाया जाए और उसे प्रेम किया जाए। किसी-न-किसी मात्रा में प्रत्येक व्यक्ति में यह अभिप्रेरणा है। कुछ व्यक्तियों में, जो बहुत कम संख्या में हैं, इतनी अधिक मात्रा में यह अभिप्रेरणा है कि वे दूसरों की सहायता के या आश्रय के बिना शायद ही कोई कार्य करें।

पराश्रयी अभिप्रेरक शिशुकाल और बाल्यकाल के प्रशिक्षणों से उत्पन्न होते हैं। हम सब असहाय अवस्था में इस विश्व में पदार्पण करते हैं और शिशुकाल, बाल्यकाल एवं किशोरकाल तक अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति, सही और गलत कार्य के निर्णय और अपने अधिकांश व्यवहार के नियंत्रण के लिए हम अपने माता-पिता पर आश्रित रहते हैं। इसलिए उनकी उपस्थिति, उनका सान्निध्य और साहाय्य हमारे गौण लक्ष्य बन जाते हैं।

जब हम घर और माता-पिता से दूर जाते हैं, तो आसानी से यह पराश्रय नहीं छोड़ते। हम उन पर आश्रित रहते हैं या अन्य किसी की खोज करते हैं, जो उनका स्थान लें। वयस्कों में बच्चों की तुलना में पराश्रयता कम होती है, किंतु दूसरों के आश्रय की आवश्यकता को पूर्णतः छोड़ देने वाले व्यक्ति भी बहुत ही कम होंगे।

(3) सामाजिक अनुमोदन ( Social Approval ) :

दूसरा सामान्य अभिप्रेरक है, अपने कार्यों के लिए सामाजिक अनुमोदन प्राप्त करना और उन कार्यों को न करना, जिनसे सामाजिक विरोध उत्पन्न हो। चरम सीमा पर पहुँच कर यह अभिप्रेरक उस संस्था द्वारा, जिसका कि व्यक्ति सदस्य है, बाध्यकारी अनुरूपता का रूप ले लेता है। वह हर समय यही निश्चय करता रहता है कि समाज द्वारा क्या अनुमोदित हुआ है और क्या नहीं तथा उसी के अनुसार वह कार्य करने का भरसक प्रयत्न करता है।

इस अभिप्रेरक का मूल भी बाल्यकालीन उस प्रशिक्षण में है, जब माता-पिता बच्चों के लिए यह स्थापित करते हैं कि क्या गलत है और क्या सही। बच्चा अपने अन्य-अंतर्नोदों की तृप्ति की आशा से माता-पिता को प्रसन्न करना सीखता है अथवा वह दंड के भय से भी सीखता है। प्रसन्न करने की इच्छा सरलता से अन्य लोगों के प्रति भी सामान्यीकृत हो जाती है।

वास्तव में बालक स्कूल जाता है और किशोरावस्था की ओर बढ़ता है, वह अनुभव करता है कि यदि वह अपने अध्यापकों और साथियों को प्रसन्न करने में असफल रहा, तो उसे दंड मिल सकता है, वह अपमानित किया जा सकता है अथवा इसके विपरीत, वह अनुभव करता है कि यदि वह अपने साथियों का अनुमोदन प्राप्त

कर सकेगा, तब वह अधिक सुविधा से अपनी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कर सकता है। अतः, सामान्यीकृत गौण लक्ष्य के रूप में सामाजिक अनुमोदन सीखा जाता है।

**प्रतिष्ठा ( Status ) :**

बहुत लोग अपने साथियों के बीच कुछ प्रतिष्ठा पाने के लिए अभिप्रेरित होते हैं। अपने परिचित लोगों में सम्मानित होने के लिए और किसी प्रकार भी हेय न गिने जाने के लिए वे अभिप्रेरित होते हैं। इस प्रेरक पर उचित विचार होना चाहिए। अपनी जाति में या अन्य संबंधित क्षेत्रों में यथासंभव ऊँची प्रतिष्ठा पाने की इच्छा इसकी चरम सीमा है। साधारणतः अपने व्यवहार को निर्धारित करने के लिए व्यक्ति प्रतिष्ठा-क्रम में अपने स्थान को जानने की इच्छा रखता है और साथ ही यह भी जानना चाहता है कि अन्य व्यक्तियों की तुलना में वह कितना अधिक अथवा कम प्रतिष्ठित है। एक समाज की प्रतिष्ठा-प्रणाली (Status-system) दूसरे समाज से भिन्न होती है। एक व्यक्ति की विशिष्ट प्रतिष्ठा-अभिप्रेरणा केवल उसके निजी गठन पर ही नहीं, वरन् उसके समाज के स्वरूप पर भी निर्भर करती है।

प्रतिष्ठा-अभिप्रेरणा विभिन्न रूप ग्रहण कर सकती है। श्रेणीबद्ध समाज में स्थान प्राप्त करना इसका एक रूप है। उच्च स्थान को प्राप्त करने की चेष्टा केवल सैन्य-वृत्ति में ही नहीं, अनेक मानवीय समाजों में भी देखी जाती है। समूहों में रहने वाले जानवरों में भी इसे देखा गया है ( Schjelderup Ebbe, 1935)। एक बाड़े में रहने वाली मुर्गी बहुत जल्दी 'दाना चुगने' का मूल्य निर्धारित कर लेती है। सबसे प्रधान एक मुर्गी अन्य मुर्गियों के भी दाने चुग लेगी। दूसरी ओर, सबसे अप्रधान मुर्गी को चुगने का कोई अधिकार ही नहीं—उसके दाने को भी अन्य मुर्गियाँ ही चुग लेती हैं। मध्य में ऐसी मुर्गियाँ भी हैं, जो अपने से प्रधान मुर्गियों के दाने नहीं चुगेंगी, पर अपने से दुर्बल के चुग लेंगी। 'चुगने' और 'स्थान' के प्रतिरूप मानव-संबंधों में प्रायः सर्वव्यापी हैं। हम इसे साथ खेलने वाले बच्चों में, अफसरों की श्रेणी में, व्यवसायियों के समूह में, औपचारिक भोज में मेहमानों को बैठाने के क्रम में और जीवन की अनेक छोटी-छोटी दैनिक घटनाओं में, देख सकते हैं।

प्रतिष्ठा अभिप्रेरक प्रेरक के अपने से संबंधित उदाहरण हैं—'सम्मानेच्छा' और 'अधिकारेच्छा'। सम्मान की इच्छा का अर्थ है, अपने से तुलना किए जाने वालों से श्रेष्ठतर होने की आवश्यकता। दैनिक जीवन में सम्मानप्राप्ति और उपलब्धि की अनेक पद्धतियाँ हैं। पाँच या छह वर्ष के बच्चे के लिए बर्फ पर चलने का साधन नए या विशेष नमूने का सूट सम्मान का प्रतीक हो सकता है। कुछ समय बाद सम्मान उपलब्ध करने के तरीकों में व्यायाम एवं शूरता का प्रवेश हो जाता है।

वेशभूषा, धन, गाड़ी, घर, वयस्कों में ऐसे प्रतीक हैं जो उन्हें औरों से श्रेष्ठ होने के लिए प्रेरित करते हैं।

शक्ति की आवश्यकता भी सम्मान की आवश्यकता के ही समान है, पर ठीक बिलकुल वैसी ही नहीं है। कुछ ऐसे लोग हैं, जो सम्मान छोड़ देंगे या उसकी उपेक्षा करेंगे। पर, अपने साथियों पर शक्ति या अधिकार पाने के लिए प्रयत्नशील रहेंगे। उदाहरणार्थ, उस व्यापारी के संबंध में सोचें, जो चुपचाप और बिना किसी प्रदर्शन के औद्योगिक-नगर बना लेता है, अथवा उस वृत्तिक राजनीतिज्ञ पर विचार करें, जिसका अपना कोई सार्वजनिक कार्यालय नहीं है, किंतु जो कार्यालय वालों पर 'अधिकार जमाता' रहता है। ऐसे लोग प्रतिष्ठा की इच्छा को प्रदर्शित करते हैं। मगर, प्रतिष्ठा उपलब्ध करने की इच्छा रखने वालों से इनकी पद्धति भिन्न होती है।

हर समूह, जाति और समाज की चाहे वे पुरातन या आधुनिक हों, अपनी प्रतिष्ठा-प्रणाली होती है। यह प्रणाली किस प्रकार उत्पन्न होती है और कार्य करती है, इसका विवरण आगे के अध्याय में दिया गया है। जहाँ तक एक व्यक्ति का संबंध है, प्रतिष्ठा एक गौण लक्ष्य है, जो अनेक बुनियादी अंतर्नोदों को तृप्त करता है। विशेष प्रतिष्ठित लोग निश्चित धनराशि की, विशेष ढंग के रहन-सहन की और निश्चित व्यवहार पाने की आशा करते हैं। अतः, न्यून और अधिक प्रतिष्ठा यह निश्चित करती है कि व्यक्ति अपने अन्य अंतर्नोद का तृप्त कर सकेगा या नहीं। यह व्यक्ति को इस भय से भी मुक्त कर देती है कि कहीं वह अपनी प्रतिष्ठा से प्राप्त होने वाले संतोष को न गवाँ दे।

## सुरक्षा (Security) :

आज के जटिल समाज में विशेषतः सुरक्षा या उसके अभाव की भावना भी एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक है। यह वह भावना है, जो व्यक्ति को विश्वास दिलाती है कि जो कुछ स्वायत्त है, वह सुरक्षित है और जैसे अब तक वह सुरक्षित रहा है, भविष्य में भी रह सकेगा। इसके विपरीत अरक्षा में भय का भूत सवार रहता है कि 'उसकी चीजें निःशेष न हो जाएँ, जो कुछ उसके पास है, उसे वह कहीं खो न दे।' अतः, अरक्षा भय पर आधारित है और मुख्यतः इस भय पर कि वह अपने अन्य अभिप्रेरकों को तृप्त नहीं कर सकेगा। यह भय कि जो कुछ उसका है, वह सब (उसकी प्रतिष्ठा, पत्नी का प्रेम, उसका धन या उसके कार्यों के प्रति सामाजिक अनुमोदन, उसकी जीवनोपार्जन की योग्यता आदि) अरक्षित हो सकता है, अतः उसकी बुनियादी अभि-प्रेरणाओं की तृप्ति की योग्यता भी अरक्षित है।

ऐसे समाज में, जो पाश्चात्य संस्कृति से संयोजित हो, एक व्यक्ति अनेक लोगों पर और सामान्य स्थितियों पर अपनी सुरक्षा के लिए निर्भर करता है। इसका अर्थ है कि किसी निरपराध व्यक्ति की सुरक्षा भी खतरे में पड़ सकती है और उसे पुनः प्राप्त करने के अवसर से भी वह वंचित रखा जा सकता है। इसी कारण से सुरक्षा का लोगों के जीवन में अनेक ऐसे प्रेरकों से अधिक महत्त्व है—जिन पर हम विचार कर चुके हैं—और व्यक्तिगत दुःखों तथा सामाजिक अशांति के लिए भी यह उत्तरदायी है। अध्याय १८ में हम देखेंगे कि नौकरीप्राप्त कर्मचारियों के मस्तिष्क में सुरक्षा-प्रेरक सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, संभवतः वेतन, प्रतिष्ठा या कार्य करने की अन्य प्रेरणाओं से भी अधिक इसका महत्त्व उनके लिए होता है।

उपलब्धि ( Achievement ) :

कुछ संस्कृतियों में, विशेषतः संयुक्त राज्य (अमेरिका) में उपलब्धि एक महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरक है। यह 'कुछ' पूरा करने, अपने कार्य में सफलता पाने और असफलता से दूर रहने का प्रेरक है। हमें सिखाया जाता है कि अवसरसुलभ इस भूमि पर हर व्यक्ति किसी-न-किसी दिशा में सफल हो सकता है—चाहे वह अपार धनराशि अर्जित करे, चाहे कलाकार बने, या राजनीति के क्षेत्र में जाए—परंतु, इसके लिए केवल कठोर परिश्रम ही अपेक्षित है। सफलता का बहुत बड़ा पुरस्कार मिलता है। माता-पिता अपने बच्चों पर स्कूल में अच्छे नंबर लाने के लिए अंकुश रखते हैं, तब उन्हें कॉलेज में भेजते हैं और अंत में किसी व्यवसाय या कार्य में लगाते हैं। अन्य अनेक देशों में यह स्थिति नहीं है।

अन्य जटिल अभिप्रेरकों के समान उपलब्धि-प्रेरक की शक्ति भी प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न होती है। कुछ लोगों में सफल होने की बहुत तीव्र और शक्तिशाली अभिप्रेरणा जागृत होती है—उनकी आकांक्षा बहुत ऊँची होती है—जबकि दूसरों में यह अपेक्षाकृत दुर्बल होती है। सामान्यतः अमेरिकन युवकों और वयस्कों में यह एक व्यापक अभिप्रेरक है।

अभिप्रेरक कितना शक्तिशाली है, कुछ अंशों में यह इस पर निर्भर करता है कि व्यक्ति कितना सफल रहा। प्रयत्न-पथ में असफल होने पर साधारणतः एक व्यक्ति पहलवान, विद्वान या संगीतज्ञ होने की आकांक्षा नहीं कर सकता। यदि उसे साधारण सफलता मिले, तो वह अपने लक्ष्य का स्तर उससे नीचा ही निर्धारित करेगा, जो वह अधिक महत्त्वपूर्ण सफलता पाने पर करता।

साधारणतः लोग अपने लक्ष्य का स्तर, जितना वे उपलब्ध कर सकते हैं, उससे थोड़ा ऊँचा ही रखते हैं। यह स्वस्थ दृष्टिकोण है। कुछ लोगों में आकांक्षा

और कर्म करने के स्तर में बहुत अधिक अंतर भी होता है। संभवतः वे अपने माता-पिता और साथियों के कथनानुसार अपने लक्ष्य निर्धारित करते हैं। कुछ लोग अपनी कार्य-योग्यता से बहुत कम स्तर पर लक्ष्य निर्धारित करते हैं। यह अंतर इसलिए होता है कि ऐसे व्यक्ति असफलता से भयभीत रहते हैं। अप्राप्ति या विफलता के भय से वे अपने लक्ष्य को ऊँचा निर्धारित नहीं करते।

उपलब्धि-प्रेरक का गत कुछ वर्षों में गंभीरता से अध्ययन किया गया है (Mc Clelland et. al., 1953)। व्यक्ति में इसके मापन के साधन हमारे पास हैं कि किन व्यक्तियों में उपलब्धि-प्रेरक शक्तिशाली है और किन व्यक्तियों में दुर्बल। उपलब्धि-प्रेरक का मूल, बाल्यकाल में और बच्चे द्वारा पाए गए प्रशिक्षण में खोजा जा सकता है। जिस व्यक्ति में उपलब्धिक-प्रेरक शक्तिशाली है, सामान्यतः उसका पालन ऐसे घर में हुआ होगा, जहाँ स्वातंत्र्य को बहुत महत्त्व दिया जाता रहा हो। माता-पिता अपने बच्चे से अपनी समस्याएँ स्वयं सुलझाने के लिए बहुत बचपन से आशा करते हैं। अतः, स्वतंत्रता-प्रशिक्षण से ही बालक में उपलब्धि-प्रेरक की शक्ति प्रारंभ हो जाती है अथवा स्वतंत्रता-प्रशिक्षण कम-से-कम बालक को अपने विविध अभिप्रेरकों को तृप्त करने के निर्णय की स्वतंत्रता देता है।

अभी जिन प्रेरकों की चर्चा की गई है, उन पर विस्तार से आगे के अध्यायों में विचार किया जाएगा, जहाँ उनके व्यक्तित्व और सामाजिक तथा व्यावसायिक समस्याओं के संबंध पर भी सोचा जाएगा।

## अचेतन अभिप्रेरक ( Unconscious Motives ) :

इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व एक और बात कहनी है। कभी-कभी मानव-अभिप्रेरक अचेतन होते हैं। इससे हमारा अभिप्राय केवल यही है कि मनुष्य प्रायः यह नहीं जानते कि उनका वास्तविक अभिप्रेरक या उनका लक्ष्य क्या है। संभवतः वे अपने व्यवहार के लिए कुछ उपयुक्त कारण बता सकेंगे, किंतु प्रायः वे वास्तविक अभिप्रेरणात्मक कारक को बताने में असमर्थ रहेंगे।

इसका एक उत्तर उपर्युक्त चर्चा से संभवतः स्पष्ट है। जब एक छोटे से व्यवहार में अनेक अंतर्नोद और लक्ष्य जुड़े हों, तब यह किसी के लिए भी, यहाँ तक कि कुशल प्रेक्षक के लिए भी, जो व्यक्ति के जीवन-वृत्त से परिचित है, यह सही बता सकना कि उसके कार्य के पीछे कौन-सा अभिप्रेरक है ( या कौन से अभिप्रेरक हैं ), संभव नहीं होता।

दूसरा उत्तर है कि अभिप्रेरक, एक अर्थ में, स्वभाव या आदत होते हैं। हम सब ऐसी आदतें अर्जित कर लेते हैं, जिनके बारे में हम अधिकतर अनजान होते हैं।

उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति अपने नाखून काटे, कान खींचे, मेज थपथपाए या कक्षा के कमरे के सामने कुछ कदम आगे और कुछ पीछे जाए तथा इन व्यवहारों की ओर उसका ध्यान आकर्षित न किया जाए, तो वह इनसे अनभिज्ञ-सा रहता है। जटिल अभिप्रेरक भी इसी तरीके से कार्य करते हैं। ये अभिप्रेरक आदतों के समान सरलता से नहीं जाने जा सकते और इसीलिए उनकी ओर ध्यान आकर्षित करने की संभावना भी कम होती है।

तीसरा उत्तर है कि प्रायः प्रेरक अप्रिय परिस्थितियों, जिन्हें हम भूलना चाहते हैं, में गढ़े जाते हैं। दूसरे शब्दों में, हम अपने कुछ प्रेरकों को जानना नहीं चाहेंगे। फलस्वरूप हम 'अवरोधन' प्रक्रिया, जिसके विषय में आगे विचार करेंगे, के द्वारा जानबूझ कर उन्हें भूलते हैं। संक्षेप में, अवरोधन एक प्रक्रिया है, जो अपने अभिप्रेरकों के संबंध में हमें भुलावे में डालती है; क्योंकि हम उनको वास्तविक इच्छा से स्वीकार करना नहीं चाहते। परिणामतः उनके वास्तविक रूप को बदलकर या उन्हें मानने से अस्वीकार कर, हम उन्हें बिलकुल छिपा देते हैं।

## सारांश

१. अभिप्रेरण एक चक्र के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसके तीन भाग हैं—(अ) एक अंतर्नोद, जो उद्दीप्त करता है (आ) साधनभूत व्यवहार, जो आगे बढ़ाता है (इ) एक लक्ष्य तक, जो अंतर्नोद का तृप्त करता है।

२. अंतर्नोदों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है, १. बुनियादी या मूल अंतर्नोद, जो अनधिगत हैं; और २. गौण अंतर्नोद जो अधिगम द्वारा अर्जित किए जाते हैं। मूल अंतर्नोदों का उप-विभाजन है : (क) शारीरिक अंतर्नोद, जो शारीरिक स्थितियों से उत्पन्न होते हैं, और (ख) सामान्य अंतर्नोद। जैसे—क्रिया, भय कौतूहल और अनुराग।

३. शारीरिक प्रक्रियाएँ, जो शरीर में संतुलन बनाए रखती हैं, 'समस्थिति' कहलाती हैं। जब यह संतुलन बिगड़ता है, तो फलस्वरूप हुई शारीरिक आवश्यकता नियत व्यवहार को जागृत करती है। जैसे—आहार, जल या साथी की खोज, जिनके मिलने पर संतुलन पुनः व्यवस्थित हो जाता है।

४. क्षुधा और पिपासा-जैसे अंतर्नोद शरीर के अंतर्गत होने वाली रसायनिक क्रियाओं पर निर्भर करते हैं। ये दशाएँ प्रायः बहुत निश्चित आवश्यकताएँ या क्षुधाएँ पैदा करती हैं; क्योंकि बच्चे और जानवर उस विशेष प्रकार के आहार को ही चुन सकते हैं, जो उनकी आवश्यकता के अनुकूल होता है।

५. निम्न जाति के जानवरों में यौन-अंतर्नोद यौन-हारमोन पर निर्भर रहते हैं, किंतु मनुष्यों में इस हारमोन के अभाव में भी ये अंतर्नोद वर्त्तमान रह सकते हैं। मातृक-अंतर्नोद के लिए भी यही सत्य है।

६. सामान्य शारीरिक क्रिया क्षुधा या रति-जैसे अंतर्नोदों की उपस्थिति में बढ़ जाते हैं। शारीरिक क्रिया स्वयं भी एक प्रेरण है, अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त करने पर यह तृप्त होती है और नवीन प्रतिक्रियाएँ सीखने के लिए यह एक आधार-शिला है।

७. कौतूहल-अंतर्नोद नवीन उद्दीपनों से उद्दीप्त होता है और हस्त-प्रयोगी अंतर्नोद वस्तुओं के हस्तादि-प्रयोग का अवसर पाने पर। दोनों नवीन प्रतिक्रियाएँ सीखने के लिए अभिप्रेरण के रूप में काम आते हैं। नवीन स्थिति या वातावरण भय भी उत्पन्न कर सकता है और कौतूहल भी।

८. अनुराग-अंतर्नोद माता के सदृश वस्तु से संबंध-सुख के लिए अनधिगत अंतर्नोद प्रतीत होता है। इसकी तृप्ति भय को कम करती है और कौतूहल की वृद्धि में सहायता देती है।

९. जानवरों में अंतर्नोदों की तुलना से प्रकट होता है कि मातृक-अंतर्नोद उनमें पिपासा, क्षुधा और रति-अंतर्नोदों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है और ये अंतर्नोद कौतूहल या अन्वेषण-प्रेरणों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हैं।

१०. जब एक अंतर्नोद बहुत अधिक अतृप्त रहता है, तो वह अन्य अंतर्नोदों पर हावी हो जाता है और उसकी क्रियाएँ उसे तृप्त करने की दिशा में कार्य करने लगती हैं। संवेदनात्मक उद्दीपनों को जब न्यूनतम मात्रा में कर दिया जाता है, तो उसका परिणाम होता है—विभ्रम, बेचैनी और ध्यान केंद्रित करने की क्षमता को खोना। संवेदनों का अभाव मनुष्यों के द्वारा यह अधिक समय तक सहन नहीं किया जा सकता है।

११. एक अंतर्नोद के प्रभाववश व्यक्ति सीखता है, कार्य करता है और निरंतर उचित लक्ष्य की ओर बढ़ता है। कार्य सीखता हुआ प्राणी नवीन लक्ष्यों को अर्जित करता है। वास्तव में, जब प्राणी लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयत्न करता है, तो उस काल में जो स्थितियाँ वर्त्तमान होती हैं, वे स्वयं अधिगत या गौण लक्ष्य बन जाती हैं।

१२. अधिगम के द्वारा अनेक लक्ष्य या मूल्य अर्जित किए जाते हैं। भय भी अधिगम के द्वारा अर्जित किया जा सकता है; क्योंकि लोग, विशेषतः माता-पिता,

मानव-अधिगम से इतनी निकटता से संबंधित हैं कि मनुष्य द्वारा अर्जित अनेक लक्ष्य 'सामाजिक मूल्य' मात्र होते हैं।

१३. वे क्रियाएँ, जो एक अंतर्नोद को तृप्त करने के लिए सीखी जाती हैं; बाद में उनका उपयोग अन्य अंतर्नोदों की तृप्त के लिए भी होता है। अतः, मानव-व्यस्कों में अंतर्नोद और लक्ष्य दोनों जटिल रूप से परस्पर संबंधित हैं।

१४. मनुष्य में कुछ सामान्य अर्जित या गौण अंतर्नोद हैं—संबंध, सामाजिक-अनुमोदन, प्रतिष्ठा, सुरक्षा, और उपलब्धि—ये अभिप्रेरक प्रेरक मनुष्य की जानकारी के बिना ही बहुधा कार्यशील होते हैं।

## पठनार्थ सुझाव :

Berlyne, D. E. Conflict Arousal and Curiosity, New York : McGraw-Hill, 1960.

अधिगम में अभिप्रेरण के महत्त्व का व्यवस्थित विवेचन, जिज्ञासा और अनुसंधानात्मक प्रेरणों पर बल।

Bindra, D. Motivation : A Systematic Reinterpretation, New York : Ronald, 1958.

अभिप्रेरण और अधिप्रेरण की समस्याओं के सैद्धांतिक विश्लेषण पर पुस्तक।

Cannon, W. B. Bodily Changes in Pain, Hunger, Fear and Rage (2nd. ed,) New York : Appleton-Century-Crofts—1929.

क्षुधा और पिपासा के कुछ शारीरिक कारकों पर सैद्धांतिक प्रयोगों का विवेचन।

Ford C. S., and Beach, F. A. Patterns of Sexual Behaviour, New York, Hoeber-Harper, 1951.

जंतुओं में और विभिन्न मानव-समाजों में यौन-अभिप्रेरणों और व्यवहारों का विस्तृत वर्णन।

Rlineberg, O. Social Psychology (2nd. ed.) New York : Holt, Rinehant & Winston; 1954.

मानव के सहज-व्यवहार की समस्या का आलोचनात्मक विश्लेषण और सामाजिक अभिप्रेरण के तथ्यों का सारांश।

McClelland, D. C. Studies in Mativaion, New York : Appleton-Century-Crofts, 1955.

अभिप्रेरण के क्षेत्र का या व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाले लेखों का संकलन।

Miller, N. E. Learnable Drives and Reward. In S. S. Stevens (ed.) Hand-Book of Experimental Psychology. New York : Wiley, 1951.

अंतर्नोद के अर्जन पर किए गए प्रयोगों का सारांश।

Morgan, C. T. and Stellar, E. Physiological Psychology (2d ed.) New York : McGraw—Hill, 1950, Chaps 17—20.

अभिप्रेरण में शारीरिक कारकों का सारांश प्रस्तुत करने वाली पुस्तक।

Young, P. T. Motivation of Behaviour, New York : Wiley, 1936.

इस पुस्तक में अभिप्रेरण के विभिन्न तथ्यों का विवेचन है।

अध्याय ४

# भाव और संवेग

पाश्चात्य संस्कृति के हम अधिक सभ्य सदस्य अपने को ऐसा बुद्धिमान व्यक्ति समझते हैं, जो अपने अभिप्रेरकों को बौद्धिक ढंग से तृप्त करने की चेष्टा करते हैं। कुछ सीमा तक हम उन्हें उस रूप में तृप्त करते भी हैं। किंतु हम संवेगात्मक भी हैं—जितना हम अपने को समझते हैं, उससे कहीं अधिक संवेगात्मक। वस्तुतः हमारे अधिकांश दैनिक व्यापार, भाव और संवेगों से प्रभावित होते हैं। सुख और दुःख, उत्तेजना (आशा) और निराशा, प्रेम और भय, आशा और असफलता—ये सब और ऐसे ही अनेक भाव हैं, जिन्हें हम प्रतिदिन या प्रति सप्ताह अनुभव करते हैं।

इन भावों और संवेगों के बिना जीवन अत्यंत नीरस हो जाता है। हमारी भावनाएँ हमारे जीवन में स्वाद और रंग भरती हैं। ये ऐसे मसाले हैं, जिनके बिना जीवन स्वादहीन आहार की तरह रह जाएगा। शनिवार रात्रि की तारीख की हम पहले से ही सुखद कल्पना करते हैं, हम प्रसन्नता और संतोष से, उस अच्छे भाषण को, जो हमने दिया था, याद करते हैं और हम अपने बचपन की किसी घोर निराशा की घटना को भी रोचकता से स्मरण करते हैं। दूसरी ओर, जब हमारे भाव बहुत घने होते हैं और बहुत सरलता से उत्तेजित किए जा सकते हैं, तो वे हमें पर्याप्त कठिन स्थिति में डाल सकते हैं। वे हमारे निर्णय को गलत बना सकते हैं, हमारे मित्रों को शत्रु बना सकते हैं और हमें बेचैन कर सकते हैं, मानो हम ज्वर से तड़प रहे हों।

संवेग के व्यावहारिक महत्त्व के बावजूद उसकी वैज्ञानिक खोज सरल नहीं है। हम सहजरूप से संवेगात्मक स्थिति को वश में या दुबारा उसी रूप में उपस्थित नहीं कर सकते। न ही हमेशा हम उसका वस्तुपरक (बाह्य) प्रेक्षण कर सकते हैं; क्योंकि इसके सूक्ष्म अंतरों को समझना प्रायः कठिन होता है। इस पर, लोगों को संवेगों को छिपाना सिखाया जाता है, इसलिए हम केवल देख कर यह नहीं जान सकते कि वे कौन-सा संवेग अनुभव कर रहे हैं। इन्हीं कारणों से संवेग-संबंधी वैज्ञानिक ज्ञान की गति बहुत धीमी है और अभी भी इसकी पूरी जानकारी से हम बहुत दूर हैं।

यह अध्याय, संवेग के संबंध में क्या जाना जा चुका है, उसका परिचय प्रस्तुत करता है। हम इसमें संवेगात्मक विकास, संवेग के अभिप्रेरणात्मक पक्ष,

इसके शारीरिक आधार और इसकी अभिव्यक्ति पर विचार करेंगे। इनमें से कुछ विषयों पर इस पुस्तक में अन्यत्र विस्तार से विचार किया गया है। अभिप्रेरण के रूप में संवेग पर तीसरे अध्याय में विचार किया गया है तथा पुनः पाँचवें अध्याय 'कुंठा और अंतर्द्वंद्व' में किया जाएगा एवं बाद में अधिगम का अध्ययन करते समय फिर हम इस पर विचार करेंगे। संवेग के शारीरिक स्वरूप, विशेषतः मस्तिष्क के वे भाग जो संवेग से संबंधित हैं, पर विस्तार से १९वें अध्याय में विचार किया जाएगा। अतः, यह अध्याय केवल संवेग के सामान्य परिचय के रूप में है।

जिस प्रकार वैज्ञानिक ढंग से संवेग का अध्ययन कठिन है, उसी प्रकार से परिभाषित करना भी कठिन है। संवेग के अंगरेजी पर्यायवाची शब्द 'इमोशन' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'अभिव्यक्त होना' (To move out)। इसका अभिप्राय है किसी भीतरी बात की बाह्य अभिव्यक्ति, यह संवेग का एक पक्ष है। 'बाह्य अभिव्यक्ति' संवेग के दूसरे पक्ष को भी स्पष्ट करती है—वह है इसकी अभिप्रेरणात्मक विशेषता। संवेग हमारे व्यवहार को एक बड़े अंश में अभिप्रेरण-शक्ति प्रदत्त करता है। इसके अतिरिक्त, संवेग एक अनुभव है, इसकी हम अनुभूति करते हैं। अंत में, यह शारीरिक स्थिति है, जिसका प्रेक्षण हम उपयुक्त अभिलेखन-यंत्र से कर सकते हैं। संवेग के इन सब पक्षों पर हम इस अध्याय में विचार करेंगे। इसकी सामान्य परिभाषा के लिए हमारे लिए यही उचित है कि हम वेबस्टर (Webster) का अनुकरण करें। संवेग प्राणी की सामान्य शांत अवस्था से इस प्रकार का परिवर्तन है जिसमें उग्र भाव, निश्चित क्रिया के लिए आवेग, कुछ विशेष आंतरिक शरीरगत प्रतिक्रियाएँ, निर्दिष्ट अवस्थाओं में से कोई एक—भय, क्रोध, वितृष्णा, विषाद, हर्ष, आश्चर्य, लिप्सा आदि समाविष्ट हैं।

## संवेगात्मक विकास (Emotional Development) :

हर व्यक्ति के जीवन में अन्य प्रतिक्रियाओं और योग्यताओं के ही समान, संवेगों का भी इतिहास है। यह इतिहास आनुवंशिक भिन्नताओं से आरंभ होता है, जो संवेगात्मक प्रवृत्तियों को निर्धारित करता है। परिपक्वता के साथ-साथ यह इतिहास आगे बढ़ता है। इसी काल में धीरे-धीरे व्यक्ति के व्यवहार के संवेगात्मक प्रतिरूप उसी रूप में परिपक्व होते हैं, जिस रूप में उसकी मूल चालक-योग्यताएँ और इस परिक्वता के साथ पर्याप्त शिक्षण भी होता है। जैसे-जैसे व्यक्ति बढ़ता है, वह नवीन स्थितियों का संवेगात्मक उत्तर देना और अपने संवेगात्मक व्यवहार को परिष्कृत करना सीखता है। इस अध्याय में हम इन कारकों का संवेगात्मक विकास पर पड़ने वाले प्रभावों का निरूपण करेंगे।

आनुवंशिकता (Inheritance) :

यह पर्याप्त स्पष्ट है कि संवेगात्मकता का कुछ आनुवंशिक आधार है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि कुछ विशेष जाति के जंगली और पालतू जानवरों की संवेगात्मकता में बहुत अंतर होता है। उदाहरणार्थ, भूरे चूहे, भेड़िए और शेर बहुत उग्र रूप से संवेगात्मक होते हैं, जब कि सफेद चूहे, बिल्लियाँ और कुत्ते अपेक्षाकृत असंवेगात्मक होते हैं। यह सत्य है कि यदि प्रारंभ से ही प्रयत्न किया जाए तो जंगली जानवर कुछ सीमा तक पालतू बनाए जा सकते हैं, किंतु पालतू होने पर भी वे शायद ही कभी उतने असंवेगात्मक हो सकें, जितने सामान्य पालतू जानवर होते हैं। व्यक्तियों की संगति में पूर्णतः पाले जाने पर भी जंगली जानवरों की अनेक उपजातियाँ, जैसे चिंपांजी, युवावस्था तक आते-आते खतरनाक हो जाती हैं। इसके विपरीत, यदि साधारणतः पालतू जानवर, जैसे बिल्ली और कुत्ते, मनुष्यों की संगति से दूर पाले जाएँ, तो वे अपेक्षाकृत उग्र हो जाते हैं। फिर भी वे स्वभावगत जंगली जानवरों की अपेक्षा अधिक सहजरूप से पालतू बनाए जा सकते हैं।

आनुवंशिक संवेगात्मकता के उदाहरण ऐसे उपाख्यानात्मक प्रमाणों पर आधारित नहीं है। प्रयोग-रूप में संवेग-संबंधी आनुवंशिक कारकों का अध्ययन किया गया है। कुछ वर्ष पूर्व जंगलीपन और पालतूपन की तुलना जंगली भूरे चूहे और प्रयोगशाला के सफेद चूहे में की गई थी (स्टोन, १९३२)।

> "जीवन के प्रारंभ के कुछ महीनों में सफेद चूहा नम्र व्यवहार से काफी पालतू हो जाता है और प्रयोगकर्त्ता पर किसी प्रकार का क्रोध प्रकट नहीं करता। दूसरी ओर जंगली भूरा चूहा, पालतू बनाने के तरीकों से कुछ सुधरता है किंतु वह सदा भावप्रवण और उग्र ही रहता है। थोड़ा सा उत्तेजित करने पर वह आक्रमण करने और काटने को तैयार रहता है। इन दोनों के संकरण से जो बच्चे होते हैं, उनमें कुछ सफेद चूहे का सहज स्वभाव पाते हैं और कुछ भूरे चूहे की उग्रता। जंगली चूहे के रोएँ भूरे दिखाई देते हैं; क्योंकि ये दो रंगों के बालों के मिश्रण से होते हैं, एक हल्का भूरा रंग और दूसरा गहरा भूरा जो प्रायः काले के ही समान होता है। ये दोनों रंग आनुवंशिक दृष्टिकोण से पृथक् किए जा सकते हैं। सफेद और जंगली भूरे चूहों के संकरण में यदि बच्चा भूरा रंग प्राप्त करता है तो वह जंगली होगा, यदि वह काले रंग का या रंगहीन (सफेद रंग के बालों वाला) होता है, तो वह पालतू होगा। अतः, काले चूहों को विकसित करना संभव हुआ। वे प्रायः सफेद चूहों के ही समान पालतू हैं या पालतू बनाए जा सकते हैं और प्रयोगशालाओं में उनका काफी उपयोग अब होता है।"

दूसरे प्रयोग में (हॉल, १९३८), जिसका उल्लेख दूसरे अध्याय में हुआ है, प्रयोगशाला की विविध कॉलनी से चुने चूहों पर खुले मैदान में परीक्षण किया गया :

> "खुला मैदान, एक विस्तृत क्षेत्र है, जो प्रायः भय उत्पन्न करता है। यह तथ्य चूहों को यहाँ लाते ही उनके मल-मूत्र निकलने से प्रमाणित हो चुका है। इस संवेगपूर्ण व्यवहार का १४५ चूहों पर प्रतिदिन दो-मिनट परीक्षण करके कई दिनों तक परिमापन किया गया। परवर्त्ती दिनों में चूहे उस स्थिति के अभ्यस्त हो गए और उनके भय की मात्रा कम होती गई। इन १४५ चूहों में सबसे अधिक संवेगात्मक ७ चुहियों का सबसे अधिक संवेगात्मक ७ चूहों के साथ संभोग हुआ। इसी तरह ७ बहुत कम संवेगात्मक चुहियों का ७ बहुत कम भावुक चूहों के साथ संभोग हुआ। इस प्रकार का अंतःप्रजनन कई पीढ़ी तक चला। पहली पीढ़ी में इसके परिणाम बहुत प्रभावशाली थे। संवेगात्मक चूहों के बच्चे असंवेगात्मक चूहों के बच्चों की अपेक्षा काफी अधिक भावुक थे। वास्तव में प्रथम समूह के आँकड़े दूसरे समूह से सात गुना अधिक थे।"

ये प्रयोग असंदिग्ध रूप से इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि उग्रता और भय चूहों में आनुवंशिकता द्वारा निर्धारित होते हैं। यही परिणाम अन्य जानवरों, विशेषतः कुत्तों में भी पाया गया है (स्कॉट, १९५८)। दुर्भाग्य से इसका प्रयोग गंभीर रूप से मनुष्यों पर नहीं हुआ है। कुछ तो इसका कारण यह है कि अन्य प्रयोगों की ही तरह मनुष्यों पर आनुवंशिक प्रयोग करना कठिन होता और कुछ इस ओर लोगों ने ध्यान भी नहीं दिया। फिर भी, इस समस्या पर किया गया एक प्रयोग मिलता है (जोस्ट और सोन्टग, १९४४)।

> "६ से १२ वर्ष के बच्चों पर तीन-वर्ष तक प्रयोग किया गया। विविध शारीरिक स्थितियों, जिनका संवेगों से संबंध है, का परिमापन किया गया, जैसे त्वचीय क्षमता, नाड़ी और श्वास-क्रिया की गति, लारस्राव यद्यपि परिमापन-संवेग के परिरूप नहीं हैं, वे अनुमानतः उससे सह-संबंधित हैं। इस प्रयोग में ६ जोड़े समरूप यमज और सहोदर भी शामिल थे। परिमापन के सह-संबंध की गणना कुछ उसी तरीके से की गई थी, जिस तरीके से हम बुद्धि के सह-संबंध की गणना पहले बता चुके हैं। परिणाम इस प्रकार थे—
>
> समरूप यमज —.४३—.४९
>
> सहोदर —.२६—.४०"

सह-संबंध का विन्यास शारीरिक परिमापनों के लिए भिन्न है। सह-संबंध बहुत ऊँचा नहीं है, संभवतः; क्योंकि समय समय पर शारीरिक स्थितियों का मापन पर्याप्त

रूप से भिन्न होता है, किंतु यमजों और सहोदरों के ये मापन बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। यह तथ्य भी, कि सहोदरों की अपेक्षा समरूप यमजों में यह अधिक ऊँचा होता है, संवेग में शारीरिक क्रियाओं में आनुवंशिकता के संबंध को पुष्ट करता है।

इस प्रकार के संकेत मिलते हैं कि संवेग कम-से-कम आंशिक रूप में मनुष्यों और जानवरों में एक आनुवंशिक विशेषता है। मनुष्यों में संवेगात्मक विकास पर अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है, जिससे यह मालूम हो सके कि किस मात्रा तक यह आनुवंशिक है और किस सीमा तक यह अधिगत की जाती है।

## संवेगों का विभेदीकरण :

जिसने भी व्यवस्थित रूप से बालक की संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं के विकास का अध्ययन किया है, वह जानता है कि इस विकास का खास प्रतिमान स्पष्ट रूप से झलकता है। विभिन्न प्रेक्षकों में इनके विस्तारपूर्वक वर्णन में प्रकट होगा, इसका उत्तर थोड़ा-बहुत अलग-अलग होगा। किंतु, संवेगों के सामान्य विकास की रूपरेखा स्पष्ट है। यह चित्र ४.१ में दिखाया गया है, जो संवेगात्मक विकास के प्रारंभिक व्यवस्थित अध्ययन को स्पष्ट करता है (ब्रिजेज, १९३२)। हम संक्षेप में इस प्रकिया का विवरण भी देंगे।

संवेगात्मक विकास एक वृक्ष के सदृश है, जिसका उत्तेजनारूपी तना शाखा-प्रशाखाओं में निरंतर विभाजित होता है और प्रत्येक शाखा एक भिन्न संवेगात्मक अभिव्यक्ति का निरूपण करती है।
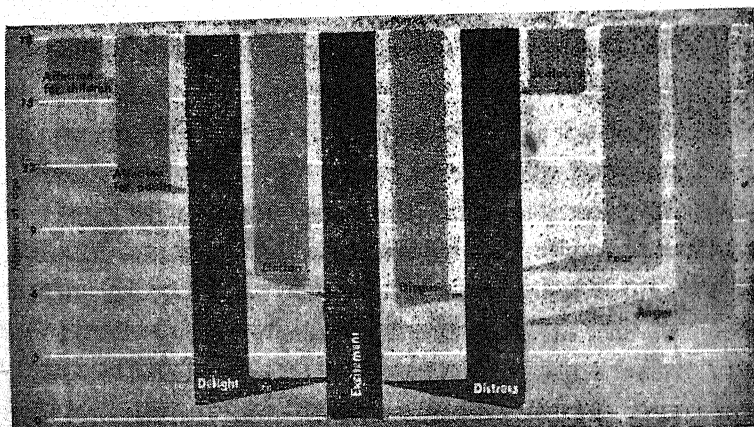
**चित्र ४.१ शिशु में संवेगात्मक अनुक्रियाओं का विकास पहचाने जा सकने वाली विभिन्न अभिव्यक्तियाँ जिस क्रम में विकसित होती हैं, चित्र में प्रदर्शित की गई हैं।**

शिशु इस संसार में रोते हुए आता है और बीच-बीच में जब वह भूखा या कष्ट में होता है, तो भी वह रोता है। यह आंतरिक शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति अथवा कष्ट के प्रति एक जन्मजात प्रतिक्रिया है। 'बाह्य स्थितियों' की प्रतिक्रियाओं पर विचार करें, तो हम देखेंगे कि नवजात शिशु में केवल एक ही संवेगात्मक प्रतिक्रिया स्पष्ट होती है, वह है सामान्य 'उत्तेजन'। इस प्रतिक्रिया में अंगों का अव्यवस्थित रूप से घुमाना, बाँह का हिलाना और फेंकना होता है। किसी विशेष उद्दीपन के प्रति यह कोई निश्चित प्रतिक्रिया नहीं है, वरन् वातावरण के अचानक परिवर्तन से यह होने लगती है।

शिशु-जीवन के प्रथम माह में या ६ सप्ताह में इस अस्पष्ट उत्तेजन का स्थान कुछ विशेष संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ लेने लगती हैं। प्रथम प्रतिक्रिया जो प्रकट होती है उसे 'विपन्नता' कहते हैं। इसके अंतर्गत जन्म से होने वाला रुदन आ भी सकता है और नहीं भी, किंतु इसके (विपन्नता के) लक्षण हैं—मांसपेशियों का तनाव और श्वास रोकना। कुछ समय बाद 'प्रसन्नता' भी स्पष्ट होने लगती है। इसके लक्षण हैं मुसकाना, किलकारी और मांसपेशियों को शांत रखना। अतः, जब तक बच्चा ६ सप्ताह या २ माह का होता है दो सामान्य संवेग—विपन्नता और प्रसन्नता, हर्ष और विषाद, अथवा आप उन्हें जो भी नाम दें—प्रकट होते हैं, जिन्हें वह सदा जीवन में अनुभव और अभिव्यक्त करता है। यह विकास यदि पूर्णतः नहीं हो, तो भी प्रायः पूर्ण परिपक्वता से संबंधित है।

जैसे-जैसे शिशु बड़ा होता है, उसमें विविध संवेगामत्क प्रतिक्रियाएँ विकसित होती हैं। उदाहरणार्थ, तीन माह की अवस्था में शिशु अप्रिय स्थिति का उत्तर विपन्नता के सामान्य संकेतों से देता है, किंतु लाड़-प्यार, दुलारना, गुदगुदाना, झुलाना आदि का उत्तर मुस्करा कर और सामान्य प्रसन्नतापूर्ण संकेतों से देता है। उसके बाद संवेग तीव्र गति से स्पष्ट होने लगते हैं, और दो वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते बच्चे में भिन्न-भिन्न स्थितियों के प्रति भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाओं के अनेक प्रकार विससित हो जाते हैं। यह विकास 'सुख और दुःख की सामान्य स्थितियों को स्पष्ट या परिष्कृत करना' भी कहा जा सकता है। इनके विभिन्न प्रतिमान किस क्रम से और किस आयु के आसपास प्रकट होते हैं, इसे चित्र ४·१ में दिखाया गया है। एक बच्चे से दूसरे बच्चे में विकास के क्रम और आयु में अंतर होता है, इसीलिए इस चित्र को जानबूझ कर अपूर्ण रखा गया है।

## संवेगात्मक विकास में योग देने वाले कारक :

संवेगों को विकसित करने में परिपक्वता और अधिगम दोनों का सहयोग असंदिग्ध है। गतीय अथवा पेशीय विकास के ज्ञान के आधार पर हम अनुमान कर

सकते हैं कि प्रारंभिक अवस्था में परिपक्वता का अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व है और बाद में अधिगम का। दूसरी ओर हम यह विश्वास भी कर सकते हैं कि संवेग के प्रकट होने का समय मुख्यतः परिपक्वता द्वारा निर्धारित होता है और उसमें अधिगम अथवा प्रशिक्षण के द्वारा विशेष शीघ्रता नहीं लायी जा सकती। इन अनुमानित निर्णयों को सिद्ध करने योग्य अभी हमारे पास मनुष्यों पर किए गए प्रयोगों की उपयुक्त दत्त-सामग्री नहीं है। बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था के संवेगात्मक विकास के परवर्त्ती क्रम निश्चित रूप से मुख्यतः अधिगम द्वारा नियंत्रित होते हैं। इस काल में संवेगात्मक व्यवहार के परिवर्तनों से संबंधित कारकों का विवरण आगे दिया गया है।

बालक की योग्यताएँ :

विशेषतः गतीय-क्रियाओं और भाषा के क्षेत्र में—निरंतर बढ़ती हैं। प्रारंभ में जो कार्य वह नहीं कर सकता, उसके प्रति वह हताश हो जाता है। वह खिलौने तक नहीं पहुँच सकता, वह जहाँ पहुँचना चाहता है वहाँ चढ़ नहीं सकता और अक्सर वह अपनी इच्छा को व्यक्त भी नहीं कर सकता। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, वह अपने अधिक-से-अधिक कार्य संपन्न करने लगता है और शारीरिक कुंठा उसके संवेगात्मक व्यवहार के कारणों में कम होने लगती है।

बालक का परिचय अपनी दुनिया के व्यक्तियों और वस्तुओं से भी दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता है। प्रारंभ में उसका परिवेश सीमित होता है। वह केवल अपनी माता को और अपने परिवार के लोगों को देखता है। वह अधिक लोगों, वस्तुओं या जानवरों को नहीं देखता। इसलिए अनेक चीजें उसके लिए अपरिचित होती हैं, और उन्हें देखने पर अपरिचय-युक्त भय की प्रतिक्रिया उस पर होती है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, उसके परिचय का क्षेत्र भी बढ़ता जाता है और अपरिचित वस्तुओं की संख्या दिन-प्रतिदिन कम होती जाती है। अतः, संवेगात्मक व्यवहार का यह उद्गम—सीमित परिवेश बच्चे की आयु के साथ कम महत्त्वपूर्ण होता जाता है।

दूसरी ओर, बालक संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को सीखने की अधिक सुविधाएँ प्राप्त करता है। वह प्रायः अप्राकृत भयों को, प्रत्यक्ष अनुकूलन और अपने माता-पिता अथवा भाई-बहनों के अनुकरण—दोनों तरीकों से, सीखने का अवसर प्राप्त करता है। वह इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के संवेगात्मक कौशल को भी सीखने का अवसर पाता है। उदाहरणार्थ, जब उसकी इच्छाएँ भग्न हो जाती हैं, तो वह आवेश में क्रोध प्रकट करता है। अधिगम की ये सुविधाएँ उसको संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं के कोष को बढ़ाती हैं, वे भावों को उत्पन्न करने वाली स्थितियों को बदल देती हैं और विस्तृत करती हैं।

आयु में बढ़ता हुआ बच्चा नए उद्देश्य और नए लक्ष्य सीखता है। इससे उसके हताश और संवेगात्मक होने की संभावनाएँ बढ़ती हैं। वह सब तरह की वस्तुओं—साइकिल, कपड़े, धन, सामाजिक अनुमोदन—को पाना सीखता है। किशोरावस्था को प्राप्त करने तक बच्चे के लिए, सामान्य प्रकार के दो लक्ष्य, जो आर्थिक स्वतंत्रता से और सामाजिक अनुमोदन से प्राप्त होते हैं, विशेष महत्त्व रखते हैं। दूसरी बात, बच्चा अपने संवेगों को बश में करना और नियंत्रित करना सीखता है। माता-पिता का बच्चे के संवेगात्मक शोरगुल से चिढ़ना स्वाभाविक है। अतः वे प्रारंभ से ही दंड और विरोध द्वारा इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति को नियंत्रित करना सिखाते हैं। अध्यापक और बड़े लोग भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं। फलस्वरूप बच्चा अपने भावों को इस प्रकार अभिव्यक्त करना, छोड़ना या छोड़ने की चेष्टा करना सीखता है।

## संवेगात्मक अभिव्यक्ति में परिवर्तन :

बालक पर किए गए ये विविध दबाव संवेग को उत्पन्न करने वाली स्थिति एवं उसकी अभिव्यक्ति के प्रकार, दोनों को ही परिवर्तित कर देते हैं। शिशुकाल से किशोरावस्था तक भावाभिव्यक्ति में अनेक परिवर्तन होते हैं। अब हम इन प्रमुख परिवर्तनों पर विचार करेंगे।

युवकों और वस्यकों की अपेक्षा बच्चों में संवेगों का प्रदर्शन कहीं अधिक होता है। यदि काफी समय तक आप बच्चों के बीच रहें, तो बार-बार कुछ मिनटों के बाद आपको बच्चों का किसी-न-किसी प्रकार का कहकहा या शोरगुल सुनायी देगा। पहले शायद आप उनकी खुशी की तीव्र आवाज सुनेंगे, थोड़ी देर बाद उनके तीव्र क्रोध का स्वर या रोना सुनायी देगा। थोड़ी-थोड़ी देर बाद किसी-न-किसी स्पष्ट संवेग की अभिव्यक्ति द्वारा वातावरण में हलचल उपस्थित हो जाता है। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं, ये आवेशपूर्ण अभिव्यक्तियाँ कम होती जाती हैं, किंतु इनके कम होने में कुछ भाग बड़े लोगों के अनुमोदन का भी है, विशेषतः जब वे लड़ते या रोते हैं।

बच्चों में संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ क्षणिक होती हैं, किंतु युवकों एवं वयस्कों में वे दीर्घकालीन होती हैं। एक छोटा बच्चा प्रायः अशांत हो जाता है और शीघ्र ही उस अशांति से वह मुक्त भी हो जाता है। भय और क्रोध की स्थिति उत्पन्न करने वाले कारण के दूर होते ही उसका भय एवं क्रोध भी शीघ्र ही दूर हो जाता है। बाद में, विशेषतः युवावस्था में, ऐसा नहीं होता। क्रोध उद्विग्नता में बदल जाता है और उद्विग्नता कुछ समय तक बनी रहती है; भय, संकोच, कायरता आर

डर में परिवर्त्तित होता है। इस परिवर्तन का कुछ कारण यह है कि युवक को अपने भावों को नियंत्रित करना व रोकना सिखाया गया है। इस परिवर्तन का दूसरा कारण यह भी है कि उसकी प्रगतिशील बौद्धिक योग्यता उसे अपने संवेगात्मक समस्याओं पर सोचने और विचारने योग्य बना देती है। संभवतः हारमोन-संबंधी परिवर्त्तन भी इसमें हेतु रूप में योग देते हैं।

बच्चे के संवेगों में गहनता के क्रम का मूलतः अभाव रहता है। संवेगात्मक प्रतिक्रिया या तो पूर्णतः प्रकट होगी अथवा बिलकुल नहीं। एक तुच्छ-सी स्थिति भी उसमें तीव्र हँसी या उदासी उसी मात्रा में उत्पन्न करेगी, जितनी कोई गंभीर स्थिति। किंतु बच्चे के बढ़ने के साथ-साथ संवेगों में क्रमबद्धता आने लगती है, तब एक साधारण स्थिति थोड़ा-सा चिड़चिड़ापन उत्पन्न कर देगी। लेकिन, उससे कोई तीव्र आवेश प्रकट न होगा। गहन स्थितियाँ भी भयानक परिणामों से बच जाती हैं। इसकी संभावना है कि बच्चा जिसे महत्त्वपूर्ण समझता है, वह माता-पिता को महत्त्वपूर्ण न लगे, परंतु बड़ा बच्चा अपनी प्रतिक्रियाओं को महत्त्वपूर्ण दिखाई देने वाली स्थितियों के अनुरूप महत्त्व का क्रम देता है।

## संवेगात्मक परिस्थितियाँ ( Emotional Situations ) :

संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ संवेगात्मक विकास के पथ को परिवर्त्तित कर देती हैं। इस परिवर्तन को स्पष्ट करने से पूर्व हमें भाव के तीन वर्गों को समझ लेना चाहिए—सुख, भय और क्रोध। शिशुकाल के प्रारंभ में ही पायी जाने वाली प्रसन्नता का दूसरा नाम सुख है। भय और क्रोध के प्रतिमान शिशु की चार से सात माह की अवस्था में विपन्नता से भिन्न होने लगते हैं।

## सुख :

अनेक प्रकार की वस्तुएँ हमें सुख देती हैं, किंतु वे सब एक सामान्य सिद्धांत के अंतर्गत आती हैं : किसी अभिप्रेरणा की तृप्ति अथवा किसी लक्ष्य की उपलब्धि की प्रतिक्रिया सुख है। यह सिद्धांत कौतूहल और अनुसंधान-जैसी बुनियादी प्रेरणाओं पर भी लागू होता है और सामाजिक अनुमोदन, पद-प्राप्ति आदि जैसी गौण प्रेरणाओं पर भी।

बच्चों में सुख के लक्षण हैं, जब वे शारीरिक आराम की अवस्था में होते हैं, तब दिखाई देते हैं। अगर बच्चे का पेट भरा है, उसके कपड़े सूखे हैं, वह गर्म है, उसके कहीं पिन नहीं चुभ रहा है, तो वह प्रायः आराम से लेटता है, मुसकराता है और किलकारी भरता है। दूसरे या तीसरे महीने में उसकी प्रसन्नता दूसरे लोगों के चेहरे देखने और दुलार की आवाज सुनने पर प्रकट होती है। इसके बाद उसकी प्रसन्नता अभिव्यक्त होती है जब वह कोई नया कौशल करता है। जैसे वह खिलौने

को प्राप्त करता है और उसे चलाता है या कोई उसके साथ अ'''झाँ का खेल खेलता है। सामान्यत: जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, वे ऐसी परिस्थितियों से सुख प्राप्त करते हैं, जो नवीन हों, पर भयप्रद नहीं। ये उनका मनोरंजन करती हैं तथा उनके प्रयत्नों को कुछ सीमा तक सफल भी बनाती हैं।

मुसकराना और हँसना सुख की विशेष अभिव्यक्तियाँ है। वे भय और क्रोध की विभिन्न अवस्थाओं के ही समान अभिव्यक्त होती हैं (वाशबर्न, १९२९)। स्पष्ट है कि मुसकराने से पहले बच्चे का तंत्रिका-तंत्र कुछ परिपक्व अवश्य होना चाहिए; क्योंकि बच्चा जब तक दो माह का नहीं होता, मुसकान प्रकट नहीं होती। उसके बाद कुछ समय के लिए मुसकान गुदगुदाने और थपथपाने की प्रतिक्रिया के रूप में प्रकट होती है। उसके उपरांत वह अभिव्यक्त होती है किसी रोचक ध्वनि या किसी विचित्र हलचल के होने पर—जैसे माता-पिता अपनी बाँह हिलाएँ, अपने सिर के बल खड़े हों या खिलौनों को अपने चारों ओर बच्चों के मनोरंजनार्थ घुमाएँ।

जैसे ही अनुराग-अंतर्नोद परिपक्वक होता है, बच्चा अपने बड़ों की निकटता पाकर प्रसन्न होता है—उनसे सटकर बैठता है, उनकी पीठ पर चढ़कर घोड़ा बनाता है, उनके पूरे शरीर पर चढ़ता है, इत्यादि। जब कौतूहल और अन्वेषण-अंतर्नोद विकसित होते हैं, बच्चा चीजों को तोड़ने-फोड़ने में सुख प्राप्त करता है, खिलौनों से खेलता है, उनकी खोज करता है और अन्य ऐसी ही क्रियाएँ करता है। किशोरावस्था के आने तक उसके अनेक गौण लक्ष्य बन जाते हैं और लड़का या लड़की विविध प्रकार की सामाजिक क्रियाओं में, शारीरिक कसरतों की उपलब्धि, स्कूल या अन्य ऐसी बातों में सुख पाता है।

### भय :

अन्य अध्यायों में पहले ही इस ओर संकेत किया जा चुका है कि अनधिगत भय का कारण मुख्यत: नई चीजें होती हैं। इस कथन को अब यहाँ कुछ स्पष्ट करने की आवश्यकता है। बच्चों में भय का कारण वस्तुओं की केवल नवीनता नहीं है, वरन् उनका अकस्मात् या अप्रत्याशित रूप से उपस्थित होना भी है। उदाहरणार्थ, यह आवश्यक नहीं है कि एक तीव्र ध्वनि हमेशा भय उत्पन्न करे ही, किंतु यदि वह 'अप्रत्याशित' या अचानक प्रकट होने लगे, तो भय अवश्य उत्पन्न करेगी। इसी तरह, भूसा भरे हुए जानवर या नकली चेहरे-जैसी विचित्र वस्तुएँ यदि अप्रत्याशित रूप, एकाएक प्रकट हों, तो अवश्य ही भय उत्पन्न करेंगी। अत:, बच्चे के भय का उद्दीपन है- विचित्र वस्तु का सहसा और अप्रत्याशित रूप से प्रकट होना।

जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, काल्पनिक रूपों से अकेले रहने, अंधकार और संभाव्य शारीरिक कष्टों से, दूसरे शब्दों में आशंकाओं से—वे भयभीत हो सकते हैं।

भिन्न अवस्थाओं में भय उत्पन्न करने वाली कुछ स्थितियों की तुलना चित्र ४.२ में दिखाई गई है। बाल्यावस्था में आगे चलकर बच्चे विशेषतः सामाजिक अवमानना और उपहास—सामाजिक आशंकाओं से भयभीत होते हैं और बचपन में डराने वाली तीव्र ध्वनियाँ या विचित्र वस्तुएँ फिर उसे बहुत कम भयभीत करती हैं।

शिशु ध्वनियों और अपरिचित वस्तुओं से सर्वाधिक भयभीत होते हैं; बड़े बच्चे जंतुओं और कष्ट देने की धमकियों से।
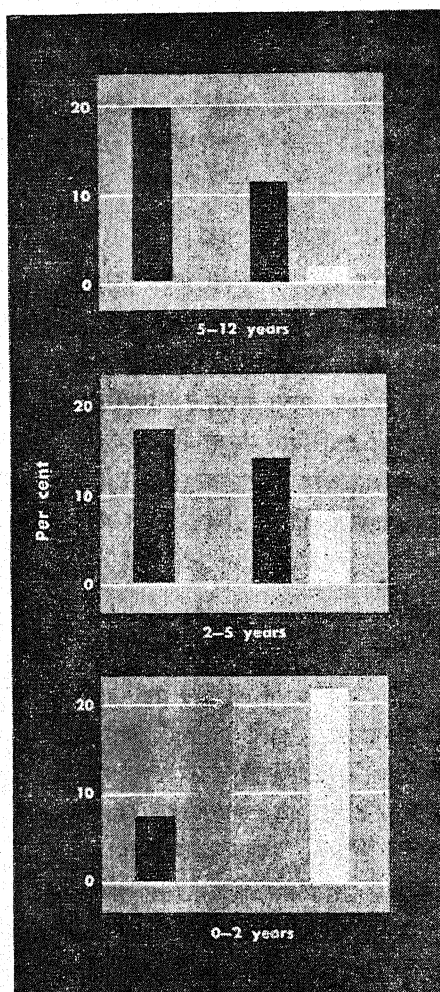
**चित्र ४.२ शिशुओं और बालकों में भय उत्पन्न करने वाली स्थितियाँ। बच्चों के समूहों को चार प्रकार की स्थितियों के समक्ष प्रस्तुत किया : जंतु, ध्वनियाँ या ध्वनि उत्पन्न करने वाली वस्तुएँ, रोग, चोट या मृत्यु की धमकी तथा अपरिचित वस्तुएँ या व्यक्ति। उर्ध्व ग्राफ प्रत्येक समूह की प्रत्येक स्थिति में भय-अनुक्रिया के प्रतिशत को प्रकट करते हैं (जरसील्ड एट० एल० १९३३)।**

भय व्यवहार से अनेक कारक संबंधित हैं। एक है भय का अनुबंधन। किंतु, अन्य कारक भी महत्त्वपूर्ण हैं। भय सीखने के लिए बच्चे को अनुबंधित करने की आवश्यकता नहीं। वह अपने माता-पिता के उदाहरणों से अथवा उनसे सुनी कहानियों के द्वारा भय अर्जित कर सकता है। इसकी संभावना तभी हो सकती है, जब बच्चे की स्मृति और कल्पना इतनी विकसित हो कि वह माता-पिता द्वारा कही गई कहानियों की भयपूर्ण स्थितियों की

कल्पना कर सकें। दूसरा कारक है विकसित होता हुआ संसार का प्रत्यक्ष-ज्ञान। शिशु के लिए मनुष्यों के भिन्न चेहरों या भिन्न जानवरों के विशेष अंतर को पहचानना संभव नहीं होता। वह एक चेहरे से दूसरे चेहरे या एक जानवर से दूसरे जानवर में भेद नहीं कर सकता। यदि वह एक चेहरे या एक जानवर को देखने का अभ्यस्त हो, तो कोई अन्य चेहरा या जानवर उसे नया नहीं लगेगा। जैसे-जैसे वह ज्ञानार्जन करता है और परिपक्व होता है, वह एक चेहरे से दूसरे को भिन्न करने लगता है और इस तथ्य से परिचित होता है कि हर चेहरा एक सिर से जुड़ा हुआ है। इतना ज्ञान प्राप्त कर लेने पर किसी अपरिचित का चेहरा या शरीर से विच्छिन्न चेहरा उसके लिए अप्रत्याशित होगा और उसके प्रति उसमें भय होता है। अतः, भय केवल तभी प्रकट होता है, जब परिचित और अपरिचित वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान इसे संभव बनाए। यह निष्कर्ष दो प्रयोगों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है; प्रथम प्रयोग (जॉन्स और जॉन्स, १९२८) बच्चों पर और द्वितीय चिंपांजियों पर किया गया है।

> "५१ बच्चों और ९० वयस्कों के सामने साँप उपस्थित किया गया और उन्हें उसे पकड़ने के लिए कहा गया। दो वर्ष से छोटे बच्चों ने बिलकुल भय नहीं दिखाया, उन्होंने उसे उसी तरह पकड़ लिया, जैसे वे अपने अन्य खिलौनों को पकड़ते हैं। तीन वर्ष या चार वर्ष के बच्चे कुछ अधिक सावधान होते हैं, चार वर्ष से बड़े बच्चों ने उसके प्रति निश्चित रूप से भय प्रकट किया। अधिकांश वयस्क उससे बहुत अधिक भयभीत हुए। प्रयोगकर्त्ताओं का विश्वास था कि बड़े बच्चों का भय साँप से सीधे संपर्क या कहानियों के माध्यम से या अन्य प्रशिक्षण के कारण नहीं था, वरन् उन्होंने अनुभव किया कि बड़े बच्चों ने साँप और अपनी परिचित वस्तुओं के अंतर को अधिक अच्छी तरह समझा है।

चिंपांजियों में भय का प्रयोग करते हुए प्रयोगकर्त्ता ने अनुभव किया (हैब्ब से उद्धृत १९४६)।

> "यार्क्स कॉलनी के कुछ चिंपाजियों ने जैसे ही बिना धड़ के एक मनुष्य-सिर या चिंपांजी-सिर का माडल देखा, वे भय से अति उद्विग्न हो गए, छोटे बच्चों में उससे कोई भय पैदा नहीं हुआ, कुछ बड़े बच्चों में बढ़ती हुई उत्तेजना स्पष्ट थी और वयस्क प्रत्यक्षतः भयभीत नहीं थे, किंतु काफी उत्तेजित थे। वयस्कों की ये वैयक्तिक भिन्नताएँ और भिन्न अवस्थाओं में प्रतिक्रियाओं के ये अंतर मनुष्यों के साँप के प्रति व्यवहार के ही समान थे, और बढ़ती हुई आयु के साथ भय की मात्रा एवं तीव्रता भी बढ़ी...। यह विकास इस विचार के अनुसार है कि अनेक भय बुद्धि की कुछ मात्रा के विकास पर निर्भर करते हैं।

जब व्यक्ति किशोरावस्था या वयस्कता की प्रारंभिक अवस्था को प्राप्त करता है, तब सामाजिक स्थितियाँ भय के कारण रूप में अधिक महत्त्व पाती हैं (वेक, १९५०)। किशोरावस्था के प्रारंभ में (११ से १६ वर्ष की अवस्था) भी जानवरों से, संभाव्य चोटों या धमकियों से भयभीत हो सकता है, लेकिन सामाजिक भय उसके लिए अधिक महत्त्व रखते हैं—जैसे कक्षा से बाहर निकाल देने का, नैतिक पतन के दोष का, उपहास का विषय बनने का, या अवांछित लोगों से बात करने के दोष का भय। वयस्कता के प्रारंभिक काल (१८ से २४ वर्ष) में, विश्वविद्यालय के छात्र सामाजिक भयों को और भी अधिक महत्त्व देते हैं। जानवरों और चोटों के भय के अपेक्षाकृत बहुत कम हो जाते हैं और उनका स्थान, माता-पिता की आलोचना, या निराशा और गर्भ रहने, यौन-रोग होने, या यौन-आचरण पर अनुमोदन न मिलना और यौन-भय आदि ले लेते हैं।

संभवतः वयस्कता के साथ बढ़ने वाले भयों को संक्षेप में सबसे अच्छे ढंग से इस प्रकार कहा जा सकता है कि अधिकांश भय असफलता या दंड के भय होते हैं—विविध गौण लक्ष्यों की; जैसे स्कूल या समाज के अनुमोदन का, उपलब्धि में असफल होने का भय।

### क्रोध :

बच्चों और वयस्कों के क्रोध को उत्तेजित करने वाली स्थितियों में एक बात सामान्यतः रहती है—वह है, निर्धारित लक्ष्य-प्राप्ति की क्रिया में बाधा। दूसरे शब्दों में, कुंठा या मनोरथ-भंग क्रोध को उत्तेजित करती है। व्यक्ति को रोकने या उसकी इच्छा के विरुद्ध उससे किसी कार्य को करने को आशा करना किसी भी आयु में उसमें क्रोध को जागृत कर देगा।

आयु के साथ यह परिवर्तन होता है कि किस प्रकार के कार्य व्यक्ति करना चाहता है और किस प्रकार के नहीं। इस प्रकार हम फिर प्रमुख एवं गौण प्रेरणाओं के विकास-तथ्य पर पहुँच जाते हैं। शिशु में साधारण नियंत्रण, जो उसकी क्रिया या अन्वेषण-प्रेरणा में बाधक हो, नियमित रूप से क्रोध का कारण है। बच्चों में, सामान्य उत्तेजक कारण है : शौच की कुर्सी (कमोड या खुड्डी) पर बैठना, उसकी चीजों का किसी के द्वारा लिया जाना, मुँह धोना, अकेले छोड़ना, बड़े लोगों का उसकी ओर ध्यान न देना और जो वह करना चाहता है, उसमें असफल होना। बड़े बच्चों और किशोरों में क्रोध के कारण बदल जाते हैं, जैसी कि हम आशा कर सकते हैं, शारीरिक निरोध और कुंठाएँ सामाजिक कुंठाओं और निराशाओं में बदल जाती हैं। व्यंग करना, रोब गाँठना, अपमानित करना और सामाजिक आकांक्षों में बाधा डालना प्रायः क्रोध के कारण बनते हैं।

इसी प्रकार वयस्कों में भी सामाजिक कुंठाएँ क्रोध जागृत करने के सामान्य कारण हैं। अधिकांश वयस्क अपने क्रोध को दबाना सीख लेते हैं और इस प्रकार उनके वास्तविक क्रोध को हम बहुत कम देख पाते हैं। क्रोध की मंद अभिव्यक्ति अधिक सामान्य है, उसे हम 'खीझ' कहते हैं। एक मनोवैज्ञानिक ने सामान्य खीझों और झुंझलाहटों का अध्ययन लोगों से उनकी खीझों की सूची लेकर किया है (कैसों १९३०)।

"१० से ९० वर्ष की भिन्न अवस्थाओं के ६०० से अधिक व्यक्तियों के प्रत्युत्तरों से उसने प्रायः १८,००० खीझों की सूची बनाई। समान उदाहरणों पर विचार करके जब उनकी संख्या कम की गई, तो भिन्न प्रकार की खीझों की संख्या २६०० रह गई। इनको विविध वर्गों में विभाजित किया ( देखिए, सारिणी ४·१ ), तो देखा गया कि आधी दर्जन से अधिक प्रकार की खीझें ऐसी सामान्य हैं, जिन्हें और लोग भी ऐसी स्थितियों में करते हैं। जैसे—बिना रुमाल के नाक साफ करना, मुँह के सामने खाँसना, बदबू फैलाना या दूसरों से निर्दयतापूर्ण व्यवहार करना। प्रायः ये सब खीझें समाज द्वारा अननुमोदित व्यवहार हैं अथवा ऐसी बातें हैं कि हम चाहते हैं कि वे न हों। केवल कुछ खीझें ऐसी थीं जो विषयी-संबंधी न होकर विषय-संबंधी थीं, जैसे बस या ट्रेन-गाड़ी का देर से आना। लेकिन, ये भी अधिकतर किसी-न-किसी उद्देश्य में बाधा होने ही पर होती हैं।

सारणी ४·१ खीझ के हेतु १० से ९० वर्ष की आयु के बीच के ६५९ व्यक्तियों, स्त्री और पुरुष दोनों, से पूछा गया कि उन्हें किन चीजों से झुँझलाहट होती है (कैसों १९३०)।

सारणी ४·१

| झुँझलाहट की श्रेणी | भिन्न खीझों के प्रतिशत |
|---|---|
| मानव-व्यवहार | ५९·० |
| वस्तुएँ और कियाएँ जो व्यक्तियों से संबंधित नहीं हैं। (वस्त्रों के अतिरिक्त अन्य ) | १८·८ |
| वस्त्र और वेश-भूषा के प्रकार | १२·४ |
| व्यक्तियों की शारीरिक विशेताएँ, जो परिवर्तित हो सकती हैं | ५·३ |
| व्यक्तियों की शारीरिक अपरिवर्तनशील विशेषताएँ | ४४ |

### मानव व्यवहार से संबंधित सर्वाधिक सामान्य खीझें

बिना रुमाल के व्यक्ति का नाक साफ करना
दूसरों के मुँह के सामने व्यक्ति का खाँसना
खेल में व्यक्ति का धोखा देना
जनसमूह के बीच किसी स्त्री का थूकना
गंदे पैरों की बदबू
बालक के प्रति कठोर व्यवहार ।

क्रोध की अभिव्यक्ति के तरीके आयु के साथ बदलते हैं। स्कूल में जाने से पहले बच्चों में क्रोध की अभिव्यक्ति तीव्र आवेश, कर्कशता, झगड़ना और लड़ना आदि रूपों में होती है। किशोरों और वयस्कों में ये अभिव्यक्तियाँ अप्रत्यक्ष और वाक्-कौशल का रूप धारण करती हैं, जिनके अंतर्गत व्यंग करना, शपथ लेना, व्यर्थ बोलना, षडयंत्र रचना आदि क्रियाएँ आती हैं। क्रोध की अभिव्यक्ति के रूप परिवर्तन का कारण है सामाजिक दबाव। ये दबाव, माता-पिता, मित्र, परिचित और समाज के ठेकेदारों द्वारा डाले जाते हैं एवं व्यक्ति के क्रोध के प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रियाओं को दबाना और समाज-अनुमोदित क्रोध को ही अभिव्यक्त करना सिखाते हैं।

### संवेगात्मक आदतें और अभिप्रेरक :

मानव-जीवन में संवेग आदतों (अधिगत प्रतिक्रियाओं) और प्रेरकों दोनों रूपों में कार्य कर सकते हैं। अधिगत संवेगात्मक आदतें केवल भौतिक वस्तुओं और अन्य व्यक्तियों की क्रियाओं के प्रति प्रतिक्रियाएँ ही नहीं है, वरन् अपने विचारों और अपनी आकांक्षाओं के प्रति भी हैं। संवेग जब व्यवहार को प्रेरित करते हैं और निश्चित उद्देश्य का निर्देशन देते हैं, तो वे अभिप्रेरक भी हैं। अब हम विचार करें कि ये संवेगात्मक आदतें किस प्रकार अर्जित होती हैं और अभिप्रेरण में उनका क्या योग है। यह विचार तीन संवेगात्मक परिरूपों के आधार पर होगा : सुख, भय और क्रोध।

### सुख :

सुख, जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं, अंतर्नोदों की तृप्ति के साथ जुड़ा हुआ है। अतः किसी लक्ष्य की उपलब्धि से, चाहे वह खाने-पीने जैसा मुख्य लक्ष्य हो अथवा सामाजिक अनुमोदन या शैक्षिक सफलता-जैसा गौण लक्ष्य, सुख की अनुभूति होती है। इस सामान्य सिद्धांत को किसी भी तनाव को मिटाने पर लागू किया जा सकता है और भय तथा क्रोध के भावों से मुक्ति पाने के लिए भी। भय का लक्ष्य भय-उत्पन्नकारी स्थितियों से या भय से बचना होता है, क्रोध का लक्ष्य क्रोध-उत्पन्नकारी पर आक्रमण करना, उसे नष्ट करना या चोट पहुँचाना होता है। अतः, इन लक्ष्यों की उपलब्धि सुखद मानी गई हैं।

तीसरे अध्याय में हम देख चुके हैं कि लक्ष्य से निरंतर संबंधित कोई भी स्थिति स्वयं गौण लक्ष्य बन जाती है। यह सिद्धांत लक्ष्य की उपलब्धि पर होने वाले सुख पर लागू होता है। अंतर्नोद की तृप्ति से संबंधित कोई भी वस्तु जब उपलब्ध होने पर सुख पहुँचाती है, तब स्वयं लक्ष्य बन जाती है। अतः, हम उन लोगों के निकट रहना चाहते हैं, जो सुखद अनुभवों में हमारे सहभागी रहे हैं। हम धनोपार्जन इसलिए करना चाहते हैं; क्योंकि वह हमारी अन्य आवश्यकताओं को पूर्ण करता है। हम उन स्थानों पर फिर जाना चाहते हैं, जहाँ हमने कभी अच्छे दिन बिताए थे।

भय :

मनुष्य किस प्रकार कुछ चीजों से भयभीत होना सीखता है, यह अलबर्ट नामक शिशु पर किए गए प्रसिद्ध प्रयोग (वाटसन और रेनर, १९२०) के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

"अलबर्ट एक ग्यारह माह का बच्चा था, जो जानवरों से बिलकुल नहीं डरता था। जब उसे खरगोश दिखाया गया (देखिए, चित्र ४·३ का प्रथम रेखाचित्र), तो उसने प्रसन्नता व्यक्त की और उससे दूर होने की चेष्टा का चिह्न भी उसमें दिखाई नहीं दिया। बाद में उसे सफेद चूहा (द्वितीय रेखा-चित्र) दिखाया गया और उसी समय अचानक जोर की एक ध्वनि हुई। भय उत्पन्न करने वाले स्वाभाविक उद्दीपन का वांछित प्रभाव हुआ, इस बार बच्चा पीछे हटा। भिन्न-भिन्न अवसरों पर इस प्रक्रिया को दोहराया गया। उसके बाद उसके सामने सफेद खरगोश लाया गया (रेखाचित्र—३) इस बार जिससे वह पहले भय भीत नहीं हुआ था। इस बार वह खरगोश को देखते ही भयभीत हुआ और उससे दूर होने की चेष्टा करने लगा। तब अनेक अन्य सफेद रोएँदार वस्तुओं से परीक्षण किया, जिसमें आदमी की सफेद दाढ़ी भी सम्मिलित थी (रेखाचित्र—४), और इन सबने उसके भय को उत्तेजित किया।

यह प्रयोग दो बातें स्पष्ट करता है : एक है भय का 'अनुबंधन'। भय-प्रतिक्रिया के समय कोई उद्दीपन यदि नियमित रूप से उपस्थित किया जाता है, तो वह स्वयं भय का उद्दीपन बन जाता है, दूसरा है सामान्यीकरण का सिद्धांत। वह भय जो सीखा जाता है, अनुबंधित उद्दीपन तक सीमित नहीं रहता। किंतु, समान वस्तुओं के प्रति वह सामान्यीकृत होता है—उक्त उदाहरण में सब सफेद रोएँ वाली वस्तुओं के प्रति। अधिगत भयों के कोश को बढ़ने में अनुबंधन और सामान्यीकरण—दोनों महत्त्वपूर्ण हैं।

अधिगत भय किस प्रकार अंतर्नोद के रूप में कार्य करते हैं, उसे एक प्रयोग द्वारा तीसरे अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है। उस प्रयोग में (मिलर, १९४८ a)

सफेद चूहों के भय को, सफेद बक्स में विद्युत्-आघात द्वारा अनुबंधित किया गया था। बाद में विद्युत्-आघात की अनुपस्थिति में, चूहों ने चक्कर को घुमाकर या दंडोत्तोलन को दबा कर बक्स से निकल भागना सीख लिखा, यह क्रिया केवल अधिगत भय से अभिप्रेरित थी।

इसी तरह से मनुष्य बहुत से भिन्न-भिन्न प्रकार के भय अर्जित करते हैं। यदि कोई मनुष्य ऊँची जगह से गिर कर चोट खाए तो जीवन भर ऊँचे स्थानों से उसके भयभीत होने की संभावना है। एक बच्चा, जो कभी भीड़ में खो गया हो और भीड़ से भयभीत हुआ हो, वह वयस्क होने पर भीड़-भाड़ से डरने वाला हो सकता है। यदि वह किसी अंधेरे कमरे में कभी बंद हुआ हो, तो बाद में वह ऐसे कमरे से भी भयभीत हो सकता है, जिसके सब दरवाजे एवं खिड़कियाँ बंद हों। जब व्यक्तियों में इस प्रकार के विविध अनुभव हो सकते हैं, तब किसी भी व्यक्ति में बड़ी संख्या में विशेष प्रकार के भय पाए जा सकते हैं।

शिशु किसी वस्तु के प्रति भय अधिगत करता है, उस वस्तु का किसी ऐसी वस्तु के साथ साहचर्य स्थापित करके, जिससे वह पहले से भयभीत होता है, तदंतर उसके सदृश वस्तुओं के प्रति वह भय का सामान्यीकरण कर लेता है।
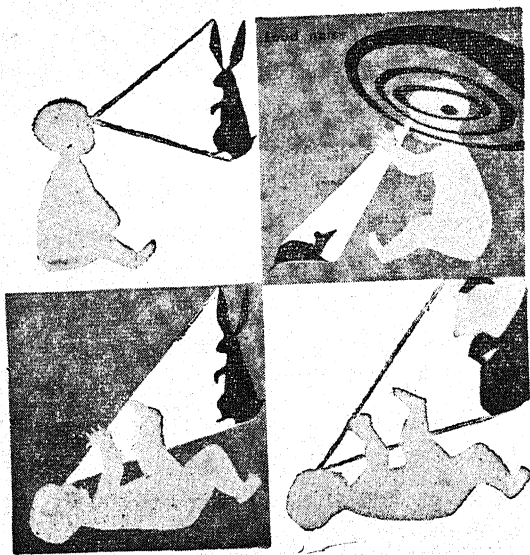
**चित्र ४·३ शिशु में भय का अनुबंधन और सामान्यीकरण। (१) अनुकलन से पूर्व शिशु सफेद खरगोश की ओर बिना भय के बढ़ता है : (२) एक तीव्र ध्वनि को, जिससे शुद्धि घबराता और भयभीत होता है, सफेद खरगोश की उपस्थित के साथ सम्बध की जाती है। (३) अनुबंधन के उपरांत शिशु, खरगोश से भयभीत होता प्रतीत होता है (४) वह सब सफेद रोंएँदार वस्तुओं से भयभीत होता है (वाट्सन और रेनर, १९२०)।**

माता-पिता और समाज जानबूझ कर दंड के भय का प्रयोग, अपनी इच्छाएँ आरोपित करने और व्यवहार के अनुमोदित तरीकों को सिखाने, के लिए करते हैं। यह दंड कष्टकर भी हो सकता है, जैसे कोड़े लगाना। किंतु, अधिकर प्रायः यह अन्य प्रेरणाओं के कुंठित होने से होता है। धन-हानि—(अर्थदंड, देखिए चित्र, ४·४), जिससे अनेक प्रेरणाएँ कुंठित होती हैं, या सामाजिक अनुमोदन की हानि, पद और सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति की हानि। हमारी सरकार अपने कानूनों को लागू करने के लिए अर्थदंड और कैद के भय का प्रयोग करती है, और व्यक्ति मित्रों के, अधिकारों के और परस्पर नियंत्रित करने की मर्यादा को खोने के भय का प्रयोग करते हैं। वास्तव में, हर क्षेत्र में हम देखते हैं, अनुभव करते हैं कि लोग जो कुछ करते है, उस पर भय का बहुत अधिक प्रभाव रहता है।
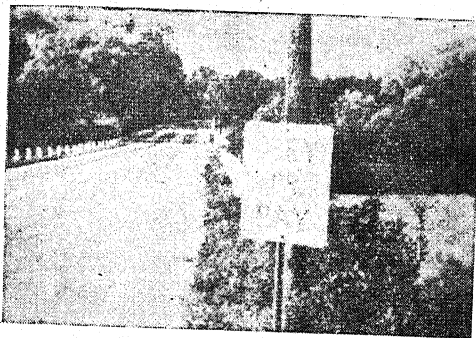
**चित्र ४·४ व्यवहार को अभिप्रेरित करने के लिए दड की धमकी के प्रयोग का उदाहरण (जेफेरीनॉर्टन)।**

भय जीवन में महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरक बन जाता है; क्योंकि उसे अर्जित करने के बहुत से अवसर हमें मिलते हैं। बचपन में अनेक शारीरिक भय होते हैं; जैसे सीढ़ियों से गिरने का, आग से जलने का, और बच्चा उन स्थितियों से भयभीत होने लगता है, जिनसे उसे कष्ट पहुँचा हो। शीघ्र ही माता-पिता जानबूझ कर भय का प्रयोग करने लगते हैं। दंड देकर और उसी के साथ 'नहीं' कह कर, माता-पिता शीघ्र ही बच्चों को दंड से भयभीत होना सिखाते हैं और इस भय को उत्तेजित करने के लिए 'नहीं' शब्द का प्रयोग संकेत रूप में करते हैं। बाद में, भय का शिक्षण अधिक जटिल हो जाता है। बच्चे को अभिप्रेरित करने के लिए, उसे रात को बिना भोजन दिए सोने देंगे, उसे उसके हिस्से की आइसक्रीम या मिठाई नहीं देंगे, या उसे बाहर जाने और खेलने से मना कर देंगे। अतः, बच्चे की इच्छापूर्ति में बाधा डालकर उसे भयभीत होना सिखाया जाता है।

## क्रोध :

बाधाओं के हेतु तथा उद्देश्य-प्राप्ति की क्रिया में बाधाओं के कारण क्रोध उत्तेजित होता है। इसका अर्थ है कि कुंठा के कारण व्यक्ति जो चाहे उसे न कर सके या न पा सके, तो क्रोध उत्पन्न होता है। कुंठा सदा क्रोध को उत्पन्न नहीं करती, किंतु क्रोध प्राय: कुंठा के कारण ही होता है या उन परिस्थितियों के कारण होता है, जिन्होंने पहले कभी उसकी आशाओं को भग्न किया हो। इस बात को ध्यान में रखते हुए और क्रोध पर एक आदत के रूप में और एक अभिप्रेरक के रूप में निम्नांकित विचार प्रकार किए जा सकते हैं।

लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक सामाजिक कौशल के रूप में क्रोध को सीखा जा सकता है। बच्चों में क्रोध के आवेश का बने रहना इसका एक अच्छा उदाहरण है। बहुत से बच्चों में क्रोध का आवेश हताशा की स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। यदि बच्चा अपनी इच्छित वस्तु को नहीं प्राप्त कर पाता, तो उस पर क्रोध का उन्माद छा जाता है। यदि इससे वांछनीय फल की प्राप्ति नहीं होती, तो संभवत: वह दूसरे अधिक विचारशील तरीकों का प्रयोग करने की चेष्टा करेगा और कुंठा की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न हुआ क्रोध शांत हो जाएगा। अत:, वह अति आवेश को छोड़ अपनी कुंठा से मुक्त होने का दूसरा माध्यम खोजता है। दूसरी ओर, यदि आवेशपूर्ण क्रोध के कारण उसकी इच्छा पूर्ण हो जाती है—जैसा कि प्राय: होता है, जब माता-पिता उसकी इच्छा पूर्ण कर देते हैं; क्योंकि वे आवेशपूर्ण क्रोध नहीं सहन कर सकते—तब इच्छा के भग्न होते ही बच्चा तीव्र क्रोध प्रकट करना सीखता है। यदि यह तीव्र क्रोध बराबर इच्छापूर्ति में सफल होता रहा, तो आदत के अनुसार बच्चा क्रोधित होगा। जब भी उसकी इच्छा भग्न होगी, वह इच्छित फलप्राप्ति के लिए क्रोध का साधन-रूप में उपयोग करेगा।

इसका एक उप-सिद्धांत है : यदि लड़ाई से प्राय: सफलता मिलती है, तो लड़ाई करना सीखा जाता है। यदि वह सफल न हो, तो उसे छोड़ दिया जाता है। इस तथ्य को प्रयोगशाला में लड़ते हुए चूहों पर प्रयोग करके स्पष्ट किया गया (स्काट, १९५८)। दो अपरिचित चूहों को साथ रखा जाता है, वे लड़ते हैं। सामान्यत: एक विजयी होता है और दूसरा पराजित। विजयी चूहे की फिर लड़ने की संभावना अधिक रहती है, विजित चूहा अधिक नम्र हो जाता है और बिना लड़े ही उसके हार मान लेने की संभावना रहती है। संभवत: यही सामान्य सिद्धांत लड़ने वाले बच्चों पर भी लागू किया जा सकता है। वह लड़का, जो लड़ाई में प्राय: विजय-लाभ करता है, लड़ाकू हो सकता है और सदा लड़ाई को चुनता है और वह लड़का जो लड़ाई में

कई वार हार चुका होगा यदि लड़ाई छोड़ सकेगा, तो वह अवश्य उसे छोड़ने का प्रयत्न करना सीखता है।

माता-पिता और समाज विविध प्रकार से क्रोधपूर्ण व्यवहार को दबाने का प्रयत्न करते हैं। तीव्र क्रोध व्यक्त करने पर प्रायः बच्चों को दंड दिया जाता है। वयस्कों में क्रोध की साधारण-सी अभिव्यक्ति भी सामाजिक दृष्टि से अननुमोदित व्यवहार की तरह देखी जाती है। इसलिए, क्रोध को पुरस्कृत न करके, वरन् दंडित करके दोनों प्रकार से समाज हमें क्रोध न करना सिखाने का प्रयत्न करता है।

यह एक रोचक समस्या उपस्थित करता है। क्रोध के लिए मिला दंड स्वयं अपने में एक कुंठा है और इसलिए क्रोध को उत्तेजित करने वाला है। प्रथमतः क्रोध को व्यक्त करने की अयोग्यता—कुंठा है; क्योंकि यह लक्ष्यप्राप्ति में बाधक है अर्थात् हताशा उत्पन्न करने वाले को आघात न पहुँचाने या नष्ट न कर सकने के लक्ष्य की प्राप्ति की विवशता है। द्वितीय, किसी भी प्रकार का दंड कुंठा का जनक हो सकता है और दंड की धमकी क्रोध को उत्तेजित करने वाली है। अतएव, समाज क्रोध को दबाने के प्रयत्न द्वारा वस्तुतः क्रोध को उत्तेजित करता है। तब परिणाम यह नहीं होता है कि व्यक्तियों को यह सिखाएँ कि क्रुद्ध न हों वरन् यह सिखाया जाता है कि वे क्रोध को अभिव्यक्त न करें। क्रोध बाहर निकलने के स्थान पर भीतर-ही-भीतर घुटता है।

क्रोध भय के ही समान अनुबंधित और सामान्यीकृत किया जा सकता है। जो कुछ हमारे लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक हो, हम उसके प्रति क्रोध करते हैं और अगर वह वस्तु बार-बार कुंठा उत्पन्न करे, तो हम उस बाधा के प्रति और उससे मिलती-जुलती वस्तुओं के प्रति अनुबंधित विरोध अर्जित कर लेते हैं। एक कठोर पिता, उदाहरण के लिए, जो बार-बार अपने पुत्र की क्रियाओं में बाधाएँ डाल कर उसे क्रुद्ध करता है, वह क्रोध का उद्दीपन बन जाता है और लड़का प्रायः उसके कटु व्यवहार न करने पर भी उसका विरोधी (शत्रु) बन जाता है। जब वह लड़का बड़ा होता है, तब यदि वह अपने पिता के प्रति अपनी क्रोध की भावना का सामान्यीकरण कर ले तो अपने से सभी बड़ों का वह विरोधी हो जाता है। इस प्रकार का अनुबंधित विरोध बड़े बच्चों और वयस्कों में सामान्यतः पाया जाता है।

### अभिवृत्ति और पूर्वग्रह (Attitude and Prejudice) :

जिन लोगों और वस्तुओं से कभी संवेगात्मक व्यवहार का संबंध रहा है उनके प्रति, संवेगपूर्ण प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति हमारी रुचियों और अरुचियों को स्पष्ट करने में सहायक है। हमें उस प्रकार की वस्तुएँ अच्छी लगती हैं, जिनसे हमें कभी पहले सुख मिल चुका हो, और ऐसी वस्तुओं से हमें अरुचि होती है, जिन्होंने कभी हमें

भयभीत या क्रुद्ध किया हो। अभिवृत्ति और पूर्वग्रह के लिए भी यही सत्य है। एक अभिवृत्ति कुछ निश्चित व्यक्तियों, वस्तुओं या स्थितियों के प्रति सकारात्मक और नकारात्मक अनुबंधन की प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति है। अतः, यह किसी एक रूप में भावुकतापूर्ण प्रतिक्रिया है। एक अभिवृत्ति भयपूर्ण, कठोर या सुखद हो सकती है। इसका जो भी रूप हो, वह कुछ लोगों या वस्तुओं के प्रति पूर्व संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं के अनुबंधन पर निर्भर करता है और तब उसी तरह के अन्य लोगों या वस्तुओं के प्रति इन प्रतिक्रियाओं का सामान्यीकरण हो जाता है। यह सामान्य तरीका है, जिससे हम अपने पूर्वग्रह सीखते हैं।

अभिवृत्तियों और पूर्वग्रहों का विस्तार से विवेचन अगले अध्याय में किया जाएगा। यहाँ हम केवल इतना ही संकेत देना चाहते हैं कि ये संवेग पूर्ण प्रवृत्तियाँ हैं, जो अनुबंधन और सामान्यीकरण द्वारा अधिगत होती हैं।

### अंतर्द्वन्द्व और कुंठा :

हमने अभी देखा कि कुंठा, क्रोध और कटु व्यवहार को समझने की कुंजी है। हमने यह भी देखा कि दंड का भय कुंठाजनक होता है। अतः, वह क्रोध का मूल है। इसीलिए हमें कुंठा के कारणों पर अधिक सावधानी से विचार करना चाहिए। यह इतना महत्त्वपूर्ण विषय है कि अगले अध्याय के अधिकांश में इसी का विवरण दिया जाएगा। यहाँ हम इस संबंध में केवल कुछ प्रमुख विचारों का उल्लेख करेंगे। कुंठा के कारणों का विभाजन सामान्यतः निम्नांकित तीन वर्गों में किया जा सकता है।

### पर्यावरणगत कुंठा :

पर्यावरणात्मक बाधाएँ व्यक्ति के लक्ष्य की प्राप्ति को कठिन या असंभव बनाकर उसकी अभिप्रेरणाओं की तृप्ति को भग्न कर देती हैं। ये पर्यावरणात्मक बाधाएँ भौतिक भी हो सकती हैं, जैसे बंद द्वार, या धनाभाव। कुछ व्यक्तियो के रूप में भी वे हो सकती हैं—जैसे माता-पिता, अध्यापक या पुलिस के आदमी—जो हमारी लक्ष्य-प्राप्ति में बाधक होते हैं। सामान्यतः पर्यावरणात्मक बाधाएँ बच्चों के लिए कुंठा का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण हैं। बच्चों को उनके इच्छित कार्य से रोकने वाले या बाधा उपस्थित करने वाले उनके माता-पिता या अध्यापक हैं।

### वैयक्तिक कुंठा :

बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं और वयस्कता की ओर अग्रसर होते हैं, लक्ष्य-प्राप्ति की असफलताएँ कुंठा के कारण के रूप में अधिक महत्त्व पाने लगती हैं। ये लक्ष्य अधिकतर अधिगत लक्ष्य होते हैं, जिन्हें उपलब्ध नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे व्यक्ति की योग्यताओं से परे होते हैं। उदाहरणार्थ एक बच्चा, ऊँची शैक्षणिक

सफलताओं की अभिलाषा करना सीख लेता है जब कि उसकी योग्यता अति साधारण बालक की है। वह अपने स्कूल का बैंड (पट्ट) बनाना, फुटबाल की टीम बनाना या किसी क्लब का सदस्य बनना या खेल में प्रमुख बनना चाहता है, किंतु उसे कुंठा का सामना करना पड़ सकता है; क्योंकि इन कार्यों के उपयुक्त गुणों अथवा योग्यताओं का उसमें अभाव हो सकता है। यहाँ कठिनाई यह है कि वह ऐसे ऊँचे लक्ष्य ऊँची अभिलाषा को बनाना सीख लेता है, जो उसकी योग्यताओं से बहुत ऊँची हों।

## अंतर्द्वन्द्वीय कुंठा :

वयस्क और बच्चे दोनों को ही पर्यावरणात्मक बाधाओं और असफल लक्ष्यों का सामना करना पड़ता है, किंतु उसकी कुंठा का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण अभिप्रेरणात्मक अंतर्द्वन्द्व होने की संभावना है। यह कुंठा अभिप्रेरकों में द्वंद्व के कारण होती है। क्रोध की अभिव्यक्ति ऐसे अंतर्द्वन्द्व में प्राय: देखी जाती है। एक ओर, व्यक्ति अपने क्रोध को प्रकट करना चाहता है, किंतु दूसरी ओर क्रोध अभिव्यक्त करने पर उसे सामाजिक अननुमोदन का भय है। अत:, क्रोध अभिप्रेरक का सामाजिक-अनुमोदन के अभिप्रेरक से द्वंद्व होता है। पाश्चात्य समाजों में यौन-अभिप्रेरण का प्राय: समाज द्वारा अनुमोदित यौन-व्यवहार से द्वंद्व रहता है। अभिप्रेरणात्मक द्वंद्वों के सैंकड़ों संभावित उदाहरण हैं और आगे कुछ उदाहरणों का विवरण दिया जाएगा। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब दो अभिप्रेरकों में द्वंद्व होता है, तो कुंठा का जन्म होता है और यह संभव नहीं होता कि दूसरे अभिप्रेरक को कुंठित किए बिना एक की तृप्ति की जा सके। इसी कारण से अनेक वयस्क हमेशा कुंठित रहते हैं। फलत: वे सदैव कठोर या क्रोधित रहते हैं।

## दुश्चिंता और विरोध या शत्रुता :

हमारे समाज में क्रोध अनुभव करने के अनेक कारण हैं और उसे दबाने के भी। परिणाम होता है एक प्रकार का भीतरी घुटनपूर्ण क्रोध—अनेक वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति विरोध, जो उसके जीवन में किसी-न-किसी कुंठा के कारण रहे हैं।

चिंता के भी अनेक कारण हैं। हम देख चुके हैं कि भय किसी विशेष वस्तु या स्थिति के प्रति एक प्रतिक्रिया है। दुश्चिन्ता अनेक प्रकार की परिस्थितियों में होने वाली आशंका और अशांति की सामान्य स्थिति है। दूसरे शब्दों में, यह एक अस्पष्ट भय है—एक 'उद्देश्यहीन' भय भी कभी-कभी इसे कहा जाता है। व्यक्ति स्वयं यह निश्चयपूर्वक नहीं जानता कि वह किससे भयभीत है और वास्तव में, किसी के लिए भी यह निश्चित करना कठिन होता है। दुश्चिंता अंधकार में एक मच्छर की

तरह है। आप जानते हैं कि वह आपके बहुत निकट है, पर आप यह नहीं जानते कि वह निश्चित रूप से कहाँ है, जिससे उसे मार सकें और मुक्त हो सकें। दुश्चिता प्राय: भय से कम गहन, पर अधिक स्थायी होती है। कुछ व्यक्ति दुश्चिता के लघुकालीन या दीर्घकालीन प्रभाव अनुभव करते हैं, जो बहुत कष्टदायक होता है।

दुश्चिता के अनेक कारण देखे जा सकते हैं। एक का संवंध कठोरता से है। जब समाज हमें दंड की, या सामाजिक अनुमोदन की, या क्षति की धमकी द्वारा सिखाता है कि हमें क्रुद्ध या विरोधी नहीं होना चाहिए, विरोध की भावना अस्पष्ट भय के साथ संबंधित हो जाती है कि उसे अभिव्यक्त करने पर न जाने क्या हो जाए। द्वितीय, भय के सहज अनुबंधन द्वारा हम चिंतित हो जाते हैं। यदि हमें माता-पिता, अध्यापकों और साथियों से अनेक भयपूर्ण अनुभव प्राप्त हुए हों, तो उनका सामान्यीकरण प्रत्येक व्यक्ति के साथ हो जाता है, फलत: व्यक्तियों की उपस्थिति में प्राय: वे चिंतित हो जाते हैं। तृतीय, मनुष्यों का दुश्चिता की ओर विचित्र झुकाव रहता है; क्योंकि उनमें अनुभवों को स्मरण करने और कल्पना करने की योग्यता होती है। भय उद्दीप्त करने वाली परिस्थितियों पर विचार करके, कि वह हो चुका है या हो सकता है, व्यक्ति अपने में वही भय और दुश्चिता पैदा कर लेते हैं, जैसा कि वास्तविक परिस्थिति में वह अनुभव करता।

इन्हीं कारणों से व्यक्ति प्राय: चिंतित रहते हैं और कुछ व्यक्ति तो साधारणत: पर्याप्त समय तक चिंताग्रस्त रहते हैं। अत:; दुश्चिता और विरोध उनके दैनिक व्यवहार के मुख्य अंग बन जाते हैं।

**संवेग में शारीरिक अवस्थाएँ ( Bodily States in Emotion ) :**

हमने संवेग के विकास का और किस प्रकार से ये संवेग आदत और अभिप्रेरक के रूप में कार्य करते हैं, इसका विवरण दिया है। अब हम इसके दूसरे पक्ष पर, संवेग में होने वाली शारीरिक परिवर्तनों पर विचार करेंगे। जो व्यक्ति बहुत उत्तेजित, भयभीय या क्रोधित हुआ होगा, उसने अवश्य इनमें से कुछ परिवर्तनों को अनुभव किया होगा। किंतु, वह संभवत: अपने में होने वाले सब परिवर्तनों से परिचित नहीं होता या वह उन कारणों से परिचित नहीं होता, जिनसे उसकी यह अशांत अवस्था होनी है।

इन परिवर्तनों का वस्तुनिष्ठ होने के कारण विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया है और हम संवेग के किसी अन्य पक्ष से अधिक इनके बारे में जानते हैं। इनका अध्ययन दो प्रकार से किया जा सकता है : शारीरिक क्रिया अभिलेखन-यंत्रों द्वारा प्रत्यक्ष परिमापन से या अशांत अवस्था में संवेगित व्यक्तियों के अनुभवों का सर्वेक्षण करके। जिस प्रयोग ( शेफर, १९४७ ) में सर्वेक्षण-प्रणाली का उपयोग हुआ, वह

द्वितीय महायुद्ध में जाने वाले चार हजार वायुसैनिकों पर किया गया था। वायु-सैनिक, विविध कालों में, भयंकर विपदा का सामना करने के लिए भेजे जाते और उनसे कहा जाता कि वे आकर अपने अनुभवों को बताएँ। सारणी ४·२ में जैसा कि देखा जा सकता है, उनसे पूछा गया कि वे बताएँ कि आक्रमणकारी उड़ान करते समय विशेष अनुभव उन्होंने 'प्रायः' अनुभव किए या 'कभी-कभी'। विशेष अनुभवों की सूची में बहुत से शारीरिक परिवर्तन थे। जैसे—हृदय की धड़कन, मांसपेशियों का तनाव, मुख का शुष्क होना, 'ठंढे पसीने' आना, मूत्र करने की आवश्यकता की अनुभूति, पेट में दर्द। यदि कोई प्रयोगकर्त्ता परिमापन के विविध यंत्र इन वायुसैनिकों तक ले जाता, तो युद्धरत अवस्था के उनके अनेक और भी भावों का अभिलेखन किया जा सकता था और शारीरिक परिवर्तनों की विस्तृत विविधता की खोज हो सकती थी।

सारणी—४·२

उत्तरों के प्रतिशत

| लक्षण | प्रायः | कभी-कभी | योग |
|---|---|---|---|
| हृदयगति का बढ़ना, नाड़ी का तेज होना | ३० | ५६ | ८६ |
| मांसपेशियों में बहुत तनाव | ३० | ५३ | ८३ |
| सहज ही चिढ़ना, क्रुद्ध होना या खिन्न होना | २२ | ५८ | ८० |
| कंठ और मुख का शुष्क होना | ३० | ५० | ८० |
| 'नर्वस स्वेद' या 'शीत स्वेद' | २६ | ५३ | ७९ |
| उदर-कंपन | २३ | ५३ | ७६ |
| अयथार्थ बोध, यह नहीं हो सकता, | २० | ४९ | ६९ |
| बहु-मूत्र | २५ | ४० | ६५ |
| कंपन | ११ | ५३ | ६४ |
| घबराहट, बड़बड़ाना | ३ | ५० | ५३ |
| दुर्बल या बेहोश होना, | ४ | ३७ | ४१ |
| मिशन के प्रति लगन, जो हो चुका है उसे स्मरण रखने की असमर्थता | ५ | ३४ | ३९ |
| उदर-रोग | ५ | ३३ | ३८ |
| एकाग्र चित्त होने में असमर्थ | ३ | ३२ | ३५ |

**सारणी ४·२ समाघात हवाई-गश्त में भय के शारीरिक लक्षण १,९८५ फ्लाइंग अफसरों और २,५१९ फ्लायर्स द्वितीय विश्वयुद्ध में जिनके नाम लिखे गए थे, से पूछा गया कि समाघात हवाई-गश्त में कितनी बार उन्होंने भिन्न लक्षणों को अनुभव किया ( शेफर, १९४७ ) ?**

स्वायत्त तंत्रिकातंत्र-संबंधी परिवर्तन (Autonomic Changes) :

शारीरिक अध्ययन एवं संवेग की स्थिति में शरीरगत परिवर्तनों से हम जानते हैं कि जो परिवर्तन होते हैं वे तंत्रिकातंत्र के एक भाग, जिसे स्वायत्त तंत्रिका-तंत्र कहते हैं, के द्वारा किए जाते हैं (द्रष्टव्य, चित्र ४·५) इसीलिए इसके द्वारा किए गए परिवर्तन स्वायत्त परिवर्तन कहे जाते हैं ( केनन, १९२९ )।

स्वायत्त तंत्रिकातंत्र मस्तिष्क और रीढ़ की ओर जाने वाले शरीर के विविध अंगों से निकले स्नायुओं से बना है, (देखिए, अध्याय : १९) जिससे आंतरिक और बाह्य मांसपेशियों का पोषित करने वाली रुधिर-वाहिकाएँ भी विशेषरूप से जुड़ी हैं। स्वायत्त-तंत्रिका तंत्र के दो भाग हैं जो प्राय: एक दूसरे के विपरीत कार्य करते हैं। एक भाग, अनुकंपीतंत्र, हृदय की गति और रक्तचाप को बढ़ाता है तथा बाह्य मांसपेशियों को रक्त भेजता है। जब हम संवेगात्मक स्थिति में होते हैं—या कम-से-कम जब हम भयभीत या क्रुद्ध होते हैं, तो यह भाग क्रियाशील होता है। इस तंत्र का दूसरा भाग 'परानुकंपीतंत्र' कहलाता है। जब हम शांत रहते हैं और आराम करते हैं, तब यह भाग क्रियाशील होता है। यह बहुत से काम करता है, जो मिलकर शरीर के शक्ति-भंडार को बनाते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। उदाहरणार्थ, यह हृदय की गति को और रक्तचाप को कम करता है और रक्त को पाचन-तंत्र की ओर भेजता है * ।

जब स्वायत्त तंत्रिकातंत्र का अनुकंपी भाग अपने स्राव को बढ़ाता है, जैसा यह संवेग की स्थिति में करता है, तब यह अनेक लक्षण उत्पन्न करता है, जो उल्लेख करने योग्य हैं। लक्षणों का एक समूह रक्त-संचालन से संबंधित है। आमाशय और शरीर के निचले भाग की रुधिर-वाहिकाएँ संवेग-स्थिति में सिकुड़ती हैं, जबकि धड़ और हाथ-पैरों की बाह्य मांसपेशियों से संबंधित रुधिर-वाहिकाएँ फैलती हैं। इस प्रकार रक्त का प्रवाह पाचन-क्रियाओं की ओर से मांसपेशीय क्रियाओं की ओर मुड़ जाता है और शरीर ऐसी क्रिया के लिए तैयार होता है, जिसमें मांसपेशीय क्रिया की अधिक आवश्यकता हो। ठीक उसी समय यह हृदय की गति को तीव्रतर और दृढ़तर कर देता है, जिसका अर्थ है रक्तचाप का बढ़ना और नाड़ी की गति का तीव्र होना। इस प्रकार रक्तपरिभ्रमण तंत्र द्वारा मांपेशियों को अधिक रक्त पहुँचाया जाता है।

---

* दोनों तंत्रों के कार्यों का यह अति सरल विवरण है। वे सदा ही एक दूसरे के विपरीत नहीं रहते और ऐसे भी कुछ उदाहरण हैं, जिनमें परानुकंपी-तंत्र संवेग में क्रियाशील होता है। वास्तव में, यह प्राय: अपनी क्रियाशीलता को जब-जब अनुकंपी तंत्र की क्रिया बढ़ती है, बढ़ा लेता है।

स्वायत्त तंत्रिकातंत्र, विशेषतः इसका अनुकंपी विभाजन उत्तेजना, भय और क्रोध में और अधिक क्रियाशील हो जाता है।
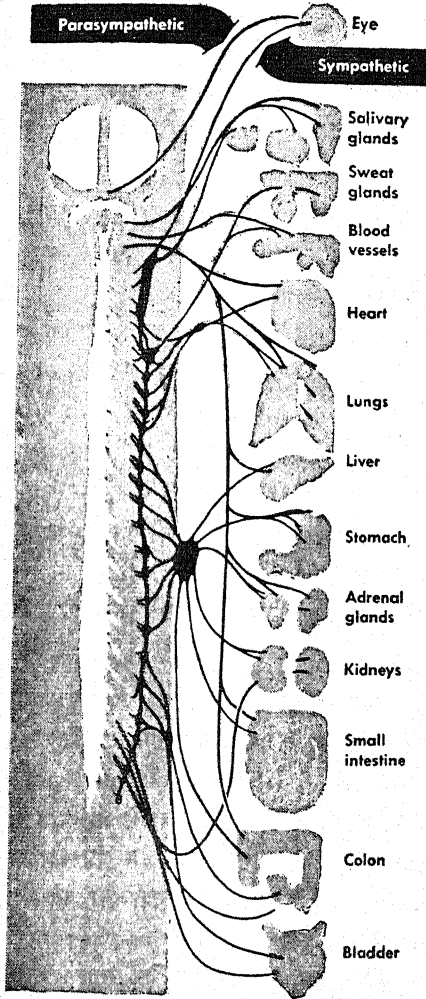
**चित्र ४·५ स्वायत्त तंत्रिका-तंत्र का कार्य-प्रदर्शी चित्र स्वायत्त तंत्रिकातंत्र के अंतर्गत तंत्रिका, गुच्छिका (पारिभाषिक शब्दावली देखिए) जो रक्त-वाहिका की सहायता करती है और शरीर के अन्य आंतरिक-अंग। इसके मुख्य दो भाग हैं—(१) सहानुकंपी तत्र, और (२) अनुकंपी तंत्र।**

रक्त-संचालन में परिवर्तन उपस्थित करने के अतिरिक्त अनुकंपी-तंत्र संवेग की दशा में और भी अनेक शरीरगत परिवर्तन उत्पन्न करता है। संभवतः, जब आप भयभीत हुए होंगे, आपने भी उनमें से कुछ का अनुभव किया होगा। एक परिवर्त्तन श्वास-क्रिया में होता है। थोड़ी देर के लिए आप श्वास रोक लेंगे, दम लेंगे या गहरी साँस लेंगे और इस प्रकार अपनी नियमित श्वास-क्रिया में बाधा डालेंगे। दूसरा परिवर्तन आँख की पुतली में होता है, जो साधारणतः प्रकाश की कम या अधिक मात्रा के आँख में प्रवेश के द्वारा होता है। संवेग की दशा में पुतली फैल जाती है। संभवतः इसे आपने यदि कभी किसी बिल्ली या व्यक्ति का क्रोध-दशा में प्रेक्षण किया होगा, तो देखा होगा। अन्य एक परिवर्तन है—मुख का शुष्क होना। यह इस-

लिए होता है कि अनुकंपी तंत्र लार-ग्रंथियों का स्राव रोक देता है, जो साधारणतः मुख को गीला रखता है। एक और परिवर्तन आमाशय और आँतड़ियों की गति में होता है । एक्सरे-चित्र या बेलून प्रणाली (देखिए चित्र ३·३) जैसा कि देखा जा सकता है, तीव्र संवेग की दशा में आमाशय और अँतड़ियों का सिकुड़ना बंद हो जाता है या इसके विपरीत क्रिया होने लगती है। मुख्य संवरणियाँ (Sphincters) भी अनैच्छिक रूप से शिथिल हो सकती हैं, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति मल या मूत्र कर देता है।

संवेग की दशा में अनुकंपी तंत्र की दूसरी प्रतिक्रिया है एड्रिनलिन हारमोन का स्रावित होना। यह हारमोन एड्रिनल ग्रंथियों से स्रावित होता है, जो गुर्दों के ऊपर स्थित हैं। इस स्थल से हारमोन रक्त में जाता है और सारे शरीर में पहुँचता है, और शरीर के अनेक अंगों को प्रभावित करता है। जिगर में, यह शक्कर को रक्त में मिलाने में सहायता करता है और इस प्रकार मस्तिष्क तथा मांसपेशियों को अधिक शक्ति प्राप्त होती है। एड्रिनलिन हृदय की गति दृढ़तर करने में भी सहायक होता है। (शल्य-चिकित्सक, जब हृदगति दुर्बल या बंद हो जाती है, तो हृदय की क्रिया को उद्दीप्त करने के लिए एड्रिनलिन का उपयोग करते हैं) कंकाल-मांशपेशियों (Skeletal-muscles) में एड्रिनलिन शक्कर प्राप्त करने के साधनों को पहुँचाता है, जिससे कि मांसपेशियाँ उनका तीव्रता से प्रयोग कर सकें। अतः, एड्रिनलिन विविध आंतरिक अंगों पर अनुकंपी तंत्र की अनेक क्रियाओं को दुगना कर देता है और उनको शक्ति बढ़ा देता है।

संवेग की दशा में एक अन्य शारीरिक परिवर्तन का भी कुछ दिन पूर्व व्यापक रूप से मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिगम एवं व्यक्तित्व के प्रयोगों में उपयोग किया गया है। यह परिवर्तन है विद्युतीय-त्वचीय-प्रतिक्रिया (Galvanic-skin-response—GSR)। यह त्वचा में विद्युतीय प्रतिरोध जिसका परिमापन त्वचा में प्रतिरोध मीटर या वोल्टमीटर लगाकर किया जा सकता है। स्वायत्त तंत्रिकातंत्र अप्रत्यक्ष रूप से त्वचा की स्वेद-ग्रंथियों को नियंत्रित करता है। तीव्र संवेगात्मक उत्तेजना की दशा में ग्रंथियाँ अपने स्राव को बढ़ा देती हैं, यह 'अधीर प्रस्वेद' (Nervous-perspiration) है जिसे व्यक्ति उत्तेजित अवस्था में अनुभव करता है इस स्राव के साथ त्वचा के विद्युतीय प्रतिरोध में भी ह्रास होता है—विद्युतीय त्वचीय-प्रतिक्रिया (GSR) का उपयोग संवेगात्मक प्रतिक्रिया के संवेदनात्मक निदेशक के रूप में किया जा सकता है।

### असत्यसूचक यंत्र या अनृतदर्शनी (The 'Lie Detector') :

पिछले कुछ वर्षों से लोगों ने 'असत्यसूचक यंत्र' के बारे में काफी सुना है। कभी-कभी उसका उपयोग व्यक्ति के अपराध के प्रकार की खोज में भी किया जा

सकता है। यह युक्ति, ऊपरवर्णित अनेक स्वायत्त परिवर्तनों का उपयोग करती है। यद्यपि असत्यसूचक यंत्र विविध प्रकार के हैं, पर यह प्रायः सदा रक्तचाप, श्वास-क्रिया और GSR का परिमापन प्रस्तुत करता है। असत्य का भेद जानने के लिए ऐसे परिमापनों के प्रयोग इस धारणा पर आधारित हैं कि स्वायत्त-परिवर्तन ऐच्छिक नियंत्रण के अंतर्गत नहीं हैं अर्थात् एक व्यक्ति झूठ बोल सकता है और अपने भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति को छिपा सकता है, किंतु भय और चिंता से संबंधित स्वायत्त-परिवर्तनों को नियंत्रित नहीं कर सकता (द्रष्टव्य, चित्र ४·६ )।
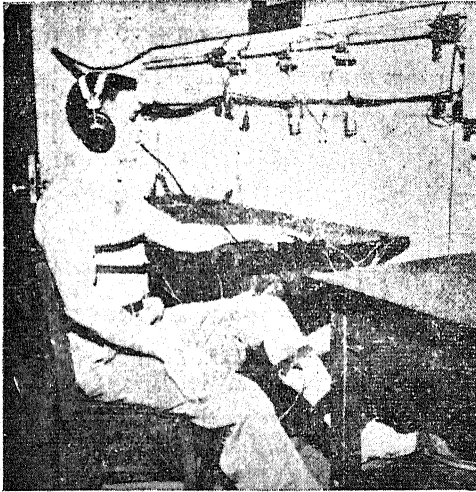
**चित्र ४.६ 'प्रयोगात्मक दुश्चिंता'' में हृदयी परिवर्तनों का परिमापन, प्रयोग-पात्र को थोड़ी-थोड़ी देर में उसके इयरफोन में चेतावनी देने के तत्काल बाद बाएँ हाथ में अल्प विद्युत्-आघात दिया जाता है। चेतावनी और आघात के मध्य ६ सेकेंड के अंतर में चिंता के कारण होने वाले हृदयी परिवर्तनों को वक्ष-विद्युद्‌ग्र के माध्यम से विद्युत्-हृल्लेख द्वारा विद्युतीय रूप में अभिलिखित किया जाता है। प्रयोक्ता को चाहिए कि वह अन्य संकेतों को भी, जैसे मांसपेशीय तनाव, रक्तचाप, श्वास-चक्र और त्वचा के विद्युतीय प्रतिरोध के परिवर्तनों का परिमापन भी कर सके ( डब्ल्यू० एन० स्कोयनफील्ड, कोलंबिया युनिर्वासटी)।**

असत्यसूचक परीक्षण (Lie-detection Test) में यदि व्यक्ति झूठ बोलने का अपराधी है, तो उसके सामने ऐसे शब्द और प्रश्न सावधानी से चुनकर प्रस्तुत किए जाते हैं, जो उसके संवेगों को उत्तेजित कर सकें। किंतु, यदि वह अपराधी नहीं है, तो इन प्रश्नों से वह परेशान नहीं होता। व्यक्ति से प्रायः शृंखलाबद्ध प्रश्न किए जाते हैं और उस समय उसकी शारीरिक प्रतिक्रियाओं का आलेखन भी किया जाता है। कुछ प्रश्न 'निरपेक्षा या असंबद्ध' प्रकार के होते हैं, जिनका व्यवहार सामान्य रूप से होता है—आपका नाम क्या है? आप कहाँ काम करते हैं? आप किस स्कूल में पढ़े हैं?

इत्यादि । अन्य प्रश्न 'खोजपूर्ण' होते हैं । ये उस अपराध से संबंधित होते हैं, जिसकी व्यक्ति द्वारा किए जाने की संभावना है । ये प्रश्न उस व्यक्ति में पकड़े जाने के भय को उद्दीप्त करने की या अपराधी होने की भावना को उद्दीप्त करने की दृष्टि से किए जाते हैं । प्रश्नों का करना समाप्त करने पर, परीक्षक असंबद्ध और खोजपूर्ण प्रश्नों के अभिलेखनों की तुलना करता है । यदि वह देखता है कि संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ स्पष्टतः खोजपूर्ण प्रश्नों में असंबद्ध प्रश्नों की अपेक्षा अधिक हैं, तब उसके पास अपने इस निष्कर्ष के लिए कि वह व्यक्ति अपराधी है, कारण हैं । यदि दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं है, तो वह उसके विपरीत अपना निर्णय देता है ।

परिणामों में वैधता (Validity) लाने के लिए एक कुशल परीक्षक को, जो कि असत्यसूचक यंत्र विशेषज्ञ है, प्रश्न बनाने चाहिए, परीक्षा लेनी चाहिए और अभिलेखनों को देखना चाहिए । ऐसा करने पर भी प्रायः सही निर्णय लेने में असफलता मिलती है । कुछ लोग अपराध की खोज की बात से ही इतने अधिक संवेगात्मक हो उठते हैं कि अनेक असंबद्ध प्रश्नों की भी उन पर तीव्र प्रतिक्रिया होती है । दूसरी ओर, कुछ व्यक्ति, विशेषतः अभ्यस्त अपराधी प्रायः इतने निडर हो जाते हैं कि उनमें खोजपूर्ण प्रश्नों पर भी स्वायत्त-परिवर्तन असंबद्ध प्रश्नों से अधिक नहीं होते । फलतः असत्यसूचक यंत्र हमेशा असत्य को नहीं पकड़ पाता । योग्य परीक्षक प्रायः इसमें सफल होते हैं, किंतु अब तक ऐसा भी नहीं हुआ कि किसी निरपराध व्यक्ति को उन्होंने 'अपराधी' घोषित किया हो ।

## शारीरिक परिवर्तनों की पहचान :

यद्यपि हम प्रायः किसी संवेगात्मक दशा का संधान शरीर में होने वाले परिवर्तनों से कर पाते हैं, पर यह बता सकना कि वह कौन से संवेग की दशा है, दूसरी बात है (लुंड १९३९) । मनोविज्ञानवेत्ताओं ने अनेक वर्षों तक यह खोजने का प्रयत्न किया है कि क्या शारीरिक परिवर्तनों के परिमापन द्वारा वे एक संवेग को दूसरे संवेग से भिन्न करके पहचान सकते हैं, उदाहरण के लिए भय, क्रोध या प्रसन्नता की पहचान । यदि वे अपने प्रयत्न में सफल हो जाते, तो हम अधिक सरलता से भिन्न स्थितियों में होने वाली संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को माप सकते थे, व्यक्तियों की संवेगात्मक दशा और स्वभाव की भिन्नताओं का सीधे मापन कर सकते थे और व्यक्तित्व-संरचना तथा शारीरिक परिवर्तनों का परस्पर संबंध देख सकते थे । दुर्भाग्य से उनके प्रयत्न अधिकांशतः असफल रहे । यद्यपि हम साधारण और तीव्र संवेगात्मक दशाओं में अंतर कर सकते हैं, किंतु अब तक हम भिन्न संवेगों के अंतर को पहचानने में बिलकुल सफल नहीं हो सके हैं ।

## मनःशारीरिक प्रतिक्रियाएँ (Psychosomatic Reactions) :

क्रोध और भय में होने वाले शरीरगत परिवर्तन शरीर की ऊर्जा और शक्ति को आपात स्थिति का भय या क्रोध उत्पन्न करने वाली स्थिति का—सामना करने के लिए बढ़ाते हैं। इसीलिए प्रायः कहा गया है कि संवेग शरीर की आपातकालीन प्रतिक्रिया है (केनन, १९२९)। बढ़ा हुआ रक्त-संचालन मस्तिष्क और मांसपेशियों को साधारण अवस्था की अपेक्षा तीव्र गति से शक्ति देता है। पाचन-क्रिया के मंद होने और रक्त के प्रवाह के मांसपेशियों की ओर मुड़ने से भी यही होता है। संक्षेप में, इनमें से प्रत्येक परिवर्तन किसी तरह प्राणी के लिए यह सुविधा प्रस्तुत करता है कि वह तीव्रता से स्थिति का सामना कर सके, अधिक शक्ति का प्रयोग कर सके। तेजी से भाग सके या दृढ़ता से लड़ सके। अतः, शारीरिक परिवर्तन शरीर के अधिक प्रभाव-पूर्ण ढंग से संवेगात्मक आपातकालीन स्थितियों का सामना करने योग्य बनाते हैं।
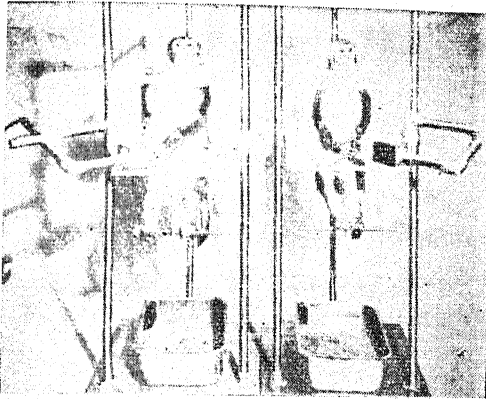
**चित्र ४.७ : चिंता और व्रण ( Ulcer ) उत्पन्न करने वाली स्थिति का अध्ययन। बाईं ओर वाले प्रयोगात्मक बंदर को प्रति २० सेकेंड बाद स्विच को दबाना चाहिए, अन्यथा वह और दाईं ओर वाला नियंत्रित बंदर दोनों ही पैर में विद्युत्-आघात पाएँगे। प्रयोगात्मक बंदर के व्रण हो जाते हैं (जे० वी० ब्रैडी)।**

दूसरी ओर यदि कोई व्यक्ति निरंतर दिन-प्रतिदिन और माह-प्रतिमाह चिंता या कटुता से ग्रसित रहे, तो सहायक स्वायत्त-परिवर्तन बिना शक्ति उत्पन्न किए ही होते रहते हैं और उनका वांछित प्रभाव नहीं होता। कभी-कभी हृदय की बढ़ी हुई धड़कन, बढ़ा हुआ रक्तचाप, अधिक हारमोन-स्राव और पाचन-क्रिया में परिवर्तन शरीर के तंतुओं तथा अंगों के लिए हानिकर हो सकते हैं। अथवा यदि दीर्घकालीन स्वायत्त प्रभाव स्वयं हानिकर नहीं होते, तो वे व्यक्ति को अन्य रोगों के कीटाणुओं के प्रति ग्रहणशील बना सकते हैं या किसी रोग से ग्रस्त होने पर पुनः स्वस्थ होने की योग्यता को कम कर सकते हैं। इस प्रकार दीर्घकालीन तनाव और

दुश्चिता से शरीर में विकार उत्पन्न होते हैं। ये 'मन:शारीरिक विकार' कहलाते हैं— 'साइको' (Psycho) का अर्थ है मन और 'सोमेटिक' (Somatic) का अर्थ है—कायिक या शारीरिक। ये मनोवैज्ञानिक दबावों द्वारा उत्पन्न होते हैं। (डनबर, १९५४)।

यह निरूपित किया जा चुका है कि कुछ लोगों में अनेक विकारों का आधार मन:शारीरिक होता है: पाचन संस्थान के व्रण, तीव्र, रक्तचाप, दमा, त्वचाशोथ एवं स्थूलता आदि। जंतुओं को केवल दीर्घ काल तक आहार की कठोर चिंताग्रस्त स्थिति में रख कर प्रयोग द्वारा उनमें व्रणों को उत्पन्न किया गया है। ये प्रयोग चूहों, कुत्तों और बानरों पर किए थे, किंतु बानरों पर ये सबसे प्रभावशाली सिद्ध हुए ( द्रष्टव्य, चित्र ४·७, ब्रैडी, १९५८ )।

"दो बंदरों को, जिनमें एक प्रयोगात्मक-पात्र और एक नियंत्रित पात्र था, विशेष नमूने की बनी कुर्सियों पर साथ-साथ बैठाया गया। उन्हें आहार और जल उपलब्ध थे और यद्यपि वे कुर्सी के साथ बँधे थे, पर वे उन कुर्सियों पर महीनों तक प्रसन्नता से रह सकते थे। छह-छह घंटे के एकांतरक्रम से बंदर आराम या अपनी इच्छानुसार कोई काम कर सकते थे। बीच के छह घंटों में निम्नलिखित प्रयोग उन पर किए जाते थे—

दोनों के पैर में हर २० सेकेंड के बाद तब तक अल्प विद्युत्-आघात दिया जाता, जब तक कि प्रयोग-पात्र बंदर अपने सामने के स्विच को न दबाए। यदि वह उसे दबा दे, तो २० सेकेंड तक वह विद्युत्-आघात से मुक्त हो सकता था। अत:, हर २० सेकेंड पर यदि वह स्विच दबाता रहे, तो वह आघात को पूर्णत: रोक सकता था। नयंत्रित-पात्र बंदर के सामने वाला स्विच नकली था। अत:, उसे कुछ नहीं करना था। किंतु, प्रयोग के छह घंटों में यदि प्रयोग-पात्र बंदर २० सेकेंड बाद स्विच दबाना चूक जाता, तो दोनों बंदरों को समान रूप से विद्युत्-आघात लगता था।

पहली बार जब इस प्रयोग को करने का प्रयत्न किया गया, तब प्रयोग-पात्र बंदर प्रयोग प्रारंभ करने के २३ दिन बाद व्रण के कारण अचानक मर गया। यह प्रयोग कई बार बाद में अन्य बंदरों पर दोहराया गया। प्रयोग-कर्त्ताओं ने, जो बंदर मर गए थे, उनकी शवपरीक्षा की और उस विधि पर कई और बंदरों का कई सप्ताह बाद तक बलिदान किया। प्रयोग-पात्र बंदरों को, जिनके व्रण हो गए थे, मजाक में 'कार्यकारी' की उपाधि दी गई। इन्हीं को ये जिन्हें कुछ करने की 'चिंता' करनी पड़ती थी, और वे यदि सही कार्य नियामित रूप से करने में असफल होते, तो दंडित किए जाते। नियंत्रित-पात्र बंदर भी वैसे की दंडित होते, लेकिन उनको किसी स्थिति पर अधिकार नहीं

करना था और उसके विषय में कुछ सीखना भी नहीं पड़ता था। उन्हें कुछ करने की चिंता नहीं थी। यह एक रोचक बात है कि प्रयोग-पात्र कार्यकारी बंदरों के बार-बार व्रण हो जाते थे; जब कि किसी नियंत्रित-पात्र बंदर के कभी व्रण नहीं हुए। स्पष्ट है कि कार्यकारी बंदरों को जिस रूप में चिंता और तनाव की स्थिति में रहना पड़ता था, उससे अस्वाभाविक रूप से आमाशय में अधिक स्राव होता, जिसके फलस्वरूप व्रण हो जाते थे।"

यद्यपि हमारे पास निर्णयात्मक प्रमाण हैं कि चिंता व्रण-जैसे विकार पैदा कर सकती है, फिर भी हम इस निर्णय पर नहीं पहुँच सकते हैं कि सब व्रण मनःशारीरिक प्रकार के ही होते हैं। वास्तव में बिना स्पष्ट मनःशारीरिक लक्षणों के लोगों के व्रण हो जाते हैं और निरंतर चिंता के अतिरिक्त भी ऐसे कारण हैं, जो उन्हें उत्पन्न कर सकते हैं। यह अन्य रोगों के लिए भी सत्य है, जो मनःशारीरिक हो सकते हैं। यही कारण है कि यह निर्धारित करना कठिन होता है कि कोई रोग पूर्णतः मनः-शारीरिक है या आंशिक रूप से। अधिकांश रोग संभवतः अनेक कारणों के मिश्रण के परिणाम होते हैं और मनःशारीरिक दबाव उस विकार को तीव्र कर देता है या उसकी ओर व्यक्ति को प्रवृत्त कर देता है। संवेगात्मक दबाव भी अनेक शारीरिक रोगों को पैदा करने वाला महत्त्वपूर्ण कारण है।

**सामान्य अनुकूलन लक्षण समूह (General-Adaptation Syndrome) :**

संवेगात्मक स्थिति में होने वाले अनेक शारीरिक परिवर्तन अन्य प्रकार के दबावों के कारण भी होते हैं। जैसे—अतिश्रम, दीर्घकाल तक ठंडक या गर्मी में रहना बहुत जल जाना या गहन व्यथा, या रोग का कष्ट। अतः, हम ऐसी हर स्थिति को 'प्रतिबल' ( Stress ) कहते हैं, जो शरीर को अपनी को साधारण स्थिति से अधिक व्यय करने को बाध्य करती है।

किसी प्रतिबल के प्रतिक्रियास्वरूप शरीर में के तीन क्रम प्रकट होते हैं ( देखिए, चित्र ४·८)। सामूहिक रूप से 'उन्हें समान्य अनुकूलन' लक्षण समूह' कहा जाता है। प्रथम क्रम, 'चेतावनी प्रतिक्रिया' (Alarm-reaction), संवेगात्मक स्थिति में होने वाले विशेष परिवर्त्तनों से संबंधित है, जिनका विवरण ऊपर दिया गया है। यदि प्रतिबल कुछ समय तक बना रहता है, तो व्यक्ति दूसरे क्रम में प्रवेश करता है, जिसे 'प्रतिबल प्रतिरोधक ( Resistance of Stress ) कहते हैं। इस क्रम में व्यक्ति संवेग के प्रथम स्फोट से ऊपर उठता है और स्थिति को सहन करने की भरसक चेष्टा करता है। ऐसी सहनशीलता उसके शक्ति-स्रोतों पर पर्याप्त खिचाव डालती है। तब वह तृतीय क्रम में पहुँचता है, जिसे 'परिश्रांति' (Exhaustion) की स्थिति कहते हैं। जब वह इस स्थिति में पहुँचता है, तो दीर्घकालीन प्रतिबलों का सामना

करते हुए उसकी आंतरिक शक्ति समाप्त हो चुकती है। हम संवेगात्मक प्रतिबलों में इस स्थिति को बहुधा नहीं देखते हैं। लेकिन, अति-उष्णता या अति-शीत के उद्भासन में व्यक्ति अति-दुर्बल होकर मर भी सकता है।

निरंतर होनेवाले प्रतिबल के प्रति व्यक्ति कुछ प्रतिरोध विकासित कर लेता है, परंतु साथ ही अन्य प्रतिबलों के प्रति उसका प्रतिरोध क्षीण होता जाता है और परिणामतः वह किसी भी प्रतिबल का प्रतिरोध करने में असमर्थ हो जाता है।
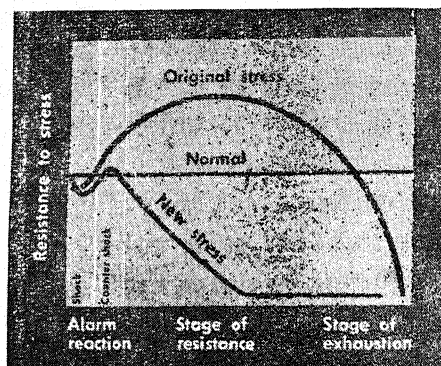
**चित्र ४·८ सामान्य अनुकूलन लक्षण समूह दबाव के प्रति होने वाली अनुक्रिया तीन क्रमों में विभाजित हैं: १. चेतावनी प्रतिक्रिया २. प्रतिरोध और ३ परिश्रांति।**

यह लक्षण समूह व्यक्ति को प्रतिबल से बचाने की शारीरिक चेष्टा को स्पष्ट करता है। किंतु, दुर्भाग्य से इस अनूकूलन के लिए व्यक्ति बड़ी कीमत चुकाता है। इसके फलस्वरूप वह अति-तनाव, गठिया, संधिशोथ, व्रण, एलर्जी और अनेक शारीरिक विकारों का शिकार हो जाता है। ये रोग शायद ही कभी केवल मनोवैज्ञानिक प्रतिबलों से होते हैं, तब भी ये प्रतिबल भयंकर हो सकते हैं। ये रोग के साधारण शारीरिक विकारों के कारणों को इतना उग्र कर सकते हैं कि फलस्वरूप ऐसा रोग उत्पन्न हो जाता है, जो साधारणतया नहीं होता।

कुछ विशेष मानसिक या शारीरिक रोग, जो प्रतिबल के प्रतिक्रियास्वरूप हो जाते हैं, वे व्यक्ति के स्वभाव पर—उसकी दुर्बलताओं पर—और जिन प्रतिबलों को वह सहन कर रहा है, उसके प्रकार पर—निर्भर करते हैं। किसी भी दशा में वे स्पष्टतः शरीर के उपापचय के परिवर्तनों के कारण होते हैं, जो कि प्रतिबल के कारण उत्पन्न होते हैं। किंतु, अभी तक इन्हें पूरी तरह समझा नहीं जा सका है। सबसे सामान्य है अधिवृक्क ग्रंथि ( एड्रेनल ग्रंथि) की प्रतिक्रिया। ऐसा प्रकट होता है कि यह अंग बहुत शक्ति और तीव्रता से प्रतिबल का सामना करता है।

अधिवृक्क ग्रंथि से दो प्रकार के हारमोन ( Hormone ) स्रावित होते हैं, एड्रिनलिन ( Adrenalin ) और कार्टिन (Cortin)। एड्रिनलिन अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र की भूमिका, हृदय की गति और रक्तचाप बढ़ा कर तथा मस्तिष्क और मांस-पेशियों को शक्कर पहुँचा कर, निभाता है। कार्टिन में अनेक हारमोन हैं, जो सोडियम जल एवं अन्य आंतरिक रसायनों को नियंत्रित करते हैं। कार्टिन का एक भाग कॉर्टिजान हैं, जिसके बारे में शायद आपने लोकप्रिय पत्रिकाओं में लेख पढ़े होंगे। यह औषधि और एनड्रिनोकोर्टिकोट्रोपिक (Andrenocorticotropic) हारमोन (ACTH) दोनों का दमा, संधिशोथ और ऐसे रोगों की दवा के रूप में बहुत प्रचार हुआ है। ACTH अधिवृक्क ग्रंथि को कॉर्टिन स्रावित करने के लिए उद्दीप्त करता है।

यह समझने के लिए कि कैसे ये तथ्य प्रतिक्रिया के सामान्य अनुकूलन लक्षण समूह को दबाव से संबद्ध करते हैं, पुनः चित्र ४·८ को देखिए। ध्यान रखिए कि अनुकूलन लक्षण समूह के दूसरे क्रम में को प्रतिबल प्रतिरोध पर जोर बढ़ गया है। इसका अर्थ है कि एड्रिनल स्राव बहुत अधिक होने लगा है। अतः, इस स्थिति में अतिरुधिर तनाव (अत्यधिक रक्तचाप) और हृदय-रोग होते हैं। वास्तव में, इन रोगों के लक्षणों को, जानवरों में एड्रिनल हारमोनों को अधिक मात्रा में अंतःक्षेप ( इनजेक्ट ) करके दुगना किया जा सकता है। दूसरी ओर दीर्घकालीन प्रतिबल के प्रति अनुकूलन की अगली स्थिति में व्यक्ति के शक्ति-स्रोत चुक जाते हैं। इसका एक कारण है—एड्रिनल हारमोन का समाप्त हो जाना। तब दमा और संधिशोथ-जैसे रोग होते हैं। यही कारण है कि ACTH (जो अधिवृक्क वल्कुट या एड्रिनल कार्टेक्स को अतिरिक्त उत्तेजना देती है ) और कार्ट्रिजोन (जो वल्कुट हारमोन की कमी दूर करती है ) जैसी दवाएँ ऐसे रोगों के उपचार में सहायक होती हैं। ये दवाएँ दीर्घकालीन प्रतिबल के फलस्वरूप हुए एड्रिनल क्रिया की समाप्ति की क्षतिपूर्ति करती हैं।

## शांतकर औषधियाँ ( Tranquilizing Drugs ) :

अति-दुश्चिंता और अति-संवेगात्मक अशांति की स्थिति के उपचार के लिए अन्य प्रकार की दवाओं की आवश्यकता होती है। अनेक वर्षों तक, इनके लिए केवल शमक दवाएँ—निद्राकारी दवाएँ—ही उपलब्ध थीं। यदि कोई व्यक्ति बहुत अशांत होता और उसे शांति की आवश्यकता होती, तो उसे शमक (Sedative) दवा दी जाती, मानो वह बहुत उत्तेजित था और सो नहीं सकता था। शमक दवाएँ व्यक्ति को शांत कर देतीं, किंतु कुछ समय के लिए वे उसे कार्यविरत भी कर देतीं। यह इसलिए कि शमक दवाएँ तंत्रिका-तंत्र की क्रिया को मंद कर देती हैं और केवल प्रासंगिक रूप से संवेगात्मकता के कारण हुई शरीरगत विकारों को शांत करती हैं।

पिछले कुछ वर्षों में चिकित्सा-शोध ने ऐसी दवाओं की खोज की है, जो संवेगात्मक व्यवहार पर अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव डालती हैं। ऐसी अनेक दवाएँ हैं और हर एक का भिन्न प्रभाव होता है। सामान्यत: वे तंत्रिका-तंत्र के उस भाग पर प्रभाव डालती हैं, जो संवेगविशेष से संबंधित हों। वे सामान्य शमक दवाएँ न होकर, संवेग-शमक होती हैं। वे व्यक्ति को बिना निद्रालीन किए या कार्यविरत किए शांत कर देती हैं। अत:, वे शांतकर (Tranquilisers) या 'शांतिदायी' (Tranquilizing) दवाएँ कहलाती हैं।

तंत्रिका-तंत्र पर प्रभाव डाल कर वे शरीर को जीर्ण होने से बचा लेती हैं। वे हृदयगति, रक्तचाप, मांसपेशीय तनाव और संवेगात्मक स्वायत्त स्थितियों को मंद करती हैं। अत:, वे व्यक्ति को अधिक आराम पहुँचाती हैं और उसके कष्टदायक संवेगों को शमित करती हैं। प्राय: वे व्यक्ति को कष्ट के भय या उसके कारणों से निश्चित नहीं करतीं। वास्तव में शांतिदायी दवा लेने वाले लोग प्राय: कहते हैं कि दवा लेने के उपरांत भी वे चिंतित हैं, वह औषधि केवल उन्हें अधिक अस्वस्थता अनुभव नहीं होने देती।

उपलब्ध शांतिकर दवाओं की सीमाएँ हैं ( विकलर, १९५७ )। प्रथमत: वे किसी रोग का उपचार नहीं करतीं। वे अस्थायी शांति देती हैं और इस प्रकार चिकित्सक को अन्य उपचारों के प्रयोग की सुविधा देती हैं। द्वितीय, कुछ लोगों पर शांतिकर दवाओं का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता और अंत में, उनके अवांछित प्रतिक्रियात्मक प्रभाव भी हो सकते हैं, विशेषत: यदि उनका प्रयोग दीर्घकाल तक किया जाए तो वे मांसपेशीय कंपन, तीव्र रक्तचाप और अन्य हानिकारक स्थितियों को उत्पन्न कर सकती हैं। इसलिए इनका प्रयोग चिकित्सक को बहुत सावधानी से और समझ कर करना चाहिए।

## संवेगात्मक अभिव्यक्ति (Emotional Expression) :

जब कोई व्यक्ति बहुत क्रोध में हो या बहुत भयभीत हो या बहुत प्रसन्न हो, तो प्राय: उसके व्यवहार से हम बता सकते हैं कि उस समय कौन-सा संवेग उसमें है। व्यवहार के वे कौन से प्रतिमान हैं, जिनसे हम एक संवेग को दूसरे से भिन्न कर सकते है और भिन्नता को स्पष्ट करने में हम कितने सही होते हैं।

ये प्रश्न जब हम अपने से पूछते हैं, तो हम सर्वप्रथम संवेग प्रतिक्रिया के बुनियादी और सर्वव्यापी प्रतिमान—चकित प्रतिमान ( Startle Pattern ) पर विचार करेंगे, तब हम 'मुख-भंगिमा' और 'कंठ-स्वर' तथा उसके बाद संवेगाभिव्यक्ति व्यक्ति की मुद्राओं के प्रकारों पर विचार करेंगे। इस चर्चा में हम अनुभव करेंगे कि

संवेगात्मक अभिव्यक्ति का सही निर्णय करना तब तक संभव नहीं होता, जब तक हम संवेग को उत्पन्न करने वाली संवेगात्मक स्थितियों से परिचित न हों और इस अध्याय का यह अंतिम विचारणीय विषय है।

### चकित प्रतिक्रिया (The Startle Response) :

संभवतः चकित-प्रतिक्रिया आद्य संवेगात्मक प्रतिमान है। अनेक व्यक्तियों के व्यवहार के सावधानीपूर्ण अध्ययन में कम-से-कम यह पाया गया है कि यह प्रतिक्रिया, अन्य संवेगात्मक प्रतिमानों की अपेक्षा हर व्यक्ति में, अधिक स्थायी है। आप इस प्रतिक्रिया को किसी गंभीर विचारों में डूबे व्यक्ति के निकट पंजे के बल धीरे-धीरे लाकर अचानक जोर से 'हो' शब्द बोलकर या जबकि उसे इसकी जरा भी आशा न हो, तब पिस्तौल चलाकर, सहज ही देख सकते हैं। जो प्रतिक्रिया आप देखेंगे, उसे ही मनोवैज्ञानिक 'चकित प्रतिमान' कहते हैं (लेंडीज और हंट, १९३९)।

पूरी घटना बहुत शीघ्रता से, पर निश्चित प्रतिमान में होती है। इस प्रतिक्रिया के पहले भाग में व्यक्ति बहुत तीव्रता से आँखें बंद करता है। उसका मुख एक खिसियानी हँसी प्रकट करता हुआ फैलता है। तब सिर और गर्दन आगे को झुक आते हैं, प्रायः ठुड्डी ऊपर की ओर मुड़ जाती है और गर्दन की नसें (मांसपेशियाँ) तन जाती हैं। व्यक्ति-व्यक्ति में इस संवेगात्मक प्रतिक्रिया की एकरूपता हमें विश्वास दिलाती हैं कि यह एक सहज-प्रतिक्रिया है, जो अधिगम और अनुभव द्वारा बहुत कम परिष्कृत की जा सकती है।

### मुख-भंगिमा और कंठ-स्वर (Facial and Vocal Expression) :

चकित प्रतिमान के अतिरिक्त अन्य संवेगात्मक प्रतिमान व्यक्तियों में बहुत अधिक स्थायी नहीं हैं। वे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में और एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्न होते हैं। अतः, यह स्पष्ट है कि हर व्यक्ति संवेग की अभिव्यक्ति के कुछ नवीन ढंग विकसित करता है। उदाहरण के लिए देखिए चित्र ४·९, जिसमें कुछ बच्चे एक चित्र की ओर देख रहे हैं। जो भी स्थिति हो रही हो, उन सब दर्शकों के लिए वह एक-सी थी। तब भी भिन्न बच्चों में बहुत भिन्न मुख-भंगिमाएँ स्पष्ट देखी जा सकती हैं। यदि आप इनमें से हर एक चेहरे को पृथक्-पृथक् देखें, तो अनेक बच्चों के चेहरों से यह बताना कठिन हो जाएगा कि उनके मुख पर किस संवेग की अभिव्यक्ति थी।

यदि इन संवेगों का वर्गीकरण दो सामान्य वर्गों में किया जाए, तो वे हैं—सुखकर और असुखकर, तो भी मुख की भंगिमा में कुछ निश्चित अंतर देखे जा सकते हैं। असुखद संवेगों में प्रायः मुख नीचे की ओर झुक जाता है और सुखद में मुख ऊपर की ओर उठ जाता है। आँखों के लिए भी यही बात सत्य है। प्रसन्न स्थिति

में वे फैल जाती हैं और दुखी होने पर नीची हो जाती है। लियोनार्दो द विंशी ( Leonardo da Vinci ) इसे जानते थे और उन्होंने इसे संवेगात्मक अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने में सिद्धांत के रूप में स्वीकार करने के लिए कहा।

**चित्र ४·९ संवेगात्मक अभिव्यक्तियों में अंतर। सब बच्चे एक ही चित्र देखते हैं, परंतु कौन-सा संवेग वे अभिव्यक्त करते हैं? (फोटो : ग्लेन्न मिट्चेल द्वारा)।**

मुख-भंगिमाओं के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिकों ने स्वतः उत्पन्न विविध संवेगों को प्रकट करने वाले चेहरों के चित्र उपस्थित किए और उन चेहरों पर अभिव्यक्त संवेगों पर निर्णय देने के लिए लोगों से कहा। इस प्रकार के प्रयोग में, जहाँ निर्णायक केवल चेहरा देख सकते हैं, उनके निर्णय सत्य से बहुत दूर होंगे। यह अधिकतर ठीक बताया जा सकता है कि सुखद संवेग है या दुखद, किंतु यह बताना कि वह भाव उदासी, भय, क्रोध या वैसा ही कोई और संवेग है, बहुत कठिन है। कृत्रिम भावाभिव्यक्तियों ( Posed Expression ) के परिणाम भी ऐसे ही प्रायः होते हैं। जब फिल्मी अभिनेता कुछ विशेष संवेगों को व्यक्त करते हैं और निर्णायक उनकी मुख-भंगिमा देखते हैं, तब अभिव्यक्त संवेग के प्रकार पर दिया गया निर्णय बहुत सही नहीं होता।

इस समस्या पर किए गए संप्रति कुछ प्रयोग (एंजेन एट० एल०, १९५७-१९५८) सूचित करते हैं कि संवेगात्मक अभिव्यक्ति के आयामों को पर्याप्त विश्वसनीयता से निर्णीत किया जा सकता है (द्रष्टव्य, चित्र ४·१०)। ये हैं—सुखासुखप्रदता

(Pleasantness-unpleasantness) अवधना-वर्जन (Attention-rejection) और विश्रांति तनाव (Sleeptension)। सुखासुखप्रदता का आयाम ठीक वही है, जो इसके नाम से प्रकट है। यह वह मात्रा है, जिसमें मुख-भंगिमा सुख अथवा असुख का संवेग अभिव्यक्त करती है। अवधान-वर्जन आयाम के संबंध में अवधान के लक्षण हैं पूरी खुली आँखें, प्रायः फूली हुई नासिका और खुला मुख, मानो संवेगात्मक इंद्रियाँ विषय पर केंद्रित हैं। दूसरी सीमा पर, वर्जन में आँखें, नासिका और ओठ कस कर बंद हो जाते हैं, मानो वह उद्दीपन-विषय को दूर रखना चाहता है। तीसरे आयाम, विश्रांति-तनाव का संबंध तनाव या उत्तेजना की अभिव्यक्ति की मात्रा से है। एक छोर पर निद्रा की पूर्ण विश्रांति है और दूसरे छोर पर अत्यधिक संवेगपूर्ण वह अभिव्यक्ति है, जिसकी आप कल्पना कर सकें।

संवेगात्मक अभिव्यक्ति को तीन आयामों में पर्याप्त परिशुद्धता से निर्णित किया जा सकता है: निद्रा-तनाव, अवधान-अस्वीकृत और प्रसन्नता-अप्रसन्नता।
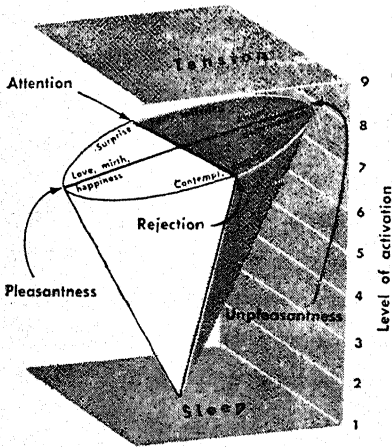
**चित्र-४·१० एक धनाकृति मुख की अभिव्यक्ति के तीन आयामों को प्रस्तुत करती है। ऊपरी सतह ढलाव पर है, ताकि क्रोध और भय घृणा की अपेक्षा सक्रियकरण के उच्चतर स्तर पर पहुँच सकें (श्लोसबर्ग, १९५४)।**

साधारणतः व्यक्ति अपने कंठ-स्वर से अपने संवेग को पर्याप्त अभिव्यक्त करते हैं। चीखना, भय या आश्चर्य, आहें भरना, दर्द और दुःख, सिसकना, वेदना, हँसना, हर्ष को प्रकट करता है। हकलाना या कंठ-स्वर का बीच-बीच में रुकना गहन वेदना अभिव्यक्त कर सकता है। तेज, तीखी और ऊँची आवाज प्रायः क्रोध व्यक्त करती है। दूसरों के संवेगों पर निर्णय देने के लिए, जब हम उनके कंठ-स्वर को सुनते हैं और साथ-साथ उनके चेहरों को भी देखते हैं, तो ये संकेत उनके एक संवेग को दूसरे से भिन्न करने में हमारी सहायता करते हैं।

Distinction approach, Avoidance or Retreat, Sleep

**भंगिमा और मुद्राएँ (Posture and Gestures) :**

संवेगों को भंगिमा और मुद्राओं द्वारा तथा मुख-भंगिमा और कंठ-स्वर द्वारा व्यक्त किया जाता है। भय की दशा में व्यक्ति भागता है या 'उसी स्थान पर जड़ हो जाता है।' क्रोध में वह प्रायः झगड़ालू मुद्रा बनाता है और वह अपनी मुट्ठियाँ भी बंद करता है एवं आक्रमण की चेष्टा करता है। दुःख में, व्यक्ति अपना मुँह लटका लेता है और खुशी में अपना सिर ऊँचा रखता है एवं उसकी छाती फूल जाती है। इस समाज में संवेगों के ये लक्षण पूर्वस्वीकृत हैं। प्रश्न है कि इस प्रकार कितनी देर तक लगातार कोई संवेग अभिव्यक्त होता है? मुखाभिव्यक्तियों के संबंध में व्यक्ति-व्यक्ति में बहुत अंतर पाया जाता है। जब निर्णायकों के सामने केवल हाथों और भुजाओं के अगले भाग ही हों, तो वे प्रचलित अभिव्यक्तियों से पर्याप्त मात्रा में सहमत होते हैं, किंतु कम प्रचलित मुद्राओं के संबंध में उनके निर्णय में अंतर बढ़ने लगता है। यदि वे मुखाभिव्यक्ति और आंगिक-मुद्राओं, दोनों को देख सकें, तो उनका निर्णय पर्याप्त ठीक हो सकता है, फिर भी पूर्णतः ठीक होने से दूर रहता है (क्लाइन और जोह्नसेन, १९३५)।

यदि कोई व्यक्ति भिन्न समाजों की संवेगात्मक अभिव्यक्तियों का अध्ययन करे, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी अभिव्यक्तियाँ काफी मात्रा में अधिगत होती हैं। वास्तव में 'संवेगों की भाषा' ('Language of Emotion)'— हर संस्कृति की अपनी-अपनी होती है। चीनवासी आश्चर्य के भाव को जिह्वा निकाल कर, निराशा को ताली बजाकर और प्रसन्ता को गाल और कान खरोंच कर प्रकट करते हैं। हमारे समाज (पश्चिमी समाज) में जिह्वा निकालने को क्रोध का लक्षण समझने की संभावना है, और ताली बजाना प्रसन्नता का, और कान खरोंचना चिंता का लक्षण है। संस्कृतियों में संवेगाभिव्यक्ति की मात्रा भी भिन्न होती है। उदाहरणार्थ, अमेरिकन इंडियन, अपेक्षाकृत अल्पभाषी और अभिव्यक्तशून्य होते हैं जब कि फ्रांस-वासी साधारण संवेगों को भी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर व्यक्त करने में प्रसिद्ध हैं।

**संवेगात्मक स्थितियाँ (Emotional Situations) :**

किसी संवेगाभिव्यक्ति का एकांगी रूप—मुख-भंगिमा, कंठ-स्वर, आंगिक अभिव्यक्ति या मुद्रा—संवेग के प्रकार को पूर्णतः स्पष्ट करने में बहुत विश्वसनीय लक्षण प्रस्तुत नहीं करता। दूसरे शब्दों में, संवेग के ये विविध अंग एक से दूसरे व्यक्ति में एक समान नहीं होते। जब निर्णायकों के सम्मुख ये सब अंग एक साथ प्रस्तुत हों, तो वे एक-एक अंग पर दिए गए निर्णय की अपेक्षा अधिक ठीक निर्णय देंगे। इतने पर भी वे काफी भूलें कर सकते हैं या क्रोध और भय-जैसे संवेगों में अंतर करने में त्रुटि कर सकते हैं।

संवेगात्मक अभिव्यक्ति का निर्णय एकदम सही करने के लिए केवल अभिव्यक्ति के प्रतिमान पर ही विचार करना काफी नहीं है, वरन् उस स्थिति पर भी विचार करना आवश्यक है, जिसमें संवेग घटित होता है। जब स्थिति और अभिव्यक्ति दोनों मालूम हो जाती हैं, तब संवेग के प्रति हम पर्याप्त सही बात कह सकते हैं (क्लाइन वर्ग, १९५४)। हम सब इस तथ्य से अच्छी तरह परिचित हैं कि भिन्न परिस्थितियों में हमारा संवेग किस प्रकार भिन्न हो जाता है और इस प्रकार हम जानते हैं कि दूसरे व्यक्ति का वैसी ही परिस्थिति में संवेग क्या होना चाहिए या क्या हो सकता है। अतः, अभिव्यक्ति से अधिक हम परिस्थितियों से संवेगों के अंतर को समझ सकते हैं। संवेगात्मक विकास के परिच्छेद में हम विविध संवेगों को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के प्रकारों का उल्लेख कर चुके हैं।

## विनोद और हँसी (Humour and Laughter):

मुसकुराना और हँसना संवेग की भिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। शिशुओं में, हमने देखा है, मुसकुराना गुदगुदाने और थपथपाने या रुचिकर स्वर करने या नवीन चेष्टा प्रस्तुत करने की प्रतिक्रिया है। बड़े बच्चों में या वयस्कों में मुसकुराना और हँसना परिस्थितियों की बढ़ती हुई विविधता के अनुसार होता है। इन परिस्थितियों के दो सामान्य वर्ग होते हैं।

एक वह परिस्थिति है, जिसमें व्यक्ति अपनी श्रेष्ठता या उत्कृष्टता, शत्रुता, यौन-भावना, या अन्य ऐसे व्यवहार जो साधारणतः समाज द्वारा अस्वीकृत होते हैं, उन्हें समाज द्वारा स्वीकृत किए जाने वाले ढंग से प्रकट कर सकता है। बच्चे जब अपने किसी खिलाड़ी साथी को देखते हैं, तो भद्दी और मूर्खतापूर्ण हँसी हँसते हैं या चिढ़ाने के बहाने वे दूसरों को हैरान करते हैं। इस प्रकार वे अपनी उत्कृष्टता या शत्रुता को बिना दंड पाने की आशंका के अभिव्यक्त करते हैं। कुछ वयस्क 'अश्लील' 'गंदी' कहानियों पर हँसते हैं और इस प्रकार समाज द्वारा अस्वीकृत यौनवृत्ति को वे व्यक्त करते हैं।

दूसरी परिस्थिति है, विषमता या बेतुकापन। एक व्यक्ति जब प्रत्यक्ष और संभावित परिस्थिति में विषमता देखता है, तो हँसता है। यदि कोई व्यक्ति नहाने के वस्त्र में पानी में गिर पड़े, तो हम हँसते नहीं हैं; क्योंकि उसमें कोई बेतुकापन नहीं है। किंतु यदि वह घूमने-फिरने वाले वस्त्रों में पानी में कूदे, तो वह बेतुका लगेगा और उस पर हम हँसते हैं। ऐसे बेतुकेपन पर हम तभी हँसते हैं, जब यह दूसरों के साथ घटित हो। दूसरों के साथ होने पर ही स्थिति हास्यास्पद होती है।

हास्यास्पद कहानियाँ सुनाने में प्रायः प्रथम तत्त्व—श्रेष्ठता, शत्रुता या कामुकता—होता है, किंतु वह मुख्यतः बेतुकेपन के विकास पर विश्वास करने से होता है।

एक सफल कथाकार किसी कहानी के प्रति विशेष धारणा बना देता है। किंतु, उसके निकट पहुँच कर वह नए आश्चर्य को व्यक्त करता है। वह कुछ ऐसी बात कह देता है जिसकी आशा हमने नहीं की थी, और यही विषमता (या बेतुकापन) है। हमारी मूल धारणा जितनी दृढ़ बनी होगी, भिन्न स्थिति उतना ही तीव्र परिहास उत्पन्न कर सकेगी। किंतु, इस विषम स्थिति को उपयुक्त होना चाहिए। इसे ऐसा होना चाहिए, जो उस कहानी के साथ घटित हो सकता था। यदि हमने उसका दूसरा अंत न सोचा होता। अतः, विषमता (बेतुकापन) अर्थपूर्ण होनी चाहिए। यदि बिलकुल या पूर्णतः भिन्न कहा गया, तो वह निरर्थक हो जाएगा।

## सारांश

१. प्राणी की प्राकृत अवस्था से कुछ भी भिन्न दशा संवेगात्मक है, इसके अंतर्गत भावनाएँ, कार्य करने की प्रवृत्तियाँ और कुछ आंतरिक शारीरिक प्रतिक्रियाएँ हैं।

२. संवेगात्मक प्रवृत्तियाँ पशुओं में और संभवतः मनुष्यों में भी वंशगत होती हैं। अंतःप्रजनन द्वारा जानवरों के ऐसे प्रभेद को विकसित करना संभव है, जो बहुत संवेगात्मक हों या अधिक असंवेगात्मक हों।

३ शिशुओं में संवेगात्मक विकास का प्रतिमान संवेग के क्रमिक अंतर के साथ होता है। पहले केवल उत्तेजना होती है। इससे दुःख और सुख का अंतर होता है और वे आगे चलकर क्रोध, भय, गर्व या लोगों के प्रति अनुराग में विकसित होते हैं।

४. संवेगात्मक विकास में परिपक्वता और अधिगम दोनों का योग रहता है। इस विकास में आगे चलकर अधिगम का महत्त्व अधिक हो जाता है। बाद की स्थिति में जिन कारकों का महत्त्व होता है, वे हैं—भाषा और पेशीय क्रियाओं की योग्यताओं को बढ़ाना, वस्तुओं और व्यक्तियों से परिचय बढ़ाना, संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ सीखने के अवसरों को बढ़ाना, नए उद्देश्यों और लक्ष्यों को बढ़ाना एवं संवेगों को नियंत्रित करना सीखना।

५. विकासकाल में संवेगात्मक अभिव्यक्ति में परिवर्तन हो जाता है। बच्चों में वयस्कों की अपेक्षा संवेगों का प्रदर्शन बार-बार होता है और संवेगों की आवेशपूर्ण अभिव्यक्ति कम समय के लिए होती है। संवेगों को नियंत्रित करना धीरे-धीरे सीखा जाता है. संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ भी अधिक सूक्ष्मता से गंभीरता को प्राप्त करती हैं।

६. सामान्यतः, प्रसन्नता को उत्पन्न करने वाली परिस्थिति, लक्ष्य की उपलब्धि और अभिप्रेरणा को तृप्त करने वाली होती है। भय को उत्पन्न करने वाली परिस्थिति पहले विचित्र उद्दीपन के रूप में अचानक उपस्थित होती है, किंतु बाद में, वह कोई जंतु के रूप में या हानिकर धमकी के रूप में होती है और वयस्क के लिए मुख्यतः वह किसी सामाजिक स्थिति से संबंधित रहती है। क्रोध किसी भी कुंठा (भग्नाशा) या लक्ष्य-प्राप्ति में बाधक क्रिया के द्वारा उत्पन्न होता है।

७. संवेगात्मक आदतें अर्जित की जाती हैं; क्योंकि कोई भी स्थिति किसी संवेग के साथ अनुकूलन के द्वारा बराबर संबंधित होने के कारण भय को उत्पन्न करती है। अनेक भय इस प्रकार अर्जित होते हैं। क्रोध और शत्रुता के संवेग भी लक्ष्य-उपलब्धि के सामाजिक कौशल के रूप में अर्जित किए जाते हैं। समाज क्रोध की अभिव्यक्ति को दबाने की चेष्टा करता है, किंतु ऐसा करने में वह क्रोध और शत्रुता को उत्तेजित करता है। भय और क्रोध दोनों आसानी से साधारणीकृत हो जाते हैं।

८. बच्चों में कुंठा उद्देश्यप्राप्ति में वातावरण में उपस्थित बाधाओं के कारण होती है। बाद में इस कुंठा का कारण वह लक्ष्य है, जो व्यक्ति की योग्यताओं से बहुत ऊँचा होता है और जिसे वह उपलब्ध नहीं कर सकता। वयस्कों में कुंठा का कारण है लक्ष्यों में संघर्ष, अतः एक उद्देश्य दूसरे को कुंठित किए बिना पूर्ण नहीं हो सकता।

९. तीव्र संवेग में शरीर में अनेक परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन संवेगों के परिणामस्वरूप होते हैं जो स्वायत्त तंत्रिका-तंत्र के कारण होते हैं और विशेषतः इस तंत्र के अनुकंपी भाग के कारण। इसके अतिरिक्त एड्रिनलिन हारमोन स्रावित होता है। यह स्राव स्वयं ही अनेक शारीरिक परिवर्तन कर सकता है।

१० संवेगात्मक स्थितियों में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का परिमापन उपयुक्त यंत्रों से हो सकता है और 'असत्यसूचक यंत्र' में उनका व्यावहारिक प्रयोग किया भी गया है। इन परिमापनों से संवेग के प्रकार को बता सकना संभव नहीं है।

११. दीर्घकालीन संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ निरंतर हृदयगति, रक्तचाप, हारमोन के स्राव और अन्य प्रतिक्रियाओं के बढ़े रहने के कारण मनःशारीरिक रोग उत्पन्न कर सकती हैं। इस प्रकार से उत्पन्न किए गए या तीव्र किए गए विकारों के अंतर्गत पाचन-संस्थान के व्रण, तीव्र रक्तचाप, दमा, त्वचाशोथ और स्थूलता है।

१२. तीव्र प्रतिबल में शरीरगत प्रतिक्रियाओं को तीन स्तरों में स्पष्ट देखा जा सकता है : चेतावनी प्रतिक्रिया, जिसके अंतर्गत विशेष संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ आती हैं, दूसरे स्तर में बढ़ी हुई दबाव-प्रतिरोधक प्रतिक्रियाएँ हैं और अंतिम स्तर में

श्रांति है, जिसमें दबाव का सामना करने वाली आंतरिक शक्तियाँ समाप्त हो जाती हैं। तीनों स्तरों को एक साथ 'सामान्य अनुकूलन लक्षण समूह' संलक्षण कहते हैं।

१३. शांतिकर औषधियाँ संवेग-शमक होती हैं; क्योंकि वे दुश्चिंताओं और संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को शांत कर देती हैं। वे स्वयं संवेगात्मक रोगों का उपचार नहीं करतीं और उनके अवांछित प्रतिक्रियात्मक प्रभाव भी प्रायः होते हैं।

१४. केवल मुख, कंठ-स्वर और हाथों की मुद्राओं की अभिव्यक्तियों पर संवेग के स्वरूप का निर्णय करने की जो चेष्टा की जाती है, उसमें साधारण सफलता ही मिलती है। पूर्ण सफलता तब मिलती है, जब प्रेक्षक न केवल संपूर्ण संवेगात्मक प्रतिमान को ही देखता है, वरन् वह संवेग को उत्पन्न करने वाली परिस्थिति को भी जानता है।

पठनार्थ सुझाव :

Cannon, W. B. Bodily Changes in Pain, Hunger, Fear and Rage (2d ed.) New York : Appleton-Century-Crofts, 1929.

संवेगों में शरीर-क्रियात्मक परिवर्तनों का सैद्धांतिक वर्णन।

Dollard, J., Doob, L.W., Miller, N.E., Mowrer, O.H , Sears, R.R., Ford, C.S., Hovland, C.I., and Sollenberger, R.T. Frustration and Aggression. New Haven Conn..Yale University Press, 1939.

कुंठा और आक्रामकता (Aggression) के मध्य संबंध का प्रयोगात्मक और सैद्धांतिक विश्लेषण।

Dunbar, F. Mind and Body : Psychosomatic Medicine : New York : Rondom House, 1947.

स्वास्थ्य और बीमारी में संवेगों के महत्त्व पर लिखित एक काय-चिकित्सक का प्रसिद्ध विवरण।

Inbau, F. E. Lie-Detection and Criminal Investigation. Baltimore: Williams and Wilkins, 1942.

मिथ्यासंधान प्रणालियों के व्यावहारिक प्रयोग का प्रामाणिक विवरण।

Lund, F. H. Emotions : New York : Ronald, 1939.

संवेगों का वर्णन, संवेगों में शरीर-क्रिया वैज्ञानिक घटकों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

Rappaport, D. Emotions and Memory, New York : International University Press, 1950.

स्मृति पर संवेग और संवेगात्मक संघर्षों के प्रभावों का विश्लेषण।
Reymert, M. L. (ed.) Feelings and Emotion, New York : McGraw-Hill, 1950.
अधिकारी विद्वानों के निबंध परिसंवाद का विवरण, जिनमें संवेगों के आधुनिक ज्ञान का सार प्रस्तुत किया गया है।
Ruckmick, C.A. The Psychology of Feeling and Emotion, New York : McGraw-Hill, 1936.
संवेग के क्षेत्र में प्रयोगों और अवधारणाओं के इतिहास का सुंदर विवरण।
Young, P.T. Emotion in Man and Animal, New York: Wiley, 1943.
संवेगों की सामान्य सूचनाओं पर लिखित पुस्तक।

अध्याय ५

# मनोरथ-भंग (कुंठा) और अंतर्द्वन्द्व

अभिप्रेरित जीव वह है, जिसमें कोई आवश्यकता अथवा अंतर्नोद है। यदि आवश्यकता दीर्घकाल तक अतृप्त रही है, तो हम कहेंगे कि प्राणी उससे वंचित रहा है। उदाहरणत: वह व्यक्ति, जिसने दिन भर भोजन नहीं किया, क्षुधा-वंचन या अतृप्ति से ग्रस्त है। आवश्यकताएँ प्राय: लक्ष्य तक पहुँचने के उस प्रयास से संबद्ध रहती हैं, जो आवश्यकताओं को तृप्त करता प्रतीत होता है। वह व्यक्ति जो क्षुधाग्रस्त है, इस संबंध में प्राय: कुछ करने का प्रयत्न करता है, वह निकटतम दुग्धालय या भोजनालय में पहुँचने की चेष्टा करता है। अशिक्षित एवं सरल प्राणियों में उपयुक्त लक्ष्य की खोज 'प्रयत्न और भूल' की प्रक्रिया द्वारा होता है। कुछ अधिक शिक्षित प्राणियों में यह प्रयास, व्यवहार के अधिगत प्रतिमान, जिससे वह विगत जीवन-लक्ष्य तक पहुँचा था, के रूप में रहता है। विद्यार्थी स्मरण करें कि इस विषय का तृतीय अध्याय में कुछ विस्तार से उल्लेख हो चुका है।

जब अभिप्रेरित जीव का प्रयास बाधाओं से अवरूद्ध या विफल किया जाता हैं, तब हम कहते हैं कि प्राणी कुंठित है। **अर्थात् आवश्यकता की आपूर्ति वंचन मात्र है, किंतु लक्ष्य से संबंधित व्यवहार का विफल होना कुंठा है।** साधारणत: प्रेरणा जितनी तीव्र होगी, उतना ही गहन प्रयास भी होगा और उतनी ही गंभीर कुंठा होगी। मनुष्यों के संबंध में यह भी कहा जा सकता है कि उनके मन में लक्ष्य जितना निकट या स्पष्ट होगा, उतनी ही तीव्र कुंठा होगी।

शारीरिक अभिप्रेरणों के अतिरिक्त मनुष्यों ने अनेक आवश्यकताएँ अर्जित की हैं तथा अनेक लक्ष्य अधिगत किए हैं, जिनसे वह लाभांवित हुआ है। उसने लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयासों के अनेक ढंग या विधियाँ सीख ली हैं। अत:, जंतुओं की अपेक्षा मनुष्यों के कुंठित होने की संभावनाएँ अधिक हैं। वस्तुत:, मानव-समायोजन को कुंठा के विरुद्ध उसका निरंतर संघर्ष कहा जा सकता है। कुछ व्यक्तियों में यह संघर्ष अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक उग्र होता है। कुछ व्यक्तियों को सफलता

मिलती है। कुछ सफलता से अधिक प्रायः असफलता प्राप्त करते हैं, ऐसे व्यक्तियों को हम अपसमायोजित (Maladjusted) कहते हैं और चरम स्थिति में पहुँचने पर ये ही मनोरोगी होते हैं। अतः, कुंठा का अध्ययन और परिणाम हमारे गहन अवधान की अपेक्षा रखता है।

## अभिप्रेरकों में द्वंद्व (Conflict of Motives) :

वह बाधा या प्रतिरोध, जो लक्ष्य की प्राप्ति को कुंठित करता है, कुंठाओं का मूल स्रोत है। जटिल समाज में कुंठाओं के अनंत प्रकार हैं। मूल स्रोत के अनुसार उन्हें तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—१. पर्यावरणगत कुंठा २. व्यक्तिगत कुंठा और ३. द्वंद्वगत कुंठा। इनका वर्णन चतुर्थ अध्याय में हो चुका है और यहाँ केवल उन्हें दुहराने की आवश्यकता है।

१. पर्यावरणगत कुंठा वातावरण के बाधाओं के कारण उत्पन्न कुंठा है—वातावरण में कोई भी वस्तु, जो लक्ष्यप्राप्ति में बाधा पहुँचाए।

२. व्यक्तिगत कुंठा वह कुंठा है, जो लक्ष्य तक पहुँचने की व्यक्ति की अयोग्यता से उत्पन्न होती है, व्यक्ति इसलिए कुंठित है; क्योंकि उसके लक्ष्य अप्राप्य हैं। अन्य शब्दों में, व्यक्तिगत कुंठा का कारण, तृतीय अध्याय में उल्लिखित आकांक्षा-स्तर (Level of Aspiration) और निष्पादन-स्तर ( Level of Performance) के मध्य असंगति है।

३. द्वंद्वगत कुंठा, वह कुंठा है, जो व्यक्ति के भीतर अभिप्रेरणात्मक द्वंद्व के कारण होती है। दो अभिप्रेरकों में द्वंद्व होता है, एक ही पूर्ति का अर्थ है दूसरी का कुंठित होना।

कुंठा के स्वरूप को चित्र ५·१ की भाँति आयोजित कर प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार के आरेख में दीर्घवृत्त व्यक्ति के संपूर्ण वातावरण को सूचित करता है, बिंदु व्यक्ति का प्रतीक है और ऊर्ध्व रेखा लक्ष्य की विफलता को प्रदर्शित करती है। लक्ष्य + या — चिह्न द्वारा व्यक्त होते हैं, वे कर्षण-शक्ति (Valence) कहलाते हैं। धन चिह्न उस लक्ष्य को सूचित करता है, जिससे व्यक्ति आकर्षित होता है और ऋण चिह्न उस लक्ष्य को, जो उसे प्रतिकर्षित करता है—जैसे दंड, धमकी या जिससे उसे भय लगे या जिसका वह परिहार करना सीख जाता है। तीर के चिह्न का प्रयोग भौतिकी (Physics) में सदिश (Vector) की भाँति उस व्यक्ति पर कार्यकारी (Acting) बल के निदेशन (Direction) को सूचित करने के लिए होता है, जो अनेक उद्देश्यों से प्रभावित होता है। कुंठा स्थिति को व्यक्त करने का यह विशेष साधन लेविन (Lewin, 1935) द्वारा आविष्कृत हुआ है और यह कुंठा

के प्रभावों और मूल स्रोतों को देखने में सहायता देता है। चित्र ५·१ वातावरणगत कुंठाओं की स्थिति का वर्णन करता है।

पर्यावरणगत बाधा के कारण धनात्मक लक्ष्य की ओर आकर्षित व्यक्ति कुंठित हो सकता है।
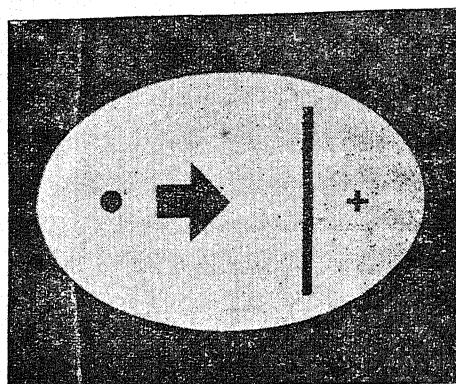
**चित्र ५. १. पर्यावरणगत बाधाओं के कारण कुंठा। व्यक्ति (बिंदु) और उसे आकृष्ट करने वाले लक्ष्य के मध्य बाधा ( ऊर्ध्व रेखा ) खड़ी है।**

हमने यहाँ जिन तीन सामान्य प्रकार की कुंठाओं का विभाजन किया है, उनमें द्वंद्व गत कुंठा व्यक्ति के जीवन में होने वाले समायोजन को निर्धारित करने के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसी कारण उसके लिए गहन अध्ययन की आवश्यकता है। वास्तव में विश्लेषण से द्वंद्वगत कुंठा तीन विभिन्न प्रकार के द्वंद्वों में उत्पन्न होती है। यह उपागम-उपागम द्वंद्व ( Approach-approach Conflict ) निवारण-निवारण द्वंद्व ( Avoidance-avoidance Conflict ) और उपागम-निवारण द्वंद्व (Approach-avoidance Conflict) है।

## उपागम-उपागम द्वंद्व :

जैसा कि नाम ही सूचित करता है, उपागम-उपागम द्वंद्व दो धनात्मक लक्ष्यों के मध्य द्वंद्व है, जो एक ही समय में समान रूप से आकर्षित करने वाले हैं ( देखिए, चित्र ५·२)। उसका एक शारीरिक उदाहरण, वह द्वंद्व है, जो उस समय उत्पन्न होता है, जब व्यक्ति एक ही समय क्षुधातुर व निद्रालु होता है। सामाजिक उदाहरण लें, तो यह द्वंद्व उस समय उत्पन्न होता है, जब कि कोई व्यक्ति एक ही रात्रि में होने वाले नृत्य और तैरने-जैसे दोनों ही कार्यक्रमों के लिए जाना चाहता है। अनुमान किया जाता है कि एक प्रसिद्ध लोकोक्ति का नायक गधा भूख से मर गया था, चूँकि वह सूखी घास के दो ढेरों के मध्य खड़ा था और यह निश्चित नहीं कर सका था कि पहले किसे खाए। वस्तुतः गधे या मनुष्य केवल दो धनात्मक द्वंद्वों के कारण भूख से पीड़ित होकर नहीं मरते। व्यक्ति इस प्रकार के द्वंद्व का विघटन या निर्णय पहले एक लक्ष्य को

पूर्ति करने के उपरांत दूसरे की पूर्ति करके करता है। उदाहरण के लिए यदि वह एक ही साथ भूखा और निद्रालु है, तो पहले खाकर, फिर सो कर करता है या एक लक्ष्य को चुन कर और दूसरे का त्याग करके करता है।

कुंठा के कारण दो धनात्मक लक्ष्यों के मध्य द्वंद्वात्मक आकर्षण हो सकता है।

चित्र ५·२.
उपागम-उपागम द्वंद्व
एक ही समय में व्यक्ति परस्परविरोधी लक्ष्यों की ओर आकर्षित होता है।
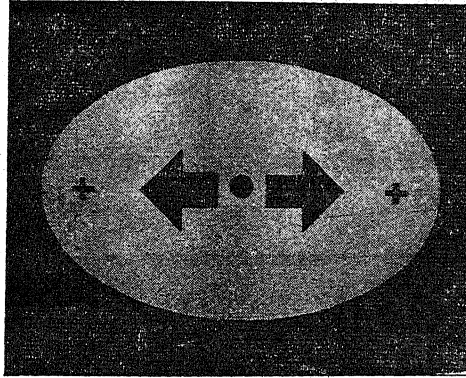
## निवारण-निवारण द्वंद्व :

चित्र ५·३ में द्वितीय प्रकार का द्वंद्व, निवारण-निवारण द्वंद्व, आरेखित है। इसमें दो प्रकार के निषेधात्मक लक्ष्य होते हैं और दोनों में पर्याप्त समानता रहती है। बालक जॉनी को अपने गणित का कार्य अवश्य करना है, अन्यथा उसे मार पड़ेगी। विद्यार्थी को परीक्षा के लिए अगले दो दिन पढ़ने में अवश्य व्यतीत करने हैं, अन्यथा असफल होने की संभावना का सामना करना पड़ेगा। एक व्यक्ति को अपनी उस नौकरी पर कार्य करना ही होगा, जिससे वह अत्यधिक घृणा करता है, अन्यथा अपनी आय को खोने का अवसर लेना होगा। इस तरह के द्वंद्वों को अंग्रेजी भाषा के एक सामान्य कहावत द्वारा व्यक्त कर सकते हैं—'दैत्य और गहरे नील समुद्र के बीच में फँसना (Caught between the devil and the deep blue sea)। शायद आप अपने अनुभवों से अनेक ऐसे उदाहरणों को सोच सकते हैं। जब आप किसी कार्य को करना नहीं चाहते, किंतु या तो उसे करना ही होगा या कम वांछनीय विकल्पों का सामना करना होगा। वस्तुतः ऐसे द्वंद्व बहुत प्रचलित हैं।

इस प्रकार के निवारण-निवारण द्वंद्वों में दो प्रकार के व्यवहार विशेष रूप से स्पष्ट होने की संभावना है। प्रथम है—चंचलता या गतिशीलता। हम देखते हैं कि जैसे-जैसे लक्ष्य के निकट व्यक्ति पहुँचता है, लक्ष्य की आकर्षण-शक्ति बढ़ती जाती है।

जैसे ही एक व्यक्ति निषेधात्मक लक्ष्य तक पहुँचता है, वह उसे अत्यधिक अरुचिकर पाता है। फलस्वरूप वह उससे पीछे हटने में या उसे स्थगित करने में प्रवृत्त होता है। ऐसा करने में वह दूसरे निषेधात्मक लक्ष्य के निकट आता है और फलतः उसकी निषेधात्मक क्षमता बढ़ती है। उसकी स्थिति बेस-बाल (Baseball) के एक खिलाड़ी की तरह है, जो प्रथम और द्वितीय बेस के मध्य भाग-दौड़ में फँसा है। वह एक की ओर भागता है, फिर दूसरे की ओर। जब वह दूसरे बेस की ओर भागता है, तब देखता है कि वह **घेरे** के बाहर कर दिया गया है। वह फिर पहले की ओर भागता है और वहाँ भी उसे वही स्थिति मिलती है। ऐसी चंचलता या अनिश्चितता **निवारण-निवारण द्वंद्व** का लक्षण है।

दो या अधिक निषेधात्मक लक्ष्यों में फँसने का परिणाम कुंठा हो सकता है।
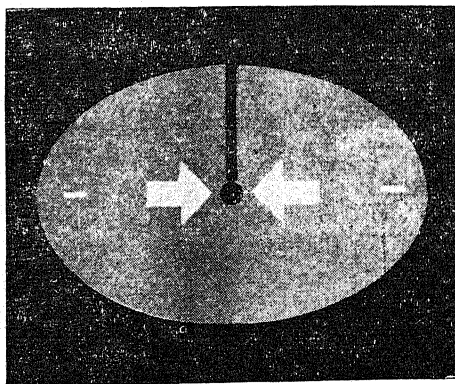
**चित्र ५·३. निवारण-निवारण द्वंद्व। व्यक्ति दो कष्टकर विफलताओं, भयों या स्थितियों में फँस जाता है। कथित निषेधात्मक लक्ष्यों के अतिरिक्त प्रायः अन्य बाधाएँ या निषेधात्मक लक्ष्य भी व्यक्ति को कुंठित करते हैं। अन्यथा. इस प्रकार के द्वंद्व में व्यक्ति 'मैदान छोड़ने' (काले तीर के चिह्न) की ओर द्वंद्व से बचने के लिए, प्रवृत्त होता है।**

द्वंद्वात्मक परिस्थिति से पलायन की चेष्टा इस प्रकार के द्वंद्व का दूसरा महत्त्वपूर्ण लक्षण है। सिद्धांततः कोई व्यक्ति द्वंद्वात्मक परिस्थिति से दूर भागकर निवारण-निवारण द्वंद्व से पूर्णतः बच सकता है। वास्तव में लोग इसका प्रयत्न भी करते हैं, किंतु व्यवहार में अन्य निषेधात्मक लक्ष्य भी इस क्षेत्र की परिधि में हैं और वे साधारणतः व्यक्ति को ऐसा विकल्प स्वीकार नहीं करने देते। उदाहरणार्थ, एक बच्चा जो न गणित करना चाहता है और न खेल सकता है, वह घर से चुपचाप भागने की बात सोचता है। किंतु, इसका परिणाम परिस्थिति में रहने और समस्या का सामना करने की अपेक्षा, अधिक भयंकर होता है। वयस्क व्यक्ति निवारण-निवारण द्वंद्व से भागने की एक भिन्न चेष्टा कर सकता है। यह है कि वह अपने विचारों और अपनी

कल्पनाओं के द्वारा दुखद स्थिति से दूर चला जाता है। अपना समय समस्या का सामना न करके दिवास्वप्न में व्यतीत करता है। एक विद्यार्थी को जब पढ़ना चाहिए, तब वह दिवास्वप्न देखता है। वह जादू द्वारा काल्पनिक जगत की सृष्टि करता है या अपनी मानस-दृष्टि में वह बाल्यकाल के चितारहित जगत की पुनर्सृष्टि करता है, जिसमें अरुचिकर कार्यों को करने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसे अतिवादी उदाहरण में द्वंद्वात्मक परिस्थिति से भागने के रूप स्वैरकल्पना ( Fantasy ) अथवा प्रतिगमन (Regression) कहलाते हैं। इन पर हम इसी अध्याय में आगे चल कर विचार करेंगे।

उपागम-निवारण द्वंद्व :

इन तीनों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तीसरे प्रकार का द्वंद्व अभिगम-निवारण द्वंद्व है; क्योंकि उसमें निश्चय करना अत्यंत कठिन है। उपागम-निवारण द्वंद्व में व्यक्ति एक ही लक्ष्य वस्तु की ओर आकर्षित और प्रतिकर्षित दोनों होता है।

एक ही परिस्थिति आकर्षक और कष्टकर दानों होने के कारण कुंठा-जनक हो सकती है।

**चित्र-५.४ उपागम-निवारण द्वंद्व। व्यक्ति धनात्मक लक्ष्य की ओर आकर्षित होता है, किंतु इस लक्ष्य के साथ भय या विफलता (निषेधात्मक लक्ष्य) भी सबद्ध है। ऐसे द्वंद्व से मुक्त होना कठिन है और यह उपागम-उपागम अथवा निवारण-निवारण द्वंद्व की अपेक्षा अधिक दुश्चिता उत्पन्न करता है।**
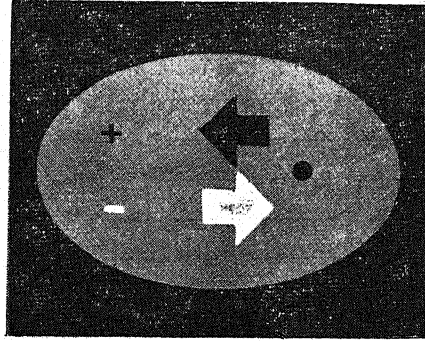
उदाहरणत: एक नवबधू का ऐसे वातावरण में पालन-पोषण हुआ था, जिसमें यौन-क्रियाएँ भद्दी और पापमय समझी जाती थीं। परिणामस्वरूप यौन-विषय उसके लिए निषेधात्मक होते हैं। (देखिए, चित्र ५.४)। उसी समय उसकी स्वाभाविक काम-प्रेरणा एवं विवाह से संबंधित अन्य सामाजिक मूल्य उसके लिए धनात्मक संयोग-स्थिति उपस्थित करते हैं। ऐसी स्थिति में जब वह वैवाहिक जीवन में प्रवेश करती है, तो एक ओर अपनी स्वाभाविक रति-प्रेरणा और दूसरी ओर अपने माता-पिता से प्राप्त दृष्टिकोण के मध्य उलझ जाती है। इस उलझन से, सिवाय अपनी प्रवृत्ति को

परिवर्तित करने के, निकलने का कोई मार्ग नहीं। आरेख में इसका अर्थ होगा, इनमें से किसी एक के लक्षणों को मिटाना अथवा दबाना।

नववधू का उदाहरण हमें यह समझने में सहायता देता है कि किस प्रकार उपागम-निवारण द्वंद्व उत्पन्न होता है। इस पर ध्यान दें कि द्वंद्व के उत्पन्न होने का कारण बचपन के प्रशिक्षण द्वारा अर्जित सामाजिक मूल्य हैं। ये मूल्य प्रवृत्तियों की तृप्ति के मार्ग में बाधा उपस्थित करते हैं; क्योंकि ये व्यक्ति के अंतर्मन में होते हैं, उन्हें अर्जित करने की प्रक्रिया (जिस पर हमने तृतीय अध्याय में विचार किया है) अंतराल बाधा या आंतरिक बाधा (Internalizing-obstacles) कहलाती है। ऐसी बाधाएँ व्यक्ति को उसी प्रकार हताश कर देती हैं, जैसे बाल्यकाल में पर्यावरणगत बाधाएँ। वे वाह्य की अपेक्षा आंतरिक होती हैं, इसलिए व्यक्ति के लिए उन्हें सुलझाना कठिन हो जाता है। वह वाह्य बाधाओं के निवारण का मार्ग खोज सकता है, मगर आंतरिक बाधाओं को शायद ही वह सुलझा पाता है।

कुंठा का यह विश्लेषण, जो चित्र ५.१ से ५.४ तक में दिखाया गया है, हमें कुंठा उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियों को अपने सरलतम रूपों में, कम करने या बदलने की सुविधा देता है। दैनिक जीवन में परिस्थितियाँ शायद ही कभी इतनी सहज होती हैं। द्वंद्व के ऐसे उदाहरण अधिक हैं जिनमें अनेक लक्ष्य होते हैं, विशेषत: निषेधात्मक, जो व्यक्ति को ऐसे दबावों से घेरे रहते हैं, जिनसे वह मुक्त होने की इच्छा करता है। विविध परिस्थितियों के जटिल मिश्रणों का भी सामना व्यक्ति को करना पड़ता है, जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं। चित्र ५.५ में आरेखित एक है दोहरा उपागम-निवारण द्वंद्व। इसमें दो या अधिक लक्ष्य धनात्मक तथा निषेधात्मक दोनों लक्षणों से युक्त हो सकते हैं। उदाहरण के लिए ऐसे विद्यार्थी को लीजिए, जो पढ़ाई में अच्छे अंक पाने और कालेज की फुटबाल टीम बनाने के द्वंद्व में उलझा हो। देखने में यह द्वंद्व उपागम-उपागम द्वंद्व का एक साधारण उदाहरण प्रतीत होता है—अर्थात् दो धनात्मक लक्ष्यों में द्वंद्व है। विद्यार्थी पर परिवार के व्यक्तियों एवं मित्रों का काफी दबाव हो सकता है कि वह दोनों लक्ष्यों को उपलब्ध करे। यदि वह पढ़ाई में अच्छे अंक प्राप्त करने में असफल रहता है, तो माता-पिता से अननुमोदन पा सकता है और यदि वह फुटबाल टीम में भाग नहीं लेता, तो अपने साथियों में सम्मान खो सकता है। अतः, किसी एक में भी असफलता उसके लिए दुखद है। इस प्रकार हर एक लक्ष्य का निषेधात्मक और धनात्मक खिचाव होता है अस्तु, विद्यार्थी अपने को दोहरे अभिगम-निवारण द्वंद्व में उलझा हुआ पाता है।

अनेक कुंठाएँ ऐसे द्वंद्वों के कारण होती हैं, जिनमें अनेक स्थितियाँ आकर्षक और कष्टकर दोनों रहती हैं।

चित्र ५.५ : दोहरा उपागम-निवारण द्वंद्व। अनेक द्वंद्व जो उपागम-उपागम अथवा निवारण-निवारण द्वंद्व के रूप में प्रकट होते हैं, वस्तुतः दोहरे उपागम-निवारण द्वंद्व हैं।
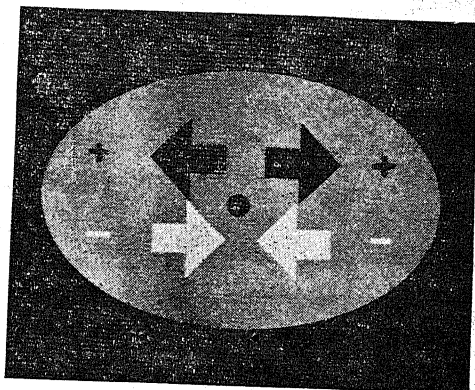
द्वंद्व के बुनियादी प्रकार, जिसका वर्णन ऊपर किया है, प्रयोगो द्वारा चूहों में उत्पन्न किए गए हैं और उनका अध्ययन किया गया है। चित्र ५·६ में उन्हें प्रस्तुत किया गया है।

चूहों में प्रयोगात्मक विधि द्वारा द्वंद्व उत्पन्न किए जा सकते हैं।
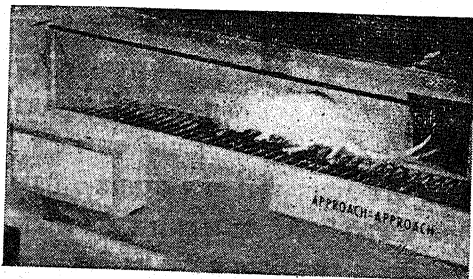
उपागम-उपागम
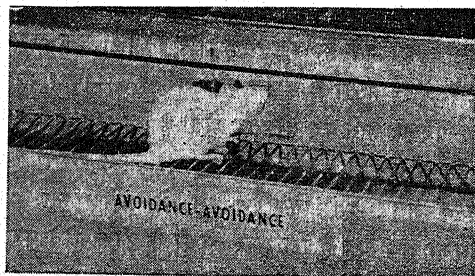
निवारण-निवारण
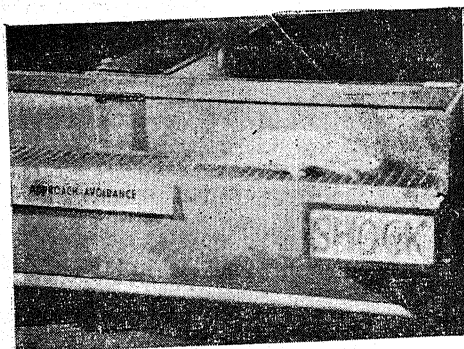
उपागम-निवारण
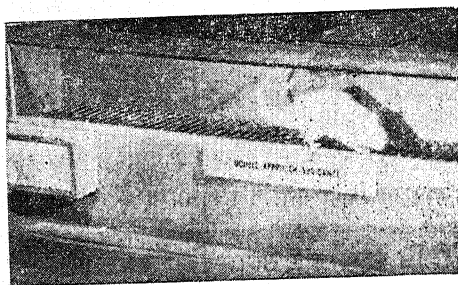
दोहरा उपागम-निवारण

**चित्र ५.६: उपागम-उपागम द्वंद्व : मध्य द्वार से निकलने पर प्यासा चूहा किसी भी ओर जाने पर जल प्राप्त कर सकता है। निवारण-निवारण द्वंद्व : चूहा परिपथ के दोनों छोरों पर दिए गए विद्युत्-आघात से बचने का प्रयास करता है, किंतु मध्य द्वार को बंद पाता है। उपागम-निवारण द्वंद्व : चूहा परिपथ के छोर पर जल और आघात दोनों प्राप्त करता है। दोहरा उपागम-निवारण द्वंद्व : परिपथ के दोनों किनारों पर चूहा जल और आघात दोनों प्राप्त करता है। (मैक्ग्रा-हिल के टेक्स्ट-फिलम से लिए गए चित्र, द्वंद्व)**

द्वंद्व का विश्लेषण समाप्त करते हुए एक और बात पर भी विचार करने की आवश्यकता है। जैसा कि ऊपर कह चुके हैं, धनात्मक और निषेधात्मक लक्ष्यों में मनोवैज्ञानिक भिन्नताओं के कारण अंतर होता है, लक्ष्य की शक्ति——किस मात्रा में उसमें आकर्षण या विकर्षण है——निकट होने पर तीव्रतर होती है। इस तथ्य को चित्र ५.७ में क्रमिकता द्वारा प्रस्तुत किया गया है। यह चित्र यह भी स्पष्ट करता है कि उपागम-क्रम और निवारण-क्रम में अंतर है। निवारण-क्रम में अपेक्षाकृत अधिक वक्रता है (ब्राउन, १९४८)। इसका अर्थ यह है कि और चीजों के ठीक होने पर, जब व्यक्ति धनात्मक और निषेधात्मक कर्षणों के रहते हुए लक्ष्य से कुछ दूर रहता है,

तब धनात्मक कर्षण अधिक शक्तिशाली होता है। लक्ष्य से कुछ दूर, जहाँ दोनों क्रम एक दूसरे से मिलते हैं (क्रॉस करते हैं), वहाँ दोनों का कर्षण समान होता है। दूसरे शब्दों में, यह चित्र निर्देशित करता है कि उपागम-निवारण द्वंद्व में व्यक्ति उपागम का प्रयत्न करता है, किंतु तब जैसे ही निवारण की प्रवृत्ति तीव्र होती है, वह लक्ष्य से कुछ दूर ही रुक जाता है। इस प्रकार जहाँ दो लक्ष्यों की शक्ति बराबर होती है, उस बिंदु पर वह रोक लिया जाता है। बिना द्वंद्व को सुलझाए वह प्राप्ति के निकट आकर लक्ष्य को छोड़ देता है।

दूसरी ओर की घास अधिक हरी है; क्योंकि दूर की वस्तुएँ निकट-वर्त्ती वस्तुओं की अपेक्षा अधिक आकर्षक प्रतीत होती हैं।

**चित्र—५.७ धनात्मक और निषेधात्मक लक्ष्यों के लिए लक्ष्य-शक्ति की क्रमिकता। अन्य वस्तुओं के समान होने के कारण व्यक्ति लक्ष्यों के जितना निकट होगा, लक्ष्य उतने ही 'शक्तिशाली' होंगे, तथापि जब व्यक्ति लक्ष्य के निकट रहता है, तो धनात्मक लक्ष्यों की अपेक्षा निषेधात्मक लक्ष्य अधिक शक्तिशाली होते हैं और जब वह लक्ष्य से दूर रहता है, तो निषेधात्मक लक्ष्यों की अपेक्षा धनात्मक लक्ष्य शक्तिशाली होते हैं। यह तथ्य व्यक्ति के उपागम-निवारण द्वंद्व में फँसने के कारण को स्पष्ट करता है, वह लक्ष्य की ओर बढ़ता है, फिर रुक जाता है और लक्ष्य के निकट जाने से भयभीत हो उठता है (ब्राउन, १९४८)।**
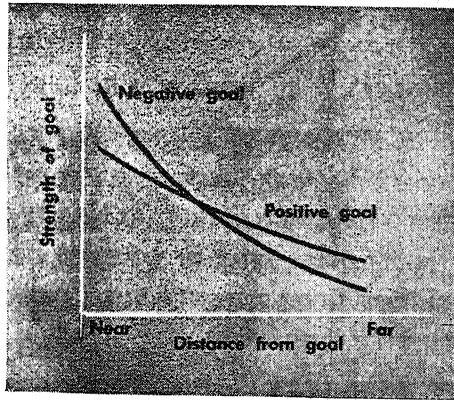
## सामान्य द्वंद्व ( Typical Conflicts ) :

यदि हम उन आवश्यकताओं पर विचार करें, जो मनुष्यों में पायी जाती हैं और उनको तृप्त करने के तरीकों पर सोचें, तो हम अनुभव करेंगे कि सब प्रकार की कुंठाओं और द्वंद्वों के होने की संभावना है। ध्यान दें कि जब एक ही वस्तु से सुख और दुःख, पुरस्कार और दंड संबंधित हों, तो द्वंद्व के उत्पन्न होने का हम अनुमान कर सकते हैं। अर्थात्, जब हम धनात्मक और निषेधात्मक लक्ष्यों के बीच द्वंद्व की बात करते हैं, तो हमारा यही अभिप्राय होता है। अतः, यदि हम व्यक्तियों

के द्वारा साधारणतः दंड और पुरस्कार दोनों अनुभूत, लक्ष्यों पर विचार करें, तो हम प्रायः सामान्य और विशेष द्वंद्वों में अंतर कर सकते हैं। अमरीकन संस्कृति में पाए जाने वाले सामान्य चार द्वंद्वों का विवरण दिया जा रहा है। विदेशी संस्कृतियों में अथवा भिन्न समयों में अपनी ही संस्कृति में भी द्वंद्वों के अन्य प्रतिमान अधिक विशेष हो सकते हैं। फिर भी निम्नलिखित प्रतिमानों के उदाहरण लिए जा सकते हैं।

### उपलब्धि की कामना बनाम असफलता का भय :

पाश्चात्य देशों में, विशेषतः संयुक्त राज्य अमेरिका में, उपलब्धि (सफलता) को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है। बच्चों से आशा की जाती है कि वे विद्यालय में अच्छी सफलता पाएँ, खेलों में संगीत में या अन्य ऐसे ही विषयों में सफलता प्राप्त करें और जीवन में सदा 'सफल' हों। महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों के लिए व्यक्ति प्रशंसा और यश पाता है, पुरस्कार पाता है और उसे धनराशि भी दी जाती है। तब, इसमें आश्चर्य की बात नहीं है कि हमारे समाज में व्यक्ति उपलब्धि-प्रेरक को सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समझता है।

उपलब्धि के विपरीत असफलता है, जो एक-न-एक तरीके से दंडित होती है जैसे अनुमोदन का अभाव, उन्नति रोक देना और कभी-कभी व्यंग्य एवं निर्वासन का शिकार होना। अतः, व्यक्ति जो कार्य उपलब्धि के लिए करता है, वह धनात्मक और निषेधात्मक खिंचाव प्राप्त कर लेता है। व्यक्ति उपलब्धि की कामना और असफलता के भय में फँस जाता है।

### स्वतंत्रता बनाम संबंधन (Ind pendence v rsus Affiliation) :

बच्चे, जैसा कि हम अध्याय तीन में देख चुके हैं, दूसरों पर निर्भर होना सीखते हैं, अपनी आवश्यकताओं की तृप्ति के लिए उन्हें दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। जिन व्यक्तियों पर ये निर्भर रहते हैं, उनका इन बच्चों पर काफी अधिकार रहता है। जब बच्चे किशोरावस्था को प्राप्त करते हैं, तो उनमें स्वतंत्रता की तीव्र अभिप्रेरणा विशेष रूप से विकसित होती है—लेशमात्र निर्भरता को भी वे मिटाना चाहते हैं। इससे वे द्वंद्व में फँस जाते हैं; क्योंकि स्वतंत्र और निर्भरता दोनों का एक साथ होना कठिन है। वास्तव में, स्वतंत्रता का अर्थ है अपने पैरों पर खड़े होना, और ऐसा करने में उन्हें भय लगता है या वे नहीं जानते कि उसे कैसे किया जाए। अतः, किशोरों में विशेषतः स्वतंत्रता और निर्भरता में विशेष द्वंद्व होता है। माता-पिता कभी-कभी स्वयं ऐसे द्वंद्वों का, स्वयं द्वंद्वात्मक स्थिति में उत्पन्न, उद्दीप्त करते हैं—एक क्षण में किशोर की 'शिशु' बनने के कारण आलोचना करते हैं और दूसरे ही क्षण उसके 'स्वतंत्रता'-प्रदर्शन पर क्रोधित होते हैं।

अन्य सामान्य संबंधन की आवश्यकताओं से भी स्वतंत्रता का द्वंद्व है। व्यक्ति की यह उत्कट इच्छा हो सकती है कि वह अपने पैरों पर खड़ा हो, अपनी सुरक्षा कर सके और स्वयं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। उसी के साथ-साथ, उतनी ही उत्कट इच्छा यह भी हो सकती है कि अपने माता-पिता का अनुमोदन प्राप्त करे, साथियों के दल की सहमति पाए और अन्य लोगों से नैतिक अनुमोदन पाए।

### कामेच्छा बनाम काम-भय (Sexual-desire versus Fear of Sex) :

मध्य-विक्टोरिया काल के व्यक्तियों में एक ओर कामेच्छा और दूसरी ओर सामाजिक या धार्मिक संकोच के मध्य उत्पन्न द्वंद्व विशेष रूप से तीव्र था। आज यह द्वंद्व भले ही इतना प्रचलित नहीं है, किंतु इसका महत्त्व आज भी है। यह द्वंद्व धार्मिक आदेश और रति-अभिरुचि में हो सकता है अथवा यह एक साधारण संघर्ष, रति-कामना और बाल्यकालीन शिक्षण में भी हो सकता है। अथवा गर्भधारण के भय से यह संबद्ध हो सकता है। ऐसी प्रत्येक स्थिति में कामेच्छा उपागम-निवारण द्वंद्व का बार-बार केंद्र-बिंदु बनती रहती है।

### विरोध बनाम सामाजिक अनुमोदन (Hostility versus Social Approval) :

एक अन्य सामान्य द्वंद्व विरोध की अभिव्यक्ति और उसके दंडनीय परिणामों के बीच उत्पन्न होता है। दिन-प्रतिदिन के जीवन में अनेक परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं, जिनमें हमें क्रोध आता है या हम दूसरों से झगड़ते हैं। यद्यपि जीवन के प्रारंभ में, हमने सीखा है कि दंडित होने या डाँटे जाने पर मारपीट न करनी चाहिए या क्रोधित नहीं होना चाहिए। वयस्क होने पर भी हम अपने को कुछ वैसी ही स्थिति में पाते हैं, सिवाय इसके कि हम अपने विरोध को, साधारण (या मंद स्वर में) सामाजिक अननुमोदन के रूप में व्यक्त करते हैं। अब भी विरोध या शत्रुता को प्रकट करने का तीव्र प्रतिरोध किया जाता है। परिणामस्वरूप हम विरोध को अभिव्यक्त करने और उसके परिणामों के भय के द्वंद्व में पड़ जाते हैं।

ये केवल उपागम-निवारण द्वंद्वों के विशेष उदाहरण हैं।* वैसे द्वंद्वों के उतने ही स्रोत हैं, जितनी स्थितियाँ और जितने मानव हैं। द्वंद्व का प्रकार और उसकी गंभीरता की मात्रा व्यक्ति-व्यक्ति में भिन्न होती है; क्योंकि इन द्वंद्वों की जड़ें व्यक्ति के शिक्षण और अर्जित अभिप्रेरकों में गहरी होती हैं।

### कुंठा के प्रभाव (Effects of Frustration) :

कुंठित होने पर व्यक्ति को क्या होता है? हम कैसे कह सकते हैं कि वह कब द्वंद्वात्मक स्थिति में है? उस पर दीर्घकालीन कुंठा का क्या प्रभाव होता है? वह उनके विषय में क्या करता है? इन प्रश्नों का उत्तर एक लंबी गाथा है। सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों प्रकार के अनेक प्रभाव द्वंद्व और द्वंद्व द्वारा उत्पन्न कुंठा के होते

हैं। आगे इस पूरे अध्याय में उन्हीं का विवरण दिया गया है। हम प्रायः इससे संबंधित सामान्य उत्तरों से प्रारंभ करेंगे और तब कुंठा की विशेष प्रतिक्रियाओं की ओर बढ़ेंगे।

अधिगम (Learning) :

कुंठित व्यक्ति का एक कार्य है, अधिगम करना या सीखना। वह ऐसी सही बात को, जो उसकी कुंठा का शमन करे चाहे न सीखे, किंतु वह प्रायः अपनी कुंठा से ही संबंधित कुछ-न-कुछ सीखता ही है।

अभिप्रेरित व्यक्ति प्रायः अपने व्यवहारों में बदल करता, पहले वह एक अनुक्रिया को आजमाता है, फिर दूसरी को। अंत में वह ऐसी अनुक्रिया को पा सकता है, जो प्रबलनकारी (Reinforced) हो—ऐसी अनुक्रिया जिससे अभिप्रेरण तृप्त होता है। यदि उसी अनुक्रिया की बार-बार सहायता ली जाए, तो वह अधिगत हो जाती है और उसके अभिप्रेरित होने या वैसी स्थिति में होने पर उसके समायोजन का नियमित प्रतिमान बन जाती है। अधिगम का यह सिद्धांत सरल अभिप्रेरित व्यवहार पर ही लागू नहीं होता—वरन् अधिक महत्त्वपूर्ण व्यवहार पर भी—जो कुंठित परिस्थितियों में सीखा गया है—लागू होता है। यह कुंठा को कम करने की अर्जित आदतों को भी स्पष्ट करता है।

इस सिद्धांत को उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है। मनोरंजन पार्क में एक बच्चा लॉलीपॉप या आइसक्रीम खाना चाहता है और अपनी माँ से उसके लिए कहता है। माँ 'नहीं' कहती है और उसे समझाती है कि भोजन का समय निकट है। "आह, माँ' वह आग्रह करता है, "क्या मैं एक भी नहीं पा सकता ?" वह 'निरंतर' 'नहीं' कहती रहती है। वह फिर आग्रह करता है। तब कुंठित होकर वह अपनी माँ को कोसता है और माँ को धमकाने का प्रयत्न करते हुए कहता है, "हाँ"। तब भी उत्तर मिलता है 'नहीं'। इस स्थिति पर पहुँच कर बालक अपने आवेश को प्रकट करता है। वह धरती पर लोटने लगता है, चिल्लाता है, अपने सिर को दीवार से मारता है या अपनी साँस रोक लेता है—ऐसा कुछ करता है, जिससे माताएँ प्रायः घबराती हैं। किंतु, उन्हें घबराना नहीं चाहिए। इस स्थिति में मानसिक थकान, भय, व्याकुलता या केवल एकांत पाने की इच्छा से माता दुखी होती है और लॉलीपॉप या आइसक्रीम खरीदने के लिए बच्चे को पैसे दे देती है।

इस प्रकार स्थिति को सीखने का एक प्रयत्न समाप्त हो जाता है, जो संभवतः इससे कम मात्रा में अनेकों के जीवन में सामान्य रूप में होता है। खाने की चीज को पाने की अभिप्रेरणा से बालक एक ढंग और उसके बाद दूसरा ढंग अपनाता है।

वे सब निष्फल होते हैं, जब तक कि वह आवेश से मचलने नहीं लगता। इसमें सफल होने पर यह उसकी सहायक शक्ति बन जाता है और संभावना है कि दूसरी बार वैसी कुंठा पाने पर वह फिर उसका प्रयोग करेगा। केवल एक या दो बार दोहराने पर वह व्यवहार के इस विशेष प्रकार को सीख लेता है। तब कुंठा का इस प्रकार सामना करने की उसकी आदत हो जाती है। पूरी संभावना है कि उपर्युक्त उदाहरण वाला बालक समायोजन के इस ढंग को तब तक नहीं छोड़ेगा, जब तक उसमें उसे असफलता न मिले। असफल होने पर वह समायोजन के दूसरे उपायों का प्रयोग करेगा। परंतु जैसे ही वह वयस्क होता है, सामाजिक दबाव उसे यह ढंग बदलने के लिए बाध्य करेगा। तब भी वह केवल थोड़ा-सा सुधर सकता है और वह जीवन भर, कुछ विशेष प्रकार की कुंठाओं की प्रतिक्रिया में, क्रोध के आवेश का प्रयोग कर सकता है।

कुंठाओं के अनेक प्रकार हैं और उनका सामना करने के अभ्यासजनित तरीकों को सीखने के अनेक अवसर भी हैं। अवसर, कुंठाएँ और उनका सामना करने के लिए अपनाए गए तरीके—व्यक्तियों, उनके परिवारों, सामाजिक समूहों और परिस्थितियों के अनुसार भिन्न होते हैं। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कुंठाओं का सामना करने के लिए अधिगम द्वारा व्यक्ति सामान्य और अभ्यासजनित प्रतिक्रियाएँ ग्रहण करते हैं और इन प्रतिक्रियाओं के रूपों को वे अधिगम के सिद्धांतों, जिनका उल्लेख हमने अन्यत्र किया है, के अनुसार सीखते हैं।

### अनम्यता (Rigidity) :

कुंठाग्रस्त व्यक्ति कुंठाओं का सामना तब आदत पड़ी अनुक्रियाओं से करना सीखता है। वे जिस तरीके से अनुक्रिया करना सीखते हैं, वह ठीक उन लोगों जैसा नहीं हो सकता, जो अभिप्रेरित होने पर भी बहुत बुरी तरह हताश नहीं होते। बुरी तरह हताश हुआ व्यक्ति या पशु स्थिरता (Fixations) की ओर झुकता है—व्यवहार की अनम्यता की ओर। उसका 'प्रयत्न और भूल' व्यवहार उतना अस्थिर और परिवर्तनशील नहीं होता। समस्या को सुलझाने के प्रयत्न में एक के बाद दूसरा तरीका अपनाने के स्थान पर वह बार-बार एक ही विधि का प्रयोग करता रहता है। यदि स्थिर अनुक्रिया (Fixated response) कुंठा का शमन करने के लिए सही न हो या श्रेष्ठ न हो, जैसे कि प्राय: वह नहीं होती, तो अपनी अनम्यता के कारण वह अधिक प्रभावशाली विधियों की खोज कर भी नहीं पाता। अतः, कुंठित व्यक्ति उस सही तरीके की खोज की संभावना कम कर देता है, जिससे उसकी कुंठा दूर हो सकती है।

इसी कारण से प्रेक्षक को कुंठित व्यक्ति मूढ़ दृष्टिगोचर होता है और उसकी समस्या का समाधान प्रायः इतना सरल प्रतीत होता है कि उस पर हँसी आती है। "उसे केवल इतना ही करना है—" प्रेक्षक कह सकता है—और वह ऐसा कहने में ठीक भी हो सकता है। किंतु, कुंठाग्रस्त व्यक्ति विकल्पों की ओर से ऐसा अंधा हो सकता है कि वह सफलता प्रदान करनेवाले अन्य उपायों को न देख सकता है, न उनका प्रयोग ही कर सकता है।

चूहों पर किए निम्नलिखित प्रयोग द्वारा कुंठा की प्रतिक्रिया के रूप में स्थिर उत्तर को स्पष्ट किया जा सकता है (मायर, १९४९)।

> "चूहों को एक यंत्र में रखे गए दो कार्डों में अंतर करना सिखाया गया, जैसा कि चित्र ५·८ में दिखाया गया है। शिक्षण-प्रक्रिया में एक सुनिश्चित कार्ड (जैसे, काला वृत्त) एक खिड़की में प्रदर्शित किया गया और दूसरी खिड़की में एक निषेधात्मक कार्ड (एक हल्के रंग का वृत्त)। निश्चित कार्ड के पीछे आहार रखा था। जब चूहा अपने स्थान से (सफेद) मंच से होकर निश्चित खिड़की की ओर कूदा, तो उसने कार्ड गिरा दिया और आहार प्राप्त किया। यदि वह निषेधात्मक कार्ड की ओर कूदता है, तो वह खिड़की को बंद पाता है और नीचे लगी जाली में गिर जाता है। कुछ समय में, निश्चित कार्ड से हर बार पुरस्कृत होने और निषेधात्मक से दंडित होने पर, वह दोनों उद्दीपनों के अंतर को प्रायः पूर्ण रूप से सीख लेता है।
>
> प्रयोग के इस स्थल पर पहुँचने पर प्रक्रम बदल दिया गया। कुंठा पैदा करने के लिए प्रयोगकर्त्ता ने चूहे के सामने न सुलझने वाली समस्या प्रस्तुत की। पहले की तरह हर बार निश्चित कार्ड को पुरस्कृत और निषेधात्मक कार्ड को दंडित करने के स्थान पर प्रयोगकर्त्ता ने मनचाहे ढंग से दोनों कार्डों को जब-तब कभी पुरस्कृत और कभी दंडित करना प्रारंभ किया। अब प्रत्येक कार्ड से ५० प्रतिशत वह पुरस्कृत होता और ५० प्रतिशत दंडित। अतः, चूहा ५० प्रतिशत बार जब तक कूदता रहा, दंडित होने से बच नहीं सका। यह कुंठित करने वाला प्रक्रम स्पष्ट ही चूहे को संवेगयुक्त बना देता है, वह चीखता-चिल्लाता है और आहत अनुभव करता है। शीघ्र ही वह स्थिर उत्तर सीख लेता है। वह केवल एक ही दिशा में हर बार कूदने की 'स्थिर आदत' ग्रहण करता है। कुछ चूहे केवल दाहिनी खिड़की की ओर कूदते रहे और कुछ केवल बाईं ओर। किंतु, जिस चूहे ने जो दिशा अपनाई, उस

पर वह स्थिर रहा। अनेक चूहों में यह स्थिरता इतनी दृढ़ हुई कि दूसरी खिड़की के खुले रहने पर और सामने आहार दिखाई देने पर ( देखिए, चित्र ५·८ ) भी वे चूहे निरंतर दूसरी ओर ही स्थिर अनुक्रिया के अनुसार कूदते रहे।"
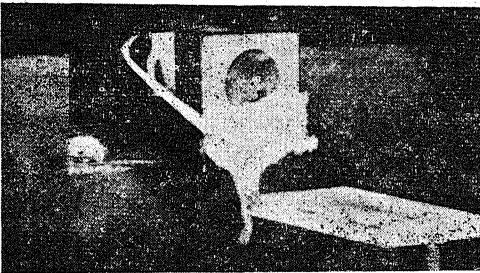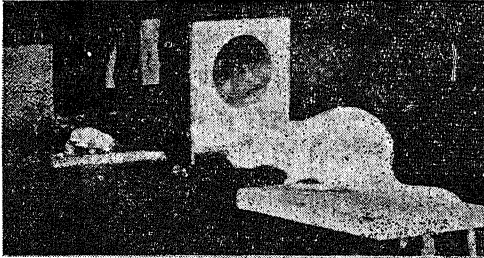
**चित्र ५·८ द्वंद्व द्वारा उत्पन्न स्थिरन (Fixation)। ऊपर वाले चित्र में, चूहे को ऐसी समस्या दी गई, जिसका समाधान असंभव था। इस द्वंद्व में चूहे में दाहिनी खिड़की से कूदने की आदत विकसित हुई। नीचे वाले चित्र में, चूहा अनिवार्य रूप से उसी खिड़की पर कूदता है, जो बंद है, जब कि आहार बाईं खिड़की में स्पष्ट दिखाई दे रहा है ( मायर, १९४९)।**

दुश्चिंता ( Anxiety ) :

एक कुंठाग्रस्त व्यक्ति प्रायः उत्सुक रहता है और शायद क्रोध में भी। कुंठा की एक विशेष प्रतिक्रिया है—क्रोध, विरोध या आक्रमण। लक्ष्य की अतृप्ति के भय से उत्पन्न दूसरी सामान्य प्रतिक्रियाएँ हैं—उत्सुकता और चिंता। होर्नें द्वारा इसके लिए एक कारण प्रकट किया गया है कि अनेक द्वंद्व इसलिए उत्पन्न होते हैं; क्योंकि चिंता उत्पन्न करने वाले अनुभव अंतर्वर्त्ती असंगत आवश्यकताओं को मनुष्य के भीतर ही विकसित कर देते हैं। तीनों वस्तुएँ—कुंठा, विरोध और दुश्चिंता—इस प्रकार शृंखलाबद्ध हैं कि अभी तक हम स्पष्ट नहीं कर सके हैं कि इनमें से किससे क्या विकार उत्पन्न होता है। इसका उत्तर जो भी हो, किंतु दुश्चिंता सदैव कुंठा की संगिनी है, विशेषतः द्वंद्वजनित कुंठा की। इस दुश्चिंता के दो महत्त्वपूर्ण परिणाम होते हैं :

प्रथम, दुश्चिता अशांति उत्पन्न करती है। अतिचिंता होने पर यह दुखकर होती है। चिंतित लोगों की परिभाषा ही है, दुखी लोग। बहुत ठीक स्थिति में भी वे कुछ अशांत रहेंगे और बहुत खराब स्थिति में वे गंभीर घाव या शारीरिक रोग के समान कष्ट का अनुभव करते हैं। उस व्यक्ति को जो चिंतित है, बहुत संभव है कुंठा या द्वंद्व का, जो उसे दुखी बनाते हैं, ज्ञान भी न हो, चिंता से उत्पन्न अपने व्यवहार की विचित्रताओं का भी उसे ज्ञान नहीं होता, किंतु निश्चित रूप से उसे अपनी अशांति और दु:ख का ज्ञान होता है। उदाहरणार्थ, अक्सर अपनी अशांति और पीड़ा से, जिनका कारण भी वे नहीं जानते हैं, मुक्ति पाने के लिए लोग मनोवैज्ञानिकों या मनो-रोगचिकित्सकों के पास आते हैं। अध्याय चार से आप स्मरण करें कि गहन और दीर्घकालीन चिंता शरीर के भीतरी अंगों को भी हानि पहुँचा सकती है और तथाकथित 'मनःशारीरिक' (साइकोसोमैटिक) विकारों के लिए उत्तरदायी होती है।

द्वितीय, दुश्चिता व्यक्ति को अपने से मुक्त होने के लिए अभिप्रेरित करती है। अत:, चिंता स्वयं ही निवारक व्यवहार का स्रोत है। दर्द के समान ही यह भी है, जिससे मनुष्य मुक्ति पाने का प्रयत्न करता है या उसमें जब यह जड़ जमा लेती है, तो वह उससे पलायन करने की चेष्टा करता है। इसी धुरी पर, अधिकांश जो हम इस अध्याय में आगे लिखेंगे, आधारित है। फ्रायड और हॉर्नी-जैसे व्यक्तित्वशास्त्री दुश्चिता को, मनुष्य के कुंठा का सामना करने की विधि को समझने की कुंजी मानते हैं। हताश व्यक्ति, जैसा कि वे उसके बारे में कहते हैं, चिंता से मुक्त होने की चेष्टा करता है। चिंता को कम करना वास्तव में इतना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि वह उससे संबंधित कुंठा को भी भूल जाता है। संभवत: इसीलिए चिंतित व्यक्ति प्राय: चिंता को उत्पन्न करने वाले द्वंद्वों के प्रति असावधान रहता है। इस मत की प्रामाणिकता को सिद्ध करना कठिन है, किंतु यह संभव प्रतीत होता है और अधिकांश विद्वानों द्वारा समर्थित है।

## स्वैरकल्पना (Fantasy)

कभी-कभी कुंठित अभिप्रेरणा की तृप्ति, कम-से-कम आंशिक रूप में, स्वैर-कल्पना या दिवास्वप्न द्वारा होती है। साधारणत: स्वैरकल्पना अधिकांश व्यक्तियों में होती है। समायोजन के प्रकार के रूप में यह शायद ही कभी रचनात्मक कार्य की प्रेरणा देती है और व्यक्ति के मूल द्वंद्वों को बिना सुलझाए वहीं बने रहने देती है। दूसरी ओर यदि वह अत्यधिक न हो, तो दिवास्वप्न से कुछ सीमा तक कुछ सफल-ताओं, काम-तुष्टि और ऐसी अन्य बातों को अवश्य तृप्ति मिलती है। एक व्यक्ति जिसे किसी सामाजिक परिस्थिति में लज्जित होना पड़ा हो, कुछ स्वस्थ अनुभव

करेगा, यदि वह थोड़ी स्वैरकल्पना में खोकर यह सोचे कि वह क्या-क्या उत्तर उस समय दे सकता था। एक लड़की यदि किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम का निमंत्रण न पाए, तो दिवास्वप्न में यह सोच कर कि वह कैसा होगा, कुछ आनंदित हो सकती है। अनुमान किया गया है कि ९५ प्रतिशत से अधिक कॉलेज-विद्यार्थी प्रतिदिन कुछ समय दिवास्वप्न में व्यतीत करते हैं। उनके दिवास्वप्न के विषय प्राय: शिक्षा-संबंधी सफलताएँ, विषम-लिंगी व्यक्तियों पर सफलता और यश तथा वैभवपूर्ण भविष्य, होते हैं।

स्वैरकल्पना के परिणाम शायद ही कभी गंभीर होते हैं, यदि वह कुंठागत आवश्यकताओं की तृप्ति के लिए दीर्घकाल तक प्रयोग न की जाए। अंतराबंधी (Schizophrenic) प्रकार के मानसरोग, जिनके विषय में इसी अध्याय में हम आगे लिखेंगे, अति स्वैरकल्पना के परिणामों के उदाहरण हैं। इस रोग में व्यक्ति स्वैरकल्पना में इस प्रकार डूबा रहता है कि वास्तविक जगत से उसका कोई संबंध ही नहीं रह जाता। किंतु, अधिकांश लोगों में थोड़ी स्वैरकल्पना आवश्यकताओं की तृप्ति का अहानिकर साधन है।

### प्रतिगमन (Regression) :

स्वैरकल्पना से निकट संबंधित एक प्रतिक्रिया है, जिसे 'प्रतिगमन' कहते हैं। यह **प्रारंभिक** या **आदिम** व्यवहार परिरूपों की ओर बढ़ना है। हम इसे 'प्रारंभिक या आदिम' इसलिए कहते हैं; क्योंकि यह एक प्रश्न उठता है कि प्रतिगमन इनमें से एक है या दोनों? एक ओर प्रतिगमन बाल्यकाल में सीखे गए व्यवहारों और आदतों की ओर प्रत्यावर्त्तन प्रतीत होता है और दूसरी ओर समस्या को सुलझाने का यह सरल, अधिक पुरातन और कम बौद्धिक तरीका जान पड़ता है। इसकी व्याख्या जो भी हो, प्रतिगमन कुंठा का वयस्क व्यक्ति द्वारा सामना करने का ढंग न होकर बालकों के ढंग-सरीखा होता है।

प्राय: चार या पाँच वर्ष के बच्चों में, जिनमें विविध जटिल कुंठाओं का सामना करने के अवसर बढ़ने लगते हैं तथा उनसे संघर्ष करना प्रारंभ होता है (बारकर एट० एल०, १९४१)। संभवत: प्रतिगमन व्यवहार विशेषत: घर में दूसरे बच्चे के जन्म के कारण जागृत होता है या स्कूल में समायोजन की प्रारंभिक अवस्था में। जो भी कारण हो, बच्चा इस स्थिति में प्राय: पाँच वर्ष के बालक की तरह व्यवहार न करके, दो वर्षीय शिशु की भाँति, बोलने और क्रियाएँ करने लगता है।

प्रतिगमन केवल बच्चों तक ही सीमित नहीं है, वरन् वयस्कों से भी होता है। उनमें बच्चों-जैसा क्रोध का आवेश अथवा असफल होने पर मलिन-मन होकर

प्रतिगमन के द्वारा बाल्यकाल में अर्जित प्रतिक्रिया के रूप को प्राप्त करता है। एक व्यक्ति, जो अपने विस्तर में थोड़ी-सी सिहरन अनुभव करता हुआ घुसता है या जिसे अस्वस्थ होना सुखकर लगता है, संभवत: अपने बाल्यकालीन उस व्यवहार की ओर प्रतिगमन करता है, जिसमें उसे स्नेह और आकर्षण प्राप्त होता था।

द्वितीय महायुद्ध में नाजी केंद्रों (Nazi Cancentration) में जो व्यवहार मिला, उससे उत्पन्न अति नैराश्य के फलस्वरूप सामान्य-प्राकृत व्यक्ति में भी प्रतिगमन का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। डाचा (Dachau) और बूचेन वाल्ड (Buchen Wald) के निवासियों में कम या अधिक सामान्य प्रतिगमन के लक्षण बताए गए थे। इन केंद्रों में रहने वाले पहले कैदियों के मनोवैज्ञानिक अध्ययन को नीचे उद्धृत किया गया है (बैटलहेम [Bettelheim] से उद्धृत, १९४३, पृष्ठ ४४३)।

> "कैदी बच्चों की तरह, केवल तात्कालिक वर्त्तमान में रहते थे—वे भविष्य की किसी योजना को बनाने में अथवा तात्कालिक वर्त्तमान के किसी साधारण सुख को भविष्य के महत्तर सुख के लिए छोड़ने में, असमर्थ थे। अपने बीते दिनों में उन्होंने जो सफलताएँ पाई थीं या फोरमैनों अथवा पहरेदारों को वे किस कौशल से धोखा देने में सफल हुए थे और गुप्त तोड़-फोड़ वे कैसे करते थे, आदि का वर्णन वे खूब बढ़ा-चढ़ा कर करते थे। यह मालूम होने पर भी कि वे अपने साहस की कहानियाँ सुनाने में झूठ बोल रहे हैं, बच्चों की भाँति ही अपमान या लज्जा का अनुभव उन्हें बिलकुल नहीं होता था।"

प्रतिगमन का अति रूप कभी-कभी अंतराबंधी रोगों में दिखाई देता है। इस विकार में, वयस्क व्यक्ति बच्चे की तरह बात करेगा, बच्चे की तरह काम करेगा और प्राय: पूर्णत: बाल-जगत् में रहेगा। इस व्यवहार के साथ-साथ वह स्वैरकल्पना में काफी प्रतिगमन भी करता है, व्यक्ति बाल्यकालीन काल्पनिक जगत में रहता है। इस प्रकार के अंतराबंध रोग की चर्चा इस अध्याय के अंतिम परिच्छेद में विस्तार से की जाएगी।

### मदिरा (एलकोहल) :

अनेक व्यक्ति कुंठा और चिंता की प्रतिक्रिया में मदिरापान करते हैं। यह काफी स्पष्ट है कि मदिरा का दुश्चिंता पर शांतिप्रद प्रभाव होता है। जो व्यक्ति बहुत सामान्य मदिरापान करते हैं, कुंठित होने पर अधिक पीना चाहते हैं। जब वे अपने 'दु:खों को भूलना' चाहते हैं, तो उनके लिए मदिरापान स्वाभाविक है और मदिरा पीने के बाद उनका व्यवहार अधिक संयत तथा चितामुक्त होता है। यह सत्य है कि कुछ लोग पीने के बाद भयंकर और उग्र हो जाते हैं, किंतु इससे केवल

यही स्पष्ट होता है कि मदिरा उन्हें दुश्चिंता के दबाव से मुक्त करके अपने क्रोध को प्रकट करने का अवसर देती है। यह सब साधारण बोध और साधारण जानकारी की बातें हैं

इधर कुछ वर्षों में किए गए प्रयोगों ने मदिरा के प्रति बढ़ती हुई उत्कट इच्छा की वृत्ति को और दुश्चिंता पर उसके प्रभाव को अधिक समझने में हमारी सहायता की है। ऐसे एक प्रयोग ( मैसरमैन, १९४३ ) को प्रस्तुत किया जा रहा है।

> "बिल्लियों को आहार प्राप्त करने के लिए एक बक्स को खोलना सिखाया गया। उसके बाद, जब वे बक्स खोलने का प्रयत्न करें, तो प्रचंड हवा चलाकर बक्स के प्रति उनके भय को अनुबंधित किया गया। इस प्रकार, उपागम-निवारण द्वंद्व (देखिए, चित्र ५.४) उपस्थित किया गया। इसके बाद बिल्लियों को जबरदस्ती मदिरा पिलायी गई। तब बक्स-संबंधी उनका भय दूर हो गया, वे उसके निकट गईं और उसे खोला—यद्यपि मदिरा के कारण वे विचित्र अनुभव कर रही थीं। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि कुछ 'मनस्तापी' बिल्लियों ने जब उन्हें शुद्ध दूध और पाँच प्रतिशत मदिरामिश्रित दूध दिया गया, तो मदिरामिश्रित दूध को पसंद किया। अतः, उपागम-निवारण द्वंद्व और मदिरा के सुखकर प्रभाव के अनुभव के फलस्वरूप उनमें मदिरा के प्रति 'तीव्रेच्छा' विकसित हो गई। बाद में इस प्रयोग में उचित शिक्षण-प्रक्रिया द्वारा बक्स से भय दूर हो गया। इस पर बिल्लियों की मदिरा के लिए 'तीव्रेच्छा' भी समाप्त हो गई और वे शुद्ध दूध पसंद करने लगीं।"

इस प्रयोग और ऐसे ही अन्य प्रयोगों ने अभिप्रेरणात्मक द्वंद्वों में मदिरा के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। मदिरा दुश्चिंता की वेदना को, बिना निश्चित लक्ष्य के महत्त्व को कम किए, कम कर देती है। दूसरे शब्दों में मदिरा निषेधात्मक लक्ष्य से संबंधित दुश्चिंता को, उपागम-निवारण द्वंद्व में कम कर देती है। फलतः थोड़े समय के लिए द्वंद्व शांत हो जाता है। तद इसे समझा जा सकता है कि वे व्यक्ति, जो द्वंद्वों और चिंताओं से आक्रांत हैं, कभी-कभी मदिरा में शांति पाते हैं। मदात्यय (Alcoholism) से शारीरिक कारक भी संबंधित हो सकते हैं। मदिरापान एक आदत है, जो द्वंद्व से उत्पन्न दुश्चिंता से मुक्त कर सकती है।

कुंठित अवस्था में व्यक्ति जो करते या अनुभव करते हैं, उनकी एक लंबी सूची है। यह सूची कई प्रकार से वर्गीकृत या विभाजित की जा सकती है। विभाजन की हमारी प्रणाली यह है कि पहले हम कुंठा के सामान्य तीन परिणामों को लेते हैं—अधिगम, अनम्यता और दुश्चिंता। प्रत्येक हताश व्यक्ति में ये किसी-न-किसी मात्रा में

पाए जाते हैं। इसके बाद हम कुंठा की तीन और विशेष प्रतिक्रियाओं को स्पष्ट करते हैं—स्वैरकल्पना, प्रतिगमन और मदिरा का उपयोग—जिनमें एक बात सामान्य है : ये सब प्रत्यावर्त्ती प्रतिक्रियाएँ ( Withdrawal reactions ) हैं। इनका प्रयोग करने पर व्यक्ति द्वंद्व के क्षेत्र से पीछे हट जाता है। ये प्रतिक्रियाएँ, या कम-से-कम स्वैरकल्पना और प्रतिगमन कभी-कभी रक्षात्मक प्रक्रियाओं के अंतर्गत वर्गीकृत की जाती हैं, जिनका वर्णन अगले परिच्छेद में किया गया है।

**रक्षा-युक्तियाँ (Defence Mechanism) :**

रक्षा-युक्तियों का बोध हमें सिगमंड फ्रायड से प्राप्त हुआ, यद्यपि बाद में अन्य मनोविज्ञानवेत्ताओं ने विविध प्रकार से उसे परिष्कृत किया है। रक्षा-युक्तियाँ एक विधा—व्यवहार का एक प्रकार है—जिसका प्रयोग व्यक्ति, आत्म-निहित कुंठा (Ego-involving Frustration) के विरुद्ध अपने को रक्षित करने के लिए, अचेतन रूप से करता है। वास्तव में वह कुंठा से अपनी उतनी रक्षा नहीं करता, जितनी वह उससे उत्पन्न दुश्चिंता से करता है। अतः, रक्षा-युक्तियों को मूलतः चिंता के विरुद्ध समझना चाहिए। कम-से-कम सामान्य मत यही है।

**दमन (Repression) :**

रक्षा-युक्तियाँ को दूसरे ढंग से व्यक्त करें, जिससे कि हम समझ सकें कि इसका कार्य क्या है। रक्षा-युक्ति एक साधन है, व्यक्ति जिसका प्रयोग स्वयं को मूर्ख बनाकर अचेतन रूप से, अभिप्रेरणात्मक द्वंद्व का सामना करने के लिए करता है। एक व्यक्ति, केवल अपने लक्ष्य और उद्देश्य को पहचानना न सीख कर, मूर्ख बन सकता है। निःसंदेह लोगों में अपने द्वंद्वों के प्रति अस्पष्टता को भी यह स्पष्ट करता है। फ्रायड की रक्षा-युक्ति के सिद्धांत में महत्त्वपूर्ण क्रियाशील प्रक्रिया है, दमन। अतः, रक्षा-युक्तियों को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम समझें कि दमन क्या है और उसकी क्रियाएँ क्या हैं ?

दमन, आंशिक रूप में, एक प्रकार की 'विस्मृति' है। दमन द्वारा व्यक्ति सरलता से चिंतित और अशांत करने वाली बातों को भूल जाता है। मैं बिल ( Bill ) का भुगतान करना सरलता से भूल सकता हूँ; क्योंकि उसका भुगतान करने से मुझे दिवाला निकलने की चिंता हो जाएगी। मैं दंतचिकित्सक से निश्चित किए गए समय को भूल सकता हूँ; क्योंकि मैं दंतचिकित्सक के बरमे के बारे में चिंतित हूँ। इस प्रकार की विस्मृति सामान्य विस्मृति नहीं है। थोड़ी देर बाद चिंता के कम होने या मिटने पर भूली हुई बात फिर याद आती है—जैसे ही मुझे अगले महीने के वेतन का चेक मिल जाता है या दंतचिकित्सक से नियत की गई

तारीख निकल जाती है। इसलिए यद्यपि दमन प्रायः विस्मृति का रूप धारण करता है, किंतु वह उससे गंभीर होता है। यह स्मृतियों या विचारों को 'नीचे दबा देने' की प्रक्रिया है, जिन्हें स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता था, यदि ये बातें चिंता-जनक न होतीं।

इस संप्रत्यय को चित्र ५·१ से ५.५ तक के आरेखों से स्पष्ट किया जा सकता है। अधिगम जिसे विध्यात्मक लक्ष्य की प्राप्ति में किसी बाधा के होने पर बच्चे के क्रोधपूर्ण आवेश को प्रकट करना सीखने के ढंग से स्पष्ट किया गया है, परिवेशी हताशाओं में सबसे अधिक प्रभावशाली है ( चित्र ५.१ )। अपने व्यवहार के परि-वर्तनों द्वारा व्यक्ति उस बाधा को हटाने या मिटाने की विधि जान लेता है। ऐसे अधिगम के निश्चयात्मक और निषेधात्मक लक्ष्यों से युक्त उपागम-निवारण द्वंद्व में, प्रभावशाली होने की संभावना नहीं है; क्योंकि अधिगत बात, वह चाहे जो भी हो, इस सत्य को परिवर्तित नहीं कर सकती कि व्यक्ति में दो परस्परबिरोधी लक्ष्य हैं। यहाँ समाधान यह है कि लक्ष्यों या उद्देश्यों में कुछ परिवर्तन किया जाए। वास्तव में यह नहीं किया जा सकता, किंतु अपने को धोखा देकर द्वंद्व के किसी रूप पर यह विश्वास करना है कि वह कर दिया गया है। स्पष्टतः दमन यही कार्य करता है। दमित वस्तु कोई स्मृति, अभिप्रेरक, लक्ष्य, बाधा—कोई भी कुंठाजनक परिस्थिति हो सकती है। ये सब तत्काल दमित कर दी जाती हैं और व्यक्ति यह विश्वास करके अपने को धोखा देता है कि अब उनसे संबंधित किसी बात का भी अस्तित्व नहीं है। वास्तव में इससे द्वंद्व का अंत नहीं होता, किंतु यह दुश्चिंता से उसे मुक्त कर देता है। निम्नांकित उदाहरण ( कैमरान और मेगारेट १९५१, पृष्ठ ३६७ से उद्धृत ) सामान्य व्यक्तियों में कभी-कभी होने वाले दमन को स्पष्ट करता है

> "एक युवक, जिसकी सगाई कुछ दिन पूर्व ही हुई थी, अपनी भावी पत्नी के साथ सड़क पर घूम रहा था। दूसरे व्यक्ति ने उसका अभिवादन किया और मैत्रीपूर्ण ढंग से बातचीत करने लगा। शिष्टाचार और गर्व दोनों के नाते आगंतुक से अपनी भावी पत्नी का परिचय कराना आवश्यक था। आगंतुक का नाम वह पूर्णतः भूल गया, वास्तव में उसकी थोड़ी भी पहचान उसे स्मरण नहीं थी। जब घबराहट में उसने कम-से-कम अपनी भावी पत्नी का ही परिचय देने का विचार किया, तो उसने अनुभव किया कि वह उसका नाम भी भूल गया है।"

व्यवहार का साधारण विश्लेषण इस घटना को सामान्य—दमन के उदाहरण के रूप में स्पष्ट करने के लिए आवश्यक था। अपरिचित आगंतुक वास्तव में उस युवक का पूर्व-परिचित मित्र था, किंतु उस मित्रता ने अंत में कुंठा और नैराश्य की वैसी

ही परिस्थिति उत्पन्न की थी, जिसका वर्णन हमने किया है। कुछ वर्ष पूर्व हमारे प्रयोग-पात्र युवक की किसी अन्य लड़की से सगाई हुई थी और गर्व और प्रसन्नता से भर कर इसी मित्र से उस लड़की का परिचय उसने कराया था। दुर्भाग्य से वह लड़की और यह मित्र परस्पर निकट मित्र बन गए और अंत में उस लड़की ने सगाई तोड़ कर इस मित्र से विवाह कर लिया। दोनों युवकों ने एक दूसरे को उक्त भेंट से पूर्व फिर नहीं देखा था और भेंट होते ही वही पूर्व-कुंठागत परिस्थिति दोहराई जा रही थी। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि नई सगाई करने वाला युवक अपने पूर्व-परिचित मित्र से परिचय का पूर्ण दमन करता है, उसे बिलकुल नहीं पहचानता और अपनी भावी पत्नी का नाम भी भूल जाता है।

ऐसा पूर्ण दमन दुश्चिंता के विरुद्ध रक्षा-युक्ति के रूप में बहुत प्रभावशाली सिद्ध होता है। दमन की पूर्णता में कमी भी हो सकती है, वह केवल द्वंद्वात्मक अभिप्रेरक के किसी एक अंश को ही दबा सकता है—अभिप्रेरक का प्रकार, किसका प्रेरक है, प्रेरक का लक्ष्य क्या है, किसी विशेष प्रकार के व्यवहार के पीछे कौन-सा प्रेरक है या लक्ष्यप्राप्ति की बाधाओं को कैसे मिटाया जा सकता है। इनमें से द्वंद्व का सामना करने वाला प्रत्येक तरीका एक अलग रक्षा-युक्ति माना जाता है और हर एक का अलग-अलग नाम है।

## प्रतिक्रिया-विधान (Reaction Formation) :

एक व्यक्ति स्वयं को अपने अभिप्रेरण के संबंध में धोखा दे सकता है या अपने अभिप्रेरण को छद्मवेश में आवृत्त कर सकता है, **यह विश्वास करके कि उसका प्रेरक, मूल प्रेरक, के ठीक विपरीत है**। यह रक्षा-युक्ति 'प्रतिक्रिया-विधान' कहलाती है। हम इसे उस लड़की के उदाहरण में देख सकते हैं, जो अवचेतन में अपनी माता से घृणा करती है किंतु प्रत्यक्ष में उसके स्वास्थ्य और आराम के लिए अति चिंतित दृष्टिगोचर होती है। यह आत्मज्ञान कि वह अपनी माता से घृणा करती है इतना घृणित एवं जघन्य है और उस लड़की में वह इतनी अधिक दुश्चिंताएँ उत्पन्न कर सकता है कि उन चिंताओं पर विजय पाने के लिए वह अत्यधिक स्नेह का प्रदर्शन करने लगती है। शेक्सपीयर की प्रसिद्ध पंक्ति 'द लेडी डथ प्रोटेस्ट टू मच मीथिंक्स' ("The Lady doth protest too much, Methinks") इसी छद्मवेश को स्पष्ट करती है। जब कोई व्यक्ति अति उत्कंठित या अति विनम्र या अति स्नेहशील होता है, तब बहुत संभव है वह क्रोध या अन्य ऐसे आवेश को विपरीत व्यवहार द्वारा दमित करने या छिपाने का प्रयत्न करता है।

प्रतिक्रिया-विधान का निम्नलिखित उदाहरण जूलेज मासेरमन (Jules Masserman, १९४६ पृष्ठ ३५) द्वारा प्राप्त एक पत्र से उद्धृत है 'जो उन्हें 'उदार

स्नेहशील' जीवित-प्राणियों की चीरफाड़ करने की क्रिया के विरोधी से उक्त वर्णित बिल्लियों के मदिरा-व्यसन पर प्रकाशित कार्य के उपरांत मिला था।

"मदिरावाद पर आपके प्रबंध को —मैंने पढ़ा—। मुझे आश्चर्य है कि आपके समान सुशिक्षित व्यक्ति ऐसा कार्य करे कि बिल्लियों-जैसे छोटे और असहाय जानवरों को मद्यपों के उपचार की खोज में इस सीमा तक यंत्रणा दे —एक मद्यप अपना उपचार नहीं चाहता—मद्यप केवल दुर्बल मस्तिष्क वाला मूर्ख होता है, जो गंदी नाली का वासी है और उसे वहीं छोड़ देना चाहिए। छोटी और असहाय बिल्लियों को यंत्रणा देने के स्थान पर इन मद्यपों को ही क्यों नहीं यंत्रणा दी जाती अथवा यह और भी अच्छा हो यदि मद्यपों के सर्व-नाश का बिल पास कराने में आपके भावी उदार प्रयत्न कार्यशील हों।—यदि व्यक्ति ऐसी पतित प्रकृति के हैं तो अच्छा है संसार उनसे मुक्त हो सके—यदि आप एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हैं, तो मैं एक साधारण व्यक्ति के रूप में, बिना अपने नाम के पीछे उपाधियाँ जोड़े अधिक प्रसन्न हूँ। मेरा अंतर्विवेक पवित्र है, मैं जानता हूँ कि मैंने किसी जीवित जंतु को यंत्रणा नहीं दी है, और भयभीत-भयाकुल बिल्लियों को तड़प-तड़प कर मरते न देखकर शांति से सो सकता हूँ———क्योंकि मैं जानता हूँ कि आपका प्रयोग समाप्त होने के बाद वे मरेंगी ही। कोई भी दंड आपके लिए अधिक नहीं है और मुझे आशा है कि मैं यह पढ़ने के लिए जीवित रह सकूँगा कि आपके शरीर को चीरफाड़ दिया गया है और पूर्णतः मरने से पूर्व आपने दीर्घकाल तक भयंकर यंत्रणा सहन की है—और यह पढ़कर मैं अट्टहास कर देर तक हँसूँगा।"

वह व्यक्ति जिसने यह पत्र लिखा, बिल्लियों का हितचिंतक होने का दावा करता था। बिल्लियों के प्रति उसका प्रेम विरोधी विधान के रूप में प्रकट होता है, जो वस्तुतः छद्मवेश में लोगों के प्रति कटु शत्रुभाव की अभिव्यक्ति का कार्य करता है।

**प्रक्षेपण ( Projection ) :**

छद्मवेशी प्रक्रिया का एक अन्य बहुप्रचलित प्रकार, जो व्यक्ति की चिंताजन्य आवेशों से रक्षा करता है, प्रक्षेपण है। यह एक साधन है, जो किसी दूसरे अभि-प्रेरक का आश्रय लेकर अपने द्वंद्व के स्रोत को आवृत कर देता है। उदाहरणार्थ, यदि एक विद्यार्थी की परीक्षा में धोखा देने की तीव्र इच्छा है, किंतु इस तथ्य को वह अपनी नैतिक संहिता के कारण स्वयं स्वीकार करना नहीं चाहता है, तो वह दूसरों की आँखों में अपने प्रति संदेह पैदा कर देगा और उन्हें नकल करने के लिए गाली देगा, जब कि वास्तव में वे निर्दोष हैं। अथवा, यदि दूसरों के प्रति कठोर होने की

उसकी प्रवृत्ति है, तो यह जानते हुए भी कि यह 'अनुचित' प्रवृत्ति है, वह दूसरों को कठोर होने का दोष देगा, जबकि वास्तव में वे कठोर नहीं हैं।

९७ भ्रातृत्व सदस्यों (फ्रैटरनिटी मेम्बर्स) की अभिवृत्तियों के अध्ययन द्वारा प्रक्षेपण को अच्छी तरह स्पष्ट किया गया है (सीअर्स, १९३६)

> 'विद्यार्थियों से कहा गया कि वे अपने ऐसे साथियों की एक सूची तैयार करें, जिनमें चार अवांछित दोष हों—कृपणता हठ, अव्यवस्था और लज्जा। दूसरों के दोषों को सूचीबद्ध करने के बाद प्रत्येक विद्यार्थी ने अपने दोषों को भी लिखा। इस प्रकार अनुसंधान करने वाले के लिए यह तुलना संभव हो गई कि एक विद्यार्थी स्वयं अपने विषय में क्या सोचता है और दूसरे उसके विषय में क्या सोचते हैं। कुछ सदस्य अपने अवगुणों से पूर्णतः परिचित थे; क्योंकि स्वयं जो उन्होंने अपने विषय में लिखा, वह उससे मिलता था जो दूसरों ने उनके विषय में लिखा। समूह की सूची को देखने पर ऐसा प्रतीत हुआ कि कुछ विद्यार्थियों में एक या उससे अधिक अवगुण अवांछित मात्रा में वर्त्तमान हैं। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि इन विद्यार्थियों ने दूसरों में अपनी अपेक्षा अपनी अवांछित प्रवृत्तियों को अधिक मात्रा में प्रदर्शित किया। इस प्रकार वे अपने अवांछित अवगुणों को स्वीकार करने में असमर्थ थे और वे उन्हें दूसरों पर प्रक्षेपण करते थे।"

मानव-व्यवहार में प्रक्षेपण के उदाहरणों का अभाव नहीं है। जब कोई व्यक्ति गलती से यह विश्वास कर लेता है कि दूसरे व्यक्ति उसे हानि पहुँचाना चाहते हैं, तब यह संदेह होने लगता है कि वह व्यक्ति तीव्र क्रोधपूर्ण आवेगों को अपने हृदय में आश्रय दे रहा है और उनका दूसरे व्यक्तियों में प्रक्षेपण कर रहा है। अविवाहिता कुरूपा प्रौढ़ स्त्री अपने घर से बाहर नहीं निकलती है; क्योंकि उसे विश्वास है कि बाहर पुरुष उसे चिढ़ाने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। उस पर अपनी खंडित काम-भावनाओं के प्रक्षेपण का संदेह किया जा सकता है। अपने हृदय की इन प्रवृत्तियों की जानकारी उसे चिंताकुल कर देगी। इसलिए वह अपनी रक्षा, उन इच्छाओं को दूसरों की मान कर करती है। भयंकर रूप धारण करने पर प्रक्षेपण एक मानसिक रोग हो जाता है, जिसे संभ्रांति ( Paranoia ) कहते हैं।

### विस्थापन ( Displacement ) :

चिंताजनक प्रेरकों से मुक्ति पाने का एक और माध्यम है—**विस्थापन। विस्थापन में अभिप्रेरक का लक्ष्य किसी अन्य लक्ष्य के द्वारा छिपा दिया जाता है।** जैसे—किसी व्यक्ति को अपने उच्चाधिकारी पर क्रोध आता है किंतु, उस पर क्रोध व्यक्त करने में वह भयभीत होता है, उसके बाद जब वह घर आता है, तो अपनी पत्नी पर

चिल्लाता है। दूसरा उदाहरण, उस छोटी लड़की पर विचार करें, जो अनुभव करती है कि उसका नवजात भाई उसकी माँ के आकर्षण का केंद्र है। उसकी ईर्ष्या उसे शिशु को कष्ट देने की प्रेरणा देती है। परिवार के लोग उसे मना करते हैं और समझाते हैं कि शिशु को मारना बुरी बात है। शिशु पर अपने क्रोध को व्यक्त करने में असमर्थ रहने पर वह उसके स्थान पर एक अधिक अच्छी वस्तु, एक गुड़िया, को रखती है और उसको पूरी तरह नष्ट भी कर सकती है। इस प्रकार अपने क्रोध को विस्थापित करके उसकी अभिव्यक्ति का समाजस्वीकृत माध्यम पा लेती है। क्रोध का विस्थापन चूहों पर प्रयोग के द्वारा प्रदर्शित किया गया है ( मिलर १९४८ ) :—

> एक बक्स में जिसका फर्श जालीदार था, दो चूहों को रखा गया (देखिए, चित्र ५·९)। इनमें से एक चूहा 'प्रयोग-पात्र' था, दूसरा चूहा केवल 'क्रोध के शिकार' के रूप में रखा गया था। समय-समय पर जालीदार फर्श में बिजली सक्रिय की गई। इस प्रकार विद्युत्-आघात मिलने पर चूहा भयभीत भी हुआ और क्रोधित भी। इधर-उधर हाथ-पैर पटकने पर प्रयोग-पात्र चूहा दूसरे चूहे से टकराया और ठीक उसी समय विद्युत्-आघात समाप्त हुआ। इस प्रक्रिया को कई बार दोहराया गया, जब तक कि वह प्रयोग-पात्र यह नहीं सीख गया कि दूसरे चूहे को मारने पर विद्युता- घात समाप्त किया जा सकता है। इसके बाद दूसरे चूहे को वहाँ से हटा दिया गया और उस बक्स में एक रबड़ की गुड़िया रख दी गई। इस बार चूहे ने 'नादान' गुड़िया को मारा। इस प्रकार क्रोध निकालने का पहले वाला माध्यम न पाकर प्राप्त माध्यम पर स्थानांतरित हो जाता है।"

**चित्र—५·९—क्रोध का विस्थापन। एक चूहा जो दूसरे चूहे को मारना सीख गया था, 'निकटवर्त्ती बेकसूर' रबड़ की गुड़िया की ओर मुड़ता है और दूसरे चूहे की अनुपस्थिति में उस पर चोट करता है ( एन० इ० मिलर)।**

संयुक्तीकरण ( Rationalization ) :

चिंताजनक द्वंद्वात्मक प्रेरकों से मुक्त होने का एक माध्यम संयुक्तीकरण है। समायोजन की इस प्रणाली के प्रयोग द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार को इस तरह स्पष्ट करता है कि वह मूल अभिप्रेरक को छिपाकर किसी अन्य अभिप्रेरक को व्यक्त करता

है। इस प्रक्रम के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं। यह समाज द्वारा अनुमोदित दुश्चिंता कम करने के अति प्रचलित तरीकों में से एक है। एक विद्यार्थी जो मनोरंजनार्थ समय व्यतीत करने के लिए अभिप्रेरित है वह अपनी स्कूल-संबंधी असफलताओं के लिए, अपर्याप्त पढ़ाई, अध्यापकों के अनुचित व्यवहार या अध्ययन के लिए बहुत कम समय मिलने को दोषी ठहराता है। एक माता, जिसका वास्तविक अभिप्रेरक है अपने पुत्र को अधिक-से-अधिक अपने पास रखना,
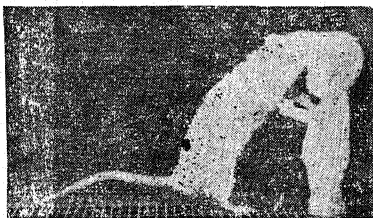
चित्र ९·५ के क्रम में

वह उसे इस युक्ति के बहाने बाहर नहीं जाने देती है कि उसकी पढ़ाई में बाधा पड़ेगी या वह अवांछित संगति में पड़ जाएगा। एक पिता बच्चे को इसलिए मारता है; क्योंकि वह संयुक्तीकरण करता है कि बच्चा इसी योग्य है या उसके लिए पिटाई आवश्यक है, किंतु, उसका मूल अभिप्रेरक क्रोध हो सकता है। अपने व्यवहार के संयुक्तीकरण द्वारा वह दोषमुक्त होकर अपनी आवश्यकता की परितुष्टि कर सकता है।

### उदात्तीकरण और प्रतिपूर्ति (Sublimation and Compensation) :

रक्षा-युक्तियों के दो सामान्य प्रकारों, जिन्हें फ्रायड एवं अन्य मनोवैज्ञानिकों ने, समायोजन के रूपों में प्रयुक्त होते देखा है, उनका विशेष नाम है। **उदात्तीकरण**— यह अभिप्रेरक की परितुष्टि के लिए प्रतिस्थापक क्रिया है। उदाहरणार्थ, जब कोई कामेच्छा प्रत्यक्ष रूप से किसी बाह्य व्यवधान या आंतरिक द्वंद्व के कारण तृप्त नहीं हो सकती, तब किसी अन्य माध्यम से उस तनाव को शांत किया जाता है। सामान्य काम-प्रवृत्तियों से युक्त कुरूप लड़की किसी पुरुष को पाने में असमर्थ हो सकती है या एक रूपवती कन्या संभोग-प्रस्ताव को स्वीकार करने में असमर्थ हो सकती है। फ्रायड का विश्वास है कि अतृप्त वासना की आंशिक तृप्ति उसे कला, धर्म, संगीत या सौंदर्य बोधात्मक समाज द्वारा अनुमोदित अन्य कार्यों की ओर मोड़ कर की जा सकती है। इस वासनात्मक प्रवृत्ति के कारण, जिसमें अनेक व्यक्ति सौंदर्य बोधात्मक क्रियाओं को ग्रहण करते हैं, फ्रायड का कहना है कि प्रतिस्थापक क्रिया यौन-प्रेरणाओं की परितुष्टि का साधन है। उदात्तीकरण की यह व्याख्या तर्क की वस्तु है; क्योंकि इसमें संदेह है कि शारीरिक-अभिप्रेरक प्रतिस्थापक क्रियाओं द्वारा तृप्त हो सकते हैं। अधिक संभावना यही है कि सौंदर्य-बोधात्मक क्रियाओं से संबंधित प्रेरणा यौनपरक नहीं है। दूसरी ओर, सामान्य विचार है कि प्रेरकों की परितृप्ति एक के स्थान पर दूसरे प्रति-

स्थापकों के प्रयोग से हो सकती है, यह अधिक तर्कसंगत और मानने योग्य जान पड़ता है।

प्रतिपूर्ति भी समायोजन का एक तरीका है, जो प्राय: अतृप्त अभिप्रेरक के स्थान पर प्रतिस्थापक के रूप में ग्रहण किया जाता है। प्रतिपूर्ति में प्राय: असफलता या मानहानि का भाव रहता है, जिसकी प्रतिपूर्ति किसी अन्य क्षेत्र में प्रयत्न द्वारा की जाती है। प्रतिपूर्ति की अवधारणा के साथ काम-संबंधी कुंठा के माध्यम का भाव नहीं जुड़ा रहता। संभव है, कुरूप लड़की किताबी कीड़ा बन जाए और उच्च छात्र-वृत्ति प्राप्त कर सकती है और रूप के अभाव में जिस सम्मान एवं प्रतिष्ठा को वह न पा सकी थी, उसे उपलब्ध कर सकती है। एक व्यक्ति जो बहुत नाटा है, वह अपने नाटेपन के कारण 'पुरुष' सरीखा सम्मान न पा सका, वह बाक्सिंग के कौशल द्वारा अप्राप्त सम्मान को प्राप्त करता है। अनपढ़ माता-पिता अपनी कमी का प्रतिस्थापन अपने पुत्र को उच्च शिक्षा देकर प्राप्त करते हैं। जीवन प्रतिपूर्तियों से पूर्ण है, जिनके द्वारा व्यक्ति उस संतोष को उपलब्ध करता है, जो अन्यथा उसके लिए अप्राप्य था। जब व्यक्ति की कुंठा सामाजिक हीन भावना से उद्भूत होती है, तब प्रतिपूर्ति के निम्नांकित उदाहरणों के समान ध्यान आकर्षित करने के लिए अभिव्यक्ति पाने की प्राय: संभावना रहती है (शेफर और शोदेन से उद्धृत, १९५६, पृष्ठ १७१-१७२)।

"हाई स्कूल की एक छात्रा, एल्बा बी० बहुत ही कुरूप थी। वह खूब मोटी थी और उसकी मुखाकृति भी मोटी और भोंड़ी थी। उसके पिता भी लेन-देन के व्यवसायी थे, यह कार्य भी छोटे नगर की समाज-योजना में सम्माननीय नहीं समझा जाता। ये परिस्थितियाँ उसके सामाजिक संबंध-निर्माण में व्यवधान उपस्थित करने वाली थीं। प्रतिक्रियास्वरूप, एल्बा ने श्रृंगार-प्रसाधनों का अतिशय प्रारंभ किया। स्कूल में वह प्रसाधनों का व्यवहार करके आती, आँखों की भवों को पतला और पेंसिल से बनाकर, ओठों पर भी खूब लिपस्टिक लगाकर वह बड़े विचित्र ढंग से आती। इससे वह सुंदर नहीं हो गई, पर इससे दूसरों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित होने लगा और यह सामाजिक पहचान के लिए एक प्रभावशाली प्रतिस्थापक सिद्ध हुआ। बाद में एल्बा हुँसोड लड़कियों की मुखिया बन गई। इसमें वह बहुत ही सफल थी और यह स्थिति उसकी ध्यानाकर्षित करने की कामना के अति अनुकूल भी थी।"

## रक्षा-युक्तियों का उपयोग (Use of Defence Mechanism) :

विद्यार्थी ने संभवत: उन अनेक व्यक्तियों को तथा स्वयं अपने को भी, उक्त वर्णनों में कहीं पहचान लिया होगा, जो रक्षा-युक्तियों का उपयोग करते हैं। किसी-

न-किसी समय प्रत्येक व्यक्ति उनका उपयोग करता है। इसीलिए इतने उदाहरणों को प्रस्तुत कर सकना संभव है। वास्तव में इन प्रक्रियाओं के साधारण प्रयोग से कोई हानि नहीं होती, वरन् छोटे-मोटे द्वंद्वों के निवारण में इनसे सहायता मिलती है। यदि रक्षा युक्तियाँ हमारे लिए एवं अन्य लोगों के लिए सुखकर होती हैं, जैसी कि वे प्रायः होती हैं, तो उनसे तनाव कम होता है और महत्त्वपूर्ण समस्याओं का सामना हम अधिक सुविधा से बिना आत्मप्रवंचना के कर सकते हैं।

सब रक्षा-युक्तियाँ निर्दोष नहीं होतीं। यदि उनका बेहद प्रयोग वास्तव में बार-बार आने वाली गंभीर द्वंद्वों के स्रोतों को ढाँपने के लिए हो, तो वे भयंकर कठिनाई उपस्थित कर सकती हैं। रक्षा-युक्तियों के अति-प्रयोग में दो मुख्य दोष हैं।

प्रथम, वे अभिप्रेरकों के द्वंद्वों को सुलझाने में असमर्थ हैं, उनका ध्यान दुश्चिता को जन्म देने वाले अभिप्रेरणात्मक द्वंद्वों पर न जाकर चिंता पर ही केंद्रित रहता है। वे प्रक्रियाएँ वास्तविक समस्या को केवल छिपा देती हैं या उन्हें रूपांतरित कर देती हैं। वह समस्या ज्यों-की-त्यों बनी रहती है और बार-बार चिंता उत्पन्न करती है। एक व्यक्ति अपनी समलिंगी काम-प्रवृत्तियों को दमित कर चिंता से मुक्त हो सकता है, किंतु वे विविध उद्दीपनों द्वारा फिर जागृत हो सकती हैं। जब भी वह व्यक्ति समलिंगी काम-प्रवृत्तियों को उद्दीप्त करने वाली परिस्थिति पाता है, उसकी सुप्त प्रवृत्ति पुनः उद्दीप्त हो जाती है। इसी कारण द्वितीय महायुद्ध के समय अनेक सुप्त समलिंगी काम-प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों में गंभीर दुश्चिताएँ उत्पन्न हो गईं जब वे निकट मित्रों के बीच रहने के लिए बाध्य किए गए, यद्यपि नागरिक जीवन में निकट मित्रों की संगति से वे बचने की व्यवस्था कर सकते थे। अतः, यदि द्वंद्व गंभीर और बार-बार आने वाला हो, तो रक्षात्मक प्रक्रियाएँ उसके समाधान को केवल कुछ समय के लिए स्थगित भर कर देती हैं, द्वंद्व बराबर वर्त्तमान रहता है और व्यक्ति को अशांत करने के लिए फिर उद्दीप्त हो जाता है।

रक्षा-युक्तियों के अतिशय प्रयोग की दूसरी दुर्बलता है कि वे व्यक्ति को नवीन सामाजिक कठिनाइयों में डाल देंगी, जो इसके अधिक महत्त्वपूर्ण अभिप्रेरकों को कुंठित कर देंगी। दुश्चिता के एक कारण को शांत करते हुए, रक्षा-युक्तियाँ दूसरे कारणों से चिंता को बढ़ा देंगी। उदाहरणार्थ, एक अति क्रोधी व्यक्ति अपने इस क्रोध को चिंता-मुक्ति के लिए दूसरों पर प्रक्षेपित कर सकता है। उन व्यक्तियों को, जो उसे देखते हैं, उसका प्रक्षेपण विचित्र प्रतीत होता है और जब उसके साथी उसके व्यवहार का अनुमोदन करते हैं, तो उसका दूसरा अभिप्रेरक कुंठाग्रस्त हो जाता है, जिससे उसकी चिंता और अधिक बढ़ जाती है। अपने अति रूप में प्रक्षेपणविभ्रम रोग बन

जाते हैं, जैसा कि संविभ्रमी रोगी (Paranoid patient) में देखा जाता है, जिसे चिकित्सालय में रखना आवश्यक हो जाता है; क्योंकि वह वास्तविकता को समझने में असमर्थ रहता है और वह अपने लिए तथा अन्य लोगों के लिए भी एक विपद बन जाता है। मानस-विकारग्रस्त रोगी को कठिनाई होती है; क्योंकि उसके चिंता कम करने वाले उपाय उसे लाभदायक कार्य में व्यस्त होने से रोकते हैं। इस प्रकार के एवं अन्य उदाहरणों में रक्षा-युक्तियाँ असफल रहती हैं; क्योंकि वे उसे उससे भी अधिक कठिनाई में डाल देती हैं, जिसमें वह था।

### अपसामान्य प्रतिक्रियाएँ (Abnoarmal Reactions) :

प्रत्येक व्यक्ति में द्वंद्व और कुंठा होती है, अतः इसमें कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं है, न हममें न दूसरों में। और न ही, जैसा हम कह चुके हैं, रक्षा-युक्तियों के प्रयोग में कोई अस्वाभाविकता है। वरन् यदि ये प्रक्रियाएँ उपयोगी सिद्ध न हों—यदि व्यक्ति गहन दुश्चिंता में दीर्घकाल तक रहे—तो यह अस्वाभाविक है। अथवा, यदि वह इन रक्षा-युक्तियों का इतनी अधिक मात्रा में प्रयोग करे कि समाज में वह असमायोजित हो जाए तो वह भी अस्वाभाविक है। वास्तव में स्वाभाविक और अस्वाभाविक व्यवहार के मध्य कोई विभाजक-रेखा नहीं है, केवल मात्रा का अंतर है। जब कोई व्यक्ति असाधारण मात्रा में चिंताग्रस्त हो जाता है या वह दूसरों के लिए संकट या भय का कारण बन जाता है, तब वह अपसामान्य हो जाता है।

अपसामान्य व्यवहार का वर्गीकरण करना कठिन है। संभवतः इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना अनूठा इतिहास होता है और उसमें अपने पर्यावरण की प्रतिक्रिया से विशेष प्रतिमान विकसित होता है। अतः, अपसामान्य व्यवहार के वर्गों का सही निर्धारण उस प्रकार संभव नहीं है, जिस प्रकार रोग उत्पन्न करने वाली संक्रामक बीमारियों को निर्धारित करना। दूसरी ओर, अपसामान्य व्यवहार के कुछ प्रतिमानों का नामकरण और उनका वर्णन किया जा सकता है और ये प्रतिमान किसी व्यक्ति में होने वाली विशिष्ट प्रतिक्रियाओं के समूह के लेबुल या नामपत्रों का काम देंगे। अपसामान्य व्यवहार के दो बहुत महत्त्वपूर्ण नाम हैं—१. मनस्तापीय (Neurotic) और २. मनोविक्षिप्ति (Psychotic)। इन दोनों में सदैव बहुत स्पष्ट अंतर न रहते हुए भी कभी-कभी रहता है। सामान्यतः मनस्तापी व्यक्ति किसी-न-किसी कार्य को कर सकता है और अपने परिवार तथा मित्रों के साथ रह सकता है। दूसरी ओर उन्मोद-विकारग्रस्त रोगी या मनोविक्षिप्त अपने साथियों को 'विचित्र' जान पड़ता है। उसके विकृत और भयानक होने की बहुत संभावना रहती है, इसलिए उसे घर में ही या मानस-रोगोपचार की किसी संस्था में रखना आवश्यक होता है। मनस्तापी व्यक्ति स्नायविक-

विकारों से या पक्षातंर से मनस्तंत्रिकाताप (Psychoneurosis) से और मनोविक्षिप्त व्यक्ति उन्माद (विक्षिप्तता) से पीड़ित रहता है। अनुवर्त्ती परिच्छेदों में इन्हें स्पष्ट किया जाएगा।

## मनस्तातीय प्रतिक्रियाएँ (Neurotic Reactions) :

मनस्तंत्रिकाताप दुश्चिंताओं से संबद्ध है या पहचानी जाती है। प्रायः यह चिंता स्पष्ट देखी जा सकती है। व्यक्ति निरंतर आशंकित, चिंतित रहता है और कोई-न-कोई शिकायत करता रहता है। जब भय या चिंता अधिक हो, तो बेहोश या व्यग्र हो जाता है। कभी-कभी चिंता को स्पष्ट नहीं देखा जा सकता—व्यक्ति अपेक्षाकृत चिंतामुक्त दृष्टिगोचर होता है—किंतु उसकी प्रतिक्रियाओं का कारण चिंताएँ ही हैं और उसकी प्रक्रिया चिंतामुक्त होने की होती है। ऐसे उदाहरणों में व्यक्ति को अपसामान्य लक्षणों और रक्षा-युक्तियों द्वारा चिंताओं से उसके निरंतर संघर्ष का पता लगाया जा सकता है। हम मनस्ताप के सब प्रकारों का वर्गीकरण या उनका वर्णन करने का कोई प्रयत्न यहाँ नहीं करेंगे; क्योंकि उस पर पृथक् रूप से पूरा ग्रंथ लिखा जा सकता है। निम्नांकित विवरण द्वारा सामान्य परिचय दे सकेंगे कि विशेष मनस्तापी प्रतिक्रियाएँ कैसी होती हैं।

## दुश्चिता-प्रतिक्रियाएँ ( Anxiety Reactions ) :

यद्यपि मनस्ताप का लक्षण है दुश्चिता या दुश्चिंता से संघर्षरत रहना, किंतु अनेक मनस्तापों में अन्य लक्षणों द्वारा यह आच्छादित भी हो जाता है। चिंता प्रतिक्रिया में ऐसा नहीं होता। ये ऐसे मनस्ताप हैं, जिनका प्रमुख लक्षण है—गहन और स्पष्ट चिंता। यह चिंता अनेक बार दीर्घकाल तक रहनेवाली और अशांत करने वाली हो सकती है अथवा यह आकस्मिक आक्रमण करती है और कुछ घंटों या कुछ दिनों में समाप्त हो जाती हे। चिंता की अपसामान्य स्थिति व्यक्ति को पूर्णतः दुखी बना सकती है और संत्रस्त अवस्था तक पहुँचा देती है तथा उसके स्वास्थ्य को आमाशय के रोगों (गैस्ट्रिक विकास) या अतिसार रोग से जर्जरित कर देती है।

प्रायः व्यक्ति चिंता के कारण को न तो स्वयं समझ सकता है और न उसके निकटवर्त्ती व्यक्ति ही बता सकते हैं। दुखद परिस्थिति या कटु समस्या के कारण चिंता अधिक गहन और दुखप्रद हो सकती है। यह स्पष्ट नहीं होता कि कोई इतना चिंतित क्यों हो जाता है—कम-से-कम यह तब तक स्पष्ट नहीं होता, जब तक कि उसके जीवन के इतिहास का और उसे चिंतित करने वाली परिस्थिति का विस्तार से विश्लेषण न कर लिया जाए। निम्नलिखित उदाहरण में चिंता के आक्रमण और उसके कारण के विश्लेषण को स्पष्ट किया गया है (कालमैन से उद्धृत—१९६०, पृष्ठ १६७ ) :

"एक सफल व्यवसायी में हर दो या तीन माह में एक बार भयंकर दुश्चिंता का दौरा (आक्रमण) होने लगा। इस रोगी की पत्नी उससे आयु में आठ वर्ष बड़ी थी और पत्नी के प्रति उसमें शारीरिक आकर्षण समाप्त हो गया था। उसके हृदय में कम उम्र की स्त्री के प्रति आकर्षण बढ़ रहा था। वह यह सोचने लगा था कि कम उम्र की और साथ रखने लायक युवती कितनी अधिक सुखदायिनी होती होगी? इसी बीच उसकी भेंट एक लड़की से हुई। उसे विश्वास था कि यह उससे प्रेम करने लगेगा। इसके कुछ ही समय बाद चिंता के दौरे पड़ने लगे। कई दिनों की चिंता और मानसिक तनाव के उपरांत यह दौरा होता, किंतु यह दौरा अकस्मात् और बहुत तीव्र होता।

यह व्यक्ति—इस दौरे को स्पष्ट करने में पूर्णत: असमर्थ था। किंतु, कारण खोजना कठिन नहीं था। रोगी का बचपन दरिद्रताग्रस्त और अरक्षित था। वह कठोर जगत के सामने मूलत: हीन, अरक्षित और घबराहट अनुभव करता था। ये भावनाएँ कालेज में द्वितीय वर्ष में असफल होने पर और भी तीव्र हो गईं यद्यपि इस असफलता का कारण मुख्यत: बाह्य कार्यों की अधिकता का होना था। अपने से आयु में बड़ी और मजबूत स्त्री से विवाह करने पर यह अपने को कुछ सुरक्षित समझने लगा। उसका आत्मविश्वास दृढ़ हुआ और कार्य करने की प्रेरणा उसे हुई। आर्थिक दृष्टि से यह संबंध बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ और वह कहने लगा—"स्वप्न में भी इसकी कल्पना करने का साहस मुझमें न था"—ऐसी पत्नी से जिससे उसे सुरक्षा और विश्वास मिला था, विवाह-विच्छेद का निरंतर विचार उसके मानव को मथ रहा था, उसके समायोजित जीवन पर यह विचार आघात पहुँचाता था। अत:, चिंता का दौरा होने लगा।"

एक चिंताग्रस्त मनस्तापी कभी-कभी अपनी चिंता से शारीरिक अभिव्यक्तियों द्वारा कुछ मुक्ति भी पाता है। यदि वह अपने शारीरिक स्वास्थ्य के संबंध में बहुत अधिक सोचता है, अथवा साधारण से कष्ट की शिकायत भी बराबर करता है, तो वह स्वकाय-दुश्चिंति (Hypochondriacal) कहलाता है। उसकी शिकायत या तो आधारहीन होती है अथवा अतिशयोक्तिपूर्ण। किंतु अपने शरीर की चिंता करके वह अपने मस्तिष्क को अपराध के भाव से अथवा अन्य असहनीय चिंता उत्पन्न करने वाले कारणों से मुक्त कर लेता है। यदि व्यक्ति सामान्य अधीरता, थकान और अनिद्रारोग की शिकायत करे, तो वह मन:श्रांत (Neurasthenic) कहलाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'मानसिक दुर्बलता' और यह व्यक्ति के कुछ कर सकने की निरंतर अयोग्यता

से संबंधित है । मनःश्रांत व्यक्ति, वास्तव में, बार-बार अपने कार्य न कर सकने की असमर्थता प्रकट करता है; क्योंकि वह बराबर थकान और श्रांति अनुभव करता है । ये लक्षण यद्यपि व्यक्ति की असमर्थता व्यक्त करते हैं, किंतु वास्तव में उसे लाभ पहुँचाते हैं, वे उसे कार्य न करने का बहाना देते हैं औके अंतर र उसको मथने वाली चिंता को छद्मवेश देने में सफल होते हैं । निम्नलिखित उदाहरण ( शाफेर और शोबेन, १९५६, पृष्ठ ७७-२७८ से उद्धृत) शारीरिक चिंता से युक्त निरंतर मनःचिंता को अभिव्यक्त करता है—

"थामस, आर-नामक व्यक्ति—हाई स्कूल की उच्च कक्षा का १८ वर्षीय छात्र था—वह एक मनश्चिकित्सक के पास लाया गया; क्योंकि वह बार-बार असफल हो जाता था । उसका दृष्टिकोण आशंका और निराशा से पूरित होने लगा था । इसे उसके अध्यापकों ने शीघ्र ही अनुभव किया । वार्तालाप से प्रकट हुआ कि उसकी चिंता किसी निश्चित स्थिति पर ही केंद्रित नहीं है, वरन् उसके संपूर्ण दृष्टिकोण पर छा गई है । वह अपनी शिक्षण सफलता पर विचार करता था, विशेषतः उसके सबंध में अपने पिता के विचारों पर सोचता । स्कूल में अपनी संभावित असफलता के विषय में कहते हुए उसने कहा—"मेरे लिए यह मृत्यु होगी ।" उसने तीव्र सामाजिक असमा-योजन अनुभव किया और अस्पष्ट शब्दों में कहा कि वह संसार के विषय में अधिक नहीं जानता है और अभी उसे बहुत-सी बातें सीखनी हैं । थामस का लड़कियों से बहुत कम परिचय था और प्रतीत होता था कि वह उनसे भयभीत था या वह अपने को अन्य लड़कों की अपेक्षा, लड़कियों को प्रभावित करने में अयोग्य समझता था । पहले के कुछ वर्षों में अपनी आयु से कुछ बड़ी एक लड़की से वह कई बार मिला, उसे उसने बहुत महत्त्व दिया और यह सोचने लगा कि वह उसे प्रेम करता है । लड़की कालेज में पहुँच गई और थामस को उसे 'खोने' का भय लगने लगा । वह कोई भी निर्णय लेने में असमर्थ हो गया । साधारण-सी बात के लिए भी उसे दूसरों से राय लेनी पड़ती, अन्यथा वह कठिनाई को सामने देख असमर्थता अनुभव करने लगता ।

चिंता के अतिरिक्त उसे हृदय के निकट आंतरांगज लक्षण (Visceral symptoms) प्रकट होने लगे । कभी-कभी उसके हृदय की धड़कन बहुत ही तीव्र हो जाती और उसकी नाड़ी की ध्वनि उसके कानों में पहुँचने लगती थी । अनेक चिकित्सकों ने सावधानी से उसका परिक्षण किया और बताया कि उसके किसी अंग में विकार नहीं है । थामस प्रायः शनिवार की संध्या

के प्रारंभ से रविवार के दोपहर तक काल्पनिक हृदयरोग के कारण पलंग पर पड़ा रहता। उसकी चिंता की गहनता को मनश्चिकित्सक ने, उसके द्वारा बीच-बीच में धीरे से कही गई, इधर-उधर की चर्चा के द्वारा समझा। उसने लिखा—"मुझे कभी शांति नहीं मिल सकती, न तृप्ति ही मिलेगी। मुझे दुःख है कि मैं अपनी मानसिक और शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित नहीं कर सकता। कुछ चीजें सदा पहुँच के बाहर रहती हैं। मैं जीवन से, किसी अति कापुरुष से भी अधिक भयभीत हूँ। मैं व्यक्तियों को समझ क्यों नहीं सकता ? मैं केवल भयों को, अर्थहीन मानसिक स्मृतियों को और अपने जीवन के एकाकी स्थलों **को ही क्यों स्मरण** कर सकता हूँ ? मुझे अनुभव होता है, मैं एकाकी हूँ। वे सुखद इच्छाएँ जो व्यक्ति को जीने की प्रेरणा देती हैं, मेरी वे सुखद इच्छाएँ समाप्त हो गई हैं। क्या मैं इससे मुक्त हो सकूँगा, या क्या मैं कभी मनुष्य नहीं बन सकूँगा ?"

थामस की चिंता-प्रतिक्रिया का विश्लेषण हमें उत्तर-किशोरावस्था की प्रमुख समस्याओं के प्रति असमायोजन के रूप में कर सकते हैं। उसके सामने अपने स्वतंत्र अस्तित्व की, आर्थिक आत्म-निर्भरता, व्यवसाय का चुनाव और सामाजिक एवं काम-समायोजन की समस्याएँ आती हैं और उनमें से वह एक का भी संतोषजनक समाधान पाने में पूर्णतः असमर्थ रहता है। समायोजन की इस अयोग्यता का मूल बाल्यकालीन अधिगत अनुभवों में होना चाहिए। थामस के उदाहरण में, जैसा कि अधिकांश उदाहरणों में होता है, इसका मूल उसके माता-पिता के व्यवहारों और व्यक्तियों में मिला।

## दुर्भीति प्रतिक्रियाएँ (Phobic Reactions)

पिछले अध्याय में हमने सीखा है कि व्यक्ति विशेष स्थितियों के लिए, विचित्र रूप से अनुबंधित अनुभवों के द्वारा भयों को अर्जित कर सकते हैं। ये भय प्रायः इस अर्थ में विवेकहीन होते हैं कि उन्हें कभी समर्थन प्राप्त नहीं होता। ( वे न्यायसंगत नहीं होते।) हममें से अनेक लोगो में इस प्रकार के भय विकसित हो जाते हैं, किंतु हम उन पर विजय पा लेते हैं अथवा यूँ कहना **चाहिए** कि उन्हें अपने पर हम विजय नहीं पान देते। दूसरी ओर, कुछ अर्जित भय विवेकहीन और प्रायः तीव्र होते हैं। ऐसे भय या दुर्भीति फोबिया' कहलाने हैं। ऐसी दुर्भीति के अनेक प्रकार हैं। यह इस पर निर्भर करता है कि कोई व्यक्ति किससे भयभीत है, ऐसे कुछ अधिक प्रचलित भयों के निश्चित नाम हैं। उदाहरणार्थ, संवृत-स्थान भीति (Claustraphobia) छोटी और बंद जगह का भय है, उतुंगतामीति (Acrophobia), ऊँची जगहों का भय और भीड़ भीति (Ochlop hobia) भीड़भाड़ का भय है। इन्हें चित्र ५-१० में स्पष्ट किया गया है।

कुछ लोगों में जो अन्यथा सामान्य और स्वस्थ हैं, भी दुर्भीति होती है। ये दुर्भीतियाँ सामान्य या कभी-कभी उत्तेजित करने वाली भी हो कसतीहै और वे भयंकर समस्या उत्पन्न नहीं करतीं। दूसरी ओर दुर्भीति इतनी तीव्र और अविवेकी भी हो सकती है कि वह मनुष्य के संपूर्ण जीवन-पथ को ही परिवर्तित कर देती है।

दुर्भीति का बहुउद्धृत उदाहरण विलियम एलेरी लियोनार्ड (१९२७) का है। वह कवि था और विसकोजिन ( Wiscosin ) विश्वविद्यालय में साहित्य का प्राध्यापक था।

> "लियोनार्ड में अपने घर और विश्वविद्यालय से बाहर कुछ ही भवन खंडों से दूर जाने की दुर्भीति थी। अनेक वर्षों तक इस दुर्भीति ने उसे सचमुच इस छोटे से भौगोलिक क्षेत्र में बंदी रखा। यद्यपि वह अपनी दुर्भीति से परिचित था, किंतु उसके कारण से अनिभिज्ञ था। मनोविश्लेषण द्वारा वह बाल्यकाल को एक भयप्रद घटना को स्मरण करने में समर्थ हुआ। एक बार वह अपने घर सेबहुत दूर भटक गया था और रेल की पटरीके पास पहुँच गया था। पास से निकलने वाला एक ट्रेन ने अपना भाप से उसे झुलस दिया था। यही घटना उसकी भीति का मूल थी। घर के निकट रहने का वास्तविक अभिप्रेरक इस घटना से अर्जित नय था। दुर्भीत इतनी शक्ति शाली थी कि उसने उसके पूरे जीवन को प्रभावित किया। इसके मूल का ज्ञान हो जाने पर भी वह पूर्णतः उस दुर्भीति से मुक्त नहीं हो सका, जोकि 'लोकोमाटिव गॉड, (Locomotive Gcd) नामक एक पुस्तक का प्रणयन भी उसने किया था।"

**मनोग्रस्ति-बाध्यकारी प्रतिक्रियाएँ (Obsessive-Compulsive Reactions) :**

अन्य मनःस्तापी प्रतिक्रियाओं के अंतर्गत मनोग्रस्ति (Obsession ) बाध्यता (Compulsions) या ये दोनों आते हैं। मनोग्रस्ति वह विचार है, जो निरंतर व्यक्ति के मस्तिष्क में घूमा करता है। यह प्रायः मूर्खतापूर्ण और निराधार होता है, कम-से-कम उस समय तो वह ऐसा ही प्रतीत होती है। व्यक्ति इस विचार से ग्रस्त रहता है कि उसे कैंसर या सिफलिस हो गया है या इस भय से ग्रस्तहोता है कि वह स्वयं अपने को मार डालेगा या कोई और उसे मार डालेगा या इससे कम तीव्र स्थितियों में अर्थहीन वाक्य या विचार बार-बार उसके मस्तिष्क में विचरण करते रहते हैं। ऐसी धारणा है कि यह मनोग्रस्ति किसी अभिप्रेरक या चिंता के विरुद्ध रक्षाभाव को प्रस्तुत करती है। किंतु, यह कह सकना सदा सरल नहीं कि वह किस चिंता या अभिप्रेरक के विरुद्ध रक्षाभाव है। अनेक ऐसी चिंताओं का संबंध काम-भावना से रहता है, कुछ अन्य आक्रमण के विरुद्ध भी होती हैं। किंतु, मनोग्रस्ति व्यक्ति में अतिचिंतित करनेवाली किसी भी स्थिति या अनुभव को प्रकट कर सकती है।

दुर्भीति (फोबिया) किसी वस्तु का दारुण भय है।

**चित्र ५·१० अपेक्षाकृत तीन प्रचलित दुर्भीतियों (फोबिया) का अंकन इन चित्रों में किया गया है : (ऊपर) ऊँचे स्थानों की भीति, (नीचे) छोटे स्थानों की भीति, एवं (पृष्ठ २५८ पर) भीड़भाड़ से भीति (अल्फ्रेड गैस्वेड्ट)।**

बाध्यता वैसे मनोग्रस्ति के समान ही होती हैं, अंतर केवल यह है कि ये विचार न होकर **क्रियाएँ** (Acts) हैं, **जो बार-बार व्यक्ति के व्यवहार में प्रकट होती हैं।**

एक बाध्यताग्रस्त रोगी बार-बार मिनट-मिनट पर अपने हाथ धो सकता है, दूसरा, उन सीढ़ियों को अवश्य ही गिनता रहेगा, जिन पर वह चढ़ रहा है। वह तत्परता से घूमते किसी भी ऐसे वस्तु पर पैर रखने से बचाता है, जिससे चरमराहट हो। कुछ लोगों में बाध्यता स्पष्ट नहीं हो पाती, किंतु वे अधिक सामान्य ढंग से बाध्यकारी (Compulsive) होते हैं। वे अस्पष्टता और अनिश्चितता को अति अशांतिकारी अनुभव करते हैं तथा व्यवस्थित विचारों, वस्त्रों या कार्यों के लिए चेष्टा करते हैं। वास्तव में कोई भी 'सही ढंग से कार्य करने' पर अस्वाभाविक दबाव बाध्यकारी

व्यवहार समझना चाहिए। निम्नलिखित उदाहरण (मैसरमैन १९४६, पृष्ठ ४३ से उद्धृत) बाध्यता का विशिष्ट उदाहरण है—

"एक सफल अधिकारी, जो अनेक कारणों से विवाह और पितृत्व के दायित्व से घृणा करता था, दिन में अनेक बार इस विचार से ग्रस्त हो जाता था कि उसके दो बच्चे किसी प्रकार से मुसीबत में फँसे थे, यद्यपि वह जानता था कि वे एक अच्छे प्राइवेट स्कूल में, जहाँ वह स्वयं उन्हें प्रत्येक प्रातः पहुँचा

**चित्र ५·१० के क्रम में**

कर आता है, सुरक्षित थे। परिणामस्वरूप वह तीन बार दिन में अपना आफिस-कार्य छोड़कर स्कूल की मुख्य अध्यापिका को फोन करता। संयोग-वश कुछ महीनों के बाद अध्यापिका उसकी पितृत्व भावना पर संदेह करने लगी। इसी तरह वह प्रति रात में यदि अपनी पत्नी और बच्चों के लिए कोई-न-कोई उपहार न लाता, तो घर आते हुए बहुत विकल हो जाता, यद्यपि महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि प्रतिदिन वह ऐसे उपहार लाता, जिनकी उन्हें बिलकुल आवश्यकता न होती।"

मनोग्रस्तियाँ और बाध्यता दुश्चिताओं को कम करने के साधन हैं, जो चिंताओं को उत्तेजित करने वाले प्रेरकों को दमित कर देती हैं। उदाहरणार्थ, यदि कोई कैंसर के विचार से ग्रस्त हो, तो संभवतः इसका कारण पहले किया हुआ कोई खराब काम या दुराचार है, जिसका दंड पाने का उसे भय है। इसी प्रकार बाध्यतावश जो व्यक्ति कुछ मिनटों बाद बार-बार हाथ धोता है, उसका कारण कोई काम-उत्क्रमण है और हाथ धोकर वह अपने पाप को धोने का अचेतन प्रयास करता है। इस प्रकार व्यक्ति दुश्चिताओं से मनोग्रस्तियों और बाध्यता द्वारा कुछ शांति लाभ करना चाहता है। किंतु, बात यहीं समाप्त नहीं होती। वास्तव में एक चक्र निर्मित होता है, जिसमें तीव्र दुश्चिता मनोग्रस्ति या बाध्यता को जन्म देती है और वे अपनी बारी में दुश्चिता को अल्पकाल के लिए शांत करती हैं, थोड़ी देर बाद या परिस्थितिवश

वह पुनः उग्र हो जाती है। यह प्रक्रिया रक्षात्मक है और दुश्चिंता को असहनीय मात्रा तक पहुँचने से रोकती है।

बहुधा यह कहना कठिन होता है कि मनोग्रस्ति या बाध्यता तथा मूल अनुभव में, जिसे प्रतिक्रिया प्रकट करती है, क्या संबंध है। कभी-कभी व्यक्ति में कुछ सही दृष्टि हो सकती है और वह इस संबंध को जान लेना है। प्रायः वह सोचता है कि उसकी मनोग्रस्ति और बाध्यता युक्तियुक्त उचित प्रकट हों। अतः, वह उनके वास्तविक आधार को अपने से छिपा लेता है। ऐसी परिस्थितियों में चिंता के आधार को खोजने के लिए संभवतः किसी मनःचिकित्सक को भी घोर परिश्रम करना पड़ेगा।

## परिवर्तन-प्रतिक्रियाएँ (Conversion Reactions) :

कभी-कभी जब कोई द्वंद्व असाधारण रूप से कठोर होता है और दमन अपेक्षाकृत पूर्ण होता है, तब द्वंद्व को शारीरिक रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। अतः, द्वंद्व की ऐसी प्रतिक्रिया परिवर्तन-प्रतिक्रिया कहलाती है। प्रकट होने वाले लक्षण व्यक्ति, उसके द्वंद्व और उसकी आदतों के अनुसार भिन्न-भिन्न होते हैं। यह शरीर के किसी भाग का पूर्ण अंगघात भी हो सकता है। जैसे—हाथ में चेतना का अंत, अंधापन या बहरापन या अन्य कोई असमर्थता हो सकती है। यह रोग सुविधानुसार होता है। यह व्यक्ति को कार्य में असमर्थ भी कर सकता है और किसी तरह उसके द्वंद्व को दूर भी कर देता है, जो वैसे उसमें उपस्थित रहता। यह पूर्णतः समझ लेना चाहिए कि इस रोग का शारीरिक आधार नहीं है, जैसा कि डाक्टरों के शारीरिक परीक्षण से निर्धारित होता है। यह प्रभाव केवल एक साधन है, जो द्वंद्व और दुश्चिंता का सामना करने की योग्यता देता है। परिवर्तन-प्रनिक्रिया का दूसरा नाम **हिस्टिरिया** ( Hysteria ) है। किंतु, विद्यार्थी ध्यान रखें कि हिस्टिरिया का यह अर्थ, अर्थात् अभिप्रेरणात्मक द्वंद्व का शारीरिक रोग में परिवर्तन, सामान्यतः अनियंत्रित भावपूर्ण व्यवहार के जिस अर्थ में हिस्टिरिया का प्रयोग होता है, उससे भिन्न है। निम्नलिखित उदाहरण में हिस्टिरिया या परिवर्तन-प्रतिक्रिया को स्पष्ट किया गया है—

> "एक स्त्री अस्पताल में भरती की गई, जिसकी टांगों में लकवा था। उसकी टांगे दो सख्त थंबों की तरह एक दूसरे से सटी हुई व पूरी फैली थीं। तंत्रिक-विजान-परीक्षण ने प्रमाणित किया कि उसमें कोई शारीरिक विकार नहीं है, इसलिए काय-चिकित्सक ने उसकी दूसरी समस्याओं पर ध्यान दिया। उन्होंने इस सत्य का उद्घाटन किया कि वह कई बच्चों की माँ है तथा उसे और बच्चे होने का भय था। उसके पति बार-बार संभोग की इच्छा करते थे और उसमें संतति-निग्रह तथा पति की कामेच्छा को अस्वीकार करने का तीव्र विरोध था। अतः, जटिल द्वंद्व के सब तथ्य एक साथ

मिल गए थे। अंत में उस स्त्री से चर्चा करने और पूरी तरह खोज करने पर चिकित्सक इस निर्णय पर पहुँचे कि उसका लकवा द्वंद्व से युक्त होने का अचेतन साधन था।

हिस्टिरिकल प्रतिक्रियाएँ दमन-प्रक्रिया को भली प्रकार से स्पष्ट करती हैं; क्योंकि उनमें ही दमन पूर्णतः अभिव्यक्त होता है। ऐसी अधिकांश प्रतिक्रियाओं में—विस्थापन, प्रतिक्रियाजन्य वृत्ति, प्रक्षेपण इत्यादि—पूर्ण नहीं, पर द्वंद्व का कुछ अंश दमित होता है। एक लक्ष्य बदल जाता है, शेष ज्यों-के-त्यों रह जाते हैं। हिस्टिरिया में पूरा द्वंद्व दमित हो जाता है। वह व्यक्ति पूर्णतः उन विचारों और अभिप्रेरकों को अस्वीकृत कर देता है, जो उस द्वंद्व से संबंधित हों और इसे वह प्रभावपूर्ण ढंग के द्वारा व्यवस्थित कर देता है। उदाहरणार्थ उस स्त्री को, जिसकी टांगें लकवे में अकड़ गई थीं, संतति-निरोध की चिंता न थी। पति की कामेच्छा का विरोध करने की आवश्यकता न थी और न था और बच्चे होने का भय। हिस्टिरिकल रोग के कारण उसने अपने द्वंद्व को पूर्णतः समाप्त कर दिया था। हिस्टिरियाग्रस्त व्यक्ति जिस विशेष रोग का प्रयोग मानसिक द्वंद्व के दमन के लिए करता है, वह पहले अनायास या किसी वास्तविक शारीरिक विकार के कारण ही होता है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति को किसी मोटरगाड़ी की दुर्घटना के कारण अस्थायी रूप में लकवा हो सकता है। यद्यपि यह चोट बाधा पहुँचाती है, किंतु अन्य इच्छाओं की तृप्ति में वह वरदान भी प्रमाणित हो सकती है। इससे व्यक्ति की पत्नी, पति या माता-पिता का ध्यान उस पर केंद्रित हो जाता है और इस प्रकार उसे जिस स्नेह और परिचर्या का अभाव था, वह प्राप्त हो जाता है। अथवा उसकी पीड़ा उन लोगों के लिए दंड-स्वरूप हो सकती है, जिन पर उसकी परिचर्या का दायित्व है। इस प्रकार परोक्ष रूप से यह पीड़ा उसके क्रोध की अभिव्यक्ति है। अन्य उदाहरण ऐसे भी हो सकते हैं, जिनमें यह पीड़ा व्यक्ति की चिंताजनक परिस्थितियों से नौकरी, स्कूल या सामाजिक संबंधों से—रक्षा करती है।

एक अनुभवी डाक्टर प्रायः किसी हिस्टिरिकल व्यक्ति को पहचान लेता है, जबकि उसके रोग के शारीरिक लक्षण पूर्णतः प्रकट नहीं होते हैं। एक लक्षण है, अस्वाभाविक सरलता या भोलापन। व्यक्ति इसलिए सरल हो जाता है; क्योंकि जो चिंता, वह अनेक स्थितियों में अनुभव करता है, वह उसे उन स्थितियों को छोड़ने के लिए बाध्य करती है और इस प्रकार अन्य सामान्य व्यक्तियों में जो अनुभव होते हैं, उन्हें वह या तो दमित कर देता है या छोड़ देता है। दूसरा लक्षण है कि उसमें संवेगात्मक अस्थिरता सहज उत्पन्न हो जाती है। किसी अप्रिय स्थिति का सामना होने पर उसके विचार अवरुद्ध हो जाते हैं और उलझ जाते हैं तथा वह इतना अशांत

भी हो सकता है कि वह अस्वस्थ हो जाता है, वह भ्रमित या बेहोश हो जाता है। संक्षेप में वह एक प्रकार का दर्द है, जो रोगी की चिंता से रक्षा करता है।

### विच्छेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ (Dissociative Reactions) :

प्रतिक्रियाओं का दूसरा समूह, जो परिवर्तन-प्रतिक्रियाओं के समान ही चिंताओं का दमन करता है, **विच्छेदनात्मक प्रतिक्रियाओं** का है। ये विच्छेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ इसलिए कहलाती हैं; क्योंकि व्यक्तित्व के कुछ अंश और स्मरण-तंत्र एक दूसरे से विच्छिन्न हो जाते हैं। यह छोटे और अपेक्षाकृत अहानिकर रूप में व्यक्ति के सोचने और रहने के ढंग का एक कक्षात्मक ( Compartmentalization ) रूप है। एक व्यवसायी जो शक्तिशाली प्रतिस्पर्धी है और अपने व्यावसायिक कार्यों में बहुत संकोची नहीं है, वह अपने परिवार वालों के प्रति स्नेहशील, नियमित रूप से चर्च जाने वाला, धार्मिक आदर्शों की सराहना करनेवाला और अपनी जाति की हितचिंता में क्रियाशील हो सकता है। इस प्रकार जीवनयापन करने में वह किसी प्रकार का द्वंद्व अनुभव नहीं करता।

वह अपने विचारों और क्रियाओं को इस प्रकार खंडों में विभाजित कर लेता है कि व्यक्तित्व के दोनों रूप चेतनावस्था में एक दूसरे के पथ में नहीं आते। किंतु, अपने अतिरूपों में विच्छेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ विचित्र और असमर्थ बनाने वाली होती हैं। वे मनस्तापी व्यवहार के सर्वाधिक नाटकीय उदाहरण उपस्थित करती हैं।

### स्मृति-लोप ( Amnesia ) :

विच्छेदन-प्रतिक्रिया का एक प्रसिद्ध रूप स्मृति-लोप के रोगी में देखा जा सकता है। वह अनेक रूपकों, 'मनोवैज्ञानिक' कहानियों और सूचनाओं का विषय होता है। स्मृति-लोप से ग्रस्त व्यक्ति प्रायः अपना नाम भी भूल जाता है, वह यह भी भूल जाता है कि वह कहाँ से आया है, उसके संबंधी कौन हैं और पिछले कुछ सप्ताहों, महीनों या वर्षों से वह क्या करता रहा है। स्मृति-लोप सिर पर लगे धक्के से या मस्तिष्क पर लगी चोट से हो जाता है और इस दशा में ठीक होने की भी कोई संभावना नहीं रहती, यद्यपि कभी-कभी लोग ठीक भी हो जाते हैं। स्मृति-लोप एक मनस्तापी या स्नायविक विकार है, जो दमन को अपने अतिरूप में प्रस्तुत करता है। व्यक्ति किसी दुःखप्रद द्वंद्व का सामना करने के लिए अचेतन रूप से, अपने अस्तित्व और उससे संबंधित परिवेश के अस्तित्व तक को भूल जाता है। प्रतिगमन के अन्य उदाहरणों में स्मृतियों को विस्मृत नहीं किया जाता, केवल वे चेतन रूप में प्रकट नहीं होतीं। अतः, यदि द्वंद्व के कारण का ज्ञान हो जाए और उसकी व्यथा को किसी तरह कम करने के लिए कुछ किया जा सके, तो स्मृति को लौटाने में उसकी बराबर सहायता की जा सकती है। निम्नलिखित दृष्टांत ( Tiegs & Katz.; 1941, पृष्ठ ५३ पर आधारित ) स्मृति-लोप का एक उदाहरण है—

"डॉनाल्ड जी०, जिसकी आयु २२ वर्ष थी, दिन भर कार्य करता था। वह अपनी ४५ वर्षीया माता का निर्वाह करता और रात को कालेज में पढ़ने जाता। वह एक लड़की से प्रेम करता था और उसे आशा थी कि उससे वह विवाह कर सकेगा। डॉनाल्ड की माता को वह लड़की पसंद नहीं आई और उसने दोनों का संबंध-विच्छेद करवाने का प्रयत्न किया।

उस लड़की ने अनुभव किया कि डॉनाल्ड उसका और अपनी माता दोनों का निर्वाह नहीं कर सकेगा। वह यह भी जान गई कि तीनों एक साथ नहीं रह सकेंगे। उसने डॉनाल्ड को एक माह का अवसर दिया, जिसमें वह सोच सके कि उस संबंध में उसे क्या करना चाहिए। निर्णय लेने के अंतिम दिन के एक सप्ताह के पूर्व वह घर से लापता हो गया। दो सप्ताह बाद, वह दूसरी स्थिति में पाया गया। वह अपने विषय में बिलकुल कुछ न बता सका कि वह कौन था, कहाँ था और उसकी क्या योजना थी। वह अपनी माता या उस लड़की को भी न पहचान सका, न उनके नाम को स्मरण कर सका। स्पष्ट है कि अपने द्वंद्व के समाधान के रूप में उसमें स्मृति-लोप विकसित हुआ।

उसका यह व्यवहार उसके पूर्व-इतिहास से भिन्न और असंगत न था। अपने प्रारंभिक स्कूल के दिनों में वह अक्सर अपना गृहकार्य करना भूल जाता था और विमनस्क हो जाता था। भूल जाना उसकी सहज आदत थी। जब तीव्र द्वंद्व विकसित हुआ, तो समायोजन का यह परिचित प्रकार स्मृति-लोप के रूप में पूर्ण विकसित हो गया।"

कुछ स्मृति-लोप अस्थायी और पलायन के साथ होते हैं। व्यक्ति अचानक गायब हो जाता है और आसपास ही निरूद्देश्य भटकता है या लंबी यात्रा भी करता है। यात्रा या भटकने के समय में व्यक्ति स्मृति-लोप से ग्रस्त रहता है। अनेक दिनों या शायद सप्ताहों बाद आंशिक रूप से या पूर्ण रूप से पुनः उसकी स्मरण-शक्ति लौटती है। इस स्थिति में वह पुलिस के पास या किसी व्यक्ति के पास सहायतार्थ जा सकता है अथवा यदि उसकी स्मृति पूर्णरूप से लौट आई हो, तो वह अपने मित्रों या संबंधियों से भी संपर्क स्थापित कर सकता है। पलायन से युक्त अस्थायी स्मृति-लोप 'फूग' ( Fugue ) कहलाता है; क्योंकि फूग शब्द की व्युत्पत्ति उस लैटिन शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है 'पलायन'।

### बहु-व्यक्तित्व (Multiple Personality) :

कभी-कभी प्रतिगमन या दमन के फलस्वरूप एक व्यक्तित्व दो या और अधिक अपेक्षाकृत पूर्ण व्यक्तित्वों में विभाजित हो जाता है। डॉ० जेकिल और मिस्टर

हाईड की औपन्यासिक कथा इसका उदाहरण है। इस कहानी में एक व्यक्ति दुष्ट था और दूसरा साधु। यह रूपांतरण पेया (मदिरा) द्वारा निष्पादित होता था। वास्तविक बहु-व्यक्तित्व वालों में यह रूपांतरण किसी दबाव या संवेगात्मक आघात द्वारा होता है और इसकी उत्पत्ति का कारण अभिप्रेरकों में गंभीर (तीव्र) द्वंद्व है। यद्यपि बहु चर्चित विभाजित या बहु-व्यक्तित्व बहुत कम होते हैं। निपुण मनः-चिकित्सकों द्वारा बहुत कम ऐसे व्यक्तित्वों का अध्ययन हुआ है। थिगबेन और क्लेक्ली (१९५७) ने अपनी आकर्षक पुस्तक ( The Three Faces of Eve ) में इसका एक नवीन उदाहरण दिया है।

"ईव ह्वाइट नामक एक २५ वर्षीया स्त्री एक मनश्चिकित्सक के पास आई और उसने अपना कष्ट व्यक्त किया कि उसके सिर में भयानक और अंधा करने वाला दर्द होता है। प्रायः उस दर्द में उसे चारों ओर अंधकार ही दृष्टिगोचर होता है। उसके पूर्व-इतिहास के द्वारा चिकित्सक ने जाना कि उसके पति से उसकी अनबन थी और उनका संबंध-विच्छेद हो गया था। उसके एक चारवर्षीया पुत्री थी, जिसे आर्थिक परिस्थितियों के कारण वह अपने से करीब १०० मील दूर छोड़ने के लिए बाध्य हुई थी। लड़की को दूर छोड़ने के कारण वह बहुत दुखी थी और उसे भय था कि वह बच्ची का स्नेह भी न खो दे।

पहले वह मनस्ताप से ग्रसित परिवर्तित रोग (कनवर्शन) से पीड़ित जान पड़ी। एक दिन डाक्टर को बिना हस्ताक्षर का एक पत्र मिला। उस पत्र का एक अंश बिलकुल भिन्न लिखावट में था। इसके बाद जब डाक्टर ईव से मिला, उसने उससे पत्र के विषय में पूछा। किंतु, ईव ने अस्वीकार किया कि पत्र उसने नहीं भेजा। इस बातचीत के दौरान वह उत्तेजित और अशांत भावदशा में थी, जबकि इससे पूर्व वह काफी शांत रहती थी। तब, सहसा उसके मुख पर एक विचित्र भाव प्रकट हुआ। उसने अपने दोनों हाथ थोड़ी देर के लिए अपने सिर पर रखे और फिर हटा लिए। उस क्षण उसका संपूर्ण आचरण बदल गया। उसने अपने सिर को घुमाया, मुसकराई और बोली, 'देखो वहाँ, डाक !' और बड़ी अदा से एक टांग को दूसरी टांग पर तिरछा करके रखा और बिलकुल एक नए रूप में परिवर्तित हो गई।

यह ईव ब्लैक थी, ईव ह्वाइट नहीं। इसके बाद साक्षात्कार होने पर डाक्टर को उसमें 'दो रोगी' मिले। थोड़ी देर के लिए डाक्टर केवल ईव ब्लैक की सम्मोहक प्रविधि (Hypnotic Technique) के प्रयोग द्वारा उपस्थित कर सका। इच्छानुसार वह एक या कभी दूसरे व्यक्तित्व को उपस्थित कर सकता था, पर एक समय में एक ही व्यक्तित्व होता।

दोनों ईव, डाक्टर ने अनुभव किया, वर्षों से साथ-साथ रहती हैं। ईव ब्लैक ईव ह्वाइट के विषय में जानती थी, किंतु ईव ह्वाइट ईव ब्लैक के विषय में कुछ नहीं जानती थी। ईव ह्वाइट केवल डाक्टर की सहायता से ईव ब्लैक के विषय में जान पाई। ईव ह्वाइट शांत, नियंत्रित, सद्आचरण वाली, पर मनस्तापी लड़की थी। दूसरी ओर ईव ब्लैक दुष्ट और 'बुरी' लड़की थी—यद्यपि इतनी बुरी नहीं कि किसी गंभीर मुसीबत में पड़ जाए—और वह जब-तब ईव ह्वाइट का मजाक उड़ाती थी। ईव ब्लैक ने एक बार मनश्चिकित्सक से कहा—'जब मैं बाहर जाती हूँ और मदिरा पीती हूँ, तो 'वह' क्रोध से उत्तेजित हो जाती है। उसे आश्चर्य होता है कि वह इतनी रुग्ण क्यों है।' बाद के परीक्षणों में डाक्टर ने अनुभव किया कि ईव ह्वाइट निरंतर अचेतन रूप से ईव ब्लैक से संघर्षरत रहती है। सिर-दर्द के दौरे ईव ब्लैक को शक्तिशाली होने से रोकने के उसके प्रयत्नों की अभिव्यक्ति थी।

मनश्चिकित्सा कई माह तक चलती रही और ऐसा प्रतीत होने लगा कि ईव ह्वाइट दिन-दिन स्वस्थ होती जा रही है। तब अचानक एक दिन उसका सिर-दर्द तीव्र हो गया और अंधकार अधिक गहन दृष्टिगत होने लगा। तब चिकित्सक के प्रबल परीक्षण द्वारा जेन नामक एक नवीन व्यक्तित्व प्रकट हुआ। जेन का व्यक्तित्व तीनों में सबसे उत्तम था। वह अधिक गंभीर, शांत और अन्य दोनों से योग्य थी। उनकी अपेक्षा दूसरों के प्रति और अपने प्रति भी उसका अधिक स्वस्थ दृष्टिकोण था।

कुछ समय तक तीनों व्यक्तियों को समय-समय पर देखा गया और चिकित्सक अपनी इच्छानुसार इनमें से किसी को भी उपस्थित कर सकता था। जेन का व्यक्तित्व शक्तिशाली होने लगा, किंतु चिकित्सक दोनों ईव को बुलाता था—उसके पूर्व-इतिहास को जानने के लिए और उसे समायोजन में सहायता करने के लिए। स्पष्ट हुआ कि उसके बचपन की अनेक परिस्थितियाँ उसके बहु-व्यक्तित्व से संबंधित थीं। एक घटना थी, उसकी युग्मज बहनों का जन्म, जब उसकी अवस्था लगभग ६ वर्ष की थी। इसका उसने तीव्र विरोध किया था। उन बहनों के जन्म के चार माह बाद उसकी दादी की मृत्यु हो गई और उसकी माता ने दादी को 'अंतिम प्रणाम' के लिए उसे 'कॉफिन' तक जाने के लिए बाध्य किया। यह एक दुखद अनुभव ऐसा जान पड़ता है, जिसने उसके व्यक्तित्व को विभाजित किया।

कहानी का शेष भाग, जैसा कि 'The Three Faces of Eve' में व्यक्त है, स्पष्ट करता है कि जेन संतोषजनक समायोजन की व्यवस्था करने

में सफल हुई। ईव ह्वाइट के रूप में उसने अपने पति से संबंध-विच्छेद कर लिया। तब जेन के रूप में उसने किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम किया और वह व्यक्ति उसकी रुग्णावस्था में भी बहुत सहायक सिद्ध हुआ तथा बाद में उसने उससे विवाह कर लिया। दोनों एक घर बसा, अपनी लड़की के साथ रहकर सामान्य जीवन व्यतीत करने लगे।''

यद्यपि चिकित्सक का विवरण यहाँ समाप्त होता है, किंतु कहानी का अंत यहाँ नहीं होता। जेन का व्यक्तित्व सुसंकलित नहीं रहा। ऐसा प्रतीत हुआ कि वह और उपचार स्वीकार नहीं करेगी। दूसरे विवाह के दबाव से मनोवैज्ञानिक शब्दावली में वह 'टूट गई' और उसने 'अपना सर्वनाश' कर लिया। इस बार, यद्यपि ईव ब्लैक और ईव ह्वाइट को विभाजित करने वाले मूल द्वंद्व को वह समाप्त कर सकी और सुसमायोजित जीवन को सुस्थित कर सकी—यह उसकी आत्मकथा 'The Final Face of Eve (लंकास्टर, १९५८) के आधार पर है।

मनोविक्षिप्तकारी प्रतिक्रियाएँ (Psychotic Reactions) :

बहुत समय तक यही सोचा जाता रहा कि मनस्ताप और मनोविक्षिप्ति दो बिलकुल भिन्न प्रकार के मनोविकार हैं। एक सिद्धांत के रूप में यह प्रसिद्ध था कि 'जो एक बार मनस्तापी होगा, वह कभी मनोविक्षिप्त - नहीं होगा।' इससे यह अभिप्राय था कि ये दोनों विकार इतने भिन्न हैं कि एक ही व्यक्ति में दोनों नहीं हो सकते। आज हम इस विषय में निश्चित नहीं हैं। निश्चय ही मनश्चिकित्सकों के पास आने वाले विविध प्रकार के रोगियों का वर्गीकरण करना कठिन हो जाता है और दोनों के मिले-जुले लक्षण भी एक साथ उनमें प्रकट होते हैं। अतः, अभी हम अनिर्धारित रूप में ही इस प्रश्न पर विचार करेंगे।

सिद्धांत-रूप में हम कुछ अंतर निर्धारित कर सकते हैं। मनस्तापी व्यक्ति के लक्षण हैं, चिंताग्रस्त रहना या दुश्चिंता के विरुद्ध रक्षात्मक क्रियाओं में सतत् रत रहना। किंतु, विक्षिप्त व्यक्ति वास्तविकता से पर्याप्त पृथक् और असंबद्ध रहता है। वह अपनी चतुर्दिक वस्तुओं से भी दूरी अनुभव करता है और प्रत्युत्तर देने में असमर्थ रहता है या इतना उत्तेजित अथवा निराश रहता है कि उसकी प्रतिक्रियाएँ परि-स्थितियों के बिलकुल अनुपयुक्त जान पड़ती हैं। अनेक स्थितियों में उसकी विचार-प्रक्रिया भ्रांतियों (Delusions) और विभ्रमों (Hallucinations) से बहुत अधिक विकृत हो जाती है। किसी भी स्थिति में, वह स्वनिर्मित जगत में रहता है न कि अपने चतुर्दिक फैले वास्तविक जगत में। इसीलिए विक्षिप्तता मनस्ताप से अधिक भयंकर है और विक्षिप्त व्यक्ति को चिकित्सालय में रखने एवं सुरक्षात्मक उपचार की अधिक आवश्यकता होती है। हमारे मानसिक चिकित्सालयों में रहने वाले अधिकांश रोगी विक्षिप्त होते हैं, मनस्तापी नहीं।

विक्षिप्ति की प्रतिक्रियाएँ दो प्रकार की होती हैं—क्रियागत और आंगिक। **क्रियागत विक्षिप्ति** का मूल कारण मनोवैज्ञानिक होता है, यद्यपि क्रियागत विक्षिप्ति की आनुवंशिक दत्त-सामग्री इस विषय में संदेहजनक है। आंगिक या आरगेनिक विक्षिप्ति के कारण रोग के कीटाणु होते हैं—जैसे सिफलिस-कीटाणु वृद्धावस्था में होने वाले अपकर्षकारी परिवर्तन ( Degenerative Changes ) अति-पायिता (Alcoholism) इत्यादि। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से क्रियागत विक्षिप्ति से हमारा अधिक संबंध है। इसे तीन मुख्य प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है—भावात्मक प्रतिक्रियाएँ (Affective Reactions), संविभ्रमी प्रतिक्रियाएँ (Paranoid Reactions) और अंतराबंधी प्रतिक्रियाएँ (Schizophrenic Reactions)।

भावात्मक प्रतिक्रियाएँ (Affective Reactions) :

विक्षिप्ति के एक प्रकार का प्रमुख लक्षण है, अतिरूप में भावदशा (Extremes of Mood)। अतः, यह भावात्मक विक्षिप्ति कहलाती है, जिसका अर्थ है भावदशा या भाव में विकार, या कभी-कभी इसे चक्र विक्षिप्ति या उन्माद-विषाद विक्षिप्ति (Manic-depressive Psychosis) भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, स्पष्ट है कि यह भावदशा उन्मादपूर्ण या विषादग्रस्त अथवा दोनों का मिश्रण भी हो सकती है। विक्षिप्त व्यक्ति अनावश्यक रूप में उत्तेजित और क्रियाशील होता है। वह गा सकता है, नाच सकता है, दौड़ सकता है, बहुत बात कर सकता है और प्रायः सामान्य व्यक्ति से अधिक ऊर्जा उसमें प्रकट होती है। वह (सनक) मनोग्रस्तियों (Obsessions) और भ्रांतियों (Delusions) का अनुभव करता है। वह बहुधा क्रोधी और झगड़ालू हो उठता है, कुर्सियाँ तोड़ने लगता है, लोगों को मारने लगता है, गालियों का व्यवहार करता है और प्रायः अपने जीवन को और अपनी संपत्ति को संकट में डाल देता है। अथवा वह अत्यधिक सहायक बनने की चेष्टा में भयंकर विपद बन जाता है। निम्नलिखित उदाहरण (कैमरान और मैगारेट, १९५१, पृष्ठ ३२२ से उद्धृत ) उन्मादविक्षिप्त व्यक्ति के मुख्य लक्षणों को स्पष्ट करता है।

> "३५ वर्षीय एक जीव-रसायनज्ञ, एक मनश्चिकित्सक के पास अपनी भयभीत पत्नी द्वारा लाया गया। रोगी ने अपने चिकित्सक से कहा—मुझे मालूम हुआ कि मैं बहा जा रहा था, मैंने बंधनों को तोड़ डाला, अचानक मैंने अपने को कार्य करते पाया और मैं कार्य तार-यंत्र द्वारा कर रहा था। मैं पूर्णतः थक गया था और मैंने विश्राम करने का निश्चय किया, किंतु कुछ समय व्यतीय होने से पूर्व ही मैंने तार (टेलीग्राम) देने शुरू कर दिए। मैं ऊँचे गियर पर चढ़ गया और सीटी बजानी शुरू की और मैंने यहाँ आने का और देखने का निश्चय किया कि मेरे व्यक्तित्व में वास्तव में परिवर्तन हो रहे थे—'

जब उसकी पत्नी चली गई, तो रोगी ने समझाना शुरू किया कि 'ऊँचे गियर' से उसका क्या तात्पर्य था। वह हाल में कूदने लगा, जमीन पर अपनी दवाएँ फेंक दीं, एक खिड़की के ऊपर चढ़ गया और नीचे उतरने से इन्कार करने लगा। वह एक कमरे में अकेला रखा गया, जहाँ वह बँधा हुआ नहीं था। उसने तत्काल पलंग को खोला, दीवारों को कुरेदा, फिर चिल्लाने और गाने लगा। उसने पूरे हॉल में क्षण भर में उत्पात मचा दिया और अपने कमरे में जाने से पहले एक प्रकार का हुला-हुला नृत्य करने लगा। वह रात भर चिल्लाता रहा—

दूसरे दिन सबेरे, रात भर जगने पर भी, रोगी पहले से भी अधिक शक्तिशाली और शोर मचाने वाला हो गया था। उसने ऊपर जलने वाली बत्ती को जूते फेंक-फेंक कर तोड़ दिया और खिड़की को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। उसने अस्पताल के अनेक कपड़े फाड़ दिए, उनका एक लंगोट बना कर अपने तन पर लपेट लिया और अपने को टारजन घोषित करके उसे प्रमाणित करने के लिए जंगल की भयंकर आवाजें करने लगा। 'मैंने शेर का खून चखा है।" वह चिल्ला कर बोला, "सफलता मेरे साथ है, अपने उच्चाधिकारी के स्थान के लिए मैं ही उपयुक्त हूँ। मैंने मारा है और इस बार मैं चलता रहूँगा।" वह नर्सों से रसिकतापूर्ण बातें करता, उसके साथ चपलता करने के लिए उन्हें डाँटता और उच्च स्वर में घोषणा करता—"इस समय मैं अविवाहित हूँ, किंतु मेरा शरीर बिकाऊ नहीं है, किसी कीमत पर भी नहीं।" उसकी बातों से अनुमान लगा सकते हैं कि विश्राम करने और दायित्वहीन होने के स्थान पर रोगी वास्तव में नौकरी, प्रतियोगिता, काम-द्वंद्वों एवं अपने अस्पताल में रहने पर बहुत अधिक अशांत था। उसके व्यक्तिगत इतिहास ने इस अनुमान को सत्य प्रमाणित किया और निर्देश किया, जैसी कि आशा की जा सकती है, कि भावात्मक संबंधों एवं वैयक्तिक प्रतिष्ठा ने निरंतर समस्याओं से उसके संपूर्ण जीवन को प्रभावित किया था।"

भावात्मक उन्मादग्रस्त व्यक्ति से भिन्न विषादग्रस्त विक्षिप्त व्यक्ति बहुत ही दुखी, उदास, असमर्थ, अपराधी और अपने को बेकार समझता है। कुछ विषादग्रस्त रोगी बहुत समय तक रोते रहते हैं, कुछ उन भयंकर पापों की चर्चा करते रहते हैं, जिन्हें वे कल्पना में करते हैं और कुछ इतने अधिक विषादग्रस्त हो जाते हैं कि वे न आहार ग्रहण करते, न जल, उन्हें ट्यूब द्वारा जबरदस्ती खिलाना पड़ता है। वे वस्त्र पहनने से इन्कार करते हैं, उन्हें अपनी शारीरिक स्वच्छता की भी चिंता नहीं रहती। अति विषादग्रस्त रोगी प्रायः आत्महत्या की व्यवस्था में पहुँच जाता है और उसका

निरंतर ध्यान रखना पड़ता है कि वह आत्महत्या न कर ले या किसी अन्य प्रकार से अपने को हानि न पहुँचाए।

कभी-कभी उन्माद-विषादग्रस्त विक्षिप्त व्यक्ति चक्रीय हो जाता है। रोगी कुछ समय तक उन्माद में रहता है, फिर विषाद में डूब जाता है। वह चक्र तीव्र गति से भी दोहरा सकता है या एक माह के उपरांत भी। एक बार से अधिक भी इसकी पुनरावृत्ति हो सकती है। दूसरी ओर, उन्माद की अवस्था कभी विषाद में रूपांतरित नहीं होती और न विषादावस्था ही उन्मादावस्था में रूपांतरित होती है। भावात्मक विकार के प्राय: प्रत्येक प्रकार का उपचार हो सकता है।

### संविभ्रमी प्रतिक्रियाएँ ( Paranoid Reactions ) :

संविभ्रम एक मनोविक्षिप्ति (Psychosis) है, जिसके मुख्य लक्षण हैं, भ्रांतियाँ और विभ्रम। व्यक्ति के विभ्रम वैकल्पित आवाजें, संगीत एवं अन्य दृश्य तथा ध्वनियाँ हैं, जिनका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं होता। यदि ऐसे रोगी को आप ध्यान से देखें, तो आप अनेक बार उसे ऐसे व्यक्ति से बातचीत करते पाएँगे, जिसे आप नहीं देख सकते। वह कहेगा कि वह लोगों को देख रहा है, उनकी बातें सुन रहा है और आप जानते हैं कि वहाँ कुछ नहीं है। उसकी भ्रांतियाँ वैभव अथवा कष्ट से संबंधित विचार होती हैं। वह कह सकता है कि वह नेपोलियन या जार्ज वाशिंगटन है और उस कथन को सत्य प्रमाणित करने के लिए एक लंबी कहानी भी कहेगा। यह विभ्रम भी उसे हो सकता है कि कोई उसे प्रताड़ित कर रहा है, या किसी ने ऐसा यंत्र बनाया है, जो धीरे-धीरे उसका नाश एक प्रकार की तरंग से कर रहा है अथवा नेपोलियन या इंगलैंड के शासक के रूप में उसे उसके अधिकारों से वंचित करने के लिए कोई भयंकर षड्यंत्र किया जा रहा है।

संविभ्रमी प्रतिक्रियाओं में समायोजन के दो बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट होते हैं। ऐसा कारक आक्रमण है। साधारणत: उसकी अभिवृत्ति, क्रियाएँ और विचार सब आक्रमणपूर्ण होते हैं और हम अनुमान करें कि वह सामान्य रूप से समायोजन में इसलिए असफल रहा; क्योंकि वह अपनी तीव्र विरोधी वृत्तियों को सही और सहज ढंग से जीवन में अभिव्यक्ति नहीं दे सका। दूसरा कारक है—प्रक्षेपण। उसकी भ्रांतियाँ और विभ्रम दूसरे पर आक्रमण और काम-भावना का प्रक्षेपण करते हैं, इसीलिए उसका विश्वास है कि लोग उसके विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे हैं या उसे हानि पहुँचाने की योजना तैयार कर रहे हैं। संविभ्रमी का आक्रमण इतना तीव्र और अपने प्रक्षेपण पर उसका विश्वास इतना दृढ़ रहता है कि वह प्राय: भयानक हो उठता है। यदि उसकी ठीक तरह से देखभाल न की जाए, तो वह दूसरों को हानि पहुँचा सकता है। निम्नलिखित उदाहरण (देखिए कौलमैन, १९५०, पृष्ठ २७१) संविभ्रमी व्यवहार के विकास को स्पष्ट करता है :

''एक ३१ वर्षीया आकर्षक नर्स १९४२ में आरमी नर्स कॉर्प्स (Army Nurse Corps) में सेकेंड लेफ्टिनेंट नियुक्त की गई। प्रारंभ से ही वह अपनी सहयोगिनी नर्सों तथा अपने से नीचे कार्य करनेवाली नर्सों से बना कर रखने में असमर्थ रही। सामाजिक कठिनाइयों के कारण वह प्रायः एक स्थान से दूसरे पर स्थानांतरित की जाती रही। हर स्थान पर वह अपने कार्य में अति उत्साही रहती थी, सूक्ष्मतम नियमों का भी वह पालन करती और जो कार्य उसे सौंपा जाता, बहुत गंभीर दायित्व के साथ उसे पूरा करती।

''अपने आखिरी दत्तकार्य (Assignment) में उसे कुछ अतिरिक्त भार भी सौंपा गया और वह एक चिकित्सालय में मुख्य नर्स बना दी गई। इस दायित्व को ग्रहण करने के कुछ दिनों बाद उसने अपने उच्च अधिकारियों से शिकायत की कि उसकी सहकर्मी नर्सें उसके विरुद्ध झूठ बोलती हैं और वहाँ के लोग उसके विरुद्ध षड्यंत्र की योजना बना रहे हैं तथा उसका कार्य-भारी अधिकारी (आफिसर इंचार्ज) उसको सहयोग नहीं देता है। दुःख अनुभव करते हुए वह अधिक-से-अधिक एकाकी रहने लगी। खिचे-खिचे और निराश भाव से कार्य करती, शोर के कारण न सो सोकने की शिकायत करती और बिना किसी विशेष कारण के प्रायः रोने लगती। अनेक बार उसने पूछा कि उसके विरुद्ध होने वाले षड्यंत्र का पता अफसरों का बोर्ड लगा रहा है क्या? अंत में वह एक मनश्चिकित्सक की देखरेख में रखी गई।

''जब वह चिकित्सालय में रखी गई, वह वास्तविकता को अपेक्षाकृत अधिक समझने लगी, किंतु उसके साथी-रोगियों ने शीघ्र ही अनुभव किया कि उन्हें उसके साथ असाधारण रूप से सावधान रहने की आवश्यकता है। वे कुछ भी कहते, उसका घुमा-फिरा कर वह अनभिप्रेत अर्थ निकाल लेती। अंत में उसने सेना में प्राप्त कटु व्यवहार की शिकायत की और बलपूर्वक कहा कि उसे मनश्चिकित्सक के निरीक्षण में रखने की कोई आवश्यकता न थी। वह दूसरों की अति आलोचना करती और साथ ही अपनी साधारण-सी आलोचना सुनने पर भयंकर रूप से क्रोधित हो उठती। उसने अपने आस-पास रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति से शत्रुता कर ली। उसके कथन का यह विशेष रूप रहता—''ये नर्सें मुझसे घृणा करती हैं; क्योंकि मैं अपने कार्य में इतनी निपुण हूँ। इसीलिए ये मेरा विरोध करती हैं—और अन्य नियुक्त व्यक्ति मेरी आज्ञा का पालन नहीं करना चाहते। इसीलिए वे मेरे विरुद्ध झूठ बोलते हैं—यह प्रशंसनीय नहीं है, किंतु तब भी ये सब वास्तव में मिलकर मेरे विरुद्ध एक प्रकार के षड्यंत्र की योजना बना रहे हैं।''

अंतराबंध-प्रतिक्रियाएँ ( Schizophrenic Reactions ) :

सिजोफ्रेनि (Schizophrenia) या अंतराबंध का शाब्दिक अर्थ है 'मन का विखंडन' और अंतराबंध रोगी का यह सामान्य लक्षण है। इसका कुछ उपयुक्त नाम संभवतः 'वास्तविकता से विखंडन' है; क्योंकि व्यक्ति बाह्य जगत से दूर स्वनिर्मित जगत में अधिकांश समय डूबा रहता है। यह मनोविक्षिप्ति पहले, 'मनोभ्रंशता' या डिमेंशिया प्रीकॉंस ( Dementia-praecox) नाम से जानी जाती थी, जिसका अर्थ है 'युवावस्था का उन्माद' ('Youthful insanity'); क्योंकि यह जीवन के प्रारंभिक काल में विकसित होती है। यद्यपि मनुष्यों को यह रोग किसी भी आयु में हो सकता है, किंतु मानसिक चिकित्सालय में भरती होने वाले इस रोग के अधिकांश रोगियों की आयु १५ से २० वर्ष है। निम्नलिखित उदाहरण ( सेफर और शाबेन, १९५६, पृष्ठ १९५-१९६) उद्धृत है—

"अंतराबंध के कुछ प्रारंभिक महत्त्वपूर्ण लक्षण एंजेला, बी० नामक लड़की के उदाहरण में देखे जा सकते है। १६ वर्षीया इस इतालवी लड़की ने अपने माता-पिता एवं परिवार के एक शुभचिंतक समाजसेवी को, घर से बाहर न निकलने की निरंतर अस्वीकृति द्वारा चिंतित कर दिया। जब मनश्चिकित्सक से इस विषय में चर्चा की गई, तब एंजेला को घर से बाहर कदम रखे पाँच माह हो चुके थे। बाहर घूमने के साधारण प्रस्तावों को वह दृढ़ता से अस्वीकार कर देती और चलचित्र आदि के प्रस्तावों पर भी वह ध्यान न देती। घर पर वह अधिकांश समय में कुछ भी न करती और अपने भाग के गृहकार्य को न करने के लिए दृढ़ता से इन्कार कर देती। एक बार जब बाहर चलने को प्रेरित करने की चेष्टा में उसे एक नई और आकर्षक ड्रेस तथा जूते लाकर दिए गए, तो उसने इन वस्तुओं को भी नष्ट कर दिया। जूतों को चक्कू से काट दिया। समाजसेवी ने एक मनश्चि-कित्सक से एंजेला को देखने व परीक्षण करने के लिए कहा; क्योंकि उसे मानसिक अस्वस्थता का कुछ संदेह होने लगा था। मनश्चिकित्सक एंजेला के घर के रसोईघर में उससे मिला। जब मनश्चिकित्सक ने घर में प्रवेश किया, तो एंजेला स्टोव के पीछे खड़ी हो गई और वहाँ से हटने या वहीं बैठने के लिए भी उसने अस्वीकार किया। उसने बहुत गंदे वस्त्र, फटा-पुराना स्वेटर, बिना मोजे के बहुत फटे जूते पहन रखे थे। उसके पास अच्छे कपड़े थे, पर वह न तो उन्हें पहनना चाहती थी और न जो मैले कपड़े पहन रखे थे, उन्हें धोकर साफ करना चाहती थी। वह कुछ भी बोलना नहीं चाहती थी। बाद में जब मनश्चिकित्सक की उपस्थिति से वह सुपरिचित हो गई, तो वह उससे सर्वसामान्य चर्चाएँ स्वच्छंदता से करने लगी, किंतु किसी व्यक्तिगत प्रश्न का उत्तर देने से वह इन्कार कर देती। ऐसे प्रश्नों के उत्तर

या तो मौन द्वारा देती अथवा कुछ निश्चित उत्तर होते "मैं ठीक हूँ", "यह सब ठीक है", ये उत्तर प्रायः प्रश्नों से असंबद्ध होते। मानसिक परीक्षण के प्रयत्न का वह विरोध करती और बहुधा कहती "मैं उससे चिंतित नहीं होना चाहती।" फिर भी इन समालापों में बुद्धि-परीक्षण के अनेक प्रश्न अनौपचारिक रूप में किए गए थे। एंजेला के उत्तर सामान्य बुद्धि प्रदर्शित करते और मानसिक दुर्बलता का कोई चिह्न परिलक्षित न करते। एंजेला के मुख पर समालाप के समय एक मूर्खतापूर्ण भोली मुसकान फैल जाती और सबके आकर्षण का केंद्र बनने के कारण वह प्रसन्न होती। एकांतप्रियता, निषेधात्मक प्रवृत्ति, मैले वस्त्र पहनना, कार्य करने में अरुचि, बनावटी प्रसन्नता आदि लक्षणों ने अंतराबंध की प्रारंभिक अवस्था प्रकट की और लड़की को मनश्चिकित्सालय में परीक्षण एवं उपचार के लिए ले जाया गया। मनश्चिकित्सक के साथ बातचीत के समय और एक अन्य लड़की के घर में एंजेला को रखने पर कुछ समय के लिए उसमें प्रसन्नता प्रकट हुई। कुछ माह उपरांत एंजेला पुनः अपने प्रत्यावर्त्ती व्यवहार की स्थिति में आ गई और उसकी अवस्था इतनी बिगड़ गई कि उसे मानसिक चिकित्सालय में भरती करना पड़ा।"

अंतराबंध के अनेक प्रकार सामान्य समायोजन की असफलता के विविध रूप और प्रकार हैं। एक है **सभ्रांति अंतराबंध,** विशुद्ध संभ्रांति के सदृश इस रोगी को भी सुखप्रद वैभव और उत्पीड़न की भ्रांतियाँ होती हैं। अधिकतर ये भ्रांतियाँ उत्पीड़न की होती हैं। विशुद्ध संभ्रांति से भिन्न इसकी भ्रांति अव्यवस्थित प्रकार की होती हैं—ऐसी भ्रांति जो न बहुत सुगठित होती हैं और न युक्तियुक्त। साधारण कारण से वह एक भ्रांति से दूसरी भ्रांति पर आ जाता है और उसकी अव्यवस्थित अभिवृत्ति को प्रकट करता है। ऐसा एक उदाहरण (केमेरान और मैगारेट, १९५१, पृष्ठ ३९८-३९९ से उद्धृत) यहाँ दिया जा रहा है—

"एक अंतराबंधी युवा व्यक्ति को विश्वास था कि वह एक दिन अवश्य संयुक्त राज्य अमेरिका का सम्राट् बनेगा। "मैं विश्व के लिए बहुत कुछ कर सकता हूँ" वह कहता है "संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति होते हैं, क्या यहाँ कभी सम्राट् भी होगा ? मैं बाजी लगाऊँगा, आप सोचते हैं कि मुझे यह सब नहीं पूछना चाहिए। विश्व के समाचारों से अवगत रहने के लिए मुझे प्रभातकालीन समाचारपत्रों की आवश्यकता है—यदि संयुक्त राज्य अमेरिका के लोग चाहें, तो मैं प्रसन्नता से उन पर राज्य कर सकता हूँ, पर यह कहने के लिए मुझसे मिलने कोई नहीं आता। मैं प्रसन्नता से उनका नेतृत्व करूँगा।" कुछ दिन बाद वह सार्वजनिक घोषणाओं के सुनने की चर्चा करने लगा, जिनमें उसके राज्याभिषेक की सूचना रहती। "यह संसार के सब देशों

में सुना गया है—सारे विश्व में अव्यवस्था फैल रही है। सहस्रों व्यक्ति मारे जाएँगे। मैं ईश्वर या शैतान नहीं हूँ, किंतु मैं अलौकिक प्राणी हूँ।" मिस्र के अतिरिक्त सब राष्ट्र उसके अधिकार में आ जाएँगे और अंत में मिस्र भी दहेज के रूप उसके अधिकार में आएगा।" इन भ्रांतियुक्त विश्वासों के साथ-साथ रोगी का विश्वास था कि उसे मार डालने के प्रयत्न भी बार-बार हो रहे हैं, इसलिए वह डैमोक्लिज की भाँति निरंतर महानता और निरंतर भय की स्थिति में रहता था।"

अंतराबंध का दूसरा प्रकार है, सहज अंतराबंध (Simple Schizophrenia)। संभवतः यह उसका विशुद्धतम् रूप है। इससे ग्रस्त व्यक्ति को प्रकट रूप मे विश्व में कोई रुचि नहीं होती। प्रायः सभी स्थितियों में वह उदासीन रहता है और प्रायः सभी सामाजिक संबंधों से अपने को दूर रखता है। वह केवल अपने कमरे में अपने को सीमित कर लेता है और संसार में समायोजित होने का बिल्कुल प्रयत्न नहीं करता। वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर वर्षों तक भिखमंगे की तरह घूम सकता है अथवा घर या नगर का आश्रित होकर पड़ा रह सकता है अथवा किसी सामाजिक संकट में पड़ जाएगा और जेल में या अस्पताल में डाल दिया जाएगा।

संभवतः अंतराबंध का अतिरूप कैटेटॉनिक अंतराबंध (Catatonic Schizophrenia) है। अन्य प्रकारों के समान यह बहुप्रचलित नहीं है, किंतु जब यह होता है, तो एक नाटकीय चित्र प्रस्तुत करता है। कैटेटॉनिक व्यक्ति अति नकारात्मक व्यवहार का होता है और प्रायः वह उस कार्य का विपरीत कार्य ही करेगा, जो उसको करने के लिए कहा जाए। वह अपने आसपास बैठे व्यक्तियों को अनदेखा, अनसुना कर देता है और किसी भी स्थिति में बोलना स्वीकार नही करता। संभवतः उसके विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण बात उसका कैटेटॉनिया है, जो मांसपेशियों की जड़ता की स्थिति है। कई मिनटों तक या घंटों तक भी वह एक निश्चित विचित्र मुद्रा में बैठा रहेगा और वह बहुत समय तक उसी तरह रहेगा, जब कि एक सामान्य व्यक्ति थोड़ी देर के लिए भी उस मुद्रा में नहीं रह सकता।

अंतराबंध का अंतिम प्रकार है, हेबीफ्रेनिक (Hebephrenic)। इसमें व्यक्ति मूर्खतापूर्ण व्यवहार करता है। वह लगातार मूर्ख की तरह हँसता है, वास्तव में हर वस्तु उसे उपहासास्पद या मूर्खतापूर्ण प्रतीत होती है। विशेषतः उसकी मनोदशा का संबंध परिस्थिति से नहीं रहता। वह अपनी माता की मृत्यु की चर्चा करता है। वह मूर्ख की तरह हँसता है अथवा बिना किसी कारण के रोने लगता है और कभी-कभी रोते हुए वह कहता है, उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं है। वह नन्हें बालक की तरह बात करेगा, बालक के वाक्यों और शब्दों का व्यवहार करेगा। उसके खाने-पीने और नहाने-धोने का ढंग छोटे बच्चे के समान अव्यवस्थित होता है। हेबीफ्रेनिक

प्रतिक्रिया का सामान्य प्रतिरूप हेबीफ्रेनिक रोगी से समालाप के विवरण द्वारा अगले पृष्ठ में स्पष्ट किया गया है ( कोलमैन १९५०, पृष्ठ २४८ से उद्धृत ) ।

"एक ३२ वर्षीया रोगिणी, जिसका विवाह-विच्छेद हो चुका था, अव्यवस्थित भ्रांतियों, विभ्रमों और व्यक्तित्व के तीव्र विघटन की अवस्था में चिकित्सालय में आई । उसे मदिरापान की आदत भी थी, वह अविवेकी थी और उसके भाई के साथ उसके यौन-संबंध की संभावना थी । नीचे उसकी बातचीत का विवरण दिया जा रहा है, जो हेबिफ्रेनिक लक्षणों से युक्त उत्तर है—

डाक्टर : आज तुम कैसा अनुभव कर रही हो ?

रोगिणी : बहुत ठीक !

डाक्टर : यहाँ तुम कब आई थीं ?

रोगिणी : सन् १४१६, आपको स्मरण है न, डाक्टर (मूर्खतापूर्ण हँसी) !

डाक्टर : क्या तुम जानती हो कि तुम यहाँ क्यों हो ?

रोगिणी : हूँ,१९५१ में मैं दो पुरुषों के रूप में परिवर्तित हुई, मेरे विचार के समय राष्ट्रपति ट्रूमैन जज थे, मैं दोषी प्रमाणित हुई और मुझे फाँसी मिल गई (मूर्खतापूर्ण हँसी) ! मुझे और मेरे भाई को हमारे प्राकृत शरीर पाँच वर्ष पूर्व लौटा दिए गए । मैं पुलिस-महिला हूँ । मैं अपने कपड़ों में डिक्टाफोन छिपा कर रखती हूँ ।

डाक्टर : क्या तुम मुझे इस स्थान का नाम बता सकती हो ?

रोगिणी : मैं १६ वर्ष से मदिरापान करती रही हूँ । मैं 'गाड़ीवान' (Carter) के कार्ब के या 'लेखन-कार्य' (Quill) के बाद मानसिक विश्राम कर रही हूँ आप एक 'अंतर्गृह' ('Penwrap') जानते हैं । मैंने वार्नर ब्रदर्स स्टूडिओ से अनुबंध किया था और इगेन ने फोनोग्राफ तोड़ दिया लेकिन माइन ने प्रतिरोध किया । मैं पुलिस विभाग में ३५ वर्ष से हूँ । मैं रक्त और मांस से बनी हूँ—देखो, डाक्टर (अपने वस्त्र हटाती है) ।

डाक्टर : अब राष्ट्रपति कौन है ?

रोगिणी : ट्रूमैन । क्या आप समाचार पत्र नहीं पढ़ते ? मुझे यू० एस० पोस्टल बोर्ड से ऊपर उठने की सुविधाएँ प्राप्त हुईं ।

डाक्टर : क्या तुम विवाहिता हो ?

रोगिणी : नहीं । मैं पुरुष की ओर आकर्षित नहीं होती (मूर्खतापूर्ण हँसी) । मेरी अपने भाई के साथ मैत्री-व्यवस्था है । मैं 'एकाकी' हूँ—एक अविवाहिता ।

## ऐंद्रिय विक्षिप्ति (Organic Psychoses) :

विचारों में कोई भी तीव्र विकार विक्षिप्ति समझा जाता है । विक्षिप्ति में प्रायः भ्रांतियाँ, विभ्रम और प्रतिगामी व्यवहार होता है । ऐंद्रिय विक्षिप्ति मस्तिष्क

को प्रभावित करने वाली दशाओं से होती है। हमारा अभिप्राय तीन प्रकार की ऐसी विक्षिप्तियों के विवेचन से पूर्ण स्पष्ट हो जाता है। इनमें से दो के लक्षण इतने समान हैं ( यद्यपि दोनों के कारण भिन्न हैं ) कि हम दोनों पर एक साथ विचार करेंगे।

## जराजनित एवं मद्यसारिक विक्षिप्तियाँ (Senile and alcoholic Psychoses) :

इन दोनों के कारण भिन्न होते हुए भी लक्षण प्राय: समान हैं। वृद्ध व्यक्तियों में विक्षिप्त व्यवहार विकसित हो सकता है, जिसके लक्षण भ्रांतियाँ, स्मृति-दोष, और सामान्य दिक्काल व्यामोह होते हैं। व्यक्ति अनुभव करेगा कि वह किसी ऐसे व्यक्ति से बात कर रहा था, जो वास्तव में वहाँ नहीं था अथवा वह कल्पना करेगा कि लोग उसके सिर के छिद्रों को भर रहे हैं। जैसे-जैसे उसकी स्मृति दुर्बल होती जाती है, वह भूल जाएगा कि उसने तत्काल क्या कहा था, किंतु साथ ही वह ऐसी बातों को स्मरण रखने पर जोर देता है, जो वास्तव में कभी घटित नहीं हुईं। बहुधा जराजनित विक्षिप्ति में व्यक्ति को यह पहचानने में समय लगता है कि वह कहाँ है, वह कहाँ था या क्या हो रहा है—वह प्राय: दिक्काल व्यामोही हो जाता है। इसका निम्नलिखित उदाहरण ( कैमेरान और मैगारेट १९५१, पृष्ठ ५४७-५४८ से उद्धृत ) है—

> "एक ७३ वर्षीया वृद्धा को उसके संबंधी हॉस्पिटल में लाए; क्योंकि उन्होंने उसकी देखभाल करने और उसकी उचित सुरक्षा करने में अपने को असमर्थ पाया। उसके विवरण के अनुसार वह पिछले तीन वर्षों से अपनी 'स्मृति' को खो रही थी।
>
> सत्तर वर्ष की अवस्था तक उसके व्यवहार में किसी प्रकार की अस्वाभाविकता न था। वह अपने गृहकार्य को भली प्रकार करती, सामाजिक संबंधों का उचित निर्वाह करती और अपने को स्वच्छ तथा अच्छी तरह से रखती। प्रथम परिवर्तन उसमें परिलक्षित हुआ कि उसमें घर की वस्तुओं को गलत स्थानों पर रखने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। वह किसी वस्तु को स्टोर (भंडारगृह) में भूल आती और जब उसे खोजती, तब यह भी उसे ध्यान न आता कि उसका उसे क्या करना था। वृद्धा इन भूलों को सहज रूप में हँसकर स्वीकार करती और सोचती कि इस प्रकार भूलना वृद्धावस्था का परिणाम है और परिवार के लोग भी प्राय: 'दादी के विस्मरण' पर हँसते थे। कुछ महीनों के बाद यह स्पष्ट हो गया कि यह विस्मरण एक भयंकर समस्या बनता जा रहा है। वृद्धा वस्तुओं को खोजने में ही इतना समय व्यतीत करती कि उसका गृहकार्य ही नहीं हो पाता। वह अपने भूले हुए

सामान को खोज नहीं पाती; क्योंकि वह यह भी भूल जाती कि पैकेट में क्या सामान था या उसने किस दूकान से उसे खरीदा था—

इस बीच यह भी प्रमाण मिलने लगे कि वृद्धा के सामान्य व्यवहार में भी ह्रास हो रहा था। बहुत आग्रह के बाद वह नहाती, केश बाँधती या कपड़े बदलती। कभी वह दो या तीन वस्त्र एक ही प्रकार के एक के ऊपर एक पहन लेती, कभी वह उलटे कपड़े पहन कर प्रातःकाल जलपान के लिए आ जाती। अपने बिस्तर के नीचे वह सब प्रकार की वस्तुएँ छिपाने लगी—जैसे खाना, समाचारपत्र, रसोई के बर्तन, आभूषण, बस्त्र, शृंगार-प्रसाधन। जब उसकी पुत्रवधू या उसका पति इन वस्तुओं को वहाँ से हटाते, तब पहले वह प्रतिरोध करती और फिर रोती। धीरे-धीरे वह कालबोध में भी भूल करने लगी। उदाहरणार्थ, संध्या के ६ बजे वह कहती "प्रातःकालीन जलपान के लिए अभी बहुत जल्दी है।" सोने के थोड़ी ही देर बाद उठ जाती और कहती "सबेरा हो गया है।"........भोजन करने के थोड़ी देर बाद ही वह कहती "भोजन कब किया जाएगा" जैसे कि उसने बहुत देर से खाया न हो।

चिकित्सालय में आने के एक दिन पहले दोपहर में वह वृद्धा घर से गायब हो गई और भरसक खोज करने पर भी उसके संबंधी उसे पड़ोस में कहीं खोज नहीं पाए। उस दिन संध्या में पुलिस उसे लाई, तब वह ठंडी, गंदी और बिखरे हुए केशों की अवस्था में थी। पुलिस ने उसे ट्रैफिक के विरुद्ध सड़क पार करते हुए पकड़ा था।——वह प्रसन्न और खूब बोलते हुए घर आई। वह यह बताने में असमर्थ थी कि वह कहाँ गई थी, किस स्थिति में रही, वह अपने संबंधियों का चिंताकुल व्यवहार समझने में भी असमर्थ थी। सोने के समय बहुत कठिनाई से उसे गुसलखाने की खिड़की पर से उतारा, जिसे वह बराबर दरवाजा कहती थी। इन घटनाओं के कारण परिवार के व्यक्तियों ने विचार-विमर्श किया और निर्णय किया कि घर पर और अधिक देखभाल कर सकना संभव न होगा।"

दीर्घकाल तक मदिरापान करने से धीरे-धीरे मानसिक प्रक्रिया नष्ट हो जाती है और उसी प्रकार के लक्षण दृष्टिगत होने लगते हैं, जैसे वृद्धावस्था के। यद्यपि मदसारिक विक्षिप्ति की कुछ विशेषताएँ अपनी होती हैं, पर सामान्यतः वह जरा-जनित विक्षिप्ति के ही समान है। दोनों की एक समानता यह है कि दोनों में संभवतः मस्तिष्कतंतु नष्ट हो जाते हैं। मदसारिक में मदिरा के अतिपान से यह होता है। वृद्ध व्यक्ति में इसका कारण है, रुधिर वाहिकाओं ( Blood-vessels )

का टूटना अथवा धमनियों ( Arteries ) के सख्त हो जाने के कारण रुधिर पहुँचने में कमी होना।

**सामान्य आंशिक पक्षाघात ( General Paresis ) :**

सिफलिस को नियंत्रित करने में तरीकों के उपलब्ध होने से पहले ऐंद्रिय विक्षिप्ति बहुत प्रचलित थी। सिफलिस-कीटाणु मस्तिष्क में मस्तिष्क-तंतुओं को धीरे-धीरे नष्ट कर देते हैं और यह विक्षिप्ति होने लगती है। इससे ग्रस्त व्यक्ति उत्तरदायित्वहीन होता है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता और उसे प्रायः अति वैभव की भ्रांतियाँ होती हैं। वह सोचता है कि उसके पास दस खरब (Billion) डालर हैं—और वह इस प्रकार से धन खर्च करेगा, जैसे उसके पास वास्तव में बहुत हो। वह साधिकार कह सकता है कि उसने एम्पायर स्टेट का विशाल भवन स्वयं बनवाया और उसका विश्वास है कि वह किसी सम्राट् का पुत्र है। यह सौभाग्य की बात है कि सिफलिसग्रस्त होने पर भी बहुत कम लोग इस रोग के शिकार होते हैं और आधुनिक मेडिकल विज्ञान सिफलिस को प्रारंभिक अवस्था में भी ठीक करने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

## सारांश

१. लक्ष्यप्राप्ति में संलग्न व्यवहार में कुंठा एक बाधा है। कुंठा के तीन सामान्य प्रकारों में—पर्यावरणगत कुंठा, वैयक्तिक कुंठा और द्वंद्वात्मक कुंठा—द्वंद्वात्मक कुंठा प्रायः व्यक्ति के समायोजन की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण है।

२. द्वंद्वात्मक कुंठा का तीन प्रकारों में वर्गीकरण हो सकता है—उपागम-उपागम द्वंद्व, निवारण-निवारण द्वंद्व और उपागम-निवारण द्वंद्व। अंतिम प्रकार का निर्णय करना तीनों में कठिन है; क्योंकि उसमें एक ही लक्ष्य निषेधात्मक भी होता है और धनात्मक भी।

३. उपागम-निवारण के कुछ विशेष प्रकार हैं—उपलब्धि की इच्छा बनाम असफलता का भय, स्वतंत्रता बनाम आश्रय, कामेच्छा बनाम यौन-भय, शत्रुता बनाम सामाजिक अनुमोदन।

४. कुंठा के तात्कालिक प्रभावों के अंतर्गत कुंठा को कम करने वाली आदतों का अधिगम, कुंठाजनक परिस्थितियों और चिंताओं में व्यवहार की दृढ़ता है। अन्य प्रभाव दिवास्वप्न, स्वैरकल्पना हैं, जिनसे काल्पनिक संतोष प्राप्त किया जा सकता है, जिन व्यवहारों से कभी तृप्ति मिली थी, उनकी ओर प्रतिगमन और द्वंद्व द्वारा उद्दीप्त दुश्चिंता की वेदना से मुक्त होने के लिए मदिरा का उपयोग।

५. रक्षा-युक्तियाँ एक साधन है—व्यवहार का एक ढंग है—जिसका व्यवहार व्यक्ति अचेतन रूप में आत्मनिहित कुंठा या अहम्संपृक्त कुंठा से बचने के लिए

करता है। रक्षा-युक्तियाँ द्वंद्व के समाधान के प्रति नहीं, वरन् द्वंद्वों से उत्पन्न चिंताओं से मुक्त होने के लिए होती हैं।

६. प्रतिगमन या दमन अचेतन विस्मरण का प्रकार है, जो चिंता और अशांति उत्पन्न करने वाले द्वंद्व से मुक्त करता है। पूर्ण प्रतिगमन में व्यक्ति पूर्णतः अपने कुछ प्रेरकों को छिपा लेता है कि स्वयं उसे भी उसका ज्ञान नहीं रहता। तब अभिप्रेरणात्मक द्वंद्व अपने को पक्षाघात या अन्य रोगों के रूप में परिवर्तन-प्रतिक्रिया के रूप में अभिव्यक्त करता है।

७. रक्षा-युक्तियाँ, जिनमें अभिप्रेरणात्मक द्वंद्व के कुछ अंश दमित हो जाते हैं या छिप जाते हैं, के अंतर्गत प्रतिक्रियाजन्य वृत्ति, प्रक्षेप, विस्थापन, औचित्य स्थापन, उदात्तीकरण और प्रतिपूर्ति है।

८. यद्यपि हर व्यक्ति रक्षा-युक्तियों का कुछ सीमा तक उपयोग करता है, किंतु उन पर बहुत अधिक निर्भर करना या उनका बहुत अधिक प्रयोग करना समा-योजन में असुविधा उत्पन्न कर देता है। समायोजन में गंभीर असफलता दो प्रकार की हो सकती है—(अ) मनस्तापी और (ब) मनःविक्षिप्ति।

९. मनःस्ताप या मनस्तापी प्रतिक्रियाओं के अंतर्गत—(अ) दुश्चिंता प्रति-क्रियाएँ—जिनमें दीर्घकालीन और तीव्र चिंता प्रमुख हैं (ब) दुर्भीति-प्रतिक्रियाएँ—जिनमें तीव्र निराधार भय हैं (स) मनोग्रस्ति बाध्यकारी प्रतिक्रियाएँ—जिनमें अनैच्छिक विचार और कार्य हैं (ड) परिवर्तन प्रतिक्रियाएँ—जिनमें प्रत्यक्ष, किंतु वास्तविक नहीं, शारीरिक रोग हैं, (इ) विच्छेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ—जिनमें व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के बड़े अंश को दमित कर देता है। विच्छेदनात्मक प्रतिक्रियाओं के अंत-र्गत स्मृति-लोप और बहुरूपी व्यक्तित्व आते हैं।

१०. मनोविक्षिप्ति और विक्षिप्तकारी प्रतिक्रियाएँ मनस्तापी प्रतिक्रियाओं की अपेक्षा अधिक गंभीर मानसिक विकार हैं। वे इंद्रियजनित भी हो सकते हैं—अर्थात् किसी शारीरिक रोग से, अथवा क्रियाजनित अर्थात् किसी ज्ञात शारीरिक आधार के बिना उत्पन्न हो सकते हैं।

११. क्रियाजनित विक्षिप्तियों के प्रमुख प्रकार हैं—(अ) भावात्मक प्रतिक्रियाएँ—जिनमें उन्माद या विषादग्रस्तता की भावदशाओं के अतिरूप आते हैं, (ब) संवि-भ्रमी प्रतिक्रियाएँ—जिनमें उत्पीड़न और अति वैभव के निर्मूल भ्रांतियाँ एवं व्यवस्थित विभ्रम के लक्षण प्रकट हैं और (स) अंतराबंध प्रतिक्रियाएँ—जिनकी विशेताएँ हैं—दिक्काल-व्यामोह, अव्यवस्थित विचार, ऐकांतिकता और अव्यवस्थिति विभ्रम।

१२. इंद्रियविषयक विक्षिप्ति में जराजनित और मदसारिक विक्षिप्तियों के लक्षण समान हैं : विभ्रम, स्मृति-दोष और सामान्य दिक्काल-व्यामोह । तंत्रिका-तंत्र के सिफलिस-कीटाणुओं से उत्पन्न सामान्य आंशिक पक्षाघात के लक्षण हैं—दायित्व-हीनता, अविश्वास और अति वैभव की भ्रांतियाँ ।

## पठनार्थ सुझाव

Coleman, J. C. Abnormal Psychology and Modern Life (rev. ed.) Chicago : Scott, Foresman, 1956.

अपसामान्य मनोविज्ञान पर लोकप्रिय ग्रंथ ।

Gorlow, L., and Katkovsky, W. Readings in the Psychology of Adjustment. New York : McGraw—Hill, 1959.

मानव-समायोजन पर विविध पुस्तकों से लिए गए निबंधों और उद्धरणों कासंग्रह ।

Hall, C. S. A Primer of Freudian Psychology, Yonkers, N. Y : World, 1954.

फ्रॉयड के व्यक्तित्व-सिद्धांत पर परिचयात्मक पठनीय पुस्तक ।

Lewin. K. Dynamic Theory of Personality.—New York, McGraw—Hill, 1935, Chap. 3

द्वंद्वों के प्रकारों का सैद्धांतिक विवरण ।

Maier N R.F. Frustration—New YorK ; McGraw—Hill, 1949.

हताशा, उसके स्वरूप और परिणामों पर हुए शोध-कार्य का विवरण ।

Masserman, J. Principle of Dynamic Psychiatry—Philadelphia: Sounders, 1946.

मनश्चिकित्सा की भूमिका ।

O'Kelly, L. I., and Muckler, F. D. Introduction to Psychopathology ( 2nd. ed. ), Englewood Cliffs, N. J. : Prentice-Hall, 1955.

अपसामान्य मनोविज्ञान पर मानक ग्रंथ ।

Shaffer, L. F., and Shoben, E. J., Jr. The Psychology of Adjustment ( rev. ed. ) Boston: Houghton Mifflin, 1956.

रक्षात्मक प्रक्रियाओं का पूर्ण पठनीय एवं प्रारंभिक विवरण ।

White, R. W. The Abnormal Personality ( 2nd. ed. ) New York : Ronald, 1956.

अपसामान्य मनोविज्ञान पर बहुपठित ग्रंथ ।

अध्याय ६

# मानसिक स्वास्थ्य और मनश्चिकित्सा

यह अध्याय एवं पूर्ववर्त्ती अध्याय दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। पंचम अध्याय में मानसिक स्वास्थ्य पर आघात करने वाले द्वंद्व एवं कुंठा का तथा व्यक्तियों पर होने वाली उनकी प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण किया गया था। उसमें कुसमायोजन के **कारण** और **स्वरूप** का विवेचन किया था। इस अध्याय में कुसमायोजनों के घटित होने पर उनके उपचार की विधियों का और उनकी रोक-थाम के उपायों, साधनों एवं विधियों का विवेचन किया गया है। दुर्भाग्यवश न तो मानसिक रोगों से बचाव ही और न उपचार ही सुगम, शीघ्रता से होने वाला और निश्चित है। इससे संबंधित अधिकांश समस्याओं का अब तक समाधान नहीं हुआ। जिन विधियों का हम आज प्रयोग कर रहे हैं, उनके प्रभाव के संबंध में भी हम पूर्णतः निश्चित नहीं है। फिर भी मानसिक स्वास्थ्य इतना महत्त्वपूर्ण है कि प्रत्येक बुद्धिमान व्यक्ति को उसके संबंध में जानने का यथासंभव प्रयत्न करना चाहिए।

## मानसिक स्वास्थ्य की समस्या :

**'मानसिक स्वास्थ्य'** एक ऐसा शब्द है, जिसका प्रयोग साधारणतः कुसमायोजन का वर्णन करने के लिए होता है, जो कुसमायोजित व्यक्ति को स्वयं असमर्थ करने के लिए तथा दूसरों को बोझिल बनाने के लिए पर्याप्त गंभीर है। प्रायः इसके अन्य पर्यायवाची शब्द हैं—**मानसिक रोग**, **मानसिक विकार** और **व्यवहार** विकार। यद्यपि इन शब्दों का प्रयोग काफी चालू हो गया, फिर भी ये दुर्भाग्यपूर्ण हैं। मनोवैज्ञानिक अपसमायोजन अथवा कुसमायोजन शारीरिक बीमारियों की तरह कोई रोग या बीमारी नहीं है। वे छूत के कारण या किसी खास दुष्क्रिया के कारण नहीं होतीं और न ही वे केवल 'मानसिक' ही होती हैं। यह हमारे पिछले अध्याय के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाना चाहिए।

## मानसिक रोग की व्यापकता :

मानसिक स्वास्थ्य एक ऐसी समस्या है, जिसका संबंध प्रत्येक से है। इतने अधिक व्यक्ति मानसिक रोगी या अत्यधिक अपसमायोजित हैं, थे और होंगे कि हममें से कोई भी इसके व्यक्तिगत संपर्क से बच नहीं सकता।

अस्पताल में मानसिक विकारग्रस्तों की संख्या के अतिरिक्त विभिन्न मानसिक असंतुलन के रोगियों की संख्या केवल अनुमानित है तथा कुछ विशेष समुदायों के अध्ययन पर आधारित है। यह अनुमानित संख्या मानसिक रोगियों के संबंध में यह निर्धारित करने के लिए कि वे बहुत अधिक अपसमायोजित हैं या नहीं, प्रयोग की गई कसौटियों के अनुसार भिन्न-भिन्न पायी जाती हैं।

मानसिक रोगियों में निःसंदेह मनस्तापियों का अकेले ही एक बहुत बड़ा दल निर्मित हो गया है। सामाजिक समायोजन में अत्यधिक अक्षम रहने वाले मनस्तापियों की संख्या संभवतः कुल वयस्क जनसंख्या का लगभग ५ प्रतिशत है। अधिक रूढ़वादी दृष्टि से संख्या लें, तो भी यह एक प्रतिशत से कुछ कम है, जब कि अधिक उदार दृष्टि से अनुमान के अनुसार यह जनसंख्या का ३७ प्रतिशत तक मानी जाती है। अन्य दो या तीन प्रतिशत मद्यप हैं और इससे कुछ अधिक समस्यामूलक मद्यप की संख्या है। लगभग दस लाख व्यक्ति या एक प्रतिशत से अधिक वयस्कों को किसी भी समय मनोविक्षिप्तों की कोटि में रखा जा सकता है। यदि हम अन्य बीस लाख व्यक्तियों को और जोड़ दें, जो अपचारी हैं, जिनमें अपराध-प्रवृत्तियाँ हैं या जो औषधि-व्यसनी हैं, मानसिक रोगियों की और अति अपसमायोजित व्यक्तियों की संख्या करीब १५० लाख या जनसंख्या के लगभग दस प्रतिशत है।

ये संख्याएँ केवल दिए गए किसी एक समय के लिए हैं। कई वर्षों का समय लिया जाए, तो कुसमायोजन की घटनाएँ इससे भी अधिक हैं। पिछले कुछ वर्षों में मानसिक चिकित्सालय में अपने जीवन का कुछ अंश व्यतीत करनेवालों की संख्या लगभग १७ में से १ है या ६ प्रतिशत है। जो लोग मानसिक चिकित्सालय में भरती किए गए हैं, वे मनस्तापियों से अधिक मनोविक्षिप्त हैं। अब आधुनिक दवाओं ने इतनी नाटकीयता से जीवन-विन्यास को दीर्घ कर दिया है कि और अधिक लोग जराजनित मनोविक्षिप्ति (Senile-Psychosces) के शिकार बनने के लिए जीवित रहेंगे। इस तथ्य की दृष्टि से अब हम अनुमान करते हैं कि कभी-न-कभी ऐसा समय आएगा, जब दस में एक व्यक्ति मानसिक चिकित्सालय में भरती होगा।

मानसिक चिकित्सालयों में रोगियों की संख्या मानसिक रोगों की गंभीरता के विषय में हमें दूसरा आघात पहुँचाने वाला विचार देती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में चिकित्सालय की चारपाइयों में से करीब-करीब आधी मानसिक रोगियों से भरी हैं। अन्य शब्दों में यह कहना चाहिए कि चारपाइयों की यह संख्या स्पष्ट करती है कि मानसिक बीमारियों के रोगियों की संख्या इतनी है, जितनी अन्य सभी बीमारियों को एकत्रित करने पर होती है। मानसिक चिकित्सालयों में चारपाइयों की संख्या

लगभग ७५०,००० है। मानसिक चिकित्सालय को अनेक सुविधाएँ उनका अपना राज्य और स्थानीय सरकारें देती हैं। इसका यह अर्थ है कि हमारे द्वारा दिए गए करों का काफी बड़ा अंश मानसिक रोगियों के उपचारार्थ व्यय होता है।

मानसिक चिकित्सालय में अब जो रोगी हैं, उनमें सबसे बड़ा समूह अंतराबंधी रोगियों का है। मानसिक चिकित्सालय में भरती रोगियों में बीस प्रतिशत इसी श्रेणी में आते हैं; क्योंकि अंतराबंधियों में अपेक्षाकृत स्वास्थ्य-लाभ की गति बहुत मंद होती है और सामान्यतः उन्हें अधिक समय तक चिकित्सालयों में रहना पड़ता है। अतः, उनका प्रतिशत अन्य रोगियों की अपेक्षा अधिक रहता है, इसीलिए चिकित्सालय के रोगियों में अंतराबंधियों की संख्या काफी अधिक रहती है। चिकित्सालयों में भरती रोगियों में संख्या क्रम से द्वितीय स्थान मनोविक्षिप्त रोगियों का है। तीसरा स्थान मनस्तापी रोगियों ( Psychonecerotics ) का है, तब भी ये रोगी इतना स्वास्थ्य-लाभ कर लेते हैं कि उन्हें चिकित्सालय से मुक्त किया जा सकता है। साथ ही अधिकांश मनस्तापियों का उपचार वाह्य रोगियों की भाँति या मनश्चिकित्सकों के निजी रोगियों के रूप में होता है और उन्हें कभी चिकित्सालय में भरती नहीं किया जाता। जैसा कि पहले संकेत किया गया है, अन्य वस्तुओं के समान होने पर ये समानुपात जीवन-विन्यास के बढ़ने के साथ संभवतः परिवर्तित हो जाएँगे, जिससे कि भविष्य में जराकालीन मनःविक्षिप्ति ( Senile Psychoses ) अधिक संख्या में होगी। वास्तव में इधर कुछ वर्षों से ५० वर्षों से अधिक आयु के व्यक्तियों की संख्या मानसिक चिकित्सालयों में पर्याप्त मात्रा में बढ़ रही है; क्योंकि जनसंख्या में प्रौढ़ व्यक्ति अधिक हैं।

### पर्यावरणीय या परिवेशी कारक (Environmental Factors ):

यह बराबर स्वीकार किया जाता है कि आधुनिक जीवन का तनाव मानसिक रोगों का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। कुछ प्रेक्षक यह अनुभव करते हैं कि जीवन की जटिलताओं के बढ़ जाने के कारण अधिकांश व्यक्ति अपने द्वंद्वों या संघर्षों का समाधान नहीं कर सकते और इस तरह वे अपसमायोजित या मानसिक रोगी हो जाते हैं। यह बात प्रत्येक प्रकार के मानसिक रोगों के लिए सत्य है या नहीं—यह हम नहीं कह सकते। मनस्तापी के लिए यह सत्य हो सकता है, दूसरी ओर मानसिक चिकित्सालयों में भरती होने वाले रोगियों की संख्या इस आधार पर स्पष्ट नहीं होती। आश्चर्य की बात है कि भरती होने वाले रोगियों की संख्या में प्रायः एक शताब्दी से कोई अंतर नहीं हुआ है (गोल्ड हेमर और मार्शल, १९५३)। उदाहरण के रूप में आप मेसाचूसेट राज्य के अभिलेखों से एकत्रित की हुई चित्र ६.१ में प्रस्तुत संख्या पर विचार कीजिए।

उसमें आप देखेंगे कि रोगियों (५० वर्ष की आयु से कम विभिन्न आयु के) की संख्या सन् १९१७ से १९४० ई० तक वही है, जो १८८५ में थी। विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध दत्त-सामग्री के आधार पर भी यही बात प्रमाणित होती है। शायद कुछ मनोविक्षिप्तियों में आनुवंशिक घटकों का योग आश्चर्यजनक नहीं है। किसी भाँति भी हमारी संस्कृति के परिवर्तनों से या मानसिक रोगों के विकसित अवबोधन या ज्ञान से मनःविक्षिप्तियों के प्रेरक कारणों में गत ८० वर्षों में कोई स्पष्ट और विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

दीर्घकाल में गंभीर मानसरोग की मात्रा में कुछ परिवर्तन हुआ प्रतीत होता है।
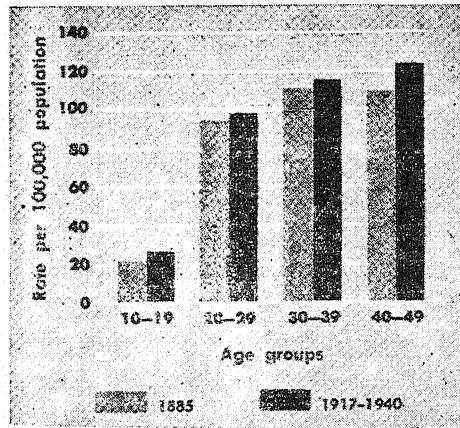
**चित्र ६·१ मैसाचूसेट्स में मानसिक चिकित्सालयों में प्रति १००,००० जनसंख्या के अनुसार रोगियों के भरती होने की १८८५ तथा १९१७–१९५० में संख्या का क्रम (गोल्ड हेमर तथा मार्शल के अनुसार, १९५३)।**

## सामाजिक वर्ग :

यदि विभिन्न सामाजिक वर्गों में हम मानस रोगों का परीक्षण करें, तो एक भिन्न चित्र हमें मिलता है। सामान्यतः इन घटनाओं या मानस रोग के प्रकार का सामाजिक वर्ग से निश्चित संबंध रहता है। येल विश्वविद्यालय के शोधकर्त्ताओं के एक दल ने इस समस्या पर दत्त-सामग्री एकत्रित की (होलिंगशेड और रैडलिच, १९५८)।

एक समय न्यूहैवेन क्षेत्र में अनुसंधानकों ने मानसोपचार के सब रोगियों का वर्गीकरण किया। मानसोपचार के रोगियों में केवल वे ही नहीं आते, जो सार्वजनिक मानसिक चिकित्सालय में हैं, बल्कि वे भी आते हैं, जो मनश्चिकित्सकों के निदानालयों में तथा निजी प्रेक्टिस करने वालों के पास जाते हैं। प्रत्येक रोगी की सामाजिक

श्रेणी का निर्धारण सामाजिक श्रेणी की मान्यताप्राप्त विशेष कसौटी द्वारा होता है। जैसे—आय स्तर, उपजीविका, शैक्षिक स्तर, गृह-वातावरण इत्यादि। इस प्रकार रोगी पाँच वर्गों में से किसी एक के अंतर्गत आ जाता है। प्रथम श्रेणी में उच्चतम सामाजिक श्रेणी आती है और पंचम श्रेणी में निम्नतम। एक और दो श्रेणी में बहुत कम ऐसे रोगी होंगे, जिनका अलग से उपचार हो सके। अतः, यह दोनों संबद्ध कर दिए गए। अतः चार समूहों की तुलना की गई है—प्रथम और द्वितीय वर्ग, तृतीय वर्ग, चतुर्थ वर्ग तथा पंचम वर्ग।

दीर्घकालीन मानसरोग उच्च वर्गों की अपेक्षा निम्न वर्गों में अधिक होता है।
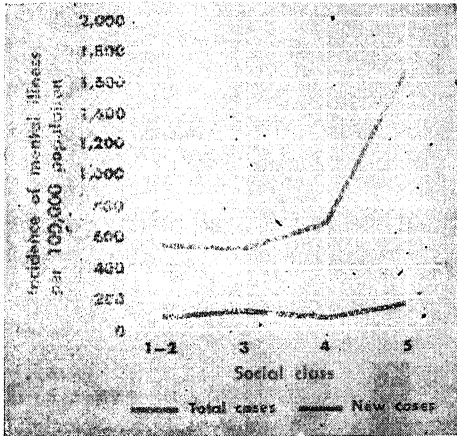
**चित्र ६.२ भिन्न सामाजिक वर्गों में मानसरोगों की सापेक्ष उपस्थिति। रोगियों की कुल संख्या (प्रत्येक वर्ग में प्रति १००,००० के अनुसार) भिन्न वर्गों में भिन्न रहती है। इस भिन्नता का मुख्य कारण निम्न वर्गों में अपेक्षाकृत दीर्घकालीन रोगों का रहना है ( हालिंगरौड और रैडलिच १९५८)।**

इस अध्ययन के कुछ परिणाम पूर्णरूपेण स्पष्ट थे। चारों वर्गों में रोगियों की कुल संख्या ( प्रत्येक वर्ग में प्रति १००,००० के अनुसार ) नितांत भिन्न थी। ( देखिए, चित्र ६·२ ) प्रथम, द्वितीय और तृतीय वर्गों की संख्या कम थी। चतुर्थ वर्ग में विशेष वृद्धि हुई और पंचम वर्ग में अत्यधिक वृद्धि हुई। दूसरी ओर नए रोगों की घटनाएँ—मानसोपचारीय निरीक्षण के अंतर्गत प्रथम बार आने वाले रोग चार श्रेणियों के लिए करीब-करीब समान थे, यद्यपि पंचम श्रेणी में निश्चित रूप से ऐसी घटनाएँ अपेक्षाकृत अधिक थीं। इस तरह श्रेणियों की विभिन्नता अधिकतर इस कारण होती है कि निम्न श्रेणियों में अपेक्षाकृत अधिक लोग दीर्घकालीन रोगों से ग्रस्त रहते हैं।

निम्न वर्गों में मानसिक रोगों की अधिकता आंशिक रूप में इसलिए है कि उच्च वर्ग को मानसोपचार की उनकी अपेक्षा अधिक सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। किंतु, फिर भी प्रमुख कारक यह न होकर विभिन्न वर्गों में फैले हुए रोगों के प्रकार हैं (देखिए चित्र ६·३)। प्रत्येक वर्ग के रोगियों में प्रथम और द्वितीय वर्गों में अनुमानतः दो-तिहाई रोगी मनस्तापियों की कोटि में आते हैं, जबकि पंचम वर्ग में दस प्रतिशत से भी कम इस कोटि में आते हैं। तृतीय और चतुर्थ वर्गों में दोनों प्रकारों का प्रतिशत समान-सा होता है। इस भाँति निम्न वर्गों का झुकाव पर्याप्त मात्रा में मनस्ताप की अपेक्षा मनोविक्षिप्ति की ओर अधिक रहता है, उच्च वर्गों में स्थिति इसके विपरीत रहती है। यह कथन वास्तव में मनश्चिकित्सा प्राप्त करने वाले रोगियों पर लागू होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि अधिक आमदनी वालों की अपेक्षा कम आमदनी वाले लोग मनश्चिकित्सा पर कम खर्च कर सकते हैं और मनस्तापी विकारों के लिए भी कम परिचर्या प्राप्त करते हैं। हम जानते हैं कि निम्न वर्गों में मनस्तापी विकारों का वास्तविक प्रतिशत इन सांख्यिकीयों द्वारा कम अनुमानित किया गया है—परंतु हमारे पास सही संख्या जानने का कोई साधन नहीं हैं; क्योंकि हम केवल उपचरित रोगियों की संख्या जानते हैं।

उच्च वर्गों में मानस रोगों के मनस्तापी और निम्न वर्गों में उनके मनोविक्षिप्ति होने की संभावना रहती है।
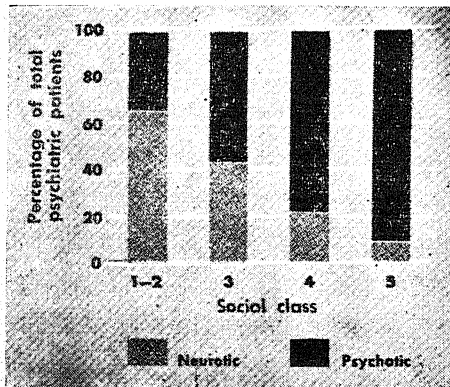
**चित्र ६·३ विभिन्न सामाजिक वर्गों में प्रचलित मानसरोगों के प्रकार। उच्च वर्गों में मनस्ताप की प्रधानता रहती है और निम्न वर्गों में मनः-विक्षिप्ति की (हॉलिंगशेड तथा रैडलिच, १९५८)।**

मनस्तापी वर्ग के अंतर्गत आनेवाले रोगियों में भी श्रेणीगत भिन्नताएँ होती हैं। उच्च श्रेणी (I+II) में मनोग्रस्ति बाध्यकारी प्रतिक्रियाएँ अधिक मात्रा में

होती हैं, जब कि शारीरिक विकारों से संबंधित प्रतिक्रियाएँ निम्न श्रेणी में अधिक होती हैं। अतः मनोकायिक दुश्चिता प्रतिक्रियाएँ परिवर्तन उन्माद प्रतिक्रियाएँ उच्च श्रेणी की अपेक्षा निम्न श्रेणियों में अधिक संख्या में होती हैं।

सामाजिक श्रेणी और मानसिक विकार के विस्तृत अध्ययन से विकसित प्रमुख तथ्य निश्चित रूप से स्पष्ट हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि मानसिक रोग और उसके प्रकार दोनों सामाजिक श्रेणी से संबंधित हैं। इन तथ्यों का अभिप्राय है—सामाजिक वर्ग-भिन्नताओं के अंतर्गत आनुवंशिक पृष्ठभूमि, अनुभवों को सीखना, दबाव और कुंठा के प्रकार तथा मानसोपचार की मात्रा एवं उसके प्रकार की उपलब्धि की विभिन्नताएँ। यह सब कारक किसी-न-किसी भाँति वर्ग और मानसिक रोग के बीच संबंध स्थापित करते हैं। अभी हम यह नहीं कह सकते कि उनकी परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया किस रूप में होती है।

## ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

आज हम मानसिक रोगों को एक स्वाभाविक क्रिया मानते हैं, जो कि आनुवंशिक और पर्यावरण-संबंधी कारणों से होते हैं। अन्य स्वाभाविक क्रियाओं की भाँति ही हम इसे समझने की चेष्टा करेंगे और वस्तुगत एवं वैज्ञानिक खोज के माध्यम से इसका उपचार करने के लिए विधियाँ विकसित करेंगे। किंतु, सदैव ऐसा ही नहीं होता। वस्तुतः मानसिक रोग-संबंधी वर्त्तमान संप्रत्ययों तक पहुँचने में हमारी गति असाधारण रूप से मंद रही है। मानसिक रोग के इतिहास में प्रारंभिक अध्याय आकर्षक होते हुए भी प्रायः अविश्वसनीय हैं (कोल्मैन, १९५६)।

## प्राचीन धारणाएँ :

प्राचीन लोगों में मानसिक विकार का कारण भूत-प्रेतों के प्रभाव को माना जाता था। लगभग पाँच लाख वर्ष पूर्व पाषाण-युग के गिरि-गुहानिवासियों एवं चीनी, मिस्री, हिब्रू और ग्रीक लोगों के लेखों से उपलब्ध प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है। आदि-मानव सब प्रकार की घटनाओं को भूत-प्रेतों का कार्य समझते थे। मानसिक रोगियों को भूत-प्रेतों के प्रभाव में मानना उनके लिए स्वाभाविक था। हिब्रू लोगों में भूतों के प्रभाव में आना ईश्वर द्वारा दिया हुआ दंड माना गया है। इस धारणा का बाद में ईसाई परंपरा में पुनः जागरण एवं विकास हुआ।

गिरि-गुहानिवासियों के लिए भूत-प्रेतों को बाहर निकालने की समस्या थी। इसके लिए उन प्रेत-शासित व्यक्तियों की खोपड़ी में प्रायः त्रिकोण यंत्र से सुराख कर दिया करते थे। बाइबिल के समय में और बाद में प्रेतों द्वारा शासित लोगों को झाड़-फूँक द्वारा प्रेत-बाधाओं से मुक्त कराना ही निर्धारित उपचार था, जिसके अंतर्गत

विभिन्न धर्म-विधियाँ आती हैं, जैसे—प्रार्थना, धार्मिक अनुष्ठान, विलक्षण-शराब, दवाएँ, मारना, भूखा रखना या शारीरिक यंत्रणाएँ देना।

वैज्ञानिक ज्ञान की प्रथम किरणें ग्रीस के स्वर्ण-युग के समय प्रस्फुटित हुईं। प्रसिद्ध ग्रीक चिकित्सक जिसे 'औषधि-विज्ञान का जनक' माना जाता है 'हिप्पोक्रेटस' ने प्रेतों के सिद्धांत का परित्याग किया और दृढ़तापूर्वक स्वीकार किया कि मानसिक रोग मस्तिष्क की क्रिया की विकृति के कारण होते हैं। उसने यह भी कहा कि आनुवंशिकता के कारण भी मानसिक रोग हो सकते हैं और सिर की चोटें भी कुछ विकृतियाँ उत्पन्न कर सकती हैं। उसके सब विचार ठीक नहीं थे—वास्तव में उसकी कुछ शरीर-क्रियात्मक धारणाएँ स्पष्टीकरण से दूर थीं, किंतु उसका स्वाभाविक कारणों में विश्वास मानसिक रोग-संबंधी हमारी आधुनिक धारणा का पूर्व-प्रत्याशित रूप है। बाद में ग्रीक और रोमन दार्शनिकों एवं काय-चिकित्सकों ने अधिकांशतः हिप्पोक्रेटस के विचारों का अनुसरण किया।

### जादूकाल :

ग्रीक-रोमन सभ्यता के पतन के साथ प्रेत-विज्ञान ( Demonology ) का पुनर्विकास धर्म-विज्ञान और समसामयिक अंधविश्वासों द्वारा कुछ परिष्कृत होकर हुआ। उपचार की स्वीकृत विधि के रूप में झाड़-फूँक का पुनरागमन हुआ। पूर्व-मध्यकाल में यह उपचार पादरियों पर छोड़ दिया गया और सभी मानसिक रोगियों के साथ बुरा व्यवहार नहीं किया जाता था। लेकिन, जैसे ही यह विचार अधिक लोगों को मान्य हुआ कि वे प्रेतों द्वारा शासित हैं, वैसे ही उनके साथ यह समझकर अधिक दुष्टतापूर्ण व्यवहार किया गया कि यह दंड व्यक्ति को नहीं दिया जा रहा है, बल्कि उसके भीतर रहनेवाले प्रेत को दिया जा रहा है।

पंद्रहवीं से सत्रहवीं शताब्दी, जिसे हम अब 'जादूकाल' कहते हैं—में मानसिक रोग से संबंधित अंधविश्वास अपनी पराकाष्ठा पर थे। इन विश्वासों से पीड़ित लोग चाहे वास्तव में बीमार थे या नहीं, पर उन्हें 'दुरात्मा' समझा गया। प्रेतों के प्रभाव में ईश्वर द्वारा दिया गया दंड समझा गया अथवा इससे भी बुरा यह समझा गया कि वह प्रेतों का साथी है। प्रेत-शासित व्यक्ति अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त करते हैं और यह माना गया कि बीमारी, आपत्ति तथा अनावृष्टि के कारण वही हैं और यहाँ तक कि वे कुछ अद्भुत घटनाएँ भी घटित कर देते हैं। जैसे—मनुष्य को पशु बना देना या पशु को मनुष्य बना देना। 'जादूगरनी' या 'मायाविनी' से यही तात्पर्य है। केवल सरल और धार्मिक लोग ही नहीं, वरन् प्रमुख कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट

पादरी तथा लोक-समाज के नेता भी जादूगरनियों में विश्वास करते थे। मार्टिन-लूथर ( १४८३-१५४६ ) ने लिखा है ( कोलमैन, १९५६ )—

> "दुष्ट व्यक्ति को ईश्वर का सबसे बड़ा दंड है उसे पिशाचों या प्रेतों को सौंप देना और वह उस व्यक्ति को ईश्वर की आज्ञा से या तो मार देता है या उसे अनेक कष्ट देता है। नदियों, जलाशयों, बीहड़ सूने जंगलों आदि में अनेक भूत-प्रेत रहते हैं, जो व्यक्तियों को यातना देने और हानि पहुँचाने के लिए तैयार रहते हैं। जब ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं, तब दार्शनिक और कायचिकित्सक उसे प्राकृतिक कहते हैं और उनका संबंध ग्रहों से जोड़ते हैं। मनुष्य भूतों द्वारा दो प्रकार से शासित होता है—शारीरिक रूप से और आत्मिक रूप से। जिसे वह शारीरिक रूप से अधिकृत करता है—जैसे पागलपन, उन्हें वह ईश्वर की आज्ञा से कष्ट देता है और उत्तेजित करता है, किंतु उनकी आत्मा पर उसका कोई अधिकार नहीं होता।"

इस प्रकार के अंधविश्वासों के कारण अन्यथा भले-चंगे और समझदार व्यक्ति भी प्रेतों को ( प्रेतशासित लोगों को ) कष्ट और यंत्रणा देते हैं और समझते हैं कि वे ईश्वरेच्छा पूर्ण करते हैं। जादूगरनियों को खूँटों से बाँध कर जलाने की अविश्वसनीय, किंतु सच्ची कहानियों को इसी आधार पर न्यायसंगत माना गया है।

प्रत्येक व्यक्ति जादू अथवा मानसिक रोग के प्रेत-वैज्ञानिक दृष्टिकोण में विश्वास नहीं करता। पादरी, कायचिकित्सक, वैज्ञानिक एवं जो इसमें विश्वास नहीं करते, वे धीरे-धीरे और इस विषय पर अधिक दृढ़ता से कहने लगे। उनके प्रभाव का आभास मिला और अट्ठारहवीं शताब्दी तक, जब जादू पर से विश्वास हटने लगा।

**पागलखाना :**

इस बीच पागलों की कैसे देखभाल की जाए, इस समस्या पर पर्याप्त ध्यान दिया गया। इनमें से कुछ को समाज में मुक्त छोड़ दिया गया और कुछ को मठों एवं जेलों में रखा गया था। धीरे-धीरे पागलों के लिए भिन्न आश्रयालयों की आवश्यकता के प्रश्न को महत्त्व दिया जाने लगा। १६ वीं शताब्दी में पहला पागलखाना बना, १८ वीं शताब्दी तक संयुक्त राष्ट्र अमेरिका एवं विदेशों में अनेक पागलखाने बन गए थे।

प्रारंभ में पागलखाने में उपचार-व्यवस्था बाहर रहने वाले पागलों की अपेक्षा विशेष अच्छी नहीं थी। रोगियों को अंधकारमयी कोठरियों में इकट्ठा बंद कर दिया जाता था, उन्हें खाने को खराब और बहुधा अपर्याप्त भोजन मिलता था, उन्हें तंग जैकट पहनायी जाती थी और उनका सर गंजा कर दिया जाता था। जो हिंसात्मक

होते थे, उन्हें लौहश्रृंखला से बाँध दिया जाता था। अनेकों को इतना पीटा जाता था कि उनके रक्त बहने लगता था। उन्हें ठंढे पानी में डाल दिया जाता था, कठघरों में बंद कर दिया जाता था और उनके लिए बहुत विलक्षण प्रबंध किए जाते थे।

इस प्रकार के उपचार बहुप्रचलित प्रेत-विश्वास के प्रभाव को और मानसिक रोगियों को समझने की कमी को स्पष्ट करते हैं। उपनिवेशकाल में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में मानसिक रोगियों के उपचार का निम्नलिखित विवरण प्रस्तुत (ड्यूट्श्च Deutsch से उद्धृत १९४६, पृष्ठ ५३ ) है।

> "मानसिक रोगियों को फाँसी दी जाती थी, जेल में बंद किया जाता था, यंत्रणाएँ दी जाती थीं और शैतान या प्रेतों के प्रतिनिधि समझकर उन्हें कष्ट दिया जाता था। अवमानव समझकर उन्हें विशेष रूप से बनी गंदी और छोटी कोठरियों और पिंजरों में बंद करके पशुओं की भाँति बाँधकर रखा जाता था और उन्हें अपराधियों की भाँति जेलों तथा सुधारगृहों ( एक प्रकार की जेल ) में डाला जाता था। उन्हें गंदी अंधेरी कोठरियों में बंद किया जाता था या अन्य पुष्ट शरीर वाले अनाथों की तरह गुलामी करने के लिए बाध्य किया जाता था। उन्हें बिल्कुल नग्न घूमने के लिए छोड़ दिया जाता था, उन्हें पागल कुत्तों, आवारों व धूर्तों की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान पर मारकर भगा दिया जाता था। यहाँ तक कि उच्च घराने के पागलों को भी बंद कोठरियों एवं तहखानों में ही रखा जाता था और न्याय का संबंध उनके व्यक्तित्व की अपेक्षा उनकी संपत्ति से ही था।"

अब मानसिक रोगियों की परिचर्या और उपचार में आधुनिक क्रांतिकारी परिवर्तनों का प्रारंभ हुआ। 'पिनेल' ( Pinel ) नामक कायचिकित्सक को पेरिस के पागलों के चिकित्सालय का अध्यक्ष बनाया गया। प्रयोगार्थ उसे प्राधिकारियों से चिकित्सालय के पागलों की लौहश्रृंखला खोलने की अनुमति प्राप्त हुई। उसने पागलों को अंधेरी कोठरियों में से बाहर निकाला और उन्हें प्रकाशयुक्त कमरों में रखा तथा उन्हें चिकित्सालय के बाहर चारों ओर घूमने की आज्ञा दी एवं दयापूर्ण उपचार के लिए नियम निर्धारित किए (देखिए, चित्र ६.४)। इसका महत्त्वपूर्ण परिणाम दृष्टिगत हुआ। कुछ ही सप्ताहों और महीनों में अनेक रोगी ठीक हो गए एवं उन्हें चिकित्सालय से मुक्त कर दिया गया। दूसरों में सुधार की गति मंद थी, किंतु चिकित्सालय में अपेक्षाकृत उपयोगी और शांत जीवन व्यतीत करने योग्य पर्याप्त सुधार हो गया। यह १७९० ई० की बात है।

अनेक क्रांतियों की भाँति पिनेल के कार्य का कहीं तो स्वागत हुआ और कहीं उस पर अविश्वास प्रकट किया गया और वह अस्वीकार किया गया था। कुछ चिकित्सालयों ने तत्काल उसका अनुकरण किया। मध्यकालीन अतिक्रूरता की जगह दयापूर्ण उपचार को महत्त्व मिला। किंतु, एक और शताब्दी तक मानसिक चिकित्सालय पिछड़े हुए रक्षा-संस्थान बने रहे, जो अपने रोगियों को बहुत कम सहायता देते थे और बहुधा उनकी दयनीय अवस्था को और बिगाड़ देते थे।

**चित्र ६·४ श्री पिनेल ला सालपेट्रिएर एसाइलम, पेरिस, के मानस-रोगियों की लौहश्रृंखलाएँ खोल रहे हैं। इस व्यवहार ने मानसिक रोगों के प्रति दयापूर्ण एवं अधिक समझने योग्य दृष्टिकोण विकसित किया (मेक्स ए० बाहर, टोनी रोबर्ट फ्लूरी का एक चित्र सेंट्रल, स्टेट हास्पिटल, इंडियानापोलिस, के एक चित्र की अनुकृति)।**

## मानसिक स्वास्थ्य आंदोलन :

लगभग १९वीं सदी तक यही स्थिति थी। उस समय हमारा आधुनिक मानसिक स्वास्थ्य आंदोलन प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन को क्लिफोर्ड बीयर्स (Clifford Beers) नामक रोगी से पर्याप्त विकास प्राप्त हुआ, जिसने अनेक वर्षों तक मानसिक चिकित्सालय में रहने पर स्वास्थ्य-लाभ किया था और 'A Mind That Found Itself' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में बीयर्स ने अपने अनुभवों को, जिनमें अधिकांश मानसिक चिकित्सालय के दुर्व्यवहार हैं—का वर्णन किया है और उसने

बताया है कि किस प्रकार उसने शुभचिंतकों के बीच स्वयं को पाया। उसने मानसिक रोगियों के साथ अच्छे व्यवहार का तथा मानसिक स्वास्थ्य की लोग अधिक जानकारी प्राप्त करें, इसका प्रचार किया। १९०८ में इसकी पुस्तक के प्रकाशन और 'सोसाइटी फार मेंटल हाइजिन' नामक संस्था की स्थापना ने इस आंदोलन की सफलता में तीव्र गति प्रदान की। यद्यपि सब मानसरोगियों को सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार प्राप्त होगा, इसकी अनेक वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। गत ५० वर्षों में मानसिक चिकित्सालयों की स्थिति बहुत सुधर गई है, तथापि अपर्याप्त सुविधाओं, अर्थाभाव एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी के कारण वे आदर्श स्थिति को प्राप्त करने से अभी बहुत दूर हैं।

हमारा संबंध आधुनिक स्वास्थ्य आंदोलन से विकसित मानसरोगों की परिचर्या तथा उनके रोकथाम के प्रयासों से है। जब तक मानसिक रोगियों को दंडनीय प्रेत माना गया था, दूर रखने योग्य अमानव और पागलखाने में छोड़ने योग्य समझा गया था, तब तक इस तरह के प्रयास अविचारणीय थे। अतः, केवल गत पचास वर्षों में मानसिक रोग की समस्या के समाधानार्थ कुछ सक्रिय प्रयत्न किया गया।

## उपचार पद्धतियाँ ( Trends in Therapy ) :

रोग की चिकित्सा में प्रयुक्त किसी भी विधि का सामान्य नाम 'उपचार' (थिरापी) है, जैसा कि हमने देखा है, मानसिक रोग तंत्रिका-तंत्र के विकारों के कारण उत्पन्न मनस्ताप (Neurosis) व्यावहारात्मक विक्षिप्ति ( Functional Psychosis) या ऐंद्रिक विक्षिप्ति (Organic Psychosis ) के रूप में हो सकता है। भिन्न प्रकार के उपचार इन भिन्न प्रकार के मानसिक रोगों के लिए होना चाहिए।

कुछ उपचारों का लक्ष्य आंतरिक शारीरिक बीमारियों का उन्मूलन करना होता है। कुछ उपचार मस्तिष्क की शल्य-चिकित्सा से संबंधित हैं, जिनमें रोगी को बिजली के आघात पहुँचा कर या औषधियों द्वारा ठीक किया जाता है, या ऐसी औषधियों का प्रयोग किया जाता है, जो उसे सामान्य स्थिति में ला सकें। इस प्रकार के सभी उपचार चिकित्सा-विशेषज्ञों के हाथ में हैं और इसलिए भेषज-चिकित्सा के अंतर्गत आते हैं।

कुछ चिकित्साशास्त्रीय विधियों (Therapeutic Method) का संबंध रोगी की संवेगात्मक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं से होता है। ये विधियाँ, साक्षात्कार समालाप, अभिनय, क्रीड़ा और रोगी के परिवेश में परिवर्तन का नियोजन करती हैं। उपचार की ये विधियाँ भेषय-चिकित्सा प्रविधियों से भिन्न मनोवैज्ञानिक हैं और मनोवैज्ञानिकों के हाथ में हैं। अतः, वे मनश्चिकित्सा ( Psychotherapy ) कहलाती हैं।

भेषज-चिकित्सा—यह मनश्चिकित्सा से कहीं अधिक तीक्ष्ण है और इसीलिए इसका प्रयोग साधारणतः तीव्र मानसिक रोगों तक सीमित कर दिया गया है और विशेष रूप से विक्षिप्ति तक। दूसरी ओर मनश्चिकित्सा का उपयोग केवल विक्षिप्तों (Psychotic) और मनस्तापियों (Neurotics) के लिए ही नहीं होता, वरन् उनलोगों के लिए भी होता है, जिनकी व्यक्तित्व-समस्याएँ कम चिंताजनक हैं, जैसे—अपचारी (Deliquents) और कुसमायोजित (Maladjusted) बच्चे तथा ऐसे लोग जिनकी वैवाहिक, धार्मिक, शैक्षिक और व्यावसायिक समस्याएँ हैं। इस तरह मनश्चिकित्सा समायोजन की अनेक समस्याओं के लिए उपयोगी है।

इस शताब्दी के प्रारंभ में मानसिक रोग के उपचार के प्रयत्न केवल चिकित्सालय में रहने योग्य गंभीर विक्षिप्ति विकारों के लिए किए गए थे। चिकित्सा की विधियाँ अधिकांशतः भेषज थीं। मानसिक रोग-संबंधी ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ मनश्चिकित्सीय प्रक्रियाओं ( Psychotherapentic Procedures ) पर अधिक विश्वास किया जाने लगा।

पहले मनश्चिकित्सा का प्रयोग गंभीर विक्षिप्त विकारों तक ही सीमित था, फिर चिकित्सालय के बाहर रहनेवाले व्यक्तियों की साधारण उन्माद-प्रतिक्रियाओं के लिए भी होने लगा। फ्रायड द्वारा प्रारंभ किए हुए मनोविश्लेषणात्मक आंदोलन का इस प्रवृत्ति के साथ घनिष्ठ संबंध है, चूँकि एक विशेष प्रकार के उपचार के रूप में मनोविश्लेषण का लक्ष्य अधिकतर साधारण रुग्ण-तंत्रिक या मनस्तापी विकृतियों को ठीक करना है।

इस पद्धति का मनश्चिकित्सा में अनेक रूपों में महत्त्व है :

(१) गंभीर और दीर्घकालिक रोगी का उपचार व्ययसाध्य होता है तथा कम अपसमायोजित व्यक्तियों की अपेक्षा उन्हें इस उपचार से लाभ कम होता है। (२) कम साधन होने के कारण मनश्चिकित्सक उनका वहीं प्रयोग करते हैं, जहाँ उन्हें अधिक लाभ कर सकें। (३) कम मनस्तापी व्यक्तियों का उपचार समाज को सबसे अधिक लाभ पहुँचाता है; क्योंकि वे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक कार्यों में सक्रिय रहते हैं। उनके समायोजन में थोड़ा-सा सुधार उनके सहयोगियों पर और प्रतिदिन के कार्यों पर उनके प्रभाव द्वारा शीघ्र प्रकट होता है। (४) साधारण विकृतियों का सफल उपचार अधिक गंभीर विकृतियों की वृद्धि को रोक देता है।

हाँ, यदि हम गंभीर मनस्तापियों या मनोविक्षिप्तों के उपचार में कुछ महत्त्वपूर्ण परिणाम प्राप्त करना चाहें, तो इस पद्धति को परिवर्तित करना होगा,

अन्यथा यही वर्त्तमान पद्धति चलती रहेगी और अधिक गंभीर विकृतियों के आपतन को यथासंभव कम करने की व्यापक व प्रचलित पद्धति और मनश्चिकित्सा में विस्तार होता रहेगा।

चिकित्सा के प्रकार ( Kinds of Therapy ) :

एक काय-चिकित्सक शारीरिक रोगों का उपचार करते हुए अनेक अन्य विकारों का भी उपचार करता है। यदि वह संबद्ध कारण का निदान कर सकता है और उसे ठीक करने के साधन उसे उपलब्ध हैं, तो वह उपचार कर सकता है। उदाहरणतः यदि वह यह जानता है कि रोगी को विशेष सूक्ष्म कीटाणुओं ( Micro-organism ) के कारण लोहित ज्वर ( Scarlet Fever ) है, तो वह रोग के कीटाणुओं को मारने के लिए दवाओं का प्रयोग कर रोग को दूर कर देगा। रोग के कारण का निदान करने की असमर्थता के कारण या उपयुक्त साधनों की कमी के कारण बहुधा वह ऐसा नहीं कर सकता। तब वह ज्वर, दर्द और व्याकुलता या बीमारी के गंभीर प्रभावों को दूर करने के लिए वह उन लक्षणों का ही उपचार करेगा। मानसिक रोग के उपचार के लिए भी विशेषतः यही बात सत्य है। उस स्थिति में यह प्रायः बहुत कठिन है अथवा अंतर्निहित जटिल कारणों का निदान और उनका उपचार व्ययसाध्य है। अतः, चिकित्सक बीमारी के प्रभावों का प्रायः उपचार करता है या उन्हें कम करने का प्रयत्न करता है। साधारणतः उसे विशेष व्यक्ति और उपलब्ध समय के अनुसार विविध विकल्पों में से कुछ का चयन करना चाहिए। वह उन्हीं के अनुसार प्रयोग में लानेवाली चिकित्सा की विधि निर्धारित करता है।

भेषज-चिकित्सा ( Medical Therapy ) :

भेषज-चिकित्सा मनोवैज्ञानिक का कार्य नहीं है, अतः उसका संक्षिप्त वर्णन किया जाएगा। मानसिक चिकित्सा के लिए भेषज-चिकित्सा को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : मनोशल्य ( Psychosurgery), आघात-चिकित्सा (Sock Therapy), निद्रापरक (Narcosis) और औषध-चिकित्सा (Drug Therapy)।

मनोशल्य (Psychosurgery ) :

पाषाण-युग में कभी-कभी मानसिक रोगियों की खोपड़ी में से प्रेतात्माओं को बाहर निकालने के लिए त्रिकोण यंत्र से सुराख किया जाता था, यद्यपि वह प्रविधि अपरिपक्व थी, विचारधारा त्रुटिपूर्ण एवं परिणाम भी कम महत्त्व के थे, फिर भी उसके पीछे सामान्य विचार महत्त्वपूर्ण था। १९३० में भी मानसिक रोग के लिए उसी प्रकार की पद्धति अपनायी गई। यह विधि मनोशल्य कहलायी; **क्योंकि इसमें मानसिक लक्षणों के उपचार और शमन के लिए मस्तिष्क की शल्य-चिकित्सा की जाती थी (फ्रीमैन और वाट्स, १९५०)।**

मनोशल्य में मस्तिष्क का ललाट-पालि (Frontal-lobe) का भाग विशेष रूप से संबद्ध रहता है। मस्तिष्क के अन्य भागों की अपेक्षा इनका संबंध पूर्व-निर्णय लेने में, योजना बनाने और भविष्य का पूर्वाभास पाने में अधिक प्रतीत होता है। इनका संबंध निम्न संवेगात्मक केंद्रों के साथ भी है। सिद्धांत के रूप में यदि कोई ललाट-पालि से तंतु को हटा दे या संवेगात्मक केंद्र के साथ उनके संबध को हटा दे, तब व्यक्ति भविष्य के विषय में कम विचार कर सकेगा या उसके विषय में कम चिंतित होगा। मनोशल्य का प्रयोग हजारों व्यक्तियों पर केवल इसी उद्देश्य से किया गया। उनमें अधिकांश वे व्यक्ति थे, जो अधिक दुश्चिता और क्षोभ के कारण निराशाग्रस्त थे। पहले ललाटीय पालियों के भागों को हटाया गया था, लेकिन यह बहुत अधिक घातक था। पर, रोगी की संवेगात्मक अशांति को दूर करने के लिए कम प्रभावशाली भी था। मनोशल्य का आज उतना प्रयोग नहीं होता, जितना बीस वर्ष पहले होता था; क्योंकि उपचार के लिए सुगम और अधिक प्रभावशाली साधन आविष्कृत हो गए हैं।

### आघात-चिकित्सा ( Sock Therapy ) :

आघात-चिकित्सा संज्ञा का प्रयोग उन विभिन्न प्रकार की अनेक चिकित्साओं के लिए होता है, जो रोगी को कुछ समय के लिए मूर्च्छित अवस्था में कर देती है (जैसेनेर और रेयन, १९४१)। बहुधा इस स्थिति के बाद मिरगी की ऐंठन के सदृश ऐंठन होने लगती है। इस विधि की उपयोगिता तब अचानक मालूम पड़ी—जब एक मानसिक रोगी, जिसे मधुमेह रोग था, मधुमेह-प्रतिरोध की दवा 'इनसुलिन' को अधिक मात्रा में लेता है और फलस्वरूप उसके मानसिक रोग के लक्षणों में महत्त्वपूर्ण सुधार प्रकट होता है। आज कोई भी निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि क्यों और कैसे आघात-उपचार कार्य करता है। केवल इतना ही ज्ञात है कि कुछ रोगी अनेक आघातों के उपचार से ठीक होने लगते हैं।

आघात-उपचार का प्रथम प्रयोग १९३० ई० में हुआ, जिसमें सापेक्षत इनसुलिन (Insulin) की अधिक मात्रा होती थी। यद्यपि इनसुलिन द्वारा उपचार का फल बहुधा लाभदायक होता था, फिर भी यह हानिकारक था, कम-से-कम रोगी के: लिए यह कष्टदायक था। इसके पश्चात् इनसुलिन की जगह ऐंठन उत्पन्न करनेवाली दवा ( Convulsive Drug ) मेट्राजोल ( Metrazol ) का प्रयोग होने लगता। मेट्राजोल भी हानिकारक है, कभी-कभी ऐंठन इतनी प्रबल हो जाती है कि हड्डियों को भी तोड़ सकती है। इसके अतिरिक्त रोगी ऐंठन के कुछ ही पूर्व भयानक संवेगात्मक अस्थिरता अनुभव करता है। तीसरे प्रकार की आघात-चिकित्सा विद्युत्-

आघात है। थोड़ी-सी सावधानी से व्यवस्थित विद्युत्-धारा का झटका रोगी के मस्तिष्क के भीतर पहुँचाया जाता है। यह भी अन्य आघात-साधनों की तरह ऐंठन करता है, फिर रोगी अचेत हो जाता है। रोगी को इससे संबंधित कोई भी कष्टकर अनुभव नहीं होता और वास्तव में आघात-काल के तत्काल पूर्व की घटनाओं की संभवत: कोई स्मृति उसे नहीं रहती। सुरक्षा, सरलता एवं रोगी द्वारा सहज स्वीकृत होने के कारण आघात-उपचारों के विविध प्रकारों में विद्युत्-आघात का प्रयोग सर्वाधिक होता है।

आघात-चिकित्सा और विशेषकर विद्युत्-आघात चिकित्सा अवसादपीड़ित व्यक्ति के लिए सबसे अधिक लाभदायक है ( Noyes, 1948 )। यह अपराध की भावना, आत्महत्या की प्रवृत्तियों और आत्महीनता की भावना को कम करती प्रतीत होती हैं। कभी-कभी अनेक विद्युत्-आघातों से रोगी बिल्कुल प्रकृतिस्थ दिखायी देता है और आगे के लिए बिना किसी उपचार के रखा जा सकता है। बहुधा आघात-उपचार मनश्चिकित्सा के साथ-साथ चलाया जाता है। आघात-उपचार के प्रभाव केवल अल्पकालीन हो सकते हैं, किंतु वे रोगी को शांत बना सकते हैं और मनश्चिकित्सा-संबंधी प्रविधियों द्वारा सुधार करने के लिए चिकित्सकों को सुविधा प्रस्तुत करते हैं।

## संवेदनमंदता ( Narcosis ) :

संवेदनमंदक ( **Narcotic** ) औषधि वह है जो पर्याप्त मात्रा में देने से रोगी को सुला देती है। संवेदनमंदक औषधियाँ भिन्न प्रकार की होती हैं—इस अंतर का आधार है कि कितनी शीघ्रता से वे कार्य करती हैं, कितनी देर उनका प्रभाव रहता है और कितनी गहरी निद्रा में वे व्यक्ति को सुला देती हैं। आघात-चिकित्सा के अनेक वर्ष पूर्व निद्रावहन का विस्तृत प्रयोग उत्तेजित रोगी को वश में करने के लिए किया जाता था। इससे यह उद्देश्य तो पूर्ण होता था, किंतु दीर्घकाल तक इसका बार-बार प्रयोग करना निरापद न था। इससे अतिरिक्त इसका चिकित्सापरक महत्त्व बहुत कम या बिलकुल नहीं था। अब विविध शांतिकरण औषधियाँ (**Tranquilizers**) उपलब्ध हैं, इसलिए संवेदनमदकों का प्रयोग रोगी को शांत और वश में करने के लिए प्राय: नहीं किया जाता।

संवेदनमंदक का प्रयोग सामान्यत: **निद्रा-विश्लेषण** (Narcoanalysis) अर्थात् रोगी की समस्याओं के विश्लेषण के लिए होता है। इस उद्देश्य के लिए जिस औषधि का प्रयोग होता है, उसका नाम है **सोडियम एमिटल** (Sodium Amytal)। अल्पमात्रा में उसकी सुई लगाने से यह रोगी को गहरी निद्रा में सोने के पूर्व काफी

समय के लिए अलसा देती है। आलस्य या अर्द्धनिद्रित अवस्था में रोगी अभिघातज ( Traumatic ) अनुभवों को पुनः अनुभव कर सकता है ( और, १९४९ ) और चिकित्सक के साथ अप्रिय विषयों पर चर्चा करता है ( देखिए चित्र ६.५ )।

**चित्र ६.५ मनश्चिकित्सा में निद्रा-विश्लेषण का प्रयोग। इस रोगी को सोडियम एमिटल की सुई दी जा रही है। पुण निद्रालीन होने से पूर्व-अलसाई अवस्था में रोगी अभिघातज अनुभवों को एकत्रित कर सकता है तथा कष्टकर विषयों पर समालाप कर सकता है। इस प्रकार चिकित्सक गहन और भूली हुई समस्याओं को प्रकाश में ला सकता है तथा तनाव से कुछ मुक्त होने में रोगी की सहायता कर सकता है। लाइफ मेगजीन से साभार (c) टाइम, Inc)**

इस अवस्था में भेषज-चिकित्सक गंभीर समस्याओं का उद्घाटन कर सकता है और रोगी कभी-कभी अपने तनाव से मुक्त हो सकता है। निद्रा-विश्लेषण अभिघातज अनुभवों के कारण उत्पन्न विकारों का विश्लेषण करने में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, जैसे जहाज-चालक को युद्ध में प्राप्त भयानक अनुभव यह विधि सम्मोहन की स्थानापन्न भी है। यह शीघ्र होता है और इस पर अधिक निर्भर किया जा सकता हैं। सोडियम एमिटल कभी-कभी 'सत्य-सीरम' (ट्रुथ-सीरम) कहलाता है; क्योंकि यह रोगी को दमित बातों को स्मरण करने योग्य बना देता है, किंतु अपराधियों की पाप-स्वीकृति की अभिव्यक्ति में इसका बहुत कम या बिल्कुल महत्त्व नहीं है।

## रसायन-चिकित्सा ( Chemotherapy ) :

मानसिक रोगों के उपचार में आधुनिकतम क्रांतिकारी परिवर्तन का नाम **रसायन-चिकित्सा** है। रसायन-चिकित्सा औषधियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध तथाकथित शांतिकरण औषधियाँ हैं। वास्तव में रसायन-चिकित्सा की और औषधिगाँ भी हैं, जैसे 'साइकोमिमेटिक (Psychomimetic) औषधियाँ और 'सक्रियकारक' (Actvators)। साइकोमिमेटिक औषधियाँ विक्षिप्ति-व्यवहार के कुछ लक्षणों को प्रदर्शित करती

हैं और इस तरह चिकित्सकों को रोगी की समस्याओं का अध्ययन करने में सहायता पहुँचाती हैं। एक प्रकार से शांतिकरण औषधियों के विपरीत सक्रियकारक औषधियों का प्रभाव होता है। वे उन रोगियों को सक्रिय बना सकती हैं, जो अत्यधिक निद्रालु और आलसी हैं। बीसवें अध्याय में इसका वर्णन किया गया है।

साधारणत: रसायन-चिकित्सा की औषधियों का प्रयोग दो उद्देश्यों से होता है :--(१) रोगी को वश में करने या उसे और अधिक विश्रांति की अवस्था में रखने के लिए और (२) चिकित्सक को रोगी की समस्याओं का विश्लेषण करने तथा मनश्चिकित्सा करने के लिए सहायता पहुँचाने में। नियंत्रित करने की प्रक्रिया में ये औषधियाँ केवल चिंता, उत्तेजना या अवसाद के लक्षणों को शांत करती हैं, जिनके कारण कुछ व्यक्ति अति कष्ट अनुभव करते हैं। मनश्चिकित्सा में सहायक होकर वे रोगी की चिंता और व्यथा को दूर करके उसे स्वस्थ होने की सुविधा देती हैं। अंत में, रसायन-चिकित्सा की स्थायी महत्ता सफल मनश्चिकित्सा पर निर्भर करती है।

## मनश्चिकित्सा :

मनश्चिकित्सा सरल या अतिजटिल प्रक्रिया हो सकती है। यह व्यक्ति की समस्या पर निर्भर है कि वह कितनी गंभीर है और इस चिकित्सा से उसे लाभ हो सकता है। चिकित्सा प्रारंभ करने से पूर्व मनश्चिकित्सा का उद्देश्य और समस्त विधान, रोगी एवं चिकित्सक दोनों के द्वारा निर्धारित होना चाहिए, चाहे चिकित्सा के समय उसमें वे अपेक्षानुसार परिवर्तन भले ही कर लिया जाए। चिकित्सक अपनी चिकित्सा-विधियों का निर्णय करने के लिए विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं का प्रयोग करता है। सूचना का प्रथम स्रोत है, स्वयं रोगी एवं उसके मित्रों द्वारा दिया गया उसका जीवन-वृत्त। द्वितीय, व्यक्ति का शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परीक्षण, जिसके अंतर्गत उसकी बुद्धि, व्यक्तित्व और व्यावसायिक योग्यताओं की परीक्षा आती है। तृतीय, चिकित्सक द्वारा निर्मित रोगी की समस्याओं का चित्र, जिसे उसने रोगी के साथ प्रारंभिक बातचीत के आधार पर बनाया है।

जैसा कि हम देख चुके हैं कि रोगी की समस्याएँ (१) पर्यावरणगत कुंठाओं, (२) व्यक्तिगत कुंठाओं या (३) अभिप्रेरणात्मक द्वंद्वों से उत्पन्न होती हैं। बहुधा ये तीनों तत्त्व वर्त्तमान रहते हैं, किंतु मनश्चिकित्सक को उपचार के विशेष उद्देश्य पर ध्यान रखना चाहिए। यदि उपचार पर्यावरणगत कुंठाओं पर केंद्रित हो, तो पर्यावरण का परिवर्तन मनश्चिकित्सीय उद्देश्य होगा। यदि व्यक्तिगत कुंठाएँ उपचार का मुख्य विषय रहेंगी, तो रोगी को उनसे मुक्त होने के लिए अस्थायी सहारा देना प्रधान उद्देश्य होगा। यदि मूल समस्या अभिप्रेरणात्मक द्वंद्व होगी, जैसा कि बहुधा होता

है, तब मुख्य उद्देश्य होगा रोगी को अंतर्दृष्टि और आत्मबोध प्राप्त करने में सहायता देना। इन चिकित्साओं में से अब प्रत्येक पर संक्षेप में विचार करेंगे।

### पर्यावरण में परिवर्तन :

यह उपचार का सरलतम उद्देश्य है। यह रोगी में किसी प्रधान परिवर्तन करने की चेष्टा नहीं है, वरन् उसके वातावरण या पर्यावरण को इस प्रकार से परिवर्तित करना है कि जिससे उसके दबाव को दूर किया जा सके। रोगी को आवश्यकतानुसार परामर्श दिया जा सकता है कि वह अवकाश ग्रहण कर ले, अपनी आजीविका को बदल ले, अपने शिक्षा-संबंधी ध्येय को बदल ले, इत्यादि। यद्यपि कुछ रोगियों के लिए केवल यही संभव उपचार होता है, किंतु अधिकांश रोगियों के लिए यह संतोषजनक नहीं हो सकता। परिवेश में विशेष परिवर्तनों को करना बहुधा कठिन या असंभव होता है और वे कभी-कभी रोगी की स्थिति को और भी अधिक बिगाड़ देते हैं। जब प्रधान कठिनाई रोगी में अभिप्रेरण-द्वंद्व की हो, तो परिवेश में परिवर्तन केवल सामान्य लाभदायक होगा। वातावरण में परिवर्तन हो सकते हैं, किंतु रोगी के उपचारार्थ प्रायः यह गौण ही रहता है। बच्चों के लिए वातावरण में परिवर्तन बहुधा आवश्यक होता है। वयस्कों की साधारण समायोजन-समस्याओं में ऐसे परिवर्तन भी रोगी को सुरक्षित बना सकते हैं। उपचार के लिए आनेवाले रोगियों में से बहुसंख्यकों के लिए इसकी पर्याप्त आवश्यकता रहती है। वातावरण के उपचार से चिकित्सा प्रारंभ करने पर उसके अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति में बाधा हो सकती है।

### सहायता की व्यवस्था ( Providing Support ) :

यदि रोगी के व्यक्तित्व में किसी स्थायी परिवर्तन लाने के लिए नहीं, वरन् केवल उसको सहायता पहुँचाने के लिए उपचार की व्यवस्था की जाए, तो उसे **सहायक चिकित्सा** (Supportive Therapy) कहते हैं। इसका उद्देश्य संकट-स्थिति ( Crisis ) में रोगी को सहायता पहुँचाना है। इसमें परामर्श का अधिकांश ही सहायक मनश्चिकित्सा है ( बोर्डिन, १९५५ )। यह अपेक्षाकृत सामान्य व्यक्तियों की समायोजन की विशेष समस्याओं का सामना करने में सहायता करती है। परामर्शदाता सूचनाएँ देता है, व्यक्ति की समस्याओं को सुनता है, कार्य प्रणाली का सुझाव देता है और उसने जो भी किया है या करना चाहता है, उस पर रोगी विश्वास दिलाता है। इस प्रकार से परामर्शदाता संतोषजनक समायोजन करने योग्य बनाने में व्यक्ति को काफी सहयोग दे सकता है।

रोगी को सहायता तथा विश्वास दिलाने में कौशल की आवश्यकता है, जो सहज ही उपलब्ध नहीं होता। परामर्शदाताओं को यह कार्य चतुराई से करना चाहिए,

अन्यथा वह रोगी की दुश्चिता को कम करने की अपेक्षा और अधिक बढ़ा देगा। साधारणतः बुद्धिमता इसी में है कि सहायक-चिकित्सा का प्रयोग कुछ विशेष प्रकार के रोगियों के साथ ही करना चाहिए। जैसे, प्रथम :—लंबी बीमारी, जिसमें कि बीमारी दीर्घकाल तक चलती है, स्वास्थ्यप्राप्ति के साधन दुर्बल हैं और परिवेशी बाधाएँ इतनी अधिक हैं कि रोगी में स्थायी परिवर्तन की संभावनाएँ बहुत कम हैं। ऐसे रोगियों में समस्याओं को समझने की सहायक-समस्या उसकी योग्यता में वृद्धि करती है। द्वितीय :—ऐसा रोगी, जो अपने जीवन के अधिकांश समय में भली-भाँति समायोजित रहा है, किंतु किसी एक संकट-स्थिति में अस्थायी रूप से मनस्तापी विकारों से ग्रस्त हो गया है। यहाँ पर सहायक-चिकित्सा स्वस्थ समायोजन के साधनों को पुनः स्थापित करने में सहायता देगी।

### अंतर्दृष्टि की प्राप्ति (Achieving Insight ) :

गहन अभिप्रेरणात्मक द्वंद्वों के लिए केवल अंतर्दृष्टि अथवा उद्घाटनकारी-चिकित्सा (Insight or Uncovering Therapy) उपयुक्त है। **उसका उद्देश्य रोगी की कठिनाइयों के कारण को स्पष्ट करना, रोगी को उसके मनस्तापी विकारों से बचाना और इस प्रकार उसे मनस्तापी रक्षा-युक्तियों से मुक्त करना है**। अंतर्दृष्टि सहज बौद्धिक अनुसंधानों से प्राप्त नहीं होती, अपेक्षाकृत यह दीर्घकालिक और श्रमसाध्य प्रक्रिया है, जिसमें रोगी अपने-आप को विभिन्न संवेगात्मक अभिवृत्तियों और परिस्थितियों से परिचित कराता है ( अलैग्जेंडर और फ्रेंच, १९४६ )। उसे उन संवेगात्मक परिस्थितियों को प्रकट करना चाहिए, जिनका वह सामना करने में समर्थ रहा है, जिन्हें उसने दमित किया है और जिनके कारण उसमें मनस्तापी बचाव उत्पन्न हो गए हैं।

कार्यरूप में प्रायः सभी मनश्चिकित्साओं में कुछ सहायक, कुछ अंतर्दृष्टि और अंत में कुछ परिस्थितिजनक परिवर्तन भी सन्निहित रहते हैं, तथापि प्रमुख प्रयत्न अंतर्दृष्टि विकसित करना और निरंतर संवेगात्मक स्थिरता प्राप्त करना हो, तब उस उपचार को 'अंतर्दृष्टि-चिकित्सा' की संज्ञा दी जाती है। जब अंतर्दृष्टि को प्राप्त करने की अपेक्षा आत्मतुष्टि में सहायता देने का प्रयास प्रमुख हो, तब उस उपचार को सहायक-चिकित्सा कहते हैं।

### मनश्चिकित्सा की प्रविधियाँ : ( Technique in Paychotherapy ) :

अब हम विशेष प्रविधियों का विवेचन करेंगे, जिनका प्रयोग मनश्चिकित्सक करते हैं। उस प्रकार की अनेक प्रविधियाँ हैं। उनमें से कुछ अति-विशिष्ट हैं और आवश्यक होने पर ही उनका प्रयोग कभी-कभी होता है। सापेक्ष प्रभावों के संबंध में विभिन्न मत होने के कारण कुछ चिकित्सक उनमें से किसी एक प्रविधि का प्रयोग

अधिक करते हैं। इनमें अनेक प्रविधियों के परस्पर अंतर को स्पष्ट करना कठिन है और ये अंतर विधियों के प्रयोगों में नहीं, वरन् इस पर निर्भर करता है कि वे अधिक बल किस बात पर देती हैं।

## निदेशात्मक चिकित्साएँ ( Directive Therapies ) :

मनश्चिकित्सा के प्रारंभिक दिनों में उसकी प्रविधियाँ मुख्यत: निदेशात्मक थीं। चिकित्सक रोगी को बताने का अधिकारी था। जिस प्रकार भेषज-चिकित्सक शारीरिक रोगों की औषधियों को नियत करता था, उसी प्रकार मनश्चिकित्सक मानसिक रोगों के उपचारार्थ विधियाँ बताता था। किसी विशेष परिवेश में रोगी की कठिनाइयों के विकसित होने पर यह संभावना रहती है कि चिकित्सक परिवेश में परिवर्तन बताएगा। वह हमेशा रोगी को अपने जीवन को व्यवस्थित करने में अयोग्य समझता था और उसे व्यवस्थित करने की योजनाओं को बताने का दायित्व अपने ऊपर लेता था। वह व्यायाम, विश्राम, रुचि या विशेष सामाजिक क्रियाओं को बताता था। अतः, इस प्रकार के उपचार में चिकित्सक की प्रधानता रहती थी और रोगी उसकी प्रतिक्रियाओं पर निर्भर रहता था।

## पुनर्शिक्षण ( Re-Education ) :

प्रारंभिक निदेशात्मक चिकित्सा में अधिकांश को **'पुनर्शिक्षण'** कहा जाता है। पुनर्शिक्षण चिकित्सा का प्रवर्त्तक 'ओस्टिन रिग्स' (१९२९) अपने रुग्णतंत्री रोगियों के लिए अस्थायी परिवेशी परिवर्तन निदेशित करता था। उसका यह विश्वास था कि रोगी को उसके घर, समाज और व्यावसायिक परिवेश से पृथक् कर देना चाहिए; क्योंकि उन्हीं से उसने अपने मनस्तापी विकारों को विकसित किया था। तब भिन्न निरपेक्ष पर्यावरण या स्कूल में रोगी जाता है। कहने का तात्पर्य है कि वह **जीवन के समायोजन के संतोषप्रद सिद्धांतों को सीखने** जाता है, उसमें सामाजिक सहयोग की आदतें विकसित करने के लिए जो नियम निर्धारित किए गए हैं, उन्हीं के अनुसार वह व्यवहार करता है। रिग्स द्वारा प्रायोजित इस प्रकार के दृढ़ और व्यवस्थित पुनर्शिक्षण का आज बहुत कम प्रयोग किया जाता है, किंतु कम निदेशात्मक प्रकार की पुनर्शिक्षा का प्रयोग बहुधा होता है। वस्तुत: पुनर्शिक्षण सभी प्रकार की प्रविधियों से संबंधित है और प्रगतिशील नवीन अंतर्दृष्टि तथा नवीन विचारों से यह विकसित हुआ है।

## संवेदन अग्रहणीयता ( Desensitization ) :

पुनर्शिक्षण से निकट संबंधित संवेदन अग्रहणीयता की प्रविधि है। इसकी अभिकल्पना रोगी को वातावरण में वैसी सुविधा से रहने योग्य बनाने के लिए की

गई है, जिसके लिए वह पहले उत्सुक रहता था। अनेक रोगियों के लिए ये परिस्थितियाँ व्यथा, लज्जा या अरक्षा से संबंधित रहती हैं, जिनको वस्तुमूलक रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि अपनी समस्याओं में पर्याप्त अंतर्दृष्टि रखनेवाले रोगी भी बहुधा ऐसी कष्टकर परिस्थितियों के प्रति अपनी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को परिवर्तित करने में असमर्थ रहते हैं। ऐसे उदाहरणों में चिकित्सा विशेष रूप से रोगी को चिंता उत्पन्न करने वाले स्थिति का सामना करवाती है, फलतः वे अपनी संवेगात्मक अनुक्रियाओं को धीरे-धीरे कम करने का अवसर प्राप्त करता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी व्यक्ति को भोज में सम्मिलित होने से भय लगता है, तो चिकित्सा उसके लिए ऐसे भोजों का प्रबंध करेगी, जिनमें वह हीनता अनुभव नहीं करेगा और उसे प्रतीत होने लगेगा कि भोज बुरे नहीं होते। संवेदन अग्रहणीयता सिद्धांत सप्तम अध्याय में विवेचित विलोपन विधि ( Method of Extinction) के सदृश है।

### संसूचन और सम्मोह ( Suggestion and Hypnosis ) :

संसूचन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से बिना तर्क किए अथवा बिना बाध्य हुए ही किसी विचार या अभिवृत्ति को स्वीकार कर लेता है। यह लगभग उन सभी परिस्थितियों में होता है, जिनमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करने का प्रयास करता है—(देखिए, अध्याय १६)। किंतु, लोग अधिकारी और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सुझावों को सर्वाधिक स्वीकार करते हैं। इस प्रकार चिकित्सक को संसूचन के प्रयोग करने का अधिकार रहता है। वह संसूचन दे सकता है कि रोगी ने मनश्चिकित्सा से **तंत्रिकीय** (Nervous) **तंत्रिकीय सिर-दर्द, अपच** में पर्याप्त स्वास्थ्य लाभ किया है अथवा उसका परीक्षा का भय कम हो गया है और इन सुझावों अथवा संसूचनों का प्रभाव उस पर हितकर हो सकता है। संपरिवर्त्तन प्रतिक्रियाओं (Conversion Reaction) के अतिरूपों में जैसे अपतंत्रिक अंधता (Hysterical-blindness) या पक्षाघात में रोगी संसूचन के प्रभाव में शल्य-चिकित्सा करवा सकता है, कुस्वाद वाली औषधि खा सकता है या अपने रोग के लक्षणों को दूर करने के लिए अन्य असुविधाएँ सहन कर सकता है। ऐसी स्थिति में यद्यपि भेषज-उपचार अपने-आप में विशेष लाभप्रद नहीं होता, तथापि विकार-लक्षणों को दूर करने के सुझाव के रूप में प्रभावशाली हो सकता है।

सम्मोहन की स्थिति में रोगी सर्वाधिक सुझावग्राही रहते हैं। अतः, प्राचीन मनश्चिकित्सकों ने सम्मोहन का प्रयोग चिकित्सा-प्रविधियों के रूप में किया था। वे रोगी को सम्मोहित करके उसे सम्मोहनोत्तर संसूचन-सुझाव ( Post-hypnotic Suggestion) देते। ये सुझाव रोगी के सम्मोह-निद्रा से जागृत होने पर प्रभावोत्पादक होते।

उदाहरणार्थ दाएँ हाथ के अपतंत्रिक पक्षाघात (Hysterical Paralysis) से पीड़ित व्यक्ति को सम्मोह के अंतर्गत बताया जा सकता है—'जब तुम उठोगे, तब तुम अपने दाएँ हाथ का प्रयोग कर सकोगे, यह बिल्कुल ठीक होगा।' इस प्रकार के सुझाव कार्यान्वित होते हैं। व्यक्ति जब सोकर उठेगा, तब वह पक्षाघात से पीड़ित नहीं रहेगा।

संसूचन और सम्मोह की एक असुविधा यह है कि अनेक रोगी बहुत कठिनाई से सम्मोहित होते हैं। दूसरा दोष यह है कि यह रोग के लक्षणों का निवारण तो कर देता है, किंतु कारण का नहीं। न तो यह अंतर्दृष्टि को उत्पन्न करता है और न ही रोगी के लक्षणों में निहित चिंता को दूर करता है। अतः, यह मूल रोग का उपचार नहीं करता। परिणामस्वरूप यदि रोग के लक्षणों का निवारण संसूचन या सुझाव द्वारा हो जाता है, तो भी वे प्रायः किसी अन्य रूप में फिर से प्रकट हो जाएँगे। उदाहरणार्थ, यदि तंत्रिकीय सिर-दर्द को सुझाव द्वारा दूर किया गया है, तब रोगी में अन्य लक्षणों के विकसित होने की संभावना है, जैसे अपच या कमर का दर्द। इस कारण संसूचन प्रविधियाँ उन विशेष स्थितियों में ही लाभदायक हैं, जिनमें रोगी को अस्थायी सहायता देना ही अपेक्षित रहता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी माँ को बच्चे को जन्म देने का तीव्र भय है, तो यह संभव है कि सुझाव के द्वारा बिना किसी गंभीर विकार के उसे इस स्थिति के लिए तैयार किया जा सके।

मनश्चिकित्सा में संसूचन के प्रयोग से पर्याप्त भिन्न सम्मोहन का कुछ नैदानिक महत्त्व है (डौरकस, १९५६)। सम्मोह की स्थिति में एक व्यक्ति उन घटनाओं को बहुधा याद कर सकता है, जिन्हें वह भूल गया था और जिन्हें सामान्य स्थिति में वह स्मरण नहीं कर सकता था। वास्तव में चिकित्सक रोगी के उन भूतकालीन भयानक अनुभवों से, जो अब उसे दुःख दे रहे हैं, मुक्त करने के लिए सम्मोहन के प्रभाव में लाने में समर्थ हो सकता है। इस तरह चिकित्सक उपचार की अन्य विधियों के प्रयोगार्थ आवश्यक सूचनाओं को सम्मोह द्वारा प्राप्त करता है। सम्मोहनोत्तर सुझावों के द्वारा वह उन बातों को याद करने योग्य हो सकता है, जो सम्मोहन के अंतर्गत पुनः जागृत हो गई थीं और उसके बाद वह सामान्य जीवन में भी उन्हें याद रखता है। इस तरह चिकित्सा में सम्मोहन एक महत्त्वपूर्ण प्रविधि है, यद्यपि वह स्वयं किसी मूल उपचार को प्रभावित नहीं करती। निम्नलिखित उदाहरण सम्मोहन के प्रयोग को स्पष्ट करता है (लैकरौन और बार्डियस पर आधारित, १९४७, पृष्ठ २११-२१२)—

> "बेट्टी आर०, नामक एक मनस्तापी रोगिणी, जिसकी आयु ४२ वर्ष की थी, एक मनश्चिकित्सक के पास जाकर शिकायत करती है कि उसे निरंतर कुछ मिनटों के पश्चात् गला साफ करना पड़ता है, यह बाध्यताकारी

लक्षण अनेक वर्षों से है। एक बाधा और संकोच के अतिरिक्त इसने उसे एक सफल गायिका बनने से रोक दिया है। फलस्वरूप उसे बाध्य होकर आफिस में कार्य करना पड़ा, जिससे उसे घृणा थी।

सम्मोह के माध्यम से वह बीस वर्ष पूर्व के लक्षणों को स्मरण करने में सक्षम हुई। वह लगभग बाईस वर्ष की आयु तक पीछे लौटती है, जब कि उसके गले में कष्ट नहीं था, तब उसे किसी संवेगात्मक अनुभव को स्मरण करने का सुझाव दिया गया। उसे अपने भावी पति, जिसके साथ उसका शीघ्र विवाह होने वाला था—के साथ मनायी गई पिकनिक की याद आई। वे दोनों एक लंबी-छोटी नाव में झील पर गए थे। नाव उलट गई थी, तैरना न आने के कारण वह करीब-करीब डूब ही गई थी। जब उसके भावी पति ने उसे नाव तक खींचा, तब वह बच गई। वहाँ वह नाव को तब तक पकड़े रही, जब तक किसी अन्य सहायता का प्रबंध नहीं हुआ। वह स्वयं अच्छा तैराक नहीं था और वह थक गया था। अतः, वह डूब गया।

सम्मोह के प्रभाव में इस अनुभव को स्मरण करते हुए उसने गले का अवरोधन अनुभव किया, जैसे कि पानी उसके गले में जा रहा हो। उसके बाद उसने रोना प्रारंभ किया और उसने कहा—'मैं उसे प्यार करती हूँ, मैं उसके बिना रह नहीं सकती, मैं इसे पी नहीं सकती, यह मेरे गले में चिपक जाता है।' तब उस पर यह प्रकट हुआ—'क्यों, यही कारण है कि मैं अपना गला साफ करती हूँ! यहीं चिकित्सक ने सम्मोह के प्रभाव को समाप्त किया।"

इस उदाहरण में सम्मोह द्वारा प्राप्त अंतर्दृष्टि परवर्त्ती चिकित्सा को अत्यधिक सहायता पहुँचाती है। कुछ समय के पश्चात् विकृत लक्षण लुप्त हो गए और रोगिणी को समायोजन में बहुत सुविधा हुई।

**रोगी-केंद्रित चिकित्सा ( Client-Centered Therapy ) :**

ऊपर वर्णित निदेशात्मक प्रविधियाँ रोगी के जीवन के स्पष्टीकरण, निदेश और नियंत्रण से संबंधित हैं। कुछ परिस्थितियों में वे बहुत महत्त्वपूर्ण है। मनश्चिकित्सक किसी तरह धीरे-धीरे यह जान गए कि रोगी अपने समायोजन में आमूल परिवर्तन केवल कहने से या उनके परिवेश में परिवर्तन करने से नहीं कर सकते। मनश्चिकित्सा के गहन और चिरकालीन लाभ के लिए रोगी को अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं ही करना सीखना चाहिए।

इसीलिए आधुनिक चिकित्साएँ अनिदेशात्मक हो रही हैं। वे अधिक अनुज्ञात्मक (Permissive) स्थिति का निर्माण करती हैं, जिनमें रोगी को उसकी अभि-

वृत्ति को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता दी जाती है (देखिए, चित्र ६.६)। प्रचलित प्रविधियों में सबसे अधिक अनिदेशात्मक विधि 'रोगी-केंद्रित-चिकित्सा' के नाम से प्रसिद्ध है। यह रोगी की किसी विशेष समस्या को हल करने के लिए नहीं बनायी गई है, लेकिन उसे समायोजन के उन्नत साधनों को विकसित करने की सुविधा देने के लिए बनायी गई है। निम्नलिखित वर्णन इस अभिवृत्ति को अभिव्यक्त करता है (रोजर्स से उद्धृत १९५१, पृष्ठ ४८-४९)।

"यह स्पष्ट दिखाई देता है ··· ··· कि जब परामर्शदाता सब सूचनाओं को पृथक् कर देता है और रोगी के प्रत्यक्ष समस्या-संदर्भों में प्रवेश करता है, तो वह रोगी को अपने जीवन और अनुभवों का पुनः निरीक्षण करने के लिए, तथा उसे उस अनुभव में नवीन अर्थ और नवीन उद्देश्य देखने की स्वतंत्रता देता है। लेकिन, क्या परामर्शदाता रोगी को परिणाम के लिए पूर्ण स्वतंत्रता देने को इच्छुक है? क्या वह उसके जीवन को व्यवस्थित करने और निदेश देने के लिए वस्तुतः इच्छुक है? क्या वह उसके लिए सामाजिक अथवा असामाजिक, नैतिक अथवा अनैतिक लक्ष्यों का चयन करने का इच्छुक है? यदि नहीं, तो यह संदिग्ध है कि रोगी के लिए यह चिकित्सा आनंदप्रद अनुभव प्रमाणित होगी। ···· ···· मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि चिकित्सक के पूर्णतः यह स्वीकार करने पर ही कि कोई भी परिणाम, कोई भी निदेश चुना जा सकता है—वह रचनात्मक कार्य के लिए व्यक्ति की क्षमता की तीव्र शक्ति और योग्यता पर विश्वास करता है।

**चित्र ६·६ मनश्चिकित्सा की स्थिति। रोगी मनश्चिकित्सक से समालाप करता है और वे दोनों मिलकर रोग को उत्पन्न करने वाले कारणों की खोज करते हैं तथा उन समस्याओं के निवारण का प्रयत्न करते हैं।**

**(नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ, पब्लिक हेल्थ सर्विस, सेंट एलिजाबेथ हॉस्पिटल, वाशिंगटन, डी० सी० के सहयोग से)**

साधारणत: रोगी-केंद्रित-चिकित्सा का वर्णन उस चिकित्सा की तरह किया जा सकता है, जिसमें (१) समस्या नहीं, किंतु व्यक्ति मुख्य केंद्र है, (२) बुद्धि की अपेक्षा भावना को महत्त्व दिया गया है, (३) भूत की अपेक्षा वर्त्तमान पर अधिक ध्यान दिया जाता है और चिकित्सा के माध्यम से संवेगात्मक विकास होता है।

यह विधि परामर्शदाता और रोगी के कार्यों के स्पष्टीकरण से आरंभ होती है और इंगित करती है कि वे दोनों मिलकर कठिनाइयों का समाधान कर सकेंगे। चिकित्सक घनिष्ठ और अनुज्ञात्मक संबंध को स्थापित करने के लिए कठिन परिश्रम करता है, अर्थात् बिना किसी दबाव के निश्चित उपचार-क्रम का अनुगमन करता है और जो कुछ रोगी कहता है, उसे बिना आलोचना और तर्क के स्वीकार करता है। परामर्शदाता का मुख्य उद्देश्य रोगी को अपने भावों को स्वतंत्रता से अभिव्यक्त करने में सहायता देना है। इस प्रक्रिया में रोगी बिना किसी भय के अपने भावों को स्वीकार करने में सक्षम हो जाता है। धीरे-धीरे उसके पूर्वदमित भावों को अभिव्यक्त करना संभव हो जाता है, तब वह अपनी संवेगात्मक अभिवृत्तियों में नवीन संबंध देखना प्रारंभ करता है और उन परिस्थितियों के प्रति निश्चित रूप से प्रतिक्रिया करता है, जिन पर पहले वह ध्यान नहीं देता था।

रोगी और चिकित्सक के मध्य निम्नलिखित वार्तालाप संवेगात्मक अभिवृत्तियों (Emotional Attitudes) के महत्त्व को स्पष्ट करता है, जो अनिदेशात्मक चिकित्सा की विशेषता प्रतिपादित करता है (कैमेरौन और मैगारेट से उद्धृत, १९५१, पृष्ठ ५६४-५६५)। रोगी एक युवक है और वह शिकायत करता है कि जब सेना में सक्रिय कार्य करते समय उसकी माता के साथ उसके घनिष्ठ संबंध पर आघात किया गया, तो वह बार-बार तनाव और दुर्बलता अनुभव करने लगा था।

"रोगी : आपको ज्ञात है, मैं घर गया था। मैं सोचता हूँ कि मैं माँ के साथ अच्छी तरह रहा। मेरा अभिप्राय है, उदाहरण के लिए V.12 परीक्षा लीजिए। वह अच्छी तरह या कुछ-कुछ समझती प्रतीत होती है। मेरा तात्पर्य है, उसने कहा मैं चाहूँ तो वायुसेना में अपना नाम लिखा सकता हूँ। और जब मैं उसकी चर्चा करता, तो वह भयभीत हो जाती।"

चिकित्सक : ऐसा प्रतीत होता है कि संभवत: उसके साथ आपने नया समझौता किया हो।

रोगी : हाँ, मैं समझता हूँ कि अब हम पर्याप्त भली-भाँति समझौता कर चुके हैं। यह विलक्षण था ... ... उसके निकट पहुँचते ही बचपन

में माँ के प्रति जो भाव मुझमें थे, वे भाव पुनः मुझमें उदित हुए। पिछले एक या अनेक वर्षों से मुझमें ऐसे भाव नहीं थे, किंतु अब वही पहले के से स्नेह के भाव पुनः जागरित हो गए हैं। मैंने सोचा नहीं था कि मैं ऐसा कर सकूँगा। मैंने सोचा था कि मैं केवल सनकी और कठोर हो गया या ऐसा ही कुछ और हो गया था। भिन्न अभिवृत्ति के कारण आप बात को सहज समझ रहे हैं। (कुछ रुक कर) मैं नहीं जानता, (बहुत देर तक चुप)।

चि० : आप इसके विषय में तनाव अनुभव कर रहे हैं। ठीक कह रहा हूँ न ?

रोगी : हाँ। क्या यह इतना स्पष्ट ?

चि० : मैं इसे जानता हूँ, यद्यपि मेरा अनुमान था. आप करेंगे, मैं नहीं।

रोगी : ठीक है ·· ·· शायद यह इसलिए कि मैं घर में इतने कम समय रहता हूँ, और माँ ने ठीक समझा कि मैं अति शीघ्र बाहर चला जाऊँगा। इसलिए वह मेरी बात सुनने को इच्छुक थी। वस्तुतः मैं नहीं जानता। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मुझमें बचपन के से भाव पुनः आ रहे हैं।

चि० : वस्तुओं के प्रति कुछ वैसा भाव आने लगता है, जैसा उनके प्रति पहले हुआ करता था ?

रोगी : केवल इतना ही कि यह संबंध अधिक आनंदप्रद हो गया है। इसका एक उदाहरण लीजिए—माँ यदि मेरे पास सिगरेट देख लेती, तो चिल्लाती थी, मैंने कहा—मुझे बताओ क्या मैं उसे पी नहीं सकता, और मुझे इसका कारण और सब कुछ बताओ। और इस बार जब मैं घर पर था, उसने मुझे एक सिगरेट दिया। मैं स्तब्ध हो गया। मैं स्वयं नहीं समझ सका क्यों ( कुछ देर चुप )—मैंने सोचा कि संभवतः इसलिए कि उसने यह अनुभव किया कि मैं बड़ा हो गया हूँ, या कुछ और। हाँ, वह मुझे छोटे-छोटे काम करने देती है। जब मैं पंद्रह वर्ष का था, एक बार मैंने गर्मियों में 'स्टॉक एक्सचेंज' में काम किया था। उसने मुझे यह भली-भाँति करने दिया, उसने मुझे जाने दिया, किंतु उसने यह करने के लिए निदेश नहीं किया था। किसी प्रकार का उत्साह या मार्ग-दर्शन नहीं किया था, अपनी इच्छा से मैं गया। आप जानते हैं—आँखों में आँसू भर कर वह मुझे जाने देती थी।

चि० : जब तुम अपनी इच्छा से अपना काम करना चाहते थे, तब क्या सदा उसकी आँखों में आँसू··

रोगी : लड़के, यह वास्तविक सत्य है। मैंने पहले कभी इस विषय पर सोचा नहीं था, किंतु यह निश्चित रूप से सत्य है। क्या तुम्हें मालूम है, कि बच्चा यह नहीं जानता कि उसपर बचपन का कितना प्रभाव है, क्या वह जानता है ? अच्छा, तुम समझते हो, लेकिन मुझमें द्वंद्व नहीं है, मुझमें अति-किशोरता नहीं है। तुम समझते हो कि तुम इन सबसे दूर हो, इनसे ऊपर हो किसी तरह···(मौन रहता है)। अनेक अन्य व्यक्ति अपने मित्रों के प्रति अधिक भावशून्य व्यवहार करते हैं, मैं सोचता हूँ कि मुझे सदैव किसी-न-किसी प्रकार के संबंध की आवश्यकता रहेगी, कोई ऐसा व्यक्ति घर आए, जिससे मैं प्यार करूँ।

रोगी-केंद्रित-चिकित्सा महाविद्यालय के विद्यार्थियों को परामर्श देने, सामान्य व्यक्तियों की समायोजन-समस्याओं ( जैसे वैवाहिक और व्यावसायिक समस्याएँ ) और साधारण मनस्ताप के उपचार के लिए प्रभावशाली है। दूसरों पर निर्भर करने वाले व्यक्तियों के लिए और जिनमें अति संवेगात्मक विकार हैं, उनके लिए यह चिकित्सा उतनी सफल नहीं है।

**मनोविश्लेषण ( Psychoanalysis ) :**

मनोविश्लेषण चिकित्सा की वह प्रणाली है जो कुछ-कुछ अनिदेशात्मक तो है, किंतु रोगी-केंद्रित-परामर्श के सदृश नहीं। उसका मुख्य उद्देश्य **रोगी को उसके समायोजन के प्रक्रम को भली-भाँति समझाने में सहायता देना है और इस प्रकार उसकी स्वयं की मूल समस्याओं का समाधान करने में सहायता देना है।** इसका निर्माण मुख्य रूप से मनस्ताप के उपचार के लिए हुआ है, परंतु अनेक विकृतियों के लिए उसका उपयोग होने लगा है—(अलैक्जेंडर और फ्रेंच, १९४६)। यह चिकित्सा समय अधिक लेती है। इसके लिए एक घंटा प्रतिदिन छह महीने से तीन वर्षों तक आवश्यक है। इसलिए यह केवल उन रोगियों के लिए उपयोगी है, जिनकी अति गंभीर समस्याएँ हैं, जो समय दे सकते हैं और दीर्घकालीन उपचार के लिए व्यय कर सकते हैं।

आपको याद होगा कि मनोविश्लेषण-कर्त्ता शब्द उस मनश्चिकित्सक की ओर संकेत करता है और उसी के लिए इसका प्रयोग होना चाहिए, जो 'सिगमंड फ्रायड' के सिद्धांतों का अनुसरण करता है। इस प्रकार के सिद्धांतों के अंतर्गत चिकित्सा की मूल प्रविधियों के रूप में मुक्त-साहचर्य ( Free Association ) पर बल देना और

रोगी की समस्याओं के मूल कारण का विश्लेषण करने के लिए अन्यारोपण (Transference) प्रक्रम का प्रयोग करना है। यह चिकित्सा के अन्य रूपों की अपेक्षा स्वप्न-विश्लेषण का भी अधिक प्रयोग करता है। (हम नीचे इन बातों को स्पष्ट करेंगे।)

## मुक्त-साहचर्य :

चिकित्सक की सामान्य क्रिया-विधि उसके उद्देश्यों और चिकित्सा के लक्ष्यों के स्पष्टीकरण से मनश्चिकित्सा अपना कार्य प्रारंभ करती है। रोगी से यह कहा जाता है कि उसे निश्चित अवधि के भीतर ठीक होने की आशा नहीं करनी चाहिए और उसका व्यवहार तथा उनकी अभिवृत्तियाँ उन संवेगात्मक कारकों पर निर्भर हो सकती हैं, जिनके विषय में वह अनभिज्ञ है एवं उन्हें उनके अचेतन अभिप्रेरणों में प्रमुखतः मुक्त साहचर्य के माध्यम से खोजना चाहिए : **उससे यह अपेक्षा की जाती है कि उसके मस्तिष्क में जो कुछ आए उसे कह दे, चाहे वह कितनी भी असंगत या आपत्तिजनक बात क्यों न हो।** चूँकि साधारण चिंतन की प्रक्रिया से मुक्त दौड़ नितांत भिन्न हैं, मुक्त-साहचर्य ग्रहण करने योग्य बनने के लिए रोगी बहुधा कुछ समय लेता है। बातचीत द्वारा किया हुआ मुक्त-साहचर्य का शब्दशः उदाहरण निम्नलिखित है (कैमेरौन और मैगारेट, १९५१, पृष्ठ ५७१ से उद्धृत) :

"यही बात इस तथ्य पर लागू होती है, जो उन्होंने मुझे कुछ समय पहले रात्रि के आरंभ में या अंतिम प्रहर में अनिद्रा के विषय में बताया। और मैंने भी बल दिया...पहले दो-तीन रातों तक मैंने देखा, मैंने २.३० बजे के जगना प्रारंभ किया, मैं रात्रि के अधिकांश भाग में जागता ही रहा,..अर्द्धचेतना में..दो तीन रातों तक..क्या यह हो गया; क्योंकि मन के सुझाव देने के कारण मैं आदत का कीड़ा हूँ, या क्या मुझे मनस्तापी रोग हो गया है। (मौन) करीब-करीब सभी विषयों पर सोचा...सामान्य रूप से...उसे स्मरण नहीं कर सकता..काम-भावना से उसका कोई संबंध नहीं...—अपने मन से उसे दूर रखने का प्रयत्न किया। उसे दूर करने के लिए मैंने संघर्ष किया। ऐसे विषयों के प्रति सोचने का स्वभाव हो गया और उनके प्रति स्वप्न देखने लगा...विषयों को अपने मस्तिष्क से दूर रखने का प्रयत्न किया...अतीत के लिए यह संघर्ष करना अच्छा लगा। मेरा मन उस प्रकाश को पार करता हुआ पाँचवीं मंजिल तक पहुँच गया और एक सुनहले बालों वाली गौर वर्ण स्त्री के निकट—प्रतीत होता है कि मेरा मन काम-भावना और चोट की ओर जा रहा है... उस तरह की बातों की ऊँची अट्टालिकाओं की ओर जाने से कैसे बचाता...भय लगा कि मैं कितना ऊपर जाऊँगा। मैं

किसी को बताना नहीं चाहता था कि मेरा दुःख क्या था। देखा कि वह केवल चार-पाँच मंजिल का भवन था, अतः मैंने स्वीकार किया। इसने मुझे चिंतित नहीं किया...वास्तविक परीक्षा प्रतीत नहीं हुई; क्योंकि वह ऊँचा नहीं था। फिर भी मुझे अपने पर विश्वास नहीं था...मानो अपने संघर्ष के कारण मैं निराश ही था...दो बातें, एक 'हाँ' और एक 'नहीं'। मैंने निर्णय किया कि अच्छी बात को ग्रहण करूँगा, चूँकि बुरी बात मुझे जकड़ रही थी।"

मुक्त-साहचर्य के समय रोगी प्रायः प्रतिरोध प्रकट करता है। **यह उसके अतीत की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को स्मरण करने की या चिंता उत्पन्न करनेवाले विषयों से संबधित चर्चा करने की असमर्थता है।** विश्लेषणकर्त्ता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है—इन प्रतिरोधों पर ध्यान देना। निरंतर मुक्त-साहचर्य द्वारा रोगी अपने अज्ञात प्रतिरोधों से आगे बढ़ जाता है और उन पर अधिकार प्राप्त कर लेता है। परिस्थिति को बाध्य नहीं किया जा सकता, किंतु विश्लेषणकर्त्ता कोई व्याख्या प्रस्तुत कर सकता है। ये व्याख्याएँ निकट अर्थ बतानेवाली समझी जाती हैं और मुक्त-साहचर्य के समय उनमें संशोधन कर लिया जाता है। ये व्याख्याएँ समाधान प्रस्तुत करने के लिए नहीं, वरन् साहचर्य का पथ प्रशस्त करने के लिए एवं आगामी बोध के लिए मुक्त-प्रवाह प्रस्तुत करने की संभावना के लिए दी जाती हैं। इस रूप में मनोविश्लेषण पर्याप्त निदेशात्मक रहता है।

किसी भी समय रोगी अपने स्वप्न की सूचना विश्लेषण एवं बोध के लिए दे सकता है। स्वप्न-विश्लेषण महत्त्वपूर्ण समझा जाता है; क्योंकि स्वप्न अवचेतन को समझने की सुविधाएँ प्रस्तुत कर सकते हैं। उनकी प्रत्यक्ष व्याख्याएँ नहीं की जातीं, लेकिन वे मुक्त-साहचर्य के लिए सामग्री जुटाते हैं। इस संबंध में स्वप्न का विषय महत्त्वपूर्ण नहीं है ( प्रकट विषय), वरन् स्वप्न में प्रतीकात्मक रूप से प्रकट अभि-प्रेरणात्मक द्वंद्व का महत्त्व है (अंतर्निहित विषय)। केवल कुछ स्वप्नों का ही मन-श्चिकित्सा के लिए विशेष महत्त्व रहता है।

१०,००० से अधिक स्वप्नों के विस्तृत अध्ययन में स्वप्नद्रष्टा द्वारा स्वप्न में किए कार्यों को विभिन्न कोटियों में वर्गीकृत किया गया था ( हाल, १९५१ )। ये पाँच कोटियाँ थीं, जिन्हें चित्र ६.७ में प्रदर्शित किया गया है—संचलन ( ३४ प्रतिशत ), मौखिक ( ११ प्रतिशत ), जड़ता ( ७ प्रतिशत ), चाक्षुष ( ७ प्रतिशत) और प्रतिरोधी ( ३ प्रतिशत )। पर्याप्त मात्रा में पायी जाने वाली स्वप्नों की अन्य कोटियाँ थीं—सामाजिक (६ प्रतिशत), मनोरंजक ( ५ प्रतिशत ), हस्त श्रम ( ४

प्रतिशत ), प्रयासजन्य ( ४ प्रतिशत ) और कुछ ग्रहणीय ( २ प्रतिशत )। इन कोटियों में से कुछ विशेष जैसे—प्रतिरोधी, प्रयासजन्य, कुछ ग्रहणीय आदि द्वारा अभिप्रेरणात्मक संघर्ष को निरूपित करने की संभावना अन्यों की अपेक्षा अधिक है।

संचलन मौखिक जड़ चाक्षुष प्रतिरोधी

**चित्र ६.७. व्यक्ति क्या स्वप्न देखते हैं। दस हजार से अधिक स्वप्नों के एक अध्ययन में शोधकर्त्ता ने स्वप्नद्रष्टा की क्रियाओं को वर्गीकृत किया ( पाठ्य-क्रम में देखें ) चित्र में प्रदर्शित पाँच वर्ग हैं—संचलन, मौखिक, जड, चाक्षुष और प्रतिरोधी।**

## अन्यारोपण ( Transference ) :

अन्यारोपण मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का केंद्र-बिंदु है और यह मनोविश्लेषण की प्रगति के साथ धीरे-धीरे विकसित होता है। **अन्यारोपण व्यक्तियों के साथ पूर्व-संबंधों का, मुख्यतः माता-पिता तथा बालक के संबंध का, पुनः कार्यान्वित करना है।** वस्तुतः अन्य व्यक्तियों के प्रति अर्जित दृष्टिकोणों के सामान्यीकरण में यह चिकित्सक की सहायता करता है। जब रोगी और चिकित्सक में घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जाता है, तब यह प्रकट होता है। उदाहरणतः चिकित्सक पिता-रूप बन जाए और रोगी से प्रायः वही संवेगात्मक व्यवहार प्राप्त करे, जो उसका पिता प्राप्त करता था। यह प्रक्रिया अन्यारोपण कहलाती है; क्योंकि यह अभिवृत्ति या दृष्टिकोण का एक व्यक्ति से दूसरे पर आरोपण है। जब चिकित्सक के प्रति ये भाव स्नेह और निर्भरता के होते हैं, तो यह आरोपण धनात्मक कहलाता है। किंतु, शत्रुता का दृष्टिकोण भी प्रबल हो सकता है और उस स्थिति में यह आरोपण निषेधात्मक होता है।

अन्यारोपण दो रूपों में महत्त्वपूर्ण है। प्रथम, यदि यह धनात्मक है तो रोगी के प्रतिरोध को दूर करने में सहायक हो सकता है। यह उसमें सुरक्षा का भाव उत्पन्न करता है, जिससे कि उसमें दमित विचारों को खोजने की शक्ति आ

सके। द्वितीय, यह विश्लेषणकर्त्ता को रोगी की समस्याओं को समझाने में सहायता करता है। अन्यारोपण रोगी के अंतर्द्वंद्व के लिए रोगी और चिकित्सक में संघर्ष स्थानापन्न करता है। इस प्रकार विश्लेषणकर्त्ता समस्या को अपेक्षाकृत भली-भाँति देख सकता है। वह अन्यारोपण का विश्लेषण करता है और रोगी को इसकी गति समझाता है। निम्नलिखित उदाहरण अन्यारोपण के कुछ पक्षों को स्पष्ट करता है (गारफील्ड से उद्धृत, १९५७, पृष्ठ २५८)।

> "इस उदाहरण में चिकित्सा में एक समय रोगी चिकित्सक की अत्यधिक माँग करने लगता है, वह विशेष परीक्षण, अतिरिक्त औषधियाँ, अतिरिक्त मिलने की सुविधाएँ और इसी प्रकार की सुखकर बातों के लिए निवेदन करता है। जब उसके व्यवहार के इस प्रतिमान की चर्चा करने का प्रयत्न किया जाता है, तो रोगी चिकित्सक को दोषी ठहराता है कि वह उसमें रूचि नहीं लेता, वह उसे अस्वीकार करता है और उसे समझने का वस्तुतः प्रयत्न नहीं करता। इस उदाहरण में रोगी व्यवहार के इस प्रतिरूप को प्रदर्शित कर रहा था, जिसे उसने जीवन की अन्य परिस्थितियों में पहले कभी प्रकट किया था। वह चिकित्सक को अपनी बात उसी प्रकार से सुनाता था, जैसे कि विगत जीवन में कुछ व्यक्तियों को सुनाया करता था और चिकित्सक को उसी रूप में देखता था, जैसे कि अतीत में वह उन लोगों को देखता था, जो उसके निवेदनों को पूर्ण नहीं कर सकते थे। चिकित्सक के उपचार का एक कार्य रोगी के यह व्यवहार तथा उसकी भूमिका में कार्य करने वाले अभिप्रेरण को समझाने में सहायता करना था।"

विश्लेषण के अंत तक पहुँचने का संकेत अनेक रूपों में मिलता है। रोगी बचपन की उन स्मृतियों के प्रकट होने का प्रमाण देता है, जिनका प्रयोग महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रतिरोध के रूप में हुआ था। विश्लेषण तब तक समाप्त नहीं हो सकता, जब तक कि अन्यारोपण की परिस्थिति समाप्त न हो। इस अन्यारोपण का निश्चित रूप में अंत होना चाहिए और चिकित्सक तथा रोगी में सामान्य संबंध स्थापित होना चाहिए। कभी-कभी यह सर्वाधिक कठिन कार्य होता है।

अभी हमने मनश्चिकित्सा की तीन सामान्य प्रणालियों का वर्णन किया— १. निदेशात्मक-चिकित्सा, २. रोगी-केंद्रित-चिकित्सा और ३. मनोविश्लेषण। मनश्चिकित्सा की और भी प्रणालियाँ हैं, लेकिन अधिकांशतः वे इन प्रणालियों के विभिन्न तत्त्वों को मिलाती हैं या उनके किसी विशेष तथ्य पर बल देती हैं।

**मनश्चिकित्सा के विशिष्ट प्रकार (Special Psychotherapies) :**

हमने जिन प्रणालियों का वर्णन किया है, उनके अतिरिक्त मनश्चिकित्सा की और अनेक विशेष विधियाँ हैं। उनमें तीन ऐसी प्रविधियाँ हैं, कम-से-कम जिनका संक्षिप्त वर्णन होना आवश्यक है—(१) मनोरूपक (Psychodrama) (२) क्रीड़ा और मोचन-चिकित्सा (Play and Release Therapy) (३) समूहचिकित्सा ( Group Therapy )

**मनोरूपक :**

प्राचीन काल से नाटक का प्रयोग किसी-न-किसी रूप में मानसिक रोग को ठीक करने के लिए होता रहा है। इसके चिकित्सापरक महत्त्व अनेक दार्शनिकों ने बताए हैं और इसके प्रमाण उपलब्ध हैं कि प्राचीन रंगशालाओं में नाटकों का प्रदर्शन उनके चिकित्सा-संबंधी प्रभावों के कारण भी होता था। **मनोरूपक एक विशिष्ट प्रविधि है, जिसकी अभिकल्पना रोगी को उसकी समस्याओं से संबंधित क्रियाओं, परिस्थितियों और अनुमानों का अभिनय करने की सुविधा देने के लिए हुई थी—** ( मोरेनो, १९४६ )। इस प्रकार यह प्रविधि कुछ ऐसी सुविधा देती है, जिसे वे चिकित्साएँ सामान्यत: नहीं दे सकतीं, जिनमें केवल रोगी का उपचार किया जाता है और वह अपने भावों को केवल शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करने का अवसर पाता है। इससे भिन्न मनोरूपक न केवल वाणी के द्वारा, वरन् अभिनय के द्वारा भी व्यक्ति को वास्तविक परिस्थितियों में अपने-आप को व्यक्त करने की सुविधा देता है। यह व्यक्ति का उपचार उन सामाजिक परिस्थितियों में भी करता है, जो अतीत में उसकी असुविधाओं के स्रोत के सदृश होती हैं।

साधारणत: मनोरूपक में रोगी वास्तविक परिस्थितियों का या अनुमानों का स्वतंत्रता से, इच्छानुसार, बिना किसी बाधा के अभिनय कर सकता है (देखिए, चित्र ६.८)। प्रशिक्षित चिकित्सक अभिनेता उसे प्रारंभ करने में और उसकी समस्याओं के लिए महत्त्व रखने वाले व्यक्तियों का अभिनय करने में सहायता देता है। रोगी केवल उन परिस्थितियों का ही अभिनय नहीं कर सकता, जिनका उसने अनुभव किया हो, वरन् उनका भी करता है, जिनसे वह भयभीत था और जिनसे बचता था। कभी वही उनका अभिनय कर सकता है, जिन्होंने उसके जीवन को प्रभावित किया हो। जैसे-जैसे चिकित्सा आगे बढ़ती है, यह प्रमाणित हो सकता है कि वह कुछ विशेष कार्यों और परिस्थितियों से बचता है और उसे उन दृश्यों में रहने का आदेश देना आवश्यक हो जाता है, जो व्यथापूर्ण या अवांछनीय हों। इस प्रकार मनोरूपक मुक्त-साहचर्य के लिए और अनुभवों से मुक्त होने के लिए कुछ वैसी ही सुविधाएँ देता है, जो मनो-

विश्लेषण में प्राप्त होती हैं, लेकिन मनोरूपक इसे करने के लिए क्रीड़ा के माध्यम का प्रयोग करता है। समय-समय पर चिकित्सक उस परिस्थिति का विश्लेषण एवं व्याख्या करता है, जिसका अभिनय हुआ था।

चिकित्सा दर्शकों के सामने या उनके बिना भी हो सकती है। कुछ परिस्थितियों में दर्शकों को अभिनय में भाग लेने दिया जाता है और फलतः वे चिकित्सा में सहायक होते हैं। दूसरे उदाहरणों में रोगियों को ही दर्शक बनाया जा सकता है, जो स्वयं चिकित्सा के विषय होते हैं; क्योंकि उनकी ही अनेक समस्याओं का अभिनय होगा। इस चिकित्सा की अधिक सफलता चतुर मुख्य चिकित्सक पर है और सावधानी से प्रशिक्षित सहकर्मियों पर निर्भर करती है। यहाँ तक कि उन परिस्थितियों में भी अनेक रोगी इस प्रकार की अभिनय-विधि में भाग लेना असंभव समझते हैं।
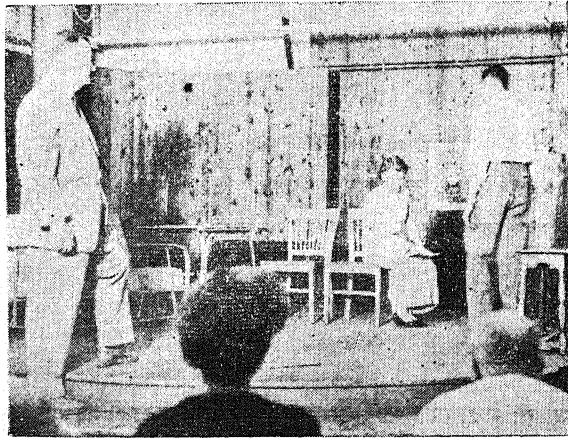
**चित्र ६.८ मनोरूपक, मनश्चिकित्सा की एक विशिष्ट प्रणाली। अधिकारी स्टॉफ के सदस्यों के निर्देशन में रोगी मानवीय संबंधों की विविध समस्याओं के समाधानार्थ मनोरूपक का प्रयोग अन्य कुछ रोगी-दर्शकों की उपस्थिति में करते हैं (नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ, पब्लिक हेल्थ सर्विस, सेंट एलिजाबेथ हॉस्पिटल, वाशिंगटन, डी० सी० के सहयोग से)।**

## क्रीड़ा और मोचन-चिकित्सा :

यह समझकर कि क्रीड़ा तनाव को कम करने के लिए और अंतर्दृष्टि को प्राप्त करने के लिए असाधारण अवसर देती है, चिकित्सकों ने ऐसी अनेक प्रविधियों

का अनुसंधान किया है, जो क्रीड़ा और मोचन-चिकित्सा के नाम से प्रसिद्ध हैं (रोजरसन, १९३९)। बच्चों पर ऐसी प्रविधियों का सफल प्रयोग होता है। वे क्रीड़ा का प्रयोग खिलौने से, कठपुतली के खेल से, रेखाचित्र से, प्रतिरूप बनाने से और अनेक क्रियाओं द्वारा करते हैं ( देखिए, चित्र ६.९ )।

क्रीड़ा-प्रविधि का सबसे अधिक महत्त्व व्यक्तित्व-अध्ययन में है। बच्चा बहुधा अपने-आप को प्रथम पुरुष (First Person) में कभी स्पष्ट नहीं कर सकता या नहीं करेगा। फिर भी वह अपने जीवन के आंतरिक रूप को पर्याप्त प्रकट कर सकता है, यदि उसे स्वतंत्रता से खिलौने से खेलने दिया जाए। वह बच्चा, जो अपने भय और संघर्ष को व्यक्त नहीं करेगा, जिस गुड़िये के साथ वह खेलता है, उसमें सुविधा से अपने इन भावों का प्रक्षेपण कर सकेगा। क्रीड़ा में अपमान, अरक्षा, माता-पिता की विरोधमूलक प्रवृत्ति, दमित घृणा, भय और विद्रोह के भाव स्वतंत्रता से प्रकट हो सकते हैं। परिणामत: क्रीड़ा-विधि का यदि भली-भाँति प्रयोग किया जाए, तो यह उन बच्चों को समझाने का अवसर देती है, जिन्हें अन्यथा समझना कठिन होता है।

**चित्र ६.९ मोचन-चिकित्सा। संवेगात्मक विकारों से ग्रस्त वयस्क अपनी कुछ भावनाओं को अंगुली-चित्रों (Finger-paintings) में मोचन (Release) करते हैं। (लाइफ मैगेजीन (c) टाइम, Inc)।**

क्रीड़ा-स्थिति भी चिकित्सापरक हो सकती है। क्रीड़ा की सुरक्षा और अनुज्ञता में बच्चा बिना दंड या प्रतिपीड़न के भय के भावों को प्रकट कर सकता है और इस तरह तनाव को दूर कर सकता है। सावधानी से नियोजित क्रीड़ा-स्थिति

बच्चे के भावों को ऊपर (सतह पर) आने देती है और इस प्रकार उसे उनका सामना करना, उन्हें नियंत्रित करना या उन्हें छोड़ देना सिखाती है। चूँकि क्रीड़ा-स्थिति यथार्थ जीवन का सूक्ष्म चित्र है, इसमें संवेदन अग्राह्यता घटित हो सकती है।

## समूह-चिकित्सा :

कुछ वर्षों से प्रशिक्षित मनोचिकित्सकों की संख्या इतनी यथेष्ठ नहीं है कि उन सब रोगियों की देखभाल कर सकें, जिन्हें इस चिकित्सा से लाभ हो सकता है। अंशतः कुछ इसी हेतु समूहों के उपचार की प्रणालियों की खोज की गई ( क्लैपमैन, १९४६ )। समूह-चिकित्सा, जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, अभाव-पूर्ति उपाय से कुछ अधिक है, इसका अपना भी महत्त्व है। रोगी की असुविधाएँ बहुधा पारस्परिक संबंधों की रहती है, समूह एक चिकित्सापरक इकाई के रूप में कार्य करता है, जिसके द्वारा रोगी को सामाजिक समायोजन की प्रविधियों में पुनर्शिक्षित किया जा सकता है।

कभी-कभी सामूहिक चिकित्सा किसी अन्य वैयक्तिक चिकित्सा-विधि के पूरक का कार्य करती है, कभी वह उससे प्रतिस्थापक और कभी वह उसके परिणाम के रूप में कार्य करती है। वह रोगी, जो वैयक्तिक चिकित्सा ले रहा है, जब यह देखता है कि वैयक्तिक चिकित्सा ( Individual Therapy ) की अपेक्षा समूह-चिकित्सा उसे अधिक लाभ पहुँचाएगी, तब वह उसे ही प्रारंभ करता है अथवा यदि प्रारंभ कर चुका है, तो उसी को आगे जारी रखता है। समूह-चिकित्सा के विविध रूप हैं, किंतु इसके साधारण रूप में चिकित्सक के निर्देशन में लगभग एक घंटे की बैठक के लिए समूह का एकत्रित होना अपेक्षित रहता है। चिकित्सक स्वयं पृष्ठभूमि में रहने का प्रयास करता है और समूह में व्यक्तियों को स्वतंत्रता से वार्तालाप करने का अवसर देता है। जैसे-जैसे समूह की बातचीत आगे बढ़ती है, समूह के कुछ सदस्य अपनी समस्याओं और अपने लक्षणों की चर्चा करने लगते हैं। अन्य सदस्यों के दृष्टिकोण को भी उपस्थित किया जाता है और धीरे-धीरे समूह का प्रत्येक सदस्य अपने कुछ अनुभवों, अभिवृत्तियों और भावों को बीच में सुनाने को तत्पर हो जाता है। समूह के कुछ सदस्य दूसरों की अपेक्षा अधिक लाभांवित होते हैं; परंतु कुछ-न-कुछ लाभ बहुसंख्या में सदस्य उठाते हैं। केवल इतना ही जानना कि उनकी समस्याएँ अनन्य नहीं हैं, पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है—विभिन्न दृष्टिकोणों से परिस्थितियों और अभिव्यक्तियों को देखने का अवसर प्राप्त करना भी महत्त्वपूर्ण है। यह चिकित्सा व्यक्ति की—एकाकीपन और स्वीकृति के भाव से मुक्त होने में, आत्मचेतना को भुलाने में, दृढ़ चेतना का सुधार करने में, विद्रोह के भाव को प्रकट करने में और परितुष्टि का प्रतिस्थापक प्राप्त करने में भी —सहायता कर सकती है।

समूह-प्रणाली का दूसरा महत्त्व उससे प्राप्त हो सकने वाली सहायता है। एकाकी-चिकित्सा में कुछ रोगी निर्भरता को असहनीय समझते हैं और चिकित्सक की सहायता को स्वीकार नहीं कर सकते। कुछ रोगी सहायता को सहज ही स्वीकार कर लेते हैं और उसके बंद किए जाने पर उन पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती है। समूह-चिकित्सा में समूह के सदस्य, किसी एक व्यक्ति का आभार माने बिना ही परस्पर-सहायता करते हैं और एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं।

मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्ति की देखभाल के लिए अनेकों प्रकार की जानकारी आवश्यक होती है।

**चित्र ६.१० मानसिक चिकित्सालय में रोगियों का व्यापक परीक्षण किया जाता है। चिकित्सा प्रारंभ करने से पूर्व रोगी की समस्या से संबंधित सूचनाएँ एकत्रित की जाती हैं—उसका जीवन-वृत्त, पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा उसकी शारीरिक अवस्था। जीवन-वृत्त लेने में निपुण, समाजशास्त्र में प्रशिक्षित, कोई सामाजिक कार्यकर्त्ता रोगी के परिवार के सदस्यों से उनकी समस्याओं और उसके जीवन-वृत्त के संबंध में वार्तालाप करता है। काय-चिकित्सीय परीक्षण भी पूर्ण रूप से होता है (स्टैंडर्ड आयल कंपनी, एन० ज०)। मस्तिष्क-तरंगों का अभिलेखन लेकर अध्ययन किया जाता है कि कोई ट्यूमर, मिरगी या कोई अन्य विकार तो मस्तिष्क में नहीं है। मानसशास्त्रीय परीक्षण किए जाते हैं (मेंटल हेल्थ फिल्म बोर्ड)। चिकित्सक रोगी से समालाप करता है ( डेविड लिंटन )।**

वैयक्तिक चिकित्सा में स्थिति कुछ अस्वाभाविक रहती है; क्योंकि रोगी किसी एक व्यक्ति के सामने अपने भावों को व्यक्त करता है और यह अनिश्चित रहता है कि अन्य व्यक्तियों पर उसका क्या प्रभाव होगा। समूह में उसकी संवेगात्मक अभिव्यक्ति सामाजिक परिवेश से मिलती-जुलती स्थिति में व्यक्त होती है और समूह के विविध सदस्य विभिन्न लोगों का, प्रत्येक रोगी के लिए भिन्न अर्थ रखते हुए, प्रतिनिधित्व करते हैं। यह स्थिति अधिक यथार्थ है, दैनिक जीवन की भाँति संवेगों को अभिव्यक्त होने का अवसर देती है।
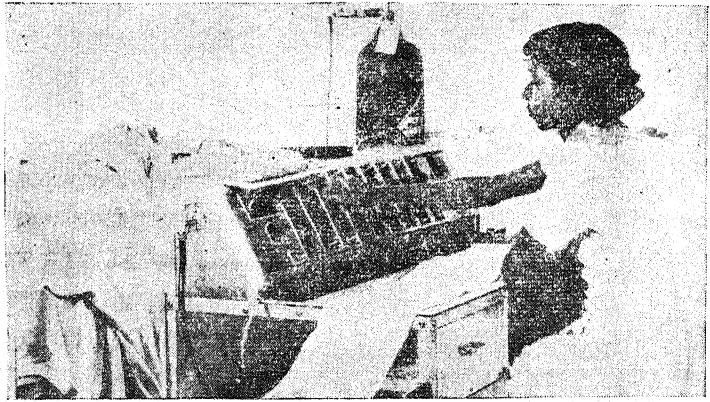
चित्र ६-१० के क्रम में

सफलता अंशतः चिकित्सक की बुद्धिमानी पर निर्भर करती है। उसे अधिकतर पृष्ठभूमि में रहना चाहिए, किंतु उसे जानना चाहिए कि वह कब समूह में भाग ले, केवल आवश्यक मार्ग-दर्शन के लिए ही नहीं, वरन् एक रोगी द्वारा दूसरे रोगी पर हानिकारक मौखिक आक्रमण होने पर उसे बचाने के लिए भी चिकित्सक को इतना निपुण होना चाहिए कि वह समूह पर अपना प्रभुत्व स्थापित न कर ले और उसकी स्वतः-स्फूर्ति क्रियाओं को समाप्त न कर दे।

वैयक्तिक चिकित्सा के पूरक रूप में अथवा वैयक्तिक-चिकित्सा से प्रारंभ किए गए उपचार को आगे बढ़ाने के लिए यह प्रणाली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है।

## व्यक्तिगत समायोजन :

मानसिक स्वास्थ्य, जैसा कि हम देख चुके हैं, अमेरिका की प्रथम स्वास्थ्य-समस्या है। इसे स्वीकार करके जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के नेतागण इस संबंध में कुछ करने के लिए प्रयत्नशील हैं। मानसिक स्वास्थ्य पर अनुसंधान-कार्य का प्रचुर विस्तार अस्पतालों, विश्व-विद्यालयों, सरकारी और अन्य संस्थाओं द्वारा हुआ है। मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं के स्वरूप और परिमाण से संबंधित शिक्षा सामान्य जनता को देने के लिए अभियान प्रारंभ किया गया। अनेक राज्यों और नगरों ने निदानालयों को स्थापित किया है, जहाँ बच्चे और वयस्क अपनी समायोजन-संबंधी समस्याओं को प्रस्तुत कर सकते हैं और उपयुक्त सहायता प्राप्त करते हैं। **निदानालयों** का सामान्य उद्देश्य प्रारंभिक अवस्थाओं में ही संवेगात्मक विकारों का पता लगाना और उन्हें गंभीर बनने से रोकना है। अनेक महाविद्यालयों ने विद्यार्थियों की सहायता के लिए मनोवैज्ञानिक निदानालयों की व्यवस्था की है। मानसिक स्वास्थ्य-विज्ञान, समायोजन आदि विषयों को उच्च विद्यालयों और महाविद्यालयों एवं वयस्कों के लिए संध्याकालीन क्लासों के पाठ्यक्रम में व्यापक महत्त्व दिया गया है। विविध क्षेत्रों से किए गए इन सुसंगठित प्रयासों से मानसिक स्वास्थ्य की सामान्य उन्नति होनी चाहिए।

अंत में, मानसिक स्वास्थ्य वस्तुतः व्यक्ति की समस्या है। व्यक्ति है, जिसकी एक समस्या है और उसी व्यक्ति को ही समस्या को सुलझाना होगा।

प्रत्येक व्यक्ति को निश्चित रूप से अपने लिए यह सीखना चाहिए कि संतोष-जनक समायोजन को कैसे प्राप्त करना चाहिए और कैसे बनाए रखना चाहिए। चिकित्सालय, परामर्शदाता, चिकित्सक और साहित्य सहायता कर सकते हैं, किंतु वे तभी सहायता करते हैं, जब व्यक्ति स्वयं अपनी सहायता करता है। जिस विद्यार्थी ने इस अध्याय का और पूर्व-विवरण का अध्ययन किया है, उसे मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं को अब अच्छी तरह समझना चाहिए और वह स्वयं अपनी एवं दूसरों की सहायता करने की स्थिति में है। इस ज्ञान को पूर्ण करने के लिए विद्यार्थी को केवल दुर्बल मानसिक स्वास्थ्य के लक्षणों से और उसके उपचार की प्रणालियों से ही परि-चित नहीं होना चाहिए, वरन् अच्छे मानसिक स्वास्थ्य की विशेषताओं से एवं सुसमायोजित व्यक्तित्व के स्वरूप से भी परिचित होना चाहिए। इस अंतिम अनुभाव में इसी का विवेचन किया गया है। इसमें हम ऐसा परामर्श नहीं दे सकते जो उत्तम व्यक्तिगत समंजन की गारंटी ले, हम सुसमायोजित व्यक्ति के लक्षणों को बता सकते हैं। उनका ज्ञान विद्यार्थी को उत्तम व्यक्तिगत समायोजन उपलब्ध करने में सहायता दे सकता है।

## यथार्थ सिद्धांत :

संभवतः सुसमायोजित व्यक्ति की सर्वाधिक सामान्य विशेषता है—उसका अपने प्रति 'यथार्थवादी' होना। वह अपने लिए अप्राप्य लक्ष्य निर्धारित करके अपने को मूर्ख नहीं बनाता। वह ऐसे लक्ष्यों को निर्धारित करता है, जिन्हें प्राप्त करना संभव होता है तथा अनावश्यक द्वंद्वों से मुक्त रहता है। इसका तात्पर्य है कि वह उसे ही खोजने का प्रयत्न करता है, जिसे यथार्थ में प्राप्त कर सकने का उसे विश्वास रहता है और उसी के अनुसार अपनी चेष्टाओं तथा उद्देश्यों को नियोजित करता है। वह वस्तुनिष्ठ दृष्टि से अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का सामना करता है, ठीक उसी तरह, जैसे कोई व्यक्ति गणित की समस्या का समाधान करता है, मोटर के पुर्जों को ठीक से लगाता है या मकान बनाता है। वह अपने को उपयुक्त तथ्यों से परिचित कराता है और भली-भाँति समझ लेता है कि उसकी समस्या क्या है, इसके बाद वह उसे सुल-झाने की योजना बनाता है।

ये अति सामान्य कथन हैं। अब हम अधिक गंभीरता से देखेंगे कि एक समायोजित व्यक्ति कैसे अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का वस्तुतः समाधान करने का प्रयत्न करता है।

### आत्मबोध की उपलब्धि :

हमने देखा कि कुसमायोजित व्यक्ति मूलतः वह है, जो स्वयं को यथार्थ उद्देश्य के प्रति धोखा देता है। वह स्वभावतः आत्मवंचना करता है; क्योंकि वह द्वंद्व और कुंठा से उत्पन्न चिंता को दूर करने के लिए रक्षा-युक्तियों का सहारा लेता है। स्वाभाविक है कि सुसमायोजित व्यक्ति कुसमायोजित व्यक्ति के ठीक विपरीत होता है।

### चिंता को स्वीकार करना :

स्वस्थ समायोजन के लिए चिंता से दूर भागने की अपेक्षा उसे स्वीकार करना आवश्यक है। चिंता भयोत्पादक स्थितियों के अनुभवों का स्वाभाविक परिणाम है। अतः, चिंता को पूर्णतः मिटाया नहीं जा सकता। उसका सामना करके हम उसे स्वीकार करते हैं और अंत में यह कम हो जाती है।

यह समस्या दंत-चिकित्सक की कुर्सी के भय सदृश है। सभवतःकिसी को भी दाँतों पर वेधन-मशीन चलवाना अच्छा नहीं लगता, किंतु कुछ व्यक्तियों को इससे संघातिक भय लगता है। पीड़ा के प्रति संवेदनशीलता में व्यक्तियों में अंतर रहता है, किंतु इसमें संदेह है कि दंत-चिकित्सकों से संबंधित अभिवृत्तियों से भी इस प्रकार के अंतर का कोई विशेष संबंध है। अपरिहार्य चिंता को स्वीकार करना अथवा उससे बचना एक महत्त्वपूर्ण अंतर है। जो उसे स्वीकार करते हैं, वे अनुभव करते हैं कि वह विशेष कष्टप्रद नहीं है तथा जो उसे स्वीकार नहीं करते, वे उसे यथार्थ से दसगुणा अधिक कष्टप्रद पाते हैं। यही बात उन अन्य परिस्थितियों के लिए भी कही जा सकती है, जिनके लिए हम चिंतित रहते हैं। बहुधा देखा गया है कि साहसी और कायर सैनिक में यही अंतर है कि साहसी सैनिक भय को स्वीकार करता है, जब कि कायर सैनिक पर भय विजय प्राप्त कर लेता है। राष्ट्रपति रुजवेल्ट का प्रसिद्ध कथन है—"हमें भय के अतिरिक्त और किसी से भय नहीं है।" और वह इसी तथ्य को पुष्ट करता है।

### रक्षा-युक्तियों का परित्याग (Abandoning-defence Mechanisms) :

सुसमायोजित व्यक्ति कुछ चिंता स्वीकार करता है, अतएव वह सुरक्षा-प्रक्रिया के अति प्रयोग से दूर रहता है। ये प्रक्रियाएँ मुख्यतः चिंता के विरुद्ध सुरक्षा के लिए हैं। ये कुसमायोजित व्यक्ति की विशेषताएँ भी हैं। यदि कोई चिंता को स्वीकार करता है और उसे सहन करता है, तो रक्षा-युक्तियों के प्रयोग की कोई विशेष अपेक्षा नहीं रहती।

वस्तुतः समायोजित व्यक्ति बहुधा हँसी में ही अपनी रक्षा-युक्तियों के प्रयोग की प्रवृत्ति को समझ सकता है। वह विद्यार्थी, जो कम अंक प्राप्त करने पर अपने अध्यापक को दोष देना चाहता है, वस्तुतः वह कक्षा में अपनी अनुपस्थिति, भली-

भाँति नोट तैयार न करने और अध्ययन न करने के अपने दोष को समझ सकता है। वह व्यक्ति, जो यह अनुभव करना चाहता है कि उसके मित्र उसका विरोध कर रहे हैं, अपने को मित्रों के प्रति अपने भय और घृणा के भावों के प्रक्षेपण का संदेह कर सकता है। इस प्रकार की रक्षा-युक्तियों को ढूँढ़ने को का कार्य दूर तक हर व्यवहार के पीछे किया जा सकता है। तब भी यह समझ लेने पर वास्तव में उनका प्रयोग किसके लिए किया गया है, उनके अति-प्रयोग के लिए व्यक्ति को सावधान करता है।

### उद्देश्यों को समझना (Understanding Motives) :

रक्षा-युक्तियाँ किसी व्यक्ति के उद्देश्यों के चारों ओर धुएँ के आवरण के सदृश हैं, रक्षा-युक्तियों को समझ लेने पर व्यक्ति अपने उद्देश्यों को समझने और स्वीकार करने के लिए श्रेष्ठतर स्थिति में होता है। उद्देश्यों को पहचानना सदैव सरल नहीं होता, परंतु सुसमायोजित व्यक्ति कुसमायोजित व्यक्ति की अपेक्षा उससे अधिक अच्छी तरह परिचित है। जब वह कम अंक प्राप्त करने पर अध्यापक को दोष देता है, तब वह अपने से प्रश्न कर सकता है—वास्तव में मैं क्या चाहता हूँ ? मेरे उद्देश्य और लक्ष्य क्या हैं ? ईमानदार उत्तर—कम-से-कम जो अधिक संगत है—वह यह हो सकता है कि वह बिना परिश्रम किए अच्छे अंक प्राप्त करना चाहता है। इसे अपने-आप स्वीकार करते हुए वह अनुभव कर सकता है कि इस प्रकार के लक्ष्यों का संबंध बहुधा अप्राप्य रहता है। तब वह दूसरों को दोष देने से उत्पन्न विरोध और चिंता के बिना ही यह निर्णय ले सकता है—'कार्य करने में भलाई है'—या 'कम अंक और कम परिश्रम के संबंध को मैं स्वीकार करूँगा।'

अध्यापक सदैव निर्दोष नहीं होते, वे ग्रेड या अंक देने में भूल करते हैं। किंतु इसे स्वीकार करना चाहिए कि वे प्रायः उचित ग्रेड देने का अपनी ओर से सदा यथासंभव प्रयत्न करते हैं। एक ही उदाहरण इसे स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है, निम्न ग्रेड पाने के लिए अध्यापकों की अपेक्षा विद्यार्थियों का ही दोष अधिक रहता है।

### उद्देश्यों और लक्ष्यों को परिवर्तित करना (Altering Motives & Goals) :

सुसमायोजित व्यक्ति अपने उद्देश्यों और लक्ष्यों को सुरक्षा-प्रक्रियाओं से छिपाए बिना ही परिवर्तित कर सकता है। कभी-कभी उद्देश्य को समझने मात्र से वह सहज ही उसे छोड़ देता है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति जो सदा अधिकारी-वर्ग के विरुद्ध विद्रोह करता है, अपने उच्चतर अधिकारियों से निदेश लेना अस्वीकार करता है और व्यवसाय के नियमों की अवहेलना करता है। यदि वह समझ ले कि उसका विद्रोह वस्तुतः उसके कठोर एवं अहंकारी माता-पिता के विरुद्ध है और यह कि

वह अधिकारी-वर्ग को अपने माता-पिता समझने के कारण विरोधी व्यवहार करता है, तो वह शीघ्र ही अपने व्यवहार को परिवर्तित कर लेगा। एक व्यक्ति प्रतिष्ठा उपलब्ध करने के अपने तीव्र प्रेरक को जान लेने पर प्रतिष्ठा में तीव्र रुचि कम कर सकता है।

कुछ लोग, यह जान लेने पर कि उन्होंने अन्य व्यक्तियों के उद्देश्यों को पूर्ण रूप से ग्रहण कर लिया है, अपने लक्ष्यों को सहसा परिवर्तित कर लेते हैं। उदाहरणतः यह उन व्यावसायिक लक्ष्यों के लिए सत्य है, जिन्हें माता-पिता अपने नवयुवक पुत्रों के लिए निर्धारित करते हैं। एक लड़का डाक्टर बनने के निश्चय के साथ कालेज में भरती होता है, पुनः चिकित्सा में रुचि के अभाव और योग्यता की कमी के कारण वह कुंठा अनुभव करने लगता है। चिंता के अत्यधिक हो जाने पर वह अपने उद्देश्यों का पुनःपरीक्षण करता है और अनुभव करता है कि डाक्टर बनना पूर्णतः उसका अपना उद्देश्य नहीं है तथा वह अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार दूसरा व्यावसायिक लक्ष्य चुनने की स्थिति में है।

अपने उद्देश्य को समझ लेने का यह तात्पर्य नहीं है कि वह उसका परित्याग कर ही सकता है अथवा नवीन अनुकूल लक्ष्य को ग्रहण कर सकेगा। अंतर्दृष्टि मनश्चिकित्सा में रोगी बिना विशेष सुधार की संभावना के प्रायः इस तथ्य को समझ लेता है। तथापि अंतर्दृष्टि द्वारा अक्सर व्यक्ति अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों को परिवर्तित भी कर सकता है तथा अपने समायोजन में उन्नति करता है।

लक्ष्य के सर्वांगीण परिवर्तन की आवश्यकता नहीं रहती। कभी-कभी थोड़े से परिवर्तन से प्रयोजन पूर्ण हो सकता है। एक विद्यार्थी ए-ग्रेड को प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा के लिए अत्यधिक परिश्रम से कुंठित हो, सी-ग्रेड प्राप्त करने की अपेक्षा, बी-ग्रेड स्वीकार करना चाहेगा, जिसे प्राप्त करने की योग्यता उसमें है। अथवा वह कम प्रतिष्ठित व्यवसाय या कम वेतन स्वीकार करता है जो कम कुंठाजनक होता; क्योंकि वह उसकी योग्यताओं और अन्य प्रेरकों के अधिक अनुकूल है।

**अंतर्द्वन्द्व और कुंठा को कम करना (Reducing Conflict & Frustration) :**

हमारा समाज इतना जटिल तथा हमारे लक्ष्य इतने व्यापक हैं कि सर्वोत्तम अनुकूल परिस्थितियों में भी द्वंद्वों और कुंठाओं से पूर्णरूपेण मुक्त होने की संभावना कम है। एक सुसमायोजित व्यक्ति इस तथ्य से उसी प्रकार पर्याप्त परिचित होता है, जिस प्रकार वह चिंताओं को स्वीकार करना सीखता है और चेष्टा करता है कि द्वंद्व एवं कुंठा को न्यूनतम रख सके। इस अनुच्छेद में कुछ ऐसी प्रविधियों का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रयोजन की पूर्ति करती हैं।

### तृप्तियों को स्थगित करना (Postponding Satisfactions) :

किसी द्वंद्व को समाप्त करने की एक विधि है—अंततः दो विरोधी लक्ष्यों में से एक की पूर्ति या तृप्ति को स्थगित करना। यदि कोई व्यक्ति एक ही समय में भूखा और निद्रालु दोनों है, तो पहले वह खा सकता है, तदुपरांत सो सकता है। जो विद्यार्थी कालेज में उत्तम ग्रेड पाना चाहता है और प्रमोद भी चाहता है, वह आज रात्रि में अध्ययन कर सकता है और कल मनोरंजनार्थ जा सकता है। यह पर्याप्त सुगम सिद्धांत है। अर्थात् यह स्थगित करता है, किंतु साथ ही तृप्ति भी देता है, कुछ समय के लिए एक उद्देश्य की पूर्ति करता है और कुछ समय उपरांत दूसरे उद्देश्य की पूर्ति की भी योजना बनाता है। इस प्रकार की योजना से उद्देश्यों के मध्य होने वाला द्वंद्व कम और अपेक्षाकृत कम समय में सीमित हो जाता है।

### कुंठा के प्रति सहिष्णुता (Frustration Foterance) :

तृप्ति के स्थगित होने पर व्यक्ति कुछ समय के लिए कुंठा अनुभव करता है। अतएव, उसमें कुंठा सहन करने की कुछ योग्यता होनी चाहिए। वस्तुतः कुंठा के प्रति सहिष्णुता भी, चिंता को स्वीकार करने के सदृश सुसमायोजित व्यक्ति का लक्षण है। स्वस्थ व्यक्ति जीवन की सामान्य यथार्थ स्थितियों के ही सदृश कुंठाओं को भी स्वीकार करता है। वह सीखता है कि वह जिसे चाहता है, और जब चाहता है उसे सदैव प्राप्त नहीं कर सकता। जिसे वह प्राप्त नहीं कर सकता, उसके लिए क्षोभ करना छोड़ देता है और अपने अपेक्षाकृत कम आवश्यक लक्ष्यों को अपूर्ण छोड़ देता है। एक बार इस स्थिति को स्वीकार कर लेने पर हताशा इतना अधिक कुंठा-प्रद नहीं रह जाती।

कुंठा को सहने की क्षमता, आदतों और अभिवृत्तियों के सदृश, अभ्यास से अर्जित की जा सकती है। यह अभ्यास व्यक्ति छोटी-छोटी बातों से प्रारंभ करता है। जैसे—बस के लिए लंबी प्रतीक्षा, गाड़ी खड़ी करने के लिए स्थान का अभाव अथवा किसी प्रिय मित्र द्वारा मिलन-प्रस्ताव की अपेक्षा आदि से उत्पन्न कुंठाओं को सहन करना। जब वह छोटी-छोटी कुंठाओं को सहज स्वीकार करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है, तो वह बड़ी कुंठाओं को भी सुलझाने के लिए तत्पर हो जाता है। जिन समस्याओं को सुलझाया जा सकता है, उन्हें समाप्त करना उद्देश्य नहीं है, वरन् अपरिहार्य कुंठाओं को सहन करना है।

### संवेगों को अभिव्यक्त करता (Expressing Emotions) :

हम देख चुके हैं कि कुछ अंतर्द्वंद्वों का कारण संवेगों का, विशेषतः विद्वेषपूर्ण संवेगों का, मन में ही दमन करना या दबाना है। पूर्वानुभवों द्वारा वह क्रोधपूर्ण

व्यवहार से अत्यधिक भयभीत है। दूसरी ओर सुससायोजित व्यक्ति वह है, जो बिना मित्रों को खो देने के भय अथवा लोगों की अवहेलना के भय के अपने संवेगों को कुछ स्पष्टता से अभिव्यक्त कर सकता है। वह जानता है कि अन्य व्यक्ति भी कभी-कभी उसके क्रोध अथवा आकुलता के प्रदर्शन की अपेक्षा करते हैं तथा वह उन पर क्रोध प्रकट कर सकता है। वह जानबूझ कर भी दूसरों को रुष्ट कर सकता है, किंतु अपने संचित क्रोध को प्रकट कर लेने पर वह स्वस्थ अनुभव करता है। वह संवेगों के तीव्र और अनुचित प्रदर्शन तथा उसके पूर्ण दमन के मध्य संतुलन की व्यवस्था का प्रयास करता है।

इसकी उत्तम विधि है, समाज द्वारा स्वीकृत विधिओं से संवेगों की अभिव्यक्ति करना। बिना क्रोधित हुए चतुर व्यक्ति दृढ़ता से कार्य कर सकता है तथा स्पष्ट रूप से व्यक्त करता है कि किन व्यवहारों से वह क्रुध होता है। परिहास द्वारा वह अप्रसन्नता को प्रकट कर सकता है और साथ ही उस पर हँसता भी है। परिपक्व रूप से संवेगों को अभिव्यक्त करके वह मित्रता एवं दूसरों के सम्मान को चोट न पहुँचाने का प्रयत्न करता है। इसके लिए बुद्धिमानी एवं चतुराई की आवश्यकता है और चतुराई के लिए अभ्यास अपेक्षित है, किंतु सुसमायोजित व्यक्ति प्रायः इसे सीख लेते हैं।

### उपयोगी कार्य (Useful Work) :

उपयोगी अथवा अन्य कार्यों में व्यस्त रहना स्वस्थ व्यक्ति का एक और लक्षण है। अति पुनरुक्तिपूर्ण क्रियाओं के अतिरिक्त हमारे अधिकांश कार्य किस लक्ष्य की ओर निर्दिष्ट रहते हैं, अतएव इससे किसी उपलब्धि का संतोष प्राप्त होता। यह व्यक्ति के ध्यान को भी अन्य बातों से दूर ले जाता है और द्वंद्वात्मक लक्ष्यों को कहीं पृष्ठभूमि में धकेल देता है। अतः, उपयोगी कार्य द्विरूपात्मक उपचार है। यह कुछ प्रेरकों को तृप्त करता है और कुछ को क्षीण करता है। स्वयं यह किसी द्वंद्व का निश्चित उपचार नहीं है, कुछ अति कुसमायोजित व्यक्ति भी परिश्रम करते हैं। अन्य विधियों के सहयोग से उपयोगी कार्य स्वस्थ व्यक्ति को स्वस्थ रहने में सहायता करता है।

## सारांश

१. संयुक्त राज्य अमेरिका में स्वास्थ्य समस्याओं में मानसिक रोग सर्वाधिक व्यापक और बोझिल है, चिकित्सालय के आधे से अधिक पलंग मानसिक रोगग्रस्त व्यक्तियों से भरे रहते हैं।

२. मानसिक चिकित्सालयों में जनसंख्या का सापेक्ष अनुपात अपेक्षाकृत स्थायी रहता है। इससे प्रकट है कि मानसिक रोग के आनुवंशिक एवं पर्यावरणगत कारण प्रायः समान रहते हैं। सापेक्ष आयतन तथा मानसिक रोगों के प्रकार सामाजिक वर्गों से सह-संबंधित हैं। गंभीर दीर्घकालीन मनोविक्षिप्ति निम्न वर्गों में तथा मनस्तापी विकार उच्च वर्गों में अधिक प्रचलित हैं।

३. प्रायः डेढ़ सौ वर्ष पूर्व तक यह विश्वास काफी प्रचलित था कि प्रेतात्माओं के वश में होने पर मानसिक रोग होता है। पिछली डेढ़ शती से पागलों के साथ दयापूर्ण व्यवहार किया जाने लगा है। मानसिक रोगग्रस्त रोगियों को समझने और सहायता करने का आधुनिक स्वास्थ्य अभियान तो केवल पचास वर्ष पुराना है।

४. चिकित्सा के क्षेत्र में भेषज-चिकित्सा की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक चिकित्सा की उपचार-विधियों पर अधिक बल दिया जा रहा है, साधारण रोग होने पर या शीघ्रता से ही ठीक होने वाले रोगों के उपचार पर भी ध्यान दिया जा रहा है।

५. किसी रोग का उपचार 'चिकित्सा' कहलाता है। मानसिक रोग की चिकित्सा के दो प्रकार हैं :—१. भेषज-चिकित्सा और २. मनश्चिकित्सा। भेषज-चिकित्सा के अंतर्गत मनोशल्य, आघात-चिकित्सा, निद्रापक और रसायन-चिकित्सा है। प्रथम दो प्रकारों में विद्युत्-आघात उपचार का प्रयोग अधिक व्यापक रूप से होता है। संवेदनमदक और रसायन-चिकित्सा का अधिकतर प्रयोग रोगी पर किसी सीधे और हितकर प्रभाव को उत्पन्न करने की अपेक्षा उसे किसी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा के अनुकूल तैयार करने के लिए किया जाता है।

६. मनश्चिकित्सा के उद्देश्यों के अंतर्गत ( अ ) परिवेश-परिवर्तन ( ब ) सहायता करना ( स ) अंतर्दृष्टि उपलब्ध करना—का कुछ सामूहिक स्वरूप आता है। प्रथम दो साधारण और क्षणिक विकारों के लिए उपयोगी हैं, अंतर्दृष्टि-चिकित्सा का उपयोग अधिकतर गंभीर और दीर्घकालीन रोगों के लिए किया जाता है।

७. चिकित्सा के प्रमुख तीन प्रकार हैं : १. निदेशात्मक चिकित्साएँ, २. रोगी-केंद्रित चिकित्सा तथा ३. मनोविश्लेषण। निदेशात्मक चिकित्सा परिवेश-परिवर्तन व्यक्ति की पुनर्शिक्षा और पीड़ाजन्य स्थितियों की संवेदन अग्राह्यता पर बल देती है। रोगी-केंद्रित चिकित्सा रोगी के लिए अनुज्ञात्मक स्थिति प्रस्तुत करती है और उसे अपनी समस्याओं को अभिव्यक्त करने एवं सुलझाने में सहायता करती है।

८. मनोविश्लेषण चिकित्सा सिगमंड फ्रायड के सिद्धांतों का अनुसरण करती है। वह मुक्त-साहचर्य पर बल देती है और रोगी की अभिवृत्ति का अन्यारोपण चिकित्सक में करने का प्रयास करती है। यह स्वप्न-विश्लेषण का उपयोग भी कर सकती है।

९. मनोरूपक एक विशेष प्रविधि है, जो रोगी को उसके जीवन की कल्पनाओं तथा स्थितियों का अभिनय करने की सुविधा देती है। क्रीड़ा और निर्मुक्त-चिकित्सा का प्रयोग प्रधानत: बालकों के लिए होता है। रोगियों को अपने संवेगों को क्रीड़ाओं या अभिनयों द्वारा अभिव्यक्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। समूह-चिकित्सा, विशेष प्रविधि का एक अन्य प्रकार, रोगियों को निपुण चिकित्सक के निदेशन में, अपनी समस्याओं को परस्पर व्यक्त करने की सुविधा देती है।

१०. स्वस्थ व्यक्ति अपने वैयक्तिक समायोजन को उन्नत करने का प्रयास निम्नलिखित रूपों में कर सकता है—( अ ) आत्म अवबोध प्राप्त करने का प्रयास ( ब ) लक्ष्यों में परिवर्तन ( स ) अंतर्द्वंद्व तथा कुंठा को कम करने के विविध उपाय सीखना।

११. आत्मबोध में ( अ ) चिंता को स्वीकार करना व सहन करना सीखने से ( ब ) सुरक्षा-प्रक्रियाओं के प्रयोग का निवारण करने से तथा ( स ) अपने उद्देश्यों को समझने का प्रयास करने से सहायता होती है।

१२. लक्ष्यों को सही रूप में समझ लेने पर उनको प्राय: छोड़ा जा सकता है। यथार्थमूलक एवं प्राप्त किए जा सकने वाले स्तर पर लक्ष्यों को निर्धारित करने से अनावश्यक कुंठा से बचा जा सकता है।

१३. (अ) कुछ समय के लिए तृप्ति को स्थगित करने से, ( ब ) हताशा-सहिष्णुता के अर्जन से ( स ) समाज-अनुमोदित भावना-प्रकाशन की विधियों को खोजने से तथा ( द ) उपयोगी कार्य में व्यस्त रहने से अंतर्द्वंद्वों और कुंठाओं को कम किया जा सकता है।

## पठनार्थ सुझाव :

Bernard, H. W. Toward Better Personal Adjustment, New-York : McGraw-Hill, 1951.

इस पुस्तक में वैयक्तिक समंजन को विकसित करनेवाली विधियों का विवरण दिया गया है।

Bordin, E. S. Psychological Counseling Methods-New-York : Appleton-Century, Crofts, 1955.

साधारण व्यक्तिगत समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों की सहायतार्थ प्रयुक्त परामर्श-विधियों का विवरण।

Dollard, J., Auld, F., and White, A. M. -Steps in Psychotherapy, New York : Macmillan, 1953.

मनश्चिकित्सा के विकास का इतिहास।

Dollard, J , and Miller, N. E. Personality and Psychotherapy, New York : McGraw-Hill, 1950.

व्यक्तित्व और मनश्चिकित्सा का विश्लेषण, वैयक्तिक समंजन में अधिगम के महत्त्व पर बल।

Dorcus, R. M. (ed.) Hypnosis and its Therapeutic Applications, New York : McGraw-Hill, 1956.

आधुनिक महत्त्वपूर्ण उपचार, सम्मोहन, (हिपनोसिस) के स्वरूप और प्रयोगों पर अधिकारी विद्वानों के लेख।

Freud, S. The Basic Writings of Sigmund Freud. ( ed. by A. A. Brill), New York : Modern Library, 1938

मनोविश्लेषण की विधियों और सिद्धांतों पर मूल पुस्तक।

Garfield, S. L. Introductory to Clinical Psychology, New York, Macmillan, 1957.

व्यक्तित्व तथा मानसिक विकारों और मनश्चिकित्सा की विधियों के मूल्यांकन पर परिचयात्मक पुस्तक।

Ingham, H. V., and Love, L.R. The Process of Psychotherapy. New York McGraw-Hill, 1954.

मनश्चिकित्सा के प्रयोग का सामान्य सारांश।

Mc Kinney, F. Psychology of Personal Adjustment (Rev. Ed.) New York : Wiley, 1949.

वैयक्तिक समंजन के विकास की समस्याओं पर कालेज के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी पुस्तक।

Moreno, J. L., The Theatre of Spontaneity : An Introduction to Psychodrama, New York : Beacon House, 1947.

मनश्चिकित्सा की प्रविधि के रूप में मनोरूपक का वर्णन ।

Rogers, C. R., Client-centered Therapy. Boston : Houghton, Mifflin, 1951

अनिदेशात्मक एवं रोगी-केंद्रित चिकित्सा की विधियों और परिणामों का विवरण ।

Shaffer, G. W., and Lazarus, R.S. Fundamental Concepls in Clinical Psychology, New York : McGraw-Hill, 1952

नैदानिक मनोविज्ञान की निदान-विधियों और मनश्चिकित्सा पर पुस्तक ।

# भाग : ३

## सीखना या अधिगम के सिद्धांत

## मानव-अधिगम और विस्मरण

## भाषा और विचरण या चिंतन

अध्याय ७

# सीखना या अधिगम के सिद्धांत

प्राणी कैसे सीखते हैं ? हम क्यों कुछ बातें सरलता से और कुछ अत्यधिक कठिनाई के साथ सीखते हैं ? शिशु सर्वप्रथम किस प्रकार सीखता है ? क्यों हम लोगों में से कुछ संसार तथा उसकी माँगों के साथ समायोजन करना सीख लेते हैं, जबकि कुछ लोग समायोजन में इतनी बुरी तरह असफल हो जाते हैं कि उन्हें किसी मानसिक चिकित्सालय में रखना आवश्यक हो जाता है ? जर्मन भाषा की अनियमित क्रिया-पदों को सीखने का सबसे सरल ढंग क्या है ?

इसी प्रकार के प्रश्न आपके मस्तिष्क में अपने अध्ययन के दौरान या पिछले अध्यायों को पढ़ते समय संभवतः आए होंगे । हमने अधिगम का उल्लेख विकास, अभिप्रेरण तथा संवेगों के संदर्भ में पहले भी किया है । किंतु, अब हम इसका समुचित एवं व्यवस्थित रूप से अध्ययन करेंगे । **व्यवहार में कोई भी अपेक्षाकृत स्थायी परि-वर्तन अधिगम है जो पूर्व-अनुभव का परिणाम है ।** इस परिभाषा में वे व्यावहारिक परिवर्तन नहीं आते, जो परिपक्वता के कारण घटित होते हैं तथा वे परिवर्तन भी नहीं आते, जो किसी रोग या शारीरिक विकृति के कारण होते हैं । अन्य व्यवहारी परिवर्तन, जो अनुभव के फलस्वरूप होते हैं, इसके अंतर्गत आते हैं ।

कभी-कभी इस कथन का पूर्ण आशय समझने में कठिनाई होती है; क्योंकि सीखी हुई अगणित बातों को हमने बिलकुल ठीक मान लेना सीख लिया है । जो कुछ हम जागृत अवस्था में करते हैं, वह प्रायः सभी सीखा हुआ या अर्जित होता है । हमारे अधिकांश उद्देश्य अधिगत हैं और इसी तरह हमारे सामाजिक मान और परंपराएँ भी । स्कूलों के भीतर तथा बाहर जो कुछ सिखाया जाता है एवं इस पुस्तक में और अन्य पाठ्य-पुस्तकों में जो ज्ञान है, वह सब किसी के द्वारा कभी और कहीं-न-कहीं सीखा गया था ।

अतः, अनेक मनोवैज्ञानिक अधिगम को मानव-व्यवहार को समझने की प्रमुख प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं । इसके महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए हम इस पर दो अध्याय लिखेंगे । प्रथम अध्याय में अधिगम-संबंधी उन सभी तत्त्वों पर तथा उस प्रणाली पर भी विचार करेंगे, जो अपेक्षाकृत सरल प्रणालियों, जैसे बच्चे और जंतु में

घटित होते हैं। दूसरे अध्याय में हम वयस्कों के परिष्कृत अधिगम पर विचार करेंगे—परिष्कृत अधिगम पूर्व-अधिगम पर आधारित है, साथ-ही-साथ स्मरण और विस्मरण की विशिष्ट समस्याओं पर भी विचार करेंगे। दोनों अध्यायों में हम अधिगम-प्रक्रिया को महत्त्व देंगे और यह विद्यार्थी पर छोड़ देंगे कि वह इस प्रक्रिया के अपने अवबोध को उन स्थितियों पर लागू करे, जो विशेषत: उससे संबंध रखती है।

### अधिगम-संबंधी कारक (Factors in Learning) :

अधिगम के अनेक तत्त्व हैं। सभी के पारिभाषिक नाम हैं तथा अधिकांश परिस्थितियाँ जिनमें वे घटित होते हैं, प्राय: जटिल होती हैं। विद्यार्थी यदि उनके रूपों से सुपरिचित न हो, तो उनके नामों की अधिकता में सरलता से खो सकता है। बहुत से रूपों में वही या वैसे ही घटक कुछ भिन्न प्रणाली से संयोजित होते हैं। अनेक अधिगम रूपों में समान रहने वाले तत्त्वों पर विचार करने से उन्हें तब समझना सरल होगा जब उनपर विस्तार से विचार किया जाएगा। हमारे प्रारंभ करने का यही ढंग है।

### साहचर्य ( Association ) :

अधिगम की सभी स्थितियों में जो एक कारक समान रूप से वर्त्तमान रहता है, वह है—साहचर्य। 'साहचर्य' शब्द, जैसा कि यहाँ प्रयुक्त हुआ है, का अर्थ है. किन्हीं दो घटनाओं के बीच काल और स्थान का कुछ संबंध। सामान्यत: यह संबंध पहले-पहल भौतिक जगत में होता है। उदाहरणार्थ, आग और अन्य बहुत-सी जल उठने वाली वस्तुएँ ऊष्ण होती हैं। अत:, प्रकाश और ताप की भौतिक घटनाएँ प्राय: संबंधित रहती हैं। बिजली का चमकना और बादलों का गर्जना प्राय: एक साथ घटित होते हैं और इसीलिए प्रकाश और ध्वनि को भी संबंधित किया जा सकता है। भौतिक जगत के ये संबंध, व्यक्ति को, दो घटनाओं के एक ही समय या सन्निकट अनुक्रम में अनुभव करने का सुयोग देती हैं। फलत: मस्तिष्क के भीतर एक संबंध निर्मित होता है और यही साहचर्य कहलाता है।

मस्तिष्क में यह साहचर्य क्या है, इसे हम अब तक नहीं खोज सके हैं (लैशले, १९५०)। बहुत संभव है कि यह दो तारों के जोड़ के समान साधारण संबंध नहीं है। यह उससे अधिक जटिल है। अब तक हम केवल यही कह सकते हैं कि मस्तिष्क में एक घटना को प्रस्तुत करने वाली प्रक्रिया का दूसरी घटना को प्रस्तुत करने वाली प्रक्रिया से संबंध स्थापित हो जाता है। इसका अर्थ है कि एक बार जब यह साहचर्य हो जाता है, तो दूसरी प्रक्रिया को जन्म देने वाली किसी भौतिक घटना की अनुपस्थिति में भी पहली प्रक्रिया की जागृति दूसरी प्रक्रिया को जागृत

करती है अथवा जागृत होने में सहायता करती है। प्रतीक रूप में इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है (देखिए, चित्र ७.१)। यदि भौतिक जगत में $S_1$ और $S_2$ मस्तिष्क में परस्पर संबंधित प्रक्रियाएँ हैं तो $S_1$ और $S_2$ का साथ-साथ घटित होना मस्तिष्क में प्रक्रियाओं के ऐसे साहचर्य को प्रवृत्त करेगा कि $S_1$ की प्रक्रिया $S_2$ को अथवा $S_2$ की प्रकिया $S_1$ को जागृत कर सके।

संवेदनात्मक साहचर्य ( Sensory Associations ) :

अधिगम की इस अवधारणा को सर्वप्रथम उन्नीसवीं शताब्दी में अँगरेज दार्शनिकों ने प्रतिपादित किया था। इस अवधारणा का नाम 'साहचर्यवाद' पड़ा तथा उन्हें 'साहचर्यवादी' कहा जाता था। उन्होंने वाह्य घटना $S_1$ के द्वारा उद्दीप्त अनुभव $S_1$ को संवेदन ( Sensation) और $S_1$ की अनुपस्थिति में $S_2$ द्वारा उद्दीप्त $S_1$ प्रक्रिया को एक प्रत्यय (**Idea**) माना। इस अर्थ में प्रत्यय को बिंब (Image) भी कहा गया है। तब साहचर्यवादियों ने ऐसे नियमों को रूप देने का प्रयत्न किया, जो स्पष्ट कर सकें कि किन अवस्थाओं में साहचर्य द्वारा प्रत्ययों को सीखा गया है।

**अधिगम में हम एक उद्दीपन को दूसरे उद्दीपन के अथवा अनुक्रिया के साथ संबद्ध कर सकते हैं।**
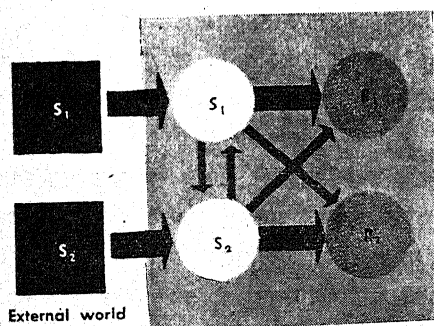
**चित्र ७.१ संवेदी-संवेदी (उ-उ) तथा उद्दीपन-अनुक्रिया (उ-अ)। अधिगम में साहचर्य-विकास को यह आरेख प्रदर्शित करता है।**

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में जब अधिगम पर प्रयोग प्रारंभ किए गए, तब साहचर्यवादिता की भाषा में पुनर्सुधार किया गया; क्योंकि दृढ़-साहचर्यवादी भी 'प्रत्ययों' और 'बिंबों' से प्रयोग करने में असमर्थ थे। यद्यपि यह निष्कर्ष, कि संवेदनात्मक साहचर्य में उत्पन्न प्रक्रियाएँ प्रायः प्रत्यय अथवा बिंब होते हैं, संभवतः ठीक है ( देखिए, अध्याय ९ )। किंतु, प्रत्यय के गुणों के विषय में विचार करते हुए असंबद्ध और अपरीक्षणीय परिकल्पनाओं या बिंबों में खो जाना अति सरल था

इसीलिए हमने प्रत्ययों के साहचर्य की चर्चा समाप्त करके केवल साहचर्य, संवेदनात्मक साहचर्य, अथवा S-S साहचर्य अर्थात् दो उद्दीपनों के मध्य साहचर्य के विषय में विचार किया (स्पेंश, १९५१ ) ।

व्यवहारवाद के चरमोन्नति-काल में व्यवहारवादियों के तर्क यहाँ तक पहुँच गए थे कि वे तर्क देने लगे थे कि संवेदी अनुभवों में कोई साहचर्य नहीं होता और जो भी साहचर्य होता है, वह केवल उद्दीपन और अनुक्रिया के मध्य ही होता है। पिछले कुछ वर्षों में अनेक प्रयोगों द्वारा यह प्रदर्शित कर दिया है कि वस्तुतः किसी-न-किसी प्रकार का संवेदी साहचर्य अवश्य होता है—ऐसा साहचर्य, जो व्यक्ति द्वारा अनुभूत उद्दीप्त घटनाओं को प्रस्तुतत करनेवाली, मस्तिष्क की प्रक्रियाओं के मध्य है। इसके कुछ प्रमाणों पर आगे प्रत्यक्ष अधिगम (Perceptual Learning) के अनुच्छेद में विचार करेंगे ।

### उद्दीपन-अनुक्रिया साहचर्य ( Stimulus-response Associations ) :

साहचर्य के एक अन्य प्रकार, उ-अ ( S-R ) अर्थात् उद्दीपन-अनुक्रिया का अध्ययन अपेक्षाकृत सरलता से हो सकता है। इस रूप में व्यक्ति दो घटनाओं, $S_1$ और $S_2$ को साथ-साथ अथवा कुछ उसी प्रकार अनुभव करता है, जैसे संवेदी-साहचर्य में। किंतु, वह कुछ अनुक्रिया इनमें से एक घटना के प्रति प्रदर्शित करता है, जिसे हम $R_2$ कहेंगे। $R_2$ वह अनुक्रिया है, जो $S_2$ के प्रति, भौतिक घटनाओं से $S_1$ और $S_2$ के संबंध-ज्ञान के अनुभव से पूर्व होती है। यदि $S_1$ समय पर $R_2$ को व्यक्त कर सके, तो हम निश्चित हो सकेंगे कि $S_1$ और $R_2$ के मध्य साहचर्य स्थापित हो गया है।

इस तथ्य को स्पष्ट करने वाले अनेक प्रयोग हैं, उनमें से कुछ का विवरण नीचे दिया जाएगा। किंतु, दैनिक जीवन में इसके अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। इसका एक उदाहरण है, किसी विदेशी भाषा की शब्दावली सीखना। मान लीजिए, मैं निम्नलिखित शब्द-युग्म ऐसे व्यक्ति के सामने रखता हूँ, जो अँग्रेजी जानता है, किंतु जर्मन नहीं जानता :—

| | |
|---|---|
| Dog | Hund |
| House | Haus |
| Man | Mann |
| Boy | Knabe |

मैं कहता हूँ 'Dog' Hund, House Haus, इत्यादि। हर अंगरेजी शब्द $उ_1$ ($S_1$) है और तदनुरूपी जर्मन-शब्द $उ_2$ ($S_2$) है। स्वयं कहने के बाद उस

व्यक्ति से हर युग्म का जर्मन-शब्द बोलने के लिए कहता हूँ। उसकी अनुक्रिया $R_2$ है। उसके पर्याप्त अभ्यास के उपरान्त में 'Dog' कह कर उसकी परीक्षा लेता हूँ और उससे 'Hund' उत्तर प्राप्त करता हूँ। अन्य शब्दों के साथ भी यही करता हूँ। यदि वह यह उत्तर दे सके, तो समझ लेना चाहिए कि उसने $उ_1$ ($S_1$) और $अ_2$ ($R_2$) में—उद्दीपन-अनुक्रिया साहचर्य स्थापित कर लिया है।

उ—अ ( S—R ) साहचर्यों पर वस्तुनिष्ठ परीक्षण अच्छी तरह से किए जा सकते हैं, इसीलिए हमारे प्रयोगों में उन्हें सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। S—S साहचर्यों का अध्ययन केवल अप्रत्यक्ष ढंग से ही संभव है। इसीलिए उन पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है। वास्तव में, कुछ मनोवैज्ञानिकों ने सभी साहचर्यों को उ—अ साहचर्य के रूप में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है और यह एक ऐसा विषय है, जिस पर सभी विचारक आज भी असहमत हैं। परंतु दोनों प्रकार के साहचर्यों के बनने के साक्ष्य बढ़ते जा रहे हैं। यह संभावना है कि किसी भी प्रकार का साहचर्य, उ—उ (S—S), उ—अ (S—R), अ—अ ( R—R ), अथवा अ—उ ( R—S ) मस्तिष्क में स्थापित हो सकता है। फिर भी निश्चयपूर्वक इस विषय पर कुछ कह सकना संभव नहीं है।

### सान्निध्य (Contiguity) :

यह ध्यान देने की बात है कि साहचर्य की संकल्पना में सान्निध्य भी सम्मिलित है। कहने का तात्पर्य यह है कि संबद्ध होने के लिए दो भौतिक घटनाओं और मस्तिष्क में तदनुरूपी प्रक्रियाओं का साहचर्य होने के लिए उन्हें एक ही समय और स्थान पर घटित होना चाहिए। वे सन्निकट घटनाएँ होनी चाहिए। इसीलिए दीर्घ-काल से साहचर्यों की स्थापना में सान्निध्य को मूल आधार के रूप में मान्यता मिली है।

किंतु, यही एक प्रश्न उठता है कि सान्निध्य है क्या ? सहचारी होने के लिए घटनाओं को कालक्रम में कितना समीप होना चाहिए ? स्थानीय निकटता कितनी होनी चाहिए ? दोनों प्रश्नों के उत्तर प्रयोगों द्वारा दिए जा सकते हैं और दिए भी गए हैं। विशिष्ट उत्तर प्रयोगात्मक स्थितियों के रूपों पर निर्भर करते हैं, किंतु सामान्य रूप में साहचर्य प्राप्त करने के लिए दो उद्दीपनों अथवा एक उद्दीपन और एक अनुक्रिया में कुछ सेकेंड से अधिक का अंतर नहीं होना चाहिए। प्रायः दोनों में आधे सेकेंड से अधिक कालांतर नहीं होना चाहिए। किंतु, कुछ साहचर्य अधिक अंतर पर भी स्थापित हो सकते हैं ( किंबल, १९५६ )। मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाली प्रक्रियाएँ शीघ्र ही समाप्त हो जाती हैं और साहचर्य के स्थापित होने के लिए दोनों प्रक्रियाओं का साथ-साथ वर्त्तमान रहना आवश्यक है।

### व्यतिकरण (Interference) :

साहचर्य-स्थापन का एक अन्य पक्ष भी महत्त्वपूर्ण है। यह है, साहचर्यों में व्यतिकरण की संभावना। एक उद्दीपन दो भिन्न उद्दीपनों से अथवा दो भिन्न अनुक्रियाओं से साहचर्य प्राप्त कर सकता है। यदि एक उद्दीपन के साथ हुए दो साहचर्य परस्परविरोधी हैं, तो एक निश्चय ही दूसरे के लिए बाधक होगा।

एक ही समय में दो भाषाएँ सीखना इसका एक उदाहरण है। पिछले एक अध्याय में हमने देखा है कि दो भाषाएँ बोले जाने वाले घरों में जिन बच्चों का पोषण होता है, उनका-भाषा-संबंधी विकास, एक भाषा बोले जाने वाले घरों में पले बच्चों की अपेक्षा धीरे होता है। एक बच्चा शब्द का ($R_1$) संबंध किसी उद्दीपन ($S_1$)से जोड़ कर भाषा सीखता है। उदाहरणार्थ, वह ऊष्ण (Hot) शब्द को स्टोव में जलती आग या जलती हुई दियासलाई से संबंधित करना सीखता है। यदि उसी समय उसे **Heiss** (Hot के लिए जर्मन शब्द) या Chand (Hot के लिए फ्रेंच शब्द) से साहचर्य भी सीखना पड़े, तो एक ही चाक्षुष उद्दीपन ( $S_1$ ) से उसके दो भिन्न साहचर्य ( $R_1$ & $R_2$ ) होंगे। वह उन दोनों का उच्चारण एक ही समय में नहीं कर सकता। अतः, एक साहचर्य दूसरे के साथ व्यतिकरण करता है। फलतः, दोनों में से कोई भी साहचर्य इतना शीघ्र स्थापित नहीं होता, जितना होना चाहिए।

यह सामान्य सिद्धांत है कि परस्परविरोधी साहचर्य एक दूसरे के विकास में बाधक होते हैं। इससे, जैसा कि हम देखेंगे, अधिगम और विस्मरण की अनेक समस्याएँ स्पष्ट होती हैं।

### अभिप्रेरण ( Motivation ) :

अधिकांश साहचर्यों की स्थापना तब होती है, जब कोई मनुष्य या जानवर अभिप्रेरित होता है। हम एक कुत्ते को पहले भूखा रखकर, फिर हमारी आज्ञा के पालन करने पर उसे आहार से पुरस्कृत करके चालाकी सिखाते हैं। हम सामान्यतः किसी बच्चे को 'ऊष्ण' का अर्थ तभी सिखा सकते हैं, जबकि वह एक या दो बार आग से जलने का अनुभव प्राप्त करने पर आग और जलने को संबद्ध कर चुका हो, वह आग से बचने के लिए पहले ही अभिप्रेरित हो। प्रायः अधिगम के सोचे जा सकने वाले हर प्रकार में हम अधिगम के अभिप्रेरण को अथवा कम-से-कम उस अभिप्रेरण को, जो अधिगमन को संभव बनाता है, पहचान सकते हैं। अतः, अधिगम के अध्ययन में अभिप्रेरण एक महत्त्वपूर्ण कारक है और उसको उपयुक्त महत्त्व दिया भी गया है।

जानवरों और बच्चों से जो कुछ हम करवाना चाहते हैं, उसको सिखाने का एक सामान्य तरीका है—उनके व्यवहार को पुरस्कृत करना अथवा दंडित करना। यदि वे हमारी इच्छानुकूल अनुक्रिया करते हैं, तो हम उन्हें आहार, दुलार या स्नेहपूर्ण शब्दों द्वारा पुरस्कृत करते हैं। यदि उनकी अनुक्रिया हमारी इच्छा के प्रतिकूल हो, तो चपत लगाकर, डाँटकर या उनकी वांछित वस्तु से उन्हें वंचित रख कर दंडित करते हैं। इस प्रकार उनकी अनुक्रियाओं को पुरस्कृत और दंडित करके हम उन्हें समय पर किसी आदेश या संकेतक के साथ किसी विशेष अनुक्रिया का साहचर्य-स्थापन सिखा सकते हैं।

अधिगम में पुरस्कार और दंड का कारक इतने प्रत्यक्ष महत्त्व का है कि बहुत पहले से ही इसको '**परिणाम नियम**' संज्ञा से गौरवांवित किया जा चुका है (थार्न डाइक, १९३२)। यह नियम अभिव्यक्त करता है कि एक ऐसा कार्य जिसका प्रभाव तृप्तिपूर्ण हो, जैसे—किसी प्रेरक की तृप्ति, दंड-निवारण या भय से मुक्ति आदि, सरलता से सीखा जाएगा, किंतु एक ऐसा कार्य जिसका प्रभाव दुखद हो जैसे प्रेरक का कंठित होना, दंड या भय का होना, वह नहीं सीखा जाएगा।

मनोवैज्ञानिकों ने यह गुत्थी सुलझाने की चेष्टा की है कि साहचर्य-निर्माण-कारी पुरस्कार और दंड में कोई विशेष बात होती है क्या? यह पुरस्कार या दंड ही हैं, जो साहचर्य की स्थापना करते हैं अथवा यह कोई दूरवर्त्ती परिणाम है? एक सिद्धांत, प्रेरणान्यूनक ( Drive-reduction ) सिद्धांत, के अनुसार अनुक्रिया के अधिगम को निर्धारित करने में प्रेरक की तृप्ति अथवा अतृप्ति का महत्त्वपूर्ण कारक ( शेफील्ड और रोबी, १९५० ) दूसरा मत ब्रिटिश साहचर्यवादियों के अनुसार **साहचर्य-सिद्धांत** कहलाता है, जिसके अनुसार पुरस्कार और दंड में कोई विशेषता नहीं है। वे केवल इतना ही करते हैं कि वे व्यवहार को इस प्रकार नियंत्रित करते हैं कि साहचर्य स्थापित हो सके।

इस विषय को हम परिचित उदाहरणों से स्पष्ट कर सकते हैं ( देखिए, चित्र ७.२)। हम कुत्ते को, हाथ के संकेतक की अनुक्रिया के रूप में खड़ा होना सिखाने की चेष्टा करते हैं। हम ऐसा तभी करते हैं, जब कुत्ता भूखा हो आर हम उसे कुछ भोजन खिलाने के लिए तैयार हों। हम भोजन को उसकी पहुँच से दूर अपने हाथ में ऊँचा पकड़ कर रखते हैं, पर इस रूप में कि कुत्ता खड़ा होकर उसे देख सके, तब उसके खड़े रहने पर उसके मुख में भोजन का एक टुकड़ा डाल देते हैं। हम इस क्रिया को तब तक दोहराते हैं, जब तक कि कुत्ता खड़े होने का साहचर्य 'हाथ' के साथ नहीं जोड़ लेता। प्रेरणा-न्यूनक सिद्धांतवादी कुत्ते के अधिगम को यह कह कर स्पष्ट करेंगे

कि भोजन को प्राप्त करने की प्रेरणा की तृप्ति ही किसी-न-किसी रूप में खड़े होने की अनुक्रिया को 'हाथ' के साथ संबंधित करती है। साहचर्यवादी इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहेंगे कि भोजन ने केवल उसको खड़ा किया, खड़े होने और हाथ के देखने में सान्निध्य हुआ और इस प्रकार उनमें साहचर्य हो सका।

इस प्रसंग पर आगे विचार किया जाएगा। यहाँ केवल इसका कुछ परिचय दे दिया है कि उपयुक्त अवसर आने पर हम इसका उल्लेख कर सकें। प्रत्येक स्थिति में, अभिप्रेरण साहचर्य-स्थापन को संभव बनाने में सहायक होता है।

**चित्र ७.२ सकेत पर खड़े होना। इस प्रकार के 'कौशल' हाथ में खाने की वस्तु दिखाकर, उसको कौशल से संबद्ध करके सिखाए जाते हैं। एक सिद्धांत के अनुसार अधिगम-अर्जन का कारण भोजन की प्राप्ति अथवा क्षुधा प्रेरक की तृप्ति है। दूसरे सिद्धांतानुसार भोजन केवल जंतु को व्यवहार के लिए प्रेरित करता है, जिससे कि उसका व्यवहार संकेत से संबद्ध हो जाता है ( जे० वी० रे )।**

## परिवर्तनशीलता या विविधता ( Variability ) :

अधिगम में अभिप्रेरण का एक और भी महत्त्व है। यह व्यवहार की परिवर्तनशीलता में वृद्धि करता है। फलत:, जिससे अनुक्रिया की किसी उद्दीपन या स्थिति में साहचर्य स्थापित करने की संभावनाओं में वृद्धि होती है ( देखिए, चित्र ७.३ )।

एक बच्चा जब भूखा हो, तो अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने तथा भोजन प्राप्त करने के लिए व्याकुल होता है और रोता है। पहले यह रोना भूख के प्रति नैसर्गिक अनुक्रिया के रूप में होता है, किंतु कुछ समय बाद यह भोजनप्राप्ति के साथ संबंधित हो जाता है। अत:, बच्चा रोने योग्य पर्याप्त कष्ट न होने पर भी रुदन-अनुक्रिया को ध्यानाकर्षण और भोजनप्राप्ति से संबद्ध करता है। इसी प्रकार भूखे होने पर

जानवर भी सक्रिय होते हैं और आहार की खोज में चारो ओर घूमते हैं। यह उनकी भोजनप्राप्ति की संभावना में वृद्धि करता है, और यदि वे भोजन की प्राप्ति कर लेते हैं तो भोजन से संबद्ध उद्दीपन-स्थिति का भूख होने पर साहचर्य हो जाता है। अतः, वे सीख लेते हैं कि भूखे होने पर भोजन प्राप्त करने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए।

इन उदाहरणों को शारीरिक अंतर्नोदों तक ही सीमित रखना आवश्यक नहीं है। कौतूहल, समन्वेषी और भय के सामान्य अंतर्नोदों पर भी यही सिद्धांत लागू होता है। कौतूहल और समन्वेषी अंतर्नोद के कारण व्यक्ति का उसके परिवेश से व्यापक संबंध रहता है और इस प्रकार स्थापित हो सकने योग्य साहचर्यों में भी वृद्धि होती है। भय-प्रेरणा प्रायः भयात्मक प्रतिक्रिया या कम-से-कम अव्यवस्थित और अस्थिर व्यवहार से संबद्ध रहती है। ये प्रतिक्रियाएँ भयजनक परिस्थितियों से पृथक् होने की स्थिति से संबद्ध की जा सकती हैं।

अतः, अभिप्रेरण अधिगम का सहायक है; क्योंकि यह विविध व्यवहारों को उत्पन्न करता है और इस व्यवहार के कुछ रूप इस व्यवहार को उत्पन्न करनेवाली स्थितियों से संबद्ध हो सकते हैं।

अभिप्रेरण व्यवहार के विभिन्न प्रकारों को प्रकट करता है और वह उस विशेष व्यवहार पर बल देता है, जो पुरस्कृत होगा।
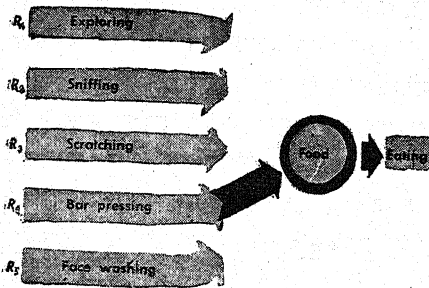
**चित्र ७.३ एक क्षुधार्त कुत्ते में अनुक्रियाओं की परिवर्तनशीलता या विविधता उपलब्धि-परक विशेष अनुक्रिया के चयन को संभव बनाती है तथा उसे सीखने की सुविधा प्रस्तुत करती है (किंबल के अनुसार, १९५६)।**

अधिगम में साहचर्य एक आधारभूत या बुनियादी प्रक्रिया है और अभिप्रेरण अधिगम को संभव करने वाली एक स्थिति है। ऐसी अनेक स्थितियाँ हैं, जिनमें पुरस्कार और दंड का विशेष महत्त्व प्रकट नहीं होता और जिनमें दो उद्दीपनों में अथवा एक उद्दीपन तथा एक अनुक्रिया में साहचर्य भी सहज प्रकट नहीं होता। ऐसी स्थिति में अधिगम को संभव बनाने वाले अन्य घटक होते हैं।

## अभ्यस्तता (Habituation) :

कुछ स्थितियों में अभ्यस्तता के रूप का हम निरीक्षण कर सकते हैं।

मान लीजिए, हमारे पास एक पिंजड़े में कोई जंतु कुत्ता, बिल्ली, खरगोश अथवा चूहा—है और अचानक पिंजड़े के तले में छिपे एक साइरन की जोर से आवाज होती है। संभावना है कि जंतु की अनुक्रिया भयप्रद प्रतिक्रिया के रूप में होगी, जैसे भय से संकुचित होना या पिंजड़े में इधर से उधर उछलना। यदि हम साइरन को नियमित कालांतर से बजाएँ, तो जंतु धीरे-धीरे अभ्यस्त हो जाएगा और उसका भय धीरे-धीरे कम होता जाएगा। जंतु के व्यवहार में यह अंतर ही **अभ्यस्तता** है और यह अधिगम का सामान्य प्रकार है। यह केवल हितकर प्रमाणित होने वाली स्थिति के प्रत्युत्तर का सीखना नहीं है। हम बच्चों में, कभी-कभी, इस अभ्यस्तता को देखते हैं कि किस प्रकार उनमें विचित्र वस्तुओं के प्रति भय कम हो जाता है। किंतु, इस प्रक्रिया को हम जंतुओं में अधिक साधारण रूप में देख सकते हैं, जब वे पालतू बनाए जाते हैं।

अधिगत भयों में भी अभ्यस्तता-जैसा ही कोई तत्त्व देखा जा सकता है। एक व्यक्ति, जिसने जल अथवा ऊँचे स्थानों से भयभीत होना सीख लिया है, उनके निकट रहने या बार-बार उन्हें देखने पर धीरे-धीरे उसका भय कम हो जाता है। ऐसी स्थिति में यह प्रक्रिया **विलयन** (Extinction) कहलाती है; क्योंकि अधिगत साहचर्य विलुप्त हो जाता है ( अगला परिच्छेद देखिए ) अथवा यदि अभ्यस्तता का प्रयोग किसी व्यक्ति के भय-निवारण में सहायता करने के लिए सोच-विचार कर किया जाता है, तो उसे कभी-कभी **संवेदन-अग्रहणीयता** कहा जाता है। इससे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि व्यक्ति भयजनक स्थितियों के प्रति कम संवेदनशील हो जाता है। प्रायः अभ्यस्तता, विलयन या संवेदन-अग्रहणीयता में अंतर करना कठिन हो जाता है, विशेषतः जब हम उस व्यक्ति के अधिगम के इतिहास से अपरिचित हों। अभ्यस्तता का वास्तविक अर्थ है 'धीरे-धीरे अभ्यस्त होना,' अथवा उन परिस्थितियों में, जिनमें प्राकृत, अनधिगत अनुक्रिया होती है, उन अनुक्रियाओं को न होने देना सीखना।

## अतिसंवेदनशीलन (Sensitization) :

अभ्यस्तता से निकट संबंधित प्रक्रिया—वस्तुतः जो इसके ठीक विपरीत है—अतिसंवेदनशीलन प्रक्रिया कहलाती है। मान लीजिए कि हमने उपर्युक्त प्रयोग वाले अपने जंतु को साइरन-ध्वनि से अभ्यस्त कर दिया है। जब साइरन बजता है, तो जंतु में उसके प्रति कोई अनुक्रिया नहीं होती और पिंजड़े में वह अपने कार्य में उसी तरह रत रहता है। मान लीजिए कि अब पिंजड़े के तल के एक छिद्र से हम जंतु

को कुछ विद्युत्-आघात देते हैं। इसके उपरांत यदि हम फिर साइरन बजाएँ, तो हम देखेंगे कि जंतु में मूल भय-प्रतिक्रिया पुनः जागृत हो जाएगी। आघात जंतु को अधिक 'संवेदनशील' बना देता है और इस प्रकार जो अनुक्रिया समाप्त हो गई थी, वह पुनः जागृत हो जाती है।

परिणाम यह हुआ कि आघात और साइरन में बिना किसी साहचर्य के व्यक्ति की सामान्य सतर्कता या संवेदनशीलता में वृद्धि हो गई। हम प्रायः इस प्रकार के संवेदन-ग्रहण को उस समय भी देखते हैं, जब कोई व्यक्ति किसी महत्त्वपूर्ण कार्य के बिगड़ने पर किसी खीझ के कारण 'उछलने-कूदने वाला' या अत्यधिक संवेदनशील हो जाता है।

इस प्रक्रिया को कभी-कभी कृत्रिम अनुबंधन ( **Pseudoconditioning** ) कृत्रिम अधिगम (**Pseudo learing**) भी कहा जाता है; क्योंकि ऐसा प्रकट हो सकता है कि साइरन और आघात में साहचर्य स्थापित हो गया है, जब वास्तव में उनमें साहचर्य नहीं होता। आघात और साइरन को संबद्ध होने का कभी अवसर न देकर, हम उसे बिना साइरन के अनेक बार आघात देकर प्रमाणित कर सकते हैं।

**अनुकरण-ग्रहण (Imprinting) :**

अन्यत्र हमने अनुकरण-ग्रहण का उल्लेख एक द्रुत प्रकार के अधिगम के रूप में किया है और उसे कुछ जंतुओं, विशेषतः चिड़ियों के उदाहरणों द्वारा स्पष्ट भी किया है। अंडे से निकलते ही चूजा या बच्चा अपनी माता की ध्वनि और गति का अनुकरण करने लगता है, किंतु वह किसी अन्य का भी अनुकरण-ग्रहण कर सकता है। किसी का अनुकरण करने की अनुक्रिया परिपक्वता द्वारा उद्भूत होती है, यह सीखी नहीं जाती। केवल उस विशेष व्यक्ति या वस्तु के विषय में ज्ञानार्जन किया जाता है, जिससे उसकी अनुवर्त्ती अनुक्रिया संबंधित रहती है। चिड़िया का बच्चा अपनी माता का अनुकरण करना सीखता है, अथवा प्रयोग के समय किसी मॉडल ( प्रतिरूप ) या प्रयोगकर्त्ता का (देखिए, चित्र ७·४)। अतः, इन व्यक्तियों या वस्तुओं के अंतर को सीखा जाता है, संवेदी-साहचर्य अथवा अनुक्रिया को नहीं।

अनुकरण के विषय में किसी अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले अभी हमें इसके संबंध में और बहुत कुछ जानने की आवश्यकता है। भय का इसमें महत्त्वपूर्ण स्थान प्रतीत होता है; क्योंकि वे जंतु, जो समय पर अनुकरण-ग्रहण नहीं करते, वे बाद में विचित्र वस्तुओं और क्रियाओं से पर्याप्त अधिक भयभीत होते हैं। जब जंतुओं को अनुकरण के अनुभव दिए जा रहे हों, यदि उस समय उन्हें शांतिकरण-औषधियाँ दी गई हों, तो वे ठीक तरह अनुकरण ग्रहण नहीं करेंगे (हैस, १९५९)।

तब यह संभव है कि अनुवर्त्ती अनुक्रिया भय से मुक्त करती हैं और यह कि भय के कम होने से उस वस्तु से वह साहचर्य प्राप्त करता है, जिसका पहले अनुकरण होना चाहिए। प्रत्येक स्थिति में यह अधिगम की एक महत्त्वपूर्ण स्थिति है, जो बचपन में तीव्र गति से घटित होती है और जो सहज प्रवृत्तियों से निकट संबंधित है।

**चित्र ७.४ बत्तक के बच्चों का अनुकरण-ग्रहण। वे प्रयोग-कर्त्ता डॉ० कोनरेड लोरेंज का अनुकरण करते हैं। यद्यपि उसके पास भोजन की बाल्टी है, किंतु वे क्षुधा के कारण नहीं, वरन् डाक्टर की लयात्मक ध्वनि के कारण उसके पीछे-पीछे चलते हैं। (लाइफ मेगेजीन (C) (१९५५, टाइम Inc.)।**

अवरोध (Inhibition) :

प्राय: सब प्रकार के अधिगत अथवा अनधिगत व्यवहारों को स्पष्ट करने वाले तत्त्वों में एक है उन अनुक्रियाओं के क्षय की प्रवृत्ति, जो कुछ समय तक क्रियाशील रह चुकी हों। यदि हम बार-बार शीघ्रता से सहजक्रिया करते हैं, जैसे आँख झपकाना, घुटने को झटकना, तो सहजक्रिया धीरे-धीरे दुर्बल होने लगती है। एक कुत्ता, जो शिकार पकड़ने में निपुण है, वह भी शीघ्र ही थक जाता है--यदि एक बार गेंद पकड़ कर लाने के तुरंत बाद हम गेंद फेंकते रहें और वह पकड़ता रहे। और एक बच्चा एक खिलौने से थोड़ी देर खेलने के बाद थक जाता है तथा दूसरे खिलौने की ओर प्रवृत्त होता है। हम ऐसे असंख्य उदाहरण देख सकते हैं, जिनमें प्राणी एक अनुक्रिया बार-बार करने से थक जाता है।

यह प्रवृत्ति इतनी सामान्य है कि मनोवैज्ञानिकों ने प्रतिपादित किया है कि अनुक्रिया की पुनरावृत्ति ही उस अनुक्रिया के प्रति अवरोध उत्पन्न करती है। अवरोध की तुलना उस थकान से हो सकती है, जिसे हम किसी भारी काम को करने पर अनुभव करते हैं। किंतु यह सामान्य अर्थ में शारीरिक थकान नहीं होती; क्योंकि यह तभी होती है जब परिश्रम अतिअल्प होता है। यह थकान से अधिक ऊब है। जैसा कि हम आगे देखेंगे कि यह अधिगम तथा स्मरण और विस्मरण में एक महत्त्वपूर्ण कारक है। यह स्वयं अधिगम नहीं है; क्योंकि यह प्रवृत्ति समय और विश्राम के साथ समाप्त हो जाती है। तब भी यह अधिगत हो सकती है, यदि स्थितियों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जाए कि यह विशेष उद्दीपनों और अनुक्रियाओं से साहचर्य स्थापित कर सके।

अवरोध के अनेक प्रकार हो सकते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने कम-से-कम कभी-कभी एक से अधिक प्रकारों का उल्लेख किया है। प्रत्येक रूप में अवरोध एक संप्रत्यय है, जो अधिगम और विस्मरण की क्रियाओं को समझने में हमारी सहायता करता है।

इस अध्याय में अब तक जिन विविध कारकों पर विचार किया गया है, वे अधिगम-प्रकरण के लिए सामान्य भूमिका प्रस्तुत करते हैं। इन कारकों का अधिगम की विभिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न महत्त्व है। अब जब कि हम इनसे परिचित हो गए हैं, अधिगम की क्रिया को स्पष्ट करना और समझना बहुत अधिक सरल हो जाएगा।

अधिगम के वर्गीकरण के अनेक भिन्न प्रकार हैं, यद्यपि उनमें से एक भी पूर्ण संतोषप्रद नहीं है। अपने कार्य के लिए हम अधिगम को तीन सामान्य श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—१. शास्त्रीय अनुबंधन ( Classical Conditioning ), २. अनुकूल नैमित्तिक अधिगम (Instrumental Learning), और ३. प्रत्यक्ष अधिगम (Perceptual Learning)। इस अध्याय के शेष भाग में इन्हीं तीनों का विवेचन होगा। अधिगम के इन तीन प्रकारों में कोई स्पष्ट विभाजन-रेखा नहीं है। अधिगम के कुछ प्रकारों में इनमें से एक से अधिक प्रकारों का स्पष्ट मिश्रण है। उदाहरणार्थ, निवारण-अधिगम (Avoidance-learning) में शास्त्रीय अनुबंधन एवं नैमित्तिक अधिगम दोनों के तत्त्व होते हैं। व्यूह-अधिगम (Maze-learning) में तीनों प्रकारों का उपयोग होता है, किंतु मुख्यतः नैमित्तिक और प्रत्यक्ष अधिगम का। इन प्रकारों में से प्रत्येक पर विचार किया जाएगा।

### शास्त्रीय अनुबंधन (Classical Conditioning) :

'शास्त्रीय अनुकूलन' ने अपना यह नाम इस तथ्य से प्राप्त किया है कि एक प्रकार का अधिगम है, जिसका प्रथम बार अध्ययन लगभग ५० वर्ष पूर्व आइवन पी० पावलोव ( १८४९-१९३६ ) ने अपने इतिहासप्रसिद्ध प्रयोगों में किया था। इस

प्रसिद्ध रूसी शरीर-क्रिया-वैज्ञानिक ने अनुबंधन के संप्रत्यय को प्रारंभ किया और इसके अनेक बुनियादी सिद्धांतों को स्थापित किया। कभी-कभी शास्त्रीय अनुबंधन को अनुक्रियात्मक अनुबंधन भी कहा गया है; क्योंकि इसमें सरल सहजक्रिया-जैसी विशेष उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया होती है। शास्त्रीय अनुबंधन की क्रिया के स्वरूप को उपस्थित करने के लिए हम पावलोव के कुछ प्रयोगों का विवरण देंगे।

पावलोव ने कुत्तों को घंटे की ध्वनि के साथ लार-स्रवण के लिए अनुबंधित किया।
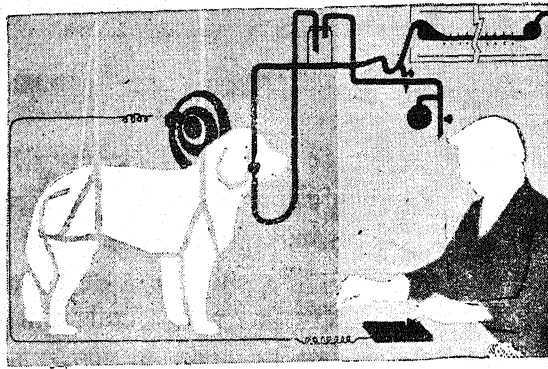
**चित्र ७.५ अनुबंधित लार-अनुक्रिया के अध्ययनार्थ पावलोव का यंत्र। कुत्ते के गाल के निकट एक लार-ग्रंथि के पास लगाए गए एक चूषण-कप में एक नली के माध्यम से लार को एकत्रित कर उसकी मात्रा मापी जाती है। यह यंत्र एक ध्वनि-निरोधक कक्ष में है तथा प्रयोगकर्त्ता और कुत्ते के मध्य इकतरफा परदा लगा है प्रयोगकर्त्ता दूरस्थ-नियंत्रक द्वारा घंटा बजा सकता है और भोजन प्रस्तुत कर सकता है। (पावलोव के अनुसार, १९२८)।**

अनुबंधन (Conditioning) :

संभवतः आपने 'मुँह में पानी भर आने' की स्थिति को अनुभव किया होगा। जब आप रुचिकर भोजन की सुगंध पाते हैं, उसे देखते हैं या केवल उसकी कल्पना ही करते हैं। संक्षेप में, यही क्रिया है, जिस पर पावलोव (१९२७) ने कार्य किया।

"पावलोव ने लार के बहाव को मापने के लिए एक यंत्र (देखिए, चित्र ७.५) की खोज की। इसमें नालियाँ एक चूषण-कप में ठीक से रख दी जाती

हैं और वह कुत्ते के गाल से इस प्रकार सटा रहता है कि लार-ग्रंथि से बहने वाली लार की बूँदें उसमें जमा होती रहती हैं। लार हवा को ट्यूब में और वह हवा एक रंगीन तरल पदार्थ को एक निर्धारित यंत्र में, विस्थापित करती है, जो कुछ-कुछ थर्मामीटर के समान दिखाई देता है और प्रत्येक मिनट का परिवर्तन उसमें पढ़ा जा सकता है। उसने कुत्ते को एक कवच पहनाकर एक ध्वनिरोधी कमरे में रखा, जिसमें इस प्रकार का इकतरफा परदा लगा था, जिसमें से वह स्वयं कुत्ते को देख सकता था, पर कुत्ता उसे नहीं देख सकता था। दूरस्थ नियंत्रक द्वारा वह एक पात्र में भोजन लटका देता था, जहाँ कुत्ते की पहुँच थी। अपनी इच्छा पर वह एक पात्र में भोजन द्वारा पुरस्कृत करता। वह कुत्ते के सामने भोजन के अतिरिक्त अन्य उद्दीपन भी उपस्थित कर सकता था—जैसे घंटे की ध्वनि, भाप की सीटी या मेट्रोनोम।

एक विशेष प्रयोग में उसने कुत्ते को घंटे की ध्वनि से प्रशिक्षित करना प्रारंभ किया। घंटा-ध्वनि के तुरंत बाद भोजन प्रस्तुत किया जाता और कुत्ते के लार-स्राव का परिमापन किया जाता। यह प्रयोग कुछ बार दोहराने के बाद उसने इस प्रशिक्षण के प्रभाव का परीक्षण किया, बिना भोजन प्रस्तुत किए केवल घंटा बजाया और लार का परिमापन किया। उसने पुनः घंटे और भोजन दोनों को कुछ बार एवं साथ-साथ प्रस्तुत किया और तब केवल घंटे से परीक्षण किया। वह इस परिणाम पर पहुँचा कि जैसे-जैसे परीक्षण

प्रबलन के द्वारा एक अनुक्रिया अनुबंधित होती है और उनके बिना अनुक्रिया का विलोपन हो जाता है।

 Salivary response  Bell plus food  Bell alone
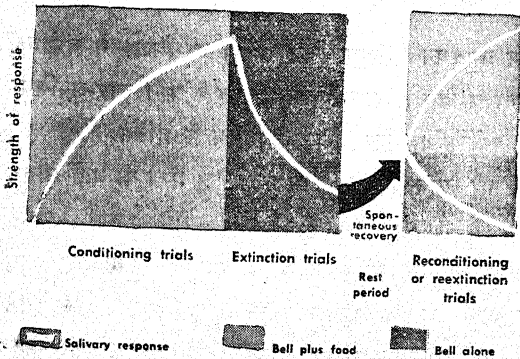
**चित्र ७.६ अनुबंधन, विलोपन और स्वतःस्फूर्त प्रत्यावर्तन के क्रम का सुनियोजित रेखाचित्र (किंबल के अनुसार १९५६)।**

आगे बढ़ा, केवल घंटे की अनुक्रिया में स्रावित लार की मात्रा भी वैसे-वैसे बढ़ने लगी और इसे अधिगम-वक्र के रूप में ग्रहण किया जा सकता है।"

चित्र ७.६ से ही अधिगम वक्र को प्रस्तुत करता है। यह प्रयत्नों की संख्या का और लार की मात्रा का उल्लेख किए बिना अंकित किया गया है; क्योंकि इनकी अब हमें आवश्यकता भी नहीं है। वक्र (केवल प्रथम भाग) प्रकट करता है कि घंटे और भोजन को साथ रखने से धीरे-धीरे स्रावित लार की मात्रा बढ़ने लगी। यह उस क्रम को चित्रित करता है, जिसमें घंटे और लार-अनुक्रिया में साहचर्य स्थापित हुआ।

अनुबंधन द्वारा उद्दीपन नवीन अनुक्रिया अर्जित कर सकता है।
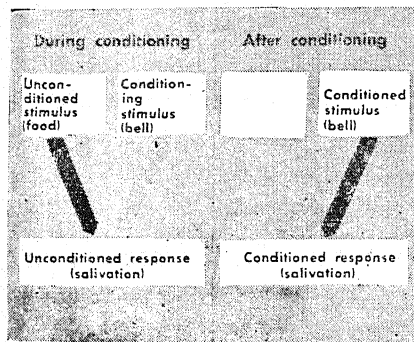
**चित्र ७.७ अनुबधन-प्रक्रिया का सुनियोजित रेखाचित्र। अनुबंधनकाल में एक तटस्थ उद्दीपन (घंटा), जो अनुबंधन उद्दीपन कहलाता है, एक अननुबंधित उद्दीपन (भोजन) से सबद्ध किया जाता है, जो एक अननुबंधित अनुक्रिया (लार-स्रवण) को उद्दीप्त करता है। अनुबंधन के परिणामस्वरूप घंटा एक अनुबंधित उद्दीपन बन जाता है, जो अननुबंधित उद्दीपन की अनुपस्थिति में लार-स्रवण (अब अनुकूलित अनुक्रिया) को उद्दीप्त कर सकता है।**

आगे बढ़ने से पहले हमें अनुबंधन (देखिए, चित्र ७·७) की क्रिया से संबंधित कुछ विशेष शब्दों पर ध्यान देना चाहिए। पावलोव ने भोजन के प्रति लार-अनुक्रिया को अननुबंधित-अनुक्रिया कहा है; क्योंकि यह बिना किसी अधिगम के घटित होती है। इसी कारण से उसने भोजन को भी अननुबंधित-उद्दीपन कहा है। घंटा दो बातें प्रस्तुत करता है: प्रशिक्षण के प्रारंभ में वह अनुबंधन-उद्दीपन था; क्योंकि इसका उपयोग लार-अनुक्रिया को अनुबंधित करने के लिए किया गया था। जब अनुबंधन हो गया, तो इसे अनुबंधित उद्दीपन कहा गया, क्योंकि अब इसमें एक प्रभाव था जो पहले इसमें नहीं था, अर्थात् लार-अनुक्रिया को जागृत करना। अनुबंधन के उपरांत, लार-अनुक्रिया को भी नया नाम दिया गया 'अनुबंधित अनुक्रिया'; क्योंकि अब वह घंटा-ध्वनि

के प्रति अनुबंधित हो गई थी। अनुनबंधित-उद्दीपन (भोजन) और अनुबंधन उद्दीपन (घंटा) को मिला कर 'अनुबंधन-प्रक्रिया' कहा गया।

## विलोपन ( Extinction ) :

इसके उपरांत पूर्ण अनुबंधित कुत्ते के साथ पावलोव ने अपनी प्रक्रिया को परिवर्तित किया। यह 'विलोपन-प्रक्रिया' कहलाती है। यह **'विलोपन'** क्रिया को उत्पन्न करती है। विलोपन को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :

> "कुत्ते को सामान्य ढंग से कठघरे में रखा गया। बिना भोजन के घंटे को उसी तरह प्रस्तुत किया जैसे अनुकूलन-प्रक्रिया के प्रयत्न-परीक्षणों में किया जाता था। इस बार, किंतु, घंटे के साथ भोजन कभी नहीं दिया गया। **बार-बार प्रयत्न करने पर भी,** कुत्ते ने केवल घंटे की ध्वनि को सुना और न भोजन को देखा, न प्राप्त किया। प्रत्येक प्रयत्न पर सामान्य ढंग से लार का परिमापन किया गया। यह प्रक्रिया जैसे-जैसे की गई, स्रावित-लार की मात्रा तब तक बराबर कम होती गई, जब तक कि वह करीब-करीब स्थिर नहीं हो गई और यह मात्रा उससे कुछ ही भिन्न थी, जो वह मूल अनुबंधन से पहले थी। इस प्रक्रिया को स्पष्ट करने वाला—योजना-वक्र चित्र ७.६ में दिखाया गया है।

अतः, विलोपन अनुबंधन के कार्य को समाप्त कर देता है। ऐसा लगता है कि यह घंटे और लार-अनुक्रिया के साहचर्य को इसी प्रकार दुर्बल कर देता है, जिस प्रकार अनुबंधन उस साहचर्य को दृढ़ करता है। **हमने कहा 'लगता है'; क्योंकि इस कथन को आगे हमें स्पष्ट करना होगा।**

## प्रबलन ( Reinforcement ) :

अनुबंधन-प्रक्रिया और विलोपन-प्रकिया में जो अंतर है, वह घंटों की ध्वनि के बाद अनुबंधित उद्दीपन (भोजन) के प्रस्तुत करने का है। यही अंतर स्पष्ट करता है कि साहचर्य दृढ़ हो रहा है या दुर्बल। इसलिए पावलोव ने निर्णय किया कि अनुबंधित अनुक्रिया को बनाने के लिए कुछ प्रबलन आवश्यक होता है। इस स्थिति में उसने अननुबंधित-उद्दीपन को **प्रबलन** कहा है। इस प्रयोग से हम अधिगम के एक सुप्रतिष्ठित सिद्धांत पर पहुँचते हैं—**प्रबलन का सिद्धांत।** इस सिद्धांत के अनुसार **अनुबंधित अनुक्रिया के निर्माण के लिए प्रबलन आवश्यक है, प्रबलन के बिना अनुक्रिया नहीं होती अथवा यदि होती भी है तो क्षीण होती है, और यह विलुप्त हो जाती है।** इस उदाहरण में प्रबलन की व्याख्या अननुबंधित उद्दीपन (भोजन) के प्रस्तुतिकरण के रूप

में हो सकती है, जो अनुबंधन उद्दीपन (घंटा) का तुरंत अनुकरण करने के लिए अननुबंधित अनुक्रिया (लार) को उद्दीप्त करता है। प्रबलन का सिद्धांत नैमित्तिक अधिगम तक लागू किया गया है, किंतु हम देखेंगे कि यहाँ प्रबलन की कुछ भिन्न परिभाषा की आवश्यकता है।

ध्यान रखें कि इस उदाहरण में प्रबलन वास्तव में भोजन का पुरस्कार है। अतः, प्रबलन वह क्रिया है, जिसका प्रयोग अधिगम में पुरस्कार के रूप में होता है। भोजन वह वस्तु है, जो मुख्य शारीरिक अंतर्नोद को तृप्त करती है। अतः, भोजन का पुरस्कार 'प्रधान प्रबलन' ( **Primary Reinforcement** ) कहा जा सकता है। हम आगे देखेंगे कि अधिगम लक्ष्य भी अनुबंधन और अधिगम में प्रबलन का कार्य कर सकते हैं और उन्हें हम 'गौण प्रबलन' कहते हैं।

### स्वतःस्फूर्त प्रत्यावर्तन (Spontaneous Recovery ) :

अनुबंधित अनुक्रियाओं के प्रयोगों में एक अन्य क्रिया, जिसे 'स्वतःस्फूर्त प्रत्यावर्तन' कहते हैं, का भी प्रतिपादन हो सकता है। यह शब्द इस तथ्य से संबंधित है कि एक अनुबंधित-अनुक्रिया जो विलोपन प्रक्रिया के परिणामस्वरूप विलुप्त हो गई है, विलोपन के कुछ समय उपरांत संभव है, विश्राम के कारण खोयी हुई शक्ति पुनः प्राप्त कर उसका स्वतःस्फूर्त प्रत्यावर्तन हो जाए। उदाहरणार्थ यदि एक कुत्ता जिसमें अनुबंधित अनुक्रिया विलुप्त हो चुकी हो, पुनः प्रयोगात्मक स्थिति में लाया जाए और घंटे की ध्वनि पुनः प्रारंभ की जाए, तो जो लार वह स्रावित करेगा, उसकी मात्रा उससे काफी अधिक होगी, जो पिछले विलोपन प्रयत्नों की श्रृंखला के अंत में थी। अतः, वह अब यह प्रकट करता है कि घंटे और लार में कोई साहचर्य शेष बच रहा था और अनुबंधन पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ था। यही कारण है कि हमने पहले कहा था कि 'विलोपन अनुबंधन के कार्य को समाप्त करने वाला 'प्रकट' होता है।

यह संभव है, जैसा कि चित्र ७·६ में दिखाया गया है कि अनुबंधित अनुक्रिया का, कुत्ते को अन्य प्रकार के विलोपन परीक्षण देकर, पुनर्विलोपन किया जाए और अनुक्रिया का प्रायः अंत कर दिया जाए। इसके बाद, दूसरे विश्राम के उपरांत कुछ स्वतःस्फूर्त प्रत्यावर्तन होगा यद्यपि उतना नहीं, जितना पहली बार हुआ था। अनेक बार पुनर्विलोपन द्वारा अंत में अनुबंधित अनुक्रिया लगभग पूरी तरह और सदा के लिए विलुप्त हो सकती है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि विलोपन में क्या होता है ? क्या अनुबंधन द्वारा निर्मित साहचर्य क्षीण हो जाते हैं ? उत्तर इस पर निर्भर करता है कि 'क्षीण होने' का आप क्या अर्थ लेते हैं। अनुबंधन द्वारा जो वृद्धि होती है, विलोपन उसे कम नहीं

करता. वरन् पिछले परिच्छेद में उल्लिखित, दोनों कारक क्रिया प्रतीत होते हैं। एक है व्यतिकरण या बाधा—मूल साहचर्य में बाधक नए साहचर्यों का अधिगम करना। यह अनुक्रिया को न करना सीखना है—कम-से-कम विशेष प्रयत्नों की शृंखला में नहीं। ऐसा साहचर्य मूल का विरोधी होता है और उससे स्पर्धा करता है। दूसरा कारक है, अवरोध अनुक्रिया न करने की प्रवृत्ति। संभवत: मूल अनुकूलन में यह कारक भी क्रियाशील रहता है। यह साहचर्य निर्माण हो सकने की गति को कम कर देता है। किंतु, साधारणत: हमारे पास कोई उपाय नहीं है, जिससे हम अनुबंधन के निश्चित प्रभावों से उसे मुक्त कर सकें।

हम देख चुके हैं कि अवरोध समय के साथ समाप्त हो जाता है। केवल इसी आधार पर हम किसी स्वत:स्फूर्त प्रत्यावर्तन की आशा करेंगे। और भी, जब जंतु को पुन: प्रयोगात्मक स्थिति में लाया जाता है, उसके पास यह 'जानने' का कोई उपाय नहीं रहता कि वह अनुबंधनकाल है अथवा विलोपनकाल, जब कि वह दो साहचर्य सीख चुका है, एक अनुक्रिया का और दूसरा अननुक्रिया का। हम अनुबंधनकाल से आगे बढ़ने की अनुक्रिया की किसी प्रवृत्ति की आशा कर सकते हैं। यह भी स्वत:स्फूर्त-प्रत्यावर्तन का पूर्वाभास होगी।

एक बात हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं: अनुबंधन द्वारा निर्मित साहचर्य को विलोपन केवल क्षीण नहीं करता। यह कथन स्वत:स्फूर्त-प्रत्यावर्तन की घटना से प्रमाणित होता है। इससे भी यह स्पष्ट होता है यदि हम जंतु पर पुन: अनुबंधन करें, अर्थात् मूल अनुबंधन में दिए गए प्रबलन को पुन: दोहराएँ। पावलोव ने इस प्रकार के प्रयोग किए और जिन सामान्य परिणामों पर वह पहुँचा, वे चित्र, ७.६ में दिखाए गए हैं। यह देखा जा सकता है कि यदि अनुबंधन-प्रक्रिया विलोपन-प्रक्रिया का अनुकरण करती है, तब पुन:अनुबंधन मूल अनुकूलन से तीव्रतर गति से आगे बढ़ता है। वास्तव में एक प्रयोगकर्त्ता बारी-बारी से अनुबंधन, विलोपन अनुबंधन और विलोपन कर सकता है और हर बार कुछ सीमा तक, जंतु पहले की अपेक्षा कुछ तीव्रता से अनुबंधित होगा और कुछ तीव्रता से विलुप्त भी होगा। इससे स्पष्ट है कि विलोपन द्वारा मूल अनुबंधन पूर्णत: मिटता नहीं है: वरन् जो होता है वह है अनुक्रिया और अननुक्रिया का सीखना। जंतु सीखता है कि कब एक को करे, कब दूसरे को।

इसका 'विस्मरण सिद्धांत' पर भी, जिस पर अगले अध्याय में हम विचार करेंगे, प्रभाव है। यह प्रभावशाली क्रिया, जिसे हम आंशिक प्रबलन में देखेंगे, जिस पर आगे इसी अध्याय में विचार किया जाएगा, से भी संबंधित है।

उद्दीपन सामान्यीकरण ( Stimulus Generalisation ) :

पावलोव ने शीघ्र ही यह खोज कर लिया कि यदि वह एक कुत्ते को घंटे की ध्वनि पर लार स्रावित करने के लिए अनुबंधित करता है, तो वह उसे गुंजक (Buzzer) के स्वर या मेट्रोनोम की ध्वनि पर भी लार स्रावित करने के लिए अनुबंधित कर सकता है, किंतु कुछ कम मात्रा में। अतः, जंतु को विशेष रूप से जिस उद्दीपन के लिए अनुबंधित किया गया है, उससे भिन्न पर कुछ समान उद्दीपनों के प्रति अनुबंधित अनुक्रिया को सामान्यीकृत ( Generalise ) करने की ओर प्रवृत्त होता है। यद्यपि पावलोव ने अनुबंधित-अनुक्रियाओं के सामान्यीकरण का उल्लेख किया है, किंतु सामान्यीकरण का वह उदाहरण, जिसका उपयोग हम करेंगे, वह पावलोव की प्रयोगशाला का नहीं है, वरन् मनुष्य में अनुबंधित गैल्वनिक त्वचीय अनुक्रिया ( Galvanic Skin Response GSR ) का एक प्रयोग है। ( होवलैंड, १९३७ ) विद्यार्थी चतुर्थ अध्याय से स्मरण करेंगे कि GSR एक स्वेद ग्रंथि का प्रतिवर्त या सहजक्रिया है, जो संवेगदशा प्रकट करती है। इसे प्रयोग-पात्र को एक अरुचिकर विद्युत्-आघात देकर सहज ही उत्पन्न किया जा सकता है।

> "इस प्रयोग में GSR के लिए विद्युत्-आघात अननुबंधित उद्दीपन ( प्रबलन ) था। प्रयोगकर्त्ता ने प्रयोग-पात्र के GSR का विशेष शुद्ध लय के ध्वनि-तारत्व के प्रति अनुबंधन प्रारंभ किया। इस आघात को प्रस्तुत करके और शुद्ध लय ( अनुबंधन उद्दीपन ) को भी उसी समय या तुरंत बाद प्रस्तुत किया। GSR के इस लय से अनुबंधित हो जाने के उपरांत प्रयोगकर्त्ता ने अनुबंधित GSR की मात्रा को, मूल ध्वनि तारत्व ( अब अनुकूलित उद्दीपन ) से भिन्न ध्वनि-तारत्वों की लयों को उपस्थित करके, परिमापन किया। इस प्रयोग के परिणामों को चित्र ७.८ में चित्रित किया गया है। मूल अनुबंधन में जिस लय का उपयोग किया गया था, उसने सबसे अधिक GSR उत्पन्न किया, और उसके समान ध्वनि-तारत्वों ने बिलकुल भिन्न तारत्वों की अपेक्षा अधिक GSR उत्पन्न किया। अतः, उद्दीपनों में जितनी अधिक समानता होगी, उनमें सामान्यीकरण भी उतना ही अधिक होगा।"

व्यक्तियों की अनेक अनुक्रियाएँ एवं विशेषताएँ अनुबंधन और सामान्यीकरण की प्रक्रियाओं के माध्यम से अर्जित की जान पड़ती हैं। GSR के साथ किया गया प्रयोग इन प्रक्रियाओं को स्पष्ट करता है। GSR संवेगात्मक असंतुलन का एक सूचक है और यही कारण है कि यह मिथ्या बात का पता लगाने में अपना पथ खोज लेता है। उपर्युक्त उदाहरण में अननुबंधित उद्दीपन के रूप में आघात ने

प्रयोग-पात्र में कष्ट उत्पन्न किया और अनुबंधित उद्दीपन ने कष्ट के भय को उत्पन्न किया। यह साधारण प्रयोग व्यक्तियों में अविवेकी भयों के विकास के लिए एक माडल (प्रतिरूप) का कार्य करता है। ऐसे भय या भीतियाँ अविवेकी हैं; क्योंकि वे किसी उद्दीपन द्वारा आकस्मिक अनुबंधन द्वारा अर्जित होते हैं और उन स्थितियों से सामान्यीकृत हो जाते हैं, जो सामान्यतः भयप्रद नहीं होतीं। अलबर्ट के अनुबंधन का उदाहरण, जिसका उपयोग हमने चतुर्थ अध्याय में किया है, ऐसे ही सामान्यीकरण का एक और उदाहरण है। सफेद जंतु से अनुबंधन के उपरांत वह सब सफेद रोएँ वाली वस्तुओं से सफेद दाढ़ी से भी भयभीत होने लगा।

जिन उद्दीपनों के लिए हम अनुबंधित हो जाते हैं, उनके सदृश उद्दीपनों के प्रति भी हम अनुक्रियाशील होने की ओर प्रवृत्त होते हैं।
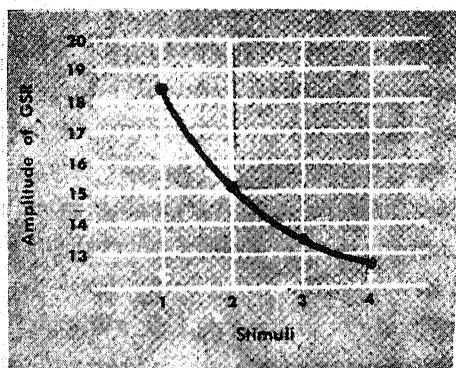
**चित्र ७.८ अनुबंधित गैल्वनिक त्वचीय अनुक्रिया का सामान्यीकरण उद्दीपन १ वह स्वर है जिसके प्रति GSR मूलरूप में अनुबंधित की गई थी। उद्दीपन २.३ और ४ क्रम से बढ़ती हुई बारंबारता के स्वर थे। ध्यान दें कि बारंबारता का अंतर जितना अधिक है, अनुक्रिया का सामान्यीकरण उतना कम है** (होवलैंड के अनुसार, १९३७)।

## उच्चस्तरीय अनुबंधन (Higher Order Conditioning) :

पावलोव ने अपने प्रयोगों में और भी कुछ किया, जो हमें अधिक जटिल अधिगत व्यवहार को समझने में सहायता देता है। उसने खोज की थी कि वह एक अनुबंधित अनुक्रिया का उपयोग दूसरी अनुबंधित-अनुक्रिया के बनाने में कर सकता है और इस प्रकार उच्चस्तरीय अनुबंधन उत्पन्न कर सकता है। उसका एक प्रयोग इस प्रकार चला :—

> "एक कुत्ता सामान्य ढंग से मेट्रोनोम की ध्वनि पर लार-स्रवण के लिए अनुबंधित किया गया। जब वह अनुबंधित हो गया, तो पावलोव ने उसे भोजन देना बंद कर दिया, जैसा कि विलोपन-प्रक्रिया में किया जाता है। मेट्रोनोम

को ध्वनित करने से पूर्व कुत्ते के सामने काला चतुर्भुज-अंकित एक कार्ड उसने फेंका और इसे उसने कई बार दोहराया, जैसे नियमित अनुबंधन के लिए किया जाता है। कुछ बार दोहराने पर उसने देखा कि कुत्ते ने लार-स्रवण प्रारंभ कर दिया जब उसके सामने कार्ड आया, जब कि इस कार्ड के साथ भोजन को कभी संबंधित नहीं किया गया था। अतः, काले चतुर्भुज और मेट्रोनोम के लिए अनुबंधित लार-अनुक्रिया में साहचर्य निर्मित हुआ।"

इस उदाहरण में काला कार्ड द्वितीय स्तरीय अनुबंधित उद्दीपन था। काले कार्ड के लिए अनुबंधित अनुक्रिया के अधिगम का प्रबलन भोजन के लिए मुख्य प्रबलन नहीं था, वरन् अनुबंधित उद्दीपन था। इसीलिए अनुबंधित उद्दीपन को 'गौण प्रबलन' कहा गया। इसकी तुलना तृतीय अध्याय में वर्णित गौण लक्ष्य से की जा सकती है। वहाँ अधिगम की स्थिति कुछ भिन्न थी, किंतु सिद्धांत एक ही था। पोकर-चिप्स को भोजन से संबंधित किया गया था और बंदर के बच्चों ने पोकर-चिप्स को एकत्रित करने की एक नवीन अनुक्रिया को सीखा था। यहाँ कुत्ते के अनुबंधन में भोजन से नियमित रूप से संबंधित उद्दीपन मेट्रोनोम था। कुत्ते ने अनुक्रिया को उद्दीपन से संबंधित करना सीखा... इस उदाहरण में, उसी लार-अनुक्रिया को एक उदाहरण में हम गौण लक्ष्य कहते हैं; क्योंकि जंतु लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करता है, दूसरे में हम द्वितीय स्तरीय अनुबंधित उद्दीपन या गौण प्रबलन की बात कहते हैं। सामान्य सिद्धांत वही है, दोनों उदाहरणों में मध्यवर्त्ती उद्दीपन गौण प्रबलन का कार्य करता है।

पावलोव इस उच्चस्तरीय अनुबंधन को एक कदम और आगे बढ़ाने में तृतीय स्तरीय उद्दीपन के अनुबंधन द्वारा सफल हुआ। काले कार्ड से किसी अन्य वस्तु को संबंधित करके वह लार-स्रवण को कुछ सीमा तक अनुबंधित कर सका। तृतीय स्तर का अनुबंधन इस प्रक्रिया की सीमा थी; क्योंकि उच्चस्तरीय अनुबंधन प्रयत्नों में, बहुत अधिक निम्नस्तरीय उद्दीपनों की ओर बढ़ने से विलोपन प्रारंभ हो जाएगा। जब कुत्ते में मेट्रोनोम और काले चतुर्भुज के प्रति अनुक्रिया हो रही थी, वह भोजन द्वारा मुख्य प्रबलन नहीं पा रहा था। अतः मेट्रोनोम के प्रति अनुक्रिया का उसी समय विलोपन हो रहा था, जब कि चतुर्भुज और मेट्रोनोम में साहचर्य निर्मित हो रहा था। स्पष्ट है कि किसी एक स्थल पर विलोपन प्रभाव को उच्चस्तरीय अनुबंधन प्रभाव से अधिक होना चाहिए और था भी।

## नैमित्तिक अधिगम ( Instrumental Learning )

हमें शास्त्रीय अनुबंधन के प्रयोगों के पूर्णतः सदृश परिस्थितियाँ शायद ही कभी मिलती हैं। ऐसे प्रयोगों के अध्ययन से यह लाभ है कि वे प्रत्येक प्रकार के अधिगम

अथवा साहचर्य के अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर प्रकाश डालते हैं और इस प्रकार वे, हम जिस प्रकार के अधिगम से परिचित हैं, उससे अधिक जटिल अधिगम के प्रकारों का परिचय हमें देते हैं। इनमें से एक प्रकार **नैमित्तिक अधिगम** कहलाता है या कभी-कभी नैमित्तिक अनुबंधन; क्योंकि इसमें ऐसी अनुक्रिया का अधिगम होता है, जिससे कुछ निष्पन्न या प्राप्त होता है। यह भोजन की प्राप्ति में, दुःख या दंड के निवारण में अथवा लक्ष्य की प्राप्ति में निमित्त या साधन रूप है। शास्त्रीय अनुबंधन से कुछ निष्पन्न नहीं होता, यह केवल एक अनुक्रिया का उद्दीपन से साहचर्य है। कभी-कभी नैमित्तिक अधिगम में सन्निहित व्यवहार को 'परिचालक व्यवहार' कहा जाता है; क्योंकि यह पर्यावरण का 'परिचालन' करता है (स्कीनर, १९३८)।

नैमित्तिक अधिगम द्वारा अर्जित अनुक्रिया, साधारणतः, एक या दोनों लक्ष्यों की प्राप्त करती है। यह नकारात्मक लक्ष्य को भय या दंड के निवारण द्वारा प्राप्त कर सकती है, अथवा यह भोजन, जल या अधिगत गौण लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है। कुछ स्थितियों में ये दोनों को साथ भी प्राप्त कर सकती है। हम निश्चयात्मक लक्ष्य से प्रारंभ करेंगे, उसके उपरांत निषेधात्मक लक्ष्य पर विचार करते हुए अंत में अधिक जटिल स्थितियों पर विचार करेंगे, जिनमें दोनों लक्ष्य सन्निहित रहते हैं।

**स्कीनर-प्रयोग ( The Skinner Experiment ) :**

हमने पिछले अध्यायों में ऐसी अधिगम स्थिति का उल्लेख किया है, जिसमें जंतु को एक बक्स में रखा गया है और वह आहार (या जल) को उत्तोलक दबाना सीखने पर प्राप्त कर सकता है। इस बक्स का आविष्कार, और बाद में प्रयोग भी, स्कीनर (१९३८) नामक मनोवैज्ञानिक के द्वारा किया गया था। इसीलिए सुविधा के लिए इसे 'स्कीनर-बक्स' कहा गया है। ऐसे बक्स में चूहे को चित्र ७.९ में दिखाया गया है। चूहा जिस उत्तोलक को दबाता है, उससे बिजली का स्विच चलता है और वह अभिलेखन यंत्र (रिकार्डिंग यंत्र) से जुड़ा हुआ है। यह यंत्र चूहे द्वारा की गई एक के बाद एक अनुक्रियाओं के कालक्रम का अंकन करता है। हम ऐसे बक्स में चूहे द्वारा उत्तोलक को दबाना सीखने के क्रम का विवरण नीचे दे रहे हैं :

> "चित्र ५.९ को लेने से पहले कुछ दिनों के लिए उस चित्र के चूहे को पहली बार बक्स में रखा गया था। चूहे ने गत २४ घंटों से कुछ नहीं खाया था, इसलिए वह भूखा था। अभ्यस्तता के प्रारंभिक समय के उपरांत उसने बक्स में खोज प्रारंभ की और अंत में उत्तोलक को दबाया। उसी समय उसे भोजन का टुकड़ा मिला। किंतु, उस ओर उसका ध्यान नहीं गया। चूहे ने उस खोज को जारी रखा, बीच-बीच में वह अपने को स्वच्छ करता

जाता था, जैसा कि प्रायः चूहे करते हैं। थोड़ी देर बाद उसने फिर उत्तोलक को दबाया और फिर वैसा ही हुआ। तीमरी बार उसने पुनः उत्तोलक को दबाया, परंतु इस बार भी वह यह देखने में असफल रहा कि दबाने के परिणामस्वरूप उसे भोजन का टुकड़ा मिला है। किंतु, अंततः उसने देख लिया। चतुर्थ उत्तोलक अनुक्रिया पर चूहे ने तुरंत भोजन का टुकड़ा पकड़ा और खा लिया। उसके बाद चूहा जितनी जल्दी वह भोजन का टुकड़ा खा लेता, दूसरा टुकड़ा पाने के लिए उतनी ही जल्दी वह पुनः उत्तोलक को दबाता।

इस पूरी प्रक्रिया को रिकार्ड किया गया (देखिए, चित्र ७.९)। उत्तोलक से एक यंत्र इस प्रकार जोड़ दिया गया कि जैसे ही चूहा उत्तोलक को दबाता, रेकार्डिंग कलम उछलता। पहली बार काली रेखा इस कलम से चूहे को बक्स में रखने के १५ मिनट बाद बनी, इसके बाद बहुत देर तक कोई अनुक्रिया रिकार्ड न की गई। दूसरी रिकार्ड-रेखा ५० मिनट बाद और तीसरी ७० मिनट बाद बनी। ८० मिनट बाद चौथी रेखा बनी, जिसके बाद चूहे ने उत्तोलक और भोजन के साहचर्य को सीख लिया और तब ये रेखाएँ बहुत निकट बनने लगीं और अनुक्रिया का क्रम एक सीधी, कुछ तिरछेपन के साथ, रेखा के रूप में प्रतीत होने लगा।"

यह सरल प्रयोग नैमित्तिक अधिगम के और वास्तव में मानव के अधिकांश अधिगम के बुनियादी लक्षणों को स्पष्ट करता है। प्राणी, सर्वप्रथम, किसी प्रेरणा से अभिप्रेरित होता है। प्रेरणा सामान्य **समन्वेषी क्रिया उत्पन्न करती** है। इस क्रिया के मध्य एक **ऐसी अनुक्रिया घटित हो जाती है, जो उपयुक्त लक्ष्य की उपलब्धि में साधन रूप होती है**। यह अनुक्रिया अधिगत अनुक्रिया बन जाती है।

शास्त्रीय अनुबंधन के ही समान नैमित्तिक अधिगम के लिए भी **प्रबलन** एक अनिवार्य तत्त्व है। किंतु, यहाँ प्रबलन की परिभाषा कुछ भिन्न हो जाएगी। **यह उस लक्ष्य की प्राप्ति है, जो प्रेरणा को तृप्ति दे सकता है**। स्कीनर-बक्स के भूखे चूहे के उदाहरण में आहार को प्राप्त करना प्रबलन था। यदि जंतु प्यासा हो, तो जल को प्राप्त करना प्रबलन होगा। जंतु को प्रबलन प्राप्त हुआ, केवल इसीलिए उसने उपयुक्त साभिप्राय अनुक्रिया को सीखा। प्रबलन को केवल शारीरिक अंतर्नोदों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। बंदर भी उसी प्रकार उत्तोलक को दबाएँगे, केवल दूसरे बंदरों को देखने का सुखलाभ करने के लिए अथवा, जैसा कि हम प्रबलन को तृतीय अध्याय में देख चुके हैं, कौतूहल और समन्वेषी अंतर्नोदों के कारण।

नैमित्तिक अधिगम में प्रयत्न और भूल द्वारा सही अनुक्रिया हो जाती है। किंतु, कुछ प्रबलनों के उपरांत वह अभ्यासगत हो जाती है।
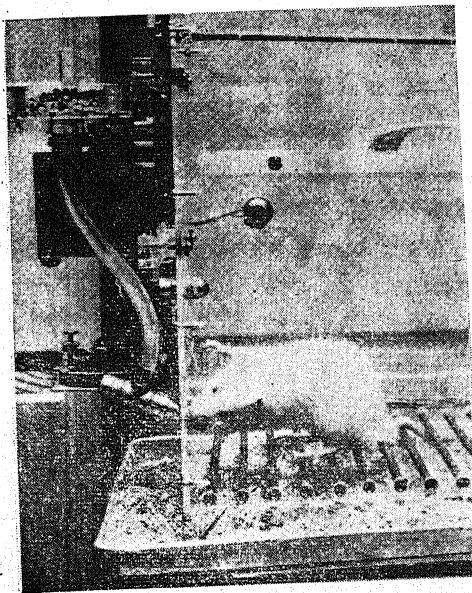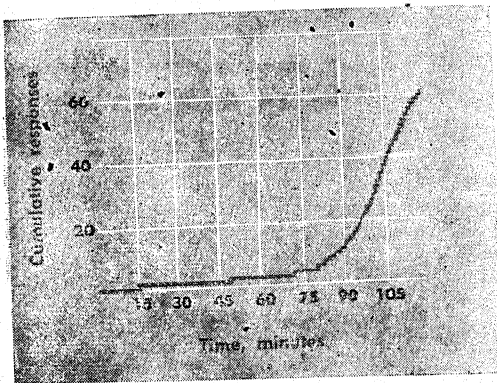
चित्र ७.९ स्कीनर-बक्स में एक चूहा और उसके अधिगम का अभिलेख। हर बार जब चूहा उत्तोलक को दबाता है, रेखा ऊपर की ओर घूम कर चिन्ह बनाती है। ध्यान दें कि बक्स में रखने के १५ मिनट तक चूहे ने प्रथम अनुक्रिया नहीं की और उसके ५० मिनट तक उसने दूसरी अनुक्रिया नहीं की। भोजन प्रबलन का प्रभाव ८० मिनट तक प्रत्यक्ष प्रकट है और उसके बाद चूहे ने उत्तोलक को निरंतर दबाना प्रारंभ किया ( चास० फ्राइजर एंड को० Inc.)।

प्रबलन के उचित प्रयोग द्वारा साधारण जानवरों को जटिल कार्य सिखाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए चित्र ७.१० की चित्रमाला पर विचार कीजिए। यदि

बिना जाने कि वे कैसे प्राप्त किए गए हैं, आप उनकी ओर देखें, तो आप सोचेंगे कि कबूतर बहुत प्रतिभासंपन्न है। चित्र के अनुसार ऐसा प्रकट होता है कि कबूतर धागे से ट्रक को ठीक स्थान पर खींच कर खंभे के ऊपर से, अपने आहार को प्राप्त कर सकता है। वास्तव में कबूतर के व्यवहार को बहुत सावधानी से देखते हुए यह कौशल उसे सिखाया गया था। उपयुक्त समाधान की ओर ठीक बढ़ते हुए हर कदम पर जब कबूतर की सही अनुक्रिया होती, तब उसे पुरस्कृत करके यह सिखाया गया था। धीरे-

जन्मजात प्रतिभा अथवा अभ्यास।
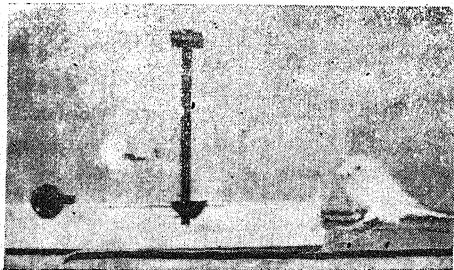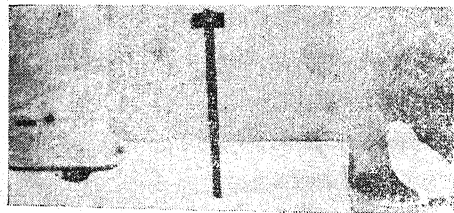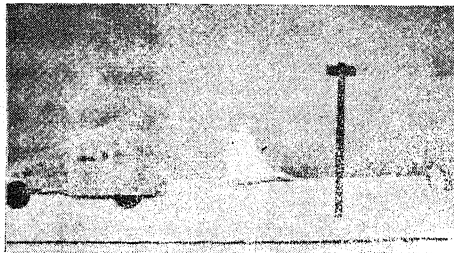
**चित्र ७.१०. प्रबलन द्वारा एक जटिल कार्य अधिगत हुआ। उपयुक्त व्यवहार को प्रबलित करने से दीर्घ प्रशिक्षण क्रम से कबूतर को सिखाया गया कार्य समझ अथवा अंतर्दृष्टि के रूप में प्रतीत होता है ( डेविड लिटन )।**

धीरे पूर्ण 'समस्या-समाधान' के क्रम को सीख लिया गया। यह और इस प्रकार के अनेक अन्य कौशल जो सर्कस में देखे जाते हैं, प्रबलन से सावधानीपूर्ण नियंत्रण द्वारा सिखाए जाते हैं।

**विलोपन** (Extinction) :

शास्त्रीय अनुबंधन और नैमित्तिक अधिगम दोनों ही में, एक अधिगत-अनुक्रिया का विलोपन, प्रबलन के नियंत्रण द्वारा संभव है। उदाहरणार्थ, फिर यदि उत्तोलक के दबाने पर चूहे को फिर कभी आहार प्राप्त न हो, तो उसकी अनुक्रिया की गति धीरे-धीरे तब तक मंद होती जाएगी, जब तक वह बिलकुल समाप्त न हो जाए। यह क्रिया जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, 'विलोपन प्रक्रिया' कहलाती है और इसके परिणाम विलोपन-वक्र का विवरण चित्र ७.११ में चित्रित है।
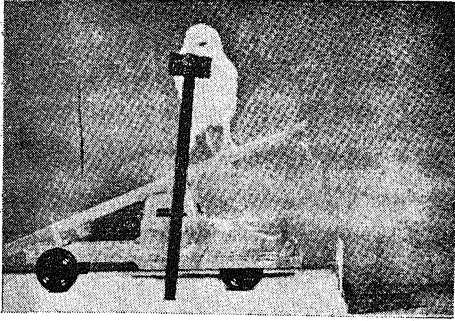
चित्र ७·१० के क्रम में

प्रबलन के अभाव में साभिप्राय अनुक्रियाएँ धीरे-धीरे विलुप्त हो जाती हैं।
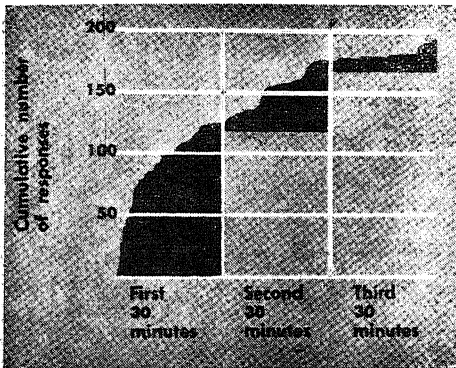
**चित्र ७.११ स्कीनर-बक्स में एक चूहे का विलोपन-वक्र। जब उत्तोलक के दबाने पर बिलकुल भोजन नहीं दिया जाता, तो उत्तोलक को दबाने की गति का क्रम धीरे-धीरे कम होता जाता है ( स्कीनर के अनुसार, १९३८ )।**

**गौण** प्रबलन ( Secondary Reinforcement) :

पावलोव के प्रयोग में, अननुबंधित उद्दीपन के रूप में, भोजन की गोलियों का निकलना मुख्य प्रबलन है। इसी तरह गौण प्रबलन अधिगम के दोनों प्रकारों में

सामान्य है। इसे स्कीनर-बक्स के चूहों के प्रयोगों द्वारा निम्नलिखित उदाहरण (बर्च, १९५१) में स्पष्ट किया जा सकता है।

गुंजक-स्वर चूहे के लिए स्वतः एक प्रबलन नहीं है। किंतु, यदि गुंजक को मुख्य प्रबलन, जैसे मुख में भोजन की उपस्थिति से संबद्ध कर दिया जाए, तो यह प्रबलन की क्षमता प्राप्त कर लेगा। प्रयोगकर्त्ता चूहे को, जब वह अपने घरेलू-पिंजड़े में होता है, भोजन देता है; साथ ही गुंजक बजाता है। उसके बाद वह उसे स्कीनर-बक्स में रखता है और उसे पहली बार उत्तोलक दबाना सीखने का अवसर देता है। चूहे को भोजन से प्रबलित करने के स्थान पर, प्रयोगकर्त्ता उसे गुंजक से प्रबलित करता है, जिसे घरेलू पिंजड़े में भोजन खाने के साथ संबद्ध किया गया था। गुंजक अब प्रबलन करने वाले या प्रबलक के रूप में सफल कार्य करता है। चूहा उत्तोलक को दबाना इस प्रकार सीख लेगा कि सामान्य दर्शक को वह केवल गुंजक-स्वर को सुनने की प्रसन्नता पाने के लिए जान पड़ेगा। इस स्थिति में गुंजक गौण प्रबलन है।

अब तक हम तीन (धनात्मक) गौण प्रबलन के उदाहरणों का अध्ययन कर चुके हैं। प्रथम उदाहरण था गौण लक्ष्यों का सीखना (तृतीय अध्याय)—बंदरों का पोकर-चिप्स एकत्रित करना सीखना। द्वितीय था, पावलोव-प्रयोग में उच्चस्तरीय अनुबंधन और अब (तृतीय) गुंजक की साभिप्राय अनुक्रिया को सीखने की अभिप्रेरणा की योग्यता। अन्य उदाहरण भी हम आगे देखेंगे। इन विविध उदाहरणों से, जिनमें गौण प्रबलन घटित होता है, हम इस शब्द की एक सामान्य परिभाषा पर पहुँच सकते हैं :—**कोई भी उद्दीपन, जो साहचर्यों को सीखने के लिए अभिप्रेरित कर सके; क्योंकि वह मुख्य प्रबलन से संबद्ध है, गौण प्रबलन है।**

अधिगत व्यवहार को समझने में हम गौण प्रबलन के संप्रत्यय के महत्त्व पर जो भी कहें, वह अधिक नहीं होगा। यह प्रयोगशाला के कृत्रिम व्यवहार और वास्तविक व्यवहार के अंतर को दूर करता है। गौण प्रबलन अनेक लक्ष्यों को, जिनकी ओर हमारा व्यवहार परिचालित है, स्पष्ट करता है और उन आदतों को भी स्पष्ट करता है, जो जगत के विविध उद्दीपनों से संबंधित हैं। अतः, यह दोनों कार्य करता है। यह व्यवहार को अभिप्रेरित भी करता है और व्यवहार के उन प्रकारों को भी, जो सीखे गए हैं, निर्धारित करता है।

## आंशिक प्रबलन (Partial Reinforcement) :

जब हम अनुबंधित अनुक्रियाओं के विलोपन की चर्चा कर रहे थे, तो संभवतः आपके ध्यान में यह बात आई होगी कि वास्तविक जीवन में हम प्रायः विलोपन नहीं देखते। लोग प्रायः आदतों को भूल जाते हैं—आगे हम विस्मरण पर विचार

करेंगे—किंतु. उनके भूलने का कारण यह नहीं होता कि उन्हें प्रबलन नहीं मिला, इसलिए उन्होंने आदतें छोड़ दीं। यहीं यह महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि बिना किसी प्रत्यक्ष प्रबलन के भी लोग अपने व्यवहार में प्राय: स्थिर क्यों रहते हैं ? इसका एक उत्तर **आंशिक प्रबलन** में खोजा जा सकता है। आंशिक प्रबलन, जिसे कभी-कभी सविरामी प्रबलन भी कहा जाता है, समयविशेष की अनुक्रिया है, जो सब कालों में घटित नहीं होती। अत:, यह अनुबंधन-प्रक्रिया और विलोपन-प्रक्रिया का मिश्रण है।

आंशिक प्रबलन की योजना की अनेक संभावित व्यवस्थाएँ हो सकती हैं। एक हैं **नियत-अनुपात-योजना**, जिसमें प्रत्येक बार बहुत-सी अनुक्रियाओं के बाद प्रबलन दिया जाता है। ये सब अन्य प्रक्रियाएँ अप्रबलित होती हैं। उदाहरणार्थ, हम प्रत्येक तीसरी या प्रत्येक चौथी या प्रत्येक सौवीं अनुक्रिया को भी प्रबलित कर सकते हैं। यह प्रणाली प्राणी को तीव्र अनुक्रियाओं के लिए उद्दीप्त करती है; क्योंकि प्राणी जैसे ही अनुक्रियाओं को नियत संख्या समाप्त करेगा, उसे पुरस्कार मिलता है। इसकी तुलना मानवीय परिश्रम में किसी कार्य को खंडश: करने की क्रिया से कर सकते हैं। आंशिक प्रबलन का दूसरा प्रकार है—नियत कालांतर योजना। इसमें नियत कालांतर में यदि अनुक्रिया हो, तो उसे प्रबलन दिया जाता है। इस प्रकार की कुछ तुलना मानवीय कार्यों में वेतन से हो सकती है। एक 'चतुर' व्यक्ति ऐसी योजना में अधिक कार्य नहीं करता, वह बार-बार नियत कालांतर का पता लगाने की अनुक्रिया करता है और यह जान लेने पर कालांतर के लिए अपने परिश्रम की मात्रा कम कर देता है। किंतु, अधिकांश जानवर इतने चालाक (चतुर) नहीं होते। वे एक कालांतर में अनेक अनुक्रियाएँ करते हैं, यद्यपि 'उपलब्धि' के बाद उनकी गति मंद हो जाती है और उपलब्धि का काल निकट आने पर तीव्र हो जाती है।

इन प्रकारों को नियत के स्थान पर परिवर्तनशील भी बनाया जा सकता है। कुछ परिवर्तनशील अनुक्रियाओं के बाद पात्रों को लाभांश दिया जा सकता है—एक बार दो अनुक्रियाओं के बाद, फिर दस के बाद और उसके बाद छह के उपरांत इत्यादि। यह बहुत कुछ स्लाट-मशीन चलाने के समान है। व्यक्ति के पास यह जानने का कोई उपाय नहीं रहता कि उसे फल की प्राप्ति कब होगी। वह केवल इतना ही जानता है कि यदि वह बराबर कार्य करता रहेगा, तो किसी समय भी फल (लाभांश) मिल ही जाएगा। इसी प्रकार नियत कालांतर में भी परिवर्तन किया जा सकता है—व्यक्ति को पहले एक कालांतर के बाद वेतन दिया जाए, फिर दीर्घ काल के बाद या कम समय के बाद, इत्यादि।

## विलोपन का प्रतिरोध (Resistance to Extinction) :

विशेषत: आंशिक प्रबलन आनुपातिक योजना की ही एक ऐसी विधि है, जिससे बिना मूल्य चुकाए ही कुछ अनुक्रियाएँ हो सकती हैं। इसका आंशिक प्रबलन के प्रभाव में अधिगत अनुक्रियाओं के विलोपन पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है; क्योंकि विलोपन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें अनुक्रियाओं को कोई फल नहीं प्राप्त होता। एक जंतु, जो आंशिक प्रबलन द्वारा प्रशिक्षित किया गया है, नियमित प्रबलन द्वारा प्रशिक्षित जंतु की अपेक्षा उसकी अनुक्रियाएँ बहुत अधिक धीरे-धीरे विलुप्त होती हैं।

मान लीजिए कि हम दो चूहों को बारी-बारी से एक स्कीनर-बक्स में रखते हैं। प्रत्येक चूहे को सौ बार प्रवलित करने पर विलोपन-बक्र लें। एक चूहे को प्रत्येक अनुक्रिया पर भोजन से प्रबलित किया जाए और दूसरे को प्रत्येक चौथी अनुक्रिया पर।अत:, पहले चूहे की एक सौ अनुक्रियाएँ जितना भोजन प्राप्त करने के लिए करनी पड़ेगी दूसरे को उसके लिए चार सौ अनुक्रियाएँ करनी होंगी।

मध्यवर्त्ती ( या सविरामी ) प्रबलन द्वारा अधिगत अनुक्रिया का विलोपन उस अनुक्रिया की अपेक्षा अधिक कठिन है, जो प्रत्येक बार के प्रबलन के अधिगत हुई है।
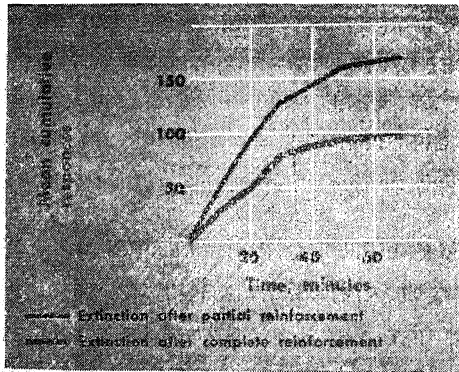
**चित्र ७.१२ आंशिक एवं पूर्ण प्रबलन के उपरांत विलोपन-बक्र। अनुक्रिया को स्थायित्व देने में शत-प्रतिशत प्रबलन की अपेक्षा आंशिक प्रबलन अधिक प्रभावशाली है।**

इन चूहों के विलोपन-बक्र चित्र ७·१२ में अंकित चित्र के सदृश कुछ होंगे, जो ठीक इसी प्रकार के दो चूहों के हैं। ये संचयी-वक्र हैं, वे विलोपनकाल में होने वाली अनुक्रियाओं के परिचालित सामूहिक रूप को प्रदर्शित करते हैं, इसलिए नीचे न जाकर वे ऊपर जाते हैं, जैसा कि वे यदि प्रत्येक मिनट की अनुक्रिया की संख्या ली जाए, तो करेंगे। यदि वे चपटे हो जाएँ, तो इसका अर्थ होगा कि चूहों ने अनुक्रिया

करना छोड़ दिया है और कम-से-कम उस समय के लिए अनुक्रियाएँ विलुप्त हो गई हैं। ध्यान दें कि वह चूहा, जिसे हर चौथी बार प्रबलित किया गया था, बिलोपन-काल में भी, प्रत्येक बार प्रबलित किए गए चूहे की अपेक्षा कई बार अधिक अनुक्रियाएँ करता है। वास्तव में, प्रत्येक अनुक्रिया का प्रबलन, यदा-कदा के प्रबलन की अपेक्षा, बिलोपन की गति को बहुत तीव्र कर देता है।

## व्यावहारिक निहितार्थ (Practical Implication) :

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अधिगम काल में किया गया आंशिक प्रबलन अनुक्रियाओं के विलोपन को कहीं अधिक कठिन बना देता है। आंशिक अनुक्रिया के प्रभाव का व्यावहारिक अभिप्रेत-अर्थ इस प्रकार है—प्रकृति अनुक्रियाओं को नियमित प्रबलन बहुत कम देती है। एक जानवर प्रत्येक बार एक स्थान पर आहार नहीं प्राप्त करता, एक कुत्ता हर बार सड़क पार करते हुए कार से घायल नहीं होता। प्रकृति के ही समान मनुष्य भी अपूर्वानुमेय हैं। माता-पिता जानी को केक के पात्र में हाथ डालने के लिए हमेशा नहीं डाँटते। हम अपने अच्छे कार्यों के लिए सदा पुरस्कृत नहीं होते और न ही बुरे कार्यों के लिए सदा दंडित होते हैं। वास्तव में, हम विशिष्ट रूप मे, कभी बहुत परिश्रम पर बहुत कम और अनियमित रूप से, अपने कार्यों के लिए पुरस्कृत या दंडित होते हैं। इस प्रकार जीवन में प्रबलन प्राय: आंशिक या रुक-रुक कर होता है। अत:, जो बातें हमने सीखी हैं, उनमें से अधिकांश आंशिक प्रबलन के प्रभाव के कारण सीखी हैं।

जब युवा व्यक्ति पहली बार प्रबलन और विलोपन-सिद्धांत के विषय में सुनते हैं, तो वे प्राय: कहते हैं, "वाह, इस सिद्धांत का प्रयोग हम अपने बच्चों के पालन-पोषण में करेंगे। जब वह रोएगा, तो हम उसे कभी नहीं उठाएँगे, रोना बंद किए कुछ मिनट हो जाने पर ही हम उसे उठाएँगे। इस प्रकार, हम अरुदन को प्रबलित करेंगे और रुदन को बिलुप्त।" दुर्भाग्य से अधिगम के बुनियादी सिद्धांतों का यह विशेष प्रयोग शायद ही कभी कार्यान्वित होता है—और उसके प्रयुक्त न होने का कारण है। बहुत दृढ़ माता-पिता भी कभी-कभी अपने बच्चों के हठ के सामने झुक जाते हैं। अत:, केवल एक बार, माता अपने बच्चे को उठा लेगी, जब वह रोता है या देर तक रात में जगने की अनुमति दे देगी। किंतु, वह बच्चा जिसे मालूम हो जाए कि एक या दो बार वह अपने हठी व्यवहार से सोने के समय को स्थगित करने में सफल हुआ है, उसके बाद कई दिन तक उसके कठिनाई उत्पन्न करने की संभावना रहेगी। सिद्धांत यह है कि माता-पिता को यथासंभव दृढ़ रहना चाहिए और आंशिक प्रबलन के अवांछित प्रभाव से दूर रहना चाहिए।

मानवीय व्यवहारों में और भी अनेक प्रयोग प्रबलन और विलोपन-सिद्धांतों के हैं—जानवरों को प्रशिक्षित करने में, सावधानी से कार चलाना सीखने में अपराधियों के आचरण में और स्कूल में पुरस्कार देने में भी ये प्रयोग होते हैं। संभवतः आप अपने और अन्य व्यक्तियों के अनेक ऐसे प्रभावित करने वाले रोचक व्यवहारों को सोच सकते हैं।

## परिहार या निवारण अधिगम (Avoidance Learning) :

अब तक हम धनात्मक लक्ष्यों से युक्त नैमित्तिक अधिगम का परीक्षण कर रहे थे। अब हम ऐसे अधिगम पर विचार करेंगे, जिसका लक्ष्य निषेधात्मक हो—कष्टकर, दुःखद या भयप्रद—जिससे बचा जाता है या जिससे दूर रहा जाता है। इस प्रकार के अधिगम के दो प्रकार हैं:—१. पलायन अधिगम और २. परिहार अधिगम। पलायन अधिगम वह है, जिसमें व्यक्ति दुखद स्थिति में पड़ जाने पर उससे दूर होता है या उसे दूर कर देता है। परिहार अधिगम में व्यक्ति दुःखप्रद स्थिति के घटित होने से पूर्व ही उसका परिहार कर देगा या उसे रोक देगा। प्रायः अधिगम के ये दोनों प्रकार परस्परसंबद्ध हैं। परिस्थिति का परिहार करना सीखने से पूर्व व्यक्ति के लिए पलायन सीखना आवश्यक है। इसीलिए इस अधिगम के दोनों प्रकारों पर निवारण या परिहार अधिगम के अंतर्गत ही विचार किया जाएगा।

## अधिगम के सोपान ( Stages in Learning ) :

परिहार-अधिगम का विस्तार से अध्ययन अनेक प्रकार के प्रयोगों में किया गया है। कुत्तों पर किया गया एक प्रयोग (सोलोमन और बीने, १९३५) को इसके उदाहरण के रूप में नीचे दिया जा रहा है।

> "एक कुत्ता एक ऐसे कठघरे में रखा गया, जो जाली द्वारा दो ऐसे खंडों में विभाजित किया गया था, जिस पर से एक कुत्ता सरलता से कूद सके। उस कठघरे का फर्श विद्युत्-जाली से बना था, जिसमें से कुत्ते को आघात दिए जा सकते थे। प्रत्येक शिक्षण-प्रयत्न में एक गुंजक बजाया जाता था और उसके दस सेकेंड बाद कुत्ता जिस खंड में होता, उसमें आघात दिया जाता। कुत्ते से यह आशा की जाती थी कि दस सेकेंड के अवसर में वह जंगले पर से कूद कर दूसरे खंड में चला आएगा। यदि वह कूद जाता, तो गुंजक बंद कर दिया जाता और कुछ असुविधा न होती। यदि वह न कूदता, तो उसे आघात लगता और वह तब तक लगता रहता, जब तक वह जाली पर से उस पार कूद न जाता।"

कूदने की अनुक्रिया आघात-परिहार का साधन होने के कारण एक नैमित्तिक अनुक्रिया है, जैसे उत्तोलक दबाना।

इस प्रकार के अधिगम का अधिगम-वक्र चित्र—७.१३ में दिखाया गया है। इसमें कूदने की सही संख्या—बिना आघात लगे कूदना—को प्रत्येक आगे-जाने वाले १० सेंकेड के अवसर में दिखाया गया है जैसा कि चित्र ७·१३ में देखा जा सकता है कि कुत्ते को सही समय पर कूदना सीखने से पहले अनेक प्रयत्न करने पड़े। तब प्रायः अनायास या आकस्मिक रूप से उसने सीख लिया एवं कुछ ही और प्रयत्नों के बाद फिर वह निरंतर प्रायः सही क्रिया करता रहा।

कुछ काल तक दंड से बचना सीखने के उपरांत अपेक्षाकृत आकस्मिक रूप से दंड-निवारण सीखा जाता है।
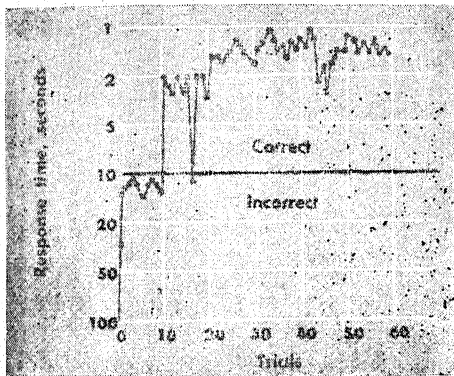
**चित्र—७.१३ गुंजक के प्रति निवारण-अनुक्रिया का अर्जन। नीचे पलायन-अधिगम से उसके ऊपर के निवारण-अधिगम तक के अपेक्षाकृत आकस्मिक पारगमन पर ध्यान दें।**

जितना कि एक नक्शे या प्रयोग में दिखाया जा सकता है, अधिगम में उससे कहीं अधिक ऐसे परिहार होते हैं। एक सुझाव दीर्घ काल से मिलता है, जिसमें (प्रत्यक्ष रूप में) कोई अधिगम नहीं रहता और प्रायः अचानक एक सही अनुक्रिया हो जाती है। इस काल में यदि हम कुत्ते को ध्यान से देखते रहें, तो हमें इसका संकेत मिल जाता है कि इस प्रकार के परिहार-अधिगम में क्या-क्या घटित होता रहता है। हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि यह द्वि-क्रमात्मक प्रकिया है और इसमें कुत्ता वास्तव में दो बातें सीखता है।

प्रथम क्रम गुंजक के प्रति संवेगात्मक भय-अनुक्रिया का सैद्धांतिक अनुकूलन है। घटित यह होता है कि गुंजक, जो आघात से पहले बजता, है, आघात के प्रति संवेगात्मक प्रतिक्रिया से संबद्ध होता है। अधिगम के प्रारंभिक प्रयत्नों में उसका साहचर्य-निर्माण देखा जाता है। जब गुंजक बजने लगता है, कुत्ता सावधान हो जाता है, ऐंठता है, भूँकता है और भय के अनेक लक्षण प्रकट करता है।

अधिगम का दूसरा क्रम, नैमित्तिक क्रम, प्रथम का पूरक है। इस क्रम के दो भाग हैं १. पलायन अधिगम और २. परिहार अधिगम। जब जानवर गलत ढंग से अनुक्रिया करते हैं, तो उनकी समस्या पलायन की होती है। जब आघात लगता है, तो वह इधर-उधर कुछ निरूद्देश्य-सा कूदता है और अचानक किसी समय वह जाली पर से कूद जाता है, आघात से बच जाता है। आघात के प्रति यह नैमित्तिक-अनुक्रिया वह धीरे-धीरे सीख लेता है और बार-बार वह होने लगती है। चित्र ७.१३ में यह अधि-गम-बक्र में ऊँचाई द्वारा प्रदर्शित है, जो सही परिहार-अनुक्रियाएँ प्रकट करने वाली रेखा के ठीक नीचे है।

एक बार जब कुत्ता नैमित्तिक-पलायन अनुक्रिया सीख लेता है, तो अनुक्रिया को गुंजक के प्रति भय-अनुक्रिया से संबद्ध किया जा सकता है। गुंजक द्वारा उत्पन्न भय और साभिप्राय अनुक्रिया के बीच यह साहचर्य है, जो अनुबंधित भय को साभि-प्राय अनुक्रिया से संबद्ध करता है। जब यह साहचर्य काफी दृढ़ हो जाता है, कुत्ता गुंजक के बजने पर आघात लगने से पहले ही जाली पर से उस पार कूद जाता है। वह आकस्मिक परिवर्तन अधिगम-बक्र में दिखाया गया है। उसके बाद कुत्ता प्राय: लगातार आघात का निवारण करता है।

परिहार-अधिगम-संबंधी, तब, हमारा विश्लेषण है कि इसके अंतर्गत दो प्रकार का अधिगम है—१. शास्त्रीय अनुबंधन और २ नैमित्तिक अधिगम। एक का पूरक दूसरा है। प्रथम है गुंजक के प्रति भय का अनुबंधन और द्वितीय है आघात से बचने की विशेष नैमित्तिक अनुक्रिया का सीखना।

### प्रबलन और विलोपन ( Reinforcement & Extinction ) :

यह विश्लेषण काफी स्पष्ट है, किंतु यह कुछ उलझनपूर्ण समस्याओं को उत्पन्न करता है। सर्वप्रथम, प्रबलन क्या है? इसका तुरंत और सहज उत्तर हो सकता है कि विद्युत्-आघात प्रबलन है। किंतु, क्या वास्तव में यह है? वस्तुत: जानवर जिस क्रिया को अधिगम करता प्रतीत होता है, वह यह है कि किस प्रकार प्रबलित न हुआ जाए। यथार्थत: जब वह ठीक क्रिया कर रहा है, वह २० या ३० प्रयत्नों में एक बार से अधिक आघात प्राप्त नहीं करता—केवल जब वह शिथिल हो जाता है और जाली पर कूदने में बिलंब कर देता है, तभी आघात पाता है। तब आघात यथार्थ में आंशिक प्रबलन है; क्योंकि यह कालांतर से अनुभव किया जाता है। वास्तव में, यह परिहार—अधिगम की अनिवार्य विशेषता है—अर्थात् प्रबलन केवल आंशिक होता है। ऊपर आंशिक प्रबलन पर विचार करते हुए हमने देखा कि यह विलोपन के प्रति अद्भुत् रूप से प्रतिरोधक होता है। तब इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है कि परिहार-अधिगम प्राय: कठिनाई से विलुप्त होता है।

किंतु, यह मान लेने पर कि विद्युत्-आघात अथवा सामान्य रूप में कहा जाए कि दु:खद या भयप्रद स्थिति--एक प्रबलन है, तब कौन-सी अनुक्रियाएँ प्रबलित होती हैं? इसमें दो आदतें सन्निहित हैं : १. भय अनुबंधन और २. नैमित्तिक कूदना। यह आघात इन दोनों के लिए प्रबलन है या एक के लिए? इस समस्या पर पर्याप्त प्रयोगात्मक प्रमाण उपलब्ध हैं, किंतु हम केवल उसके निर्णयों को ही यहाँ देंगे ( सोलोमन और बीने, १९५४)। आघात यदि एक मात्र नहीं तो भी मुख्य रूप में, गुंजक के प्रति भय-अनुक्रिया के लिए प्रबलन है। किंतु, कूदने के लिए भय से मुक्ति पाना प्रबलन है। दूसरे शब्दों में आघात से संबद्ध गुंजक अनुबंधित भय-प्रतिक्रिया को उत्पन्न करता है और तब भय से मुक्ति पाना वह तृप्ति है, जो निवारण-अनुक्रिया से संबद्ध होती है।

अधिगम और प्रबलन का यह द्विरूपात्मक विश्लेषण इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि परिहार-अधिगम बिलोपन का असाधारण रूप से प्रतिरोध करता है। कुत्तों पर किए गए कुछ प्रयोगों में, आघात के पूर्णत: बंद कर देने पर भी हजारों प्रयत्नों में गुंजक की ध्वनि मात्र पर कुत्तों को कूदते पाया गया है। कुछ में वह अनुक्रिया कभी भी बिलुप्त नहीं होती। नि:संदेह यह परिणाम एक उपजाति से दूसरी उपजाति में भिन्न होता है और प्रयुक्त की गई प्रयोगात्मक प्रक्रियाओं पर भी निर्भर करता है। किंतु, यह निर्विवाद है कि जब अत्यंत तीव्र और अभिघातज्ञ उद्दीपन मुख्य प्रबलन हो, तो विलोपन के लिए अत्यधिक प्रतिरोध होता है।

यह प्रतिरोध मानवों के निवारण-व्यवहार को स्मरण दिलाने वाला है। एक व्यक्ति, जिसे जीवन में एक बार सर्पों या चूहों का परिहार करना पड़ा, वह फिर जीवन भर उनका परिहार करता रहा। ऐसा ही जल, ऊँचे स्थानों, वायुयानों और अन्य बहुत सी बातों का भी व्यक्ति परिहार करता है। व्यक्ति सरलता से वस्तुओं के परिहार की आदतों पर विजय नहीं पाता।

इसके दो कारण प्रतीत होते हैं। एक जिसका उल्लेख हो चुका है कि परिहार-अधिगम, व्यक्ति के स्वभावानुसार, आंशिक प्रबलन द्वारा अधिगत किया जाता है और इस प्रकार सीखी गई आदतें विलोपन की प्रतिरोधक होती हैं। दूसरा कारण, कुछ अधिक सूक्ष्म है। किंतु, परिहार-अधिगम की द्विरूपात्मक प्रक्रिया का परिणाम है (सोलोमन और बीने, १९५४), जब कि परिहार-अनुक्रिया भय के प्रति अनुक्रिया है। जैसे ही भय अनुभव होता है, यह घटित होती है। अनुक्रिया घटित होने पर भय से मुक्ति मिलती है तथा यह अनुक्रिया के लिए प्रबलन का कार्य करती है। और, परिहार-अनुक्रिया व्यक्ति को मुख्य प्रबलन से, मूल में भय को उत्पन्न करने वाली स्थिति से दूर रखती हैं। इस प्रकार भय-अनुक्रिया के बिलुप्त होने की कोई संभावना नहीं

रहती। अतः, भय-अनुक्रिया के बिलोपन का कोई शिक्षण नहीं है और भय के प्रति परिहार-अनुक्रिया स्वतः चिरस्थायी होती है। इसका अर्थ है कि अवांछित परिहार-व्यवहार—जिनमें से कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण हैं—से मुक्ति पाना एक बड़ी समस्या हो सकती है।

दंड ( Punishment ) :

परिहार-अधिगम दंड द्वारा अभिप्रेरित अधिगम है, अर्थात् दुःखपूर्ण या अवांछित उद्दीपन द्वारा अभिप्रेरित। यह दंड तभी प्रभावपूर्ण प्रतीत होता है, यदि प्राणी को दंड से बचने के संकेत का केवल प्रत्युत्तर देना हम सिखा सकें। वे परिस्थितियाँ जिनमें माता-पिता, पुलिस के आदमी और समाज दंड का प्रयोग करते हैं, सदा सरल नहीं होतीं। समाज द्वारा दंड का प्रयोग प्रचुर रूप में, अवांछित व्यवहार को मिटाने और अनुमोदित व्यवहार को सिखाने के लिए होता है। कपड़े चबाने पर हम कुत्तों को दंड देते हैं, सड़क पर दौड़ने, झूठ बोलने, परस्पर झगड़ने पर और अपना गृहकार्य न करने आदि पर हम बच्चों को दंड देते हैं। बहुत तेज गाड़ी चलाने पर या बहुत जमा करने पर व्यक्तियों को समाज दंड देता है। व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए, वास्तव में, दंड का प्रयोग व्यापक रूप से होता है। प्रश्न यह है, इसका अच्छा प्रभाव किस प्रकार पड़ता है ? अथवा कब इसका प्रभाव पड़ता है और कब नहीं ?

कुत्तों पर निवारण ( परिहार ) अधिगम के लिए गए प्रयोगों पर यदि हम विचार करें, तो हमारा ध्यान अधिगम परिस्थितियों के कुछ उन रूपों पर जाएगा, जिनमें दंड प्रभावशाली सिद्ध हुआ है—

(१) जिसे दंडित किया गया, वह कोई पूर्व बनी हुई आदत न थी, वरन् अनुक्रिया न करने की असफलता थी। यदि हमने कुत्ते को किसी पूर्व-अधिगत बात के लिए दंडित किया होता, तो संभवतः परिणाम कुछ भिन्न होता।

(२) कोई विशेष अनुक्रिया करने के लिए अभिप्रेरण बहुत कम था। कुत्ता भूखा नहीं था या वह आहार पाने का प्रयत्न नहीं कर रहा था। आघात से बचने के अतिरिक्त कोई अन्य अभिप्रेरण न था।

(३) दंड के निवारण की अनुक्रिया सहज प्राप्त थी। कुत्ते को केवल इतना ही करना पड़ा कि अपने स्थान से कुछ हटना पड़ा, जो आघात और भय के प्रति स्वाभाविक अनुक्रिया थी और इसकी काफी सुविधाएँ प्रस्तुत थीं कि वह परिहार-अनुक्रिया के रूप में कूदने की अनुक्रिया करेगा।

(४) दंड की उपस्थिति का गुंजक एक निश्चित संकेत था। यदि इस संकेत पर प्रतिक्रिया करना कुत्ते ने सीख लिया, तो ठीक समय पर दंड का परिहार करने में वह सफल रहता।

(५) असफल होने पर बराबर दंड दिया गया, जिससे कि वह सही अनुक्रिया कर सके। जब तक कुत्ते ने वांछित अनुक्रिया नहीं की, तब तक गुंजक को बराबर आघात द्वारा प्रबलित किया गया।

(६) दंड बहुत कठोर था। आघात, यद्यपि कुत्ते के लिए घातक न था, तथापि बहुत कष्टकर था और तीव्र भय-प्रतिक्रियाओं को उद्दीप्त करने वाला था।

इनमें से परिहार-अधिगम प्रयोग के प्रत्येक भाग का व्यवहार के नियंत्रणार्थ दंड में प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। जब इनमें से किसी को परिवर्तित कर दिया जाता है अथवा उनकी क्रमबद्धता में परिवर्तन कर दिया जाता है, तो परिणाम भिन्न मिलता है। कुछ उदाहरणों में नए व्यवहार को सिखाने में दंड पूर्णत: प्रभावहीन भी सिद्ध होता है। मनस्तापी संवेगात्मक विकार भी उत्पन्न कर सकता है।

### विलोपनकाल में दंड ( Punishment during Extinction ) :

अब हम एक ऐसा उदाहरण लें, जिसमें उपर्युक्त प्राय: सभी दशाएँ विपरीत हों। पहले हम दंड के प्रयोग पर विचार करें, जिससे तीव्र अभिप्रेरण दशाओं में अभ-यस्त अनुक्रिया का विलोपन किया गया हो (स्कीनर, १९३८)। दो चूहों को, स्कीनर-बक्स में खाने की गोलियों द्वारा प्रबलित करके सामान्य ढंग से उत्तोलक दबाने के लिए प्रशिक्षित किया। उन पर विलोपन-क्रिया का प्रयोग किया गया। एक चूहे के पैरों पर विलोपनकाल की प्रारंभिक कुछ अनुक्रियाओं में चोट की गई ( उत्तोलक से संबद्ध एक लकड़ी द्वारा ऐसा किया गया था )। दूसरे चूहे की, जो नियंत्रित-पात्र था, अनुक्रिया को सामान्य ढंग से विलुप्त किया गया था।

प्रयोग के परिणामों को चित्र ७.१४ में दिया गया है। इस चित्र के दो वक्र विलोपन-वक्र हैं जो बराबर मात्रा में अनुबंधन करने के बाद, दो चूहों के हैं। दंड (चोट करना) का प्रारंभिक प्रभाव अनुक्रिया की मात्रा को कम करने के लिए था। कम-से-कम कुछ समय के लिए दंडित चूहे की, चोट खाने के बाद अदंडित चूहे की अपेक्षा, बहुत धीरे अनुक्रिया हुई। किंतु, आश्चर्य की बात यह है कि बाद में दंडित चूहे की अनुक्रिया की गति वही रही, जबकि अदंडित चूहे की गति धीमी हो गई और अंत में, दोनों चूहों की विलोपन-अनुक्रियाओं की संख्या प्राय: समान थी।

दंड द्वारा बिलोपन की अपेक्षा कोई अनुक्रिया अस्थायी रूप से दबायी जा सकती है।
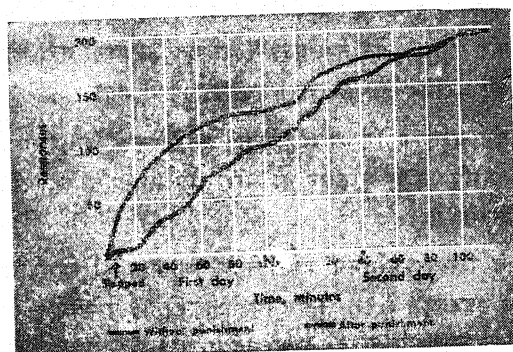
**चित्र ७.१४. विलोपन पर दंड का प्रभाव। प्रारंभ में दंड बिलोपन-वक्र को मंद कर देता है, किंतु अंत में दंडित चूहा उतनी ही अनुक्रियाएँ करता है, जितनी अदंडित चूहा (स्कीनर के अनुसार, १९३८)।**

इस प्रयोग को अन्य रूपों में भी दोहराया गया। उदाहरणार्थ, चोट करने के स्थान पर विद्युत्-आघात दिया गया और लगभग सदा वही परिणाम मिला (एस्टेस, १९४४)। दंड कुछ समय के लिए अनुक्रिया की गति को मंद कर देता है, किंतु विलोपन के लिए अनुक्रियाओं की जितनी संख्या आवश्यक होती है, उसे उन्हें कम नहीं करता। अतः, अंत में दंड द्वारा कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। किसी आदत को समाप्त करने के लिए दंड नहीं, वरन् विलोपन की आवश्यकता है।

इस परिणाम के दो महत्त्वपूर्ण और परस्पर-संबंधित अर्थ हैं : प्रथम है कि दंड स्वयं साहचर्य को क्षीण नहीं कर सकता। यह केवल अधिगत-अनुक्रिया को, बराबरी की भयप्रद अनुक्रिया को उद्दीप्त करके, शमित करता है। इसका दूसरा अर्थ है कि आहार के साथ उत्तोलक दबाने का मुख्य प्रबलन, जिसे संचित प्रतिवर्त्त अनुक्रियाओं की विशेष संख्या, जो विलोपनकाल में प्रयोग की जाएँ—कहा गया है। जब अधिगत-अनुक्रिया पूर्णतः शमित नहीं होती या असंभव नहीं हो जाती, अनुक्रियाओं की यह संख्या विलोपनकाल में जल्दी या देर में पूरी हो जाती है। इन परिस्थितियों में केवल इतना ही किया जा सकता है कि उस व्यवहार को समाप्त होने दिया जाए और विलोपन-क्रिया को अपने क्रम से होने दिया जाए।

प्रत्येक व्यक्ति को इतना सावधान तो होना ही चाहिए कि वह ऐसे प्रयोगों का अति सामान्यीकरण न करे। दंड बहुत साधारण था और यह नियमित रूप से नहीं दिया गया, जिससे कि वह इस सीमा तक भयभीत कर दे कि आदत पूर्णतः शमित हो जाए। हर बार तीव्र आघात देने पर चूहा उत्तोलक को दबाता है, उत्तोलक दबाने के व्यवहार को पूर्णतः और सदा के लिए शमित करना संभव है। यदि ऐसा किया गया, तो वह चूहा आपके सामने एक भयग्रस्त, मनस्तापी जंतु के रूप में होगा (मैसर मैन, १९४३)। चूहा उत्तोलक दबाने के लिए तीव्रता से अभिप्रेरित होता है, तो भी भय उसे प्रभावित कर लेता है। अतः, वह मनस्ताप उत्पन्न करने वाले द्वंद्व को अनुभव करता है। वास्तव में जैसा कि हम पहले पंचम अध्याय में देख चुके हैं, यही वह द्वंद्व-स्थिति है, जो व्यवहार में मनस्ताप और कुसमायोजन उत्पन्न कर देती है।

ऊपर वर्णित प्रयोगों से हम यह निर्णय ले सकते हैं कि एक भली प्रकार से अधिगत 'आदत' के लिए, 'कालांतर' से दिया गया, सामान्य-सा दंड, जब कि अनु-क्रिया करने के लिए कोई स्पष्ट विकल्प न हो, अंत में प्रभावहीन प्रमाणित होगा। मानव-व्यवहार में ये स्थितियाँ प्रायः देखी जाती हैं। उदाहरण के लिए अंगुलियों पर कभी-कभी होने वाली चोट भी बालक को केक के पात्र से दूर नहीं रखेगी, केवल यही करना चाहिए कि पात्र को खाली रखा जाए। कभी-कभी किया गया ट्रैफिक के नियमों को तोड़ने पर मामूली दंड-विधान हमारा गाड़ी चलाने की आदतों को नहीं सुधारेगा, भले ही नगरपालिका के कोष में उससे धन एकत्रित हो जाए।

**विकल्प सः दंड (Punishment with alternatives) :**

दंड जैसा कि हमने अभी देखा, अनुक्रिया को कुछ काल के लिए शमित कर देता है। ऐसा करने में वह व्यवहार को और अधिक परिवर्तनशील बना देता है। यह ऐसी संभावना को बढ़ा कर देता है कि कोई अन्य अनुक्रिया हो सके। यदि क्रियाएँ इस प्रकार व्यवस्थित हों कि उनमें से कोई एक विकल्प प्रस्तुत उद्देश्यों में से किसी एक को तृप्त कर सकेगा और साथ ही दंड का निवारण कर सकेगा, तो ऐसी स्थिति में दंड अवांछित आदतों को मिटाने एवं वांछित आदतों को सिखाने में बहुत प्रभाव-पूर्ण हो सकता है।

हम नियमित रूप से मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में दंड का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ, हम दो उत्तोलक एक स्कीनर-बक्स में लगा सकते हैं। यदि एक उत्तोलक से हम चूहे को आघात पहुँचाते हैं तो वह दूसरे का प्रयोग करेगा, और यदि दूसरा कभी आघात न दे, तो चूहा बहुत शीघ्र आघातहीन उत्तोलक का प्रयोग करना सीख लेता है। अथवा, साधारण 'T' भूलभुलैया में हम बाईं ओर आघात लगा सकते

हैं, और दाईं ओर आहार, और हम देखेंगे कि चूहा शीघ्र ही दोनों दिशाओं के अंतर को सीख लेता है। अथवा, जैसा कि चित्र ७.१५ में दिखाया गया है, आघात-निवारण के लिए जंतु नियमित रूप से 'ठीक' स्विच को दबाएगा। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब एक अनुक्रिया दंडित होती है, दूसरी वैकल्पिक अनुक्रिया भी उपलब्ध होती है और इस वैकल्पिक अनुक्रिया को शीघ्र ही खोजा जा सकता है, जब दंड द्वारा गलत अनुक्रिया शमित हो जाती है और व्यक्ति के व्यवहार को परिवर्तनशील बना देती है।
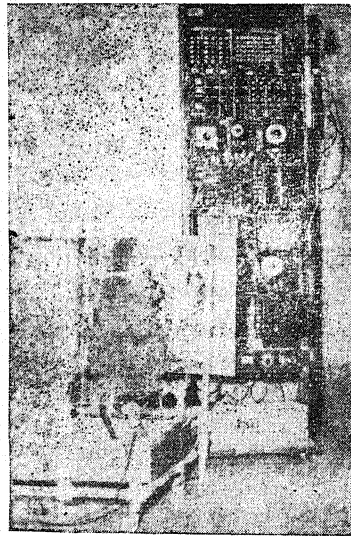
**चित्र ७'१५ एक बंदर दंड-परिहार का प्रयत्न करता है। बंदर के सामने तीन पेनल हैं। पेनल के प्रकाशित होने पर बंदर को तदनुरूपी स्विच को दबाना चाहिए। यदि वह उसे दबाने में असफल रहे, तो उसे आघात लगता है और यदि वह गलत स्विच दबाए, तो भी उसे आघात लगता है। पृष्ठभूमि में रखा यंत्र स्वतः प्रकाश और आघातों को प्रस्तुत करता है तथा बंदर की अनुक्रियाओं को अभिलिखित करता है। एक ही समय में लगातार कई घंटे तक बंदर यह कार्य साधारणतः करता है। औषधियों, थकान तथा अन्य क्रियाशीलता को परिवर्तित करने वाले अन्य साधनों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए यह प्रयोग किया जाता है ( फौरिंगर को०, Inc. )।**

दंड की संकेतात्मक क्रियाएँ ( Cue Functions of Punishment ) :

संस्कार-परक (Sophisticated) प्राणियों के लिए, जिन्होंने बहुत अधिक वैकल्पिक अनुक्रियाएँ अर्जित कर ली हैं, एक अनुक्रिया के दंडित होने पर नई वैकल्पिक अनुक्रियाएँ सीखना आवश्यक नहीं रहता। ऐसी स्थिति में यदि दंड साधारण है, तो वह केवल इसकी प्रेरणा देता है कि अर्जित अनुक्रिया-कोष में से उपयुक्त अनुक्रिया का चयन किया जाए। दंड या दंड का कोई संकेत केवल व्यक्ति को यह बता देता है कि

'सही' या 'और' गलत क्या है। इसका ज्ञान उसे करवा देता है कि वह ठीक कर रहा है या नहीं।

समाज में ऐसे अनेक साधारण दंडों का उपयोग ऐसे संकेतों के रूप में किया जाता है। परीक्षा में कम अंक प्राप्त करना एक प्रकार का दंड है, जो विद्यार्थी को बतलाता है कि उसका किसी विषय पर कितना ज्ञान है। व्यक्ति के वस्त्रों या व्यवहार के प्रति आलोचनात्मक उक्तियाँ उसे उन्हें परिवर्तित करने के लिए प्रेरित कर सकती हैं। वास्तव में उपयुक्त (सही) और अनपयुक्त (गलत) प्रशंसा अथवा अपमान के सब शब्द संकेतात्मक क्रियाओं के रूप में होते हैं; क्योंकि 'अपमान' या 'गलत' शब्द मूलतः दंड के ही प्रतीक हैं। जब तक व्यक्ति के पास कुछ और करने के लिए हो, वह दंड का संकेत पाने पर उसे कर सकता है और बहुत शीघ्र 'सही' कार्य करना सीख सकता है।

अब हम उन निर्णयों को संक्षेप में कहें, जिन पर दंड के प्रयोग से अवांछित आदतों को दूर करने के लिए, पहुँचे हैं। दंड, सर्वप्रथम तीव्र अभिप्रेरण द्वारा अधिगत आदत को क्षीण नहीं करता। यदि दंड बहुत कठोर हो, यह आदत को पूर्णतः शमित कर सकता है। किंतु, यह व्यक्ति को भय और अन्य प्रेरणों की द्वंद्वात्मक स्थिति में ढाल देता है। यदि दंड साधारण हो, यह कुछ काल के लिए आदत को दमित कर देता है और व्यवहार को अधिक परिवर्तनशील बना देता है, ताकि लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वैकल्पिक अनुक्रिया का प्रयोग अधिगत किया जा सके। ऐसी वैकल्पिक अनुक्रियाओं के बिना, साधारण दंड बहुत कम उपयोगी प्रमाणित होता है। जहाँ व्यक्ति वैसे ही अनेक वैकल्पिक अनुक्रियाएँ अधिगत किए हुए हो, साधारण दंड संकेत का कार्य कर सकता है कि गलत या अशुद्ध क्या है और इस प्रकार उसे 'सही या 'शुद्ध' करने के लिए उत्साहित करता है।

## प्रत्यक्ष अधिगम (Perceptual Learning) :

शास्त्रीय अनुबंधन और नैमित्तिक अधिगम, दोनों में जिस बात को अधिगत किया जाता है, उसमें कम-से-कम प्रारंभ में, उद्दीपन के साथ अनुक्रिया का साहचर्य होता है। अब तक हमारा ध्यान अनुक्रिया पर केंद्रित रहा है; यह कैसे अर्जित, प्रबलित और बिलुप्त आदि होती है। अब हम अधिगम के उद्दीपन भाग पर विचार करेंगे, विचारेंगे कि कैसे भिन्न अनुक्रियाएँ भिन्न उद्दीपनों से संबद्ध की जाती हैं और उद्दीपनों में साहचर्य कैसे स्थापित होता है। उद्दीपनों के परस्पर-संबंधों को सीखना और उद्दीपनों में विभेद करना ही प्रत्यक्ष अधिगम कहलाता है।

## अनुबंधित विभेद (Conditioned Discrimination) :

पावलोव के प्रयोग का वर्णन करते समय हमने एक ऐसी बात छोड़ दी थी, जिसका महत्त्व यहाँ है। उसने प्रमाणित किया है कि अनुबंधित विभेद को निर्मित करना संभव है, जिसके द्वारा कुत्ता एक उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया करता है और दूसरे के प्रति नहीं करता। पावलोव की प्रक्रिया एक उद्दीपन को प्रबलित करने और दूसरे उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया को विलुप्त करने की थी। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए हम एक परिकल्पित प्रयोग का वर्णन करेंगे, जो पावलोव के प्रयोग के पूर्णतः अनुरूप नहीं, तो भी उससे मिलता-जुलता है।

> "एक कुत्ते के लार-स्राव को एक विशेष ध्वनि के लिए पहले अनुबंधित किया गया। उसके बाद उस प्रयोग को करते हुए प्रत्येक प्रयत्न में बीच-बीच में विविध ध्वनियाँ उपस्थित की गई। पहले, सामान्यीकरण द्वारा कुत्ता सब ध्वनियों के प्रति कुछ-न-कुछ अनुक्रिया करता है, यद्यपि लार का स्राव अनुबंधित-ध्वनि पर अन्य ध्वनियों की अपेक्षा अधिक होता है। कुत्ता केवल तभी प्रबलित होता है, जब अनुबंधित ध्वनि प्रस्तुत होती है और अन्य किसी भी ध्वनि से कभी भी प्रबलित नहीं होता। इसका यह तात्पर्य हुआ कि केवल अनुबंधित ध्वनि को छोड़कर अन्य सब ध्वनियों के प्रति उसकी अनुक्रिया बिलुप्त हो जाती है। जैसे-जैसे प्रयोग चलता है, कुत्ते की लार की मात्रा अन्य ध्वनियों के प्रति धीरे-धीरे कम होती हुई समाप्त हो जाती है, जब कि उसकी मात्रा अनुबंधित उद्दीपन के प्रति ज्यों-की-त्यों रहती है। अतः, वह दो ध्वनियों में विभेद करना सीखता है।
>
> इसका प्रमाण है कि विभेद सीखने के लिए हमें सदा अनुबंधित करने की आवश्यकता नहीं रहती। मनुष्य और जानवर दोनों अपने चतुर्दिक फैले जगत में किसी विशेष उद्दीपन के लिए प्रबलित या संबंधित न किए जाने पर अंतर की प्रतीति कर सकते हैं। पावलोव के प्रयोग ने सर्वप्रथम यह प्रमाणित किया था कि कैसे हम (और जानवर) भिन्न उद्दीपनों के प्रति भिन्न अनुक्रिया करना सीखते हैं। उदाहरण के लिए, जब एक बच्चा पहली बार शब्दों और वस्तुओं में साहचर्य स्थापित करना सीखता है, उसकी प्रवृत्ति सामान्यीकृत करने की होती है। उसके लिए सब जानवर 'भौं भौं' होते हैं, सब मनुष्य 'दादा', और कुछ भी जिसे वह खा सके 'केक'। जब वह अनुभव करता है कि कुछ जानवर भौंकते नहीं हैं, या उसके दुलार को वे पसंद नहीं करते, सब मनुष्य 'दादा' की तरह व्यवहार नहीं करते, या ऐसे भी कुछ पदार्थ हैं, जिनका स्वाद 'केक' ही तरह नहीं होता—दूसरे शब्दों में, जब वह

अनुभव करता है कि कुछ वस्तुएँ प्रबलित नहीं करतीं—उनके प्रति इसकी अनुक्रियाएँ विलुप्त हो जाती हैं। अतः, भेदक प्रबलन और विलोपन द्वारा वह उचित विभेदन सीख लेता है।

## विभेदक अधिगम (Discriminative Learning)

नैमित्तिक अधिगम और अनुबंधन भी, ऐसे विभेद को सीखने के अवसर देते हैं। उदाहरणार्थ, एक स्कीनर-बक्स में दो उत्तोलकों को दो फलकों के नीचे लगाएँ 'और उनमें प्रकाश भी जला दें' (मौरगन, १९३९)। प्रयोगकर्त्ता इन्हें इस प्रकार रख सकता है कि चूहा जब प्रकाशित फलक के नीचे वाले उत्तोलक को दबाए, तो प्रबलित हो और प्रकाशहीन फलक के नीचे वाले उत्तोलक को दबाए, तो प्रबलित न हो। इस उदाहरण में उपयुक्त उत्तोलक को दबा कर चूहा प्रकाश और अंधकार में विभेद करना सीखता है। और भी अनेक ढंग हैं, जिनके प्रयोग द्वारा विभेद की बुनियादी प्रक्रिया को सीखा जा सकता है (मन, १९५०)। उत्तोलकों के स्थान पर प्रयोगकर्त्ता दरवाजों, संकीर्ण पथों या किन्हीं अन्य वस्तुओं का, जो जंतु को दो बिकल्पों का चुनाव करबाए, प्रयोग कर सकता है। प्रकाश के स्थान पर अलग रंगों या आकारों के कार्डों का प्रयोग हो सकता है। ये केवल प्रासंगिक परिवर्तन हैं। सामान्य सिद्धांत है कि एक उद्दीपन से प्रबलित होकर और दूसरे उद्दीपन से प्रबलित न होकर विभेद सीखा जा सकता है।

विभेद करना सीखने में संप्रत्ययों को सीखना भी संभव है। **संप्रत्यय शब्द का अर्थ है, कोई गुण जो एक कोटि की वस्तुओं में समान रूप से हो।** उदाहरणार्थ, एक त्रिभुज बनाने के अनेक तरीके हैं: तीन रेखाओं से, तीन बिंदुओं से, छोटी रेखाओं, से, त्रिभुज का भीतरी भाग काला और बाहरी सफेद करके इत्यादि ( इनमें त्रिभुज समान गुण है )। इसी प्रकार एक समकोण चतुर्भुज बनाने के भी अनेक प्रकार हैं। यदि एक जंतु बार-बार त्रिभुजी वस्तुओं को चुनने के लिए प्रबलित किया जाए और चतुर्भुजी वस्तुओं के चयन करने पर अप्रबलित किया जाए, तो वह 'त्रिभुजात्मकता' के प्रति अवधारणा विकसित कर लेगा और वह सदा किसी प्रकार की चतुर्भुज वस्तुओं से त्रिभुज वस्तुओं को भिन्न कर लेगा। अतः, संप्रत्ययों का अधिगम करना विभेदक अभिगम का एक विशेष रूप है। कल्पना और चिंतन की अनेक समस्याओं से संप्रत्यय संबंधित है। अतः, नवम् अध्याय से पूर्व इस पर हम विस्तृत विवेचन नहीं करेंगे।

## आनुषंगिक अधिगम ( Incidental Learning ) :

संभवतः कभी आपका ध्यान इस ओर गया होगा कि हम बिना अनुक्रियाएँ किए भी उद्दापन-स्थितियों के विषय में सीख सकते हैं। उदाहरणार्थ, आप एक

मोटरगाड़ी के यात्री हैं और अपने निर्दिष्ट स्थान के पथ को खोजने की चिंता आपको नहीं है, फिर भी जिस पथ से आप यात्रा कर रहे हैं, उसके विषय में कुछ-न-कुछ सीखते हैं। आप कुछ मोड़ों पर ध्यान देंगे जिनसे आपकी गाड़ी मुड़ती है, राह में मिले कुछ घरों और महत्त्वपूर्ण स्थानों की ओर आपका ध्यान जाएगा। यदि बाद में आपको कभी स्वयं उस पथ पर गाड़ी चलानी पड़े, तो आपको वह पथ परिचित-सा प्रतीत होगा। यदि किसी पथ पर पहले कभी आप नहीं गए होंगे, तो इसकी पूरी संभावना है कि उसकी अपेक्षा आप इस परिचित-सी राह पर अधिक सरलता से बढ़ते जाएँगे।

इस प्रकार का अधिगम प्रासंगिक या आनुषंगिक अधिगम कहलाता है; क्योंकि यह बिना किसी अभिप्रेरणा के या बिना अनुक्रिया की आवश्यकता के प्रसंगवश घटित हो जाता है। इसे 'अव्यक्त अधिगम' भी कहा जाता है; क्योंकि यह तब तक अव्यक्त रहता है, जब तक इसकी अभिव्यक्ति का अवसर उपस्थित नहीं होता। कुछ अधिगम सिद्धांतवादियों ने प्रश्न उपस्थित किया है कि क्या ऐसा अधिगम वास्तव में आनुषंगिक होता है? ऐसे प्रेरकों और अनुक्रियाओं की सदा संभावना रहती है, जिनकी ओर प्रेक्षक का ध्यान नहीं जाता। वास्तव में, अभिनव शोध के अनुसार आनुषंगिक अधिगम का अभिप्रेरण बार-बार कौतूहल या अन्वेषण-प्रेरण हो सकता है, जिनकी चर्चा तृतीय अध्याय में हो चुकी है। किंतु, फिर भी प्रयोगकर्त्ता या प्रेक्षक के दृष्टिकोण से यह अधिगम आनुषंगिक ही प्रकट होता है। आनुषंगिक अधिगम को जंतुओं पर अनेक प्रयोग करके प्रमाणित किया गया है। निम्नलिखित उदाहरण (तोलमन और हानजिक, १९३०) आनुषंगिक अधिगम का एक प्रसिद्ध उदाहरण है :—

> "चूहों के तीन समूहों को प्रतिदिन एक व्यूह में दौड़ाया गया। एक समूह को प्रयत्न के अंत में आहार द्वारा प्रबलित किया गया। जैसी कि आशा हम कर सकते हैं, इस समूह के चूहों ने व्यूह का ठीक रास्ता सीखने में निरंतर उन्नति की। दूसरे समूह को बिना किसी प्रबलन के दौड़ाया गया, वे प्रयोगार्थ नियत किए गए समय तक व्यूह में केवल भटकते रहे। तीसरे समूह के साथ पहले दस दिन वही व्यवहार किया गया, जो दूसरे समूह के साथ किया गया था। उसके बाद प्रयोगकर्त्ता ने व्यूह के अंत में पहुँचने पर उन्हें पुरस्कृत किया।"

इस प्रयोग के परिणाम चित्र ७.१६ में प्रदर्शित किए गए हैं। चूहों के सब समूहों ने प्रत्यक्षतः कुछ सीखा; क्योंकि ज्यों-ज्यों इन्होंने प्रयत्न किए, उनकी भूलें कम होती गईं। प्रबलित समूहों ने जितना सीखा, उनकी तुलना में अप्रबलित दल ने उन्नति नहीं की थी। किंतु, जब प्रयोगकर्त्ता ने तृतीय समूह को प्रबलित करना प्रारंभ किया,

उसकी भूलों की संख्या सहसा कम होकर उसी स्तर पर आ गई जो प्रथम प्रबलित समूह की थी। स्पष्टतः अप्रबलित चूहों ने प्रारंभिक प्रयत्नों में व्यूह के संबंध में काफी जानकारी प्राप्त कर ली थी। उन्होंने केवल अपने अधिगम का प्रमाण नहीं दिया था—वह अधिगम तब तक अव्यक्त था, जब तक चूहों को प्रबलित करके व्यक्त करने का अवसर नहीं दिया गया।

इस प्रयोग की आलोचना इस आधार पर की गई कि चूहों को व्यूह के प्रारंभ में रखा गया था और लक्ष्य-बक्स से उन्हें बाहर निकाला गया। व्यूह विचित्र और भयप्रद स्थिति उत्पन्न करने वाला था, इसलिए संभवतः चूहों को व्यूह से हटाकर उन्हें घरेलू पिंजड़ों में प्रबलित किया गया था। इसके उपरांत भी इस सत्य में कोई अंतर नहीं आता कि जंतुओं ने व्यूह को अच्छी तरह पार नहीं किया · · · तब तक कोई प्रशंसनीय अधिगम प्रकट नहीं हुआ, जब तक आहार-पुरस्कार प्रारंभ नहीं हुआ।

उक्त प्रयोग की आलोचना जिन कारणों से की गई थी, अन्य प्रयोगों में (बक्सटन, १९४० सेबार्ड १९४९) उन कुछ घटकों को नियंत्रित करने का प्रयत्न किया गया।

> "चूहों को व्यूह में कई दिन तक रहने का अवसर दिया गया। प्रत्येक चूहा, पहले प्रयोग में प्रयुक्त स्थितियों से भिन्न रूप में व्यूह में रखा गया और पृथक् किया गया। इस प्रकार चूहों को पूरे व्यूह से, उसके प्रत्येक भाग से पूर्णतः परिचित होने का अवसर मिला तथा लक्ष्य-बक्स से बाहर आने पर उन्हें किसी प्रकार से पुरस्कृत नहीं किया गया। इसके उपरांत लक्ष्य-बक्स में भोजन को रखा तथा चूहे उसे देख सकें, इसलिए उन्हें भी सीधे थोड़ी देर के लिए लक्ष्य-बक्स में रखा। इसके तुरत बाद उन चूहों को व्यूह के प्रारंभ में रखा। परिणाम यह हुआ कि अधिकांश चूहों ने बहुत कम भूलों के बाद व्यूह में अपना रास्ता लक्ष्य-बक्स तक खोज लिया।"

यह और ऐसे ही अन्य प्रयोग प्रमाणित करते हैं कि किसी शरीर-क्रियात्मक प्रेरक को पुरस्कृत या दंडित किए बिना भी अधिगम हो सकता है।

सब समानुवेषी अथवा कौतूहल-प्रेरण क्रियाशील होने चाहिए, जिससे व्यक्ति अपने पर्यावरण पर 'ध्यान दे' सके। किंतु, उसे उद्दीपनों तथा अपने दृश्य-जगत के साहचर्य के सीखने के लिए शरीर-क्रियात्मक प्रेरकों द्वारा अनुप्रेरित अथवा किसी विशेष अनुक्रिया द्वारा प्रबलित होना आवश्यक नहीं है। तथापि क्रिया-निष्पादन के लिए प्रबलन आवश्यक है, जिसे हम पहले साभिप्राय अधिगम के रूप में वर्णित कर चुके हैं, वही अनुक्रिया. निष्पन्न करने का अधिगम है। ऐसे अधिगम को प्रबलन की आवश्यकता होती है। बिना प्रबलन के व्यक्ति अपने पर्यावरण के अनेक रूपों को देख

सकता है और उस परिवेश की वस्तुओं के परस्पर-संबंध को सीख सकता है। किंतु, जब तक वह क्रिया निष्पन्न करने के लिए अभिप्रेरित और पुरस्कृत नहीं होता, हम प्रायः यह नहीं जान पाते कि वास्तव में अधिगम घटित हुआ है। उसे क्रिया-निष्पादन के लिए प्रबलन की आवश्यकता है।

बिना पुरस्कार या फल के भी अधिगम हो सकता है, किंतु उसे कार्य-रूप में अभिव्यक्त करने के लिए फल अपेक्षित है।
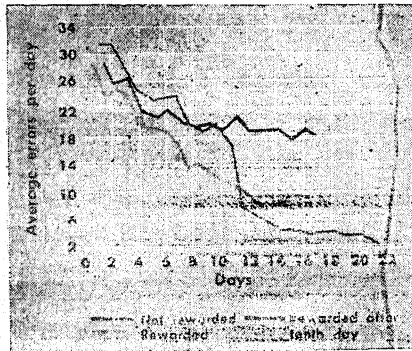
**चित्र ७.१६ एक व्यूह का अव्यक्त-अधिगम। चूहों का एक दल कभी पुरस्कृत नहीं किया गया और उसने बहुत कम किया। दूसरे समूह को पूरे प्रयोग में पुरस्कृत किया और उसने व्यूह अधिगम सीखने में निरंतर उन्नति की। तीसरे समूह को व्यूह पार करना प्रारंभ करने के दस दिन तक पुरस्कृत नहीं किया गया किंतु उसके बाद उसे निरंतर पुरस्कृत किया गया। पुरस्कार देना प्रारंभ करने के बाद इस समूह ने तीव्र गति से उन्नति की और उस समूह के बराबर पहुँच गया, जिसे प्रारंभ से ही पुरस्कृत किया गया था। (तोलमन तथा हानजिक, १९३०)।**

स्वतःस्फूर्त विभेदन ( Spontaneous Discrimination ) :

कुछ परिस्थितियों में, यह कहना संभव है कि क्रिया को अभिप्रेरित करने के लिए पुरस्कार का प्रयोग किए बिना ही अधिगम घटित हो जाता है। ऐसा करने के लिए प्राणी पर, जिन पर वह कार्य करता है, उन भिन्न उद्दीपनों के प्रभावों के लिए कुछ सूक्ष्म मापन की आवश्यकता रहती है। निम्नलिखित प्रयोग (थामसन और सोलोमन, १९५४) एक उदाहरण है—

"अड़तालीस चूहों को दो समूहों में विभाजित किया गया, एक प्रयोगात्मक समूह और दूसरा नियंत्रित समूह। प्रत्येक चूहा एक भिन्न पिंजड़े में रखा गया। यह पिंजड़ा इस प्रकार का बनाया गया था कि प्रयोगकर्त्ता सरलता से उसमें ६ इंच ऊँचा, ६ इंच चौड़ा और ६ इंच गहरा बक्स जोड़ सकता था। उस बक्स की दीवार में एक उद्दीपन-कार्ड था। दो प्रकार के उद्दीपन-कार्ड प्रयोग किए गए थे। एक में सफेद और काली धारियाँ थीं

और दूसरे में समभुज त्रिकोण बने थे। एक बक्स, जिसमें एक प्रकार का कार्ड था, को पिंजड़े से संबंधित किया गया था, प्रयोगकर्त्ता ने उस समय को नोट किया, जो एक चूहे ने १०० सेकेंड में एक कार्ड को देखने में व्यतीत किया। एक दिन में छह बार यह प्रयोग किया गया था और दूसरे दिन फिर छह बार किया गया। नियंत्रित-समूह के सामने केवल धारीदार कार्ड रखा गया था। प्रयोगात्मक-समूह ने पहले दिन धारीदार कार्ड देखा और दूसरे दिन त्रिभुजदार।"

इस प्रयोग के परिणामों को चित्र ७·१७ में दिखाया गया है। चूहों की कार्डों को देखने की गति प्रथम ५०० सेकेंडों में बढ़ गई, संभवतः इसलिए कि बिचित्र उद्दीपन के प्रति उन्हें अभ्यस्त होना था। उसके बाद गति मंद होने लगी। दूसरे दिन जब नियंत्रित-समूह के सामने वही उद्दीपन प्रस्तुत किया गया, तो चूहों ने बहुत कम समय उसे देखने में व्यतीत किया। उनका कौतूहल 'तृप्त' हो चुका था। किंतु, प्रयोगात्मक चूहों ने दूसरे दिन भी नवीन त्रिभुज कार्ड (उद्दीपन) को देखने में पर्याप्त समय व्यतीत किया। स्पष्टतः वे अंतर को समझते थे। उन्होंने उद्दीपनों में विभेद समझ लिया था, अन्यथा एक समूह दूसरे समूह से 'देखने के काल' में इतना भिन्न न होता।

उद्दीपन की ओर देखने में व्यतीत किया गया समय इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि विभेद करना अधिगत किया गया है अथवा नहीं।
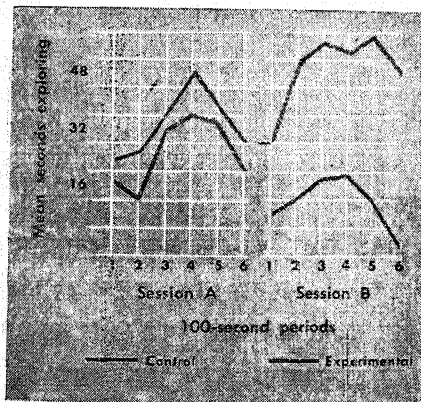
**चित्र ७·१७ प्रतिरूपों का स्वतःस्फूर्त विभेदन चूहों ने नवीन उद्दीपन त्रिभुजाकार कार्ड को देखने में, काली और सफेद धारी-वाले परिचित कार्ड की अपेक्षा, अधिक समय व्यतीत किया (थांपसन और सोलोमन, १९५४)।**

इस प्रकार के स्वतःस्फूर्त विभेदन संभवतः विशेष अनुक्रिया और उद्दीपन के साहचर्य के लिए पूर्व-प्रयोजनीय होते हैं, अर्थात् यह सीखना आवयश्यक होता है कि

उस उद्दीपन स्थिति की क्या प्रतिक्रिया है। यदि हम अपने चतुर्दिक जगत के अंतर को नहीं जानते, तो इन भिन्न वस्तुओं के प्रति उपयुक्त अनुक्रिया करना भी नहीं सीख सकते। उदाहरणार्थ, इसका प्रमाण है कि जब चूहों को भोजन-पुरस्कार के लिए व्यूह को पार करके प्रशिक्षित किया गया, तो उन्होंने प्रकाशमय पथ और अंधेरे पथ से अंतर को या व्यूह के अन्य भेदों को तुरत सीख लिया और तब वे इन भेदों के प्रति व्यवस्थित प्रतिक्रिया करते हैं। वे इस प्रकार प्रतिक्रिया करते हैं, मानो उन्हें उद्दीपन-स्थिति की उन विशेषताओं की 'प्राक्कल्पनाएँ' थीं, जिनके प्रति उन्हें अनुक्रिया करनी चाहिए। निम्नलिखित एक व्यूह के प्रयोग ( क्रेचेवस्की, १९३२ ) में हम देखेंगे कि जंतुओं की क्या प्रतिक्रिया होती है—

> "तीन प्राक्कल्पनाएँ थीं, जिनका अनुकरण चूहा कर सकता है। एक थी—केवल सब समय सही (या गलत) पथ का चयन। दूसरी थी, ऐसे पथ का चयन, जिसमें साधारण-सी बाधा हो या इसके विपरीत बाधारहित पथ का चयन करना। तीसरी थी ऐसे पथ की ओर जाना जो प्रकाशित हो अथवा वैकल्पिक पथ जो प्रकाशहीन हो। प्रकाश और बाधाओं की स्थिति बीच-बीच में हर प्रयत्न में परिवर्तित कर दी जाती थी, ताकि वे एक दूसरे से अथवा पथ-विशेष से ही निरंतर संबद्ध न हो जाएँ। व्यूह में प्रारंभ से लक्ष्य-बक्स तक चार चुने हुए स्थल थे, इसलिए प्रत्येक प्रयत्न में सही या गलत चयन के लिए चार अवसरों की संभावना थी।
>
> एक चूहे के प्रयोग-परिणाम चित्र ७·१८ में दिखाए गए हैं। उसने बाधा की चिंता न करके आगे बढ़ना प्रारंभ किया, वह बाधा ही लक्ष्य का ठीक संकेत थी और इस प्रकार लगभग ५० प्रतिशत सफल अंकों की प्राप्ति 'बाधाओं' के कारण हुई। दूसरी ओर, उसने दाहिने हाथ वाले पथ का चयन प्रथम ५० प्रयत्नों में प्रायः निरंतर करने का प्रयास किया, जब कि दाहिने हाथ वाला पथ निश्चित रूप से ठीक नहीं था। चूहे ने ५० प्रतिशत बार उसे अवरुद्ध पाया और पीछे मुड़कर बाधा वाले पथ की ओर वह घूमा। इस प्रकार दाहिने हाथ वाले पथ की अनुक्रिया केवल आधी बार प्रबलित हुई थी, जब कि बाधा वाली अनुक्रिया प्रत्येक बार प्रबलित हुई थी। लगभग ७० प्रयत्नों के बाद चूहे के दाहिने हाथ वाले पथ के प्रति इच्छा कम होने लगी, तब वह सप्रयास बाधा वाले रूप का शीघ्र ही चयन करना सीखने

लगे। इस प्रयोग में कुछ चूहों ने प्रकाशमय पथ को चुना और दाएँ के विपरीत बाएँ को नहीं। कुछ ने प्रारंभ से ही बाधाओं वाले पथ को चुना।"

'प्रयत्न और भूल' अधिगम में हम बहुधा सही कार्य की प्राक्कल्पना से प्रारंभ करते हैं।
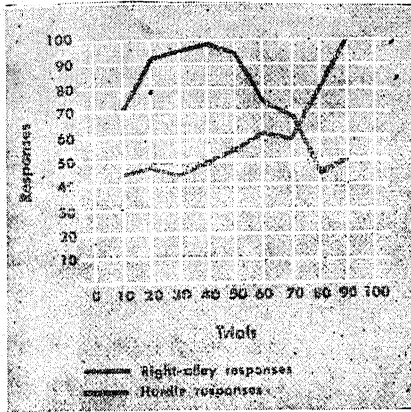
**चित्र ७·१८ चूहों में प्राक्कल्पनाएँ। चूहे एक ऐसे व्यूह में दौड़ाए गए थे, जो इस प्रकार का बना था कि वे (अ) प्रकाशयुक्त पथों (ब) बाधाओं से पूर्ण पथों (स) दाहिने अथवा बाएँ पथों में से किसी को भी चुन सकते थे। निरंतर किसी एक संकेत के प्रति अनुक्रिया करने का अर्थ था—अन्य संकेतों से उसे अधिक महत्त्व देना। चित्र में ऊपर वाला वक्र उस चूहे का है, जिसने प्रयोग के प्रारंभ में निरंतर दाहिने पथ को चुना, अर्थात्, चूहे में दाहिने पथ की प्राक्कल्पना थी, किन्तु, बाद में उसने बाधा के प्रति अनुक्रिया अधिगत की, जो सही (पुरस्कारयुक्त) थी। कुछ चूहों में प्रकाशमय पथ-प्राक्कल्पना थी और बहुत चूहों में बाधा-प्राक्कल्पना थी (क्रेचेवस्की के अनुसार, १९३२)।**

अतः, विभेदों के आनुषंगिक अधिगम का संकेतों के प्रति विशेष अनुक्रियाएँ करना सीखने में महत्वपूर्ण स्थान है। एक बार स्वतःस्फूर्त विभेद घटित हो जाता है, किंतु एक या दूसरे संकेत के प्रति प्रतिक्रिया करने की प्रवृत्ति अनेक तथ्यों पर निर्भर करती है जैसे—वंशानुगत बिभिन्नताएँ, व्यक्तियों में सुयोग के अंतर अथवा प्राणी के पूर्वाधिगत अनुभव। अंतःप्रजनन द्वारा यह संभव है कि ऐसे जंतुओं का वर्ग विकसित किया जा सकता है, जो उपर्युक्त वर्णित प्रयोग के प्रकाशमय पथ का ही चयन करने के लिए प्रवृत्त हों और दूसरा वर्ग ऐसा जो विशेष संकेत पर अनुक्रिया करे, अर्थात् जो सदा दाहिना या बायाँ पथ चुनें (क्रेचेवस्की, १९३३) अन्य प्रयोग (लारेन्स, १९४९) प्रमाणित करते हैं कि विशेष उद्दीपनों से संबंधित पूर्वानुभावों से उद्दीपनों में विभेद करना सरल हो जाता है।

ऐसे प्रयोगों द्वारा नैमित्तिक अधिगम में सन्निहित प्रक्रिया का सामान्य चित्र विकसित होने लगता है। कौतूहल द्वारा अभिप्रेरित प्राणी अनायास अपने पर्यावरण की विविधता को देखने लगते हैं। वस्तुओं के परस्पर-संबंध और उद्दीपनों के अंतर को वे सीखते हैं। एक समस्या के उपस्थित होने पर, जिसमें वे किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अभिप्रेरित होते हैं, वे एक उद्दीपन को दूसरे से अधिक पसंद करते हैं या 'प्राक्कल्पनाएँ' करते हैं। प्रबलन और विलोपन द्वारा वे गलत प्राक्कल्पनाओं ( अनुमानों ) को छोड़ते हैं और ठीक प्राक्कल्पनाओं से अपनी अनुक्रियाओं को संबंधित करते हैं।

### अंतर्दृष्टिमय अधिगम (Insightful Learning) :

प्रत्यक्ष अधिगम के विवेचन का उपसंहार करते हुए हम संक्षेप में अधिगम के एक अन्य पक्ष पर भी विचार करेंगे और उस पर हम विस्तार से नवम् अध्याय में लिखेंगे। यह **अंतर्दृष्टि द्वारा अधिगम है**। अधिगम के अब तक के चर्चित सब प्रकार मूढ़ या 'मूर्खतापूर्ण' कहे जा सकते हैं—वे हैं अधिक या कम अंधे, प्रयत्न और भूल प्रक्रिया अथवा यंत्रवत् अनुबंधन। यहाँ तक कि आनुषंगिक अधिगम भी यादृच्छिक और प्रयोजनहीन है।

ऐसे 'मूढ़' अधिगम के विपरीत यह तथ्य भी है कि मानव और जंतु के अधिकांश अधिगम में तर्क एवं अंतर्दृष्टि सन्निहित होती हैं। किसी समस्या को सफलता या असफलता से अनुबंधित या प्रयत्न करने के स्थान पर प्रायः व्यक्ति सारी समस्या को ध्यान में रखकर उसका समाधान विचार लेते हैं। वे बिना समझे-बूझे कार्य नहीं करते, वे सोचते हैं। प्रायः अंतर्दृष्टि द्वारा अचानक समाधान प्रकट हो जाता है, जब वे उचित रूप में और उपयुक्त संदर्भ में समस्या को देख लेते हैं। अधिकांश स्थितियों में यह अंतर्दृष्टि अभ्यास पर निर्भर करती है, जिसे व्यक्ति अनुबंधन नैमित्तिक अधिगम या आनुषंगिक प्रत्यक्ष अधिगम द्वारा पूर्वार्जित करता है। इस प्रकार व्यक्ति अपने इस ज्ञान का उपयोग समान रूप की समस्याओं को सुलझाने में बिना प्रयत्न और भूल अधिगम के करता है। अंतर्दृष्टि द्वारा अधिगम अपने व्यापक विस्तार के लिए स्पष्टतः एक विचारणीय विषय है और हम इस पर नवम् अध्याय में विचार करेंगे।

### भूलभुलैया या व्यूह-अधिगम (Maze Learning) :

अधिगम-प्रक्रिया के अध्ययन के लिए व्यूह मनोवैज्ञानिकों का एक प्रिय साधन रहा है। व्यूह एक ऐसा यंत्र है, जिसमें अनेक पथ होते हैं और उसमें प्रारंभ से अंत तक या लक्ष्य-प्रकोष्ठ तक कई ऐसे स्थल होते हैं, जिन्हें अधिगमार्थ चुना जा सकता है।

जंतुओं के लिए प्रायः ऐसे व्यूह होते हैं, जिनमें Ys या Ts के आकार के पथ होते हैं जिनमें जंतु तैरते, चलते या दौड़ते हैं। कुछ उदाहरण चित्र ७.१९ में दिए गए हैं। मानव-उपयोग के लिए भी व्यूह बनाए गए हैं, किंतु उन पर हम अगले अध्याय में विचार करेंगे, जहाँ मानव-अधिगम हमारे अध्ययन का विषय होगा।

अधिगम-प्रयोगों में सब प्रकार के व्यूहों का प्रयोग होता है।
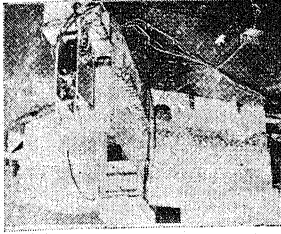
**चित्र ७.१९ व्यूह-अधिगम के अध्ययन में प्रयुक्त व्यूहों के उदाहरण। (एम० आर० आमातो, न्यूयार्क यूनिवर्सिटी, सोलोमन स्टेनर)।**
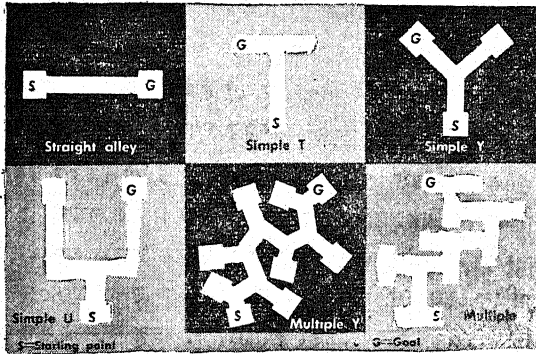
जान्तव-अधिगम के अध्ययन के साधन के रूप में व्यूह में एक अद्वितीय विशेषता है। यह शृंखलाबद्ध अधिगम के अध्ययन का अवसर प्रदान करता है अर्थात् केवल एक अनुक्रिया ही नहीं, वरन् लक्ष्य तक पहुँचाने वाली अनुक्रियाओं की पूरी शृंखला को सीखना है। यह कुछ रोचक प्रश्नों को उपस्थित करता है और समस्या को सुलझाने में सन्निहित प्रक्रियाओं पर प्रकाश डालता है। अन्यथा, व्यूह को स्कीनर-बक्स के समान नैमित्तिक अधिगम की आवश्यकता होती, किंतु यह प्रत्यक्ष अधिगम को भी स्थिर करता है। अतः, व्यूह-अधिगम के जिन दो प्रकारों का हमने अध्ययन किया है, उनके साथ क्रमबद्ध अधिगम को जोड़ता है। व्यूह-अधिगम से संबंधित प्रक्रियाओं के विश्लेषण द्वारा हम जटिल 'प्रयत्न और भूल' अधिगम के प्रक्रमों

का कुछ ज्ञान प्राप्त करते हैं, जो मानव की तर्कना और समस्या के समाधान में निहित होते हैं।

## अनुक्रियाओं का श्रृंखलाबद्ध करना (Chaining of Responses) :

यथासंभव सरल ढंग, जिसमें व्यूह का अधिगम हो सकता है, वह यह है कि प्रत्येक अनुक्रिया निर्धारित बिंदु पर (बाईं ओर या दाईं ओर) पूर्व घटित होने वाली अनुक्रिया से संबंधित हो सकती है। उदाहरणार्थ, यदि एक चूहा सदा दाईं ओर मुड़ने के तुरत बाद बाईं ओर मुड़ता है, हम आशा कर सकते हैं कि दाईं ओर मुड़ने की अनुक्रिया एक संकेत है, जो अनुवर्त्ती अनुक्रिया बाईं ओर मुड़ने को सुलभ करती है, साहचर्य स्थापित करने का यह प्रक्रम एक क्रम में अनुक्रियाओं की सरल श्रृंखला है। व्यवहारवादी वाट्सन ने कहा कि यही वह विधि है, जिसके द्वारा व्यूह अधिगत किया गया था। उसका अनुमान था कि मांसपेशियों के संकुचन से जो बाईं ओर मुड़ने में निहित उद्दीपन हैं, वे दाईं ओर मुड़ने के अनुबंधित उद्दीपन बन जाते हैं और पूरी श्रृंखला में इसी प्रकार क्रम चलता है।

अनुवर्त्ती प्रयोगों ने प्रमाणित किया कि वाट्सन का सिद्धांत केवल आंशिक रूप में ठीक था। कड़िया संबद्ध होती हैं, किंतु यह अनेक कारकों में से केवल एक है और संभवतः क्रमबद्ध अनुक्रियाओं को सीखने में यह सबसे महत्त्वपूर्ण कारक भी नहीं है। वाट्सन (कार और वाट्सन, १९०८) ने स्वयं एक प्रयोग में भाग लिया

> 'एक व्यूह की इस प्रकार से रचना की गई कि जिसमें घुमावों के आवश्यक प्रतिरूपों को बिना परिवर्तित किए ही रास्तों को लंबा या छोटा किया जा सकता था। व्यूह के लघु रूप में दौड़ कर आहार प्राप्त करने के लिए चूहे प्रशिक्षित किए गए थे। यह करने के लिए उन्हें पूर्णतः प्रशिक्षित किया गया था। इसके बाद उनकी परीक्षा उस व्यूह के लंबे रूप पर ली गई। यदि अधिगत व्यवहार अनुक्रियाओं का एक श्रृंखला से ही निर्मित हो, तो यह आशा की जाएगी कि चूहे यंत्रवत् उस व्यूह में दौड़ेंगे और वहीं से मुड़ेंगे, जहाँ वे मुड़ते रहे हैं! अतः, यदि अधिगम और परीक्षण के मध्य ही पथ को लंबा किया गया है, संभावना की जाएगी कि चूहा पथ के मध्य ही घूम जाएगा चाहे वहाँ मुड़ने का रास्ता हो या न हो। वास्तव में चूहों ने प्रायः इसी ढंग से व्यवहार किया।"

यह प्रयोग और इस प्रश्न से संबंधित अन्य प्रयोग प्रमाणित करते हैं कि क्रमबद्ध अधिगम में श्रृंखला केवल एक कारक है। अन्य प्रयोग इसे पूर्णतः स्पष्ट कर देते हैं कि क्रमबद्ध अधिगम का यही एक मात्र कारक नहीं है। वास्तव में कुछ

परिस्थितियों में तो इसका कोई महत्त्व ही नहीं होता। एक प्रयोग में (मैक फार लैंक, १९३०) चूहे जल-व्यूह में प्रशिक्षित किए गए थे :—

"व्यूह में आठ इंच गहरा पानी था, जो ठीक उतना ही गहरा था, जो चूहे को तैरने के लिए बाध्य करे। जब चूहे काफी अच्छी तरह व्यूह में तैरना सीख गए, प्रयोगकर्त्ता ने उसके संकीर्ण पथों की दीवारों के बीच पानी की तह पर एक फर्श बिछा दिया। इससे उस स्थिति में देखने में बहुत अधिक अंतर नहीं हुआ, किंतु इसने चूहों को व्यूह में दौड़ने के लिए बाध्य किया और इस प्रकार उन्होंने तैरने से बिलकुल भिन्न क्रिया की। चूहों ने दौड़ना प्रारंभ करने के बाद उससे अधिक भूलें नहीं कीं, जितनी उन्होंने पहली अनुक्रिया में की थीं। यह प्रयोग उन अगणित प्रयोगों में से एक है, जो इस विचार का विरोध करता है कि अनुक्रियाओं की श्रृंखला ही क्रमबद्ध व्यूह-अधिगम का एकमात्र या प्रमुख स्पष्टीकरण है।"

अंत में, हम इस निर्णय को स्वीकार करते हैं कि अनुक्रियाओं की श्रृंखला—निकटवर्त्ती अनुक्रियाओं के मध्य सहज साहचर्य बन सकती है और कुछ क्रमबद्ध अधिगम स्थितियों में यह भी एक कारक हो सकती है, किंतु उसमें अन्य कारक भी अनिवार्य रूप से रहते हैं।

**विभेद (Discrimination) :**

क्रमबद्ध अधिगम का वैकल्पिक विश्लेषण उपर्युक्त वर्णित नैमित्तिक अधिगम के प्रयोगों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। एक दूसरे से संबद्ध होने के स्थान पर अनुक्रियाएँ व्यूह के उद्दीपनों से संबद्ध हो सकती हैं। इस रूप में व्यूह का अधिगम विभेदों की श्रृंखला के अधिगम से कुछ भिन्न होगा। प्रत्येक निर्धारित बिंदु में कुछ-न-कुछ भिन्नता हो सकती है—फर्श में दरार, प्रकाश में अंतर, सुपरिचित सुगंध इत्यादि—और इस संकेत के आधार पर जंतु एक दिशा या दूसरी दिशा की ओर मुड़ना सीख सकता है। अतः, व्यूह में दौड़ने वाले चूहे की बहुत कुछ वही स्थिति हो सकती है, जो परिचित सड़कों पर मोटरगाड़ी चलाते हुए व्यक्ति की है। मोटर-गाड़ी चलाने वाला हर संकेत-मोड़ पर ठीक गाड़ी मोड़ता है, न वह पथ-चिह्न पढ़ता है और संभवतः वह मुड़ने का कारण भी आपको नहीं बता सकता। उसने किसी प्रकार 'लाल घर के निकट से,' 'पहाड़ी की तराई से' 'गैस स्टेशन के कुछ आगे से' या अन्य विभेदकारी संकेतों द्वारा चयन-बिंदुओं से उसने मुड़ना सीख लिया है।

अनेक रूपों में यह प्रमाणित किया जा सकता है कि इस प्रकार का साहचर्य घटित होता है। जैसे चूहों को उनकी बिविध ज्ञानेंद्रियों से वंचित करना—अंधा

करना, बहरा करना या उन्हें सूँघने में असमर्थ करना (हॉनजिक, १९३६)। यदि क्रमबद्ध अधिगम केवल शृंखलाबद्ध अनुक्रिया पर ही निर्भर करे और इस प्रकार मांसपेशियों के आंतरिक संकेतों पर आधारित हो, तो परिध-ज्ञानेंद्रियों की हानि से उसमें कोई अंतर नहीं होना चाहिए। किंतु, यह अंतर होता है (देखिए, चित्र ७.२०)। वास्तव में, एक ज्ञानेंद्रिय की हानि व्यूह-अधिगम को बहुत अधिक प्रभावित नहीं करती; क्योंकि एक की हानि की पूर्ति अन्य ज्ञानेंद्रियाँ कर देती हैं। किंतु, एक जंतु को यदि दो या तीन ज्ञानेंद्रियों से बंचित कर दिया जाए, तो उसके व्यूह-अधिगम पर गंभीर प्रभाव पड़ता है। अतः, यह स्पष्ट है कि वाह्य उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया क्रमबद्ध व्यूह-अधिगम के लिए महत्त्वपूर्ण है। जंतु एक व्यूह से संबद्ध विविध उद्दीपनों में विभेद करता है और इन उद्दीपनों को संकेत-स्थलों के रूप में उपयुक्त ठीक मोड़ लेने के लिए प्रयोग करना सीखता है।

जटिल अधिगम-स्थिति में जितने कम संवेदनात्मक संकेत प्राप्त होंगे, उतना ही कम अधिगम होगा।
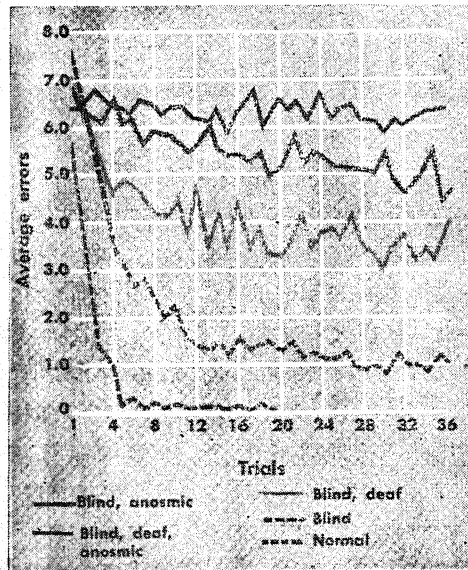
**चित्र ७.२० विविध मात्राओं में संवेदनाओं की हानि पर व्यूह-अधिगम (हॉनजिक, १९३६)।**

## प्रबलन की क्रमिकता (Gradient of Reinforcement) :

न शृंखला, न विभेद और न उनका मिश्रण ही क्रमबद्ध अधिगम को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं; क्योंकि इनमें से एक भी यह स्पष्ट नहीं कर सकता कि

साहचर्य क्यों स्थापित होता है। जंतु प्रारंभ में उतनी ही गलत अनुक्रियाएँ करता है, जितनी ठीक करता है; क्योंकि गलत अनुक्रियाएँ ठीक अनुक्रियाओं के साथ उसी क्रम में श्रृंखलाबद्ध नहीं हो जातीं, जिस क्रम में वे घटित होती हैं। इसी तरह गलत मोड़ लेने पर जंतु वाह्य संकेतों और गलत अनुक्रियाओं में साहचर्य स्थापित करने का अवसर प्राप्त करता है। किसी भी स्थिति में हम यह स्पष्ट नहीं कर सकते कि गलतियाँ क्यों समाप्त होती जाती हैं और व्यूह को अधिगत कर लिया जाता है। इसे स्पष्ट करने के लिए किसी अन्य तथ्य की आवश्यकता है।

यह अन्य तथ्य एक संप्रत्यय है, जिसे 'प्रबलन की क्रमिकता' कहा जाता है (हाल, १९४३)। व्यूह के अंत में भूखा जंतु आहार द्वारा प्रबलित किया जाता है। यह प्रबलन ठीक अनुक्रियाओं के बाद, गलत अनुक्रियाओं की अपेक्षा, कालक्रम से अधिक निकट होता है; क्योंकि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए, एक गलत अनुक्रिया के बाद, ठीक अनुक्रिया अवश्य होगी। अव्यवधान के सिद्धांत, पूर्व-अध्यायों में जिसका उल्लेख हो चुका है, द्वारा यह स्पष्ट होता है कि दो घटनाएँ कालक्रम से जितनी निकट घटित होंगी, उतना ही निकट साहचर्य उनमें होगा। अतः ठीक मोड़ प्रबलन से, गलत मोड़ों की अपेक्षा अधिक निकट संबद्ध होंगे। इसीलिए गलत मोड़ समाप्त होते जाते हैं और ठीक मोड़ अधिगत किए जाते हैं।

एक व्यूह में प्रबलन की निकटता या दूरी का साहचर्यों के अधिगम पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे 'प्रबलन की क्रमिकता' कहा जाता है। 'क्रमिकता' शब्द इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि यह प्रभाव व्यूह के प्रारंभ में लक्ष्य के निकट की अपेक्षा कम (दुर्बल) होता है। किसी ने प्रबलन की क्रमिकता को प्रत्यक्ष नहीं देखा है, इसका केवल अनुमान किया गया है। यह पूर्व-अध्यायों में विकसित अधिगम के सिद्धांतों से तर्क निगम्य भी है।

प्रबलन की क्रमिकता को स्वीकार कर, हम आशा करेंगे कि जो भूलें लक्ष्य के निकट होती हैं, उन्हें उन भूलों की अपेक्षा जो लक्ष्य से दूर होती हैं, शीघ्र मिटाया जा सकेगा। दूसरे शब्दों में, एक व्यूह को सीखने में भूलों का विनाश पीछे की दिशा की ओर, लक्ष्य से प्रारंभ स्थल की ओर, उन्नति करेगा। अनेक प्रयोगों में भूलों की विपरीत दिशा में बिनाश-प्रवृत्ति परिलक्षित हुई है।

## प्रत्याशा और स्थिरता (Anticipation & Perseveration) :

कुछ तथ्य प्रायः समान नहीं होते। इनमें से एक है **अनुक्रियाओं की श्रृंखला की सहजता**। RLRLRL का प्रतिरूप, जो एक सहज प्रत्यावर्त है, RRLLRRLL या RLRRLL RRRLLL की अपेक्षा सहज अधिगत किया जा सकता है। वास्तव

में इस पर विश्वास करने के सैद्धांतिक रूपों और प्रयोगों द्वारा प्राप्त प्रचुर प्रमाण हैं कि एक चूहा सहज प्रत्यावर्त या सब Rs और Ls के प्रतिरूप के अतिरिक्त जटिल श्रृंखलाबद्ध साहचर्य को नहीं सीख सकता। किसी भी स्थिति में, जहाँ अनुक्रियाओं की श्रृंखला को सीखने की संभावना होती है, हम देखेंगे कि यह प्रबलन की क्रमिकता को प्रभावित करेगी।

दूसरा तथ्य जो समान नहीं है, वह है, व्यूह में **संकेतों की स्पष्टता,** प्रभिन्नता और फलस्वरूप विभेद की सहजता। जहाँ संकेत स्पष्ट नहीं है, उसकी अपेक्षा जहाँ संकेत बहुत स्पष्ट होते हैं, वहाँ ठीक अनुक्रियाएँ अधिक शीघ्रता से अधिगत की जाती हैं और भूलें अधिक शीघ्रता से नष्ट हो जाती है। यह भी भूलों के समाप्त होने के प्रतिरूप में अंतर उपस्थित कर देगा।

क्रमबद्ध व्यूह-अधिगम में और भी एक कारक हैं। यह **उद्दीपन सामान्यीकरण,** एक समरूपी उद्दीपनों के प्रति समरूपी अनुक्रिया, संप्रत्यय है, जिससे हम परिचित हो चुके हैं। यह कुछ ससरूपी उद्दीपनों के प्रति समानरूपी अनुक्रिया करने की प्रवृत्ति है। हम उद्दीपन और अनुक्रिया में साहचर्य स्थापित हो जाने के उपरांत उद्दीपन सामान्यीकरण को खोजने की आशा कर सकते हैं। उद्दीपनों में जितनी अधिक समानता होगी, उतना ही अधिक उद्दीपन-सामान्यीकरण होगा। और एक व्यूह अपेक्षाकृत सजातीय पर्यावरण है, जिसमें एक चयन-बिंदु बहुत कुछ दूसरे के ही समान होता है। अनुक्रियाओं की श्रृंखला में भी उद्दीपन सामान्यीकरण की आशा हो सकती है; क्योंकि सब बाई अनुक्रियाओं से मिलने वाले आंतरिक संकेत समान होते हैं। अतः, उद्दीपन-सामान्यीकरण को क्रमबद्ध व्यूह-अधिगम में महत्त्वपूर्ण कारक होना चाहिए।

उद्दीपन-सामान्यीकरण अधिगम को किस प्रकार प्रभावित करता है? जहाँ तक अनुक्रियाओं का संबंध है, यह दो प्रकार की भूलें उपस्थित कर सकता है—स्थिरता की भूल और प्रत्याशा की भूल। स्थिरता की भूलें व्यूह में की गई पूर्व भूलों का दोहराना है, प्रत्याशीय भूलें बाद में की गई भूलों का दोहराना है। दोनों स्थितियों में जंतु एक चयन-बिंदु पर वह अनुक्रिया करता है, जो कि किसी अन्य बिंदु पर ठीक है। प्रचलित भाषा में हम कहेंगे कि वह यह नहीं जानता कि वह कहाँ है अथवा वह गलत स्थान से मुड़ गया; क्योंकि एक पथ देखने में दूसरे के समान था। व्यूह-अधिगम के प्रयोगों ने स्पष्ट किया कि एक जंतु के कुछ ठीक अनुक्रियाएँ सीख लेने के बाद, अनेक भूलें जो बनी रहती हैं और सबसे अंत में समाप्त होती हैं, वे प्रत्याशा और स्थिरता की भूलें हैं। ये केवल उद्दीपन-सामान्यीकरण के विशिष्ट उदाहरण हैं।

**संक्षेप** में व्यूह के क्रमबद्ध अधिगम में साहचर्य निर्मित करने वाले जो प्रमुख **घटक सन्निहित हैं, वे हैं—** अनुक्रियाओं की श्रृंखला, संकेतों में विभेद, प्रबलन की

क्रमिकता और उद्दीपन सामान्यीकरण। इनमें से अनुक्रियाओं की शृंखला प्राय: सबसे कम महत्त्वपूर्ण है और प्रबलन की क्रमिकता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

## सारांश

१. पूर्व अनुभवों के परिणामस्वरूप व्यवहार में हुआ अपेक्षाकृत कोई स्थायी परिवर्तन ही अधिगम है।

२. अधिगम में प्रमुख कारक मस्तिष्क में उन घटनाओं में साहचर्य का स्थापित होना है, जो बाह्य घटनाओं को प्रस्तुत करती हैं। ये साहचर्य संवेदी प्रक्रियाओं में भी हो सकता है या संवेदी और प्रेरक प्रक्रियाओं में भी। कालक्रम में दो घटनाएँ जितना निकट होंगी, उतनी ही सरलता से उनमें साहचर्य स्थापित होगा। यदि एक घटना दो साहचर्यों से संबद्ध हो, तो ये दोनों साहचर्य एक दूसरे के लिए बाधक हो सकते हैं।

३. अधिकांश अधिगम अभिप्रेरण के प्रभाव में होता है। अभिप्रेरण अनुक्रियाओं को इस प्रकार नियंत्रित करता है कि एक अनुक्रिया पुरस्कार-संबद्ध उद्दीपनों से संबंधित हो सकती है। अभिप्रेरण व्यवहार को अधिक परिवर्तनशील भी बनाता है, जिससे उपयुक्त अनुक्रिया के घटित होने की अधिक संभावना रहती है।

४. अन्य कारक, जो अधिगम में निहित रहते हैं या जिनमें अधिगम की निकट समानता रहती है, वे हैं—अभ्यस्तता, संवेदन-ग्रहण, अनुकरण-ग्रहण और अवरोध।

५. अधिगम के तीन सामान्य प्रकार स्पष्ट किए जा सकते हैं : शास्त्रीय अनुबंधन, नैमित्तिक अधिगम और प्रत्यक्ष अधिगम। निवारण अधिगम, शास्त्रीय अनुबंधन और नैमित्तिक अधिगम के मिश्रण का परिणाम है। व्यूह-अधिगम नैमित्तिक अधिगम और प्रत्यक्ष अधिगम के मिश्रण का परिणाम है।

६. शास्त्रीय अनुबंधन में, एक तटस्थ अनुबंधन उद्दीपन (जैसे एक घंटी) को एक अनुबंधित उद्दीपन (जैसे भोजन) के साथ संबद्ध किया जाता है, जो अननुबंधित अनुक्रिया को उद्दीप्त करता है, जैसे—लार-स्राव (।) दोनों संबद्ध उद्दीपनों को बार-बार दोहराने के बाद, अननुबंधित अनुक्रिया का अनुबंधन उद्दीपन से साहचर्य स्थापित हो जाता है।

७. नैमित्तिक अधिगम में, वे अनुक्रियाएँ जो पहले अधिक या कम, अटकल-पच्चू रूप में हो जाती हैं, बाद में उन नैमित्तिक क्रियाओं के रूप में अधिगत की जाती हैं, जो किसी प्रेरक को तृप्त करती हैं। निवारण-अधिगम की स्थिति में नैमित्तिक क्रियाएँ दंड के भय को कम करती हैं।

८. शास्त्रीय अनुबंधन में, 'प्रबलन' शब्द का प्रयोग अननुबंधित उद्दीपन को अनुबंधन उद्दीपन के तुरंत बाद प्रस्तुत करने के अर्थ में होता है । नैमित्तिक अधिगम प्रबलन का प्रयोग नैमित्तिक क्रिया के बाद मिलने वाले पुरस्कार या निवारण-अधिगम में यदि नैमित्तिक क्रिया न की जाए, तो दंड के अर्थ में होता है ।

९. विलोपन एक प्रयोगात्मक व्यवस्था है, जिसमें अनुबंधन उद्दीपन या नैमित्तिक अनुक्रिया का प्रबलन नहीं होता । जब, परिणामस्वरूप, अननुबंधित या नैमित्तिक अनुक्रिया फिर घटित नहीं होती, तो कहा जाएगा कि अनुक्रिया विलुप्त हो गई । अधिगत अनुक्रियाओं का जब विलोपन के कुछ काल बाद परीक्षण किया जाता है, तो वे प्रायः कुछ स्वतःस्फूर्त प्रत्यावर्तन के रूप में प्रकट होती हैं ।

१०. उद्दीपन-सामान्यीकरण उन उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया की प्रवृत्ति है, जो उस उद्दीपन से मिलते-जुलते हों तथा जो प्रबलित हुआ हो । यह अनुबंधन, प्रत्यक्ष अधिगम और व्यूह-अधिगम में बहुत स्पष्ट रूप से घटित होता है ।

११. जो उद्दीपन (या स्थिति) प्रमुख प्रबलन से संबद्ध होते हैं, अनुक्रियाओं को प्रबलित करने की शक्ति अर्जित कर लेते हैं । इस प्रक्रिया के द्वारा, जो गौण प्रबल कहलाता है, गौण लक्ष्य अर्जित होता है । गौण प्रबलनकारियों को एक अनुबंधन स्थिति में तटस्थ उद्दीपनों से संबद्ध करने पर, उच्चस्तरीय अनुबंधन प्राप्त किया जा सकता है ।

१२. यदि अनुबंधित या नैमित्तिक अनुक्रियाएँ कुछ काल के लिए केवल प्रबलित की जाएँ, तो यह प्रक्रिया आंशिक प्रबलन कहलाती हैं । आंशिक प्रबलन द्वारा अर्जित अनुक्रियाओं का विलोपन आगे चलकर नियमित प्रबलन द्वारा अर्जित अनुक्रियाओं की अपेक्षा बहुत कठिन हो जाता है ।

१३. निवारण-अधिगम पर दो-स्तरीय अधिगम के रूप में विचार किया जा सकता है । प्रथम स्तर है, दंड-उद्दीपन के प्रति भय-अनुक्रिया का अनुबंधन । दूसरा हैं—नैमित्तिक अधिगम, जो भय से मुक्त करता है ।

१४. दंड, सामान्य रूप में, केवल अस्थायी रूप से अधिगत अनुक्रियाओं को विलुप्त करता है । यह विलोपन के समान अनुक्रियाओं के पूर्ण भंडार को कम नहीं करता । जब एक अनुक्रिया तीव्र रूप से अभिप्रेरित होती है और कोई अन्य वैकल्पिक अनुक्रिया नहीं होती, तब दंड अवांछित व्यवहार को विलुप्त करने में अपेक्षाकृत प्रभावहीन रहता है ।

१५. विभेदों को अनुबंधन और नैमित्तिक अधिगम में भिन्न प्रकार से दो भिन्न उद्दीपनों के प्रबलन और विलोपन द्वारा अर्जित किया जा सकता है। विभेद प्रायः कौतूहल प्रेरक के प्रभाव द्वारा अनायास अर्जित होते हैं, जब कोई अन्य प्रबलन नहीं होता। फिर भी प्रबलन, यह दिखाने के लिए कि कोई अधिगम घटित हुआ है, प्रायः आवश्यक होता है।

१६. समस्याओं का समाधान अनुबंधन या नैमित्तिक अधिगम द्वारा नहीं, वरन् तर्कना और अंतर्दृष्टि अधिगम द्वारा उपलब्ध किया जा सकता है।

१७. व्यूह-अधिगम में सन्निहित प्रमुख कारक हैं अनुक्रियाओं की श्रृंखला, विभेद अधिगम, प्रबलन की क्रमिकता और उद्दीपन सामान्यीकरण। इनमें से भूलों को विलुप्त करने वाला प्रमुख कारक है—प्रबलन की क्रमिकता।

## पठनार्थ सुझाव :

Berlyne, D. E. Conflict Arousal and Curiosity, New York : McGraw—Hill, 1960.

विशिष्ट और पठनीय पुस्तक, इसमें अधिगम में स्वतोविभेदन एवं कौतूहल-प्रेरण के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है।

Deese, J. The Psychology of Learning ( 2nd. Ed. ) New York : Mcgraw—Hill, 1958.

अधिगम के मनोविज्ञान पर परिचयात्मक पुस्तक।

Guthrie, E. R. The Psychology of Learning, New York : Harper, 1952.

अधिगम में साहचर्य को प्रतिपादित करने वाली महत्त्वपूर्ण पुस्तक।

Hilgard, E. R. Theories of Learning (Rev. Ed.) New York : Appleton-Certury—Crofts, 1956.

अधिगम-प्रकिया के मुख्य सिद्धांतों का सारांश और विकास, विद्वतापूर्ण, किंतु पठनीय शैली में।

Hilgard, E. R., and Marquis, D. M. Conditioning and Learning New York : Appleton-Century, Crofts, 1940.

सैद्धांतिक एवं साभिप्राय अनुकूलन संबंधी जान्तव प्रयोगों का विवरण।

Hull, C. L. Principles of Behaviour. New York : Appleton-Century, Crofts, 1943.

अधिगम के मुख्य सिद्धांतों में से एक का प्रभावशाली तथा वैज्ञानिक विवेचन, प्रबलन-सिद्धांत का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

Skinner, B. F. Cumulative Record. New York : Appleton-Century Crofts, 1959.

साभिप्राय अधिगम पर विशेष रूप से प्रबलन के महत्त्व का उल्लेख करते हुए, किए गए व्यापक शोधकार्य का विवरण।

Woodworth, R. S., and Schlosberg, H. Experimental Psychology (Rev. Ed.) New York : Holt, Rinehart and Winston, 1954.

महत्त्वपूर्ण पुस्तक, इसमें अधिगम पर पाँच महत्त्वपूर्ण अध्याय हैं।

●

अध्याय ८

# मानव-अधिगम और विस्मरण

पिछले संपूर्ण अध्याय में प्राय: जान्तव-अधिगम का विवेचन हुआ है; क्योंकि अधिगम-प्रक्रियाओं के प्रारंभिक रूपों का ज्ञान प्राप्त करने में जंतु-जगत के प्रयोगों ने हमारी बहुत सहायता की है। अध्याय सात में हमने जिन अधिगम-सिद्धांतों की रूपरेखा प्रस्तुत की है, वे मानव-अधिगम के लिए भी मान्य हैं, विशेषत: उस अधिगम के लिए, जो मानव के प्रारंभिक जीवन में घटित होता है।

किंतु यह स्पष्ट है कि मानव-अधिगम, जान्तव-अधिगम की अपेक्षा अधिक विकसित है। यह सत्य है कि जंतुओं की अपेक्षा मानव अनेक रूपों में अधिक कुशल है। वह सूई में डोरा पिरो सकता है, गौल्फ-गेंद फेक सकता है, टंकन कर सकता है तथा ऐसे सब प्रकार के जटिल और कठिन कार्य सफलतापूर्वक कर सकता है, जिन्हें करने की नैसर्गिक योग्यता जंतुओं को प्राप्त नहीं है। इस अध्याय के विवेचित विषयों में विविध मानव-कौशलों का अधिगम भी एक है। निश्चय ही मानव अनेक रूपों में जंतु से श्रेष्ठतर है। संभवत: शब्दों को अर्थपूर्ण रूप में प्रयोग करने की उसकी अत्यंत विकसित योग्यता सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है—और यह योग्यता केवल मानव में ही होती है। एक मात्र यही योग्यता विशद् रूप से मानव-अधिगम की संभावनाओं में वृद्धि करने में समर्थ है तथा यह हमारे समक्ष उस संपूर्ण घटना-विन्यास को प्रस्तुत करती है, जिसका सामना जंतुओं को नहीं करना पड़ता। इस अध्याय में उस घटना-विन्यास का विवेचन भी किया जाएगा तथा उसको समझने में हमारी सहायता कर सके, ऐसे नवीन सिद्धांतों का उल्लेख भी किया जाएगा। तथापि पूर्व पुर:स्थापित अनेक सिद्धांत आज भी उपयोगी हैं और उन्हें ध्यान में रखना चाहिए।

## कौशलों को अर्जित करना (Acquiring Skills) :

अब हम कौशलों—लोग जिन्हें करना सीखते हैं—के अधिगम से प्रारंभ करें। यदि हम किसी व्यक्ति के किसी कौशल, जैसे कार चलाना, को सीखने की विधि का सावधानी से अध्ययन करें; तो संभवत: सर्वप्रथम यह पारिभाषित करना चाहेंगे कि व्यक्ति ने कौशल कितनी तीव्रगति से अधिगत किया—अर्थात् उसके विकास-क्रम को

मापेंगे। मापन-अभ्यास के विकास के साथ जो अधिगम-क्रम परिमापित होता है, उसे मदोवैज्ञानिक 'अधिगस-वक्र' कहते हैं। पिछले अध्याय में हमने अधिगम-वक्रों के अनेक उदाहरण देखे हैं, किंतु अब हम उन्हें अधिक सूक्ष्मता से देखेंगे।

अधिगम-वक्रों को, अधिगम-परिमापन के ऐसे परिमापनों, जैसे भूलें, निर्धारित काल और गति के प्रयोग द्वारा भिन्न रूपों में चित्रित किया जा सकता है।
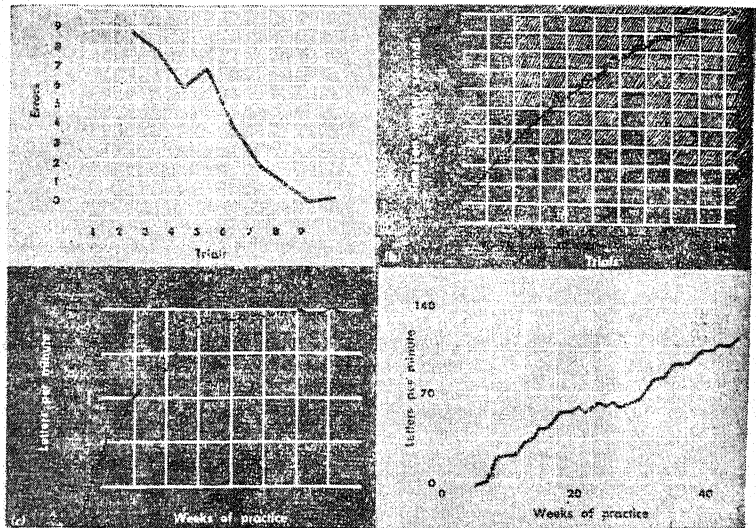
**चित्र ८.१ अधिगम-वक्रों के चार उदाहरण वक (a) अँगुली व्यह सीखने में भूलें बक (b) मोटर गाड़ी चलाना सीखने में निर्धारित समय-बक्र (c) टेलिग्राफ भजना, सीखना, वक्र (d), टेलिग्राफ प्राप्त करना सीखना। ध्यान दें कि वक्र (d) में प्रकट चपटा स्थल, जिसे 'अधित्यका' कहते हैं, वक्र (c) में नहीं है।**

अधिगम के वक्र :

चित्र ८.१ के चारों वक्र अधिगम वक्र हैं। प्रथम वक्र (a) में अधिगम की भूलें या अशुद्धियाँ परिभाषित की गई हैं और भूलों के विलोकन द्वारा उन्नति निदेशित की गई है। यह वक्र कालेज के किसी विद्यार्थी के व्यूह को अधिगम करने का है। चित्र ८.२ में (पृष्ठ ३९४ में ऊपर) एक विद्यार्थी, आँखों पर पट्टी बाँध कर,

एक ऐसे ही व्यूह में पथ खोज रहा है। विद्यार्थी का कार्य 'उचित पथ' का अनुसरण करते हुए व्यूह के एक छोर से दूसरे छोर तक अपने पथ की खोज करना सीखना है। व्यूह में उचित पथ को खोज निकालना व्यक्ति द्वारा की गई अशुद्धियों की संख्या पर अथवा व्यूह पार करने में लगे समय द्वारा परिमापित किया जाता है। वक्र (a) व्यूह के अधिगम में भूलों के विलोपन का चित्र है।

अधिगम-क्रम के परिमापन की एक अन्य विधि है, अभ्यास की क्रिया के रूप में की गई **परिशुद्धता या उपयुक्तता** का आलेखन। अनेक रूपों में इसे किया जा सकता है। चित्र ८.१ का वक्र (b) समय की प्रतिशतता को प्रकट करता है, जिसे एक अधिगमक घूमते हुए मंडलक पर एक धातु-अनी को रखने में लेता है। चित्र ८.२ (पृष्ठ ३९४ में नीचे) में एक व्यक्ति इसी कार्य को कर रहा है। इस यंत्र को घूर्णी-प्रयत्न मापक यंत्र कहा जाता है। मोटर (मशीन) अधिगम के अध्ययन में इसका प्रयोग किया जाता है। घूर्णी-प्रयत्न अधिगम-वक्र वस्तुतः प्राप्ततांकों के बढ़ते हुए क्रम का वक्र है।

चित्र ८.१ में वक्र (c) और (d) शब्द-संबंधी सामग्री को सीखने के वक्र हैं। ये वक्र एक प्रसिद्ध प्रयोग (ब्रायन और हर्टर, १८९९) से लिए गए हैं—यह प्रयोग मानव-अधिगम के प्रयोगात्मक अध्ययन का एक प्रारंभिक प्रयोग है। इसमें अभ्यास-कार्य के रूप में तार-संकेत भेजने व प्राप्त करने की योग्यता का परिमापन किया गया है। ये दोनों वक्र घूर्णी-प्रयत्नमापी अधिगम वक्र के सदृश दिखायी देते हैं, अतः ये भी निरंतर बढ़ते हुए आँकड़ों को प्रदर्शित करने वाले वक्र हैं। यद्यपि वक्र (d) में कुछ विशेषता है, जिस पर ध्यान देना आवश्यक है। वक्र के मध्य भाग के लगभग समतल है, उस कालावधि में कुछ भी विकास परिलक्षित नहीं होता। यह अल्प या प्रगतिहीन अवधि अधित्यका की संज्ञा से प्रसिद्ध है।

**पठार ( Plateaus ) :**

अधिगम-वक्रों में सदैव पठार नहीं होतीं, किंतु जब होती हैं, तो उनके कुछ विशेष कारण रहते हैं। एक कारण यह हो सकता है कि कौशल-अर्जन में अनेक स्पष्ट सोपान रहते हैं। उदाहरणतः चित्र ८.१ के वक्र ( d ) में तार प्राप्त करने में अधित्यका प्रकट होती है और वक्र ( c ) में तार भेजने में वह नहीं है। ब्रायन तथा हार्टर, जिन्होंने यह प्रयोग किया था, इस पठार के कारण को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि वह अधिगम पठार इसलिए प्राप्त करता है कि अक्षर-दर-अक्षर प्राप्त करने में वह अपनी योग्यता की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था और उसने शब्द-दर-शब्द अथवा वाक्य-दर-वाक्य प्राप्त करना सीखना अभी प्रारंभ नहीं किया था। इसका अर्थ है कि किसी विशेष कौशल को अधिगम करने में भिन्न प्रकार की अनेक आदतें या अनेक

सोपान निहित हो सकते हैं, **जब आगामी सोपान का अधिगम प्रारंभ करने से पूर्व प्रथम सोपान पूर्णतः समाप्त हो जाता है, तो अधिगम बक में पठार प्रकट होती है।**

मानव-अधिगम के अध्ययन में अनेक विधियाँ तथा साधन प्रयोग किए जाते हैं।
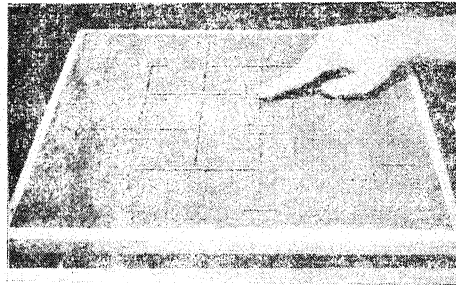
**८.२ मानव-अधिगम के अध्ययन में प्रयुक्त दो साधन। बाई ओर एक अंगुली-व्यूह है (देखिए चित्र ८.१ का (a) बक, नीचे धूर्णी प्रयत्न मापक** ( Rotary pursuit meter ) **है देखिए चित्र ८.१ का (b) वक्र।**

आदतों को सीखने में सोपानों के इस विवरण से किसी भी संगीत-वाद्य को सीखने वाले, व्यक्ति के परिचित होने की संभावना है। उदाहरणतः जब कोई व्यक्ति पियानों सीखना प्रारंभ करता है, तो एक ऐसा प्रारंभिक काल रहता है, जिसमें वह बहुत तीव्र गति से सीखता है, मूल तत्वों को वह सरलता से सीख लेता है। किंतु उसके बाद ही ऐसी दीर्घ अवधि आती है. जिसमें प्रगति अत्यधिक .मंद अथवा नहीं के बराबर होती है। इस बिंदु पर अनेक व्यक्ति हतोत्साहित हो जाते हैं तथा आगे उसे सीखना छोड़ देते हैं। किंतु कुछ व्यक्ति जिनमें सहनशीलता है, अंततः इस पठार से मुक्त हो जाते हैं और अधिगम के नवीन सोपानों की ओर जैसे हाथ और अंगुलियों की विभिन्न गतियों का समाकलन, प्रगतिशील होते हैं।

पठार के आविर्भाव के कुछ अन्य कारण भी हैं। अभिप्रेरण का लुप्त होना प्राय: एक कारक बताया गया है (स्विफ्ट, १९१८)। उदाहरण के लिए, कुछ समय पियानों सीखने के पश्चात् एक बच्चा उसे सीखने में रूचि नहीं रख सकता। यदि उसे बलपूर्वक निरंतर अभ्यास कराया जाएगा, तो उसके अधिगम बक्र में पठार प्रदर्शित होने की संभावना है। अधिगम में पठार सर्वदा नहीं पायी जाती है, लेकिन जब वह होती है, तो अभ्यास-प्रणाली के परिवर्तन से या कुछ काल के लिए अभ्यास से विश्राम लेकर उनसे मुक्त होने में सहायता मिलती है।

### अभ्यास-विभाजन :

अधिगम के अनेक महत्त्वपूर्ण कारकों में सबसे महत्त्वपूर्ण कारक है कि व्यक्ति एक कार्य को किस गति से करता है। आश्चर्यजनक रूप से विविधतापूर्ण कार्यों के सुचारू अधिगम में निरंतर अभ्यास की अपेक्षा विराम करते हुए अल्पकालीन अभ्यास अधिक सुविधा प्रस्तुत करते हैं ( मैक गिआच एवं इरियान, १९५२)। यह सिद्धांत सरल यंत्रों के नियंत्रण के लिए सत्य है और यह टंकन सीखने-जैसे जटिल कौशलों के लिए भी ठीक है। इस नियम का संभावित अपवाद ऐसे कार्य हैं, जिनमें गणित की समस्याओं के समाधान अथवा आगमनात्मक चिंतन निहित हैं ( कुक, १९३४, एरिकसेन, १९४२ )। किंतु, फिर भी विभाजित अभ्यास का नियम अधिगम के सब प्रकारों के लिए अति सामान्य है।

चित्र ८.३ अधिगम के कुछ बक्रों पर विभाज्य अभ्यास के प्रभाव को स्पष्ट करता है ( लॉर्ज, १९३० )। यह उदाहरण दर्पण-रेखांकन (Mirror drawing) कार्य की प्रगति को प्रस्तुत करता है।

> "प्रयोग-पात्र का कार्य था एक जटिल प्रतिरूप को पेंसिल से अंकित करना, प्रयोग-पात्र को दर्पण में एक प्रतिरूप और पेंसिल को देखते हुए, गति की दिखायी पड़ने वाली दिशा से विपरीत दिशा में, एक जटिल प्रतिरूप को पेंसिल से चित्रित करना था। अत:, उसने जो भी कार्य किया, वह विपरीत प्रतीत हुआ। प्रयोग-पात्रों के एक समूह ने निरंतर अभ्यास द्वारा इस कार्य को अधिगत किया, जैसे ही वे एक प्रतिरूप का चित्रण समाप्त करते, दूसरा प्रारंभ कर देते। दूसरे समूह को प्रयोगों के मध्य एक मिनट के विश्राम की सुविधा दी गई। तीसरे समूह ने एक दिन में केवल एक बार चित्र अंकित किया और इस प्रकार उसे प्रयोगों के मध्य २४ घंटे का विश्राम मिला।"

ध्यान रखें कि निरंतर और विभाज्य अभ्यास के मध्य अधिगम बक्रों में वृहद् आर संगत अंतर है। प्रयोगों के मध्य एक मिनट का विराम भी सतत् अभ्यास से श्रेष्ठतर प्रमाणित हुआ।

मध्यवर्ती विरामों के साथ किया गया अधिगम निरंतर किए गए अधिगम की अपेक्षा प्रायः तीव्रतर होता है।
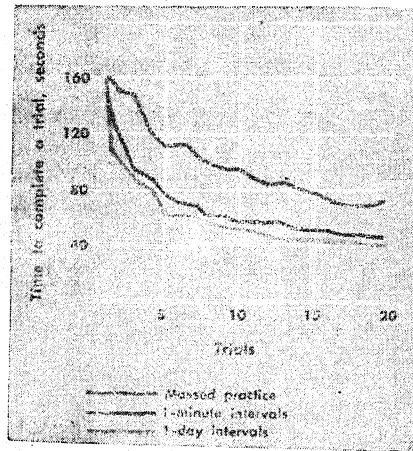
**चित्र ८.३ निरंतर अभ्यास एवं सविरामी अभ्यास में तुलना। ये वक्र तीन स्थितियों के अधिगम को प्रस्तुत करते हैं—१. प्रयत्नों के बीच बिना विराम के निरंतर अभ्यास, २. प्रयत्नों के बीच १ मिनट के विराम के साथ अभ्यास, तथा ३. प्रयत्नों के बीच एक दिन के विराम के साथ। ध्यान दें कि निरंतर अभ्यास की अपेक्षा एक मिनट के अभ्यास से किया गया अधिगम भी तीव्रतर है। एक दिन के विराम पर किया गया अधिगम सर्वोत्तम है (लॉर्ज के अनुसार, १९३०)।**

अधिक जटिल कार्यों में निरंतर एवं सविरामी (विभाज्य) अभ्यासों में बहुधा उतना अंतर नहीं रहता जितना इस प्रयोग में रहा। बहुत से कार्यों में कुछ ऐसी प्रणालियाँ हैं, जिनमें अधिगम को अति तीव्रता से प्राप्त करने के लिए अभ्यास और विश्राम को सम्मिलित किया जाता है। ऐसे तीन घटक है, जिन्हें परिवर्तित किया जा सकता है—१. अभ्यासकाल की अवधि, २. विश्रामकाल की अवधि एवं ३. अधिगम-काल में विश्राम के स्थल।

सामान्यतः अभ्यासकालों को कम होना चाहिए; क्योंकि एक निश्चित क्षेत्र में वे जितने अधिक होंगे उतना ही अभ्यास निरंतर होगा, फलस्वरूप वे अधिगम की गति को मंद कर देंगे (किंबल तथा बिलेडियन, १९४९)। दूसरी ओर अभ्यास-कालों का इतना कम भी नहीं होना चाहिए कि वे कार्य को कृत्रिम और अर्थहीन इकाइयों में विभाजित कर दें।

सामान्यतः विश्राम जितना दीर्घकालीन होगा, किए गए अभ्यास की मात्रा उतनी ही अधिक प्रभावशाली होगी। विश्रामकाल की वृद्धि निश्चित रूप से कार्य की प्रगति में सहायक होगी। किंतु, बहुत दीर्घकाल का विश्राम अधिगम में विशेष तीव्रता नहीं लाता ( लॉर्ज, १९३० )। दूसरे शब्दों में, विश्रामकाल की सर्वाधिक

लंबी अवधि भी संभवतः अनेक कार्यों के लिए बहुत अल्प होती है और इसे अपेक्षाकृत संक्षिप्त सर्वाधिक काल से अधिक बढ़ाने पर कार्य के अधिगम की गति में वस्तुतः वृद्धि नहीं होगी।

विश्रामकाल के निश्चित स्थलों के विषय में हम स्पष्ट निर्णय नहीं दे सकते; क्योंकि विविध प्रकार के कार्यों पर किए गए प्रयोगों से भिन्न-भिन्न परिणाम प्राप्त हुए हैं। अभ्यास-विभाजन-संबंधी सर्वोत्तम सामान्य सारांश यह है कि केवल एक अथवा दो दीर्घ विश्रामकाल और एक या दो दीर्घ अभ्यासकालों की अपेक्षा बार-बार अल्पकालीन विश्राम के साथ अल्प अभ्यासकाल अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अभ्यास-विभाजन का यह निर्देशक सिद्धांत कालेज-अध्ययन और व्यापार या उद्योग दोनों कार्य-क्षेत्रों में लागू होता है। यद्यपि किसी नए कार्य को सीखना और किसी ऐसे कार्य को करना जिसे हम भली प्रकार जानते हैं, दोनों में प्रत्येक दृष्टिकोण से तुलना नहीं हो सकती, फिर भी व्यावसायिक स्थितियों में कार्य और विश्रामकाल के विभाजन पर यही सामान्य सिद्धांत लागू होता है।

## परिणामों का ज्ञान :

कौशल-अधिगम का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक **'परिणामों का ज्ञान'** है। एक व्यक्ति के लिए प्रत्येक बार प्रयत्न करने पर यह जानना उत्तम होगा कि उसने वास्तव में कितनी अच्छी तरह कार्य किया है। उदाहरणार्थ, यदि वह निशानेबाजी सीख रहा है, तो उसे प्रत्येक बार निशाना लगाने के पश्चात् यह जानना चाहिए कि वह लक्ष्य के कितना निकट पहुँचा है तथा किस दिशा में वह दूर है। गौल्फ सीखते समय एक व्यक्ति में यह देखने की योग्यता होनी चाहिए कि उसकी गेंद ठीक कहाँ गिर रही है। यदि इस प्रकार की सूचनाएँ वह नहीं दे सकता, तो अन्य श्रेष्ठ उपाय हैं कि उसे 'मारने और चूक जाने' का ज्ञान—अर्थात् ठीक अथवा गलत का ज्ञान हो। भूल की दिशा और विन्यास में यह बहुत सहायक सूचना नहीं है, किंतु यह उसे इतना बता सकती है कि कौन-सा प्रयोग ठीक था और इस प्रकार उसका कुछ मार्गदर्शन करती है।

कुछ दिन पूर्व का एक प्रयोग ( बेकर और यंग, १९६० ) जो एक पुराने प्रयोग ( थॉर्नडाइक, १९२७ ) को ही कुछ सुधार के साथ प्रस्तुत करता है। सहज कौशल को सीखने में परिणामों के ज्ञान के महत्त्व को प्रतिपादित करता है। इस प्रयोग के वर्णन की सुविधा के लिए हम परिणामों के ज्ञान को सूचनाओं की 'प्रतिपुष्टि' ( Feedback ) कहेंगे।

"प्रयोग-पात्रों का कार्य एक ४ इंच की लकड़ी की लंबाई की यथासंभव शुद्ध रूप में पुनरावृत्ति करना था। संपूर्ण प्रयोग-काल में प्रयोग पात्रों की

आँखों पर पट्टी बाँधी गई थी और वे लकड़ी के टुकड़े को देख नहीं सकते थे। वे उसे इच्छानुसार हाथ से स्पर्श कर सकते थे। उसकी लंबाई की पुनरावृत्ति करने के लिए बाई ओर चलने वाली स्लाट ( मशीन ) में पेंशिल डाली और ग्राफ-कागज पर एक रेखा खींची। खींची रेखा के ४ ईंच के ± .20 में होने पर उन्हें शुद्ध समझा गया। प्रत्येक प्रयोग-पात्र ने एक दिन में दो सौ रेखाएँ खींची, एक समय में एक साथ बीस रेखाएँ खींचता और उसके बाद उसे आधे मिनट का विश्राम दिया जाता।

प्रयोग-पात्रों के दो समूहों का विवरण दिया जाएगा। दोनों समूहों ने एक दिन के पूर्व प्रशिक्षण, जिसमें उन्होंने दो सौ रेखाएँ खींची और परिणामों का ज्ञान नहीं प्राप्त किया था, से प्रारंभ किया। यह प्रयोगकर्त्ताओं को सुविधा देने के लिए किया गया था कि वे पता लगा सकें कि क्या प्रयोग-पात्र प्रारंभ करते समय प्रायः बराबर थे ? औसतन प्रयाग-पात्र १२ प्रतिशत प्रयोगों में ठीक थे। इसके उपरांत एक समूह, प्रतिपुष्ट-समूह को ७ दिन दिए गए और उनसे कहा गया कि वे ठीक थे अथवा गलत, अर्थात् वे शुद्ध लंबाई के ±२० इंच तक हैं या नहीं। किंतु, उन्हें उनकी अशुद्धि की दिशा नहीं बताई गई। दूसरा समूह, अप्रतिपुष्ट-समूह, ९ दिन तक कार्य करता रहा। बिना परिणामों के ज्ञान के प्रतिपुष्ट समूह को ७ दिन परिणाम ज्ञान देने के उपरांत ७ दिन के लिए अप्रतिपुष्ट समूह में परिणत कर दिया।

प्रयोग का परिणाम चित्र ८.४ में स्पष्ट किया गया है। बक्र कुछ असम हैं; क्योंकि प्रयोग-पात्रों की संख्या ( १२ ) बहुत अधिक नहीं थी, परंतु उनकी विभिन्नताएँ सुस्पष्ट हैं। अप्रतिपुष्ट-समूह ने संपूर्ण प्रयोगकाल में कहीं भी उपयुक्त उन्नति नहीं की। अंत में, प्रयोगों के केवल २० प्रतिशत को वह शुद्ध कर सका था। दूसरी ओर प्रतिपुष्ट समूह परिणाम-ज्ञान प्राप्त करते हुए निरंतर उपयुक्त उन्नति करता रहा और सातवें दिन उसकी शुद्धता ६० प्रतिशत तक पहुँच गई। जैसे ही प्रतिपुष्टि को बंद किया, इस समूह की शुद्धता अकस्मात ३० प्रतिशत् कम हो गई। फिर भी प्रतिपुष्ट समूह ने अप्रतिपुष्ट समूह की अपेक्षा अच्छी तरह कार्य किया।"

अतः, यह प्रयोग प्रदर्शित करता है कि अधिगम में परिणामों के ज्ञान से सहायता मिलती है——वास्तव में कुछ प्रकार के अधिगमों में, जैसे बंदूक चलाना, परिणामों का ज्ञान अनिवार्य है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि यदि किसी को बिना प्रतिपुष्टि के कार्य करना पड़े, तो उसकी अपेक्षा यदि अधिगम प्रक्रिया में भी उसे प्रतिपुष्टि प्राप्त हो जाए, तो वह लाभांवित होगा।

परिणामों का ज्ञान अधिगमन में सहायक होता है। उसके बिना यह भी संभव है कि बिलकुल भी अधिगम न हो।
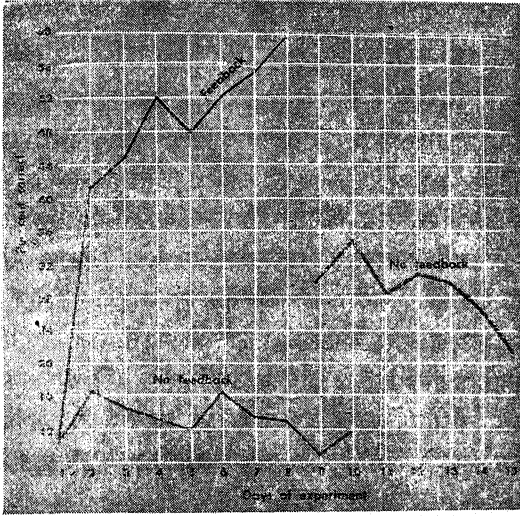
**चित्र ८.४. अधिगम पर परिणामों के ज्ञान का प्रभाव आँखों पर पट्टी बाँध कर प्रयोग-पात्रों को उतनी ही लंबी रेखा खींचने का कार्य दिया गया जितना लंबा लकड़ी का टुकड़ा उन्हें दिखा गया था, जिसकी लंबाई को वे हाथों से स्पर्श करके देख सकते थे। प्रथम दिन के पश्चात्, जिसमें उन्हें परिणामों का ज्ञान नहीं करवाया गया था, एक समूह, प्रतिपुष्ट समूह को बताया गया कि वह सही था या नहीं, अर्थात् वह उपयुक्त लंबाई (४ इंच) के ±२० के निकट ही था या नहीं, जब कि दूसरे समूह अप्रतिपुष्ट समूह, में अपने कार्य को बिना परिणामों के ज्ञान के जारी रखा। नवें दिन प्रतिपुष्ट समूह को अप्रतिपुष्ट समूह में परिवर्तित कर दिया गया। यह समूह अप्रति-पुष्ट समूह से सदैव श्रेष्ठतर रहा। अप्रतिपुष्ट समूह ने कोई उन्नति नहीं की, तो दसवें दिन उसका कार्य समाप्त कर दिया गया (बेकर और यंग, १९६०)।**

यह भी महत्त्वपूर्ण है कि परिणामों का ज्ञान कालानुकूल होना चाहिए। यदि एक बंदूकबाज (चालक) लक्ष्य को बिना देखे एक साथ अनेक गोलियाँ दागता है, तो वह उतनी तीव्र गति से प्रगति नहीं करेगा एवं जितनी तीव्रता से प्रत्येक गोली दागने

के पश्चात् तत्काल ही वह उसका परिणाम देख व जान लेने पर करता। संभवतः कारण स्पष्ट है : जिज्ञासु के लिए यह जानना आवश्यक है कि प्रत्येक प्रयोग के परिणामस्वरूप उसका कार्य ठीक हो रहा है या गलत। यदि वह प्रयोग का परिणाम तत्काल जान ले, तो कार्य को यथासंभव अच्छी तरह कर सकेगा। अन्यथा वह केवल इतना ही जानता है कि वह प्रायः अपने लक्ष्य से चूक जाता है।

परिणाम-ज्ञान अधिगम में सहायक है; क्योंकि यह जिज्ञासु को अपने कार्य और परिणाम में साहचर्य स्थापित करने की सुविधा देता है। जितना शीघ्र यह ज्ञान दिया जाएगा, उतना ही यह शुद्ध और विस्तृत होगा और उतना ही तीव्रतर अधिगम होगा।

परिणाम-ज्ञान प्रेरक तत्त्व के रूप में भी अधिगम की सहायता करता है। व्यक्ति जिसे अपने कार्य का ज्ञान है कि वह कैसे कर रहा है, उस व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक रुचि लेकर कार्य करेगा, जिसे अपने कार्य का ज्ञान नहीं है। विशेषतः नीरस कार्यों में, जिसमें उसे शीघ्र ही थकान हो सकती है। यदि उसे उसकी कुछ उपलब्धि का ज्ञान दे दिया जाय, तो कार्य में उसकी रुचि बनी रह सकती है। अतः, परिणाम-ज्ञान अधिगम-अभिप्रेरण के विकास द्वारा अधिगम में सहायक होता है।

आगे के परिच्छेदों में मशीन-शिक्षण के संदर्भ में परिणाम-ज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग का विवेचन किया गया है।

### पठन बनाम मौखिक आवृत्ति ( Reading Versus Recitation ) :

अभ्यास की अनेक अन्य प्रणालियाँ भी हैं, जिनका प्रभाव अधिगम की गति पर पड़ता है। किसी वाचिक सामग्री को कंठस्त करने में विद्यार्थी के लिए पठन और सक्रिय मौखिक आवृति का अंतर विशेष महत्त्व रखता है। इस प्रसंग का हम आगे इस अध्याय में 'अध्ययन की प्रविधियों' के संदर्भ में भी विवेचन करेंगे।

वहाँ हमने स्पष्ट किया है कि सक्रिय मौखिक आवृत्ति की अपेक्षा केवल पठन का अत्यंत साधारण महत्त्व है। अन्य शब्दों में, यदि कोई बिना आवृत्ति के केवल कुछ पढ़ता है, तो उसका अधिगम उस व्यक्ति की अपेक्षा कम प्रभावशाली होगा, जो पठन के साथ सक्रिय मौखिक आवृत्ति भी करता है। वास्तव में यदि अध्ययनकाल का ८० प्रतिशत-काल सकिय आवृत्ति में व्यतीत किया जाए, तो अधिगम का परिणाम उससे श्रेष्ठतर होगा, जिसमें पूर्ण समय केवल पठन किया गया है (गेटेज, १९१७)। असंबद्ध पठन-सामग्री जैसे विदेशी भाषा की शब्दावली के लिए यह विशेषतः सत्य है, परंतु यह अत्यंत व्यवस्थित सार्थक पठन-सामग्री के लिए भी सत्य है।

अभ्यास की अन्य प्रणालियों के संबंध में हम इतना स्पष्ट निर्णय नहीं दे सकते। उदाहरणार्थ हम असंदिग्ध रूप से यह नहीं कह सकते कि पठन की अपेक्षा श्रवण द्वारा श्रेष्ठतर अधिगम होता है। इस समस्या पर अनेक अनुसंधानकर्त्ताओं ने

प्रयोग किए हैं, किंतु परिणाम सुस्पष्ट नहीं है। इसका हेतु संभवतः व्यक्तियों की वैयक्तिक विभिन्नताएँ हैं। कुछ व्यक्ति दृष्टि की अपेक्षा श्रवण द्वारा अधिक अच्छी तरह सीख सकते हैं, परंतु कुछ व्यक्तियों के लिए इसका विपरीत भी सत्य, हो सकता है। ये अंतर सूक्ष्म हैं और संभवतः विशेष परिमापित परिस्थितियों पर आधारित होते हैं।

## पठन-सामग्री का अर्थपूर्ण होना (Meaningfulness of Material) :

विकास के साथ-साथ व्यक्ति अधिगत व्यवहार का वृहद् भंडार अर्जित करते हैं और जैसे ही उनके समक्ष अधिगमार्थ नवीन कार्य उपस्थित होते हैं, वे अनुभव करते हैं कि उनके पूर्वाधिगत कार्यों के सदृश ही नवीन कार्य भी है अथवा, वे अनुभव करते हैं, उनका पूर्वाधिगम नवीन कार्यों को सीखने में सहायक है। 'अधिक सुगमता से अधिगत नए कार्य अथवा अधिगम-सामग्री प्रमाणित करते हैं कि पूर्वाधिगम अर्थपूर्ण या सार्थक होता है।' संभवतः यह पर्याप्त स्पष्ट है कि अर्थपूर्ण कार्य को विचित्र कार्य की अपेक्षा अधिगत करना अधिक सुगम है।

पठन-सामग्री के खंडों (पैराग्राफ) को कंठस्थ करने की क्रिया हमारे 'अर्थपूर्णता' के अभिप्राय को स्पष्ट करती है। यदि आप पिछले पैराग्राफ को कंठस्थ करने की चेष्टा करें, तो आप अनुभव करेंगे कि शब्दकोश से उतने ही शब्द यत्र-तत्र से यादृच्छिक रूप से लेकर स्मरण करने की अपेक्षा इसे स्मरण करना बहुत सुगम होगा। आप यह भी अनुभव करेंगे कि अव्यवस्थित क्रमागत वाक्यों की अपेक्षा सुचारु व्यवस्थित वाक्य क्रमयुक्त पैराग्राफ को स्मरण करना अधिक सरल है। किंतु, यादृच्छिक शब्दों की अपेक्षा यादृच्छिक वाक्यों को स्मरण करना सुगमतर है।

आगे हम विस्तार से 'अर्थपूर्णता' के तात्पर्य पर विचार करेंगे।

## पूर्ण बनाम खंड-अधिगम (Whole Verses Part-learning) :

विद्यार्थियों, अभिनेताओं अथवा कोई भी जिसे कंठस्थ करना पड़े या बड़ी मात्रा में किसी सामग्री को स्मरण करना पड़े, के समक्ष एक प्रश्न आता है, सामग्री को संपूर्ण रूप में स्मरण करे अथवा खंड के रूप में? एक संपूर्ण कविता या नाटक के संपूर्ण कथोपकथन को एक साथ वह अनेक बार पढ़ जाए अथवा एक-एक अंश को लेकर उसे स्मरण करते हुए पूर्ण को स्मरण करे? वह विदेशी भाषा की शब्दावली का अध्ययन करने में समस्त शब्दावली को एक साथ ही स्मरण करे अथवा उसे लघु खंडों में समूहबद्ध करके एक के बाद एक को स्मरण करे? एक अध्याय के खंडों को बारी-बारी से स्मरण करे अथवा पूरे अध्याय की एक साथ कई बार आवृत्ति करे?

यह पूर्ण बनाम खंड-अधिगम का प्रसंग है। इसका सूक्ष्मता से अध्ययन किया गया है। कविता कंठस्थ करने के कुछ प्रारंभिक प्रयोगों ने निदेशित किया है कि पूर्ण-प्रणाली खंड-प्रणाली की अपेक्षा श्रेष्ठतर प्रतीत होती है। बाद के प्रयोगों से यह तथ्य इतना स्पष्ट प्रमाणित नहीं होता। प्रत्येक प्रणाली के गुण और दोष हैं ( मैक गियोश तथा एरियन, १९५२ )।

खंड-प्रणालियों के कभी-कभी निम्नांकित गुण हैं—जब पूर्ण से खंड सरलता से पृथक् किया जा सकता है, जैसे गोल्फ में गेंद का डालना और दूर ले जाना अथवा जर्मन-शब्दावली को स्मरण करना, तब खंड-प्रणाली उपयोगी सिद्ध होगी। जब पूर्ण इतना विशद् हो कि निरंतर स्मरण-विधि के दोष के बिना उसे स्मरण न किया जा सके जैसे नाटक के विशद् कथोपकथन को स्मरण करना, तब खंड-प्रणाली उपयोगी प्रमाणित होगी। खंड-प्रणाली से एक लाभ यह भी है कि इससे परिणाम-ज्ञान और शीघ्रता से उद्देश्यप्राप्ति के बोध के कारण अधिक रुचि बनी रहती है। खंड-विधि का एक दोष यह है कि प्रत्येक पृथक् खंड को पृथक्-पृथक् स्मरण के उपरांत संबद्ध करने के हेतु पर्याप्त स्मरण करना पड़ेगा। इससे विभिन्न खंडों के मिश्रण अथवा अशुद्ध क्रम की संभावना रहती है।

निम्नलिखित स्थितियों में पूर्ण-प्रणाली अधिगम-विधि के रूप में अधिक प्रभावशाली सिद्ध होती है : जब जिज्ञासु पर्याप्त बुद्धिमान है कि संपूर्ण सामग्री को तीव्र गति से स्मरण कर सकता है, जब पूर्ण का अभ्यास उचित सत्रों में विभाजित हो सकता है एवं जब सामग्री इतनी अर्थपूर्ण है कि सहज ही संबद्ध हो सकती है। सामान्यतः पूर्ण-विधि एक कविता को स्मरण करने में आशा से अधिक सफल हो सकती है, यदि कविता बहुत बड़ी न हो। यद्यपि हम यह निर्णयपूर्वक नहीं कह सकते कि प्रत्येक स्थिति में सदैव अथवा प्रायः एक ही विधि श्रेष्ठतर होगी, तथापि पूर्ण-प्रणाली संभवतः अधिकांश अधिगम स्थितियों में किंचित श्रेष्ठतर रहती है।

विद्यार्थियों के व्यावहारिक उपयोगार्थ श्रेष्ठ सुझाव यही हो सकता है कि सुविधानुकूल दोनों प्रणालियों को मिश्रित करके प्रयोग करे। विद्यार्थी को पूर्ण-प्रणाली से संभवतः प्रारंभ करना चाहिए और कठिन प्रसंगों के आगे जहाँ विशेष ध्यान की आवश्यकता हो, खंड-प्रणाली को अपनाना चाहिए एवं अंत में पुनः पूर्ण प्रणाली को ग्रहण करना चाहिए। उदाहरणार्थ, पाठ्यक्रम के एक अध्याय का अध्ययन करने में उसे एक बार संपूर्ण अध्याय को पढ़ लेना चाहिए, इसके उपरांत उसके विविध भागों को ध्यान से पृथक्-पृथक् पढ़ना चाहिए और अंत में पूरे अध्याय को एक साथ पुनः पढ़ना चाहिए। 'अध्ययन की प्रविधियों' के प्रसंग में दिए गए

विशिष्ट सुझाव ऐसे प्रयोगों पर आधृत हैं, जो अध्ययन की इस सामान्य विचारधारा के परिणाम हैं।

## स्मृति-प्रक्रम ( Memory Processes ) :

यह परिच्छेद पिछले की अपेक्षा अधिक सामान्य और सूक्ष्म होगा। हमारा उद्देश्य संस्कारपरक मानव-जिज्ञासु में अधिगम और स्मृति-प्रक्रमों के चित्र को विकसित करना है। 'संस्कारपरक' ( Sophisticated ) से हमारा अभिप्राय ऐसे बालक अथवा वयस्क व्यक्ति से है, जिसने पर्याप्त अच्छी तरह भाषा अधिगत की है तथा जिसके व्यापक संपर्क भी है। जब ऐसा व्यक्ति नवीन साहचर्य स्थापित करना सीखता है, तब वह शिशु अथवा भोले और सरल प्राणी के सदृश प्रथम अक्षर से सीखना आरंभ नहीं करता, अपितु उसके नवीन साहचर्य उसके पूर्वाधिगत साहचर्यों से संबद्ध होते हैं। फलतः यह अवबोधन, कि वह कैसे सीखता है, क्या स्मरण रखता है और क्या विस्मरण करता है, यह समझने की समस्या बन जाता है कि उसके नवीन साहचर्यों और पुराने साहचर्यों में किस प्रकार समीकरण होता है।

## स्मृति-प्रतिमा ( Memory Images ) :

इस तथ्य पर हमने प्रायः बल दिया है कि मनोवैज्ञानिक यथासंभव यथार्थ-वादी या वस्तुनिष्ठ होने का प्रयत्न करते हैं तथा अपने निर्णयों को यथार्थ प्रेक्षणों पर आधारित करते हैं। इसी हेतु उन्हें 'विचार', 'प्रतिमा' और 'चिंतन'-जैसे संप्रत्ययों पर कुछ संदेह रहता है; क्योंकि इनका प्रत्यक्ष प्रेक्षण संभव नहीं होता। अप्रत्यक्ष प्रमाण से यह प्रश्न ही नहीं हो सकता कि प्रतिमाओं का अस्तित्व है तथा अधिगम एवं चिंतन में उनका महत्त्वपूर्ण योग भी है। यह न केवल साधारण ज्ञान का तथ्य है, वरन् यह पर्याप्त सामग्री द्वारा अनुमोदित भी है।

प्रतिमा-सृष्टि का सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण मूर्तकल्पी प्रतिमा-सृष्टि के प्रयोगों में मिलता है। ऐसे प्रयोगों में अपेक्षाकृत थोड़ी देर के लिए प्रयोग-पात्र के समक्ष एक अति जटिल चित्र अथवा प्रतिमान प्रस्तुत किया जाता है। इसके उपरांत प्रयोग-पात्र से कहा जाता है कि वह उस उद्दीपन की वस्तुओं को यथासंभव सूक्ष्मता से स्मरण करे। व्यक्तियों के स्मरण की परिशुद्धता में भिन्नता होती है। परंतु, कभी-कभी कोई व्यक्ति प्रायः पूर्ण दृश्य को स्मरण कर लेता है; क्योंकि वह ऐसे बिंब को मूर्त करने में समर्थ होता है जो वस्तुतः मूल उद्दीपन का फोटोग्राफिक पुनर्निर्माण मात्र है। ऐसा बिंब 'मूर्तकल्पी' कहलाता है। मूर्तकल्पी प्रतिमा-सृष्टि विरल होती है, किंतु यह बच्चों में वयस्कों की अपेक्षा अधिक सामान्य होती है।

प्रयोगात्मक उदाहरण के लिए चित्र ८.५ को ३५ सेकेंड तक देखिए। आप इसे निर्धारित समय तक देखकर पुनः बंद कर दें। चित्र का ३५ सेकेंड तक निरीक्षण करने से पूर्व आगे कुछ न पढ़ें।

तदंतर, चित्र की ओर बिना देखे, क्या आप उनमें लिखित जर्मन शब्द की बर्तनी कर सकते हैं? एक प्रयोग में जर्मन भाषा से अपरिचित ३० अंगरेज स्कूली बच्चों में से ३ बच्चे क्रम और व्यक्ति-क्रम से बर्तनी कर सके, ७ बच्चे दो भूलों के साथ बर्तनी कर सके। वे एवं अन्य 'मूर्तकल्पी प्रतिमा स्मरणकर्त्ता' स्मरण करने से पूर्व प्रायः एक क्षण के लिए असमंजस में रहते हैं। इस क्षण में वे अपनी प्रतिमाओं का मानसिक स्क्रीन पर प्रक्षेपण करते प्रतीत होते हैं और उसको इस प्रकार देखते एवं पढ़ते हैं, मानो किसी यथार्थ उद्दीपन को देख रहे हों। कुछ प्रयोग-पात्र इतनी परिशुद्धता से पूरे मुद्रित पृष्ठ को स्मरण करते हैं कि कहीं से भी कोई शब्द अथवा पंक्ति, प्रयोगकर्त्ता के निवेदन पर पृष्ठ के भिन्न भागों से पूछने पर वे उसकी यथावत् आवृत्ति कर सकते हैं।

चित्र ८.५ मूर्तकल्पी-सृष्टि चित्र-परीक्षण (जी० डब्लू० आलपोर्ट)

ऐसी आदर्श प्रतिमा-सृष्टि एक विरल योग्यता है। कुछ व्यक्तियों में यह योग्यता बिना उनके इस ज्ञान के भी होती है। कहते हैं, एडीसन में यह योग्यता थी। इसका होना इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि पूर्व अनुभवों के लिए हमारी स्मृति कुछ मात्रा में फोटोग्राफिक प्रक्रिया के सदृश है। ऐसे अनुभव की 'अनुकृति' किसी प्रकार मस्तिष्क में अंकित कर दी जाती है और वहाँ वह सुरक्षित रहती है। बाद में, अनुदेश अथवा इससे संबद्ध किसी उद्दीपन के साहचर्य द्वारा इसे स्मरण किया जा सकता है।

**चाक्षुष चित्रों की पुनराभिव्यक्ति (Reproduction of Visual Figures) :**

बहुधा पूर्व अनुभवों की हमारी स्मृति बहुत सजीव नहीं होती। हम उसकी परिपूर्ण अनुकृति स्मरण नहीं रख पाते। अपितु हम केवल अनुभव के कुछ भागों को स्मरण रखते हैं। अनेक प्रयोगों द्वारा इसका अध्ययन किया गया है कि वह क्या है, जिसे हम स्मरण रखते हैं। ऐसे एक प्रयोग (गिबसन, १९२९) का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :—

> "प्रयोग-पात्रों को कुछ आकृतियाँ कुछ निश्चित समय के लिए देखने का निर्देश किया गया। तदंतर उनकी पुनरभिव्यक्ति के लिए उनसे कहा गया। जिन आकृतियों का उपयोग किया गया था, उनके प्रतिदर्श चित्र ८.६ में प्रयोग-पात्रों द्वारा चित्रित पुनरभिव्यक्त चित्रों के साथ दिए गए हैं। एक भी चित्र परिशुद्ध पुनराभिव्यक्ति नहीं है। प्रत्येक चित्र मूल आकृति का कुछ-न-कुछ विकृत रूप प्रदर्शित करता है। फिर भी प्रत्येक में मूल आकृति के विविध भागों को स्मरण रखा गया है और अन्य सूक्ष्मताओं को विस्मृत किया गया है।"

स्मृति वस्तुओं को परिवर्तित और सरलीकृत कर देती है।
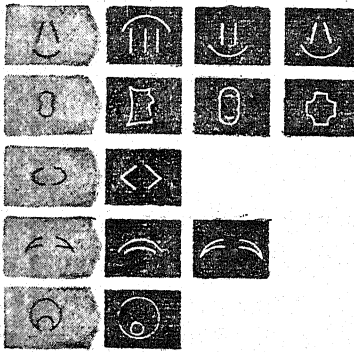
**चित्र ८.६ स्मृति में रूपार्थ परिवर्तन। बाईं ओर के रूप प्रयोग-पात्रों के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे, कुछ समय उपरांत जब इन रूपों को स्मरण करने के लिए उनसे कहा गया, तो उन्होंने जिस रूप में उन्हें प्रकट किया, वे बाईं ओर दिए गए हैं। परिवर्तनों पर ध्यान दें : (गिबसन, १९२९)।**

इस प्रकार के प्रयोगों में यह जानने के लिए कि चित्र की किन विशेषताओं को सरलता से स्मरण रखा जाता है, भिन्न प्रकार के चित्र प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ये चित्र बहुत सरल (त्रिकोण, गोलाकार या चौकोण) अथवा अति परिचित (मुँह या भवन की रूपरेखा) तथा अव्यवस्थित अनियमित रेखाओं से बनी वस्तुएँ या संप्रत्यय भी हो सकते हैं। अंतिम चित्रों को हम 'निरर्थक चित्रों' की संज्ञा देते हैं (द्रष्टव्य चित्र ८.७)। हम आशा कर सकते हैं कि सरल एवं परिचित चित्र सुगमता एवं

परिशुद्धता से स्मरण रखे जा सकते हैं, जब कि निरर्थक चित्रों को स्मरण रखना अति कठिन है।

चित्र और अक्षर भी निरर्थक हो सकते हैं।
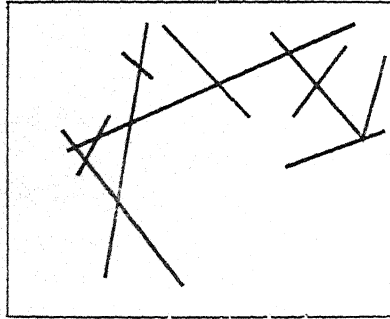
**चित्र ८.७ एक निरर्थक चित्र ( पियरों के अनुसार, १९२० )।**

एक चित्र को स्मरण करने के प्रयत्न में व्यक्ति प्रायः '**अर्थ की खोज का प्रयत्न**' करते हैं (बार्टलेट, १९३२)। वे सर्वप्रथम किसी परिचित वस्तु से उसकी सादृश्यता को खोजने की चेष्टा करते हैं। वस्तुतः यदि वह परिचित होती है, तो वे केवल उसे एक नाम दे देते हैं। यदि वह परिचित न हो, तो वे यदि संभव हो, तो किसी देखी हुई वस्तु के सदृश उसे वे देखने का प्रयत्न करते हैं। बच्चे प्रायः यही करते हैं। वे किसी भी आकृति को 'किसी के चित्र' के रूप में विचारते हैं। यदि वह चित्र किसी परिचित वस्तु या व्यक्ति से कोई साहचर्य उद्दीप्त न करे, तो उस चित्र को 'योजनाबद्ध' करने की संभावना है अर्थात् स्मरणार्थ उसमें कोई क्रम अथवा योजना को देखना। वे ज्यामिति, सममिति, लय अथवा सम भागों को स्मरण रखने की चेष्टा करते हैं।

यहाँ महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अधिगम या स्मरण पूर्व-स्थापित साहचर्यों के आधार पर होता है। स्मृत तथ्य, अन्य साहचर्यों के साथ सारूप्य स्थापित करके अभिलिखित (Recorded) किया जाता है। इसे इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं, कल्पना कीजिए कि मैं एक जटिल रेखा-समूह देखता हूँ, जो मुझे एक मुँह का स्मरण कराता है। यह 'सादृश्यतामूलक साहचर्य' सरल है, मुझे केवल 'मुँह' को स्मरण करना होगा। पहले अनेक साहचर्य मुँहों से, आँखों से, नाक, मुख एवं अन्य अंगों से मुझे थे। जहाँ तक मेरा साहचर्य परिशुद्ध है, मैं उस मुँह को अंकित करके उसका पुनरावर्तन कर सकता हूँ। एक सहज साहचर्य द्वारा जटिल रेखा-समूह को संहत करके एक आकृति का निर्माण करता हूँ। अतः, जिस सीमा तक एक अनुभव अन्य साहचर्यों से संहत हो सकता है, उतनी ही शीघ्रता एवं सरलता से वह स्मरण किया जा सकता है।

दूसरी ओर, जिस सीमा तक कोई अनुभव निरर्थक होगा--पूर्व किसी अनुभवों से जिसकी कोई सादृश्यता न होगी, उसे मूर्तकल्पी प्रतिमा-सृष्टि द्वारा जो विरल है अथवा प्रत्येक सूक्ष्म विन्यास को अत्यंत श्रमपूर्ण निरीक्षण एवं ध्यान-प्रक्रिया द्वारा स्मरण किया जाएगा। उदाहरणार्थ, चित्र ८.७ में बनी निरर्थक आकृति को अधिगम करना अति कठिन है। इसे अधिगम करने में प्राय: उतना ही समय लग जाएगा, जितना २० अंकों की सूची में (पियरों, १९२०)।

'विकास' के अध्याय में हमने ऐसे प्रयोगों का उल्लेख किया है, जिनमें चिंपांजियों का पोषण पारभासिक चश्मों को उनकी आँखों पर लगाकर किया गया था तथा पर्यावरण की वस्तुओं के साहचर्य से उन्हें पृथक् रखा गया था। ज्यामितीय आकारों के सरल अंतर को भी अति कठिनाई से ये चिंपांजी सीख सके थे। हमारे कथन की पुष्टि का इससे एक स्पष्टीकरण और मिलता है। चिंपांजियों के पास वस्तुओं के साहचर्यों का संचित कोष नहीं था, जिससे कि वे इन आकारों को उनसे संबद्ध कर सकते। अत:, उनके लिए ये आकार निरर्थक थे और ऐसे आकारों को, साहचर्य से संबद्ध किए जा सकने वाले आकारों की अपेक्षा पर्याप्त अधिक कठिनाई से स्मरण किया जाता है। यह हमारे सामान्य निष्कर्ष के अनुकूल है कि अधिगम की सुगमता इस पर निर्भर करती है कि कितनी सरलता से हमारे अनुभव पूर्वाधिगत साहचर्यों से संहृत किए जा सकते हैं।

### वाचिक साहचर्य (Verbal Associatior ) :

नि:संदेह मानव-अधिगम का अधिकांश रूप वाचिक या शाब्दिक है। यह शब्दों के मध्य नवीन साहचर्यों के अधिगम से होता है। वास्तव में कालेज में प्रवेश करने से पूर्व उसका अधिकांश शिक्षण शब्दों के माध्यम से ही होता है। यह सीख लेने के उपरांत कि किन शब्दों को वस्तुओं और घटनाओं के लिए व्यवहृत किया जाता है, वह नए ढंग से शब्दों को संबद्ध करके जगत के संबंध में नवीन तथ्य सीखता है। यद्यपि आरेखों, प्रदर्शनों एवं प्रयोगशाला के कार्यों द्वारा अधिगम अनुपूरित किया जाता है, किंतु उसका मुख्य आधार शब्द ही हैं।

वाचिक साहचर्य किस प्रकार निर्मित होते हैं, यह प्रयोगात्मक अध्ययन का विषय रहा है। चाक्षुष आकृतियों के उदाहरण के ही समान शाब्दिक अधिगम में प्रयुक्त सामग्री भी अति अर्थपूर्ण कथाओं से निरर्थक वर्ण समूहों तक विविधतापूर्ण हो सकती है। निरर्थक वर्ण-समूह प्राय: त्रि-अक्षरीय होते हैं, प्रारंभिक और अंतिम अक्षर व्यंजन तथा मध्यम अक्षर स्वर होता है, जैसे Zeb, cor, muv, dib। कभी-कभी ये निरर्थक वर्ण-समूह अथवा शब्द लंबे होते हैं, किंतु उनके निरर्थक होने की संभावना कम हो जाती है, अर्थात् उनसे पूर्व स्थापित कोई साहचर्य नहीं होता।

शाब्दिक अधिगम के प्रयोगों में, प्रयोग-पात्र के समक्ष सामग्री को ऐसे यंत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, जो एक समय में केवल एक शब्द अथवा एक शब्द-युग्म प्रकट करता है ।
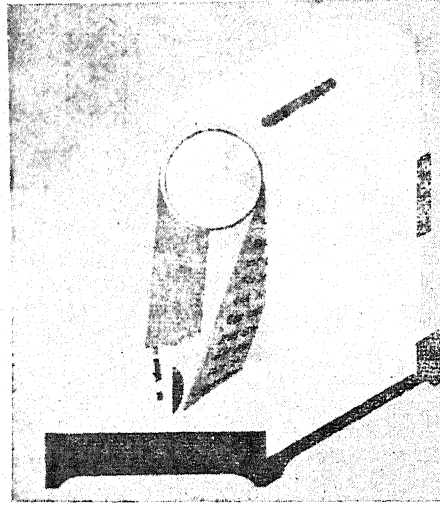
**चित्र ८.८ गरब्रैंड के स्मृति-ड्रम का चित्र, शाब्दिक अधिगम के अध्ययनार्थ एक यंत्र (रॉल्फ गरब्रैंड्स)।**

वाचिक अधिगम के अध्ययन की एक साधारण प्रणाली 'क्रमानुमान' है । अधिगत किए जाने वाले शब्दों या वर्णों की सूची तैयार की गई । तदंतर शब्दों को एक निर्धारित काल, दो सेकेंड के लिए एक-एक करके स्मृति-पट के समक्ष प्रस्तुत किया । (द्रष्टव्य : चित्र ८.८ ) । प्रथम बार जब प्रयोग-पात्र के समक्ष सूची प्रस्तुत की, तो वह एक भी शब्द पूर्ण शुद्ध नहीं बता सका; क्योंकि उस सूची को उसने पहले कभी नहीं देखा था । दूसरी बार प्रारंभ करते समय प्रयोग-पात्र से कहा गया कि जो वर्ण वह देख रहा है, उसके अनुवर्त्ती वर्ण का वह अनुमान करे । यदि सूची में Zeb., cor., muv, dib etc. शब्द हैं, तो उसे Zeb दिखाया जाएगा और आशा की जाएगी कि आगे वह Cor कहेगा । थोड़ी देर बाद Cor समक्ष आएगा और प्रयोग-पात्र को बताया जाएगा कि उसका अनुमान परिशुद्ध था अथवा नहीं, साथ ही उसे Muv का अनुमान करने का संकेत भी दिया जाएगा । इसी प्रकार यह आगे बढ़ता रहेगा । यह प्रणाली अथवा इससे कुछ भिन्न प्रणाली शब्द-परक साहचर्यों के रूपों की संख्या के अध्ययनार्थ प्रयोग की गई है ।

**अर्थपूर्णता (Meaningfulness ) :**

कितनी सुगमता से शब्दों अथवा वर्ण-समूहों की सूची को अधिगत किया है, यह उनकी अर्थपूर्णता पर आधारित है । निम्नांकित प्रयोग में इसे स्पष्ट किया है ( नोबल १९५२ ) :

"द्विवर्णीय शब्दों की एक सूची बनायी गई। उसमें कुछ साधारण सार्थक अंगरेजी शब्द थे और अन्य शब्द निरर्थक थे। ६० सेकेंड की अवधि में प्रयोग-पात्रों में एक समूह द्वारा प्रत्येक शब्द को दिए गए साहचर्यों की औसत संख्या गिन कर प्रत्येक शब्द के लिए 'अर्थ' का अभिसूचक तैयार किया गया। अभि-सूचकांकों में निरर्थक शब्द gojey के लिए ०.९९ से सार्थक शब्द Kitchen के लिए ९.६१ तक का अंतर था। प्रयोग के इस स्थल पर संयोगवश यह प्रकट हुआ कि कुछ अंगरेजी शब्दों के सूचकांक निरर्थक शब्दों की अपेक्षा भी कम थे। जैसे निरर्थक शब्द rompin के सूचकांक, वास्तविक किंतु, विरल अंगरेजी शब्दों icon, matrix एवं bodkin की अपेक्षा अधिक थे। इन सूचकों के आधार पर शब्दों की दो सूचियाँ तैयार की गई। एक सूची का औसत अर्थसूचक १.२८ और दूसरी का ७·८५ था। तदंतर उक्तोल्लिखित क्रमानुमान-पद्धति के आधार पर प्रयोग-पात्रों की दोनों सूचियों की अधिगम गति की तुलना की। निम्नार्थक-सूचक-सूची में उच्चार्थक सूचक-सूची की अपेक्षा प्रायः तिगुने अधिक प्रयोग हुए।"

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन दोनों सूचियों के सब शब्द द्विवर्णी थे और दोनों में शब्द-संख्या समान थी। दोनों में एक मात्र अंतर अर्थवत्ता का था। अधिगमार्थ केवल इतना ही अपेक्षित था कि प्रत्येक शब्द का क्रमागत अनुवर्ती शब्द के साथ साहचर्य स्थापित किया जाए। फिर भी 'अर्थवत्ता' ने एक सूची का अधिगम अति सुगम बना दिया और दूसरी का अपेक्षाकृत कठिन। पुनः हम देखते हैं कि अधिगम की सुगमता पूर्व-स्थापित साहचर्यों से साहचर्य स्थापित करने पर आधारित है।

## दूरस्थ साहचर्य ( Remote Associations ) :

जब क्रमानुमान-पद्धति द्वारा शब्दों की एक सूची अधिगत की जाती है, तो प्रत्येक दो निकटस्थ शब्दों के मध्य साहचर्य स्थापित हो जाता है। अध्ययन का यह एक रोचक विषय रहा है कि अन्य दूरस्थ साहचर्य भी स्थापित होते हैं, जैसा कि निम्नांकित उदाहरण से स्पष्ट है (मैकगियोच, १९३६)।

"प्रयोगकर्त्ता ने अपने प्रयोग-पात्रों को क्रमानुमान-पद्धति से निरर्थक शब्द सिखाए। उसी सूची को पूर्णतः अधिगत करने से पूर्व अधिगम-प्रक्रिया को बंद कर दिया। तब उसने उन्हें मुक्त-साहचर्य परीक्षण दिया, जिसमें उसने उन्हें निरर्थक शब्दों को दिया, किंतु उनका क्रम अव्यवस्थित कर दिया था। प्रशिक्षण-काल में जिस क्रम में ये शब्द उन्हें दिए गए थे, उससे यह क्रम भिन्न था। प्रत्येक वर्ण के प्रस्तुत करने के साथ उसने कहा कि उसे देखते ही जो प्रथम वर्ण प्रयोग-पात्र के मन में आए, वह बताएँ। इस प्रयोग से

एकत्रित परिणामों को चित्र ८·९ में प्रदर्शित किया गया है। निःसंदेह अनेक साहचर्य शुद्ध थे। कुछ में एक या दो वर्णों का अंतर था। कुछ में इस अंतर की मात्रा अधिक एवं भिन्न-भिन्न थी। इस चित्र का बक्र पर्याप्त सहज है। यह प्रदर्शित करता है कि दूरस्थ साहचर्य दो वर्णों में, सूची में दूर-दूर होने पर भी निर्मित होता है तथा यह दूरस्थ साहचर्य दूरी के कारण दुर्बल होता है।"

सही बातों के साथ मिथ्या स्मृतियों के निकट संबद्ध होने की संभावना रहती है।
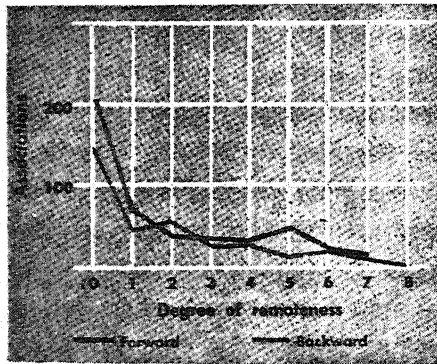
**चित्र ८.९ वाचिक अधिगम में दूरस्थ साहचर्य। अर्थहीन शब्दों की शृंखला का आंशिक रूप से अधिगम कर लेने पर प्रयोग-पात्रों से कहीं से भी यादृच्छिक शब्द देकर कहा गया कि वे उस शब्द के आगे के शब्द को बताएँ। उनके साहचर्य गलत होने पर उन्होंने जो शब्द बताए, वे सही शब्दों से अधिक दूर न होकर केवल एक या दो कदम दूर थे ( मैकगियोच के अनुसार, १९३६ )।**

यह तथ्य ऐसे प्रसंग को स्पष्ट करता है, जिसका दीर्घकाल से निरर्थक वर्ण-समूहों की सूचियों के अधिगम में उल्लेख होता रहा है——स्थिति-क्रम प्रभाव, इसे चित्र ८.१० में दिखाया गया है। इस चित्र में यह स्पष्ट किया गया है कि सूची की अधिगम-प्रक्रिया में सूची का प्रारंभिक भाग सुगमता से सीखा जाता है। इससे कुछ कम सरलता से अंतिम भाग और मध्य भाग सबसे कम—वास्तव में मध्य से किंचित आगे का भाग सबसे कठिन होता है। इस सामान्य आकार का वक्र नियमित रूप से क्रमानुमान-पद्धति द्वारा सूचियों के अधिगम प्रसंग में पाया जाता है। यह नियम निरर्थक तथा नामों जैसे अधिक परिचित शब्दों, दोनों के लिए उपयुक्त होता है (मेकक्रेरी और हंटर, १९५३)।

यह समझने के लिए कि दूरस्थ साहचर्यों एवं स्थिति-क्रम प्रभाव में क्या संबंध है, यह जान लेना आवश्यक है कि दूरस्थ साहचर्य मिथ्या साहचर्य होते हैं।

यदि एक शब्द की प्रवृत्ति अनुवर्त्ती शब्दों की अपेक्षा एक या दो के अंतर पर स्थित शब्दों को स्मरण करने की है, तो ये साहचर्य शुद्ध (सत्य) साहचर्य में बाधक हैं। किंतु, सूची के मध्य शब्दों की अपेक्षा सूची के प्रारंभिक शब्दों के सामने अपेक्षाकृत कम शब्द होते हैं और सूची के अंतिम शब्दों के पीछे भी अपेक्षाकृत कम शब्द होते हैं। इस प्रकार, हम आशा करते हैं कि सूची के अंतिम शब्दों में शुद्ध साहचर्य में अवरोध उत्पन्न करने वाले दूरस्थ साहचर्य मध्य शब्दों की अपेक्षा कम होंगे। अतः, स्थिति-क्रम प्रभाव दूरस्थ साहचर्यों से उत्पन्न बाधाओं द्वारा पर्याप्त स्पष्ट होता है।

यह तथ्य कालेज में अधिगम की समस्याओं के संबंध में कम शैक्षणिक प्रतीत होता है तथा अधिक उचित भी नहीं जान पड़ता। वस्तुतः यह ठीक नहीं है। कविता, भाषण या गाना सीखने में कोई व्यक्ति तत्परता प्रकट कर सकता है अथवा सबसे आगे निकल सकता है। यह जो कुछ वह सीखता है, उसमें स्थापित दूरस्थ साहचर्य का परिणाम है। दूरस्थ साहचर्य इस तथ्य को भी स्पष्ट करता है कि बहुधा व्यक्ति मध्य भाग की अपेक्षा प्रारंभिक एवं अंतिम भागों को सरलता से अधिगत करता है। इसलिए व्यक्ति को मध्य भाग को सीखने के लिए अधिक कठिन परिश्रम के लिए तत्पर रहना चाहिए और इस कठिनाई की संपूर्ति के हेतु मध्य भाग को अतिरिक्त अभ्यास देना समीचीन होगा।

## किसी श्रृंखला में मध्यवर्त्ती शब्दों को सीखना कठिनतम होता है।
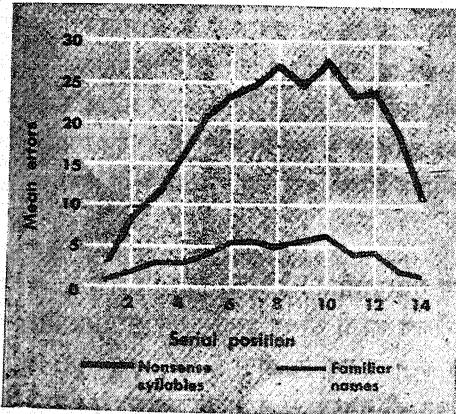
**चित्र ८.१० क्रमबद्ध स्थिति का प्रभाव। सूची में शब्दों या अक्षरों की स्थिति के अनुसार उन्हें स्मरण करने में भिन्नता रहती है (मेक्क्रेरी और हंटर १९५३)।**

## सांख्यिकीय पराश्रयता ( Statistical Dependencies ) :

यदि हम यह जान लें कि वस्तुतः हमारी संपूर्ण भाषा सूची क्रमबद्ध शब्द ही हैं, तो हमें शब्दों की सूचियों अथवा निरर्थक वर्णों का अधिगम भी इतना अव्यावहारिक

नहीं प्रतीत होगा । वास्तव में वाक्य यही है । भाषा के प्रयोग में हम निरंतर पूर्ववर्त्ती अथवा परवर्त्ती शब्दों में साहचर्य स्थापित करते रहते हैं । इस प्रकार से संवद्ध साहचर्य शब्दों को आनुपूर्व्य-अर्थ (Sequential meaning) प्रदान करता है । आनुपूर्व्य अर्थ भाषा के सांख्यिकीय स्वरूप में निहित रहता है । इस तथ्य से भी यह प्रकट होता है कि जीवनपर्यन्त हम यह सीखते हैं कि कुछ निश्चित शब्द कुछ अन्य निश्चित शब्दों का अनुवर्तन अधिक करते हैं ।

उदाहरणार्थ, हम शब्दों के क्रम को 'वृद्ध भूरा भालू—' के पश्चात 'दौड़ा', 'चढ़ा' 'गुर्राया', अनुमान कर सकते हैं। किंतु, 'उड़नतश्तरी' 'फोटोग्राफ' या 'गुलाबी रंग' नहीं । इससे केवल यह स्पष्ट होता है कि हम शब्दों के मध्य पराश्रित संभावनाओं में विभेदन करना सीखते हैं । हम सीखते हैं कि कुछ शब्दों में अन्य कुछ शब्दों का अनुवर्तन करने की अधिक संभावना होती है । ऐसी पराश्रित संभावनाएँ अंग्रेजी भाषा सांख्यिकीय संरचना है तथा इस तथ्य को भी स्पष्ट करती है कि हम अर्थपूर्ण अंग्रेजी को निरर्थक अंग्रेजी की अपेक्षा अधिक सुगमता से क्यों सीख लेते हैं । नौवें अध्याय में हम अधिक विस्तार से भाषा के सांख्यिकीय घटक पर विचार करेंगे ।

## प्रशिक्षण का अंतरण (Transfer of Training) :

अधिगम के समस्त मनोविज्ञान में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण समस्याओं में एक है—प्रशिक्षण का अंतरण । यह तथ्य कि हम शैक्षणिक अध्ययन के कार्यक्रम में व्यस्त हैं, प्रशिक्षण के अंतरण में समाज के अंतर्भूत विश्वास को अभिव्यक्त करता है । स्कूल की औपचारिक शिक्षा से हम जो कुछ भी सीखते हैं, उसका मुख्य महत्त्व उसके शैक्षणिक क्षेत्र के बाहर किए गए प्रयोग में है; क्योंकि हमारा अधिक समय कक्षा के बाहर की वस्तुओं के औपचारिक अधिगम में व्यतीत होना है । यह प्रमाणित करता है कि प्रशिक्षण का अंतरण अधिगम की व्यावहारिक समस्याओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है ।

अंतरण की कुछ विशेष समस्याओं को देखने से पूर्व प्रशिक्षण के अंतरण के पीछे जो सिद्धांत हैं, उनका परीक्षण करना उचित होगा । एक सामान्य सिद्धांत अनेक बिखरे हुए तथ्यों को समन्वित करने में सहायक होता है और यह पुनः हमें औपचारिक ज्ञान को दैनिक जीवन की समस्याओं में व्यवहृत करने में हमारी सहायता करता है । जैसे ही आप प्रशिक्षण के अंतरण के सिद्धांत के विषय में पढ़ते हैं, आप इस पर भी विचार कर सकते हैं कि इसका प्रयोग किन रूपों में वास्तविक समस्याओं में हो सकता है ।

## अंतरण के सिद्धांत :

प्रशिक्षण के अंतरण के मूलतः दो भिन्न परिणाम होते हैं और उन्हें स्पष्ट रूप में समझना आवश्यक है। मान लीजिए कि मनोविज्ञान की प्रारंभिक कक्षा में अपने विद्यार्थियों का ध्यान आकर्षित करने के लिए मैंने सीख लिया है, कि लगभग प्रत्येक दस मिनट के उपरांत में कोई रोचक बात सुनाऊँ। यह ढंग मुझे उपयुक्त प्रतीत हुआ और मैं इसका प्रयोग व्यावहारिक मनोविज्ञान की कक्षा में भी करता हूँ और वहाँ भी इसका वांछित प्रभाव होता है। यह विध्यात्मक अंतरण का एक उदाहरण है। मैंने जो एक स्थिति के लिए सीखा. उसका उपयोग दूसरी स्थिति में भी समान रूप से हुआ।

मान लीजिए, मैं इसका प्रयोग कुछ और आगे बढ़ाता हूँ और इस प्रविधि का विभागीय सभा में दिए गए अपने भाषण में प्रयोग करता हूँ। यहाँ मैं अनुभव करता हूँ कि मेरे मनोरंजक प्रसंग प्रभावहीन और अवांछित सिद्ध हुए। मेरी प्रविधि पूर्णतः असफल रही। यह निषेधात्मक अंतरण का उदाहरण है। एक स्थिति में जो प्रविधि उपयोगी सिद्ध हुई, दूसरी में असफल रही।

अतः, विध्यात्मक अंतरण वहाँ घटित होता है. जहाँ कुछ पूर्वाधिगत ज्ञान नवीन स्थितियों के लिए या नवीन क्रियाओं के लिए लाभदायक सिद्ध होता है। इसी प्रकार निषेधात्मक अंतरण वहाँ होता है, जहाँ कुछ पूर्वाधिगत ज्ञान नवीन त्रियाओं या स्थितियों के लिए बाधक प्रमाणित होता है।

## उद्दीपन सादृश्यता ( Similarity of Stimuli ) :

उद्दीपनों में सादृश्यता की वृद्धि के साथ विध्यात्मक अंतरण भी बढ़ता है। दो स्थितियों में उद्दीपन जितने अधिक समरूप होंगे, एक से दूसरे पर उतना ही अधिक विध्यात्मक अंतरण होगा। अन्य शब्दों में यह वही तथ्य है, जिसे अध्याय ७ में 'उद्दीपन सामान्यीकरण' प्रसंग के अंतर्गत स्पष्ट किया गया है। उस प्रसंग में, आप स्मरण करेंगे, एक GSR एक विशेष स्वराघात की तान के लिए अनुबंधित था और वह उसी प्रकार की अन्य तानों के लिए भी कुछ कम मात्रा में उद्दीप्त हुआ था। ऐसा उद्दीपन-सामान्यीकरण विध्यात्मक-अंतरण का उदाहरण है। दो अन्य सुपरिचित उदाहरण देखिए। जब व्यक्ति एक विशेष प्रकार और मॉडल की मोटरगाड़ी चलाना सीख लेता है, प्रायः उसे दूसरी मोटरगाड़ी पर अंतरण करने में विशेष कठिनाई नहीं होती। नए डैश बोर्ड पर यंत्र कुछ नए ढंग से रखे जा सकते हैं, विंडशील्ड (वातरक्षक) कुछ अधिक ऊँची या बड़ी हो सकती है और दोनों मोटरगाड़ियों के अन्य उपकरणों में भिन्नता हो सकती है। सामान्यतः दोनों मोटरगाड़ियों द्वारा

प्रस्तुत उद्दीपन-स्थितियाँ समान हैं, अतः, अंतरण सफल होता है। भाषा-अधिगम में यदि किसी व्यक्ति ने ग्रीक का अध्ययन किया हो, तो वह लैटिन शीघ्रता से सीख लेगा। यदि उसने लैटिन का अध्ययन किया हो, तो फ्रेंच भाषा का अधिगम उसके लिए सरल हो जाता है। इतालवी और स्पेनिश भाषाओं को सीखने में भी लैटिन से सहायता मिलती है। प्रत्येक स्थिति में दो भाषाओं में अनेक समानताएँ हैं एवं समान उद्दीपन-स्थितियाँ प्रशिक्षण का विध्यात्मक अंतरण उपस्थित कर सकेंगी।

अनुक्रिया सादृश्यता ( Similarity of Responses ) :

उसी सिद्धांत का प्रयोग उन उदाहरणों में भी होता है, जहाँ अनुक्रियाओं की सादृश्यता होती है। यहाँ दो अनुक्रियाओं के इतना अधिक असमान होने की भी संभावना है कि वे एक दूसरे के विपरीत अथवा लगभग बिपरीत प्रतीत हों। उस स्थिति में परिणाम निषेधात्मक अंतरण होगा।

पुनः दो मोटरगाड़ियों के चलाने का उदाहरण लीजिए। विध्यात्मक अंतरण एक से दूसरी मोटर पर केवल उद्दीपन स्थितियों की सादृश्यता के ही कारण घटित नहीं होता, वरन् इसलिए भी कि सदृश अनुक्रियाएँ भी अपेक्षित होती हैं। दोनों उदाहरणों में, व्यक्ति अपने दाहिने पैर का, गाड़ी के ब्रेक पर, प्रयोग करता है, और क्लच चलाने के लिए, यदि क्लच बाएँ पैर का प्रयोग करता है। दूसरा उदाहरण लीजिए, यदि किसी व्यक्ति ने टेनिस का खेल खेलना सीखा है, तो वह पिंग पोंग या बैडमिंटन को सीखने में सुगमता अनुभव करता है; क्योंकि इन तीनों खेलों में समान अनुक्रियाएँ एवं चेष्टाएँ निहित हैं।

अब हम ऐसे उदाहरणों पर विचार करेंगे, जिनमें दो स्थितियों में विरोधी अनुक्रियाएँ अपेक्षित होती हैं और परिणाम निषेधात्मक अंतरण होता है। यदि किसी को स्टैंड ( गाड़ी ) चलाने का अभ्यास है और वह वायुयान सीखने का प्रयास करता है, उसे प्रारंभ में कठिनाई होगी; क्योंकि दाहिने पैर से दबाने पर गाड़ी दाहिनी ओर घूमती है और हवाई जहाज बायीं ओर। कई व्यक्तियों को बाहरी मशीन से गाड़ी चलाने में कठिनाई होती है; क्योंकि इसमें यह आवश्यक है कि मशीन को दाहिनी ओर घुमाने के लिए, छड़ी को बाईं ओर घुमाए और यह अस्वाभाविक प्रतीत होता है।

यदि एक विमानचालक ने दीर्घकाल तक एक विशेष प्रकार के वायुयान को चलाया हो और उसके बाद वह भिन्न प्रकार का वायुयान चलाता है, तो वायुयानों में निषेधात्मक अंतरण जीवन-मृत्यु का कारण बन सकता है। नवीन वायुयान में अपने अभ्यास के पूर्णतः विपरीत क्रियाएँ उसे करनी पड़ सकती हैं। वायुयान की दुर्घटनाएँ प्रायः इसी प्रकार घटित होती हैं (चैपनिस एट० एल०, १९४९)। एक बार

एक विमानचालक पृथ्वी पर उतरने के उपक्रम में पर्याप्त नीचे वायुयान को उड़ा रहा था। अपनी उतार को ठीक करने के लिए, उसने थ्राटल को पीछे घुमाया और छड़ को सामने। यह क्रिया, जो उसे करनी चाहिए था, उसके बिलकुल विपरीत थी, और इसके फलस्वरूप वायुयान का अगला भाग पृथ्वी में घुस गया। बाद में चालक ने इसका कारण बताया—वह बहुत भाग्यशाली था कि इसे सुनाने के लिए जीवित बच गया था—कि वह ऐसे यानों को चलाने का अभ्यस्त था, जिनमें उसे थ्राटल को दाहिने और छड़ को बाएँ हाथ से संचालित करना पड़ता था। इस विमान में स्थिति भिन्न थी। इसमें थ्राटल को बाएँ और छड़ को दाएँ हाथ से सँभालना पड़ता था। किंतु, आपत्ति में पुरानी आदत के अनुसार कार्य हुआ और लगभग प्राणघातक परिणाम के साथ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उद्दीपन और अनुक्रियाओं की सादृश्यता के फलस्वरूप विध्यात्मक अंतरण होता है। अनुक्रियाओं की विषमता, जिसमें विरोधी या प्रतियोगी अनुक्रियाएँ अपेक्षित हैं, निषेधात्मक अंतरण का हेतु हैं। वस्तुतः सुसंस्कृत समाज के समस्त अधिगम में अंतरण निहित होता है तथा यह अंतरण संहति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, इसका उल्लेख हम पिछले परिच्छेद में कर चुके हैं। विविध रूपों में अभिव्यक्त यही एक कारण है कि क्यों अर्थपूर्ण शब्दों को क्रमानुमान-पद्धति से सीखना निरर्थक शब्दों को सीखने की अपेक्षा अधिक सुगम है। सादृश्यता वह हेतु है जिसके कारण हम आकृतियों को जैसे मुँह, जिसे नाम दिया जा सकता है या जिसे अंकित किया जा सकता है, सरलता से स्मरण कर सकते हैं। प्रत्येक स्थिति में पूर्व-स्थापित साहचर्यों से नवीन साहचर्य स्थापित होते हैं और यही अंतरण है। एक निषेधात्मक अंतरण में सदृश संहति होती है और बिना किसी प्रयोजन के ही वह घटित होती है। यह व्यतिकारी साहचर्य निर्मित करता है, जिसका निवारण अग्रसर अधिगम को किसी प्रकार करना चाहिए।

## औपचारिक शिक्षा में प्रशिक्षण का अंतरण :

हमारी औपचारिक शिक्षा का संपूर्ण कार्यक्रम यह स्वीकार करता है कि जो कुछ हम स्कूल में अधिगत करते हैं तथा जो कुछ हमारे दैनिक जीवन में अपेक्षित होता है, दोनों में कुछ निश्चित मात्रा में विध्यात्मक अंतरण होता है। इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं है कि प्रशिक्षण के अंतरण के मनोवैज्ञानिक अध्ययन का प्रचुर हमारे सामयिक शिक्षा-आदर्शों पर रहा है।

एक समय ऐसी धारणा पर्याप्त प्रचलित थी कि केवल कुछ सीमित मानसिक शक्तियों को प्रशिक्षित करने की ही आवश्यकता रहती है और उनके एक बार प्रशिक्षित हो जाने पर उनका उपयोग विभिन्न स्थितियों में किया जा सकता है।

अत:, स्कूल के विद्यार्थी ग्रीक, लैटिन, यूक्लिड एवं अरस्तू का अध्ययन उनके महत्त्वपूर्ण मूल्यों के कारण इतना नही करते थे, जितना कि वे समझते थे कि उनसे मस्तिष्क प्रशिक्षित होता है। किसी समय यह भी प्रचलित विश्वास था कि स्कूल के बच्चों को गणित और बर्तनी में स्वच्छ रहना सिखा देने पर ही वे वेशभूषा और अपनी वस्तुओं को स्वेच्छ रखना सीख लेते हैं। इस सामान्य धारणा को अंतरण का 'मानसिक-शक्ति-सिद्धांत' अथवा कभी-कभी अंतरण का 'औपचारिक अनुशासन-सिद्धांत' कहा जाता है।

मुख्यत: प्रशिक्षण के अंतरण-संबंधी प्रयोगात्मक अध्ययन के कारण आज यह सिद्धांत पूर्णत: त्याग दिया गया है। कुछ वर्ष पूर्व शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने (स्ट्राउड, १९४० ) लैटिन व्याकरण के अंगरेजी व्याकरण पर, यूक्लिडीन-ज्यामिति के तर्क की समस्याओं के समाधान की योग्यता पर एवं शास्त्रीय भौतिकी के दैनिक जीवन की यांत्रिक समस्याओं को सुलझाने की योग्यता पर, अंतरण का अध्ययन किया। परिणाम प्राय: असंतोषजनक थे। लगभग प्रत्येक स्थिति में कुछ विध्यात्मक अंतरण तो था, किंतु वह निराशापूर्ण एवं नगण्य था। शिक्षाविदों ने क्रमश: इस धारणा को छोड़ दिया कि केवल किसी एक शक्ति अथवा सामान्य स्वभाव (आदत) के अभ्यास द्वारा कोई योग्यता प्रदान की जा सकती है।

आज शिक्षाविद् 'मानसिक अनुशासन' पर बल न देकर इस पर सर्वाधिक ध्यान देते हैं कि किस प्रकार स्कूली विषयों का अधिकतम विध्यात्मक अंतरण दैनिक जीवन के कार्यों पर हो सकता है। इसे उपलब्ध करने की प्रविधि का एक रूप यह है कि स्कूल की समस्याओं को यथासंभव यथार्थ बनाया जाए। फलत: आधुनिक गणित की पुस्तक में प्रश्न को इस रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास रहता है कि बच्चे के जीवन के वास्तविक अनुभवों से वह संबंधित हो।

उच्च शिक्षा-स्तरों में विध्यात्मक अंतरण का सर्वाधिक विकास जिज्ञासु पर यह स्पष्ट करके हो सकता है कि वह जो कुछ सीख रहा है, वह अन्य स्थितियों पर अंतरित किया जा सकेगा। इस सिद्धांत से औपचारिक अनुशासन के अनुयायियों को अवगत करके विशेष महत्त्वपूर्ण पुराने विषयों को भी उपयोगी बनाया जा सकता है। यूक्लिडियन ज्यामिति का अध्ययन तार्किक योग्यता के विकास में सहायक हो सकता है, यदि उसका शिक्षक निपुण एवं धैर्यवान है तथा इस योग्य है कि वह बता सके कि औपचारिक विषय से दैनिक जीवन के चिंतन पर क्या अंतरित किया जा सकता है।

पुन: हम आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं कि अंतरण की व्यावहारिक समस्या पूर्व-स्थापित साहचर्यों की संहति की है। गणित-शिक्षण में हम

में हम बच्चे के अनुभव के रूपों में सर्वाधिक अंतरण सिखा सकते हैं, केवल इसलिए कि इस ढंग से हम शीघ्रता से बच्चे के पूर्व-अधिगत अंकों, पैसों, घड़ियों इत्यादि से गणित के नए अनुभवों को संबद्ध कर सकते हैं। परिचित उदाहरणों को इस ग्रंथ में हमारा बार-बार प्रयोग करना वैसी ही शिक्षण-पद्धति है, जो नए साहचर्यों के अधिगम की गति को तीव्र करने के लिए विद्यार्थी के पूर्व-ज्ञान से संबद्ध करने में प्रयोग की जाती है।

## धारण ( Retention ) :

अधिगम का अध्ययन करने वालों के लिए अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक है—धारण जितना हम सीखते हैं, उसमें से हम कितना धारण करते हैं? हम विस्मृत क्यों करते हैं? कुछ सामान्य बातों को स्मरण रखने में हम कठिनाई क्यों अनुभव करते हैं? वह क्या है, जो स्मरण में विकृतियाँ उत्पन्न करता है और जिन्हें प्रत्येक व्यक्ति अनुभव करता है? ये सब बुनियादी प्रश्न हैं और अगले कुछ पृष्ठों में हम इनके कुछ उत्तरों पर विचार करेंगे। 'अध्ययन की प्रविधियों' के संदर्भ में धारण-शक्ति को विकसित करने के व्यावहारिक सुझाव दिए गए हैं।

विस्मरण और धारण एक ही सिक्के के दो भिन्न पहलू हैं। हमने क्या विस्मृत किया है, वह केवल हमने क्या सीखा और क्या धारण किया के मध्य का अंतर है। हमने जो धारण किया है, उसका सीधा परिमापन भी हो सकता है। परंतु, कभी-कभी हम 'धारण' की अपेक्षा 'विस्मरण' पर बल देते हैं।

## धारण-परिमापन (Measuring Retention) :

धारण-परिमापन के अनेक प्रकार हैं। यहाँ हम तीन का वर्णन करेंगे—१. पुनःस्मरण, २. प्रत्यभिज्ञान और ३. बचत।

'पुनःस्मरणात्मक प्रणाली' शाब्दिक सामग्री, जैसे एक कविता अथवा पाठ्य-पुस्तक का कोई परिच्छेद, के धारण के अध्ययनार्थ विशेष उपयोगी है। पुनःस्मरण के लिए प्रयोग-पात्र को अत्यल्प संकेतों द्वारा, जो उसने अतीत में अधिगत किया है, उसे प्रत्युत्पन्न करना चाहिए। जिन भिन्न प्रणालियों का हम वर्णन करेंगे, उनमें पुनः-स्मरणात्मक प्रणाली परिमापन योग्य धारण की अत्यल्प मात्रा प्रस्तुत करती है; क्योंकि किसी 'नीरस' वस्तु को, पुनर्धिगम अथवा अभिज्ञान की अपेक्षा, पुनःस्मरण करना सदैव कठिन होता है। निबंध-परीक्षा धारण-मापन की पुनःस्मरण प्रणाली का उदाहरण है।

द्वितीय प्रणाली, प्रत्यभिज्ञानात्मक प्रणाली का प्रयोग प्रायः झूठ और सत्य अनेकमुखी निर्णय या ऐसे ही अन्य प्रश्नों के वस्तुपरक निर्धारण में होता है। धारण

की परिमापित मात्रा संयोग के कारक से बढ़ जाती है और इसीलिए प्रत्यभिज्ञानात्मक प्रणाली प्रयोगात्मक प्रयोजनों के लिए सबसे कम उपयोगी है।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा धारण के प्रयोगात्मक अध्ययन में बहु-व्यवहृत बचत-प्रणाली है। इस प्रणाली में व्यक्ति उस कार्य को पुनः सीखता है, जिसे उसने कुछ काल पूर्व सीखा था। प्रथम अधिगम तथा द्वितीय अधिगम का कालांतर अथवा प्रयोगांतर ही धारण का परिमापन है—प्रथम अधिगम से बचत है। उदाहरणार्थ, मान लीजिए कि एक कविता को स्मरण करने के लिए मैंने २० बार आवृत्ति की। एक माह उपरांत उसी कविता को पुनःस्मरण करने के लिए मैंने १० बार आवृत्ति की। अतः, मैंने ५० प्रतिशत बचत की। अति संवेदनशील होना इस प्रणाली का गुण है एवं यह विश्वसनीय भी है। इसके अतिरिक्त यह निषेधात्मक मूल्यों को भी प्रदर्शित कर सकती है। उदाहरणतः, मान लीजिए कि कुछ कारणों से मैंने उसी कविता को दूसरी बार ३० आवृत्तियों में सीखा, इससे ५० प्रतिशत निषेधात्मक बचत प्रकट होती है।

धारण-परिमापन की प्रमुख पद्धतियों के संक्षिप्त वर्णन से अब हम धारण पर किए गए अनुसंधान के परिणामों का परीक्षण कर सकते हैं।

### धारण की मात्रा ( Amount of Retention ) :

हमारे अधिगम का कितना भाग कुछ काल के उपरांत हमारे साथ रहता है? इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रथम प्रयास जर्मन मनोवैज्ञानिक एब्बिनगॉस (Ebbinghaus) ने किया। शाब्दिक अधिगम की अनेक समस्याओं पर एब्बिनगॉस ने प्रयोग किए, उसने ये प्रयोग सदा अपने पर ही किए। उसके प्रयोगों के परिणाम १८८५ में—'Uberdas Gedachtnis' अथवा 'स्मृति के संबंध में'—नामक एक निबंध में प्रकाशित हुए।

> "एब्बिनगॉस ने निरर्थक शब्दावली जैसे Zeb, bep, cex, reb को स्मरण किया। उसने विविध अवसरों पर आधे घंटे से एक माह तक के कालांतरों का विश्राम लिया और पुनः उस शब्दावली को स्मरण किया। इस प्रणाली से भिन्न विरामकालों में मूल और परवर्त्ती अधिगमों की बचत का वह परिमापन कर सका।
>
> एब्बिनगॉस के परिणाम चित्र ८.११ में प्रदर्शित हैं। लघु विरामकालों में बचत की मात्रा अधिक रही, परंतु मूल अधिगम के उपरांत प्रथम दिन उसमें तीव्र ह्रास हुआ। तदनंतर ह्रास की मात्रा पर्याप्त कम रही।"

यह निषेधात्मक त्वरित वक्र है, जिसका अर्थ है कि यह अंत की अपेक्षा प्रारंभ में अधिक त्वरागति से परिवर्तित होता है। धारण का ऐसा निषेधात्मक त्वरित वक्र वैधानिक है, व्यवहारतः सब धारण वक्रों का यही रूप होता है।

अनेक अनुसंधानतर्काओं ने 'अर्थपूर्ण सामग्री' की तुलना 'निरर्थक सामग्री' से की है (किंग्सले और गैरी, १९५७)। उदाहरणार्थ, शिक्षा-मनोवैज्ञानिकों ने औपचारिक शिक्षा से कुछ काल के विश्राम के उपरांत स्कूल में अधिगत सामग्री को स्मरण रखने की विद्यार्थियों की योग्यता का अध्ययन किया। इसका परिणाम सामान्यतः चित्र ८.११ के निषेधात्मक त्वरित वक्र के ही सदृश रहा। सामान्यतः वक्र इतनी त्वरागति से अथवा इतनी दूरी पर कहीं नीचे नहीं आता, जितना निरर्थक वर्णों में आता है, जिसका अर्थ है कि अर्थपूर्ण सामग्री के धारण की अधिक संभावना रहती है। ऐसे प्रयोग इस तथ्य को पर्याप्त स्पष्ट करते हैं कि सरल, पर पृथक्-पृथक् तथ्यों को स्मरण रखना अपेक्षाकृत कठिन है तथा अर्थपूर्ण सामग्री अथवा सरल विचारों से युक्त सामग्री को स्मरण रखना अपेक्षाकृत सहज है।

अधिगम के तुरंत बाद अधिकतम मात्रा में विस्मरण होता है।
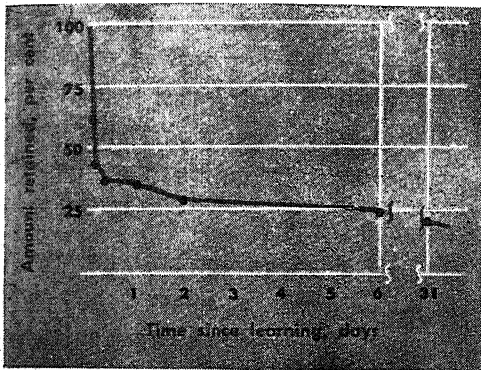
**चित्र ८.११ एबिंगहॉस के प्रारंभिक प्रयोगों से उपलब्ध विस्मरण का प्रतिष्ठित वक्र।**

अधिगम की सरलता-संबंधी हमारी पूर्व-धारणाओं का भी यह तथ्य समर्थन करता है। हम देख चुके हैं कि निरर्थक की अपेक्षा अर्थपूर्ण तथ्य को स्मरण करना कहीं अधिक सरल है। वस्तुतः एक का ही परिणाम दूसरा है, हम निरर्थक अथवा कठिन सामग्री को स्मरण नहीं रख पाते। इसका कारण यह है कि पहली बार भी हमने उन्हें भली-भाँति स्मरण नहीं किया। पूर्व-स्थापित साहचर्यों के रूप में इनकी संहति कभी नहीं की।

कभी-कभी हम इसलिए निरुत्साहित होते हैं कि हम अधिकांश अधिगत तथ्यों को भली प्रकार अनुस्मरण नहीं कर पाते। जिसे अधिगत करने में हमने धैर्य और लगन से पर्याप्त काल व्यतीत किया है, उसका भी प्रचुर भाग हम स्मरण नहीं रख

पाते। उदाहरणार्थ, चार वर्षों के उपरांत हम जर्मन संज्ञाओं के लिंग स्मरण नहीं रख सकते, इसीलिए अधिकांश अमरीकी जो थोड़ी, जर्मन भाषा बोल सकते हैं, निश्चित प्रत्यय 'der' का सर्वत्र प्रयोग करने लगते हैं। ऐसे विस्मरण से हमें अधिक निराश नहीं होना चाहिए; क्योंकि यह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण तथ्य है, जितना कि हम बहुधा बचत की असाधारण-मात्रा भी प्रदर्शित करते हैं। इस अंतिम तथ्य को स्पष्ट करने वाली एक नाटकीय कहानी (बर्ट, १९४१) को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है :—

> "कुछ वर्ष पूर्व एक मनोवैज्ञानिक ने अपने पुत्र को ग्रीक भाषा से सोफोक्लिज की' 'इडीपस टाइरानस' के कुछ अंश सुनाने आरंभ किए। किसी प्रोफेसर के लिए यह कार्य विशेष महत्त्व नहीं रखता, किंतु इसमें उल्लेखनीय बात यह थी कि उसके पुत्र की आयु केवल १५ माह थी। तीन माह तक प्रतिदिन प्रोफेसर २० पंक्तियों का वही अंश बच्चे को सुनाता रहा। जब वह बच्चा आठ वर्ष का हुआ, तो उसे वे अंश तथा वैसे ही कुछ अन्य कठिन अंश, जिनका उसे अनुभव नहीं था, उसे रटकर स्मरण करने पड़े। नए अंशों को रटने में बच्चे को औसतन ४३५ आवृत्तियाँ करनी पड़ीं और पहले सुने हुए अंशों को ३१७ आवृत्तियों में ही उसने रट लिया। अत: शिशुकाल में भी, जटिल निरर्थक सामग्री का अधिगम ( वह निश्चित रूप से इस प्रयोग का प्रयोग-पात्र था ) कभी भविष्य के लिए बचत प्रमाणित होता है।"

इस कहानी का तथ्य यह है कि स्कूल में अधिगत सामग्री के पुन:स्मरण में तीव्र ह्रास से निराश नहीं होना चाहिए, उस सामग्री का भविष्य में यदि कभी आप उपयोग करेंगे अथवा उसे पुन: अधिगत करेंगे, तो संभवतः उसका पर्याप्त अंश बचा हुआ पाएँगे।

### धारण में गुणात्मक अंतर (Qualitative Changes in Retention) :

संभवत: आपने गल्प-क्रीड़ा (Gossip game) के विषय में सुना होगा अथवा उस खेल को आपने खेला होगा। उस खेल में कुछ व्यक्ति एक क्रम में बैठ जाते हैं। पहला व्यक्ति एक कहनी या गल्प दूसरे व्यक्ति के निकट पढ़ता है और दूसरा व्यक्ति स्मृति से उस कहानी को तीसरे व्यक्ति को सुनाता है। इसी प्रकार क्रम आगे बढ़ता है। तब मूल कहानी से अंतिम रूपांतर की तुलना की जाती है। परिणाम कभी-कभी आश्चर्यजनक एवं मनोरंजक होते हैं। 'संदेश' में वस्तुत: बहुत परिवर्तन हो जाता है। कहानी प्राय: छोटी और अपने अर्थ में विकृत हो जाती है। यह खेल मनोवैज्ञानिक महत्त्व का है; क्योंकि यह अनेक प्रकार के सामाजिक व्यवहारों का उपयोगी प्रतिरूप है।

गल्प-क्रीड़ा इसलिए भी रोचक है; क्योंकि एक खिलाड़ी से दूसरे खिलाड़ी तक कहानी के पहुँचने में जो परिवर्तन होता है, वह उस स्मरण-परिवर्तन के समानांतर है जो एक ही व्यक्ति में भी घटित हो सकता है। यदि हम किसी व्यक्ति को भिन्न कालांतरों पर किसी बात की पुनरावृत्ति के लिए कहें, हम देखेंगे कि उसकी वह स्मृति उक्त सूचनाओं के सदृश ही विरूपित और न्यून होती है। ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक बार्टलेट (१९३२) ने उन गुणात्मक परिवर्तनों का सूक्ष्म अध्ययन किया है। उसने अनुभव किया कि एक मौखिक कहानी में सूक्ष्मताएँ विस्मृत हो जाती हैं, कहानी के सौंदर्य का अधिकांश समाप्त हो जाता है, वह जीर्ण ढाँचा मात्र रह जाती है। कुछ विशेष वाक्य और शब्द रूढ़ हो जाते हैं और प्रत्येक पुनरावृत्ति में वे प्रकट होते हैं।

स्मृति हमारे वस्तुओं के प्रत्यक्ष ज्ञान को विकृत करती है।
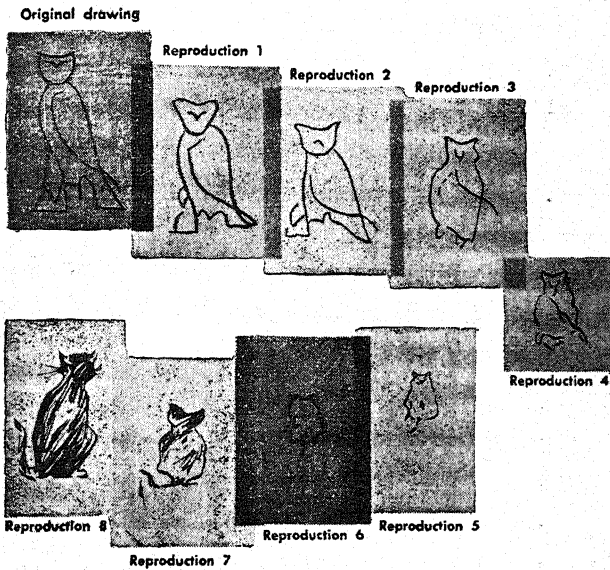
**चित्र ८.१२ मूल रेखाचित्र एक प्रयोग-पात्र द्वारा देखा गया और उसे उसकी पुनरावृत्ति के लिए कहा गया (पुन० १) दूसरे प्रयोग-पात्र ने इस पुनरावृत्ति को देखा, स्मृति से उसकी अनुकृति बनायी (पुन० २) अंत तक यही प्रक्रिया दोहरायी गई। ध्यान दें कि एक पुनरावृत्ति से दूसरी पुनरावृत्ति में चित्र किस प्रकार परिवर्तित होता है। स्मृति की विकृतियों से रूढ़िगत मिस्री उलूक चित्र एक बिल्ली के रूप में परिवर्तित हो जाता है (बार्टलेट के अनुसार, १९३२)।**

प्रत्यक्ष वस्तुओं के स्मरण में भी ऐसे ही परिवर्तन घटित होते हैं। यदि प्रयोग-पात्रों को दृष्टआकार दिखलाए जाएँ और बाद में उनकी क्रमिक पुनरावृत्ति करने के लिए उनसे कहा जाए, जिस प्रकार वार्ता-क्रीड़ा में कहानी की पुनरावृत्ति होती है, धारण में विस्तार की हानि होती है। इसके अतिरिक्त आकारों में अधिक सामान्य, अधिक सममितीय एवं क्रमिक पुनरावृत्ति की वस्तुओं के अधिक सदृश होने की प्रवृत्ति रहती है। इनमें से कुछ परिवर्तनों के उदाहरण चित्र ८.१२ में दिए गए हैं।

### भूलना या विस्मरण (Forgetting) :

यदि आप बुद्धिमान एवं सुपठित व्यक्ति से जिज्ञासा करें कि विस्मरण का कारण क्या है, तो संभवत: उसका तत्काल उत्तर होगा, 'यूँही मेरा अनुमान है, कालांतर हेतु।' यदि पुन: आप प्रश्न पर ज़ोर दें, तो कुछ विचार कर वह कहेगा, 'ठीक है, काल के व्यतीत होने के साथ, हमारे अधिगत तथ्यों का प्रभाव क्रमशः मंद होता जाता है और अंत में वह विलुप्त हो जाता है।'

यदि इस धारणा में कुछ भी सत्य है, तो यह कि यह पूर्णत: सत्य नहीं हो सकती। अगणित प्रयोगों ने अब प्रमाणित कर दिया है कि हम कितना भूलते हैं, इसका निर्धारण केवल कालांतर नहीं करता, वरन् उस कालांतर में घटित होने वाले तथ्य इसका निर्धारण करते हैं।

हमारे कुछ अधिगत करने और उसे स्मरण करने के प्रयत्न की मध्यावधि में हम जो कुछ करते हैं, उसका प्रभाव इस पर पड़ता है कि हमें कितना स्मरण रहेगा। यह अनेक प्रयोगों द्वारा, जिनके अंतर्गत निम्नांकित उदाहरण भी हैं, प्रदर्शित किया जा सकता है।

#### निद्रा एवं जागरण के उपरांत धारण (Retention after Sleeping and Waking) :

संभवत: सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रमाण एक प्रसिद्ध प्रयोग (जैंगकिन्स तथा डालेनबैक, १९२४) से उपलब्ध होता है, जिसमें दो व्यक्तियों पर निरर्थक वर्णों के धारण का, निद्रा के विविध कालों के उपरांत तथा पुन: प्रकृत जागृत अवस्था की क्रिया के विविध कालों में प्रयोग किया गया था। इस प्रयोग के परिणाम चित्र ८.१३ में दिए गए हैं। निद्रा के उपरांत धारण की मात्रा जागृति की अपेक्षा कहीं अधिक थी।

इस प्रयोग को कई बार दोहराया गया एवं परिणाम सदा एक ही रहे (न्यूमैन, १९३९)। यह क्रिया निद्रा की अपेक्षा कहीं अधिक विस्मरण उत्पन्न करती है। निद्रा के द्वितीय घंटे के उपरांत, धारण में शायद ही कुछ ह्रास होता है।

## पूर्वलक्षी अवरोध (Retroactive Inhibition) :

प्रश्न है कि जागृति में ऐसा क्या है, जिसके कारण निद्रा की अपेक्षा अधिक विस्मरण होता है ? इस प्रश्न से संबंधित अनेक प्रयोग हैं। इन्हें 'पूर्वलक्षी अवरोध' प्रयोग कहा गया है; क्योंकि वे प्रदर्शित करते हैं कि कुछ अधिगम करने के उपरांत हमारी प्रवृत्ति उस अधिगम सामग्री की स्मृति का अवरोध करने के हेतु पीछे की ओर क्रियारत होती है। उक्त वर्णित प्रयोग, निद्रा बनाम जागृति, वस्तुतः पूर्वलक्षी अवरोध का प्रयोग है; क्योंकि यह प्रदर्शित करता है कि जागरण-क्रिया उससे पूर्व-अधिगत सामग्री के धारण में बाधा पहुँचाती है।

स्मृति का संरक्षण निद्राकाल में जागृति की अपेक्षा अधिक होता है।
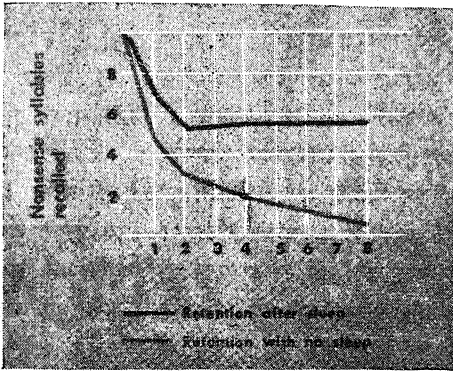
**चित्र ८.१३—स्मृति पर जागृति और निद्रा के प्रभाव की तुलना। (जेनकिंस तथा डालेनबैंक के अनुसार, १९२४)।**

इस संप्रत्यय को समझने के लिए इससे सहायता मिलेगी कि पूर्वलक्षी अवरोध निरोधात्मक अंतरण का केवल एक विशेष प्रकार है, जिसका उल्लेख पिछले कुछ पृष्ठों में हम कर चुके हैं। यथार्थतः पूर्वलक्षी अवरोध निरोधात्मक अंतरण का प्रतिवर्त्ती रूप है। **यह किसी पूर्व अधिगम के धारण पर अधिगम अथवा किसी क्रिया का हानिकर प्रभाव है।** निरोधात्मक अंतरण एवं पूर्वलक्षी अवरोध ही, अभ्यास अथवा अनुभव किसी अन्य अधिगम या धारण में बाधक होते हैं।

निषेधात्मक अंतरण को स्पष्ट करने वाले कारक वे ही हैं, जो पूर्वलक्षी अवरोध के अधिकांश को भी स्पष्ट करते हैं। आप पुनः स्मरण करेंगे कि निषेधात्मक अंतरण के लिए आवश्यक प्रतिबंध है कि दो भिन्न स्थितियों में एक ही उद्दीपन के प्रति दो भिन्न अनुक्रियाएँ अपेक्षित हों। एक ही उद्दीपन के दो बाधक साहचर्य हैं। यही प्रतिबंध पूर्वलक्षी अवरोध के लिए भी आवश्यक है। हम युग्मित-अनुषंगी अधिगम (Pairedassociate learning) के प्रयोग द्वारा इस तथ्य को स्पष्ट कर सकते हैं।

युग्मित-अनुषंगी अधिगम वह अधिगम है, जिसमें एक शब्द के प्रस्तुत करने पर प्रयोग-पात्र को अनिवार्य रूप से दूसरे एक शब्द को स्मरण करना पड़ता है। उदाहरणार्थ मान लीजिए कि हम प्रयोग-पात्रों से राज्यों के साथ वर्णों का साहचर्य स्थापित करने के लिए कहते हैं। हम राज्यों के नाम उद्दीपनों तथा वर्णों के नाम अनुक्रियाओं के रूप में लेते हैं; क्योंकि प्रयोग-पात्र को वर्ण ( जैसे लाल ) में उत्तर देना होगा, जब किसी राज्य (जैसे 'देलवार' ( Delawar ) का नाम उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा। ऐसे प्रयोग में हम वर्णों के नामों तथा राज्यों के नामों के युग्मों को मिला देते हैं ताकि प्रयोग-पात्र यह न सीखे कि एक युग्म के बाद दूसरा युग्म आता है।

प्रयोग-पात्र जब कुछ मात्रा में सफलता से यह उत्तर देना अधिगत कर लेता है, तब पूर्वलक्षी अवरोध प्रयोग में हमारा अगला चरण होता है, प्रयोग-पात्र को दूसरा कार्य देना, जिसमें उसी राज्य के नाम के साथ नए वर्ण को संबद्ध करना— जैसे 'देलवार' का 'नारंगी' रंग से साहचर्य करना। प्रयोग-पात्र इस नवीन साहचर्य-सूची को अच्छी तरह सीखने तक अभ्यास करता है।

अंत में प्रयोग की अंतिम स्थिति में प्रयोग-पात्र को पुनः प्रथम सूची पर लौटना होगा तथा उसे वर्णो के वे ही नाम राज्यों के नाम के साथ प्रस्तुत करने होंगे, जो उसने पहले अधिगत किए थे। यहाँ यह स्पष्ट होना चाहिए कि वह प्रयोग-पात्र इसमें कठिनाई अनुभव करेगा और प्रथम सूची को पुनः स्मरण करते हुए वह अनेक भूलें करेगा और बहुत अभ्यास के उपरांत उसे पूर्णतः स्मरण कर सकेगा। अन्य शब्दों में वह द्वितीय अधिगम कार्य के कारण अपने मूल अधिगम में पर्याप्त पूर्व-लक्षी अवरोध प्रकट करता है। द्वितीय कार्य में जो साहचर्य स्थापित किए गए थे, वे प्रथम कार्य के अधिगत साहचर्यों में बाधा उपस्थित करते हैं। अतः, एक ही उद्दीपन के प्रति दो बाधाकारी साहचर्य हैं।

साहचर्यों के बाधाकारी प्रभाव आगे एवं पीछे दोनों ओर हो सकते हैं। आगे की ओर होने वाले प्रभाव **'अनुकारी अवरोध'** ( Proactive Inhibition ) कहलाते हैं जो वास्तव में पूर्वोल्लिखित निषेधात्मक अंतरण ही है। अनुकारी अंतर्बाधा के प्रयोग का निदर्शन पूर्वलक्षी अवरोध का मात्र व्यतिक्रम होगा। यथार्थतः दोनों प्रयोगों का रूप एक ही होगा और जो कुछ प्रतिवर्त होगा, वह भी एक प्रकार के साहचर्यों के धारण पर दूसरे प्रकार के साहचर्यों के अधिगम का प्रभाव होगा। पूर्व-लक्षी अवरोधप्रयोग में हम जिज्ञासा करते हैं, कि वर्णों के नामों तथा राज्यों के नामों के **दूसरे क्रम** का अधिगम किस प्रकार **प्रथम क्रम** के पुनःस्मरण में बाधा उपस्थित करता है। अवरोध अथवा अंतर्बाधा आगे एवं पीछे दोनों ओर कार्य करती है।

विस्मरण का स्वरूप (The Nature of Forgetting) :

दैनिक जीवन में हम उक्त वर्णित प्रयोग के सदृश पूर्वलक्षी एवं अनुकारी अवरोधों में निहित उद्दीपनों और अनुक्रियाओं में विभेद नहीं कर सकते। इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा मनोवैज्ञानिकों ने स्वयं को आश्वस्त किया है कि विस्मरण में अन्य साहचर्यों से संबद्ध पूर्वगामी तथा अनुकारी दोनों प्रकार की बाधाएँ प्रमुख कारक है। अर्थात् विस्मरण इसलिए होता है कि विविध अधिगम कार्यों तथा जागृत जीवन की विविध क्रियाओं में सन्निहित उद्दीपनों में सादृश्यता होती है फिर भी उद्दीपन की इन विविध स्थितियों के प्रति विविध अनुक्रियाओं का होना आवश्यक है। **साहचर्यों के परस्पर बाधक होने के फलस्वरूप हम भूलते या विस्मरण करते हैं।**

इस निर्णय को पुष्ट करने वाले उदाहरण तथा वस्तुओं में अनुकारी अंतर्बाधा को स्पष्ट करने वाले पूर्व-अधिगत उदाहरण अनेक सूचियों के पुनःस्मरण के प्रयोगों (अंडरवुड, १९५७) से लिए गए हैं :—

> "प्रयोग-पात्रों ने पहले विशेषणों के १० युग्मों को स्मरण किया। अड़तालीस घंटों के उपरांत यह निर्धारित करने के लिए कि वे स्मरण किए गए युग्मों में कितनों का पुनःस्मरण कर सकते हैं, उनकी परीक्षा ली गई। एक दिन बाद उन्हें नवीन विशेषणों के १० युग्मों की दूसरी सूची स्मरणार्थ दी। अड़तालीस घंटे बाद इसके पुनःस्मरण की भी परीक्षा ली गई। एक दिन उपरांत तीसरी सूची दी गई और उसकी भी उसी प्रकार परीक्षा हुई। इसी प्रकार चार सूचियाँ स्मरणार्थ दी गईं और प्रत्येक की परीक्षा हुई। इनके परिणाम चित्र ८.१४ में दिखाए गए हैं। उनके संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि क्रमागत सूचियों में प्रयोग-पात्र का पुनःस्मरण न्यूनतर होता गया। जितनी अधिक सूचियों को वे स्मरण करते, उतना ही कम उनका अनुस्मरण प्रमाणित होता। इससे यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि विशेषणों की पूर्ववर्त्ती विशेषण-सूचियों ने नवीन विशेषण-सूचियों के धारण में बाधा प्रस्तुत की।"

यह प्रयोग अनुकारी अवरोध का—पूर्ववर्त्ती अधिगम के प्रभाव का परिमापन करने वाला है, परंतु भिन्न स्थितियों में सामग्रियों के साथ किए गए अनेक प्रयोग, सब इस ओर संकेत करते हैं कि विस्मरण-प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान बाधा का है। हमारे विस्मरण करने और न करने का कारण है, नवीन अधिगम का प्राचीन अधिगम में बाधक होना।

इसकी भी संभावना है कि हमारे विस्मरण का कुछ अंश केवल समय के साथ स्मृति-चिह्नों का धूमिल होना ही है। संभवतः मस्तिष्क में होने वाले कुछ परिवर्तन, जो अधिगमकाल में अस्थायी रूप से घटित होते हैं, कालांतर से धूमिल या मंद हो जाते हैं। निश्चय ही ऐसा स्पष्ट प्रमाण अब तक प्राप्त नहीं हुआ है, जो प्रमाणित कर

सके कि स्मृति-चिह्नों के धूमिल होने की संभावना नहीं है। तथापि मनोवैज्ञानिकों द्वारा उनके प्रयोगों में संकलित सभी तथ्य इससे स्पष्ट नहीं होते। विस्मरण को स्पष्ट करने वाला सर्वाधिक और सर्वोत्तम उपलब्ध तथ्य साहचर्यों में बाधा है।

पूर्ववर्त्ती तथ्यों को परवर्त्ती तथ्यों की अपेक्षा सुगमता से स्मरण किया जाता है।
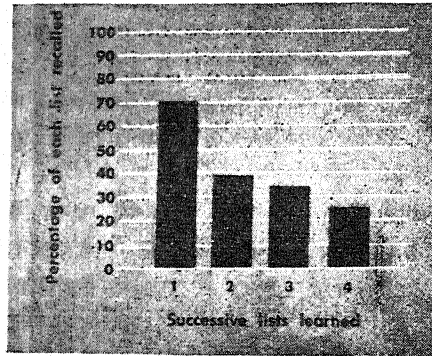
चित्र ८·१४ विशेषणों की सूचियों के पुन:स्मरण में अनुकारी अवरोधन। परवर्त्ती अधिगत सूचियों का पुन:स्मरण पूर्वाधिगत सूचियों की अपेक्षा मंदतर था (अंडरवुड, १९५७)।

दमन और विस्मरण (Repression and Forgetting) :

विस्मरण के सब प्रकार उक्त तथ्यों से स्पष्ट नहीं होते। अनेक बार हम व्यक्तियों में विस्मरण का ऐसा रूप देखते हैं, जिसे मनोवैज्ञानिक 'दमन' कहते हैं। उन्होंने अपने अनुसंधान-कार्य द्वारा इस ज्ञान को प्राप्त किया कि संवेदनात्मक द्वंद्वों से ग्रस्त व्यक्तियों में विशेषत: अरुचिकर एवं भयपूर्ण विचारों और स्मृतियों का दमन करने की प्रवृत्ति होती है तथा कम-से-कम सचेतन रूप से वे चिंतित करने वाले द्वंद्वों का दमन द्वारा निवारण करते हैं। दमन का विवेचन हमने पाँचवें अध्याय में किया है, किंतु यहाँ भी संक्षेप में उस पर विचार करना आवश्यक है।

हमारे दैनिक जीवन में व्यवहार के अनेक सामान्य उदाहरण मिलते हैं, जिन्हें दमन के रूप में सरलता से समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ, मैं भूल सकता हूँ कि मेरी पत्नी ने मुझे पंसारी की दूकान से कलेजी लाने के लिए कहा था; क्योंकि मुझे कलेजी पसद नहीं है। संभवत: इस ओर हम सबने लक्ष्य किया होगा कि व्यक्तियों में ऐसे व्यक्तियों का नाम भूल जाने की प्रवृत्ति है, जिन्हें वे पसंद नहीं करते। जैसा कि हम पाँचवें अध्याय में देख चुके हैं कि दमन के अधिक महत्त्वपूर्ण उदाहरण उन लोगों में मिलते हैं, जिनमें सशक्त प्रेरक या तीव्र चिंताएँ हैं और जिसका निवारण

नहीं हो सका है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति अपने प्रारंभिक बाल्यकाल के यौन-संबंधी अनुभवों को विस्मरण कर सकता है; क्योंकि वह उनके प्रति अत्यधिक चिंतित है।

जैसा कि विचार किया जा सकता है कि प्रयोगशाला में प्रयोगों द्वारा दमन को उत्पन्न करना कठिन है; क्योंकि यह कठिन है—और अवांछित है कि व्यक्तियों में ऐसी चिंताएँ पैदा की जाएँ, जो इतनी सशक्त हों कि दमन को उत्पन्न करें। तथापि कुछ प्रयोगकर्त्ताओं ने खोज की है कि मनुष्यों में सुखद बातों की अपेक्षा दुखद बातों को शीघ्र भूलने की प्रवृत्ति अधिक होती है ( शार्प, १९३८ )। यह भी स्पष्ट है कि व्यक्ति में अन्य सामान्य घटनाओं की अपेक्षा अपनी इच्छानुकूल एवं अपने पूर्वाग्रहों के अनुकूल बातों को स्मरण रखने की प्रवृत्ति अधिक होती है ( एडवर्ड्स, १९४२ )। इसके अतिरिक्त एक अनुसंधानकर्त्ता ऐसे व्यक्तियों को पाने में भी सफल रहा, जिनकी स्मृति से संबद्ध चिंताओं का निवारण करके वह उनकी अधिगत एवं विस्मृत बातों का उन्हें स्मरण करा सका ( जेलर, १९५० )। ये विविध खोजपूर्ण तथ्य दमन की मनोविश्लेषणात्मक संप्रत्यय के अनुकूल हैं।

### अध्ययन की प्रविधियाँ ( Techniques of Study ) :

मनोविज्ञान के अनेक उपयोगों में से एक, जो कालेज-विद्यार्थियों के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है, वह है अध्ययन की पद्धतियों में विकास। मनोवैज्ञानिकों ने इस समस्या पर प्रचुर अनुसंधान किया है तथा ऐसी विधियों की खोज की है, जिनके द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी अध्ययन में, अपेक्षित काल में अथवा अध्ययन की विषय-वस्तु के पांडित्य में कुछ उन्नति अवश्य कर सकता है। इस अनुसंधान के व्यावहारिक प्रयोगों का सारांश विद्यार्थियों के लाभार्थ इस अनुच्छेद में दिया जा रहा है और संभवतः विद्यार्थी उसे अपने कालेज-अध्ययन में उपयोगी पाएँगे।

### अध्ययनार्थ अभिप्रेरण ( Motivation to Study ) :

अनेक विद्यार्थियों में प्रभावशाली अध्ययन की आदत विकसित न होने का कारण है—अभिप्रेरण की न्यूनता। ये विद्यार्थी कालेज में अच्छे अंक प्राप्त करना चाहते हैं, किंतु समय पर अध्ययन के लिए अपने धैर्य को एकत्रित नहीं कर सकते। जब वे पढ़ने बैठते हैं, तब भी मन को एकाग्र नहीं कर सकते। इस रोग की कोई अचूक औषधि हमारे पास तैयार नहीं है, किंतु भली प्रकार अध्ययन करने के कुछ अच्छे साधन हम बता सकते हैं।

सर्वप्रथम कालेज में जिस श्रेणी-क्रम (ग्रेड या डिविजन)। को विद्यार्थी प्राप्त करता है, उसका बहुत महत्त्व रहता है। किंतु, अधिकतर विद्यार्थी उसके महत्त्व को समझते नहीं। अपनी पसंद के स्नातक स्कूल अथवा वृत्तिक स्कूल में प्रवेश प्राप्त

करने के लिए उसका श्रेणी-क्रम सामान्य विद्यार्थी से उच्चतर होना आवश्यक है। व्यावसायिक नियोक्ता भी श्रेणी-क्रम पर ध्यान देते हैं और कुछ नियोक्ता केवल ऐसे ही व्यक्तियों को लेते हैं जिनका विद्यार्थीकाल में उच्च श्रेणीक्रम रहा हो। इसके प्रमाण उपलब्ध हैं कि कालेज में जिन विद्यार्थियों का उच्चतम श्रेणी-क्रम रहा है, वे उद्योग-जगत में भी सर्वाधिक सफलता प्राप्त करते हैं (गिलफोर्ड, १९२८)। यह आंशिक रूप से महत्त्वाकांक्षा एवं योग्यता पर आधारित हो सकता है, परंतु यह कालेज-जीवन में अर्जित ज्ञान तथा अच्छा कार्य करने की आदतों का भी परिणाम है।

द्वितीय, सफलता विद्यार्थी को अनेक रूपों में संतोष देती है। उच्च श्रेणी-क्रम पाने पर विद्यार्थी एवं उसके माता-पिता की प्रसन्नता के अतिरिक्त भी विद्यार्थी सुख का अनुभव इसलिए करता है; क्योंकि पाठ्य-क्रम में असफल रहने पर जो चिंता होती है, वह उससे मुक्त है। उसे इसलिए भी संतोष होता है कि वह इस तथ्य को समझ लेता है कि अध्ययन किस प्रकार करना चाहिए तथा यह भी उसे ज्ञान हो जाता है कि वह अपना कार्य अच्छी तरह कर रहा है।

तृतीय, एक बार जब विद्यार्थी किसी विषय के गहन अध्ययन द्वारा उस पर कुछ अधिकार प्राप्त कर लेता है, तो अनुभव करता है कि वह विषय अपने में आकर्षक एवं आनंदप्रद है। तब उसका अध्ययन कठिन एवं अरुचिकर नहीं रहता, वह खाना-पीना एवं खेलना छोड़ कर भी उस विषय का अध्ययन करना चाहता है। वह उस विषय में अधिक-से-अधिक रुचि ले सकता है तथा उसकी अनुत्तरित समस्याओं को सुलझाने के प्रयत्न में भी उसकी रुचि हो सकती है। अध्यापक, प्राध्यापक एवं अन्य व्यक्ति जो इस क्षेत्र में सक्रिय हैं, प्रायः अपने अध्ययन के विषय को इसी रूप में देखते हैं। यह निश्चित है कि प्रत्येक विषय प्रत्येक व्यक्ति के लिए आकर्षक नहीं हो सकता; क्योंकि वैयक्तिक अभिरुचियों एवं रुचियों में अंतर होता है। किंतु, इसकी संभावना है कि एक बार यदि व्यक्ति यह समझ ले कि उस विषय को कैसे पढ़ना है तथा उसके संबंध में कुछ पढ़ ले, तो उसके प्रति उसकी रुचि विकसित हो सकती है।

### अध्ययन कार्यक्रम संयोजना (Organising a Study Routine) :

अभिप्रेरण के अतिरिक्त अनेक विद्यार्थियों में अध्ययन के व्यवस्थित कार्यक्रम का अभाव रहता है। वे इस ओर ध्यान नहीं देते कि उनके पास अध्ययन के लिए विशेष समय और विशेष स्थान है, न वे अपने विविध विषयों के अध्ययन-काल का उपयुक्त विभाजन ही करते हैं। तथापि, यह करना अनिवार्य है। उन्हें अध्ययन के लिए एक निश्चित कार्यक्रम निर्धारित करना चाहिए, जो विषयों की कठिनाई एवं मात्रा पर आधारित हो और तब इस कार्यक्रम का उन्हें पूर्ण पालन करना चाहिए।

उन्हें पूर्णतः हर प्रकार से निश्चित हो जाना चाहिए कि वे अपेक्षित समय में यथार्थतः अध्ययन ही कर रहे हैं और इस समय में वे दिवास्वप्न नहीं देख रहे, रेडियो नहीं सुन रहे एवं शयनागार में बैठकर अपने साथियों से वार्तालाप नहीं कर रहे हैं। उन्हें प्रत्येक संभव ढंग से निश्चित हो जाना चाहिए कि वे जब पढ़ते हैं, तब निश्चित रूप से पढ़ते हैं और जब खेलते हैं तब केवल खेलते हैं तथा इन दोनों का मिश्रण उन्हें नहीं करना चाहिए।

## अध्ययन-विधियाँ (Study Methods) :

संभवतः अपने अध्ययन को विकसित करने के लिए विद्यार्थी के लिए सर्वाधिक आवश्यक है, अध्ययन के लिए सशक्त अभिप्रेरण को विकसित करना तथा सुव्यवस्थित कार्यक्रम को निर्धारित करना। अब हम कुछ ऐसी विशिष्ट विधियों का उल्लेख करेंगे जिनका प्रयोग विद्यार्थी अध्ययन करते समय कर सकता है। भिन्न विद्यार्थियों के लिए भिन्न प्रविधियाँ उपयोगी होती हैं - और अध्ययन के विषय पर निर्भर करती हैं। तथापि कुछ महत्त्वपूर्ण सामान्य नियम हैं, जिनका अनुसरण प्रायः लाभप्रद होता है।

संभवः सर्वे क्यू तीन आर (Survey Q 3 R) विधि (रोबिनसन, १९४६) में सर्वोत्तम नियम प्राप्त होंगे। इसका विकास ओहिओ राज्य विश्वविद्यालय '(The Ohio State University)' में नियोजित विद्यार्थियों की शैक्षिक समस्याओं के विश्लेषण एवं समाधान के विशद् कार्यक्रम से हुआ। हम पूर्णतः सुपरीक्षित विधि के रूप में इस पर विश्वास कर सकते हैं। इसके पाँच विशिष्ट सोपान हैं, जिनके नाम हैं—सर्वेक्षण (Survey), प्रश्न (Question), पठन (Read), मौखिक आवृत्ति (Recite), और पुनर्विलोकन (Review), और यही कारण है कि इस विधि की संज्ञा सर्वे क्यू तीन आर है।

## सर्वेक्षण (Survey) :

जब लेखक पाठ्य-पुस्तकें लिखते हैं, वे अपनी सामग्री को विविध शीर्षकों के अंतर्गत व्यवस्थित करने का प्रयत्न करते हैं जिससे कि वे शीर्षक अपने पाठकों को बता सकें कि प्रत्येक अनुभाग में उन्हें क्या सामग्री मिलेगी। उदाहरणार्थ यदि आप इस पुस्तक के पृष्ठ उलटें, तो शायद ही कोई पृष्ठ आपको ऐसे शीर्षक के बिना मिलेगा। अनेक विद्यार्थी शीर्षकों की ओर ध्यान नहीं देते और पाठ्य-पुस्तक को उपन्यास के सदृश पढ़ने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा करके वे लेखक द्वारा किए गए अधिकांश सप्रयत्न कार्य की उपेक्षा करते हैं और सूचनाओं के ऐसे दलदल में तड़पते हैं, जिसके स्वीकरण के लिए वे तैयार नहीं होते।

एक महत्त्वपूर्ण नियम है, **शीर्षकों का उपयोग**। वे लेखक की व्यवस्था प्रकट करते हैं, वे स्पष्ट करते हैं कि किस रूप में सामग्री प्रस्तुत की गई है तथा वे यह भी

स्पष्ट करते हैं कि कौन से विषयों का अध्ययन साथ और किसका अध्ययन किस क्रम से होना चाहिए। सर्वाधिक वे यह स्पष्ट करते हैं कि प्रत्येक अनुच्छेद का पठन समाप्त करें, आपको शीर्षक से संबंधित कुछ विचारों पर ध्यान करना चाहिए। उस अनुच्छेद में उसके अतिरिक्त जो कुछ होता है, वह गौण अथवा सापेक्ष महत्त्व का होता है। विद्यार्थी के लिए शीर्षकों के क्रम पर ध्यान देना भी आवश्यक है। अधिकांश पाठ्य-पुस्तकें शीर्षकों के दो या तीन क्रमों का प्रयोग करती हैं। उदाहरणार्थ, इस ग्रंथ में तीन क्रम हैं।

जिस विद्यार्थी ने इस अनुच्छेद पर ध्यान दिया होगा, अनुभव करेगा कि हम अभी प्रधान विषय पर नहीं आए हैं; क्योंकि इसका शीर्षक है 'सर्वेक्षण'। उसी बिंदु पर पहुँचने के लिए हम शीर्षकों के संबंध में अब तक आपको बता रहे थे।

पाठ्य-पुस्तक को हाथ में लेते ही जो पहला कार्य आपको करना चाहिए, वह है उसके विविध अध्यायों के शीर्षकों को पढ़ना; क्योंकि सामान्य रूप से यह पुस्तक के **सर्वेक्षण** की एक विधि है। एक अध्याय को प्रारंभ करते हुए, अध्याय के अनुच्छेदों के विविध शीर्षकों का अवलोकन करें। इस प्रकार, आप जान लेते हैं कि अध्याय किस संबंध में है तथा किस प्रकार की सामग्री की आपको उससे अपेक्षा करनी चाहिए। यह भी उपयोगी विचार है कि अध्याय के यत्र-तत्र कुछ वाक्य पढ़ें, उसके कुछ चित्रों एवं रेखाचित्रों को देखें। इसके अतिरिक्त, यदि उसमें सारांश दिया गया हो, तो अपने सर्वेक्षण के अंश के रूप में उसे भी पढ़ें; क्योंकि वह आपके समक्ष अध्याय के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्यों को विस्तार में जाने से पूर्व ही प्रस्तुत करेगा।

**प्रश्न (Question) :**

कुछ पाठ्य-पुस्तकों में प्रत्येक अध्याय के अंत में पुनरीक्षा प्रश्नों की सूची होती है (हमने इस पुस्तक के पाठ्य पर अभिकल्पित प्रश्नों को भिन्न 'स्टडी गाइड' पुस्तक में दिया है)। ये प्रश्न पुस्तक का बहुधा विद्यार्थियों द्वारा सर्वाधिक उपेक्षित भाग रहता है; क्योंकि विद्यार्थी अध्ययन के समय उनके महत्त्व को नहीं समझते। यदि किसी पुस्तक में ये प्रश्न हों, उन्हें पढ़िए एवं उनके उत्तर देने का प्रयत्न कीजिए, यह भी महत्त्वपूर्ण है कि अपने प्रश्नों का उत्तर दें। अनुच्छेदों के शीर्षकों को प्रश्नों का रूप दें तथा उसके उत्तर को दृष्टि में रखते हुए उसका अध्ययन करें।

प्रश्नों से अनेक लाभ हैं। प्रथम, वे हमारी रुचि को पाठ्य-विषय में बनाए रखते हैं। द्वितीय, वे अधिगम-प्रक्रिया में निष्क्रिय पाठक की अपेक्षा हमें सक्रिय पाठक बनाते हैं। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान ने स्पष्ट प्रदर्शित किया है कि यह सक्रियता अधिगम में बहुत सहायक होती है। अंत में, प्रश्न स्व-परीक्षण की विधियाँ हैं, जिनसे आप जानते हैं कि आप क्या अधिगम कर रहे हैं और क्या अधिगत कर चुके हैं। यदि

शिक्षक द्वारा परीक्षा लिए जाने से पूर्व आप स्वयं अपनी-परीक्षा ले लेते हैं, तो औपचारिक परीक्षा में निसंदेह आप अपेक्षाकृत अधिक अच्छी तरह उत्तर दे सकेंगे।

पठन (Read) :

आगामी सोपान है पठन–ध्यानपूर्वक पठन। जिन प्रश्नों को आपने अपने से पूछा है, उनके उत्तर, पुस्तक में पढ़ें। उन्हें निश्चेष्ट रूप में न पढ़ें, जैसे आप एक उपन्यास पढ़ेंगे, वरन् स्वयं को सतत् चुनौती देते हुए पढ़ें। इसका निश्चय करते हुए आगे बढ़ें कि आप जो पढ़ रहे हैं, उसे भली प्रकार समझ भी रहे हैं **और स्मरणार्थ पठन करें**। बीच-बीच में अपने को याद दिलाते रहें कि—जो पढ़ रहे हैं, उसे समझना है और स्मरण करना है। यदि आप इस प्रकार पढ़ेंगे, तो आप यह परिचित शिकायत नहीं करेंगे, 'पढ़ना समाप्त करते ही मैं भूल जाता हूँ कि मैंने क्या पढ़ा।' तिरछे या गहरे लिखे शब्दों या वाक्यों को विशेषतः ध्यान से पढ़ें। लेखक महत्त्वर्ण शब्दों, प्रत्ययों और सिद्धांतों को तिरछा लिखता है।

पूरी पुस्तक के प्रत्येक अंश को पढ़िए, अर्थात् सारणियों, रेखाचित्रों, अन्य सचित्र उदाहरणों को तथा प्रमुख मूल पाठ को भी। सचित्र उदाहरणों का प्रयोग मूल-पाठ के महत्त्वपूर्ण अशों पर बल देने के लिए तथा उन्हें स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। वस्तुतः कभी-कभी सचित्र उदाहरण को एक दृष्टि देख लेने पर पूर्णतः ज्ञात हो जाता है कि पुस्तक के उस पूरे पृष्ठ में क्या लिखा गया है। अन्य स्थितियों में सचित्र उदाहरण हमें ऐसी सूचनाएँ देते हैं, जिन्हें शब्दों द्वारा सरलता से स्पष्ट नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, इस पुस्तक में, कहीं-कहीं हम चित्रों द्वारा ऐसे तथ्यों को व्यक्त करते हैं जिनका विशिष्ट उल्लेख मूल-पाठ में नहीं किया गया है। ये सचित्र उदाहरण पुस्तक के पठन में उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं जितने शीर्षक, अनुच्छेद और मूल-पाठ के वाक्य।

आवृत्ति (Recite) :

आवृत्ति प्रभावपरक अध्ययन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रविधियों में से एक है, फिर भी इसकी उपेक्षा की गई है; क्योंकि यह श्रमसाध्य है। जब कोई योंही पढ़ता है, वह सहज रूप से सोचता है कि जो कुछ पढ़ा गया है उसे वह समझ रहा है, और वह स्मरण भी रहेगा। किंतु, बहुधा यह सत्य नहीं होता। यह निश्चित करने के लिए कि जो कुछ उसने पढ़ा है, वह समझ सका है तथा वह उसे स्मरण है। उसे बीच बीच में रुक कर अनुस्मरण करना चाहिए कि उसने क्या पढ़ा है। अर्थात् उसे आवृत्ति करनी चाहिए। उदाहरणार्थ, यहाँ आप स्वयं से पूछ सकते हैं कि इस अनुच्छेद में आपने अब तक क्या पढ़ा है। मुख्य शीर्षकों को एवं उनके अंतर्गत लिखे मुख्य विचारों को अनुस्मरण करने का प्रयत्न करें। इन पृष्ठों को बिना देखे क्या आप पठित भाग की

रूपरेखा प्रस्तुत कर सकते हैं ? करने का प्रयत्न कीजिए एवं अपनी परीक्षा लीजिए। देखिए कि क्या आपने अपनी रूपरेखा में समस्त तथ्यों को ले लिया है। यदि नहीं, तो अपनी भूलों और छूटे हुए अंशों पर ध्यान दें। थोड़ी देर बाद पुनः आवृत्ति करें। जैसे-जैसे आप पढ़ते जाएँ, बीच-बीच में रुक कर अध्याय के प्रत्येक मुख्य अनुच्छेद का पुनर्विलोकन करें। जब आप परीक्षाओं की दृष्टि से पुनरीक्षा करें, तब अपनी तैयारी की प्रक्रिया में आवृत्ति को महत्त्व दें।

आवृत्ति पर बल देने के कम-से-कम दो महत्त्वपूर्ण कारण हैं। प्रथम, आवृत्ति आपके **अवधान** को कार्यरत रखती है; क्योंकि निश्चय ही किसी बात के अनुस्मरण करने के प्रयत्न में आप दिवास्वप्न नहीं देख सकते। द्वितीय, यह आपको **अशुद्धियों को सुधारने** का अवसर देती है, यह आपकी कमजोरी को दिखाती है और बताती है कि पठन की पुनरावृति में कहाँ अधिक समय देना उचित होगा।

आवृत्ति कुछ विषयों के लिए अन्य विषयों की अपेक्षा, अधिक उपयोगी होती है। सामान्यतः इसका सर्वाधिक उपयोग असंबद्ध और जो अधिक अर्थपूर्ण न हो, ऐसी सामग्री के अधिगम में होता है। उदाहरणतः यदि आपको अनेक नियमों, तथ्यों, नामों, कानूनों या विधियों को स्मरण करना पड़े, तो आवृत्ति बहुत सहायक होती है। दूसरी ओर अर्थपूर्ण विषयों के लिए कथा-सामग्री के लिए, जैसे इतिहास या दर्शनशास्त्र, आवृत्ति कुछ कम उपयोगी होती है—यद्यपि वह कभी अनुपयोगी नहीं होती। अतः, जिस विषय के लिए आप आवृत्ति का प्रयोग करें, उसके अनुसार आपको समय की मात्रा अथवा अध्ययनकाल के अनुपात में अंतर करना चाहिए। इस पुस्तक में; क्योंकि पर्याप्त तथ्यपूर्ण सामग्री है, इसलिए संभवतः इसके अध्ययन में जितना समय दिया जाएगा, उसका एक तिहाई या आधा आवृत्ति में व्यतीत होना चाहिए।

## पुनर्विलोकन (Review) :

'सर्वे क्यू ३ आर' प्रविधि का पंचम सिद्धांत पुनर्विलोकन है। यदि आप किसी तथ्य को भली प्रकार से स्मरण करें, किंतु उसका पुनर्विलोकन न करें, तो आप अनुभव करेंगे कि कुछ दिनों या घंटों ही के उपरांत आप केवल उसका अंशमात्र स्मरण रख सकेंगे।

पुनर्विलोकन के श्रेष्ठतम तरीकों के कुछ संकेत यहाँ दिए जा रहे हैं। **पुनर्विलोकन के सर्वोत्तम अवसर हैं, प्रथम अध्ययन के तत्काल उपरांत तथा पुनःपरीक्षा के ठीक पहले।** परंतु इन दोनों के मध्य किए गए एक या दो पुनर्विलोकन लाभदायक प्रमाणित होंगे। प्रथम पुनर्विलोकन पर्याप्त संक्षिप्त हो सकता है; क्योंकि तब तक विस्मरण के लिए बहुत कम समय होता है और यह प्रधानतः आवृत्ति के ढंग का

होना चाहिए। पूर्व-परीक्षा पुनर्विलोकन में भी आवृत्ति को महत्त्व देना चाहिए, किंतु इस बार इसे बहुत अधिक गंभीर होना चाहिए और प्रायः यह होता भी है। मध्यांतर-पुनर्विलोकन अपेक्षाकृत संक्षिप्त सहायतार्थ होते हैं और ये आवृत्ति से कुछ अधिक पुनर्पठन पर जोर देंगे। संभवतः इसे निर्विवाद रूप से स्वीकार करना चाहिए कि पुनर्विलोकन को परीक्षा से केवल कुछ घंटे पूर्व घोखना नहीं चाहिए। यह अभ्यास अंतिम कार्य को बहुत कठिन बना देता है और परीक्षा के समय यह विषय पर आपको वह अधिकार भी नहीं देता, जो आपको कुछ मध्यांतर-पुनर्विलोकन देते।

**व्याख्यान के नोट लेना (Taking Lecture Notes):**

सर्वे क्यू ३ आर विधि व्याख्यानों एवं पाठ्य-पुस्तकों के लिए उपयोज्य है, किंतु प्रत्येक सूक्ष्म तथ्य के लिए उसका प्रयोग संभव नहीं। स्पष्टतः किसी भाषण का पूर्व सर्वेक्षण करना कठिन ही नहीं, असंभव है जब तक कि निर्देशक स्वयं वह सर्वेक्षण आपके लिए न करे—और बहुत कम निर्देशक ऐसा करते हैं। इसलिए विद्यार्थी को चाहिए कि भाषण-सामग्री स्वयं व्यवस्थित करते हुए शीर्षक देता जाए। **व्यवस्थित करना** बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्राध्यापक के मुख्य तथ्यों को समझने की चेष्टा करते हुए विद्यार्थी को व्यवस्थित करना चाहिए। **प्राध्यापक के व्याख्यान के पैराग्राफ को उसे अपनी भाषा में संक्षेप में सरल वाक्यों अथवा वाक्यांशों में लिखना चाहिए।** कभी-कभी यह कठिन हो जाता है और आपको भाषण के साथ-साथ बढ़ने के लिए सविस्तर एवं अव्यवस्थित रूप में लिखने के लिए बाध्य होना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में स्वच्छता और परिशुद्धता के प्रयत्न में समय नष्ट नहीं करना चाहिए, कहीं इस प्रयत्न में भाषण का महत्त्वपूर्ण तथ्य न छूट जाए, बिलकुल नोट्स न लेने की अपेक्षा किसी भी प्रकार के नोट लेना उपयोगी होगा। तथापि आपके नोट जितने व्यवस्थित होंगे, उतने ही वे उपयोगी होंगे।

यह कहना कठिन है कि कितनी मात्रा में आपको नोट लेने चाहिए। यह व्याख्यान के विषय पर एवं विद्यार्थी की प्रकृति पर निर्भर करता है। कुछ विद्यार्थी विस्तार से नोट लेकर सर्वाधिक लाभ उठा सकते हैं और कुछ अपेक्षाकृत संक्षेप में लेकर। यदि आप सुगमता से लिख सकें, तो संभवतः विस्तार से लिखना ही सर्वोत्तम होगा।

**पठन की अपेक्षा व्याख्यान-नोट के लिए पुनर्विलोकन और भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।** व्याख्यान-नोट अपूर्ण होते हैं इसलिए क्लास के उपरांत रिक्त स्थानों की पूर्ति एवं साधारण भूलों को परिशुद्ध करने के लिए संक्षिप्त पुनर्विलोकन प्रायः आवश्यक होता हैं। इसके लिए विलंब करने पर आप भूल जाएँगे और अंत में कहेंगे, "मेरे भाषण-नोट से कोई अर्थ प्रकट नहीं होता।" अतः, यह सदैव उपयोगी होता है कि भाषण

के थोड़ी देर उपरांत ही भाषण-नोट को पुनः लिख लिया जाए। इससे आवृति के साथ अच्छा पुनर्विलोकन भी हो जाएगा और बाद में नोट समझने में कभी कठिनाई नहीं होगी।

अंत में, हम आपका ध्यान इस ओर आकर्षित करेंगे कि व्यवस्थित रूप में नोट्स को रखना महत्त्वपूर्ण है। एक विषय के सब नोट्स के लिए एक ही प्रकार के कागजों का उपयोग करना चाहिए और उन्हें एक साथ प्रत्येक पृष्ठ पर क्रम संख्या लिखकर व्यवस्थित रूप से रखना चाहिए और यत्र-तत्र उन्हें नहीं रखना चाहिए। ऐसी व्यवस्था निश्चित रूप से होनी चाहिए कि आपकी सामग्री आवश्यकता के समय सहज रूप में मिल जाए तथा सरलता से उनका अध्ययन हो सके।

परीक्षाएँ देना (Taking Examinations) :

इस शीर्षक को पढ़ते ही संभवतः आप कहेंगे, "ओह, यही तो मैं जानना चाहता हूँ—परीक्षा कैसे देनी चाहिए।" हममें से अनेक यह जानना चाहेंगे कि अध्ययन के बिना ही परीक्षा में कैसे पास हुआ जा सकता है। परंतु, वह कुछ ऐसा जादू है, जिसका निर्माण अब तक किसी मनोवैज्ञानिक ने नहीं किया है। वास्तव में, परीक्षाएँ देने का एक मात्र सामान्य नियम है, 'तैयारी करो।' इस तैयारी में इस अनुमान पर अधिक निर्भर न करें कि परीक्षक क्या पूछेगा। यह अनुमान कभी कार्यान्वित होता है और कभी नहीं। यह नीति कहीं अच्छी है कि प्रत्येक उचित प्रश्न को, जो परीक्षक द्वारा पूछा जा सकता है, तैयार किया जाए।

परीक्षाएँ प्रायः दो प्रकार की होती हैं, **१. वस्तुपरक** (Objective) **तथा २. निबंध-लेखन** (Essay), तथापि दोनों के मध्य अन्य प्रकार भी हैं। आप संभवतः इन दोनों प्रकारों की भिन्न रूप से तैयारी करना चाहेंगे और भिन्न अभिरुचियों से ही उन्हें ग्रहण भी करना चाहिए।

वस्तुपरक परीक्षाएँ प्रायः प्रत्यभिज्ञान-परीक्षाएँ होती हैं। वे केवल अपेक्षा रखती हैं कि आप उसे जब देखें, शुद्ध उत्तर अभिज्ञात कर सकें। प्रत्येक प्रश्न को ध्यान से पढ़ना और उत्तर देना महत्त्वपूर्ण है। कभी-कभी शुद्ध उत्तर एक मात्र महत्त्वपूर्ण शब्द 'नहीं' अथवा 'सदैव' पर आश्रित होता है और यदि आप असावधानी से प्रश्न पढ़ेंगे, तो ऐसा महत्त्वपूर्ण शब्द छूट जाएगा। बहुधा परीक्षा देने की सर्वोत्तम विधि यही है कि पहले उन प्रश्नों के उत्तर दें, जिनके विषय में आप पूर्णतः निश्चित हों और उन प्रश्नों पर पुनः ध्यान दें, जिनका उत्तर आप तत्काल नहीं दे सकते। इतना कर लेने पर कठिनतर प्रश्नों की ओर ध्यान दें। ध्यान रखें कि वस्तुपरक परीक्षा में केवल कुछ कठिन प्रश्नों पर बहुत अधिक ध्यान केंद्रित करना भूल है; क्योंकि वे अन्य प्रश्नों से प्रायः अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होते। यदि आप ऐसा करेंगे, तो आप प्रश्नपत्र

पूर्ण नहीं कर सकेंगे अथवा अन्य प्रश्नों के उत्तर उतावलेपन से देंगे तथा अनावश्यक भूलें करेंगे। यदि प्रश्नपत्र समाप्त करने पर कुछ समय शेष रहे, तो अपने उत्तरों का सावधानी से पुनर्विलोकन करें और अशुद्धियों को सुधारें।

निबंध-लेखन परीक्षाएँ समझने, व्यवस्थित करने तथा तथ्यों को **पुन स्मरण** करने की योग्यता पर बल देती हैं। उनके निमित्त समुचित तैयारी करने के लिए आपको विशेषतः बचत एवं आवृत्ति के सक्रिय सहयोग पर जोर देना चाहिए। परीक्षा देते समय स्मरण रखें कि परीक्षक प्रायः सुव्यवस्थित तथ्यपूर्ण उत्तर-पुस्तिका को, अव्यवस्थित और असंबद्ध सामग्रीयुक्त उत्तर-पुस्तिका की अपेक्षा, श्रेष्ठतर समझेगा। अतः, लिखना प्रारंभ करने से पूर्व अपने विचारों को क्रमबद्ध रूप से व्यवस्थित करें। ध्यान रखें कि परीक्षक ने जो पूछा है, उसी प्रश्न का उत्तर दें न कि उससे किंचित भिन्न प्रश्न का, जिसकी तैयारी संभवतः आपने अधिक अच्छी तरह की होगी। अपने उत्तरों को अपेक्षित संहति दें, असंबद्ध एवं अनावश्यक तथ्यों से उन्हें मुक्त रखें; क्योंकि वे अनेक परीक्षकों को प्रभावित नहीं करते। परीक्षा के अंत में अपने उत्तरों के पुनर्पठनार्थ कुछ समय रखने का प्रयत्न करें, ताकि जो महत्त्वपूर्ण तथ्य आप भूल गए हों, उन्हें लिख सकें अथवा भूलों को शुद्ध कर सकें।

### पूर्वयोजित अधिगम (Programmed Learning) :

अधिगम करने वाला व्यक्ति विद्यार्थी है। अधिगम में उसकी सहायतार्थ प्रायः अध्यापक रहता है। अध्यापक संभवतः इसलिए अपेक्षित है; क्योंकि वह अध्यापक की सहायता से जिस तीव्र गति से अधिगम कर सकता है, वह उसके बिना नहीं कर सकता। इसी प्रकार, उसके लिए पाठ्य-ग्रंथ हैं, जो उसे अधिगम में सहायता देने के लिए लिखे गए हैं। अध्यापकों एवं पाठ्य-ग्रंथों की तर्कसंगति यही है कि वे यथार्थतः अधिगम में विद्यार्थी की सहायता करते हैं। वे कितने प्रभावपूर्ण ढंग से यह सहायता करते हैं ?

### वैज्ञानिक अधिगम सिद्धांत (Scientific Learning Principles) :

अध्यापक एवं पाठ्य-ग्रंथ असंदिग्ध रूप में विद्यार्थियों की अधिगमार्थ सहायता करते हैं, अन्यथा वे गुमराह हो जाएँगे। यदि हम अधिगम के विज्ञान पर, इसमें तथा इसके पूर्व अध्याय में जो लिखा है, उसका पुनर्विलोकन करें, तो देखेंगे कि उनकी दो गंभीर सीमाएँ हैं।

(१) वे **कार्य करने** से अधिक उसके **प्रस्तुतीकरण** पर बल देते हैं। अध्यापक तथा पाठ्य-ग्रंथ विद्यार्थी के सक्रिय आवृत्ति-व्यापार को सीमित अथवा बाधित भी कर सकते हैं। अतः, वे मात्र उद्दीपन हैं। हम यह देख चुके हैं कि जब प्राणी उद्दीपन पर निर्भर करता है, तब अपेक्षाकृत अधिगम कम होता है और वह उनके संबंध में बहुत

कम विकास कर सकता है। अति प्रभावपूर्ण रूप में अधिगमार्थ प्राणियों में अनुक्रिया अवश्य होनी चाहिए। उनमें इसका अभिप्रेरण आवश्यक है, तदंतर उपयुक्त अनुक्रिया के लिए उन्हें अवसर भी मिलना चाहिए।

(२) अध्यापक एवं पाठ्य-ग्रंथ तत्काल **परिणाम-ज्ञान** नहीं देते। सामान्यतः परीक्षाएँ केवल यह बतलाती हैं कि विद्यार्थी समुचित अध्ययन कर रहा है, परंतु यह सूचना वे बहुत कम तथा बहुत विलंब से देती हैं। सर्वोत्तम अधिगम के लिए प्रत्येक अनुक्रिया के परिणाम का होना आवश्यक है। वह पुरस्कृत अथवा दंडित होनी चाहिए, उसे शुद्ध अथवा अशुद्ध की संज्ञा मिलनी चाहिए। किसी अधिगम-स्थिति पर पूर्ण अधिकार उपलब्ध करने के लिए प्राणी के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक अनुक्रिया के उपरांत वह जान सके कि वह परिशुद्ध ज्ञान से कितनी दूर अथवा कितना निकट है।

सिद्धांत-रूप में ये दोनों बाधाएँ दूर की जा सकती हैं यदि हम प्रत्येक विद्यार्थी को एक उप-शिक्षक दे सकें और वह उप-शिक्षक इन सिद्धांतों को प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित हो। तथापि व्यवहार रूप में यह कठिन है; क्योंकि उप-शिक्षक कम हैं और व्यय-साध्य है। पढ़ाए जाने वाले विद्यार्थियों की संख्या अधिक है और शिक्षकों की कमी रहती है।

अध्यापकों और पाठ्य-ग्रंथों के कुछ अभावों को चलचित्रों, स्लाइडों, रिकार्डों, प्रयोगशालाओं एवं प्रदर्शनों द्वारा निःसंदेह दूर किया जा सकता है। ये बहुधा रोचक होते हैं और विद्यार्थियों में अभिप्रेरण की वृद्धि करते हैं। वे प्रायः उपस्थापन के कलापूर्ण और सुंदर तरीकों को प्रस्तुत करते हैं। अध्यापन-प्रक्रिया में—विद्यार्थियों को अधिगम में सहायता देने के लिए—श्रव्य-दृष्टिक साधनों का भी महत्त्व है और भविष्य में उनका अधिक-से-अधिक उपयोग किया जाएगा। इन साधनों में भी दो न्यूनताएँ हैं—जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं। सक्रिय आवृत्ति की सुविधा एवं परिणाम-ज्ञान देना। तब अधिगम-प्रक्रिया के इन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को किस प्रकार उपलब्ध किया जा सकता है?

## पूर्वयोजित अधिगम :

इस समस्या पर संप्रति बहुत ध्यान दिया जा रहा है। अनेक प्रकार की नवीन अध्यापन-प्रविधियाँ प्रस्तावित की गई हैं, उनमें से कुछ का प्रयोग भी किया गया है और कुछ का स्कूल की प्रारंभिक कक्षाओं से कालेज की कक्षाओं तक विविध स्तरों पर विविध शैक्षिक संस्थाओं में प्रयोग किया जा रहा है। अधिकांश नवीन प्रविधियाँ इन दो वर्गों के अंतर्गत आती हैं—**अध्यापन मशीनें अथवा पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तकें।** इनमें से प्रत्येक का विवरण आगे दिया जाएगा, किंतु पहले हम उन तत्त्वों पर विचार करें, जो दोनों में समान हैं। ये चार हैं :—

प्रथम, इनमें **पूर्वयोजित अधिगम** नियोजित है। इसलिए इन्हें सामूहिक रूप में **पूर्वयोजित-अधिगम प्रविधियाँ** कहा जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि ये लिखित लिपियों अथवा कार्यक्रमों को सावधानी से, अधिगम में विद्यार्थी का मार्ग-दर्शन करने के निमित्त, तैयार करती हैं (लंसडेन और ग्लासेर, १९६०)।

द्वितीय, वे कार्यरत विद्यार्थी का नियोजन करती हैं—वे उसे अनुक्रियार्थ कुछ देती हैं, केवल उसके समक्ष कुछ सूचनाओं को प्रस्तुत ही नहीं करतीं। वे तथ्यों पर आधृत हैं कि यदि आप किसी को एक पहेली पूछें अथवा केवल एक प्रश्न करें, तो वह प्रायः उत्तर देगा। उसमें अनुक्रिया होगी। यदि उसके एक कार्य समाप्त करते ही अथवा एक प्रश्न का उत्तर देते ही आप दूसरा प्रश्न करें, तो वह उसका भी उत्तर देगा। यदि आपके प्रश्न संगत एवं रोचक होंगे और वह उन्हें जानता होगा, तो वह अधिक समय तक कार्य करता रहेगा—प्रायः पाठ्य-पुस्तक या भाषण की अपेक्षा बहुत अधिक समय तक। उपयुक्त रूप से अभिकल्पित अधिगम कार्यक्रम ऐसे प्रश्नों या समस्याओं को प्रस्तुत करता है जो विद्यार्थी को अनुक्रियाओं के लिए अभिप्रेरित करें।

तृतीय, पूर्वयोजित विधियों की विशेषता यह है कि वे विद्यार्थी को **अपनी गति से अग्रसर होने की** सुविधा देती हैं। वे भाषण निश्चित रूप से नहीं करतीं; क्योंकि वे प्रत्येक से एक समान समय की अपेक्षा करती हैं। तीव्र गति से सीखने वाले विद्यार्थी के लिए इनकी गति मंद और मंद गति से सीखने वाले विद्यार्थी के लिए इनकी गति तीव्र रहती है। आवृत्ति प्रविधियों के लिए भी यह सत्य है। दूसरी ओर, ये अधिगम-कार्यक्रम विद्यार्थियों को पृथक्-पृथक् भी दिए जा सकते हैं और प्रत्येक विद्यार्थी अपनी योग्यताओं एवं आदतों के अनुसार उन्हें तीव्र गति से अथवा मंद गति से कर सकते हैं।

चतुर्थ विशेषता अधिकांश अधिगम-कार्यक्रमों की यह है कि इनमें अधिगम के सोपान पर्याप्त **छोटे** रखे जाते हैं, जो हम जान्तव तथा मानव-अधिगम से एवं अपने अध्यापन-अनुभव से जानते हैं। उसके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन छोटे सोपानों द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी उन्नति कर सकता है, बड़े सोपानों द्वारा बहुत कम विद्यार्थी कर सकते हैं। छोटे सोपान यह निश्चित करते हैं कि व्यक्ति ने जो कुछ अधिगम किया है, वह अच्छी तरह से किया है और वह अगले सोपान के लिए वास्तव में तैयार है। पाठ्य-पुस्तकों तथा भाषणों के सोपान बहुधा बहुत बड़े होते हैं; क्योंकि प्रत्येक लघु सोपान की आवृत्ति के लिए उनमें समय और स्थान का अभाव रहता है।

आधुनिक पूर्वयोजित अधिगम विधियों की ये चार विशेषताएँ इस अनुच्छेद के प्रारंभ में उल्लिखित अध्यापकों एवं पाठ्य-ग्रंथों की प्रथम सीमा का—सक्रिय आवृत्ति

के अभाव अथवा विद्यार्थी में अनुक्रिया के अभाव का—पर्याप्त मात्रा में निवारण करती हैं। दूसरी सीमा परिणाम-ज्ञान के अभाव का निवारण यह किस मात्रा में करती हैं, यह प्रयोग की गई विशेष पूर्वयोजित विधि पर निर्भर करता है। अब हम दो सामान्य विधियों का विवेचन करें : प्रथम शिक्षण मशीनें एवं द्वितीय पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तकें।

शिक्षण मशीनें (Teaching Machines) :

तीस वर्ष से कुछ पूर्व ऐसे साधनों के प्रस्ताव किए गए थे, जो 'शिक्षकों' का काम दे सकें। १९५० के अंत तक इनमें बहुत कम प्रगति हुई। उस समय से हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्राध्यापक बी० एफ० स्कीनर (१९५८) के प्रयत्नों से इस विषय में रुचि बढ़ने लगी और उन्होंने विभिन्न विषयों के लिए मशीनों की अभिकल्पना की, उनका निर्माण किया और पूर्वयोजित अनेक मशीनों के प्रयोग किए। अब ऐसे दर्जनों साधन प्रयोग के लिए उपलब्ध हैं अथवा विकास की प्रयोगात्मक स्थिति में हैं। उन्हें **शिक्षण मशीनें** कहा जाता है, यद्यपि कुछ सीमा तक यह संज्ञा गलत है; क्योंकि वे न तो शिक्षित करती हैं और न 'शिक्षक' का स्थान ही लेती हैं। वे अधिगम में विद्यार्थियों की सहायता करने में शिक्षकों एवं पाठ्य-पुस्तकों की अनुपूरक हैं। 'शिक्षण मशीनें' क्या होती हैं, इसे स्पष्ट करने के लिए स्कीनर द्वारा अभिकल्पित दो प्रारंभिक मशीनों का विवरण हम देंगे।

शिक्षण मशीनों के प्रमुख प्रयोजनों में से एक है निरंतर परिणाम-ज्ञान प्रदान करना, व्यक्ति को बताना कि उसकी अनुक्रियाएँ परिशुद्ध हैं अथवा नहीं। वस्तुतः मशीन यह कार्य किस प्रकार करती है, यह शिक्षित किए जाने वाले व्यक्ति पर निर्भर करता है। गणित-जैसे विषय के लिए सतत् परिणाम-ज्ञान देते रहना अपेक्षाकृत सरल है। अतः, प्रारंभिक मशीनों में से स्कीनर द्वारा बनायी गई यह ऐसी मशीन थी, जो बच्चों को गणित सीखने में सहायता करती थी। उसकी मशीन विद्यार्थी के समक्ष एक समय में गणित का एक प्रश्न प्रस्तुत करती थी। विद्यार्थी मशीन के कुछ बटनों को दबाकर अपने प्रत्येक उत्तर को केवल रेकार्ड करता है। यदि उसका उत्तर शुद्ध है, तो वह मशीन तत्क्षण एक घंटी बजाती है या प्रकाश करती है अथवा किसी अन्य प्रकार से निर्देशित करती है कि उत्तर शुद्ध है।

मनोविज्ञान, समाज-विज्ञान और मानवशास्त्र में अधिगत सामग्री के निमित्त स्कीनर ने एक अन्य प्रकार की मशीन का निर्माण किया। इन विषयों के लिए प्रश्न एवं उत्तर दोनों एक टेप या मंडलक पर रखे जाते हैं (देखिए, चित्र ८.१५)। विद्यार्थी से जब प्रश्न किया जाता है, तब उसका उत्तर प्रच्छन्न रहता है। विद्यार्थी उचित स्थान पर अपना उत्तर लिखता है, तब वह उत्तर को अप्रच्छन्न करने के लिए नियंत्रक को दबाता है और इस प्रकार अपने उत्तर की तुलना शुद्ध उत्तर से कर सकता है।

दूसरे नियंत्रक को चला कर वह अन्य टेप या मंडलक को ऐसी स्थिति में घुमा सकता है, जिससे दूसरा प्रश्न उपस्थित हो सके।

**चित्र ८·१५. विद्यार्थी शिक्षण मशीन द्वारा अध्ययन कर रहा है। एक प्रश्न अथवा सवाल बाएँ वातायन में प्रस्तुत है और वह अपना उत्तर दाहिने वातायन के कागज टेप पर लिखता है। इसके उपरांत बटन को दबाकर वह बाएँ वातायन के ऊपरी भाग में शुद्ध उत्तर प्रकट कर सकता है। एक अन्य बटन यह नियंत्रित करता है कि नए प्रश्न और उत्तर टेप अपने-अपने वातायनों में आ जाएँ (बी० एफ० स्कीनर)।**

इस प्रकार की शिक्षण मशीनों की स्पष्टतः यह विशेषता है कि ये विद्यार्थी को उसकी प्रगति का यथार्थ रूप बताने में समर्थ हैं। इस रूप में वे पाठ्य-ग्रंथों एवं अध्यापकों के अभाव की पूर्ति करती हैं। परिणाम-ज्ञान द्वारा ये शिक्षण-मशीनें प्रभावी अधिगम को विकसित करती हैं तथा इसके अतिरिक्त वे विद्यार्थी को जो वह जानता है, उससे भिन्न ऐसे अधिगम में समय लगाने की योग्यता देती हैं, जिसे वह नहीं जानता। कक्षा के शिक्षण और पाठ्य-पुस्तकों के अध्ययन में बहुत-सा समय नष्ट होता है; क्योंकि विद्यार्थी कुछ सीखता नहीं अथवा जो वह जानता है, उसी को दोहराता है ( निश्चय ही यह प्रत्येक विद्यार्थी में पर्याप्त मात्रा में भिन्न होता है )। मशीन इसमें यह सहायता कर सकती है कि वह ऐसे प्रश्नों को उपस्थित करे, जिनका उत्तर पहले नहीं दिया गया है और ऐसे प्रश्नों को छोड़ दे जिनके परिशुद्ध उत्तर विद्यार्थी पहले दे चुका है। इसके अतिरिक्त टेप अथवा मंडलक का उपयोग उन प्रश्नों को दोहराने में हो सकता है, जिन्हें विद्यार्थी ने अशुद्ध किया हो। इस प्रकार इसे तब तक किया जा सकता है, जब तक विद्यार्थी पूर्णतः परिशुद्ध रूप से प्रत्येक प्रश्न का उत्तर न सीख ले। परंपरागत विधियों द्वारा इस प्रकार का पूर्ण अधिगम शायद ही कभी उपलब्ध हो सके।

शिक्षण मशीनें अधिगम के लिए दो ऐसी महत्त्वपूर्ण अवस्थाएँ प्रस्तुत करती प्रतीत होती हैं, जिन्हें अन्यथा उपलब्ध करना कठिन है। वे विद्यार्थी से उत्तर दिल-

वाती हैं तथा उसे अवगत कराती हैं कि अधिगम-प्रक्रिया में उसका स्तर कहाँ है। इन मशीनों की अपनी परिसीमाएँ भी हैं। वे अपेक्षाकृत बहुत महँगी होती हैं, साधारणतम मशीनें भी पाठ्य-पुस्तक से कई गुणा अधिक मूल्य की होती हैं। कालेज-स्तर अधिगम के लिए अपेक्षित जटिल मशीनों के मूल्य तो सैकड़ों डालरों तक पहुँचते हैं। इस कारण से तथा इनके भारी और एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की असुविधा के कारण भी, एक मशीन का उपयोग अनेक विद्यार्थियों के लिए होना चाहिए तथा उसका उपयुक्त निरीक्षण भी होना चाहिए, जैसे पुस्तकालय में। अतः, विद्यार्थी अपनी सुविधानुसार अध्ययन नहीं कर सकता। अंत में, मशीनों के लिए विशेष रूप से निर्मित कार्यक्रम उपकरण जैसे, टेप मंडलक या फिल्म अपेक्षित हैं। ये सब बाधाएँ उनकी उपयोगिता को सीमित करती हैं।

### पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तकें (Programmed Text-books) :

पाठ्य-पुस्तकों की ये परिसीमाएँ नहीं हैं। वे सुस्थापित पद्धतियों द्वारा निर्मित की जा सकती हैं। वे मशीन की तुलना में बहुत कम मूल्य पर बिकती हैं और वे प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा खरीदी एवं प्रयोग की जा सकती हैं। तब शिक्षण मशीन के स्थान पर पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तक का उपयोग क्यों न किया जाए ?

अधिगम सामग्री वस्तुतः पाठ्य-पुस्तक तथा शिक्षण मशीन द्वारा अपेक्षित दोनों रूपों में मुद्रित की जा सकती है। इस रूप में पूर्वयोजित अधिगम-विधियों के प्रथम सामान्य प्रयोजन को यह उपलब्ध कर सकती है। ये विद्यार्थियों के उत्तर देने के लिए प्रश्नों एवं समस्याओं को प्रस्तुत कर सकती हैं तथा उसे प्रत्युत्तर देने के लिए अभिप्रेरित कर सकती हैं। इस प्रकार की सामग्री पर प्रयोग किया गया है, जिसका उपयोग पाठ्य-पुस्तक के रूप में संतोषजनक परिणामों के साथ हो सकता है। वे निश्चय ही अधिगम में सहायक हैं। अतः, संभवतः कुछ समय उपरांत शिक्षण मशीनों के साथ-साथ पाठ्यपु-स्तकें भी शिक्षण-साधन के रूप में प्रचुर मात्रा में प्रचलित हो जाएँगी।

पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोजन गंभीरता से सतत् परिणाम-ज्ञान देना है। इस प्रकार की कुंजियाँ भी दी जा सकती हैं, जैसे परंपरगत पाठ्य-पुस्तकों और अध्ययन मार्गदर्शक पुस्तकों में होता था, जिनसे विद्यार्थी अपने उत्तर का परीक्षण कर सकें, परंतु प्रश्न करने में रत विद्यार्थी को इस परीक्षण के लिए अपनी पुस्तक में अन्यत्र देखना होगा अथवा पृथक् कागज का उपयोग करना होगा। इसमें घंटी नहीं बजेगी और न उसके उत्तर के साथ परिशुद्ध उत्तर ही प्रकट होगा। न ही यह पाठ्य-पुस्तक किसी प्रकार की स्वचालित आवृत्ति की सुविधा विद्यार्थी को दे सकती है, जिससे कि वह केवल अपने अशुद्ध उत्तरों की आवृत्ति कर सके। इस प्रकार पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तक तत्क्षण परिणाम-ज्ञान मशीन के सदृश प्रभावपूर्ण रूप में नहीं दे

सकती। जब कि पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तक की अपनी उपादेयता है, इसलिए उसकी परिसीमाओं के बावजूद उनका प्रयोग होना चाहिए। फलतः शिक्षण मशीनों तथा पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तकों का पूर्वयोजित अधिगम द्वारा अध्ययन में महत्त्वपूर्ण सहयोग है।

## अधिगम कार्यक्रम (The Learning Programme ) :

शिक्षण मशीन अथवा पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तक में प्रयुक्त वक्तव्य एवं प्रश्न **कार्यक्रम** कहलाते हैं। कोई विधि किस सफलता से शिक्षण करती है, यह इस कार्यक्रम पर निर्भर करता है और यह कार्यक्रम इस पर निर्भर करता है कि क्या कार्यक्रम-निर्माता ( कार्यक्रम निर्धारित करने वाला अध्यापक ) कार्यक्रम के सोपानों से तथा वक्तव्यों और प्रश्नों की समुचित व्यवस्था से अवगत है ? कार्यक्रम का निर्माण भी अन्य शिक्षण-साधनों और पाठ्य-पुस्तक-लेखन के ही सदृश एक विज्ञान नहीं, वरन् कला है। हम केवल यही कह सकते हैं कि शिक्षण के प्रत्येक प्रकार के अनुरूप हम अब तक सर्वोत्तम कार्यक्रम निर्धारित नहीं कर सके हैं। पूर्वयोजित अधिगम-विधियाँ भिन्न कार्यक्रमों के प्रयोग की सुविधा प्रस्तुत करती हैं तथा अनुसंधान द्वारा इसकी भी खोज करती हैं कि किस प्रकार के कार्यक्रम विद्यार्थी को विषय पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने में सहायता देने में सर्वाधिक प्रभावशाली होंगे—यह हम रूढ़िगत भाषणों एवं पाठ्य-पुस्तकों से शायद ही कभी करने में समर्थ हुए हैं।

चित्र ८. १६ और ८. १७ में क्रमशः शिक्षण-मशीनों पर किए गए प्रयोगात्मक कार्य में प्रयुक्त कार्यक्रमों के अंश प्रस्तुत हैं। चित्र ८·१६ तीसरी या चौथी श्रेणी के विद्यार्थियों को 'Manufacture' शब्द की वर्तनी सिखाने के निमित्त अभिकल्पित फ्रेम-समूह प्रदर्शित करता है। प्रत्येक अंक लिखित बक्स-वातायन में रखा हुआ एक फ्रेम है। ध्यान दें कि प्रथम समस्या में बालक केवल शब्द की नकल करता है। सब अक्षर बनाने के लिए तथा शब्दों की आंशिक वर्तनी करवाने की तैयारी के निमित्त उससे यह अभ्यास करवाया जाता है। अति लघु सोपानों के रूप में क्रमागत समस्याएँ, उससे केवल कुछ अक्षरों की पूर्ति की अपेक्षा करती है और प्रत्येक एक विशद् संकेत प्रस्तुत करती है, जिससे बालक के शुद्ध उत्तर देने की अधिक संभावना रहती है। ऐसे चार सोपानों के उपरांत उसे पूर्ण शब्द की वर्तनी की समस्या दी जाती है। तब भी संदर्भ की सहायता रहती है, जो प्रसंगवश अर्थवत्ता के घटक का उपयोग है।

दूसरा उदाहरण उच्चतर श्रेणी स्तर के हाई स्कूल भौतिकी-शिक्षण के कार्यक्रम का अंश है (चित्र ८.१७)। यहाँ **वाक्य-पूर्ति प्रविधि** का प्रयोग किया गया है।

ध्यान दें कि कार्यक्रम में सर्वप्रथम प्रश्न लिखे गए हैं और वे इतने स्पष्ट हैं कि छूट नहीं सकते। तथापि प्रत्येक प्रश्न में ऐसे शब्द या संकेत हैं, जो आगामी प्रश्न के उत्तर को सुगम करते हैं। इस प्रकार विद्यार्थी निश्चय ही शुद्ध उत्तर देने की ओर प्रवृत्त होता है तथा साथ-साथ पर्याप्त मात्रा में नवीन प्रत्यय भी सीखता है। प्रत्येक विषय का उत्तर लिखने के उपरांत वह उत्तर को अनावृत्त करके देख सकता है कि उसका उत्तर शुद्ध है या नहीं।

जैसा कि हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि अनेक शिक्षण मशीनें और पूर्व-योजित पद्धतियाँ अभी प्रायोगिक अवस्था में हैं और हमारे विद्यालयों की व्यवस्था में शिक्षण मशीनें तथा पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तकें धीरे-धीरे प्रयुक्त की जा रही हैं। हमने शिक्षण-प्रविधियों में होने वाली नवीन प्रवृत्तियों की केवल रूपरेखा प्रस्तुत की है—जो दृढ़ वैज्ञानिक सिद्धांतों का उपयोग करती हैं और शिक्षा तथा अधिगम के क्षेत्र में एक प्रकार के 'विकास' की सूचना देती हैं।

**चित्र ८.१६ शिक्षण मशीनों पर प्रयोगात्मक कार्य में प्रयुक्त कार्यक्रम का अंश। यह फ्रेम-समूह तीसरी-चौथी श्रेणी के विद्यार्थियों को 'Manu-facture' शब्द की बर्तनी सिखाने के निमित्त अभिकल्पित किया गया है। (बी० एफ० स्कीनर, १९५८)।**

१. Manufacture का अर्थ है बनाना या निर्माण करना। Chair Factories Manufacture chairs (अर्थात् कुर्सी-कारखाने कुर्सियाँ निर्माण करते हैं)। शब्द की नकल यहाँ कीजिए।

□ □ □ □ □ □ □ □ □ □ □

२. शब्द का एक अंश factory शब्द के एक अंश के सदृश है। दोनों अंश एक प्राचीन शब्द से व्युत्पन्न हुए हैं, जिसका अर्थ था—बनाना या निर्माण करना।

**m a n u □ □ □ □ u r e**

३. शब्द का एक अंश 'manual' शब्द के एक अंश के सदृश है। हाथ के लिए प्रयुक्त एक पुराने शब्द से दोनों अंश बने हैं। हाथ से अनेक वस्तुएँ बनायी जाती थीं।

**□ □ □ □ facture.**

४. दोनों रिक्त स्थानों में एक ही वर्ण प्रयुक्त होता है।

**m □ nuf □ cture**

५. दोनों रिक्त स्थानों में एक ही वर्ण प्रयुक्त होता है।

**m a n □ f a c t □ r e**

६. **Chair-factories □□□□□ □□□□□□ chairs.**

| पूर्ण किए जाने वाले वाक्य | पूरक शब्द |
|---|---|
| १. दमक-ज्योति के महत्त्वपूर्ण भाग हैं बैटरी और बल्व । जब हम दमक-ज्योति को 'प्रकाशित करते' हैं, हम एक स्विच बंद करते हैं और वह बैटरी और———— में संबंध स्थापित करता है । | बल्ब |
| २. जब हम दमक-ज्योति को प्रकाशित करते हैं, एक विद्युत्धारा बारीक तारों से बहती हुई————में जाती है और उसे उष्ण करती है । | बल्ब |
| ३. जब उष्ण तार तीव्रता से दमकता है, तब हम कहते हैं कि यह उष्णता और————निःसृत अथवा विकीर्ण करता है । | प्रकाश |
| ४. बल्ब के पतले तार को तंतु कहते हैं । बल्ब तब 'प्रकाशित' होता है, जब————तरंग के द्वारा तंतु उष्ण हो जाता है । | विद्युत् |
| ५. जब मंद बैटरी हल्की तरंग उत्पन्न करती है, बारीक तार या ————बहुत उष्ण नहीं होता । | तंतु |
| ६. एक तंतु जो कम उष्ण होता है, वह————प्रकाश निःसृत अथवा विकीर्ण करता है । | कम |
| ७. 'उत्सर्जन' का अर्थ है 'निःसृत करना' । तंतु द्वारा 'निःसृत' अथवा 'उत्सर्जित' की गई प्रकाश की मात्रा इस पर निर्भर करती है कि तंतु कितना———— है । | उष्ण |
| ८. तंतु जितना अधिक उष्ण होता है, उससे उत्सर्जित प्रकाश उतना ही————होता है | दमकपूर्ण या तेज |
| ९ यदि दमक-ज्योति की बैटरी मंद है, तो भी बल्ब का———— चमक सकता है, परंतु केवल मंद लाल रंग में । | तंतु |
| १०. बहुत उष्ण तंतु से निःसृत प्रकाश पीले या सफेद रंग का होता है । जो तंतु बहुत उष्ण नहीं होता, उससे निःसृत प्रकाश का रंग———— होता है । | लाल |

**चित्र ८.१७ शिक्षण मशीन से उच्च स्कूल श्रेणी के भौतिकी शिक्षण के कार्यक्रम का अंश । मशीन एक समय में एक तथ्य प्रस्तुत करती है । विद्यार्थी रिक्त स्थान की पूर्ति करता है और दाईं ओर लिखित संबंधित शब्द या वाक्यांश को आवृत्त करता है । (बी० एफ० स्कीनर, १९५८ ) ।**

**मशीनें और शिक्षक (Machines and the teacher ) :**

विद्यार्थी और शिक्षक जब पहली बार शिक्षण मशीनों एवं पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तकों के संबंध में सुनते हैं, तब प्रायः पूछते हैं कि क्या इनके निर्माता 'शिक्षक के बिना कार्य चलाने का प्रयास' कर रहे हैं। निश्चय ही मशीनों और पुस्तकों में शिक्षक के वैयक्तिक संपर्क का अभाव है तथा विद्यार्थी और शिक्षक के मध्य जो संपर्क होता है, वह कुछ ऐसा तथ्य प्रदान करता है, जिसे मशीनें और पुस्तकें करने में असमर्थ हैं। इसके अतिरिक्त यांत्रिकी कार्यक्रम अभी इतना विकसित नहीं है कि जटिल प्रत्ययों को सिखा सके या 'व्याख्या' कर सके। पूर्वयोजित अधिगम विधियाँ कभी भी शिक्षकों के बिना उसी प्रकार कार्य नहीं कर सकेंगी, जिस प्रकार उद्योग-क्षेत्र में व्यक्तियों के बिना केवल मशीनें कार्य नहीं करतीं। यदि पूर्व-योजना को सफलतापूर्वक विकसित किया जाए, तो यह अध्यापक के महत्त्वपूर्ण सहायक के रूप में कार्य कर सकती है। यह विद्यार्थी को अपना गृह-कार्य करने के लिए अभि-प्रेरित कर सकती है, जो अध्यापक के लिए कर सकना कठिन है। यह ऐसे तथ्यों पर अधिकार पाने में उसकी सहायता कर सकती है, जिसमें केवल स्मरण करना या कठिन परिश्रम करना ही अपेक्षित है, और इस प्रकार कक्षा में आने से पूर्व वह उनसे परि-चित हो जाता है। इससे अध्यापक को तथ्य, नियम, सिद्धांत इत्यादि प्रस्तुत करने से मुक्ति मिल सकती है और विद्यार्थी स्वाध्याय द्वारा उन्हें अच्छी तरह सीख सकते हैं। यदि इन तथ्यों की उपलब्धि पूर्वयोजित विधियों से हो जाती है, तो क्लास के विचार-विनिमय तथा व्याख्यात्मक भाषण अधिगम के लिए आज की अपेक्षा अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। पूर्वयोजित अधिगम संपूर्ण अधिगम-प्रक्रिया को अधिक मितव्ययी भी बना सकता है।

## सारांश

(१) किसी कौशल के अधिगम की ह्रासोन्मुख भूलों अथवा विकासोन्मुख शुद्धता को वक्र रूप में अंकित किया जा सकता है। ऐसे बक्र में प्रायः पठार (समतल स्थल) होती है। बहुधा ये अधिगम के प्रकार में अंतरण या अभिप्रेरण में परिवर्तन प्रदर्शित करती हैं।

(२) अधिगम की गति को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चार है : (अ) क्या दीर्घकालीन अभ्यास का विभाजन बार-बार विश्रामों में अथवा निरंतर 'रटने' की कालावधि में विभाजित है (ब) तत्काल और परिशुद्ध परिणाम-ज्ञान दिया जाता है अथवा नहीं (स) क्या आवृत्ति तथा पठन दोनों में समय व्यतीत किया जाता है अथवा केवल पठन में, (द) क्या अधिगत की जाने वाली सामग्री सार्थक है अथवा अपेक्षाकृत निरर्थक।

३. स्मरण में प्रतिमा महत्त्वपूर्ण है। कुछ छोटे बच्चों में और विरल रूप से वयस्क व्यक्तियों में मूर्तकल्पी प्रतिमा की योग्यता होती है, वे चित्रात्मक दक्षता से विगत अनुभवों को पुनः स्मरण कर सकते हैं। स्मरण-प्रतिमा विशेषतः एक अनुभव की अपूर्ण अनुकृतियाँ हैं।

४. चाक्षुष-दृश्य जिनकी संहति विगत साहचर्यों, जैसे मुख या भवन, द्वारा हो सकती है, सुविधा से स्मरण किए जाते हैं। परंतु, जिनका किसी भी परिचित वस्तु से साम्य नहीं रहता या जिन्हें योजित नहीं किया जा सकता, उनको स्मरण करना बहुत कठिन है।

५. शब्दों के मध्य साहचर्य को अधिगम करने के लिए अर्थवत्ता महत्त्वपूर्ण है। परिचित शब्दों में सहज ही साहचर्य स्थापित हो जाता है, निरर्थक शब्दों में यह साहचर्य स्थापित करना कठिन है।

६. शब्दों की सूचियों के अधिगम में पूर्वानुमानित विधि द्वारा—अनुवर्त्ती शब्द और उसके तत्काल पूर्ववर्त्ती शब्द में साहचर्य स्थापन द्वारा—हम देखते हैं कि निकटवर्त्ती शब्दों के मध्य साहचर्य-स्थापन के अतिरिक्त पृथक् शब्दों में भी दूरवर्त्ती साहचर्य स्थापित होता है। ये दूरवर्त्ती साहचर्य उपयुक्त साहचर्यों में बाधा पहुँचाते हैं। ये बहुत दूर तक इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं कि सूची के प्रारंभ और अंत के साहचर्यों को अधिगम करना मध्य के साहचर्यों के अधिगम की अपेक्षा अधिक सुगम है।

७. वाक्यों में, कुछ शब्दों का अनुवर्तन कुछ शब्द करते हैं और अनुक्रमिक साहचर्य स्थापित होते हैं। ये भाषा के सांख्यिकीय स्वरूप की रचना करते हैं।

८. प्रशिक्षण के अंतरण से अभिप्राय है—एक कार्य के अधिगम का अनुवर्त्ती अन्य कार्य के अधिगम का प्रभाव। अंतरण विध्यात्मक हो सकता है अथवा निषेधात्मक। जब दो कार्यों में सन्निहित उद्दीपनों और अनुक्रियाओं में सादृश्यता होती है, तब अंतरण विध्यात्मक होता है। जब अपेक्षित अनुक्रियाएँ प्रतिस्पर्धा या विरोधी होती हैं, तब अंतरण निषेधात्मक है।

९. औपचारिक शिक्षा में जिन विषयों में तात्त्विक समानता बहुत कम होती है, उनमें अंतरण भी बहुत कम अथवा बिलकुल नहीं होता। एक विषय के दूसरे विषय पर अंतरण की मात्रा दोनों विषयों की तात्त्विक समानता पर निर्भर करती है।

१०. धारण-परिमापन की तीन मूलभूत विधियाँ हैं : १. पुनःस्मरण, २. प्रत्यभिज्ञान और ३. बचत। इनमें पुनःस्मरण न्यूनतम संवेदनशील है और बचत (उसी तथ्य के पुनर्धिगम में) सर्वाधिक संवेदनशील है। पुनःस्मरण द्वारा मापित करने पर बहुत

कम धारण होने पर भी पुनर्धिगम बचत के लिए अपेक्षित अवधि के परिमापन में पर्याप्त धारण हो सकता है।

११. कहानी अथवा चित्र-संबंधी स्मृति में कालांतर से गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है। सूक्ष्मताएँ विलुप्त हो जाती हैं, स्मृत अंश परिचित वस्तुओं और घटनाओं के सदृश रह जाते हैं तथा कुछ तत्त्व रूढ़ हो जाते हैं।

१२. विस्मरण में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक साहचर्यों में बाधा है। क्रमागत अधिगत तथ्यों में बाधा होने पर यह पूर्वलक्षी अवरोध तथा पूर्व-अधिगत साहचर्यों में बाधा होने पर यह अनुकारी अंतर्बाधा का रूप लेती है।

१३. प्रभावपूर्ण रूप से अध्ययन करने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या अध्ययनार्थ अभिप्रेरण-विकास की है, परंतु, इसमें विद्यार्थी को स्वयं किसी प्रकार से योग देना चाहिए। अध्ययन-कार्यक्रम संयोजना अनेक विद्यार्थियों के लिए सहायक है।

१४. अध्ययन की प्रविधियों पर किए गए व्यवस्थित अनुसंधान द्वारा सर्वे क्यू ३ आर नामक अध्ययन-कार्यक्रम विकसित हुआ। इसके पाँच सोपान हैं, १. सर्वेक्षण २. प्रश्न, ३. पठन, ४. मौखिक आवृत्ति और ५. पुनर्विलोकन।

१५. शिक्षकों और पाठ्य-पुस्तकों की दो गंभीर सीमाएँ हैं। वे कार्य करने की अपेक्षा उसके उपस्थापन को महत्त्व देते हैं तथा वे तात्कालिक परिणाम-ज्ञान देने में असमर्थ हैं। इनकी अनुपूर्ति के लिए अधिगम-कार्यक्रमों के शिक्षण मशीनों के द्वारा अथवा पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तकों द्वारा विकसित किया गया। इस प्रकार की पूर्व-योजित अधिगम-विधियाँ विद्यार्थी को उत्तर देने की सुविधाएँ देती हैं, उनको अपनी गति से अग्रसर होने देती हैं और अधिगम-सोपानों को पर्याप्त छोटा बना देती हैं।

१६. शिक्षण मशीनों और पूर्वयोजित पाठ्य-पुस्तकों की विभिन्न उपयोगिताएँ और सीमाएँ हैं। दोनों की प्रभावोत्पादकता उनके कार्यक्रमों पर आधृत हैं, जिनका विकास अनुसंधान द्वारा 'प्रयत्न और भूल' विधि से होना चाहिए। पूर्वयोजित मशीनें और पाठ्य-पुस्तकें शिक्षकों की अनुपूर्ति के निमित्त अभिकल्पित की गई हैं, उनका स्थानापन्न करने के लिए नहीं।

## पठनार्थ सुझाव :

**Deese, J. —The Psychology of Learning ( 2nd Ed. ) New York: McGraw-Hill, 1958.**

अधिगम के मनोविज्ञान पर प्रारंभिक पाठ्य-पुस्तक।

**Hilgard, E. R. Thearies of Learning ( 2nd Ed.) New York: Appleton-Century-Cr )fts, 1956.**

प्रमुख अधिगम-सिद्धांतों का संतुलित विवेचन तथा इन सिद्धांतों से संबंधित प्रयोगों का विवेचन ।

Keller, F. S., and Schoenfeld, W.N. —Principles of Psychology. New York: Appleton-Century-Crofts, 1950.

मनोविज्ञान की सामान्य भूमिका, जो मानव-व्यवहार की यांत्रिक अधिगम के सिद्धांतों के अनुरूप व्याख्या करती है ।

Kingsley, H. R. & Garry, R. —Nature and Conditions of Learning ( 'nd Ed ) Englewood Cliffs, N. J. Prentice Hall, 1957.

पाठ्य-पुस्तक, अधिगम के सामान्य विन्यास पर विवेचन ।

Lumsdaine, A. A., and Glaser, R. (eds.)—Teaching Machines and Programmed Learning—Washington, D.C. National Education Association, 1960.

संप्रति किए गए पूर्वयोजित अधिगम-विधियों के कार्यों की सूचना देने वाली पुस्तक ।

McGeoch, J. A., and Irion, A. L.—Psychology of Human Learning ( Rev. Ed. ) New York : Longmans, 1952.

मानव-अधिगम पर किए गए प्रयोगों की विस्तृत सूचना देने वाला ग्रंथ ।

Morgan, C. T., and Deese, J. —How to Study, New York: McGraw--Hill, 1957.

अध्ययन की प्रविधियों का विवरण प्रस्तुत करने वाली पुस्तक ।

Stephens, J. M., Educational Psychology ( 2nd Ed. ) New York: Halt, Rinehart and Winston, 1956.

अधिगम के सिद्धांतों का शिक्षा की समस्याओं पर प्रयोग ।

Woodworth, R. S., and Schlosberg, H.—Experimental Psychology ( Rev. Ed. ) New York : Holt, Rinehart and Winston, 1954.

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का विस्तृत अध्ययन । इसमें अधिगम, स्मरण तथा विस्मरण पर अध्याय हैं ।

अध्याय ९

# भाषा और विचारणा या चिंतन

राह चलते किसी व्यक्ति से अथवा कालेज के द्वितीय वर्ष के किसी विद्यार्थी से पूछिए कि पशु से मनुष्य को कौन सी-वस्तु भिन्न करती है, तो संभवतः वह कहेगा, 'मनुष्य बोल सकते हैं और सोच सकते हैं, जानदर ये नहीं कर सकते।' यह उत्तर लगभग ठीक है। जंतुओं में कुछ चिह्न होते हैं, जिनसे वे अभिव्यक्त कर सकते हैं और सोच सकते हैं, किंतु उनमें और मनुष्यों में बहुत अधिक अंतर है। राह चलते व्यक्ति के लिए यह इतना स्पष्ट नहीं है कि व्यक्ति में एक ऐसा गुण भी है, जो पशु को पूर्णतः ढक लेता हैं। यह है मानव की संप्रत्ययों की निर्माण-योग्यता। मनुष्य में प्रतिक्रिया होगी या वह सोचेगा कि वस्तु की सामान्य विशेषताएँ क्या हैं—जैसे लालिमा या अच्छाई, जो उसने अपने पूर्व अनुभवों से सीखी हैं।

## चिह्न, प्रतीक और अर्थ (Signs, Symbols & Meaning ) :

उपर्युक्त चर्चित तीन योग्यताएँ—भाषा का प्रयोग, संप्रत्यय का उपयोग और चिंतन—अन्योन्याश्रित है। एक की चर्चा बिना दो का उल्लेख किए संभव नहीं। किंतु हमें किसी एक स्थल से प्रारंभ करना चाहिए और वह वस्तु जो तीनों में सामान्य है, वह है तीनों में अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग, दूसरों पर अभिव्यक्त करने और स्वयं सोचने में भी। अतः, हम प्रतीकों से और किस प्रकार वे अर्थ ग्रहण करते हैं, से प्रारंभ करेंगे। तब हम इस स्थिति में होंगे कि विचारण, संप्रत्यय-निर्माण और भापा पर कुछ विस्तार से विचार कर सकें।

## चिह्न, संकेतक और प्रतीक ( Sign Singals & Symbols ) :

ट्रैफिक के चौराहे पर लाल बत्ती का सामना होने पर हम उस पर से बिलकुल भिन्न दृष्टिकोणों से विचार करते हैं: मनोभौतिक ( Psychophysical ) लक्षणों से युक्त केवल लाल बत्ती के रूप में (देखिए, अध्याय—११)—चौराहा पार करने के लिए मना करने वाला एक चिह्न। एक संकेत वह उद्दीपन है, जो किसी और वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है। अतः, जब भी हम किसी उद्दीपन का किसी निश्चित प्रकार से प्रत्युत्तर देना सीख लेते हैं, वह उद्दीपन-चिह्न की विशेषताओं से संपृक्त हो जाता है, संकेत का रूप ग्रहण कर लेता है। जब पावलोव ने कुत्ते को, घंटी की प्रतिक्रियास्वरूप लार आने के लिए अनुबंधित किया, वह एक उद्दीपन को एक चिह्न के

रूप में परिवर्तित कर रहा था—एक संकेत जो आहार आने का सूचक है। जब घंटी बजते ही कुत्ते के मुँह में लार आने लगी, उसका प्रत्युत्तर 'आंशिक रूप' में होने लगा—यह 'आंशिक रूप' जैसा कि हम आगे देखेंगे, महत्त्वपूर्ण है—जैसा कि यह आहार के संबंध में होगा।

यहाँ हमें संकेत, संकेतक और प्रतीक के सूक्ष्म अंतर को समझ लेना चाहिए (इंगलिश एंड इंगलिश, १९५८)।

**चिह्न या संकेत ( Sign ) :**

[illegible] शब्द है, यह किसी बात को प्रकट करने वाले किसी भी उद्दीपन
सबसे व्यापक [illegible]क और प्रतीक भी चिह्न हैं, किंतु वे संवाद देने के
के लिए प्रयुक्त हो सकता है। सक[illegible]तः वह चिह्न है, जो इंगित करता
आशय की ओर इंगित करते हैं। एक संकेतक व[illegible] अर्थ व्यापक है।
है कि कुछ घटित होने का समय और स्थान निकट है। प्रतीक का [illegible]
यह वह चिह्न है, जो किसी अन्य वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है। अतः, ट्रैफिक संकेत और पावलोव की घंटी संकेतक और प्रतीक दोनों ही हैं; क्योंकि वे कुछ करने या कुछ होने के समय को इंगित करते हैं और वे किसी बात को प्रस्तुत भी करते हैं। 'रुको' शब्द भी इसी प्रकार दोनों है—एक संकेतक भी और प्रतीक भी। किंतु, 'गृह' शब्द केवल प्रतीक है, संकेतक नहीं; क्योंकि यह 'घर' नामक वस्तु की ओर इंगित करता है किंतु किसी स्थान और काल का निर्देश नहीं करता। भाषा के शब्द प्रायः प्रतीक होते हैं; क्योंकि वे किसी व्यक्ति के द्वारा किसी वस्तुविशेष के लिए कहे जाते हैं। कभी-कभी शब्दों का आशय अस्पष्ट रह जाता है, जब कोई व्यक्ति कहता है 'उच्छ्', इस रूप में यह शब्द एक चिह्न है, लेकिन प्रतीक ( या संकेतक ) नहीं।

घंटी द्वारा लार का अनुबंधन सहजतम प्रकार का संकेतक है। यह केवल एक आशय प्रकट करता है कि आहार आने वाला है। पावलोव ने अपने कुत्तों को जटिल संकेतक भी सिखाए थे। उसका अगला कदम था एक प्रकार की घंटी 'आहार' का संकेतक हो और दूसरे प्रकार की घंटी 'आहार नहीं' का। और, इस प्रकार अनुबंधित अंतर को उसने स्थापित किया। इनकी तुलना हमारे ट्रैफिक चौराहों पर लाल बत्ती 'रुको' और हरी बत्ती 'जाओ' के संकेतक से की जा सकती है। कभी-कभी प्रयोगशाला में अथवा सर्कस-प्रशिक्षण में जंतुओं जटिल संकेतों का सेट सिखाया जाता है, किंतु परिष्कृत संकेतों, संकेतकों और प्रतीकों की प्रणाली को देखने के लिए हमें जंतुओं का नहीं, मनुष्यों का आधार लेने पड़ेगा।

**प्राकृतिक चिह्न या संकेत ( Natural Signs ) :**

साधारणतः किसी उद्दीपन का प्रत्युत्तर देना सीखना वास्तव में किसी संकेत का सीखना है। वह वस्तु, जिसके लिए संकेत है, उस संकेत का अर्थ है। (अर्थ के विषय

में हम अधिक विस्तार से आगे सीखेंगे) संकेत के कम-से-कम दो भिन्न रूपों में अर्थ ग्रहण कर सकते हैं। एक है प्रकृति में होने वाली घटनाओं से 'प्राकृत संबंध'। उदाहरणार्थ, हम सीखते हैं कि भौंकने के उपरांत कुत्ता काट सकता है, बादलों का गर्जन वर्षा के आगमन का सूचक है, जहाँ धुआँ है वहाँ आग होती है। इन उदाहरणों में जो अर्थ हमने ग्रहण किया, वह हमारे पूर्व अनुभवों से प्राप्त ज्ञान पर आधारित है कि कुछ उद्दीपन साथ-साथ होते हैं।

जंतु और मानव प्राकृतिक संकेतों के अर्थ को समझ कर अपने पर्यावरण में रहना और जीवित रहना सीखते हैं। ऐसे संकेतों की संख्या सीमित है और अनेक प्रकार की ऐसी घटनाएँ हैं, जिनके घटित होने की सूचना देने वाले प्राकृतिक संकेत नहीं हैं।

शब्द : प्रतीक रूप में ( Words as Symbols ) :

द्वितीय श्रेणी के संकेतों के अंतर्गत वे संकेत हैं, जिनका आविष्कार मानव ने किया है और उन्हें घटनाओं से संबद्ध कर दिया है। ये संकेत, चूँकि कुछ सूचित करने के आशय से प्रयुक्त किए गए हैं, प्रतीक कहला सकते हैं। पावलोव के प्रयोग 'घंटी' ऐसा ही एक आविष्कृत प्रतीक है। पावलोव की अनुबंधन-प्रक्रिया ने इसका अर्थ 'निर्दिष्ट' किया है। ट्रैफिक चौराहे पर लाल बत्ती दूसरा आविष्कृत प्रतीक है। ऐसे प्रतीक जब आविष्कृत होते हैं, तो हम इच्छानुसार किसी भी संख्या में उन्हें आविष्कृत कर सकते हैं और बाद में तदनुरूप घटनाओं से उन्हें संबंधित कर सकते हैं।

संकेत के अनेक प्रकार प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त हुए हैं और हो सकते हैं। संसार के कुछ भागों में जिनमें अमेरिका की कुछ सड़कें भी हैं, सीटी बजाना एक प्रतीक के रूप में अच्छी तरह समझा जाता है, अन्य भागों में ढोल का बहुत प्रचलन है। प्राय: सभी समाजों में अंगविक्षेपों ( हाथ और मुख के संकेतों ) का प्रयोग प्रतीकों के रूप में होता है। ऐसे समाज, जो भिन्न भाषाएँ बोलते हैं, पर एक दूसरे के निकट संबंध में है—जैसे अमेरिकन इंडियन—अनेक अंगविक्षेपों का प्रयोग भाषा की बाधा पर विजय पाने के लिए करते हैं (देखिए, चित्र ९·१)। प्रतीकों की सबसे अधिक विकसित प्रणाली भाषा है, जिसमें शब्दों के भिन्न संयोजनों को बोला और लिखा जाता है। भाषा, जैसा कि हम आगे देखेंगे, केवल शब्दमाला नहीं है, किंतु कुछ समय के लिए हम यही सोच लें कि यह शब्दमाला है। हर शब्द उद्दीपन है, जो अनुबंधन या साहचर्य द्वारा हमारे अनुभव की किसी-न-किसी घटना को सांकेतिक ( प्रतीकात्मक ) अभिव्यक्ति दे सकता है। भाषा की प्रमुख विशेषता, प्राकृतिक संकेतों से भिन्न, यह है कि इसमें विविध प्रतीक निर्मित करने की महान् क्षमता है। भाषा संभाव्य प्रतीकों को सैकड़ों और

हजारों की संख्या में उपलब्ध करवा सकती है, जब कि प्रकृति द्वारा दिए गए प्रतीक अथवा अन्य साधनों से निर्मित प्रतीक अल्पसंख्यक ही होते हैं।

संकेत और मुद्राएँ भाषा की बाधाओं को पार कर सकते हैं।
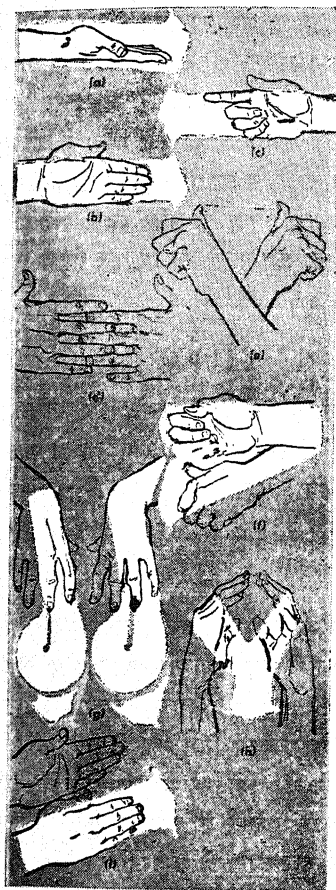
**चित्र ९·१ भारतीय संकेत—भाषा के कुछ हस्त-संकेत। ध्यान से देख कर बताएँ कि कौन-से संकेत तीव्रता, झगड़ा, मछली, भोजन, गृह, उष्ण, क्षुधा, सर्प और बर्फ के लिए प्रयुक्त किए गए हैं। (सही उत्तर पृष्ठ ४५५ के नीचे छोटे-पतले टाइप में दिए गए हैं) (टाम किंस के अनुसार १९३१)।**

भाषा के संबंध में दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि हर व्यक्ति में शब्द-निर्माण और उद्दीपन-रूप में शब्द ग्रहण करने का यंत्र है। इसके लिए कोई बोझिल और व्यय-साध्य यंत्र अपेक्षित नहीं है। हमारा यह शब्द-निर्माणकारी यंत्र हमें अत्यल्प बोझ, आकार और शक्ति व्यय अनेक वर्षों से कष्टयुक्त रख रहा है। तब इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि शब्द परस्पर एवं आपस में बातचीत करने का सुविकसित तंत्र हो गया है।

केवल यंत्र से अधिक इससे आशा की जाती है। विभेदों (विभिन्न वस्तुओं) की बहुत बड़ी संख्या को सीखना आवश्यक है। इनके बिना हमारे शब्द व्यर्थ होंगे; क्योंकि व्यक्ति प्रतीक का प्रयोग तब तक नहीं कर सकता, जब तक वह यह अंतर न कर सके कि विभिन्न वस्तुओं में वह किसका प्रतीक या संकेतक है। उदाहरणार्थ,

'गृह' और 'वृक्ष' के प्रतीक विशेष वस्तुओं के लिए हैं। व्यक्ति में इन दोनों वस्तुओं की भिन्नता को समझने की योग्यता होनी चाहिए। यद्यपि अनेक जानवरों में कुछ वस्तुओं की सरल भिन्नता को समझने की योग्यता होती है, किंतु मनुष्य के समान सूक्ष्म भिन्नता या अंतर को समझने की क्षमता एक भी जानवर में नहीं होती। उदाहरण के लिए उन सब भिन्न वस्तुओं पर विचार करें, जिनके लिए हम 'गृह', 'वृक्ष', 'पौधा', 'कार' और 'सड़क' इत्यादि जैसे प्रतीकों का व्यवहार करते हैं। अनेक व्यक्तियों ने वस्तुतः ऐसी हजारों वस्तुओं की भिन्नता को समझना सीख लिया है। और वस्तुओं के अतिरिक्त अन्य बहुतों का अंतर वे जानते हैं, जैसे भाषा में प्रयुक्त शब्दों का अंतर भी। इन विभिन्नताओं को समझना परिश्रम-साध्य और समय-साध्य है। इस प्रक्रिया को, जैसा कि हम आगे देखेंगे, स्वयं भाषा से ही बहुत सहायता मिलती है। अंत में, व्यक्ति इसीलिए भाषा का प्रभावपूर्ण प्रयोग कर सकता है; क्योंकि वह अनेक विभेदों को करना सीख सकता है।

### अर्थ का अर्थ (Meaning of Meaning) :

हमने पिछले अध्याय (अध्याय-७) में देखा है कि दो घटनाओं, उद्दीपनों या प्रतिक्रियाओं के बार-बार साथ दोहराए जाने पर उनमें साहचर्य स्थापित हो जाता है। अन्यत्र उद्दीपन की पूर्णता का भी उल्लेख किया गया है (अध्याय-८)। अब हम यह देखेंगे कि साहचर्य और अर्थपूर्णता में क्या संबंध है।

### सहचारी प्रक्रम :

प्रथम, हम पुनः पावलोव के कुत्ते की लार-ग्रंथियों को घंटी द्वारा अनुबंधित करने के प्रयोग पर विचार करेंगे। अनुबंधन के हमारे इस उदाहरण में, हम घंटी को (अनुबंधन उद्दीपन or C. S.—Conditioning Stimulus) (लार अननुबंधित प्रतिक्रिया—The Uncondition Stimulus) के साथ साहचर्य निर्माणकारी प्रतिक्रिया के रूप में प्रस्तुत करते हैं। यह पर्याप्त स्पष्ट है। अब हमें ध्यान रखना चाहिए कि कुत्ते की आहार के प्रति अननुबंधित प्रतिक्रिया मात्र लार आने से अधिक है। कुत्ता भोजन खाता है। दूसरी ओर अनुबंधित उद्दीपन, घंटी, केवल **लार को उद्दीप्त** करती है।

यहाँ तथ्य यह है कि CS (अनुबंधित उद्दीपन) केवल आंशिक रूप से U.S. (अननुबंधित उद्दीपन) के प्रति अनुक्रिया को उद्दीप्त करता है। स्पष्टतः यह भोजन को दृष्टिगत रखता है और संभवतः अन्य स्थितियों को भी जो कुत्ते को भोजन खाने के लिए उद्दीप्त करती हैं। यह मान्य तथ्य जान पड़ता है; क्योंकि कुत्ता उस आहार को कठिनाई से खा सकता है, जो वहाँ नहीं है। तब भी, यदि अनुबंधन प्रक्रिया CR के प्रति सामान्य अनुक्रियाओं को उद्दीप्त करने में US के स्थान पर CS को रख सके,

तो ऐसी आशा की जा सकती है कि कुत्ता भोजन खाने की कुछ क्रियाओं को करेगा। स्पष्ट है कि साहचर्य ऐसी यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है।

पावलोव के अनुबंधन-सिद्धांत से लिया गया यह उदाहरण विविध भिन्न प्रयोगों के सामान्य परिणामों को स्पष्ट करता है। प्रयोगकर्त्ताओं ने प्राय: अनुबंधित अनुक्रिया की तुलना मूल अननुबंधित अनुक्रिया से की है। दोनों में प्राय: सर्वदा कुछ-न-कुछ अंतर रहता है। अत:, अधिगम में निर्मित साहचर्य को मूल अनुक्रिया का केवल एक अंश या भाग होना चाहिए।

घंटा-आहार अनुबंधन में लार-स्राव एक ऐसी अनुक्रिया है, जिसे हम देख सकते हैं और जिसका परिमापन कर सकते हैं। कुछ स्थितियों में सहचारी 'अनुक्रिया' बिलकुल अप्रेक्षणीय होती है। 'संवेदी साहचर्य' में यही होता है। उसमें दो भिन्न उद्दीपनों में किसी अनुक्रिया के अभाव में साहचर्य स्थापित होना है। प्रासंगिक अधिगम में भी यही स्थिति होती है, वहाँ निर्मित साहचर्य ऐसा नहीं होता कि समय पर प्रकट रूप में देखा जा सके। दोनों उदाहरणों में, प्राणी को अनुवर्त्ती प्रशिक्षण द्वारा कुछ करना सिखाया जा सकता है, जो केवल साहचर्य द्वारा संभव होता है। हम इसे प्रमाणित कर सके हैं कि साहचर्य स्थापित होता है। अत:, अधिगम में निर्मित साहचर्य में प्राय: मूल अननुबंधित अनुक्रिया का अंश भी प्रकट नहीं होता है।

अत:, हम निर्णय लेते हैं कि—(१) साहचर्य व्यक्ति के भीतर ही एक प्रक्रिया है, जो मूल अनधिगत (या पूर्व अधिगम) प्रक्रिया का ही अंश है और (२) यह प्रक्रिया मूल का इतना छोटा अंश भी हो सकती है कि उसे देखा न जा सके। आगे का तथ्य वह कारण है, जिससे हम साहचर्य को अनुक्रिया नहीं, वरन् प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं। इसके आगे तथा अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि यह प्रक्रिया उस उद्दीपन का अर्थ है, जो इसे उद्दीप्त करता है। दूसरे शब्दों में, हम कहते हैं कि **उद्दीपन तभी अर्थपूर्ण होता है, जब यह कुछ वैसी ही प्रक्रिया को उद्दीप्त करे, जो कुछ अन्य उद्दीपनों द्वारा भी उद्दीप्त की जा सके।**

मध्यस्थ प्रक्रम (Mediating Processes) :

अर्थ केवल अर्थ हो सकते हैं और इससे अधिक कुछ नहीं। एक प्रतीक बिना किसी घटना के घटित हुए ही अर्थ को प्रकट कर सकता है। मैं कहता हूँ 'घर', और वह अपने एक अर्थ को उत्पन्न करता है, किंतु उसके आगे बिना किसी सुझाव के या बिना आपके पास किसी सुलझाने वाली समस्या के हुए वह बात वहीं समाप्त हो जाती है।

अन्य स्थितियों में, विशेषत: चिंतन या समस्या-समाधान में अर्थ मात्र साधारण अर्थ से अधिक होता है। यह किसी और तथ्य की कड़ी होता है। यह

संबद्ध होता है या तो (१) किसी प्रकार की अनुक्रिया से, या (२) अन्य अर्थों से। यदि मैं आपको आदेश दूँ कि 'घर' से आप प्रारंभ करें और स्वच्छंदता से उसे किसी अन्य शब्द से संबद्ध करें, आप कह सकते हैं, 'घर', 'माता', 'पिता', 'बच्चे', 'स्कूल' इत्यादि। इस उदाहरण में शब्द का अर्थ अनुक्रिया और अन्य अर्थ के बीच की कड़ी है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अर्थ मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को जोड़ने वाली मध्यस्थ कड़ियों का कार्य करते हैं। वे स्वयं भी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ हैं।

जब हम अर्थ को कड़ी के रूप में लेते हैं, हम कहते हैं, यह 'मध्यस्थ प्रक्रिया' है। 'मध्यस्थता करना' त्रिया का अर्थ है, 'बीच में जाना' अथवा 'जोड़ने वाली बीच की कड़ी'। अत:, यह कहने पर कि अर्थ मध्यस्थ प्रक्रियाओं के रूप में कार्य करते हैं, का अर्थ होगा कि वे प्रक्रियाओं या अनुक्रियाओं को भी साथ जोड़ सकते हैं (ऑसगुड, १९५२)।

अनुक्रिया की मध्यस्थता को स्पष्ट करने के लिए हम जान्तव अधिगम के एक प्रयोग को उद्धृत कर सकते हैं (तोलमैन, १९३९)।

> "इस प्रयोग में प्रयोगकर्त्ता ने प्रतिस्थानिक 'प्रयत्न और भूल' व्यवहार को (संक्षेप में, VTE—Vicarious trial-and-error) देखा। इस व्यवहार का 'पीछे और आगे' या अंतिम निर्णय के अनुसार कूदने से पूर्व 'एक द्वार की ओर कूदने के लिए झुकना और फिर दूसरे द्वार की ओर झुकना' के रूप में उल्लेख होता है। VTE व्यवहार के संबंध में अच्छी बात यह है कि आंशिक प्रत्यक्षा अनुक्रिया का स्थान लेने वाली सहचारी प्रक्रिया का प्रेक्षणीय प्रमाण प्रस्तुत करता है। इससे स्पष्ट है कि किस प्रकार यह प्रक्रिया अन्य अनुक्रियाओं की मध्यस्थता भी कर सकती है। क्षुधा-अभिप्रेरित चूहों का प्रेक्षण विभेद के अधिगमकाल में कूदने के यंत्र में किया गया। इस यंत्र में एक प्लेटफार्म था, जिसे दो उद्दीपन कार्डों से युक्त दो द्वारों के द्वारा अलग किया गया था। इस उदाहरण में जिन उद्दीपनों में विभेद करना था, वे थे—सफेद कार्ड और काले कार्ड। जब चूहा सफेद कार्ड पर कूदता था, तो पुरस्कृत होता था। चूहे के बोझ से कार्ड गिर जाता था और चूहा प्लेटफार्म पर आ जाता, जहाँ उसे भोजन का टुकड़ा प्राप्त होता। जब चूहा काले कार्ड पर कूदता, वह दंडित होता, गलत रास्ता बंद था और चूहे की नाक उस बंद दरवाजे से टकराती और वह करीब दो फुट गहरी जाली में नीचे गिरता।
>
> इस यंत्र और प्रकिया ने प्रयोगकर्त्ता को कूदने से पहले चूहों के व्यवहार का निरीक्षण करने की सुविधा दी। पहले, जब चूहों ने प्रयत्न करना प्रारंभ किया था, उनमें अधिगम का कोई संकेत नहीं मिला। वे केवल

कार्डों की ओर बढ़ते, तैयार होते और कूदते। अनेक ऐसे प्रयत्नों के बाद, उन्होंने 'VTE' प्रारंभ किया। यह व्यवहार, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, स्पष्ट था और उसकी सफलता की भी संभावना थी।

"चित्र ९.२ में एक अकेले चूहे पर किए गए प्रयोगों के परिणाम प्रकट हैं। एक चार्ट में सही कूदने की संख्या है, और दूसरे में VTES की संख्या है। एक दिन में ६ अवसर दिए गए और उनमें से तीन का ठीक होना संयोग था और पूरे ६ का ठीक होना पूर्ण अधिगम (VTE व्यवहार सात दिन बाद ४२ अवसरों के बाद) प्रकट हुआ, जब चूहा केवल संयोगवश ही उसे कर रहा था। VTE व्यवहार तीव्रता से तब तक बढ़ा, जब तक अचानक चूहे ने अधिगम का प्रमाण प्रकट किया। उसके बाद यह कुछ दिन तक उच्च स्तर पर रहा, जब चूहे ने विभेद-ज्ञान द्वारा कार्य करना प्रारंभ किया, तो वह कम हो गया।"

VTE व्यवहार इस प्रयोग में मध्यस्थ प्रक्रिया का प्रमाण है। यह रोचक बात है कि VTE व्यवहार विभेद ज्ञान के उपरांत कम हो जाता है। इसका अर्थ है कि मध्यस्थता प्रकिया धीरे-धीरे कूदने की मूल अनुक्रिया के अंश में छोटी और कम-प्रेक्षणीय हो जाती है। वह व्यवहार, जिसे यह प्रकट करता है, प्राणी के 'अंदर जाने' की प्रवृत्ति है। अनेक उदाहरणों में, यद्यपि इसमें नहीं है, VTE अनुक्रिया या तो इतनी क्षीण हो जाती है कि दिखाई नहीं देती या पूर्णतः तंत्रिका-तंत्र के भीतर ही प्रक्रिया होती है।

संक्षेप में हम इसे दोहराएँ, विविध उद्दीपनों और अनुक्रियाओं के विभेदों में अधिगमकाल में, साहचर्य स्थापित होते हैं। साहचर्य मूल अनुक्रियाओं (या संवेदी प्रक्रियाओं) के अंग या लघु अंश होते हैं जो साथ संबद्ध किए गए थे। ऐसी आंशिक प्रक्रियाएँ वे हैं, जिनसे हमारा तात्पर्य 'अर्थों' से है और ये अर्थ विभेदक उद्दीपनों और उनके प्रति हुई अधिगत अनुक्रियाओं में मध्यस्थता करते हैं। मनुष्य उद्दीपनों के के लिए अनेक अर्थ अर्जित करते हैं, विशेषतः जब हम उन सब शब्दों के अर्थों पर विचार करते हैं, जिनका प्रयोग वे सीखते हैं और प्रत्युत्तर देते हैं, वे सब अर्थ और उनके द्वारा मध्यस्थता किए गए व्यवहार, मानव की 'मानसिक प्रक्रियाओं' को समझने में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। *

## चिंतन-प्रक्रम (The Thinking Process)

कुछ व्यावसायिक कार्यालयों में एक प्रसिद्ध संकेत 'सोचिए' हमें सोचने का आदेश देता है। इसका अर्थ क्या है? यह हमें क्या करने का आदेश देते हैं? हम कितने

* यहाँ दिए गए आगे के शब्दों को चित्र ९.१ के परिचय के साथ पढ़ें :—उक्त चित्र के संकेत-चिह्नों के सही उत्तर (a) क्षुधा (b) भोजन (c) तीव्रता (d) झगड़ा, युद्ध (e) गृह (f) सर्प (g) बर्फ (h) उष्ण और मछली।

भिन्न प्रकार से व्यवहार कर सकते हैं यदि इसके बदले, संकेत कहता है 'भय' या 'कार्य करो' या 'विश्वास करो' या 'आदेश पालन करो' ? क्या हम वास्तव में जानते हैं कि अन्य अनुभवों और प्रतिक्रियाओं से चिंतन किस प्रकार भिन्न है ? और इससे भी कठिन प्रश्न है, क्या हम यह बता सकते हैं, कब दूसरा व्यक्ति चिंतन कर रहा है ? विचारण क्या है ? यह कैसे प्रारंभ होता है ? यह कब समाप्त होता है ?

प्रतिस्थानिक 'प्रयत्न और भूल' वास्तविक प्रयत्न और भूल का स्थान ग्रहण करता है।
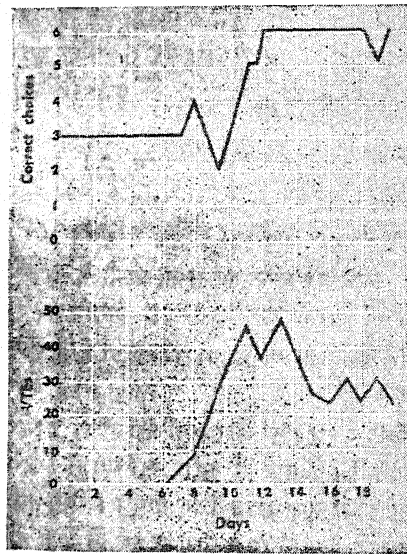
**चित्र ९.२ श्वेत और काले विभेद के अधिगम में चूहे का शुद्ध चुनाव और VTE व्यवहार। ध्यान दें कि शुद्ध अनुक्रिया के साथ VTE व्यवहार में वृद्धि होती है और विभेद को पूर्णतः अधिगम कर लेने के उपरांत वह कम हो जाता है (तोलमैन के अनुसार १९३९)।**

वास्तव में प्रतिदिन की वार्ता में प्रयोग होने वाले 'विचारण' या चिंतन शब्द में क्रियाओं का विस्तृत विन्यास निहित रहता है। एक ओर इसका अर्थ स्मरण करना या स्मृति से कुछ ही अधिक होता है। उदाहरणार्थ, जिस सड़क पर मैं प्रायः चलता हूँ, उस पर एक संकेत लिखा है—'विचार करो—तेज चाल का परिणाम मृत्यु।' इस रूप में प्रयुक्त 'विचार करो' का अर्थ केवल यही है कि तेज चाल और घातक दुर्घटना के संबंध को याद रखो या ध्यान में रखो। इसी प्रकार जब कोई कहता है, 'नाम सोचने का प्रयत्न करो', वह हमें केवल कुछ ऐसी बात स्मरण करने के लिए कहता है, जिसे कभी हमने सीखा था। इन परिस्थितियों में स्मरण की प्रक्रियाओं में वास्तव में बहुत अधिक नहीं या कुछ चिंतन निहित रहता है, जैसा कि इस शब्द को इस अध्याय में हम समझेंगे। दूसरी ओर, 'चिंतन' शब्द का अर्थ उस गंभीर और उच्च

विचारशील क्रिया से होता है, जिसमें किसी गहन और जटिल समस्या को सुलझाने में एक वैज्ञानिक चेष्टारत् रहता है। वह घंटों या दिनों तक गणित के सिद्धांतों में उलझा रहता है, रेखाचित्र बनाता है, या केवल उन विविध विधियों की कल्पना करता है, जिनसे वह समस्या सुलझ सकती है।

किंतु चिंतन सरल हो या जटिल, इसमें एक तथ्य सदा निहित रहता है : एक मध्यस्थ प्रक्रिया। जब हम विचार करते हैं, तब पूर्व-अधिगम को वर्त्तमान अनुक्रिया से कुछ जोड़ता है। उद्दीपन स्थितियों और उनके प्रति जो अनुक्रियाएँ हम करते हैं, इन दोनों के बीच के रिक्त स्थान की पूर्ति मध्यस्थ प्रक्रियाएँ करती हैं। जब हम किसी समस्या को सुलझाने में रत रहते हैं, ये प्रक्रियाएँ ऐसे तथ्यों को स्थानापन्न करती हैं, जिन्हें हम संभवतः स्पष्ट रूप से 'प्रयत्न और भूल' पद्धति में करें। इसे स्पष्ट करने के लिए हम एक प्रसिद्ध उदाहरण लें।

मान लीजिए, आपको एक जिगशॉ पहेली को जोड़ना है। इस पहेली को सुलझाने का कठिन तरीका यह होगा कि हर टुकड़े को यथार्थतः जोड़ कर देखना कि वह दूसरे टुकड़े के साथ ठीक बैठता है या नहीं। यह विशुद्ध 'प्रयत्न और भूल' द्वारा पहेली को सुलझाना होगा। यदि इस पहेली में बहुत से टुकड़े जोड़ने होंगे, तो बहुत अधिक समय इसमें लगेगा और जोड़ने के हजारों 'प्रयत्न और भूल' के प्रयास करने होंगे। संभवतः इनमें से आप कुछ क्रियाओं को करेंगे। किंतु, जो उपयुक्त क्रियाओं के निकट होंगी, वैसी दो या तीन संभावित क्रियाओं को आप चुनेंगे। अधिकांशतः आप विचारेंगे। आपके विचारने में वे ही बातें होंगी, जिन्हें आप वैसे 'प्रयत्न और भूल' द्वारा करते ; टुकड़ों को वास्तव में रखे बिना आप बहुधा विचारेंगे कि उन टुकड़ों को किस तरह रखा जाए। आप अपने मस्तिष्क में ही उन्हें साथ-साथ रखेंगे और हाथों से चेष्टा करने से पूर्व निर्णय लेंगे कि वे उस प्रकार ठीक से रखे जा सकेंगे या नहीं। अतः आप चिंतन द्वारा वही करेंगे, जो आप उन टुकड़ों को ठीक जगह पर रख कर करते।

आपका चिंतन प्रेक्षणीय व्यवहार और उद्दीपनों की यथार्थ पुनर्व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है या उनका स्थान लेता है। अतः, चिंतन प्रक्रिया एक मध्यस्थ प्रक्रिया है। यह कथन इस ओर संकेत करता है कि चिंतन प्रक्रिया कैसे कार्य करती है—संबद्ध करने वाली के रूप में—किंतु यह स्पष्ट नहीं करती कि चिंतन है क्या ?

### खोज-प्रक्रम या निरूपण प्रक्रियाएँ (Trace Processes) :

विचार-प्रक्रम का सरलतम प्रकार है स्मृति-निरूपण, जो कुछ काल तक रहता है और साधारण समस्या के समाधान के उद्दीपन-संकेत के स्थान पर कार्य कर सकता

है। इस प्रकार की प्रक्रिया जंतुओं के प्रयोगों में प्रदर्शित की जा चुकी है। उन परीक्षणों को '**बिलंबित प्रतिक्रिया परीक्षण**' कहते हैं। इन प्रयोगों को भिन्न प्रकार के जंतुओं पर किया गया है, किंतु उसे स्पष्ट करने के लिए हम एक प्रयोग का विवरण देंगे, जो एक अमरीकी भालू पर किया गया था ( हंटर, १९१३ )।

> "भालू को चित्र ९·३ में चित्रित एक यंत्र के प्रारंभिक बक्स में रखा गया। यह बक्स तारों की जाली से बना था, जिससे कि वह उसमें नियंत्रित होने पर बाहर देख सके। भालू के सामने यंत्र में तीन बाह्य-द्वार हैं और तीनों पर एक-एक छोटे प्रकाशित बल्ब लगे हैं। भालू प्रकाशमय पथ की ओर जा सके, इस विभेद के प्रशिक्षण से प्रयोग आरंभ होता है। रोशनी जला दी जाती है और बक्स का द्वार खोल दिया जाता है, जिससे वह उसके बाहर जा सके। यदि वह सही द्वार की ओर बढ़ेगा, तो प्रकाशमय पथ से आगे बढ़ने पर उसे भोजन प्राप्त होगा। निरंतर परीक्षणों में प्रकाश तीनों संभावित द्वारों में कभी किसी पर और कभी किसी पर आलोकित किया गया और जो पथ आलोकित होता, भोजन वहीं प्राप्त होता। जब भालू प्रकाशमय पथ की ओर जाना सीख गया, तो प्रक्रिया में परिवर्तन कर दिया गया। पहले की तरह रोशनी जला दी गई, किंतु भालू को उस बक्स में रोशनी को बुझाने तक बंद रखा गया। इसके बाद, रोशनी बुझाने के कुछ निश्चित सेकेंडों के बाद भालू को बक्स से निकाला गया, जिससे कि वह उस पथ की ओर बढ़ सके, जो अंत में आलोकित किया गया था।"

यह मनन-प्रक्रम ( Meditating Process ) के अस्तित्व की परीक्षा है; क्योंकि उद्दीपन इसके उपरांत उपस्थित नहीं रहता और जंतु को किसी-न-किसी प्रक्रिया का उपयोग करना पड़ता है, जो समस्या के समाधान के लिए उसे प्रस्तुत कर सके। जंतु जितनी देर उद्दीपन की समाप्ति पर विलंब कर सकता है, उस काल की लंबाई उस गति के परिमापन का कार्य करती है, जिसमें प्रक्रिया—पहले वाले उद्दीपन की 'खोज'—समाप्त हो जाती है।

विविध जंतुओं और बच्चों द्वारा इस प्रकार के परीक्षणों में किए जा सकने वाले विलंब और समस्या के समाधान करने के समय की लंबाई का परिमापन किया गया है। इस प्रणाली से किए गए सर्वप्रथम प्रयोगों में चूहे केवल १ से १० सेकेंड विलंब कर सके थे। भालू १० से १५ सेकेंड, बिल्लियाँ १६ से १८ सेकेंड, कुत्ते १ से ३ मिनट, एक ढाई वर्ष का बच्चा कम-से-कम २० मिनट। इन अंकों में बाद में किए गए प्रयोगों से परिवर्तन हुआ और वे बढ़ गए। यह यंत्र के प्रकार पर तथा

बिलंब काल में कोई बाधा है या नहीं, इस पर या कोई अन्य कारक तो नहीं हैं, पर भी पर्याप्त मात्रा में निर्भर करता है। अनिवार्य बात यह है कि ऐसी विधि सरल मध्यस्थ प्रक्रिया को स्पष्ट करती है। इस विधि से इस परिणाम पर पहुँचने के लिए कि ऐसी प्रक्रिया समस्या के समाधानार्थ घटित हो रही है। अनुवर्त्ती कसौटी पर उसकी परीक्षा होनी आवश्यक है—(१) कोई ऐसा उद्दीपन अवश्य होना चाहिए, जो किसी विशेषता को—भेदात्मक अनुक्रिया को उत्पन्न करने के लिए प्रसिद्ध हो (२) उद्दीपन प्रस्तुत किया जाना चाहिए और तब विलंब काल में उसे हटा देना चाहिए और (३) शरीर से बाहर कोई अन्य उद्दीपन सही अनुक्रिया इंगित करने वाला नहीं होना चाहिए।

प्रतीकात्मक प्रक्रमों के अध्ययन का साधन विलंबित प्रतिक्रिया परीक्षण है।

DELAYED-REACTION TEST IS A MEANS OF STUDYING SYMBOLIC PROCESSES:
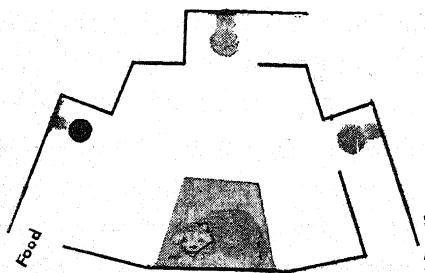
**चित्र ९.३ बिलंबित-प्रतिक्रिया बॉक्स (हटर के अनुसार, १९१३)।**

विलंबित प्रतिक्रिया पर किए गए कुछ प्रयोगों में मध्यस्थ प्रक्रिया को तत्काल एक मन:स्थिति के रूप में पहचाना जा सकता है, जो सिर या शरीर को विलंब काल में उपयुक्त बक्स की ओर अवस्थित करती है। यह सूक्ष्म या उच्च-स्तरीय प्रक्रिया नहीं थी, किंतु यह एक प्रभावशाली, संकेत उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया थी। क्या यह आवश्यक थी? अन्य प्रयोगकर्त्ताओं ने अन्य परीक्षणों द्वारा प्रदर्शित किया कि विलंब काल में स्थिति में आमूल परिवर्तन कर देने पर भी भालू, कुत्ते, बंदर और बच्चे सफलतापूर्वक विलंब कर सकते हैं। चूहों पर बाद में किए गए प्रयोगों ने प्रमाणित किया कि वे भी अधिक देर तक, संभवत: चार मिनट तक, बिलंब कर सकते हैं जब कि उद्दीपनों के अंतर को अधिक स्पष्ट किया गया अथवा अनुक्रिया के कार्य को कुछ सरल बनाया गया। अत: ये जंतु, उपयुक्त परिस्थितियों में, संस्थितिगत संकेतों के अतिरिक्त मध्यस्थ प्रक्रियाओं का उपयोग कर सकते हैं। हम केवल अनुमान

कर सकते हैं कि यह प्रक्रिया सही उद्दीपन, जैसे 'दृश्यप्रतिमान' प्रक्रिया का केवल किसी प्रकार का स्मृति-बिंब है।

प्रतिमाओं की भूमिका ( Role of Images ) :

विद्यार्थी पहचान लेंगे कि विलंबित-प्रतिक्रिया प्रयोग सिद्धांत-रूप में छठे अध्याय में वर्णित मूर्तकल्पी प्रयोग से भिन्न नहीं है। मूर्तकल्पी प्रतिमावली के परीक्षणों में एक व्यक्ति को एक चित्र या छपा हुआ पृष्ठ दिखाया जाता है और बाद में उसे जो कुछ उसने देखा, उसके संबंध में पूछा जाता है। वे कुछ असाधारण लोग होते हैं, जो मूर्तकल्पी योग्यता द्वारा स्थिति को प्राय: फोटोग्राफिक यथार्थता से पुन: स्मरण कर सकते हैं।

अधिकांश लोगों में मूर्तकल्पी योग्यता नहीं होती, किंतु वे प्राय: कहते हैं कि उन्हें कल्पना की अनुभूति होती है। अत:, यद्यपि दूसरे व्यक्ति की कल्पनाओं को वस्तुगत रूप से देखना संभव नहीं है, किंतु उनके अस्तित्व पर हमें विश्वास है। कुछ व्यक्तियों में दृष्टिपरक कल्पना स्पष्ट ही प्रधान होती है। श्रवणीय कल्पना प्राय: घटित होती है किंतु दर्द, क्षुधा और अन्य आंगिक संवेदन-जैसे मांसपेशीय संवेदन अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं। यहाँ तक कि कुछ लोग गंध और स्वाद की भी कल्पना कर सकते हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो पूर्णत: कल्पनाशून्य होते हैं।

जहाँ तक मानव-चिंतन का संबंध है, प्रतिमा के विषय में यह प्रश्न उपस्थित नहीं होता कि क्या उनका अस्तित्व है, वरन् यह होता है कि चिंतन में उनका क्या योग रहता है। क्या वे चिंतन में मध्यस्थ प्रक्रियाएँ हैं? इस विषय पर एक बार तीव्र विवाद हुआ। कुछ विद्वानों ने बलपूर्वक कहा 'हाँ', और अन्य कुछ ने तीव्र विरोधी स्वर में कहा 'नहीं'। इस प्रश्न का वैज्ञानिक ढंग से उत्तर देने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन में योग पर या चिंतन में प्रतिमा-महत्त्व पर गंभीर प्रयोग किए।*

प्रयोग का सबसे सरल प्रकार है कि व्यक्ति से उसके अनुभवों का विवरण पूछिए ( गाल्टन, १९०७ )। उदाहरणार्थ उसे निर्देशन दिया जा सकता है कि वह नाश्ते की मेज को स्मरण करे और उससे पूछा जाए—'आपकी प्रतिमाएँ किस प्रकार की हैं?' अधिकांश लोग काफी विस्तृत विवरण देंगे और प्रमाणित करेंगे कि उनमें प्रतिमाएँ हैं। इस प्रकार का प्रयोग केवल बताता है कि एक व्यक्ति की क्या और कैसी संदर्भगत प्रतिमाएँ हो सकती हैं। किंतु, वह उनके चिंतन में मध्यस्थ कार्य के विषय में हमें बहुत कम सूचना देता है। अन्य प्रकार के प्रयोग में अपेक्षित है कि व्यक्ति

* चिंतन पर किए गए प्रसिद्ध प्रयोगों की विस्तृत जानकारी के लिए देखिए—हम्फ्रे, १९५१।

किसी कौशलपूर्ण समस्या को सुलझाए, जैसे वह किसी भूलभुलैया का पथ आँख बंद करके अपनी अंगुली या पेंसिल से ज्ञात करे ( डेविस, १९३२, १९३३ )। यह करने के उपरांत वह अपनी कल्पना को कौतूहल से देखता है। अनेक व्यक्ति ऐसे प्रयोग में वास्तव में प्रभावकारी दृष्टिपरक कल्पना का विवरण देते हैं, वे व्यूह (भूलभुलैया) के समाधान में जैसे-जैसे आगे बढ़ते हैं, केवल 'मानसिक मानचित्र' बना कर करते हैं। फलस्वरूप वे बाद में व्यूह को चित्रित कर सकते हैं और कभी-कभी वे उसके बंद रास्तों और ठीक रास्तों को भी अंकित करते हैं। अन्य लोग व्यूह का समाधान नितांत मौखिक ढंग से करते हैं, वे ठीक रास्तों की गणना कर देंगे या नाम बता देंगे, किंतु वे अपने मानसिक नेत्र द्वारा व्यूह के पूर्ण रूप को नहीं 'देखते'।

## प्रतिमाहीन विचार (Imageless Thought) :

ऊपर वर्णित प्रकार के प्रयोग संकेत करते हैं कि कल्पनाएँ अधिगम की उन्नति में सहायक हो सकती हैं और आवश्यकता होने पर चिंतन में वे मध्यस्थता का कार्य भी कर सकती हैं। चिंतन में प्रतिमाओं के योग पर दो अन्य प्रकार के प्रयोग भी हैं। इनमें से एक का नाम है 'विचार-प्रयोग' और वह सन् १९०० में पहली बार किया गया था। उस समय वर्ज़बर्ग, जर्मनी के मनोवैज्ञानिकों के एक ने दल, जिनकी विचार (चिंतन) को समझने में तीव्र रुचि थी, अनेक बार यह प्रयोग किया। उन्होंने अपने प्रयोग-पात्र को अपेक्षाकृत सरल बौद्धिक समस्या दी, जैसे 'किसी फल का नाम बताओ', और तब उससे कहा कि इस प्रश्न का उत्तर देने में इसकी जो प्रतिमा उत्पन्न हुई, उसका वर्णन करें।

वर्जबर्ग के मनोवैज्ञानिकों को यह जान कर आश्चर्य हुआ कि इस ढंग से बहुत कम प्रतिमाएँ स्पष्ट की जा सकीं और इस प्रकार की समस्याओं को सुलझाने के लिए बिंब आवश्यक भी नहीं प्रतीत हुए। यदि समस्या 'फल का नाम बताना' थी, तो प्रयोग-पात्र प्रायः तत्काल कह सकता था 'सेव', किंतु फल या सेव की प्रतिमा को खोज सकने में तब भी वह असमर्थ था। स्पष्टतः उपयुक्त अनुक्रिया करने में निहित चिंतन में आवश्यक रूप से कोई बिंब सन्निहित नहीं रहते। अतः, **प्रतिमाहीन विचारण** की ओर ध्यान गया। यह ऐसा विचारण है, जो ५० वर्ष पूर्व पर्याप्त विवादास्पद था।

प्रतिमाहीन विचारण परिकल्पना के दो परिणाम महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुए हैं। एक खोज यह है कि चिंतन में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ चैतन्य नहीं हो सकतीं। हम किसी विचार या प्रत्यय ( Idea ) को एक चिड़िया या तितली की भाँति पकड़ और उसका निरीक्षण नहीं कर सकते। इससे स्पष्ट होता है कि एक प्रत्यय, एक वस्तु से अधिक, एक प्रक्रम के समान है। इस परिकल्पना का दूसरा परिणाम है कि

विचारण प्रायः एक तत्परता-विधि द्वारा शासित होता है, जो इस विचारण के होने से पूर्व ही निर्मित होती है। यह विधि विचारण करने की एक तैयारी है या पूर्वनिर्धारित रूप में प्रत्युत्तर देना है। यदि किसी को कोई उद्दीपन शब्द उपर्युक्त उल्लिखित प्रयोग में दिया जाए, एक विचार स्वतः दौड़ता हुआ प्रतीत होगा, मानो जैसे प्रारंभ करने से पूर्व भी उसने विचार कर लिया हो और विचार क्या है, यह तत्परता-विधि पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए आप देखिए—

६
४
——

आप तत्काल उत्तर दे सकते हैं, किंतु यह उत्तर २,१० या २४ है, यह इस पर निर्भर करता है कि आप बाकी करने, जोड़ने या गुणा करने में किसके लिए तत्पर हैं। हाँ, उपयुक्त निर्देशन पाने पर हम इनके लिए किसी भी तत्परता को उत्पन्न कर सकते हैं। एक सैद्धांतिक संप्रत्यय के रूप में **तत्परता** मनोवैज्ञानिकों के शब्दकोष का एक महत्त्वपूर्ण शब्द बन गया है। हम तत्परता को देखते नहीं हैं, फिर भी चिंतन को स्पष्ट करने के लिए हमें इसके अस्तित्व को मानना आवश्यक है।

यहाँ तक पहुँचने पर, किंतु आगे नहीं, प्रारंभिक प्रयोगात्मक मनोवैज्ञानिकों को भयंकर अवस्था का सामना करना पड़ा। मनोविज्ञान के संबंध में उनकी धारणा थी 'कि वह चैतन्य अनुभव का विज्ञान है, फिर भी उन्होंने इस तथ्य को स्थापित किया कि बिना चैतन्य विषय-वस्तु के भी चिंतन हो सकता है।' 'उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं' ने उनकी खोज छोड़ दी। निश्चित रूप से बिंब कभी-कभी विचारों के साथ रहते हैं, किंतु महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विचारों के लिए बिंब अनिवार्य नहीं है। आत्मदर्शनात्मक प्रणाली निष्फल रही; क्योंकि यदि आत्मदर्शन के लिए कोई विषय न रहे, तो आत्मदर्शन नहीं किया जा सकता। निष्कर्ष यह हुआ कि प्रतिमाएँ कभी-कभी चिंतन में मध्यस्थ प्रक्रिया हो सकती हैं, किंतु बिना उनके भी जब चिंतन हो सकता है तो इसका अर्थ है कि मध्यस्थ प्रक्रियाओं के, इनके अतिरिक्त, अन्य प्रकार भी हो सकते हैं।

### निहित अनुक्रियाएँ (Implicit Responses) :

जब प्रारंभिक मनोवैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे, व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने विचार किया कि चिंतन के कुछ तथ्य लघु मांसपेशीय गतियों से भी निर्मित हो सकते हैं।

संभवतः उन्होंने सुझाव दिया कि निहित मांसपेशीय अनुक्रियाएँ, जिन्हें आँखों से देखा नहीं जा सकता, किंतु जिनका आकार ऐसा है कि वह आवेगों को तंत्रिका

तंत्र तक पुनः भेजता है, वे चिंतन-प्रक्रमों में अनिवार्य तत्त्व हैं। यह परिकल्पना विचारण के स्पष्टीकरण में पचास वर्ष पूर्व जान बी० वाट्सन ने की थी।

उक्त अनुमिति के परीक्षण के लिए दो बातें आश्वयक हैं। एक है, चिंतनकाल में निहित अनुक्रियाओं के अस्तित्व का समर्थन करना अथवा समर्थन न करना। इससे संबंधित दो प्रयोगों का विवरण हम देंगे। इसका अगला कदम यह प्रतिपादित करना है कि ऐसी निहित अनुक्रियाएँ चिंतन-प्रवाह में प्रतीक या संकेत का कार्य करती हैं। इसे प्रमाणित करना कठिन है, किंतु यह जितना प्रकट है, उससे अधिक होने की युक्तिसंगत संभावना है, जैसा कि हम आगे स्पष्ट करेंगे।

यह विचार, कि निहित अनुक्रियाएँ चिंतन में भाग लेती हैं, चिंतन और अधिगम के संबंध द्वारा तर्कसंगत प्रमाणित किया गया है। अधिगम में चिंतन प्रारंभ होता है और अधिगम का अधिकांश, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, क्रिया द्वारा अर्जित किया जाता है। कोई यह सोच सकता है कि अधिगत अनुक्रियाएँ जैसे-जैसे व्यवहार में लायी जाती हैं-वैसे-वैसे वे लघुतर होती जाती हैं और मूल अधिगम की बड़ी गतिविधि से भिन्न उसके छोटे किए गए रूपों से चिंतन होता है। यही पूर्व-उल्लिखित आंशिक अनुक्रिया (**Fractional response**) की धारणा है।

एक प्रयोग (जैकबसन, १९३२) ने ऐसे प्रयोग-पात्रों का उपयोग किया, जिन्हें मांसपेशियों को शिथिल करना सिखाया गया था और जो अंधेरे कमरे में शिथिल होकर लेटे हुए थे—

> "एक संकेत पर प्रयोग-पात्र ने अपनी दाहिनी भुजा को मोड़ने का विचार किया। विद्युद्ग्र को भुजा में लगा कर गाल्वनोमीटर से संबद्ध करके बढ़ती हुई निहित मांसपेशीय क्रिया को विद्युत्-चिह्नों द्वारा देखा गया। नियंत्रित परीक्षणों ने प्रमाणित किया कि क्रियाधाराएँ विशेष निर्देशन पर निरंतर बदलतीं हैं। जब प्रयोग-पात्र को विश्राम के लिए कहा गया, तो उनका अंत हो गया, वे उस समय दाईं भुजा में नहीं हुई जब उसे बाईं भुजा, या पैर को मोड़ने या दाईं भुजा को सीधे खींचने पर विचार करने के लिए कहा गया। और भी, प्रयोग-पात्र एक ही समय में भुजा को मोड़ने और विश्राम कराने की बात नहीं सोच सकता। इसी प्रकार के परिणाम प्रयोग-पात्र की अन्य क्रियाओं—जैसे गेंद का फेंकना, आइसक्रीम जमाने के यंत्र को चलाना और किसी रस्से पर चढ़ना, पर विचार करने पर भी उपलब्ध हुए हैं। संभावनाओं का परीक्षण करने के लिए, कि क्रियाधाराएँ केवल तंत्रिकाओं से आती हैं और मांसपेशियों से नहीं, नियंत्रिन प्रयोग किए गए। इन प्रयोगों में हलके बजन के उत्तोलक सीधे मांसपेशियों पर रखे गए, जब

उत्तोलक हिले, तो उनकी क्रिया चाक्षुष रूप से आठगुणा आवर्धित की गई। उत्तोलकों ने उसी तथ्य की पुष्टि की जो विद्युद्ग्रों ने स्थापित किया था : मांसपेशियाँ वास्तव में लघुतर होती जाती थीं। नीचे लिखे एक ऐसे ही प्रयोग ( मैक्स, १९३७ ) में १९ गूँगे और बहरे व्यक्ति लिए गए जो अपने हाथों से बातचीत करते थे :

विद्युद्ग्रों को प्रयोग-पात्रों के हाथों पर लगाया गया और जाग्रत एवं निद्रित अवस्था में अभिलेख किया गया। निद्रा में संभावित स्वप्न क्रिया के लिए, अभिलेख पर विशेष ध्यान दिया गया। प्रयोग-पात्र के सोने पर क्रियाधाराएँ स्वतः कम हो गईं और उसी स्तर पर रहीं, केवल बीच-बीच में क्रिया में स्फोटन आ जाता था। क्या ये स्फोटन स्वप्न थे ? इस गवेषणा के लिए प्रयोगकर्त्ता ने स्फोटनकाल में प्रयोग-पात्रों को जगाया और पूछा कि क्या वे उस समय स्वप्न देख रहे थे ? उन १९ प्रयोगपात्रों ने ३३ में से ३० अवसरों पर 'हाँ' कहा। नियंत्रित-परीक्षण के रूप में उन्हें ६२ बार निद्रा से विद्युतीय शांतिकाल में जगाया गया। ५३ अवसरों में वे स्वप्न-लीन नहीं थे, किंतु ९ अवसरों में थे। अतः, सामान्यतः क्रिया के स्फोटनों को स्वप्न से संबद्ध किया गया। जागृत अवस्था में गूंगे-बहरों की तुलना साधारण व्यक्तियों से की गई। गणित के प्रश्नों को करते समय ८४ प्रतिशत बहरे प्रयोग-पात्रों के और ३१ प्रतिशत साधारण प्रयोग-पात्रों के हाथों में क्रिया-धाराएँ प्रकट हुईं।"

ऐसे परिणाम प्रमाणित करते हैं कि चिंतनकाल में अव्यक्त गतिविधि वास्तव में होती रहती है। ये इस प्रश्न का उत्तर देने में, कि बिंबहीन विचार ( अमूर्त चिंतन ) में क्या होता है, हमारी सहायता कर सकते हैं।

**संकेत उत्पन्न करनेवाली अनुक्रियाएँ ( Cue-producing Responses ) :—**

ऐसी निहित अनुक्रियाएँ किस प्रयोजन को सिद्ध करती हैं ? क्या वे संयोग मात्र हैं अथवा चिंतन में उनका मध्यस्थता का कार्य है ? कुछ निहित गतिविधियाँ निश्चित रूप से संयोग मात्र हैं, वे केवल मस्तिष्क में क्रियाओं के 'अप्लाव' अथवा 'स्राव' को प्रस्तुत करती हैं। उनमें से कुछ संभवतः चिंतन की सहचारी क्रियाओं को संबद्ध करनेवाली हैं और वे मध्यस्थ प्रक्रियाएँ हैं। जब मध्यस्थ प्रक्रियाओं के रूप में वे होती हैं, तब उनका कार्य उद्दीप्त करने का होता है अर्थात् आगामी तत्त्व या अनु-क्रिया की शृंखला से लिए संकेत प्रस्तुत करना।

उदाहरणार्थ, आप अपने घर के मुख्य द्वार का ताला खोलने के लिए किस ओर कुंजी घुमाते हैं ? संभावना है कि जब इस प्रश्न के उत्तर पर आप विचार करते

हैं, आप कल्पना करते हैं कि आप कुंजी को ताले में डाल कर घुमा रहे हैं। इससे आपको संकेत मिलता है कि आप 'दाहिनी ओर' अथवा 'बाईं ओर' उत्तर दे सकें। किसी घटना पर विचार करते हुए, आप संभवतः कोई संपृक्त मांसपेशीय अनुक्रिया करते हैं, जिससे कि मांसपेशीय संग्राहक मांसपेशीय तनाव की उपस्थिति का संकेत दे सकें। इस स्थिति में उद्दीपन या निहित अनुक्रिया द्वारा उत्पन्न संकेत, पूर्व अनुबंधन के द्वारा आपको उत्तर दे सकता है।

निहित अनुक्रियाओं द्वारा उत्पन्न संकेत भाषागत चिंतन—शब्दों द्वारा किए गए चिंतन—में विशेष महत्त्व रखते हैं। मानव-व्यवहार का अधिकांश बोल कर, पढ़ कर या लिख कर होता है और अपनी अधिकांश समस्याओं को हम भाषा द्वारा सुलझाते हैं। शब्द सर्वश्रेष्ठ संकेत-उत्पन्न करनेवाली संभव अनुक्रियाओं में एक है; क्योंकि प्रत्येक शब्द दूसरे शब्द से स्पष्टतः भिन्न होता है। समउच्चरित भिन्नार्थी शब्दों को छोड़कर जैसे 'pair' और 'pear', मुखर शब्द भुजाओं, टांगों, अंगुलियों आदि की क्रियाओं की अपेक्षा कहीं अधिक स्पष्ट संकेत देते हैं। उपवाचिक तल पर पहुँच कर इतना धीरे बोलना कि दूसरों के लिए अश्रव्य रहें, किंतु इतना उत्तेजनापूर्ण ( मांसपेशीय रूप से ) होता है कि व्यक्ति स्वतः वार्ता कर सके—शब्द, चिंतन में संकेत—उत्पादक अनुक्रियाओं का कार्य कर सकते हैं।

हमें विश्वास है कि, तब, निहित अनुक्रियाएँ चिंतन में मध्यस्थ प्रकियाओं के रूप में कार्य कर सकती हैं। कुछ प्रारंभिक व्यवहारवादियों के कथन में अतिशयोक्ति थी, जब उन्होंने अपना निर्णय दिया कि चिंतन क्रमबद्ध निहित अनुक्रियाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो प्रमाण उपलब्ध है, वह इस अतिवादी मत का समर्थन नहीं करता, वरन् यह इंगित करता है कि प्रतिमा और निहित अनुक्रियाएँ दोनों का चिंतन में योग होता है। यह अन्य प्रक्रमों की संभावना भी स्वीकार करता है।

यह स्पष्ट करने के लिए कि ये अन्य प्रक्रम क्या हैं, हम यह भी स्पष्ट कर दें कि मस्तिष्क, भीतर आने वाली संवेदनात्मक उत्तेजनाओं और बाहर जाने वाले प्रेरक आवेगों के मध्य, एक साधारण स्विच बोर्ड नहीं है। यह ठीक है कि कुछ क्षेत्र मूलरूप से संवेदनात्मक होते हैं और कुछ में प्रमुखता क्रियात्मक प्रेरकों की होती है ( देखिए, अध्याय—२० )। ये क्षेत्र अनेक रूपों में परस्पर संबंधित होते हैं और विशेषतः मानव मस्तिष्क में ऐसे भी बड़े क्षेत्र हैं, जिनका संबंध सीधे न तो संवेदन से होता है और न प्रेरक क्रिया से। इनकी क्रियाओं के विषय में भी हम बहुत कम जानते हैं, किंतु इससे यह स्पष्ट है कि संवेदनात्मक और प्रेरक घटनाओं के मध्य अन्य प्रक्रमों के लिए भी पर्याप्त संभावना है। आवश्यक नहीं है कि ये एक ओर 'प्रतिमाओं' में अथवा दूसरी ओर 'निहित अनुक्रियाओं' में सीधे प्रकट हों।

ये विचार तथा वे तथ्य, जिनका उल्लेख हम कर चुके हैं, हमें इस निर्णय की ओर ले जाते हैं कि कुछ मध्यस्थ प्रक्रियाएँ ऐसी हो सकती हैं, जो न प्रतिमा हों और न निहित अनुक्रियाएँ। संभवतः अधिगमकाल में किसी समय वे प्रतिमा अथवा अनुक्रियाओं के रूप में थीं, किंतु बाद में वे इस प्रकार क्षीण हो गईं कि मस्तिष्क में मात्र जोड़नेवाली प्रक्रम मात्र रह गईं। बहुत संक्षेप में तब सारांश यह हुआ कि चिंतन में मध्यस्थ प्रक्रम प्रतिमा, निहित अनुक्रियाएँ अथवा मस्तिष्क में होने वाले अन्य प्रक्रम हो सकते हैं।

**संप्रत्ययों का निर्माण और अर्थ (Formation & Meaning of Concepts):**

मध्यस्थ प्रक्रम, वह कोई भी हो, कुछ विशिष्ट अथवा कुछ सामान्य चीजों को प्रस्तुत कर सकती है। कुछ विशिष्ट होगा कि 'विशेष गृह जिसमें जब मैं लड़का था, तब रहा था'। कुछ सामान्य हो सकता है—'लालिमा', 'सरकार', 'अच्छाई' या ऐसा ही कोई अन्य शब्द। यदि यह सामान्य है, तो यह एक संप्रत्यय है। '**एक संप्रत्यय वस्तुओं या घटनाओं के सामान्य गुण को प्रकट करने वाला एक प्रक्रम है।**' सामान्य गुण एक ऐसा लक्षण है, जो विविध स्थितियों में भी वही रहता है। 'यह 'लालिमा' 'त्रिकोणात्मकता' 'घोड़े का शौक' अथवा मनुष्यों, वस्तुओं या परिस्थितियों की सहस्रों संभावित विशेषताओं में से कोई भी हो सकता है। वस्तुओं का वर्गीकरण करने में संप्रत्यय हमारी सहायता करते हैं। लालिमा के संप्रत्यय से हम वस्तुओं का विभाजन 'लाल' और 'अ-लाल' में कर सकते हैं। फल के संप्रत्यय से हम उन्हें 'फल' और 'अ-फल' में विभाजन कर सकते हैं। सामान्य गुण ही संप्रत्यय होता है, जो वर्गीकरण का आधार बनता है।

सामान्य गुणों की संख्या असंख्य है, वर्गों या संप्रत्ययों की संख्या का भी अंत नहीं है, जो निर्मित हो सकते हैं। वर्गों के वर्ग हैं और वर्गों के वर्गों के वर्ग हैं। एक संप्रत्यय किसी भी मिश्रिय रूप का हो सकता है। 'आवास' वर्ग के अंतर्गत गृह, प्रकोष्ठ और गुहा उपवर्ग हैं 'गृह' के उपवर्ग है भवन और कुटीर। कुटीर लाल है और सफेद है। गृह और गुहा, यदि आकार के अनुरूप उनका वर्गीकरण किया जाए, तो बड़े या छोटे हो सकते हैं।

**शब्द और संप्रत्यय ( Words and Concepts ):**

सिद्धांतः संप्रत्यय पाने के लिए शब्दों या भाषा को जानना आवश्यक नहीं है। वास्तव में, हमारे अनेक संप्रत्यय बिना शब्दों की सहायता के निर्मित होते हैं और शब्दों द्वारा पूर्णता से अभिव्यक्त भी नहीं होते हैं। आवश्यक यह है कि वस्तुओं का कोई गुण स्पष्टतः भिन्न होना चाहिए। उदाहरणतः, सब प्रकार के त्रिभुजों के व्यापक प्रशिक्षण से चूहों को 'त्रिकोणात्मकता' का संप्रत्यय सिखाना

संभव हो गया। यह सीख लेने के उपरांत उन्होंने अ-त्रिकोणों की ओर कूदना छोड़ दिया, किंतु किसी भी प्रकार के त्रिकोण की ओर, चाहे उनमें कितना ही भेद हो, वे कूद पड़ते। इस उदाहरण में चूहे अपने त्रिकोण के संप्रत्यय की ओर अपने कूदने के अंतर द्वारा संकेत करते हैं।

व्यवहार रूप में, किंतु संप्रत्यय-निर्माण में शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। वास्तव में, भाषा मानव के संप्रत्यय-निर्माण से इस प्रकार संबद्ध है कि संप्रत्यय की परिभाषा शब्द की परिभाषा का प्रायः पर्याय है (आसगुड एट० एल०, १९५७)। यह इसलिए कि अधिकांश शब्दों का प्रयोग संज्ञा (लेबल) के रूप में वस्तुओं के सामान्य गुण के संदर्भ में होता है ( व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ अपवाद हैं )। इसे समझने के लिए आप अपनी इच्छानुसार कोई भी शब्द-समूह चुन लें और अपने से प्रश्न करें कि उनका क्या अर्थ है, उनका अर्थ कैसे स्पष्ट किया जाता है ? 'लाल' शब्द लें। 'लाल' किसी एक वस्तु का नाम नहीं है, वरन् कोई भी वस्तु जिसमें 'लालिमा' का गुण है, अन्य विशेषताओं के बावजूद 'लाल' संज्ञा को प्राप्त करती है। अतः, 'लाल' एक संप्रत्यय का नाम है; क्योंकि यह आप में 'लालिमा' का संप्रत्यय जागृत करता है। 'रेल का डिब्बा', 'घर', 'स्कूल', 'वृक्ष' या कोई जातिवाचक संज्ञा लें। प्रत्येक शब्द में निहित संप्रत्यय भिन्न वस्तुओं में समान रूप से पाए जाने वाले गुण पर आधारित होता है। अतः, शब्दों के अर्थ और संप्रत्ययों के अर्थ बिलकुल एक न हों, तो भी अत्यधिक संबंधित हैं।

## अमूर्तकरण (Abstraction) :

शब्दों के प्रत्ययों को ग्रहण करके साथ-साथ या उसके तुरंत बाद हम दो बातें सीखते हैं : प्रथम, अनेक वस्तुओं में जो एक सामान्य गुण पाया जाता है, उसका विभेदन करना। यह अमूर्तकरण कहलाता है। द्वितीय, सामान्य ग्रहित गुण को विशेष संज्ञा शब्द से अभिहित करना। जब यह संज्ञा सामान्य ग्रहित गुण के लिए निरंतर प्रयुक्त होती रहती है, तब संप्रत्यय अधिगत हो जाता है। बच्चों में संप्रत्यय-निर्माण का उदाहरण लेकर हम इसे स्पष्ट करें।

> पहले नन्हा जॉनी वस्तुओं का नाम सीखने के प्रक्रम को पार करता है (देखिए, चित्र ९४)। मान लीजिए, कि जब-जब जॉनी को सेव दिया जाए, कोई कहे 'सेव' और उसे 'गेंद' प्याला या त्रिभुजाकार ब्लाक देते समय वे कुछ न कहें या कुछ भिन्न शब्द कहें। इससे जानी को 'सेव' शब्द को उस नाम के फल के साथ साहचर्य स्थापित करने का अवसर मिलता है। इसके अतिरिक्त उसकी सहायता इस प्रकार भी की जा सकती है कि जब-जब वह

'सेव' कहे, उसे वही फल दिया जाए। जिन सेवों से वह 'सेव' का इस प्रकार से साहचर्य स्थापित करता है, वे रूप और आकार में भिन्न होंगे, किंतु वे सब अधिक या कम गोल होंगे, वे खाने योग्य होंगे, उनमें डंठल होंगे, इत्यादि।

इतना सीखने के उपरांत जॉनी को सेव का संप्रत्यय-ज्ञान हो जाएगा। किंतु यह, सेव के लिए संप्रत्यय से हम परिचित हैं, उससे भिन्न भी हो सकता है। वास्तव में यह हमारे 'फल' के संप्रत्यय के अनुरूप भी हो सकता है; क्योंकि वह 'सेव' का प्रयोग किसी भी फल के लिए कर सकता है, जो सेव के आकार से मिलता-जुलता हो और जिसे वह खा सके। यह इसलिए कि सेव का उसका संप्रत्यय 'कोई भी गोल और रसदार वस्तु है' जिसे वह खा सके। ये सेव के सामान्य गुण हैं, किंतु ये और भी अनेक फलों के सामान्य गुण हैं। वह बहुत अधिक सामान्यीकरण कर लेगा, किंतु वह साधार करेगा। वास्तव में वह उद्दीपन सामान्यीकरण की प्रक्रिया को प्रदर्शित करता है, जिसे हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं। समान वस्तुओं का यह सामान्यीकरण ही वास्तव में संप्रत्यय-निर्माण के लिए आवश्यक होता है। किंतु 'सेव' का उपयुक्त संप्रत्यय सीखने के लिए उसे अधिक शिक्षण की आवश्यकता होगी, जिससे सेव के गुणों की नारंगी और आलूचे इत्यादि के गुणों से भिन्नता को जान सके। यथासमय वह निश्चय ही इस अंतर को सीख लेगा।

## प्रारंभिक संप्रत्यय विभेदन-प्रक्रम द्वारा सीखे जाते हैं।
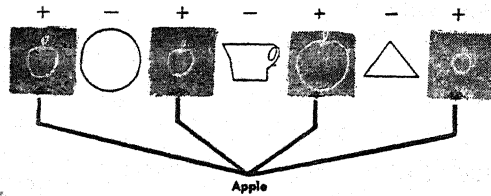
**चित्र ९.४ संप्रत्यय-निर्माण। बालक जब कुछ वस्तुओं को देखता है 'सेव' शब्द सुनता है, जबकि अन्य वस्तुओं को देखने पर नहीं सुनता। और यदि वह उन कुछ वस्तुओं को, अन्य को नहीं, देखने पर 'सेव' कहता है, तो पुरस्कृत किया जाता है। इस प्रकार वह सेव के संप्रत्यय का सामान्यीकरण करता है तथा उसे अन्य संप्रत्ययों से भिन्न करता है (जॉनसन के अनुसार, १९४८)।**

संप्रत्यय-निर्माण की यह प्रक्रिया उतनी ही तीव्र गति से बढ़ती रहेगी, जितनी तीव्रता से जॉनी वस्तुओं की भिन्नता को सीख सकेगा और साथ ही उनकी समानताओं

को भी ग्रहण कर सकेगा और इस प्रकार वस्तुओं के वर्गों को निर्धारित कर सकेगा। यह इस पर भी निर्भर करेगा कि नामकरण करने की अनुक्रियाएँ उसे कितनी मिलती हैं। बिना उपयुक्त शब्दों के, जिनसे वह वर्गों के नामकरण कर सके, उनके प्रति अनुक्रिया करने के साधनों का उसके पास अभाव रहेगा। यदि उसे उपयुक्त शब्द उपलब्ध हो जाए, वह उन वर्गों को अर्थ देने वाले शब्दों से संबद्ध कर सकेगा। अतः, प्रत्यय-निर्माण में विभेद और सामान्य ग्रहण, वर्गों का नामकरण करते हुए साथ-साथ कार्य करते हैं।

उदाहरण के रूप में रंग के संप्रत्यय पर विचार करें। मनुष्य सहस्रों प्रकार के रंगों का विभेद कर सकते हैं और रंगों के दर्जनों नाम भी हैं। किंतु, व्यवहार में हम केवल कुछ ही रंग-संप्रत्ययों का प्रयोग करते हैं, जो संभव हैं। साधारणतः एक बालक को लाल, हरे. पीले और नीले रंगों के नाम सिखाए जाते हैं, किंतु शायद ही कभी उसे लोहित, प्रगाढ़ लाल, सिंदूरी या गहरा गुलाबी सिखाए जाते हैं। उसके लिए प्रारंभ में 'लाल' केवल उसके लाल खिलौने की संज्ञा होता है, किंतु बाद में वह एक वर्ग की वस्तुओं के लिए, जिनका गुण लाल है, इस शब्द का प्रयोग करता है और एक संप्रत्यय के रूप में इसका प्रयोग करने लगता है। वर्ग का अंतिम नामकरण करने में वह पूर्ण निश्चय नहीं कर पाता, वह दुविधा में पड़ जाता है कि नारंगी—लाल को 'लाल', 'पीला' या 'नारंगी' कहे, अथवा वह बैंगनी रंग की दुविधा में पड़ जाता है। फिर भी मध्य स्थिति में इनका नामकरण लाल' होता है और इस वर्ग का नाम बहुधा पाए जाने वाले तत्वों के आधार पर होता है। दूसरी ओर बैंगनी, अधिनीलतिरिक्त आदि नामों के अभाव में वह इन रंगों के संप्रत्यय संभवतः नहीं बना सकेगा, जब तक वह इन शब्दों को सीख न लेगा।

## संप्रत्यय सीखने की प्रणालियाँ या विधियाँ ( Methods of Learning Concepts ) :

हमारी औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार की शिक्षा का अधिकांश संप्रत्ययों के अधिगम पर आधारित है। कुछ इसी कारण से संप्रत्यय-निर्माण का अध्ययन विस्तार से किया गया है। एक प्रश्न जो इस संबंध में प्रायः पूछा गया है वह है, 'मनुष्य संप्रत्यय कैसे सीखते हैं? वे किन प्रणालियों का प्रयोग करते हैं?' चार प्रणालियों को स्पष्ट देखा जा सकता है।

### विभेदात्मक अधिगम (Discriminative Learning) :

संप्रत्यय अधिगम करने की एक प्रणाली वह है, जिससे जॉनी ने सेव' और 'फल' के संप्रत्ययों को सीखा। व्यक्ति के सामने शब्दों के लेबल को वस्तुओं से संबद्ध

करने की समस्या होती है और इसे करना सीखने के समय वह वस्तुओं के कुछ सामान्य गुणों को ग्रहण करता है। एक उदाहरण ( हल, १९२० ) जो इस प्रकार के संप्रत्यय-निर्माण को स्पष्ट करता है नीचे दिया जा रहा है :—

"कालेज के विद्यार्थियों के समक्ष बारह कार्डों की गड्डी (बंडल) में से एक-एक कार्ड अलग-अलग प्रस्तुत किया गया। प्रत्येक कार्ड पर एक भिन्न चीनी अक्षर अंकित था। जैसे ही एक कार्ड दिखाया जाता, प्रयोगकर्त्ता एक निरर्थक शब्द जैसे ओ, येर अथवा ली कहता। प्रथम बार गड्डी के क्रमानुसार प्रयोग-पात्र प्रयोगकर्त्ता का अनुकरण करता हुआ उस निरर्थक शब्द की केवल पुनरावृत्ति करता। इसके बाद कार्डों के क्रम में उलटफेर कर दिया गया और उसी प्रकार फिर क्रम से उन्हें दिखाया गया। इस बार एवं परवर्त्ती प्रयोग में प्रयोग-पात्र कार्डों में क्रम का सही शब्दों का प्रयोग करने का अनुमान करता। भूल करने पर उसे सुधार दिया जाता था। बंडल के कार्डों के क्रम को इसी प्रकार बार-बार तब तक दोहराया गया, जब तक प्रयोग-पात्र हर चीनी अक्षर के लिए उपयुक्त 'नाम' सीखा।

इसके बाद चीनी अक्षरों के १२ कार्डों का दूसरा बंडल प्रस्तुत किया गया। प्रयोग-पात्र को निर्देश दिया गया कि पहले बडल में उसने जो १२ नाम सीखे हैं, उन्हीं का प्रयोग दूसरे बंडल के कार्डों के लिए वह करे और इन्हें प्रथम बार देख कर ही अनुमान करना प्रारंभ करें। वह इनके क्रम की भी पूर्णतः सीखने तक पुनरावृत्ति करता रहा। इसी प्रणाली का प्रयोग १२ कार्डों के चार और बंडलों के साथ किया गया और प्रत्येक में भिन्न अक्षर थे।

प्रयोग-पात्र के लिए अज्ञात होने पर भी वही शब्द सदा प्रयोग किया गया, जब अक्षर में विशेष अंश एक 'मूलरूप' में प्रकट हुआ यद्यपि सब अक्षर भिन्न थे, किंतु एक अंश 'ओ' वही था और प्रत्येक अक्षर का यह सामान्य गुण अस्पष्ट था, आवृत्त रूप से प्रयुक्त था और प्रत्येक अक्षर के संबंध में, जिसे विशेष नाम दिया गया था, यही बात थी। इसे स्पष्ट करने के लिए चित्र ९.५ में अक्षरों की दो पंक्तियाँ दी गई हैं। प्रथम पंक्ति में जो अक्षर दिए गए हैं, उन्हें वे ही नाम दिए गए, किंतु हर अक्षर भिन्न-भिन्न रेखाओं द्वारा आच्छादित या आवृत्त किया गया है। इसी तरह दूसरी पंक्ति के अक्षरों को भी उन्हीं नामों से अभिहित किया गया और प्रत्येक अक्षर भिन्न प्रकार की रेखाओं में सजाया गया।

इस प्रयोग में संप्रत्यय के अधिगम को प्रथम 'अनुमान' में फिर द्वितीय, तृतीय और परवर्त्ती आच्छादनों में किए गए उपयुक्त अनुमानों की संख्या के

आधार पर परिमापित किया गया। १२ अक्षरों में १/१२ या ८ प्रतिशत ठीक होने की संभावना थी। फिर भी प्रयोग-पात्रों की ठीक अनुक्रियाओं के औसत प्रतिशत की संख्याएँ इस प्रकार थीं—

| बंडल की संख्या— | २ | ३ | ४ | ५ | ६ |
|---|---|---|---|---|---|
| प्रथम प्रयोग में सही प्रतिशत— | २७ | ३८ | ४७ | ५५ | ५६ |

**चित्र ९.५ चीनी लिपि के सामान्य तत्त्वों का सामान्य ग्रहण** ( हल, १९२०)।

ध्यान रखें कि प्रयोग-पात्र ठीक ढंग से अक्षरों के कुछ सामान्य अंशों को ग्रहण और उनका नामकरण करना सीख रहे थे। कार्य इतना जटिल था कि वे साधारणतः पूर्णतः सीखने से दूर ही थे। देखिए, यदि आप हर पंक्ति के अक्षरों के चित्रों से सामान्य अंश अथवा मूल रूप को पहचान सकें।"

इस प्रयोग में अधिगम का स्वरूप संभवतः छोटे बच्चों के संप्रत्यय अधिगम की प्रक्रिया के सदृश ही है। अंतर केवल इतना ही है कि कालेज के विद्यार्थियों के लिए होने के कारण जानबूझ कर इसे पर्याप्त जटिल बनाया गया है। इस प्रयोग का उल्लेख हम पुनः करेंगे। अतः पाठक इसे स्मरण रखें।

संदर्भ (Context)।

संदर्भ के माध्यम से संप्रत्यय सीखना इसकी दूसरी प्रणाली है। हम किसी शब्द का अर्थ नहीं जानते, किंतु हम उसे विविध संदर्भों में देखते या सुनते हैं और उससे प्रायः उसके अर्थ को हम पर्याप्त ठीक धारण बना लेते हैं। निम्नलिखित उदाहरण संप्रत्यय-निर्माण के एक प्रयोग (वर्नेर और क्प्लान, १९५०) से लिया गया है। देखिए यदि आप बता सकें कि 'Corplum' क्या है :—

"एक Corplum का उपयोग सहारे के लिए भी हो सकता है।

Corplum का उपयोग एक खुली जगह को बंद करने के लिए भी हो सकता है।

एक Corplum लंबा हो सकता है या छोटा भी, मोटा या पतला भी, दृढ़ और दुर्बल भी।

एक गीला Corplum जलता नहीं है।
आप Corplum को सिकता-पत्र द्वार कोमल बना सकते हैं।
पेंटर अपने रंगों के मिश्रण में Corplum का प्रयोग करता है।
इन वाक्यों को एक के बाद एक प्रयोग-पात्रों के सामने प्रस्तुत किया गया और इसके बाद उनसे पूछा गया कि 'Corplum' का अर्थ क्या है और उन्होंने उसका वह अर्थ कैसे सोचा ?

आप निःसंदेह उसके संबंध में किए गए वाक्यों से Corplum का संप्रत्यय खोज लेंगे। आप जान लेंगे कि यह उसी संप्रत्यय को अभिव्यक्त करता है, जिसे आपका परिचित शब्द। मान लीजिए, यदि आप इस शब्द को नहीं जानते थे किंतु Corplum के गुणों से परिचित थे, तो भी आपके अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे। वास्तव में आप Corplums के गुणों के संबंध में और अनेक वाक्य लिख सकेंगे।"

**परिभाषा (Definition) :**

नवीन संप्रत्यय सीखने की तीसरी प्रणाली है, परिभाषा। वास्तव में, अधिकांश सप्रत्यय जो आप अपनी शिक्षा के अंतिम काल में सीखते हैं, इसी प्रणाली से सीखते हैं। उदाहरणार्थ, आपने इस पुस्तक में अनेक संप्रत्यय उनकी परिभाषा के माध्यम से सीखे हैं। यह ठीक है कि इसी प्रयोजन से आप शब्दकोष का प्रयोग भी करते हैं। किसी भी रूप में आप संप्रत्यय को दूसरे शब्दों में किए गए उसके वर्णन द्वारा सीखते हैं। उदाहरणार्थ, ६ वर्षीय अधिकांश बच्चों ने कभी जेबरा नहीं देखा, किंतु उनमें जेबरा का संप्रत्यय होता है (आसगुड एट० एल०, १९५७)। उनसे कहा गया है कि यह एक जानवर है जिसके धारियाँ होती हैं, वह देखने और दौड़ने में घोड़े-जैसा होता है, इसका आकार भी घोड़े के समान होता है और यह प्रायः जंगल में पाया जाता है। यह परिभाषा जेबरा का पर्याप्त शुद्ध संप्रत्यय प्रस्तुत करती है।

**वर्गीकरण (Classification) :**

संप्रत्यय अधिगम की एक प्रणाली है, विविध प्रकार के वस्तुओं को वर्गों में विभाजित करने का प्रयत्न करना। वैज्ञानिक प्रायः इसी प्रणाली को अपनाता है, विशेषतः जब किसी समस्या की गवेषणा उसे करनी हो। उदाहरणार्थ, प्राणिविज्ञ 'कीट', 'स्तनपायी' इत्यादि में जानवरों का उनकी सामान्य विशेषताओं के अनुसार वर्गीकरण करके संप्रत्ययों को विकसित करता है। संप्रत्यय-निर्माण पर अध्ययन करने वाले प्रयोगकर्ता प्रायः इसी प्रणाली का प्रयोग करते हैं; क्योंकि उनके निर्धारित परिणामों का सहज परिमापन हो सकता है। (इस प्रणाली को निम्नांकित प्रयोग (हीडब्रेडर, १९४८ ब) : द्वारा स्पष्ट किया गया है :—

"प्रयोगकर्त्ता ने १४४ कार्डों के बंडल का प्रयोग किया। प्रत्येक कार्ड पर, चित्र ९.६ के चित्रों में से कोई एक स्वरूप अंकित था। चित्र इस प्रकार से बने थे कि उनमें तीन वस्तुएँ थीं—तीन प्रकार की निरर्थक रेखाएँ, और अंकों के तीन समूह जैसे ३, ४ और ६। इससे प्रत्येक चित्र ९ प्रकारों में परिवर्तित हो सकता था और प्रत्येक वर्ग के १६ आकार थे ९ × १६ = १४४)।

सामान्य गुण ग्रहण के प्रयोग में प्रयुक्त कार्डों के ही नमूने इन चित्रों में हैं।
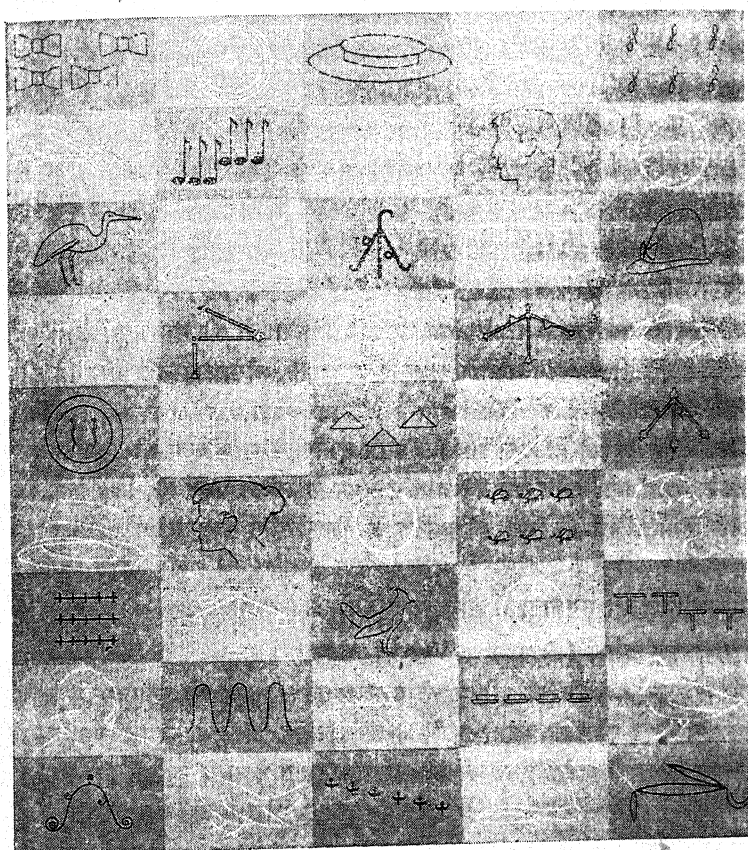
**चित्र ९.६ संप्रत्यय-निर्माण के प्रयोग में प्रयुक्त चित्र। अधिक स्पष्टीकरण के लिए पुस्तक देखिए। (हीडब्रेडर, १९४८ ब)**

प्रयोग-पात्रों (कालेज की छात्राओं) को निर्देशन दिया था कि कार्डों को ९ ढेरियों में विभाजित करें और 'वर्गीकरण का आधार वे स्वयं सोचें।' उनके आँकड़े विशेष संप्रत्यय के अनुसार कार्डों के वर्गीकरण की उनकी संगति पर आधारित थे। जब वे एक बार वर्गीकरण कर चुकीं, तब उन्हें दूसरी बार भिन्न प्रणाली से वर्गीकरण करने के लिए कहा गया। इस प्रकार से भिन्न वस्तुओं के आकारों और संख्याओं के संप्रत्ययों के अधिगम (या खोज) में उनकी सफलता निर्धारित की जा सकी।"

## संप्रत्यय-निर्माण को प्रभावित करनेवाले कारक (Factors Affecting Concept Formation) :

यह जानना व्यावहारिक एवं शैक्षणिक महत्त्व का है कि संप्रत्यय-निर्माण में क्या सहायक या बाधक होता है; क्योंकि इससे हम लोगों को संप्रत्यय सिखाने की अपनी प्रणालियों में सुधार कर सकेंगे। यदि हम इस पर सूक्ष्मता से विचार करें, तो हम अनेक महत्त्वपूर्ण कारकों को ले सकेंगे, जो अंतर कर सकते हैं, किंतु हमारे प्रयोजन के लिए यहाँ चार कारक ही पर्याप्त होंगे।

### अंतरण (Transfer) :

अंतरण एक कारक है, जो अन्य अधिगम प्रकारों में भी महत्त्वपूर्ण है। यदि एक व्यक्ति वैसे ही एक संप्रत्यय को पहले से जानता है, जैसा वह नया संप्रत्यय सीख रहा हो, तो वह तीव्रता से सीख सकता है। यह विध्यात्मक अंतरण है। किंतु, समानता भ्रमात्मक भी हो सकती है। इससे नकारात्मक अंतरण भी उपस्थित हो सकता है। यदि एक नवीन संप्रत्यय ज्ञात संप्रत्यय के समान प्रकट हो, किंतु कुछ रूपों में उससे नितांत भिन्न भी हो, तो व्यक्ति के लिए नवीन संप्रत्यय को समझने में कठिनाई हो सकती है। अंतरण के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए यह आवश्यक है कि अध्यापक उसकी समानताओं और अंतर दोनों को स्पष्ट करें।

### यथार्थ बनाम अमूर्त (Concrete Versus Abstract) :

संप्रत्यय अधिगम की प्रक्रिया की सरलता को संप्रत्यय की सापेक्ष यथार्थता या अमूर्तता भी प्रभावित करती है। यद्यपि अपवाद भी हैं, फिर भी यह सत्य है कि यथार्थ संप्रत्यय' अमूर्त संप्रत्ययों की अपेक्षा सरलता से सीखे जाते हैं। उदाहरणार्थ उपर्युक्त प्रयोग में 'वस्तुओं' के संप्रत्यय आकारों और अंकों की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्रता से सीखे गए थे।

साधारण जीवन में ठोस संप्रत्यय वास्तविक वस्तुओं के होते हैं जैसे द्रव्यों, जानवरों, वृक्षों, घरों, इत्यादि के। इन्हें अंक, धर्म, अनुशासन-जैसे अमूर्त संप्रत्ययों की

अपेक्षा ग्रहण करना सहज है। यह ठीक है कि इनमें कोई पूर्ण विभाजन रेखा नहीं है, इनमें अंतर केवल कुछ मात्राओं का ही हो सकता है। अन्य कारक जिनका यहाँ उल्लेख हुआ है वे, जैसे अंतरण और प्रभिन्नता, ठोस, 'वस्तु' संप्रत्ययों के अपेक्षाकृत सरल अधिगम में बाधक होते हैं। यदि अध्यापक को चयन करने का अवसर मिले, तो वह ठोस संप्रत्ययों को सिखाने का पूर्ण प्रयास करेगा और उसे सफलता भी मिलेगी। यदि वह इसे अनुभव करे और अपनी कल्पना का प्रयोग करे, तो वह एक अमूर्त संप्रत्यय को सिखाने के लिए ठोस प्रणाली खोज सकता है। उदाहरणार्थ, बच्चे अमूर्त संख्या प्रत्यय को ग्रहण करने में कठिनाई अथवा अन्य परिचित संख्यात्मक वस्तुओं का प्रयोग करता है अथवा बच्चों को गणित-संप्रत्यय सिखाने के लिए संग्रह के व्यापक खेल खिलाता है। मूर्त और अमूर्त-संप्रत्ययों के बीच सादृश्यमूलक संप्रत्ययों का प्रयोग करना अमूर्त विषय को मूर्त के माध्यम से सिखाने की विशेषतः अच्छी प्रणाली है—और अन्य प्रणालियाँ भी हैं। हमने उनमें से कुछ को इस पुस्तक में प्रयोग करने का प्रयास किया है।

प्रभिन्नता ( Distinctiveness ) :

संप्रत्यय-निर्माण में तीसरा कारक है, वह मात्रा, जिसके द्वारा सामान्य तत्वों को पृथक्, संबद्ध या अन्य रूप से प्रमुख बनाया जाता है। अच्छे शब्द के अभाव में इसे हम **प्रभिन्नता** कहेंगे। जो कुछ संप्रत्यय के सामान्य गुण को स्पष्ट करता है, वह संप्रत्यय-निर्माण में सहायक होता है और जो कुछ उसे दुरूह या अस्पष्ट करता है या अनावश्यक विस्तार द्वारा आच्छादित कर देता है, वह संप्रत्यय-निर्माण में बाधक होता है। इसके दो उदाहरण संक्षेप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। चीनी अक्षरों के प्रयोग में, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, 'संप्रत्यय' सीखने में विद्यार्थियों की गति बहुत धीमी (मंद) थी; क्योंकि सामान्य तत्व जटिल रेखाओं से आच्छादित था और अक्षर को उलझे हुए रूप में प्रकट किया गया था। यदि सामान्य गुण वाले सब अक्षरों को दो-दो के युग्म में संबद्ध कर दिया जाता, जैसा कि चित्र ९.४ में था, संप्रत्यय-निर्माण कहीं अधिक सरल हो जाता। वास्तव में संभवतः आप कुछ क्षणों (सेकेंडों) में ही संप्रत्यय खोज लेते।

दूसरा प्रयोग सामान्य गुण ग्रहण करने के लिए गुण को पृथक् करने के महत्त्व को स्पष्ट करता है। इस उदाहरण में प्रयोगकर्त्ता ने निरर्थक चित्रों का प्रयोग किया था। जब उसने लाल रंग में ग्रहणीय गुण को रखा, तो उसने अनुभव किया कि संप्रत्यय-निर्माण अपेक्षाकृत बहुत अधिक सरलता से आगे बढ़ा।

संप्रत्यय-निर्माण को प्रभावित करने वाले तीन और उल्लेखनीय कारक भी हैं (जानसन, १९५५)। एक है, सामग्री में हेर-फेर करने की योग्यता। यदि व्यक्ति

को इतनी स्वतंत्रता रहे कि वह सामान्य गुण युक्त उस सामग्री को पुनः व्यस्थित कर सके, पुनः अंकित कर सके, क्रमबद्ध कर सके, तो उसके लिए उपयुक्त प्रत्यय सीखने या खोजने की अधिक संभावना है। दूसरा है व्यक्ति को दिया गया निर्देशन अथवा सामान्य प्रयोजन। यदि उसे कहा जाए कि वह सामान्य गुण ढूँढने का प्रयत्न करे, अर्थात् संप्रत्यय की खोज करे, तो वह अधिक अच्छी तरह करेगा। बनिस्पत यदि उसे एक समस्या दे दी जाए, जैसा कि चीनी अक्षर देकर किया और उपयुक्त नाम ढूँढ़ने के लिए कहा जाए। अंत में, एक व्यक्ति अधिक तीव्रता से सीखता है यदि उसे खंड करके धीरे-धीरे सूचनाएँ देने के स्थान पर एक साथ आवश्यक सूचनाएँ मिल जाएँ।

## संप्रत्ययों के अर्थ (Meaning of Concepts) :

अन्य वस्तुओं के अधिगम के सदृश ही संप्रत्यय अधिगम है। संप्रत्यय को अपूर्ण रूप से सीखा जा सकता है या भली प्रकार से भी परिशुद्ध रूप में अथवा गलत रूप में। एक व्यक्ति जिस संप्रत्यय को सीखता है, आवश्यक नहीं कि वह वही हो, जिसे दूसरा व्यक्ति सीखता या नहीं सीखता है। वास्तव में व्यक्तियों से दैनिक वार्तालाप द्वारा यह पर्याप्त स्पष्ट हो जाता है कि एक ही वस्तु के प्रति भिन्न लोगों के भिन्न संप्रत्यय होते हैं। यह राजनीति या धर्म-जैसे अमूर्त क्षेत्रों में विशेष रूप से सत्य है।

संप्रत्ययों के अधिगम और अर्थ-संबंधी वैयक्तिक भिन्नताएँ एक प्रश्न उपस्थित करती हैं कि हम संप्रत्यय के अर्थ का परिमापन कैसे कर सकते हैं। हम कैसे कह सकते हैं कि एक संप्रत्यय कितनी अच्छी तरह सीखा गया है? हम व्यक्तियों की संप्रत्यय की अर्थ-संबंधी भिन्नताओं को किस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं? इन प्रश्नों के उत्तर हैं, किंतु ये उत्तर हमारे प्रयोजन और संप्रत्ययों के प्रकारों के अनुसार भिन्न होते हैं। सामान्य रूप से संप्रत्ययों के अर्थों को परिमापित करने वाली चार विधियाँ स्पष्ट हो सकती हैं। प्रथम दो विधियाँ, विद्यालयों में हम जिन संप्रत्ययों को सिखाना चाहते हैं, के लिए बहुत उपयोगी हैं, जहाँ इसका निर्णय करने की कोई कसौटी होती है कि संप्रत्यय ठीक है या गलत। अंतिम दो विधियों का वहाँ महत्व-पूर्ण उपयोग है जहाँ ऐसी कोई कसौटी नहीं, किंतु जो व्यक्तित्व तथा सामाजिक विधियों के अध्ययन में सहायक है।

## मुक्त अनुक्रिया (Free Response) :

यह जानने का सबसे सरल और सीधा तरीका कि व्यक्ति संप्रत्यय का क्या अर्थ समझता है, यह है कि उससे ही पूछा जाए कि वह उसका क्या अभिप्राय समझता

है। यह मुक्त-अनुक्रिया प्रणाली है। इस प्रणाली से जो परिणाम उपलब्ध होते हैं—वे दिए गए निर्देशनों और परीक्षित संप्रत्ययों पर निर्भर करते हैं।

एक बालक के कुत्ते से संबंधित संप्रत्यय का परीक्षण उससे यह पूछ कर हो सकता है कि कुत्ते का वर्णन करे। उसका वर्णन पर्याप्त मात्रा में अंतरनिर्भर संगति में 'परिशुद्ध', 'बहुत सामान्य', 'अमूर्त', 'यथार्थ', 'असंबद्ध' इत्यादि परिमापित हो सकता है। वास्तव में इस प्रकार के विषयों का प्रयोग बुद्धि-परीक्षणों में हुआ है और पर्याप्त विश्वसनीय परिणाम उपलब्ध हुए हैं। जब वर्णन असंबद्ध न होकर केवल समाज द्वारा अनुमोदित अर्थ में होता है, तब हम इसे परिभाषा कहते हैं। वर्णन चित्रात्मक भी हो सकता है, जैसे जब एक बालक को एक त्रिभुज खींचने के लिए कहा जाता है अथवा कालेज के विद्यार्थी से तंत्रिका-कोशिका खींचने के लिए कहा जाता है। ये वर्णन प्रयोग-पात्र के शाब्दिक और चित्रात्मक कौशल से तथा संप्रत्यय पर उसकी अधिकार-क्षमता से भी प्रभावित होते हैं।

### विभेद (Discrimination) :

मुक्त अनुक्रिया प्रणाली स्पष्टत: विषयीगत होती है और इससे प्राय: विश्वसनीय परिणाम पाना कठिन होता है।* एक वस्तुगत प्रणाली विभेद समूह का उपयोग करती है। एक व्यक्ति को विविध वस्तुएँ दिखायी जाती हैं अथवा व्यक्तियों की क्रियाएँ या वस्तुएँ और उससे पूछा जाता है कि वह बताए कि उन वस्तुओं में से प्रत्येक संप्रत्यय का उदाहरण है या नहीं ? बैकल्पिक सरल प्रश्न किया जा सकता है कि वह उन वस्तुओं का विशेष समगुणों के अनुसार वर्गीकरण करे। यह व्यक्ति के संप्रत्यय की परशिुद्धता के वस्तुगत परिणाम ठीक और गलत शब्दों में व्यक्त कर सकता है।

विभेद-प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण भेद है—'विचित्रता प्रणाली' [Oddity method (कोफर, १९५१ ) ]।

> "एक व्यक्ति को तीन या उससे अधिक वस्तुएँ दी जाती हैं और उसे विचित्र वस्तु उठाने के लिए कहा जाता है—ऐसी वस्तु जो उस वर्ग की नहीं होती। इस प्रणाली की एक विशेषता यह है कि व्यक्ति को किसी विशेष प्रत्यय को स्पष्ट नहीं करना पड़ता। एक सरल प्रश्न द्वारा वह अनेक संप्रत्ययों के अर्थों का परिमापन कर सकता है और साथ ही संप्रत्ययों में

---

* बुद्धि-परीक्षणों के लिए प्रयोग किए गए विषयों का चयन सावधानी से किया गया था, उपयुक्त उत्तरों को परिनिष्ठित किया गया और परिणामों का मूल्यांकन प्रशिक्षित परीक्षकों द्वारा किया गया था।

यदि कोई परिभ्रांति हो, तो उसे भी परिमापित कर सकता है। इसका उदाहरण है—

अट्टालिका, मंदिर, प्रधान गिरजाघर, प्रार्थना

प्रयोग-पात्र से कहा गया कि इनमें से विचित्र शब्द चुने। वास्तव में इस उदाहरण में, दो संभावित विचित्र शब्द हैं; क्योंकि इनमें दो संप्रत्यय निहित हैं। यदि प्रयोग-पात्र के मस्तिष्क में धार्मिक संप्रत्यय है, तो उसे 'अट्टालिका' का नाम लेना चाहिए और यदि भवन प्रत्यय है तो 'प्रार्थना' का। प्रयोग-पात्र के प्रत्यय के प्रयोग शब्दों के क्रम पर भी निर्भर कर सकते हैं और प्रथम शब्द संप्रत्यय के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण होता है। उपर्युक्त क्रम में 'प्रार्थना' को विचित्र रूप में विचारने की अधिक संभावना है। निम्नलिखित क्रम में—

प्रार्थना, मंदिर, अट्टालिका, प्रधान गिरजाघर में 'अट्टालिका' अधिक संभावित उत्तर हो सकता है। जिन लोगों में इन शब्दों के उपर्युक्त संप्रत्यय न होंगे वे 'मंदिर' या 'प्रधान गिरजाघर' भी ले सकते हैं, जो कि इस प्रकार के शब्दों के प्रतिरूप में कभी भी विचित्र नहीं हो सकते।"

दो प्रणालियों—मुक्त अनुक्रिया और विभेद—के परिणाम सदा समान नहीं होते। लोग प्रायः किसी संप्रत्यय का कोषगत अर्थ या उसकी शाब्दिक परिभाषा दे सकते हैं, किंतु संप्रत्यय के उदाहरण ढूँढने में भूल करते हैं। इसके विपरीत, लोग वस्तुओं के किसी समूह में सामान्य (या असामान्य) विशेषताओं को संभवतः पहचान सकते हैं और फिर भी संप्रत्यय के संबंध में सही शाब्दिक कथन नहीं दे सकते। उदाहरणार्थ, चीनी अक्षरों के प्रयोग में कुछ विद्यार्थी, बिना उनकी सामान्य विशेषताओं को बताने और निर्देशित करने में सफल होने पर भी अक्षरों को ठीक नाम से अभिहित करने लगे थे।

इन दो प्रणालियों के परिणामों में भिन्नता का होना अस्वाभाविक नहीं है। यदि एक व्यक्ति किसी प्रत्यय को अन्य प्रत्ययों के संदर्भ द्वारा अथवा परिभाषा द्वारा सीखता है, तो मुक्त-अनुक्रिया प्रणाली द्वारा अधिक अच्छी तरह उसके सीखने की संभावना है। दूसरी ओर, एक व्यक्ति जिसने अपने संप्रत्ययों को सहज अधिगम द्वारा संप्रत्यय की घटनाओं या उदाहरणों के माध्यम से सीखा है, वह विभेद-प्रणाली द्वारा संभवतः अधिक अच्छी तरह सीखेगा। यह एक कारण है, कि क्यों नितांत औपचारिक शिक्षा जो केवल पुस्तकों तक सीमित है, ऐसे विद्यार्थियों को पृथक् कर देती है, जो 'व्यावहारिक' संप्रत्यय नहीं सीख सकते और क्यों प्रयोगशालाओं की आवश्यकता

उचित समझी जाती है और क्यों अन्य 'ठोस' प्रणालियों की विशुद्ध शाब्दिक शिक्षा के अतिरिक्त संप्रत्यय सिखाने में आवश्यकता होती है ?

### शब्द-साहचर्य (Word Association ) :

संप्रत्यय के अर्थ का परीक्षण करने की एक अन्य प्रणाली विशेष रूप से वैयक्तिक सप्रत्ययों के अध्ययन के लिए और यह जानने के लिए भी कि व्यक्ति के संप्रत्यय पूरे समाज के संप्रत्ययों से वस्तुतः भिन्न है या नहीं, उपयोगी है। यह शब्द-साहचर्य प्रणाली है। व्यक्ति को एक शब्द दिया जाता है और उससे जो प्रथम साहचर्य उसके मस्तिष्क में आता है, पूछा जाता है। साधारणतः वह एक ऐसे शब्द में उत्तर देगा, जो उद्दीपन-शब्द के वर्ग का ही होता है। यदि वह ऐसा उत्तर दे, जो प्रायः उद्दीपन शब्द से संबंधित नहीं होता, यह एक संकेत है कि उसके निजी संप्रत्यय, कुछ रूपों में, सामान्य लोगों से भिन्न हैं।

### संज्ञासंज्ञिमीमांसा अर्थ-विभेदी प्रणाली (Semantic Differential) :

चतुर्थ प्रणाली, जो प्रत्यय के अर्थ-परिमापन की अधिक परिष्कृत प्रणाली है, 'अर्थ-विभेदी' कहलाती है ( आसगुड एट० एल०, १९५७ )। यह प्रणाली सांप्रतिक विकसित हुई है। अब तक इसका प्रयोग मुख्यत. शोध-साधन के रूप में किया गया है, किंतु इसके अनेक संभावित उपयोग हैं। इसका मुख्य प्रयोजन अर्थों के आयामों की सीमित संख्या में संप्रत्ययों का विश्लेषण करना है—इसे आगे स्पष्ट किया जाएगा—और इन आयामों की तुलना लोगों के विविध समूहों में, भिन्न राष्ट्रीय और भिन्न-भाषीय समूहों को भी लेकर करनी है। इसका प्रयोग अभिवृत्ति के परिमापन में समूहगत और व्यक्ति के व्यक्तित्व-परिमापन में भी हो सकता है।

अर्थ-विभेदी के प्रयोग के लिए दो वस्तुओं की आवश्यकता है—एक संप्रत्यय और दो या अधिक मापक। संप्रत्यय एक शब्द है जैसे 'पिता', 'पाप', 'स्वरैक्य', 'रूसी' अथवा अमरीका'। प्रत्येक मापक में दो विपर्यय शब्द रहते हैं, जैसे 'सुखी-'दुखी', 'कठोर-कोमल', 'मंद-तीव्र'। प्रयोग-पात्र को जिस रूप में परीक्षण दिया जाता है, उसमें प्रत्येक मापक में दो शब्दों के बीच सात रिक्त स्थान रखे जाते हैं (देखिए, चित्र ९.७ )। प्रयोग-पात्र से कहा जाता है कि मापक के उन रिक्त स्थानों में वह प्रत्येक संप्रत्यय को किसी भी क्रम से लिखे। अतः, परीक्षण के लिए हम 'पिता' संप्रत्यय को ले सकते हैं। यदि सात रिक्त स्थानों पर दाईं से बाईं ओर मापक पर एक से सात की संख्या लिखी हो, तो प्रयोग-पात्र सुखी-दुखी मानचित्र पर 'पिता' को तृतीय रिक्त-स्थान पर कठोर-कोमल पर द्वितीय स्थान पर और मंद-तीव्र पर पंचम स्थान पर इत्यादि —लिख सकता है। प्रयोग-पात्र बाकी के मापकों पर भी, 'पिता' के लिए यही

करता है, जो २० से ५० तक की संख्या के हो सकते हैं। वह इसी प्रणाली का प्रयोग अन्य संप्रत्ययों में से 'पाप' इत्यादि में भी करता है।

अर्थ-विभेदी प्रणाली एक प्रत्यय के अर्थ को अनेक मापकों पर परि-मापित करती है।

पिता

×
सुखी——:——:——:——:——:——:——दुखी

×
कठोर ——:——:——:——:——:——:——कोमल

×
मंद ——:——:——:——:——:——:——तीव्र

**चित्र ९.७. अर्थ-विभेदी प्रणाली का एक उदाहरण। इस उदाहरण में प्रयोग-पात्र 'पिता' संप्रत्यय का अंकन २० से ५० की संख्या के द्विध्रुवी मापक पर करता है, जिनमें से तीन को यहाँ उद्धृत किया गया है (आसगुड एट० एल० के अनुसार, १९५७)।**

मापकों द्वारा उपलब्ध संप्रत्यय के परिणाम प्रत्येक संप्रत्यय के अर्थ-विभेदी होते हैं। विभेदी संप्रत्यय का अर्थ मानचित्र में उसके क्रम के अनुसार स्पष्ट करता है। यदि हम चाहें, तो प्रत्येक प्रत्यय के लिए पार्श्व-चित्र खींच सकते हैं और प्रत्येक मापक पर उसके स्थान को प्रकट कर सकते हैं। तब हम इन पार्श्व-चित्रों की भिन्न संप्रत्ययों से तुलना कर सकते हैं। जहाँ तक वे पार्श्व-चित्र तदनुरूपी होते हैं, दोनों संप्रत्ययों के अर्थ एक ही रहते हैं। जहाँ तक उनमें भिन्नता होती है, उनके अर्थों में भी भिन्नता होती है।

अर्थ-विभेदी प्रणाली का प्रयोग इस रूप में एवं अन्य प्रकारों से भी हुआ। इसका उपयोग हमारी संस्कृति में व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त संप्रत्ययों की पूर्ण पद्धति के विश्लेषणार्थ भी किया गया है। ऐसा करने की प्रविधियाँ हैं और वे कारक विश्लेषण की सांख्यिकी प्रणालियों का प्रयोग करती हैं। संप्रत्ययों की बड़ी संख्या का इस प्रकार विश्लेषण करने से इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि ऐसे संप्रत्यय, जो हम प्रायः विकसित कर लेते हैं तीन कारकों से बहुत अधिक प्रभावित होते हैं। ये कारक उचित-अनुचित, दुर्बल-दृढ़, सक्रिय-निष्क्रिय जैसे मापकों द्वारा भली प्रकार से

परिमापित हो सकते हैं। यह कहने का अर्थ है कि शब्दों के ये तीन युग्म (अथवा उनसे मिलते-जुलते शब्द) हमारे संप्रत्ययों का दूसरों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह अर्थ स्पष्ट करते हैं। ऐसे मापकों द्वारा परिमापित तीन कारक **मूल्यांकन** ( उचित-अनुचित) **शक्ति-क्षमता,** (दुर्बल-दृढ़) और **क्रियाशीलता** ( सक्रिय-निष्क्रिय ) कहलाते हैं। हमारे अधिकांश संप्रत्ययों के ये ही प्रमुख आयाम प्रतीत होते हैं।

## समस्याओं के समाधान ( The Solution of Problems ) :

चिंतन में जो मध्यस्थ प्रक्रियाएँ हैं, उनमें से अनेक शब्दों और संप्रत्ययों को प्रस्तुत करती हैं। यह कथन उसका सारांश है, जो हमने चिंतन के विषय में अधिगत किया है। इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि वह क्या है, जो चिंतन को प्रारंभ करना है, उसका मार्ग-दर्शन करता है और उसका अंत करता है। एक नदी मात्र जल से कुछ अधिक है। यह कहीं से आरंभ होती है, यह पहले एक दिशा की ओर प्रवाहित होती है, फिर दूसरी दिशा की ओर, कभी तीव्रता से, कभी मंद गति से और अंत में समुद्र में वह लीन हो जाती है। चिंतन के भी प्रारंभ हैं, पथ हैं और अंत हैं। उन्हें कौन सा तत्त्व स्पष्ट करता है ?

## अभिप्रेरण (Motivation) *t*

एक तथ्य है कि चिंतन प्रायः अभिप्रेरित होता है। जैसा कि इस क्षेत्र के प्रसिद्ध अनुसंधानकर्त्ता ( वरथीमेर, १९५९ ) ने कहा है, चिंतन में निहित है 'इच्छा, वास्तविक विषय का सामना करने की उत्कट अभिलाषा। अस्पष्ट, अपर्याप्त संबंध से स्पष्ट पारदर्शी और सीधे स्पष्टता की ओर जाना' अतः, वह विचार-प्रक्रियाओं की ऋजुता पर बल देता है, मात्र साहचर्य द्वारा 'घटित' होने के स्थान पर चिंतन प्रत्येक स्तर पर प्रेरकों द्वारा नियंत्रित होता है।

जो कुछ हम अब जानते हैं, उसके आधार पर हमें चिंतन में कम-से-कम दो प्रकार के अभिप्रेरकों का विभेद करना चाहिए।

१. उस व्यवहार का अभिप्रेरक जो समस्या से ठीक पूर्व होता है, जो प्रेम, लोभ, कौतूहल, अभिलाषा इत्यादि कुछ भी हो सकता है और

२. वह अभिप्रेरक जो स्वयं समस्या द्वारा उसके समाधान को पूर्ण करने या अनुमान करने के लिए उद्दीप्त किया जाता है। प्रथम से चिंतन का प्रारंभ होता है, द्वितीय द्वारा चिंतन समाधान तक आगे बढ़ता है।

महान विचारकों, जैसे वैज्ञानिक, कलाकार, लेखक, आविष्कर्त्ता की चिंतन-प्रक्रियाओं पर विचार करते हुए हमें एक तीसरे प्रकार के अभिप्रेरण को स्वीकार करना पड़ेगा :—रचनात्मक कार्य में आजीवन रुचि अथवा चुनौतीपरक समस्याओं का समाधान।

## आदत और विन्यास ( Habit & Set ) :

आदत और विन्यास द्वारा चिंतन गति प्राप्त करता है और प्रायः अवबाधित भी होता है। समस्याओं के समाधान का अभ्यास एक ओर हमें उसी ढंग से नवीन समस्याओं का समाधान करने के लिए विन्यास' करता है और व्यावहारिक समस्याओं के सदृश नई समस्याओं को उद्दीपनयुक्त करता है। बहुत से कौशलपूर्ण परिहासों और पहेलियों का यही रहस्य है। एक कौशल-प्रदर्शन में आप कुछ शब्द उच्चरित करते हैं और दूसरे व्यक्ति उन्हें उच्चरित करने के लिए कहते हैं। आप 'मैक' से प्रारंभ होने वाले नामों को कहते हैं जैसे मैकडोनाल्ड, मैकताविश। और फिर आप 'मैशीनरी' शब्द का उच्चारण करें। आप देखेंगे कि लोग आप के जाल में फँस गए और इसे 'मैकहिनेरी' कह कर दुहराएँगे।

तात्कालिक अनुभवों के कारण, दीर्घकालीन अभ्यास के कारण अथवा पुरानी आदतों को स्मरण दिलाने वाले निर्देशनों (देखिए 'प्रशिक्षण में अंतरण', अध्याय ८) द्वारा तत्परता उत्पन्न हो सकती है। यह विचारक को अनुचित प्रोत्साहन देती है और उसे अनुक्रिया के कुछ वर्गों से भिन्न मार्ग की ओर ले जाती है। यह एक निहित धारणा के रूप में कार्य करती है। प्रशिक्षण के अंतरण के समान यह अपने प्रभाव में विध्यात्मक अथवा नकारात्मक हो सकती है। यदि यह सहायक होती है तो हम सकते हैं 'हम कितने बुद्धिमान हैं'। यदि यह बाधक होती है तो हम कहते हैं, 'हम कितने मूर्ख थे।'

एक अनुसंधानकर्त्ता (लुचिंस, १९५४) ने अभ्यस्त तत्परता पर सारणी ९·१ की समस्या पर व्यवस्थित प्रयोग किया। अंश रूप में उस प्रयोग का विवरण यहाँ दिया जा रहा है

> "छठी समस्या में, उदाहरणार्थ, प्रयोग-पात्र से पूछा जाता है वह २० क्वार्ट जल का परिमापन जबकि उसके पास केवल तीन जार हैं, जिनमें क्रम से २३,४९ और ३ क्वार्ट जल है, किस प्रकार करेगा ? प्रयोग-पात्र इसे सरल ढंग से करते हैं, २३ क्वार्ट जलपूर्ण जार में से वे ३ क्वार्ट का जार भर देते हैं, यदि उसमें कोई बाधक तत्परता न हो। यदि वे इसी समस्या को दीर्घ प्रणाली द्वारा सुलझाने पर अर्थात् मध्य जार को भरके, उससे दाहिने जार को दो बार और बाएँ जार को एक बार भरके और अपेक्षित मात्रा को मध्य जार में रखते हैं, वे प्रायः दीर्घ पथ का अवलंबन करते हैं और सरल विधि की ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। आश्चर्य की बात है कि ७५ प्रतिशत कालेज-विद्यार्थियों ने पाँच परीक्षणों में दीर्घ पथ का प्रयोग किया और सरल विधि की ओर उनका ध्यान नहीं गया।"

| समस्या संख्या | परिमापक के रूप में दिए गए रिक्त जार (पात्र) | | | जल की उपलब्ध मात्रा |
|---|---|---|---|---|
| | A | B | C | |
| १. अभ्यास | २१ | १२७ | ३ | १०० |
| २. अभ्यास | १४ | १६३ | २५ | ९९ |
| ३. अभ्यास | १८ | ४३ | १० | ५ |
| ४. अभ्यास | ९ | ४२ | ६ | २१ |
| ५. अभ्यास | २० | ५९ | ४ | ३१ |
| ६. परीक्षण | २३ | ४९ | ३ | २० |

**सारिणी ९.१. लूँचिस द्वारा प्रयुक्त अभ्यास (प्रयत्न) और परीक्षण-समस्याएँ। पाँच अभ्यास-समस्याओं के समाधान की अस्पष्ट विधि है, किंतु परीक्षण-समस्या का समाधान सुगमता से हो जाता है। अधिकांश प्रयोग-पात्र, जो अभ्यास-समस्याओं को करते हुए विशेष तत्परता अर्जित कर लेते हैं, परीक्षण-समस्या को दीर्घ-विधि द्वारा सुलझाते हैं और सुगम विधि का उन्हें ध्यान ही नहीं आता (लूँचिस, १९५ण)।**

मूर्खतापूर्ण समाधानों की अभ्यस्त आवृत्ति को इन तरीकों से कम किया जा सकता है—(१) प्रयोग-पात्र को सावधान करके, निर्णायक छठे परीक्षण से पूर्व 'मूर्खता मत करो' कह कर, (२) अभ्यास-परीक्षणों की संख्या में कमी करके (३) अभ्यास और निर्णायक परीक्षणों में कुछ दिनों या सप्ताहों का अंतर करके तुलनात्मक दत्त-सामग्री से जैसा कि अभ्यास-परीक्षणों द्वारा स्पष्ट है. उनके विरुद्ध सावधान करने की अपेक्षा आदत और तत्परता कहीं अधिक शक्तिशाली कारक हो सकते हैं।

सहकारी समस्या-समाधान में इस लाभ की संभावना है कि दो व्यक्तियों में संभवतः एक सदृश बाधक तत्परता नहीं होगी। 'बड़े दल' ( Bull sessions ) 'सामूहिक विचार' (Group thinks) या 'मानसिक उद्वेलन' (Brain storming) का यह एक महत्त्व है।

## अचेतन कारक ( Unconscious Factors ) :

आविष्कारक अथवा गणितज्ञ के आत्मकथात्मक विवरण से ज्ञात होता है कि वह कभी-कभी समस्या का समाधान बिना उस पर विचार करने का प्रयास किए ही पा लेता है और निरंतर परिश्रम करने पर भी समाधान पाने में असमर्थ रहने पर

विचारक किसी अन्य विषय की ओर केवल इसलिए उन्मुख होता है कि अनायास रूप से समाधान प्राप्त कर सके (पाएनकेरे, १९१३) और अन्य गणितज्ञों ने कहा है कि ऐसे अचेतन समाधान उन्हें सड़क पर घूमते हुए या किसी अन्य सामान्य कार्य में व्यस्त रहते समय मिले हैं। किंतु, वे शायद ही कभी अन्य गणितीय समस्याओं में गंभीरता से लीन रहने पर मिलें। इन विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि संकेंद्रित चिंतन का प्रयास कभी-कभी प्रतीकात्मक अंधकारमय पथ की ओर, निष्फल परिणाम की ओर ले जाता है और उस स्थिति में कुछ विश्राम करने के उपरांत उसे पुनः प्रारंभ करने पर ही नया पथ पाने की संभावना रहती है। निःसंदेह जितने घटक हमने सूचीबद्ध किए हैं, उनसे बहुत अधिक का समावेश मानव-चिंतन में होता है। इनमें से कुछ इस अर्थ में 'अचेतन चिंतन' के कारण होते हैं; क्योंकि हमारा अधिकांश चिंतन अमूर्त होता है।

### अंतर्दृष्टि द्वारा समाधान (Solution by insight) :

हम पुनः संक्षेप में दोहराएँ। किसी प्रकार की समस्या से चिंतन प्रारंभ होता है और उस समस्या के समाधान का एक प्रेरक होता है। यह किसी तत्परता अथवा निर्धारक प्रवृत्ति द्वारा प्रेरित होता है और पूर्वअधिगत आदतों द्वारा सहायता—या बाधा—प्राप्त करता है। बिना चेतन ज्ञान के भी यह चिंतन चलता रह सकता है। अब हमारा प्रश्न हो सकता है कि समस्या का समाधान कैसे हो जाता है?

इस प्रश्न के कम-से-कम तीन उत्तर हैं—प्रयत्न और भूल द्वारा, रटकर और अंतर्दृष्टि द्वारा। समस्या के समाधान का प्रयत्न करते समय कभी-कभी अनायास सही उत्तर मिल जाता है। एक ढंग से प्रयत्न करने पर, फिर दूसरे ढंग से करने पर अंत में ऐसा ढंग मिल ही जाएगा जिससे समाधान मिल सके। यह बहुत कुछ साभिप्राय अधिगम के सदृश है, जिसका उल्लेख हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं—उदाहरणार्थ व्यूह-अधिगम—व्यूह में भटकने के स्थान पर आप केवल चिंतन-प्रक्रियाओं का प्रयोग करते हैं।

दूसरे प्रकार से बिना विचार के रटने से समाधान उपलब्ध होता है। यदि मैं आपको एक पृष्ठ पर अंक जोड़ने के लिए दूँ, आप तुरंत अधिगत-विधि के अनुसार सोचना प्रारंभ कर देंगे और थोड़ी देर में आप उत्तर पा लेते हैं। अथवा, यदि आपसे एक शब्द की वर्तनी करने के लिए कहा जाए, या एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का निर्देशन देने के लिए कहा जाए तो आप न्यूनतम चिंतन करेंगे और सामान्य स्मरण द्वारा उत्तर दे देंगे। समस्या-समाधान के इस प्रकार को समझने के लिए केवल इतना ही जानने की आवश्यकता है कि पहली बार समाधान किस प्रकार अधिगत किया गया था।

समस्या-समाधान का तीसरा प्रकार है अंतर्दृष्टि द्वारा समाधान, जो न प्रयत्न और भूल द्वारा प्राप्त होता है और न रटने से। यह अंध प्रयत्न और भूल प्रणाली से अथवा रटने से विकसित हो सकता है, किंतु यह विचारक के सम्मुख एक पूर्णतः नवीन अनुभव प्रस्तुत करता है। समस्या का समाधान सहसा पाने पर 'अहा ! मैंने पा लिया'— उसकी भावावेग की अभिव्यक्ति है। उसने एक नवीन समाधान— उसके लिए कम-से-कम जो नवीन है—की चिंतन द्वारा खोज की है। यदि समाधान वास्तव में नवीन है, उसने ऐसी खोज की है या निर्माण किया है, जिसे वह अपने समाज के अन्य सदस्यों को 'रटने की चिंतन' प्रक्रियाओं के रूप में प्रयोग करने के लिए दे सकता है। जैसा कि हम देखेंगे, ऐसी अंतर्दृष्टि का कुछ-न-कुछ संबंध पूर्व अधिगम से होता है, किंतु इस संबंध को ठीक रूप से जानने के लिए हमें पर्याप्त अनुसंधान करना पड़ा।

### अंतर्दृष्टि का उपयोग ( The use of insight ) :

कुछ समस्याएँ अंतर्दृष्टि द्वारा अन्य समस्याओं की अपेक्षा अधिक सरलता से सुलझायी जाती हैं। उदाहरणार्थ, सैनिकों को अपनी क्रम-संख्या का ध्यान रखने में कठिनाई होती है, साधारण स्मरण के अतिरिक्त इस समस्या को किसी दूसरे ढंग से नहीं सुलझाया जा सकता। पहाड़े रटकर या अंतर्दृष्टि द्वारा भी सीखे जा सकते हैं—रट कर सीखना वास्तव में उनके अंतर्दृष्टि—अधिगम में बाधक होता है। अन्य समस्याएँ केवल अंतर्दृष्टि द्वारा ही सुलझायी जा सकती हैं या अंतर्दृष्टि कम-से-कम उन्हें सुलझाने का अपेक्षाकृत सरल ढंग है।

अंतर्दृष्टि के उत्कृष्ट प्रयोग वे हैं, जिनमें प्रयोग-पात्र औजारों का प्रयोग आवश्यक रूप से करता है। निम्नलिखित प्रयोग इसका प्रसिद्ध उदाहरण है (कोहलर, १९२५)।

> "चिंपांजियों को अपने पिंजड़े के बाहर से, जहाँ उनके हाथ नहीं पहुँचते थे, केले उठाने के लिए, फावड़े दिए गए। अधिकांश चिंपांजियों ने 'प्रयत्न और भूल' रीति द्वारा फावड़े का अन्वेषण किया और उसे उलट-पलट कर देखा, किंतु बीच-बीच में अचानक कोई चिंपांजी फावड़े की ओर दौड़ता, उसे जंगले से बाहर निकालता जहाँ केला था और उसे भीतर खींचता। यह व्यवहार विशेष रूप से प्रभावशाली होता यदि चिंपांजी, सफल क्रिया के ठीक पहले, पिंजड़े के दूसरी ओर जाता और फावड़े की ओर देखता भी नहीं। निश्चय ही वह गंभीर चिंतन करता रहा होगा। समाधान के समय उसकी मुखमुद्रा के परिवर्तन से निश्चय ही व्यक्त होता था कि चिंपांजी को 'अहा !' की अनुभूति हुई है।"

## अंतर्दृष्टियाँ कैसे विकसित होती हैं (How insights develop) :

अनेक प्रयोगकर्त्ताओं ने अंतर्दृष्टि पर उपर्युक्त वर्णित प्रयोग के समान अन्य प्रयोग किए हैं और उन्हें बच्चों पर भी किया है। सामान्यतः उनके परिणाम स्पष्ट करते हैं कि छड़ियों और फावड़ों का कौशलपूर्ण अंतर्दृष्टि-परक प्रयोग नहीं हो सकता, जब तक कि प्रयोग-पात्र को इन वस्तुओं के प्रयोग का पूर्व अनुभव, समस्याओं के सुलझाने में, न हुआ हो। एक प्रयोग में ( जैकसन, १९४२ ई० ) से चार चिंपांजी फावड़े का प्रयोग करने में असफल रहे जब कि फावड़ा ठीक ढंग से रखा गया था कि फल को भीतर ढकेल सकता था। जिन चिंपांजियों को इस प्रयोग से कई दिन पूर्व छड़ियों से खेलने दिया गया था, उन्होंने अपेक्षाकृत बहुत अच्छी तरह इसे प्रयोग किया यद्यपि केवल एक को ही प्रथम प्रयोग में सफलता मिली। बच्चों पर किए गए एक प्रयोग में (रिचर्ड्सन, १९३४), यह अनुभव किया गया कि ढाई वर्ष से कम आयु का कोई बालक उस विशिष्ट समस्या को न सुलझा सका, जिसमें अंतर्दृष्टि अपेक्षित थी और उसे सुलझाने में सफल होने वाले बच्चों की संख्या बढ़ने लगी, जब उनकी आयु और विशिष्ट अनुभवों में वृद्धि हुई और अंतर्दृष्टि अथवा अवबोध प्रायः समाधान के साथ या पूर्व न होकर उसके 'उपरांत' होता है।

बंदर कुछ पर्याप्त जटिल समस्याओं को सुलझा सकते हैं।

चित्र ९.८ बंदरों का समस्या सुलझाना। यह दो क्रास-रस्सियों की समस्या है, बाईं ओर रस्सी के छोर पर रोटी का टुकड़ा बँधा है और बंदर को यह समझना है कि उसे पाने के लिए किस रस्सी को खींचना चाहिए ( एच० एफ० हारलो)।

अनायास-समाधान में सहायक स्थितियों का जितना अध्ययन हुआ है, निश्चय ही उससे वे कहीं अधिक वैज्ञानिक अध्ययन की अपेक्षा करती हैं। उदाहरणार्थ, हमें उस प्रकार की अधिक सूचनाओं की आवश्यकता है, जो वास्तव में बंदरों और बच्चों पर अधिगम विभेद के अति महत्त्वपूर्ण अनेक प्रयोगों से एकत्रित हुई हैं ( हारलो,

१९५१)। ये शोध नवीन हैं; क्योंकि आदत-विकास का परिमापन परीक्षण शब्दावली में करने वाले सामान्य प्रयोग से भिन्न इनमें प्रयोगकर्त्ता एक समस्या से दूसरी समस्या या एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग का अंतरण परिमापित करता है (देखिए, चित्र ९·८)। साधारण प्रयोग जब कि एक समस्या या अधिक-से-अधिक दो या तीन के बाद समाप्त हो जाता है, वहीं प्रयोग-पात्र इसमें नवीन समस्याएँ उठाते हैं और अंत में ३४४ समस्याओं तक पहुँचे हैं। परवर्त्ती कुछ समस्याएँ प्रारंभिक कुछ समस्याओं के सदृश थीं किंतु अन्य समस्याएँ प्रयोग-पात्र से अपनी अनुक्रियाओं को उसी संकेत पर लौटा लेने की आवश्यकता प्रस्तुत करती है।

प्रयोग-पात्र यहाँ क्या सीखते हैं? क्या केवल एक विशिष्ट समस्या? अथवा क्या वे कुछ ऐसा सीखते हैं, जिसने उन्हें आगे की और उससे आगे की समस्या पर अंतरित किया है? उत्तर चित्र ९.९ में विपर्यय-अधिगम के उदाहरण द्वारा दिया गया है। प्रत्येक समस्या के द्वितीय प्रयत्न की शुद्ध अनुक्रियाओं का प्रतिशत आश्रित अनिर्धार्य है। किंतु, प्रथम प्रयत्न प्रयोग-पात्र के लिए एक 'अनुदेश' के रूप में कार्य करता है। उसे यह सूचना देता है कि समस्या में परिवर्तन हो गया है। वह जो कुछ प्रथम नवीन प्रयत्न में सीखता है, वह द्वितीय प्रयत्न में उसके कार्य द्वारा परिमापित होता है। यदि उसने कुछ नहीं सीखा है, तो द्वितीय प्रयत्न में प्राप्त उसके अंक मात्र संयोग होंगे--इस उदाहरण में ५० प्रतिशत अंक हैं। यदि उसने पर्याप्त सीखा है, उसके प्राप्तांक शत-प्रतिशत हो सकते हैं। ध्यान रखें कि बंदरों ने प्रारंभ में संयोग से कुछ कार्य किया, किंतु धीरे-धीरे वे प्रथम प्रयत्न की पूर्णता के बहुत निकट पहुँचने तक उन्नति करते गए। बच्चों ने उच्चतर सफलता से प्रारंभ किया, किंतु प्रवृत्ति वही थी।

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि (१) वह मात्रा, जिसके द्वारा प्रयोग-पात्र एक अनुभव से ही अधिगम द्वारा, कुछ नहीं से सब कुछ प्राप्त कर सकता है, निरंतर विकसित होती रहती है और (२) अंतःसमस्या-विकास एक समस्या से दूसरी समस्या पर 'अंतरण प्रभाव' है। इस प्रक्रिया को 'अधिगम तत्परता' का नाम दिया गया है, जिसका अर्थ है 'अधिगम के लिए अधिगम'। अंतिम समस्याओं में जब क्रिया पूर्णता के निकट पहुँच गई, अर्थात् जब एक ही प्रयत्न से अधिगम या पूर्ण अंतरण हो गया, उससे यह स्पष्ट है कि आकस्मिक, अंतर्दृष्टिपूर्ण समाधान नियमित रूप से समस्याओं के क्रम के अंत में होने लगे। प्रयोगकर्त्ता का निष्कर्ष उपयुक्त था कि 'यह दत्तक-सामग्री स्पष्ट प्रकट करती है कि जंतु धीरे-धीरे अंतर्दृष्टि सीख सकते हैं।' बच्चों के प्रयोग पर भी यह तथ्य लागू होता है। प्रभावित करने वाले प्रमाण जो अब तक उपलब्ध हैं, वे हैं, कि आकस्मिक समाधानों—'अहा' भाव के साथ या उसके बिना-

का विकास विशिष्ट अनुकूलन और अधिगम के कारण संभवतः होता है। संक्षेप में, अधिगम के लिए अधिगम में हम अंतर्दृष्टि विकसित करना सीखते हैं।

### साहसिक चिंतन (Adventurous Thinking) :

चिंतन के एक प्रसिद्ध अनुसंधानकर्त्ता (बार्टलेट, १९५८) ने चिंतन को दो प्रकारों में विभाजित किया है—१. संवृत-निकाय चिंतन (Closed System Thinking) और २. साहसिक चिंतन। संवृत-निकाय चिंतन नियमों और रूढ़ियों के अनुसार कार्य करता है और यह निश्चित प्रमाणों पर आधारित रहता है। गणित और बीजगणित की समस्याओं के समाधान में संवृत-निकाय चिंतन होता है और किसी भी ऐसी समस्या में, जहाँ निश्चित सामग्री या तथ्य दिए जाते हैं एवं निश्चित समाधान (उत्तर) की अपेक्षा रहती है, चिंतन का यही प्रकार निहित रहता है। दूसरी ओर साहसिक चिंतन बिना किसी पूर्व निर्धारित नियमों के प्रारंभ होता है। व्यक्ति प्रायः स्वयं समस्या निर्मित करता है और वह प्रमाण एकत्रित करने के लिए तथा उसके समाधान के साधनों की खोज करने के लिए स्वतंत्र रहता है। वैज्ञानिक या अन्वेषक का सृजनात्मक चिंतन साहसिक चिंतन का विशेष उदाहरण है।

प्रमुख सृजनात्मक विचारकों ( चिंतकों ) के चिंतन में जो सोपान सन्निहित रहते हैं, उनका अनेक बार अध्ययन समालापों, प्रश्नावलियों और अंतर्दर्शन द्वारा हुआ है (वालस, १९२६)। यद्यपि प्रत्येक के चिंतन का अपना-अपना ढंग होता है और यह बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की समस्याओं के समाधान में वह लीन है। ऐसे चिंतन में आवर्त्ती प्रतिरूपों को देखा जाता है। यह पाँच क्रमों में आगे बढ़ता है—१. उपक्रमण (Preperation), २. उद्भावन (Incubation), ३. उद्भासन (Illumination), ४. मूल्यांकन (Evaluation) और ५. पुनरावर्तन (Revision)।

प्रथम सोपान उपक्रमण में विचारक अपनी समस्या को स्पष्ट करता है, उसके समाधान के लिए जिसे वह आवश्यक समझता है, उस सामग्री एवं तथ्यों को एकत्रित करता है। बहुधा वह अनुभव करता है, 'पायनकरे' के समान कि वह घंटों और दिनों के निरंतर प्रयास के उपरांत भी समस्या का समाधान नहीं पा सकता। प्रायः वह जाने या अनजाने ही समस्या से दूर हट जाता है, यह है द्वितीय सोपान उद्भावन। उद्भावन-काल में वे विचार मंद पड़ने लगते हैं, जो समस्या के समाधान में बाधक थे। दूसरी ओर इस बीच वह जिन तथ्यों को अनुभव करता या अधिगत करता है, वे समाधान का संकेत बताने में सहायक हो सकते हैं। इस काल में अचेतन प्रक्रियाएँ भी कार्यरत हो सकती हैं। तीसरे सोपान, उद्भासन में विचारक को प्रायः 'अहा' अंतर्दृष्टि का अनुभव होता है। अकस्मात् समाधान का विकास उस पर उद्-

भासित होता है। अगला क्रम मूल्यांकन का है, जिसमें वह निर्धारित करता है कि समाधान प्रतीत होने वाला तथ्य सही है। बहुधा वह गलत सिद्ध होता है और विचारक पुनः उसी बिंदु पर पहुँच जाता है, जहाँ से उसने प्रारंभ किया था। अन्य उदाहरणों में यह सही सिद्ध हुआ है, किंतु कुछ परिवर्तन अपेक्षित होता है अथवा अन्य अपेक्षाकृत गौण समस्या के समाधान की अपेक्षा होती है। एतदर्थ, वह अंतिम क्रम पुनरावृत्ति तक पहुँचता है।

यह सर्जनात्मक विचारक की मानसिक प्रक्रियाओं का संतोषजनक विवरण देने में असमर्थ है। एक दिन, शोधकार्य द्वारा, इसके प्रतिरूप को और अच्छे ढंग से हम समझ सकेंगे। यह विवरण के केवल हमारे अति प्रतिभासंपन्न और सर्जनात्मक व्यक्तियों की समस्याओं के समाधान के ढंग में बहुधा संपृक्त क्रमों का, एक सामान्य चित्र प्रस्तुत करता है।

**हम बार-बार अधिगम-समस्याओं को दोहरा कर सीखते हैं, जो भिन्न होती हैं, किंतु जिनका सामान्य प्रकार एक ही है।**
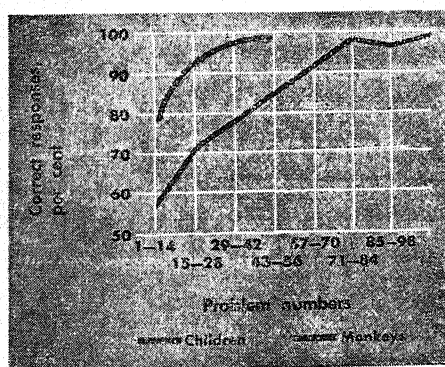
**चित्र ९.९ बालकों और बंदरों में विभेद-अधिगम। इस प्रयोग का पाठ्य-पुस्तक में वर्णन किया गया है (हारलो के अनुसार, १९५१)।**

## तर्कसंगत तर्क ( Logical Reasoning ) :

चिंतन-प्रक्रियाओं की हमारी रूपरेखा अब पूर्णता के निकट पहुँच रही है। हम देख चुके हैं कि वे किन तत्त्वों से निर्मित हैं, वे आदतों और तत्परताओं से अभि-प्रेरित और नियंत्रित होती हैं और वे समस्याओं के समाधान को विविध तरीकों से प्राप्त कर सकती हैं। चिंतन-संबंधी एक तथ्य पर अभी हमने विचार नहीं किया है। यह है—तर्कना। संभवतः आप 'तर्क' और 'चिंतन' को एक ही अर्थ में प्रयोग करने के अभ्यस्त हैं। दैनिक वार्ता में हम साधारणतः यही करते हैं। आप अनेक उदाहरणों को स्मरण कर सकते हैं, जिनमें तर्क का पूर्णतः अभाव प्रतीत होता है।

तब यह तर्क क्या है ? छोटा लड़का इस प्रश्न का उत्तर देने में सही मार्ग पर था, जब उसने कहा—'दो और दो को साथ रखना'। तर्क निश्चित रूप से केवल किसी प्रकार का चिंतन ही नहीं है। यह समस्या के समाधानार्थ गत अनुभवों में से दो या अधिक को कुछ नव उपलब्धि के लिए साथ रखना है (देखिए चित्र ९.१०)।

इस प्रकार की पहेलियाँ हमारी इस बात का विश्लेषण करने में सहायक होती हैं कि लोग किस प्रकार समस्याओं का हल करते हैं।
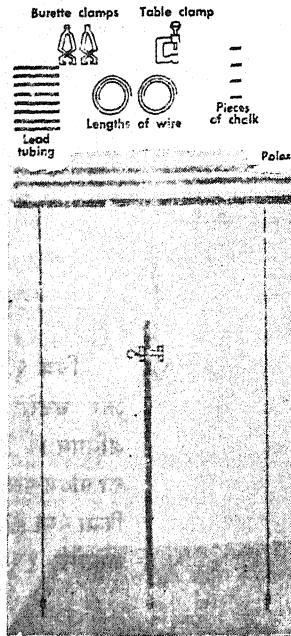
**चित्र ९.१० मानव-चिंतन के अध्ययन में प्रयुक्त पेंड्यूलम समस्या का एक उदाहरण। उक्त चित्र में दिखाए गए उपकरण प्रयोग-पात्रों को दिए गए तथा उनसे दो ऐसे पेंड्यूलम बनाने के लिए कहा गया, जो इस प्रकार लटकें कि प्रयोग-कक्ष के फर्श पर विशेष स्थलों पर चाक-चिह्न बना सकें। शुद्ध समाधान नीचे दिया गया है (मायर के अनुसार, १९३०)।**

## वाचिक तर्क ( Verbal Reasoning ) :

अधिकांश मानवीय तर्क प्रतीकों का—विशेषत: शाब्दिक प्रतीकों का—उपयोग करता है; क्योंकि हम शब्दों का उपयोग इतने व्यापक रूप में अपने विचारों को अन्य व्यक्तियों तक पहुँचाने के लिए करते हैं कि हमें चिंतनार्थ शब्दों पर निर्भर करने की आदत हो जाती है। फिर भी शब्दों के अर्थ प्राय: अस्पष्ट और संदिग्ध होते हैं और हम उनके द्वारा भ्रांत हो सकते हैं। और भी, जब तर्क केवल शाब्दिक प्रतीकों पर आधारित रहता है, हमारे लिए यह परीक्षा करना असंभव हो जाता है कि क्या हमारा समाधान शुद्ध है; क्योंकि प्राय: हमारे लिए यह संभव नहीं होता कि हम शब्दगत परिणामों की तुलना यथार्थता से कर सकें।

हमारे सहायतार्थ समाज प्रतिमानों और आदर्शों को विकसित करता है, जिससे कि हम अपने तर्क के परिणामों की परीक्षा कर सकें। लोग विश्वास करने लगते हैं कि कुछ कथन 'तर्कयुक्त' होते हैं और कुछ नहीं। अतः, जब कोई व्यक्ति 'तर्कहीन' निर्णय पर पहुँचता है, तो लोग तुरंत उसको उसकी भूल बताते हैं और उसे सावधान करते हैं कि भविष्य में ऐसी मूर्खतापूर्ण बातें न करें। तर्कयुक्तता के शिष्टता से स्वीकृत प्रतिमानों के साथ कठिनाई यह है कि एक समूह (समाज) के लिए जो तथ्य तर्कसंगत है वही दूसरे के लिए पूर्णतः तर्क-असंगत है। 'यह तर्क की बात है'— वाद-विवाद में भाग लेने वाला कालेज का विद्यार्थी तर्क करता है, किंतु एक अमेरिकन स्नातक होने के कारण, वह पूर्णतः भूल जाता है कि उसके निर्णय अरबी या चीनी प्रतिपक्षी को मान्य हों, यह आवश्यक नहीं है।

तर्क के प्रतिमानों को यथासंभव दृढ़ बनाने के लिए दार्शनिकों और गणितज्ञों ने शताब्दियों पूर्व हमें तर्क के नियम दिए हैं। ये नियम 'तर्कशास्त्र' कहलाते हैं और ये निर्धारित करते हैं कि कथनों में किस प्रकार के अर्थ निहित हो सकते हैं और उनसे किस प्रकार के निर्णय निकालने की अनुमति है। कोई भी तर्क, जो इन नियमों के अनुरूप नहीं होता, 'असंगत' या 'भ्रांतिकारी' की संज्ञा प्राप्त करता है। जब मानवीय व्यवहारों का इतना भाग इस प्रश्न पर निर्भर करता है कि हम अपने चिंतन में कहाँ तक तर्कसंगत हैं, हमें तर्कसंगत और असंगत मानवीय चिंतन में निहित मनोवैज्ञानिक घटकों का अध्ययन करना चाहिए।

## तर्कसंगत चिंतन :

मान लीजिए, कोई प्रयोगकर्त्ता तर्क का परीक्षण बच्चों पर करता है और उनसे यह प्रश्न करता है—'यदि सब ६ वर्षीय बालक स्कूल में हैं और जॉनी ६ वर्षीय है, तब जॉनी कहाँ है?' मनोविज्ञानवेत्ता को आश्चर्य न होना चाहिए यदि उसे यह उत्तर मिले, 'मुझे स्कूल से घृणा है,' या 'वह सर्दी के कारण घर में है।' यद्यपि वह तर्कशास्त्री है, फिर भी उस मनोविज्ञानवेत्ता को बच्चे का उत्तर 'तर्कसंगत' प्रतीत होता है; क्योंकि यह तर्कशास्त्रीय नियमों से असंबद्ध उद्दीपन से सहज संबंधित है और व्यक्ति तर्क करना सीखने से बहुत पहले इसे सीखता है किंतु तर्क तर्कशास्त्र के सैद्धांतिक नियमों से संबंधित है।

बच्चे ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं, वे निश्चित अनुदेशों और नियमों का उत्तर देना एवं अपनी सहचारी अनुक्रियाओं को निश्चित सीमाओं में रखना सीखते हैं। मान लीजिए, मैं एक माध्यमिक विद्यालय के छात्र की परीक्षा लूँ : मैं उसे निदेश देता हूँ कि जब मैं एक शब्द कहूँ, तब वह भी एक शब्द ऐसा कहे, जो उसी प्रकार की वस्तु

का वर्गगत नाम हो। मैं उसे 'मेज' शब्द देता हूँ। वह प्रत्युतर में 'उपस्कर' (फर्नीचर) शब्द या कोई तुलनात्मक शब्द देता है, किंतु वह 'कुर्सी' नहीं कहेगा; क्योंकि उससे नियम टूट जाएगा कि उसके उत्तर का 'वर्ग' नाम होना चाहिए, जिसके अंतर्गत 'मेज' आ सके। वह नियम का पालन करना सीख चुका है।

अब अधिक जटिल उदाहरण लें। कालेज में विद्यार्थी हेत्वानुमान वाक्य सीखता है, जिसका एक प्रकार है—

१. सब 'ए' 'बी' हैं
   सब मनुष्य मर्त्य हैं
२. सब 'सी' 'ए' हैं
   सब किसान मनुष्य हैं
३. इसलिए सब 'सी' 'बी' हैं
   सब किसान मर्त्य हैं।

यह निश्चित रूप के तर्कशास्त्र का एक नियम है और विद्यार्थी इसे सीख सकता है, संभवतः रट कर। उसे शीघ्र ही कठिनाई का सामना इस नियम को दैनिक जीवन की स्थितियों पर लागू करने में करना पड़ेगा; क्योंकि हेत्वानुमान वाक्य को भ्रांतियों से भिन्न कर सकना सहज नहीं है। उदाहरणार्थ ऊपर दिए गए (हेत्वानुमान वाक्य) का यह प्रकार भ्रामक **प्रतीत** होता है :—

१. सब 'ए' बी हैं
   सब किसान मनुष्य हैं
२. सब 'बी' सी हैं
   सब मनुष्य मर्त्य हैं
३. इसलिए सब 'सी' ए हैं
   सब मर्त्य किसान हैं।

यहाँ निष्कर्ष अनुपयुक्त है; क्योंकि इसका (१) अन्य (२) वाक्यों से अनुवर्तन नहीं हुआ है। प्रतीक रूप में भी ये शाब्दिक भेद बहुत कठिन हैं। शब्द-रूप ग्रहण करने पर वे कठिनतर हो जाते हैं। राजनीति, व्यवसाय अथवा दैनिक जीवन में सही प्रतीत होने वाले अनेक हेत्वानुमान-वाक्य वास्तव में दोषपूर्ण होते हैं। उदाहरणार्थ एक राजनीतिक उम्मीदवार कह सकता है :

स्फीतीकरण से कर-वृद्धि होती है
कर वृद्धि से कर-परिवाद होता है
इसलिए, हम कर कम करें।

और हम कहेंगे 'मैं कम कर चाहता हूँ। अर्थात्, वह ठीक कहता है।'

## तर्क-असंगत चिंतन ( Illogical Thinking ) :

तर्कसंगत चिंतन की कठिनाई का कारण, यह है कि शाब्दिक तर्क के संबंध में यह कहना कठिन है कि वह तर्कशास्त्र के नियमों का पालन करता है; क्योंकि वास्तव में वह नहीं करता। इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी हैं, जिनके कारण हम सदैव तर्कसंगत हो सकने में कठिनाई अनुभव करते हैं। हमारा साधारण वार्तालाप तर्कसंगत नहीं—और यदि यह वैसा हो जाए, तो अरोचक और नीरस होगा!—वरन् वह व्यक्तिगत प्रतिक्रिया और अभिप्रेरणात्मक घटकों के परिणामस्वरूप होता है। भाषा के द्वारा हमने एक पत्रिका का शुल्क भेजना, अनिच्छा रखने वाले माता-पिता को प्रेरित करना, छोटी मोटरगाड़ी की प्रशंसा करना अथवा किसी मन:स्थिति (मूड) को उद्दीप्त करना, सीखा है। शायद ही कभी हम 'सीधा चिंतन' करने के लिए शब्दों का क्रम से प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त हमने तर्कसंगत परिभ्रांति की शायद अति शिक्षा पायी हो। उदाहरणार्थ, एक बच्चा अपने बड़ों द्वारा इन शब्दों में डाँटा जाता है कि 'तुमने मेरी आज्ञा की अवहेलना क्यों की, इसका कारण बताओ।' भयभीत बालक यह नहीं बता सकता इसलिए वह झूठ बोलता है या तब तक कारण उपस्थित करता रहता है, जब तक वयस्क महोदय उसके उत्तर से संतुष्ट नहीं हो जाते।

> "इसके अतिरिक्त जीवन का तर्कहीन परिस्थितियों में हमें डालने का अपना भी ढंग है, जैसे—जिस दिन स्कूल में हम हूकी ( Hooky ) खेलें, केवल उसी दिन तूफान का आना। यह सर्वात्मवादी तर्क कि हमारे कर्म-पलायन से तूफान हुआ, प्रकृति द्वारा (आवारापन) प्रोत्साहित होता है और धार्मिक माता-पिता उसका उपयोग करते हैं। समाज द्वारा ऐसे भ्रामक तर्कों का प्रोत्साहन कुछ संस्कृतियों में धार्मिक रूप से होता है और हमारी संस्कृति में बहुत व्यापक है, विशेषत: जहाँ कारण और कार्य-संबंध का प्रश्न है। यह न केवल हमें तूफान-संबंधी गलत सिद्धांत की ओर ले जाता है, वरन् यह हममें गलत तर्क की आदत भी डाल सकता है, जो तर्कशास्त्र के अभ्यास में बाधक होती है।"

## तर्क में विकृति (Distortions in Reasoning)।

साधारणत: तर्कसंगत होने का भरसक प्रयत्न करने पर भी हम में 'तर्क' के उद्दीपनों का मुक्त, सहचारी उत्तर, देने की तीव्र प्रवृत्ति रहती है और ऐसी अनुक्रियाएँ तर्क में बाधा पहुँचाती हैं। कुछ परिस्थितियाँ अन्य परिस्थितियों की अपेक्षा अधिक मुक्त साहचर्य को उग्र करती हैं और हमारे तर्क को विकृत करती हैं। तर्कसंगत चिंतन हम सबके लिए महत्त्वपूर्ण है, इसलिए हमें कुछ सामान्य विकृतियों पर विचार करना चाहिए।

एक घटक उद्दीपन स्थिति की जटिलता है। यदि एक तर्क-असंगति जटिल रूप में व्यक्तियों के समक्ष प्रस्तुत की जाए या अनेक जटिल तथ्यों और कथनों के साथ उसे कहा जाए, तो वे इसे जान सकेंगे, इसकी कम संभावना है।

तर्क में विकृति से संबंधित दूसरा कारण वह भाषा है, जिसमें आधारवाक्य अभिव्यक्त हुए हैं। ऐसी विकृति में एक महत्त्वपूर्ण घटक है, जिसे 'वातावरण-प्रभाव' या 'उद्दीपन विभाव' ( सैल्स, १९३६ ) कहा जाता है। यह वह प्रभाव है, जो किसी व्यक्ति के संबंध में कोई ऐसा कथन कहा जाए, जिससे वह तर्कसंगत अर्थ से बिलकुल भिन्न 'हाँ' या 'नहीं' उत्तर देने के लिए प्रवृत्त होता है। यदि, उदाहरण के लिए हेत्वानुमान-वाक्य के आधारवाक्य स्वीकारात्मक रूप में प्रस्तुत हैं, सब 'क' 'ख' हैं, और सब 'ख' 'त' हैं, तो व्यक्ति नकारात्मक निर्णय को, जो 'सब नहीं' या 'नहीं' के रूप में हों, अस्वीकार करेंगे। जब आधारवाक्य विषय हों, अर्थात् एक स्वीकारात्मक हो और दूसरा नकरात्मक, वे नकारात्मक निर्णय को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसे वातावरण-प्रभाव स्पष्टतः सामान्य रूप से पाए जाते हैं, कालेज के विद्यार्थी आश्चर्यजनक रूप से इससे प्रभावित रहते हैं।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण घटक है, जिसे हम तर्क पर 'लोकमत प्रभाव' कहेंगे, जैसी कि आप आशा करेंगे, अगणित प्रयोगों ने प्रमाणित किया है कि 'भावोत्पादक' सामग्री और शब्द, जो तीव्र प्रतिकूल प्रभाव, विश्वास या लोकमत को उत्तेजित करते हैं, विवेकपूर्ण तर्कसंगत परिणामों ( निगमनों ) में तीव्र बाधा पहुँचाते हैं। इनमें से एक अतिरोचक प्रसंग हेत्वानुमान परीक्षण ( मोरगन और मोरटन, १९४४ ) द्वारा दो बहु-विकल्प रूपों में स्पष्ट किया गया है :—

प्रथम रूप प्रतीकात्मक था, इसमें अर्थहीन रूपों जैसे क ख ग का उपयोग किया गया था। दूसरा रूप 'भावात्मक ध्वनियुक्त' था। इसमें उसके वाक्य थे, जिन्होंने १९४२ में वायुशक्ति के संबंध में तीव्र निजी मत व्यक्त किए थे, जैसे—जंगी जहाज अन्य विनाशकारी मशीनों के समान प्रभावशाली नहीं होते; क्योंकि अंग्रेजी जंगी जहाज 'प्रिंस ऑफ वेल्स' तथा 'रिपल्स' हवाई जहाजों द्वारा डुबा दिए गए।' प्रयोग-पात्र इससे जिन निष्कर्षो पर पहुँचे, वे सारणी ९.२ में दिए गए हैं। पंचम निष्कर्ष केवल शुद्ध उत्तर है; क्योंकि दोनों आधारवाक्यों में जो कहा गया है, दोनों को साथ मिलाने पर भी वे उससे कुछ अधिक नहीं करते, जो एक-एक में अलग कहा गया है। फिर भी ९० प्रतिशत प्रयोग-पात्रों ने पहला या दूसरा निष्कर्ष स्वीकार किया; क्योंकि उन्हें पहले ही वायुशक्ति में विश्वास हो गया था : जब लोकमतों का अभाव था, जैसे कि वे प्रतीकात्मक रूप क ख ग में थे, विद्यार्थियों ने ३ और ४

निष्कर्षों का पक्ष लिया ( संभवतः वातावरण-प्रभाव के कारण, विषम नकारात्मक-स्वीकारात्मक आधारवाक्यों से नकारात्मक निष्कर्ष )।

सारणी—९.२

| | निष्कर्ष | निष्कर्षों को स्वीकार करने वाले प्रयोग-पात्रों का प्रतिशत | |
|---|---|---|---|
| | | प्रतीकात्मक रूप | वाक्य रूप |
| १. | जंगी जहाजों की अपेक्षा वायुयान अधिक प्रभावशाली हैं। | ० | ४४ |
| २. | जंगी जहाजों की अपेक्षा वायुयान अधिक प्रभावशाली हो सकते हैं। | ११ | ४६ |
| ३. | जंगी जहाजों की अपेक्षा वायुयान अधिक प्रभावशाली नहीं हैं। | ४७ | १ |
| ४. | जंगी जहाजों की अपेक्षा वायुयान अधिक प्रभावशाली न भी हों। | ३२ | ० |
| ५. | उपर्युक्त निष्कर्षों में से कोई भी तर्कसंगत नहीं है। | १० | ९ |

**सारणी ९.२ हेत्वानुमान-परक चिंतन के परीक्षणों में प्रयोग-पात्रों द्वारा स्वीकृत निष्कर्ष। प्रयोगा-पात्रों के एक समूह को दो आधारवाक्य तटस्थ प्रतीकात्मक रूप में दिए गए थे। दूसरे समूह को वे ही वाक्य भावात्मक ध्वनियुक्त रूप में दिए गए थे। तब उनसे कहा गया कि इन वाक्यों से निकाले जा सकने वाले अनेक निष्कर्षों का वे परीक्षण करें। शुद्ध उत्तर के लिए पाठ्य-पुस्तक देखिए ( मोरगन तथा मोरटन से विकसित, १९४४ )।**

आप अपने कुछ हेत्वानुमान वाक्यों का स्वयं परीक्षण करके बुद्धिमान बनेंगे। देखिए, यदि आप एक निष्कर्ष तथ्यपूर्ण सत्य या असत्य का अंतर उसके आधार-वाक्यों पर उसकी तर्कसंगत निर्भरता का सारयुक्तता या सारहीनता के आधार पर कर सकें। उदाहरणार्थ :—

१. सब चिंतन स्वप्नवत् है

२. सब तर्क चिंतन है

३. इसलिए सब तर्क स्वप्नवत् है।

निष्कर्ष गलत है ( इस अध्याय के अर्थ में ) किंतु तर्कशास्त्रानुसार आधार-वाक्यों से इसका निगमन ठीक हुआ है, वस्तुत: इसका प्रथम आधारवाक्य ही गलत है।

एक व्यक्ति में जब विश्वास और तर्क में विरोध हो, तो अधिकतर विश्वास की विजय होती है। इसके मनोवैज्ञानिक कारण हैं। हम जानते हैं कि उनकी जड़ें व्यक्ति के अधिगम के इतिहास में हैं। व्यक्ति प्रधानत: जब वे 'तर्क' करते हैं, तब भी भावुक होते हैं, तार्किक नहीं।

भाषा और संज्ञापन या संवाद ( Language and Communication ) :

अब हम भाषा पर कुछ क्षण विचार करें। हम देख चुके हैं कि हमारी भाषा के शब्द वस्तुओं और संप्रत्ययों के रूढ़ नाम बन जाते हैं और वे हमारे चिंतन में उपवाचिक ( Subvocal ) रूप में समाविष्ट किए जा सकते हैं। भाषा का प्रयोग हमारे विचारों को दूसरों तक पहुँचाने में भी होता है। अब हम विचार करें कि भाषा किससे बनी है, इसकी संरचना कैसे हुई है और इसका प्रयोग कैसे होता है (भाषा के प्रत्यक्षीकरण के विवेचन के लिए देखिए, अध्याय—१२ )।

भाषा का अध्ययन (The Study of Language) :

भाषा लिखित हो सकती है या मौखिक। भाषा के इन दो रूपों में मौखिक ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक प्राचीन है। बाद में धीरे-धीरे चित्रों से हमारी वर्णमाला के अक्षर विकसित हुए और फिर लिखित भाषा का विकास हुआ (देखिए, चित्र ९·११) इसी कारण से तथा चूँकि लिखित भाषा का विनियमन प्राय: अधिक सावधानी से व्यवहार द्वारा तथा वैयाकरणों द्वारा होता है, लिखित तथा मौखिक भाषा में कुछ महत्त्वपूर्ण अंतर हैं।

दोनों के मूल तत्त्व भी भिन्न हैं, एक अक्षरों पर आधारित है, दूसरी ध्वनि पर। हमारी बोलने और लिखने की शब्दावलियाँ भी भिन्न हैं—लिखित साधारणत: कहीं अधिक बड़ी है। इसके अतिरिक्त हमारे बोलने और लिखने के व्याकरण में भी अंतर है। हम दोनों माध्यमों से भिन्न प्रकार की सूचनाएँ देने की ओर प्रवृत्त होते है। अंत में, हमारी लिखित भाषा मौखिक के सदृश पुनरावृत्तिपूर्ण और अतिरिक्तांगी नहीं होती। इन सब भिन्नताओं के बावजूद दोनों में समानताएँ भी हैं; क्योंकि वे अनेक नियमों को समानरूप से अपनाती हैं और एक रूप का रूपांतर भाषा के ज्ञाता द्वारा दूसरे रूप में सहज ही किया जा सकता है।

हमें ध्यान रखना चाहिए कि अनेक विद्यार्थी और वैज्ञानिक परीक्षा की दृष्टि से भाषा का अध्ययन करते हैं। कुछ व्यक्ति जो भाषा की ध्वनियों में अभिरूचि रखते

हैं कि—वे कैसे बनी हैं, वे लिखित प्रतीकों से कैसे संबंधित हैं, भाषा को विकसित कैसे किया जा सकता है, वे 'ध्वनि-विज्ञानविद्' कहलाते हैं। कुछ शब्दों के अर्थों में अभिरुचि रखते है, वे 'शब्दार्थ विज्ञानविद्' कहलाते हैं। जो विद्वान शब्द-निर्माण के स्वरूप, क्रम और शब्दों को बोलते तथा लिखने की आदतों के नियमो में अभिरुचि रखते हैं, वे 'वैयाकरण' हैं। अंत में, ऐसे विशेषज्ञ भी हैं, जो भिन्न भाषाओं की तुलना करते हैं और शब्दों तथा भाषाओं के इतिहास का अध्ययन करते हैं, ये भाषाविद् और तुलनात्मक भाषा-विज्ञानी हैं।

हमारी वर्णमाला के अधिकांश वर्ण ऐसे रूपों से विकसित हुए हैं, जिनका कभी विशिष्ट अर्थ रहा है।
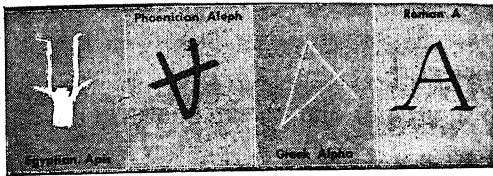
**चित्र ९·११ अक्षर A का विकास मिस्री 'एपिस' से हुआ है, जिसका अर्थ है पवित्र बैल। यह रूप फोनेशियन 'अलिफ' का पूर्ववर्ती प्रतीत होता है, जिसका अर्थ बैल है। यह अलिफ ही यूनानी ऐल्फा और उसके उपरांत हमारा ए बनता है।**

मनोवैज्ञानिक इन विषयों द्वारा उपलब्ध ज्ञान से लाभ उठा सकते हैं, किंतु उनकी अभिरुचि कुछ भिन्न होती है। वे भाषा के इतिहास या व्याकरण से संबंध नहीं रखते, वरन् उनका संबंध भाषा के संवाद (वार्तालाप) के माध्यम के रूप में प्रयोग से रहता है—यह एक ऐसा रूप है, जिसमें व्यक्ति व्यवहार करते हैं। यह देखने और अनुक्रिया करने का एक उद्दीपन है, कुछ ऐसी वस्तु है जिसका उपयोग अधिगम और चिंतन में होता है।

## भाषा की इकाइयाँ (Language Unit) :

भाषा अनेक इकाइयों के अनेक प्रकार के मिश्रण से निर्मित है। मौखिक भाषा की मूल इकाइयाँ मूल ध्वनियाँ (Phonemes) कहलाती हैं। इन ध्वनियों के भेद को दैनिक भाषा के प्रयोग में समझना आवश्यक है। वास्तव में, एक कुशल ध्वनि-विज्ञानविद् 'मूल ध्वनियाँ' कहलाने वाली ध्वनियों की अपेक्षा कहीं अधिक ध्वनियों को स्पष्ट कर सकता है। किंतु, जब वह ऐसी ध्वनियों को देखता है, जिनमें बहुत साम्य होता है और वे उन्हीं ध्वनियों द्वारा अनुकरण नहीं की जातीं, तब वह उन्हें एक ध्वनि-समूह के अंतर्गत वर्गीकृत करता है। ऐसा वह इसलिए करता है;

क्योंकि लोगों को ऐसी ध्वनियों का अंतर करने की आवश्यकता नहीं होती, जिनका अनुवर्तन सदैव भिन्न ध्वनियों द्वारा होता है।

एक उदाहरण इस तथ्य को स्पष्ट कर देगा। दो शब्दों में 'k' की ध्वनि पर विचार कीजिए. 'key' और 'cool'। यदि ये शब्द आप स्वयं से कहते हैं, तो आप अनुभव करेंगे कि 'k' ध्वनि दोनों शब्दों में भिन्न है। जब आप उनका उच्चारण करें, तो केवल अपने ओठों की गति पर ध्यान दें। इन दोनों ध्वनियों को एक ही समझ लेने पर इसका कोई भ्रांतिपूर्ण परिणाम नहीं होता; क्योंकि 'key' में 'k' का अनुवर्तन कभी 'oo' से नहीं होता और cool में 'k' का अनुवर्तन 'e' से नहीं होता। फलस्वरूप, यद्यपि ध्वनिविज्ञानविद् दोनों 'k' की ध्वनियों के अंतर को समझता है, हमें उनके अंतर पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि उनका अनुवर्तन करने वाले 'oo' और 'e' हमारे संकेत हैं, इसी कारण से ध्ननिविज्ञानविद् दोनों 'k' को एक ही और वही ध्वनि मानता है।

वाचिक प्रसंग (Verbal Context) :

अतः, मूल ध्वनियाँ ही बोलचाल की भाषा की अनिवार्य इकाइयाँ हैं। अँगरेजी भाषा के किसी प्रकार को परिशुद्धता से प्रतिलिखित करने के लिए ४० मूल-ध्वनियों की आवश्यकता है। एतदर्थ, जितने भी वाक्य हम बोलते हैं और इन वाक्यों के बनाने में जिन सहस्रों शब्दों का हम प्रयोग करते हैं, सबका विश्लेषण लगभग इन ४० इकाइयों में हो सकता है। दूसरे शब्दों में ये इकाइयाँ वर्णों में, वर्ण शब्दों में और शब्द वाक्यों में और इसी तरह आगे भी बनते हैं।

इकाइयों की आवृत्ति (Frequency of Units) :

यदि किसी को भी ४० इकाइयाँ दी जाएँ और नवीन मौखिक भाषा का निर्माण करने के लिए कहा जाए, तो पहला प्रश्न उसके सामने उपस्थित होगा कि प्रत्येक इकाई को कितनी बार उसे प्रयोग करना चाहिए। एक ओर, वह एक इकाई को उतनी ही बार प्रयुक्त कर सकता है, जितनी बार अन्य किसी भी इकाई को। इस प्रकार से वह उपलब्ध इकाइयों का अधिकतम प्रयोग कर सकता है। दूसरी ओर, वह सब इकाइयों को छोड़कर केवल एक को ग्रहण कर सकता है और उसी का प्रयोग करता है। इससे भाषा विकसित नहीं हो सकती—जानवर भी एक से अधिक इकाइयों का प्रयोग करते हैं—क्योंकि एक इकाई से एक ओर केवल एक ही संदेश दिया जा सकता है अथवा वह कोई मध्यम मार्ग ले सकता है—कुछ इकाइयों को बहुत अधिक बार और कुछ को कम संख्या में प्रयोग करेगा। इस मध्यम मार्ग में, जो मनुष्यों द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषाओं को बनाता है, कुछ इकाइयाँ अन्य इकाइयों की अपेक्षा बारंबार प्रयुक्त की जाती हैं। ४० अँगरेजी ध्वनियों में से ९ का प्रयोग आधी से

अधिक ध्वनियों के निर्माणार्थ होता है। सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाली ध्वनि ('i' जैसे 'bit' में) साधारणतः शतबार से अधिक प्रयुक्त होती है और सबसे कम प्रयुक्त होने वाली ध्वनि ('z' जैसे 'azure में) का उतना ही कम प्रयोग होता है। संभवतः जैसा कि आपने स्वयं देखा होगा, व्यंजन ध्वनियाँ स्वर ध्वनियों की अपेक्षा अधिक बार प्रयुक्त होती हैं। वास्तव में, केवल १२ व्यंजन ध्वनियाँ भाषा द्वारा प्रयुक्त सब ध्वनियों में से लगभग ६० प्रतिशत ध्वनियों को उत्पन्न करती हैं।

यदि हम उस प्रणाली का अध्ययन करें, जिसके द्वारा इकाइयों को शब्दों का रूप दिया जाता है, तो भी हम यही बात देखेंगे। कुछ इकाइयाँ शब्द के एक भाग में अन्य इकाइयों की अपेक्षा अवश्य ही अधिक प्रयुक्त होंगी। अँगरेजी के शब्द स्वरों की अपेक्षा व्यंजनों से अधिक प्रारंभ और अंत होते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे जिन व्यंजनों से शब्द प्रारंभ होते हैं, उनमें से आधे से अधिक पाँच ध्वनियों के समूह के हैं और जिनसे शब्दों का अंत होता है, उनमें से आधे से अधिक आठ भिन्न ध्वनियों के एक समूह के हैं। हम कुछ शब्दों का प्रयोग अन्य शब्दों की अपेक्षा बहुत अधिक करते हैं। अनुमानित किया गया है कि केवल १२१ शब्दों से किसी व्यक्ति की वार्ता का ६० प्रतिशत और उसकी लिखित भाषा का ४५ प्रतिशत निर्मित होता है।

यह तथ्य, कि कुछ इकाइयों तथा कुछ इकाइयों के मिश्रणों ( शब्दों ) का प्रयोग अन्य इकाइयों एवं शब्दों की अपेक्षा अधिक होता है, केवल सांख्यिकीय विषय नहीं है। यह भाषा को देखने एवं समझने की योग्यता से संबंधित है; क्योंकि हम कुछ इकाइयों और शब्दों को अन्यों की अपेक्षा बहुत अधिक सुनते या पढ़ते हैं, हम उनकी प्रत्याक्षा और पूर्वधारणा करते हैं। अतः, हम इन्हें अन्यों की अपेक्षा सरलता से देखते हैं (होवेज और सोलोमन, १९५१ )।

## इकाइयों का क्रम :

कुछ विशेष इकाइयाँ न केवल बारंबार समक्ष आती हैं, वरन् इसकी भी अधिक संभावना है कि अन्य इकाइयों की अपेक्षा इनका अनुकरण सरल होता है। इसका अर्थ है, कुछ ध्वनियाँ अन्य ध्वनियों का और कुछ अक्षर अन्य अक्षरों का अनुकरण करने के लिए प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार इकाइयों के कुछ क्रमों का घटित होना अन्यों की अपेक्षा अधिक संभावित है। यह तथ्य भाषा के प्रत्यक्षीकरण में हमारी पर्याप्त सहायता करता है। निम्नलिखित प्रयोग द्वारा इस तथ्य को स्पष्ट किया जा सकता है ( मिलर एट० एल०, १९५१ )।

"प्रयोग-पात्रों को बहुत थोड़े काल के लिए कुछ शब्द दिखाए गए। ये शब्द अंगरेजी भाषा के नहीं थे, वरन् ये प्रयोग के लिए निरर्थक शब्द बनाए

गए थे (सारणी-९.३) प्रयोगकर्त्ता ने पहले 'शब्दों' की एक सूची बनायी, जिसमें अव्यवस्थित रूप से अक्षरों को लिख कर प्रयोग-पात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किया। उसने प्रयोग-पात्रों के लिए शब्दों को पहचानने के लिए आवश्यक दृष्टि उद्भासन ( Visual exposure ) की लंबाई को नापा। शब्दों की इस सूची का नाम 'शून्य-क्रम' ( Zero order ) सूची था। उसने एक और शब्दों की सूची का भी उपयोग किया, जिसमें अक्षरों का प्रयोग बारंबार अंगरेजी की भाँति किया गया था। उदाहरणार्ण अक्षर 'e' उतनी बार प्रयोग हुआ था, जितनी बार साधारण गद्य में होता था और अन्य अक्षर जो उसने प्रयोग किए थे, उनकी भी यही स्थिति थी।"

ये शब्द 'प्रथम क्रम' शब्द थे। दूसरा समूह 'द्वितीय क्रम' शब्दों का 'प्रथम क्रम' सूची के ही समान निर्मित किया गया, किंतु इसके अतिरिक्त इन शब्दों में प्रयुक्त प्रत्येक अक्षर के पहले एक दिए गए अक्षर का उतनी ही बार प्रयोग किया, जितनी बार वह अक्षर अंगरेजी शब्द में प्रयोग किया जाता है। 'तृतीय क्रम' और 'चतुर्थ क्रम' शब्द इसी नियम के अनुसार निर्मित हुए, किंतु एक अंतर यह था कि क्रमानुसार पहले में हर अक्षर के पूर्व दो अक्षरों के समूह का और दूसरे में हर अक्षर के पूर्व तीन अक्षरों के समूह का उतनी ही बार प्रयोग किया गया, जितनी बार वह अंगरेजी शब्दों में होता है। इन शब्दों के उदाहरण सारणी ९.३ में दिए गए हैं। शून्य क्रम से चतुर्थ क्रम की ओर जैसे-जैसे ये शब्द बढ़ते हैं, वे अंगरेजी शब्दों के सदृश अधिक-से-अधिक प्रतीत होने लगते हैं, किंतु ये सब निरर्थक शब्द हैं।

सारणी ९.३

| शून्य क्रम | प्रथम क्रम | द्वितीय क्रम | चतुर्थ क्रम |
|---|---|---|---|
| yrulpzoc | stanugop | wallyoff | vicaning |
| ozhgpmti | vtyehulo | therares | vernalit |
| dlegqmnw | eincaase | chevadne | mossiant |
| gfujxzaq | iydewakn | nermblim | bittlers |
| wxpaujvb | rpitcqet | onesteva | oneticul |

**सारणी ९.३. अंगरेजी भाषा के सांख्यिकीय गुणों के अनुसार निर्मित कृत्रिम शब्दों के नमूने (मिलर से उद्धृत, १९५१ )।**

संभवत: आप इस प्रयोग के परिणाम का अनुमान लगा सकते हैं। जैसे-जैसे निरर्थक शब्द अंगरेजी में पाए जाने वाले अक्षरों के क्रमों के निकट आते गए, प्रयोग-पात्र के लिए उन्हें शुद्ध देखने की सुविधा बढ़ती गई और अपेक्षित उद्भासन की

लंबाई भी धीरे-धीरे कम होती गई। आप चित्र ९.१२ में देख सकते हैं कि परिणाम ठीक रूप में कैसे प्रकट हुए। अतः, यह तथ्य कि अंगरेजी भाषा कुछ निश्चित इकाइयों के क्रमों का अन्यों की अपेक्षा अधिक प्रयोग करती है और हम इन्हें वर्षों के प्रयत्न से सीखते हैं, भाषा को समझने में हमारी सहायता करता है।

कुछ अक्षरों का क्रम अंगरेजी भाषा में अन्य अक्षरों की अपेक्षा अधिक होता है, यह तथ्य भाषा को समझने में हमारी सहायता करता है।
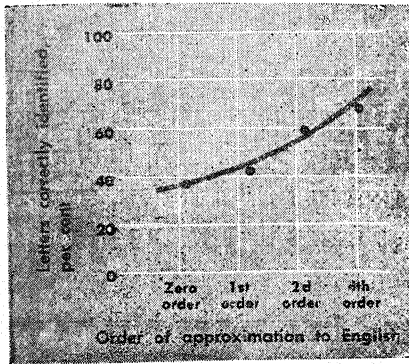
**चित्र ९.१२ कृत्रिम शब्दों को पहचानना। शब्द अंगरेजी भाषा के शब्दों के जितने अधिक निकट पहुँचते हैं, उतनी ही शुद्धता से पहचाने जाते हैं (मिलर एट० एल० से संकलित, १९५१)।**

इस अनुभाग के प्रारंभ में हमने 'शब्द-प्रसंग' संज्ञा का प्रयोग मुख्य शीर्षक के रूप में किया है। अब हम इस स्थिति में हैं कि इसका अर्थ समझ सकें। मौखिक और लिखित भाषा को समझने के लिए, व्यक्तियों को न केवल पृथक्-पृथक् ध्वनियों या अक्षरों को समझाने की ही आवश्यकता है, वरन् वे जिस गति और क्रम से प्रकट होती हैं, उन्हें भी समझना आवश्यक है। एक ध्वनि या ध्वनियों के एक क्रम के घटित होने की संभावना अन्य क्रमों के घटित होने की अपेक्षा अधिक बार होती है, यह तथ्य भाषा को शब्द-क्रम देता है, जो भाषा की इकाइयों को समझने की हमारी दृष्टि को भिन्न बनाता है। अतः, भाषा का निर्माण करने वाले उद्दीपन या संकेत ही भाषा की इकाइयों और इन इकाइयों को जोड़ने वाली प्रणाली की भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

### शब्दावली (Vocabulary):

अध्याय के प्रारंभ में हमने भाषा द्वारा दिए गए अगणित संकेतों की संख्या पर जोर दिया था। वास्तव में, अंगरेजी भाषा में प्रायः पाँच लाख से कुछ अधिक ही शब्द हैं। यदि हम सहस्रों पारिभाषिक शब्दों को निकाल भी दें. जिनका प्रयोग विद्वानों द्वारा उनकी सामग्री और अवधारणाओं को स्पष्ट करने के लिए किया जाता

है, तो भी संभवतः ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो इन सब शब्दों को जानता हो, वास्तव में अधिकांश व्यक्तियों की शब्दावली उपलब्ध शब्दों की बड़ी संख्या को देखते हुए—आश्चर्यजनक रूप से कम होती है और यह शब्दावली केवल विशेष परिस्थितियों में ही विस्तृत हो सकती है।

एक व्यक्ति शब्दों की जो संख्या जानता है, प्रायः वही उसकी शब्दावली समझी जाती है। किंतु, अधिक परिशुद्ध कथन है, प्रत्येक व्यक्ति की केवल एक ही नहीं, वरन् अनेक शब्दावलियाँ होती हैं। सर्वप्रथम, एक वह शब्दावली है, जिसे वह 'पहचान' सकता है। यह प्रायः सर्वदा उस शब्दावली से पर्याप्त विस्तृत होती है, जिसे वह बोल या लिख सकता है। पिछले एक अध्याय में, जब हम एक बच्चे में भाषा के विकास का अध्ययन कर रहे थे, हमने निर्देश किया था कि बच्चे शब्दों को प्रयोग कर सकने से पहले समझ एवं पहचान सकते हैं—कम-से-कम उसी रूप में, जिसमें अन्य लोग समझ सकते हैं—और यह अंतर जन्म भर चलता है। शब्दों की संख्या, जिसका प्रयोग एक व्यक्ति कर सकता है, शब्दों की उस संख्या से जिसे वह समझ सकता है, की अपेक्षा कम होती है।

उस शब्दावली में भी अंतर होता है, जिसका प्रयोग एक व्यक्ति 'कर सकता' है और जिसे वह साधारणतः प्रयोग 'करता' है। यह अंतर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होता है। किंतु, हम इसका कुछ अनुमान किसी कथानक के लिखने में या परीक्षा-पुस्तिका में जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, उनकी दैनिक वार्ता में प्रयुक्त करने वाले शब्दों से तुलना करके, कर सकते हैं। यदि किसी को अपनी शब्दावली से प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं, जिसे हम प्रायः करते हैं, तो हम साधारणतः जितने शब्द बोलते हैं, उस समय उनसे बहुत अधिक शब्दों का व्यवहार करते हैं।

### शब्दगत अनेकता (Verbal Diversification) :

भाषा न केवल प्रयोगार्थ एक विशद् शब्द-भंडार प्रस्तुत करती है, वरन् इन शब्दों के क्रम को रखने की पद्धति भी विविधतापूर्ण है। भाषा के विद्यार्थियों ने अनेक शब्द-सूचियों पर, व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त भाषा की संरचना के विश्लेषणार्थ कार्य किया है। दो का संक्षेप में विवरण दिया जा सकता है।

### रूप-संकेत अनुपात (Type-token ratio) :

एक सूची-रूप संकेत अनुपात है। इसे व्यक्ति द्वारा उसकी वार्ता या लेखन के किसी प्रतिदर्श में व्यक्त शब्दों के दो रूप बनाने से उपलब्ध किया जाता है। यह केवल शब्दों की संख्या है, यह संख्या व्यक्त किए गए संकेतों की है। द्वितीय, व्यक्ति

द्वारा व्यक्त भिन्न शब्दों की संख्या है, यह संख्या व्यक्त किए गए रूपों की है। रूपों की संख्या को संकेतों की संख्या द्वारा विभाजित करने से रूप-संकेत अनुपात प्रकट होता है।

यह अनुपात शब्दावली की संख्या के साथ-साथ चलता है; क्योंकि जिनकी शब्दावली सीमित है, वे कुछ शब्दों का प्रयोग विस्तृत शब्दावली पर अधिकार रखने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा बहुत बार करते हैं। यह आंशिक रूप से बोलचाल की भाषा और लिखित भाषा के कुछ अंतर को भी स्पष्ट करता है। लिखित भाषा का प्रायः बोलचाल की भाषा से ( अधिक ) अनुपात होता है। जब हम लिखते हैं, साधारणतः हम अधिक सावधानी से शब्दों का चयन करते हैं और अर्थों के सूक्ष्म अंतर को स्पष्ट करने के लिए भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग करते हैं।

### क्रिया और विशेषण अनुपात ( Verb-adjective ratio ) :

'शब्दगत अनेकता' की अन्य सूची जिसका प्रयोग महत्त्वपूर्ण है—क्रिया और विशेषण अनुपात है। जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, इसका गठन वार्ता के प्रतिदर्शों में प्रयुक्त क्रियाओं की संख्या से होता है और क्रिया के कर्म की विशेषता का बोध कराने वाले शब्दों से, जिनमें क्रिया-विशेषण और विशेषण हैं, इसका विभाजन होता है। फलस्वरूप, वार्ता के प्रतिदर्श में जितना अधिक इसका अनुपात होगा, उतनी ही अधिक वह क्रियाशील होगी।

अनुमान किया जा सकता है कि भिन्न भाषा प्रतिदर्शों में क्रिया-विशेषण अनुपात का प्रचुर अंतर होता है। वैज्ञानिक लेख अपेक्षाकृत क्रियाओं का कम प्रयोग करते हैं और उनका अनुपात भी कम होता है, लगभग १.३ ऐसे लेख जिनमें कथोपकथनों का प्रयोग होता है या जो जनसाधारण के लिए अधिक रुचिकर होते हैं, का अनुपात अधिक होता है। नाटकों में एक विशेषण और लगभग नौ क्रियाओं का अनुपात होता है।

### भाषा का अर्थ (The Meaning of Language) :

हम भाषा की संरचना के मूलभूत तथ्यों का उल्लेख कर चुके हैं। अब हम इसके उस अर्थ पर विचार करेंगे, जब इसका प्रयोग एक व्यक्ति का संदेश दूसरे तक पहुचाने में होता है। भाषा का मूल प्रयोजन अभिप्राय को दूसरों तक पहुँचाना है। यह कैसे होता है ?

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी संदेश के अभिप्राय को दो रूपों में पहुँचाया जाता है। प्रथम, शब्दों से संबंधित सामान्य अनुभवों द्वारा, जैसे कि वे वस्तुओं और घटनाओं के लिए उपयोग किए जाते हैं। बच्चा ऐसे शब्दों के अर्थ को जानने लगता है जैसे, 'कुर्सी', 'गुड़िया' 'भोजन', 'पलंग', इत्यादि; क्योंकि जब बच्चा सीधे अपनी

आँखों से इन वस्तुओं को देखता है, तब उन्हें बोला जाता है। इस प्रकार हम बड़ी संख्या में शब्दों का ज्ञान प्राप्त करते हैं, जिनके अर्थ हम सोचते हैं कि हम जानते और समझते हैं, जब हम एक दूसरे से बातचीत करते हैं। इस प्रकार का अर्थ जो वस्तुओं या घटनाओं को सामने दिखाकर, जाँचा जा सकता है, 'विस्तारपरक अर्थ' (Extensional Meaning) कहलाता है।

दूसरे प्रकार के अर्थ की व्युत्पत्ति, शब्दकोषों या पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग द्वारा, पहले अर्थ से ही होती है। हममें से बहुतों ने प्लेटाइप्स को कभी नहीं देखा और इसीलिए इस शब्द के लिए कोई विस्तारपरक अर्थ नहीं है। परंतु, यदि हम शब्दकोष में इसका अर्थ देखें, तो हम शब्दों में उसका वर्णन पाएँगे जैसे लघु-जलीय-स्तनपायी और बतख-जैसी चोंच वाला जंतु, और उनके लिए हमारे पास विस्तारपरक अर्थ हैं। इस प्रकार का व्युत्पन्न अर्थ 'साभिप्राय अर्थ' कहलाता है। इस प्रकार का अर्थ, अध्याय के प्रारंभ में उल्लिखित परिभाषा के द्वारा अधिगम प्रत्ययों के अर्थ का सामान्य उदाहरण है।

संभवतः आप इसे निश्चित मान लेते हैं कि लोगों के मस्तिष्क में, जब वे शब्दों का प्रयोग करते हैं, तो उनके कुछ भिन्न अर्थ होते हैं। ऐसा अनुमान किया जा सकता है; क्योंकि बहुत से शब्दों के सुस्पष्ट अर्थ नहीं होते। आप संभवतः यह भी अनुमान कर सकेंगे कि शब्दों के साभिप्राय (व्युत्पन्न) अर्थ पूर्णतः उतने स्पष्ट नहीं होते, जितने विस्तारपरक (प्रदर्शन योग्य) अर्थ। वह ठीक भी है। संभवतः आप इस पर संदेह भी नहीं करेंगे कि एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के लिए एक शब्द के अर्थ में कितना अंतर हो सकता है। ऐसे शब्दों के लिए भी जिनके संबंध में हम में से बहुत लोग यह सोचते है कि हम उन्हें समझते हैं। भाषा के विद्यार्थी, जैसा कि हम देखेंगे, इसे मात्रामूलक ढंग से स्पष्ट करते हैं।

जब भाषा व्यक्तियों के बीच संदेश पहुँचाने का कार्य करती है और जब वे संदेश पहुँचाने की व्यवस्था तभी करते हैं जब श्रोता (या पाठक) शब्द का लगभग वही अर्थ ग्रहण करता है, जो बोलने वाले (या लेखक) का होता है, तब किसी शब्द के अर्थ के परिमापन का मात्र तरीका व्यक्तियों में परस्पर सहमति ही है। किस सीमा तक व्यक्ति सहमत हो सकते हैं, इसे निर्धारित करके हम अर्थों की एक सूची तैयार कर सकते हैं। हम पूर्ण असहमति के लिए .०० और अधिकतम सहमति के लिए १·०० ले सकते हैं। किसी विशेष शब्द की सूची प्राप्त करने के लिए हम प्रतिपादित करते हैं कि वहाँ कितनी सहमति है और उस संख्या को अधिकतम संभावित सहमति से भाग देते हैं।

एक शोधकर्त्ता ( जॉनसन, १९४४ ), जिसने इस प्रकार की सूची तैयार की थी, ने प्रयोग-पात्रों से पूछा कि वे शब्दों को विस्तारपरक ढंग से व्यक्तियों, वस्तुओं या घटनाओं को स्पष्ट करें, जो उनके समक्ष वस्तुओं के वर्ग के उदाहरणस्वरूप शब्दों द्वारा सांकेतिक रूप में प्रकट थे। मान लीजिए कि इस प्रकार के प्रयोग में हम १०० प्रयोग-पात्रों से पूछते हैं कि क्या वे फ्रेंकलिन डी० रूजवेल्ट को 'उदार' शब्द में सन्निहित वर्ग का उदाहरण मानते हैं ? तब हम स्वीकारात्मक उत्तरों की गणना करेंगे और उसका भाग कुल संख्या, संभवत: १०० में देंगे। यदि १०० उत्तर 'हाँ' में दिए गए थे (अथवा १०० उत्तर 'नहीं' में दिए गए थे), तो हम प्रयोग-पात्रों में पूर्ण सहमति, 'उदार' की इस विशेष विस्तारपरक परिभाषा में, पाएँगे। यदि प्रश्न के उत्तर में केवल ५० 'हाँ' मिले, तो हम पूर्ण असहमति पाएँगे; क्योंकि जितने व्यक्तियों ने उसे स्वीकार किया, उतने ही व्यक्तियों ने अस्वीकार भी किया। वास्तव में इस रूप में जो प्रयोग किया गया, उससे सहमति की सची केवल २४ रूजवेल्ट के उदाहरण में, मिली। यह पर्याप्त असहमति प्रकट करता है। हरबर्ट होवर के उदाहरण में पर्याप्त सहमति थी और वह 'उदार' के वर्ग का उदाहरण नहीं था। उसके नाम के लिए .९० सूची थी।

शब्दों के अर्थ-परिमापन की अन्य प्रणालियों का पूर्व उल्लिखित प्रत्ययों के अर्थ-परिमापन की प्रणालियों को भी लेकर, प्रयोग किया गया। सामान्यत: जब शब्दों पर, एक समय में एक पर विचार किया जाता है, तो अर्थ में संबंध-सहमति बहुत अधिक नहीं होती।

### संदर्भ में अर्थ (Meaning in Context) :

इससे हम इस निर्णय पर पहुँच सकते हैं कि अर्थ को दूसरों तक पहुँचाने में हम बहुत सफल नहीं होते। वास्तव में हम सफल नहीं होते, किंतु स्थिति इतनी खराब भी नहीं है, जितनी प्रकट होती है। शब्दों के अर्थ में सहमति की कमी का आंशिक कारण कुछ उस संदर्भ पर निर्भर करता है, जिसमें वह प्रयोग किया गया है। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि संदर्भ अर्थ देता है; क्योंकि भाषा कुछ विशेष नियमों के अनुसार बोली और लिखी जाती है, इसलिए कुछ शब्द दूसरों की अपेक्षा विशेष क्रम से अधिक प्रयुक्त होते हैं। ये क्रम संदर्भ बनाते हैं और ये संदर्भ शब्दों के अर्थ को अधिक सुस्पष्ट करते हैं। आपने अनेक बार किसी को यह कहते सुना होगा, 'आपने मुझे गलत संदर्भ में उद्धृत किया है।' इस प्रकार वह कहना चाहता है कि आप शब्दों के एक क्रम को, जिनमें वे प्रयुक्त हुए थे, बिना जाने शब्दों के दूसरे क्रम के अर्थ को सुस्पष्ट रूप में नहीं कह सकते।

अभी हम जिस प्रकार शब्दगत प्रसंग को, अक्षरों और ध्वनियों के क्रमों को बनाकर, स्पष्ट कर सके हैं, उसी प्रकार हम अर्थ के संदर्भ को भी, शब्दों को उनके संदर्भ के क्रमानुसार चुन कर स्पष्ट कर सकते हैं। इसे सारणी ९.४ में स्पष्ट किया गया है।

सारणी ९.४

अंगरेजी भाषा के सांख्यिकीय गुणों के अनुसार निर्मित कृत्रिम शब्दों के नमूने (मिलर और सेल्फ्रिज, १९५०)।

शून्य क्रम

Betwixt trumpeter pebbly complication vigorous tipple careen obscure attractive consequence expedition pene unpunished prominence chest sweetly basin awoke photographer ungrateful.

प्रथम क्रम

Tea realizing most so the together home and for were wanted to concert I posted he her it the walked.

द्वितीय क्रम

Sun was nice dormitory is I like chocolate cake but I think that book is he wants to school there.

तृतीय क्रम

Family was large dark animal came roaring down the middle of my friends love books passionately very kiss is fine.

चतुर्थ क्रम

Went to the movies with a man I used to go toward Harvard Square in Cambridge is mad fun for.

पंचम क्रम

Road in the country was insane especially in dreary rooms where they have some books to buy for studying Greek.

सप्तम क्रम

Easy if you know how to crotchet you can make a simple scarf if they knew the color that it.

गद्य रूप

More attention has been paid to diet but mostly in relation to disease and to the growth of young children.

इस सारणी में शून्य-क्रम सूची यादृच्छिक रूप से शब्दों को चुन कर बनायी गई है। प्रथम क्रम वाक्य में, शब्द उसी क्रम में आते हैं, जिस क्रम में उन्हें अंगरेजी में आना चाहिए। यह उच्चस्तरीय वाक्यों के लिए भी ठीक है, किंतु द्वितीय क्रम वाक्य में एक शब्द दूसरे से पूर्व उसी क्रम में आता है, जिस क्रम में उसे अंगरेजी में आना चाहिए। तृतीय क्रम वाक्य में उनके पूर्व शब्दों के युग्म उसी क्रम में आते हैं, जिस क्रम में साधारण अंगरेजी में आने चाहिए। चतुर्थ क्रम वाक्य तीन-तीन शब्दों के समूह के उपरांत आता है और इसी प्रकार सप्तम क्रम तक बढ़ता रहता है। तब अंत में गद्य का प्रतिदर्श दिया गया है।

इन वाक्यों की रचना में जिस प्रणाली का प्रयोग किया गया है, वह रोचक है और ऐसी प्रणाली है, जिसका उपयोग आप घर में या अपने मित्रों के साथ कर सकते हैं (मिलर और सेल्फ्रिज, १९५०)। द्वितीय क्रम सूची को प्राप्त करने के लिए, एक साधारण शब्द जैसे 'वह', 'यह' या 'इस' को व्यक्ति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है और उसे इस शब्द को वाक्य में प्रयोग करने के लिए कहा जाता है। वह जिस शब्द का प्रयोग शब्द को पाते ही तुरंत करता है, उसे नोट कर लिया जाता है और तब दूसरे व्यक्ति को उसे दिया जाता है और उसको उसे वाक्य में प्रयोग करने के लिए कहा जाता है। इस प्रणाली की आवृत्ति की जाती है, प्रत्येक बार भिन्न व्यक्ति को तब तक शब्द दिया जाता है, जब तक कि जितना लंबा वाक्य अपेक्षित है, बन नहीं जाता। यहाँ जो धारणा बनायी जाती है कि जिन व्यक्तियों को वाक्यों की रचना करने के लिए कहा जाता है, वे एक शब्द के बाद दूसरे का लगभग उतनी ही बार प्रयोग करेंगे, जितनी बार अंगरेजी भाषा में दोनों शब्द एक साथ प्रयुक्त होते हैं।

तृतीय क्रम वाक्यों में व्यक्तियों को दो शब्द दिए जाते हैं, जैसे 'वह है', 'यह हो गया', 'यह संसार' और इसी रूप में उन्हें वाक्यों में प्रयोग करने के लिए कहा जाता है। क्रम के आगे सीधे क्रम जोड़ते हुए जब शब्द का प्रयोग किया जाता है, तो क्रम का प्रथम शब्द छूटता जाता है और नया क्रम दूसरे व्यक्ति को वाक्य में प्रयोग करने के लिए दिया जाता है। ठीक यही प्रणाली चतुर्थक्रम वाक्य में भी, तीन शब्दों के क्रम का प्रयोग करते हुए, प्रयोग की जाती है। पंचम क्रम वाक्य में चार-शब्दों के क्रम का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार आगे क्रम बढ़ता जाता है। प्रथम क्रम वाक्यों को सब उच्चस्तरीय-क्रम के वाक्यों से जहाँ-तहाँ से शब्द लेकर उन्हें रेखांकित कर उपलब्ध किया जाता है। उपलब्ध वाक्यों में जो शब्द होते हैं, उनकी आवृत्ति उसी रूप में होती है, जिस रूप में वह सामान्य प्रयोग में होती है। शून्य क्रम वाक्यों को शब्दकोष से जहाँ-तहाँ से शब्दों को चुन कर उपलब्ध किया जा सकता है।

जब इस प्रकार से रचित वाक्यों का परीक्षण किया जाता है, तो यह देखना सरल होता है कि निम्न से उच्च स्तर के वाक्य धीरे-धीरे हमारे अपेक्षित अर्थ को व्यक्त करने लगते हैं। उच्चस्तरीय क्रम के वाक्य अर्थपूर्ण होते हैं, जब कि सत्य यह है कि वे किसी एक व्यक्ति द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति को कुछ कहने के लिए नहीं कहे गए थे।

हमें ध्यानपूर्वक यहाँ देखना चाहिए कि हमारी भाषा का अर्थ पूर्णतः शाब्दिक संदर्भ द्वारा, जैसा कि उस क्रम द्वारा निदेशित किया गया है, जिसमें शब्द विकसित होते हैं, स्पष्ट नहीं होता। जिस प्रणाली का उल्लेख किया गया है, उसके प्रयोग द्वारा हम वाक्यों की रचना १५ वें क्रम, २० वें क्रम और उससे भी अधिक क्रम में कर सकते हैं, जो बिना गद्य प्रबंधों के वाक्यों की समानता के वास्तविक अर्थ को बिना व्यक्त किए बनाए जा सकते हैं। अर्थात्, ऐसे वाक्य, जिनकी रचना भाषा पर अधिकार रखने वाले सांख्यिकी नियमों के पूर्णतः पालन द्वारा की जाती है, आवश्यक नहीं कि अच्छे और अर्थपूर्ण हों। कारण यह है कि यद्यपि शब्दों को विशेष क्रम से प्रयोग करने के हम अभ्यस्त हैं, फिर भी पूर्व-प्रयुक्त शब्दों के लंबे क्रम के बाद भी हम शब्द-चयन करने के लिए पर्याप्त स्वतंत्र हैं। यह अच्छी बात है; क्योंकि दूसरे व्यक्ति को कोई नवीन बात कहते समय कुछ ऐसा कहना चाहिए, जिसका पूर्णतः पूर्व ज्ञान वह न कर सके।

## दोषपूर्ण भाषा ( Defective Language ) :

भाषा को निर्मित करने और समझने में सन्निहित प्रत्यक्ष ज्ञान और निपुणता अपेक्षाकृत जटिल है और किसी व्यक्ति को उन्हें अर्जित करने में अनेक वर्ष व्यतीत करने पड़ते हैं और पृथक् अधिगम आवश्यक होता है। इसमें आश्चर्य नहीं है कि ऐसी सूक्ष्म और जटिल क्रिया का परिणाम कभी-कभी दोषपूर्ण भाषा को जन्म दे दे। एक व्यक्ति, भाषाओं के एक दृष्टिकोण से या अनेक दृष्टिकोणों से, दोषपूर्ण हो सकता है जैसे इसे पढ़ने की योग्यता या जब वह बोली जाए, तब उसे समझना, मूल ध्वनियों को उत्पन्न करना या उन्हें सुबोध होने के लिए आवश्यक क्रमों में सम्मिलित करना अथवा भाषा को इस प्रकार से प्रयोग करने की योग्यता का होना कि वह समझी जा सके।

व्यक्ति की भाषा-संबंधी योग्यता में कुछ दोष मस्तिष्क के चोट या रोग के परिणाम से होते हैं। ये वाचाघात (Aphasias) कहलाते हैं और इनकी चर्चा हम आगे अध्याय २० में करेंगे। अन्य दोष वैयक्तिक कुसमायोजन के कारण होते हैं। उदाहरणार्थ, अनेक वर्षों तक तुतलाना और हकलाना संवेगात्मक कठिनाइयों का

परिणाम समझा गया, यद्यपि तंत्रिका-तंत्र के क्रिया-व्यापार के दोष का भी इसमें हाथ हो सकता है। भाषा के दोष प्रायः मनस्तापी विकारों के रूप में प्रकट होते हैं और प्रायः वे सदैव मनोविक्षिप्ति में प्रमुख होते हैं (देखिए, अध्याय—५)। वस्तुतः ऊपर उल्लिखित कुछ निदेशों और संबंधों का उपयोग मनोविक्षिप्ति के निदानार्थ किया जा सकता है। मानसिक विकारों के कुछ प्रकारों में शब्द एक दूसरे से कैसे संबद्ध किए जाते हैं और किस प्रकार प्रयोग किए जाते हैं, प्रायः विकृति रहती है।

उदाहरणार्थ, एक अंतराबंधी महिला रोगिणी का उदाहरण लीजिए, जिसे ब्लाक छाँटने का परीक्षण दिया गया ( केमेरान और मेगारेट, १९५१ )। पराक्षक ने उससे प्रश्न किया, 'इस समूह और उस समूह में क्या अंतर है ?' उसने उत्तर दिया :—

> "भावों से विभाजित आपका हाथ और घेरे की गणना करना। यदि मैंने ब्लैक-बोर्ड पर हाथ से कुछ लिखा होता, तो वहाँ कोई चिह्न न होता, चाक का भी निशान नहीं। यह विशेष प्रकाश है, जिसे वे असावधानी से अपने कार्य के साथ छोड़ देते हैं। यह हल्का स्लेटीपन है और जब मैं बाहर वहाँ घूमने गई, मैंने वहाँ वैसे बहुत अधिक पाए। छत पर काम करने वाले लोग जैसे सदा फिसलते रहते हैं। वहाँ कोई व्यक्ति सदा उस प्रकार की नकल करता रहता है। ईश्वर के नाम पर कैसे कोई व्यक्ति बच्चे पर धन व्यय करता रहेगा और उसके वस्त्र खरीदेगा ? और कौनस्टेंस के साथ यही ढंग है, और वह स्कूल जाती। वे उसका मन सवेरा करने हमारे खेत के बीच से जाएँगे और वह प्रकाश पाएँगे। एक स्त्री ने मिसौरी में उन बच्चों पर काम किया, उन्हें उबाला, चुना और समाप्त कर दिया। मैं वहाँ काम करना पसंद करती।"

यह अंतराबंधी रोगी की भाषा का उदारहण है। ऐसी भाषा में विशेष रूप से संबद्धता का और सुस्पष्ट अर्थ का अभाव रहता है। असंबद्ध विषयों की चर्चा से यह अत्यधिक रूप से भरी रहती है। संक्षेप में, वह उन नियमों का पालन नहीं करता, जिन्हें हम एक दूसरे को समझने के लिए करते हैं। जैसा कि भाषाओं के सब प्रकारों में होता है, इसमें भी रोगी प्रायः किसी-न-किसी नियम का पालन करता है। यदि कोई इन नियमों को समझ ले, वह उसकी वार्ता को समझ सकता है। वह रोगी क्या कहने का प्रयत्न कर रहा था, वास्तव में, वह समझा जा सकता है।

### जंतुओं में जटिल प्रक्रम (Complex Processes in Animals) :

इस अध्याय में बीच-बीच में यह कहा गया है कि मानवीय चिंतन के सदृश प्रक्रियाएँ जंतुओं में भी पायी जा सकती हैं। इसमें भी संदेह नहीं है कि जंतुओं में

ये प्रक्रियाएँ मनुष्य की तुलना में अति प्रारंभिक अवस्था में हैं और मनुष्य चिंतन-प्रक्रियाओं का उपयोग पूर्णत: भिन्न परिमाण एवं रूप में करता है। फिर भी यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि जंतुओं में चिंतन और विचार-विनिमय की क्रियाएँ किस रूप में पायी जाती हैं। यहाँ यही जानना हमारा प्रयोजन है। यह व्यापक विषय है और उस पर कुछ ही पृष्ठों में पूर्ण रूप से विचार नहीं किया जा सकता। हम यहाँ केवल कुछ चुने हुए उदाहरण प्रस्तुत कर सकेंगे।

कुछ उदाहरण, जिन्हें हम 'सहज प्रवृत्ति-जन्य व्यवहार' कहते हैं, से विकसित होते हैं। यह तथ्य हमारी व्यवहार की व्याख्या को जटिल बना देता है, परंतु उस पर विचार करने से पूर्व हम अपने उदाहरणों को देख लें।

प्रकाश-कंपस प्रतिक्रिया (Light-Compass Reaction) :

एक प्रकार का व्यवहार, जिसे प्रकाश-कंपस प्रतिक्रिया कहते हैं, कुछ कीटाणुओं में देखा जा सकता है। जिनमें यह प्रतिक्रिया व्यक्त होती है, उनकी आँखें अनेक तत्त्वों से बनी होती हैं—जैसे मधुमक्खी का उदाहरण—और सब तत्त्वों का भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाओं की ओर लक्ष्य रहता है। ऐसी वस्तु को, जिसमें से निरंतर थोड़ा सा प्रकाश विकीर्ण होता रहे, इस रूप में रखने से कि वह किसी एक तत्त्व को उद्दीप्त करती रहे, जंतु को किसी लक्ष्य तक सीधे पहुँचाने में सहायक हो सकती है। इस प्रकार की समुद्री यात्रा को 'प्रकाश-कंपस प्रतिक्रिया' कहा गया है; क्योंकि यह सूर्य का कंपस के रूप में उपयोग करती है।

मधुमक्खियाँ प्रकाश-कंपस प्रतिक्रिया का उपयोग आहारप्राप्ति के स्थल और मधु-छत्ते की ओर आड़ा दिक्-स्थापन करने के लिए करती हैं। जब वे आहार की खोज में छत्ते से निकलती हैं, तो वे सूर्य पर अपनी विविध तत्त्वों से निर्मित आँखों के किसी तत्त्व को केंद्रित करती हैं। आहार लेकर छत्ते की ओर लौटते समय, वे दूसरी आँख के तदनुरूपी तत्त्व को सूर्य पर रखती हैं। अत: वे स्वत: अपने घर की सीमा में लौट आती हैं—यदि वे बहुत देर तक बाहर न रही हों।

चींटियों के साथ किए गए एक प्रसिद्ध प्रयोग में ( टिनबरजन, १९५१ ), जिसमें दिक्-स्थापन की वही पद्धति अपनायी गई है, चींटियों को घर की ओर लौटते समय राह में से पकड़ लिया और उन्हें एक छोटे अंधेरे बक्स में लगभग २½ घंटे रखा। जब अंत में उन्हें छोड़ा गया, वे रवाना हुईं। किंतु, अपने घर के मार्ग से लगभग उतनी ही दूर भटक गईं जितनी मात्रा में सूर्य उस बीच के समय में दूर हटा था ( देखिए,चित्र ९.१३ )।

आप कहेंगे कि यह बहुत रोचक है, किंतु इसका चिंतन-प्रक्रिया से क्या संबंध है ? ध्यान रखें कि इसमें विशिष्ट प्रकार की स्मृति निहित है। चींटी के लिए सूर्य

को आँख के उसी तत्त्व ( या तदनुरूपी-तत्त्व को ) को उद्दीप्त करने की स्थिति में रखना आवश्यक है। इसे वह घंटों के विश्रामकाल के उपरांत भी कर सकती है और यह भी कि घर से रवाना होने वाली भिन्न यात्राओं में उसे आँख का भिन्न तत्त्व प्रयोग करना चाहिए। अतः, यह विशेष प्रकार की 'स्मृति की खोज' पर्याप्त काल तक रखती है। इस संबंध में यह अनेक स्तनपायी जंतुओं की विलंबित-प्रतिक्रिया परीक्षा से बेहतर करती है। एतदर्थ, किसी प्रकार की मध्यस्थ-प्रक्रिया इसमें निहित प्रतीत होती है।

चींटी सूर्य को कंपस के रूप में प्रयोग करके, अपना गृह-पथ खोजती है।
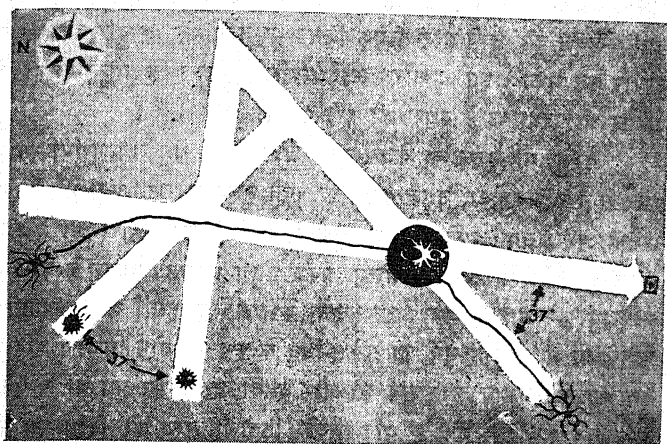
**चित्र ९.१३-चींटी के गृह-पथ खोजने में प्रकाश-कंपस प्रतिक्रिया। 'डी' तक उसके घर पहुँचने के पथ में चींटी को २½ घंटे तक निर्दिष्ट स्थल पर अंधकार में रखा गया था। अंधकार से मुक्त करने पर उसने पुनः घर की ओर बढ़ना प्रारंभ किया, किंतु इस बाधित काल में सूर्य की स्थिति में जो अंतर आ गया था, उसके कारण चींटी के पथ में भी उतनी डिग्री का अंतर हो गया था (टिनबरजन के अनुसार, १९५१ )।**

मधुमक्खियों की भाषा :

मधुमक्खियाँ, चींटियों के सदृश, प्रकाश-कंपस प्रतिक्रिया का यात्रा के लिए प्रयोग करती हैं। यद्यपि यह सराहनीय एवं चातुरीपूर्ण कार्य है और यह वास्तव में मधुमक्खियों की सबसे आश्चर्यपूर्ण उपलब्धि है। मधुमक्खियाँ न केवल अपनी दिशा

ठीक रखती हैं, वरन् वे इस दिशा की बातें अन्य मधुमक्खियों से भी कह सकती हैं। वे छत्ते में रह गई मधुमक्खियों को आने-जाने का मार्ग और जिस स्थान पर आहार की प्राप्ति हुई, उसकी दूरी को बता देती हैं। 'मधुमक्खियों की भाषा' की खोज जर्मन प्राणिविज्ञ वोन फ्रिश्च (Von Frisch, 1950) ने की थी। इसकी खोज उसने कैसे की और कैसे उसने उसे सीखा, यह एक रोचक कहानी है।

"वोन फ्रिश्च ने एक बार देखा कि मधुमक्खियाँ, जिन्होंने पर्याप्त आहार-प्राप्ति का एक स्थल खोज लिया था, छत्ते तक लौटतीं और एक विशेष प्रकार का नृत्य करतीं। इस नृत्य की आवृत्ति एक मिनट में अधिक बार होने लगती थी, यदि आहार-प्राप्ति का स्थल दूर की अपेक्षा निकट होता जाता। अपने प्रेक्षणों द्वारा वह एक नक्शा ( देखिए चित्र ९.१४ ) आहार-प्राप्ति-स्थल की दूरी और प्रत्येक मिनट में नृत्य की आवृत्ति के संबंध पर तैयार कर सका। इस प्रकार उसने प्रदर्शित किया कि मधुमक्खियाँ किस प्रकार आहारप्राप्ति के स्थल की दूरी की बात कहती हैं।

परंतु, यह उत्तर का केवल एक अंश था। वह जब मधुमक्खियों को गौर से देख रहा था, उसने देखा कि अपने नृत्य के एक अंश में वे सीधी उड़तीं, पूरे समय अपने तन को डुलातीं। सीधे उड़ने की दिशा में आहार-स्थल की दिशा के अनुसार अंतर प्रकट होता। इस प्रकार वे अन्य मधु-मक्खियों को आहार-दिशा की सूचना देती प्रतीत होती थीं। प्रकाश-कंपस प्रतिक्रिया में, उन्होंने सूर्य का संकेत-बिंदु के रूप में प्रयोग किया। यदि उनके नृत्य का सीधा भाग ऊपर सूर्य की ओर बढ़ता, तो इसका अर्थ था कि आहार-स्थल सूर्य की दिशा में है। यदि सीधी ठिठोली नृत्य की दिशा सूर्य से ३० डिग्री दाहिनी ओर हो ( देखिए, चित्र ९·१४ ), तब आहार दाहिनी ओर ३० डिग्री दिशा में था। कंपस की अन्य सब दिशाएँ भी इसी प्रकार स्पष्ट की जा सकती हैं।

जब वोन फ्रिश्च ने मधुमक्खियों की भाषा की कुंजी की खोज कर ली, उसने यह देखने का निर्णय किया कि क्या वह वास्तव में समझ सकता था कि मधुमक्खियाँ क्या बोल रही थीं ? उसके एक सहयोगी ने चीनीमिश्रित पानी को मधुमक्खियों के आहार-स्रोत के रूप में छत्ते से कुछ दूरी पर रख दिया और इस दिशा का वोन फ्रिश्च को ज्ञान नहीं था। जो मधुमक्खियाँ आहार लेकर लौटतीं, उन्हें उस सहयोगी ने थोड़ी रंगीन लाख से चिह्नित कर दिया, ताकि जब वे नृत्य करती हुई छत्ते की ओर लौटें, तो वोन फ्रिश्च उन्हें पहचान सके। उसने एक यंत्र लगाया, जो प्रति मिनट में उनके नृत्य की संख्या को

नापता और एक दूसरा यंत्र उनके नृत्य के सीधे अंश की दिशा को नापता, इनसे वह कह सका, 'आहार छत्ते से इतने गज की दूरी पर और इस दिशा में रखा गया है'। उसके सहयोगी ने इस तथ्य को पुष्ट किया कि वोन फ्रिश्च ने जो दिशा और स्थान आहार के बताए, वे ठीक थे।"

एतदर्थ, वोन फ्रिश्च यह प्रदर्शित करने में सफल हुआ कि मधुमक्खियाँ न केवल अपनी दिशा को सुरक्षित रखती हैं, बल्कि वे दिशा और दूरी दोनों की सूचना भी दूसरी मधुमक्खियों को दे सकती हैं। हम कहते हैं 'सूचना देती हैं'; क्योंकि वे इस प्रयोजन को पूर्ण करती हैं। क्या यह सूचना देना मानवीय अर्थ में संकेत और प्रतीकों का प्रयोग करते हुए 'साभिप्राय' सूचना देना है, अथवा मेरे कुत्ते के घर में प्रवेश पाने के लिए भोंकने के सदृश है, यह नहीं कहा जा सकता। बिना गंभीर विचार किए वह बात अर्थहीन-सी प्रतीत होती है। किंतु, मधुमक्खियाँ निश्चय ही सूचना देती हैं।

मधुमक्खी दूसरी मधुमक्खियों को बतलाती है कि किस गति से जाने पर, किस दिशा में कितनी दूरी पर आहार रखा है।
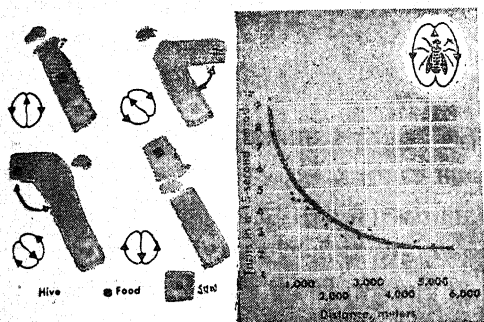
**चित्र ९.१४. मधुमक्खियाँ आहारप्राप्ति के स्थान का संवाद किस प्रकार देती हैं। छत्ते की ओर लौटते हुए वे ठिठली नृत्य करती हैं। नृत्य की गति (ग्राफ) आहार की दूरी सूचित करती हैं। ग्राफ के निचले भाग में सहस्रों मीटरों की दूरी प्रकट की गई है, पार्श्व में १५ सेकेंड के काल में होने वाले मोड़ दिखाए गए है। आहार की दिशा (बायाँ चित्र) भिन्न दूरी के कोणों द्वारा बतायी जाती है। सूर्य के सीधे प्रकाश को, पथ-प्रदर्शक बिंदु के रूप में ग्रहण किया गया है। उदाहरणतः यदि छत्ते से सूर्य और आहार ६० डिग्री का कोण निर्मित करे, तो दूरी का कोण शीर्ष से ६० डिग्री दूर होगा (वोन फ्रिश्च के अनुसार, १९५०)।**

सूचना देने की क्रिया का अन्य जंतुओं पर भी अध्ययन किया गया है। द्वितीय अध्याय में चिंपांजियों पर किए गए प्रयोगों का उल्लेख किया गया है। अनेक चिड़ियों

के भिन्न-भिन्न अनेक स्वर होते हैं जिनमें भय, आक्रमण और संतोष को अभिव्यक्त करने वाले स्वर भी हैं। ये स्वर संकेत का कार्य करते हैं और वे सूचना देते हैं। तोते और अन्य पालतू पक्षी अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट शब्द उच्चरित कर सकते हैं। किंतु, उन्हें सूचना देने के लिए सार्थक शब्दों को सिखाने का गंभीर प्रयत्न भी व्यावहारिक सफलता नहीं पा सका।

इसमें संदेह नहीं कि पक्षियों द्वारा उच्चरित भिन्न स्वरों का अन्य पक्षियों के लिए अर्थ होता है। निम्नलिखित प्रयोग इसे स्पष्ट करता है ( फ्रिंग्स और फ्रिंग्स, १९५९ ):

> "दो प्रयोगकर्त्ता कई माह तक मैंने (Maine) में कौओं को ध्यान से देखते एवं सुनते रहे। वे कौओं के चार प्रकार के स्वरों में भेद करने में सफल हुए। इसके अतिरिक्त, एक गुप्त माइक्रोफोन (सूक्ष्मध्वनि-ग्राहक ) द्वारा वे इन स्वरों को टेप पर अंकित ( रिकार्ड ) करने में सफल हुए और पुन: वे उसे कौओं के सामने बजाते हैं। उन्होंने खोज की कि एक स्वर एकत्रित होने के लिए था; क्योंकि उसे सुनते ही ध्वनि-वर्द्धक यंत्र के चारों ओर कौए एकत्रित हो गए। दूसरा स्वर बिखेरने का था, जैसे ही कौओं ने इस स्वर को सुना, वे दूर-दूर बिखर गए। अतः, इन दो स्वरों का मैंने के कौओं के लिए भिन्न अर्थ था।
>
> इसके बाद यह अंकित टेप फ्रांस के उन वैज्ञानिकों के पास भेजी गई, जो पक्षियों के स्वरों का अध्ययन कर रहे थे और वहाँ यह टेप फ्रांस के तीन उपजातियों के कौओं के समक्ष बजायी गई। ये कौए भी मैंने कौओं के एकत्रित होने के स्वर को सुनकर, तुरंत ध्वनि-वर्द्धक यंत्र के निकट आ गए। किंतु, इस प्रयोग से यह भी स्पष्ट हुआ कि सब कौए दूसरे कौओं के स्वर को नहीं 'समझते'। फ्रांसीसी कौओं के स्वरों को संयुक्त राज्य अमेरिका में भेजा और मैंने के कौओं पर उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। दूसरी ओर, पेनसीलवानियाँ के कुछ कौओं पर उसकी प्रतिक्रिया हुई।"

इससे यह प्रकट होता है कि कौए साथ रहते और साथ खाते हैं, एक दूसरे के स्वर को सुन कर और देख कर कौओं पर उसकी प्रतिक्रिया होती है, उसी प्रकार वे भी करते हैं, संभवतः अधिगम द्वारा। पेनसीलवानिया के कौए दक्षिणी मच्छली-कौओं के साथ रहते हैं, जबकि फ्रांसीसी कौए फ्रांस के ही कौओं के साथ या अन्य पक्षियों के साथ साहचर्य करते हैं। जिनसे उनका साहचर्य रहता है, उनकी बात वे 'समझते' हैं। देखा गया कि मैंने के कौए किसी अन्य जाति के पक्षियों या

कौओं के साथ साहचर्य नहीं करते। वे केवल अपनी ही जाति के कौओं की बात समझते' हैं।

प्रत्यावर्तन ( Alternation ) :

इस अध्याय के प्रारंभ में विलंबित-प्रतिक्रिया परीक्षण का वर्णन किया गया है। इसमें तात्कालिक-स्मृति अभिरेख निहित रहता है, जो मध्यस्थ-प्रक्रिया के कार्य को विभेदार्थ करता है। दो अन्य परीक्षणों की जंतुओं में चिंतन-सदृश प्रक्रियाओं के अध्ययनार्थ अभिकल्पना की गई है—'विलंबित प्रत्यावर्तन' परीक्षा ( Delayed Alternation ) और 'द्विक-प्रत्यावर्तन' परीक्षा (मन, १९५०)। सरल प्रत्यावर्तन में जंतुओं को व्यूह में दौड़ने के लिए कहा जाता है। पहले दाहिनी और फिर बाईं ओर, फिर दाहिनी ओर, फिर बाईं ओर इत्यादि। द्विक-प्रत्यावर्तन में मुड़ने का अपेक्षित प्रतिरूप दाहिना-दाहिना बायाँ-बायाँ, दाहिना-दाहिना-बायाँ-बायाँ, दाहिना-दाहिना—बायाँ-बायाँ इत्यादि करता है। अथवा यह प्रतिरूप उत्तोलक को दबाकर, औंधे प्याले को उठाना भी हो सकता है, या कोई और क्रिया दाहिना-बाँया या दाहिना-दाहिना—बायाँ-बायाँ क्रम में हो सकती है। इन परीक्षणों में और विलंबित-प्रतिक्रिया परीक्षण में महत्त्वपूर्ण अंतर यह है कि मूल उद्दीपन, प्रतीकों या उनके स्थानापन्नों के अतिरिक्त बाहर के स्थान पर शरीर के भीतर होने चाहिए। अर्थात्, एक प्रत्यावर्त्ती समस्या में प्रकाश की कोई किरण नहीं है, जो विलंब के उपरांत ठीक अनुक्रिया का निर्देश करे। समस्या को सुलझाने के सब संकेत जंतु को स्वयं प्रस्तुत करने होंगे। अतः, हम 'अनुमान' कर सकते हैं कि बाईं ओर मुड़ने का भीतरी संकेत तत्काल दाईं ओर मुड़ने का परिणाम है और बाकी का क्रम भी इस प्रकार होता है और आगे भी हम 'अनुमान' कर सकते हैं कि यह संकेत भी उसी प्रकार कार्य करता है, जिस प्रकार विलंबित-प्रतिक्रिया परीक्षण में प्रकाश अथवा अन्य वाह्य संकेत करते हैं।

यदि हम इन अनुमानों को स्वीकार करते हैं, तब विलंबित प्रत्यावर्त्तन प्रतीकात्मक कार्य का परीक्षण है। चूहों ने परीक्षण में ठीक अनुक्रिया की यद्यपि दाहिनी और बाईं ओर मुड़ने के मध्य उन्हें १५ सेंकेड रोक लिया गया था, कुछ चूहे इसे तब भी ठीक तरह कर सके जब कि बिलंबकाल ( बाधितकाल ) में उनके शरीरों को दिक्काल-भ्रांत या ज्ञानशून्य कर दिया गया था। बंदर या मनुष्य कितनी देर विलंब कर सकते हैं, इसका यथार्थ परिमापन अभी तक नहीं हुआ है, परंतु हम जानते हैं कि मनुष्य भाषा की सहयता से प्रायः अनिश्चित काल तक विलंब कर सकता है।

दिक्-प्रत्यावर्तन परीक्षण कुछ भिन्न हैं; क्योंकि द्वितीय दाहिनी और द्वितीय बाईं अनुक्रिया, यदि सफल हो, तो प्रथम दाहिनी और प्रथम बाईं अनुक्रिया से कुछ

भिन्न प्रतीकात्मक संकेत बनाना चाहिए। एक जंतु अनेक अनुक्रियाओं में यह कैसे 'जानता' है कि केवल दो दाहिनी और दो बाईं अनुक्रियाएँ ही करनी हैं, जब तक कि वह गणना करना न जानता हो ?

यह समस्या चूहों के लिए बहुत कठिन प्रमाणित हुई, विशेषत: यदि परीक्षण कालिक रूप में हों और कोई द्विक संकेत न दिए जाएँ। जंतु से अपेक्षा की जाती है कि वह दो बार दाहिनी ओर से ब्लॉक के चारों ओर दौड़े और उसके बाद दो बार बाईं ओर से, जिससे कि वाह्य उद्दीपनों से संबंधित सब चिह्नित बिंदु समान रहें। बहुत कठिनाई से कुछ चूहे दाहिना-दाहिना-बायाँ-बायाँ (RRLL) क्रम एक बार कर सके, परंतु उससे आगे वे नहीं बढ़ सके। कम को बढ़ाना संभव है, यदि चूहे, दौड़ने के स्थान पर केवल उत्तोलक को अपने पैरों से दो बार दाहिनी ओर और दो बार बाईं ओर हिलाएँ, इत्यादि। एक दिक्-व्यूह में एक जंतु अपने चक्करों का क्रम एक नियम से बनाता है 'बिना ब्लॉक के चारों ओर चक्कर लगाए', परंतु व्यूह के भाग परस्पर बदल जाते हैं और व्यूह की दिशाएँ कमरे में बदल जाती हैं, जिससे सब वाह्य संकेत निरंतर अस्त-व्यस्त हो जाते हैं और जंतु अपनी समस्या को सुलझाने में उनकी सहायता नहीं ले सकता। ऐसे दिक्-व्यूह ( Spatial Maze ) प्रयोगों में बहुत कम चूहों ने तीन प्रत्यावर्तनों का एक समूह RRR LLL और चार प्रत्यावर्तनों का एक समूह RRRR LLLL सीखा, कम-से-कम कुछ समय के लिए वे इसे कर सके, यद्यपि वे इस पर अधिकार कभी भी प्राप्त नहीं कर सके।

यह रोचक बात है कि दिक-प्रत्यावर्तन समस्याओं को सुलझाने की योग्यता स्थान के साथ जंतु-जगत से ही संबंधित है (हंटर तथा नागे, १९३१ )। अमरीकी भालू दिक्-प्रत्यावर्तन कर सकते हैं और इसे क्रम के खंड के रूप में (दो चक्करों में) विस्तार भी दे सकते हैं और बंदर अनेक चक्करों तक इसे बढ़ा सकते हैं। विशेष प्रकार के खिलौने का प्रयोग करके तीन वर्ष की आयु से अधिक के बच्चे इसे कर सकते हैं, किंतु अब तक तीन वर्ष से छोटा कोई बालक इसे करने में सफल नहीं हुआ है। बड़े बच्चों की भूलें कम होती हैं, पाँचवर्षीय बच्चे उसे गिन कर कर लेते हैं—भाषा के प्रयोग द्वारा—और क्रम को अगणित रूपों तक बढ़ा सकते हैं।

### व्यवस्थिता या क्रमबद्धता (Orderliness ) :

प्रतीकात्मक क्रिया के परीक्षण का दूसरा तरीका है कि इस प्रकार की समस्या तैयार की जाए, जिसमें वस्तुओं का विशेष क्रम अपेक्षित हो, फिर भी उस शुद्ध क्रम-बद्धता के लिए कोई विशेष संकेत न दिए जाएँ। ऐसी समस्याओं को सीखने के लिए कुछ स्मृति का मध्यस्थ प्रक्रिया के रूप में अनुक्रियाओं को शुद्ध क्रम में रखने के लिए

कार्य करना आवश्यक होता है। उदाहरणार्थ मोटरगाड़ी-चालक को निर्देशन देते हुए आप संभवत: कह सकेंगे, 'तीसरे ब्लॉक तक चलो, फिर बाईं ओर घूम जाओ, फिर दूसरे ब्लॉक तक चलो, दाहिनी ओर घूमो — — —' आप यह निर्देशन, बिना उन मोड़ों को स्मरण किए कि वे कैसे हैं अथवा बिना किसी ऐसे संकेतों के जो आपके विचारों का पथ-प्रदर्शन करें, दे देते हैं अत: आप उन स्मृतियों पर विश्वास करते हैं जो आपके निर्देशनों को देने में मध्यस्थ प्रक्रियाओं का कार्य करती हैं। कार्य को क्रमबद्ध रूप में बिना विशेष बाह्य संकेतों के करने की योग्यता बंदरों और वानरों में निम्न जंतुओं की अपेक्षा अधिक होती है और मनुष्य में बंदरों एवं वानरों की अपेक्षा यह बहुत अधिक होती है।

सरल से जटिल समस्याओं की ओर बढ़ते हुए जंतुओं की भिन्न उप-जातियों की योग्यताओं की तुलना की जा सकती है।
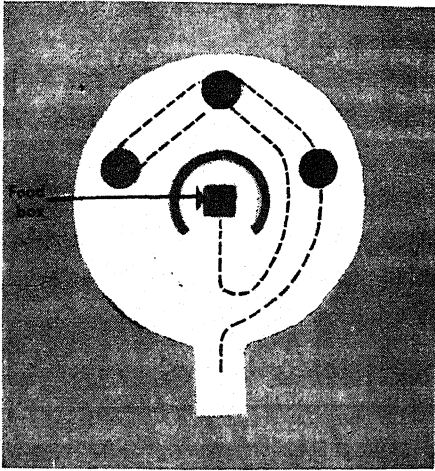
**९.१५. तीन-पैंडल-बक्स। समस्या को इस प्रकार व्यवस्थित किया जा सकता है कि उनमें भिन्न क्रमों में तीनों पैंडलों को दबाने की आवश्यकता पड़े। सरल समस्या में क्रम १. २. ३. होना, किंतु जटिल समस्या में क्रम १-२-३-१-२-१-३-२-१ ( जेल्ड के अनुसार १९३४ )।**

जंतुओं में इस योग्यता के परीक्षण के अनेक तरीकों में से एक है 'तीन-पैंडल के बक्स' का प्रयोग करना। इस बक्स में तीन स्थल होते हैं और उन्हें चित्र, ९.१५ के अनुरूप, व्यवस्थित किया गया। प्रयोगकर्त्ता वस्तुओं को इस प्रकार व्यवस्थित कर सकता है कि जंतु को भोजन उपलब्ध करने के लिए इन पैंडलों को निश्चित संख्या में दबाना पड़े। वह इतनी ही अपेक्षा कर सकता है कि जंतु केवल १.२ और ३ को क्रम से दबाए अथवा उन्हें १, ३, १; २. ३. २. ...... के क्रम से दबाए। इस

प्रकार वह जंतु द्वारा सबसे लंबे शुद्ध क्रम को पूर्णतः सीखने की योग्यता को निर्धारित कर सकता है।

सारणी ९.५ में, आप विभिन्न जंतुओं पर किए गए परिणामों को देख सकते हैं। गिनी-पिग और चूहे इसमें बहुत योग्यता नहीं रखते, वे केवल एक या दो क्रम को दबाने में ही सफल हो सकते हैं। बिल्ली इनसे श्रेष्ठ है, वह तीन तक का क्रम सीख लेती है। बंदरों में और अधिक योग्यता होती है। वे पाँच से दस तक के क्रम को कर सकते हैं। और बच्चे इनसे कहीं अधिक लंबे क्रमों को सफलतापूर्वक कर सकते हैं। अतः, आप देख सकते हैं कि क्रम के स्मरण की योग्यता का विकास निम्न स्तनपायी जंतुओं से मनुष्य तक किस प्रकार बढ़ता है।

सारणी ९·५

| जंतुओं के प्रकार | परीक्षा लिए गए जंतुओं की संख्या | कदमों का विन्यास | मध्य | औसत |
|---|---|---|---|---|
| गिनी-पिग | १६ | ०-१ | १ | ०.५ |
| चूहा | २४ | ०-२ | १ | ०.९ |
| बिल्ली का बच्चा | ६२ | ३-७ | ३ | ३.६ |
| रीसस बंदर | १७ | २-२२ | ५ | ७.४ |
| सीवस बंदर | ६ | ५-१५ | ९$\frac{१}{२}$ | ९.८ |

**सारणी ९.५. तीन-पैडल-समस्या यंत्र के परीक्षण में विविध स्तन-पायी जंतुओं की सीमा। ये आँकड़े अनुक्रियाओं के उस क्रमविन्यास को प्रस्तुत करते हैं, जो अधिगत किया जा सकता है (मन के आधार पर, १९५५)।**

**गणना (Counting) :**

गणना की योग्यता बच्चों में धीरे-धीरे प्रायः दो वर्ष या उसके आसपास की आयु में, थोड़ी-थोड़ी भाषा सीखने के बाद, विकसित होती है। इसे अधिक जटिल मानसिक प्रक्रियाओं में एक माना जा सकता है। वास्तव में गणना के एक

नहीं, वरन् तीन प्रकार हैं। एक है आकलन ( Subitizing ), जो एक दृष्टि में वस्तुओं की संख्या को देखना है, बिना 'एक, दो, तीन ... कहे दूसरा है . प्राक्कलन (Estimating), यह बिना संख्या को गिने केवल अनुमान करना है। और तीसरा है विशुद्ध गणना।

संभवत: आपने घोड़ों और कुत्तों के 'बात करने' या 'गणना करने' की बात सुनी या देखी होगी। प्राय: उनका प्रदर्शन रंगमंच, चलचित्र या टेलीविजन पर किया जाता है। वस्तुत: ये जानवर गणना नहीं कर सकते, वे केवल शिक्षक के संकेतों का उत्तर देते हैं। पक्षी कुछ सीमा तक आकलन कर सकते हैं। यह देखने के लिए कि वे क्या करते हैं, कृपया इसी पृष्ठ के चित्र ९.१६ पर ऊपर ही लिखे निर्देशन को पढ़िए। दाहिनी ओर वाले प्रतिरूप में अधिक बिंदु हैं या बाईं ओर वाले में ? जिन पक्षियों का उपयोग इस प्रयोग में किया गया; वे ठीक वही कर सकते हैं जो आप या मैं इस प्रकार की गणना में करेंगे, यदि कुल संख्या छह या सात से अधिक न हो। सचमुच यह रोचक है कि पक्षी और मनुष्य दोनों ही केवल छह या सात वस्तुओं का आकलन कर सकते हैं। इससे अधिक संख्या होने पर मनुष्यों का केवल अनुमान करना पड़ता है या गणना करनी पड़ती है और पक्षी शुद्ध उत्तर तक पहुँचने में असमर्थ रहते हैं। पक्षी अन्य समस्याओं को जिनमें संख्या निहित होती है, को सफलतापूर्वक कर सकते हैं।

कुछ पक्षी मनुष्य के ही समान शुद्ध आकलन कर सकते हैं।
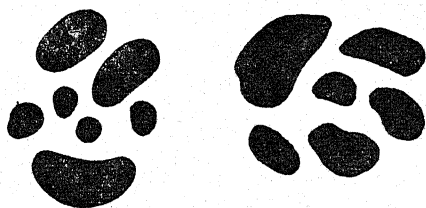
**चित्र ९.१६ क्षण भर इन दोनों प्रतिरूपों को देखिए, तदंतर पाद-टिप्पणी को देखिए। (क)**

---

(क) चित्र ९·१६ के बाएँ प्रतिरूप में कितने चिकोते हैं ? दाएँ प्रतिरूप में कितने हैं ? जब अपने उत्तर में आप निश्चित हो जाएँ, तब पुनर्निरीक्षण के लिए चित्र को देखें कि आपका अनुमान ठीक है या नहीं। यह आकलन का उदाहरण है।

एक बात और, वे प्रतिदर्श के खंडों को मिला भी सकते हैं (कोहलर, १९४३)। चित्र ९.१७ में आप अनेक वृत्त देखेंगे। उनमें से प्रत्येक में कुछ बिंदु बने हैं, बक्सों पर बेतरतीब आकारों के लकड़ी के टुकड़ों के प्रतिरूप पड़े हैं। सुशिक्षित पक्षी पूरे समूह में से उपयुक्त बक्स चुनता है, जब किसी वृत्त को दिखाया जाता है और केवल बक्स का ढक्कन खोल दिया जाता है. जिसमें बिंदुओं की संख्या के मेल के खंड रखे थे। किंतु बिंदुओं की संख्या भी सात से अधिक नहीं होनी चाहिए।

एक प्रशिक्षित पक्षी प्रतिरूप की संख्या के अनुरूप चिकोतों की संख्या के उद्दीपन का चयन कर सकता है।
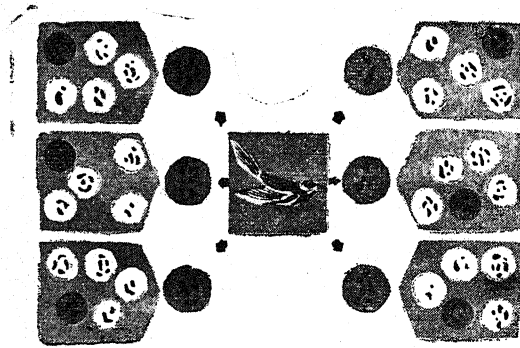
**चित्र—९·१७ प्रतिरूप-तुल्यता समस्या का पक्षियों पर प्रयोग। भिन्न समस्याएँ प्रस्तुत हैं। तिरूपों को हरे रंग में दिखलाया गया है. और उद्दीपनों में वही शुद्ध रूप है। पक्षी को प्रतिरूप दिखाया जाता है और साथ ही यादृच्छिक आकार के चिकोतों का समूह उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। कोहलर के अनुसार, १९४३)।**

एक पक्षी यह भी सीख सकता है कि खाद्य पदार्थों की निश्चित संख्या को वह शेष छोड़ देगा और उस संख्या पर पहुँच जाने पर वह आगे नहीं खाएगा। उसे यह सिखाने का प्रशिक्षण देने के लिए प्रयोगकर्त्ता को बराबर दानों की ढेरी से उसे हटाने का स्वर-संकेत करना पड़ेगा, जब वह बाकी सब दाने खा चुके और केवल चार रह जाएँ। पर्याप्त प्रशिक्षण के उपरांत पक्षी चार दाने रहने पर खाना बंद कर देता है। इसी प्रकार, कार्ड बोर्ड पर दिखाए गए दानों को भी वह छोड़ देगा। यदि वहाँ तीन या चार या पाँच बिंदु हैं, पक्षी उतनी ही संख्या अनाज के दानों को छोड़ देगा। इसमें अन्य कार्यों की अपेक्षा अधिक प्रशिक्षण अपेक्षित है, किंतु पक्षी इसे

सीख सकता है। गिलहरियों पर भी ऐसी ही विधियों का प्रयोग किया गया और उनकी गणना की योग्यता की सीमा भी पक्षियों के ही समान सात पायी गई (हैसमैन, १९५२ )।

ये कुछ विधियाँ हैं, जिनमें चिंतन से संबंधित प्रक्रमों का अध्ययन और निर्देशन जंतुओं में किया गया है। यह प्रामाणिक है कि ऐसे प्रक्रमों को सीखने और प्रयोग में लाने की योग्यता जैविक क्रम-विकास में बढ़ती रहती है। यह भी प्रामाणिक है कि जंतु और मनुष्य में इस योग्यता की दृष्टि से बहुत अंतर है।

## सारांश

१. प्रतीकों और चिह्नों का उपयोग संवाद देने में किया जाता है। साहचर्य द्वारा उसके अर्थों को अधिगत किया जाता है। शब्द और भाषा प्रतीकों की सबसे अधिक विकसित प्रणाली है।

२. शब्द या प्रतीक का अर्थ व्यक्ति की आंतरिक प्रक्रिया है, जो पदार्थ या वस्तु को, जिसके लिए वह प्रतीक है, प्रस्तुत करती है। ऐसा अर्थ मध्यस्थ-प्रक्रिया या जोड़ने वाले सूत्र का कार्य प्रतीक और अनुक्रिया के मध्य अथवा इसमें और अन्य अर्थों में करता है।

३. चिंतन प्रतीकात्मक प्रक्रमों का क्रम है, जो पूर्व अधिगम और अनुभव को प्रस्तुत करता है। ये प्रक्रियाएँ बिंबों के खंडों में और अव्यक्त मांसपेशीय अनुक्रियाओं में तथा तंत्रिका-तंत्र में होने वाले केंद्रीय प्रक्रमों में भी होती हैं।

४. यदि सब नहीं, तो भी अधिकांश मनुष्य बिबों को अनुभव करते हैं और बिंब चिंतन में प्रायः सहायक होते हैं। कुछ मनुष्यों की कल्पना इतनी सजीव (संमूर्त) होती है कि वे वस्तुओं को प्रायः पूर्ण रूप से प्रत्यास्मरण कर सकते हैं। बिंबों की सहायता के बिना भी पर्याप्त चिंतन होता है।

५. चिंतन में अव्यक्त मांसपेशीय गतियाँ भी सन्निहित रहती हैं, जिन्हें उपयुक्त यंत्रों द्वारा रिकार्ड किया जा सकता है। ये गतियाँ चिंतन में संयोगवशात् भी हो सकती हैं, परंतु वे संकेत-उत्पादक अनुक्रियाओं का कार्य भी कर सकती हैं, जो आगामी घटना को चिंतन-प्रक्रिया के लिए तैयार करती हैं।

६. संप्रत्यय एक प्रक्रम है, जो वस्तुओं या घटनाओं के सामान्य गुण को प्रस्तुत करता है। मनुष्य में, भाषा का इतना विशद् प्रयोग संप्रत्ययों के नामों

के लिए होता है कि शब्द का संप्रत्यय वस्तुतः शब्द की परिभाषा का पर्यायवाची बन जाता है।

७. बच्चे प्रारंभ में संप्रत्ययों को अधिगम द्वारा सीखते हैं और उसी के साथ वस्तुओं के अंतरों के विभेद को और सामान्य गुणों को तथा सामान्य गुणों के लिए शब्द-रूपों के प्रयोग को भी सीखते हैं। एक बार कुछ संप्रत्यय इस प्रकार अर्जित कर लेने पर संप्रत्ययों को (अ) जिन संदर्भों में शब्दों का प्रयोग हुआ है, उनसे अर्थ ग्रहण करके (ब) अन्य शब्दों में परिभाषा द्वारा, और (स) पदार्थों और घटनाओं के वर्गीकरण द्वारा, भी अधिगत किया जा सकता है।

८. अनेक कारक उस सरलता को प्रभावित करते हैं, जिसके द्वारा संप्रत्ययों को अधिगत किया जाता है, जैसे— (अ) अन्य संप्रत्ययों से अंतरण (ब) किस सीमा तक संप्रत्यय अमूर्त या मूर्त है, और (स) सामान्य तत्त्वों की विशिष्टता।

९. संप्रत्यय के अर्थ का परिमापन कई भिन्न प्रकारों से किया जा सकता है (अ) मुक्त अनुक्रिया द्वारा, जो शब्द की परिभाषा देने के सदृश है (ब) शब्दों और पदार्थों के विभेदों तथा वर्गीकरण द्वारा, (स) शब्द साहचर्य द्वारा और (द) शब्दार्थ विभेदी से, जिसे विविध मानों पर संप्रत्यय की स्थिति की परीक्षा करके उपलब्ध किया जाता है।

१०. चिंतन बहुधा निर्देशित रहता है। यह समस्याओं का समाधान करता है अथवा समाधान करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की समस्या समाधानार्थ प्रेरण अपेक्षित है और विशेषतः एक लक्ष्य भी, जिसकी ओर चिंतन उन्मुख रहता है। चिंतन पूर्व निर्मित आदतों, तत्परताओं और अचेतन कारकों द्वारा भी निर्देशित होता है।

११. समस्याओं के समाधानों को इन तरीकों से भी उपलब्ध किया जा सकता है—(अ) प्रयत्न और भूल द्वारा (ब) रटंत स्मृति द्वारा (अतीत में वैसी ही समस्याओं को सुलझा कर), अथवा (स) अंतर्दृष्टि द्वारा। अंतर्दृष्टि अपेक्षाकृत आकस्मिक समाधान है, जो पूर्व अधिगम को नवीन ढंग से संबद्ध करती है।

१२. साहसपूर्ण अथवा रचनात्मक, चिंतन के पाँच क्रम बारंबार समस्या के प्रत्यक्षज्ञान और उसके समाधान की प्राप्ति के मध्य स्वीकार किए गए हैं—(अ) उपक्रमण, (ब) उद्भावन (स) उद्भासन (द) मूल्यांकन और (ध) पुनरावर्तन।

१३. तर्क में चिंतन निहित रहता है और उसमें पूर्व अधिगम के तत्त्व भी संबद्ध रहते हैं। यह जंतुओं और मनुष्यों में प्रदर्शित किया गया है। मनुष्यों में अधिकांश तर्क शब्दों से किया जाता है।

१४. शब्द संदिग्धार्थक अथवा अस्पष्टार्थक हो सकते हैं। बहुधा तर्क के परिणामों की परीक्षा संभव नहीं होती और विविध समूह एवं समाज, जिसे वे तर्क समझते हैं, उनमें अंतर होता है और वह बहुधा भ्रमात्मक होता है।

१५. ऐसे भ्रमात्मक तर्क से बचने के लिए तर्कशास्त्र के नियम विकसित हुए हैं। दैनिक जीवन के तर्क में उनका शायद ही कभी पालन होता है; क्योंकि (अ) तर्क-संगत और भ्रमात्मक तर्क में विभेद बहुत कठिन होता है, (ब) हमारे पूर्व अनुभव प्रायः तर्क-असंगत होते हैं और (स) प्रभाव तथा दुराग्रह-जैसे कारकों द्वारा चिंतन को सरलता से विकृत किया जा सकता है।

१६. बोलचाल की भाषा लगभग ४० बुनियादी इकाइयों ( यूनिटों ) से, जो ध्वनियाँ (Phonemes) कहलाती हैं, निर्मित हैं। इनमें से कुछ यूनिट अन्य यूनिटों की अपेक्षा बार-बार तथा अधिक प्रयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त यूनिटों के कुछ विशेष क्रम अन्यों की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त होते हैं। यूनिटों के अपेक्षित क्रम भाषा के प्रत्यक्ष ज्ञान में सहायक होते हैं।

१७. व्यक्ति जिस प्रकार भाषा का व्यवहार करते हैं, उसे परिमाणबद्ध किया जा सकता है। शब्दावली का परिमाण एक परिमापन है, किंतु व्यक्ति जिस शब्दावली को पहचानता है, वह प्राय: उस शब्दावली से बहुत विशद् होती है, जिसका वह व्यवहार करता है। दूसरा परिमापन है—शब्दगत अनेकता। यह कुल प्रयोग किए गए शब्दों की संख्या और भिन्न प्रकार के प्रयुक्त शब्दों की संख्या के अनुपात की ओर निर्देश करता है। एक अन्य परिमापन है, अबाध प्रवाह।

१८. शब्दों के दो प्रकार के अर्थ होते हैं—१. विस्तारपरक और २. साभिप्राय। यदि शब्दों का एक समय में प्रयोग होता है, तो किसी भी प्रकार का अर्थ बहुत स्पष्ट नहीं होता। वस्तुतः अर्थ संदर्भ द्वारा स्पष्ट होते हैं, अर्थात् इस तथ्य के अनुसार कुछ शब्द अन्य शब्दों को अपेक्षा अधिक प्रयोग में आते हैं एवं शब्दों का प्रयोग अपेक्षित क्रमों में ही होगा।

१९. सामान्यतः जंतुओं में संवाद की योग्यता कम अथवा बिलकुल नहीं के बराबर होती है। एक अद्भुत अपवाद मधुमक्खियों की योग्यता का है कि वे एक दूसरे को आहारप्राप्ति के स्थान का संवाद देती हैं। वे सूर्य को संकेत मान कर दिशा की ओर उन्मुख होकर नृत्य के माध्यम से यह संवाद देती हैं।

२०. प्रतीकात्मक प्रक्रियाओं का प्रयोग समस्याओं के समाधानार्थ करने की योग्यता अनेक जंतुओं में देखी गई है। यह प्रयोग करने में जिन विधियों का उप-

योग किया गया है, वे हैं—(अ) विलंबित प्रत्यावर्तन और दिक् प्रत्यावर्तन, तथा (ब) तीन पैर-वाली समस्या, जिसे बहुत लंबे क्रम पाने के लिए जटिल बनाया जा सकता है।

२१. गणना का एक प्रकार है, आकलन। यह एक दृष्टि में वस्तुओं की सही संख्या को देखना है। कुछ पक्षी और मनुष्य छह या सात वस्तुओं तक आकलन कर सकते हैं।

## पठनार्थ सुझाव :

Bartlett, F. Thinking : An Experimental and Social Study. London: G. Allen, 1958.

चिंतन पर किए गए कुछ सांप्रतिक प्रयोगों का विवरण।

Burner, J. S., Goodnow, J., and Austin G. A.—A Study of Thinking. New York : Wiley, 1956.

अवधारणा-विकास के प्रयोगों का प्रभावपूर्ण विवरण और संकलन।

Humphrey, G. Thinking : An Introduction to Its Experimental Psychology. New York : Wiley, 1951.

अमूर्त चिंतन के प्रसिद्ध प्रयोगों को महत्त्व देने वाला ग्रंथ।

Johnson, D. M. The Psychology of Thought and Judgment. New York, Harper, 1955.

चिंतन और समस्या-समाधान पर ग्रंथ।

Miller, G. A. Language and Communication. New York : McGraw-Hill, 1951.

भाषा पर मनोवैज्ञानिक पुस्तक।

Ogden, C. K., and Richards, I. A. The Meaning of Meaning (rev. ed.) New York : Harcourt, Brace, 1947.

भाषा में अभिव्यक्त अर्थ के प्रसिद्ध विश्लेषण का पुनर्विवेचन।

Vinacke, W. E. The Psychology of Thinking : New York : McGraw—Hill, 1952.

चिंतन और समस्या-समाधान विधि पर प्रयोगात्मक सामग्री का संकलन।

Waters, R. H., Rethlingshafer, D. A., and Caldwell, W. E. (eds.) Principles of Comparative Psychology, New York : McGraw-Hill, 1960.

जंतुओं की व्यवहारी योग्यताओं के विवरण और तुलना पर पुस्तक।

Wertheimer, M. Productive Thinking (rev. ed.) New York : Harper, 1959.

इस ग्रंथ में चिंतन का सैद्धांतिक विश्लेषण है तथा समस्याओं को कैसे सुल-झाया जाए, पर अनेक विचार और प्रयोग हैं।

Woodworth, R. S., and Schlosberg, H. Experimental Psychology (rev. ed.) New York : Holt, Rinehart and Winston, 1954.

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान पर विशद् ग्रंथ। इसमें चिंतन पर किए गए प्रयोगों पर भी संक्षेप में अच्छी सामग्री दी गई है।

# भाग : ४

प्रत्यक्षण और अवधान

दृष्टि

श्रवण और अवर इंद्रिय

अध्याय १०

# प्रत्यक्षण और अवधान

प्रत्यक्षण उद्दीपनों और उनके अर्थों का विभेदन करने वाला प्रक्रम है। यह एक ओर संवेदी प्रक्रमों में और दूसरी ओर व्यवहार में मध्यस्थता करता है। मध्यवर्त्ती प्रक्रम होने के कारण यह सीधे प्रेक्षणीय नहीं होता। केवल विविध परिस्थितियों में उद्दीपनों के प्रति होने वाली अनुक्रियाओं के प्रेक्षण द्वारा इसका अनुसंधान और बोध हो सकता है।

जिन्हें मनोविज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त नहीं हुआ है, वे प्रायः यह अनुभव नहीं करते कि प्रत्यक्षण के संबंध में बहुत कुछ जानना बाकी है। वे जानते हैं कि ज्ञानेंद्रियाँ प्रत्यक्षण के लिए आवश्यक हैं, किंतु उनकी धारणा है कि ज्ञानेंद्रियाँ केवल मस्तिष्क को वाह्य जगत की प्रतिलिपियाँ प्रस्तुत करती हैं। अतः, उनके लिए प्रत्यक्षण केवल वाह्य जगत की घटनाओं को अंकित करने का फोटोग्राफिक प्रक्रम मात्र है। उन्हें यह जगत इतना अभिदृश्यक और यथार्थ प्रतीत होता है कि उन्हें संदेह भी नहीं होता कि 'यथार्थ' जगत में और जो जगत वे देखते हैं, उसमें कुछ अंतर भी है।

वस्तुतः इन दोनों में बहुत अंतर है। वाह्य जगत में जितना घटित होता है, उसका बहुत-सा अंश ज्ञानेंद्रियों पर बिलकुल भी अंकित नहीं होता। जो अंकित होता है, वह भी वाह्य जगत की किसी भी तरह सच्ची प्रतिलिपि नहीं होती। यह ज्ञानेंद्रियों द्वारा एवं मस्तिष्क की संचरण रेखा द्वारा पूर्णतः परिवर्तित हो जाता है। इसके उपरांत, मस्तिष्क में, संदेश इतने विस्तार से क्रियान्वित और पुनः संकेतिक होते हैं कि मूल उद्दीपन से अनेक रूपों में उनके परिणाम भिन्न होते हैं। उद्दीपन की कुछ विशेषताएँ छूट जाती हैं और उद्दीपन में कुछ निषेध जुड़ जाते हैं।

इस तथ्य का आगे चल कर विस्तृत समर्थन किया गया है, किंतु दृष्टि-भ्रम के उदाहरण द्वारा यह अत्यधिक नाटकीय ढंग से स्पष्ट किया गया है। अनेक प्रकार के भ्रम होते हैं, दृष्टिगत एवं अन्य किंतु तीन अपेक्षाकृत सरल उदाहरण चित्र १०.१ में दिखाए गए हैं। ऊपर वाले भाग में, मूलर-लायर भ्रम (Muller-Lyer Illusion) है, जिसमें एक रेखा दूसरी रेखा से लंबी प्रतीत होती है। किंतु, यदि हम एक मापनी

लेकर दोनों रेखाओं को नापें, तो हम देखेंगे कि दोनों रेखाएँ बिलकुल बराबर हैं। भ्रम शर-चिह्नों की दिशा द्वारा उत्पन्न किया गया। दूसरे चित्र में लंबी रेखाएँ समानांतर प्रतीत नहीं होतीं, किंतु वास्तव में वे हैं, उनके मध्य के अंतर को नाप कर इसे प्रमाणित किया जा सकता है। तीसरा चित्र उर्ध्व-क्षैतिज भ्रम का उदाहरण है। उर्ध्व-रेखा क्षैतिज रेखा की अपेक्षा लंबी प्रतीत होती है। वास्तव में उनकी लंबाई समान है।

प्रत्यक्षीकरण प्राय: भ्रमात्मक होता है।
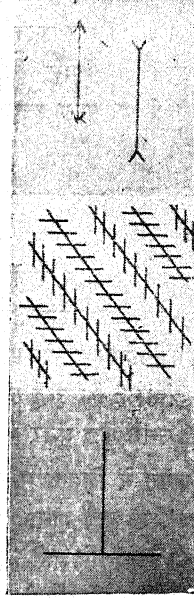
**चित्र १०.१ भ्रमों के कुछ प्रकार। ऊपर वाला उदाहरण मूलर-लायर भ्रम कहलाता है, अधिकांश लोग बाईं ओर की रेखा को दाईं रेखा से लघुतर देखते हैं। मध्य चित्र में, तिरछी रेखाएँ वस्तुत: समांतर हैं, किंतु वे समांतर दिखायी नहीं देतीं। नीचे वाले चित्र में, खड़ी रेखा सम स्तर-रेखा की अपेक्षा लंबी दिखायी देती है।**

इन उदाहरणों में हमारा चित्रों का प्रत्यक्षण अशुद्ध है। परंतु, भ्रमों को गलत प्रमाणित किया जा सकता है केवल स्थिति को दूसरे ढंग से देखकर, अर्थात्, मापनी लेकर रेखाओं की लंबाई या अंतर को नाप कर। अत:, भ्रम की परिभाषा एक ऐसे प्रत्यक्षण के रूप में दी गई है, जो अन्य अधिक विश्वसनीय प्रत्यक्षणों से भिन्न होता है। हम मापनी पर विश्वास करते हैं; क्योंकि भिन्न स्थितियों में वे सदैव समान परिणाम हमें देती हैं। अत: हम अपनी मापनी के प्रत्यक्षण पर, अपने चाक्षुष प्रत्यक्ष ज्ञानों के त्रुटिमय होने का विश्वास करते हैं। अन्य उदाहरणों में यह जान सकना सरल नहीं रहता कि प्रत्यक्षण हमें कब धोखा दे देता है। उदाहरणार्थ, हमें यह

प्रमाणित करने में अनेक शताब्दियाँ लग गईं कि पृथ्वी चौकोर है, का हमारा प्रत्यक्षण गलत है। वास्तव में, विज्ञान को जगत-संबंधी जो ज्ञान था, उससे भिन्न बेहतर और विश्वसनीय प्रत्यक्षण का व्यवस्थित अनुसंधान करनेवाला कहना चाहिए। मूल तथ्य यह है कि प्रत्यक्षण उद्दीपन-स्थिति की यथातथ्य प्रतिलिपि नहीं होता।

## संवेदनात्मक विभेदन ( Sensory Discrimination ) :

कुछ देखने के लिए प्राणी में अपने पर्यावरण में उद्दीपनों में विभेद करने की योग्यता होनी आवश्यक है। अन्य शब्दों में, व्यक्ति तब तक कुछ देख नहीं सकता, जब तक वह उसका बोध न कर सके। उसमें केवल उस वस्तु की उपस्थिति के बोध की ही योग्यता नहीं उसकी कुछ विशेषताओं—उसके आकार, परिमाण, प्रदीप्ति, वर्ण इत्यादि के विभेदन की योग्यता भी होनी चाहिए। अतः, संवेदनात्मक विभेदन प्रत्यक्षण में प्रथम और सीमाकारी कदम है, अतः प्रत्यक्षण का अध्ययन ज्ञानेंद्रियों एवं संवेदनात्मक विभेदन से प्रारंभ होता है।

## ज्ञानेंद्रियाँ (Sense Organs) :

प्रायः कहा गया है कि मनुष्य की पाँच ज्ञानेंद्रियाँ होती हैं—रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श। ये पाँच केवल स्पष्ट हैं—इन्हें हम अपने दैनिक जीवन के अनुभव से जानते हैं। इनके अतिरिक्त अनेक और हैं, जिनकी खोज शरीर के अंगों की परीक्षा तथा उनकी क्रियाओं पर किए गए प्रयोगों द्वारा हुई है। सामान्य पंच ज्ञानेंद्रियों में पाँचवीं स्पर्श है, किंतु वास्तव में त्वचा के चार बोध हैं—पीड़ा, ताप शीत और स्पर्श। (इन भिन्न बोधों के विभेदन का प्रमाण अध्याय—१२ में दिया गया है।) मांसपेशियों, कंडरा और जोड़ों में भी ज्ञानेंद्रियाँ हैं, जो शरीर के भीतर दबाव का बोध देती हैं। ये ज्ञानेंद्रियाँ गतिबोधक ग्राहक ( Kinesthetic receptor ) कहलाती हैं और वे गति-संवेदना का कार्य करती हैं। अंत में, और भी ज्ञानेंद्रियाँ सिर में हैं, जो श्रवण यंत्र से संबंधित हैं। ये प्रघाण संग्राहक (Vestibular receptor) कहलाती हैं। ये गुरुत्वशक्ति और सिर के घूमने की अनुक्रिया करती हैं। ये हमारे संतुलन-बोध की कुंजी हैं। इस प्रकार ज्ञानेंद्रियों की वास्तविक संख्या पाँच नहीं, वरन् लगभग दस है। इनमें से कुछ को समूह-बद्ध किया जा सकता है और कुछ का अन्य बोधों में उप-विभाजन हो सकता है।

प्रत्येक बोध के सुग्राही तत्त्व 'संग्राहक' कहलाते हैं। **ग्राहक** एक कोशिका है, जिसको अपेक्षाकृत किसी विशेष प्रकार की शक्ति के लघु परिवर्तनों के प्रति अनुक्रिया में विशेषज्ञता प्राप्त है। कुछ ग्राहक, उदाहरण के लिए (रूप) दृष्टि और गंध के, वास्तव में तंत्रिका-कोशाणु हैं, जो मस्तिष्क से बाहर आ गए हैं और जिनका अपने

विशेष व्यापारों के कारण विशेषीकरण हो गया है। पीड़ा जैसे अन्य ग्राहक, केवल तंत्रिका-तंतु के छोर हैं। स्वाद (रस), श्रवण, गति-संवेदना और प्रघाण बोधों में ग्राहक त्वचा-कोशाणुओं का ही अंग होता है, किंतु अपने विशिष्ट कार्य के लिए वह विशेषज्ञता प्राप्त कर लेता है।

इनमें से प्रत्येक बोध मुख्यत: किसी विशेष प्रकार की शारीरिक शक्ति के द्वारा अनुक्रियाशील होता है। गंध और स्वाद रासायनिक बोध हैं; क्योंकि वे रासायनिक शक्ति के द्वारा अनुक्रियाशील होते हैं। ताप और शीत ऊष्मीय-बोध हैं; क्योंकि उनकी अनुक्रिया ऊष्मीय शक्ति के प्रति होती है। पंच-बोध—स्पर्श, पीड़ा, गति, संवेदना, प्रघाण-बोध और श्रवण—यांत्रिक बोध हैं; क्योंकि उन्हें क्रियाशील बनाने के लिए किसी प्रकार की यांत्रिक शक्ति आवश्यक होती है। पीड़ा-बोध भी तीव्र रासायनिक और ऊष्मीय शक्ति द्वारा उद्दीप्त किया जा सकता है। दृष्टि-बोध विद्युत् चुंबकीय शक्ति के द्वारा अनुक्रियाशील होता है।

उद्दीपनों का विन्यास, जिनके प्रति प्रत्येक प्रकार के ग्राहक अनुक्रियाशील होते हैं, अपेक्षाकृत सीमित होता है। उदाहरणार्थ, विद्युत् चुंबकीय शक्ति के अंतर्गत विशद् वर्ण-क्रम अंतरिक्ष-किरणों से, एक्स किरणों को पार करते हुए पराबैंगनी किरणें, अवरक्त किरणें, रेडार, रेडियो-तरंगें तथा गृहों में प्रयोग की जानेवाली बिजली की तारों की प्रत्यावर्ती धारा आती हैं ( द्रष्टव्य : चित्र ११.१ )। किंतु, हमारे दृष्टिग्राहक केवल पराबैंगनी तरंगों और अवरक्त तरंगों के मध्य वर्ण-क्रम में निहित शक्ति के प्रति अनुक्रियाशील होते हैं। हमारे श्रवण-ग्राहक, इसी प्रकार, प्रति सेकेंड लगभग २० और २०,००० चक्रों के मध्य कंपनों के प्रति अनुक्रियाशील होते हैं, यद्यपि पराश्रव्य ध्वनि-चक्रों की संख्या प्रति सेकेंड लाखों तक पहुँचती हैं। हमारे रासायनिक बोध भी केवल कुछ ही रासायनिक अणुओं के प्रति क्रियाशील होते हैं और अनेक रासायनिक अणुओं के प्रति हम गंधांध या स्वादांध होते हैं। आगे के अध्यायों में विशिष्ट इंद्रियों के संबंध में लिखते हुए हम स्पष्ट करेंगे कि किन शक्तियों के प्रति कौन से ग्राहक अनुक्रियाशील होते हैं। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वे चतुर्दिक जगत में होने वाले शक्ति-परिवर्तनों में से केवल उसके बहुत लघु अंश के प्रति अनुक्रियाशील होते हैं, अधिकांश को वे पाने में असमर्थ रहते हैं। फलस्वरूप वाह्य जगत में होने वाले अधिकांश शक्ति-परिवर्तनों को विशिष्ट यंत्रों की सहायता के बिना मनुष्य देख ही नहीं सकते।

### संवेदनशील-सीमा ( Threshold Sensitivity )

जिन शक्तियों के प्रति ज्ञानेंद्रियाँ अनुक्रियाशील होती हैं, उनके प्रति भी कोई ज्ञानेंद्रिय चिरकाल के लिए संवेदनशील नहीं होती। प्रत्येक ज्ञानेंद्रिय को उद्दीप्त

होने के लिए कुछ न्यूनतम शक्ति की आवश्यकता होती है। ऐसी सूक्ष्म ध्वनियाँ हैं कि सुनी नहीं जा सकतीं, ऐसा मंद प्रकाश है जिसे देखा नहीं जा सकता और ऐसी सूक्ष्म गतियाँ हैं, जिनका पता नहीं लगाया जा सकता। संक्षेप में, प्रत्येक बोध की अपनी **परमावश्यक सीमा** होती है। यह **न्यूनतम उद्दीपन शक्ति** है, जिसके प्रति वह अनुक्रियाशील हो सकता है। इसे परमावश्यक सीमा की संज्ञा से अभिहित करना आवश्यक है; क्योंकि सीमाओं के अन्य प्रकार भी हैं, जिनका वर्णन नीचे दिया जाएगा।

परमावश्यक सीमा की एक विधि वह प्रबलता है, जिससे प्रेक्षक उद्दीपन की प्रस्तुति का ५० प्रतिशत बार बोध करता है।
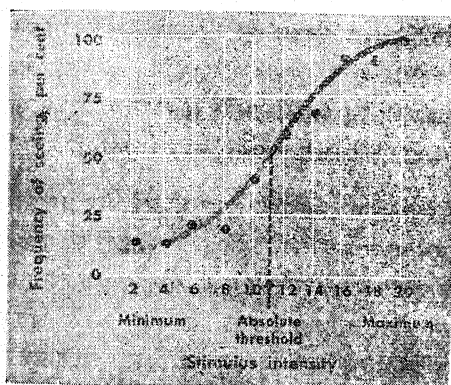
**चित्र १०.२ दृष्टि का पुनरावृत्ति चक्र )।**

परमावश्यक सीमा का परिमापन कई विधियों द्वारा हो सकता है, जिन्हें अन्य विविध प्रयोजनों में भी प्रयोग किया जा चुका है। एक विधि है, जिसे **नियत उद्दीपन** कहते हैं, जिसमें एक उद्दीपन निश्चित प्रबलता से प्रेक्षक के समक्ष प्रस्तुत किया जाता और उससे पूछा जाता है कि वह बताए कि वह उसका पता लगा सकता है अथवा नहीं ? दूसरे प्रयोग में कुछ भिन्न प्रबलता के साथ उसे प्रस्तुत किया जाता है, फिर प्रेक्षक केवल 'हाँ' अथवा 'नहीं' शब्दों में उत्तर देता है। यह कार्यविधि प्रायः कई सौ बार प्रयोग की जाती है, जब तक कि उद्दीपनों की अनेक प्रबलताओं के संबंध में प्रेक्षक की सौ या अधिक अनुक्रियाएँ एकत्रित नहीं हो जातीं। एक विशिष्ट परिणाम चित्र १०.२ में प्रदर्शित किया गया है। यह 'दृष्टि का पुनरावृत्ति'-चक्र है, जो प्रेक्षक की विविध प्रबलताओं के प्रत्येक प्रकाश की कौंध को देखने की संख्या प्रदर्शित करता है। सीमा को प्रबलता के उस रूप में लिया गया है कि जिस पर प्रेक्षक प्रकाश को ५० प्रतिशत बार देखने में सक्षम रहा।

दूसरी विधि, समायोजन-प्रणाली प्रेक्षक को उसका कुछ बोध प्राप्त कर लेने तक उद्दीपन की प्रबलता को समायोजित करने की सुविधा देती है। उसे एक डायल दिया जाता है, जिससे वह प्रबलता को ऊपर या नीचे घुमा सकता है। जब तक वह उद्दीपन को देख या सुन नहीं सकता, उसे नीचे घुमाता है, फिर वह देख सकने तक उसे कुछ ऊपर घुमाता है, फिर वह उसे आगे और पीछे तब तक घुमाता है जब तक उसे संतोष नहीं हो जाता कि उसके पास ऐसा विन्यास है, जिसमें वह उद्दीपन के वर्त्तमान होने का पता लगा सकता है। अतः, यह प्रबलता सीमा है। भूलों को कम करने के लिए उसे प्रायः परिमापन को अनेक बार दोहराने के लिए कहा जाता है और उसके विविध परिणामों के औसत को परमावश्यक-सीमा के रूप में स्वीकार किया जाता है।

परमावश्यक सीमा प्रत्येक व्यक्ति में निहित बोध और प्रेक्षण की अवस्थाओं की संख्या के अनुसार भिन्न होती है। उदाहरणार्थ, दृष्टि में परमावश्यक सीमा, प्रयोग किए गए प्रकाश के रंग, उद्दीपन के परिमाण, कौंध की अवधि और नेत्र के अभ्यनुकूलन इत्यादि पर निर्भर करती है। प्रत्येक स्थिति में परमावश्यक सीमा सदा रहेगी। जब तक इसका समकरण या अतिक्रमण न होगा, कुछ दिखलायी नहीं देगा।

यदि उद्दीपन सदैव परमावश्यक सीमा के उपर भी रहें, पर प्रबलता और विशेषता में पूर्णतः सम हों, तो हम बहुत कम देख सकेंगे। उद्दीपनों में कुछ-न-कुछ अंतर अवश्य होना चाहिए—एक उद्दीपन को दूसरे से कुछ अधिक प्रबल होना चाहिए अथवा रंग या स्वराघात में भिन्न होना चाहिए, जिससे कि हम उनके अंतर को समझ सकें। संक्षेप में उद्दीपनों में भिन्नताओं को होना ही चाहिए, ताकि हम **विभेद** कर सकें। उदाहरण के लिए, हम एक चित्र को नहीं देख सकते, यदि उस चित्र की रेखाओं और भिन्न-भिन्न भागों के रंगों और चमक में अंतर न हो।

जिस प्रकार एक परमावश्यक सीमा होती है, उसी प्रकार विभिन्नताओं के विभेद की भी सीमाएँ होती हैं। हम अंतर को समझ सकें, इसलिए एक उद्दीपन—अथवा उद्दीपन का एक अंश, यह इस पर निर्भर करता है कि व्यक्ति किस स्वेच्छा से उद्दीपन को स्पष्ट करता है—को प्रचुर उज्ज्वल, उच्चस्वर में, रंग में भिन्न, इत्यादि होना चाहिए। **न्यूनतम अंतर जिसका विभेद हो सकता है, विभेदी सीमा** कहलाता है (अथवा **कभी-कभी विषम सीमा या वह अंतर जिसका ज्ञान मात्र ही कहा जाता है**)। उदाहरणार्थ, स्वराघात के अंतरों को कर्णेंद्रिय जान सकती है, किंतु यदि ये अंतर बहुत ही न्यून हों, तो एक बिंदु विभेदी सीमा है, जिसके परे स्वराघात में अंतर करना संभव नहीं रहता। इसी प्रकार नेत्र की भी रंग तथा चमक में अंतर करने वाली विभेदी

सीमा है। अतः, सामान्यतः हमारी देखने की योग्यता विभेदी सीमा द्वारा सीमित होती है।

विभेदी सीमा का परिमापन भी वैसी ही प्रणालियों से हो सकता है, जिनका प्रयोग परमावश्यक सीमा के परिमापणार्थ हुआ है। स्वराघात-संबंधी विभेदी सीमा प्राप्त करने के लिए, उदाहरणार्थ, दो स्वरों को हम क्रम से प्रस्तुत करें और प्रेक्षक से पूछें कि वह दोनों में अंतर समझ सकता है अथवा नहीं ? अथवा, हम प्रेक्षक को एक स्वर के स्वराघात को एक मानक-स्वर को, निर्धारित करने दें, जब कि वह क्रम से उसे सुनता है और जब तक वह विन्यास प्राप्त न कर ले, जिसे वह ज्ञान-मात्र की भिन्नता समझता है।

## प्रत्यक्ष-गुण ( Perceptual Attributes ) :

विभेदी सीमा के परिमापन के लिए कुछ और भी अपेक्षित है, जिसका उल्लेख हमने अब तक नहीं किया है। यह है, उद्दीपन के विविध गुणों को देखने की योग्यता। उदाहरणार्थ, एक स्वर के गुण स्वराघात और उद्घोष हैं। प्रकाश के एक खंड के गुण रंग, प्रदीप्ति और परिमाण हैं। विभेद करने में प्रेक्षक इनमें से एक गुण पर ध्यान देता है और अन्य छोड़ देता है। उदाहरण के लिए स्वर के विभेदन के लिए वह स्वराघात पर ध्यान देता है और उद्घोष की उपेक्षा करता है।

एक गुण, कहना चाहिए कि उद्दीपन का दृष्ट रूप है। यह उद्दीपन में नहीं, प्रेक्षक के 'भीतर' होता है। उद्दीपन की कुछ वस्तुगत, विशेषताएँ भी होती हैं और वे गुणों से संबंधित होती हैं। उदाहरणार्थ, स्वर का स्वराघात कान तक पहुँचने की ध्वनि कंपन की वस्तुगत आवृत्ति से संबंधित है। एक केवल दूसरे की प्रतिकृति मात्र नहीं है; क्योंकि दृष्ट स्वराघात वास्तव में स्वर की प्रबलता और आवृत्ति पर निर्भर करता है। यह तथ्य निर्णय की ओर अग्रसर करने वाले अनेक तथ्यों में से एक है, कि प्रत्यक्ष ज्ञान केवल उद्दीपन की प्रतिलिपि करने वाली प्रक्रिया नहीं है, वरन् उसका विश्लेषण करने वाली है।

## संवेदनात्मक माप (Sensory Scales) :

यह तथ्य कि गुणों को पृथक्-पृथक् भी देखा और निश्चय किया जा सकता है, विशिष्ट गुण के दृष्ट परिमाण के लिए माप का विकसित होना संभव बनाता है। प्रेक्षक से कोई पूछ सकता है, उदाहरणार्थ, कि वह निश्चय करके बताए कि एक उद्दीपन कितना उद्घोषपूर्ण अथवा कितना प्रदीप्त है और वह आश्चर्यजनक रूप से उपयुक्त उत्तर पाता है।

उद्दीपन के परिमाण को नापने की अनेक विधियाँ हैं। एक है प्रभाजनकरण (Fractionation)। इस विधि में प्रेक्षक को दो उद्दीपन दिए जाते हैं, एक मानक

उद्दीपन और दूसरा उसके नियंत्रण में अनिर्धाय उद्दीपन, और उससे कहा गया कि वह अनिर्धाय उद्दीपन, को आधा, एक तिहाई, या दूसरे का दुगुना करे। ऐसी ही दूसरी विधि, सम-विभाजन, द्वारा प्रेक्षक को तीन उद्दीपन दिए जाते हैं, जिनमें से दो निर्धारित होते हैं और तीसरे को उसे इस प्रकार निर्धारित करने के लिए कहा जाता है कि दोनों के मध्य वह उसे समायोजित करे। एक अन्य विधि, पूर्ण निर्णय, में प्रेक्षक से अंकों की एक संख्या, जैसे १ से २० में से चुनने के लिए कहा जाता है और उसे दिए गए विविध उद्दीपनों के परिमाण या विन्यास के अनुसार अंक निर्धारित कर अंक १ को न्यूनतम परिमाण के लिए और २० अंक को अधिकतम परिमाण के लिए प्रयोग करने के लिए कहा जाता है।

कभी ये भिन्न विधियाँ एक ही परिणाम पर पहुँचती हैं और कभी नहीं। इसके अंतर के कारणों से पर्याप्त परिचित रहते हैं, किंतु यहाँ इन पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है ( स्टीवेंस, १९५७ )। सामान्यतः संवेदनात्मक माप के निर्माणार्थ इनमें से किसी भी विधि का प्रयोग हो सकता है। यह एक ऐसा परिमापन है, जो यह स्पष्ट करता है कि दृष्ट परिमाण वस्तुगत प्रबलता से किस प्रकार संबंधित है। ऐसा एक परिमापन चित्र १०.३ में दिखलाया गया है। इस चित्र में दो तथ्यों पर ध्यान देना चाहिए :—

प्रथम तथ्य यह है कि दृष्ट परिमाण के परिमापन का नामकरण 'दृष्ट इकाइयाँ' के रूप में होता है। यह मनोवैज्ञानिकों का शब्द है, जिसका प्रयोग दृष्टि-प्रबलता की विषयीगत इकाई के लिए किया जाता है। मिलीलैंबर्ट की प्रामाणिक प्रबलता के प्रकाश की दृष्ट प्रदीप्ति—प्रकाश की प्रबलता की इकाई — स्वेच्छया १०० स्वसंवेद्य दृष्टिगत इकाइयों के रूप में स्वीकार की गई है। इस प्रकार के परिमापनों का प्रयोग अनेक संवेदनात्मक परिमाणों के लिए किया गया है और प्रत्येक का नामकरण विषयीगत इकाई के रूप में किया गया है। केवल मनोरंजनार्थ आप अनुमान करने का प्रयत्न करें कि इनमें से प्रत्येक इकाई का अर्थ क्या है : Veg. Mel. Sone. Gust. एवं Dol। जब आप अनुमान लगा चुके, तब पुस्तक के अंत में दी गई पारिभाषिक शब्दावली में इनके अर्थ देख सकते हैं।

दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य चित्र १०·३ के संबंध में है कि संवेदनात्मक परिमाण और वस्तुगत परिमाण एक नहीं होते। एक उद्दीपन जो दूसरे की अपेक्षा दसगुणा प्रबल है, वह दसगुणा बड़ा नहीं देखा जाता, किंतु कुछ दुगुणा-सा देखा जाता है। प्रबलता के अनुसार उपयुक्त संबंध में बदलता रहता है। किसी भी स्थिति में, प्रबलता में परिवर्तन-संबंधी हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान प्रबलता में वस्तुगत परिवर्तन के साथ

तदनुरूप ढंग से नहीं होता। यह तथ्य भी इस निर्णय की ओर हमें अग्रसर करता है कि प्रत्यक्षज्ञान एक प्रक्रिया है, जो किसी उद्दीपन या संवेदनात्मक स्थिति की फोटोग्राफिक प्रतिकृति नहीं है।

विषयीगत दीप्ति और वस्तुगत दीप्ति एक ही नहीं होती।
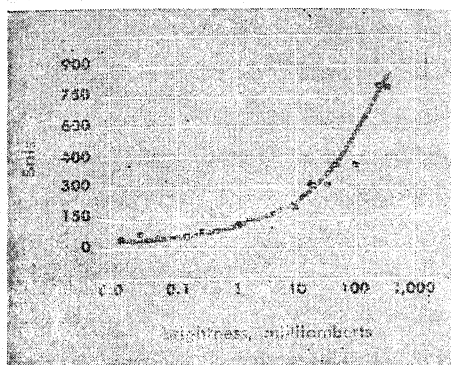
**चित्र १०.३. दीप्ति का विषयीगत-मापक। दृष्ट इकाइयाँ विषयीगत इकाइयाँ हैं तथा मिलीलैंबर्ट वस्तुगत इकाइयाँ हैं। एक ही विषयीगत-माप उपलब्ध किया जाता है चाहे प्रयोग-पात्र से उद्दीपन की दीप्ति का एक तिहाई, आधा, दुगुना तिगुना मापने के लिए कहा जाए (हनेज के अनुसार, १९४९)।**

## अभिज्ञता के बिना विभेदन (Discrimination without Awareness):

संवेदनात्मक विभेदन के आधारभूत विषयों का विवेचन हम कर चुके हैं, किंतु कुछ और ऐसे विषय हैं, जिनका विवेचन यहाँ आवश्यक है; क्योंकि उनकी ओर जनसाधारण का पर्याप्त ध्यान आकर्षित हुआ है। व्यावसायिक गुप्त दूरवीक्षण यंत्र के प्रयोग की संभावनाओं के संबंध में पिछले कुछ वर्षों के बहुप्रचार ने महत्त्व बढ़ाया है। यहाँ मुख्य बात यह है कि दूरवीक्षण यंत्र के पर्दे पर इतने धूमिल रूप से तथ्यों को प्रस्तुत किया जा सकता है कि वे सतर्क एवं चैतन्य होकर देखने पर भी प्रेक्षक को दिखायी नहीं देंगे, किंतु वास्तव में वे 'दिखायी' देंगे और उनका वांछित संघटन होगा। परिणाम रूप में इसका अभिप्राय है कि एक उद्दीपन परमावश्यक सीमा से न्यूनतर रूप में भी उपस्थित किया जा सकता है और फिर भी देखा जा सकता है और वह 'गुप्त उद्दीपक' का कार्य कर सकता है। मनोवैज्ञानिक इस प्रकार के बोध को 'अवसीमित प्रत्यक्षण' (Subliminal) कहते हैं।

अकस्मात् देखने पर यह तथ्य अंतर्विरोधी प्रतीत होता है। 'अवसीमा' शब्द का अर्थ है प्रबलता की वह सीमा, जिसके उपरांत कोई बोध नहीं हो सकता, फिर भी

अवसीमित-प्रत्यक्षण में वह संप्रत्यय अंतर्निहित है कि देखने के लिए अपेक्षित प्रबलता के बाद भी कुछ देखा जा सकता है। क्या यह विचारणीय अथवा संभव है ?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें 'विभेदन' और 'अभिज्ञता' के अंतर को देखना होगा। सिद्धांत रूप में एक व्यक्ति बिना अभिज्ञ हुए भी कि वह क्या कर रहा है. उद्दीपनों में विभेद कर सकता है।—वह नहीं जानता कि वह किस प्रकार सही अनुमान करने में सफल हुआ है। ठीक इसी तरह यह तत्त्व अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में प्रदर्शित किया गया है, जैसे इस उदाहरण में (मिलर, १९३९)।

> "प्रयोग-पात्रों को इस प्रकार बिठाया गया था कि सामने साधारण शीशे पर जो कुछ भी हो, उसे वे देख सकें। वास्तव में शीशा पर्दे के स्थान पर था जिस पर प्रयोगकर्त्ता, बिना प्रयोग-पात्रों के ज्ञान के, प्रतिबिंबों का प्रक्षेपण कर सके। प्रयोग-पात्रों के दो समूह इस प्रयोग में लिए गए। एक समूह 'सरल' प्रयोग-पात्रों का था, उनसे कहा गया कि वे पारेंद्रियज्ञान के प्रयोग में भाग ले रहे हैं, और जिस समय उन्हें दूसरे कक्ष से पारेंद्रियज्ञान-मूलक संदेश मिले, तो वे शीशे का प्रयोग अपने ध्यान को केंद्रित करने के लिए स्फटिक गोले की भाँति करें। दूसरा समूह 'सुसंस्कृत' व्यक्तियों का था, वे जानते थे कि प्रतिबिंबों को वास्तव में शीशे पर प्रक्षेपित किया जाएगा। शीशे पर प्रक्षेपण के लिए जिन प्रतिबिंबों को लिया गया वे पाँच भिन्न ज्यामितीय ( रेखागणितीय ) चित्र थे, जैसे एक नक्षत्र या लहरदार रेखा जिनका उपयोग उस समय अतिरिक्त संवेदनात्मक प्रत्यक्ष ज्ञान के प्रयोगों के लिए बहुत प्रचलित था (देखिए नीचे)। प्रत्येक बार प्रयोगकर्त्ता से एक संकेत प्राप्त किया जाता और प्रयोग-पात्रों से अनुमान लगाने की आशा की जाती कि इन चित्रों में से पारेंद्रियज्ञान द्वारा (सरल प्रयोग-पात्रों से) अथवा पर्दे पर प्रक्षेपण द्वारा (सुसंस्कृत प्रयोग-पात्रों से) कौन-सा चित्र दिखाया जा रहा है। प्रयोग के प्रारंभ में पर्दे पर प्रकाश बहुत कम था, अनुमान करने की एक बारी के उपरांत प्रकाश कुछ बढ़ा दिया गया। यह प्रक्रम जारी रहा जब तक कि सब प्रयोग-पात्र पर्दे पर प्रतिबिंबों को स्पष्ट देख सकें और लगभग पूर्ण अंक प्राप्त करने लगें।
>
> प्रकाश के प्रत्येक निम्न स्तर पर प्रयोग-पात्रों के प्राप्तांक कम थे (२० प्रतिशत सफलता थी)। जैसे-जैसे प्रकाश बढ़ता गया, उनके सही उत्तरों की संख्या में भी वृद्धि होती गई। प्रयोग-पात्रों के दोनों समूहों की सफलता में वृद्धि हो गई और वे इसे बताने में असमर्थ थे कि उन्होंने वास्तव में स्क्रीन पर कुछ देखा है। सरल प्रयोग-पात्रों की सफलता में वृद्धि हुई, बिना उनके

यह जाने हुए कि शीशा 'स्फटिक' से भिन्न था। वास्तव में जब अंत में, प्रकाश में इतनी अधिक वृद्धि हो गई कि जब उन्हें वे पर्दे पर प्रतिबिंबों के पड़ने के प्रति चैतन्य हो गए, तब उन्हें आश्चर्य हुआ। एक प्रयोग-पात्र का उत्तर बहुत विचित्र था, 'जब मुझे पूरी व्यवस्था समझायी गई, मैं निश्चित रूप से चकित रह गया'।

प्रेक्षक भी जो प्रयोग को पर्दे के एक ओर से देख रहे थे, चकित हुए कि सीधे-सादे प्रयोग-पात्रों ने प्रतिबिंबों को उच्चतर प्रकाश में भी नहीं देखा, जब कि वे सुसंस्कृत प्रयोग-पात्रों को स्पष्ट दिखायी दे रहे थे। एक बार जब सीधे-सादे प्रयोग-पात्रों ने उस व्यवस्था को समझ लिया, तब उन्हें फिर से विविध प्रकाशों में प्रतिबिंबों को दिखाया गया। इस बार वे उन प्रतिबिंबों को 'देख' सके, जिन्हें पहले उन्होंने नहीं देखा था।"

इधर कुछ वर्षों में यह सामान्य प्रयोग अनेक बार किया गया है। अनेक प्रयोगों में प्रयोग-पात्र पूर्णतः प्रतिबिंबों की स्क्रीन पर प्रस्तुति के प्रति चैतन्य था। ऐसा एक प्रयोग (लेजारस और मैक-विलयरी, १९५१) यहाँ दिया जा रहा है—

"प्रयोग-पात्र की अंगुली में विद्युद्ग्र लगा दिया गया था, जिससे कि उसे हलके विद्युत्-आघात दिए जा सकें, तथा अन्य विद्युद्ग्रों को हाथ से लगा दिया था जिससे कि गैल्वेनिक त्वचीय अनुक्रिया ( GSR ) को रिकार्ड किया जा सके। यह अनुक्रिया, इसे स्मरण करना होगा, सहज ही विद्युत्-आघात से संबद्ध उद्दीपन के लिए अनुकूलित की जा सकती है। तदंतर प्रयोग-पात्रों को एक प्रशिक्षण प्रक्रिया दी गई, जिसमें शब्दों की पंक्ति साधारण रूप में एक स्क्रीन पर प्रस्तुत की गई थी। इनमें से कुछ शब्दों (क्रांतिक) के तुरंत बाद विद्युत्-आघात दिया गया था और कुछ शब्दों (तटस्थ) के बाद नहीं। कुछ उपयुक्त पुनरावृत्तियों के उपरांत प्रयोग-पात्रों ने अनुकूलित GSR को क्रांतिक शब्दों के प्रति अर्जित कर लिया, किंतु तटस्थ शब्दों के प्रति नहीं।

तदंतर प्रयोग की परीक्षण-अवस्था प्रारंभ हुई। इसमें शब्दों को क्षण भर के लिए स्क्रीन पर प्रकाशित किया गया और अपेक्षाकृत बहुत मंद प्रकाश में प्रयोग-पात्र से प्रकाशित शब्दों का अनुमान करने के लिए कहा गया। प्रयोगकर्त्ताओं ने अनुभव किया कि जब प्रयोग-पात्र शुद्ध अनुक्रिया का अनुमान नहीं कर सके, तो उन्होंने प्रायः शब्द के लिए GSR दिया। अन्य शब्दों में

जैसा कि GSR अनुक्रिया से निर्देशित होता था, कि बिना शुद्ध अनुक्रिया की सूचना देने में समर्थ हुए या उसके प्रति चैतन्य हुए वे विभेद कर सके थे।"

ये और अन्य प्रयोग निर्देशित करते हैं कि चेतना के बिना भी विभेदन संभव होता है। यही गुप्त उद्दीपक की धारण का मूल है। वे अवस्थाएँ, जिनमें यह संभव है, इसके व्यावहारिक प्रयोग के संदेह के संबंध में कुछ प्रश्न उपस्थित करती है। प्रथमतः तथ्य को प्रतिपादित करने के लिए प्रकाश का बहुत शुद्ध नियंत्रण अपेक्षित है। अपेक्षाकृत प्रकाश की बहुत कम वृद्धि व्यक्ति को उद्दीपन के प्रति चेतन कर देती है। द्वितीय यह तथ्य तब अति सुस्पष्ट होता है, जब प्रेक्षक उद्दीपन की उपस्थिति की आशा नहीं करता। तृतीय, प्रयोग-पात्र उद्दीपन पर बहुत अधिक ध्यान रखेगा और किसी भी प्रस्तुत होने वाले संकेत का विभेदन करने के लिए तीव्रता से अभिप्रेरित होगा। चतुर्थ, प्रयोग-पात्र को यह जान लेना चाहिए कि उद्दीपन उसके परिचित तथ्यों में से ही एक है। अंत में, स्क्रीन पर केवल उद्दीपन को ही होना चाहिए, अन्य वस्तुओं या चित्रों को उस पर अध्यारोपित नहीं किया जा सकता।

यह हमारे लिए कहना संभव नहीं कि ये विविध अवस्थाएँ गुप्त उद्दीपक के प्रभावशाली होने के लिए भली प्रकार से प्राप्त की जा सकती हैं; क्योंकि इसमें अनेक तकनीकी समस्याएँ निहित हैं। परंतु, चेतना के बिना विभेदन द्वारा उन्हें व्यावहारिक उपयोग में लाया जा सकता है अथवा नहीं, की मूल समस्या वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है और मानवीय प्रत्यक्षण को समझने के लिए इसमें अनेक अभिप्रेतार्थ हैं।

### परा-संवेदनात्मक प्रत्यक्षण (Extra-Sensory Perception) :

पिछले कुछ वर्षों में परा-संवेदनात्मक प्रत्यक्षज्ञान (ESP) का व्यापक प्रचार हुआ है। यह शब्द, पारेंद्रियज्ञान, अतींद्रिय-दृष्टि अथवा देखने का कोई भी अन्य साधन जो इंद्रियों पर आधारित न हो; की ओर निर्देश करता है। पारेंद्रियज्ञान एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति को विशिष्ट साधनों द्वारा सूचना भेजने की ओर निर्देश करता हैं, अतींद्रि-दृष्टि वाह्‌य घटनाओं के बिना संवेदनात्मक ज्ञान के, प्रत्यक्षज्ञान की संज्ञा हैं। अंतर्बोधक ज्ञान शब्द को, वाह्‌य घटनाओं जैसे पासे को वांछित संख्या तक संख्या पर 'ध्यान केंद्रित' करके फेंकने, को मानसिक प्रभावों के विन्यास में लेने के लिए सांप्रतिक जोड़ा गया है। मनोवैज्ञानिकों से यह बहुधा पूछा जाता है कि क्या वास्तव में इन सूचनाओं में कुछ सत्य है कि ई० एस० पी० का प्रदर्शन हुआ है?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए व्यक्ति को प्रमाण और संभावना में अंतर करना होगा। वैज्ञानिकों को सब प्रकार की संभावनाओं के लिए, चाहे वे विचारणीय प्रतीत हों या न हों, प्रमाणित हों या न हों, तैयार रहना चाहिए। अब तक हम ऐसे

साधन नहीं जानते, जिनके द्वारा व्यक्ति सूचनाओं को, बिना ज्ञानेंद्रियों के अनुभव किए, जान सकता हो। फिर भी यह असंभव नहीं है कि किसी दिन कोई नवीन प्रकार की ऊर्जा अथवा संवाद पहुँचाने के साधनों की खोज हो जाए। यही कारण है कि अपेक्षाकृत बहुत कम मनोवैज्ञानिक इसे पूर्णतः स्वीकार करते हैं कि ई० एस० पी० असंभव है। इस प्रश्न पर दो बार उनका मतांकन किया गया, पिछली बार १९५२ में हुआ। इस मतदान में १० प्रतिशत मनोवैज्ञानिकों ने ई० एस० पी० को असंभव स्वीकार किया। अत्यधिक बहुमत, ७३ प्रतिशत ने इसे 'दूरस्थ संभावना' या केवल 'अज्ञात' कहा। ३ प्रतिशत से भी कम मनोवैज्ञानिकों ने इसे 'स्थापित सत्य' स्वीकार किया।

यह हमें प्रमाण के निकट पहुँचाता है। यदि इतने अधिक ज्ञानवान् वैज्ञानिक उदार-मनस्क हैं, यद्यपि अनिश्चित हैं, और इतने कम निश्चित-मत हैं, इसका अभिप्राय है कि वर्त्तमान प्रमाण संदिग्ध है। और यह उपयुक्त है। इस विषय पर अब बड़ी संख्या में प्रयोग हो चुके हैं। (एक पत्र, 'जर्नल ऑफ पैरा-साइकोलाजी' एकांत रूप से ई० एस० पी० पर शोध-कार्य-रत है।) अनेक उदाहरणों में ई० एस० पी० को स्पष्ट करने वाले परिणामों को प्रदर्शित किया है, जिन्हें अन्य रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है। कुछ उदाहरणों पर विचार किया जाए ( केनेडी, १९३९ )।

> ''मूल ई० एस० पी० उदाहरणों में, २५ कार्डों की गड्डी का प्रयोग किया गया था। हर गड्डी में पाँच विविध प्रकार के कार्डों का एक सेट था : चौकोर, गोल, घनाकार, षट्कोण और लहरदार (ये वे ही प्रतीक हैं, जिनका उपयोग ऊपर उल्लिखित 'बिना चेतना के विभेदन' के प्रयोग में किया गया था।) गड्डी के कार्डों में अदल-बदल करके वे 'ग्राही' के सम्मुख नीचे रख दिए गए। कार्ड के पिछले हिस्से का अध्ययन करके ग्राही ने अनुमान किया कि वह क्या था, इसके उपरांत उसके अनुमान को रिकार्ड कर लिया गया और कार्ड को अलग कर दिया गया। एक के बाद एक गड्डी के अंतिम कार्ड तक यही किया गया। प्रयोग की गई विशेष गड्डियों में, अनेक ग्राही, सामान्य अंकों,—जो २५ में से ५ थे, से बहुत ऊँचे अंक प्राप्त करने में सफल रहे। ग्राही अनेक बार पूर्णांक प्राप्त कर लेते थे। परंतु, कुछ मनोवैज्ञानिकों ने, अनियंत्रित कारक के संदेह पर दृश्यमान संकेतों के कारण परीक्षण करने का प्रकाश को कम करके अथवा बिलकुल मिटा कर, प्रयोग को दोहराने का निर्णय किया। उन्होंने अनुभव किया कि प्रकाश के कम करने के साथ-साथ प्राप्तांक भी कम होने लगे। वास्तव में प्रेक्षक यह कर रहे थे कि कार्ड की पिछली ओर से संकेत पा लेते थे और स्पष्ट करने के लिए मुद्रण-प्रक्रिया

में उन्हें पर्याप्त उभारा हुआ था। वास्तव में सभी प्रयोगों में बिना चेतना के विभेदन निहित था।

क्रमागत प्रयोगों में पद्धति में परिवर्तन कर दिया गया, जिससे कि ग्राही कार्डों को देख न सके। कार्डों को एक पर्दे के पीछे एक 'देने वाले' और रेकार्ड करने वाले के संरक्षण में रखा गया। देने वाला कार्ड को उलटता और उसके प्रतीक को पारेंद्रिय रूप में ग्राही को पारेषित करता। इस प्रविधि में, यह प्रदर्शित किया गया कि देने वाला कार्ड पर अपने ध्यान को केंद्रित रखते हुए अचेतन रूप में पर्याप्त संकेत धीरे से बोल सकता है ग्राही की जानकारी के बिना, यह भी प्राप्तांकों की वृद्धि सामान्य से अधिक कर देता है। अन्य प्रयोगों में जिसे पर्याप्त अंतर पर और केवल एक टेलीग्राफ-तार से देने वाले रेकार्डर और ग्राही को जोड़ कर किया गया यह प्रदर्शित किया गया कि वह रिकार्डर, जो ई० एस० पी० में 'विश्वास' करता है, पर्याप्त अचेतन भूलें रिकार्डिंग में करता है, जो उसे विशिष्ट संवेदनात्मक प्रत्यक्षण प्रतीत होता है।"

अतः, कुछ प्रयोग, जो ई० एस० पी० को प्रदर्शित करने के लिए किए गए थे, वास्तव में उसको प्रमाणित नहीं करते, वरन् प्रयोग-पात्र बिना जाने चाक्षुष या श्रवणात्मक विभेदन द्वारा अथवा अभिलेखन में अनजाने में भूलों द्वारा अंक प्राप्त करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ प्रयोगों में सांख्यिकीय भूलें की गई हैं। अति साधारण यह भूल होती है कि औसत के ऊपर के अंकों का चयन किया जाता है और औसत या औसत के नीचे के अंकों की उपेक्षा की जाती है। इस प्रकार परिणाम महत्त्वपूर्ण रूप से साधारण से बहुत अधिक प्रकट होते हैं, जब कि वास्तविक स्थिति यह नहीं होती। अन्य उदाहरणों में, दूसरे प्रयोगकर्ता जब उसे दोहराते हैं, तो एक प्रयोग के परिणाम कुछ अस्पष्ट कारणों से स्थिर नहीं रहते।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हम ई० एस० पी० का समर्थन करने वाले प्रत्येक प्रयोग को निरर्थक समझते हैं। यह मानवीय प्रयत्नों के लिए संभव नहीं है कि ई० एस० पी० प्रयोग की भूल के प्रत्येक कल्पनीय सूत्र की खोज की सा सके। दूसरी ओर; क्योंकि इतने अधिक प्रयोग दोषपूर्ण प्रकट हुए हैं कि इस प्रकार के प्रयोगों से परिचित अधिकांश में तो वैज्ञानिकों के विश्वास नहीं हैं कि ई० एस० पी० प्रमाणित हो चुका है।

## अवधान की भूमिका (The Role of Attention) :

प्रत्यक्षण की एक सुस्पष्ट विशेषता है—इसकी चयन-वृत्ति। हमारी ज्ञानेंद्रियों को प्रत्येक क्षण अगणित उद्दीपनों का सामना करना पड़ता है। परंतु, एक समय में

इनमें से केवल कुछ ही स्पष्ट देखे जाते हैं। कुछ अन्य उद्दीपन या घटनाएँ कम स्पष्ट देखी जाती हैं और शेष एक अस्पष्ट भूमिका मात्र प्रस्तुत करती हैं, जिनके विषय में हम आंशिक रूप से अथवा पूर्णतः अनजान रहते हैं। दूसरे शब्दों में इस तथ्य को इस प्रकार कहा जा सकता है कि अपने चतुर्दिक घटने वाली विविध घटनाओं में से हम केवल कुछ पर ध्यान देते हैं। अतः, प्रत्यक्षण में अवधान मूल तत्त्व है।

### केंद्र-बिंदु और अकेंद्र (Focus and Margin) :

यह कारक हमारे अनुभव-क्षेत्र को दो भागों में विभाजित करता है, जिसे हम 'केंद्र और अकेंद्र क्षेत्र' कहेंगे। अनुभव के केंद्र में वे घटनाएँ हैं, जिन्हें हम स्पष्ट देखते हैं; क्योंकि हम उन पर ध्यान देते हैं, वे हमारे अनुभवों की पृष्ठभूमि से अलग उभर आती हैं। अकेंद्र में अन्य धूमिल विषय दिखायी देते हैं। हमें उनकी उपस्थिति का ज्ञान रहता है, किंतु केवल अस्पष्ट रूप में। इस अकेंद्र में (हाशिये से बाहर) अस्पष्टता में आवृत्त ऐसे विषय रहते हैं, जो हमारे अवधान क्षेत्र के बाहर होते हैं और उस क्षण चेतन रूप में हमें उनकी जानकारी नहीं होती।

अब हम अवधान की प्रकृति पर विचार करेंगे। फुटबाल के खेल को देखते समय हमारा ध्यान या अवधान बॉल पकड़ने वाले पर केंद्रित रहता है। हमें धूमिल ज्ञान बॉल पकड़ने वाले खेल के मैदान की सीमा में विचरते खिलाड़ियों का और बॉल रोकने वालों का भी होता है, किंतु संपूर्ण वातावरण में सबसे स्पष्ट रूप बॉल पकड़ने वाले और उनकी गतिविधि का होता है। साथ ही, उस समय और भी अनेक उद्दीपन हमारे सम्मुख छा जाते हैं. शीत के कारण हमारे पैरों में दर्द हो सकता है और भोजन में जो मसालेदार चटनी खायी थी, उसके कारण पेट में रह-रह कर पीड़ा उठती है एवं हमारे पीछे वाला दर्शक बराबर किसी लड़की से वार्तालाप कर रहा है। जिस समय खेल चल रहा है, हमें इनमें से किसी बात का ध्यान नहीं होता। केवल जब खेल समाप्त हो जाता है अथवा समय समाप्त होने की सूचना मिलने पर हम देखते हैं कि हमारे पैर कितने ठंडे हैं अथवा अपने पीछे बैठे युग्म की वार्ता सुनायी देती है।

### अवधान का स्थित्यांतरण (Shifting of Attention) :

यह तथ्य, कि कभी-कभी हम अपने पीछे हो रहे वार्तालाप को सुनते हैं और अपने पैरों की शीतलता को अनुभव करते हैं, हमारे अवधान के क्षेत्र के अन्य तत्त्वों को स्पष्ट करता है। अवधान में निरंतर अंतरण होता रहता है। जो वस्तु एक क्षण में केंद्र में है, दूसरे ही क्षण अकेंद्रीय हो जाती है और उसके उपरांत चेतनज्ञान की सीमा से बिलकुल बाहर भी हो सकती है। जब हमारे अवधान पर एक क्रिया का आधिपत्य होता है, तब भी उसका आधिपत्य प्रायः पूर्णतः अविरत रूप

में नहीं होता। अन्य प्रत्यक्षण भी हमारे ध्यान के केंद्र में क्षण भर के लिए तीव्रता से आते हैं और पुनः आधिपत्यकारी विषय उनके स्थान पर आ जाता है।

वह कौन-सा कारक है, जो यह निर्धारित करता है कि हम किस पर ध्यान देंगे? यद्यपि अवधान अंतरित होता है, किंतु इसका एक निश्चित क्रम रहता है। यह पूर्णतः अव्यवस्थित नहीं होता; क्योंकि यदि ऐसा होता, तो हम किसी भी सुदीर्घ-कालिक क्रिया को करने में असमर्थ रहते। वास्तव में, एक सफल विज्ञापक यह स्पष्ट कर सकता है कि हमारे अवधान की दिशा निर्धारित करने वाले कुछ निश्चित सिद्धांत हैं—अवधान आकर्षण के सिद्धांत। ये हमें बता सकते हैं कि कौन-सी वस्तु हमारा सबसे अधिक ध्यान या अवधान आकर्षित करेगी, कौन-सी कम और कौन-सी बिलकुल नहीं। ये सिद्धांत दो प्रकार के कारकों के सामान्य वर्ग हैं:—१. पर्यावरण में उपस्थित वाह्य कारक और २. आंतरिक कारक। जैसे—प्रेरणाएँ, तत्परता और प्रत्याशा।

## वाह्य कारक :

अवधान के वाह्य कारकों पर चार वर्गों के अंतर्गत विचार किया जा सकता है :—(१) प्रबलता और आकार, (२) विषमता (३) पुनरावृत्ति और (४) गतिशीलता। इनमें नवीनता के कारक को भी जोड़ा जा सकता है, किंतु अभिप्रेरण के प्रसंग में इस पर विचार किया जा चुका है।

## प्रबलता और आकार :

ध्वनि जितनी तीव्र होगी, व्यक्ति का उस ओर ध्यान आकर्षित होने की उतनी ही संभावना अधिक होगी। प्रकाश जितना तेज़ होगा, उतना ही अधिक वह अवधान को अपनी ओर प्रवृत्त करेगा। इसी प्रकार एक पूरे पृष्ठ के विज्ञापन की ध्यान को, आधे कालम के विज्ञापन की अपेक्षा, अधिक आकर्षित करने की संभावना है। प्रबलता अथवा आकार का कारक सबसे अधिक प्रभाव उस समय उत्पन्न करता है, जब व्यक्ति कुछ नवीन या अपरिचित वस्तु देखता है, तब पर्यावरण में सबसे बड़ी, ऊँची और चमकदार वस्तु उसका ध्यान सर्वप्रथम आकर्षित करेगी। सामान्यतः; यदि दो उद्दीपन अवधान को एक साथ आकर्षित करने का प्रयत्न करेंगी, तो अधिक प्रबल उद्दीपन को पहले सफलता मिलेगी।

## विषमता :

मनुष्य होने के नाते हम अपने चतुर्दिक वातावरण के अनुकूल अथवा अभ्यस्त हो जाते हैं। जब हम कक्ष में प्रवेश करें, तो घड़ी की टिक्-टिक् की ओर हमारा ध्यान जा सकता है, परंतु थोड़ी ही देर बाद वह हमारे ध्यान में नहीं आती। कक्ष में प्रवेश करते ही वह हमें गर्म या ठंडा प्रतीत होता है, परंतु कुछ ही

क्षणों बाद उसके तापमान की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। दूसरी ओर, यदि घड़ी अचानक बंद हो जाए, तो हमारा ध्यान उसके अचानक रुकने की ओर जाता है। हम मोटरगाड़ी में जब जाते हैं, हम उसके इंजन की आवाज से आकृष्ट नहीं होते किंतु यदि सिलिंडर में आग लग जाए, तो इंजन हमारे अवधान का केंद्र बन जाएगा।

ये उदाहरण अवधान-निर्धारण में विषमता के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं। जिस उद्दीपन के हम अभ्यस्त हो जाते हैं, उसमें कुछ परिवर्तन होते ही हमारा अवधान उस ओर आकृष्ट होता है। यदि हम अपने कक्ष में पढ़ रहे हैं और कोई बगलवाले कक्ष में रेडियो चला दे, तो निश्चय ही हमारा ध्यान तीव्रता से उस ओर जाएगा। किंतु, थोड़ी देर बाद हमारी चेतना से वह दूर हो जाता है और हम पुनः पढ़ने में लीन हो जाते हैं। फिर रेडियो जब बंद कर दिया जाता है, तो वह हमारे 'अवधान' को क्षण भर के लिए आकृष्ट करता है। रेडियो का चलना और बंद होना दोनों ही हमारे अवधान को आकर्षित करते हैं; क्योंकि दोनों की पूर्वघटित स्थितियों में विषमता है।

उपर्युक्त अनुच्छेद में बड़े अक्षरों में लिखा गया 'अवधान' शब्द विषमता का दूसरा उदाहरण है। बड़े अक्षरों की ओर आपमें से बहुतों का ध्यान आकृष्ट हुआ, किंतु यदि सब अक्षर बड़े होते, तो यह शब्द अनदेखा ही रह जाता। इसने हमारे अवधान को अन्य छोटे अक्षरों की विषमता के कारण आकर्षित किया।

## पुनरावृत्ति :

ऐसे अवसर हैं, जब उद्दीपन की पुनरावृत्ति द्वारा अवधान को आकृष्ट किया जाता है। एक ही अनुच्छेद में यदि एक शब्द की वर्तनी में दो बार भूल हो, तो उसकी ओर ध्यान जाने की अधिक संभावना है। तोप की एक ध्वनि की अपेक्षा अनेक ध्वनियों की ओर, अथवा अपना नाम यदि दो बार पुकारा गया हो, तो ध्यान के आकर्षित होने की अधिक संभावना रहती है। जब जूनियर की माता उसको भोजन के लिए पुकारती है, तो वह उसका नाम एक नहीं, वरन् अनेक बार लेती है।

पुनरावृत्ति के दो लाभ हैं। वह उद्दीपन जिसकी पुनरावृत्ति की गई है, अन्य कार्यों में व्यस्त अवधान के समय भी अपनी ओर उसे आकृष्ट कर सकता है। इसके अतिरिक्त पुनरावृत्ति उद्दीपन-संबंधी हमारी संवेदनशीलता या सतर्कता में वृद्धि करती है।

## गतिशीलता :

मनुष्य तथा बहुत से जंतु अपने दृष्टिपथ में आने वाली वस्तुओं के प्रति पर्याप्त संवेदनशील होते हैं। हमारे नेत्र अनैच्छिक रूप से गतिशीलता की ओर

उसी प्रकार आकर्षित होते हैं, जिस प्रकार पतंगा दीपशिखा की ओर। रात्रि में गश्त करने वाले सैनिक इस तथ्य को शीघ्र ही सीख लेते हैं कि भबूका या प्रकाश देखते ही उन्हें अपने स्थान पर अचल हो जाना चाहिए। जमीन पर लेटना चाहिए या सुरक्षित स्थान में छुपना ऐसी गतियाँ हैं, जो खुले मैदान में अचल खड़े रहने की अपेक्षा, उन्हें पहचानने में शत्रु की सहायता अधिक कर सकती हैं।

विज्ञापन के क्षेत्र में अवधान-आकर्षण के निमित्त गतिशीलता का प्रचुर उपयोग किया जाता है। कुछ अत्यधिक प्रभावशाली विज्ञप्ति-संकेतों में गतिशीलता निहित रहती है, जैसे चल-प्रकाश या चलचित्र।

### आंतरिक कारक ( Internal Factors ) :

अवधान को आकृष्ट करने वाले प्रबलता, विषमता, पुनरावृत्ति और गति-शीलता के कारक वाह्य कारक हैं। इनके सदृश ही आंतरिक कारकों का महत्त्व भी है। जैसे—अभिप्रेरक, रुचियाँ और व्यक्ति की आंतरिक अन्य स्थितियाँ।

### अभिप्रेरक :

हमारी आवश्यकताएँ एवं रुचियाँ न केवल उस पर शासन करती हैं, जो हमारे अवधान को आकर्षित करे, वरन् उस पर भी, जो उसे बनाए रख सके। क्लास का सबसे अधिक निद्राग्रसित विद्यार्थी भी सचेत होकर अपनी कुर्सी पर बैठ जाएगा, यदि अध्यापक घोषित कर दे कि वह 'अमरीकन स्त्रियों के यौन-व्यवहारों' पर वार्ता प्रस्तुत कर रहा है। आज यौन-अभिप्रेरकों का आकर्षण विशेष रूप से हमारी संस्कृति को प्रभावित करता है; क्योंकि परंपरा से इस अभिप्रेरक को दबाया जाता रहा है। इसीलिए विज्ञापक, सुडौल युवतियों का नहाने के वेश में बिजली के प्लग-जैसी असंबंधित वस्तु को बेचने के लिए, प्रयोग करते हैं। पर, जिस समाज में खाद्य सामग्री का हमारे समाज की अपेक्षा अभाव है, वहाँ विज्ञापनों में यौन-अपील से अधिक खाद्य-पदार्थों का प्रयोग किया जाता है।

यौन और क्षुधा-जैसे बुनियादी प्रेरकों का ही केवल अवधान-आकर्षण में महत्त्व नहीं है, वरन् विविध मानवीय प्रेरकों और रुचियों में से कोई प्रभावशील हो सकता है। यदि एक भूगर्भशास्त्री और एक पक्षी-प्रेमी एक ही पथ पर चले जा रहे हों, तो भूगर्भशास्त्री भू-प्रदेश को, उसकी चट्टानों आदि को सूक्ष्मता से देखेगा, जबकि पक्षी-प्रेमी पक्षियों की संख्या और विविधता पर ध्यान देगा। यदि आप भूगर्भशास्त्री से पक्षियों के विषय में पूछें, उसके लिए यह कहना स्वाभाविक है कि उसने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। अतः, उनकी संख्या और रूपों को बताने का प्रश्न ही नहीं उठता। और पक्षी-प्रेमी की भी उस भूखंड की भू-वैज्ञानिक स्थिति की ओर ध्यान देने की कोई संभावना नहीं।

## तत्परता या प्रत्याशा (Set or Expentancy) :

हमारी रुचियों और प्रेरकों के अतिरिक्त तत्परता या प्रत्याशा का भी इसमें महत्त्वपूर्ण योग रहता है कि हम देखने के लिए कब किन वस्तुओं का चयन करेंगे। भूगर्भशास्त्री यदि यह जानता कि आप उससे पक्षियों के संबंध में प्रश्न करेंगे, तो वह पथ में दिखायी देने वाले पक्षियों के संबंध में बहुत कुछ अधिक कह सकने में समर्थ होता। एक डाक्टर रात्रि के समय टेलीफोन की घंटी सहज ही सुन लेता है और शिशु का क्रंदन उसे नहीं सुनायी पड़ता। उसकी पत्नी, दूसरी ओर, टेलीफोन की घंटी बजने पर भी सोती रहेगी, किंतु शिशु का सूक्ष्मतम स्वर भी संभवतः उसे पूर्ण सजग कर देगा।

व्यक्ति क्या देखता है, यह इस पर निर्भर करता है कि वह क्या देखने के लिए तत्पर है।
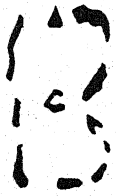
**चित्र १०·४ तत्परता का प्रत्यक्षीकरण पर प्रभाव। यह बिंदु समूह और रेखाएँ 'B' अथवा १३ के रूप में दिखायी देंगी, और यह निर्भर करता है व्यक्ति क्या देखने की आशा करता है।**

चित्र १०·४ को दो अंकों के रूप में देखकर प्रयोग-पात्र कहेंगे कि उन्हें संख्या १३. दृष्टिगत होती है। प्रयोग-पात्रों के दूसरे समूह को वर्णमाला के अक्षरों का ध्यान आया और वे कहेंगे कि उन्हें अक्षर 'B' दृष्टिगत होता है। एक स्थिति में प्रयोग-पात्रों की तत्परता या प्रत्याशा संख्याओं के लिए थी और दूसरी स्थिति में अक्षरों के लिए।

अवधान को तथा प्रत्यक्षण को भी निर्धारित करने वाले विविध कारकों में तत्परता संभवतः सबसे महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि हमारी तत्परताएँ और प्रत्याशाएँ विस्तृत रूप में हमारे प्रत्यक्ष अनुभवों का क्रम और पथ-निर्देशन करती हैं। अन्यथा उनके बिना, हमारी दृष्टि-प्रक्रिया को पर्यावरणीय उद्दीपनों की अव्यवस्थित परिवर्तन-शीलता पर अधिकतर आश्रित रहना पड़ेगा।

## वस्तुओं का प्रत्यक्षण (Perception of Objects) :

हमारे प्रत्यक्ष अनुभव का एक अति स्पष्ट तथ्य यह है कि यह वस्तुओं से भरा रहता है। वह उद्दीपन, जो हम निरंतर प्राप्त करते हैं, हमारी चेतना में आकार और प्रतिरूप धारण करके आता है। हम अपने चतुर्दिक जगत को साधारणतः रंग के

धब्बों, प्रदीप्ति के विविध रूपों और तीव्र या ऊँची ध्वनियों के रूप में नहीं देखते। हम वस्तुएँ देखते हैं। हम मेजों, फर्शों, दीवारों और भवनों को देखते हैं और हम मोटरगाड़ी के भोंपू को, पदचापों को और शब्दों को सुनते हैं।

इन वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण का कुछ भाग अधिगम पर आधारित है, जैसा कि इस अध्याय में आगे चल कर हम देखेंगे, किंतु इसका अधिकांश संभवतः हमारी ज्ञानेंद्रियों तथा तंत्रिका-तंत्र की अनधिगत संपत्ति है। ये संरचनाएँ हमारे प्रत्यक्षणों को सरल प्रतिमानों या वस्तुओं में व्यवस्थित या आकृति प्रदान करने की ओर प्रवृत्त होती हैं। उदाहरणार्थ, घड़ी की परिमापित खट-खट ध्वनि इस रूप में बहुधा सुनायी नहीं देती। वरन् हम अनैच्छिक रूप से ध्वनि के टिक्-टिक्-टिक्-टिक् का उच्चारण देते हैं और उसे टिक्-टाक्, टिक-टाक् इत्यादि के रूप में देखते हैं। यदि हम बहुत अधिक प्रयास करें, तो भी प्रत्यक्षीकरण में इस प्रकार की संगठनात्मक प्रवृत्तियों से मुक्त होना कठिन हैं। ज्ञानेंद्रियाँ और तंत्रिका-तंत्र की कार्य-प्रणाली के ढंग से ही किसी प्रकार उनका निर्माण हो जाता है। प्रत्यक्षीकरण में ये संगठनात्मक प्रवृत्तियाँ विविध रूप ग्रहण करती हैं। हम निम्नांकित वर्गों में इनका विवेचन करेंगे—

१. समूहन २. आकृति और भूमि प्रत्यक्षीकरण ३. आकृति-रेखा ४. पूर्ति और ५. आभासी गति।

हम विभिन्न प्रकार के उद्दीपनों का एक प्रतिमान में समूहन करके देखने की ओर प्रवृत्त होते हैं।
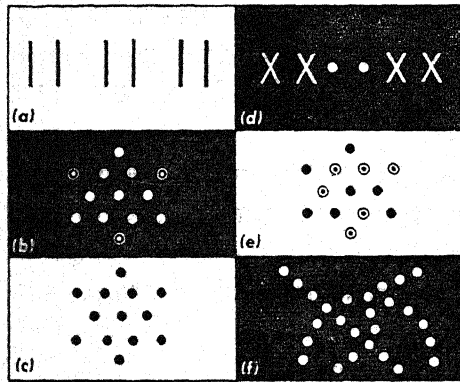
चित्र १०·५ प्रत्यक्षण में समूहन के उदाहरण।

## समूहन :

प्रत्यक्षीकरण में एक संगठनात्मक प्रवृत्ति **समूहन** कहलाती है। जब भी अनेक प्रकार के उद्दीपन होते हैं, हम उन्हें किसी प्रतिमान रूप में समूहबद्ध देखते हैं।

उदाहरण के लिए चित्र १०·५ में ऐसे समूहन या प्रतिमान-गठन के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। वे उदाहरण उन विविध प्रकारों को स्पष्ट करने के लिए चुने गए हैं, जिनमें समूहन होता है।

**निकटता** अथवा **सान्निध्य,** जैसा कि स्पष्ट किया गया है कि (अ) में छह शीर्ष-रेखाएँ देखने के स्थान पर, हम तीन समानांतर रेखाओं के युग्म देखते हैं। वे वस्तुएँ जो दिक् अथवा काल में निकट साथ-साथ हैं, एक साथ संबद्ध रूप में अथवा समूह-बद्ध संगठन के रूप में दिखायी देती हैं।

(ब) और (स) में हम सादृश्यता के महत्त्व को समूहन में देखते हैं। (ब) में अधिकतर व्यक्ति बिंदु-निर्मित एक त्रिभुज को उस पर शिरोबिंदु के साथ देखते हैं और दूसरा त्रिभुज गोलाकारों से बना हुआ देखते हैं, जिसका शिरोबिंदु नीचे की ओर है। हम इन त्रिभुजों को दखते हैं; क्योंकि एक सदृशरूप बिंदु और गोलाकार क्रम से साथ-साथ समूह में संबद्ध हुए हैं। अन्यथा हम देखेंगे षटकोण या बिंदुओं बाल नक्षत्र, जैसा कि उदाहरण (स) में दिखाया गया है, जहाँ कि वही उद्दीपन प्रयुक्त किए गए हैं। सादृश्यतामूलक समूहन का एक उदाहरण (द) में दिखाया गया है। यदि व्यक्तियों को यह चित्र दिखाया जाए और इसकी प्रतिकृति बनाने के लिए उनसे कहा जाए, तो उनमें से अधिकांश दो Xs को और दो गोलाकारों को निकट चित्रित करेंगे किंतु उसमें गोले चित्र की अपेक्षा Xs से दूर होंगे। इस प्रकार वे सादृश्यता-मूलक समूहन को प्रदर्शित करते हैं। सादृश्यता के अनुसार समूहन सदैव नहीं होता (इ) चित्र को बिंदुओं से और गोलों से बना हुआ चित्र देखने के स्थान पर उसे षट्-कोण के रूप में अधिक सरलता से देखा जाता है। इस उदाहरण में सादृश्यता की महत्ता **संहति सिद्धांत** या **संतुलित चित्र** के ही समान है। न गोले और न बिंदु ही संहतिपूर्ण संगठन निर्मित करते हैं। प्रत्येक स्थिति में कुछ गोलों या कुछ बिंदुओं को छोड़ना पड़ता है—यह ऐसा तथ्य है, जो अधिकांश व्यक्तियों को कठिन जान पड़ता है। सामान्यतः समूहन की प्रवृत्ति एक संतुलित और सर्वांगपूर्ण चित्र को निर्मित करने की प्रवृत्ति है।

समूहन का हमारा अंतिम सिद्धांत **अविच्छेदन क्रम** का है। यह रेखा की प्रवृत्ति द्वारा प्रतिपादित किया गया है, जो एक वक्र के रूप में प्रारंभ होकर एक सहज-सीधी रेखा का रूप ग्रहण करती है। विलोमतः एक सीधी रेखा एक सीधी रेखा के ही रूप में रहती हुई दिखायी देती है, अथवा, यदि यह मुड़ती है तो एक वक्र के रूप में नहीं, वरन् एक कोण के रूप में। चित्र (f) अविच्छेद-क्रम स्पष्ट करता है। हम उस चित्र में कई वक्रों और सीधी रेखाओं को देखते हैं। यद्यपि वक्र और सीधी रेखाएँ

परस्पर क्रास करते हैं, और दोनों में बिंदु सामान्य हैं, केवल प्रयत्न करने ही पर हम अकस्मात् सीधी रेखा को एक क्रास बिंदु पर वक्र में रूपांतरित होते देख सकते हैं।

ये सब उदाहरण दृष्टि से संबंधित हैं, पर समूहन के ये सिद्धांत ही अन्य ज्ञानें-द्रियों में भी देखे जा सकते हैं। संगीत में हम एक लय सुनते हैं, वह भी काल सान्निध्य और ध्वनि-सदृश्यता के समूहन पर आधारित है। स्पर्श-ज्ञानेंद्रिय में भी समूहन के उदाहरण हैं।

अपने एक मित्र की सहायता लें, उसे आँखें बंद करने के लिए कहें और उसके हाथ के पृष्ठ पर समान दूरी पर तीन चिह्न अंकित करें। तब पेंसिल से प्रथम दो चिह्नों को स्पर्श करें, तीसरे चिह्न को स्पर्श करने से पहले किंचित रुकें। आपके मित्र सूचित करेंगे कि प्रथम दो चिह्न द्वितीय और तृतीय चिह्नों की अपेक्षा निकटतर हैं। यह भ्रम काल-सान्निध्य या काल-निकटता के उद्दीपनों के समूहन को स्पष्ट करता है।

समूहन के सिद्धांतों को एक साथ लेने पर. वे हमारे प्रत्यक्षण के जटिल प्रतिमानों को इकाइयों या वस्तुओं के रूप में स्पष्ट करते हैं। वास्तव में, हम वस्तुओं को वस्तुओं के रूप में, या इकाइयों को इकाइयों के रूप में देखते हैं; क्योंकि प्रत्यक्षण में समूहन प्रक्रम घटित होता है। अन्यथा विविध वस्तुएँ, जिन्हें हम देखते हैं, जैसे टेलिविजन-स्क्रीन पर एक चेहरा, एक मोटरगाड़ी, एक वृक्ष, एक पुस्तक, एक घर इत्यादि, वस्तुओं के रूप में 'एक साथ नहीं लटकेंगे'। वे केवल इतने बिंदु रेखाएँ या धब्बे होंगे।

किसी वस्तु को पृष्ठभूमि में उभरे हुए चित्र के रूप में देखा जाता है।

**चित्र १०.६ भूमि-आकृति चित्र, प्रत्यक्षण का सरलतम प्रकार है।**

भूमि-आकृति प्रत्यक्षण ( Figure-grouud Perception ) :

हम देख चुके हैं कि वस्तुओं के प्रत्यक्षण का आधार समूहन है। समूहन प्रवृत्तियों से निकट संबंधित एक अन्य मूल प्रवृत्ति है—भूमि और आकृति प्रत्यक्षण की प्रवृत्ति। वे वस्तुएँ, जो हमारे दैनिक प्रत्यक्षण को पूरित करती हैं, हमें अनुभवों की सामान्य पृष्ठभूमि से भिन्न या उभरी हुई दृष्टिगत होती हैं। चित्र दीवार पर

टंके हैं, शब्द कागज पर लिखे हैं। इस उदाहरण में चित्र और शब्द आकृति के रूप में और दीवार तथा कागज भूमि के रूप में परिलक्षित होते हैं। सामान्य संवेदनात्मक पृष्ठभूमि से वस्तुओं को भिन्न करने की यह आद्य योग्यता सब प्रकार के वस्तु-प्रत्यक्षण का आधार है।

चित्र १०.६ की ओर देखने पर आप स्वत: काले भाग को वस्तु के रूप में देखेंगे। इस सत्य के बावजूद कि वह किसी पूर्व परिचित वस्तु के जैसा प्रतीत नहीं होता, तो भी आप उसे एकार्थक-पूर्ण (Unitary-whole) अथवा भूमि से भिन्न आकृति के रूप में देखेंगे। यदि हम अपने भूमि-आकृति संबंधी सामान्य अनुभवों का भली प्रकार से परीक्षण करें तो हम कुछ विशेष विशिष्टताएँ पाएँगे, जो हमारे प्रत्यक्षीकरण में आकृति और भूमि को भिन्न करती हैं। आकृति में किसी भी प्रकार का आकार या वस्तुगत गुण दिखायी देता है, जब कि भूमि आकारहीन प्रकट होती है। भूमि उस आकृति के पीछे निरंतर विस्तृत होती हुई दिखायी देती है अथवा अन्य शब्दों में आकृति सामने और भूमि पीछे प्रतीत होती है।

कभी-कभी एक ही चित्र कभी भूमि और कभी आकृति बन जाता है।

**चित्र १०.७ एक प्रतिवर्ती भूमि-आकृति चित्र। इस चित्र को गुलदस्ते के रूप में भी देखा जा सकता है अथवा दो चेहरों के रूप में भी।**

चित्र १०.७ भूमि-आकृति का प्रतिवर्त्ती रूप है। आप इसे एक फूलदान के रूप में अथवा दो पार्श्व-चेहरों के रूप में देख सकते हैं। जब आप उसे फूलदान के रूप में देखेंगे, तो श्वेत अंश आकृति के रूप में और काला अंश भूमि के रूप में होगा तथा विलोमत:, पार्श्व-चेहरों को देखने के लिए काले अंश को श्वेत पृष्ठभूमि पर

आकृतियों के रूप में देखना होगा। फूलदान और पार्श्व-चेहरों को एक साथ देखना शायद ही कभी संभव होता है।

भूमि-आकृति संबंध दृष्टि-ज्ञानेंद्रिय के अतिरिक्त अन्य ज्ञानेंद्रियों में भी पाया जाता है। जब हम किसी सिंफनी (लय) को सुनते हैं, तो स्वर-क्रम (लय) या विषयवस्तु आकृति के रूप में और स्वर-संघात (Chords) भूमि के रूप में दृष्टिगत होते हैं। त्रिरूप में परिवर्तनशील आकृति को बनाने के लिए बूगी-वूगी (Boogie-woogie) में पियानो बजाने वाला स्वर-संघात का बास ( Bass ) भूमि के सामने पुनः-पुनः प्रयोग करता है। व्यक्ति की गतियों के प्रेक्षण में उसकी संपूर्ण अंगस्थिति (शरीर की गति) को भूमि और हाथों एवं भुजाओं की सूक्ष्म गति को आकृति रूप में विचार सकते हैं।

## आकृति रेखा

हम अपने दृष्टि-ज्ञान में सामान्य भूमि से वस्तुओं या पदार्थों को भिन्न करने में सफल हुए हैं; क्योंकि हम आकृति रेखा को देख सकते हैं। जब-जब दृष्टिगत परिवर्तन या अंतर पृष्ठभूमि की प्रदीप्ति या वर्ण की मात्रा में होते हैं, आकृति रेखा निर्मित होती है। यदि हम एक कागज का टुकड़ा देखें जो प्रदीप्ति में वैविध्यपूर्ण है, एक किनारे पर श्वेत और दूसरे किनारे पर काला, प्रदीप्ति में परिवर्तन सहज और क्रमिक न हो, तो हम किसी आकृति रेखा को नहीं देख सकते। ऐसा कागज हमें एक सार प्रतीत होता है, और यदि यह पूछा जाए कि कागज का हल्का रंग कहाँ समाप्त होता है और कहाँ से वह गहरा होना प्रारंभ करता है, तो इसका हम केवल अनुमान लगा सकते हैं अथवा मनमाना उत्तर दे सकते हैं। दूसरी ओर, यदि क्रमिक परिवर्तन के स्थान पर तीव्र परिवर्तन हो—अर्थात् रंग के कई क्रम एक साथ पार कर दिए गए हों—हम कागज को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—एक हल्का और एक गहरा। यह विभाजन उस स्थल पर बहुत स्वाभाविक रूप से घटित होता है, जहाँ प्रदीप्ति का उतार अकस्मात् परिवर्तित हो जाता है। आकृति रेखाएँ हमारे दृष्टि-पथ में वस्तुओं को आकार देती हैं; क्योंकि वे एक वस्तु को दूसरी वस्तुओं से अथवा सामान्य भूमि से भिन्न करती हैं। हमें इससे यह निर्णय लेने की असावधानी नहीं करनी चाहिए कि आकृति रेखाएँ आकार हैं। चित्र १०.८ के प्रतिवर्ती मुख की आकृति रेखा और आकार के अंतर को स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं। इसमें दोनों मुख एक ही आकृति रेखा से निर्मित हैं, परंतु यह पर्याप्त स्पष्ट है कि दोनों मुखों का एक ही आकार नहीं है। आकृति रेखाएँ आकार को निर्धारित करती हैं, किंतु स्वयं आकार-हीन हैं।

एक ही आकृति-रेखा से भिन्न आकार की वस्तुएँ निर्मित हो सकती हैं।

**चित्र १० ८. एक ही आकृति रेखा से निर्मित दो भिन्न चेहरे।**

## पूर्ति :

हमारा वस्तुओं का प्रत्यक्षण, वस्तुओं से प्राप्त संवेदनात्मक उद्दीपन से कहीं अधिक पूर्ण होता है। प्रत्यक्षण उद्दीपन के रिक्त स्थानों की पूर्ति करता है, जिससे कि हम खंडित वस्तु को न देख कर पूर्ण को देखते हैं। यह 'पूर्ति' कहलाती है। यह स्थूल रूप से अपूर्ण प्रतिमान या वस्तु को प्रत्यक्षीकरण में पूर्ण करने की प्रवृति है। चित्र १०.९ में, उदाहरणार्थ, गोला और चतुर्भुज रिक्त स्थानों के साथ 'गोला जिसमें रिक्त स्थान हैं' और चतुर्भुज जिसमें रिक्त स्थान हैं 'के रूप में देखे जाते हैं. न कि इतनी खंडित या असंबद्ध रेखाओं के रूप में। यदि ये अपूर्ण आकृतियाँ तीव्र गति से प्रस्तुत की जाएँ, तो ये रिक्त-स्थान-हीन पूर्ण आकृतियों के रूप में भी दिखायी दे सकती हैं। ये 'पूर्ति' के उदाहरण भी हैं। यही सिद्धांत चित्र १०.९ के निम्न भाग में अंकित घोड़े की पीठ पर सवार व्यक्ति के प्रत्यक्षण पर भी लागू होता है। उसमें भी हम रिक्त स्थानों की पूर्ति करके वस्तु के पूर्ण रूप को देखते हैं।

## आभासी गति :

विद्युतीय विज्ञापन-चिह्नों से प्रत्येक व्यक्ति परिचित है, जिसमें शर-चिह्न आगे और पीछे घूमता, दृष्टिगत होता है अथवा प्रकाश के प्रतिमान चिह्न के आर-पार घूमते प्रतीत होते है। जैसा कि आप जानते हैं, इनमें अधिकांश चिह्न वास्तव में स्थूल अर्थ में गतिशील नहीं होते। गति का भ्रम प्रकाश को क्रम से बुझा कर और जला कर उत्पन्न किया गया है। मनोवैज्ञानिक इस भ्रम को 'आभासी गति' कहते हैं।

हम आभासी गति का अध्ययन, दो बत्तियों को इस प्रकार व्यवस्थित करके, कि एक के बाद दूसरी को जला और बुझा सकें, कर सकते हैं। यदि एक को बुझाने और दूसरी को जलाने के मध्य काल-विराम दीर्घ होता है, हम दो प्रकाशों को भिन्न देखेंगे, दूसरा जलता है एक के बुझने पर। यदि काल विराम लघुतर होता है, तो हम आभासी गति अनुभव करते हैं, जिसमें एक ही प्रकाश आगे और पीछे घूमता दृष्टि-

गोचर होता है। यदि काल-विराम बहुत कम कर दिया जाए, हम पुनः दो भिन्न प्रकाशों को देखते हैं, किंतु इस बार वे दोनों साथ-साथ जलते प्रतीत होते हैं। प्रतीयमान गति में प्रकाशों के मध्य का विरामकाल महत्त्वपूर्ण तथ्य है। यह विराम विशेष स्थिति पर आधारित होता है। उदाहरणार्थ, यदि प्रकाश मंद अथवा दूर-दूर हैं, तो लघुतर काल-विराम अपेक्षित होता है।

हम वस्तु को पूर्ण रूप में (अखंड) देखने की ओर प्रवृत्त होते हैं जबकि उसका पूर्ण रूप वहाँ नहीं होता।

**चित्र १०.९. दृष्टिगत पूर्ति।**
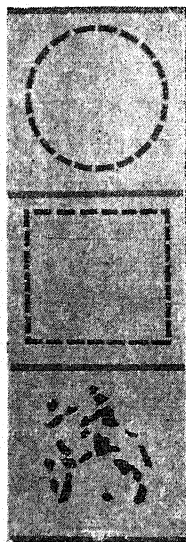
चलचित्र भी आभासी गति के उदाहरण हैं। जब हम चलचित्रों को देखते हैं, हम अनुभव करते हैं मानो अभिनेता स्क्रीन पर घूम रहे हैं। वास्तव में स्क्रीन पर किसी प्रकार की गति नहीं होती। केवल अचल चित्रों को तीव्र गति से हमारे समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। प्रक्षेपक क्रमिक चित्रों को एक के बाद एक बहुत तीव्र गति से **स्क्रीन** पर प्रस्तुत करता है। प्रथमतः एक अचल चित्र है, जिसमें वस्तुएँ या व्यक्ति एक स्थिति में हैं। तदंतर प्रक्षेपक का प्रकाश बुझा दिया जाता है और जब वह पुनः जलता है, तो दूसरा चित्र प्रस्तुत होता है, जिसमें वस्तुओं और व्यक्तियों की स्थिति किंचित भिन्न होती है। यदि प्रक्षेपक के प्रकाश का जलना और बुझना पर्याप्त तीव्र होता है, हम आभासी गति को देखते हैं जिसमें स्क्रीन पर वस्तुएँ स्वाभाविक रूप में गतिशील प्रकट होती हैं। यदि प्रक्षेपक की गति बहुत धीमी हो, तो हम गति में झटके अनुभव करते हैं। यहाँ वस्तुओं के प्रत्यक्षीकरण विषय को हम समाप्त करते हैं। इससे निकट संबंधित ही गहराई का प्रत्यक्षीकरण विषय है। उसका विवेचन हम अगले अनुच्छेद में करेंगे।

## गहराई का प्रत्यक्षण (Perception of depth) :

गहराई-प्रत्यक्षण वैज्ञानिकों और दार्शनिकों के लिए शताब्दियों से उलझन की वस्तु है। वे इस समस्या में उलझे हैं कि हम त्रिविमितीय (Three-dimensional)

जगत को केवल प्रत्येक नेत्र में स्थित द्विविमितीय दृष्टिपटल से किस प्रकार देख सकते हैं ? हमारा दृष्टिपटल विश्वरूपों को केवल दाहिने-बाएँ तथा ऊपर-नीचे में अंकित कर सकता है, फिर भी हम अपने चतुर्दिक जगत में गहराई की एक अतिरिक्त विमा को देखते हैं।

आज हम इस समस्या के संबंध में किंचित अधिक कुशल हो गए हैं। हम अनुभव करते हैं कि गहराई को देखने की योग्यता अन्य प्रत्यक्षज्ञानात्मक उपलब्धियों से अधिक आश्चर्यजनक नहीं है। जैसा कि हम देख चुके हैं, स्व-संबंधी एवं विश्व-संबंधी संपूर्ण चेतना विविध रूपों में हमारी विशिष्ट ज्ञानेंद्रियों के संपर्क द्वारा भौतिक ऊर्जा पर निर्भर करती है। हमारा मस्तिष्क तंत्रिका-वेगों के विविध प्रतिरूपों को ग्रहण करता है, न कि विविध वस्तुओं की लघु प्रतिकृतियों को। आज हम गहराई-प्रत्यक्षण की समस्या को प्रश्न के रूप में विचारते हैं, भौतिक उद्दीपन या वातावरण में होने वाले परिवर्तन या अंतर दृष्टिक अनुभवों में होने वाले परिवर्तनों से किस प्रकार संबंधित हैं ? और तदंतर भौतिक उद्दीपनों के परिवर्तन किस प्रकार हमारी ज्ञानेंद्रियों को भिन्न-भिन्न प्रकार से उद्दीप्त करते हैं, जिससे कि हमारा मस्तिष्क गहराई-संबंधी उपयुक्त संकेत प्राप्त करता है ? उदाहरणार्थ, जब हम निकटवर्त्ती वस्तु की अथवा दूरवर्त्ती वस्तु की ओर देखते हैं, समतल (चपटी) वस्तु हो या ठोस वस्तु, दृष्टि-पटल, वस्तुओं के पार्श्वरूप एक होने पर भी उद्दीपन के विविध प्रतिमानों को ग्रहण करता है। जैसा कि हम देखेंगे, प्रतिमा की अस्पष्टता, स्पष्टता और आकार की विभिन्नताएँ नेत्र में दृष्टिपटल को इतने स्पष्ट संकेत देती हैं, मानो स्वयं दृष्टिपटल ही तृतीय विमा को अंकित करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

संभवतः इस तथ्य को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। जब एक गणितज्ञ गति और वजन-संबंधी किसी प्रश्न को करता है, तो वह प्रति घंटे की मीलों की गति के लिए x और पाउंडों से वजन के लिए y चिह्नों को लेता है। x और y की उन वस्तुओं में से किसी से भी **सादृश्यता** नहीं है, जिन्हें ये प्रस्तुत करते हैं, किंतु जब तक वह अपने प्रश्न में लीन है, उसके परिणाम भौतिक जगत के तदनुरूप होंगे। उसके प्रतीक वास्तविक वस्तुओं के उपयुक्त प्रतिस्थापक होंगे।

प्रत्यक्षण के उदाहरण में भिन्न संकेत, जैसे अस्पष्टता और स्पष्टता, भौतिक जगत को प्रस्तुत करनेवाले प्रतीक हैं। डेस्क पर पड़ी पुस्तक अथवा सड़क के उस पार खड़ी मोटरगाड़ी दृष्टिपटल पर चित्र अंकित करती है। उसी समय दृष्टि के अतिरिक्त इंद्रियाँ भी उद्दीप्त होती हैं। जब हम पुस्तक के निकट पहुँचते हैं अथवा मोटरगाड़ी के पास चल कर जाते हैं, ये सब संवेदनात्मक संकेत या प्रतीक एक साथ अनुभूत होते हैं, जिससे कि हम पुस्तक या मोटरगाड़ी की दूरी का ठीक अनुमान करें।

जिन व्यक्तियों ने एक शिशु को झुनझुने तक पहुँचते देखा है, जानते हैं कि उसे दूरी-संबंधी कितना कम ज्ञान होता है। दो वर्ष के बालक में भी, जिसे दुनिया में घूमने-फिरने का अवसर मिल चुका है, कभी-कभी वयस्कों के समान गहराई-प्रत्यक्षीकरण की स्पष्टता का अभाव होता है। एक दो-वर्षीय बालक चाहता था कि उसके पिता उसे उठा लें और वह चाँद को स्पर्श कर सके। गहराई-प्रत्यक्षण का विकास संभवतः बच्चे में बड़े होने के साथ-साथ होता है। अध्याय-२ के प्रसंग को आप स्मरण करें कि प्रत्यक्षण के विकास में परिपक्वता और अधिगम के महत्त्व में कुछ अनिश्चित मत है।

गहराई-प्रत्यक्षण में दृष्टि-संकेतों का वर्गीकरण प्रायः एकनेत्री और द्विनेत्री संकेतों में किया जाता है, अर्थात् वे संकेत, जिनका प्रयोग केवल एक नेत्र से किया जाता है और वे, जिनमें दोनों नेत्र अपेक्षित होते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी विचार किया जाता है कि नेत्रों की माँसपेशियों के गतिबोधक संकेत भी गहराई के प्रत्यक्षीकरण में योग देते हैं। हम इन संकेतों पर बारी-बारी से विचार करेंगे।

## एकनेत्री संकेत : Monocular Cues

**एकनेत्री संकेत**, जैसा इस शब्द से व्यंजित होता है, ये गहराई के लिए वे संकेत हैं जो उस समय क्रियाशील होते हैं, जब एक नेत्र देखता है। इन संकेतों की खोज सर्वप्रथम प्राचीन यूनानियों ने की थी और पुनर्जागरण-काल के चित्रकारों ने, जो अपने चित्रों को गहराई देना चाहते थे, उनका प्रयोग किया। उनकी द्विविमितीय फलक पर त्रिविमितीय जगत को प्रस्तुत करने की समस्या वही थी, जो हमारे दृष्टिपटल की है। यदि कलाकार अपने फलक पर उसे इस रूप में चित्रित कर सके कि वह उसी प्रकार का दृश्य प्रतीत हो, जैसा वह दृष्टिपटल पर केंद्रित होने पर प्रतीत होता है, तो वह वास्तविक गहराई अपने चित्रों में उपलब्ध करने में सफल होता है। इस सफलता के लिए उसे वस्तुओं को जैसी वे हैं, वैसी नहीं, वरन् जैसी वे नेत्र के दृष्टिपटल पर प्रकट होती हैं, वैसी चित्रित करना होगा। हम अब उन सिद्धांतों का परीक्षण करें, जिनका प्रयोग कलाकार इस रूप को पाने के लिए करता है।

### रेखीय परिदृश्य (Linear Perspective) :

इस अध्याय में आगे हम सविस्तर देखेंगे कि जो वस्तुएँ दूरी पर हैं, वे दृष्टिपटल पर निकटवर्ती वस्तुओं की अपेक्षा लघुतर क्षेत्र में प्रक्षेपित होती हैं। इसके अतिरिक्त वह दूरी, जो दूरवर्त्ती वस्तुओं में बिंबों को विभाजित करती है, भी लघुतर होती है। इस तथ्य को समझने के लिए, सोचिए रेल-मार्ग के मध्य आप खड़े होकर

दूर देख रहे हैं। टाइयाँ लघुतर हो जाती हैं और पथ धीरे-धीरे तब तक निकटतर आता जाता है, जब तक वह क्षितिज रेखा पर मिला हुआ प्रतीत नहीं होने लगता। चित्र १०·१० अपने गहराई-प्रभाव के लिए ऐसे रेखीय परिदृश्य पर आंशिक रूप से आधारित है।
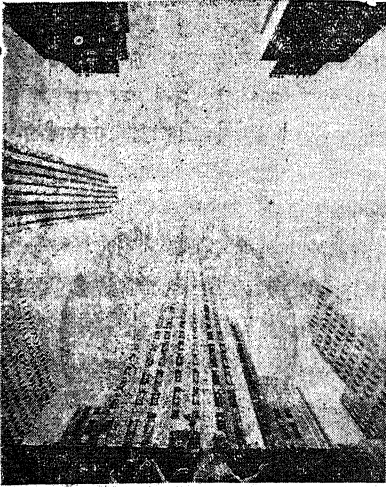
**चित्र १०·१० यह चित्र गहराई-प्रत्यक्षीकरण में तीनों एकनेत्रीय कारकों को स्पष्ट करता है। भवन दूरी में अभिबिंदुग होते हैं (रेखीय परिदृश्य), भवनों के कुछ भाग अन्य कुछ भागों के पीछे रहते हैं (आच्छादन) और अधिक दूरस्थ ऊँचाइयाँ निकटवर्त्ती ऊँचाइयों के समान स्पष्ट (स्पष्टता) नहीं रहतीं (राकफेलर सेंटर, इंक)।**

## स्पष्टता :

सामान्यतः जितना अधिक स्पष्ट हम किसी वस्तु को देखते हैं, उतनी ही वह अधिक निकट होती है। सुदूरवर्त्ती पर्वत मेघाच्छादित दिन में स्वच्छ दिन की अपेक्षा अधिक दूर दृष्टिगोचर होते हैं, क्योंकि वायुमंडल की धूमिलता सूक्ष्म अंगों को धुँधला बना देती है जिससे हम केवल स्थूल रूपरेखाएँ ही देखते हैं। यदि हम सूक्ष्म विशेषताएँ देख सकते हैं, तो वस्तु को हम अपेक्षाकृत निकट अनुभव करते हैं, किंतु यदि हम उसकी केवल सामान्य रूपरेखा ही देखते हैं, तो उसे दूर अनुभव करते हैं।

## आच्छादन (Interposition) :

एक और एकनेत्री संकेत है—आच्छादन। जब दृष्टिपथ में एक वस्तु को दूसरी वस्तु बाधा पहुँचाती है, तब यह घटित होता है। यदि एक वस्तु पूर्ण रूप से हमारी दृष्टि में है, किंतु दूसरी आंशिक रूप से इससे आच्छादित है, तो प्रथम वस्तु निकटतर दिखायी देती है। चित्र १०·१० में आच्छादन चित्रित है।

छाया (Shadow) :

किसी वस्तु में छाया अथवा तीव्र प्रकाश का प्रतिमान उस वस्तु को ठोस प्रकट करने में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए चित्र १०.११ में बाईं ओर वाला गोला चपटा या समतल दिखायीं देता है, किंतु दाईं ओर वाला कंदुक के समान ठोस दिखायी देता है। ध्यान दें कि बाईं ओर वाला गोला एक-सार धूसर रंग से रँगा है, जब कि दाहिना गोला मध्य से श्वेत है और क्रमिकता से किनारों की ओर सफेदी कम होती जाती है। दूसरे उदाहरण में वही प्रभाव है, जो किसी गोल-क्षेत्र पर प्रकाश के पड़ने का होता है। वह स्थल जो प्रकाश-स्रोत के निकटतम है, सबसे अधिक प्रकाश प्राप्त करता है और जो भाग प्रकाश से दूर होता जाता है, उस पर क्रम से प्रकाश कम होता जाता है। इस प्रकार प्रकाश और छाया का प्रकटीकरण गहराई-प्रत्यक्षण लिए महत्त्वपूर्ण संकेत हैं।
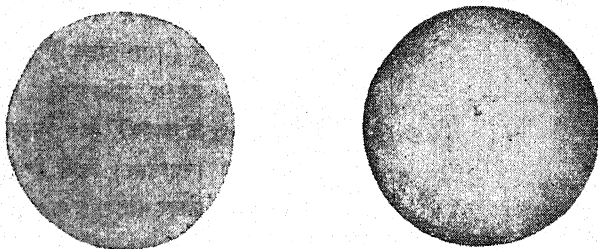
**चित्र १०-११ गहराई के प्रत्यक्षण में संकेत के रूप में छाया (गिब्सन, १९५०)।**

चित्र १०.१२ में हम इस संकेत का दूसरा उदाहरण देखते हैं, वह छोटी झोपड़ियों के समूह का हवाई चित्र है। जब इस चित्र को उलटा गया, तो वे छोटी झोपड़ियाँ बड़ी मीनारों की तरह दिखायीं देने लगीं। यदि आप ध्यान से उन झोंपड़ियों और 'मीनारों' के अंतर को देखें, तो पाएँगे कि प्रभाव का कारण छाया है। संक्षेप में, कारण यह है कि हम ऊपर से आते हुए इस प्रकाश को देखने के अभ्यस्त हैं। अतः, जब चित्र ऊपर से नोचे उलट दिया जाता है, हम लघु कुटीरों को नीचे प्रकाशमान नहीं देखते; क्योंकि उस दिशा से प्रकाश को देखने के हम अभ्यस्त नहीं हैं। उनके स्थान पर हम मीनारों को देखते हैं; क्योंकि काले भाग अब ऐसे आकार और ऐसी स्थिति में हैं कि उनको छाया या प्रतिबिंब समझने की संभावना नहीं हो सकती। वे भवनों या मीनारों के ऊपरी शिखरों पर काला पेंट किए हुए प्रतीत होते हैं। हम उस पर निश्चय ही विचार नहीं करते। प्रत्यक्षण तत्काल होता है और इस पर निर्भर करता है कि काला भाग प्रतिबिंब प्रतीत होता है या नहीं।

गति :

आप जब भी अपना सिर घुमाएँगे, आप देख सकेंगे कि आपके दृष्टि-पथ की वस्तुएँ आपके एवं दूसरे के सापेक्ष रूप में घूमती हैं। यदि आप निकट से देखेंगे, आप पाएँगे कि जो वस्तुएँ आपके निकटतम हैं, वे विपरीत दिशा की ओर घूमती प्रतीत होंगी, जबकि दूरवर्त्ती वस्तुएँ उसी दिशा की ओर घूमती प्रतीत होंगी, जिस दिशा की ओर आपका सिर घूमता है। निश्चय ही यह वस्तुओं की सापेक्ष दूरी का स्पष्ट संकेत है; क्योंकि हम चाहे वास्तविक गति देखें अथवा अपना सिर घुमाएँ, गति की सापेक्ष मात्रा दूरवर्त्ती वस्तुओं के लिए निकटवर्त्ती की अपेक्षा कम होती है। यद्यपि गति गहराई का एक महत्त्वपूर्ण संकेत है, किंतु कलाकारों द्वारा यह एकनेत्री, संकेतों के सदृश प्रयुक्त नहीं किया जा सकता।
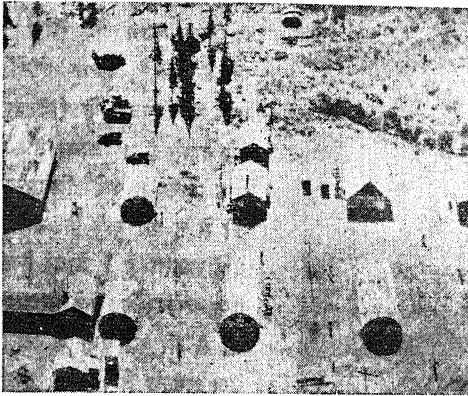
**चित्र १०.१२ छाया और गहराई का प्रत्यक्षण। यदि चित्र को उलट दिया जाए, तो छोटी-झोपड़ियाँ बड़ी मीनारों की भाँति दिखायी देने लगेंगी (गिब्सन, १९५०)।**

समंजन (Accommodation) :

समंजन नेत्र के लेंस के आकार का समायोजन है, जिससे कि वह दृष्टिपटल के केंद्र पर बिंब को लाता है। यह समायोजन रोमक पेशियों (Ciliary muscles) द्वारा उपलब्ध किया जाता है, जो लेंस से इस प्रकार संपृक्त हैं कि जब उनका संकोचन होता है तो वे इसे उभारती हैं, इस प्रकार निकटवर्त्ती वस्तुओं के लिए नेत्र को समंजित करती हैं। विलोमतः वे इसे शिथिल होने पर पतली और पतली होने देती हैं और इस प्रकार दूरवर्त्ती वस्तुओं के लिए समंजित करती हैं।

शरीर की अनेक मांसपेशियों में गतिबोधक संग्राहक होते हैं, जो मांसपेशियों के फैलने और संकुचित होने के प्रति अनुक्रिया करते हैं। यह संभव है कि रोमक-

मांसपेशियों से गतिबोधक आवेग गहराई के लिए संकेत प्रस्तुत करें। पर, यह किसी प्रकार भी प्रमाणित नहीं हुआ है कि वे प्रस्तुत करते हैं। ऐसे संकेत के लिए एकनेत्री होना आवश्यक है; क्योंकि यह प्रत्येक नेत्र में क्रियात्मक रहेगा और देखने के लिए एक साथ दोनों नेत्रों पर निर्भर नहीं करेगा। यह संकेत केवल २० फुट की दूरी तक कार्य कर सकेगा; क्योंकि उसके पार और अधिक समंजन नगण्य है।

हमारे दोनों नेत्र एक दूसरे से दूर हैं, इसलिए किसी वस्तु का बिंब दोनों नेत्रों में पूर्णतः समान नहीं होता।
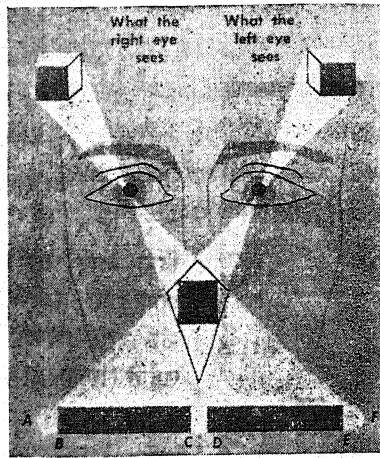
**चित्र १०.१३. जब हम किसी क्यूब की ओर देखते हैं, तब क्या देखते हैं? प्रत्येक नेत्र न केवल क्यूब के भिन्न भागों को देखता है, वरन् दोनों नेत्र एक साथ क्यूब के पीछे के भाग को देखते हैं। दायाँ नेत्र ए से एफ तक के पूरे विन्यास को, डी से इ की दूरी के अतिरिक्त, देख सकता है। बायाँ नेत्र ए से एफ तक के पूरे विन्यास को, बी से सी की दूरी के अतिरिक्त, देख सकता है। अतः, दोनों नेत्र ए से एफ तक के पूर्ण विन्यास को देखते हैं।**

द्विनेत्री संकेत ( Binocular Cues ) :

गहराई-प्रत्यक्षीकरण के कुछ ऐसे भी संकेत हैं, जो इस सत्य पर आधारित हैं कि हमारे दो नेत्र हैं, केवल एक नहीं। वे **द्विनेत्री संकेत** कहलाते हैं।

दृष्टिपटल-असमता :

इस प्रकार का एक संकेत है दृष्टिपटल-असमता--दृश्यों के अंतरों का दोनों नेत्रों के दृष्टिपटलों पर गिरना। आप दृष्टिपटल-असमता के कारक को, उस स्थिति की ज्यामिति पर विचार करके, जिसमें दोनों नेत्र वस्तु को देखते हैं, समझ सकते हैं (द्रष्टव्य, चित्र १०.१३)। प्रत्येक दृष्टिपटल के मध्य एक गर्तिका है, जो दृष्टिपटल के

सब भागों की अपेक्षा बहुत अधिक संवेदनशील होती है। जब हम किसी वस्तु की ओर देखते हैं, तो हम अपने नेत्रों को स्थिर करते हैं—कहना चाहिए, केंद्रित करते हैं—जिससे कि वस्तु का बिंब प्रत्येक नेत्र के दृष्टिपटल की गर्तिका पर अधिकतम पड़े। परंतु जब कि दोनों नेत्र एक दूसरे से कुछ इंचों की दूरी पर हैं, वे किसी स्थूल वस्तु का किंचित भिन्न रूप देखते हैं और दोनों रूप बिलकुल एक सदृश नहीं होते। इसके अतिरिक्त दूर होने की अपेक्षा यदि वस्तु बहुत निकट हो, केवल कुछ इंचों की दूरी पर, तो बिंबरूपों में और भी अधिक असमानता होती है। इन असमानताओं से हम गहराई के संकेत प्राप्त करते हैं।

इन तथ्यों को चित्र १०.१३ में स्पष्ट किया गया है। इन्हें स्पष्ट करने के लिए दूरियों और परिमाणों को बड़ा-चढ़ा कर दिखाया गया है। प्रेक्षक के दृष्टिकोण से देखने पर बायाँ नेत्र क्यूब के सामने वाले और बाएँ भाग को देखता है और दाहिना नेत्र उसके सामने वाले और दाएँ भाग को। अतः, प्रत्येक नेत्र वस्तु के भिन्न भागों को देखता है। इसके अतिरिक्त, दोनों नेत्र वस्तु के पीछे के विन्यास को एक साथ देखने पर भी उसके भिन्न भागों को देखते हैं। बायाँ नेत्र पूरे विन्यास को ए से एफ तक, केवल बी से सी की दूरी के अतिरिक्त, देख सकता है, और दाहिना नेत्र डी से इ की दूरी के अतिरिक्त पूर्ण विन्यास को देख सकता है। यह तथ्य सब परिमाण की वस्तुओं (क्यूबों) और आँख से सब दूरियों के लिए ठीक नहीं भी हो सकता और निश्चित रूप से यह वस्तु के बिलकुल पीछे के विन्यास के लिए सत्य नहीं है। पर, सामान्य तथ्य यह है कि एक ही वस्तु के बिंब दोनों दृष्टिपटलों पर भिन्न-भिन्न पड़ते हैं—एक नहीं।

चित्र १०.१४ में दिखाए गए चित्रों द्वारा और एक लघु दर्पण में स्वयं देख कर आप स्पष्ट कर सकते हैं कि दृष्टिपटल-असमता किस प्रकार वस्तुओं को ठीक तरह से देखने में सहयोग प्रदान करती है। चित्र में एक दृश्य को त्रिविमितीय कैमरे से लिया गया है—ऐसे कैमरे से जिसमें दो लेंस उसी दूरी पर लगे हैं, जितनी दूरी पर दो आँखें होती हैं। बायाँ चित्र बाएँ लेंस से तथा दाहिना चित्र दाएँ लेंस से लिया गया है। जब आप दर्पण में दाहिने चित्र के प्रतिबिंब को देखते हैं, तब दिशाओं के अनुसार वह प्रतिबिंब भौतिक रूप से बाएँ चित्र के ऊपर स्थित प्रतीत होता है। अतः, जब आप दोनों नेत्र खोलते हैं, तब एक नेत्र एक चित्र और दूसरा नेत्र दूसरा चित्र देखता है और आप गहराई के भ्रम को प्राप्त करते हैं। यद्यपि दाहिने हाथ वाले दृश्य में दाहिने हाथ वाला वस्तुओं का अभिविन्यास निदर्शनार्थ प्रतिवर्तित कर दिया है, पर चित्रों का सूक्ष्म परीक्षण प्रदर्शित करेगा कि उनमें अन्य अंतर भी हैं।

गहराई प्रत्यक्षीकरण पाने के लिए स्टिरियोस्कोप में दृष्टिपटल-विषमता को एक संकेत के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

**चित्र १०.१४. त्रिविमितीय दृश्य देखना। एक लघु दर्पण को लीजिए, जिसका लघुतम भाग कम-से-कम चित्रों की ऊँचाई के बराबर लंबा हो। शीशे के किनारे को दोनों चित्रों के बीच की जगह में पृष्ठ के दाहिने कोण से और उसके प्रतिबिंबित करने वाले भाग को दाहिनी ओर रखें। अपनी नाक को शीशे के ऊपरी किनारे पर या उसके निकट रखें। अपनी बाईं आँख बंद करें। अपनी दाईं आँख से दृश्य को देखें और शीशे को इस प्रकार व्यवस्थित करें कि मूल दृश्य और उसका प्रतिबिंब समरेखा पर आ जाएँ। अब बाईं आँख खोलें। दोनों आँखें खोल कर अपने ध्यान को बाएँ हाथ के बिंब पर केंद्रित करें। दोनों चित्रों को अब एक त्रिविमितीय चित्र के रूप में दिखायी देना चाहिए (रियलिस्ट, इंक०)।**

अभिसरण (Convergence) :

हम देख चुके हैं कि दृष्टिपटल-असमता गहराई के द्विनेत्री संकेत के रूप में बहुत प्रभावपूर्ण कार्य करती है। अन्य संभावित द्विनेत्री संकेतों के विषय में हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते। यह नेत्रों को घुमाने और स्थिर करने वाली मांस-पेशियों से विकसित गतिबोधक संकेत हैं। ७० फुट से अधिक की दूरी के लिए नेत्रों

की दृष्टि की रेखाएँ अनिवार्य रूप से समानांतर होती हैं। किंतु, निकटतर वस्तुओं के लिए, नेत्र एक दूसरे की ओर अधिक-से-अधिक घूमते हैं, अर्थात् वे अभिसरित (Converge) होते हैं। यदि ऐसा अभिसरण गहराई-प्रत्यक्षीकरण में सहायक होता है, तो ये संकेत संभवतः नेत्रों को अभिसरण करने वाली मांसपेशियों के बोध के गतिबोधक आवेग हैं।

## विरोधी संकेत (Conflicting Cues) :

सामान्यतः गहराई और दूरी प्रत्यक्षण के संकेत साथ-साथ और परस्पर साहाय्य करते हुए कार्यरत रहते हैं। जहाँ उनमें विरोध होता है, वहाँ व्यक्ति गहराई को इतना स्पष्ट नहीं देख सकता। उदाहरणार्थ, फोटोग्राफ को देखते समय अधिकांश एकनेत्री गहराई-संकेत उपस्थित रहते हैं, फिर भी व्यक्ति यथार्थ दृश्य की संपूर्ण गहराई को नहीं देख पाता। ऐसी स्थिति में, संकेतों में विरोध रहता है। एकनेत्री संकेत गहराई का प्रभाव देते हैं, परंतु द्विनेत्री संकेत चित्र को समतल प्रकट करते हैं। अतः, व्यक्ति का प्रत्यक्ष ज्ञान दोनों संकेतों का समझौता है। विरोधात्मक द्विनेत्री संकेतों का निवारण किया जा सकता है और इस प्रकार चित्र में अधिक गहराई देखी जा सकती है।

ऐसा करने के लिए एक नली में कागज को लपेटिए। फिर एक आँख बंद करें और दूसरी आँख से नली के बीच से चित्र १०.१० को देखिए। आप देखेंगे कि चित्र में कहीं-कहीं अधिक गहराई दृष्टिगत होती है। एक नेत्र को बंद करने पर आप विरोधात्मक द्विनेत्री संकेतों का और नली के प्रयोग द्वारा आप चित्र के किनारे या सीमा-रेखा को देखना छोड़ देते हैं। सीमा-रेखा निश्चय ही एक विरोधी संकेत है; क्योंकि वास्तविक चित्रों के चारों ओर इस प्रकार की सीमा-रेखाएँ नहीं होतीं। आप इस गहराई में दूसरे व्यक्ति के हाथ में उस चित्र को पकड़ा कर और भी अधिक वृद्धि कर सकते हैं। इस रूप में आप अपने शरीर और भुजा से उत्पन्न विरोधात्मक संकेतों का निवारण करते हैं।

## स्टिरियोफोनिक ध्वनि (Stereophonic Sound) :

गहराई प्रत्यक्षण-संबंधी हमारे विचार दृष्टि पर केंद्रित हैं। यह इसलिए कि मानव 'दृष्टिवंत प्राणी' है, जो अपने पर्यावरण में गहराई एवं दूरी को देखने के लिए अन्य इंद्रियों की अपेक्षा दृष्टि पर अधिक विश्वास करता है। कभी-कभी अन्य इंद्रियों से भी वह गहराई देखता है। इनमें से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण श्रवणेंद्रिय है। वास्तव में हम अभ्यासवश श्रवण-संकेतों द्वारा विविध वस्तुओं की दूरी का अनुमान लगाते हैं। यातायात के साधनों की घर्घर ध्वनि, मोटरगाड़ी के भोंपू की ध्वनि, सायरन-

ध्वनि और पदध्वनि की भी दूरी और दिशा को हम श्रवणेंद्रियों से देखते हैं। इन स्थितियों में गहराई को जिन विशिष्ट संकेतों द्वारा देखते हैं, उन पर विचार करने के लिए हमें श्रवण एवं श्रवण-उद्दीपनों का कुछ ज्ञान अवश्य होना चाहिए। इन विषयों का विवेचन अध्याय १२ में किया गया है, इसीलिए श्रवण-गहराई प्रत्यक्षण पर भी उसी अध्याय में विचार किया गया है।

किंतु, श्रवण-गहराई प्रत्यक्षण के एक प्रकार का विवेचन हमारे इसी प्रसंग में आवश्यक है। इसे 'स्टिरियोफोनिक ध्वनि' कहते हैं और पिछले कुछ वर्षों में इस पर पर्याप्त विचार किया गया है। 'स्टिरियो' का अर्थ है 'विन्यास' और 'फोनिक' का ध्वनि। अतः, स्टिरियोफोनिक का अर्थ हुआ 'विन्यास-ध्वनि'। इसमें जो सिद्धांत निहित है, उसकी तुलना दृष्टि-क्षेत्र में दृष्टिपटल-असमता से की जा सकती है, यद्यपि ध्वनि और प्रकाश की ज्यामिति में कुछ भिन्नता है : कहना चाहिए दोनों कान भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से सुनते हैं।

सामान्य श्रवण में, एक कान में पहुँचने वाली ध्वनि दूसरे कान में पहुँचने वाली ध्वनि से कुछ भिन्न होती है। सभा-भवन या कक्ष में होने वाले अनुरणन (**Reverberation**) अथवा ध्वनि-स्थल के पर्याप्त जटिल होने के कारण, जैसा कि वाद्य-वृन्द-संगीत को सुनने में होता है, दोनों कानों तक पहुँचने वाली ध्वनियों में स्वरमान, स्वरतीव्रता, स्वर पहुँचने के काल या अन्य रूपों में, जिनका उल्लेख श्रवण के अध्याय में किया जाएगा, भिन्नता रहती है। ये भिन्नताएँ ध्वनि को गहराई और दूरी देती हैं।

स्टिरियोफोनिक अभिलेखन केवल दोनों कानों में पहुँचनेवाली उन ध्वनियों की भिन्नताओं को, जिन्हें श्रोता साधारणतः संगीत में रत होने पर सुनता है, पुनरोत्पन्न करने का प्रयत्न करता है। अभिलेखनार्थ दो माइक्रोफोनों को कुछ दूरी पर अलग-अलग रखा जाता है—वे अभिलेखन प्रणाली के कान हैं—और दो भिन्न ध्वनि-रूप अभिलिखित होते हैं। इस अभिलेखन को पुनः सुनने पर इन ध्वनि-रूपों से चुनी गई ध्वनियाँ अलग-अलग प्रवर्धित करके दोनों ध्वनि-विस्तारकों द्वारा उत्सर्जित की गईं। स्टिरियो-फोनिक प्रभाव को उपलब्ध करने के लिए आवश्यक है कि श्रोता ध्वनि-विस्तारकों को कक्ष के भिन्न-भिन्न भागों में रखे, जिससे कि प्रत्येक कान अपनी ओर रखे हुए ध्वनि-विस्तारक यंत्र से दूसरे की अपेक्षा अधिक सुन सके। दोनों यंत्रों की ध्वनियों की प्रबलता में निकट सादृश्यता होनी चाहिए, अन्यथा एक की ध्वनि दोनों कानों में दूसरी ध्वनि की अपेक्षा, तीव्रतर प्रबलता के साथ पहुँच जाएगी और इस प्रकार वह दूसरे यंत्र की ध्वनि को समाप्त कर देगी। जब उपयुक्त प्रतिबंधों का ध्यान रखा

जाता है, तब गहराई का प्रभाव महत्त्वपूर्ण होता है। स्टिरियोफोनिक ध्वनि ठीक उसी तरह मोनोफोनिक ध्वनि से भिन्न होती है, जिस प्रकार वास्तविक दृश्य समतल चित्र से।

## आनन-संवेदी दृष्टि (Facial Vision) :

अनेक अंधे व्यक्ति बाधाओं में भी अपने पथ को खोजने में आश्चर्यजनक रूप से निपुण होते हैं। वे सड़क पर चल सकते हैं, सभा-भवन में मुड़ सकते ह, अन्य व्यक्तियों के निकट अथवा गृहद्वारों पर रुक सकते हैं, मानो वे सब कुछ देख सकते हों। कुछ व्यक्ति तो असाधारण रूप में इतने निपुण होते हैं कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि उनमें 'षष्ठ-इंद्रिय' है, जो सामान्य लोगों में नहीं होती। यह पूछने पर कि वे यह कैसे करते हैं, उनमें से अधिकांश व्यक्ति उत्तर नहीं दे सकते। कुछ कहते हैं कि वे निकटवर्त्ती बाधा को अपने मुँह पर अनुभव करते हैं। इसी हेतु अंधे व्यक्तियों की बाधा-निवारण-योग्यता को कभी-कभी 'आनन-संवेदी दृष्टि' कहा गया है। यह शब्द अंधे व्यक्ति की अनुभूति को अभिव्यक्त करता है, परंतु उसके गहराई-प्रत्यक्षण के लिए यह कोई स्पष्टीकरण हेतु प्रस्तुत नहीं करता। अब हमें ऐसे प्रयोगों की बड़ी संख्या प्राप्त है (कोटजिन और डलैनबैक—१९५०), जो स्पष्ट करते हैं कि अंधा व्यक्ति बाधाओं को किस प्रकार देखता है।

> "अंधे व्यक्ति प्रयोग-पात्र थे। आनन-संवेदी दृष्टि के विचार के परीक्षणार्थ—मुँह से टकराने वाली वायु-तरंगें संकेत हो सकती हैं—प्रयोग-पात्रों का सिर, मुँह को किसी संभावित उद्दीपन से दूर रखने के लिए नमदे के कपड़े और हैट से ढक दिया गया। तदंतर उनसे बाधा और संकेतक तक, जब वे ठीक उसके सामने हों, पहुँचने के लिए कह कर उनकी परीक्षा की गई। नमदे के आवरण ने स्थल को पहचानने की उनकी योग्यता में कोई अंतर नहीं किया। एक अन्य प्रयोग में, श्रवण-संकेतों के महत्त्व का परीक्षण किया गया, प्रयोग-पात्रों के कान बंद कर दिए। ऐसी स्थिति में वे बाधाओं का शिकार बनने से बच नहीं सके। अतः निर्णय रूप में यह श्रवण-संकेत प्रदर्शित हुआ। अन्य प्रयोगों में, प्रयोग-पात्र ध्वनि-विस्तारक यंत्र को सुनते रहे। प्रयोगकर्त्ता ने माइक्रोफोन को अपने हाथ में पकड़ कर एक रुकावट उपस्थित की। जब वह रुकावट के निकट पहुँचा, तो प्रयोग-पात्र उसे बता सकने में सफल रहे, इस तथ्य ने इसे दुगुणा निश्चित कर दिया कि ये संकेत श्रवणपरक थे। एक अन्य प्रयोग में यह निर्धारित हुआ कि महत्त्वपूर्ण श्रवण-संकेत बाधाओं से प्रतिध्वनित तीव्र ध्वनियाँ थीं। उच्च ध्वनियाँ वस्तुओं से

मंद ध्वनियों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से प्रतिध्वनित हाती हैं। वे प्रायः व्यक्ति के चलने से प्रकट होती हैं तथा अन्य वस्तुओं से भी, जो वातावरण में ध्वनि उत्पन्न करती हैं। जब अंधा व्यक्ति इन ध्वनियों को अधिक तीव्र होते देखता है, वह जान लेता है कि वह बाधा के निकट है।"

हमें ज्ञात हुआ कि अंधे व्यक्ति बाधाओं का निवारण करने में सफल होते हैं; क्योंकि वे उच्च ध्वनियों की प्रतिध्वनि को देखना सीख लेते हैं। स्वाभाविक है कि कुछ व्यक्ति इसे दूसरों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह सीखते हैं और बाधा-निवारण में दूसरों की अपेक्षा अधिक सफल रहते हैं। कुछ व्यक्ति, विशेषतः वृद्धावस्था की ओर अग्रसर होने वाले, उच्च ध्वनियों को भी ठीक तरह सुनने में असमर्थ रहते हैं और इस प्रकार वे बाधाओं का निवारण करने में असफल रहते हैं।

यह बहुत रोचक बात है कि इस प्रकार के प्रयोगों का विचार चमगादड़ों पर किए प्रयोगों से प्राप्त हुआ। यह पुरानी एवं प्रसिद्ध बात है कि चमगादड़ अंधकार में बाधाओं का भली प्रकार निवारण करते हैं। किंतु, वे कैसे करते हैं, यह एक रहस्य था। दो अनुसंधानकर्त्ताओं ने (ग्रिफिन और गालांबोज, १९४१) जो इस समस्या के समाधान में अनेक प्रयोगों में व्यस्त थे, अनुसंधान किया कि चमगादड़ बाधाओं के निवारणार्थ 'प्रतिध्वनि-स्थिति' का उपयोग करते हैं। वे उच्च ध्वनि निकालते हैं जो दीवारों, तारों और बाधाओं से टकरा कर प्रतिध्वनि उत्पन्न करती है और उनकी स्थिति के लिए संकेत का कार्य करती है। प्रतिध्वनियों का उत्तर देते हुए चमगादड़ अपने आगे बढ़ने के मार्ग का तथा भोजनप्राप्ति के स्थान का ज्ञान प्राप्त करते हैं, उनकी यह प्रणाली 'चमगादड़ रेडार' कहलाती है।

### प्रत्यक्षण स्थैर्य ( Perceptual Constancy ) :

जिस विश्व को हम देखते हैं, वह समस्थित है। कोई मनुष्य जब हमारी ओर चला आ रहा हो, तो उसके आकार में कोई परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता, भोजन करने की प्लेट एक ओर से देखने पर एक गोले की और दूसरी ओर से देखने पर एक दीर्घवृत की भाँति दृष्टिगोचर नहीं होती और ध्वनि-स्थल में हमारे सिर के घुमाने के साथ कोई परिवर्तन नहीं होता। साधारण व्यक्ति के लिए उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। वस्तुओं का जगत सदैव एक-सा और स्थिर क्यों नहीं रहना चाहिए ?

अधिक सावधानी से विचार करने पर यह प्रश्न कुछ महत्त्वपूर्ण समस्याएँ उत्पन्न करता है; क्योंकि वस्तुओं से प्राप्त भौतिक उद्दीपन बहुधा स्थैर्य प्रकट होने पर भी समस्थित नहीं होते। जो उद्दीपन हम प्राप्त करते हैं, वे निरंतर परिवर्तित होते हैं।

एक ही वस्तु से उत्पन्न उद्दीपनों में भी, उससे हमारे संबंधित हमारे स्थान-परिवर्तन के साथ परिवर्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ, जब हम वातायन के ठीक सामने खड़े होते हैं, वातायन का दृष्टिपटल बिंब समकोण-चतुर्भुज होता है। परंतु, जब हम वातायन के एक ओर घूम जाते हैं, बिंब समलंबीय हो जाता है। यह सरल ज्यामिति है। दृष्टिपटल बिंब के आकार में परिवर्तन के बावजूद हम वातायन को समकोण-चतुर्भुज के ही रूप में देखते हैं। इसका बिंब दृष्टिपटल पर परिवर्तित हो गया है, किंतु प्रत्यक्षतः इसके आकार में परिवर्तन नहीं हुआ है।

सामान्य तथ्य यह है कि वस्तु का दृष्टिगत आकार, स्थान एवं अवस्था के परिवर्तन के बाद भी वही रहता है, जिसे हम देखते हैं। इस तथ्य को 'आकार स्थैर्य' कहा जाता है। किंतु, प्रत्यक्षण में समस्थिति आकार तक ही सीमित नहीं है। हमने वस्तुओं के आकार, उनके रंग, उनकी प्रदीप्ति को देखा है, वे भी चाक्षुष समस्थिति प्रदर्शित करते हैं। आगे हम विस्तार से आकार और प्रदीप्ति समस्थिति की समस्याओं पर विचार करेंगे। वे न केवल समस्थिति की सामान्य समस्या को स्पष्ट करते हैं, वरन् कुछ साधनों को भी, जिनके द्वारा चाक्षुष समस्थिति को उपलब्ध किया जा सकता है।

वस्तु जितनी दूरी पर होती है, दृष्टिपटल पर उसका बिंब उतना ही छोटा पड़ता है।
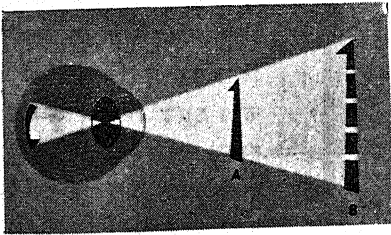
**चित्र १०·१५ दृष्टिपटल पर पड़े बिंब का आकार वस्तु के आकार तथा नेत्र से उसकी दूरी पर निर्भर करता है। बी शर-चिह्न जो नेत्र से ए शरचिह्न की अपेक्षा दुगुनी दूरी पर है, की दृष्टिपटल पर ए-शर-चिह्न के सम आकार के बिंब को निर्मित करने के लिए ए शर-चिह्न से आकार में भी दुगुना बड़ा होना आवश्यक है।**

आकार-स्थैर्य (Constancy of Size) :

नेत्र अनिवार्यतः कैमरे की भाँति कार्य करता है। हमें ज्ञात है कि दृष्टिपटल पर बिंब का आकार वस्तु की दूरी पर निर्भर करता है। वस्तु जितनी दूर होगी, बिंब उतना ही छोटा होगा। इस तथ्य की ज्यामिति चित्र १०·१५ में स्पष्ट की गई है। इस चित्र से हम यह भी देख सकते हैं कि समस्थित आकार का बिंब भी

दृष्टिपटल पर निकटवर्त्ती छोटी वस्तु द्वारा अथवा कुछ दूरवर्त्ती बड़ी वस्तु द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है।

दृष्टिपटल प्रतिमाओं के आकार के विषय में इतना जान लेने पर हम वस्तु के देखे गए आकार में, उसकी ओर बढ़ने पर, परिवर्तन की आशा कर सकते हैं। वस्तु अपनी दूरी-विभिन्नता के बाद भी उसी आकार की प्रकट होती है। जब वह बहुत दूर होती है, हम उसे लघुरूप में नहीं देखते, वरन् हम उसे उसी आकार में देखते हैं—केवल दूरी पर। यदि गहराई-संकेतों को कृत्रिम रूप से परिवर्तित कर दिया जाए, तो स्थिर आकार की परिचित वस्तुएँ भी बहुत भिन्न आकार में दिखायी देने लगेंगी (द्रष्टव्य : १०·१६ )।
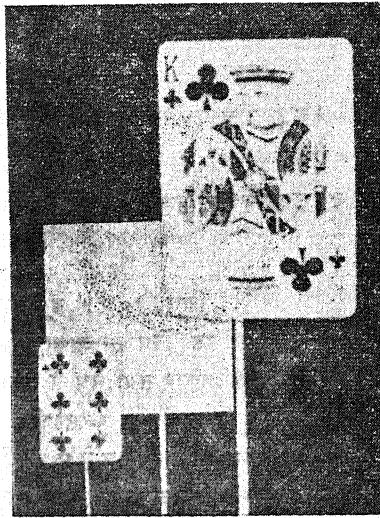
**चित्र १०·१६ गहराई-संकेतों द्वारा आकार-स्थैर्य नष्ट होता है। हम जानते हैं कि ताश के पत्ते एक ही आकार के होते हैं। यहाँ ये पत्ते एक ही आकार के दिखावी देंगे यदि गहराई-प्रत्यक्षीकरण के संकेतों को उलट न दिया जाए। 'बड़ा' पत्ता वस्तुतः 'छोटे' पत्ते की अपेक्षा बहुत निकट है, किंतु उसका कोना इस प्रकार काट दिया गया है जिससे कि धूसर काड उसके आगे ( अध्यारोपण द्वारा) प्रतीत होता है। यदि, इसके स्थान पर 'छोटा' पत्ता धूसर कार्ड के पीछे रहता, दोनों पत्ते एक ही आकार के दिखायी देते (ब्रुक्स, मांकमायर से )।**

प्रत्यक्षीकरण में आकार ग्रहण करनेवाली वस्तुओं का स्थैर्य हमारे दूरी के प्रत्यक्षज्ञान से निकट संबंधित है। यदि गहराई या दूरी प्रत्यक्षण के संकेत वर्त्तमान हों, तो हमारी आकार समस्थिति अच्छी होती है। दूरवर्त्ती वस्तुओं को छोटा देखने के स्थान पर हम उन्हें बहुत दूरी पर देखते हैं। दूसरी ओर, यदि गहराई प्रत्यक्षण के संकेत धीरे-धीरे विलुप्त होते हैं, तो अपरिचित वस्तु के आकार का हमारा प्रत्यक्षण दृष्टिपटल-बिंब के तदनुरूप होने लगता है। और सब गहराई-संकेतों के विलुप्त होने

पर समस्थिति का पूर्णतः विलोपन हो जाता है एवं आकार संबंधी हमारे प्रत्यक्षण एवं निर्णय वही हो जाते हैं जो दृष्टिपटल-प्रतिमा की ज्यामिति द्वारा हम अनुमित करते हैं।

एक 'परिचित वस्तु' के गहराई-संकेतों का विलोपन स्थैर्य को पूर्णतः समाप्त नहीं करता; क्योंकि हम वस्तु के वास्तविक आकार से लगभग परिचित होते हैं। यह ज्ञान हमें कुछ मात्रा में आकार समस्थिति गहराई-संकेतों की अनुपस्थिति में भी देता है। वास्तव में ऐसी स्थिति में हम दृष्टिपटल-प्रतिमा के आकार को दूरवर्त्ती परिचित वस्तु के संकेत के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। ऐसा संकेत, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एकनेत्री गहराई संकेत—रेखीय परिदृश्य का एक प्रकार है।

प्रदीप्ति-स्थैर्य ( Brightness Constancy )।

दृश्यमान वस्तुएँ भी अपनी सफेदी, भूरेपन या कालेपन की मात्रा के अनुसार समस्थित प्रकट होती हैं। यह प्रदीप्ति-स्थैर्य उस प्रकाश से स्वतंत्र है, जिसके प्रभाव से हम वस्तुओं को देखते हैं। वे वस्तुएँ अथवा सतहें, जो तेज प्रकाश में श्वेत प्रकट होती हैं, मंद प्रकाश में भी श्वेत ही दृष्टिगत होती हैं। इसी प्रकार मंद प्रकाश में, जो वस्तु काली दृष्टिगोचर होती है, तीव्र प्रकाश में भी काली ही दृष्टिगत होती है। कोयला सूर्य के बहुत तीव्र प्रकाश में काला ही दृष्टिगत होता है, जब कि बर्फ भी रात्रि में श्वेत ही दिखायी देती है। प्रदीप्ति-स्थैर्य का एक अन्य उदाहरण है एक सफेद कागज, जिसका एक भाग छाया में पड़ा हो। हम कागज को एक सार सफेद देखते हैं, हम छाया में पड़े भाग को भूरा नहीं देखते, वरन् छाया-में-पड़ा-सफेद देखते हैं, यदि हम पहले, संक्षेप में, प्रकाश के प्रारंभिक भौतिकी के ज्ञान को देख लें, तो हम समझ सकते हैं कि प्रदीप्ति अपेक्षाकृत क्यों समस्थित रहती है। जब प्रकाश सतह या वस्तु पर पड़ता है, प्रकाश का कुछ अंश प्रतिबिंबित होता है और कुछ अवशोषित। पूर्ण श्वेत वस्तु उस पर पड़ने वाले पूर्ण प्रकाश को प्रायः प्रतिबिंबित करती है, जब कि पूर्ण काली वस्तु लगभग पूरे आपाती प्रकाश को अवशोषित कर लेती है। भूरेपन के विविध रूप आपाती प्रकाश के भिन्न प्रतिशतों को प्रतिबिंबित करते हैं और शेष का अवशोषण कर लेते हैं। प्रतिबिंबित प्रकाश जितने प्रतिशत अधिक होगा, उतना ही भूरापन कम होगा। सतह पर प्रतिबिंबित होने वाला कुल आपाती प्रकाश का प्रतिशत 'काशानुपात' (Albedo) कहलाता है।

इस पृष्ठभूमि में अब हम प्रदीप्ति-स्थैर्य को कुछ अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। यद्यपि प्रकाश के परिवर्तन के साथ-साथ वस्तुओं की पूर्ण प्रदीप्ति (**Abso-**

lute brightness ) भी परिवर्तित होती है, किंतु उनके काशानुपात में परिवर्तन नहीं होता। लगभग श्वेत-सी वस्तु जो सूर्य के प्रकाश में आपाती प्रकाश के ९० प्रतिशत को प्रतिबिंबित करती है, वह कमरे के उपलब्ध मंद प्रकाश में भी ९० प्रतिशत को प्रतिबिंबित करती है। इस काशानुपात को हम देखते हैं। जब कि यह प्रकाश की भिन्न अवस्थाओं में समस्थित रहता है और वस्तु के काशानुपात तथा उसके पर्यावरण का अंतर प्रकाश की विभिन्नता में भी समस्थित रहता है, तब हम प्रकाश के निरपेक्ष परिवर्तन को न देख कर इन समस्थित कारकों को देखते हैं।

चाक्षुष स्थिरता (Perceptual Stability)।

चाक्षुष स्थैर्यता पूर्ण नहीं हैं। अति अनुकूल परिस्थितियों मे भी हमारा प्रत्यक्षण, हम वस्तु को जिस रूप में जानते हैं और दृष्टिपटल पर उसका जो संवेदनात्मक बिंब होता है, उनके मध्य, एक समझौता है। वस्तुएँ जब हमसे दूर होती हैं, तो वे कुछ छोटी प्रकट होती हैं और श्वेत वस्तुएँ छाया में पूर्ण श्वेत दृष्टिगत नहीं होतीं। इस अर्थ में स्थैर्य केवल सापेक्ष होती हैं। हमारा वस्तुओं का प्रत्यक्षण, दृष्टिपटल पर पड़ने वाले बिंबों के आकारों अथवा सामान्य संवेदनात्मक उद्दीपनों की अपेक्षा वास्तविक वस्तुओं के अधिक तदनुरूप होता है।

मनुष्य रूप में हम प्रत्यक्ष स्थैर्य से अनेक लाभ उठाते हैं। अन्यथा इस विश्व में रहना अति कठिन हो जाता, जहाँ हमारे सिर के थोड़ा-सा घूमने के साथ ही भिन्न दूरी और भिन्न स्थिति में वस्तुओं का आकार और परिमाण बदल जाता है। कल्पना कीजिए कि वह स्थिति कैसी होगी, यदि आपके मित्रों और सहयोगियों के अनेक रूप और आकार होते जो इस पर निर्भर करते कि वे आपसे कितनी दूरी पर हैं और आप किस कोण से उन्हें देख रहे हैं। अथवा उस जगत की कल्पना कीजिए, जहाँ वस्तुओं के वर्ण सूर्य के प्रकाश और मौसम के परिवर्तन के साथ परिवर्तित हो जाते। आकार, प्रदीप्ति और वर्ण-संबंधी हमारे प्रत्यक्षण की सापेक्ष स्थैर्यता हमारे जगत को प्रत्यक्ष स्थैर्य देती है, जो इसके बिना संभव न होती।

ज्ञानेंद्रियों में परस्पर-सहयोग (Co-operation among the Senses ) :

हमने अब तक जो कहा है, उसका अधिकांश चाक्षुष प्रत्यक्षण के विषय में था। यह स्वाभाविक है; क्योंकि हममें से अधिकांश व्यक्तियों के लिए दृष्टि सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ज्ञानेंद्रिय है। यदि हम चौपाए प्राणी होते और चलते समय हमारा सिर पृथ्वी के निकट रहता, जहाँ विविध प्रकार की गंध मिलती हैं, तो संभवतः हमारे प्रत्यक्षीकरण में घ्राणेंद्रिय का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान होता। किंतु, आज के हमारे स्वरूप में हमारा प्रत्यक्ष-जगत दृष्टिपरक है।

## गतिपरक (मांसपेशीय) और स्थिर (गतिहीन ) इंद्रियाँ ( Kinesthetic & Static Senses ) :

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार मांसपेशीय (गतिपरक) इंद्रियाँ विश्व की गहराई को देखने में सहयोग देती हैं—नेत्र की गतियों के द्वारा सीधे संकेत के रूप में ही नहीं, वरन् विश्व में चलने और घूमने से भी दूरी का अवबोध होता है। कान की भीतरी स्थिर इंद्रिय का भी कुछ सहयोग रहता है। यह मस्तिष्क को सिर की गतियों की ओर पृथ्वी के गुरुत्व से सिर के संबंध की सूचनाएँ देती है। ये सूचनाएँ देने में यह हमारे दृष्टिगत जगत की स्थिरता के लिए उत्तरदायी है; क्योंकि हमारे सिर को घुमाने या हमारे दृष्टि प्रत्यक्षीकरण में मांसपेशीय एवं स्थिर इंद्रियों के इस झुकाने के साथ जगत घूमता या उलटता नहीं है। इस सहयोग का एक रोचक उदाहरण 'चंद्र-भ्रम' है।

संभवतः आपने कभी इस पर ध्यान दिया होगा कि जब चंद्रमा ठीक क्षितिज पर होता है, तब वह कितना बड़ा दृष्टिगत होता है। हमारे सिर पर जब चंद्रमा होता है, उसकी अपेक्षा वह कम-से-कम कई गुना बड़ा दिखायी देता है। यथार्थतः न चंद्रमा के आकार में कोई परिवर्तन होता है और न दूरी में। आकार में दृष्टिगत परिवर्तन प्रधानतः भ्रम है। अनेक अन्य भ्रमों के समान, चंद्र-भ्रम भी अब तक पूर्णतः समझा नहीं गया है, परंतु हम जानते हैं कि इसमें मांसपेशीय और स्थिर इंद्रियाँ सन्निहित हैं। इसे हम इस प्रकार जानते हैं; क्योंकि अपनी स्थिर और मांसपेशीय इंद्रियों के उद्दीपन में परिवर्तन द्वारा हम चंद्र-भ्रम विलुप्त कर सकते हैं ( बोरिंग, १९४३ )। इसे आप स्वयं देख सकते हैं। अगली बार जब आप क्षितिज पर चंद्रमा को देखें, तो झुक कर अपनी टाँगों के बीच से उसे देखें, आप देखेंगे कि उसका आकार चंद्रमा का संकुचन हो गया है और उसका आकार उतना ही बड़ा दिखायी देता है, जितना सिर पर आने पर दिखायी देता।

प्रत्यक्ष जगत के प्रत्यक्षीकरण को दृष्टि के अतिरिक्त अन्य इंद्रियाँ कैसे सुधारती हैं, इस तथ्य को जानने के अन्य साधन भी हैं। यदि अंधेरे कमरे में बैठे व्यक्ति से एक प्रकाशित डंडे को ऊर्ध्व रूप से रखने के लिए कहा जाए, वह इसे पर्याप्त परिशुद्धता से रख सकता है (वापनेर एट० एल०, १९५१)। अब यदि एक प्रयोगकर्त्ता विद्युत्-धारा से प्रयोग-पात्र की गर्दन को बाईं ओर से—गर्दन की मांस-पेशियों में कृत्रिम रूप से गतिबोधक संवेदनाओं को उत्तेजित करने के अभिप्राय से—उस समय उद्दीप्त करे, जब कि वह उस डंडे को ऊर्ध्व रूप में रख रहा हो, तो उसका उर्ध्व प्रत्यक्षीकरण बाईं ओर मुड़ जाएगा। यदि उसकी गर्दन के दाएँ भाग को

उद्दीप्त किया जाए, तो ऊर्ध्व दाईं ओर मुड़ जाएगा। इसी प्रकार से नेत्रों से दृष्टिगत ऊर्ध्व पर अन्य इंद्रियों के प्रभाव को दिखाया जा सकता है। उदाहरणार्थ यदि एक प्रयोगकर्त्ता ध्वनि सुनाने के लिए केवल एक कान पर आकर्णक का प्रयोग करता है, तो प्रयोग-पात्र अनुभव करता है कि दृष्टिगत ऊर्ध्व ध्वनि की ओर मुड़ जाता है।

भ्रम (.Illusions) :

मस्तिष्क जिन संकेतों को प्रायः विविध ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त करना है, वे परस्पर एक दूसरे को पुष्ट करती हैं तथा एक दूसरे की सहाय्य होती हैं। जिगशा पहेली के विविध खंडों के समान ये भी एक साथ सुव्यवस्थित ढंग से आवद्ध रहती हैं। यह संवेदनात्मक सूचना भी हमारे पूर्व अनुभवों से प्राप्त ज्ञान और धारणाओं में मिल जाती है। ये सब मिलकर एक स्पष्ट अर्थ-पूर्ण और संपूर्ण प्रत्यक्षज्ञान को उत्पन्न करने में सहयोग देती हैं।

हमारे संवेदनात्मक संकेत (सूचनाएँ) जब एक दूसरे से अथवा जगत-संबंधी हमारे ज्ञान और धारणाओं से आबद्ध नहीं होते—जैसे कभी-कभी वे नहीं होते, तब क्या होता है ? अनेक बातें हो सकती हैं। हम भ्रम अनुभव करेंगे अथवा हम संदेह-ग्रस्त हो जाएँगे और हमारे प्रत्यक्षीकरण अस्पष्ट तथा अस्थिर हो जाएँगे।

उदाहरण के लिए चित्र १०.१७ को देखिए। एक युवा व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा दुगुना लंबा दिखायी देता है, फिर भी दोनों की गठन ठीक प्रतीत होती है। क्या छोटा व्यक्ति बालिश्तिया है ? वैसा तो वह दिखायी नहीं देता। फिर भी आकार-संबंधी संवेदनात्मक संकेत हमें संदिग्ध करते हैं कि वह बालिश्तिया है। यहाँ हमें किस प्रकार का भ्रम होता है ?

इस भ्रम की कुंजी यह है कि यह कक्ष सामान्य नहीं है, यह आपके अनुभवों से सुपरिचित समकोणीय कक्ष नहीं है। चित्र १०.१८ प्रदर्शित करता है कि इस कक्ष का निर्माण किस प्रकार हुआ था। जब कक्ष का द्वार बंद करके और उसके एक छोटे छिद्र से आप कक्ष को देखें, तो वह सामान्य प्रतीत होता है। यह कक्ष इस प्रकार से इसलिए बनाया गया था कि सामान्य कक्ष से साधारण रूप में पाए जाने वाले गहराई और स्थिति के एकनेत्री संकेतों की आप अनुलिपि कर सकें। परिणामस्वरूप यह कक्ष समकोणीय प्रतीत होता है। दोनों व्यक्तियों का आकार एक सदृश है, आपके इस ज्ञान के बाद भी आपको भ्रम होता है। यदि आप कक्ष के भीतर प्रवेश करें, तो यह भ्रम विलुप्त हो जाएगा। उस समय आपके मांसपेशीय और स्थैतिक संवेदन कक्ष के फर्श के ढलवेपन का पता लगा लेंगे और आप स्थिति के वास्तविक रूप को देखेंगे। अब

'लंबा' व्यक्ति दूसरे से लंबा दृष्टिगोचर नहीं होगा। अब आप उसे कमरे के ढलवें कोण में खड़े देखेंगे।
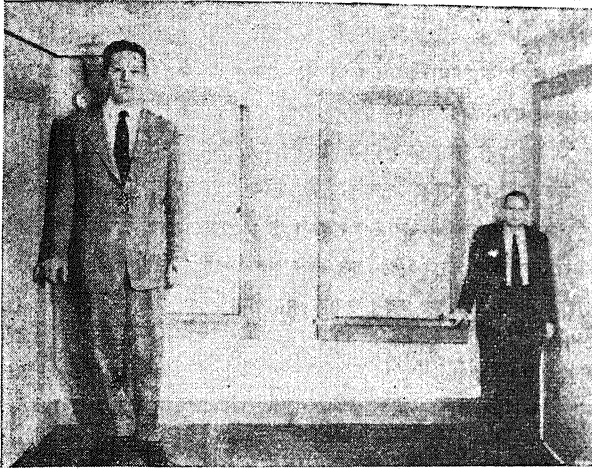
**चित्र १०.१७. आकार में चाक्षुष विभिन्ताओं के स्पष्टीकरण के लिए देखिए चित्र १०.१८ तथा देखिए पुस्तक में इस प्रसंग का विवरण (इंस्टीट्यूट फार इंटरनेशनल सोशल रिसर्च, प्रिंसटन, एन० जे०)।**
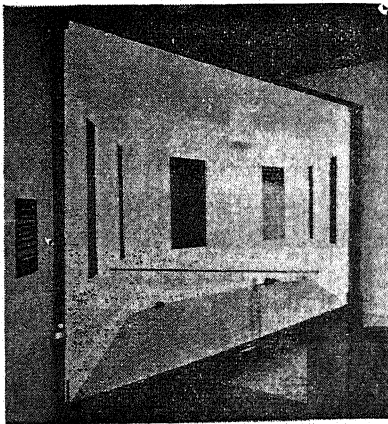
**चित्र १०.१८. विकृत-कक्ष। यह चित्र स्पष्ट करता है कि वह कक्ष, जिसमें चित्र १०.१७ लिया गया था, किस प्रकार बनाया गया था, तथा किस प्रकार कक्ष के आकार एवं उसकी वस्तुओं के संकेतों ने आकार का भ्रम उत्पन्न किया था (इंस्टीट्यूट फार इंटरनेशनल सोशल रिसर्च, प्रिंसटन, एन० जे०)।**

यह उदाहरण दृष्टि-संवेदन में द्वंद्व के संकेतों को स्पष्ट करता है। दो भिन्न संवेदनों में भी ऐसे द्वंद्व हो सकते हैं। इस प्रकार का एक द्वंद्व दृष्टि और स्थैतिक

संवेदनों में ऊर्ध्व के प्रत्यक्षीकरण में होता है। व्यक्ति के झुकने के साथ-साथ दृश्य जगत भी झुक जाता है। वह अपनी दृष्टि और प्रघाणेंद्रियों से जो संकेत प्राप्त करता है, उनमें विरोध हो सकता है। यह विरोध वायुयान के चालकों, गोताखोरों, मोटर-गाड़ी अथवा अन्य परिवहन-चालकों को होता है।

इस विरोध के व्यावहारिक प्रभाव के कारण इसका विस्तार से अध्ययन हुआ और वर्षों तक इस पर अनेक प्रयोग किए गए। इन प्रयोगों की प्रयोग-विधि को चित्र १०.१९ में प्रदर्शित किया गया है। एक व्यक्ति को ऐसी कुर्सी पर बिठाया गया, जो प्रयोक्ता की इच्छानुसार झुक सकती है, और वह कमरा भी, जिसमें वह व्यक्ति बिठाया गया है, चाहने पर झुकाया जा सकता है। प्रयोग-पात्र कभी एक ओर कभी दूसरी ओर तब तक झुकता है, जब तक वह निर्णय नहीं कर लेता कि वह ठीक स्थिति में है अथवा जब तक वह दृश्य जगत को ठीक नहीं देख लेता।
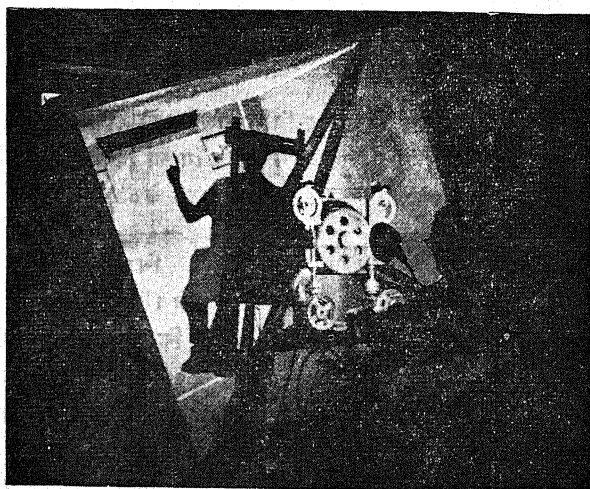
**चित्र १०.१९. दृष्टिक एवं स्थिर संवेदनों में द्वंद्व। जब व्यक्ति और जिसमें वह है वह कक्ष, दोनों ही ऊपर-नीचे हिलते हों, तब 'स्थिर' फलित प्रत्यक्षीकरण विशेषतः एक समझौता या अनुमान होगा। सामान्यतः दृष्टिक प्रत्यक्षीकरण की प्रधानता रहती है, किंतु व्यक्तियों में व्यापक अंतर भी रहता है (बिटकिन, १९५९, डेविड लिंटन, एकाधिकार, १९५०)।**

सामान्यतः इस प्रकार के प्रयोगों के परिणाम स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति दृष्टि और स्थिर संकेतों में समझौता कर लेते हैं, किंतु प्रधानता दृष्टि संकेतों की ही होगी। दूसरी ओर, व्यक्तियों में विशाल वैयक्तिक भिन्नताएँ होती हैं। कुछ दृष्टि संकेतों पर अधिक निर्भर करते हैं और कुछ स्थैतिक पर। प्रत्येक व्यक्ति, जो प्रयोग उसे दिया गया, उस पर अपने निर्णय के अनुसार स्थिर रहा।

## अनुभव और अभिप्रेरण ( Experience and Motivation ) :

प्रत्यक्षीकरण में आनुवंशिकता और पर्यावरण के महत्त्व पर मनोवैज्ञानिक कभी उलझ जाते हैं और कभी इस पर तर्क भी करते हैं। उन्होंने जिज्ञासा प्रकट की 'विश्व को हम कहाँ तक अधिगम द्वारा देखते हैं और कहाँ तक हमारा मस्तिष्क तथा तंत्रिका-तंत्र मिलकर उसे देखने में सहायता करते हैं ?' इस प्रश्न का सामान्य उत्तर भी वही है, जो हमने अन्य मनोवैज्ञानिक योग्यताओं के लिए देखा था ( द्रष्टव्य : अध्याय-२ )। प्रत्यक्षीकरण के कुछ रूपों पर महत्त्वपूर्ण प्रश्न तंत्रिका-तंत्र तथा इसकी संरचना की परिपक्वता पर उत्पन्न होते हैं। कुछ रूपों के लिए अधिगम महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों के मध्य, अधिगम-प्रक्रियाओं तथा चाक्षुष योग्यताओं में परिपक्वता से विकसित परस्पर क्रिया है। सूक्ष्मता से विचार करने पर एक प्रश्न उठता है, इन विविध क्रियाओं द्वारा कौन-सी चाक्षुष योग्यताएँ विकसित होती हैं ?

### परिपक्वता (Maturation) :

प्राय: निश्चित रूप से संवेदनात्मक विभेदन परमावश्यक एवं विभेदी अव-सीमाओं—की सीमाएँ तंत्रिकी एवं संवेदी संरचनाओं द्वारा निर्धारित होती हैं। हम अंधकार में भली प्रकार देखना नहीं सीख सकते अथवा दृष्टि (नजर) में सुधार नहीं कर सकते। हम केवल इतना ही कर सकते हैं कि अपनी संवेदनात्मक योग्यताओं को सबसे अधिक हितकर ढंग से प्रयोग करें। प्रबल उद्दीपन का अवधानात्मक महत्त्व, भूमि-आकृति संबंध, निकटता और सादृश्यता पर आधृत उद्दीपनों का समूहन, विशेष प्रकार के भ्रमों को देखना—ये सब प्रसंग ऐसे हैं, जो हमारे तंत्रिका-तंत्र की संरचना-प्रणाली पर आश्रित प्रतीत होते हैं। हमने कहा है 'प्रतीत होते हैं'; क्योंकि हम इसे निश्चयात्मक रूप से प्रमाणित नहीं कर सकते। हम केवल छोटे बच्चों, आदिम जाति के व्यक्तियों ओर अनेक जंतुओं के व्यवहारों से इन संदर्भों में हमारे अपने सदृश्य प्रत्यक्षीकरण के प्रमाणों की सूचना देते हैं और उनके आधार पर तर्क कर सकते हैं।

गहराई-प्रत्यक्षीकरण की परिपक्वता पर 'दृष्टि-श्रृंग' (Visual cliff) नामक यंत्र की सहायता से प्रयोग किए गए हैं। यह यंत्र एक भारी शीशे के ढक्कन और फर्श का बक्स है और उसकी दीवारों तथा फर्श के कुछ भाग पर चित्रित उपादान प्रयोग

किए जाते हैं, ( द्रष्टव्य, चित्र १०.२० ) । शीशे के फर्श का कुछ भाग यह दिखाने के लिए खुला रखा जाता है कि कई फुट नीचे एक चित्रित फर्श है । प्रयोक्ता गहराई-प्रत्यक्षीकरण के परीक्षनार्थ प्रयोग-पात्र को ढके हुए भाग पर बिठाता है, और देखता है कि क्या वह नीचे के कुएँ की गहराई को देखने तक ऊपर वाले शीशे को पार करता है ? यह परीक्षण किसी भी प्राणी को दिया जा सकता है, जो रेंगना या चलना जानता हो तथा इसका प्रयोग शिशुओं, चूहों, बिल्ली के बच्चों, बकरी के बच्चों और अन्य अनेक जंतुओं पर किया गया है ।
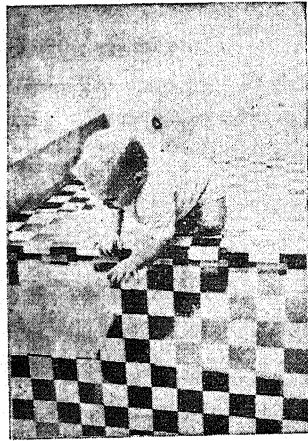
**चित्र १०.२०. दृष्टि-श्रृंग । यह गहराई-प्रत्यक्षीकरण का परीक्षण है, जिसका प्रयोग किसी भी प्राणी, मानव अथवा जंतु पर, जैसे ही वह रेंगने या चलने लगे, किया जा सकता है । इस अवस्था में परीक्षित अधिकांश प्राणियों में पर्याप्त दृष्टिक गहराई होती है, (गिब्सन तथा बाक, १९६०, विलियम वेडिवट, साइंटिफिक अमेरिकन ) ।**
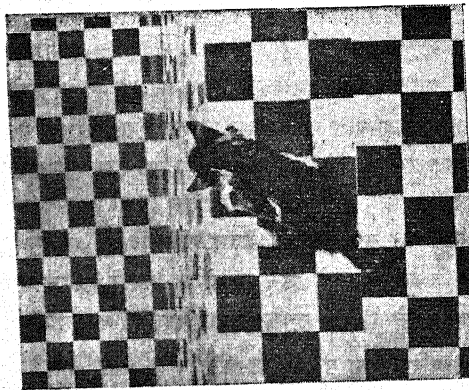
इन प्रयोगों के परिणाम पर्याप्त निर्धारित हैं । कोई भी प्राणी जो इस परीक्षा के लिए चुना जाता है, गहराई को देखने के लिए परिपक्व है, जैसा कि उसकी, शीशे को नीचे की कुएँ की गहराई तक पार करने की, अनिच्छा से स्पष्ट होता है । दूसरी ओर, कुएँ के अपेक्षाकृत छिछला होने पर वह 'दृष्टि-श्रृंग' को पार कर लेगा । रोचक बात यह है कि शिशु और अन्य प्राणी 'उच्च-श्रृंग' (High cliff) को पार करना

अस्वीकार करते हैं, यद्यपि वे शीशे को स्पर्श करते हैं और उस स्पर्श से यह भी बता सकते हैं कि वह उन्हें अवलंब दे सकता है। स्पष्ट है कि स्पर्श और गतिबोधक इंद्रियों पर नहीं, वरन् वे अपने नेत्रों पर विश्वास करते हैं। ऐसे ही प्रयोगों से हम निर्धारित करते हैं कि गहराई-प्रत्यक्षीकरण, सामान्य विकास का अवसर देने पर परिपक्व होता है और प्राणी जब सबसे पहले उसका प्रयोग करने योग्य होता है, जब वह घूम सकने योग्य होता है—तब यह उपयोगी प्रमाणित होता है। अनुमानतः यह चाक्षुष विकास परिपक्वता का विषय है; क्योंकि प्राणी के रेंगने या चलने से पूर्व दिक्ज्ञान सीखने की संभावना कम होती है।

## प्रारंभिक अनुभव (Early Expericnce) :

प्रत्यक्षीकरण पर प्रारंभिक अनुभवों के प्रभाव के अध्ययन में (जिनका विवेचन अध्याय २ में किया गया है), हम देख चुके हैं कि कुछ अनुभव, अर्थात् अधिगम, व्यक्ति के चाक्षुष विकास में पर्याप्त अंतर करते हैं। अनुभवहीन रखने पर चिंपांजी दिक्-पर्यावरण में प्रत्यक्ष वस्तुओं का उपयुक्त व्यवहार नहीं कर सके और इससे उनके चाक्षुष अधिगम में प्रचुर बाधा भी पहुँची। कुत्ते और चूहे भी अनुभवों से पृथक् रखने पर चाक्षुष क्रियाओं में पिछड़ जाते हैं। दूसरी ओर, इसकी बहुत संभावना है, जैसा कि अभी हम देखेंगे कि जंतुओं की ऐसी भी उपजातियाँ हैं, जो इस संबंध में भिन्न होती हैं। पक्षियों और चूहों में दिक्-प्रत्यक्षीकरण चिंपांजी और मनुष्यों की अपेक्षा संभवतः कहीं अधिक परिपक्वता पर निर्भर करता है।

## प्रतिवर्तित (उल्टा) जगत (Reversed Worlds) :

इसके अन्य प्रमाण भी हैं कि हमारा दिक्-प्रत्यक्षीकरण हमारे अनुभवों पर पर्याप्त रूप से आधृत है। इनमें से कुछ इतने सामान्य हैं कि हमारा ध्यान भी उनकी ओर नहीं जाता। संभवतः यदि कभी आप सिनेमा-गृह में विलंब से पहुँचे हों और नीचे जाकर सामने की किनारे की कुर्सी पर बैठे हों, तो आपने इसे अनुभव किया होगा तथा ध्यान दिया होगा कि चित्रपट पर दिखायी देने वाले व्यक्ति विकृत दृष्टिगत होते हैं, उनके सिर फैले हुए और चपटे लगते हैं। किंतु, यदि आप स्मरण करें, तो आपको ज्ञात होगा कि वह अस्पष्टता क्षणिक थी। थोड़ी देर चित्र देखने पर संभवतः वे विकृतियाँ विलुप्त हो गई थीं। स्थिति की ज्यामिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था, परंतु आप इन विकृत बिंबों को अपने पूर्व अनुभवों के अनुरूप देखने लगे। इस प्रकार का प्रत्यक्षीकरण में परिवर्तन बहुत कुछ उसी प्रकार का है, जो परिमाण और आकार समस्थिति में होता है।

ऐसे प्रयोगों से, जिनमें व्यक्तियों का प्रत्यक्ष जगत प्रतिवर्तित होता है, अधिक स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं। प्रत्येक नेत्र के सामने लेंस प्रणाली के प्रयोग द्वारा, व्यक्ति

प्रत्यक्ष बिंब को दृष्टिपटल पर उल्टा कर सकता है—वास्तव में वे पहले ही उलटे होते हैं ( द्रष्टव्य, चित्र १०.१५ ) और लेंस उन्हें सीधे ऊपर कर देते हैं—जिससे व्यक्ति को वह दृश्य नीचे की ओर उलटा हुआ दृष्टिगोचर होता है। लेंस व्यक्ति के लिए दाहिने और बाएँ में भी परिवर्तन कर देते हैं। साठ वर्ष पूर्व दीर्घ काल तक ऐसे लेंस को पहनने का प्रयोग किया गया था। तब से यह प्रयोग अनेक बार दोहराया गया है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की रिपोर्ट में कुछ अंतर मिलता है, परंतु उनके कथनों से जो सामान्य तथ्य संग्रहित होता है, वह इस प्रकार है—

प्रथम बार लेंस लगाने पर उनका प्रभाव पर्याप्त भ्रांतिपूर्ण होता है। व्यक्ति दिशा-भ्रम में पूर्णतः खो जाता है और उसकी सुसंगठित दृष्टि पूर्णतः विकृत हो जाती है। वह जब-जब सिर घुमाता है, उसके चतुर्दिक सारा विश्व उसे डोलता (तैरता) दृष्टिगत होता है। चलना और इधर-उधर घूमना कठिन हो जाता है। जब व्यक्ति चलने का प्रयत्न छोड़ कर कुर्सी पर बैठना चाहता है, जो उसे बाईं ओर पड़ी दिखायी देती है, वह दाईं ओर चलना है और जाकर उसमें सीधे गिर जाता है। बाईं ओर दिखायी देने वाली वस्तु को उठाने के लिए उसे दाहिनी ओर चलना सीखना पड़ता है। ध्वनियाँ भी उसे विपरीत दिशा से आती प्रतीत होती हैं। दो-तीन दिनों के उपरांत विश्व स्थिर होने लगता है। चलना और विपरीत दिशा से वस्तुओं को लेना अधिक सरल तथा स्वतः प्रवृत्त होने लगता है। अब सिर घुमाने पर उसे जगत डोलता दृष्टिगत नहीं होता। ध्वनियाँ अब विपरीत दिशा से नहीं, वरन् जहाँ वस्तु पड़ी दिखायी देती है, वहीं से आती प्रतीत होती हैं। एक प्रयोग-पात्र आस्ट्रियन प्रोफेसर लेंस लगाए हुए ही प्रतिदिन की भाँति साइकिल पर अपने कालेज जाता और संतोषजनक ढंग से वह अपना कार्य करता था।

इस प्रकार के एक प्रयोग में ( स्नाडर तथा प्रोंको ) उलटे लेंस ३० दिन तक पहने गए :—

> "प्रयोग को प्रारंभ करने से पूर्व प्रयोग-पात्र की दृष्टि-गतियों का कई रूपों में परीक्षण किया गया। एक परीक्षण था कार्डों को वर्गीकृत करने का, प्रयोग-पात्र अलग-अलग कार्डों को उनके लिए निर्धारित बक्सों में डालता था। इस क्रिया को पूर्ण करने का काल लेंस पहनने से पूर्व, मध्य में, और उसके उपरांत परिमापित किया, जिसका परिणाम चित्र १०.२१ में प्रदर्शित है। लेंस लगाते ही क्रिया में बहुत अधिक विकृति प्रारंभ हुई, किंतु ५ दिन में वह पुनः पूर्वस्थिति पर पहुँच गई। पुनः जब लेंसों को हटाया गया, क्रिया में कुछ विकृति हुई; किंतु शीघ्र ही प्रयोग-पात्र ने अपनी सामान्य योग्यता प्राप्त कर ली।"

अधिकांश प्रयोगों में प्रयोग-पात्रों ने कहा कि वे धीरे-धीरे उलटे दृश्यों को देखने के अभ्यस्त हो जाते हैं, परंतु वह उन्हें पूर्णतः सामान्य कभी दृष्टिगोचर नहीं होते। संभवतः यह इसलिए सहज हो सकता है कि अनेक वर्षों तक बराबर सामान्य दृष्टि का प्रयोग करने के बाद उन्होंने केवल कुछ दिनों या कुछ सप्ताहों के लिए लेंस लगाए, अथवा इसलिए कि वे सदैव सतर्क रहते हैं कि उन्होंने लेंस लगाए हैं और वे अन्य लोगों से भिन्न देख रहे हैं अथवा इसलिए कि सामान्य प्रत्यक्षीकरण की सहज प्रवृत्ति होती है, जो केवल आंशिक रूप से लेंसों द्वारा प्रभावित होती हैं, वास्तविक हेतु हम नहीं जानते।

व्यक्ति जगत को ऊपर से नीचे की ओर उलटा देखने के अभ्यस्त हो सकते हैं।
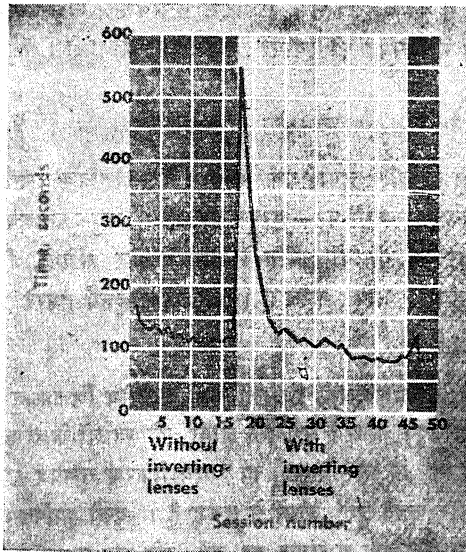
**चित्र १०.२१ दृष्टिक जगत को उलटने का मनोप्रेरक कार्य पर प्रभाव। यह ग्राफ कार्डों की गड्डियों के बक्स में वर्गीकरण करने के लिए अपेक्षित औसत काल प्रकट करता है। प्रयोग-पात्र के प्रतिवर्ती लेंस लगाते ही समय में अत्यधिक वृद्धि होती है, किंतु यह पुनः प्राकृत स्थिति को कुछ नियत कालांतर के उपरांत प्राप्त करता है। प्रतिवर्ती लेंस को पृथक् करते ही जो क्षणिक एवं किंचित विकार हुआ, उस पर ध्यान दें ( स्नाइडर एवं प्रोंको के अनुसार, १९५२ ) :**

इस स्थिति का सर्वश्रेष्ठ विवरण हमें एक प्रयोग-पात्र के कथन से प्राप्त होता है, जब कि उससे प्रश्न किया गया कि—'क्या वह विशेष दृश्य उसे उलटा दिखायी देता था ?' उसने कहा—'काश आप यह प्रश्न मुझसे न करते, प्रश्न करने से पूर्व तक सब वस्तुएँ ठीक थीं। अब मुझे स्मरण आता है कि मेरे लेंस लगाने से पूर्व वे कैसी

दिखायी देती थीं, मुझे उत्तर देना ही होगा कि वे मुझे 'अब' उलटी दीख पड़ती हैं। किंतु आपके प्रश्न करने तक मैं इसके प्रति पूर्णतः अनभिज्ञ था और इस दिशा में मैंने कभी विचार नहीं किया था कि वस्तुएँ ऊपर की ओर सीधी हैं अथवा नीचे की ओर उलटी हैं।'

ये प्रयोग निश्चित रूप से निर्देशित करते हैं कि मनुष्य ऊपर से नीचे की ओर उलटी तथा बाईं से दाईं ओर विपरीत दुनिया को देखने में समायोजित हो सकता है और कुछ ही समय में उसमें पर्याप्त अच्छी तरह कार्य कर सकता है।

ध्वनि-जगत के विपर्यय पर भी प्रयोग किए गए हैं। इसमें लेंसों के स्थान पर 'सूडोफोन' नामक यंत्र का प्रयोग होगा। इसमें दो नलिकाएँ लगी रहती हैं, जो एक कान से दूसरी दिशा के कान तक ध्वनि ले जाती हैं। इसके परिणामों की तुलना प्रतिवर्त्ती लेंसों के परिणामों से की जा सकती है। प्रारंभ में श्रवण-प्रत्यक्षीकरण विकृत होता है, परंतु कुछ ही दिनों में विपर्यय को स्वीकार कर लिया जाता है।

## अधिगम (Learning) :

हमारे अनेक प्रत्यक्षज्ञान पूर्णतः हमारे पूर्व अधिगम पर—विविध वस्तुओं और घटनाओं के साहचर्य से अर्जित अनुभवों पर—आधृत होते हैं। अनुकूलन एवं प्रत्यक्ष अधिगम द्वारा व्यक्तियों, वस्तुओं, शब्दों, ध्वनियों इत्यादि और संवेगों, क्रियाओं, पुरस्कारों तथा दंडों में साहचर्य स्थापित करते हैं। अर्जित साहचर्य हमारे प्रत्यक्षीकरण को परिवर्तित कर देता है।

उस व्यक्ति के लिए बंदूक का अर्थ, जिसका कोई आत्मीय शिकार-दुर्घटना में मर गया हो, उस बालक के बंदूक के अर्थ से भिन्न होगा, जो ग्वालों के लड़कों द्वारा उत्तेजित किया गया है। बालक के लिए बंदूक का प्रत्यक्षीकरण सुखप्रद उत्तेजना, विस्तृत युद्धों की कल्पना और कूदते हुए घोड़ों से संबद्ध है। दुखी व्यक्ति के लिए बंदूक का प्रत्यक्षीकरण दुःख और भय से संबद्ध था, वह उसे भूल जाना चाहता है। हम ऐसे अनेक उदाहरण सोच सकते हैं : उदाहरणार्थ, मैं जिस ध्वनि को सुन रहा हूँ वह मात्र ध्वनि नहीं है, वह सीढ़ियों की चरचराहट की ध्वनि है, जो मेरी पत्नी के भंडारगृह से लौटने का संकेत है। बेकरी की दूकान में सेव पाई ( एक विदेशी खाद्य वस्तु ) दिखायी देने से पूर्व ही उसकी सुगंध से पूर्वज्ञान के फलस्वरूप व्यक्ति के मुँह में पानी भर आता है। उसे देखने मात्र से उसे अपने बाल्यकाल का स्मरण आता है, जब वह अपनी दादी के रसोईघर में उस खाद्य को पाता था तथा सेव और पाई से संबंधित अन्य अनुभवों की स्मृति भी उसे आती है।

प्रत्यक्षीकरण पर पूर्वानुभवों का प्रभाव प्रायः अप्रतिवर्त्ती होता है। स्थायी रूप से अधिगत व्यवहार हमारे अनुवर्त्ती प्रत्यक्ष व्यवहार को सदा परिवर्तित एवं प्रभावित करता है।

किसी वस्तु को अकस्मात् देख कर तत्काल उसे पहचानने की असमर्थता का अनुभव हममें से बहुतों ने किया होगा, वस्तु को पहचानने के एक पल पूर्व वह वस्तु, पहचानने के बाद के अपने स्वरूप से, नितांत भिन्न प्रतीत होती है। किंतु, पहचान लेने के उपरांत यह सोचना हमारे लिए असंभव हो जाता है कि संदिग्ध क्षण में हमारा प्रत्यक्षीकरण उस वस्तु के संबंध में क्या था। इसी प्रकार प्रशिक्षित जीवाणु-वैज्ञानिक उस रूप में माइक्रोस्कोप में स्लाइड नहीं देख सकता, जिस रूप में वह अपने छात्र-जीवन में देखता था। उस समय उसके लिए वह स्लाइड विविध रंगों और विचित्र आकारों का अस्त-व्यस्त मिश्रण मात्र थी। अब जो रूप उसका वह देखता है, वह उसके विकसित ज्ञान का परिणाम है, जिसे उसने सूक्ष्म विभेदन द्वारा धीरे-धीरे सीखा है। अब उसका प्रत्यक्षीकरण अनिश्चित नहीं रहा। अब वह आकार और रंग के सब प्रकार के अंतरों को समझता है और उनके अर्थों को जानता है।

यह देखने के लिए कि किसी उद्दीपन का ज्ञान किस प्रकार प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करता है, एक सरल प्रयोग आप कर सकते हैं :

एक मित्र से समाचारपत्रों के ऐसे अनेक सरलेखों (Headlines) को काटने के लिए कहें, जिनसे आप अपरिचित हैं। ध्यान रखें कि विविध सरलेख एक ही आकार के हों। तदंतर अपने मित्र से कहें कि वह उनमें से एक सरलेख आपके देखने के लिए पकड़ कर खड़ा हो जाए। यदि आप उसे पढ़ सकें, तो अपने मित्र से कुछ और दूरी पर जाने और दूसरे सरलेख का प्रयोग करने के लिए कहें। इस प्रयोग को दोहराते रहें और प्रत्येक बार नवीन सरलेख का प्रयोग तब तक करें, जब तक कि वह मित्र इतनी दूर न हो जाए कि आप उसके हाथ के सरलेख के शब्द न पढ़ सकें। इस दूरी को रख कर अपने मित्र से कहें कि वह आपके लिए सरलेख को पढ़े, तब आप पुनः उसे देखें। आप अनुभव करेंगे कि इस बार आप स्वयं उसे पढ़ सकते हैं। आपके इस ज्ञान ने कि उसमें क्या लिखा है, आपके प्रत्यक्षीकरण को परिवर्तित कर दिया। पहले जिसे अस्पष्ट धब्बे के रूप में देखा था, वह अब अर्थपूर्ण शब्दों के रूप में दिखायी देता है।

### अभिप्रेरण और पुरस्कार (Motivation & Reward) :

अधिगत और अनधिगत दोनों प्रकार के अभिप्रेरण भी दृश्यों के प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करते हैं। यह सामान्य ज्ञान है और इसे प्रमाणित करने के लिए शायद ही कभी तर्क का सहारा लेना पड़ता है। जहाँ व्यक्ति संवेगात्मक रूप से संपृक्त होते हैं वहाँ वे उसे ही देखते हैं, जिसे वे देखना चाहते हैं। उसे ही सुनते हैं, जिसे सुनना

चाहते हैं, और उसी पर विश्वास करते हैं; जिस पर करना चाहते हैं । प्रेम अंधा होता है और प्रेमासक्त व्यक्ति अपने प्रेम-पात्र के दोष देखने में प्रायः असमर्थ रहता है। दूसरी ओर तटस्थ प्रेक्षक, जैसे माता-पिता, के लिए वे दोष अति दुःख के साथ स्पष्ट देखे जाते हैं । उसके माता-पिता 'अपने जीवन में नहीं समझ सकते कि वह अपनी प्रेमिका में क्या देखता है ।' ऐसे उदाहरण प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित करने वाले वैयक्तिक प्रेरकों और मूल्यों के केवल कुछ दृष्टांत प्रस्तुत करते हैं ।

साधारण व्यक्ति द्वारा स्पष्ट समझी जाने वाली अनेक बातों को हमें सावधानी से स्वीकार करना चाहिए। इस उदाहरण में साधारण व्यक्ति का 'सामान्य ज्ञान' तत्त्वतः ठीक है। हमारी अपनी इच्छाएँ एवं अर्जित मूल्य हमारे प्रत्यक्षीकरण को प्रभावित कर सकते हैं । निम्नलिखित प्रयोग पर विचार कीजिए (लैंबर्ट एट० एल०, १९४९ ) ।

> "नर्सरी स्कूल के तीन से पाँच वर्ष की आयु के बच्चों के समक्ष एक मशीन प्रस्तुत की गई, जिस पर धुरी थी । उन्हें धुरी को १८ बार घुमाने के लिए एक लकड़ी की डंडी दी गई। छिद्र में डंडी के जाने पर वे कैंडी (एक प्रकार की मिठाई) प्राप्त कर सकते थे । प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व बालक ने डंडी की लंबाई को एक सफेद मंडलक से तुलना करके नापा, मंडलक की लंबाई को प्रयोक्ता तब तक परिवर्तित करता, जब तक कि बालक यह नहीं कहता कि दोनों वस्तुएँ समान लंबी हैं। पुनः डंडी से धुरी को घुमाने के लिए सब बच्चों को कैंडी का पुरस्कार मिलने के उपरांत डंडी को नापा गया । बच्चों को अब डंडियाँ बहुत लंबी प्रतीत हुईं । तदंतर प्रयोक्ता ने विलोपन प्रक्रिया का प्रयोग किया, जिसमें बच्चों को धुरी घुमाने के लिए कैंडी नहीं दी गई । डंडियों की लंबाई पुनः नापी गई । वह सिकुड़ कर फिर पूर्ववत् हो गई । पुनः बच्चों को कैंडी से पुरस्कृत किया गया और पुनः डंडियों की लंबाई बढ़ गई ।"

यह उदाहरण, ऐसे अनेक उदाहरणों में से एक है, जो स्पष्ट करता है कि डंडी को मूल्य प्राप्त हो गया—बालक की चाह को वह व्यक्त करती और मूल्यहीन स्थिति में वह लंबी प्रतीत होती। यह प्रयोग इस सामान्य निर्णय की पुष्टि करता है कि व्यक्ति का अभिप्रेरण लंबाई-जैसी सरल भौतिक विशेषताओं के प्रत्यक्षीकरण को भी प्रभावित करता है ।

सामान्यतः हमारे सामाजिक एवं परस्पर संबंधों-जैसी जटिल स्थितियों को हमारी आंतरिक इच्छाएँ एवं हमारे दृष्टिकोण अत्यधिक प्रभावित करते हैं। हमारे निश्चित उद्देश्य हमें प्रत्यक्षीकरण की स्वतंत्रता की विशेष सुविधा नहीं देते । प्रत्येक

व्यक्ति उन्हें उसी प्रकार से देखता है। मेज, कुर्सी, पुस्तक-पुटी इसी रूप में इन्हें सब देखते हैं, ऐसा विचित्र व्यक्ति जो इस रूप में इन वस्तुओं को नहीं देख पाता, मनश्चिकित्सक के कार्यालय में पहुँचा दिया जाता है। दूसरी ओर, सहभोज, गोष्ठियों और मित्रों एवं साथियों से मिलन-जैसी सामाजिक स्थितियाँ प्रायः अनिश्चित एवं अस्पष्ट होती हैं। भौतिक वस्तुओं की अपेक्षा ऐसी स्थितियों का हमारा प्रत्यक्षीकरण कम स्थायी और कम निश्चित होता है। उदाहरणार्थ, कितनी बार हम सोचते रहते हैं कि मित्र के 'उस कथन का क्या अभिप्राय था ?' हम सब ऐसी स्थितियों को स्मरण कर सकते हैं, जिनसे एक कथन को कुछ लोगों के द्वारा अपमानजनक और दूसरों के द्वारा प्रशंसात्मक देखा गया हो। हममें से अधिकांश ऐसी स्थिति के कभी-न-कभी शिकार हो चुके हैं, जब हमारे कथन को अन्यथा अर्थ में और अपनिर्वचन रूप में लिया गया है।

## सारांश

१. प्रत्यक्षण उद्दीपनों और उनके अर्थों का विभेदन तथा विश्लेषण करने वाला प्रक्रम है। यह फोटोग्राफिक प्रतिकृति नहीं है, वरन् यह उद्दीपक स्थिति के कुछ तत्त्वों को छोड़ देती है और पूर्व-अनुभवों से उसमें कुछ अर्थ-वृद्धि कर देती है।

२. प्रत्यक्षण संवेदनात्मक विभेदन द्वारा सीमित होता है। यह प्रायः दस भिन्न इंद्रियों द्वारा होता है। प्रत्येक इंद्रिय का एक संग्राहक होता है, जो विशेष प्रकार की ऊर्जा तथा उद्दीपन के विन्यास के प्रति संवेदनशील होता है। उद्दीपन की न्यूनतम ऊर्जा जिसका पता लग सकता है, परमावश्यक सीमा है। दो उद्दीपनों का विभेद हो सकने वाला अंतर विभेदी सीमा है।

३. गुण उद्दीपन की दृष्ट विशेषता या रूप है। यह उद्दीपन की भौतिक विशेषताओं पर आधारित है, किंतु वही नहीं है। प्रत्येक गुण के दृष्ट और भौतिक परिमाण को मापित करने के लिए संवेदनात्मक मापों का निर्माण हो सकता है।

४. कुछ परिस्थितियों में व्यक्ति बिना जाने ही अपेक्षाकृत दुर्बल उद्दीपनों को देख लेता है। विशिष्ट संवेदनात्मक प्रत्यक्षज्ञान, अर्थात् ज्ञानेंद्रियों के प्रयोग के बिना प्रत्यक्षज्ञान, निश्चायक नहीं है।

५. अवधान दृष्ट जगत का महत्त्वपूर्ण निर्धारक है। इसका एक ऐसा केंद्र-बिंदु है, जिसमें घटनाएँ स्पष्ट देखी जाती हैं और एक अकेंद्र बिंदु है, जिसमें वे कम स्पष्टता से देखी जाती हैं। यह निरंतर एक उद्दीपन से दूसरे पर अंतरित होता रहता है।

६. अवधान को नियंत्रित करने वाले वाह्य कारक हैं—(अ) उद्दीपनों की प्रबलता और आकार (ब) उद्दीपन और उसकी पृष्ठभूमि के मध्य विषमता (स)

पुनरावृत्ति और (द) गतिशीलता। अवधान को नियंत्रित करने वाले आंतरिक कारक हैं (इ) अभिप्रेरक, इच्छाएँ या रूचियाँ (फ) किसी विशेष उद्दीपन के लिए तत्परता अथवा प्रत्याशा।

७. चाक्षुष प्रक्रम व्यक्ति के चतुर्दिक वस्तुओं और वस्तु-समूहों का नियोजन करता है। अतः, वह समूहन रूप में उन्हें देखता है (a) जो वस्तुएँ एक साथ निकट हों (b) जो एक दूसरे के सदृश हों (c) जो सममित रूप से व्यवस्थित हों तथा (d) जो अविच्छेद क्रम अथवा प्रतिरूप निर्मित करती हों।

८. वस्तुएँ प्रायः पृष्ठभूमि में चित्रवत् देखी जाती हैं। वस्तुतः इन्हें किसी अन्य रूप में देखना असंभव है। और वह भूमि-आकृति प्रत्यक्षीकरण अपनी बारी में आकृति-रेखा पर निर्भर करता है, जो वस्तु को उसकी पृष्ठभूमि से भिन्न प्रकट करती है।

९. प्रत्यक्षज्ञान पूर्ति भी करता है, जिससे व्यक्ति वस्तु को उसके कुछ भागों के न रहने पर भी देखता है।

१०. आभासीय गति, रिक्त पूर्ति का एक विशेष उदाहरण है; क्योंकि यह गति का वहाँ प्रत्यक्षीकरण है, जहाँ किसी प्रकार की गति नहीं होती, केवल भिन्न अचल वस्तुओं को त्वरित क्रम से प्रस्तुत किया जाता है।

११. नेत्र का दृष्टिपटल चपटा होता है, फिर भी वह द्वि-विमितीय चित्रों को ग्रहण करता है. व्यक्ति त्रि-विमितीय गहराई को भी, गहराई के कुछ संकेतों के प्रयोग द्वारा, देखता है। इनमें से अधिकांश संकेत एकनेत्री होते हैं, कुछ द्विनेत्री तथा कुछ गतिबोधक होते हैं।

१२. प्रमुख एकनेत्री संकेत है—(अ) रेखीय परिदृश्य, (ब) स्पष्टता (स) आच्छादन (द) अस्पष्टता या छाया, एवं (इ) गति।

१३. प्रमुख द्विनेत्री गहराई संकेत है—दृष्टिपटल असमता—यह किंचित अंतर है, जो दोनों नेत्रों पर एक ही दृश्य के बिंब के पड़ने पर होता है।

१४. नेत्रों को केंद्रित और अभिबिंदुग करने वाले मांसपेशीय गतिबोधक संकेत भी गहराई प्रत्यक्षीकरण में सहायक होते हैं, किंतु इनके विषय में हम निश्चित नहीं हैं।

१५. प्रत्यक्षीकरण के संबंध में एक उलझनकारी तथ्य यह है कि ज्ञानेंद्रियों के उद्दीपन में पर्याप्त परिवर्तन के बाद भी यह स्थैर्य दृष्टिगत होता है। उदाहरणार्थ, (अ) सामने से देखें अथवा पार्श्व से आकार प्रायः वही प्रतीत होते हैं, (ब) वस्तुओं के निकट अथवा दूर होने पर आकार अपेक्षाकृत स्थैर्य दृष्टिगोचर होते हैं। (स) प्रकाशांतर होने पर भी प्रदीप्ति सादृश्यता स्थैर्य दिखायी देती है।

१६. प्रत्यक्षीकरण में भिन्न ज्ञानेंद्रियों का सहयोग प्राय: अपेक्षित होता है। उदाहरणार्थ, व्यक्ति जो सुनता है उससे उसकी दृष्टि प्रभावित होती है तथा मांसपेशीय इंद्रियों के आवेग दृष्टि-प्रत्यक्षीकरण को परिवर्तित कर देते हैं।

१७. अनुभव भी प्रत्यक्षीकरण में रूपांतर करते हैं। प्रारंभिक अनुभव विशेषत: महत्त्वपूर्ण होते हैं। व्यक्ति कुछ समय में ऐसे चश्में को पहनने का अभ्यस्त हो जाता है, जिससे दाई वस्तुएँ बाईं ओर तथा ऊपर से नीचे उलटी दिखायी देती हैं।

१८. पूर्व अधिगम द्वारा जिस अर्थ में घटनाओं को समझा गया है, उद्दीपन-स्थिति के ज्ञान तथा अभिप्रेरण द्वारा भी प्रत्यक्षीकरण निर्धारित होता है।। पर्याप्त रूप में हम वही देखते हैं, जो हम देखना चाहते हैं।

## पठनार्थ सुझाव :

Bartley, S. H. Principles of Perception. New York: Harper, 1958.

संवेदन और प्रत्यक्षीकरण पर महत्त्वपूर्ण ग्रंथ।

Beardslee, D. C., and Wertheimer, M. ( eds. ) Readings in Perception. Princeton, N. J. : Van Nostrand, 1958.

प्रत्यक्षीकरण पर चुने हुए निबंध।

Blake, R. R., and Ramsey, G. V. (eds.) Perception : An Approach to Personality. New York: Ronald, 1951.

प्रत्यक्षीकरण के विविध रूपों पर परिसंवाद, मुख्यत: सामाजिक और सांस्कृतिक घटकों द्वारा प्रभावित।

Boring, E. G. Sensation and Perception in the History of Experimental Psychology. New York: Appleton-Century—Crofts, 1942.

प्रत्ययों का प्रामाणिक इतिहास, प्रत्यक्षीकरण के क्षेत्र की समस्याएँ और प्रयोग।

Carr, H. A. An Introduction to Space Perception. New York: Longmans, 1935.

गहराई-प्रत्यक्षीकरण पर पुरानी पुस्तकों का सार-संग्रह।

Chapanis, A., Garner, W. R., and Morgan, C. T. Applied Experimental Psychology, New York : Wiley 1949, Chaps-4-9.
इंजीनियरिंग डिजाइन की समस्याओं पर प्रत्यक्षीकरण के सिद्धांतों के प्रयोग को स्पष्ट करने वाली पुस्तक।

Gibson, J. J. The Perception of the Visual World. Boston : Houghton Miffin, 1950.
दृष्टि-प्रत्यक्षीकरण पर किए गए आधुनिक प्रयोगों का सचित्र विवरण।

Kohler, W. Gestalt Psychology (2nd. Ed.) New York : Liveright, 1947. Chaps-4-6.
गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों के प्रत्यक्षीकरण में नियोजित प्रवृत्तियों पर लिखे निबंधों का संग्रह।

Lawrence, M. Studies in Human Behaviour. Princeton, N. J. Princeton University Press. 1949.
प्रयोगशाला-पुस्तिका, जिसमें प्रत्यक्षीकरण पर भाषण और प्रयोग संग्रहित हैं।

Osgood, C. E. Method and Theory in Experimental Psychology. New York : Oxford University. Press, 1953.
उच्चस्तरीय पुस्तक : प्रत्यक्षीकरण के क्षेत्र में सिद्धांत और प्रयोग।

Woodworth, R. S,. and Schlosberg, H. Experimental Psychology ( rev. ed. ) New York : Holt, Rinehart and Winston 1954.
प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की पुस्तक, प्रत्यक्षीकरण और अवधान पर निबंध।

अध्याय ११

# दृष्टि

यह और अगला अध्याय मानव-इंद्रियों से संबंधित हैं। दसवें अध्याय में अवधान और प्रत्यक्षण में इंद्रियों का वर्गीकरण किया गया है, उसमें विभिन्न संवेदनात्मक सीमाओं की परिभाषा भी दी गई है।

इंद्रियों का अध्ययन क्यों किया जाए? प्रकृत विज्ञानों में रुचि रखने वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा विशेषतः कला, वाणिज्य एवं सामाजिक विज्ञानों में रुचि रखने वाले विद्यार्थी प्रायः यह प्रश्न करते हैं कि इंद्रियों का अध्ययन मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय क्यों है? उनके लिए यह भौतिकी, शरीर-क्रिया-विज्ञान, चिकित्सा एवं अन्य ऐसे विषयों का अंग है। वस्तुतः इंद्रियाँ विविध क्षेत्रों में परस्पर-व्याप्त हैं। हमें उनके संबंध में जो ज्ञान प्राप्त है, वह विविध क्षेत्रों में अनुसंधान करने वाले व्यक्तियों से उपलब्ध हुआ है और उनका विवेचन भौतिकी, शरीर-क्रिया-विज्ञान एवं मनोविज्ञान की पुस्तकों में मिलता है।

प्रत्येक विषय मानव-इंद्रियों पर भिन्न दृष्टिकोण से विचार करता है और यह दृष्टिकोण उसकी मुख्य समस्याओं एवं उसके महत्त्वपूर्ण प्रसंगों पर निर्भर करता है, उनका ( इंद्रियों का ) अध्ययन प्रत्येक विषय के लिए आवश्यक है। मनोविज्ञान में इंद्रियों का अध्ययन अपेक्षित है; क्योंकि विश्व के संबंध में हम जो कुछ देखते हैं, सीखते एवं जानते हैं, वह इनके माध्यम से ही। अतएव, इसे पूर्णतः समझने के लिए कि किसका प्रत्यक्षीकरण और किसका अधिगम संभव है, इंद्रियों का एवं उनकी कार्य-विधि का ज्ञान आवश्यक है। यह ज्ञान अनिवार्यतः इंद्रियों को उद्दीप्त करनेवाली ऊर्जाओं के कुछ भौतिक-विज्ञान एवं इंद्रियों के अवयव-संघटन-विज्ञान की अपेक्षा करता है। वास्तव में, इंद्रियों का अध्ययन प्रारंभ करने के लिए इन विषयों का साधारण ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है। अन्यथा प्रत्यक्षीकरण में उनके योग की अनिवार्य भूमिका को हम पूर्णतः नहीं समझ सकेंगे। इनके अध्ययन का हमारा प्रमुख प्रयोजन यही है।

एक उपकरण के रूप में नेत्र :

दृष्टि इंद्रिय से हम प्रारंभ करते हैं। ध्यान देने योग्य प्रथम तथ्य यह है कि मानव-नेत्र के रूप में हमें कैसा अद्‌भुत उपकरण प्राप्त है। इस उपकरण से एक सामान्य व्यक्ति स्वस्थ दशा में ¼ मील की दूरी पर १/१६ इंच व्यास की तार देख सकता है। यह उपकरण इतना संवेदनशील है कि जब वह पूर्णतः अंधकार-अनुकूलित होता है, तब निरापद और अंधेरी रात में साधारण व्यक्ति ५० मील की दूरी से दियासलाई के प्रकाश को देख सकता है। इसके विपरीत, नेत्र क्षण भर के लिए सूर्य की ओर भी, जब वह मध्य में होता है, देख सकता है। यदि हम इन दो चरम-बिंदुओं—५० मील की दूरी पर दियासलाई के प्रकाश और सूर्य के तीव्र प्रकाश—के अनुपात की संगणना करें, तो हम देखेंगे कि मानव-नेत्र प्रकाश-दीप्ति के जिस संपूर्ण विन्यास के प्रति अनुक्रियाशील हो सकता है, उसका क्रम लगभग १००,०००,०००, ०००,०००:१ है। इसके अतिरिक्त एक औसत व्यक्ति शत-सहस्र विभिन्न वर्ण देख सकता है। तब निश्चय ही हमारे नेत्र एक असाधारण उपकरण हैं। वस्तुतः ऐसे शारीरिक उपकरण अपेक्षाकृत बहुत कम हैं, जो मानव-नेत्र की संपूर्ण विन्यास संवेदनशीलता को पहुँच सकें।

नेत्र महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक सेवा भी करता है। यह विश्व के साथ हमारे संपर्क स्थापित करने का प्रमुख साधन है, दृष्टि से वंचित व्यक्ति को गंभीर और अपूर्णीय क्षति सहन करनी पड़ती है। नेत्रों के माध्यम से हम न केवल वस्तुओं के संबंध में ज्ञान प्राप्त करते हैं, वरन् हमारे अधिकांश विचारों के हेतु भी वही हैं। उदाहरणार्थ हमारे कालेज-पुस्तकालय में जो ज्ञान-संपदा भरी है, उसको नेत्रों के माध्यम से ही ग्रहण किया जा सकता है। अतएव हमारे नेत्र असाधारण सूक्ष्मता, संवेदनशीलता एवं उपयोगिता-संपन्न उपकरण हैं—ऐसे उपकरण जो हमारे आश्चर्य और श्लाघा को उद्दीप्त करते हैं।

दृष्टि-उद्दीपन ( The Stimulus for vision ) :

यदि आपसे पूछें कि आप क्या देखते हैं, तब संभवतः आप कहते हैं कि आप 'प्रकाश' देखते हैं। यह सत्य है कि आप 'प्रकाश' देखते हैं। नेत्र को उद्दीप्त करने वाले शारीरिक उद्दीपन और प्रकाश के मनोवैज्ञानिक संवेदन में, जिसे हम वस्तुतः अनुभव करते हैं, हमें अंतर करना चाहिए।

विद्युत् चुंबकीय-विकिरण :

वस्तुओं को हम इसलिए देखते हैं, कि वे विकीर्ण ऊर्जा का उत्सर्जन करती हैं अथवा उनसे विकीर्ण ऊर्जा परावृत होती है। यह ऊर्जा, भौतिकविद् जिसे विद्युत्-

चुंबकीय-विकिरण कहते हैं, अंतरिक्ष में प्रति सेकेंड लगभग १८६·००० मील की गति से घूमने वाले विद्युत्-चार्ज से, निर्मित है। यह स्पष्ट करना कठिन है कि ये विद्युत्-चार्ज अथवा विद्युत्-चुंबकीय विकिरण किस प्रकार के हैं, किंतु इनके संबंध में यह कहना परंपरागत और सहज है कि वे तरंगों में भ्रमण करते हैं। विकीर्ण ऊर्जा की दूरी का परिमापन एवं वर्गीकरण भी, एक तरंग के शिरोबिंदु से दूसरी तरंग के शिरोबिंदु द्वारा अर्थात् तरंग की लंबाई द्वारा करना संभव है। कुछ विद्युत्-चुंबकीय-विकिरणों की तरंग-लंबाई एक इंच के १० द्वादशतम जितनी लघु है ( सार्वभौम किरणों), और कुछ की तरंग-लंबाई अनेक मील लंबी है ( रेडियो-तरंगें ) और इन दोनों के मध्य अनेक लंबाई की तरंगें (चित्र ११·१)। सब प्रकार की तरंगों का पूर्ण विन्यास 'विद्युत्-चुंबकीय वर्ण-क्रम' कहलाता है।

मानव-नेत्र विद्युत् चुंबकीय वर्ण-क्रम के केवल एक लघु अंश को ही देख सकता है।
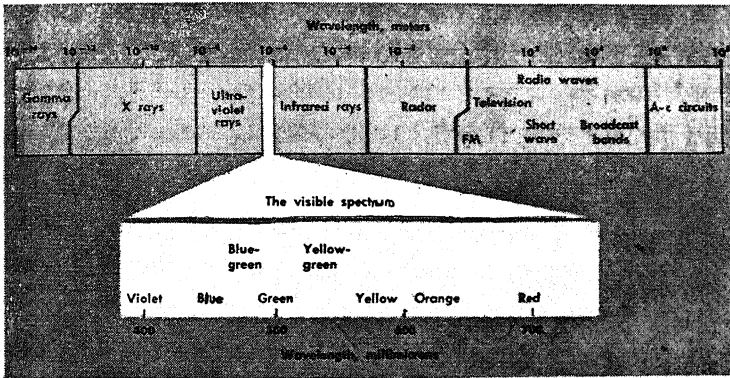
**चित्र ११.१ विद्युत् चुंबकीय और दृष्टिपरक वर्ण-क्रम।**

**विद्युत्-चुंबकीय तरंगों का वर्ण-क्रम $१०^{·१४}$ मीटर के लघु रूप से लेकर $१०.^{८}$ मीटर तक लंबा है। वर्ण-क्रम का वह अंश, जो दृष्टिगत होता है और प्रकाश कहलाता है, $१०.^{६}$ मीटर के प्रतिवेश में केवल अत्यल्प अंश है।**

दृष्टिक विकीर्ण-ऊर्जा ( Visible Radiant Energy ) :

यद्यपि संपूर्ण विकीर्ण ऊर्जा—विद्युत्-चुंबकीय वर्णक्रम की सब तरंग-लंबाइयों—भौतिक रूप से प्रायः समान होते हुए भी सब देखी नहीं जा सकतीं।

वर्ण-क्रम के मध्य में कहीं एक इंच की लंबाई के १६० और ३२० लाखवें भाग (चित्र ११·१) की लंबाइयों को हम देख सकते हैं। यह 'चाक्षुष या दृष्टिक वर्ण-क्रम' कहलाता है। 'प्रकाश' शब्द में 'देखना' क्रिया निहित है, ये तरंग-लंबाइयों का ही प्रकाश या प्रकाश-तरंगें कहलाती हैं। वैज्ञानिक इस लंबाई को व्यक्त करने के लिए इंच और फुट के स्थान पर मीटरिक मापन-प्रणाली का प्रयोग करते हैं। अतएव, तरंग-लंबाइयों का दृष्टिपरक वर्ण-क्रम ४०० से ८०० मिलीमाइक्रोन तक फैला हुआ कहा जाता है। माइक्रोन एक मीटर का दस लाखवाँ भाग है तथा एक मिलीमाइक्रोन माइक्रोन का हजारवाँ भाग है।

सर आइजक न्यूटन ने १६६६ ई० में खोज की कि दृष्टि-परक वर्ण-क्रम को उसकी तरंग-लंबाइयों के उपांशों में विभाजित किया जा सकता है।* इसको करने की विधि यह है है कि सूर्य के प्रकाश की किरण को त्रिकोण काँच के प्रिज्म से पार किया जाए (द्रष्टव्य, चित्र ११·२); क्योंकि इस प्रकार का प्रिज्म छोटी तरंग-लंबाइयों (जो लाल दिखायी देती हैं) की लंबी-तरंग लंबाइयों (जो लाल दिखायी देती हैं) की अपेक्षा अधिक मोड़ देता है। वस्तुतः एक प्रिज्म सब तरंग-लंबाइयों को एक बड़ी पट्टी के रूप में फैला देता है, जिससे कि हम उसको देख सकें और प्रत्येक तरंग-लंबाई को एक प्रकाश-समूह के रूप में माप सकें। दृष्टिपरक वर्ण-क्रम की प्रत्येक तरंग-लंबाई एक विशिष्ट वर्ण की होती है।

### नेत्र और उसकी क्रियाविधि (The eys ard how it works) :

कुछ रूपों में नेत्र कैमरे के सदृश देखता एवं व्यवहार करता है (चित्र ११·३)। नेत्र और कैमरा दोनों अनिवार्य रूप से अंधकारपूर्ण कक्ष हैं, जिनमें सामने की ओर से खुले भाग से प्रकाश प्रविष्ट होता है। प्रत्येक में खुले भाग के ठीक पीछे एक लेंस होता है, जो पिछली सतह (Rear Surface) पर वाह्य जगत के बिंबों को केंद्रित करता है। नेत्र की वह सतह जिस पर बिंब का प्रक्षेपण होता है, 'दृष्टिपटल' कहलाती है और कैमरे में यह फोटोग्राफिक फिल्म है।

कैमरा और नेत्र दोनों को इस प्रकार समायोजित किया जा सकता है कि इस सतह पर पड़ने वाले प्रकाश को वे नियंत्रित कर सकेंगे। कैमरे में प्रविष्ट होने वाले प्रकाश को नियंत्रित करने के लिए फोटोग्राफर डायफ्राम को लेंस के सामने समायोजित करता है। यदि उसके सामने बहुत अधिक प्रकाश हो, तो वह कैमरा डायफ्राम को 'नीचे दबा' देता है और यदि प्रकाश अपेक्षाकृत मंद हो, वह डायफ्राम के खुले भाग

---

* यह शोधकार्य पूर्ण रूप में प्रकाशित नहीं हुआ था। जब तक कि न्यूटन ने १७०४ ई० में अपना 'आपटिक्स' (Opticks) प्रस्तुत नहीं किया।
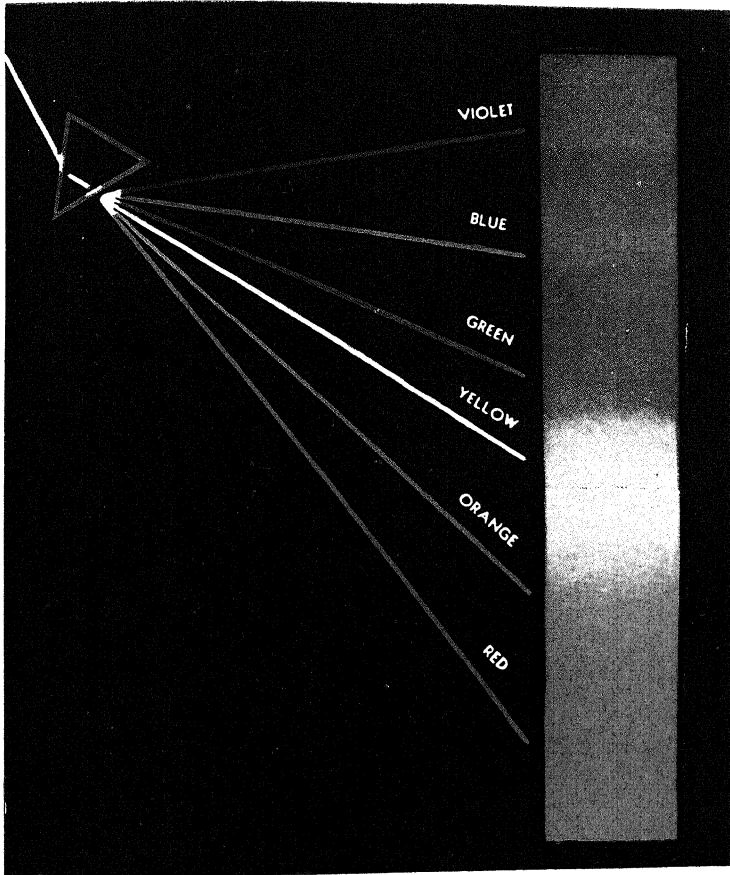
चित्र ११·२. दृष्टिपरक वर्णक्रम के सब रंग उत्पन्न किए जाते हैं, जब प्रिज्म का प्रयोग श्वेत प्रकाश के उपांशों के विभाजन में किया जाता है। (वस्तानोवी, १९४७)।
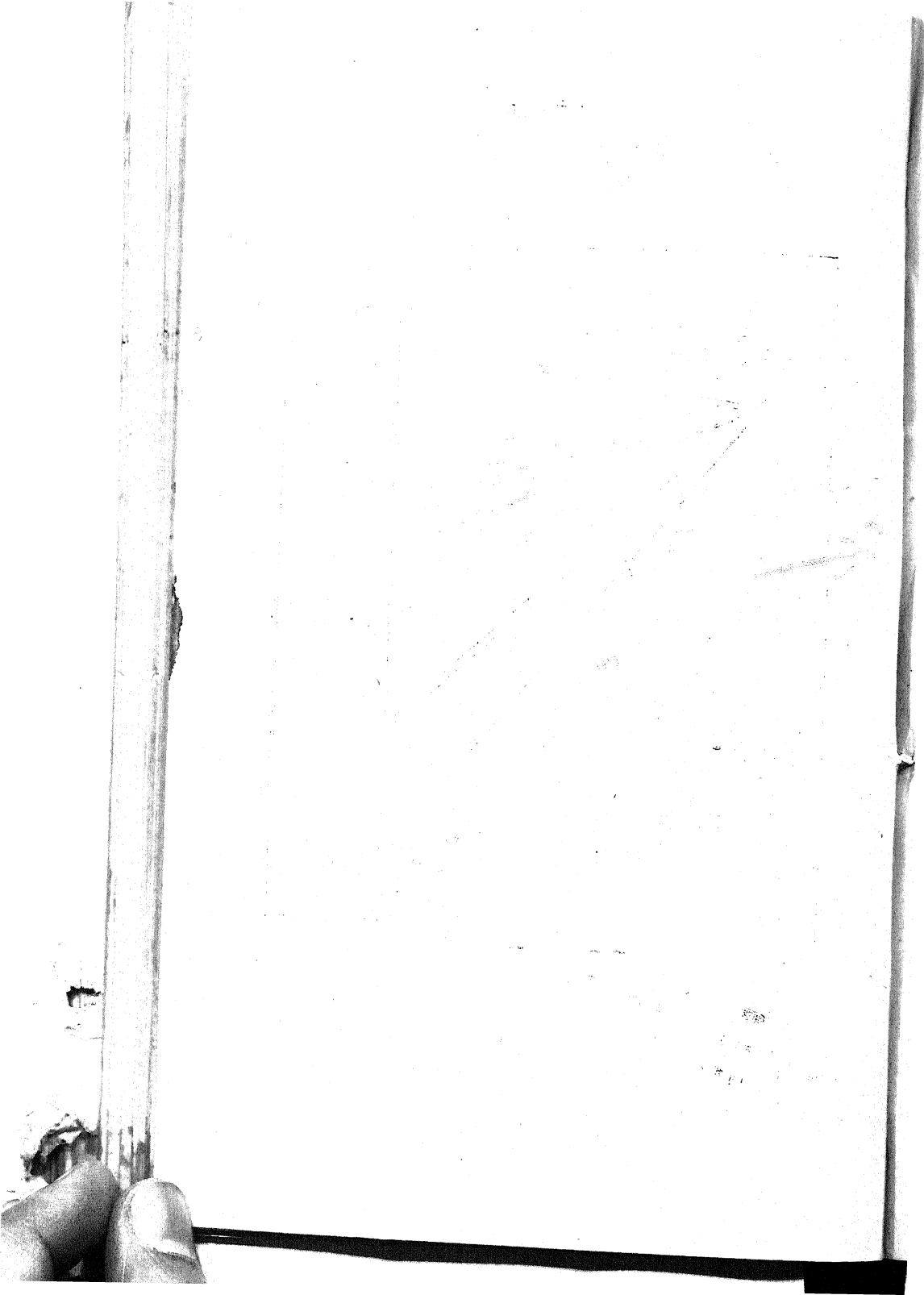
को कुछ और बढ़ा देता है। ऐसा समायोजन करने के लिए नेत्र की अपनी स्वचालित (प्रतिवर्त) प्रक्रिया है। इसका डायफ्राम पुतली (आयरिस) है, जो आँख का एक रंगीन भाग है, पुतली खुले भाग को जैसे नेत्रतारा (प्यूपिल) कहते हैं, के आकार को नियंत्रित करती है। यह प्रकाश को नेत्र में पहुँचाता है। मंद प्रकाश में पुतली नेत्रतारा को फैला देती है और उसे पार करके आने वाले प्रकाश की मात्रा में वृद्धि करती है, तीव्र प्रकाश में पुतली नेत्रतारा को संकुचित कर देती है और आने वाले प्रकाश की मात्रा कम कर देती है। यह समायोजन व्यक्ति को मंदतर या तीव्रतर प्रकाश को देखने की सुविधा प्रदान करता है, जो अन्यथा संभव न था। व्यक्ति क्षण भर के लिए अपनी पलकें बंद करे और तब खोले, इससे आप सुगमता से नेत्रतारा का संकुचन देख सकते हैं। सामान्य नेत्रतारा के समायोजन का अधिकतम विन्यास एक डायामीटर में २ से ८ मिलीमीटर है—यह क्षेत्र में १६ गुणा परिवर्तन के तदनुरूप है।

दसवें अध्याय से आप स्मरण करें कि दृष्टिपटल पर बिंब विपर्यस्थ किए जाते हैं और दाहिनी ओर से बाईं ओर मोड़ दिए जाते हैं। यह कैमरा और नेत्र दोनों में होता है।

### नेत्र की संचरना :

यद्यपि नेत्र की कैमरे से तुलना हमारी सहायता करती है और हमें निर्देशन देती है, किंतु यह तुलना बहुत दूर तक नहीं करनी चाहिए। नेत्र को निकटता से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक अत्यंत जटिल अंग है—इतना जटिल कि चित्र ११.४ में, जो पर्याप्त जटिल है, केवल उसकी अनिवार्य विशेषताएँ ही चित्रित हैं। कैमरे से भिन्न नेत्र स्थूल रूप में एक गोला है। इसकी दीवारें तीन विभिन्न परतों से निर्मित हैं, १ दृढ़पटल, २. रंजितपटल और ३. दृष्टिपटल।

(१) प्रथम और वाह्य परत, दृढ़पटल (स्क्लीरोटिक कोट), एक मजबूत तंतुमय तत्त्व है, जो नेत्र-गोलक की रक्षा करता है और उसके आकार को सुरक्षित रखता है। नेत्र के सामने वाले भाग में यह दृढ़पटल पारदर्शी बन जाता है और कोर्निया को निर्मित करने के लिए बाहर की ओर उभर आता है।

(२) दृढ़पटल के नीचे रंजितपटल हैं, जो फोटोग्राफिक फिल्म के अपारदर्शी से अथवा कैमरे के भीतरी भाग के कालेपन के तदनुरूप है। यह काला-पटल नेत्र-गोलक में विपार्षत प्रकाश का अवशोषण करता है और कोर्निया तथा लेंस के अतिरिक्त नेत्र के अन्य भागों से प्रकाश के आगमन को रोकता है।

(३) नेत्र-गोलक की सबसे भीतरी परत 'दृष्टिपटल पंख' है और जैसा कि हम बता चुके हैं, फोटोग्राफिक फिल्म के सदृश हैं; क्योंकि यह संवेदनशील अंग है तथा हमें देखने की सामर्थ्य देता है।

नेत्र का भीतरी भाग दो सदनों में विभाजित है : लेंस के समक्ष इसके और कोर्निया के मध्य एक छोटा सदन, और लेंस के पीछे एक बड़ा तथा प्रमुख सदन। ये सदन श्लिषीय तरल पदार्थ से भरे रहते हैं, जिसे कभी-कभी द्रव (Humors) कहा जाता है। चित्र ११.४ में ये सदन एवं द्रव प्रदर्शित किए गए हैं।

कुछ रूपों में नेत्र कैमरा के सदृश है।
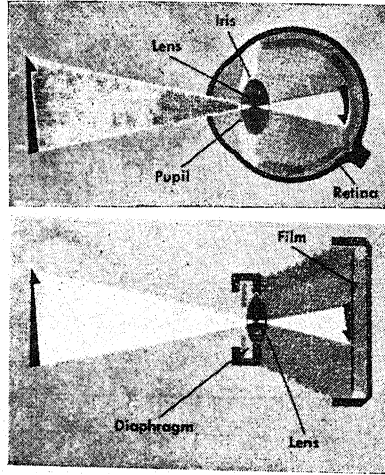
**चित्र ११.३ नेत्र और कैमरा की सादृश्यता। नेत्र और कैमरा दोनों में लेंस द्वारा बिंब को केंद्रित किया जाता है और फोटो संवेदन-सतह पर ऊपर का भाग नीचे तथा विपरीत होता है। नेत्र में यह सतह दृष्टिपटल कहलाती है। दृष्टिपटल का वह भाग जहाँ दृश्य स्पष्टतम होता है गतिका (फोविया) वह भाग, जहाँ दृष्टि तंत्रिका नेत्र को छोडती है, अंध चित्री है (देखिए चित्र ११.१९)।**

शलाका तथा शंकु (Rods and Cones) :

दृष्टिपटल; क्योंकि, देखने का संवेदनशील अंग है, इसलिए यह नेत्र के अन्य भागों की अपेक्षा अधिक ध्यान या अवधान की अपेक्षा रखता है। यदि अणुवीक्षक-यंत्र से हम इसका परीक्षण करें, हम देखेंगे कि यह दो प्रकार की—शलाका तथा शंकु—अति सूक्ष्म कोशिकाओं से निर्मित है। चित्र ११.५ इन दो प्रकार की कोशिकाओं को प्रदर्शित करता है, शलाका वर्तुलाकार हैं और शंकु सुंडाकार। हमारा सर्वोत्तम अनुमान है कि नेत्र में ११०,०००,००० और १२५,०००.००० के बीच शलाका तथा ६,३००,००० और ६,८००,००० के बीच शंकु होते हैं ( आस्टरवर्ग, १९३५ )। तथापि शलाका और शंकु की यह विपुल संख्या संपूर्ण दृष्टिपटल पर समान रूप से फैली हुई नहीं है। वरन् दृष्टिपटल अति विशिष्ट भाग गर्तिका (फोविआ) में शंकु की संख्या अत्यधिक है और गर्तिका से २० डिग्री दूर शलाका की अत्यधिक संख्या का आवर्तन होता रहता है। जैसा कि चित्र ११.४ में देखा जा सकता है कि गर्तिका दृष्टिपटल का किंचित दबा भाग है।

शंकु और शलाका के संबंध :

शलाकाओं और शंकुओं द्वारा नन्हें स्नायु-तंतु अन्य प्रकार की भी कोशिकाओं से संबंध बनाते हैं। इनमें से दो प्रकार की कोशिकाएँ, द्विध्रुवी कोशिकाएँ और गुच्छिका कोशिकाएँ केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र से सीधी संबंधित हैं। वस्तुतः गुच्छिका कोशिकाओं के तंतु दृष्टि-तंत्रिका बनाते हैं, जो आवेगों को दृष्टिपटल से मस्तिष्क तक पहुँचाती है। अतएव, प्रकाश-संबंधी सूचनाओं को पारेषित करने वाले स्नायुओं के तीन प्रकार हैं—

(१) शलाका और शंकु (२) द्विध्रुवी कोशिका और (३) गुच्छिका कोशिका।

प्रकाश कोर्निया और लेंस से होता हुआ रेटीना ( दृष्टिपटल ) तक जाता है।
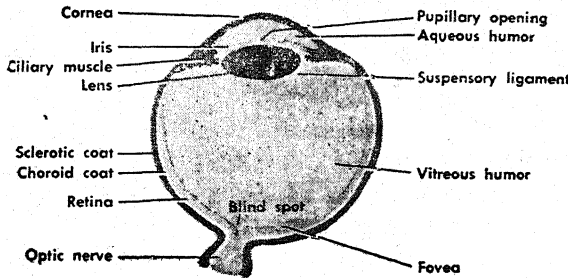
**चित्र-११.४ नेत्र की संरचना। इस चित्र में नेत्र के प्रमुख भाग दिखाए गए हैं।**

इसके अतिरिक्त दृष्टिपटल में अन्य प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं, जिनमें से एक है अनुप्रस्थ कोशिका (Horizontal Cells)। इन कोशिकाओं और 'सम-रेखा' की कोशिकाओं को जोड़ने वाले तंतु इतने अधिक जटिल हैं कि माइक्रोरचना विज्ञान-विद् (Microanatomist) इनमें से केवल कुछ प्रमुख तंतुओं के विषय में ही बता सके हैं और शरीर-वैज्ञानिक भी इन कोशिकाओं की क्रियाओं के संबंध में केवल अस्पष्ट वितर्क ही प्रस्तुत कर सके हैं। मनोवैज्ञानिक के दृष्टिकोण से संबंधों का यह तंत्र (जाल) कुछ विचित्र दृष्टि-व्यापारों को, जिनका उल्लेख हम आगे करेंगे, स्पष्ट करने की संभावना प्रस्तुत करता है। चित्र ११.५ का रेखाचित्र दृष्टिपटल के कुछ स्नायु-संबंधों को प्रदर्शित करता है।

फोविआ (Fovea) :

फोविआ (गर्तिका) दृष्टिपटल (रेटिना) का वह भाग है, जिसका उपयोग हम वस्तुओं को देखने में सर्वाधिक करते हैं; क्योंकि सर्वाधिक स्पष्ट दृष्टि का स्थल

यही है। जब हम किसी वस्तु को बहुत स्पष्ट देखना चाहते हैं, हम स्वभावतः अपने सिर और नेत्रों को घुमाते हैं; ताकि वस्तु का बिंब दृष्टिपटल के इस भाग पर पड़े।

प्रकाश शलाकाओं और शंकुओं को उद्दीप्त करता है, और ये आवेग को द्विध्रुवी तथा गुच्छिका कोशिकाएँ पार करके मस्तिष्क तक पहुँचाते हैं।
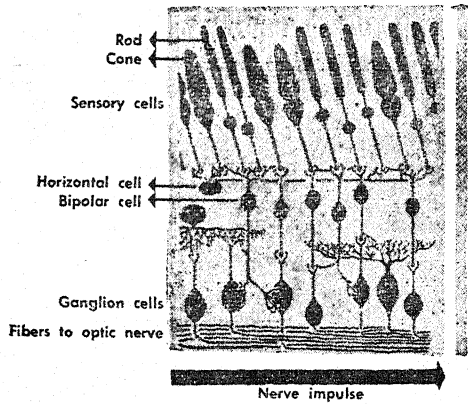
**चित्र ११·५ दृष्टिपटल (रेटिना) की कोशिकाओं का कार्य-प्रदर्शी आरेख। ऊपर संवेदक कोशिकाएँ, शलाकाएँ, और शंकु हैं। ये द्विध्रुवी कोशिकाओं से जुड़ते हैं, और वे आगे गुच्छिका-कोशिकाओं से संबद्ध होती हैं। गुच्छिका-कोशिकाओं के तंतु दृष्टि-तंत्रिका को बनाते हैं। इन अनेक पारस्परिक संबंधों पर ध्यान दें, विशेषतः अनुप्रस्थ और गुच्छिका कोशिकाओं पर।**

नेत्र के इस अंग की प्रमुख विशेषताओं पर ध्यान दें। प्रथमतः फोविआ में नेत्र के परिवेश की अपेक्षा शंकु बहुत लंबे और पतले होते हैं। वस्तुतः गर्त शंकु ( फोविअल कोन ) कुछ-कुछ शलाकाओं के समान दिखायी देते हैं; क्योंकि ये लघुतर होते हैं इसलिए गर्त-विन्यास में पर्याप्त अधिक भरे जा सकते हैं। गर्त-शंकुओं की द्वितीय महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि दृष्टि-तंत्रिका से उनके अपने स्वतंत्र संबंध होते हैं—मस्तिष्क से उनके 'निजी संबंध' होते हैं ( पोलियाक, १९४१ )। फोविआ के बाहर अनेक शंकु अथवा अनेक शलाका और शंकु प्रायः एक सार्वजनिक तंत्रिका-पथ में परस्पर संबद्ध हैं। वास्तव में शलाकाओं के निजी संबंध कभी नहीं होते, उनके सदैव समूह रहते हैं, जो एक सार्वजनिक तंत्रिका-पथ में निस्सरण करते हैं।

दृष्टिपटल की एक विलक्षण विशेषता है कि **संग्राहक पीछे की ओर संकेलित रहते हैं।** फलस्वरूप जब किसी वस्तु का बिंब दृष्टिपटल के फोकस पर लाया जाता है, प्रकाश को दृष्टिपटल के सभी तंत्रिका-तंतुओं और कोशिका-परतों में से प्रकाश-संवेदी कोशिकाओं तक पहुँचने के लिए आवश्यक रूप से भ्रमण करना होगा। बीच में

आने वाले ये परत पारदर्शी हैं, किंतु ये बिंब को निःसंदेह कुछ धुँधला कर देते हैं। ये दृष्टिपटल के अन्य भागों की अपेक्षा फोविआ में बिंब को अपेक्षाकृत कम धुँधला करते हैं; क्योंकि फोविआ में, जो कि दाँतेदार हैं, ये एक ओर धकेल दिए जाते हैं।

चित्र ११·४ में दृष्टिपटल एक भाग है, जिसका नाम 'अंध-चित्ती' है। यह वह बिंदु है, जहाँ गुच्छिका कोशिकाओं के तंतु दृष्टिपटल को छोड़ते हैं और दृष्टि-तंत्रिका का निर्माण करते हैं, जो मस्तिष्क से संबद्ध होती हैं। यह बिंदु अंध है; क्योंकि इसमें शलाका और शंकु दोनों का अभाव है। इस अध्याय में आगे चल कर हम अंध चित्ती के संबंध में सविस्तर लिखेंगे।

दृष्टिपटल पर वस्तुओं को फोकस करने के लिए लेंस का आकार परिवर्तित होता है।
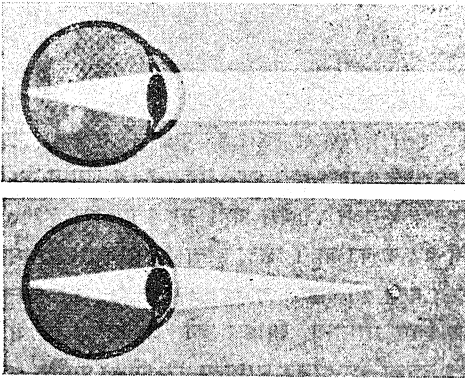
**चित्र ११.६ लेंस का समायोजन। दूरस्थ वस्तुओं के बिंबों को फोकस करने के लिए लेंस चपटा हो जाता है और निकटस्थ वस्तुओं के लिए यह मोटा हो जाता है।**

समंजन ( Accommodation ):

अधिकांश कैमरों में फोकस करने के लिए भिन्न दूरियों की वस्तुओं के अनुसार लेंस को आगे-पीछे घुमाकर समंजित किया जाता है। नेत्र के लेंस इस रूप में कार्य नहीं करते। **भिन्न दूरियों पर फोकस करने के लिए यह ( नेत्र ) अपने आकार को परिवर्तित करता** है। ये परिवर्तन 'समंजन' कहलाते हैं। ये लेंस के स्थूल अथवा तनु होने पर निर्भर करते हैं और रोमक पेशी द्वारा नियंत्रित होते हैं। यह पेशी स्नायुओं से संबद्ध लेंस को अपने स्थान पर निलंबित करती है। इस प्रकार सिकुड़ती और फैलती है कि लेंस पतला (तनु) और चपटा हो जाता है और नेत्र को दूर की वस्तु पर केंद्रित करता है तथा निकट की वस्तु पर केंद्रित होने के लिए यह स्थूल और वक्र हो जाता है। चित्र ११·६ )।

### नेत्र का आकार :

एक साधारण दोष, जिसके लिए हम चश्मा पहनते हैं, निकट और दूर की सब दूरियों की वस्तुओं को देखने में पर्याप्त समायोजन न कर सकने की अयोग्यता है। दूर की वस्तुओं को स्पष्ट न देख सकने की अयोग्यता निकट-दृष्टि और इसकी विपरीत दूर-दृष्टि कहलाती है। समायोजन प्राय: नेत्रों को भिन्न दूरियों के अनुरूप फोकस करता है, परंतु फोकस की अयोग्यता प्रायः नेत्र के आकार या लेंस के आकार के दोष के कारण होती है, न कि समायोजन के अपने दोष के कारण। यद्यपि नेत्र और उनके लेंस आश्चर्यजनक रूप से आकार में स्थायी रहते हैं, इनके आकार में विशेष विकृति नहीं होती, जो इन्हें फोकस करने वाले उपकरणों के रूप में अयोग्य बना सकें। कुछ उदाहरणों में तो नेत्रगोलक की पूर्ण लंबाई उससे किंचित अधिक या कम हो जाती है, जितनी उसे होनी चाहिए। कुछ अन्य उदाहरणों में कोर्निया की वक्र परत कुछ अधिक चपटी या अधिक वक्र हो जाती है।

### दूर-दृष्टि ( Farsightedness) :

अमरीका में लगभग दो-तिहाई व्यक्ति बीस फुट की दूरी या उससे अधिक तक अच्छी तरह देख सकते हैं। इसी कारण से स्कूल की कक्षाओं में श्यामपटों को सामने लगाना संभव है और सड़कों पर पर्याप्त दूरी पर संकेत-स्तंभ लगाए जाते हैं, इसका अर्थ है कि वे बहुत निकट की वस्तुओं को देख नहीं सकते ( चित्र ११·७ )। प्राय: इस कठिनाई का हेतु है नेत्र-गोलक का बहुत छोटा होना। परिणामस्वरूप जब दूर-दृष्टिक व्यक्ति किसी निकटस्थ वस्तु को देखना चाहता है, तब उसे उस वस्तु को दृष्टिपटल के फोकस पर लाने के लिए सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा कहीं अधिक समायोजन करना पड़ता है। यदि उसका नेत्र-गोलक सामान्य की अपेक्षा पर्याप्त अधिक छोटा हो, तो वह फोकस को प्राप्त करने के लिए प्रचुर समायोजन उत्पन्न करने में बिलकुल असमर्थ भी हो सकता है। अधिक-से-अधिक ऐसी गंभीर स्थिति के उदाहरणों में ३० इंच की दूरी की पुस्तक भी सदैव धुँधली दिखायी देगी। यदि एक दूर-दृष्टक व्यक्ति कई घंटे तक निरंतर पढ़ता रहे, समायोजन की दीर्घ थकान—अर्थात्, रोमक पेशी का संकुचन- गंभीर सिर-दर्द उत्पन्न कर सकता है और अन्य प्रकार के अनेक लक्षण प्रकट होते हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से नेत्र-तनाव कहा जाता है।

### निकट-दृष्टि ( Nearsightedness ) :

इसकी बिलकुल विपरीत अवस्था है, निकट-दृष्टि। इस अवस्था की कठिनाई है नेत्र-गोलक का प्राय: असाधारण रूप से लंबा होना। निकट-दृष्टि से ग्रसित व्यक्ति के लिए निकटवर्त्ती वस्तुएँ दृष्टिपटल के फोकस पर लेंस के किंचित या बिलकुल

नहीं, समायोजन से उपस्थित हो जाती है, किंतु लेंस लबे नेत्र-गोलक की क्षतिपूर्ति के लिए पर्याप्त चपटे नहीं हो सकते हैं और न ही दूरवर्त्ती वस्तुओं को फोकस पर ला सकते हैं। अतएव, ऐसी अवस्था में निकटस्थ वस्तुएँ ही स्पष्ट रूप से फोकस पर आ सकती हैं।

जब नेत्र गोलक बहुत लंबा होता है, तब व्यक्ति निकट-दृष्टिक होता है, जब वह बहुत छोटा होता है, तब व्यक्ति दूर-दृष्टिक होता है।
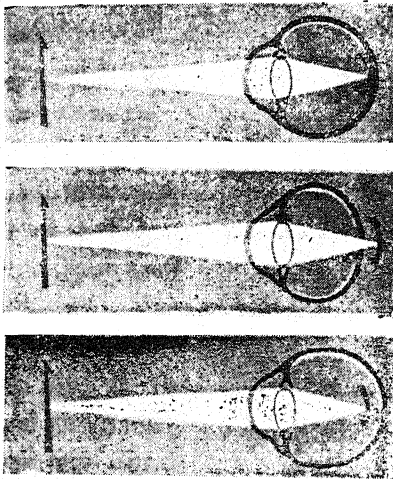
**चित्र ११·७ दूर-दृष्टि और निकट-दृष्टि। सामान्य व्यक्ति में (ऊपर) दृष्टिपटल पर बिंब का फोकस किया गया है। दूर-दृष्टिक व्यक्ति (मध्य) का नेत्र गोलक बहुत छोटा होता है और बिंब को दृष्टि-पटल के पिछले भाग पर फोकस करता है। निकट-दृष्टिक व्यक्ति ( नीचे ) का नेत्र-गोलक बहुत लंबा होता है और बिंब को दृष्टिपटल के सामने वाले भाग पर फोकस करता है।**

## वृद्ध-दृष्टि ( Oldsightedness ) :

इसका पारिभाषिक नाम 'जरा-परक दूर-दृष्टि' है, किंतु इसे वृद्ध-दृष्टि भी कहा जाता है; क्योंकि यह वृद्ध व्यक्तियों का लक्षण है। संक्षेप में, आयु के बढ़ने के साथ वाइ (दूर-दृष्टि) बढ़ती है। हम प्रायः देखते हैं कि वृद्ध व्यक्ति किस प्रकार समाचारपत्र को पढ़ने के लिए अपने से दूर रखते हैं। यह दूर-दृष्टि नेत्र के लेंस के कड़े हो जाने के कारण होती है। कठोरीकरण-प्रक्रिया प्रायः जन्म के समय से प्रारंभ होती है और जीवन-पर्यन्त बढ़ती रहती है। बस्तुतः हम व्यक्ति की आयु का पर्याप्त शुद्ध अनुमान केवल उसके अधिकतम दृष्टि-समायोजन के मापन द्वारा, जो वह अपने लेंस से प्राप्त करता है, कर सकते हैं।

यदि आप इसकी परीक्षा करना चाहें, तो किसी परिचित व्यक्ति से एक नेत्र बंद करके दूसरे नेत्र के समक्ष हाथ भर की दूरी पर इस पृष्ठ को रखें। उसे धीरे-धीरे उसके नेत्रों के निकट लेते जाएँ और जब उसे अक्षर धुँधले दिखायी देने लगें, तो

रोक दें। तब उसके नेत्र और पुस्तक के मध्य की दूरी का मापन करें। यह दूरी दृष्टि का निकट बिंदु कहलाती है और इससे आप अपने प्रयोग-पात्र की आयु का अनुमान चित्र ११·८ के प्रयोग द्वारा कर सके हैं। दुर्भाग्य से इस चित्र में हम दो बिंदुओं का प्रदर्शित नहीं कर सके; क्योंकि वे अन्य बिंदुओं से बहुत अधिक दूर हैं, पचासवर्षीय व्यक्तियों का निकट-बिंदु औसतन ५ इंच है और साठवर्षीय व्यक्तियों का ३९ इंच। चित्र ११.८ केवल उन व्यक्तियों पर लागू होता, जिनकी दृष्टि प्रारंभ में सामान्य रही है, निकट-दृष्टिक अथवा दूर-दृष्टिक व्यक्तियों के परिणाम भिन्न होते हैं।

व्यक्ति की आयु जितनी अधिक होगी, वस्तुओं को स्पष्ट रूप में देखने के लिए उसे उन्हें उतनी ही दूर रखना होगा।
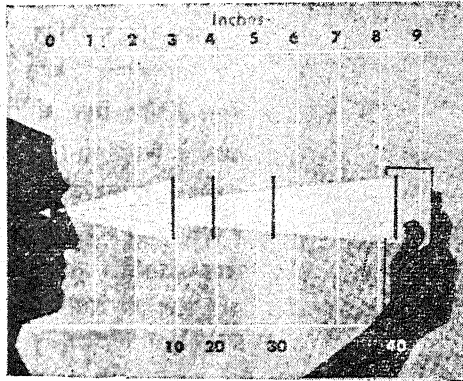
**चित्र ११ ८ दृष्टि का निकट बिंदु आयु पर निर्भर करता है। दृष्टि का निकट-बिंदु वह निकटतम दूरी है, जिसमें व्यक्ति देख सकता है अर्थात मुद्रित पृष्ठ, फिर भी वह उसे स्पष्टतः देखता है। यह बिंदु आयु के साथ बढ़ता जाता है। जिस व्यक्ति की आयु पचास वर्ष है, यह दूरी औसतन १५ इंच है और जिसकी आयु साठ वर्ष है, उसमें यह दूरी औसतन ३९ इंच है।**

दृष्टि वैषम्य ( Astigmatism ) :

नेत्र का एक अन्य बहुप्रचलित विकार है, दृष्टि-वैषम्य। साधारणतः यह कोर्निया की ऊपरी सतह की विकृति है, जिसमें कोर्निया सब दिशाओं की ओर बराबर मुड़ नहीं सकता। फलतः एक विदृष्टिक व्यक्ति कुछ दिशाओं में फोकस के बाहर रेखाओं का अनुस्थापन करता है और कुछ दिशाओं में रेखाओं को फोकस की सीमा में अनुस्थापित करता है। इस तथ्य का उपयोग परीक्षा-चार्टों में किया गया है, जिसका प्रयोग दृष्टि-वैषम्य का पता लगाने के लिए प्रायः किया जाता है ( चित्र ११·९ )। जब विदृष्टिक व्यक्ति उपयुक्त दूरी से इन चार्टों को देखता है, वह कहता है कि कुछ रेखाएँ स्पष्ट हैं तथा अन्य रेखाएँ एक दूसरे से मिश्रित होती हुई धुँधली दिखायी देती हैं।

सौभाग्य से दृष्टिगत वे सब विकार, जिनका अभी ऊपर वर्णन किया गया है—दूर-दृष्टि, निकट-दृष्टि, वृद्ध-दृष्टि, दृष्टि-वैषम्य—उपयुक्त प्रकार के चश्मों द्वारा सरलता से दूर किए जा सकते हैं।
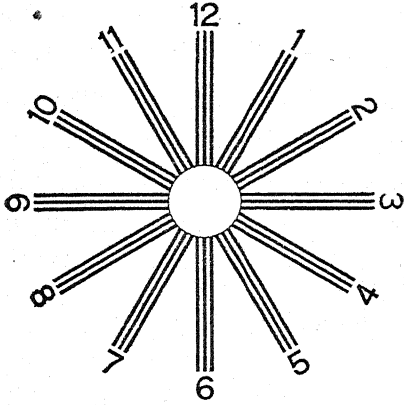
**चित्र ११·९ दृष्टि-वैषम्य परीक्षण के लिए प्रयुक्त एक चार्ट। विदृष्टिक व्यक्ति प्रायः अनुभव करता है कि तीन रेखाओं के कुछ समूह स्पष्ट और उभरे हुए हैं, किंतु अन्य रेखाएँ एक धब्बे के रूप में धुँधली और अस्पष्ट हैं (—अमेरिकन आप्टिकल कंपनी)।**

## वर्ण और दीप्ति (Colour and Brightness) :

यद्यपि हम अपनी समस्त दृष्टिपरक योग्यताओं से प्रभावपूर्ण रूप में दृश्य-जगत के बराबर रहने की आशा करते हैं, पर हमारी वर्ण देखने की योग्यता संभवतः सर्वाधिक प्रभावशाली है और उससे हम सबसे अधिक सुख प्राप्त करते हैं। हमारे प्रकृत वातावरण में हमारे चतुर्दिक वर्ण है और मनुष्य ने ऐसी मशीनें एवं ऐसे रंजक द्रव्यों का आविष्कार करने का कष्ट उठाया है, जो दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य में रंग-विन्यास में वृद्धि करते हैं—निशान चिह्न, रंग (पेंट), तांतवक, भित्ति-पत्र आदि। नेत्र की योग्यता के अभाव में अनेक रंगों और उनकी आभाओं को भिन्न करना और रंग की सुंदरता को समझना संभव नहीं होता।

दैनिक व्यवहार की भाषा में 'रंग' शब्द व्यापक रूप में प्रयुक्त होता है। इसके अंतर्गत सब प्रकार की रंजकताएँ और आभाएँ आ जाती हैं। यहाँ हमें अधिक सूक्ष्मता से विचार करना चाहिए। वर्ण-वैज्ञानिक के लिए वर्ण सामान्य अर्थ में प्रत्यक्षीकरण के तीन भिन्न आयामों का कुछ मिश्रण है। इस भाग में इनमें से प्रत्येक पर विचार किया जाएगा।

## रंग (Hue) :

प्रथम विचारणीय आयाम रंग है। रंग वर्ण का दृष्ट-आयाम है, जिसका प्रयोग हम साधारण रंगों के नामों में करते हैं जैसे लाल, हरा, पीला, नीला या इनका

मिश्रण। अतएव, जब हम कहते हैं कि कोई वस्तु लाल है, हमारा तात्पर्य है कि इसका लाल रंग है, कोई वस्तु हरेपन-मिश्रण से नीली है, अर्थात् उसका हरापन-मिश्रित नीला रंग है इत्यादि।

दृष्ट रंग मुख्यतः प्रकाश की तरंग-लंबाई पर निर्भर करता है। यदि अनेक तरंग-लंबाइयाँ एक-दूसरे में मिश्रित हों, जैसा कि त्रिपार्श्वकांच (प्रिज्म) द्वारा निर्मित वर्णों के अतिरिक्त सब वर्णों में होता है, ( देखिए, चित्र ११·२), तो रंग तरंग-लंबाई पर निर्भर करता है, जो उस मिश्रण में प्रमुख होती है। तरंग-लंबाई और रंग के मध्य का संबंध स्थायी नहीं होता। यह इसलिए कि नेत्र समस्त तरंग-लंबाइयों के प्रति समान संवेदनशील नहीं होता और इसकी सापेक्ष संवेदनशीलता प्रकाश की चमक (दूसरा आयाम, जिसका विवेचन आगे किया जाएगा) के साथ परिवर्तित हो जाती है। परंतु, स्वेच्छा देखने का मान्य नियम है कि दृष्ट रंग स्पष्टतः तरंग-लंबाई से संबंधित हो सकता है।

यह संबंध सारणी ११.१ और चित्र ११.१० में दिखाया गया है। सारणी में वर्ण-क्रम की चुनी हुई तरंग-लंबाइयाँ दी गई हैं और रंग ( Hue ) के लिए वर्ण (Colour) का नाम दिया गया है, जिनका प्रयोग एक विशिष्ट प्रेक्षक इन तरंग-लंबाइयों को देखते समय करेगा। चित्र ११.१० में रंग और उनकी तदनुरूप तरंग-लंबाइयाँ एक सीधी रेखा में न दिखा कर एक चक्र के आकार में व्यवस्थित की गई हैं।

दोनों चित्र मनोवैज्ञानिक रूप से 'शुद्ध' या 'अनन्य' वर्णों की तरंग-लंबाइयाँ प्रस्तुत करते हैं। प्रेक्षक इन रंगों को अन्य रंगों की आभा से मुक्त देखते हैं। अतएव एक अनन्य पीला रंग वह है, जो एक ओर हरी आभा से और दूसरी ओर लाल आभा से अप्रभावित है। अनन्य नीला ४७७ मिलीमाइक्रोन पर, तरंग-लंबाई के अनुरूप, वर्ण-क्रम के लघु अंत के निकट स्थित है, शुद्ध हरा मध्य के कुछ बाईं ओर ५१५ मिलिमाइक्रोन पर, और शुद्ध पीला मध्य के दाईं ओर ५८२ मिलिमाइक्रोन पर है। शुद्ध लाल एक रोचक उदाहरण है; क्योंकि इसकी तदनुरूप सरल तरंग-लंबाई नहीं है। अत्यधिक लाल दृष्टिपरक वर्ण-क्रम में ७०० से ७८० तक—७०० से ७८० के बीच रंग शायद ही कुछ परिवर्तित होता है—पर भी पर्याप्त लाल नहीं होता। इसे किंचित पीली आभा से मुक्त होने और शुद्ध लाल बनने के लिए वर्ण-क्रम के दूसरे छोर से किंचित नीली आभा की अपेक्षा होती है। इसी हेतु अनन्य लाल अवर्ण -पटीय कहलाता है, जिसका अर्थ है कि यह प्राक्कल्पिक स्थल में वर्ण-क्रम के दोनों छोरों के मध्य स्थित है (डीमिक और हब्बार्ड, १९३९)

सारणी-११ १

| (मिश्रित) | ४३० | म्यू | बैंगनी | ५७१ | म्यू | हरा-पीला |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | ४७७ | म्यू | अनन्य नीला | ५७८ | म्यू | हरा मिश्रित पीला |
| | ४८२ | म्यू | हरा मिश्रित नीला | ५८२ | म्यू | अनन्य पीला |
| | ४९२ | म्यू | हरा-नीला | ६१० | म्यू | नारंगी |
| | ४९५ | म्यू | नीला-हरा | ६६० | म्यू | पीला मिश्रित लाल |
| | ४९७ | म्यू | नीला मिश्रित हरा | | | अनन्य लाल |
| | ५१५ | म्यू | अनन्य हरा | | | बैंगनी मिश्रित लाल |

**सारणी ११·१ तरंग-लंबाइयाँ और वर्ण । बाईं ओर उनके दृष्टि-परक वर्ण-क्रम की लघुतर तरंग-लंबाइयों पर रंग दिखायी देते हैं, दाईं ओर तदनुरूप पूरक रंग अधिक लंबी तरंग-लंबाइयों पर हैं । दिए गए रंग की तरंग-लंबाई का विशेष महत्त्व नेत्र की अनुकूलन स्थिति के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है । ध्यान दें कि अनन्य रंग वस्तुतः पूरक नहीं हैं ।**

संपूरक रंग (Complementary Hues) :

वर्ण-चक्र पर विशुद्ध लाल का अवर्णपटीय स्थल वर्ण दृष्टि के बुनियादी नियमों में से एक का संकेत प्रस्तुत करता है, यह है संपूरक वर्णों का नियम। संपूरक वर्ण, **वे रंग हैं जो मिश्रण के उपरांत धूसर या श्वेत दृष्टिगत होते हैं।** धूसर अथवा श्वेत चमक के आयाम, वर्णों के द्वितीय आयाम, से संबंधित हैं, जिसका विस्तार एक छोर पर काले से प्रारंभ होकर दूसरे छोर, श्वेत, तक होता है। शुद्ध धूसर अथवा श्वेत वे वर्ण हैं, जिनका कोई दृष्ट रंग नहीं है। संपूरक रंग वे रंग हैं जो मिश्रण के उपरांत एक दूसरे को च्युत कर देते हैं और रंगहीन वर्ण उत्पन्न करते हैं। संपूरक-वर्ण नियम प्रतिपादित करता है कि प्रत्येक रंग के लिए एक संपूरक रंग है, और ये संपूरक रंग जब उपयुक्त अनुपात में मिश्रित किए जाते हैं, तब धूसर या श्वेत वर्ण बनते हैं। जैसा कि चित्र ११.१० में देखा जा सकता है, पीले और नीले में दृष्टि-परक वर्ण-क्रम में एक संपूरक होता है, जो श्वेत भाग द्वारा प्रदर्शित है। हरे भाग में जो रंग हैं, उनके वर्ण-क्रमीय संपूरक रंग नहीं हैं। उनके संपूरक अवर्णपटीय हैं, अर्थात् वे वर्ण-क्रम के लाल और नीले छोरों के मिश्रण से निर्मित हैं। यह तथ्य हल्के रंगीन भाग द्वारा चित्र ११.१० में दिखाया गया है और गहरा रंगीन भाग अवर्णपटीय रंगों को प्रस्तुत करता है। अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि चित्र ११.१० में चक्र के रूप में रंग क्यों व्यवस्थित किए गए हैं। इस रूप में प्रस्तुत करने से वर्ण-संपूरक सिद्धांत स्पष्ट हो जाता है, जो कि हमारे प्रतिदिन के वर्ण-प्रत्यक्षीकरण में कार्य करता है।

## वर्ण-मिश्रण (Colour Mixture) :

क्या होगा यदि तरंग-लंबाइयों के मिश्रण में हम परस्पर संपूरक तरंग-लंबाइयों का उपयोग न करें ? साधारणतः हमारे पास ऐसे प्रकाश नहीं, जो संपूरक तुल्यता निर्मित करने के लिए तरंग-लंबाई में पर्याप्त शुद्ध हों। यदि वे हों भी, तो शायद ही कभी वे तुल्यता के लिए बिलकुल उपयुक्त तरंग-लंबाइयाँ होती हैं। इसलिए यह प्रश्न व्यावहारिक है। इसका उत्तर यह है कि प्रतिफलित रंग वह है, जो वर्ण-चक्र में मध्यवर्त्ती स्थिति में अवस्थित होगा।

चक्र में विपरीत वर्ण परस्पर पूरक है।
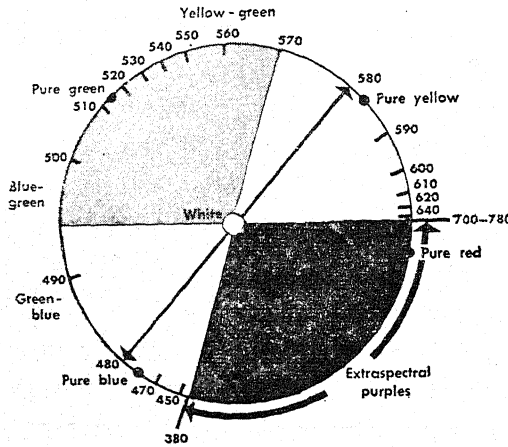
**चित्र ११·१० वर्ण-चक्र। यह रेखाचित्र विविध रंगों और उनके तदनुरूप तरंग-लंबाइयों को एक चक्र के रूप में प्रदर्शित करता है। वर्णहीन भागों में परस्पर विरुद्ध बिंदु पूरक रंगों को प्रस्तुत करते हैं। वर्णमय भागों में जो बिंदु हैं, उनकी पूरक तरंग-लंबाइयाँ दृष्टिपरक वर्ण-क्रम में नहीं होतीं।**

वर्ण-चक्र में दो मिश्रित रंगों के मध्य रेखा खींचकर हम प्रतिफलित होने वाले रंगों का निकट ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और तब रेखा पर बिंदु अंकित करके यह स्पष्ट कर सकते हैं कि किस अनुपात में वे मिश्रित हुए हैं। अतएव, यदि हम पीले और हरे को मिश्रित करें, हमें चक्र में उनके निर्दिष्ट स्थलों के मध्य रेखा खींचनी होगी। यदि हम एक अंश हरे रंग को दो अंश पीले रंग में मिलाएँ, तो हम उस रेखा पर पीले से हरे की ओर एक-तिहाई पर चिह्न लगा सकते हैं। यह बिंदु रेखा की ओर निर्दिष्ट करता है और वह रेखा प्रतिफलित होने वाले रंग की ओर। यदि हम जानना चाहें कि जब हम कोई भी तरंग-लंबाइयों को मिश्रित कर दें, तो क्या होगा ? हम इस प्रक्रिया को वर्ण-चक्र से अलग प्रयोग कर सकते हैं। यही प्रक्रियाएँ प्रमुख रंगों के, जब वे तीन, चार या और भी अधिक भिन्न रंगों का मिश्रण
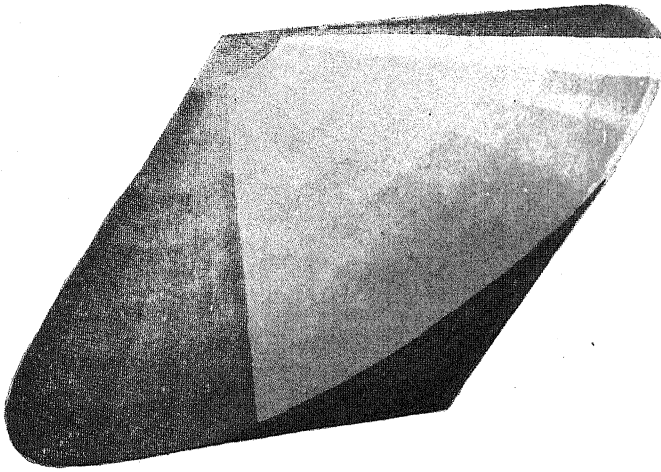
चित्र ११·११ वर्ण-कोण या पिंड। जब सब वर्ण तीन आयामों में व्यवस्थित किए जाते हैं, तो वे एक वर्ण-कोण अथवा वर्ण-पिंड निर्मित करते हैं। सबसे ऊपरी भाग में सर्वाधिक दीप्ति के वर्ण हैं और तल भाग में न्यूनतम दीप्ति के। चक्र के घेरे में विभिन्न रगों के वर्ण हैं। कोण के केंद्रीय अक्ष से वाह्य दूरी संतृप्ति प्रस्तुत करती है। (मोर बिजनेस, कापीराइट, १९३७ अमेरिकन फोटो एनग्रेवर्स एसोसिएशन द्वारा)

होते हैं, के विषय में बताने में भी प्रयोग की जा सकती हैं, यद्यपि वे अधिक जटिल हो जाएँगी।

जिन विद्यार्थियों को रंगों (पेंट) को मिश्रित करने का अवसर मिला है, वे सोच सकेंगे कि तरंग-लंबाइयों के मिश्रण के वे ही नियम नहीं हैं, जो नियम पेंटों के मिश्रण के हैं। यह सत्य है। उदाहरणतः पीली और नीली तरंग-लंबाइयों के मिश्रण का प्रत्यक्षीकरण धूसर या श्वेत होता है, किंतु नीले और पीले पेंटों के मिश्रण का प्रत्यक्षीकरण हरा होता है। क्यों ?

पेंट प्रकाश का उत्सर्जन नहीं करते, वे उसका परावृत्त या अवशोषण करते हैं। उनसे टकराने वाले समस्त प्रकाश का वे कभी भी उत्सर्जन नहीं करते। वे वर्णमय होकर कुछ तरंग-लंबाइयों का अवशोषण करते हैं और जो बच जाते हैं, उन्हें उनका वर्ण प्रदान करते हैं। उदाहरणतः, पीला पेंट प्रायः बैंगनी और नीली तरंग-लंबाइयों को अवशोषित करता है, कुछ हरी और लाल, कुछ और अधिक पीली-हरी और नारंगी तथा प्रचुर पीली तरंग-लंबाइयों को परावृत्त करता है। दूसरी ओर नीला पेंट लाल, नारंगी और पीली तरंग-लंबाइयों का अवशोषण और पीली-हरी, हरी, नीली और बैंगनी का परावृत्त करता है। जब ये दो पेंट मिश्रित किए जाते हैं, तो परिणाम व्ययकलन तथा साथ ही अधिकत्व होता है। प्रत्येक पेंट वर्ण-क्रम के अपने भाग का अवशोषण करता है और परावृत्त के लिए जो शेष रह जाता है, दोनों पेंटो की अवशोषणता और परावर्तकता पर निर्भर करता है। पीले और नीले पेंटों में अधिकांश परवर्त्ती तरंग-लंबाइयाँ हरी होती हैं। फलतः पेंटों के वर्ण-मिश्रण के नियम ऊपर उल्लिखित वर्ण-मिश्रण के नियमों का उल्लंघन नहीं करते। जब कोई पेंटों को मिश्रित करता है, महत्त्वपूर्ण तथ्य यह स्पष्ट किया जाता है कि कौन-सी तरंग-लंबाई अंततोगत्वा नेत्र तक पहुँचती है।

### संतृप्ति (Saturation) :

अब तक हमने वर्ण के रंग आयाम को स्पष्ट किया है और दूसरे आयाम, दीप्ति (चमक) तक, जिसका विस्तृत विवेचन नीचे किया जाएगा, पहुँचने का उल्लेख किया है। अब दृष्ट वर्ण के अंतिम आयाम का परिचय और विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा। यह है '**संतृप्ति**'।

जब रंग मिश्रित होते हैं, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, तब प्रतिफलित वर्ण न केवल रंग में भिन्न होता है, बल्कि संतृप्ति में भी। 'संतृप्ति' का संबंध वर्ण की शुद्धता से है और कभी-कभी वस्तुतः यह 'शुद्धता' ही कहलाती है। शुद्धता से हमारा तात्पर्य रंग या रंगों की 'अनन्यता' नहीं है। बहुत शुद्ध बैंगनी रंग या शुद्ध पीला-

हरा रंग हो सकते हैं, किंतु ये अनन्य रंग नहीं हैं। 'शुद्धता' या संतृप्ति द्वारा हम यही बतलाते हैं कि किस डिग्री तक धूसरता या श्वेतता द्वारा रंग तनुकृत होते हैं या तनुकृत नहीं होते हैं।

निम्नलिखित उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट होना चाहिए। ५८० मिलिमाइक्रोन का पीला रंग ४८० मिलिमाइक्रोन के नीले रंग का संपूरक रंग है। प्रत्येक एकाकी रंग, जब प्रिज्म द्वारा उत्पन्न किया जाता है, यथासंभव शुद्ध या उच्च रूप में संतृप्त होता है। जब ये दो रंग मिश्रित किए जाते हैं, प्रतिफलित वर्ण चित्र ११.१० में दो तरंग-लंबाइयों को जोड़ने वाली रेखा में कहीं अवस्थित होता है। जब अनुपात उपयुक्त होता है, तब मध्य में यह वर्ण जो श्वेत वर्ण द्वारा निर्दिष्ट है, अवस्थित होगा। इस स्थल पर इसमें शुद्धता या संतृप्ति बिलकुल नहीं होती, केवल इसलिए कि इसमें स्पष्ट हो सकने वाला कोई रंग नहीं होता। एक बिंदु पर, मान लीजिए चक्र पर ५८० के बिंदु को और एक तिहाई लंबाई पर, इसमें कोई रंग होगा—वस्तुतः बिलकुल वही रंग, जैसे ५८० तरंग-लंबाई का ही भाग हो, वर्ण की संतृप्ति न्यून होगी; क्योंकि उसमें श्वेत की पर्याप्त मात्रा होगी। यह सत्य है; क्योंकि नील वर्ण पीत के कुछ वर्ण को, किंतु सबको नहीं, प्रति-संतुलित कर लेता है और इस प्रकार श्वेत और पीत को मिश्रित कर देता है।

संतृप्ति को, वर्णमय-चक्र पर चक्र की रेखाओं ( आरा ) में वर्ण की स्थिति के रूप में समझा जा सकता है। रेखा से यह जितनी दूर होता है, इसकी शुद्धता या संतृप्ति उतनी ही अधिक होती है। मध्य के श्वेत तटस्थ-बिंदु के यह जितना निकट होगा, इसकी संतृप्ति या शुद्धता ही न्यून होती है। इसे अधिक परिचित भाषा में कहा जाए, पेस्टल या मंद-वर्ण वे वर्ण हैं, जो सापेक्षतः असंतृप्त हैं। उन्हें निर्मित करने के लिए पेंटों का मिश्रक रंजक की अल्पमात्रा को मूल श्वेत पेंट में मिश्रित करता है। दूसरी ओर गहरे या घने वर्ण वे हैं, जो बहुत अधिक संतृप्त होते हैं। उन्हें बनाने के लिए पेंट मिश्रक अनुपात में बड़ी मात्रा में रंगीन रंजक का प्रयोग मूल पेंट में करता है। वस्तुतः, सर्वाधिक संतृप्त वर्ण, केवल रंगीन पिगमेंटों के उपयोग और श्वेत के मिश्रण को पूर्णतः छोड़ कर, बनाए जाते हैं।

शुद्ध तरंग-लंबाइयाँ वह सर्वाधिक संतृप्ति या शुद्धता देती हैं, जिसे नेत्र देखने में समर्थ हैं। दूसरी ओर, शुद्ध तरंग-लंबाई समान रूप में संतृप्त नहीं होतीं। पीत सबसे कम संतृप्त होती हैं, हरी उनसे कुछ अधिक तथा लाल और नीले वर्ण-क्रम के छोर सर्वाधिक संतृप्त रहते हैं। इसका कारण जीवक्रिया वैज्ञानिक है। एक पीत तरंग-लंबाई संग्राहक को हरी और लाल तथा पीत के लिए उद्दीप्त करती है और

इस प्रकार हरी, लाल और पीत के श्वेत संपूरक प्रभाव को उत्पन्न करती हैं। दूसरी ओर, लाल और नील तरंग-लंबाइयाँ इन संवेदनों के लिए उत्तरदायी संग्राहकों तक अधिक सीमित रहती हैं और इस प्रकार दृष्टि-वर्ण की संतृप्ति को तनुकृत करने वाले श्वेत की कम उत्पन्न करती हैं ( वर्ण-दृष्टि में संग्राहक प्रक्रिया का विवेचन अगले परिच्छेद में किया गया है) ।

## दीप्ति (चमक) (Brightness) :

दृष्टि-वर्ण का तृतीय आयाम 'दीप्ति' है। यह आयाम काले से लेकर धूसर रंग की विविध आभाओं में फैला रहता है। इसे रंग और संतृप्ति के आयामों के साथ प्रस्तुत करने के लिए अपेक्षित है कि वर्ण-चक्र को वर्ण-पिंड में प्रस्तुत किया जाए (देखिए चित्र-११·११)। वर्ण-पिंड बनाने के लिए, वर्ण-चक्रों को पिंडिका की एक परत पर दूसरी परत के समान एकत्रित करना होगा। इस पिंड में ऊपर से नीचे का आयाम दीप्ति को प्रस्तुत करता है। ऊपरी भाग के वर्ण चमकदार हैं और लगभग काले। पिंड की मध्य रेखाएँ विविध वर्ण-चक्रों के मध्य से जाती हैं और उन बिंदुओं को प्रकट करती हैं, जहाँ न रंग है और न संतृप्ति, केवल है परिवर्तनशील दीप्ति।

दीप्ति के रंग और संतृप्ति से संबंध को पुनः पेंटों के उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। हम पेंट की धूसरता के काले पिगमेंट को श्वेत पिगमेंट में मिश्रित करके परिवर्तित कर सकते हैं। केवल श्वेत पिगमेंट का प्रयोग करके और काले को बिलकुल न लेकर, हम यथासंभव सर्वाधिक दीप्त ( चमकदार ) पेंट प्राप्त कर सकते हैं। विलोमतः केवल काले पिगमेंट का प्रयोग करके और श्वेत को बिलकुल छोड़कर हम न्यूनतम दीप्ति का पेंट प्राप्त कर सकते हैं। इन दोनों के मध्य धूसर वर्ग की अनेक आभाएँ विविध मिश्रणों द्वारा होती हैं। यह पिंड का ऊपर से नीचे का आयाम है। धूसरता को भिन्न अनुपातों में विभिन्न रंगों के पिगमेंटों में मिश्रित किया जा सकता है। जब रंगीन पिगमेंट का अनुपात धूसर पिगमेंट में न्यून होता है, तो प्रतिफलित रंग पिंड के केंद्र के निकट होते हैं और उनकी संतृप्ति न्यून होती है। जब अनुपात अधिक होता है, प्रतिफलित रंग चक्र की परिमा के बाहरी घेरे के निकट होता है और इसकी संतृप्ति अधिक होती है। दूसरा आयाम, रंग, चक्र के मध्य वर्ण के स्थान को निर्धारित करता है। देखिए रंगीन चित्र, ११·११।

## मनसेल प्रणाली (The Munsell System) :

वर्ण-पिंड द्वारा प्रस्तुत की गई सामान्य योजना का परिष्कार **मनसेल प्रणाली** ने किया और उसे व्यवहार के लिए उपयोगी बनाया है, यद्यपि इस प्रणाली से वह

अधिक जटिल हो गया है। यह प्रणाली तीनों आयामों के अंतर को चिह्नित करती है, जो कि लगभग बराबर दृष्टिगत होते हैं—एक कुशल प्रेक्षक एक आयाम के अंतर के दो बिंदुओं का निर्णय वही करता है, जो अंतर प्रत्येक आयाम के अन्य दो बिंदुओं के मध्य होता है और उन्हें अंकों से अभिहित करता है। इस प्रकार किसी विशेष रंग, संतृप्ति और दीप्ति के वर्ण को आँकड़ों में स्पष्ट किया जा सकता है। आवश्यक नहीं है, कि यहाँ हम अंक-प्रणाली को महत्त्व दें; क्योंकि यहाँ उसकी जितनी उपादेयता है, उससे अधिक विश्लेषण इसे स्पष्ट करने के लिए अपेक्षित है। इसका पूर्ण विवेचन 'मनसेल्स बुक ऑफ कलर' में किया गया है, जो तीन आयामों के विविध मिश्रण' के अनेक प्रतिरूपों को भी प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में वह प्रत्येक वर्ण पाया जा सकता है, जो मनुष्य को ज्ञात है और जो छपाई में प्रयुक्त पिगमेंट के मिश्रण द्वारा निर्मित किया जा सकता है, यद्यपि केवल प्रिज्म द्वारा उत्पन्न किए जा सकने वाले अत्यधिक संतृप्त वर्ण इसमें नहीं मिलेंगे। ऐसा प्रत्येक वर्ण अंकों में अभिव्यक्त किया गया है और जिसका प्रयोग पेंट-निर्माता द्वारा तथा उन व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है, जिन्हें वर्ण प्रतिमानों की, किसी विशेष वर्ण को निर्धारित करने या पुनर्निर्मित करने में, आवश्यकता रहती है। देखिए रंगीन चित्र, ११·१२।

### वर्णांधता (Colour Blindness) :

प्रत्येक २५ व्यक्तियों में लगभग १ व्यक्ति वर्णांध है और स्वाभाविक है कि यह दोष उसके दैनिक व्यवहार को अनेक रूपों में प्रभावित करता है। उदाहरणत: कुछ स्त्रियाँ केवल एक विशेष रंग (छाया) का लिपस्टिक ही लगा सकती हैं; क्योंकि यदि वे किसी अन्य रंग का लिपस्टिक प्रयोग करती हैं, तो वे उसे देख नहीं पातीं और उसे अपने कपड़ों में पोत लेती हैं। घरों को पेंट करने वाले एक वर्णांध पेंटर ने एक बार शोकार्त होकर हमसे कहा था कि उसे लगभग आधे घर को दुबारा पेंट करना पड़ा था; क्योंकि आधे भाग में उसने जिस रंग का प्रयोग किया था, दूसरे भाग का रंग उससे मेल नहीं खा रहा था। वर्णांध रसायनविदों को धात्विक पदार्थों के लौ-परीक्षण में वर्णों को पहचानने के लिए अपने प्रयोगशाला-सहायकों पर निर्भर करना पड़ता है और कुछ इलेक्ट्रानिक शिल्पकार वर्ण-संकेतों के आधार पर तार के गुच्छों को मिला नहीं सकते।

### वर्णांधता क्या है ?

निश्चय ही वर्णों को विशेष नामों से पहचानने की अयोग्यता यह नहीं है; क्योंकि यह भाषागत प्रश्न है। यह यथार्थ अंधता भी नहीं है। अधिकांश वर्णांध व्यक्ति वस्तुत: वर्णों के लिए अंध नहीं होते। वे प्राय: अनेक वर्ण देख सकते हैं, किंतु
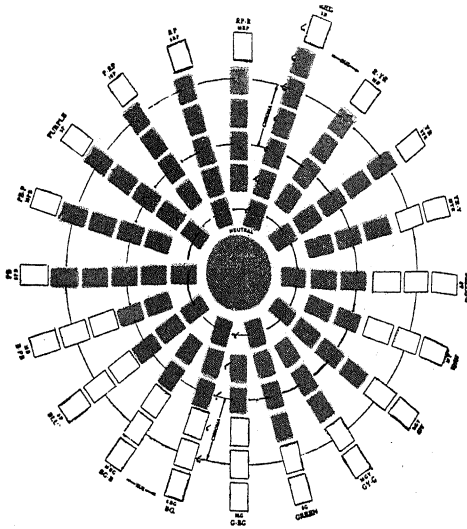
चित्र ११·१२ 'मनसेल्ल बुक ऑफ कलर' के दो चित्र जो वर्णों के रंग, संतृप्ति और दीप्ति को स्पष्ट करते हैं। ऊपर का चित्र एक ही दीप्ति के रंगीन प्रतिरूपों को प्रदर्शित करता है (मूल्य ५/ मनसेल्ल की शब्दाबली में) वे केवल रंग और संतृप्ति में परिवर्तित होते हैं (मनसेल्ल की शब्दावली में बर्ण-घनत्व) ऊर्ध्वाधर स्तंभ में ऊपर लालिमामय प्रतिरूप को १० आरपी० ५/१० के रूप में निर्दिष्ट किया है। दाहिने चित्र में सब प्रतिरूपों का, केवल प्रथम स्तंभ को छोड़कर, एक ही रग है ( ५·० मनसेल्ल प्रणाली में लाल ) वे केवल दीप्ति या संतृप्ति में भिन्न हैं (मूल्य या वर्ण-घनत्व)। मनसेल्ल प्रणाली का एक बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि यह सब दर्णों का मानक अभिधान प्रस्तुत करती है। उदाहरणत: ८ पंक्ति के दाईं ओर का प्रतिरूप ( चित्र में नीचे दाहिनी ओर) ५·० ओआर० ८/४ के रूप में निर्दिष्ट है।
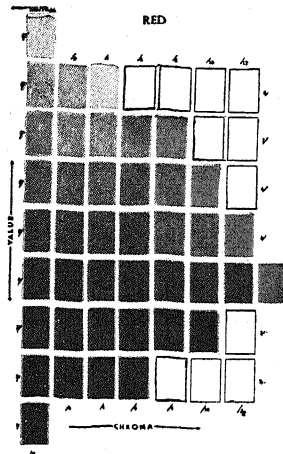
विशिष्ट क्रांतिक वर्णों को स्पष्ट पहचानने में भूल कर जाते हैं। रसायन-विज्ञान में पर-माणु सिद्धांत के प्रणेता जॉन डाल्टन ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप में समझा और उन्होंने इस विकार का एक सर्वप्रथम तथा सर्वोत्तम वैज्ञानिक विवरण प्रस्तुत किया।

डाल्टन स्वयं इतने वर्णांध थे कि जब ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उन्हें दीवानी कानून (सिविल लॉ) की डाक्टर डिग्री प्रदत्त करते हुए लोहित गाउन दिया, वे अनेक दिन तक हर जगह उस गाउन को पहनते रहे, बिना यह जाने कि उसमें वे कितने विचित्र दिखायी देते थे। उनके मित्रों को इससे बहुत आश्चर्य हुआ; क्योंकि वे जानते थे कि डाल्टन क्वेकर (सोसाइटी ऑफ फ्रेंड्स का सदस्य) थे और उस वर्ग के व्यक्तियों से धूसर वर्ण गाउन पहनने की आशा की जाती है। १७९४ ई० में अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में डाल्टन ने मैनचेस्टर लाइब्रेरी और फिलासोफिकल सोसाइटी में वर्ण संबंधी अपने संवेदनों को अभिव्यक्त किया। वर्णांधता के इस प्रसिद्ध वक्तव्य के कारण (बोरिंग, १९४२) सौ वर्ष से अधिक समय तक यह विकार 'डाल्टन' कहा गया। उन्होंने कहा :—

> "सब कृमिज (क्रिमसन) वर्ण मुझे मुख्यतः गहरे नील दिखायी देते हैं, परंतु उनमें से अनेक में गहरे भूरे वर्ण की आभा दिखायी देती है। मैंने कृमिज, रक्ताभ और पंकवर्ण के प्रतिरूप देखे, जो एक दूसरे से बहुत मिलते-जुलते थे·· बहुत चटकीले वर्ण मुझे मंद दृष्टिगत होते और श्वेत पृष्ठभूमि में मंद वर्ण मुझे अपारदर्शी कृष्ण-नील दिखायी देते······। रक्त मुझे·····गहरे हरित वर्ण से भिन्न दिखायी न देता······। लाल लाख और हरी लाख में मुझे विशेष अंतर प्रतीत न होता।"

महत्त्वपूर्ण तथ्य है, वर्णांधता ऐसा विकार है जो व्यक्ति को दो या अनेक रंगों के अंतर को स्पष्ट करने में असमर्थ कर देता है, जिसे अनेक अन्य व्यक्ति सहज ही भिन्न कर सकते हैं। यह एक प्रकार का अभाव नहीं है, जैसा कि प्रायः सोचा जाता है। इसके विपरीत वर्णांधता के अनेक प्रकार हैं और प्रत्येक प्रकार में विकार की मात्रा में अंतर होता है।

## संपूर्ण वर्णांधता :

संपूर्ण वर्णांधता, जिसे पारिभाषिक शब्दावली में 'अवर्णता' ( एक्रोमेटिज्म ) कहा जाता है, बहुत कम होती है। दृष्टि-विज्ञान के इतिहास में इस प्रकार के केवल सौ उदाहरणों का विवरण मिलता है। पूर्णतः वर्णांध व्यक्ति को—जिसमें दृष्टिगत अन्य विकार भी होते हैं—यह संपूर्ण विश्व काले और श्वेत फोटोग्राफ के समान प्रतीत होता है। वह श्वेत, काले और धूसर वर्णों की विविध आभाओं को भिन्न कर सकता है, किंतु रंग नाम की वस्तु वह नहीं देख पाता।

## द्विवर्णी दृष्टि ( Two-colour Vision ) :

वर्णांधता का अत्यधिक प्रचलित प्रकार द्विवर्णी-दृष्टि है, जिसे 'द्विवर्णिकता' (डाइक्रोमेटिज्म) कहा जाता है (गेलार्ड, १९५३)। इस विकार से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए वर्ण प्रत्यक्षीकरण अनिवार्यतः दो रंगों में परिणित हो जाता है—पीत और नील। ऐसे अनेक व्यक्ति लाल, हरे और पीले की कुछ आभाओं को एक दूसरी में मिला देते हैं और नील-हरित, नील तथा बैंगनी में स्पष्ट अंतर करने में असमर्थ रहते हैं। नील हरित की एक विशेष आभा को द्विवर्णिक व्यक्ति धूसर से मिला देते हैं। किंतु, पीले और नीले रंगों में वे कभी भूल नहीं करते।

दृष्टि-वैज्ञानिक द्विवर्णिकों के दो प्रमुख भेद करते हैं। एक प्रकार के भेद में केवल वर्ण-दृष्टि में विकार रहता और दीप्ति-दृष्टि में नहीं। यह भेद ड्यूटरानोपस कहलाता है और रंग-पिंड की प्रत्येक दीप्ति को अंतर कर सकता है। केवल लाल और हरे रंग में भेद करने की योग्यता की कमी रहती है। दूसरा भेद प्रोटानोपस कहलाता है। सामान्य व्यक्तियों की भाँति यह लाल की दीप्ति नहीं देख सकता। यदि किसी प्रोटोनोप को कोई लाल उद्दीपन दिखलाया जाए, तो वह उसे केवल लाल नहीं देखता, वरन् वह उसे काला भी समझने की भूल कर सकता है। द्विवर्णियों का एक तीसरा भेद भी है, जिसे ट्रिटानोपस कहा जाता है। वे इस प्रकार व्यवहार करते हैं, मानो वे नीले वर्ण नहीं देख सकते। ट्रिटानोपस इतने विरल पाए गए हैं कि हम उनकी दृष्टि के विषय में अत्यल्प जानते हैं।

## असंगत वर्ण-विकार (Anomalous Colour-defect) :

स्पष्ट डाइक्रोमेट्स के अतिरिक्त कुछ व्यक्ति हैं जो 'वर्ण-दुर्बल' (Colour-weak) होते हैं। उनका दौर्बल्य इतना मंद होता है कि केवल अति सावधानी से किए गए परीक्षणों द्वारा ही उनका पता लगाया जा सकता है। ऐसे व्यक्तियों को दीप्त अथवा स्पष्ट वर्णों को देखने में किंचित कष्ट होता है। परंतु, उनका विकार प्रकट होता है, जब वे गहरे पीले या हल्के भूरे, पीले-भूरे, हरे और गुलाबी के अंतर को स्पष्ट करने की चेष्टा करते हैं। इस वर्ण-दुर्बलता को हम **'असंगत वर्ण-विकार'** कहते हैं। असंगत त्रिवर्णीय विकार के तीन प्रमुख भेद हैं, १. ड्यूटर-असंगति ( ड्यूटर एनामालस ), २. प्रोटाअसंगति (प्रोटाएनामालस) अथवा ३. ट्रिटा असंगति ( ट्रिटा-एनामालस. ), ये निर्भर करते हैं कि किस प्रकार के द्विवर्णीय के वे अधिक निकट हैं।

वर्णांधता के अनेक प्रकार आनुवंशिक होते हैं और यह विकार लिंग सहवर्त्ती अप्रबल लक्षण माना गया है। वर्णांधता की आनुवंशिक प्रक्रिया का विवेचन और विश्लेषण द्वितीय अध्याय में किया गया है। आनुवंशिकता के संपृक्त होने के कारण

वर्णांधता स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक पायी जाती है। सांख्यिकीय अंकों के अनुसार प्रत्येक १५ पुरुषों में १ पुरुष वर्णांध होता है, जब कि स्त्रियों में १ प्रतिशत स्त्रियाँ इस विकार से ग्रस्त होती हैं।

## वर्ण-विकार बोध :

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय यह एक सामान्य अनुभव था कि वायुसेना और जलसेना में भरती होने वाले आवेदकों ने अपनी वर्णांधता को बलपूर्वक अस्वीकार किया था। प्रायः वे कहते, 'आपका क्या अभिप्राय है डाक्टर ? मैं वर्णों को देख सकता हूँ। वर्णों को देखने में मुझे कभी कोई कठिनाई नहीं हुई।'

वर्ण-सामान्य व्यक्ति के लिए यह कल्पनातीत है कि कोई व्यक्ति जीवन में इस तथ्य से अज्ञात रहकर कि रंगों के वैभव और विविधता को, जिसे अन्य व्यक्ति देखते हैं, वह बिना देखे रहता है। इस उलझनपूर्ण स्थिति को विविध दृष्टिकोणों से समझने का हमें प्रयत्न करना चाहिए। सर्वप्रथम, अधिकांश वर्णांध व्यक्ति कुछ रंगों को देखते हैं। द्वितीय, व्यक्ति अननुभूत संवेदना की प्रशंसा नहीं कर सकता। जिस व्यक्ति में जन्म से ही स्वाद-कलिकाओं का अभाव रहा है, वह कभी सागर की लवणता या सेव की मधुरता को समझ नहीं सकता। ५०,००० साइकल की स्वरध्वनि मानव-श्रवणता के विन्यास के कितनी ऊपर है ? अथवा, अवरक्त प्रकाश का वर्ण क्या है ? हम इन प्रश्नों के उत्तर नहीं दे सकते; क्योंकि वे हमारे अनुभव-क्षेत्र के बाहर के हैं। इसके अतिरिक्त चूँकि हमने उन्हें कभी अनुभव नहीं किया है, हम इस सत्य को भुला नहीं सकते कि हम उन्हें कभी अनुभव **नहीं कर सकते**। अतः, वर्ण-दृष्टि-विकार प्रायः विध्यात्मक रूप में अपने को प्रकट नहीं करते।

विश्लेषण का अंतिम भाग यह है कि वर्ण-विकृत व्यक्ति अनेक सामान्य वस्तुओं के शुद्ध वर्णों के नामों का प्रयोग करना सीख लेता है। वह जानता है कि घास हरी है, नींबू पीले हैं, पके हुए सेव लाल हैं इत्यादि; क्योंकि उसने इनको बाल्य-काल में सीखा था। अनुभव द्वारा उसने अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त नामों के अनुकरण करना और उनके शुद्ध रूप को सहज स्वीकार करना सीख लिया है। यदि आप किसी वर्ण-विकृत व्यक्ति की भूल को शुद्ध करें, जो किसी हल्के हरे रंग की वस्तु को 'गुलाबी' कहता है, वह तुरंत कहेगा, 'ओ, हाँ, यह हरी है। मैं अब इसे ठीक से देख पाया।' हमारे सब वर्ण-नाम उसे संतुष्ट करेंगे; क्योंकि उसके लिए यह मात्र सीखने की बात है। कठिनाई यह है कि उसे वर्ण-नामों की अपेक्षा वर्ण-संवेदनाएँ बहुत कम होती हैं और वह प्रायः निश्चित नहीं कर पाता कि अपनी संवेदनाओं को क्या संज्ञा दे।

### वर्ण-दृष्टि विकारों की पहचान :

प्रायः इसका पता लगाने के लिए कि व्यक्ति की वर्ण-दृष्टि विकृत है, विशेष परीक्षणों की आवश्यकता होती है। यदि आप उससे साधारण वस्तुओं के वर्णों के विषय में पूछें, तो संभावना रहती है कि वह आपको शुद्ध वर्ण बता सकेगा। परंतु, उसके विकार का ज्ञान तब प्रकट होगा, यदि आप उसे अंधेरी रात में कहीं बाहर, पहचान के अन्य सब साधनों से परे ले जाएँ और उससे दूरस्थ दृष्टिगत प्रकाशों में से पीला, हरा और लाल प्रकाश पहचानने के लिए कहें। इन सिद्धांतों के अंतर्गत, वर्ण-दृष्टि के परीक्षणार्थ, अनेक प्रकाश-परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

वर्ण-दृष्टि के परीक्षण का एक अन्य और अधिक संतोषजनक साधन मिथ्या सवर्णीय प्लेटें हैं (देखिए रंगीन चित्र, ११.१३)। उदाहरणतः, एक परीक्षण में ऐसे कार्ड होते हैं, जिन पर चटकीले बैंगनी-लाल बिंदु इस प्रकार अंकित रहते हैं कि किसी अंक का आकार बन जाए। एक सामान्य व्यक्ति उस अंक को तत्काल देख सकता है; क्योंकि उसका वर्ण पृष्ठभूमि में उभर आता है। किंतु, विशेष प्रकार के वर्ण-विकारों से ग्रस्त व्यक्ति उसे नहीं पढ़ सकते; क्योंकि उन्हें सब बिंदु एक ही वर्ण के दृष्टिगत होते हैं। अब यह जान लेने के उपरांत कि परीक्षण किस प्रकार कार्य करते हैं, आपकी समझ में आ जाना चाहिए कि वे 'मिथ्यासवर्णीय' ( Pseudoisochomatic ) क्यों कहलाते हैं।

### नेत्र की संवेदनशीलता :

इस अध्याय के प्रारंभ में हमने लिखा है कि नेत्र इतना संवेदनशील है कि एक सामान्य व्यक्ति दियासलाई के प्रकाश को ५० मील की दूरी से देख सकता है। यह तभी सत्य है कि यदि रात्रि स्वच्छ हो, यदि पृथ्वी की वक्रता कहीं पथ में बाधा उपस्थित न करे तथा यदि नेत्र भली-भाँति अंधकार-अनुकूलित हों। नेत्र की संवेदनशीलता वस्तुतः प्रशंसनीय है। यदि हम उसका विविध स्थितियों में सावधानी से परिमापन करें, हम दृष्टि के संबंध में और कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

### अंधकार-अनुकूलन :

निश्चय ही प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि अंधकार में नेत्र अधिक संवेदनशील हो जाता है। केवल उन अवसरों को स्मरण करें, जब आप दोपहर के समय सिनेमा देखने गए हों। तब आपने अनुभव किया होगा कि आप तब तक अपने पार्श्व अथवा अपनी कुर्सी को देखने में असमर्थ रहते हैं, जब तक कि कुछ मिनट प्रतीक्षा करने पर आपके नेत्र अंधकार के अभ्यस्त नहीं हो जाते। निश्चय ही जब आप अंधकार से बाहर आ जाते हैं और पुनः उज्ज्वल प्रकाश में पहुँचते हैं, आपके नेत्र प्रकाश-अनुकूलित हो
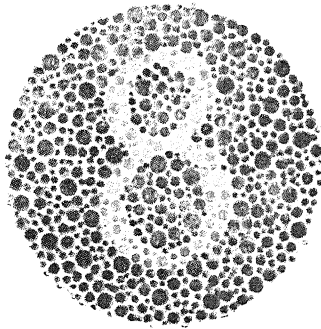
चित्र ११ १३ वर्णांधता के इशिहारा-परीक्षण की एक प्लेट। प्लेट को सामान्य व्यक्ति अंक ८ रूप में, लाल-हरा, वर्णांध अंक ३ के रूप में और पूर्णतः वर्णांध किसी अंक को नहीं देखता (सी० एच० स्टॉल्टिंग को०, शिकागो, संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा और मेक्सिको में इशिहारा-परीक्षण के वितरक)।

जाते हैं और उनकी संवेदनशीलता कुछ कम हो जाती है। किसी व्यक्ति के नेत्रों को उज्ज्वल प्रकाश में पूर्णतः अनुकूलित करके तब उस व्यक्ति को अंधकार में ले जाकर कुछ मिनट तक उसकी परमावश्यक अवसीमा का परिमापन करके हम अंधकार-अनुकूलन-क्रिया को परिमापित कर सकते हैं।

प्रतिफलित परिमापन चित्र ११·१४ के वक्र के कुछ-कुछ समान दिखायी देंगे, प्रारंभ में अवसीमा पर्याप्त ऊँची है—इतनी ऊँची कि कमरे में मोमबती के जलने पर भी वह जान नहीं पाएगा, जब तक कि वह उसकी लौ को न देखे। संवेदनशीलता बढ़ जाती है, पहले बहुत द्रुत गति से, तदंतर कुछ धीरे-धीरे। आधे घंटे के उपरांत संवेदनशीलता अंधकार-अनुकूलन की प्रारंभिक अवस्था की अपेक्षा १,००० से १००,००० गुना अधिक हो जाती है।

पर्याप्त समय देने पर, नेत्र प्रकाश की अपेक्षा अंधकार में कई सहस्रहगुना अधिक संवेदनशील होता है।
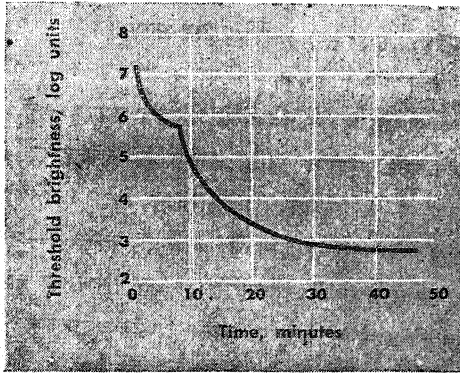
**चित्र ११.१४**

**अंधकार-अनुकूलन का एक विशिष्ट वक्र। एक प्रयोग-पात्र को कुछ समय तक सामान्य अथवा अति प्रकाश में रखने के बाद अंधकार में ले जाते, तथा उससे न्यूनतम प्रकाश ( दीप्तिमय अवसीमा ) जिसे वह देख सकता है, की ओर निर्देशित करने के लिए कहा जाता है। अवसीमाओं की गणना बार-बार, प्रति मिनट के बाद होती है और अंधकार-अनुकूलन वक्र में परिणामों को अंकित किया जाता है। वक्र की दो भुजाओं की ओर ध्यान दें।**

ध्यान दें, अंधकार-अनुकूलन-वक्र के दो भाग हैं : प्रारंभिक स्खलन के बाद कुछ क्षणों के लिए इसका सम-स्तर हो जाता है, तदंतर यह निरंतर सम-स्तर पर आने से पहले अधिक द्रुत गति से निम्नोन्मुखी होता है। ये दोनों भाग नेत्र के दो भिन्न संग्राहकों—शलाकाओं और शंकुओं—से संबंधित हैं, जैसा कि हम वर्णक्रमीय सुग्राहिता के परिमापन से देख सकते हैं।

वर्णक्रमीय सुग्राहिता :

**'वर्णक्रमीय-सुग्राहिता' शब्द दृष्टिगत-वर्ण-क्रम की विभिन्न तरंग-लंबाइयों की संवेदनाशीलता को स्पष्ट करता है** । इसे परिभाषित करने के लिए, श्वेत प्रकाश के स्थान पर परमावश्यक अवसीमाओं के उपलब्धार्थ विभिन्न तरंग-लंबाइयों के प्रकाशों का प्रयोग किया जाता है। तदंतर परमावश्यक अवसीमा को तरंग-लंबाई के मापक पर अंकित किया जाता है।

उपलब्ध विशेष परिणाम, जिन पर हम पहुँचते हैं, नेत्र-अनुकूलन की अवस्थाओं की क्रियाएँ हैं। यदि नेत्र को परिमापन काल में प्रकाश-संपृक्त-परीक्षण तरंग-लंबाई से घेर कर प्रकाश-अनुकूलित रखा जाए, तो परमावश्यक अवसीमा, उसे अंधकार-अनुकूलन रखने की स्थिति की अपेक्षा, कहीं अधिक होगी। इसके अतिरिक्त प्रकाश-अनुकूलित नेत्र के लिए श्रेष्ठतम अवसीमाएँ ५५० मिलिमाइक्रोन के क्षेत्र में रहती हैं और अंधकार-अनुकूलित के लिए ५०० मिलिमाइक्रोन के आसपास।

यह अंतर उद्दीप्त किए गए संग्राहकों, शलाकाओं और शंकुओं, पर निर्भर करता है ( गिब्सन और टाइंडल, १९२३ )। अंधकार-अनुकूलन में शलाकाएँ प्रमुख रहती हैं, प्रकाश-अनुकूलन में शंकु। इसका परिमापन दृष्टिपटल पर दो भिन्न स्थलों को लेकर स्पष्ट किया जा सकता है। फोविआ में, केवल शंकु होते हैं, अतएव केवल फोविआ को उद्दीप्त करने वाले पर्याप्त छोटे प्रकाश के खंड द्वारा किए गए परिमापन शंकु की संवेदनशीलता के अभिसूचक हैं। फोविआ से २० कोणीय अंश के लगभग एक बिंदु पर—हम शरीर-रचना -विज्ञान से अधिगत करते हैं—शलाकाएँ बहुत घनी होती हैं। इस बिंदु पर शलाका की संवेदनशीलता का परिमापन हो सकता है, प्रेक्षक विशेष रूप से प्रकाश को अपने फोविआ से देखता है और बताता है कि वह फोविआ से २० डिग्री पर केंद्रित प्रकाश-खंड को देख सकता है या नहीं।

चित्र ११·१५ में शलाकाओं एवं शंकुओं की वर्णक्रमीय सुग्राहिता की इन तुलनाओं के परिणामों को संक्षेप में प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार की दत्त-सामग्री से हम निम्नांकित निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं :—

१. शलाकाएँ शंकुओं की अपेक्षा अधिक संवेदनशील हैं।

२. संवेदनशीलता के प्रत्येक वक्र में एक केंद्रीय स्थल है, जिसमें संवेदनशीलता महत्तम होती है और इस स्थल से दोनों ओर संवेदनशीलता घटती जाती है।

३. शंकु का महत्तम संवेदनशील स्थल ५५५ मिलिमाइक्रोन ( पीत-हरित ) है, जब कि शलाका का महत्तम संवेदनशील स्थल ५०५ के लगभग (नील-हरित) है।

## वर्ण प्रत्यक्षीकरण :

चित्र ११·१४ में अंकित अवसीमाओं के परिमापन में हम प्रयोग-पात्र से पूछ सकते हैं कि वह न केवल यह बतलाए कि क्या वह परीक्षण प्रकाश-खंड देखता है, वरन् इसके अतिरिक्त ( यदि वह उसे देखता है ) उसके वर्ण भी बतलाए। तब हम दोनों वक्रों के मध्य के महत्त्वपूर्ण अंतर का ज्ञान प्राप्त करते हैं। ऊपर वाले वक्र में, जब प्रयोग पात्र अपने फोविआ का उपयोग करता है, वह परिशुद्धता से परीक्षणों में प्रयुक्त तरंग-लंबाई के वर्ण ( रंग ) को बता सकता है। नीचे वाले वक्र के निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए प्रयोग-पात्र पूर्णतः वर्णांध है। यद्यपि उसके समक्ष एक के बाद एक तरंग-लंबाइयाँ प्रस्तुत की जाती हैं, पर वह उन सबका धूसर वर्ण देखता है। प्राचीन लोकोक्ति 'जब सब प्रदीप बुझ जाएँगे, सब बिल्लियाँ धूसर वर्ण की हो जाएँगी' का आधार यही है और इसी हेतु शलाका और शंकु के मध्य का अवकाश 'प्रकाशवर्णी अवकाश' (Photochromatic Interval) कहलाता है—यह तीव्रताओं का अवकाश है, जिसमें हम प्रकाश देख सकते हैं, परंतु वर्ण नहीं। यह तथ्य इसका प्रत्यायक प्रमाण प्रस्तुत करता है कि शंकु वर्ण प्रत्यक्षीकरण के संग्राहक है और शलाका नहीं है।

लघु तरंग-लंबाइयों के प्रति शलाकाएँ शंकुओं की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होती हैं।
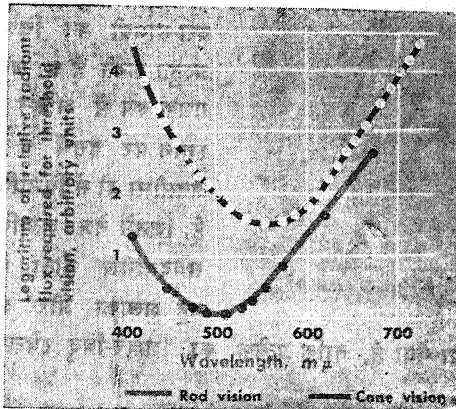
**चित्र ११·१५ विभिन्न तरंग-लंबाइयों को देखने के लिए अवसीमाएँ। नीचे वाला वक्र उस समय प्राप्त किया गया, जब कि प्रयोग-पात्र फोविआ से २० डिग्री पर, जहाँ शलाकाएँ अधिकतम होती हैं, प्रकाश-खंड को देख रहा था। ऊपर वाला वक्र उस समय प्राप्त किया, जबकि प्रयोग-पात्र ने देखने के लिए अपने फोविआ का उपयोग किया, शंकुओं की अधिकतम संख्या फोविआ में होती है।**

परकिंजे प्रभाव ( Perkinje Effect ) :

सुग्राहिता-वक्र या संवेदनशीलता-वक्र को अन्य प्रकार से भी अंकित किया जा सकता है ( देखिए चित्र, ११·१६ )। परमावश्यक अवसीमाओं के अभिलेखन के स्थान पर महत्तम अवसीमा को लेकर उन्हें सापेक्ष शब्दावली में अभिव्यक्त कर सकते हैं—५०५ मिलीमाइक्रोन में शलाक-वक्र और ५५५ मिलिमाइक्रोन में शंकु-वक्र—और प्रत्येक वक्र की अन्य सब अवसीमाओं को अधिकतम के प्रतिशत रूप में अंकित करेंगे। यह वक्र को ऊपर से नीचे की ओर परिवर्तित कर देता है और यह महत्तम अवसीमाओं को शत-प्रतिशत पर स्थिर भी करता है। इस रूप में वक्र ज्योति-क्रियाएँ कहलाते हैं। उनसे हम देख सकते हैं कि शंकु दृष्टि ( अर्थात्, प्रकाश-अनुकूलन के दिवा-प्रकाश स्तर के लिए ) के लिए संवेदनशीलता शलाका दृष्टि की अपेक्षा (अर्थात् प्रकाश-अनुकूलन के सांध्यस्तर के लिए ) सापेक्षतः लाल वर्ण में श्रेष्ठतर और नील वर्ण में न्यूनतर है (हैट्च और विलियम्स, १९२२)।

शंकु ५५५ मिलिमीटर पर महत्तम संवेदनशील होते हैं, शलाका ५०५ पर।
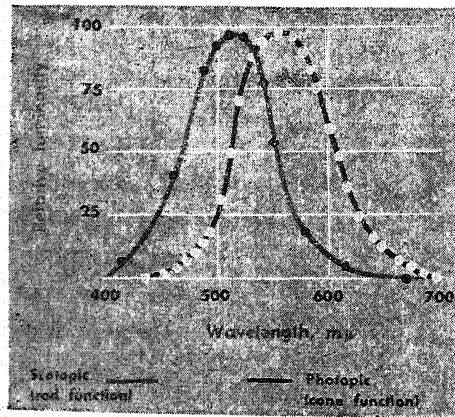
**चित्र ११.१६ सापेक्षिक ज्योति-क्रियाएँ। इस चित्र के वक्र चित्र ११·१५ से भिन्न रूप में दत्त-सामग्री का चित्रण प्रस्तुत करते हैं। लघुगणक रूप में अंकन के स्थान पर इसमें प्रत्येक अवसीमा दो में विभाजित है, जिनमें नेत्र अत्यधिक संवेदनशील होता है। यह शलाका और शंकु वक्रों से भिन्न प्रकार से किया गया है, ताकि प्रत्येक का शिखर-बिंदु स्वेच्छया शत-प्रतिशत हो जाए।**

वर्णों की सापेक्षिक दीप्ति का अंतर बोहेमिया के शरीर-रचना वैज्ञानिक परकिंजे ने एक शती से पूर्व खोजा था। उसने देखा, जिसे आप भी देख सकते हैं, यदि आप ग्रीष्मकालीन संध्या में सूर्यास्त से तत्काल पहले बाहर बैठे हों, तो हरित और नील

की अपेक्षा लाल रंग अधिक दीप्त दृष्टिगत होता है। जैसे-जैसे संध्या बढ़ती है, लाल वर्ण अधिक गहरे होते जाते हैं, जबकि नील वर्णों की दीप्ति में कोई विशेष अंतर नहीं आता। वर्णों की दीप्ति में यह दिखायी देने वाला परिवर्तन **'पर्किंजे परिवर्तन'** ( Purkinje shift ) कहलाता है। इस परिवर्तन का कारण है, नेत्र का अंधकार-अनुकूलन काल में शंकु-क्रियाओं से शलाका-क्रियाओं में अंतरित होना।

दृष्टि-तीक्ष्णता ( Visual Acuity ) :

वस्तुओं में केवल वर्ण और दीप्ति ही नहीं, वरन् आकार भी होता है। कभी-कभी इस आकार (फौर्म ) को स्पष्ट देख सकना संभव नहीं होता, जब हम वस्तुओं को कुहरे या रात्रि के अंधकार में देखते हैं; परंतु जिस रूप में भी उन्हें देखें, अनिवार्यतः हम किसी-न-किसी आकार में देखते हैं। हमारे आकार-प्रत्यक्षीकरण के दो तत्त्व हैं—१. व्यास और २. आकृति ( साइज और शेप )। ये दोनों तत्त्व अधिक या कम रूप में स्वतंत्र हैं; क्योंकि किसी भी आकृति की वस्तु बड़ी या छोटी हो सकती है और किसी भी व्यास की वस्तु किसी भी आकृति की हो सकती है। अध्याय १० में प्रत्यक्षीकरण पर लिखते हुए हम व्यास और आकृति पर सविस्तर लिख चुके हैं; क्योंकि ये दोनों प्रत्यक्षीकरण के कुछ सामान्य सिद्धांतों को स्पष्ट करते हैं। अतः, हम यहाँ इन पर विचार नहीं करेंगे।

यहाँ हम दृष्टि-सामर्थ्य का अध्ययन करेंगे, जो हमें व्यास और आकृति को देखने की योग्यता प्रदान करती है। यह सामर्थ्य 'दृष्टि-तीक्ष्णता' है—अर्थात् व्यक्ति के दृश्यमान पर्यावरण में वस्तुओं के सूक्ष्म अंतरों को देखने की योग्यता। दृष्टि-तीक्ष्णता के परिमापनार्थ हम सदैव लघुतम वस्तु के विषय में कहने का अवसर पाने की चेष्टा करते हैं, जिसकी आकृति को, व्यक्ति किसी मानक स्थिति में रखने पर पहचान सकता है। दृष्टि-तीक्ष्णता-मापन की अनेक विधिया हैं, किंतु दो सामान्य विधियाँ हैं : प्रथम, जिसका व्यवहार काय चिकित्सक नैदानिक प्रयोजन के लिए करते हैं, और द्वितीय जिसका प्रयोग वैज्ञानिक दृष्टि-तीक्ष्णता के मापनार्थ किए गए अनुसंधान-कार्यों में प्रयोगशाला में करते हैं।

नेत्र-चार्ट :

हम सब, जिन्हें शारीरिक परीक्षण ग्रहण करने पड़े हैं, कायचिकित्सक के नेत्र-चार्ट से परिचित हैं। यह चार्ट, जिसे स्नेलेन-चार्ट कहा जाता है, सामान्य के रूप में मान्यताप्राप्त एक प्रतिमान से व्यक्ति की दृष्टि-तीक्ष्णता की तुलना करता है।

इसे इस प्रकार भी अभिकल्पित किया जा सकता है कि भिन्न व्यास के अक्षरों को चार्ट पर इस रूप में प्रस्तुत किया जाए, जिसे सामान्य व्यक्ति भिन्न दूरियों से

देख सकता है। उदाहरणार्थ, अनेक चार्टों पर सबसे बड़ा अक्षर २०० फुट की दूरी से पढ़ा जा सकता है, दूसरे बड़े अक्षर उससे आधे होते हैं और १०० फुट की दूरी से पढ़े जा सकते हैं, आगे का क्रम भी इसी प्रकार चलता है। यदि कोई व्यक्ति २० फुट की दूरी से उसे देख सकता है, जिसे एक सामान्य व्यक्ति भी २० फुट की दूरी से देखता है, तो उसकी दृष्टि २०/२० है। यदि चार्ट से २० फुट की दूरी पर वह केवल उन वस्तुओं को देख पाता है, जिन्हें एक सामान्य व्यक्ति १०० फुट की दूरी से देख सकता है, तब उसकी दृष्टि २०/१०० है, जो ठीक नहीं है। दूसरी ओर, जिन अक्षरों को सामान्य व्यक्ति १० फुट की दूरी से देखता है, उसे वह २० फुट की दूरी से देख लेता है, तो उसकी दृष्टि २०/१० है, जो सर्वोत्तम है।

कभी-कभी कायचिकित्सक दृष्टि-तीक्ष्णता के संकेतक के रूप में अक्षरों के व्यास के स्थान पर दूरी का प्रयोग करना पसंद करते हैं। अनेक वर्षों तक इस प्रकार के परीक्षण का उपयोग यूनाइटेड स्टेट्स नेवी ने किया है। ऐसे परीक्षणों में व्यक्ति नेत्र-चार्ट की ओर चलना प्रारंभ करता है और तब तक चलता रहता है, जब तक वह चार्ट के अक्षरों को पढ़ न सके—चार्ट पर केवल एक ही साइज के अक्षर होते हैं। परीक्षण के परिणाम दूरी को स्पष्ट करनेवाली शब्दावली में व्यक्त किए जाते हैं, जिस दूरी पर व्यक्ति उन अक्षरों को देखता है, वह एक सामान्य व्यक्ति द्वारा २० फुट की दूरी से देखे जाते हैं। किसी भी स्थिति में, संकेतक के रूप में चाहे अक्षरों की दूरी का प्रयोग किया जाए या आकृति का, व्यक्ति की तीक्ष्णता की तुलना २० फुट की सामान्य तीक्ष्णता से की जाती है।

यह संभव है और वस्तुतः वांछित भी कि अक्षरों के स्थान पर परीक्षण के लिए वस्तुओं का उपयोग किया जाए। ऐसी दो वस्तुओं का चित्रण चित्र ११.१७ में किया गया है। एक वस्तु लैंडोल्ट रिंग कहलाती है और दूसरी समांतर स्तंभ। दोनों का उपयोग ऐसे व्यक्तियों के लिए किया जा सकता है, जो पढ़ नहीं सकते। परीक्षार्थी को केवल इतना ही बताना होगा कि लैंडोल्ट रिंग में रिक्त स्थान कहाँ है अथवा समांतर स्तंभों की अभिस्थापन-दिशा क्या है। इन परीक्षण-वस्तुओं के उपयोग का दूसरा लाभ यह है कि वे आकृति में सदैव समान रहती हैं, जब कि परीक्षण-चार्ट के अक्षर व्यास और आकृति में भिन्न होते हैं और पहचानने में समान रूप से कठिन भी नहीं होते। इसी हेतु दृष्टि-वैज्ञानिक, जिन्हें प्रयोगशाला के विशुद्ध परिमापन में रुचि है, वस्तुओं के ऐसे परीक्षण को अधिक पसंद करते हैं।

## निकट और दूर की तीक्ष्णता :

हम निकट-दृष्टि और दूर-दृष्टि के संबंध में जो पहले कह चुके हैं, उसे ध्यान में रखते हुए आपको यह सीखने में आश्चर्य नहीं होगा कि दृष्टि-तीक्ष्णता भिन्न

दूरियों के साथ-साथ परिवर्तित होती है। उदाहरणार्थ, १३ इंच की दूरी पर यह तीक्ष्णता २० फुट की दूरी की दृष्टि-तीक्ष्णता से बिलकुल भिन्न हो सकती है। २० फुट के बाद तीक्ष्णता प्रायः स्थिर प्रतीत होती है। इन तथ्यों को समझने के लिए स्मरण करें कि नेत्र के सामने के लेंस को अपना आकार परिवर्तित करना पड़ता है, जिससे कि नेत्र निकट और दूर की वस्तुओं को दृष्टिपटल पर केंद्रित कर सके और ऐसा करने की योग्यता भिन्न व्यक्तियों में पृथक्-पृथक् होती है। २० फुट से अधिक दूर की वस्तुओं का समायोजन प्रायः अपरिवर्तनशील रहता है।

एक खंडित रिंग (चक्र) अथवा समांतर स्तंभों का युग्म दृष्टि-तीक्ष्णता परिमापनार्थ एक अक्षर की अपेक्षा श्रेष्ठतर वस्तु है।
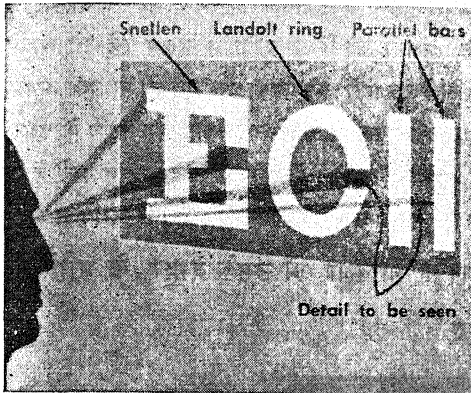
**चित्र ११·१७ स्नेलेन अक्षर, लैंडोल्ट रिंग और समांतर स्तंभ। कुछ अक्षर अन्य अक्षरों की अपेक्षा सुगमता से देखे जाते हैं और कोई व्यक्ति एक अक्षर को बिना उसके सब भागों को देखे भी उसे पहचान सकता है। इसी हेतु, सर्वाधिक सावधानी से किए गए दृष्टि-तीक्ष्णता के वैज्ञानिक अध्ययन में लैंडोल्ट रिंग अथवा समांतर स्तंभों का प्रयोग किया जाता है। इनमें व्यक्ति से पढ़ने की अपेक्षा नहीं की जाती। केवल उसे रिक्त स्थान की ओर संकेत करना पड़ता है अथवा बताना होता है कि वह दो स्तंभ देखता है अथवा एक।**

यह तथ्य कि व्यक्ति अपनी निकट और दूर की तीक्ष्णता में भिन्न होते हैं, कभी-कभी व्यावहारिक महत्त्व का होता है। कुछ उद्योगों में और अनेक सैनिक कार्यों में किसी व्यक्ति की दृष्टि-तीक्ष्णता उसके कार्य करने की योग्यता में बाधक हो सकती है। विमानचालक, राइफलचालक और तोपची सेना के केवल कुछ उदाहरण हैं, जो प्रमाणित करते हैं कि उनकी दृष्टि-तीक्ष्णता उत्तम होनी चाहिए। मशीन बनाने वाले, परिचालकों और निरीक्षकों में भी उत्तम दृष्टि-तीक्ष्णता आवश्यक है। इन स्थानों के लिए व्यक्तियों का चयन करने में नियोक्ता को प्रायः शारीरिक परीक्षा के भाग के रूप में दृष्टि-तीक्ष्णता-परीक्षा की भी आवश्यकता

रहती है। यदि उस कार्य में दूरस्थ उत्तम तीक्ष्णता की आवश्यकता हो, जैसा कि ट्रक-चालकों के लिए है, यह आवश्यक है कि २० फुट या उससे अधिक दूरी पर परीक्षा ली जाए, परंतु यदि निकटस्थ उत्तम तीक्ष्णता की आवश्यकता हो ( उदाहरणतः औजार बनाने और घड़ी ठीक करने में ), तो उन कार्यों के लिए अपेक्षित दूरी पर परीक्षा लेनी चाहिए। अन्यथा निकट और दूर-तीक्ष्णता का अंतर परीक्षाओं को निष्फल बना देगा।

## दृष्टिपटल-स्थिति ( Retinal Position ) :

हम सब अपने नेत्रों का इतना अधिक प्रयोग करते हैं कि बहुधा अपनी दृष्टि-प्रक्रिया की कुछ विशिष्टताओं की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता और यदि कोई उनकी ओर आकृष्ट न करे, तो संभवतः हम कभी उनके विषय में सोचेंगे भी नहीं। उदाहरणतः, यदि आप इस पृष्ठ के अक्षरों को स्थिर दृष्टि से देखते रहें, तो आपके लिए दो इंच की अधिक दूरी पर लिखे अक्षरों को पढ़ना असंभव हो जाएगा अथवा यदि आप कार चलाते समय सड़क पर सीधे सामने देखते रहें, तो आप सड़क के इधर-उधर किनारों पर लिखे संकेतों को नहीं पढ़ सकेंगे। ऐसे तथ्यों से हम जान पाते हैं कि दृष्टि-तीक्ष्णता दृष्टिपटल के पार्श्व में उतनी अच्छी नहीं होती, जितनी फोविआ पर।

दृष्टि-तीक्ष्णता दृष्टिपटल के फोविआ में उसके बाहर के भागों की अपेक्षा श्रेष्ठतर होती है।
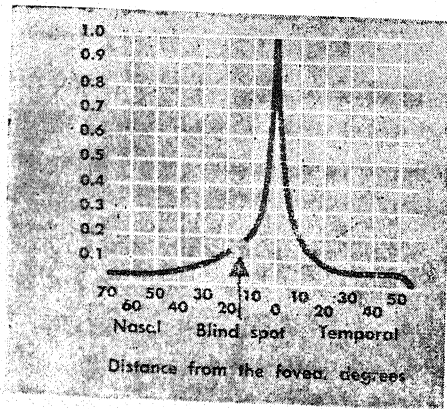
**चित्र ११·१८ देखने में प्रयुक्त दृष्टिपटल के भाग के साथ-साथ दृष्टि-तीक्ष्णता किस प्रकार परिवर्तित होती है।**

चित्र ११·१८ में आप अधिक सूक्ष्मता से देख सकते हैं कि दृष्टि-तीक्ष्णता दृष्टिपटल के प्रयोग में लाए जाने वाले भाग के साथ-साथ किस प्रकार परिवर्तित

होती है ( वरथेम, १८९४ )। तीक्ष्णता सर्वोत्तम होती है जब कोई वस्तु की ओर सीधा देखे, अर्थात् जब वस्तु का बिंब फोविआ पर पड़ता है। फोविआ से ५ डिग्री दूर दृष्टि-तीक्ष्णता उससे आधी रह जाती है और ४०, ४५ या ५० डिग्री दूर पर उससे मात्र बीसवें भाग के लगभग रह जाती है। अन्य स्थितियों में इसका स्वरूप क्या होता है, उसे आप चित्र ११·१८ के वक्र के अध्ययन द्वारा जान सकते हैं। यह व्याप्ति पर वर्णित शलाकाओं और शंकुओं की व्याप्ति के सदृश है।

## अंध-चित्ती या अंध-बिंदु (The Blind Spot) :

चित्र ११·१८ से आगे बढ़ने के पूर्व वक्र के उस भाग पर ध्यान दें, जिसे रिक्त छोड़ा गया है। यह दृष्टिपटल का वह भाग है, जिसमें से रुधिर-वाहिकाएँ प्रवेश करती हैं और दृष्डि-तंत्रिका नेत्र-गोलक को छोड़ती है तथा इसमें कोई शलाका या शंकु नहीं होते। यह फोविआ से १५ डिग्री पर दृष्टिपटल से पार्श्व-नासिका की ओर अवस्थित है और यह व्यास में लगभग ७/५ डिग्री है। इस क्षेत्र में हम कुछ नहीं देख सकते और इसीलिए यह अंध-बिंदु कहलाता है। यदि हम अपने दृष्टि-क्षेत्र में इस बिंदु का पता लगाना चाहें, तो संभवतः हमें कठिनाई होगी; क्योंकि हम एक नेत्र से देखेंगे कि दूसरे नेत्र की अंध-चित्ती कहाँ रिक्त रहती है तथा इसलिए भी कि अंध-चित्ती फोविआ की ओर इतनी दूरी पर है कि हम उसे नहीं देख पाते। किंतु, यह निश्चित है कि यह प्रत्येक व्यक्ति के नेत्र में है और आप स्वयं इसे यदि चाहें, तो चित्र ११·१९ के निर्देशन के अनुसार अनुभव कर सकते हैं।

अपनी अंध-चित्ती का पता लगाइए।
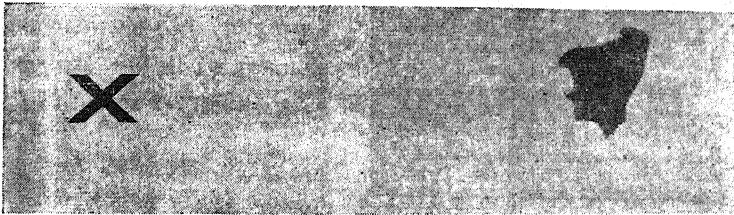
**चित्र ११·१९ अंध-चित्ती प्रदर्शन। अपनी बाईं आँख बंद करके दाहिनी से क्रास की ओर देखिए। तब पुस्तक को अपनी ओर या अपने से दूर ले जाइए, जब तक कि दृष्टि से लड़की का चित्र बिलकुल या अधिकांश रूप में ओझल न हो जाए। इसी बिंदु पर लड़की का बिंब अंध चित्ती पर पड़ता है।**

## प्रकाश की मात्रा :

प्रकाश के बढ़ने के साथ दृष्टि-तीक्ष्णता बढ़ती है ( मून और स्पेंसर, १९४४) । जब हम किसी पुस्तक को पढ़ने के लिए अधिक प्रकाश के निकट आते हैं अथवा दृष्टि-प्रक्रिया द्वारा अधिकतम प्रकाश प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं, तो इस तथ्य से बार-बार, परिचित होते हैं । अंधकार में दृष्टि-तीक्ष्णता स्पष्टत: शून्य होती है । जैसे ही किसी प्रकार का प्रकाश प्रदीप्त होता है दृष्टि-तीक्ष्णता बहुत तीव्र गति से बढ़ने लगती है । परंतु, प्रकाश के बराबर अधिक-से-अधिक बढ़ने पर तीक्ष्णता की गति मंद हो जाती है यद्यपि प्रकाश की किसी भी मात्रा के बढ़ने के साथ, जो चकाचौंध की स्थिति तक आँख बंद करने वाली न हो, दृष्टि-तीक्ष्णता कुछ-न-कुछ बढ़ती है। इसका अभिप्राय है कि प्रकाश की 'अधिकतम मात्रा' जैसी कोई वस्तु नहीं है, वरन् दैनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण समस्या यह है कि दृष्टि द्वारा किए जाने वाले कार्यों के लिए अपेक्षित प्रकाश प्राप्त करना ।
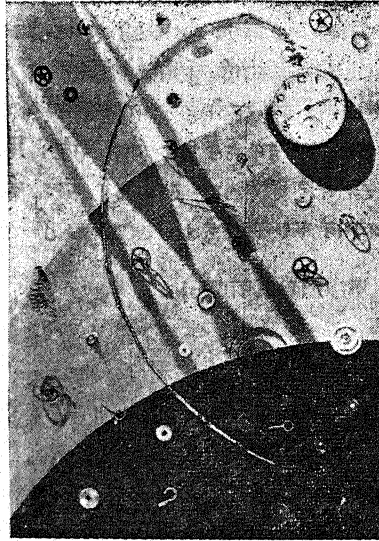
**चित्र ११·२० दृष्टि-तीक्ष्णता वैषम्य पर निर्भर करती है। घड़ी के पुर्जों को हल्की पृष्ठभूमि की अपेक्षा गहरी पृष्ठभूमि में देखना कठिनतर है। वस्तु और उसकी पृष्ठभूमि में जितना अधिक वैषम्य होगा, वस्तु की सूक्ष्मताओं को उतना ही अधिक देखा जा सकेगा (लकीश, १९४४)।**

दृष्टि-तीक्ष्णता के लिए प्रकाश इतना महत्त्वपूर्ण है तथा प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक कार्य के लिए दृष्टि-तीक्ष्णता की आवश्यकता होती है, इसीलिए इस विषय पर गहन अध्ययन किया गया है। वस्तुत: इंजीनीयरिंग का विशेष विभाग है, जो 'प्रकाश इंजीनियरिंग' कहलाता है और विषय के व्यावहारिक स्वरूप का निरूपण करता है। प्रकाश-इंजीनियरों ने हमें ऐसी सहायक पुस्तकें दी हैं, जिनमें हम अनेक व्यावहारिक

प्रश्नों के उत्तर खोज सकते हैं। उन्होंने हमें ऐसे नियम या सिद्धांत दिए हैं, जिनके द्वारा हम विभिन्न दृष्टिपरक कार्यों के लिए पर्याप्त प्रकाश प्राप्त कर सकते हैं।

## पृष्ठभूमि के एक सदृश प्रकाशमय होने पर दृष्टि श्रेष्ठतर होती है।

**चित्र ११·२१ सीधे प्रकाश में (ऊपर) दृष्टि-तीक्ष्णता दुर्बल रहती है; क्योंकि कार्य-क्षेत्र का केवल एक भाग—जो पुस्तक लड़का पढ़ रहा हैं—प्रकाशित है। दृष्टि-तीक्ष्णता कहीं अधिक अच्छी रहती है (नीचे) जब संपूर्ण कार्य-क्षेत्र प्रकाशित रहता है (वेस्टिंगहाउस)।**

### वैषम्य (Contrast) :

संभवतः अब तक यह स्पष्ट हो गया है कि दृष्टि-तीक्ष्णता को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। यद्यपि उन सब घटकों का विवेचन हम नहीं कर सकेंगे, किंतु दो और घटक महत्त्वपूर्ण और व्यावहारिक महत्त्व के हैं। एक है 'वैषम्य'। यह वस्तु और उसकी निकटतम पृष्ठभूमि के मध्य दीप्ति का अंतर है। उदाहरणार्थ, श्वेत पृष्ठभूमि में हम काले अक्षर देख रहे हैं तो दृष्टि-तीक्ष्णता, यदि अक्षर गहरे काले न होकर हल्के धूसर वर्ण के होंगे, श्रेष्टतर होगी; क्योंकि श्वेत पृष्ठभूमि में धूसर की

अपेक्षा काले का वैषम्य अधिक होता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब हम यह चाहें कि कोई चित्र या संकेत व्यक्तियों द्वारा यथासंभव सुगमता एवं दूरी से देखा जा सके, तो गहरे और हल्के रंग का यथासंभव अधिक वैषम्य प्रस्तुत करना चाहिए। इस प्रकार दृष्टि-तीक्ष्णता में वृद्धि होती है (देखिए चित्र ११·२०)।

परिवेश (Surround) :

जिस वस्तु को हम देख रहे हैं, उससे संबंधित अंतिम विचारणीय घटक परिवेश है। यद्यपि वस्तु अत्यधिक वैषम्य एवं पर्याप्त प्रकाश द्वारा प्रकाशित हो सकती है, तथापि दृष्टि-तीक्ष्णता उतनी विकसित नहीं हो सकती, यदि सामान्य कमरा अपर्याप्त प्रकाशित है। वस्तुतः प्रयोगशाला में इसे प्रदर्शित करना अपेक्षाकृत सुगम है कि यदि कमरा देखी जाने वाली वस्तु के प्रकाश की अपेक्षा बहुत अधिक या बहुत कम प्रकाशित है, तो दृष्टि-तीक्ष्णता में बाधा उपस्थित होती है। चित्र ११·२१ में आप परिवेश के अधिक और कम प्रकाश के उदाहरण देखिए। श्रेष्ठतम सिद्धांत है कि परिवेश का प्रकाश लगभग वही होना चाहिए, जो वस्तु का है।

पठन-काल में नेत्र-गति :

विद्यार्थी के व्यावहारिक महत्त्व के प्रसंग अर्थात् पठन में नेत्रों के उपयोग के विवेचन का यह उपयुक्त स्थल है। पठन वस्तुतः ऐसी क्रिया है, जिसमें अपने पर्यावरण के सामान्य निरीक्षण की अपेक्षा हम अपनी दृष्टि-तीक्ष्णता का अधिक गंभीरता से प्रयोग करते हैं।

जैसा कि आप जानते हैं, पढ़ते समय आपके नेत्र निरंतर गतिशील नहीं रहते, वरन् रुक-रुक कर पढ़ने की पंक्तियों के साथ पल भर के लिए विराम लेते हुए वे गतिमान होते हैं। यह तथ्य पठन-काल में नेत्र-गति के फोटोग्राफिक अभिलेखनों में प्रदर्शित है (देखिए, चित्र ११·२२)। इस विरामकाल में आप अनुभव करते हैं कि आप पढ़ रहे हैं। गति को तीव्र करने की कोई विधि नहीं है और विराम की तीव्रता को भी बहुत कम बढ़ाया जा सकता है। अतएव, आपकी पठन-क्षमता मुख्यतः इस पर निर्भर करती है कि आप कितना अधिक और उसे कितनी अच्छी तरह देख सकते हैं, जिसे आप नेत्रों के विराम-क्षणों में देखते हैं।

अधिकांश व्यक्ति पठन में उतने सक्षम नहीं होते, जितने वे हो सकते हैं। उनके अति सामान्य दोष हैं—

(१) एक दृष्टि में पर्याप्त शब्दों को न देखना और फलस्वरूप एक पंक्ति में अनेक बार विराम करना और (२) पठित शब्दों और पदों को पुनः देखना। ये दोनों बातें चित्र ११·२२ में स्पष्ट की गई हैं। प्रत्येक ऊर्ध्वरेखा दृष्टिबंधन को, विराम स्थल या एक-दृष्टि को प्रदर्शित करती है। अंक पंक्ति के दृष्टि-बंधनों के

क्रम को स्पष्ट करते हैं। ऊपर वाला अभिलेख एक उत्तम पाठक का है। ध्यान दें कि पाठक प्रत्येक दृष्टि में आगे के एक या दो शब्द देखता है और वह पुनः पठित शब्दों को नहीं देखता। नीचे वाला अभिलेख एक अकुशल पाठक का है, जो प्रत्येक पंक्ति में विराम लेता है और बार-बार पुनरावृत्ति करता है।

एक कुशल पाठक अपेक्षाकृत कम विरामों को करता है और पुनरावृत्ति नहीं करता।
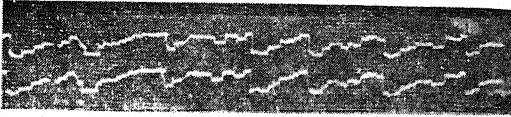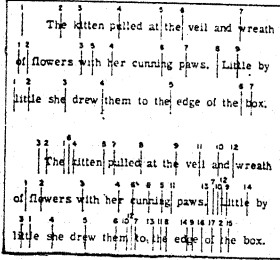
**चित्र ११·२२ पठन में नेत्रों की गति। इस चित्र में नेत्रों की पठन-गति को चित्रित करने के लिए नेत्र-यंत्र (ऑपथैलमोग्राफ) का प्रयोग किया गया है ( ब्रुक्स, मांकमेयर से ) ऐसे यंत्र से किए अभिलेख को फिल्म प्रदर्शित करती है (न्यूयार्क यूनिवर्सिटी टेस्टिंग ऐंड ऐडवाइजमेंट सेंटर ) मुद्रित रेखाएँ कुशल और अकुशल पाठक के अंतर को स्पष्ट करती हैं। प्रत्येक अंकयुक्त ऊर्ध्व रेखा विराम को प्रस्तुत करती है।**

एक अकुशल पाठक, वस्तुतः प्रायः प्रत्येक पाठक, अपनी पठन-गति को प्रशिक्षण एवं अभ्यास द्वारा बढ़ा सकता है। गति प्राप्त करने के लिए एक दृष्टि में दृष्टिगत शब्दों की संख्या बढ़ाना आवश्यक है। यथासंभव तीव्र गति से पढ़कर और पठित अंश के अर्थ को न भुलाकर आप धीरे-धीरे एक दृष्टि में संपृक्त होने वाले शब्दों की संख्या बढ़ा सकते हैं और इस प्रकार प्रत्येक पंक्ति में विराम-स्थलों

की संख्या कम कर सकते हैं। तीव्र पठन का सर्वोत्तम अभ्यास सरल सामग्री—पत्रिकाओं के लेख, उपन्यास, समाचार आदि—पर करना चाहिए। यदि आप तीव्र पठन कर अभ्यास कर रहे हों, तो उसका अभिलेख रखना चाहिए। प्रतिदिन एक मिनट में आप कितने शब्द पढ़ते हैं उनकी गणना करें और चार्ट पर उन्हें लिखें। अभ्यास के परवर्त्ती दिनों में किस गति से आप पढ़ते हैं, उन्हें भी उस चार्ट पर लिखते जाएँ। आपको सावधानी से अपनी समझ या ग्रहणशक्ति का परीक्षण यह निश्चित करने के लिए करना चाहिए कि पठन-गति को बढ़ाने में कहीं आप अपनी ग्रहणशक्ति (समझ) को घटा तो नहीं रहे हैं। यदि आप सावधानी से पठन का अभ्यास करें, तो आप वस्तुतः अपनी समझ (Comprehension) को भी पठन-गति के साथ-साथ बढ़ा सकते हैं।

## संग्राहक प्रकियाएँ (Receptor Processes) :

इस अध्याय के अंतर्गत मानवीय दृष्टि की अधिकांश मूल समस्याओं का विवरण आ गया है : समायोजन, निकट-दृष्टि और दूर-दृष्टि, दृष्टि-वैषम्य, वर्ण-विशेषताएँ, संपूरक वर्ण, वर्ण-मिश्रण, वर्णांधता, संवेदनशीलता की अवसीमाएँ, अंधकार-अनुकूलन और दृष्टि-तीक्ष्णता। इन विषयों के संबंध में पढ़ते समय विद्यार्थी को कुछ प्रश्न सूझ सकते हैं। जैसे, वर्ण के तीन गुण क्यों हैं ? नेत्र अंधकार-अनुकूलित क्यों होता है ? हम विभिन्न रंगों में अंतर क्यों करते हैं ? इत्यादि।

इस प्रकार के अनेक प्रश्नों के उत्तरों को भली-भाँति समझा गया है। जिन प्रश्नों के उत्तर अब तक अप्राप्य हैं, उन्हें भी हम शीघ्र ही प्राप्त करने की स्थिति में पहुँच रहे हैं। इन प्रश्नों के उत्तर की चेष्टा हमें दृष्टि के रचना-विज्ञान-क्षेत्र में ले जाती है—दृष्टिपटल एवं दृष्टि-तंत्र के अन्य भागों में होने वाली प्रक्रियाओं के क्षेत्र में। वस्तुतः दृष्टि अनेक वैज्ञानिक क्षेत्रों का परस्पर व्याप्त विषय है और इसके रचना-विज्ञान पर उतनी ही तीव्रता से शोध का कार्य हो रहा है, जितना कि उसके मनोवैज्ञानिक स्वरूप पर तथा यह कहना कठिन है कि कहाँ से एक विषय प्रारंभ करता है और कहाँ दूसरा छोड़ता है। अतएव, जिन्हें रुचि है, उनके लिए हम यहाँ दृष्टि के रचना-विज्ञान का सारांश प्रस्तुत करते हैं, विशेषतः संग्राहक-प्रक्रियाओं का। यह पूर्व उल्लिखित कुछ प्रश्नों को स्पष्ट करता है।

### प्रकाशसंवेदी पदार्थ :

हमारा प्रथम प्रश्न है, नेत्र से टकराने वाला प्रकाश दृष्टि-संवेदना को क्यों उत्पन्न करता है ? हम प्रकाश क्यों देखते हैं ? अति सामान्य उत्तर है कि दृष्टि-पटल में स्नायविक आवेग उत्तेजित किए जाते हैं और वे मस्तिष्क तक उसी प्रकार

पहुँचते हैं, जिस प्रकार सब ज्ञानेंद्रियाँ संदेशवाहकों अथवा अथवा संकेतों के रूप में आवेगों को भेजती हैं।

इसके अतिरिक्त, उद्दीपन के संग्राहक पर टकराने और स्नायु-आवेगों के मस्तिष्क की ओर बढ़ने के मध्य एक मध्यवर्ती घटना प्रायः होती है। दृष्टि में इसे 'प्रकाश रासायनिक घटना' ( Photochemical Event) कहते हैं (वाल्ड, १९५९) प्रकाश संवाहक में एक पदार्थ से टकराता है, जो प्रकाश-संवेदी है और उससे रासायनिक प्रतिक्रिया घटती है। यह प्रतिक्रिया स्नायु-आवेग को उद्दीप्त करती है।

दृष्टि में एक प्रकाश-संवेदी रंग निहित है। इस तथ्य की सर्वप्रथम १८७६ में फ्रेंज बॉल द्वारा खोज की गई थी। उसने देखा कि मेढ़क की अंधकार-अनुकूलित आँख का लालिमामय बैंगनी रंग है, परंतु जब आँख पर प्रकाश डाला जाता है, तो वह रंग पीलापन ग्रहण कर लेता है। इसी हेतु प्रकाश-संवेदी तत्त्व पहले' दृष्टि-नील-लोहित' (Visual Purple) और प्रकाश डालने के उपरांत 'दृष्टि-पीत' कहलाता है।

अब तक प्राणियों की एक उपजाति अथवा दूसरी में चार प्रकार के प्रकाश-संवेदी तत्त्वों की खोज हो चुकी है : दो तत्त्व शलाकाओं में हैं और दो शंकुओं में। ये सब तत्त्व एक दूसरे से बहुत मिलते हैं, केवल उनमें अल्प भिन्नताएँ हैं। भिन्न तत्त्व भिन्न जंतुओं की उपजातियों में पाए जाते हैं। यह इस पर निर्भर करता है कि वे जमीन पर रहते हैं या जल में, वे मुख्यतः शलाका नेत्र वाले रात्रिचर जंतु हैं अथवा शंकु नेत्र वाले दिन-चर जंतु अथवा मनुष्यों की भाँति उनकी भी मिश्रित आँखें हैं। तथापि सब तत्त्व अनिवार्यतः एक ही प्रकार से कार्य करते हैं।

## रोडाप्सिन :

अत्यधिक ज्ञात तत्त्व, मूलतः जिसे **दृष्टि-नीललोहित** कहा गया है, को **रोडाप्सिन** की संज्ञा दी गई है। यह अधिकांश जंतुओं की शलाकाओं में पाया जाता है। प्रकाश से टकराने पर रोडाप्सिन दो भागों में विभाजित होता है, १. रेटिनेन और २. आप्सिन (द्रष्टव्य, चित्र-११.२३)। रेटिनेन पीत-वर्ण देता है, इसीलिए पहले इसे दृष्टिपीत कहा जाता था। कुछ समय उपरांत रेटिनेट विटामिन ए में विघटित होता है। अतः, रोडाप्सिन का रेटिनेन और आप्सिन अथवा विटामिन ए और आप्सिन में पुनः संश्लेषण किया जा सकता है। इन प्रतिक्रियाओं के मध्यांतर में होनेवाली प्रतिक्रियाओं का पूर्ण विश्लेषण अब तक हो चुका है।

नेत्र में प्रकाश-संवेदी तत्त्व के विघटन और पुनः संश्लेषण, जिसे कभी-कभी **दृष्टि-चक्र** भी कहा जाता है, को नेत्र के प्रकाश-अनुकूलित और अंधकार-अनुकूलित होने का कारण माना जाता है। प्रकाश-अनुकूलित नेत्र वह है, जिसमें ये तत्त्व प्रकाश

के प्रभाव से कम-से-कम आंशिक रूप में क्षीण हो जाते हैं। प्रकाश-रसायन-तत्त्व एक प्रकार के संभाव्यता-सिद्धांत का अनुसरण करता है। तत्त्व जितना अधिक घना होगा, उसके कुछ अणुओं पर प्रकाश के टकराने की उतनी ही अधिक संभावना रहती है। यह जैसे-जैसे पतला होगा, उतनी ही कम प्रकाश-किरणें उसके अणुओं से टकराएँगी। परिणामस्वरूप अणुओं के विघटनार्थ अधिक प्रकाश अपेक्षित होगा। प्रकाश-अनुकूलन में यही होता है। विलोमतः जब एक प्रकाश-अनुकूलित नेत्र अंधकार में पुनः आता है, तो प्रकाश-संवेदी तत्त्वों के विघटन को पुनः संश्लेषण के लिए अवसर प्राप्त हो जाता है। फलस्वरूप तत्त्व अधिक बढ़ जाता है। इसके बाद इसके अणुओं से 'टकराने' के लिए कम प्रकाश की आवश्यकता होती है। अतः, नेत्र अधिक संवेदनशील हो जाता है।

प्रकाश दृष्टि-नीललोहित को विभाजित करता है, किंतु अंधकार में दृष्टि-नीललोहित विभाजित तत्त्वों से पुनः निर्मित होता है।

KS DOWN VISUAL PURPLE, BUT IN THE DARK, VISUAL
URPLE RE-FORMS FROM THE BREAKDOWN PRODUCTS :
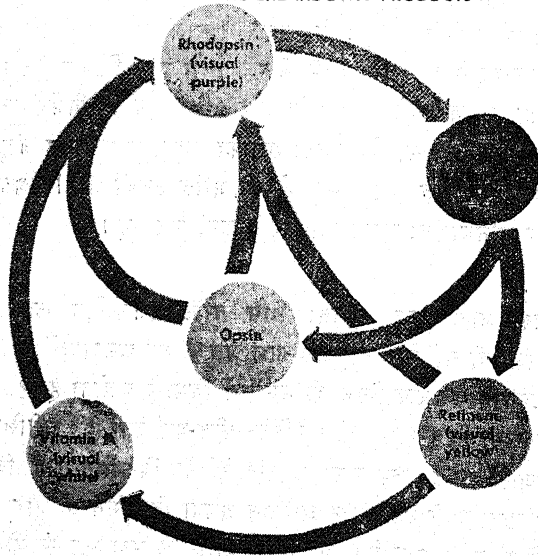
**चित्र ११·२३ दृष्टि-चक्र।**

## आयोडाप्सिन :

आप चित्र ११.१४ स्मरण करें कि मानव-नेत्र में अंधकार-अनुकूलित वक्र की दो भुजाएँ होती हैं, एक शलाका-दृष्टि के लिए और दूसरी शंकु-दृष्टि के लिए। इसका

अभिप्राय है कि दो प्रकार की कोशिकाओं में भिन्न तत्त्व होते हैं और भिन्न गति से पुनः संश्लेषण होता है। शलाकाओं की अपेक्षा शंकुओं में पुनः संश्लेषण तीव्रतर होना चाहिए; क्योंकि वक्र की शंकु भुजा पहले प्रकट होती है। द्वितीय शंकु तत्त्व को पहचाना गया और उसे **आयोडाप्सिन** नाम दिया गया। वस्तुतः आयोडाप्सिन मनुष्य की आँख से नहीं, वरन् मुर्गी के बच्चे की आँख से प्राप्त हुआ है। परंतु, हमारा अनुमान है कि उससे बहुत मिलता हुआ कोई तत्त्व मनुष्य के शंकुओं में विद्यमान है। बहुत संभव है कि यह अनेक तत्त्वों का मिश्रण है—अन्यथा मानव की वर्ण-दृष्टि को स्पष्ट करना बहुत कठिन है– परंतु, यह निश्चित रूप से रोडाप्सिन से भिन्न है।

यह दो प्रकार से भिन्न है। सर्वप्रथम, यह रोडाप्सिन की अपेक्षा अधिक तीव्रता से पुनः संश्लिष्ट होता है। यह उसके सार अंश द्वारा स्पष्ट किया गया है और शंकुओं की तीव्रता से अंधकार-अनुकूलन का हेतु भी यही प्रकट होता है। द्वितीय, इसका **अवशोषण-वर्ण-क्रम** भिन्न है। वह प्रकाश, जो रोडाप्सिन अथवा आयोडाप्सिन को विघटित करता है, इस प्रक्रिया में अवशोषित होता है तथा कुछ तरंग-लंबाइयाँ अन्य तरंग-लंबाइयों की अपेक्षा अधिक प्रभावपरक हैं। विविध तरंग-लंबाइयों में अवशोषित प्रकाश का अंश, जो तरंग-लंबाई की क्रिया के रूप में अंकित होता है, **'अवशोषण-वर्ण-क्रम-वक्र'** कहलाता है। जैसा कि चित्र ११.२४ में देखा जा सकता है, दोनों वक्र भिन्न हैं। रोडाप्सिन का शिखर-बिंदु लगभग ५०० मिलिमाइक्रोन पर है और आयोडाप्सिन का लगभग ५०० मिलिमाइक्रोन पर। दोनों ओर अवशोषण कम होता जाता है, जब तक कि वह वर्ण-क्रम के दोनों छोरों तक बढ़ता हुआ नगण्य नहीं हो जाता।

अब यदि आप चित्र ११.१६ पर ध्यान दें, जहाँ नेत्र की संवेदनशीलता स्कीटोपिट (शलाका) और फोटोपिक (शंकु) अवस्थाओं को स्पष्ट करने के लिए चित्रित है, आप देखेंगे कि दोनों वक्रों में महत्त्वपूर्ण समानता है। वस्तुतः सूक्ष्म तुलना द्वारा आप जान सकेंगे कि वे पूर्णतः अभिन्न नहीं हैं, किंतु इसके कारण भी स्पष्ट हैं। मानव-संवेदनशीलता के परिमापन लेंस और दृष्टि-तंत्रिका में से गुजरने वाले प्रकाश से निर्मित किए जाते हैं, जब कि रोडाप्सिन और आयोडाप्सिन के परिमापन बिलयन में निर्मित होते हैं, अतएव सह-संबंध को प्रकाश के ज्ञात अवशोषण से बनाना होगा, जब वह नेत्र में से होकर शलाकाओं और शंकुओं में जाए। यह सह-संबंध वर्ण-क्रम के नील छोर पर सर्वाधिक होता है; क्योंकि इस भाग में लेंस तथा फोविआ के रंग दोनों ही कुछ प्रकाश का अवशोषण करते हैं। जब ये सह-संबंध बन जाते हैं, दोनों प्रकाश-संवेदी तत्त्वों की वर्ण-क्रम विशेषताओं की मानवीय दृष्टिपरक वक्रों से पर्याप्त तुलना हो सकती है। इसकी परिपुष्टि विभिन्न जंतुओं के नेत्रों में विविध विद्युत्-प्रविधियों (देखें, पृष्ठ ६२८) द्वारा चाक्षुष परिमापनों से की गई

है। इन परिमापनों तथा मानवीय वर्ण-क्रम संवेदनशीलता के शुद्ध परिमापनों को अच्छी तरह रोडाप्सिन और आयोडाप्सिन के अवशोषण वर्ण-क्रम की रेखा के साथ-साथ लगा दिए जाते हैं।

यह सह-संबंध दृष्टि के स्कोटोपिक तथा फोटोपिक वक्रों को भली प्रकार से स्पष्ट करता है। अन्य शब्दों में, प्रकाश रसायन तत्त्वों का अवशोषण भिन्न तरंग-लंबाइयों के प्रति नेत्र में अंधकार-अनुकूलित एवं प्रकाश-अनुकूलित दोनों में, हमारी संवेदनशीलता का कारण स्पष्ट करता है। इस निष्कर्ष से यह स्पष्ट होता है कि परकिंजे प्रक्रिया (जिसका उल्लेख पृष्ठ-६१४ पर किया गया है) भी इसी प्रकार स्पष्ट होती है। परकिंजे अंतरण केवल दृष्टि के रोडाप्सिन से आयोडाप्सिन पर अंतरण को प्रस्तुत करता है। रोडाप्सिन प्रकाश द्वारा निरंजित कर दिया जाता है, वर्णक्रमीय संवेदनशीलता अंतरित होती है और आयोडाप्सिन के अवशोषण पर निर्भर करती है।

रोडाप्सिन और आयोडाप्सिन के अवशोषण-वर्ण-क्रम वक्र-क्रम से शलाकाओं और शंकुओं के वर्ण-क्रम-संवेदनशीलता वक्रों के सदृश हैं।
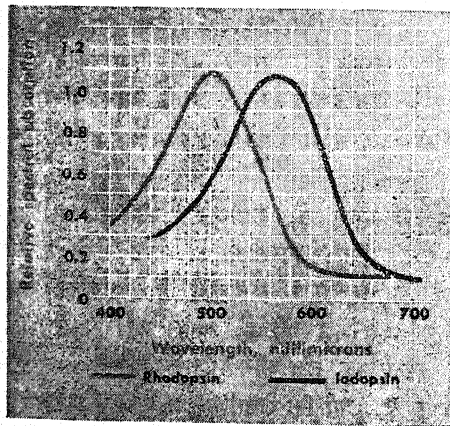
**चित्र ११.२४ मुर्गी के दृष्पिटल से प्राप्त रोडाप्सिन और आयोडाप्सिन के अवशोषण-वर्ण क्रम वक्र (बाल्ड के अनुसार, १९५९) इनकी और चित्र ११.१६ के वक्रों की सादृश्यता पर ध्यान दें।**

फलतः रोडाप्सिन और आयोडाप्सिन के मध्य रासायनिक अंतर आप्सिन में होता है। जब प्रकाश द्वारा दोनों विघटित होते हैं, प्रतिफलित रेटिनेन वही रहता है, किंतु आप्सिन रासायनिक ढंग से कुछ भिन्न हो जाते हैं। इसी हेतु रोडाप्सिन में जाने वाले आप्सिन को **स्कोटोप्सिन** और आयोडाप्सिन में जानेवाले को **फोटोप्सिन** कहा जाता है; क्योंकि वे स्कोटोपिक और फोटोपिक दृष्टि-वक्रों के अंतरों को स्पष्ट करते हैं।

## दृष्टिपटल की विद्युतीय क्रिया :

प्रकाश-संवेदी तत्त्व का विघटन दृष्टि-प्रक्रिया का प्रथम सोपान है। द्वितीय सोपान निश्चय ही किसी प्रकार का विद्युतीय परिवर्तन है, जो स्नायु-आवेगों को उत्पन्न करता है। इस सोपान के संबंध में अब तक हम अपेक्षाकृत कम जानते हैं। हम इतना अवश्य जानते हैं कि यह घटित होता है। वस्तुतः जब दृष्टिपटल से निकाला गया रोडाप्सिन प्रकाश द्वारा एक घोल में विरंजित होता है, तो विद्युतीय विभव का अभिलेखन हो सकता है। अतः विघटन-क्रिया, अन्य रासायनिक प्रतिक्रियाओं के समान विद्युतीय परिवर्तनों से संबद्ध रहती है, जो संग्राहक कोशिका में स्नायुविक क्रिया को उत्पन्न कर सकते हैं।

जब नेत्र प्रकाश द्वारा उद्दीप्त हो, उस समय भी विद्युतीय क्रिया का अभिलेखन हो सकता है। वस्तुतः इस प्रकार का अभिलेखन, मानव-नेत्र को बिना कष्ट पहुँचाए अक्षुण्ण अवस्था में ही, प्राप्त किया जा सकता है (ग्रेनिट, १९५९)। यह **इलेक्ट्रो-रेटिनोग्राम** (ERG) है। एक विद्युद्ग्र को कोर्निया में, दूसरे को सिर के पार्श्व में लगाकर और दोनों को, जब नेत्र को प्रकाश द्वारा उद्दीप्त किया जा रहा हो, प्रवंधक एवं अभिलेखन यंत्र से जोड़कर ERG का अभिलेखन हुआ है। यदि प्रकाश अल्पकाल के लिए दीप्त किया गया हो और बुझा दिया गया हो, तो अभिलेख चित्र ११·२५ के सदृश दिखायी देता है। यदि निम्नगामी विक्षेप से प्रारंभ होता है, ए-तरंग प्रकाश के जलने पर दाहिनी ओर, और तब तीव्रता से दूसरी ओर बी-तरंग की ओर घूमती है, प्रकाश के दीप्त रहते ही वह लंबी और सीधी सी-तरंग की ओर बढ़ती है। प्रकाश के बुझाने पर अचानक विक्षेप होता है, जिसे डी-तरंग कहा जाता है।

इस अभिलेख का महत्त्वपूर्ण अंश बी-तरंग है; क्योंकि इसका आकार प्रकाश की तीव्रता का समानुपाती है। कोई भी स्वेच्छया किसी विशेष ऊँचाई की बी-तरंग को चुन सकता है और उस ऊँचाई को उत्पन्न करने के लिए अपेक्षित प्रकाश की तीव्रता का परिमापन कर सकता है। इस प्रकार से प्रयोग करने पर मनुष्यों के लिए बी-तरंग परमावश्यक सीमा के सदृश है, जब वह कहता है, 'मैं इसे देखता हूँ।'

अतएव, बी-तरंग अनेक भिन्न स्थितियों में दृष्टि की सीमा को मापने का साधन हो सकती है। उदाहरणार्थ, इसका प्रयोग अंधकार-अनुकूलन वक्रों को उपलब्ध करने के लिए और वर्णक्रमीय संवेदनशीलता के वक्रों के निर्धारणार्थ किया गया है। इस विधि से प्राप्त परिणामों और मनोवैज्ञानिक विधियों से प्राप्त परिणामों में निकट सादृश्यता है। जंतुओं के **दृष्टि** अध्याय में यह प्रविधि विशेषतः महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इससे जंतुओं को बिना प्रशिक्षण देने का कष्ट किए ही उनकी दृष्टि-सीमा के परिमापन की सुविधा प्रयोगकर्त्ता को मिलती है।

## वर्ण-दृष्टि के सिद्धांत :

दृष्टि के रचना-विज्ञान के इस प्रसंग पर लिखने से पूर्व हमें उस प्रश्न को उठाना चाहिए, जिसने दृष्टि-वैज्ञानिकों को किसी भी अन्य प्रश्न से अधिक उलझन में डाल रखा है : हम वर्णों को क्यों देखते हैं ? वह कौन-सी प्रक्रिया है, जिससे हम विभिन्न रंगों में एक दूसरे से भेद कर सकते हैं ? सैकड़ों वर्षों से इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया गया है और अनेक सिद्धांत अभिकल्पित हुए हैं। हम ऐसे दो सिद्धांतों का विवेचन करेंगे। शरीर-वैज्ञानिक विधियाँ हमें इस प्रश्न के उत्तर के निकटतर ले आती हैं। ऐसा प्रकट होता है कि इनमें से एक सिद्धांत उत्तर देने के वहुत निकट पहुँच रहा है।

इलेक्ट्रोरेटिनोग्राम की बी-तरंग जंतुओं और मनुष्यों की परमावश्यक सीमा के परिमापनार्थ साधन का कार्य करती है।
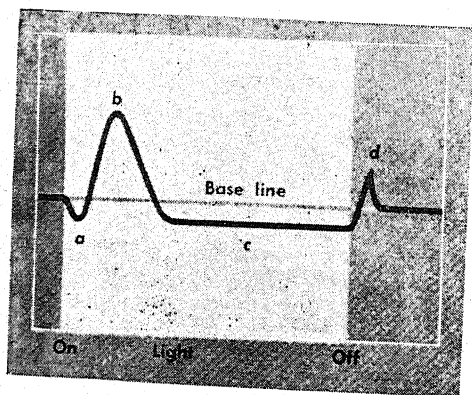
**चित्र ११.२५ इलेक्ट्रोरेटिनोग्राम (ERG)। जब प्रकाश दीप्त किया जाता है, दृष्टिपटल का विद्युतीय विभव पहले एक दिशा की ओर घूमता है ( ए-तरंग), तब दूसरी दिशा की ओर (बी-तरंग )। तब एक मंथर सी-तरंग आती है। जब प्रकाश बुझा दिया जाता है, एक अचानक विक्षेष होता है (डी-तरंग)। बी-तरंग का एक दृष्टिपटल संवेदनशीलता के परिमापक के रूप में मनुष्य की परमावश्यक सीमा के सदृश प्रयोग किया जाता है।**

वर्ण-दृष्टि के सब सिद्धांतों का अनुमान है कि भिन्न प्रकार के शंकु हैं और शंकु के प्रत्येक प्रकार की, वर्ण-क्रम के विशेष क्षेत्र में, विशिष्ट संवेदनशीलता है। इसका अर्थ हमारे प्रकाश-रसायन के आधुनिक ज्ञान की शब्दावली में यह है कि भिन्न शंकु भिन्न प्रकाश-रासायनिक तत्वों से युक्त होते हैं और प्रत्येक का अपना अवशोषण वर्णक्रमीय वक्र होता है। सुविधा के लिए काल्पनिक शंकुओं को उनके अनुमानित शिखर-बिंदुओं के अनुरूप संज्ञाएँ दी गई हैं। अतएव, 'लाल' शंकु वह शंकु

है, जो लाल क्षेत्र में सर्वाधिक संवेदनशील है और वर्ण-क्रम के हरे भाग के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील शंकु को 'हरा' शंकु नाम दिया, इत्यादि।

**यंग-हेल्महाल्टज सिद्धांत :**

यह अब तक का सर्वाधिक प्रसिद्ध सिद्धांत है। इसे दो व्यक्तियों ने, जो भिन्न कालों में वर्त्तमान थे, निरूपित किया है—यह त्रिशंकु सिद्धांत है। ( हेल्महाल्टज, १९२४)। इसके अनुसार तीन प्रकार के शंकु हैं, 'लाल' शंकु, 'हरित' शंकु और 'नील' शंकु। इसका मत है कि इन शंकुओं से निःसृत प्रभाव सरल रूप में संबद्ध होता है, जिससे तीनों में क्रिया की समान मात्रा 'श्वेत' की संवेदना उत्पन्न करती है।

संभवतः यह सिद्धांत आकर्षक प्रतीत हुआ और उसका इतना प्रभाव उसकी सुगमता के कारण हुआ। यथार्थतः यह यथासंभव सरलतम सिद्धांत है; क्योंकि यह प्रदर्शित करना सरल है कि वर्ण दृष्टि की किसी क्रिया को स्पष्ट करने के लिए कम-से-कम तीन शंकुओं का होना अनिवार्य है। तीन प्रकार के शंकुओं को सबलतम समर्थन वर्ण-मिश्रण के उपादानों से मिलता है। हम तीन मूल रंगों को लेकर एक वर्ण-क्रम के नील क्षेत्र से, दूसरा लाल क्षेत्र से और तीसरा मध्य से हरे और पीले क्षेत्र से लेकर वर्ण-मिश्रण कर सकते हैं। इन क्षेत्रों से भिन्न अनुपातों में रंग लेकर तीन रंगों को मिश्रित कर और उससे किसी ऐसे रंग या संतृप्ति को उत्पन्न करना संभव है, जिसे मानव-नेत्र देख सके। शुद्ध मिश्रण में वे इस प्रकार संबद्ध होते हैं कि श्वेत उत्पन्न हो सके। वर्ण-मिश्रण के इन तथ्यों ने यंग-हेल्महाल्टज सिद्धांत का सदैव सबलतम समर्थन किया है। वर्ण-मिश्रण दत्त-सामग्री यह प्रमाणित नहीं करती कि **केवल** तीन प्रकार के शंकु वर्ण-दृष्टि में सन्निहित हैं। यह भी संभव हो सकता है कि चार अथवा और भी अधिक प्रकार के शंकु हों। तब भी वे उक्त तथ्य को स्पष्ट करते हैं, केवल यह अनुमान करके कि प्रत्येक वर्ण एक से भी अधिक शंकुओं को उद्दीप्त करता है—क्योंकि उनकी सवेदनशीलता परस्पर व्याप्त है—और पीले वर्ण नीले का तथा लाल वर्ण हरे का विलोपन करते हैं, जिस प्रकार संपूरक वर्णों की प्रक्रिया में होता है।

यंग-हेल्महाल्टज सिद्धांत के समक्ष अनेक अन्य वर्ण दृष्टि-प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने की कठिनाई सदैव रही है। उदाहरणतः यह पीत वर्ण क्यों देखते हैं? इस सिद्धांत का उत्तर होगा कि 'पीत' की संवेदना 'लाल' और 'हरित' संवेदनाओं द्वारा उनके साथ-साथ उत्पन्न होती है, किंतु यह उत्तर बहुत प्रत्यात्मक अथवा प्रामाणिक प्रतीत नहीं होता। वर्णांधता भी इस सिद्धांत के लिए एक विशेष उलझनपूर्ण समस्या रही है। वर्णांधता 'युग्मों' में क्यों होती है? उदाहरणतः, अतिसामान्य प्रकार की वर्णांधता लाल-हरित वर्णांधता है और उसके बाद पीत-नील वर्णांधता का स्थान है। इसके अतिरिक्त वर्णांधता व्यक्ति की श्वेत-श्याम दृष्टि प्रायः बाधाविहीन रहती है।

यह कैसे संभव है जब कि लाल, हरित और नील का सरल मिश्रण ही श्वेत माना गया है ?

वर्ण-मिश्रण के संबंध में इस सिद्धांत को सफलता मिली है, किंतु अन्य अनेक प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने में यह असफल है। वे प्रक्रियाएँ भी किसी अन्य मान्य सिद्धांत के द्वारा स्पष्ट होनी चाहिए।

## हैरिंग सिद्धांत :

दूसरा सिद्धांत, जो अपने प्रमुख प्रणेता **हैरिंग** के नाम से अभिहित था, अब बहुधा 'विरोधी-वर्ण सिद्धांत' कहलाता है (हरविज और जैम्सन, १९५७)। यह वर्णों के तीन युग्मों को स्वीकार करता है, जो विरोधी रूप में कार्य करने में समर्थ हैं। ये युग्म हैं : श्वेत-श्याम, लाल-हरित और पीत-नील। अतएव, यह सिद्धांत स्वीकार करता है कि दीप्ति के शंकु वर्णों के शंकुओं से भिन्न होते हैं। आगे इसके अनुसार ऐसी प्रक्रियाएँ हैं कि लाल का हरित से विरोध (विलोपन) और पीत का नील से विरोध रहता है। मूल रूप में इस सिद्धांत के अनुसार प्रक्रियाओं के प्रत्येक युग्म एक ही कोशिका में थे। अब इसका यह अनुमान अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि चार प्रकार के 'वर्ण' शंकु हैं और ये द्विध्रुवीय एवं गुच्छिका-कोशिका से इस प्रकार जुड़े हैं कि वे विरोधी युग्मों के रूप में किया करते हैं।

इस प्रकार का सिद्धांत संप्रति विस्तृत मान्यता प्राप्त कर रहा है। यंग-हेल्महाल्टज सिद्धांत की अपेक्षा इस सिद्धांत ने वर्णांधता का सदैव श्रेष्ठतर स्पष्टीकरण दिया है और इसी तरह यह वर्ण-मिश्रण को भी भली प्रकार से स्पष्ट करता है। यह संपूरक वर्णों के सिद्धांत को और वर्ण-चक्र को भी अच्छी तरह स्पष्ट करता है। अब यह शरीर-क्रिया-वैज्ञानिकों के कार्यों द्वारा, जो दृष्टिपटल में विद्युतीय क्रियाओं का अभिलेखन करते हैं, समर्थन प्राप्त कर रहा है।

## वर्ण 'इकाइयाँ' :

अति लघु विद्युद्ग्रों को जो 'सूक्ष्म-विद्युद्ग्र' कहलाते हैं, दृष्टि-पटल में लगा कर शरीर-क्रिया वैज्ञानिक दृष्टिपटल की एक 'इकाई' से अभिलेखन करने में सफल हुए हैं (ग्रेनिट, १९५९)। वे विद्युद्ग्रों को देख नहीं सकते, इसलिए वे निश्चित नहीं हो सकते कि कौन-सी इकाइयाँ या कोशिकाएँ वे उनसे अभिलिखित कर रहे हैं। संभावना है कि इस प्रकार से जिन इकाइयों का अभिलेखन वे करें, वे शलाका या शंकु संग्राहक न हों; क्योंकि ऐसी धारणा है कि संग्राहक आवेगों को उत्पन्न नहीं करते। अधिक संभावना यह है कि इकाइयाँ द्विध्रुवीय अथवा गुच्छिका-कोशिकाएँ हों। इसी हेतु हम संग्राहक न कहकर 'इकाइयों' की चर्चा करते हैं।

दृष्टिपटलीय इकाई पर सूक्ष्म-विद्युद्ग्र से प्रयोगकर्त्ता विशेष तरंग-लंबाई पर प्रकाश को दीप्त कर सकता है तथा उस इकाई में दीप्ति द्वारा उत्पन्न आवेगों की संख्या का अभिलेखन कर सकता है। प्रकाश की तीव्रता में परिवर्तन करके वह आवेगों की कुछ कम संख्या प्राप्त कर सकता है, जैसे चार, जिसकी गणना सरलता से हो सकती है। प्रकाश की वह तीव्रता, जो आवेगों की इस संख्या को उत्पन्न करती है, परमावश्यक सीमा कहलाती है। प्रयुक्त संख्या महत्त्वपूर्ण नहीं है, जब तक कि वह परिमापनों के एक विन्यास द्वारा पूरे समय प्रयोग की जाए। प्रकाश-दीप्ति की तरंग-लंबाई में परिवर्तन करके और प्रत्येक तरंग-लंबाई की सीमा प्राप्त करके प्रयोगकर्त्ता वर्णक्रमीय-संवेदनशीलता के वक्र को प्राप्त कर सकता है, जिसकी तुलना मानव-प्रेक्षक के चाक्षुष-वक्र से की जा सकती है। इस उदाहरण में वक्र नेत्र की विशेष तांत्रिकी इकाई के लिए प्रयुक्त हुआ है न कि मानव-परिमापनों में निहित ऐसी इकाइयों के बड़े समूहों के लिए।

एक इकाई की वर्णक्रमीय संवेदनशीलता के परिमापन के उपरांत प्रयोगकर्त्ता अपने सूक्ष्म-विद्युद्ग्र के स्थान को परिवर्तित कर सकता है और दूसरी इकाई का अभिलेखन कर सकता है। इस प्रकार वह संपूर्ण दृष्टिपटल की खोज कर सकता है और इकाइयों के बड़े विशद् प्रतिरूपों की वर्णक्रमीय संवेदनशीलता का परिमापन कर सकता है। यदि दृष्टिपटल में भिन्न वर्णक्रमीय संवेदनशील इकाइयाँ हों, उसे मालूम कर लेना चाहिए कि कुछ इकाइयाँ एक प्रकार का वक्र बनाती हैं और कुछ इकाइयाँ दूसरे प्रकार का। इस रूप में विभिन्न जंतुओं के नेत्रों का अध्ययन किया गया है। प्रश्न यह है कि किस प्रकार की इकाइयाँ प्राप्त की गई हैं ?

सामान्यतः दो प्रकार की इकाइयाँ प्राप्त की गई हैं। इन्हें **विशद् प्रभावी** आर **अल्प प्रभावी** की संज्ञाएँ दी गई हैं। विशद् प्रभावी इकाइयों की विस्तृत वर्णक्रमीय संवेदनशीलता रहती है। अल्प प्रभावी, अपेक्षाकृत संकीर्ण वर्णक्रमीय संवेदनशीलता की इकाइयाँ हैं, जिनका प्रयोग वर्ण-दृष्टि में होने की आशा की जाती है।

## विशद् प्रभावी :

विशद् प्रभावी इकाइयों की वर्णक्रमीय संवेदनशीलता शलाकाओं एवं शंकुओं से बहुत मिलती-जुलती होती है, और फलतः क्रम से रोडाप्सिन तथा आयोडाप्सिन के समान। वस्तुतः इसमें संदेह कि कोई संभावना नहीं है कि विशद् प्रभावी इकाइयाँ शलाका और शंकु संग्राहकों से जुड़ी हैं, जिनमें ये भिन्न तत्त्व रहते हैं।

यह तथ्य, कि विशद् प्रभावी इकाइयाँ वर्णक्रमीय संवेदनशीलता के साथ शंकुओं के सदृश, अल्पप्रभावी इकाइयों से स्वतंत्र रूप में वर्त्तमान रहती है, हैरिंग विरोधी-वर्ण सिद्धांत के प्रथम अनुमान का समर्थन करता है। यह अनुमान है कि वर्ण-प्रक्रिया श्वेत

संवेदनों अथवा दीप्ति को उत्पन्न करने वाली प्रक्रियाओं से भिन्न है। यंग-हेल्महाल्टज सिद्धांत का इससे भिन्न अनुमान, कि वर्ण संग्राहकों की क्रियाओं के संबद्ध होने से श्वेत उत्पन्न होता है, पुष्ट नहीं होता।

## मेढ़क की आँख में चार वर्ण 'इकाइयाँ' प्रतीत होती हैं।
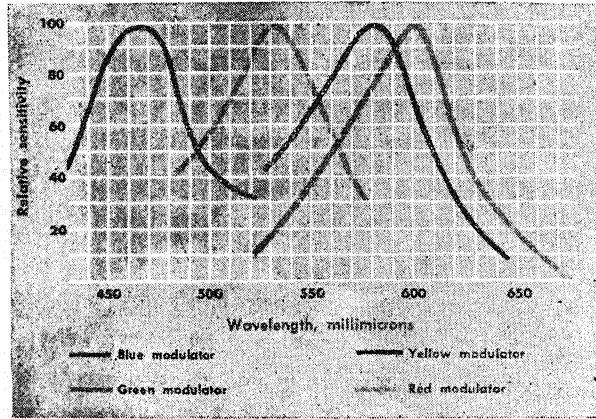
**चित्र ११.२६ मेढ़क की आँख के अल्प प्रभावी वक्र। प्रत्येक वक्र सूक्ष्म विद्युद्‌ग्र द्वारा स्पर्श की गई भिन्न तरंग-लंबाई की संवेदनशीलता को प्रकट करता है। ध्यान दें कि इकाइयों की महत्तम संवेदनशीलता वर्ण क्रम के नील, हरित, पीत और लाल क्षेत्रों में क्रमशः है (ग्रेनिट के अनुसार, १९५९)।**

अल्प प्रभावी :

अल्प प्रभावी वे इकाइयाँ हैं, जिनकी संवेदनशीलता संकीर्ण वर्णक्रमीय पट्टी पर रहती है, जैसा कि चित्र ११.२६ में प्रदर्शित है। एक अल्प प्रभावी को तरंग-लंबाई के अनुरूप, जिस ऊँचाई पर उसकी संवेदनशीलता हो, 'नाम' दिया जा सकता है। इस प्रकार से भेद करने पर अनेक विभिन्न अल्पप्रभावी इकाइयाँ पायी गई हैं, यदि उन दर्जनों जंतुओं पर विचार किया जाए जिनका इस दृष्टि से अध्ययन किया गया है। जंतुओं में वर्ण-दृष्टि की भिन्नता होती है। कुछ जंतुओं में यह बिलकुल नहीं होती, कुछ में अल्प होती है, जिसकी तुलना अंशतः वर्णांध व्यक्तियों से की जा सकती है और कुछ में वर्ण-दृष्टि इतनी विकसित होती है कि उसकी तुलना सामान्य मनुष्य की वर्ण-दृष्टि से की जा सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ जंतुओं में मनुष्य से भिन्न प्रकाश-रासायनिक तत्त्व भी होते हैं, यह विशद प्रभावी एवं अल्पप्रभावी दोनों प्रकार

की इकाइयों में संवेदनशीलता की भिन्न ऊँचाइयों को स्पष्ट करते हैं। दृष्टिपटल की संरचना से हम केवल अनुमान कर सकते हैं कि कौन से प्रकाश रासायनिक रंगों का सार और कौन-सी व्यवहारी दत्त-सामग्री प्राप्त की जा सकती है और कौन-से जंतुओं की वर्ण-दृष्टि मनुष्यों के सदृश है।

संभवतः अनेक जंतुओं की वर्ण-दृष्टि विकसित है, किंतु इनमें से एक है मेढ़क। मनुष्य की भाँति इसके नेत्र भी शलाका और शंकु के मिश्रण से निर्मित हैं। इसके नेत्रों में भी अल्प प्रभावी विन्यास है, जो मानव वर्ण-दृष्टि के सदृश ही वस्तुओं से संबद्ध है। मेढ़क की अल्प प्रभावी इकाइयाँ चित्र ११·२६ में प्रदर्शित हैं। बाईं ओर से दाईं ओर देखने पर हम पहले 'नील' अल्प प्रभावी लगभग ४७५ मिलिमाइक्रोन की ऊँचाई पर देखते हैं। कुल मिलाकर ये चार हैं, जैसा कि विरोधी-वर्ण-सिद्धांत से हम जानते हैं।

'हरित' इकाई की ऊँचाई ५३० मिलिमाइक्रोन पर है और विशुद्ध हरित की ५१५ मिलिमाइक्रोन के कुछ ऊपर। ध्यान दें कि वर्ण-क्रम में कहीं भी उद्दीपन के, केवल छोर पर नील को छोड़कर, एक से अधिक संग्राहक को उद्दीप्त करने की संभावना है। विरोधी-वर्ण-सिद्धांत के अनुसार, हम सोचेंगे कि विशुद्ध हरित उस बिंदु पर होगा, जहाँ पीत और नील वक्र क्रास करते हैं और एक दूसरे का विलयन करते हैं। यह ५१५ मिलिमाइक्रोन पर होता है, जहाँ वास्तव में विशुद्ध हरित प्राप्त होता है। वर्ण-क्रम के लाल छोर पर हम देख सकते हैं कि वर्ण-क्रम पर विशुद्ध लाल क्यों दिखायी नहीं देता। लाल और पीत इकाइयाँ इतनी निकट हैं कि उद्दीपन यहाँ तक कि ६५० मिलिमाइक्रोन के पार भी, अधिकतर लाल को उद्दीप्त करता है, किंतु फिर भी उसमें पीत इकाई निहित रहती है। इसी हेतु अल्प नील को पीताभा के विलयनार्थ लाल में मिश्रित करना चाहिए। अतः, विशुद्ध लाल अतिरिक्त वर्णक्रमीय है।

अति जटिल विषय का यह अति सरल विवरण दिया गया है। यह हमें बताता है कि शरीर-क्रिया विज्ञान का कार्य किस रूप में मनोविज्ञान के कुछ निष्कर्षों को स्पष्ट करता है। इससे यह भी पता चलता है कि हम किस प्रकार कुछ मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का परीक्षण कर सकते हैं।

शरीर-क्रिया विज्ञान के अध्ययन से हमने जो अधिगत किया, वह संक्षेप में इस प्रकार है : विभिन्न तरंग-लंबाइयों के प्रकाशों के प्रति हमारी संवेदनशीलता नेत्र में प्रकाश-रासायनिक तत्त्वों के अवशोषण वर्ण-क्रम द्वारा स्पष्ट की गई है। अंधकार और प्रकाश के प्रति हमारी अनुकूलन-योग्यता इन तत्त्वों के विघटन और पुनः संश्लेषण द्वारा स्पष्ट की गई है। इसके अतिरिक्त वर्णों और वर्ण-मिश्रण के नियमों, संपूरक वर्णों के नियमों के साथ देखने की हमारी योग्यता दृष्टिपटल में सीमित संख्या की

वर्ण 'इकाइयों' द्वारा स्पष्ट होती है । हम अब तक यह निर्धारित नहीं कर पाए हैं कि ये वर्ण इकाइयाँ क्या हैं, किंतु ऐसा प्रकट होता है कि भिन्न शंकुओं में भिन्न वर्णक्रमीय संवेदनशीलता के प्रकाश-रासायनिक तत्त्व रहते हैं और यह कि चार प्रकार के शंकु होते हैं, दो विरोधी युग्मों में वे व्यवस्थित रहते हैं, तथा 'वर्णांध शंकु' हैं, जो केवल श्वेत अथवा दीप्ति का अनुभव देते हैं ।

## सारांश

१. केवल वह विद्युत् चुंबकीय ऊर्जा, जिसकी तरंग-लंबाइयाँ लगभग ४०० से ८०० मिलिमाइक्रोन हों, नेत्र देख सकते हैं ।

२. नेत्र में लेंस है जो एक उलटे बिंब को प्रकाश-संवेदी सतह, दृष्टिपटल, पर फोकस करता है ।

३. दृष्टिपटल में शलाका और शंकु संवेदनशील तत्त्व हैं । ये मस्तिष्क से सूक्ष्म कोशिकाओं और स्नायुओं के जाल द्वारा जुड़े हुए हैं । शंकु दृष्टिपटल के फोविआ अंश पर बहुत घने हैं, जिनका उपयोग वस्तु को सीधे देखने में होता है । शलाकाएँ दृष्टिपटल के बाह्यांचल में अपेक्षाकृत अधिक होती हैं ।

४. नेत्र के लेंस निकट और दूर की वस्तु के समायोजनार्थ अपने आकार को परिवर्तित करते हैं । यदि लेंस की सतह बेडौल हो, तो यह दृष्टि-वैषम्य नामक दृष्टि-विकार को उत्पन्न करता है । यदि नेत्र-गोलक अति दीर्घ या लघु हो, व्यक्ति निकट-दृष्टिक या दूर-दृष्टिक होगा । आयु के साथ दूर-दृष्टि बढ़ती है ।

५. एक योजना के अंतर्गत सब वर्णों के वर्गीकरण के लिए तीन प्रकार का प्रत्यक्षीकरण आवश्यक है—(अ) रंग, (ब) संतृप्ति और (स) दीप्ति । रंग का अर्थ प्रायः वर्ण के सामान्य प्रयोग-सा है, नील, हरित, पीत, लाल और इनकी मध्यवर्त्ती छायाएँ या आभाएँ । संतृप्त, धूसर से भिन्न, उद्दीपन की सापेक्ष मात्रा है ।

६. रंगों को चक्र में व्यवस्थित किया जा सकता है, संतृप्ति को चक्र-विकास के सोपानों के रूप में और दीप्ति को तृतीय आयाम के रूप में । तीनों को चित्रित करने के लिए वर्ण-पिंड का प्रयोग किया गया है ।

७. कुछ रंग संपूरक हैं, जैसे—पीत और हरित-नील, लाल और नील-हरित । प्रत्येक संभावित रंग का संपूरक रंग उसकी लगभग विपरीत दिशा में वर्ण-चक्र पर होता है । जब वे रंग, जो संपूरक नहीं हैं, मिश्रित किए जाते हैं, परिणामतः वर्णचक्र पर मध्यवर्त्ती रंग उदित होते हैं ।

८. पूर्ण वर्णांधता अति विरल होती है, किंतु आंशिक वर्णांधता २५ व्यक्तियों में एक में होती है । आंशिक वर्णांधता किसी वर्ण-युग्म को पहचानने की परिभ्रांति द्वारा प्रकट होती है । सामान्य प्रकार की तीन वर्ण-परिभ्रांतियाँ स्पष्ट देखी गई हैं ।

९. कुछ व्यक्ति वर्णांध नहीं, वरन् वर्ण-दुर्बल होते हैं। वर्णांधता लिंग-सहलग्नी आनुवंशिक विशेषता है जो अध्याय—२ में वर्णित स्थितियों के फलस्वरूप होती है।

१०. अनेक व्यक्ति इस सत्य से अपरिचित होते हैं कि वे वर्णांध हैं; क्योंकि उन्होंने उपयुक्त वस्तुओं के लिए शुद्ध वर्णों का प्रयोग करना सीख लिया है, किंतु उनके विकार का पता अनेक परीक्षणों में से किसी भी एक के प्रयोग द्वारा लगाया जा सकता है।

११. नेत्र प्रकाश के विस्तृत विन्यास के प्रति-अनुकूलित हो सकता है। अंधकार-अनुकूलन में शंकु क्रिया से शलाका-क्रिया पर अंतरण होता है। इस अंतरणकाल में नेत्र की तरंग-लंबाइयों के प्रति महत्तम संवेदनशीलता लगभग ५५५ मिलिमाइक्रोन से लगभग ५०५ मिलिमाइक्रोन पर परिवर्तित होती है।

१२. नेत्र-परीक्षण द्वारा परिमापित दृष्टि-तीक्ष्णता अनेक वृत्तियों के लिए महत्त्वपूर्ण है। वाह्यांचल की अपेक्षा यह फोविआ में अधिक होती है, अंध-चित्ती पर कुछ दिखायी नहीं देना।

१३. मंद प्रकाश की अपेक्षा तीव्र प्रकाश में दृष्टि-तीक्ष्णता बेहतर होती है। यह उस समय भी बेहतर होती है, जब वस्तु और उसकी पृष्ठभूमि में तीव्र वर्णांतर होता है। अंत में, जब वस्तु और उसके परिवेश का प्रकाश एक समान रहता है, न अधिक न कम, तब भी यह बेहतर रहती है।

१४. जब दृष्टिपटल से प्रकाश टकराता है, यह शलाकाओं और शंकुओं के प्रकाश संवेदी तत्त्वों को छिन्न-भिन्न कर देता है। एक तत्त्व, जिसे रोडाप्सिन कहते हैं, शलाकाओं में पाया जाता है, इसका वर्णक्रमीय अवशोषण मनुष्य की अंधकार में वर्णक्रमीय संवेदनशीलता के तदनुरूप है। द्वितीय तत्त्व, आयोडाप्सिन, की लगभग वही वर्णक्रमीय संवेदनशीलता है, जो शंकुओं की है।

१५ विद्युतीय अभिलेखन मानव-नेत्र में प्रकाश द्वारा उद्दीप्त अवस्था में बिना उसे कष्ट पहुँचाए हो सकते हैं। तरंगों में से एक, बी-तरंग, विद्युत् द्वारा अभिलिखित तरंग, विविध प्रकार के जंतुओं की दृष्टि-सीमा के सूचक रूप में कार्य कर सकती है।

१६ वर्ण-दृष्टि के दो प्रमुख सिद्धांत प्रस्तावित हैं। यंग-हेल्महाल्टज सिद्धांत तीन वर्ण-संग्राहकों को स्वीकार करता है, जिनकी संवेदनशीलता का क्रम अधिक से कम की ओर क्रमशः वर्णक्रम के नील, हरित और लाल क्षेत्रों में है। हेरिंग विरोधी-वर्ण सिद्धांत संग्राहकों के तीन युग्मों को स्वीकार करता है, १. श्वेत-श्याम, २. नील-पीत और ३. लाल-हरित।

१७. वर्ण-दृष्टि की विविध प्रक्रियाओं को सर्वाधिक श्रेष्ठ रूप में हेरिंग सिद्धांत स्पष्ट करने में समर्थ है। यह दृष्टिपटल में सूक्ष्म-विद्युद्ग्रों के वर्ण 'इकाइयों' पर किए प्रयोगों द्वारा भी पुष्ट होता है। इन इकाइयों की क्रमशः महत्तम संवेदनशीलता वर्णक्रम के क्षेत्रों में नील, हरित, पीत और लाल में है।

पठनार्थ सुझाव :

Bertley, S. H. Principles of Perception, New York : Harper, 1958.

प्रत्यक्षीकरण की दृष्टि के महत्त्व पर प्रारंभिक पुस्तक।

Bertley, S. H.—Vision : A Study of its Basis, New York : Van Nostrand, 1941.

इस पुस्तक में दृष्टि में शरीर-क्रियात्मक प्रक्रियाओं का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

Boring, E. G. Sensation and Perception in History of Experimental Psychology, New York : Appleton—Century—Crofts, 1942.

दृष्टि के प्रयोगात्मक कार्यों का प्रामाणिक इतिहास।

Chapanis, A., Garner, W. R. and Morgan C. T., Applied Experimental Psychology, New York : Wiley, 1949.

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, इंजीनियरिंग समस्याओं पर विशेषतः चाक्षुष-समस्याओं के प्रयोग का अध्ययन।

Committee on Undersea Warfare, Human Factors in Undersea Warfare. Washington : National Research Council, 1949.

एक ग्रंथ, जिसमें दृष्टि पर अनेक अध्याय हैं और उसकी व्यावहारिक समस्याओं का विवेचन है।

Davson, H. The Physiology of the Eye. New York : McGraw-Hill--Blakiston, 1950.

नेत्र की शरीर-क्रियात्मक क्रियाओं का अध्ययन।

Evans, R. M. An Introduction to Colour. New York : Wiley, 1948.

वर्ण-दृष्टि एवं वर्णों के दैनिक व्यवहार पठनीय एवं सुविश्लेषित पुस्तक।

Gibson, J. J. The Perception of the Visual World. Boston : Houghton Mifflin, 1950.

दृष्टि प्रत्यक्ष ज्ञान की जटिल प्रक्रियाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन ।

Hartridge, H. Colours and how we see them : London : G. Bell - 1949.

वर्ण-दृष्टि पर रोचक ग्रंथ ।

Morgan, C. T., and Stellar, E. Physiological Psychology (2nd Ed. ) New York : McGraw—Hill, 1950.

इस पुस्तक में दृष्टि के शरीर-क्रियात्मक आधार पर कुछ अध्याय हैं ।

Pirenne, M. H. Vision and the Eye. London : Chapman and Hall, 1948.

रोचक शैली में दृष्टि और नेत्र के मूलतत्त्वों का विवेचन ।

Weston, H. C. Sight, Light and Efficiency, London : H. K. Lewis, 1949.

कार्य और उसकी निपुणता में दृष्टि के महत्त्व को प्रतिपादित करने वाली पुस्तक ।

अध्याय १२

# श्रवण और अवर इंद्रिय

संभवतः जगत-संबंधी हमारे ज्ञान और अधिगम का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन दृष्टि या नेत्र है, किंतु इसके निकट ही द्वितीय स्थान श्रवण का है। श्रवण द्वारा हम वाणी को समझ सकते हैं और वाणी हमारे ज्ञान को देने एवं प्राप्त करने का सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम है। श्रवण के ही द्वारा हम अनेक संकेत तथा चिह्न पाते हैं—मोटर-गाड़ी के भोंपू की चेतावनी, घड़ी की घंटा-ध्वनि, दमकल का सायरन, पीछे से आने वाले व्यक्ति की पद-ध्वनि और इसी प्रकार के अन्य अनेक संकेत। श्रवण द्वारा अनेक व्यक्ति संगीत का आनंद प्राप्त करते हैं। अतएव, अपने पर्यावरण को समझने का श्रवण एक महत्त्वपूर्ण माध्यम है। इस अध्याय में हम उन सिद्धांतों पर विचार करेंगे, जो यह स्पष्ट करते हैं कि हम किस प्रकार सुनते हैं।

हम अन्य संवेदनाओं पर भी विचार करेंगे, जिन्हें कभी-कभी अवर-इंद्रियाँ भी कहा जाता है, जिनका उल्लेख दसवें अध्याय में किया जा चुका है। उनका वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जा सकता है, किंतु हमारे प्रस्तुत प्रयोजन के सर्वाधिक उपयुक्त वर्गीकरण इस प्रकार है—

रासायनिक इंद्रियाँ :
- स्वाद
- घ्राण

त्वचा इंद्रियाँ :
- स्पर्श
- ऊष्मा
- शीत
- व्यथा

अंतःइंद्रियाँ :
- मांसपेशीय संवेदना (गतिबोधक)
- प्रघाण संवेदना (संतुलन की)
- जैविक संवेदनाएँ।

अध्याय के प्रथम भाग में श्रवण का वर्णन होगा, तत्पश्चात् अवर इंद्रियों का। अंतिम भाग में वाणी के संवेदन का और श्रवण के विशिष्ट स्वरूप का विवेचन किया गया है।

## श्रवण का शारीरिक आधार :

श्रवण-संवेदना को समझने से पूर्व हमें श्रवण के शारीरिक उद्दीपन का अध्ययन करना चाहिए; क्योंकि जो कुछ हम सुनते हैं, उसे यह अनेक प्रकार से नियंत्रित करता है। यदि आपसे पूछा जाए कि आप क्या सुनते हैं, तो संभवतः आप कहेंगे, 'ध्वनि'। यह सत्य है, आप ध्वनि ही सुनते हैं। किंतु, इतना कहना पर्याप्त नहीं है। आपमें इतनी योग्यता होनी चाहिए कि आप भौतिक ध्वनि में, जो कान को उद्दीप्त करती है, और संवेद्य ध्वनि (Perceived Sound) जिसे आप वस्तुतः अनुभव करते हैं, में अंतर कर सकें।

## ध्वनि-तरंगें :

वायु, जैसा कि आप जानते हैं, शून्य नहीं है, यह परमाणुओं का समूह है। ये परमाणु एक दूसरे से टकराते हुए एक दूसरे पर दबाव डालते हुए यादृच्छिक घूमते रहते हैं। वे जितना एक दूसरे के निकट और घने होंगे, उतना ही वायु में दबाव अधिक होता है तथा जितना वे कम होंगे, वायु में दबाव कम होगा। जब ध्वनि या तेज हवा नहीं होती, ये परमाणु चतुर्दिक वायु में समान रूप से फैले रहते हैं और तब दबाव भी एक समान रहता है। जब ध्वनि होती है, तब ये दबाव बढ़ते और कम होते हैं और दबाव में यह परिवर्तन वायु में उसी प्रकार गतिमय होता है, जिस प्रकार तरंगें जल की सतह पर आलोड़ित होती हैं। वस्तुतः दबाब में यह परिवर्तन ही उस भौतिक ध्वनि का निर्माण करता है, जिसे हम सुनते हैं।

ध्वनि-तरंगें साधारणतः वायु में भौतिक पदार्थों के कंपन से उत्पन्न होती हैं। जब इस प्रकार का पदार्थ कंपन करता है, उसके निकटवर्त्ती परमाणु एक साथ धकेले जाते हैं और वे विध्यात्मक दबाव के नीचे आते हैं। विध्यात्मक दबाव के नीचे आने वाले परमाणु अपने निकटवर्त्ती परमाणुओं को धकेलते हैं और आगे वे अपने निकट-वर्त्ती परमाणुओं में दबाव संचारित करते हैं। विध्यात्मक दबाव की तरंगें वायु में उसी प्रकार गतिमय होती हैं, जिस प्रकार तरंगें पानी पर। ध्वनि-दबाव-तरंगें जल-तरंगों की अपेक्षा बहुत अधिक गति से भ्रमण करती हैं, समुद्र-सतह पर वे प्रति घंटा लगभग ७६० मील अथवा प्रति सेकेंड १,१०० फुट की गति से चलती हैं।

अधिकांश पदार्थ जब टकराते हैं, तब एक ही दिशा में गतिमान नहीं होते। उदाहरणार्थ, वायलिन का तार जब दबाया जाता है, वह आगे और पीछे की ओर

कंपन करता है। जैसे ही तार पहले एक दिशा की ओर गतिमान होता है, एक विध्यात्मक दाब-तरंग वायु में चलना प्रारंभ करती है, परंतु जब तार पुनः अपने मूल स्थान और उससे भी पीछे की ओर मुड़ती है, कुछ शून्यता (या निषेधात्मक दबाव) ठीक विध्यात्मक दाब-तरंग के पीछे उत्पन्न होती है। यह शून्य ध्वनि की गति के सदृश बढ़ता है, जैसे विध्यात्मक दाब-तरंग बढ़ती है। वायु-दबाव के ये परिवर्तन, जो वायु में उसके साथ-साथ होते हैं, **ध्वनि-तरंग** कहलाते हैं और यह ध्वनि-तरंग हम जो कुछ सुनते हैं, उसके लिए भौतिक उद्दीपक है। भिन्न कंपन भिन्न ध्वनि-तरंगें उत्पन्न करते हैं। अतः, श्रवण के भौतिक उद्दीपन को समझने के लिए हमें पहले ध्वनि-तरंगों की विशेषताओं को समझना चाहिए।

ज्या-तरंगें (Sine Waves) :

सामान्य प्रेक्षण हमें बतलाता है कि संभावित ध्वनि-तरंगों की विविधता अनंत है। हम एक प्रकार की तरंग को सरलतम मानते हैं; क्योंकि **ज्या-तरंग** कहलाने वाली इस तरंग का प्रयोग किसी अन्य प्रकार की तरंग को द्वितक करने या विश्लेषण करने के लिए, कर सकते हैं। चित्र १२·१ में ज्या-तरंग का रेखाचित्र है, त्रिमितीय की ज्या-क्रिया द्वारा गणितीय रूप में अभिव्यक्त किए जा सकने के कारण ही इसे यह संज्ञा मिली है। जब एक कंपनपरक वस्तु **अबाध** रूप से आगे और पीछे घूमती है और वायु के दबाव को परिवर्तित करती है, तब यह (ज्या-तरंग) उत्पन्न होती है। ज्या-तरंग को सुनते समय जो ध्वनि हम सुनते हैं, उसे **शुद्ध स्वर** कहा जाता है। ज्या-तरंगें केवल विशेष यंत्रों द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं, इसलिए शुद्ध स्वर केवल प्रयोगशाला में सुना जा सकता है। कुछ वाद्य भी, जैसे बाँसुरी, प्रायः शुद्ध स्वर उत्पन्न कर सकते हैं।

यदि ध्वनि-तरंगें वायु से दबाव के परिवर्तन हैं, आपको आश्चर्य होगा कि हम उनके चित्र लेने में कैसे सफल होते हैं। वस्तुतः ध्वनि-तरंगों को देखने एवं सुनने की अनेक विधियाँ हैं। प्रयोगशाला में एक सर्वाधिक प्रयुक्त विधि ऋणाग्र-किरण दोलन-दर्शी (कैथोड-रे आसीलास्कोप) है, जिसमें दूरवीक्षण स्क्रीन के सदृश एक स्क्रीन होता है। यदि हमारे पास सूक्ष्म-ध्वनि-ग्राहक यंत्र है, जिससे ध्वनि-तरंगों को विद्युतीय संकेतों का रूप दिया जा सके, तो हम इसके तारों को दोलन-दर्शी में लगा सकते हैं और स्क्रीन पर तरंगों को देख सकते हैं। तरंगों की सापेक्ष ऊँचाई वायु में दबाव के परिवर्तन की मात्रा को उपस्थित करती है और स्क्रीन पर दिखायी देने वाली दूरी समय को प्रस्तुत करती है। ऐसे चित्रों से हम ज्या-तरंगों के दो भिन्न प्रकार के परिमापन कर सकते हैं : (१) तारत्व तथा आवृत्ति और (२) तुमुलता एवं प्रबलता।

## स्वरों का तारत्व और आवृत्ति (Pitch and Frequency of Tones) :

प्रथमतः हम यह गणना कर सकते हैं कि ज्या-तरंग किसी निश्चित काल में कितनी बार विध्यात्मक और निषेधात्मक दबाव में अंतरित होती है—अर्थात् कितनी बार ऊपर और नीचे होती है। यह मापन **आवृत्ति** कहलाता है और साधारणतः **प्रति सेकेंड चक्रों** में उसे अभिव्यक्त करते हैं। चित्र १२·१ के सबसे ऊपर वाले चित्र में ध्वनि-तरंग प्रति सेकेंड नीचे के दो ज्या-तरंगों के चित्रों की अपेक्षा कम बार अंतरित होती है, अतः इसकी आवृत्ति निम्नतर है। अधिक स्पष्ट रूप में इस प्रकार कहा जा सकता है, यदि ज्या-तरंग पहले विध्यात्मक दबाव की ओर जाती है और तदंतर निषेधात्मक की ओर, और पुनः पीछे की ओर प्रति सेकेंड ५०० बार, तो इसकी आवृत्ति प्रति सेकेंड ५०० चक्र है; क्योंकि ज्या-तरंग ने एक सेकेंड में उतने चक्र पूर्ण किए हैं।

आवृत्ति और तारत्व के अंतर को स्पष्ट करना महत्त्वपूर्ण है। प्रथम भौतिक है, द्वितीय मनोवैज्ञानिक। हम अभी उल्लेख कर चुके हैं कि आवृत्ति स्वर की **भौतिक** विशेषता है। दूसरी ओर तारत्व मनोवैज्ञानिक विशेषता है, अन्य शब्दों में स्वराघात अनुभव का संवेदनात्मक **गुण** है। दोनों के अंतर को ग्रहण करना बहुधा कठिन होता है; क्योंकि, जैसा कि हम अध्याय १० में स्पष्ट कर चुके हैं, व्यक्ति संवेदनात्मक अनुभव को भौतिक उद्दीपन की कार्बन कापी के रूप में सोचने के अभ्यस्त हैं। इसके अतिरिक्त वे सरलता से समझ नहीं पाते कि हम अनुभव के गुण का परिमापन भौतिक उद्दीपन से पृथक् किस प्रकार कर सकते हैं। यह तथ्य कि तारत्व और आवृत्ति भिन्न-भिन्न हैं, निम्नलिखित प्रयोग में स्पष्ट किया गया है (स्टीवंस और वाल्कमान, १९४०)।

> "एक प्रेक्षक के आकर्णक (इयरफोन) यंत्र लगाया और उसके द्वारा उसके समक्ष भिन्न आवृत्ति के स्वरों को प्रस्तुत किया। उसे दो स्विच दिए गए, जिन्हें वह दबा सके। एक को दबाने से प्रयोगकर्त्ता द्वारा निर्धारित आवृत्ति-यंत्र से मानक-स्वर बजता है। दूसरे को दबाने से एक तुलनात्मक स्वर बजता है, जिसकी आवृत्ति को प्रयोग-पात्र भी केवल घुंडी को दबाकर निर्धारित कर सकता है।
>
> तुलनात्मक स्वर की आवृत्ति को निर्धारित करने के लिए उसे कहा जाता है, जिससे कि वह मानक-स्वर के दुगने तारत्व को अनुभव करता है। ऐसा वह पहले मानक-स्वर को और तदंतर तुलनात्मक स्वर को, एक के बाद दूसरे को सुनकर, अनुभव करता है। इसके बाद तुलनात्मक स्वर को तब तक समायोजित करता रहता है, जब तक उसे संतोष नहीं हो जाता कि उसने उसे मानक-स्वर से दुगने तारत्व पर निश्चित नहीं कर दिया है। प्रयोगकर्त्ता इस चुनी हुई आवृत्ति को नोट करता है।

"इस प्रक्रिया को भिन्न मानक-स्वरों के साथ दोहराया गया। उदाहरणत: प्रथम मानक-स्वर प्रति सेकेंड ४०० चक्र हो सकता है, और प्रयोगकर्त्ता का स्वर-चयन, जो इसके तारत्व से दुगना हो, प्रति सेकेंड लगभग १,००० चक्र हो सकता है। यह दूसरे प्रयोग का भी निष्कर्ष हो सकता है, जब प्रयोगपात्र प्रति-सेकेंड १००० चक्रों के दुगने तारत्व के लिए ३,५०० चक्र चुनता है। ये अंक केवल अनुमानित हैं, परंतु ये तथ्य को स्पष्ट करते हैं। प्रयोग दोहराए जाते हैं, जब तक कि पूरे श्रव्य-विन्यास में 'दुगने तारत्व' के अनेक मापन न हों।"

ज्या-तरंगें आयाम और आवृत्ति में भिन्न होती हैं।
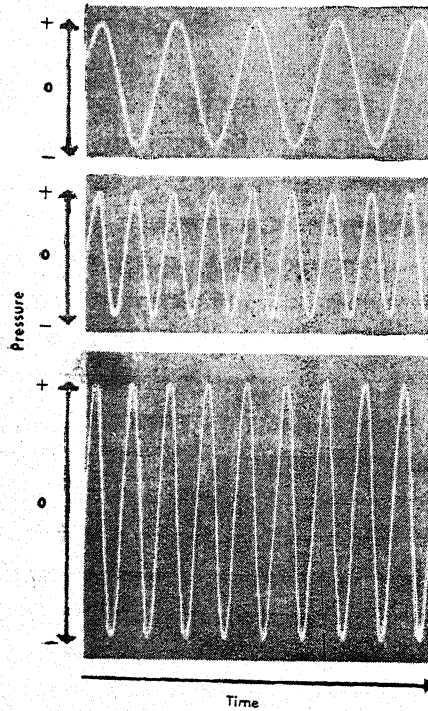
**चित्र १२·१ भिन्न आयामों और आवृत्तियों की तीन ज्या-तरंगें। ऊपर वाली दो ज्या-तरंगों के आयाम या दबाव समान हैं, किंतु मध्यवाली की आवृत्ति ऊपर वाली से दुगनी है। नीचे वाली दोनों ज्या-तरंगों की आवृत्ति समान है, किंतु नीचे वाली का आयाम मध्यवाली से दुगना है।**

इस प्रकार के परिमापनों से एक मापक का निर्माण किया जा सकता है, जो तारत्व और आवृत्ति में मात्रात्मक संबध प्रकट कर सके (देखिए, चित्र १२·२)। ऐसा मापक, जिसे तारत्व-मापक कहा जाता है, सीधी रेखा नहीं, वरन् वक्र है। १,००० चक्रों से नीचे और ४,००० चक्रों से ऊपर तारत्व बहुत धीरे-धीरे ऊँचा उठता है १,००० और ४,००० चक्रों के मध्य यह लगभग आवृत्ति के अनुपात में रहता है। इस पर भी ४,००० चक्रों के स्वर में १,००० चक्रों के स्वर से दुगने से कुछ ही अधिक तारत्व होता है। ४,००० चक्रों से २०,००० चक्रों तक, आवृत्ति के पाँच गुना परि-वर्तन तक तारत्व में केवल ५० प्रतिशत वृद्धि होती है। निष्कर्ष रूप में यह तथ्य

प्रदर्शित करता है कि तारत्व और आवृत्ति एक ही नहीं है; क्योंकि आवृत्ति के ठीक अनुपात में तारत्व बढ़ता या घटता नहीं है।

यह निष्कर्ष एक दूसरे तथ्य द्वारा भी पुष्ट होता है, जिसका उल्लेख संक्षेप में हम करेंगे। स्वर का तारत्व केवल आवृत्ति पर ही निर्भर नहीं करता, वरन् उसकी **प्रबलता** पर भी। दोनों का संबंध बहुत जटिल है, किंतु सामान्यतः नीची आवृत्ति का तारत्व प्रबल बनने पर समाप्त हो जाता है और ऊँची आवृत्ति का तारत्व प्रबलता के बढ़ने के साथ-साथ बढ़ता है। अतः, आवृत्ति में परिवर्तन न करके भी तारत्व के अनुभव को परिवर्तित किया जा सकता है

तारत्व एक मनोवैज्ञानिक आयाम या गुण है, और आवृत्ति एक भौतिक आयाम है।
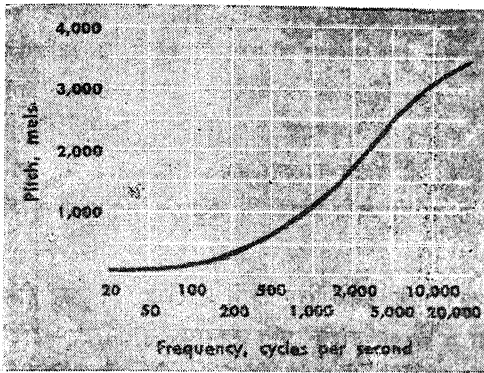
**चित्र १२.२ तारत्व-मापक। तारत्व को इकाइयाँ मेल्स कहलाती हैं। १,००० चक्र स्वर के तारत्व के स्वेच्छया १,००० मेल्स स्वीकार किए गए हैं। वे स्वर जिनका तारत्व दुगना ऊँचा होता है उनके २,००० मेल्स माने गए हैं, और जिनका तारत्व आधा है, उनके ५०० मेल्स। इस प्रकार एक तारत्व-मापक, तारत्व और आवृत्ति को मापित करने वाले यंत्र का निर्माण किया गया है (स्टीवंस और वोल्कमन के अनुसार, १९४०)।**

स्वरों की तुमुलता या तीव्रता और प्रबलता (Loudness & Intensity of Tones) :

ध्वनि-तरंग का एक और परिमापन है, इसकी **प्रबलता**। चित्र १२.१ में प्रबलता को तरंग की ऊँचाई पर दिखाया गया है और यह ऊँचाई तरंग के दबाव को प्रस्तुत करती है। चित्र १२.१ की नीचे वाली दो ज्या-तरंगों की आवृत्ति एक ही है, किंतु आयाम या प्रबलता भिन्न है। अतः, आवृत्ति हमें यह माप देती है कि ध्वनि-तरंग विध्यात्मक से निषेधात्मक दबाव पर कितनी बार अंतरित होती है, प्रबलता यह माप देती है कि दबाव के परिवर्तनों में कितनी भिन्नता है।

वैज्ञानिकों ने सब प्रकार के स्वरों और ध्वनियों की प्रबलता को मापने वाले विशिष्ट मापक का निर्माण किया है। ध्वनि-प्रबलता का विन्यास, जिसे व्यक्ति सुन सकते हैं, बहुत अधिक है। उस तीव्रतम ध्वनि का, जिसे बिना किसी असुविधा के लोग सुन सकते हैं, दबाव सामान्य दुर्बलतम श्रव्य-ध्वनि की अपेक्षा दसलाख गुना अधिक होता है। इसलिए यदि हमें वास्तविक ध्वनि-दबावों की प्रबलताओं को परिमापित करना पड़ता, तो हमें अनेक अंकों वाले एक बहुत लंबे मापक की आवश्यकता होती। परिणामस्वरूप हम अपनी परिमापन इकाई दशिबल ( डेसिबल) स्वीकार करते हैं।

ध्वनि-प्रबलता को स्पष्ट करने वाली दशिबल इकाई की दो मुख्य विशेषताएँ हैं—प्रथम, यह दो प्रबलताओं के मध्य का अंतर नहीं, वरन् अनुपात प्रस्तुत करती है (देखिए, अध्याय—१३)। जब दो प्रबलताएँ दशिबलों में अभिव्यक्त होती हैं, अंकों से ज्ञात होता है कि एक प्रबलता दूसरी प्रबलता से इतने गुना अधिक है, परंतु यह स्पष्ट नहीं करते कि दोनों में से कोई भी प्रबलता क्या है। द्वितीय, एक दशिबल इस प्रकार वर्णित है कि २० दशिबल १० गुना अनुपात को प्रस्तुत करते हैं, ४० दशिवल, १०० गुना और इसी अनुपात में १०० दशिबल तक बढ़ते हैं, जो १००,००० गुना अनुपात को प्रस्तुत करते हैं (एक व्यक्ति जो लघुगुणक से परिचित है, स्वयं हिसाब लगा सकता है कि दशिबल की किसी भी संख्या का क्या अर्थ होगा यदि वह अपने मन में सोच ले कि दशिबल की संख्या दो ध्वनि-दबावों के अनुपात के लघुगणक की २० गुना है )।

ऐसा मापक उपयोगी हो सके, इसके लिए उसमें प्रारंभिक बिंदु का होना आवश्यक है। वैज्ञानिक स्वेच्छया ०·०००२ डाइन प्रति स्क्वायर सेंटिमीटर—डाइन दबाव की इकाई है—के दबाव को प्रारंभिक बिंदु के रूप में उपयोग करने के लिए सहमत हुए हैं; क्योंकि यह परमावश्यक अवसीमा के निकट है। जब इस बिंदु का प्रयोग संदर्भ के रूप में किया जाता है, हम दशिबल मापक का **ध्वनि-दबाव-स्तर** (एस० पी० एल०) मापक के रूप में उल्लेख करते हैं।

व्यवहार में अधिकांशत हम दशिबल मापक का केवल एक साधारण अंक उचित मापक के रूप में, ताप मापक के सदृश प्रयोग करते हैं और तब यह सीखते हैं कि कुछ अंक विशेष तीव्रताओं के तदनुरूप हैं। आपके समक्ष यह स्पष्ट करने के लिए कि अंको से अभिप्राय क्या है, चित्र १२·३ कुछ ऐसी ध्वनियों के ध्वनि-दबाव को मापक पर प्रदर्शित करता है, जिनसे आप परिचत हैं। जब हम भिन्न ध्वनि-दबाव-स्तरों का उल्लेख करते हैं, आप उनके अर्थ के प्रति निश्चित नहीं हो पाते, तब यह भाग कम-से-कम साधारण रूप से यह स्पष्ट कर सकेगा कि ध्वनियाँ कितनी तुमुल (ऊँची) हैं।

आवृत्ति के ही सदृश प्रबलता भी भौतिक विशेषता है, यह तुमुलता की मनोवैज्ञानिक विशेषता के समान नहीं है। तुमुलता, तारत्व की भाँति, श्रव्य-अनुभूति का **गुण** है। यद्यपि यह प्रबलता से निकट सह-संबंधित है, तथापि यह प्रवलता के परिवर्तनों के अनुपात में बढ़ती या घटती नहीं है। हमें इसका ज्ञान है; क्योंकि चित्र १२·२ में प्रदर्शित तारत्व-मापक के ही सदृश हम तुमुलता-मापक का भी निर्माण करने में सफल हुए हैं। मापक का आकार भिन्न है, किंतु सामान्य तथ्य एक ही है। दोनों में मनोवैज्ञानिक मापक पर गुणों का परिमापन किया जा सकता है, जो संबंधित भौतिक मापक से भिन्न है।

सामान्य बातचीत श्रवण-अवसीमा से लगभग ६० दशिबल ऊपर होता है, तुमुल गर्जन, १२०।
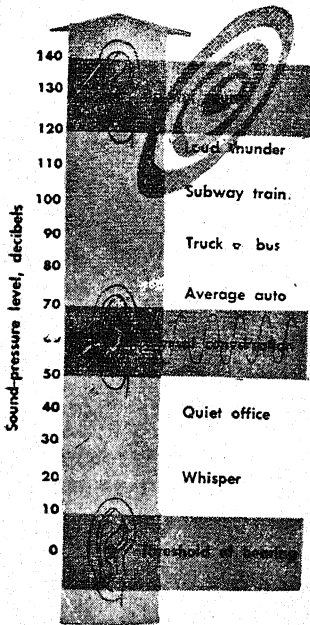
**चित्र १२·३ परिचित ध्वनियों का ध्वनि-दबाव-स्तर। दाईं ओर दिखायी गई प्रत्येक ध्वनि में ध्वनि-दबाव स्तर (प्रबलता) बाईं ओर लिखित दशिबल की संख्या के लगभग है।**

जिस प्रकार आवृत्ति की स्वरों के तारत्व से अति निकट संगति रहती है, उसी प्रकार प्रबलता की अति निकट संगति स्वरों की तुमुलता से रहती है। किंतु, यह तदनुरूपता या संगति पूर्णतः नहीं होती। उदाहरणतः, ध्वनि-दबाव में प्रबलता में १० दशिबल का अंतर तुमुलता के लिए बहुत अधिक अंतर प्रकट करता है। निम्न ध्वनि-दबावों में प्रबलता में इतना अंतर तुमुलता में बहुत कम अंतर प्रकट करता है। वस्तुतः जैसा कि हम आगे देखेंगे, निम्न प्रबलताओं में जो दशिबल अंतर देखे भी नहीं जा सकते, वे **उच्च प्रबलताओं** में सहज देखे जा सकते हैं।

**काकु (ध्वनि) और स्वरों की जटिलता—( Timbre and Complexity Tones) :**

श्रवण के अध्ययनार्थ प्रयोगशाला में ज्या-तरंगों का विपुल प्रयोग किया जाता है, परंतु प्रयोगशाला के बाहर उन्हें शायद ही कभी देखा जाता है। वरन् हमारे सामान्य पर्यावरण की वस्तुओं द्वारा उत्पन्न ध्वनियाँ **संश्लिष्ट तरंगों** से निर्मित हैं। ऐसी तरंगों के तीन उदाहरण दोलन-दर्शी यंत्र पर चित्र १२·४ में दिखाए गए हैं। वे किसी भी कल्पनीय आकार की हो सकती हैं, किंतु सामान्यतः वे या तो आवर्त्ती होती हैं या अनावर्त्ती। इसका तात्पर्य यह है कि उनका आवृत्तिमूलक प्रतिरूप होता है, जो बार-बार दोहराया जाता है अथवा वे विभिन्न ऊँचाइयों और चौड़ाइयों की तरंगों से कुछ बेतरतीब क्रम में होती हैं। चित्र १२·४ में ऊपर के दो चित्रों में एक प्रसंवादी स्वर का और दूसरा 'ओह' ध्वनि के अनुरेखण का उदाहरण प्रस्तुत है। नीचे वाला फुत्कार ध्वनि का अनुरेख अनावर्त्ती संश्लिष्ट तरंग को स्पष्ट करता है।

एक संगीतमय स्वर अथवा दीर्घकालिक 'ओह' ध्वनि आवर्त्ती है, और एक फुत्कार ध्वनि अनावर्त्ती।
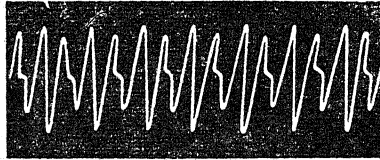
A tone from a harmonica
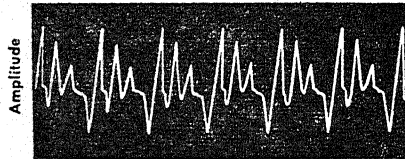
The sound "oh"
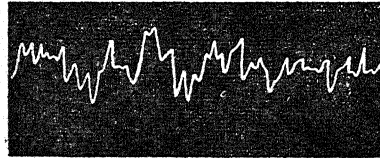
A hissing noise

Time

**चित्र १२·४ तीन संश्लिष्ट ध्वनि-तरंगों के दोलन-दर्शी चित्र। ऊपर वाले चित्र में हारमोनिका वाद्य की संगीतमय ध्वनि की तरंग है। मध्य तरंग दीर्घकालिक 'ओह' स्वर है। ये दोनों ध्वनियाँ आवर्त्ती हैं; क्योंकि वही प्रतिरूप पुनः दुहराया जाता है। नीचे वाली ध्वनि-तरंग एक अनावर्त्ती तरंग है; क्योंकि यह पूर्णतः अनियमित है।**

१८२२ में फारियर नामक एक फ्रांसिसी गणितज्ञ ने प्रमाणित किया कि प्रत्येक आवर्त्ती क्रिया भिन्न ज्या-तरंगों के आँकड़ों में अभिव्यक्त की जा सकती है। यह क्रिया संश्लिष्ट आवर्त्ती तरंग को स्पष्ट करने की अति सरल प्रविधि प्रस्तुत करती है। ज्या-तरंग को स्पष्ट करने के लिए हमें केवल उसकी आवृत्ति और प्रबलता को जानने की आवश्यकता रहती है। एक संश्लिष्ट तरंग के लिए हमें केवल प्रत्येक संश्लिष्ट तरंग की ज्या-तरंग के भागों की आवृत्ति और प्रबलता को जानना अपेक्षित है। अतएव, हम संगीत-वाद्य के स्वर को इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकते हैं कि इसका ध्वनि-दबाव-स्तर प्रति सेकेंड ४०० चक्रों पर ७० दशिबल है, प्रति सेकेंड ८०० चक्रों पर ६२ दशिबल, प्रति सेकेंड १६०० चक्रों पर २९ दशिबल आदि। संश्लिष्ट तरंग का इस प्रकार का विवरण 'फारियर विश्लेषण'(Fourier analysis) कहलाता है।

ध्यान दें कि इस उदाहरण में प्रत्येक आवृत्ति निम्नतम आवृत्ति के किसी गुणज में सन्निहित है। सब संगीत-वाद्य इसी प्रकार के संश्लिष्ट स्वरों को उत्पन्न करते हैं। निम्नतम आवृत्ति **आधारभूत** और अन्य सब आवृत्तियाँ **प्रसवादी** कहलाती हैं। आधारभूत आवृत्ति से दुगुनी आवृति **द्वितीय प्रसवादी** और तिगुनी आवृति, **तृतीय प्रसंवादी**, इस क्रम में आगे भी बढ़ती रहती हैं। एक स्वर की संश्लिष्टता स्वर को पूर्ण बनानेवाली भिन्न ज्या-तरंगों की संख्या और प्रबलताओं का परिणाम है। मनोवैज्ञानिक संश्लिष्टता का पूरक काकु या स्वर-लक्षण है, और यह काकु विभिन्न वाद्यों के स्वरों को और विभिन्न ध्वनियों को एक दूसरे से भिन्न करने में हमारी सहायता करता है। उदाहरणतः एक शुद्ध स्वर बहुत मंद ध्वनि करता है तथा एक वाद्य, जैसे वायलिन, द्वारा उत्पन्न संश्लिष्ट स्वर की तुलना में स्वर-लक्षण की ध्वनि भी उसमें पर्याप्त रहती है। इसके विपरीत, वायलिन के स्वर को हम समृद्ध कहेंगे। अंतर यह है कि वायलिन के स्वर में अनेक तीव्र प्रसंवादी स्वर हैं। यह केवल अधिक काकु या कम काकु नहीं है, जो भिन्न वाद्यों में विभेद करता है, वरन् भिन्न वाद्यों के काकु भिन्न होते हैं और हम सीखते हैं कि प्रत्येक वाद्य का विशिष्ट काकु या विशिष्ट स्वर-लक्षण होता है।

अन्य ध्वनियाँ भी हैं, जिनमें स्वर-लक्षण बहुत कम है अथवा बिलकुल नहीं है, ये **कोलाहल** कहलाती हैं। चित्र १२·४ में एक चित्र कोलाहल का है। ध्यान दें कि कोलाहल का चित्र आवर्त्ती नहीं है; क्योंकि वाद्य-ध्वनियों के सदृश निश्चित प्रतिरूप में इसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। यह इसलिए कि यह अनेक भिन्न आवृत्तियों से बना है जो न एक दूसरे की गुणज हैं और न प्रसंवादी, वरन् ये आवृत्तियाँ कम या अधिक बेतरतीव से मिश्रित हैं। यह मिश्रण वस्तुतः यादृच्छिक ( बेतरतीव ) है, हम

इसे **यादृच्छिक कोलाहल** कहते हैं। अन्य उदाहरणों में, जैसे चटपट या खटखट ध्वनियाँ पूर्णतः यादृच्छिक नहीं हैं; क्योंकि उनमें कुछ विशेष प्रबल आवृत्तियाँ हैं। फिर भी वे कोलाहल ध्वनियाँ हैं; क्योंकि उनमें अनेक आवृत्तियाँ हैं और वे एक दूसरे की गुणज नहीं हैं।

### श्रवण-क्रिया विधि ( How the ear works ) :

अब तक हमने भौतिक ध्वनियों का वर्णन किया है कि वे कानों से टकराती हैं और वे तारत्व, तुमुलता और काकु ( लक्षण ) के मनोवैज्ञानिक गुणों को उत्पन्न करती हैं। हमारा आगामी सोपान दोनों के मध्य, श्रवणेंद्रिय और उसकी क्रियाविधि का वर्णन करके, सेतु स्थापित करना है। इस प्रकार हम देख सकेंगे कि किस प्रकार कान भौतिक ध्वनियों को स्नायु आवेगों में रूपांतरित करके श्रवण अनुभवों के लिए सूचनाएँ प्रस्तुत करता है।

### कान में संवहन ( Conduction in the Ear ) :

चित्र १२·५ कान के प्रमुख भागों के अनुप्रस्थ काट को प्रदर्शित करता है। कान के तीन मुख्य भाग हैं, वाह्य कर्ण, यह ध्वनि एकत्रित करता है; मध्य कर्ण यह ध्वनि संचरित करता है; अंतर्कर्ण, यह ध्वनि को स्नायु-आवेगों में रूपांतरित करता है।

वाह्य कर्ण, अथवा कर्ण-पल्लव सौंदर्य का उपकरण होने के अतिरिक्त ध्वनियों को एकत्रित करता है, जो लघु वायु-पूर्ण वाहिनी, श्रवण-नाल से गुजरती हुई कर्णपटह तक जाती हैं। ध्वनि-तरंग के दबाव में परिवर्तन से यह लघु झिल्ली या कला पीछे और आगे की ओर गतिशील होती है। कर्णपटह का दोलन तीन लघु-अस्थियों को और अस्थिकाओं को हिलाता है, जिससे मध्य कर्ण से कंपन अंतर्कर्ण के कर्णावर्त में प्रवेश करता है। मध्य कर्ण की अस्थियाँ उत्तोलकों की शृंखला के सदृश जुड़ी हैं। अतएव, तांत्रिक ढंग से मध्यकर्ण से संचरित होती हैं।

### कर्णावर्त :

कान के तीनों भागों में से अंतर्कर्ण सर्वाधिक जटिल है। इसमें दो प्रकार की इंद्रियाँ हैं, एक का संबंध संतुलन-बोध से है और दूसरी का श्रवण से। संतुलन-इंद्रियाँ प्रधान-इंद्रियाँ कहलाती हैं और इस अध्याय में आगे उनका विवेचन किया जाएगा। श्रवण-बोध इंद्रियाँ एक लघु संरचना है। यह संरचना एक घोंघे के सदृश सर्पिल है, यह **काकिलया** ( कर्णावर्त ) कहलाता है जिसका अर्थ है, घोंघा-छद। कर्णावर्त की तीन भिन्न वाहिनियाँ या नलिकाएँ हैं, जो सर्पिलाकार एक दूसरे से लिपटीं हैं, किंतु पतली झिल्लयों द्वारा एक दूसरे से भिन्न की गई हैं। प्रत्येक नलिका तरल पदार्थ से भरी है। चित्र १२·६ इन नलिकाओं के वृहदाकार का अनुप्रस्थ-काट प्रस्तुत

करता है और उनके नामों को स्पष्ट करता है। ध्वनि-कंपन उनमें मध्यकर्ण की अस्थिका द्वारा अंडाकार द्वार के मध्य से, जो प्रधान-कला के छोर पर, अवस्थित है और इतना सूक्ष्म है कि चित्र में दिखाया नहीं गया है, प्रवेश करता है। अतएव, जब ध्वनि-तरंग अस्थिका को पीछे और आगे दोलाती है, यह गति कर्णावर्त के तरल पदार्थ में संचरित की जाती है।

कर्णावर्त में घटनेवाली महत्त्वपूर्ण घटना है—स्नायु-कोशिकाओं का उद्दीप्त होना। इन्हें लोम-कोशिकाएँ भी कहा जाता है; क्योंकि उनके छोरों पर लोम हैं—ये दो नलिकाओं को विभाजित करने वाली आधार-कला पर श्रोत्र चित्य में अवस्थित हैं। नलिकाओं में तरल पदार्थ के दबाव परिवर्तनों से लोम-कोशिकाएँ उद्दीप्त होती हैं और वे तंत्रिका-आवेगों को उत्पन्न करती हैं तथा श्रवण-तंत्रिका द्वारा मस्तिष्क में पहुँचती हैं।

ध्वनि वाह्य एवं मध्य कर्ण को पार करते हुए अंतर्कर्ण तक भ्रमण करती है।
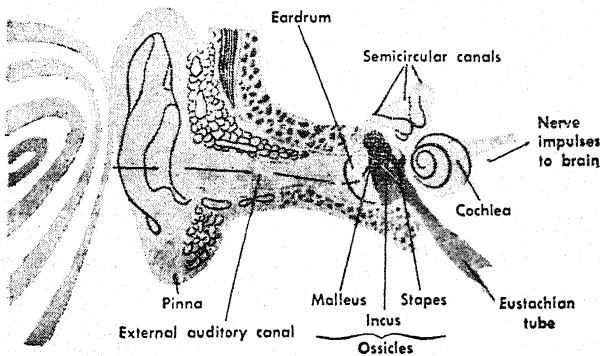
**चित्र १२·५—मानव-कर्ण। कर्ण के तीन मुख्य भाग हैं: १. वाह्य कर्ण, २. मध्यकर्ण और ३. अंतर्कर्ण। वाह्य कर्ण में कर्णपल्लव और एक नलिका है, जो ध्वनि-तरंगों को कर्णपटह तक पहुँचाती है। कर्णपटह, जो वाह्य एवं मध्य भाग को विभाजित करता है, में ध्वनि-तरंगों के कंपन ग्रहण करने की व्यवस्था है। यह कंपन मध्य कर्ण की अस्थिकाओं ( मुग्द्रक, स्थूणक, वलयक ) द्वारा कर्णावर्त के तरल पदार्थ में संचरित किया जाता है। इस तरल पदार्थ में ध्वनि-तरंगें कर्णावर्त की संवेदनात्मक कोशिकाओं को उद्दीप्त करती हैं।**

लोम-कोशिकाओं के नीचे अवस्थित आधार-कला कर्णावर्त के एक छोर से दूसरे तक अपनी चौड़ाई में परिवर्तित होती रहती है, और इसकी चौड़ाई ध्वनियों की आवृत्तियों से सह-संबंधित है, जिनके प्रति लोम-कोशिकाएँ सर्वाधिक संवेदनशील हैं। यह अंडाकार द्वार के निकट वाले छोर पर संकीर्णतम है और दूसरे छोर की ओर बढ़ते हुए चौड़ी होती जाती है।

कर्णावर्त की आधार-कला पर अवस्थित लोम-कोशिकाओं में ध्वनि- तंत्रिका आवेगों को उद्दीप्त करती है।
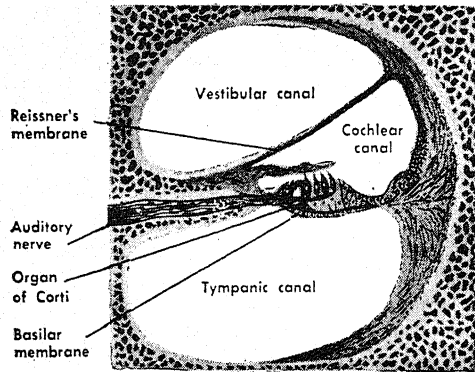
**चित्र १२·६ : कर्णावर्त के अनुप्रस्थकाट का रेखाचित्र। कर्णावर्त की नलिकाओं में ध्वनि-तरंगें आधार कला पर अवस्थित श्रोत्रचित्य का विक्षेप करती हैं और इस प्रकार श्रवण-तंत्रिका के तंतुओं में तंत्रिका-आवेगों को उद्दीप्त करती हैं।**

श्रवण-सिद्धांत :

अपने पिछले विवेचन द्वारा हमने कान की और विशेषत: कर्णावर्त की क्रियाओं को समझने में महत्त्वपूर्ण रचनात्मक तथ्यों को जान लिया है। दीर्घ काल से वैज्ञानिक इन तथ्यों को हमारे तुमुलता और तारत्व के संवेदनात्मक अनुभवों से संबंधित करना चाहते थे ( बीवर, १९४९ )।

तुमुलता बड़ी समस्या नहीं है। हम जानते हैं कि ज्ञानेंद्रियाँ प्राय: उद्दीपन की प्रबलता की वृद्धि के साथ-साथ अधिक-से-अधिक तंत्रिका-आवेगों को उत्पन्न करती हैं। इन उत्पन्न आवेगों की संख्या सदैव उद्दीपन की प्रबलता के अनुपात में सीधे नहीं बढ़ती, परंतु फिर भी दोनों में संबंध है। अत:, यह अनुमान करना उचित ही है कि स्वर की तुमुलता इन उत्पन्न आवेगों की संख्या से नियंत्रित और श्रवण-तंत्रिका से मस्तिष्क तक फैली होती है। श्रवण एवं अन्य संवेदनों से जो प्रमाण प्राप्त होते हैं, वे इस निष्कर्ष को पुष्ट करते हैं।

तारत्व पर इतना सहज निष्कर्ष नहीं लिया जा सकता। तारत्व-संवेदन में कर्णावर्त की क्रिया के अनेक सिद्धांत हैं। एक ओर हैल्महोल्टज-अनुनाद सिद्धांत है

और दूसरी ओर तथाकथित टेलीफोन सिद्धांत है। टेलीफोन सिद्धांत कर्णावर्त को माइक्रोफोन और श्रवण-तंत्रिका को टेलीफोन-तार मानता है। इसके अनुसार व्यक्ति द्वारा सुना गया तारत्व श्रवण-तंत्रिका तक जाने वाली आवेगों की आवृत्ति द्वारा नियंत्रित होता है। यह आवृत्ति जितनी अधिक होगी, तारत्व उतना ही ऊँचा होगा।

आधुनिक विधियों द्वारा तंत्रिका-आवेगों का अभिलेखन संभव होने पर, जंतु (प्रायः बिल्ली या गिनी-पिग) के समक्ष भिन्न आवृत्ति के स्वरों को प्रस्तुत करके, श्रवण-तंत्रिका में आवेगों की आवृत्ति का परिमापन किया गया। ऐसे परिमापनों द्वारा, यह स्पष्ट हो गया कि तारत्व का टेलीफोन सिद्धांत अधिक-से-अधिक केवल निम्न आवृत्तियों के लिए सत्य हो सकता है; क्योंकि श्रवण-तंत्रिका लगभग ४,००० चक्रों की सीमा से अधिक ऊँची आवृत्तियों को पारेषित नहीं कर सकती। बहुत निम्न आवृत्तियों पर, ५०० या संभवतः १,००० चक्रों तक, तंत्रिका में आवेगों का समूह स्वर के प्रत्येक चक्र के तदनुरूप होता है और इस प्रकार श्रवण-तंत्रिका टेलीफोन-तार के सदृश कार्य करती है। उच्चतर आवृत्तियों पर तंत्रिका-तंतु प्रत्येक चक्र का '**अनुकरण**' करने में असमर्थ है। अतः, वे प्रति सेकेंड या स्वर के तृतीय चक्र में '**कूदना**' प्रारंभ करते हैं; क्योंकि भिन्न तंतु भिन्न चक्रों में कूदने लगते हैं, इसलिए तंत्रिका तब भी सामान्यतः आवृत्ति का अनुकरण भिन्न ततुओं के मिश्रण से बने आवेगों के तीव्र अनुक्रम के कारण कर सकती है और ऊँची आवृत्तियों पर—इस ऊँचाई के संबंध में कोई निश्चित नहीं कह सकता, किंतु संभवतः ४,००० चक्रों के लगभग—यह तीव्र अनुक्रम प्रणाली असमर्थ हो जाती है, फलस्वरूप तंत्रिका में आवेग उद्दीपन-परक स्वर के प्रति चक्रों का अनुकरण नहीं कर सकते। अतः, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि टेलीफोन-सिद्धांत ४,००० चक्रों के ऊपर के तारत्व-संवेदन के लिए सत्य नहीं हो सकता, उससे नीचे चाहे वह कार्य कर सके।

मूल हेल्महोल्टज—अनुनाद सिद्धांत के अनुसार आधार-कला भिन्न लंबाई के तंतुओं से निर्मित है। ये तंतु पियानों वाद्य के तारों की भाँति व्यवस्थित हैं और भिन्न 'तारें' स्वर की भिन्न आवृत्तियों को अनुनादित करती हैं। अतः, कर्णावर्त में उद्दीप्त स्थल—संवेद्य तारत्व को नियंत्रित करता है। इस निष्कर्ष के सत्य होने के लिए कर्णावर्त के भिन्न भागों के तंतुओं को अपनी विशेषताओं को बनाए रखना होगा और मस्तिष्क के भिन्न भागों से जुड़ना होगा। दूसरे शब्दों में, कर्णावर्त के **स्थलों** को मस्तिष्क के 'मानचित्र' के अनुरूप प्रस्तुत होना पड़ेगा।

सामान्यतः ये प्रयोग टेलीफोन सिद्धांत की अपेक्षा **स्थल-सिद्धांत** (प्लेस थियोरी) का कहीं अधिक समर्थन करते हैं और इस समस्या के समाधान में व्यस्त

अधिकांश वैज्ञानिक स्थल-सिद्धांत की मान्यता स्वीकार करते हैं। हम यह प्रदर्शित कर सके हैं कि कुछ आवृत्तियाँ वस्तुतः कर्णावर्त के कुछ भागों को अन्य आवृत्तियों की अपेक्षा अधिक उद्दीप्त करती हैं, यद्यपि कर्णावर्त में यह विश्लेषण अपेक्षाकृत अपक्व रहता है। कोई भी आवृत्ति कर्णावर्त के बड़े क्षेत्र को उद्दीप्त करती है, किंतु उसके एक भाग को दूसरे भाग की अपेक्षा अधिक उद्दीप्त करती है (बेकसे, १९६०)। हम यह भी जानते हैं कि मस्तिष्क के उच्चतर केंद्रों में कर्णावर्त के भिन्न भागों को प्रस्तुत करने वाला तदनुरूपी 'मानचित्र' भी है, जिससे कि एक क्षेत्र एक आवृत्ति के प्रति दूसरी की अपेक्षा अधिक अनुक्रियाशील होता है ( अदेश, १९५९ )। ये मानचित्र उतनी सूक्ष्मता से निम्न आवृत्तियों को प्रस्तुत नहीं करते, जितनी सूक्ष्मता से उच्चतर को करते हैं। अतः, यह संभव है कि टेलीफोन सदृश आवेगों का पारेषण-यंत्र निम्न आवृत्तियों में तारत्व-संवेदन में कुछ योग देता है। सामान्यतः तारत्व-संवेदन के भिन्न रूपों को स्थल-सिद्धांत स्पष्ट कर सकता है। अतः, हमें पर्याप्त विश्वास है कि आधार-कला के उद्दीपन की स्थिति तारत्व-संवेदन को नियंत्रित करने का मुख्य कारक है।

## श्रवण की सीमाएँ ( Limits of Hearing ) :

अब हम श्रवण-उद्दीपन समझ चुके हैं और यह भी देख चुके हैं कि किस प्रकार कान एक ध्वनि-तरंग को तंत्रिका-आवेगों के प्रतिरूप में परिवर्तित करता है और अंत में, हम जो सुनते हैं, उसे वह नियंत्रित करता है। केवल भौतिक ध्वनि के विद्यमान होने से ही यह निश्चित नहीं होता कि हम सब कुछ सुन लेंगे—जब कि श्रवण प्रक्रम स्वस्थ दशा में भी हो—क्योंकि इसकी सीमाएँ हैं कि हम क्या सुन सकते हैं। हम प्रत्येक ध्वनि-तरंग को प्रबलता नहीं सुन सकते और न सब संभावित आवृत्तियों को ही सुन सकते हैं।

### प्रबलता सीमाएँ :

यह संभवतः स्पष्ट है कि प्रबलता मानव की श्रवण-शक्ति को सीमित करती है। यदि एक स्वर अति मंद है, हम उसे बिलकुल नहीं सुन सकते, चाहे भौतिक परिमापन यह प्रमाणित करें कि ध्वनि-तरंग विद्यमान है, एक अति मंद ध्वनि तरंग उपयुक्त उद्दीपन नहीं हो सकती। जैसा कि चित्र १२·३ में दिखाया जा चुका है कि शून्य दशिबल का ध्वनि-दबाव-स्तर ध्वनि की लगभग निम्नतम प्रबलता है, जिसे सामान्य व्यक्ति कभी भी सुन सकते हैं। किंतु, चित्र १२.७ प्रदर्शित करता है कि अनेक आवृत्तियों की प्रबलता परमावश्यक अवसीमा तक पहुँचने से अधिक है, अर्थात् मात्र—श्रवणीय प्रबलता।

चित्र १२.७ का वक्र स्वरों की भिन्न आवृत्तियों की परमावश्यक अवसीमा को प्रकट करता है। इससे हम देख सकते हैं कि प्रति सेकेंड १,००० से ४,००० चक्रों के मध्य की आवृत्तियों को हम सर्वोतम रूप में सुन सकते हैं। उदाहरणार्थ, प्रति सेकेंड ५० चक्रों की आवृत्ति पर एक स्वर को सुने जा सकने के लिए लगभग १,००० गुना अधिक ध्वनि-दबाव चाहिए, अर्थात् जितना दबाव प्रति सेकेंड २,००० चक्रों की आवृत्ति के लिए अपेक्षित होता है। इसी प्रकार उच्चतर आवृत्तियों पर सुनने के लिए अधिकतर प्रबलताओं की आवश्यकता होती है। इस पर भी ध्यान दें कि ध्वनि-दबाव की उच्च सीमा भी होती है; क्योंकि अत्यधिक ध्वनि-दबाव दुःखप्रद होते हैं। यदि आप पुनः चित्र १२·३ को देखेंगे, तो आप देख सकेंगे कि यह स्तर लगभग १३० दशिबल पर है और सब आवृत्तियों के लिए यह प्रायः एक ही रहता है।

अब पुनः चित्र १२·७ के वक्र की ओर ध्यान दें। यह अभिव्यक्त करता है कि मध्य विन्यास की आवृत्तियों में स्वर उच्चतर या निम्नतर आवृत्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक तुमुल होता है। निम्न प्रबलताओं पर यह वस्तुतः सत्य है। किंतु, उच्चतर प्रबलताओं पर सब स्वर समान रूप से तुमुल रूप में ध्वनित होते हैं। उदाहरणार्थ, ११० या १२० दशिबल के ध्वनि-दबाव-स्तर पर सब आवृत्तियों के स्वर प्रायः समान रूप से तुमुल होते हैं। अतः, परमावश्यक अवसीमाओं में अंतर होने से उच्च ध्वनि-दबाव-स्तरों पर तुमलता में अंतर नहीं होता।

## आवृत्ति सीमाएँ :

जिस प्रकार हमारे श्रवण की प्रबलताओं के विन्यास की सीमा है, उसी प्रकार आवृत्तियों का भी सीमाकारी विन्यास है। सामान्य कथन में हम कह सकते हैं कि आवृत्तियों का श्रव्य-विन्यास प्रति सेकेंड २० से २०,००० चक्रों तक है। जैसा कि चित्र १२·७ से देखा जा सकता है, किंतु यह विन्यास प्रामाणिक रूप से विवेचित नहीं है। आवृत्तियों के विन्यास की परिसीमाओं पर स्वर केवल बहुत उच्च प्रबलताओं पर ही सुने जा सकते हैं और निम्न प्रबलताओं पर यह विन्यास बहुत छोटा रहता है।

श्रवण की आवृत्ति-सीमाओं को अधिक स्पष्ट करने के लिए चित्र १२·७ में पियानों के स्वर भी दिखाए गए हैं। इससे हम जान सकते हैं कि स्वरों का विन्यास सुनी जा सकने वाली आवृत्तियों के विन्यास की अपेक्षा पर्याप्त संकीर्ण है, विशेषतः उच्चतर आवृत्तियों में। वस्तुतः यह सामान्यतः सत्य है कि हम उच्चतर सीमाओं के निकट की आवृत्तियों को बहुत कम सुनते हैं। उदाहरणतः, वाणी में प्रति सेकेंड ७,००० चक्रों से ऊपर बहुत कम आवृत्तियाँ रहती हैं। इतनी अधिक ऊँची आवृत्तियों पर स्वर शायद ही स्वरों के सदृश व्यंजित होते हैं, वरन वे मंद, बहुत मंद और

संभवत: बिना वास्तविक तारत्व के ध्वनित होते हैं। संभवत: आपने ध्यान दिया होगा कि पियानों के उच्चतर स्वरों में भी मध्य-विन्यास की आवृत्तियों के स्वरों की तुलना में, बहुत कम स्वरीय विशेषता रहती है।

एक शुद्ध स्वर जिसे एक सामान्य व्यक्ति सर्वोत्तम रूप से सुनता है, वह प्रति सेकेंड १,००० और ४,००० चक्रों के मध्य की आवृत्ति है।
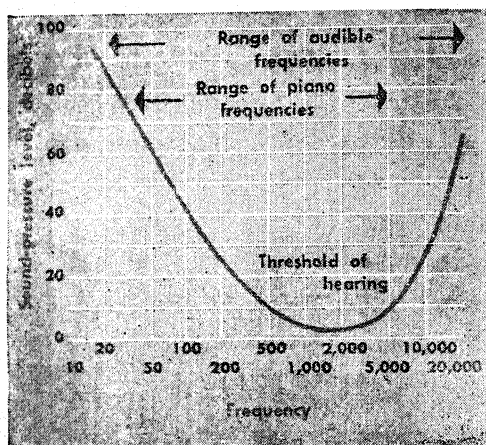
**चित्र १२·७ विभिन्न आवृत्तियों के शुद्ध स्वरों को सुनने की परमावश्यक अवसीमा।**

बहुत निम्न आवृत्तियों पर हम फिर भी ध्वनि सुन सकते हैं, किंतु वे स्वरीय (Tonal) नहीं होतीं। इसके स्थान पर हम वस्तुत: विशेष दबाव-परिवर्तन सुनते हैं न कि एक स्वर जो कि स्वर (Note) की आवृत्ति के तदनुरूप होता है। उदाहरणत:, प्रति सेकेंड ८ या १० चक्रों के स्वर की कंपनमय ध्वनि होती है। व्यवहार में इन अति निम्न आवृत्तियों पर शुद्ध स्वर को उत्पन्न करना बहुत कठिन है और फलत: उस आवृत्ति का परिमापन कठिन होता है, जिस पर हम स्वर नहीं सुन पाते। इससे संबंधित एक कठिनाई यह है कि बहुत निम्न आवृत्ति के ये स्वर प्रसंवादी होते हैं और ये प्रसंवादी स्वरीय रूप में ध्वनित हो सकते हैं, जबकि आधारभूत आवृत्ति ध्वनित नहीं होती—कम-से-कम बहुत निम्न स्वरों को उत्पन्न करने वाली वर्त्तमान प्रविधियों द्वारा नहीं।

प्रबलता के अंतर : (Intensity Differences) :

हमारे कान केवल जिन्हें हम सुन सकते हैं, उन प्रबलताओं और आवृत्तियों के क्षेत्र को ही सीमित नहीं करते वे परिवर्तन की मात्रा को या दो स्वरों के मध्य के अंतर को, जिसे हम पहचान सकते हैं, भी सीमित करते हैं। इस सीमा को जानने के लिए हम दो स्वरों को एक-एक कर ध्वनित करते हैं और प्रयोग-पात्रों से पूछते हैं कि वे हमें बताएँ कि वे ध्वनियाँ एक ही हैं या भिन्न-भिन्न ? तब हम प्रबलता

अथवा आवृत्ति को परिवर्तित करके दोनों के अंतर को कम या अधिक कर देते हैं, जिससे कि प्रयोग-पात्र उस अंतर को स्पष्ट समझ सके। मनोवैज्ञानिकों ने इस सीमा को बहुत सावधानी से प्रायः सब संभाव्य प्रबलताओं और आवृत्तियों को परिमापित किया है।

स्वर की आवृत्ति और प्रबलता दोनों प्रबलता के अंतर को समझने की सीमा को प्रभावित करती हैं। तुमुल स्वरों की अपेक्षा मंद स्वरों की पहचान क्षीण होती है। अधिकांश व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए स्मरणीय संख्या एक दशिबल है; क्योंकि जहाँ तक ध्वनियाँ सुनने योग्य पर्याप्त तुमुल हैं, एक दशिबल का अंतर हम सदैव सहज रूप से पहचान सकते हैं। दूसरा ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि मध्य आवृत्तियों की अपेक्षा बहुत निम्न और बहुत उच्च आवृत्तियों के अंतर को पहचानना कठिन होता है।

## आवृत्तियों के अंतर :

प्रायः वे ही नियम आवृत्ति के अंतर को स्पष्ट करने के लिए भी व्यवहृत होते हैं, यद्यपि परिमापन भिन्न है। इस उदाहरण में हम **आवृत्ति** ( प्रति सेकेंड के चक्र) में लघुतम अंतर का पता लगाते हैं, जिसे कोई व्यक्ति पहचान सकता है। यदि हम एक स्वर की आवृत्ति द्वारा अंतर को आँकड़ों में विभाजित करें, तो हम ऐसे मापन का प्रयोग करते हैं, जो सब प्रकार के स्वरों के लिए स्थायी मापन है। वस्तुतः प्रबलता के ही सदृश, जिन आँकड़ों का पता लगाया जा सकता है, वे निम्न आवृत्तियों की अपेक्षा उच्च में अधिक होते हैं और निम्न तथा उच्च स्वरों की अपेक्षा मध्य आवृत्तियों के लिए और भी अधिक होते हैं। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए आप पियानों की कुंजियों को दबाएँ और अनुभव करेंगे कि कुंजी-पट के मध्य की दो संलग्न कुंजियों के अंतर को बता सकना अपेक्षाकृत सरल है। परंतु, दोनों छोरों पर मंद्र या तिगुनी कुंजियों पर यह बताना अपेक्षाकृत कठिन है।

अंतर को पहचानने की योग्यता और किसी एक स्वर या तान जिसे कभी-कभी निरपेक्ष तारत्व भी कहा जाता है—को पहचानने की योग्यता को समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। ऐसे भाग्यशाली व्यक्ति बहुत कम हैं, जो प्रायः सब स्वरों को किसी संगीतमय मापन पर पृथक्-पृथक् बजने पर पहचान सकते हैं। हममें से अधिकांश व्यक्ति यह बतलाने में कठिनाई में पड़ जाते हैं कि वह किस सरगम (यूरोपीय संगीत में अष्टक) का कौन-सा स्वर है और वे परिशुद्धता से ८ या १० स्वरों से अधिक को नहीं पहचान सकते। अधिकांश व्यवहारों के लिए हमें इस योग्यता की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि महत्त्वपूर्ण कार्य प्रायः दो स्वरों के अंतर को अनुभव करना है, न कि प्रत्येक स्वर को पहचानना।

## आच्छादन (Masking) :

अब तक हम जो कुछ **श्रवण** की सीमाओं के संबंध में कह रहे थे, उसका अभिप्राय है कि लोग सापेक्ष वातावरण में सुनते हैं। सुनने की सीमाएँ पूर्णतः भिन्न हो सकती हैं, यदि एक से अधिक स्वर एक समय में ध्वनित हो अथवा जिस समय हम स्वर सुनने का प्रयत्न कर रहे हों, उस समय कोई शोरगुल कर रहा हो। उस समय स्वर को ठीक से सुन सकना अथवा दो स्वरों के अंतर को पहचान सकना सरल नहीं होता। श्रवण की सीमाओं में यह परिवर्तन **आच्छादन** कहलाता है।

दैनिक जीवन में आप इस सत्य से परिचित हैं कि कुछ ध्वनियों को कुछ अन्य ध्वनियाँ आच्छादित करती हैं। यदि आप फोन पर बात कर रहे हैं और आपके निकट या टेलीफोन परिपथ में शोर हो रहा है, तो आप उसे भली प्रकार से नहीं सुन सकते। अथवा यदि भाषण सुनते समय एक हवाई जहाज आपके सिर पर मंडरा रहा हो, तो संभवतः आप यह न सुन सकेंगे कि वक्ता क्या बोल रहा है। शोधकर्त्ताओं ने श्रवण-सीमाओं पर आच्छादन के प्रभाव को उतनी ही सावधानी से परिमापित किया है, जितनी सावधानी से शांत वातावरण में श्रवण को और अनुभव किया कि आच्छादन एक जटिल विषय है। मुख्य तथ्य है : प्रथम, निकट आवृत्ति के स्वर सहज ही एक दूसरे को आच्छादित कर सकते हैं—अर्थात् प्रत्येक स्वर दूसरे स्वर के सुने जाने में बाधक होता है - किंतु दूरस्थ स्वर एक दूसरे को अधिक आच्छादित नहीं करते। द्वितीय, निम्न स्वर उच्च स्वरों को, इसके विपर्यय की अपेक्षा, अधिक आच्छादित करते हैं। फलतः यदि दो स्वर एक साथ ध्वनित किए जाएँ, तो आप निम्नतर तारत्व के स्वर को अधिक सरलता से सुन सकेंगे।

## विस्वरता और सुस्वरता [असंवाद और संवाद] (Dissonance and Consonance) :

जिन्हें संगीत में रुचि है, वे प्रायः यह जानना चाहते हैं कि दो स्वरों को साथ बजाने में वह क्या है, जो उन्हें संवादी (समरस) या असंवादी बनाता है। जब दो या उससे अधिक गीत-स्वर साथ बजाए जाते हैं, वे सुखकर ध्वनि उत्पन्न करते हैं। हम उन्हें **समरस** या संवादी कहते हैं, उनकी संगति प्रकट है। यदि स्वर-ध्वनि सुखकर नहीं है, तो हम उन्हें **असंवादी** कहते हैं, या वह कि वह एक सुर में नहीं है।

संवाद और असंवाद का कारण क्या है ? इसका आंशिक उत्तर है—दो स्वरों के प्रसंवादी रूप की परस्पर-क्रिया। सरगम स्वर सदैव समरस ध्वनित होते हैं; क्योंकि दो स्वरों के प्रसंवाद में संगति रहती है। उदाहरणतः, मान लीजिए, कोई व्यक्ति दो स्वरों को बजाता है, जिसके मूलधार प्रति सेकेंड २०० और ४०० चक्र हैं

(२:१ अनुपात का अर्थ है कि अष्टक के एक स्वर का अंतर है) प्रथम स्वर की ज्या-तरंग प्रसंवादी प्रति सेकेंड २००, ४००, ६००, ८००, १,०००, १,२०० इत्यादि चक्रों की आवृत्तियों के साथ है। द्वितीय स्वर का प्रसंवादी प्रति सेकेंड ४००, ८००, १,२००, १,६०० इत्यादि चक्रों की आवृत्तियों का है। ध्यान दें कि द्वितीय स्वर के सब प्रसंवादियों की प्रथम स्वर के प्रसंवादियों से संगति है। परिणामस्वरूप हम एक मिश्रित स्वर सुनते हैं और दो स्वर मिलकर संवादी के रूप में व्यंजित होते हैं। संवादी स्वरों का अधिक जटिल उदाहरण देखिए, हम प्रति सेकेंड २०० और ३०० चक्रों के दो स्वर लें, यह ३:२ का अनुपात संगीतात्मक विराम देता है, जिसे **शुद्ध पंचम** कहते हैं। निम्न-तारत्व के स्वर का प्रसंवाद उक्त विवरण के ही अनुरूप रहता है, जब कि तारत्व के स्वर ३००, ६००, ९००, १,२०० इत्यादि हैं। आवृत्तियों की संपूर्ण श्रृंखला इस प्रकार होगी—२००, ३००, ४००, ६००, ८००, ९००, १,००० इत्यादि। ध्यान दें, इनमें सब आवृत्तियाँ २०० अथवा १०० चक्रों की दूरी पर हैं, एक निश्चित प्रतिरूप में हैं। यह प्रसंवादी स्वरों का निश्चित संबंध भी संवादी ध्वनि निर्मित करता है।

असंवादी स्वर-युग्म को स्पष्ट करने के लिए हम एक स्वर प्रति सेकेंड १०० चक्रों का, द्वितीय (जिसमें प्रसंवादी स्वर प्रति सेकेंड प्रत्येक सम १०० चक्रों पर है) प्रति सेकेंड १७८ चक्रों का स्वर। ये दो स्वर पूर्ण स्वर हैं और एक सुर से भी कम अंतर पर हैं, जैसे कि D और उसके ऊपर हो C। द्वितीय स्वर का प्रसंवादी स्वर प्रति सेकेंड ३५६, ५३४, ७१२, ८९०, १,०६८ चक्र है। इसमें प्रति सेकेंड ७१२ और ८९० चक्रों के प्रसंवादी स्वरों की निम्न स्वर के प्रति सेकेंड ७०० और ९०० चक्रों के प्रसंवादी स्वरों से तदनुरूपता नहीं होती। प्रतिफलित विषमता स्वर-युग्म को असंवादी (वादी) बना देती है।

इसे आप स्पष्ट समझ लें कि असंवादी और संवादी रूप विशेष प्रसंवादी स्वर की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति द्वारा पूर्णतः स्पष्ट नहीं किए जा सकते। हम उन सब कारणों को नहीं जानते, जो स्वरों के कुछ मिश्रणों को समरस (सुरीले) बनाते हैं और कुछ को नहीं। निःसंदेह, इसमें अधिगम का भी योग है। ध्वनियों का क्रम भी महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि विशेष स्वर-मिश्रण कुछ रागों में सुरीले व्यंजित होते हैं, और कुछ में नहीं, अतः प्रसंवादी स्वरों का संबंध समरसता में केवल एक महत्त्व-पूर्ण कारक है।

### श्रव्य दिक्-संवेदन (Auditory Space-Perception)

सुनने से हमें वस्तु के दिक्-परक आकार और स्थिति के संबंध में पूर्ण सूचना प्राप्त नहीं होती। तथापि हम ध्वनि की दिशा का संवेदन कर सकते हैं और यह

पर्याप्त अच्छी तरह जान सकते हैं कि वह हमसे कितनी दूरी पर है। अतः, इससे प्रमाणित होता है कि हममें कुछ श्रव्य दिक्-संवेदन है।

दिशा-संकेत :

दृष्टि प्रत्यक्षीकरण (देखिए, अध्याय—१०) में, यह सत्य कि हमारे दो नेत्र हैं, वे वस्तु की गहराई निर्धारित करने में प्रायः हमारी प्रचुर सहायता करते हैं, किंतु किसी वस्तु की दिशा जानने के लिए जैसे एक नेत्र सहायता करता है, वैसे ही दूसरा भी। श्रवण में इसका नियम बिलकुल विपरीत है। श्रवण-संकेतों द्वारा **दिशा** बतलाने के लिए हमारे दो कान होने ही चाहिए, यद्यपि **गहराई** के निर्धारण में एक कान जो करता है, वही दूसरा भी।

ध्वनि की दिशा संवेदनार्थ तीन प्रकार के उभय-श्रवणी संकेत हैं। ('उभय-श्रवणी' शब्द दोनों कानों के उपयोग को स्पष्ट करता है) प्रथम और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है 'कालांतर'। यदि आपके सिर के एक ओर खट्-खट् ध्वनि की जाए, वह ध्वनि वायु के माध्यम से प्रति सेकेंड १·१०० फीट की गति से भ्रमण करती है और निकटतर कान के पास दूसरे कान की अपेक्षा शीघ्र पहुँचती है। रेखांकन द्वारा यह तथ्य चित्र १२.८ में दिखाया गया है। जब ध्वनि-स्रोत एक कान की सीधी विपरीत दिशा में है, दोनों कानों में ध्वनि के पहुँचने का कालांतर अधिकतम होता है और यह $\frac{1}{2}$ मिलिसेकेंड (या १/२,००० सेकेंड) होता है। जब ध्वनि-स्रोत बिलकुल समक्ष हो, तब ध्वनि-तरंगें दोनों कानों में एक साथ पहुँचती हैं। दोनों की मध्य स्थिति में दोनों कानों में ध्वनि पहुँचने का कालांतर स्वभावतः शून्य से अधिक और अधिकतम से कम होता है। अतः, कालांतर ध्वनि के लिए दिशा-सूचक का कार्य करता है। कालांतर निःसंदेह बहुत अल्प है, और यह महत्त्वपूर्ण है कि फिर भी लोग इसे ध्वनि की दिशा जानने के प्रभावशाली संकेत के रूप में प्रयोग करते हैं।

द्वितीय उभय-श्रवणी संकेत 'प्रबलता अंतर' है। इससे दिशा-ज्ञान में सहायता मिलती है; क्योंकि दूरी के स्क्वायर के साथ-साथ प्रबलता घटती है और; क्योंकि सिर ध्वनि और कान के मध्य बाधा उपस्थित करता है और ध्वनि-स्रोत की विपरीत दिशा वाला कान सिर की आड़ में आ जाता है। जैसा कि आप चित्र १२·८ में देख सकते हैं, सिर आड़ बन गया है; क्योंकि एक ओर से आने वाली ध्वनि सिर का चक्कर काट कर ही दूसरी ओर पहुँच सकती है और वहाँ तक पहुँचने से पूर्व उसका अधिकांश अवशोषित हो जाता है। परिणामस्वरूप दूसरी ओर वाले कान में पहुँचने वाली ध्वनि निकट वाले कान में पहुँचने वाली ध्वनि की अपेक्षा मंद होती है। पुनः, कालांतर के ही समान, इस बाधा की मात्रा ध्वनि-स्रोत की दिशा पर निर्भर करती है। ध्वनि-स्रोत के एक दिशा में होने पर ध्वनि महत्तम होती है और बिलकुल सामने होने पर शून्य तथा दूसरे कोण पर होने पर मध्यवर्त्ती होती है।

ध्वनि की दिशा संवेद्य हो सकती है; क्योंकि एक कान इसे दूसरे की अपेक्षा जल्दी सुनता है और अपेक्षाकृत तुमुलता सुनता है।
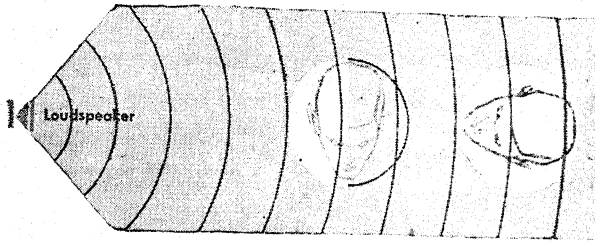
**चित्र १२·८ हम ध्वनि की दिशा का संवेदन किस प्रकार करते हैं। प्रत्येक चाप ध्वनि-तरंग के अनुवर्त्ती शिखरों को प्रस्तुत करता है। जिस रूप में वह ध्वनि-स्रोत से भ्रमण करती है, इस चित्र में यह स्रोत ध्वनि-प्रसारक है। ध्यान दें कि, जब सिर स्रोत के सामने है, ध्वनि-तरंग दोनों कानों में एक ही समय पहुँचती है, जब सिर प्रसारक के दूसरी ओर घूम जाता है, तो यह निकट वाले कान में पहले पहुँचती है। इसके अतिरिक्त दूरवर्त्ती कान कम प्रबल ध्वनि ग्रहण करता है; क्योंकि सिर द्वारा बीच में बाधा उपस्थित होती है।**

तृतीय संकेत कालांतर है। इस शब्द का संबंध किसी भी स्थान और क्षण में ध्वनि-तरंग के दबाव से रहता है। ध्वनि-तरंग के दोलन-दर्शी अंकन में, उदाहरणार्थ, (देखिए चित्र १२.१) विध्यात्मक और निषेधात्मक दबाव के परिवर्तन-पथ में भी प्रत्येक बिंदु कला है। एक आवृत्ति संगठन के दो स्वर एक ही कला में होते हैं, जब कि उनके विध्यात्मक शिखर एवं दोनों तरंगों की अन्य सब कलाएँ भी पूर्णतः एक साथ होती हैं। जब एक का निषेधात्मक शिखर दूसरे के विध्यात्मक शिखर से मिलता है, तो वे तरंगें विपरीत कलाओं में होती हैं।

दोनों कानों में ज्या-तरंग स्वर की कला में भी अंतर उसी रूप में होता है, जिस प्रकार स्वर के पहुँचने के काल में अंतर रहता है। ज्या-तरंग केवल विध्यात्मक और निषेधात्मक दबावों का अनुक्रमण है। ज्या-तरंग का महत्तम दबाव एक कान में दूसरे की अपेक्षा शीघ्र पहुँचता है यदि ध्वनि-स्रोत सिर की एक दिशा में हो। अतः, किसी भी एक समय में दोनों कानों तक पहुँचने वाले स्वर कला से बाहर हो सकते हैं, किंतु वह मात्रा, जिसके द्वारा वे कला से बाहर होंगे, पुनः ध्वनि-स्रोत की सही दिशा पर निर्भर करती है। सामान्यतः कला-संकेत केवल निम्न आवृत्तियों में उपयोगी प्रमाणित होता है; क्योंकि दोनों कानों के बीच की दूरी उच्च आवृत्ति स्वरों की

तरंग-लंबाई की तुलना में इतनी अधिक होती है कि उच्च आवृत्तियों में कलांतर अविश्वसनीय होते हैं।

इन तीनों संकेतों का एक साथ व्यवहार करने पर वे व्यक्ति की ध्वनि-दिशा का निर्णय करने में अधिक अच्छी तरह सहायता करते हैं। सिर और ध्वनि-स्रोत दोनों ही यदि स्थिर हों, तो व्यक्ति प्रायः परिशुद्धता से कम-से-कम २० डिग्री सिर के चतुर्दिक क्षेत्र से बता सकते हैं कि ध्वनि कहाँ से आ रही है। यदि सिर अथवा ध्वनि-स्रोत को घूमने की सुविधा दी जाए, तो उन्हें कुछ अधिक सफलता मिल सकती हैं; क्योंकि तब वे अनुभव कर सकते हैं कि सिर की ओर स्रोत की सापेक्ष स्थिति के परिवर्तन के साथ-साथ वे संकेत भी किस प्रकार परिवर्तित होते हैं। यही कारण है कि व्यक्ति सिर घुमाना स्वतः सीख लेते हैं, जब उन्हें ध्वनि की दिशा का निर्णय करने का प्रयास करना पड़ता है ( देखिए चित्र १२.९ )।

**चित्र—१२.९ श्रव्य-स्थान निर्धारण का प्रयोग। डमी के दोनों कानों के माइक्रोफोन दो यथार्थ कानों के स्थान पर हैं। इन माइक्रोफोनों द्वारा ग्रहण किए गए संकेतों को विद्युतीय प्रणाली द्वारा प्रबलता, कला और काल के परिवर्तनों को दिखाया जा सकता है—प्रयोग-पात्र के इयरफोन में संकेतों के पहुँचने से पूर्व। डमी का सिर इस प्रकार बनाया गया है कि प्रयोग-पात्र के सिर घुमाने के प्रभाव का अध्ययन उस पर किया जा सकता है (वेल टेलीफोन लेबोरेटरीज)।**

जैसा कि हम अभी देख चुके हैं कि हमारे दो कान हैं, वे हमारे लिए ध्वनि की दिशा का संवेदन संभव बनाते हैं। केवल एक कान से बिना अपना सिर घुमाए हम दिशा-संवेदन नहीं कर सकते। इसीलिए, कम सुनने वाले व्यक्तियों को, जो श्रवण-यंत्र का उपयोग केवल एक कान में करते हैं, ध्वनि की दिशा को निश्चित करने में कठिनाई होती है। दोनों कानों के लिए भिन्न-भिन्न श्रवण-यंत्रों का प्रचार बढ़ रहा है जिससे कि ध्वनि की दिशा के संवेदन में तथा जो कुछ सुनायी देता है, उसकी तुमुलता को समझने में व्यक्ति को सहायता मिल सके।

दूरी के संकेत :

दूरी संवेदनार्थ केवल एक कान की आवश्यकता होती है; क्योंकि दूरी के संकेत **प्रबलता** और **आवृत्ति-संघटन** हैं और उनका उपयोग एक कान कर सकता है और दो भी। इनमें से प्रथम संकेत इस तथ्य पर निर्भर करता है कि दूरस्थ ध्वनियाँ प्रायः निकटस्थ ध्वनियों की अपेक्षा बहुत मंद (धीमी) होती हैं। यदि हमने वह ध्वनि पहले कभी न सुनी हो और यदि वह मंद ध्वनि है, तो तुमुल ध्वनि की अपेक्षा हम उसे बहुत दूर समझते हैं। हम प्रायः प्रबलता के आधार पर दूरी निर्धारित नहीं कर सकते, जब तक कि हम उस ध्वनि से परिचित न हों। अतः, इस संकेत को प्रभावशाली ढंग से प्रयोग करने के लिए हमारा ध्वनि से परिचित होना आवश्यक है। दूरस्थ ट्रेन की सीटी उतनी ही जोर से सुनायी देती है, जितनी निकट के घंटा-घर की घड़ी की ध्वनि, फिर भी हम जान लेते हैं कि ट्रेन दूरी पर है और घड़ी निकट। इस पहचान का कारण है कि हम दोनों ध्वनियों से परिचित हैं और जानते हैं कि यदि ट्रेन उतनी ही दूरी पर होगी, जितनी दूरी पर घड़ी है, तो उसकी सीटी की आवाज घड़ी की ध्वनि की अपेक्षा बहुत तुमुल या प्रबल होगी।

दूरी का दूसरा संकेत आवृत्ति-संघटन अथवा ध्वनि की संश्लिष्टता है। इसका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। इसका अभिप्राय है—अनेक आवृत्तियों द्वारा निर्मित एक ध्वनि तथा इनमें से प्रत्येक आवृत्ति का सापेक्ष ध्वनि-दबाव। सौभाग्य से हम आवृत्ति-संघटन अथवा ध्वनि-संश्लिष्टता का प्रयोग एक संकेत के रूप में कर सकते हैं; क्योंकि ध्वनि-परिपथ में हवा और वस्तुएँ निम्न आवृत्तियों की अपेक्षा उच्च आवृत्तियों का कहीं अधिक अवशोषण करती हैं। अतः, एक निम्न आवृत्ति ध्वनि उच्च आवृत्ति ध्वनि की अपेक्षा कहीं अधिक दूरी से सुनी जा सकती है। उदाहरणतः कोहरा-भोंपू (फॉगहार्न) का सदैव निम्न-तारत्व होता है; क्योंकि समुद्र में अनेक मीलों की दूरी तक उसकी ध्वनि सुनायी देनी चाहिए। यदि कोहरा-भोंपू का उच्च-तारत्व होगा, तो उसकी ध्वनि केवल भोंपू के अति निकटवर्ती जहाज सुन सकेंगे।

ध्वनि में उच्च आवृत्तियाँ निम्न आवृत्तियों की अपेक्षा अधिक अवशोषित होती हैं इसलिए, ध्वनि-स्रोत से हम जितनी दूर होंगे, उतनी ही ध्वनि निम्न-तारत्व-परक प्रकट होगी। जब आप एक वाद्यवृंद को दूरी से सुनते हैं, आप उच्च सुरों को भली प्रकार नहीं सुन सकते, किंतु उनकी अपेक्षा निम्न सुरों की कहीं अच्छी तरह सुन सकते हैं, आप निर्धारित करते हैं कि ध्वनि दूर है।

बधिरता ( Deafness ) :

बधिरता पर बिना कुछ कहे श्रवण-संबंधी अपने सर्वेक्षण को हमें समाप्त नहीं करना चाहिए। सभ्य जगत में बधिरता एक गंभीर समस्या है; क्योंकि सभ्यता इतनी

अधिक वाणी-वार्तालाप पर आश्रित है कि बधिर या कम सुनने वाले व्यक्ति के लिए व्यवहार कठिन हो जाता है। उसके लिए या तो हर बात लिखी जाए अथवा संकेत-भाषा द्वारा वह 'सुने'। कुछ बहरे लोग ओठों की गति पढ़ने में बहुत निपुण होते हैं। किंतु, यह प्रणाली अधिक-से-अधिक यथार्थ वाणी-श्रवण का अति निम्न स्थानापन्न स्वरूप है।

हमारे समाज में बधिरता पर्याप्त प्रचलित है और कुछ समय पूर्व तक किसी भी प्रकार की बधिरता एक गंभीर बाधा थी। आधुनिक इलेक्ट्रोनिक श्रुति-यंत्रों के आविष्कार के पूर्व तक कुछ कम बहरे व्यक्ति चश्में के सदृश श्रवणेंद्रियों के सहायतार्थ किसी यंत्र का प्रयोग करते थे। पूर्ण बधिर व्यक्ति ऐसे सहायक-यंत्र से वैसे ही नहीं सुन सकता, जैसे पूर्णांध व्यक्ति चश्में की सहायता से भी देख नहीं सकता।

बधिरता द्विरूपात्मक समस्या है। यह व्यक्ति के एक वक्ता और एक श्रोता दोनों बनने में बाधक होती है; क्योंकि वह कभी अपनी आवाज नहीं सुन सकता, परिणामत: एक बधिर व्यक्ति अच्छी तरह बोल सकने की योग्यता भी खो देता है। यही कारण है कि अनेक बधिर व्यक्ति विचित्र ढंग से बोलने लगते हैं—ऐसी कोई विधि उनके पास नहीं है, जिससे वे जान सकें कि उनकी आवाज अन्य व्यक्तियों के ही समान ध्वनित होती है या नहीं। इसके अतिरिक्त बधिरता एक गंभीर भावात्मक समस्या उत्पन्न कर सकती है। बधिर व्यक्ति समाज से दूर रहने लगता है; क्योंकि बहुत कठिनाई के बिना वह अन्य लोगों से बातचीत नहीं कर सकता और उनकी बात न समझने पर वे झुँझला पड़ते हैं।

## बधिरता के प्रकार :

नैदानिक ढंग से बधिरता का परिमापन करने के लिए श्रव्य मापक यंत्र (आडियोमीटर) का प्रयोग किया जाता है। यह एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा सुनने की प्रबलता और आवृति का परीक्षण होता है, जिसका विवरण इस अध्याय के प्रारभ में दिया जा चुका है। यह विभिन्न आवृत्तियों पर शुद्ध स्वरों को उत्पन्न करता है और प्रत्येक आवृत्ति पर ध्वनि-दबाव के नियंत्रण की उपयुक्त व्यवस्था करता है। नैदानिक चिकित्सक इसका प्रयोग ध्वनि की (दशिबल में) लघुतम मात्रा को, जिसे व्यक्ति प्रत्येक आवृत्ति पर सुन सकता है, जानने के लिए करता है। प्रत्येक आवृत्ति का दशिबल चित्र १२.१० के सदृश चार्ट पर अंकित किया जाता है, जिसे आडियोग्राम कहते हैं। यह चार्ट औसत सामान्य श्रवणार्थ अपेक्षित ध्वनि-दबाव-स्तरों के साथ की गई तुलना को प्रस्तुत करता है।

चित्र १२.१० में ऊपरवाला वक्र व्यक्ति के सामान्य श्रवण का विशिष्ट आडियोग्राम है। ध्यान दें कि सामान्य व्यक्ति भी सब स्वरों को ठीक उन्हीं ध्वनि-

दबाव-स्तरों पर नहीं सुनता, जिन्हें **औसत** सामान्य व्यक्ति सुनता है; क्योंकि औसत में सदैव वैयक्तिक अंतर रहते हैं। चित्र १२.१० के अन्य दो वक्र ऐसे व्यक्तियों के हैं जो आंशिक बधिर हैं, अर्थात् जो पूर्णतः सुन नहीं सकते। हमने दो वक्र इसलिए अंकित किए हैं; क्योंकि बधिरता दो प्रकार की होती है। इन दोनों के कारण भी भिन्न-भिन्न हैं और अपने-अपने आडियोग्रामों में श्रवण-हानि के भिन्न प्रतिरूपों में वे प्रदर्शित होती हैं।

एक प्रकार, संवहन-बधिरता में सब आवृत्तियों पर प्रायः समान श्रवण-हानि होती है। संवहन-बधिरता से ग्रसित व्यक्ति एक आवृत्ति की अपेक्षा दूसरी के लिए अधिक बहरा नहीं होता। 'संवहन-बधिरता' शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है; क्योंकि इस प्रकार का आडियोग्राम प्रायः यह प्रदर्शित करता है कि कान के संवहन में कोई दोष है। कान बंद हो गया है, कर्णपटह खंडित हो गया है या मध्यकर्ण की अस्थिकाएँ क्षतिग्रस्त हो गई हैं। संवहन-बधिरता का प्रभाव कुछ वैसा ही होता है, जैसे कानों में रूई भर देने से।

चित्र १२.१० में सबसे नीचेवाला वक्र दूसरे प्रकार के श्रवण-विकार को प्रस्तुत करता है, अर्थात्, **स्नायु-बधिरता**। जैसा कि इसके नाम से ही व्यंजित होता है कि इस प्रकार की बधिरता में श्रवण-स्नायु-प्रणाली में कोई दोष होता है। स्नायु स्वयं क्षतिग्रस्त हो जाता है अथवा कर्णावर्त में, विशेषतः आधारकला में कोई दोष हो जाता है। स्नायु-बधिरता का लक्षण है कि उच्च आवृत्तियों पर श्रवण-क्षति बहुत अधिक होती है, जिसका तात्पर्य है कि स्नायु-बधिर निम्न तारत्व-परक ध्वनियों को पर्याप्त अच्छी तरह सुन सकता है किंतु उच्च-तारत्व-परक ध्वनियों को कठिनाई से अथवा बिलकुल नहीं सुन सकता। ऐसे व्यक्ति को भाषण आदि समझने में बहुत कठिनाई होती है; क्योंकि उच्च आवृत्तियाँ भाषण का अर्थ ग्रहण करने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं ('वाणी-संवेदन' परिच्छेद देखिए)। वह तुमुल निम्न स्वरों को सुन सकता है, किंतु वह शब्दों की ध्वनियों में सहज अंतर नहीं कर सकता। वह ध्वनि सुन सकता है, किंतु भाषण का सरलता से अर्थ ग्रहण नहीं कर सकता। फलत उसके खीज उठने की संभावना रहती है। इसी हेतु बधिरता का यह प्रकार कभी-कभी **संवेदन-बधिरता** कहलाता है।

स्नायु-बधिरता वृद्ध लोगों में बहुत साधारण है। वस्तुतः हममें से प्रायः सभी साठ वर्ष की अवस्था में कम-से-कम मंद स्नायु-बधिरता की संभावना कर सकते हैं, जैसे उस अवस्था में हम कुछ दूरदर्शिता विकार की संभावना कर सकते हैं। किंतु, अधिकांश व्यक्तियों में यह बधिरता इतनी गंभीर नहीं होगी कि उन्हें श्रवण-सहायक यंत्रों की आवश्यकता हो।

## रासायनिक संवेदन (The Chemical Senses) :

अब तक पिछले अध्याय में तथा इस अध्याय में हमने दो संवेदनों या ज्ञानेंद्रियों का विवेचन किया है, दृष्टि और श्रवण, जिन्हें अधिकांश व्यक्ति हमारे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण संवेदन समझते हैं। अब हमें अन्य संवेदनों का विवेचन करना है। हम उन्हें तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं : १. रासायनिक संवेदन, २. त्वचीय संवेदन और ३. अंतःसंवेदन। दृष्टि एवं श्रवण संवेदन के सदृश ये संवेदन हमारे जीवन को अधिक प्रभावित नहीं करते हैं, इसलिए इनका विवेचन हम संक्षेप में करेंगे। हम रासायनिक संवेदनों से प्रारंभ करेंगे, जिनके अंतर्गत गंध और स्वाद आते हैं।

संवहन-बधिरता में सब आवृत्तियाँ प्रभावित होती हैं, स्नायु-बधिरता में, उच्च आवृत्तियाँ अत्यधिक प्रभावित होती हैं।
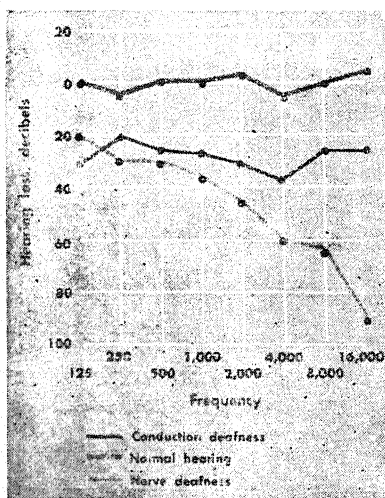
**चित्र १२.१० : सामान्य श्रवण एवं दो प्रमुख प्रकार की बधिरता के आडियोग्राम। सामान्य व्यक्तियों के लिए औसत अवसीमा भिन्न आवृत्तियों पर शून्य मानी गई है। किसी भी व्यक्ति की, जिसकी अवसीमा ठीक यह न हो, केवल कुछ दशिबल ही इससे दूर होगी। संवहन-बधिरता में व्यक्ति की श्रवण-क्षति सब आवृत्तियों पर समान होगी। स्नायु-बधिर व्यक्ति में निम्न आवृत्तियों की अपेक्षा उच्च आवृत्तियों पर श्रवण-क्षति अधिक होती है।**

### गंध या घ्राण-संग्राहक :

घ्राण-संग्राहकों में रासायनिक तत्त्वों के प्रति अनुक्रिया होती है, किंतु उन तत्त्वों का वाष्पशील होना आवश्यक है। उदाहरणतः, तरल पदार्थ घ्राण-संवेदन को उद्दीप्त नहीं करते। घ्राण-संग्राहक नासिका-परिपथ के ऊपरी भाग में अवस्थित है, जो नासारंध्र से होता हुआ कंठ तक जाता है (देखिए, चित्र १२.११)। वे दो लघु क्षेत्रों में हैं, एक बाईं और एक दाईं ओर। ये क्षेत्र परिपथों की छतों में हैं। नासिका में सामान्य श्वास-क्रिया के लिए जिस पथ से वायु जाती है, उससे कुछ दूर हट कर वे

हैं, फलस्वरूप जब हम शांति से श्वास लेते हैं, हमारा घ्राण-संवेदन मंद हो जाता है। अचानक हवा ग्रहण करने से या तीव्रता से श्वास लेने पर नासिका-पथ में वायु गतिशील हो जाती है और उसे वे अधिक सीधे रूप में संग्राहकों तक पहुँचाती हैं। यही कारण है कि हम देखते हैं कि जंतु और व्यक्ति जब किसी गंध को पहचानने का प्रयत्न करते हैं, तो तीव्रता से वायु ग्रहण करने लगते हैं।

घ्राण-संग्राहक नासिका द्वारा वायु के मुख्य प्रवाह से उद्दीप्त होते हैं।
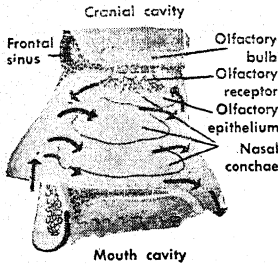
चित्र १२.११ : नासिका का अनुप्रस्थ काट। नासारंध्र द्वारा ग्रहण की गई वायु-तरंगें नासिका-गुहा के ऊपरी भाग में तैरने लगती हैं, जहाँ वे घ्राण-संग्राहकों को उद्दीप्त करती है।

## मूल गंध :

दैनिक जीवन में जिन गंधों को हम देखते हैं, उन्हें स्मरण करने पर आप अनुभव कर सकेंगे कि उनके अनेक प्रकार और गुण हैं। जिन गंधों को हम अनुभव करते हैं, उनके लिए भी यह सत्य है। दोनों स्थितियों में वैज्ञानिकों ने प्रश्न उपस्थित किया है कि क्या अनुभवों का बड़ा समूह अपेक्षाकृत बहुत कम मुख्य गुणों का मिश्रण नहीं है ? वर्ण दृष्टि में वस्तुतः इसी रूप में यह प्रमाणित हुआ है, मनोवैज्ञानिक रूप से चार शुद्ध रंगों का विविध अनुपात में मिश्रण सभी संवेद्य वर्ण विभिन्नताओं को स्पष्ट कर सकता है। संभवतः घ्राण में भी उसी तरह कुछ शुद्ध गंध हैं, जिनका विविध अनुपात में मिश्रण विविध वर्णित गंधों को स्पष्ट कर सकता है।

ऐसी योजना को खोजने या उसका पता लगाने के प्रयत्न किए गए हैं, किंतु उनमें विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई है। यद्यपि शोधकर्त्ताओं ने इस समस्या पर पर्याप्त कार्य किया है, किंतु हम अभी तक निश्चित नहीं हैं कि मूल गंध क्या हैं अथवा क्या उनकी कोई सीमित संख्या है। एक योजना जिसे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई हैं, 'हैनिंग घ्राण प्रिज्म' के नाम से प्रसिद्ध है (देखिए, चित्र १२.१२)। इसकी योजना जर्मन शोधकर्त्ता हैनिंग ने की थी और यह प्रिज्म इसलिए कहलाती है; क्योंकि हैनिंग ने छह मूल गंधों को चुना और उन्हें प्रिज्म के रूप में प्रस्तुत किया। यह

योजना अनुमान करती है कि छह मूल गंधों को, दैनिक जीवन में मिलने वाली गंधों के स्पष्टीकरण के लिए, भिन्न अनुपातों में मिश्रित किया जा सकता है। यह वर्ण चक्र के सदृश है, जिसमें मूल गंधों के सब मिश्रण मूल गंधों की सीमाओं के बीच कहीं-न-कहीं सतह पर प्रस्तुत होते हैं।

हैनिंग ने मूल छह गंधों की कल्पना की और उन्हें एक प्रिज्म के कोणों के सदृश व्यवस्थित किया।
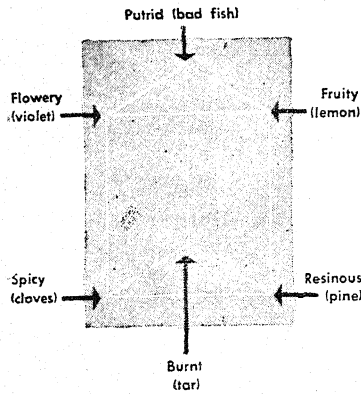
**चित्र १२१२ : हैनिंग का गध प्रिज्म। हैनिंग के अनुसार छह मल गंध हैं और उन्हें प्रिज्म के कोणों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। वह अन्य गंधों को इन्हीं मूल गंधों के मिश्रण के रूप में स्वीकार करता है।**

औद्योगिक रसायनज्ञ, जिन्हें कृत्रिम सुगंधों और सेंटों को बनाना पड़ता है, गंधों के चतुर्गुण का सरल वर्गीकरण पसंद करते हैं (क्रोकर, १९४५)। इस वर्गीकरण के अनुसार चार मूल गध और उनके उदाहरण हैं—सुगंध (कस्तूरी), अम्ल (सिरका) जला हुआ ( भूनी हुई कॉफी ) और केप्रिलिक (बकरी की या स्वेद की गंध)। मूल गंधों की अन्य विधियाँ भी प्रस्तुत की गई हैं। प्रत्येक किसी विशेष प्रयोजन की पूर्ति कर सकती है, किंतु इसकी संभावना कम है कि उनमें हम उसी प्रकार 'यथार्थ' मूल गंधों को प्राप्त कर सकेंगे, जिस प्रकार स्पष्ट प्रतिष्ठित मूल वर्णों को मनोवैज्ञानिक रूप से पा सके हैं। संभवतः मूल गंधों के सिद्धांतत को अंतिम रूप से स्वीकार करने में सबसे बड़ी बाधा यह है कि हम प्रायः व्यक्तियों को भिन्न गंधों के वर्गीकरण में एक दूसरे का विरोध करते हुए देखते हैं। निम्नांकित प्रयोग द्वारा इसे स्पष्ट किया गया है (रास और हैरिमन, १९४९)।

> "१५ व्यक्तियों को ३२ भिन्न गंधों का वर्गीकरण करने के लिए कहा गया। उनसे कहा गया था कि वे गहरी श्वास द्वारा गंध ग्रहण करें और जो गंध उन्हें एक सदृश जान पड़ें, उन्हें समूहों में वर्गीकृत करें। उन्हें यह सुविधा थी कि वे जितने समूह आवश्यक समझें, उतने बना सकते थे।

चित्र १२·१३ के ग्राफ में प्रयोग-पात्रों द्वारा भिन्न अनुपात में प्रयुक्त समूहों की संख्या प्रदर्शित है। केवल एक व्यक्ति सब गंधों का वर्गीकरण चार समूहों में कर सका। लगभग आधे व्यक्तियों को ५ या ६ समूहों की आवश्यकता हुई। कुछ प्रयोग-पात्रों को उद्दीपन (गंधों) के वर्गीकरण के लिए १२ या उनसे भी अधिक समूहों की अपेक्षा हुई।

घ्राण संवेदनशीलता :

श्रवण और दृष्टि में, हम स्पष्टतः कह सकते हैं कि एक उद्दीपन का पता लगाने के लिए व्यक्ति को कितनी ऊर्जा की आवश्यकता होती है। गंध के संबंध में संवेदनशीलता के हमारे परिमापन बहुत प्रामाणिक नहीं हैं। इसके अनेक कारण हैं, परंतु मुख्य यह है कि घ्राण-संग्राहक नासिका-पथ में वायु के परिपथ से कुछ अलग हट कर हैं। घ्राण-संग्राहकों तक गंधों को पहुँचाने का सर्वोत्तम तरीका है तीव्रता से वायु-ग्रहण करना, और यह तीव्र वायु ग्रहणता भी भिन्न व्यक्तियों में और भिन्न समयों में भिन्न होती है।

गंधों के वर्गीकरण में व्यक्ति पूर्णतः सहमत नहीं होते।
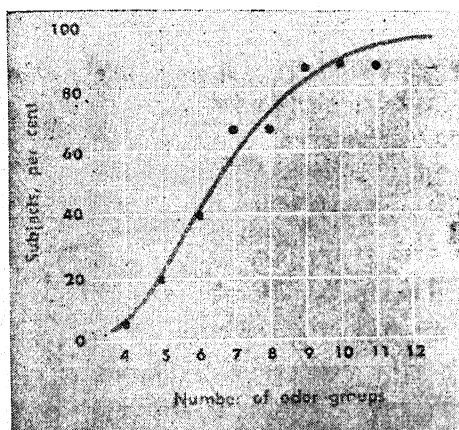
**चित्र १२·१३ : घ्राण-उद्दीपन के वर्गीकरण के लिए समूहों की अपेक्षित संख्या। इस ग्राफ में एक प्रयोग को चित्रित किया गया है, जिसमें प्रयोग-पात्रों से गंधों का, उनकी समानताओं और विभिन्नताओं के अनुसार वर्गीकरण करने के लिए कहा गया था। केवल एक प्रयोग-पात्र सब गंधों को चार समूहों में वर्गीकृत कर सका, किंतु अधिकांश प्रयोग-पात्रों को अधिक समूहों की आवश्यकता हुई (रास और हैरिमन के अनुसार, १९४९)।**

गंध-संवेदनशीलता के लिए परिमापन की ऐसी सूक्ष्म सीमाओं के रहते हुए भी अनेक मापक निर्मित हुए हैं, जो बता सकते हैं कि गंध की उपस्थिति का पता लगाने के लिए व्यक्ति को कितनी मात्रा में गंधीय सामग्री की आवश्यकता होती है। विभिन्न गंधों का पता लगाने की अवसीमाओं में पर्याप्त अंतर रहता है, किंतु इनके

संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वे प्रायः अविश्वसनीय रूप में लघु होती हैं। एनेस्थेटिक ईथर, जो कम गंधपरक द्रव्यों में से एक है, का पता लगाने के लिए केवल प्रति लिटर वायु के ६ मिलिग्राम की आवश्यकता होती है—१ मिलीग्राम एक औंस का लगभग ४०० लाखवाँ भाग होता है। कृत्रिम कस्तूरी, जो अत्यधिक गंध-परक द्रव्यों में से एक है, को असाधारण रूप से कम अवमिश्रण में पहचाना जा सकता है। एक लिटर वायु में इसके ०.०००0४ मिलिग्राम को सूँघा जा सकता है। यह ऐसा असाधारण अवमिश्रण है कि कोई भौतिक या रासायनिक साधक इसका परिमापन नहीं कर सकता। इसका तात्पर्य है कि प्रति बार नासिका द्वारा वायु खींचने पर नासिका केवल कुछ रासायनिक कणों के प्रति अनुक्रियाशील होती है। यह भी महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि कुछ जंतुओं में घ्राण-संवेदन मनुष्यों से भी अधिक रहता है।

### स्वाद-संग्राहक :

स्वाद के संग्राहक विशिष्ट प्रकार की कोशिकाएँ हैं, जो छोटे-छोटे गुच्छों में एकत्रित हैं, जिन्हें **स्वाद-कलिकाएँ** कहा जाता है (देखिए, चित्र—१२-१४)। ये कलिकाएँ जिह्वा के अधिकांश ऊपरी और पार्श्व भागों में अवस्थित हैं, किंतु इनमें से कुछ मुख के पिछले भाग में और कुछ कंठ में भी हैं। यदि आप निकट से जिह्वा को देखें—आप दर्पण में सरलता से अपनी जिह्वा देख सकते हैं—तो आप देखेंगे कि उस पर अनेक दाने हैं, कुछ बड़े और कुछ छोटे। ये दाने **अंकुरक** कहलाते हैं और स्वाद-कलिकाओं के साथ घने रूप में रहते हैं। स्वाद-संग्राहकों को उद्दीप्त करने के तत्त्वों को तरल रूप में होना चाहिए, जो अंकुरकों को चारों ओर से डुबाते हुए स्वाद-कलिकाओं के बीच घुस जाते हैं।

### स्वाद के मूल गुण :

हम कह चुके हैं कि हम अब तक मूल गंधों के प्रति निश्चित मत नहीं हैं। सौभाग्य से हम मूल स्वाद गुणों के प्रति स्पष्ट हैं। अनेक दृष्टिकोणों से चार स्वाद-गुण प्रमाणित होते हैं। इनके नाम हैं—नमकीन, खट्टा, मीठा और कटु। इन गुणों के प्रमाण का एक अंश यह भी है कि जिह्वा सब उद्दीपनों के प्रति समान रूप से संवेदन-शील नहीं है। उदाहरणतः यदि हम कटु-तरल पदार्थ, जैसे कुनीन की अल्प बूंदें, जिह्वा के भिन्न भागों पर लगाएँ, तो हम जिह्वा के पिछले भाग में कटुतम स्वाद अनुभव करते हैं। दूसरी ओर जब जिह्वा के अग्रभाग पर मीठा-तरल पदार्थ रखा जाता है, तो मधुर स्वाद सर्वाधिक होता है। जिह्वा के पार्श्व भाग खट्टे उद्दीपनों के प्रति मुख्यतः अनुक्रियाशील रहते हैं तथा अग्रभाग एवं पार्श्वों के कुछ भाग नमकीन पदार्थों के लिए सर्वाधिक संवेदनशील होते हैं। यह प्रमाण एवं अन्य प्रमाण भी चार मूल स्वाद-गुणों की धारणा का समर्थन करते हैं।

अब यदि हम यह स्पष्ट करने का प्रयत्न करें कि किस प्रकार के तरल पदार्थ भिन्न गुणों को उत्पन्न करते हैं, तो हमें कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। मधुर वस्तुओं का, जैसे सामान्य व्यवहार की चीनी का स्वाद मीठा होता है, किंतु अन्य अनेक रासायनिक मिश्रित वस्तुओं का भी वही स्वाद होता है, जैसे सेकारीन; जिसमें रासायनिक दृष्टि से चीनी से कोई समानता नहीं है। कटु स्वाद भी ऐसी ही समस्या उत्पन्न करता है। मिश्र तत्त्व, जिन्हें रसायनज्ञ क्षार पदार्थ (एलकालायड) कहते हैं, जिनमें कुनीन और विकोटिन सम्मिलित हैं, कटु होते हैं। कुछ खनिज लवणों का भी वही स्वाद होता है, किंतु उनकी भी क्षार पदार्थों से कोई विशेष समानता नहीं रहती। वस्तुतः, जैसा कि नीचे स्पष्ट किया गया है, सामान्य व्यवहार के लवण के अतिरिक्त प्रायः सब लवणों का कटु या मधुर स्वाद होता है। इन सबसे केवल यह प्रमाणित हो सकता है कि हम अब तक यह नहीं खोज पाए हैं कि रासायनिक तत्त्वों के वे कौन से मुख्य अंश हैं, जो स्वाद-गुण को नियंत्रित करते हैं। निश्चय ही कटु या मधुर स्वाद को उत्पन्न करने वाले रासायनिक तत्त्वों के प्रकारों के लिए हम आज तक कोई नियम नहीं बता सकते।

खट्टे और नमकीन स्वादों के रासायनिक संघटन एवं स्वाद में बहुत सह-संबंध है। सब उद्दीपन जो खट्टे हैं अम्लीय ( एसिड ) होते हैं। इसके अतिरिक्त खटास की मात्रा, जिसे हम चखते हैं, विद्यमान एसिड ( H+ ) आयंस की कुल संख्या के अनुपात में होती है। इसी प्रकार नमकीन स्वाद प्रायः उन तत्त्वों द्वारा उद्दीप्त होते हैं, जिन्हें रसायनज्ञ लवण कहते हैं (जिसका अभिप्राय अम्ल और क्षार का रासायनिक उत्पादन है )। साधारण व्यवहार में आने वाला नमक संभवतः एकाकी नमक है, जिसका विशुद्ध नमकीन स्वाद है। अधिकांश अन्य लवण नमकीन के अतिरिक्त कटु या मधुर संवेदनों को भी उद्दीप्त करते हैं।

स्वाद-कोशिकाएँ स्वाद-कलिकाओं में अवस्थित हैं, जो जिह्वा की सतह के नीचे हैं।
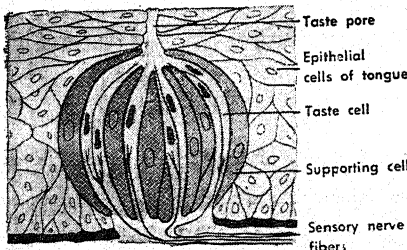
चित्र १२.१४ एक स्वाद-कलिका।

**स्वाद-संवेदनशीलता :**

जिस प्रकार व्यक्ति की गंध-संबंधी अवसीमा का परिशुद्ध परिमापन कठिन है, उसी तरह स्वाद की अवसीमा का परिमापन भी कठिन है। स्वाद के सब उद्दीपन तरल रूप में होने चाहिए उन्हें और अंकुरकों की सतह के नीचे अवस्थित स्वाद-कोशिकाओं तक पहुँचना चाहिए।

कोई प्रयोगकर्त्ता यदि स्वाद-उद्दीपनों को सूक्ष्मता से नियंत्रित करना चाहता है, तो उसे निश्चित हो जाना चाहिए कि सतह को उद्दीप्त करने के लिए संपूर्ण लार को हटाना आवश्यक है और बिना किसी तत्त्व के जिनका उपयोग पूर्व-प्रयोगों में किया है, उसे पूर्णतः स्वच्छ भी करना होगा। जिह्वा के तापमान और उद्दीप्त क्षेत्र के आकार को भी सावधानी से नियंत्रित करना होगा।

जब प्रयोगकर्त्ता ये सब पूर्वोपाय कर लेता है, वह स्वाद-संवेदनशीलता का परिमापन कर सकता है। किए गए परिमापनों से प्रमाणित हुआ है, यह स्पष्ट है कि स्वाद-संवेदनशीलता उतनी अच्छी नहीं है, जितनी अच्छी घ्राण-संवेदनशीलता है! उदाहरणार्थ इसका १०० में ४ भाग से १००० में १ भाग तक सुगमता से पता लगाया जा सकता है। सामान्यतः हमारी स्वाद-संवेदनशीलता मधुर और नमकीन तत्त्वों की अपेक्षा अम्लीय और कटु तत्त्वों के लिए बेहतर होती है।

### अनुकूलन :

हमारी सब या लगभग सब, ज्ञानेंद्रियाँ उद्दीपनों के अनुकूल होती हैं। अर्थात् उद्दीपन काल में वे धीरे-धीरे कम संवेद्य होती जाती हैं, और उद्दीपन जितना तीव्र होगा, ऐसा अनुकूलन उतना ही अधिक होगा। कुछ संवेदन, जैसे श्रवण और संतुलन के, ( नीचे देखिए ) अपेक्षाकृत कम अनुकूलित होते हैं। घ्राण और स्वाद के संवेदन सहज अनुकूलित होने वाले संवेदनों में से हैं।

इस प्रकार का अनुकूलन हम सब देख चुके हैं। कभी-कभी कक्ष में प्रवेश करते ही हम तीव्र गंध से आश्चर्यचकित हो जाते हैं। किंतु, कक्ष में थोड़ी देर रहने के बाद उस गंध की ओर आपका ध्यान नहीं जाता और संभवतः आप यह भी न बता सकें कि वह गंध वहाँ वर्त्तमान है या नहीं। इसी प्रकार जब आप खाना प्रारंभ करते हैं, तो आप अपने भोजन की सुगंध की पूर्ण प्रशंसा करते हैं। शीघ्र ही अनुकूलन हो जाता है और सुगंध की तीव्रता में ह्रास हो जाता है। इस प्रकार के अनुकूलन का परिमापन प्रयोगशाला में ही संभव हो सकता है और शोधकर्त्ताओं एवं विविध गंधों तथा स्वादों के अनुकूलन के आँकड़ों को दिखाने के लिए अनेक वक्र एकत्रित किए हैं ( आसगुड, १९५३ )।

### स्वाद अथवा घ्राण :

यद्यपि हम सब विश्वास करते हैं कि हम अपनी जिह्वा से स्वाद लेते हैं और नाक से सूँघते हैं, हममें से अधिकांश यह नहीं समझते कि हम प्रायः स्वाद और घ्राण में स्पष्ट अंतर नहीं कर पाते। वस्तुतः जब सुगंध तीव्र होती है, हम प्रायः सोचते हैं हम स्वाद द्वारा सुगंध को पहचानते हैं।

अपने मित्र की नाक बंद करके उसकी जिह्वा पर किसी परिचित पेय की कुछ बूंदें डाल कर आप इसे प्रमाणित कर सकते हैं। यदि आप नींबू के रस की एक बूंद उसकी जिह्वा पर डालें, संभावना है कि वह केवल कहेगा कि यह कोई खट्टी वस्तु है। अथवा यदि आप थोड़ा कोका-कोला जिह्वा पर डालें, वह केवल इतना जानता है कि वह कुछ कड़वा-मीठा है। ( आलू और सेव का अंतर भी स्पष्ट नहीं होता ) यदि इस प्रयोग को आप बिना अपने मित्र की नाक बंद किए दोहराएँ, तो वह तुरंत पेय को पहचान लेगा कि वह नींबू का रस है या कोका-कोला है।

कुछ गंध, जैसे तंबाकू का धुआँ, इस प्रकार वातावरण को भर देती हैं कि इंद्रियसुख लोलुप व्यक्ति उस धुएँ भरे रेस्तरॉ में भोजन करना अस्वीकार कर देते हैं। घ्राण की महत्त्वपूर्ण क्रिया स्पष्ट करती है कि नजले से ग्रस्त व्यक्ति को, जिससे उसकी संवेदनशीलता बहुत कम हो जाती है, भोजन इतना स्वादहीन क्यों लगता है।

### त्वचा-संवेदन :

दृष्टि, श्रवण और रासायनिक संवेदन ऐसे संवेदनात्मक वातायन हैं, जिनका प्रयोग जगत के प्रत्यक्षीकरण में अधिकतर होता है। यदि ये वातायन उपयुक्त रूप में कार्य करते हैं, हमें अपने चतुर्दिक जगत को जानने के लिए संभवतः अन्य किसी संवेदन की आवश्यकता नहीं रहती। इसी हेतु हम अपने त्वचा-संवेदनों से, यदि हमें कुछ करना पड़ता तो जो कर सकते हैं, उसकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। सामान्यतः हम अपने त्वचा-संवेदनों पर केवल खुजली, गुदगुदी, गर्म और ठंढ की संवेदना, और चोट के दुखद संवेदन, जैसे सहज अनुभवों के लिए विश्वास करते हैं। वस्तुतः हमारे त्वचा-संवेदन इनसे कहीं अधिक सूचनाएँ देने में समर्थ हैं। उदाहरणतः हम अनेक वस्तुओं को स्पर्श द्वारा पहचान सकते हैं, उत्कीर्ण-लेख पढ़ सकते हैं, जैसे अंध व्यक्ति पढ़ते हैं।

### चार संवेदन :

इन संवेदनों का विवरण हम एक प्रयोग से प्रारंभ करेंगे, जो आजकल मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला में सामान्य हो गया है (वुडवर्थ और स्वलासबर्ग, १९५४)।

> "एक प्रयोग-पात्र को बिठा कर उससे कहा गया कि अग्रबाहु को छोड़कर वह अपनी कमीज़ की बाँहों को मोड़ ले। बाँह के नीचे जाली लगायी गई थी। तब प्रयोगकर्त्ता केश को प्रयोग-पात्र की जानकारी में दबाव द्वारा स्पर्श कर सकता है, वह पहले जाली के एक छोर पर केश स्पर्श करता है, फिर दूसरे भाग पर। प्रत्येक बार आँखों पर पट्टी बँधे प्रयोग-पात्र के जब केश स्पर्श किए जाते हैं, तो वह बतलाता है कि उसे सुखानुभूति हुई या नहीं। प्रयोगकर्त्ता प्रयोग-पात्र की बाँह में लगी जाली के तदनुरूप एक

चार्ट रखता है और उस पर हर बार जब प्रयोग-पात्र दबाव अनुभव करने की बात कहता है, तो वह चिह्न लगाता है ( देखिए, चित्र १२·१५)।—जहाँ-जहाँ वह सुखानुभूति सूचित करता है, वहाँ-वहाँ पूरी जाली पर चतुर्भुज चिह्नित किए, तदंतर प्रयोगकर्त्ता २८°C तापमान की ठंढी छड़ी लेता है और पूरे प्रयोगकाल में उसका तापमान यही रहता है। इस छड़ी से वह पुनः उन चतुर्भुजों पर बारी-बारी से स्पर्श करता है और जहाँ प्रयोग-पात्र 'ठंढा' कहता है, वह चार्ट पर अंकित करता है। इसके बाद वह सामान्य से अधिक तापमान, ३५°C की छड़ी लेता है और जहाँ-जहाँ प्रयोग-पात्र 'गर्म' कहता है, वह चार्ट पर चिह्न लगाता है। अत में एक बारीक सूई का प्रयोग करता है, बराबर, कम दबाव से, वह पूरी जाली पर उसे घुमाता है और 'दुखद स्थलों' को चिह्नित करता है।"

त्वचा के वे बिंदु जो प्रायः पीड़ा, स्पर्श, गर्म या शीत के महत्तम संवेदनशील स्थल हैं, प्रत्येक संवेदन के भिन्न-भिन्न हैं।
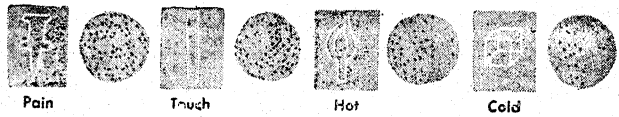
**चित्र १२·१५ : त्वचा की संवेदनशीलता का चित्र। त्वचा के किसी भाग पर जाली लगा कर व्यवस्थित रूप से उसके भिन्न स्थलों को उद्दीप्त करके इन सुग्राही स्थलों का मानचित्र बनाया जा सकता है। पीड़ा, स्पर्श, ताप और शीत के उद्दीपनों के स्थल प्रायः भिन्न होते हैं और प्रमाणित करते हैं कि चार भिन्न प्रकार की त्वचा-संवेदनाएँ हैं ( गेरार्ड के रेखाचित्र के आधार पर )।**

अब हम उस चार्ट को देखें, जिस पर ये सब अनुभव चिह्नित किए गए हैं (देखिए, चित्र १२·१५)। सर्वप्रथम, आप देख सकते हैं कि सब भाग समान रूप से संवेदनशील नहीं हैं। कुछ भागों में प्रयोग-पात्र 'दबाव' की सूचना देता है और अन्य भागों में नहीं। अतएव, आप देखेंगे त्वचा में **सविरामी या बिंदु-परक संवेदनशीलता** (Punctate Sensitivity) है—यह कुछ भागों में संवेदनशील है और कुछ में नहीं। ( सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा यह प्रमाणित हुआ है कि त्वचा के कुछ चतुर्भुज **अधिक** संवेदनशील या सुग्राही हैं अथवा **कम** संवेदनशील हैं। ) द्वितीय, आप देखेंगे कि भिन्न उद्दीपकों के भिन्न स्थल हैं। दबाव, शीत, गर्म और पीड़ा के महत्तम संवेदनशीलता के स्थल प्रायः पृथक्-पृथक् हैं। अब आप ध्यान दें कि त्वचा-संवेदन एक नहीं है, वरन् चार भिन्न संवेदन है और आप इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि वे चार प्रकार

के भिन्न संग्राहकों को प्रस्तुत करते हैं। यह प्रयोग इस निष्कर्ष के, कि चार त्वचा-संवेदन हैं, अनेक समर्थनों में से केवल एक है।

## दबाव अथवा स्पर्श :

वह अनुभव, जिसे केश के किंचित छूने से प्रयोग-पात्र सूचित करता है, दबाव या स्पर्श कहलाता है। इस अनुभव को उद्दीप्त करने के लिए दबाव की अपेक्षित मात्रा शरीर के भिन्न भागों में बहुत भिन्न होती है। जिह्वा का अग्रभाग, ओठ, अंगुलियाँ और हाथ अत्यधिक संवेदनशील या सुग्राही अंग हैं। बाँहें और टाँगें उनसे कम संवेदनशील हैं तथा धड़ और कठोर अंग सबसे कम संवेदनशील हैं। इस पर भी ध्यान देना चाहिए कि हम न केवल त्वचा को किसी वस्तु के छूने से दबाव अनुभव करते हैं: वरन् जब शरीर के लोम जरा भी हिलते हैं, तब भी हम दबाव अनुभव करते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने सावधानी से उस उद्दीपन का अध्ययन किया है, जो दबाव के अनुभव को उद्दीप्त करता है। वे विशेषत: यह जानना चाहते थे कि वस्तु का वजन त्वचा पर है अथवा केवल त्वचा का मुड़ना है, जो इस संवेदना को उद्दीप्त करता है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि त्वचा का विकृत होना अथवा मुड़ना ही उद्दीप्त करता है।

यदि आपके पास थोड़ा ारा हो, तो आप स्वयं इसे प्रमाणित कर सकते हैं। डेढ़ इंच या कुछ अधिक गहराई के एक छोटे ग्लास में थोड़ा पारा डालिए और अपनी अंगुली के अग्रभाव को उसमें डुबाइए। पारा भारी होता है—पानी से तेरह गुना अधिक भारी—और वह अपना दवाव डूबी हुई त्वचा पर डालने का प्रयत्न करेगा, किंतु केवल पारदीय रेखा तक। यहीं पर आपकी त्वचा पर दाब या दबाव की क्रमिकता होती है—वायु-दबाव के परिवर्तन से पारे द्वारा किए गए दबाव तक। इस प्रकार के प्रयोग द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि क्रमिकता है, दबाव का समविभाजन नहीं, वरन् दबाव की क्रमिकता ही दबाव की संवेदना को उद्दीप्त करती है।

## दबाव के संग्राहक :

५० वर्षों से अधिक समय में दबाव के संग्राहकों को निर्धारित करने के अनेक प्रयत्न किए गए हैं। शायद ही कभी वैज्ञानिकों ने किसी समस्या पर इतना अधिक परिश्रम करके इतनी कम सफलता पायी होगी। हम सोचते हैं कि पर्याप्त जटिल संरचना, जिसे **माइस्नर कार्पसल** कहते हैं, शरीर के लोमहीन भागों में दबाव-संवेदना का पोषण करती है, और दूसरी संरचना, **करंड तंत्रिका अंतांग** लोम की जड़ों का है। यह विश्वास करने के भी पर्याप्त कारण हैं कि सहज **मुक्त तंत्रिका अंतांग**—ऐसे छोर

जो किसी विशिष्ट संरचना से संबद्ध नही हैं—भी स्पर्श-आवेगों को पहुँचाते हैं; क्योंकि हम त्वचा के ऐसे भागों में भी दबाव अनुभव करते है, जहाँ मुक्त तंत्रिका छोरों के अतिरिक्त अन्य कोई संग्राहक नही होते। इस समस्या के अंतिम निष्कर्ष के लिए निश्चय ही अभी निश्चित शोधकार्य की प्रतीक्षा है।

त्वचा के विविध प्रकार के संग्राहक हैं।
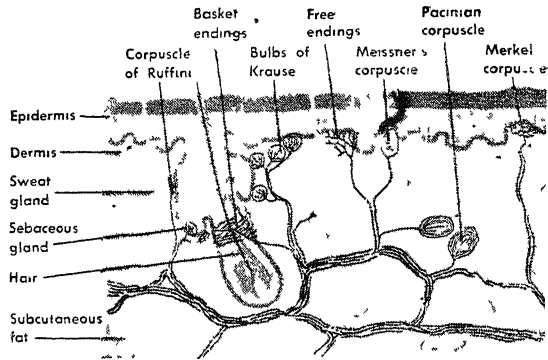
**चित्र १२·१६ मनुष्य की त्वचा की बनावट। इस चित्र में दिखाए गए सभी प्रारूप त्वचा के किसी एक क्षेत्र मे नहीं पाए जाते।**

## तापमान उद्दीपन :

जिस प्रयोग से हमने यह परिच्छेद प्रारंभ किया था, उसमे 'शीत' स्थलों और 'ऊष्म' स्थलों के चिह्न भिन्न-भिन्न थे। यह तथ्य प्रमाणित करता है कि शीत और ऊष्मा के संवेदनार्थ दो भिन्न संवेदनाएँ है। वस्तुतः हम इस संबंध में निश्चित मत है, यद्यपि शोधकार्य ने अब तक इसे निश्चयपूर्वक प्रतिस्थापित नही किया है कि इनके संग्राहक कौन-कौन से है। हम जानते है कि ऊष्म और शीत संवेदनाएँ त्वचा तापमान की सामान्य क्रमिकता के किसी भी विवर्तन द्वारा उद्दीप्त होती है। उदाहरणतः अग्र-बाहु के संबंध मे यह क्रमिकता लगभग ५°C है और यह अंतर परिभ्रमण के तापमान (३७·५°C) में और त्वचा का सतह के तापमान (३२ या ३३°C) का है। २८ से ३०°C का उद्दीपन, निश्चित रूप से शीत के रूप मे संवेद्य होता है, इस क्रमिकता को कुछ बढ़ा देता है, जब कि ३४°C का उद्दीपन, जिसे ऊष्म रूप में संवेद्य किया जाता है, इसे कुछ कम कर देता है। अतएव, त्वचा के तापमान से केवल १ या २°C के परिवर्तन में भी ऊष्म या शीत अनुभव होता है।

## पीड़ा :

अनेक विभिन्न प्रकार के उद्दीपन पीड़ा उत्पन्न करते हैं—जैसे सूई की चुभन, त्वचा पर कठोर चोट, भाप से झुलसना या तीव्र एसिड। इसी हेतु भौतिक शब्दावली में यह कहना असंभव है कि वस्तुतः पीड़ा किससे उत्पन्न होती है। पीड़ा उत्पन्न करने की प्रयोगशाला की एक विधि है, ऐसे साधन का उपयोग करना जो त्वचा के किसी निश्चित भाग में उष्णता को विकीर्ण करे (वाल्फ और वुल्फ, १९४८)। जैसे ही विकीर्ण ऊष्मा प्रबलता में बढ़ती है, व्यक्ति पहले उष्णता के बढ़ने की सूचना देता है और तदतर विशेष प्रबलता की सीमा पर पहुँचने पर वह पीड़ा सूचित करता है। अन्य विधियाँ जो इतनी परिशुद्ध नहीं है, पिन की चुभन और रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग करती हैं।

## ऊत्तकों की चोट :

पीड़ा की जैविक उपयोगिता पर्याप्त स्पष्ट है। यह उपयोगिता ऐसे विरले व्यक्तियों द्वारा स्पष्ट की गई है, जिनमें पीड़ा संवेदना होती ही नहीं तथा जो अनजाने ही गंभीर घाव कर बैठते हैं। ऐसी एक सप्तवर्षीया कन्या ने अनेक घाव, खरोंच स्वतः विकृति, विभंजन, अस्थि-विस्थापन और अन्य शारीरिक विकृतियाँ की थीं (बॉयड और नी, १९४७)। अनेक अवसरों पर उसके माता-पिता त्वचा के जलने की गंध पाकर देखते कि वह कन्या जलते हुए स्टोव पर आराम से झुकी हुई है।

शारीरिक चोट और पीड़ा में निकट संबंध होने के कारण वैज्ञानिक बहुत समय तक यह विश्वास करने की ओर प्रवृत्त हुए कि ऊत्तकों में चोट, पीड़ा संवेदनार्थ, सामान्य तात्कालिक उद्दीपन है। सांप्रतिक प्रमाणों ने इस दृष्टिकोण को और भी पुष्ट कर दिया है (हार्डी एट० एल०, १९५१)। यदि एक प्रयोग-पात्र से उसके भाल की त्वचा के एक अंश पर उष्णता विकीर्ण करके पीड़ा के संबंध में पूछा जाए, तो वह प्रायः पीड़ा की संवेदना उस समय व्यक्त करेगा, जब उसकी त्वचा का तापमान उस बिंदु पर पहुँच जाता है कि ऊतक टूटने लगते हैं। संवेद्य पीड़ा की मात्रा का सीधा संबंध ऊतकों के टूटने की मात्रा के साथ नहीं है, वरन् टूटने की गति के साथ इसका संबंध है और पीड़ामय संवेदना उस समय होती है, जब उद्दीपन एक गंभीर स्थिति उत्पन्न करता है, जिसमें विनाशकारी शक्तियाँ पुनर्सुधार की गति से तीव्रतर होने लगती हैं।

पीड़ा-संग्राहक प्रायः निश्चित रूप से अविशेष मुक्त तंत्रिका अंतांग है और त्वचा के अधिकांश भाग में, विशेषतः जहाँ पीड़ा की संवेद्यता महत्तम होती है, यह प्रचुर मात्रा में वर्त्तमान रहता है।

### अनुकूलन :

रासायनिक संवेदनाओं के समान त्वचा-संवेदनाएँ भी पर्याप्त विस्तृत रूप से उद्दीपनों के लिए अनुकूलित हो जाती हैं। पीड़ा अनुकूलित होती है, किंतु अपूर्ण रूप से—यदि कभी आपके दाँत में भयानक पीड़ा हुई हो, तो आपने अनुभव किया होगा कि कितनी मंद गति से पीड़ा की संवेदना अनुकूलित होती है—परंतु स्पर्श और ताप-संवेद्यता दोनों ही उद्दीपन-काल में पर्याप्त परिवर्तित होते हैं। ताप और शीत की संवेदनाओं में अनुकूलन विशेष रूप से द्रष्टव्य है। उदाहरणत: यदि कोई व्यक्ति गर्म जल में अपना बायाँ हाथ और ठंढे जल में दाहिना हाथ डुबाए, धीरे-धीरे दोनों हाथों की क्रमशः ताप और शीत की संवेदनाएँ समाप्त हो जाएँगी। किंतु, तब, यदि दोनों हाथों को मध्यवर्त्ती तापमान के जल में डुबाया जाए, तो बायाँ हाथ शीतलता अनुभव करता है और दाहिना हाथ ताप का।

### अंत:संवेदनाएँ :

पेट-दर्द या सिर-दर्द के अतिरिक्त प्रायः हम शरीर के आंतरिक संवेदनों के प्रति अपरिचित रहते हैं। अंतअंगों की सतहों में, मांसपेशियों में और हमारे जोड़ों में विविध प्रकार की संवेदनाएँ छिपी रहती हैं।

### अधस्त्वक संवेद्यता :

इनमें से कुछ इंद्रियाँ त्वचा के बहुत नीचे नहीं हैं, पर वे त्वचा-संवेदना का अंग भी नहीं हैं। इस तथ्य को त्वचा पर कोई चेतनानाशक (एनेस्थेटिक) औषधि लगा कर देखा जा सकता है। जब त्वचा असंवेदनशील हो जाती है, तब भी हम त्वचा पर भारी दाब अनुभव कर सकते हैं और त्वचा को नोचने पर कुछ पीड़ा भी। अत:, त्वचा के नीचे अधस्त्वक अंतस्तल में अंत:दाब और पीड़ा-संग्राहक हैं। ऐसी धारणा है कि ये अंत:दाब संग्राहक अपेक्षाकृत ऐसे बड़े **पैसीनीय कार्पसल हैं** (देखिए, चित्र १२·१६), जो अंत: दबाव संवेद्यता के क्षेत्रों में पाए जाते हैं। त्वचा-संवेदना के सदृश अंत: पीड़ा-संग्राहक भी प्रायः निश्चित रूप से मुक्त तंत्रिका अंतांग होते हैं।

### आंगिक संवेदनाएँ :

हम शरीर-गुहा के आंतर अंगों के संग्राहकों के विषय में अपेक्षाकृत कम जानते हैं; क्योंकि ये क्षेत्र इतने अनभिगम्य हैं कि इन पर प्रयोग नहीं हो सकते। किंतु आयसोफेगस और आमाशय में भी शीत तथा ताप-संग्राहक होंगे; क्योंकि इन भागों में भी हम शीत एवं ताप अनुभव करते हैं। इनमें दबाव और पीड़ा अधस्त्वक संग्राहकों के सदृश भी कुछ हैं; क्योंकि तनाव की स्थिति में ऐसी संवेदना उनमें होती है। जहाँ तक आंतर अंगों का संबंध है, यह स्पष्ट है कि उन्हें छेड़ने पर या उन पर वजन डालने

पर हम दबाव और पीड़ा अनुभव करते हैं। किंतु, हम यह नहीं जानते कि ये अनुभव किस सीमा तक स्वयं अंगों के संग्राहक से उद्दीप्त होते हैं और किस सीमा तक वे अन्य ऊत्तकों से एवं उदर-भित्ति से उद्दीप्त होते हैं, जो अप्रत्यक्ष रूप से इन अंगों द्वारा प्रभावित होते हैं।

## गतिबोधक संवेदना :

एक कायिक संवेदना, जिसके संबंध में शरीर-क्रिया वैज्ञानिक अब प्रचुर जानते हैं, ऐसी संवेदना है, जिसके संबंध में अधिकांश व्यक्तियों ने सुना भी नहीं है, वह है गति-संवेदना। कुछ रूपों में हमारी संवेदनाओं में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संवेदना है; क्योंकि यह चलने एवं अन्य शारीरिक परिश्रम की क्रियाओं में हमारी मांसपेशियों को सहायता देने वाले स्वचालित-तंत्र की सुविधा देती है। यह कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसका ज्ञान किसी ऐसे व्यक्ति को देखने से हो सकता है, जो इससे वंचित है। कभी-कभी यह उपदंश (सिफिलिस) के रूप में जिसे **टैब्ज डोर्सालीज** कहते हैं, प्रकट होती है। यह गतिबोधक संवेदन अंगों के संवेदी परिपथों को विकृत करती हैं। इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति मांसपेशियों से उनकी गतिशीलता के संबंध में कोई सूचना प्राप्त नहीं करता। वह चल सकता है, गेंद को पकड़ सकता है या अन्य कौशलों को भी कर सकता है, ध्यानपूर्वक यह देख कर कि उसकी बाँहें या टांगे क्या करती हैं। यदि सिफिलिस उसके मस्तिष्क के तंतुओं पर आक्रमण कर देती है और मुख तथा चेहरे के गतिबोधक आवेगों में बाधक होती है, तो चेहरे की गति अनिश्चित होने की संभावना रहती है, वाणी विकृत होने लगती है और यदि यह गंभीर रूप धारण कर ले, तो वाणी बिलकुल अस्पष्ट हो जाती है।

गतिबोधक संग्राहक तीन प्रमुख भागों में पाए जाते हैं। एक स्थान है मांसपेशियाँ, जहाँ मुक्त तंत्रिका अंतांग लघु मांसपेशीय तर्कु (स्पिडल) को घेरे रहते हैं (देखिए, चित्र १२·१७)। ये गतिबोधक संग्राहक मांसपेशी में तनाव उत्पन्न करते हैं। गतिबोधक संग्राहकों का द्वितीय स्थान टैंडन (कंडरा) में है, जो मांसपेशियों को हड्डियों से जोड़ते हैं। यहाँ संग्राहक तंत्रिका अंतांग रहते हैं, जो विशिष्ट अंग, **गोल्गी टैंडन** अंग की सहायता करते हैं (देखिए, चित्र १२·१७)। मांसपेशी के खिंचने और टैंडन पर तनाव डालने से ये उद्दीप्त होते हैं। अंत में कुछ संग्राहक जोड़ों के तलों में देखे जाते हैं। अंगों के गतिशील होने पर ये उद्दीप्त होते हैं और जोड़ों में दो हड्डियों की सापेक्ष स्थिति को परिर्वतित कर देते हैं। हम अब तक जोड़ों के संग्राहकों के प्रति निश्चित नहीं है, किंतु यह संभव है कि वे पैसीनी कार्पसल्स हैं—ये वे ही संग्राहक हैं, जो त्वचा के नीचे के भागों के उद्दीप्त होने पर अंतःदबाव संवेद्य करते हैं।

गतिबोधक संग्राहक, मांसपेशियाँ, टेंडनों और जोड़ों में होते हैं।
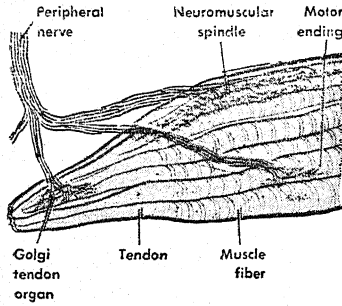
**चित्र १२·१७ मांसपेशियों में गतिबोधक संग्राहक। इसमें दिखाए गए दो गतिबोधक संग्राहक हैं, १. तंत्रिका पेशी तर्कु और २. टेंडन अंग।**

प्रघाण इंद्रियाँ :

गतिबोधक के सदृश प्रघाण संवेदना भी संतुलन और गतिशीलता के लिए महत्त्वपूर्ण है, परंतु यह ऐसे अनुभव नहीं देती, जिसके प्रति हम साधारण सचेत रहते हैं। प्रघाण संवेदना के अंग अच्छी तरह ज्ञात हैं; क्योंकि वे अत्यंत विशिष्ट हैं, पर्याप्त बड़े हैं और सूक्ष्मदर्शी यंत्र से उनका विस्तार से अध्ययन किया जा सकता है। वे वस्तुतः अंतर्कर्ण के भाग हैं। अंतर्कर्ण गुहाओं की शृंखला है और उनमें से केवल एक, कर्णावर्त, श्रवण से संबंधित है। बाकी की सब गुहाएँ प्रघाणेंद्रियों के भाग हैं (देखिए, चित्र १२·१८ और १२·१९)। वे दो प्रमुख समूहों में विभाजित हैं — **१. अर्द्धवृत्ताकार नलिका और २. कर्ण बालुका अंग।**

तीन अर्द्धवृत्ताकार नलिकाएँ हैं। प्रत्येक नलिका अन्य दोनों के साथ कुछ लंबाकार रहती है और इस प्रकार अनुस्थापित हैं कि वे तीन विभिन्न गतियों को प्रस्तुत करती हैं। प्रत्येक नलिका के बढ़े हुए भाग में लोम-कोशिकाओं का विन्यास है और वे कर्णावर्त में सामान्य प्रारूप के कुछ सदृश हैं। ये कोशिकाएँ उस तरल पदार्थ से घिरी हुई हैं, जिनसे नलिका भी भरी है। जब इस पदार्थ पर दबाव होता है, तो ये उद्दीप्त होती हैं। यह दबाव विशेषतः उस समय होता है, जब सिर को घुमाया जाता है और इस प्रकार ये नलिकाएँ घूर्णन के संवेदन अंग हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि संग्राहक केवल निरंतर घूर्णन – निरंतर दबाव—के प्रति ही अनुक्रियाशील नहीं होते, वरन घूर्णन की गति में परिवर्तन करने के लिए अर्थात्, त्वरण और अवत्वरण के लिए भी। अतः, जब कोई व्यक्ति घुमाया जाता है या स्वयं घूमता है, जैसा कि कुछ अभिनेता करते हैं, जब वह अपनी घूर्णन गति बढ़ाता या बंद करता है केवल तभी अर्द्धवृत्ताकार अंग उदीप्त होते हैं।

नर्तक और नट, जिन्हें बहुत चक्कर काटने पड़ते हैं, कुछ ऐसे कौशल सीख लेते हैं, जो चक्कर काटते समय इस संवेदना के प्रभाव से मुक्त होने में उनकी सहायता करते हैं। बैलेट-नर्तक को चक्कर काटते समय देखिए। आप देखेंगे कि वह अपने सिर को यथासंभव, पर्यावरण की किसी वस्तु पर ध्यान केंद्रित करके, स्थिर रखता है।

उसका शरीर घूमता रहता है तब तक सिर अपनी स्थिरता के लिए नवीन वस्तु खोज लेता है ।

प्रघाण अंश को बनाने वाली दो और गुहाएँ (केविटी) हैं । इन गुहाओं की दीवारों पर मोटी तहें हैं, जिनमें संग्राहक कोशिकाएँ हैं । ये श्लेषी पिंड की ओर बढ़ती हैं, जिसमें लघुमणिभ कण (क्रिस्टल), कर्ण बालुका, (ओटोलिथ) होते हैं (ओटो का अर्थ है 'कर्ण', और लिथ का अर्थ है पत्थर, या कण) । ये संग्राहक स्थिर या अपरिवर्तनशील संग्राहक प्रतीत होते हैं; क्योंकि ये केवल सिर की नत मुद्रा या स्थिति के प्रति अनुक्रियाशील होते हैं और उद्दीप्त होने के लिए इन्हें घूर्णन (चक्कर) की आवश्यकता नहीं होती ।

प्रघाण प्रतिक्रियाएँ :

नलिकाएँ तथा कर्ण-बालुका संवेदन मिलकर संतुलन बोध देते हैं । इन अंगों के आवेग व्यक्ति को लड़खड़ाने पर संतुलित होने में सहायता करते हैं । अधिक परिशुद्धता से कहना चाहिए कि वे उन अनेक सहज-क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं, जो संतुलन की हानि की स्वतः पूर्ति करती हैं । एक ऐसी सहज-क्रिया है—सामान्य स्थिति पर पुनः सिर की गति का आना, जब भी वह उससे इधर-उधर मुड़े । दूसरी सहज क्रिया है —धड़ और शरीर का संपूर्ण शरीर को सामान्य स्थिति में लाने के लिए अंगड़ाई लेना ।

संभवतः प्रघाण इंद्रियों के इन प्रभावों को स्पष्ट करने का सर्वोत्तम उदाहरण है बिल्ली की सीधे होने की प्रतिक्रिया । बिल्ली इसके लिए प्रसिद्ध है कि उसको कितनी ही ऊँचाई से, किसी भी रूप में गिराने पर अपने दाहिने अंग को ऊँचा उठाए रखने में वह समर्थ रहती है । जब बिल्ली को उलटा गिराया जाता है, वह पहले अपने सिर को घुमा कर सामान्य स्थिति में लाती है, उसके बाद तन को और तब अप्रत्यक्ष सहज-क्रियाओं द्वारा अपने चारों पैरों को घुमाकर सामान्य रूप से पृथ्वी पर टेक देती है । प्रतिक्रियाओं की यह श्रृंखला मुख्यतः प्रघाण संग्राहकों द्वारा नियंत्रित होती है ।

प्रघाण संग्राहकों और नेत्रों में विशेष संबंध है । यदि कोई व्यक्ति तीव्रता से अपने सिर को घुमाता है, साधारणतः उसके नेत्र भी साथ-साथ विपरीत दिशा में घूमते हैं, जिससे कि वे भी उसी बिंदु पर केंद्रित हो सकें । ये नेत्रों की प्रतिपूरक क्रियाएँ हैं, जो अंशतः प्रघाण संग्राहकों द्वारा नियंत्रित हैं । जब हम चक्कर काटते हैं, रुक जाते हैं तब भी हमारे नेत्र आगे और पीछे की ओर घूमते हैं । इस गति को **आवर्ती अक्षदोलन** कहते हैं । नेत्र एक ओर मुड़ते हैं । उसके बाद तीव्रता से दूसरी ओर घूमते हैं, फिर मुड़ते हैं, फिर कूदते हैं, इत्यादि । ऐसा अक्षदोलन एक सहज-क्रिया है, जो अर्द्ध-वृत्ताकार नलिकाओं के संग्राहकों के उद्दीपन द्वारा उत्पन्न होती है ।

अर्द्ध-वृत्ताकार नलिकाओं की कलशिकाएँ घूर्णन के प्रति अनुक्रियाशील होती हैं, अणुकोश और यूट्रिकल की कर्ण-बालुका तथा सिर की स्थिति के प्रति भी।
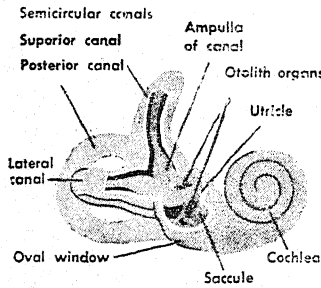
**चित्र १२·१८ प्रघाण-बोध अंग। तीन अर्द्ध-वृत्ताकार नलिकाएँ इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि हर क्षेत्र में एक-एक नलिका है। कलिकाओं में इन नलिकाओं के अंग सिर के घूर्णन या गति के प्रति अनुक्रियाशील होते हैं। दूसरी ओर अणुकोश और यूट्रिकल में अवस्थित कर्ण-बालुका अंग गुरुत्व द्वारा उद्दीप्त होती है और इस प्रकार सिर की स्थिति से भी।**

कर्ण-बालुका अंगों में श्लेषी पदार्थ में संवेदी लोम होते हैं।

**चित्र १२·१९ : कर्ण-बालुका अंग। चित्र में अणुकोश और यूट्रिकल में कर्ण-बालुका अंगों का सूक्ष्मदर्शी प्रारूप प्रदर्शित है। कर्ण-बालुकाएँ श्लेषी पदार्थ के घिरे हुए संवेदी लोमों पर सिर की स्थिति के अनुरूप दबाव डालती हैं। लोमों की उद्दीप्ति संवेदी तन्त्रिका ततुओं में आवेगों को उद्दीप्त करती है, जो कर्ण के अन्य तंतुओं से जुडते हुए मस्तिष्क की मज्जका में पहुँच कर समाप्त हो जाते हैं।**
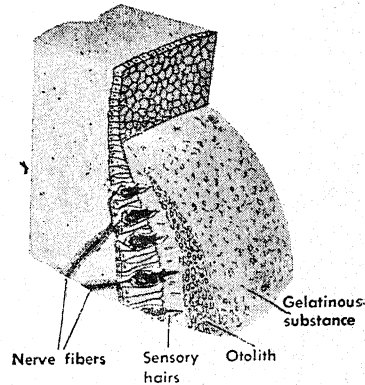
## गतिजन्य रुग्णता ( Motion Sickness ) :

गतिजन्य रुग्णता, जिससे कुछ लोगों को बहुत कष्ट होता है, प्रघाण उद्दीपन का ही प्रभाव है। इस रुग्णता के अनेक सामान्य प्रकार हैं : ट्रेन-रुग्णता, मोटरकार-रुग्णता, जहाजी-रुग्णता और हवाई जहाजी-रुग्णता। हम जानते हैं कि गतिजन्य रुग्णता का कारण प्रघाण अंग हैं; क्योंकि जिस व्यक्ति का प्रघाण-तंत्र उपयुक्त रूप से कार्य नहीं करता, वह गतिजन्य रुग्णता से ग्रसित नहीं होता। हम प्रयोग द्वारा भी प्रघाण-आवेगों को उद्दीप्त करके, जो आहार-नाल में सहज-क्रिया की प्रतिक्रियाओं

को उद्दीप्त कर देते हैं, गतिजन्य रुग्णता उत्पन्न कर सकते हैं ( बैंडट्, १९५१ )। निश्चय ही अन्य कारक भी, जैसे चिंता, ऐसी प्रतिक्रियाओं को उत्तेजित कर सकते हैं और इस प्रकार वे प्रधाण-उद्दीपन के प्रत्यक्ष प्रभावों में सहायक होते हैं। अब इस प्रकार की अनेक बहु प्रचलित औषधियाँ हैं, जैसे ड्मामिन जो गतिजन्य रुग्णता को कम कर देती है या रोक देती हैं, किंतु यह अब तक ज्ञात नहीं हो सका है कि ये औषधियाँ प्रघाण-इंद्रियों पर प्रभाव डालती हैं अथवा आहार-नाल या तंत्रिका-तंत्र के किसी भाग पर, जो इस प्रतिक्रिया में सन्निहित है।

## वाणी-संवेदन (Speech Perception) :

वार्तालाप में वाणी का हम इतना अधिक व्यवहार करते हैं कि संभवतः वाणी (वार्तालाप) ध्वनि का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रकार है, जिसे हम सुनते हैं। वाणी-संवेदन के संबंध में गत वर्षों में हमने बहुत तथ्य अधिगत किए हैं। इस ज्ञान से वार्तालाप के सब प्रकार के साधनों की अभिकल्पना में सहायता प्राप्त हुई है— टेलीफोन, जन-भाषण प्रणालियाँ, रेडियो—एवं बधिरता को समझने और भाषा शिक्षण में भी इससे सहायता प्राप्त हुई है। इस अनुच्छेद में हम इस पर संक्षेप में विचार करेंगे।

वाणी की ध्वनियाँ बहुत जटिल हैं और एक बोलने वाले में दूसरे से भिन्न होती हैं। एक ही भाषा बोलने में ध्वनियों में पर्याप्त अंतर देखा जाता है। उदाहरणतः दक्षिणी उच्चारण बुकलिन उच्चारण से बहुत भिन्न है। किंतु, व्यक्तियों की वाणी उच्चारण में अत्यधिक भिन्न होने पर भी बहुत कम कठिनाई से औसत श्रोता द्वारा समझी जा सकती है। यह तथ्य एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित करता है, जिसका अध्ययन उन व्यक्तियों ने किया है, जो एक उद्दीपन के रूप में वाणी पर अनुसंधान-कार्य कर रहे हैं।

वाणी-ध्वनियाँ वाक् तंतु तक वायु का अंतर्धमन करके उत्पन्न की जाती हैं, और तंतुओं को कंपन करने के लिए व्यवस्थित किया जाता है और तब इस प्रकार से उत्पन्न ध्वनियों को जिह्वा, ओठ एवं मुख की गतियों द्वारा सुधारा जाता है। यह उपयुक्त स्थल नहीं है, जहाँ विवेचन किया जाए कि वाणी-ध्वनियाँ किस प्रकार उत्पन्न होती हैं। फिर भी यह समझने के लिए कि वे किस प्रकार सुनी और समझी जाती हैं, हमें उनकी भौतिक प्रकृति को समझना आवश्यक है।

## आवृत्ति :

हम वाणी की अनेक ज्या-तरंग आवृत्तियों का उसी प्रकार विश्लेषण कर सकते हैं, जिसे हमने अन्य जटिल ध्वनियों के विश्लेषणार्थ इस अध्याय के प्रारंभ में

सीखा था। स्पष्टतः वाणी-ध्वनियों की आवृत्तियाँ एक उदाहरण से दूसरे उदाहरण में परिवर्तित होती हैं, इस प्रकार से हम एक स्थिर ध्वनि के रूप में विश्लेषण नहीं कर सकते। इस कठिनाई का सामना करने के लिए हम अनेक वाणी-ध्वनियों का विश्लेषण, औसत रूप से वाणी में निहित आवृत्तियों को निर्धारित करने के लिए कर सकते हैं ( लिक्लिदर और मिलर, १९५१, मिलर १९५१ )।

चित्र १२.२० अंगरेजी भाषा की वाणी-ध्वनियों में आवृत्तियों का इसी प्रकार का विश्लेषण प्रदर्शित करता है। यह विश्लेषण सभी वाणी-ध्वनियों के लिए, स्त्री और पुरुष दोनों के कंठ-स्वरों के लिए, औसतन है। इस चित्र का वक्र सापेक्ष ध्वनि-दबाव स्तरों को भिन्न आवृत्तियों पर प्रदर्शित करता है। इस वक्र से आप देख सकते हैं कि उच्च आवृत्तियों की अपेक्षा मंद आवृत्तियों में प्रबलता कहीं अधिक है। उदाहरणतः प्रति सेकेंड २०० और ५०० चक्रों की आवृत्तियों पर प्रति सेकेंड ५,००० चक्रों की अपेक्षा २५ दशिबल अधिक ध्वनि-दबाव होता है। इस तथ्य के आधार पर आप इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि वाणी को समझने में मंद ध्वनियाँ उच्च ध्वनियों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, किंतु यह निष्कर्ष गलत होगा।

प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि उच्च आवृत्तियाँ, यद्यपि बहुत कम प्रबल होती हैं, फिर भी वाणी को समझने में वे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे प्रयोगों में विद्युतीय परिपथों, जिन्हें निस्पंदक (फिल्टर) कहते हैं, का प्रयोग कुछ आवृत्तियों को उपयुक्त स्थिति में छोड़ कर कुछ का विलोपन करने के लिए किया जाता है ( देखिए, चित्र १२.२१ )। जब यह हो जाता है, वाणी का अर्थ ग्रहण प्रायः उतना ही अच्छा होता है जितना कि प्रति सेकेंड लगभग २,००० चक्रों के ऊपर की सब आवृत्तियों का विलोपन होने पर होता है तथा साथ ही जितना कि प्रति सेकेंड २,००० चक्रों के नीचे की सब आवृत्तियों के विलोपन पर होता है। अतः, हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि प्रति सेकेंड २,००० चक्रों के ऊपर की सब आवृत्तियाँ भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितनी कि सब आवृत्तियाँ उसके नीचे की। और फिर भी चित्र १२.२० स्पष्टतः निर्देशित करता है कि केवल कुल प्रबलता की लघुमात्रा इन उच्च आवृत्तियों से प्राप्त होती है। यह क्यों होता है? इसके दो कारण हैं। एक स्वरों से संबंधित है और दूसरा व्यंजनों से। स्वर-ध्वनियाँ निम्न और उच्च दोनों ध्वनियों से निर्मित हैं। यद्यपि निम्न ध्वनियाँ अधिक प्रबल हैं, पर उच्च ध्वनियाँ कुछ स्वरों को पहचानने में हमारी सहायता करती हैं। उदाहरणतः, यदि हम केवल निम्न ध्वनियाँ ही सुन सकते, तो हम 'फूल' (Fool) और 'फील' ( Feel) शब्दों के अंतर को स्पष्ट नहीं कर पाते। स्वरों में निम्न ध्वनियाँ प्रायः वही रहती हैं, किंतु

'फील' में उच्च ध्वनियाँ 'फूल' की उच्च ध्वनियों से पर्याप्त उच्चतर हैं। यह अंतर भिन्न स्वरों के आवृत्ति-प्रतिरूपों की स्पष्टता को संभव बनाता है।

उच्च आवृत्तियों के महत्त्व का दूसरा कारण यह है कि व्यंजनों में स्वरों की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च आवृत्तियाँ होती हैं। अतएव, स्वरों की अपेक्षा व्यंजनों का महत्त्व शब्द या वाक्य को समझने में कहीं अधिक है। 'श' ट और क (sh, t, k) ध्वनियाँ प्रायः सब उच्च आवृत्तिपरक ध्वनियाँ हैं। यहाँ तक कि स्वीकृत व्यंजनों की. जैसे ड और 'ग' (d & g) भी अनेक उच्च आवृत्तियाँ हैं।

भाषा में सर्वाधिक सूचना व्यंजन वहन करते हैं; क्योंकि वे ऐसी ध्वनियाँ हैं, जो भिन्न शब्दों को स्पष्ट करने की सुविधा प्रस्तुत करती हैं। उदाहरणतः निम्नलिखित वाक्य में से सब स्वर-ध्वनियों को पृथक् कर किया है Ths sctn fth chptr s bt spch तब भी इस वाक्य का आप पर्याप्त अर्थ समझ सकते हैं, किंतु यदि हम सब व्यंजनों को पृथक् कर दें और केवल स्वरों को ही लें, तो हम अस्पष्ट शब्द-शृंखला मात्र पाएँगे : i eio o e ae i aou ee.

## मानव-वाणी की अधिकांश शक्ति निम्न आवृत्तियों में होती है।
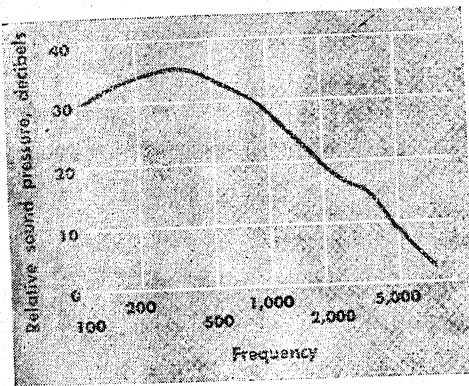
**चित्र १२·२० : वाणी में भिन्न आवृत्तियों की औसत प्रबलता। यह वक्र पुरुष और नारी-स्वरों का औसत है। ध्यान दें कि निम्नतर आवृत्तियाँ उच्च आवृत्तियों की तुलना में कितनी अधिक प्रबल हैं।**

स्वर-ध्वनियाँ स्वरीकृत होती हैं और व्यंजनों की अपेक्षा दीर्घकालिक होती हैं। इसलिए उनमें वाणी की प्रबलता कहीं अधिक रहती है। अतएव, ऐसे उदाहरण हैं, जिनमें तुमुलतम ध्वनियाँ अर्थ ग्रहण करने या समझने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नहीं होतीं। हम यह कहना चाहेंगे कि निम्न आवृत्तियाँ सर्वाधिक ध्वनि उत्पन्न करती हैं, किंतु उच्च आवृत्तियाँ सर्वाधिक अर्थवत्ता उत्पन्न करती हैं।

वाणी की अर्थवत्ता में सर्वाधिक योग देने वाली आवृत्तियाँ अपेक्षाकृत उच्च होती हैं और प्रति सेकेंड २,००० चक्रों के आसपास होती हैं।
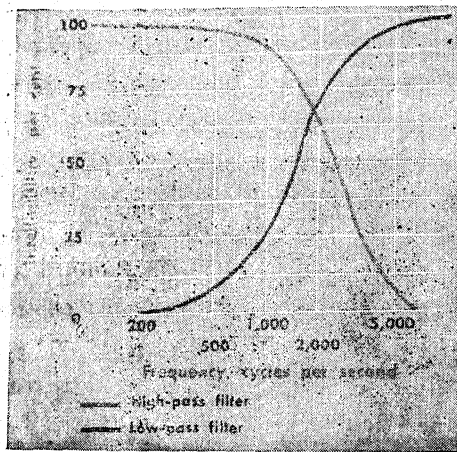
**चित्र १२·२१ : भाषा से निम्न और उच्च आवृत्तियों के विलोपन का वाणी की अर्थवत्ता पर प्रभाव। 'निम्न निकास' वक्र प्रदर्शित करता है कि शब्द की अर्थवत्ता किस प्रकार पारेषित आवृत्तियों की पट्टी के बढ़ने के साथ बढ़ती है। इस वक्र के लिए सब आवृत्तियों का जो भुजांक पर प्रदर्शित आवृत्तियों के नीचे हैं, निकास तंत्र के मध्य से होता है और सब उच्चतर आवृत्तियाँ अस्वीकृत होती हैं। उच्च निकास वक्र शब्द-अर्थवत्ता प्रदर्शित करता है जब सब आवृत्तियाँ निर्धारित रेखा से ऊपर पारेषित होती हैं और सब निम्नतर आवृत्तियाँ अस्वीकृत होती हैं। दोनों वक्र प्रति सेकेंड २,००० चक्रों के ठीक नीचे क्रास करते हैं, ये प्रदर्शित करते हैं कि प्रति सेकेंड २,००० चक्रों से ऊपर की आवृत्तियाँ अर्थवत्ता लगभग उतना ही योग देती हैं, जितना उनसे नीचे की आवृत्ति (फ्रेंच और स्टनबर्ग के अनुसार, १९४७)।**

## आयाम :

इस अंतिम वाक्य पर विचार करने पर हम कह सकते हैं कि वाणी में उच्च-प्रबलता की ध्वनियाँ न्यूनतम अर्थवत्ता उत्पन्न करती हैं, जब कि निम्न प्रबलता की ध्वनियाँ सर्वाधिक अर्थवत्ता उत्पन्न करती हैं। यह निष्कर्ष, जिसका कुछ व्यावहारिक स्वरूप भी है, वाणी-संवेदन पर विकृत आयाम के ज्ञात प्रभाव द्वारा संगत प्रमाणित किया जाता है।

ध्वनियों की श्रृंखला निर्मित करने वाले प्रबलताओं के प्रतिरूपों में किसी भी प्रकार की विकृति को **विकृत आयाम** कहते हैं। जब ध्वनि हवा में भ्रमण करती है, तब हम अपेक्षाकृत कम विकृत आयाम पाते हैं, किंतु संवाद रूपों में विकृत आयामों का

प्राय: सामना करना पड़ता हैं, जैसे जन-सभा भाषण-प्रणालियों, रेडियो या आंतर-फोनों में। इनमें विकृत-आयाम उस समय घटित होता है जब उसकी ग्रहणता के अनुपात में निकास पूर्णत: उपयुक्त नहीं होता। जैसे जो ध्वनि-विस्तारक यंत्र ( लाउडस्पीकर ) बोझिल बना दिया जाता है, वह विकृत आयाम उत्पन्न करता है; क्योंकि उस ध्वनि में सीमित है जिसका वह निकास कर सकता है। अतएव, इस सीमा के बाहर जितनी ध्वनियाँ हैं, वे विस्तारक-यंत्र से बाहर उसी प्रबलता से प्रकट होती हैं और इस भाग में ग्रहणता के अनुपात में विकास नहीं होता।

उपयुक्त विद्युतीय परिपथों से हम स्वेच्छया संवाद रूप के विकास की सीमा निर्धारित कर सकते हैं। ऐसा करने में वाणी-तरंगों का **'सीमा-संघटन'** करते हैं। सीमा-संघटन में हम केवल निश्चित प्रबलता से अधिक ध्वनि-प्रबलता की सीमाओं को पृथक् कर देते हैं। इस प्रक्रिया को, चित्र १२.२२ में स्पष्ट किया गया है, जो सीमा-संघटन की विविध मात्राओं को शून्य से २४ दशिबल तक, प्रदर्शित करता है। यह कहने का अर्थ, कि वाणी २४ दशिबल में संघटित हो गई है, कि यंत्र के माध्यम से केवल जिन आयामों ( प्रबलताओं ) को व्यक्त होने की सुविधा दी गई है, वे वाणी-तरंगों को अधिकतम आयामों से २४ दशिवल कम हैं।

चित्र १२.२३ अर्थवत्ता पर सीमा-संघटन के प्रभाव को प्रदर्शित करता है। ये वक्र, प्रयोग-पात्रों को उन शब्दों को लिखने का कह कर जिनका अर्थ वे आंतर-फोन प्रणाली से ग्रहण करें, उपलब्ध किए गए हैं। स्वाभाविक है कि प्रबलता की वृद्धि के साथ समझे गए शब्दों की संख्या में भी वृद्धि होगी। इसीलिए प्रत्येक वक्र S आकार में, शून्य से १०० प्रतिशत अर्थवत्ता में, विकसित होता है। भिन्न वक्र सीमा-संघटन की शब्द की अर्थवत्ता के लिए भिन्न मात्राओं को प्रदर्शित करता है। सीमा-संघटन के उपरांत, प्रत्येक वाणी-तरंग का विस्तार किया गया, जिससे कि सब वक्रों का अधिकतम प्रबलता के रूप में समीकरण हो जाए। इसका तात्पर्य है संघटित मात्रा वाणी के वृहत्तर विस्तार द्वारा विस्थित की गई है। ध्यान दें कि सीमा संघटित वाणी असीमित वाणी की अपेक्षा अधिक अर्थपूर्ण है।

हम इस प्रकार सीमा-संघटन द्वारा वाणी की अर्थवत्ता में क्यों वृद्धि कर सकते हैं? विशेषत: इसी हेतु हम वाणी में अनेक निम्न आवृत्तियों को बिना उसकी अर्थवत्ता को हानि पहुँचाए पृथक् कर सकते हैं। वाणी के उच्च प्रबलतापरक भाग निम्न-आवृत्तियों के हैं, जो वाणी की अर्थवत्ता में अल्प योग देती हैं। उनके संघटन द्वारा हम निम्न-प्रबलता के विस्तार की सुविधा प्रस्तुत करते हैं, उच्च आवृत्ति के भाग अर्थवत्ता के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

सीमा-संघटन की विशद् मात्रा वाणी को पर्याप्त अर्थ-ग्रहण योग्य रहने देती है, किंतु केवल कुछ दशिबलों का केंद्र-संघटन इसे पूर्णतः अस्पष्ट बना देता है।
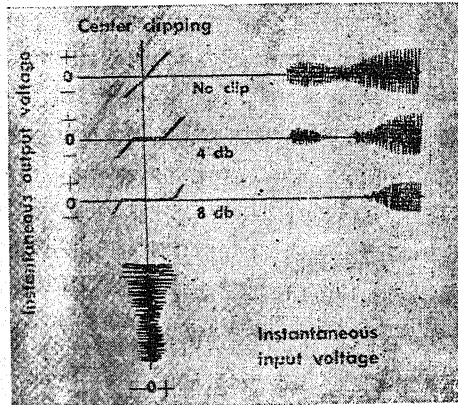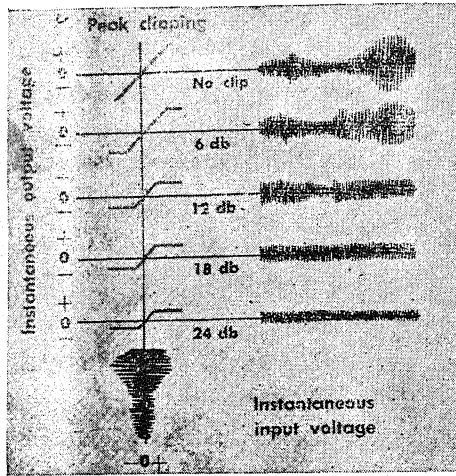
**चित्र १२·२२ संघटन के दो प्रकार। ऊपर के चित्र में सीमा-संघटन उच्च प्रबलतापरक भागों को अस्वीकार करता है, और निम्न प्रबलतापरक भागों को यंत्र के मध्य आने की सुविधा देता है। केंद्र-संघटन, नीचे वाले चित्र में, निम्न प्रबलता-परक भागों को अस्वीकार करता है और उच्च-प्रबलतापरक भागों को आने की सुविधा देता है। २४ दशिबलों का सीमा-संघटन वाणी को अर्थग्रहण योग्य रहने देता है, परंतु दशिबलों का केंद्र-संघटन इसे अस्पष्ट बना देता है (लिक्लिदर के अनुसार, १९४४)।**

इस अंतिम तथ्य को दूसरे प्रकार के संघटन केंद्र संघटन, के प्रयोग द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है, इसे चित्र १२.२२ में प्रदर्शित किया गया है। इसमें केंद्र में वाणी की निम्न प्रबलता के भागों को संघटन से पृथक् कर दिया गया है और उच्च-प्रबलतापरक भाग रह गए हैं। वाणी की अर्थवत्ता पर इसका प्रभाव अति घातक

होता है, केवल ४ दशिबल का केंद्र संघटन वाणी को पूर्णतः अर्थहीन बना देता है। यह इसलिए, कि उच्चतर आवृत्ति के निम्न-प्रबलता के भागों, जो व्यंजनों को प्रस्तुत करते हैं और स्वरों की विभेदक आवृत्तियां, जो वाणी को अर्थमय बनाती हैं, को विलुप्त कर दिया जाता है। स्वाभाविक है कि व्यक्ति किसी भी परिस्थिति में केंद्र-संघटन से दूर रहना चाहता है। दूसरी ओर, सीमा-संघटन का लाभप्रद प्रयोग रेडियो या आंतरकोनों में, जहाँ विद्युत् शक्ति कम होती है, हो सकता है। इन परिस्थितियों में वाणी की अर्थवत्ता में वाणी के उच्च प्रबलतापरक भागों के सीमा-संघटन द्वारा और प्राप्य शक्ति का प्रयोग महत्त्वपूर्ण निम्न प्रबलतापरक भागों के विस्तार में करके, वृद्धि की जा सकती है। इस रूप में व्यवहृत वाणी उतनी अच्छी ध्वनित नहीं होती, जितनी उत्तम-तदरूप यंत्र से प्रस्तुत की गई वाणी—यह बहुत कर्कश और स्पष्टतः विकृत होती है—परंतु यह पर्याप्त अर्थग्रहणशील होती है।

क्षतिपूर्त्ति करने के लिए वाणी का सीमा-संघटन और उसका परिवर्द्धन वाणी की अर्थ-ग्रहनीयता को सुधारता है—कुछ रेडियो संवाद रूपों में इस कौशल का प्रयोग किया जाता है।
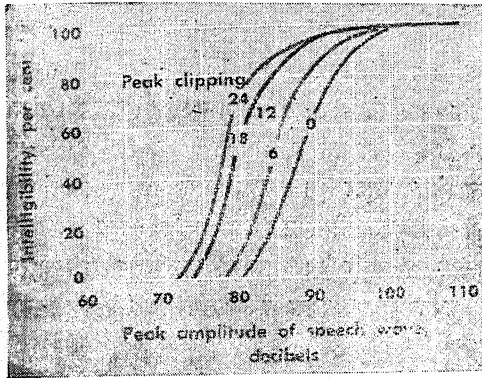
**चित्र १२·२३ : वाणी की अर्थ-ग्रहणशीलता पर सीमा-संघटन का प्रभाव। प्रत्येक वक्र सीमा-संघटन की भिन्न मात्राओं के लिए भिन्न प्रबलताओं पर शब्द की अर्थ-ग्रहणीयता प्रदर्शित करता है। सीमा-संघटन के उपरांत संघटन से हुई क्षति की पूर्ति के लिए वाणा का परिवर्द्धन किया जाता है। इन परिस्थितियों में सीमा-संघटित वाणी असंघटित वाणी की अपेक्षा अधिक अर्थवत्तापूर्ण होती है (लिक्लिदर के अनुसार, १९४६)।**

वाणी की गत्यात्मकता :

हम देख चुके हैं कि वाणी को समझने का महत्त्वपूर्ण कारक इसकी आवृत्तियों का प्रतिरूप है, आवृत्तियों का विशिष्ट मिश्रण एक शब्द-ध्वनि को दूसरी से भिन्न करता है। अर्थवत्ता के अतिरिक्त वाणी के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण अंग भी हैं। वाणी की ध्वनियों से हम मित्र या अपरिचित के कंठ-स्वर को भी

पहचानते हैं। हम टेलीफोन पर उसी कंठ-स्वर को पहचान लेते हैं, जिसे हमने कल वार्तालाप में सुना था, यद्यपि उससे पूर्व उस स्वर को टेलीफोन पर कभी नहीं सुना था। हम यह भी पहचान लेते हैं कि प्रत्यक्ष वार्तालाप से वही स्वर फोन पर बहुत भिन्न है। हम प्रायः कंठ-स्वर के लहजे से (काकु ध्वनि से) यह भी कह सकते हैं कि वक्ता कब क्रोध में या प्रसन्न अथवा निराश है। वाणी में वह क्या है, जो इन विविध विशेषताओं को पहचानने की सुविधा देता है—ऐसी विशेषताओं को जिन्हें प्रयुक्त शब्दों को समझने में कुछ करना नहीं होता ?

अनेक कारक हैं, जो विशेषता के संवेदन में महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें एक कारक **प्रबलता या तीव्रता है**। लोग जब उच्च स्वर में बोलते हैं, तो हम पहचान लेते हैं कि वे आवेश अथवा क्रोध में है या संभवतः बात करने में उन्हें कष्ट होता है। जब वे शांतिपूर्वक बोलते हैं, तब वे क्रोध में बहुत कम रहते हैं। दूसरे कारक को **गत्यात्मक बिन्यास** कहते हैं, जो उच्चतम और मंदतम ध्वनियों के मध्य का विन्यास है। अधिकांश कंठ-स्वरों का गत्यात्मक विन्यास आश्चर्यजनक रूप से छोटा होता है—ध्वनि-दबाव-स्तर का लगभग ३० दशिबल। हम इसकी अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत विन्यास को सुन सकते हैं तथा कंठ-स्वर के विन्यास के इतना छोटा होने के कारण विशेष शब्द-ध्वनियों की प्रबलता इतनी महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होती। व्यक्तियों का गत्यात्मक विन्यास भिन्न-भिन्न होता है और हम इस अंतर को पहचान सकते हैं तथा व्यक्तिविशेष के कंठ-स्वर को पहचानने में उसका उपयोग कर सकते हैं। स्थिति भी उसमें अंतर उपस्थित कर सकती है और प्रत्येक व्यक्ति का गत्यात्मक विन्यास परिस्थिति के अनुसार परिवर्धित होता रहता है। भाषण में गत्यात्मक विन्यास प्रायः कम हो जाता है और कभी-कभी इस सीमा तक कि, यदि वक्ता अनुभवहीन हो, तो उसमें अरूचिकर एकस्वरता आ जाती है। सामान्य वार्तालाप में गत्यात्मक विन्यास मध्यम रहता है, किंतु वक्ता जब आवेश में बोलता है, तब यह विन्यास विस्तृत हो जाता है।

कंठ-स्वर की तृतीय विशेषता है **मूल-तारत्व**। औसत नारी-कंठ-स्वर औसत पुरुष-कंठ-स्वर की अपेक्षा उच्च तारत्वपूर्ण होता है, किंतु एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के मूल तारत्व में बहुत अंतर रहता है और इसकी संगति हमें व्यक्तियों के कंठ-स्वरों को पहचानने में सहायता देती है। आवेश या अन्य स्थितियों में तारत्व परिवर्तित हो सकता है। अनेक व्यक्तियों का कंठ-स्वर उत्तेजित अवस्था में उच्च तारत्वपूर्ण हो जाता है, जो कि शांत अवस्था में नहीं होता।

कंठ-स्वर के गुणों की एक और विशेषता है, **वार्ता की गति**। व्यक्तियों की वार्ता की गति में भी पर्याप्त अंतर रहता है। बहुत धीरे बोलने वाले व्यक्ति प्रति

मिनट १०० शब्दों से भी कम बोलते हैं, जबकि अत्यधिक तीव्र गति से बोलने वाले प्रति मिनट २०० से अधिक शब्द बोलते हैं। तीव्र वार्ता उत्तेजना का इतना सुपरिचित चिह्न है कि अनेक रेडियो और टेलिविजन आख्यापक जान-बूझ कर आवेश का प्रभाव डालने के लिए बहुत तीव्र गति से बोलना सीखते हैं। आप लोगों में से जिन्होंने खेल के मैदान के आख्यापक को घुड़दौड़ का वर्णन करते हुए सुना होगा, वे इस कौशल से परिचित होंगे।

इस पर आप ध्यान दें कि हम विभिन्न कंठ-स्वरों का सप्रयास विश्लेषण इन विविध प्रकारों में नहीं करते। वक्ता के कंठ-स्वर के संबंध में हम जिस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, वह कंठ-स्वर की इन विविध विशेषताओं के मिश्रण से उत्पन्न एक सम्मिलित प्रभाव है और इस सम्मिलित प्रभाव से हम वक्ता के संबंध में तथा जिस समय वह बोल रहा है, उस समय के उसके भावों और भावनाओं के संबंध में अपना निर्णय लेते हैं।

## सारांश

१. वायु-दबाव के परिवर्तन, जिन्हें ध्वनि-तरंगें कहते हैं, मानव-श्रवण के उद्दीपन हैं। सब ध्वनि-तरंगों का चाहे वे जितनी जटिल हों, ज्या-तरंगों में विश्लेषण हो सकता है। इनमें से प्रत्येक की कुछ निश्चित आवृत्ति और प्रबलता होती है। सरल ज्या-तरंगें शुद्ध-स्वर कहलाती हैं। शोरगुल वे ध्वनि-तरंगें हैं, जिनमें अनेक आवृत्तियों का कम या अधिक बेतरतीब मिश्रण होता है।

२. तारत्व एवं तुमुलता, यद्यपि क्रम से आवृत्ति और प्रबलता से सह-संबंधित हैं, ध्वनि के मनोवैज्ञानिक गुण हैं।

३. ध्वनि-तरंगें वाह्यकर्ण की नलिका में प्रवेश करती हैं और कर्णपटह में कंपन उत्पन्न करती हैं। यह कंपन अस्थियों के माध्यम से आंतरकर्ण को पारेषित किया जाता है, जिसमें श्रवण अंग, कर्णावर्त अवस्थित है।

४. कर्णावर्त में ध्वनि-तरंगें तरल पदार्थ के मध्य से भ्रमण करते हुए आधार कला को मोड़ती हैं और श्रवण-स्नायु आवेगों को उद्दीप्त करती हैं। सामान्यतः वह स्थल जहाँ आधारकला मुड़ती है, तारत्व को नियंत्रित करता है और मुड़ने की मात्रा तुमुलता को नियंत्रित करती है।

५. श्रवण की एक निम्नसीमा है, जिसके नीचे हम ध्वनियों को सुनने में असमर्थ हैं। यह सीमा मध्य आवृत्तियों के स्वरों के लिए उच्च या निम्न आवृत्तियों की अपेक्षा कम है। दूसरी ओर, एक उच्च सीमा है, जिसके ऊपर ध्वनियाँ पीड़ा उत्पन्न कर देती हैं। किंतु, तुमुलता में कोई वृद्धि नहीं होती। यह सब आवृत्तियों के लिए लगभग समान रहती है।

६. आवृत्ति और प्रबलता के अंतरों को स्पष्ट करने की योग्यता की भी सीमा है।

७. एक ध्वनि के दूसरी ध्वनि को आच्छादित करने से श्रवण अधिक कठिन हो जाता है।

८. यदि दो स्वरों के प्रसंवादी एक साथ 'संगति' में रखे जाएँ, तो संवादी के सदृश उनके ध्वनित होने की संभावना है। यदि वे नहीं होते, तो उन्हें असंवादी समझना चाहिए।

९. ध्वनि-दिशा के तीन प्रमुख संकेत हैं - १. ध्वनि के पहुँचने का काल, २. प्रबलता और ३. कला—ये सब ध्वनि के दोनों कानों तक पहुँचने के अंतर पर निर्भर करते हैं। दूरी के संकेत मुख्यतः एक ही कान पर निर्भर करते हैं, वे हैं, (अ) प्रबलता और (ब) आवृत्ति संघटन।

१०. बधिरता पर्याप्त प्रचलित है। दो प्रमुख भेद हैं: संवहन-बधिरता, इसमें आंतरकर्ण तक ध्वनियों के संवहन की कमी रहती है और स्नायु-बधिरता में आधार-कला या श्रवण-तंत्रिका में कोई दोष रहता है। स्नायु-बधिरता निम्न स्वरों की अपेक्षा उच्च स्वरों में अधिक होती है और वृद्धावस्था में यह प्रायः हो जाती है।

११. यह निश्चित नहीं है कि घ्राण-संवेदन के कितने प्रकार हैं, यद्यपि अधिकांश गंधों को चार या छह में वर्गीकृत किया गया है। स्वाद के चार मूल प्रकार प्रतीत होते हैं—मधुर, नमकीन, खट्टा और कटु।

१२. स्वाद की अपेक्षा घ्राण कहीं अधिक उग्र या तीव्र है, कभी-कभी पह्-चान के लिए प्रति लिटर वायु में इसके केवल कुछ अणुओं की अपेक्षा रहती है। दोनों संवेदनों में सतत् उद्दीपन के प्रति पर्याप्त तीव्रता से अनुकूलन होता है।

१३. त्वचा से संबंधित चार प्रमुख संवेदन हैं—१. ताप, २ शीत, ३. दबाव और ४. पीड़ा। इन संवेदनों के संग्राहकों के रूप में अतिविशिष्ट प्रकार की गठन या बनावट को स्वीकार किया गया है। सर्वाधिक प्रतिष्ठित तथ्य यह है कि मुक्त स्नायु अंतांग पीड़ा के संग्राहकों का कार्य कर सकते हैं। त्वचा के अन्य संवेदनों की अपेक्षा पीड़ा कम तीव्रता से अनुकूलित होती है।

१४. अंतःसंवेदनाओं में मुख्यतः गतिबोधक और प्रघाण संवेदनाएँ हैं।

(अ) गतिबोधक संग्राहक मांसपेशियों, टैंडनों और जोड़ों में पाए जाते हैं। इन संग्राहकों से आने वाले आवेग शारीरिक स्थिति और समन्विति को प्रायः स्वतः नियंत्रित बना देते हैं।

(ब) प्रघाण संवेदन इंद्रियाँ सिर में कर्णावर्त के निकट और आंतरकर्ण में अवस्थित हैं। वे सिर के घूर्णन या उसकी स्थिति के परिवर्तन के प्रति अनुक्रिया करती हैं और संतुलन की संवेदना देती हैं।

१५. गतिजन्य रुग्णता प्रघाण इंद्रियों के उद्दीपन से स्वतः उत्पन्न विकार है।

१६. औसत रूप में वाणी ध्वनियों में उच्च आवृत्तियों की अपेक्षा निम्न आवृत्तियाँ अधिक होती है।

१७. इस तथ्य के उपरांत भी निम्न आवृत्तियों की अपेक्षा उच्च आवृत्तियाँ वाणी के अर्थ-ग्रहण में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसका प्रमुख कारण है कि व्यंजन ध्वनियाँ उच्च और स्वर ध्वनियाँ निम्न होती हैं और अर्थवत्ता के लिए व्यंजन ध्वनियाँ अधिक आवश्यक होती हैं।

१८. इसी हेतु वाणी ध्वनियों की सीमा से कुछ दशिबलों को वाणी की अर्थवत्ता को बिना आघात पहुँचाए पृथक् किया जा सकता है। यदि इस सीमा-संघटन के उपरांत वाणी का प्रवर्द्धन किया जाए, तो वाणी की अर्थवत्ता में वस्तुतः सुधार हो जाता है। दूसरी ओर, यदि दशिबलों का केंद्र-संघटन किया जाए, तो इससे वाणी अर्थहीन हो सकती है।

१९. अथवत्ता से भिन्न व्यक्ति की वाणी का गुण प्रबलता, गत्यात्मक विन्यास, मल तारत्व और वार्ता-गति पर निर्भर करता है।

## पठनार्थ सुझाव :

Bekesy, G. Von. Experiments in Hearing. New York : Mc-Graw-Hill,—1960.

श्रवण पर महत्त्वपूर्ण आधुनिक प्रयोगों का सचित्र विवरण, विशेषतः कर्णावर्त की क्रिया का।

Chapanis, A., Garner, W. R., and Morgan C. T., Applied Experimental Psychology. New York : Wiley, 1949.

इस ग्रंथ में श्रवण और उसके व्यावहारिक स्वरूप पर महत्त्वपूर्ण अध्याय है।

Davis, H. (ed.) Hearing and Deafness. New York; Holt, Rinehart and Winston, 1947.

श्रवण और बधिरता की समस्याओं का विस्तृत सर्वेक्षण, विशेष रूप से सामान्य बुद्धिमान व्यक्ति के लिए लिखित ग्रंथ।

Fletcher, H. Speech and Hearing in Communication, New York: Van Nostrand, 1953.
वार्तालाप की दृष्टि से वाणी और श्रवण पर महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ।

Geldard, F. A. The Human Senses, New York : Wiley 1953.
सब संवेदनाओं पर परिचयात्मक पुस्तक ।

Hirsh, I. J. The Measurement of Hearing. New York : McGraw-Hiil, 1952.
श्रवण-परिमापन का शारीरिक और मनोवैज्ञानिक विवरण ।

Moncriff, R. W. The Chemical Senses. New York : Wiley-1946.
रासायनिक संवेदनाओं पर शोधपूर्ण विवेचन और सारांश ।

Morgan, C. T. and Stellar, E. Physiological Psychology (2nd Ed.) New York; McGraw-Hill, 1950.
इस ग्रंथ में श्रवण और अन्य संवेदनाओं पर अनेक अध्याय हैं ।

Osgood, C. E. Method and Theory in Experimental Psychology. New York : Oxford University Press, 1953.
श्रवण और अन्य संवेदनाओं के सिद्धांत एवं प्रयोग ।

Stevens, S. S. and Davis, H. Hearing. New York : Wiley-1938
श्रवण पर शरीर-क्रियात्मक और मनोवैज्ञानिक अध्ययन का सारांश ।

Wever, E. G. Theory of Hearing. New York : Wiley, 1949.
श्रवण के शरीर क्रियात्मक आधार का विश्लेषण ।

Wolff, H. G., and Wolf, S. Pain. Springfiled, III—Charles C. Thomas, 1948.
पीड़ा के विविध रूपों पर एक लघु पुस्तक ।

Woodworth, R. S. and Schlosberg, H. Experimental Psychology (Rev. Ed.) New York : Holt Rinehart and Winston, 1954.
इस प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की मानक पुस्तक में विभिन्न संवेदनाओं पर अनेक अध्याय हैं ।

—:o:—

# भाग : ५

मनोवैज्ञानिक मापन

बुद्धि और अभिक्षमता

व्यक्तित्व

अध्याय १३

# मनोवैज्ञानिक मापन

विज्ञान की उन्नति प्राय: मात्रामूलक विधियों के विकास पर निर्भर करती है। इस प्रकार की विधियों के अभाव में विज्ञान अपरिपक्व प्रेक्षण तथा वर्गीकरण तक ही सीमित रह जाता है। उनकी सहायता से विज्ञान-संबंधी आँकड़ों से प्राप्त परिणामों का विकास एवं परिमार्जन संभव है। एक साधारण-सा उदाहरण लीजिए, लोग सदा से जानते आए हैं कि जब पत्थर को ऊपर से छोड़ा जाता है, तब वह नीचे गिरता है, किंतु भौतिकी का विज्ञान के रूप में तब तक विकास नहीं हुआ, जब तक प्रारंभिक वैज्ञानिकों ने पत्थर की पतनगति, एक निश्चित समय में उसके गिरने की दूरी और यह कि पत्थर भी सेब अथवा पंखों की गति से गिरते हैं या किसी अन्य गति से, इत्यादि बातों को मापना प्रारंभ नहीं किया।

मनोविज्ञान की भी स्थिति बहुत कुछ वैसी ही है। पुराने जमाने के लोग भी इस तथ्य को जानते थे कि कुछ लोग मंद बुद्धि और कुछ तीव्र बुद्धि होते हैं, कुछ साहसी होते हैं और कुछ कायर या दब्बू। परंतु, मनोविज्ञान तभी से विज्ञान का रूप ग्रहण करने लगा, जब उसने इस प्रकार की भिन्नताओं को मापने की विधियों की जानकारी प्राप्त कर ली। इन विधियों का प्रयोग बहुतों पर करने के पश्चात् ही तत्संबंधी भविष्यकथन किए जाने लगे।

मापन-संबंधी समस्याएँ सभी विज्ञानों के लिए प्राय: एक-सी ही हैं। किंतु, मनोवैज्ञानिक और व्यवहार विज्ञानवेत्ता प्राय: सभी अन्य भौतिक वैज्ञानिकों की अपेक्षा संभवत: मापन-सिद्धांत पर अधिक बल देते हैं। इसका कारण है, जिन तथ्यों को वे मापना चाहते हैं, उनमें बहुत ऐसे जटिल हैं कि उन्हें भौतिक तराजू पर मापा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए 'साहस' और 'मेज' ( Table ) को लीजिए, ये दोनों समान वस्तुएँ नहीं हैं। मेज की लंबाई किसी गज से नापी जा सकती है, परंतु किसी व्यक्ति के साहस को मापने वाला ऐसा कोई साधन नहीं है। मनोविज्ञान से संबंधित प्रत्येक वस्तु को मापना साहस मापने के ही समान कठिन नहीं है, पर यह सत्य है कि अधिकांश कुछ वैसा ही कठिन है। यही कारण है कि

मनोवैज्ञानिकों तथा व्यवहार विज्ञानवेत्ताओं ने नए प्रकार की मापन-प्रणालियों एवं मापन परिणाम व्यक्त करने की विधियों के आविष्कार की आवश्यकता समझी है।

इस पुस्तक में व्यक्तित्व, बुद्धि तथा अभिवृत्ति-जैसे विषयों को मापन की विकसित विशेष प्रविधियों का वर्णन अन्यत्र किया गया है। इस अध्याय में मनोवैज्ञानिक परिमापन के सामान्य नियमों का तथा मनोवैज्ञानिक दत्त-सामग्री की व्याख्या के लिए सांख्यिकीय विधियों और अवधारणाओं का वर्णन किया जाएगा।

ऐसा देखा जाता है कि प्रारंभिक मनोविज्ञान की जानकारी प्राप्त कर लेने के पश्चात् बहुत से विद्यार्थी सांख्यिकीय संप्रत्ययों ( Statistical Concepts ) का अध्ययन करना नहीं चाहते हैं। कुछ मामलों में तो मनोविज्ञान के गणित-संबंधी सूत्रों को जानने-समझने की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए, मूल विषयों को समझाने के लिए इस अध्याय में शब्दों तथा मानचित्रों का ही आश्रय लिया गया है। हाँ, अध्याय के अंतिम भाग में परिकलन-संबंधी सूत्रों एवं विधियों को जोड़ दिया गया है। यह अंश उन लोगों के लिए लाभकर होगा, जो शब्दों की अपेक्षा सूत्रों को अधिक पसंद करते हैं और जिन्हें वर्णित सांख्यिकीय विधियों के उपयोग का अवसर सुलभ है।

## मापन-विधि के प्रकार :

मापन-विधि की निम्नांकित परिभाषा साधारणतया स्वीकृत है : **वस्तुओं अथवा घटनाओं को निश्चित नियमों के अनुसार अंक-रूप में व्यक्त करना 'मापन' है।** ( गिलफोर्ड, १९५४ )। साधारण रूप में इसका अर्थ यह हुआ कि किसी वस्तु का माप करते समय हम उसकी तुलना किसी मापदंड—रूलर, तराजू, घड़ी अथवा आदमी की आँख से करते हैं और उसे अंकों में व्यक्त करते हैं। वह निर्धारित अंक उन नियमों पर निर्भर करते हैं जिन्हें हम तुलना करने में काम में लाते हैं। ये नियम मापन-अभिप्राय अथवा प्रयुक्त मापन-साधन के अनुसार बदलते रहते हैं। इस प्रकार के अनेक नियमों के प्रकार संभव हैं, किंतु उनमें से यहाँ हम तीन को ही चुनेंगे, (देखिए, चित्र १३.१)। कुछ लेखक (स्टीवेंस, १९५१ ) तीन की जगह चार नियमों के पक्ष में हैं, किंतु चौथा नियम, जो नीचे दिया जाएगा, तीसरे का परिष्कृत रूप समझा जाना चाहिए।

## शाब्दिक मापन : Nominal

किन्ही वस्तुओं को परस्पर भिन्न वर्गों में इस प्रकार अलग कर देना कि प्रत्येक वर्ग की सारी वस्तुएँ किसी-न-किसी रूप में मिलती-जुलती हों, सामान्य मापन है। यदि हम मिले-जुले फलों की टोकरी में से केले, नींबू या सेव आदि की अलग-अलग

ढेरियाँ लगा दें, तो यह सामान्य मापन के अंतर्गत आने वाले वर्गीकरण का एक प्रकार होगा और इस मापन-क्रिया को पूर्ण रूप देने के लिए मात्र आवश्यकता है कि फलों के प्रत्येक वर्ग को किसी-न-किसी संख्या के रूप में प्रकट कर दिया जाए। जैसे, केले—केले वर्ग—१, नींबू—वर्ग—२ और सेव—वर्ग—३। इस तरह संज्ञा के स्थान पर संख्या का उपयोग होगा और इसका कोई वैज्ञानिक महत्त्व नहीं होता, फिर भी वह सामान्य मापन का क्रम-निर्देशन करता है।

परिमापन के अंतर्गत वस्तुओं की गणना एवं उनके क्रम आते हैं।

चित्र १३.१ मापन के तीन प्रकार

वैज्ञानिक प्रयोग के अनुसार शाब्दिक मापन-विधि का उपयोग समूहों को वर्गीकृत करने में किया जाता है, जो स्वतंत्र चर के रूप में प्रयुक्त होते हैं। वर्ग १ प्रयोगात्मक समूह हो सकता है, और वर्ग २ नियंत्रित समूह। उनके वर्गीकरण के दृष्टिकोण भिन्न हो सकते हैं। लिंग-भेद की दृष्टि से तुलना करने पर पुरुषों का एक, और स्त्रियों को दूसरा वर्ग होगा। अथवा, अनेक महाविद्यालयों के स्नातकों द्वारा प्राप्त योग्यता के आधार पर उन्हें भिन्न-भिन्न वर्गों वर्ग १, वर्ग २, वर्ग ३ इत्यादि, में बाँटा जा सकता है। दूसरी ओर, शाब्दिक मापन-विधि का उपयोग सामान्य परतंत्र चर के वर्गीकरण के लिए किया जा सकता है। सफल-असफल, पक्ष-विपक्ष, रुचि-अरुचि—जैसे सरल वर्ग, जो प्राय: परतंत्र चर हैं, भी अनिवार्यतः सामान्य मापन हैं।

मनोविज्ञान तथा सामाजिक विज्ञानों में सामान्य मापन का सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण उपयोग उन परीक्षणों में है, जिनकी सहायता से अधिकाधिक मिश्रित माप-समूहों का वर्गीकरण संभव होता है। उदाहरण के लिए, प्रायः सभी प्रकार के वस्तुगत परीक्षण अथवा प्रतिभा एवं व्यक्तित्व-संबंधी परीक्षण में उपयुक्त विधियों की इकाइयाँ सामान्य मापन के अंतर्गत आती हैं। प्रत्येक इकाई भिन्न वस्तुओं में से परस्पर समान वस्तुओं के पृथक्-पृथक् वर्ग निश्चित करने के काम आती है। जैसे, अ, ब, स, अथवा द, अथवा 'समान' या 'असमान', अथवा 'चिंता' या (निश्चिंतता)। किसी एक का चुनाव करके व्यक्ति उन विषयों में किसी-न-किसी वर्ग में अपना स्थान पा लेगा। विशिष्ट परीक्षण में वह निश्चय ही ऐसे अनेक चुनाव कर सकता है। इनकी गणना किसी अंकन-नियम के अनुसार की जा सकती है और एक व्यक्ति की गणना की तुलना दूसरे की गणना से की जा सकती है।

**क्रमसूचक मापन :** Ordinal

जैसा कि इस शीर्षक से स्पष्ट क्रमसूचक माप का अर्थ है किसी विशेषता-वास्तविक, अथवा केवल वैसी दिखायी देने वाली—के आधार पर वस्तुओं को क्रमबद्ध करना। क्रमसूचक मापन के लिए एक विधि है, युग्मपरक तुलना ( Paired Comparison )। इस विधि की पहली क्रिया ऊपर बताए गए श्रेणी-करण के समान ही है। दो-दो वस्तुओं की एक साथ तुलना की जाती है, और 'बड़े-छोटे', 'समान-असमान' अथवा 'सहमति-असहमति' आदि-जैसे निर्णय पर पहुँचा जाता है। दो वस्तुओं की परस्पर तुलना करने पर उन दोनों में से एक की किसी तीसरी वस्तु से तुलना की जा सकती है। यही प्रक्रिया सभी विचारणीय वस्तुओं के संबंध में की जा सकती है।—(देखिए, सारणी १३·१)। इस क्रिया के पश्चात् यह गिना जा सकता है कि प्रत्येक वस्तु कितनी बार दूसरी के ऊपर या नीचे क्रमानुसार रखी गई। और तब सारी वस्तुओं को क्रमानुसार रखा जा सकता है। अभिवृत्ति-मापन तथा अन्य परीक्षणों के लिए मनोविज्ञानवेत्ता इस विधि से प्रायः काम लेते हैं।

क्रमसूचक मापन की इससे भी सीधी विधि यह है कि वस्तुओं को कोटि-क्रम (Rank order) के अनुसार क्रमबद्ध किया जाए। अपनी अभिरुचि के अनुसार आप कोटिक्रम का ध्यान रखते हुए सेव, नारंगी, केले, बेर, नाशपाती और खूबानी को सज्जित कर सकते हैं। यदि नारंगी को १, केले को २ और बेर को ३ की और इसी प्रकार अन्य फलों को, क्रम-संख्या देते हैं, तो ऐसा करने से उन फलों के संबंध में आपकी पसंद का क्रमसूचक माप हो जाता है। सरल होने के कारण क्रमसूचक माप की इस विधि का उपयोग मनोविज्ञान तथा सामाजिक विज्ञानों

में प्राय: किया जाता है। साधारणतया, यह विधि युग्मपरक तुलना की भाँति विश्वसनीय नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि कोटि क्रम से सजाते समय सभी वस्तुओं के प्रति समान ध्यान नहीं दिया जा सकता और इसलिए उनके साथ न्याय होने की संभावना नहीं है। उधर युग्मपरक तुलना की विशेषता यह है कि उसके अनुसार एक बार में केवल दो वस्तुओं के विषय में निष्पक्ष निर्णय दिया जाता है। इसकी और भी विशेषताएँ हैं, जिन्हें आगे बताया जाएगा। क्रमसूचक माप को तीसरे प्रकार के माप में बदल देने में वे वैज्ञानिक को सहायता पहुँचाती हैं।

सारणी १३.१

| | गाजर | पालक | लंबी फलियाँ | मटर | मक्का |
|---|---|---|---|---|---|
| गाजर | .५० | .४९ | .५७ | .७१ | .७६ |
| पालक | .५१ | .५० | .६३ | .६८ | .६३ |
| लंबी फलियाँ | .४३ | .३७ | .५० | .५३ | .६४ |
| मटर | .२९ | .३२ | .४७ | .५० | .६३ |
| मक्का | .२४ | .३७ | .३६ | .३७ | .५० |
| कुल पसंद | १.९७ | २.०५ | २.५३ | २.७९ | ३.१६ |

**सारणी १३.१ सब्जियों की युग्मित तुलना। एक सौ व्यक्तियों को एक साथ दो-दो सब्जियाँ देकर उनकी पसंद पूछी गई। युग्मों के सभी संभावित मिश्रण प्रस्तुत किए गए। प्रत्येक स्तंभ में लिखित संख्या समय के उस अनुपात को प्रकट करती है, जब ऊपर लिखित सब्जियों को पार्श्व में लिखित सब्जियों से अधिक पसंद किया गया (गिलफर्ड के आधार पर, १९५४)।**

## आंतर या अंतराल माप (Interval Measurement) :

एक वस्तु से दूसरी की भिन्नता की मात्रा का माप **आंतर-मापन** कहा जाता है। तापमान के अध्ययन में इस माप का परिचित उदाहरण मिलता है। दो प्रकार की मापनी काम में लायी जाती है—घरेलू और व्यापार-संबंधी कामों में फारेनहाइट मापनी का उपयोग किया जाता है और वैज्ञानिक माप में सेंटीग्रेड मापनी का। (देखिए, चित्र १३.२) फारेनहाइट थरमामीटर के निशानों के अनुसार ३२°F जल का हिमांक (Freezing Point) और २१२°F उसका क्वथनांक (Boiling Point) है। उनके बीच की संख्याएँ सूचक द्रव (Indicator liquid) के प्रसरण

अथवा संकुचन की द्योतक हैं। द्रव में १.२ मिलीमीटर अथवा विशेष न्यूनाधिक अंतर होने पर ताप मात्रा में १° का अंतर पड़ जाता है, चाहे वह अंतर O और १°, ५३° और ५४° अथवा १५४° तथा १५५° के बीच हो। तापमापक यंत्र पर के ये समान अंतर तापसूचक द्रव के व्यवहार के समान अंतर के सूचक हैं। सेंटीग्रेड थरमामीटर पर भी वही बात लागू होती है।

बहुत से भौतिक मापों में तो नहीं, किंतु ताप-मापों में जिस बात की कमी होती है, वह है 'शून्य' के स्थान का ज्ञान। ऐसा होता है कि हम पता लगा लेते हैं कि २७३°C अथवा ४६०°F के आसपास ताप शून्य-बिंदु है, किंतु फारेनहाइट या सेंटीग्रेड थरमामीटर से ऐसा बोध नहीं होता है। वे मात्र इतना ही करते हैं कि दो तापमात्राओं का अंतर व्यक्त कर देते हैं। रूलर अथवा स्टापवाच ही ऐसे मापक हैं, जो वास्तविक शून्य-बिंदु निर्देश करते हैं। **अंतराल मापनी** (Interval scales) से भिन्न इन माप-साधनों को **अनुपात मापनी** की संज्ञा दी गई है; क्योंकि जब किसी माप-यंत्र में शून्य बिंदु ठीक-ठीक स्थिर कर लिया जाता है, तब भिन्न-भिन्न समान अनुपात वास्तव में समानुपातों का संकेत करने लगते हैं।

उदाहरण लीजिए, भारमापन यंत्र के अनुसार १०० पौंड और ७५ पौंड के बीच वही अनुपात है, जो १६० और १२० पौंड के बीच। किंतु, थरमामीटर, जैसी अंतराल मापनी के अनुसार ऐसा नहीं है। थरमामीटर में ५०°F जिस ताप का बोध देता है, उससे दूने ताप का बोध १००°F नहीं देता। सेंटीग्रेड मापन यंत्र पर यह असंगति और स्पष्ट हो जाएगी। चूँकि १००°F बराबर है ३८°C के और ५०°F बराबर १०°C के, आप देखेंगे कि ३८°C, १०°C का दूना नहीं है। जब आप ऐसा परिवर्तन करते हैं, तब तापमात्रा में कोई परिवर्तन नहीं करते, उनका केवल माप बदल देते हैं।

एक भौतिक विज्ञानविद् के लिए यह तथ्य बहुत महत्त्वपूर्ण है, चाहे वह अंतराल-माप-विधि का उपयोग करे, चाहे अनुपात-विधि का। मनोवैज्ञानिक के लिए वह साधारणतया ऐसा नहीं है। अंतर केवल इसी बात में है—माप ठीक शून्य बिंदु से संबंधित है या नहीं। मनोवैज्ञानिक अथवा व्यावहारिक मामलों में शून्य कदाचित् उपयोगी होता है। हमारा संबंध मुख्य रूप से व्यक्तियों की पारस्परिक भिन्नताओं अथवा उन विभिन्नताओं के आपसी संबंधों से रहता है। और भी, अनुपात-माप में लागू होने वाली कोई सांख्यिकीय विधि अंतराल-माप में भी लागू होती है। इस प्रकार अंतराल-मापन-विधियाँ किसी भी मनोवैज्ञानिक माप के लिए नितांत उपयुक्त हैं।

अंतराल-मापक पर समान अंतर समान प्रकट होते हैं।
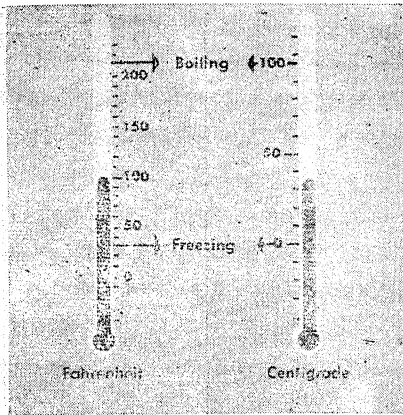
चित्र १३.२ अंतराल मापक के रूप में फारेनहाइट और सेंटीग्रेट तापमान-मापक। इन मापकों पर संख्या में समान अंतर तापमान में भी समान अंतर को प्रकट करता है, किंतु यह नहीं कहा जा सकता कि ६०° तापमान ३०° से दुगना गर्म है।

## मापन की उपयोगिताएँ :

जिन तीन माप-विधियों का वर्णन अभी किया गया है, उनसे प्राप्त सूचनाओं की मात्राओं में अंतर है। सामान्य माप से केवल यही पता चलता है कि अमुक वस्तु अपने गुण के अनुसार किस श्रेणी में आ सकती है। क्रमसूचक माप से इससे अधिक जानकारी प्राप्त होती है। इससे पता चलता है कि एक वस्तु में दूसरी वस्तुओं की अपेक्षा एक या अधिक विशेषताएँ हैं। किंतु, उन विशेषताओं की न्यूनता अथवा अधिकता की मात्रा का पता उससे नहीं लगता है। अंतर-मापन-विधि से उसकी ठीक-ठीक जानकारी हो जाती है, उससे दो वस्तुओं की भिन्नता की मात्रा का ज्ञान हो जाता है।

ऐसे अवसर आते हैं, जब किसी व्यक्ति का विवरण देने अथवा उसके विषय में भविष्यकथन करने के लिए उसके संबंध में हम अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं। इन विषयों में हम अंतराल-मापन-विधि का उपयोग करना पसंद करते हैं। वजन, ऊँचाई या समय आदि भौतिक इकाइयों के रूप में मानव-व्यवहार की माप करते समय हम उन्हें अथवा उनसे श्रेष्ठतर माप स्वतः प्राप्त कर लेते हैं। और दूसरी ओर तथ्य यह है कि बुद्धि-परीक्षण या अभिरुचि-मापन जैसे साधनों के द्वारा प्राप्त मनोवैज्ञानिक मापकों से अंतराल-मापक की स्वतः प्राप्ति नहीं होती।

अंतराल-मापन की प्राप्ति के लिए माप का कार्य सामान्य मापन, जो अधिकांश मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विषयों का होता है, से आरंभ करना चाहिए अथवा क्रमसूचक माप से, जो क्रम-निर्धारण मान में उपयोग में लाया जाता है। तब ऐसे

मापों का मिश्रण किया जाता है और कभी-कभी विशेष सांख्यिकीय प्रविधियों की सहायता से, सामान्य अथवा क्रमसूचक मापों को अंतराल-माप में बदल दिया जाता है। जिन दो विधियों से यह क्रिया संपन्न की जा सकती है, उनका संकेत पहले ही कर दिया गया है। तीसरे तरीके के लिए प्रसंभाव्यता सिद्धांत ( Theory of Probability ) की आवश्यकता होती है। उसका वर्णन आगामी अनुभाग में किया जाएगा।

मापों के उपयोग के विषय में और दो बातें आवश्यक हैं। एक तो यह कि कुछ प्रयोजनों के लिए शाब्दिक अथवा क्रमसूचक माप पर्याप्त हैं। उदाहरण लीजिए, यदि यह जानना हो कि ऊँचे स्तर की अभिवृत्ति वाले किसी विशेष प्रकार के प्रशिक्षण में अपने से नीचे स्तर के व्यक्तियों से अधिक सफल होते हैं, तो इसके लिए शाब्दिक अथवा क्रमसूचक माप अधिक स्पष्ट अंतराल-माप के समान उपयुक्त होगा। वास्तव में, कभी-कभी मिश्रणों को सरल करने के लिए अनुसंधानकर्त्ता मूलतः अंतराल-मापों को क्रमसूचक मापों के रूप में ला देते हैं और परिणाम में कोई अंतर नहीं होता है।

दूसरी बात यह है, किसी व्यक्तिविशेष के व्यवहार को बताने अथवा परिणामों का संक्षेप करने के लिए जिन आँकड़ों का उपयोग किया जा सकता है, वे मापन के उन प्रकारों पर निर्भर करते हैं, जिन्हें हम काम में लाते हैं। कुछ सांख्यिकीय माप जैसे गणितीय औसत, क्रमसूचक परिमापन के लिए उपयुक्त नहीं होते। इसका विवेचन हम इसी अध्याय में आगे परिमापन-समूहों के संक्षेपण की विधियों के प्रसंग में करेंगे।

## मापों के विभाजन (Distribution of Measurements) :

सब प्रकार के प्रयोजनों के लिए किसी एक प्रकार का माप उपयोगी सिद्ध नहीं होगा। थर्मामीटर से तापमात्रा जानी जा सकती है, किंतु वह ठीक रूप से तभी जानी जा सकती है, जब हम उसे कई बार नापें और प्राप्त परिणाम की तुलना दूसरे प्रसंभाव्य परिणामों से करें। किसी भी परिणाम की व्याख्या करने के लिए निर्देश तंत्र ( Frame of Reading ) है ही। मनोविज्ञान के क्षेत्र में केवल एक माप विशेष उपयोगी नहीं होता, वरन् किसी भी प्रकार के अनेक परिमापनों की हमें आवश्यकता होती है। यदि विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों का अध्ययन करना हो, तो एक माप की दूसरे मापों से तुलना करने के लिए पर्याप्त माप परिणाम चाहिए, ताकि उनसे निर्देश-तंत्र ( Frame of Reference ) तैयार हो सके। विविध प्रकार के प्रयोजनों की बात छोड़ भी दी जाए, तो भी किसी प्रकार के संयोग या पूर्वाग्रह-ग्रसित

परिणामों से बचने के लिए अनुसंधान करते समय अपेक्षाकृत बड़ी संख्या में मापों की आवश्यकता होगी ।

जब किसी उक्त प्रकार के अनेक माप प्रस्तुत हो जाते हैं, तब सवाल उठता है कि अब उनका क्या किया जाए ? वास्तव में बहुधा ऐसा होता है कि सांख्यिकीय विद्या से अनभिज्ञ व्यक्ति बहुत से आँकड़ों का संकलन कर लेता है, तब वह किसी मनोवैज्ञानिक अथवा संख्याविद् के पास जाकर निस्संकोच पूछता है—'अब मैं क्या करूँ ?' किंतु, सवाल करने में कुछ विलंब होता है; क्योंकि जो काम इन आँकड़ों से लिया जाता, वह उनके एकत्रित करने पर ही निर्भर है। मापों के प्रकार के आधार पर वे कई रूपों में वर्गीकृत किए जा सकते हैं। आगे इस अध्याय में मनोवैज्ञानिक परिमापनों के सांख्यिकीय क्रम-निर्धारण के विषय में लिखा जाएगा ।

## आवृत्ति या बारंबारता की गणना ( Counting of Frequencies ) :

साधारणतया पहला काम होगा मापों को व्यवस्थित करने की किसी विधि का ज्ञान प्राप्त करना, ताकि उनका ठीक रूप जाना जा सके। इसके लिए आवृत्तियों की गणना की जाती है। अर्थात् किसी निर्धारित प्रकार के मापों की संख्या कितनी है, इसका निश्चय किया जाता है। सामान्य माप के लिए यह तरीका सरल है। करना इतना ही है कि इन मापों से संबंधित जिन श्रेणीक्रमों का उपयोग किया गया है, उनके अंतर्गत आने वाले विषयों की गणना कर ली जाए। व्यापक अभिरुचि के अनुकूल अनेक मापों के लिए साधारणतया ऐसी गणना काम में लायी जाती है : मार्च महीने में खरीदी गई मोटरगाड़ियों की संख्या उन लोगों की संख्या जो कहते हैं कि वे आगामी चुनाव में गणतंत्र के पक्ष में वोट देंगे, उन व्यक्तियों की संख्या जो गंधहीन साबुन पसंद करते हैं—इत्यादि ।

यह प्रश्न प्रायः उठता है कि गणना के लिए पूर्ण अर्थात् यथार्थ अंकों का उपयोग किया जाना चाहिए अथवा उनके प्रतिशत रूपों का बहुत से विषयों में, और विशेषतः उनमें जिनमें केवल थोड़े से वर्गों के संबंध में सामान्य माप काम में लाया जाता है, वस्तुओं की संपूर्ण संख्या ( Total number ) पर ध्यान नहीं दिया जाता। किसी श्रेणी के व्यक्तियों अथवा वस्तुओं का सापेक्ष समानुपात ही महत्त्वपूर्ण और हमारे काम का है। यदि बात ऐसी ही है, तब तो यही उचित है कि बारंबारता अथवा आवृत्ति की जगह प्रत्येक श्रेणी की संख्या में पूर्ण संख्या से भाग देकर प्रतिशत के रूप में फल निकाल लिया जाए। ऐसा करते समय एक बात ध्यान में रखनी होगी—प्रतिशत का अर्थ है प्रत्येक सौ, तो 'प्रतिशत' का हिसाब वहीं काम में लाना चाहिए, जहाँ वस्तुओं की संख्या एक सौ के आसपास या उससे अधिक हो। छोटी

संख्याओं, जैसे ३०, पर प्रतिशत का हिसाब लगाने से गलती की अधिक संभावना है; क्योंकि उसमें ३ प्रतिशत का भी अंतर हो सकता है, जो वास्तविकता से बहुत दूर है।

शाब्दिक तथा अंतराल मापों की गणना की जा सकती है, लेकिन उसमें एक और क्रम निहित है, जिसके विषय में अभी कहा जाएगा। सामान्य मापों की गणना कर लेने के पश्चात् अनुसंधानकर्त्ता उनका एक चार्ट बना लेना चाहता है, ताकि और लोग परिणामों को आसानी से समझ सकें। जितने अनुसंधानकर्ता होंगे, उतने ही प्रकार के चार्ट हो सकते हैं, किंतु साधारणतया उनके दो बुनियादी प्रकार उपयोग में लाए जाते हैं। पहला है पाई चार्ट (Pie Chart) जो 'प्रतिशत' में परिवर्तित आँकड़ों की गणना के लिए उपयुक्त है। केवल एक गोला लिया जाता है, 'पाई के टुकड़े' लिए जाते हैं, जो निर्धारित वर्ग के अंतर्गत आने वाले विषयों के तदनुरूप होते हैं, और तब वर्गों पर लेबल लगाए जाते हैं। पाई चार्ट से पाठक डालर आदि किसी भी श्रेणी की वस्तुओं का साक्षेप समानुपात जल्दी से जान लेता है। दूसरा साधारण चार्ट है—बारग्राफ ( Bargraph ) अथवा अधिक तकनीकी भाषा में आयत-चित्र ( Histogram ) कहते हैं। साधारण गणना अथवा प्रतिशत के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। यह सीधी रेखाओं की सापेक्ष ऊँचाइयों के 'प्रतिशत' अथवा गणना का प्रतिनिधित्व मात्र करता है।

## आवृत्ति-वितरण (Frequency Distribution) :

आवृत्तियों की गणना की विधि और उन्हें आयत-चित्र रूप में प्रस्तुत करना ही अंतराल-परिमापन के प्रयोग का भी सबसे सरल तरीका है। जैसा पहले संकेत किया गया है, इसमें एक और क्रम अपेक्षित है। मापने के काम में लायी हुई मापनी पर कई ऐसे चिह्न लगा देने चाहिए, जो एक दूसरे से **समान दूरी** पर हों। इस क्रम को स्पष्ट करने के लिए मोटरचालकों के प्रतिक्रिया-काल (Reaction-time) के अध्ययन का एक उदाहरण लिया जाए। इस उदाहरण में सभी माप काल के वर्गों में किए गए और उन्हें अंतराल-मापक के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

> "एक नकली मोटरगाड़ी पर प्रयोग किया गया, उसमें बैठने के लिए सीट, चालन-चक्र त्वरक यंत्र और ब्रेक पेडल सज्जित थे (चित्र १३·३)। चालक के सामने एक पट्टी थी, जिस पर पूर्व सूचना दिए बिना लाल रोशनी जलायी जा सकती थी। प्रयोग-पात्र चालक को, निदेश था कि ज्यों ही लाल रोशनी जले, वह ब्रेक पर पाँव लगा दे। लाल रोशनी और ब्रेक बिजली-परिपथ (Electrical circuit) से जुड़े हुए थे और एक बिजली-घड़ी थी, जो ठीक-

ठीक प्रतिक्रिया में लगे समय को बताती जाती थी—लाल रोशनी जलने तथा एक सेंटीमीटर तक ब्रेक को दवाने के बीच का समय। दो सौ आदमियों में से प्रत्येक पर ब्रेक-प्रतिक्रिया-काल का एक-एक बार प्रयोग किया गया। इस प्रकार प्राप्त २०० मापन सारणी १३·२ में दिए हुए हैं।"
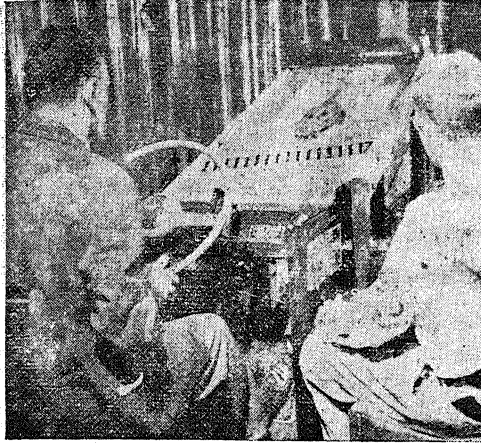
**चित्र १३.३ ब्रेक-प्रतिक्रिया काल के परिमापनार्थ एक यंत्र (अमेरिकन आटोमोबाइल एसोसिएशन)।**

कोई भी व्यक्ति सारणी, १३·२ को देखकर अनुमान कर सकता है कि औसत प्रतिक्रिया-काल ०·५० से ०.६० के आसपास था और इस प्रकार अंदाज कर सकता है कि प्रतिक्रिया-काल ०·४५ और ०.७५ सेकेंड के बीच रहा। उन्हें जानने के लिए मानचित्र को केवल देखकर अनुमान लगा लेना बहुत संतोषजनक अथवा स्पष्ट तरीका नहीं है। उससे अच्छा तरीका है, उन मापों की आवृत्ति का वितरण करना। मानचित्र १३·२-जैसे कच्चे आँकड़ों के आधार पर आवृत्ति-वितरण करने के दो क्रम हैं। पहला है वर्गांतरों को चुनना और जितने वर्गांतर हों, उतने ही विभाजक चिह्न मापक यंत्र पर लगाना। ये वर्गांतर स्वच्छंदतापूर्वक तब तक चुने जा सकते हैं, जब तक (१) अंतरों की संख्या इतनी अधिक है कि मापों का वितरण स्पष्ट देखा जा सकता है और (२) सभी वर्गांतरों का एक अंतर के आरंभ से दूसरे के आरंभ तक, विन्यास बराबर होता है। साधारणतया ऐसे १५ से २० वर्गांतर संतोषजनक होते हैं। इस उदाहरण में, ०·३६ से ०.९५ के विन्यास में, ठीक २० वर्गांतर थे और प्रत्येक अंतर ०·०३ सेकेंड का था।

## सारणी—१३.२

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ०·६५ | ०·४२ | ०·६६ | ०·७७ | ०·६१ | ०·८२ | ०·४४ | ०·६८ | ०·४८ | ०·६० |
| ०·६१ | ०·४८ | ०·६४ | ०·५८ | ०·४३ | ०·५५ | ०·७१ | ०·६२ | ०·५४ | ०·६२ |
| ०·७५ | ०·६७ | ०·४६ | ०·६६ | ०·५७ | ०·५४ | ०·७२ | ०·४३ | ०·७६ | ०·५३ |
| ०·७० | ०·७७ | ०·५८ | ०·५१ | ०·५५ | ०·७३ | ०·४१ | ०·५६ | ०·५३ | ०·४८ |
| ०·७४ | ०·४६ | ०·५७ | ०·४८ | ०·९० | ०·६[illegible] | ०·६३ | ०·६४ | ०·७५ | ०·५५ |
| ०·६९ | ०·६२ | ०·६४ | ०·५७ | ०·७३ | ०·५६ | ०·४९ | ०·६६ | ०·७० | ०·५९ |
| ०·७२ | ०·६२ | ०·६६ | ०·५६ | ०·५९ | ०·६० | ०·५७ | ०·४९ | ०·६४ | ०·६६ |
| ०·४५ | ०·८३ | ०·६९ | ०·७८ | ०·५१ | ०·५८ | ०·६६ | ०·६१ | ०·६४ | ०·५६ |
| ०·५३ | ८·६० | ०·६२ | ०·६५ | ०·६२ | ०·४४ | ०·६१ | ०·६० | ०·७४ | ०·६४ |
| ०·८५ | ०·४९ | ०·५१ | ०·३९ | ०·५८ | ०·६४ | ०·६९ | ०·६८ | ०·५२ | ०·७४ |
| ०·५५ | ०·६८ | ०·६१ | ०·४० | ०·५६ | ०·५९ | ०·४५ | ०·५९ | ०·६५ | ०·६२ |
| ०·४६ | ०·६४ | ०·३६ | ०·७२ | ०·४१ | ०·७४ | ०·५१ | ०·५८ | ०·६९ | ०·५५ |
| ०·५० | ०·५५ | ०·५६ | ०·४९ | ०·६५ | ०·५१ | ०·६२ | ०·६७ | ०·४८ | ०·४८ |
| ०·६० | ०·६३ | ०·६१ | ०·६४ | ०·५८ | ०·६० | ०·७३ | ०·९५ | ०·६९ | ०·५२ |
| ०·७८ | ०·७० | ०·५४ | ०·५८ | ०·६५ | ०·५१ | ०·७२ | ०·६३ | ०·५४ | ०·४५ |
| ०·४२ | ०·४७ | ०·५५ | ०·६५ | ०·५६ | ०·७४ | ०·५४ | ०·६६ | ०·५८ | ०·७० |
| ०·५९ | ०·५७ | ०·४९ | ०·६३ | ०·६६ | ०·४६ | ०·५७ | ०·८८ | ०·६१ | ०·४६ |
| ०·४७ | ०·६२ | ०·५५ | ०·६६ | ०·५१ | ०·५३ | ०·५२ | ०·५९ | ०·५३ | ०·५६ |
| ०·७० | ०·४७ | ०·६८ | ०·५७ | ०·५४ | ०·६७ | ०·४८ | ०·५७ | ०·६८ | ०·५८ |
| ०·६३ | ०·७२ | ०·६२ | ०·३९ | ०·६३ | ०·६७ | ०·५७ | ०·६८ | ०·६१ | ०·५२ |

**सारणी १३·२—मोटरगाड़ी-चालन-परीक्षण के आधार पर २०० सामान्य युवकों का ब्रेकिंग-प्रतिक्रिया काल (सेकेंडों में)।**

सारणी १३·३

| वर्ग सीमाएँ सेकेंड में | मिलान | f आवृत्ति (मनुष्यों की संख्या) |
|---|---|---|
| ०·९३-०·९५ | \| | १ |
| ०·९०-०·९२ | \| | १ |
| ०·८७-०·८९ | \| | १ |
| ०·८४-०·८६ | \| | १ |
| ०·८१-०·८३ | \|\| | २ |
| ०·७८-०·८० | \|\| | २ |
| ०·७५-०·७७ | 卌 | ५ |
| ०·७२-०·७४ | 卌 卌 \|\|\| | १३ |
| ०·६९-०·७१ | 卌 卌 \| | ११ |
| ०·६६-०·६८ | 卌 卌 卌 \|\|\|\| | १९ |
| ०·६३-०·६५ | 卌 卌 卌 卌 \| | २१ |
| ०·६०-०·६२ | इत्यादि | २५ |
| ०·५७-०·५९ | | २४ |
| ०·५४-०·५६ | | २२ |
| ०·५१-०·५३ | | १६ |
| ०·४८-०·५० | | १३ |
| ०·४५-०·४७ | | ११ |
| ०·४२-०·४४ | | ६ |
| ०·३९-०·४१ | | ५ |
| ०·३६-०·३८ | | १ |

**सारणी १३·३—सारणी १३·२ की दत्त-सामग्री का आवृत्ति-वितरण। प्राप्तांकों की बड़ी संख्या का संक्षेपण विविध वर्गों में उन्हें वर्गीकृत करके और उन्हें प्रत्येक वर्ग के अंतर्गत आने वाले प्राप्तांक के आवृत्ति f की गणना द्वारा किया जा सकता है।**

आवृत्ति-वितरण तैयार करने में दूसरा कदम है, प्रत्येक वर्गांतर में आने वाली इकाइयों को या तो सारणी के रूप में प्रस्तुत करना या उनकी गणना करना। जैसा कि सारणी १३·३ में दिखाया गया है, प्रत्येक वर्गांतर का उस वर्ग के अंतर्गत आने वाले प्रत्येक प्राप्तांक ( Score ) से मिलान करने पर इसे किया जा सकता है। उसका परिणाम होगा—**आवृत्ति-वितरण**। इसे आवृत्ति-वितरण कहेंगे; क्योंकि इससे आवृत्ति अथवा प्रत्येक वर्गांतर के मापों की संख्या जानी जाती है और यह भी मालूम होता है कि किस प्रकार माप-स्केल पर आवृत्तियों का वितरण किया गया है। इस उदाहरण में यह वितरण-काल माप है। एक बार गणना हो जाने पर उन्हें आयत-चित्र में प्रस्तुत किया जा सकता है। (देखिए, चित्र—१३·४)।

इससे जो जानकारी प्राप्त होती है, उससे प्रकट है कि आवृत्ति-वितरण से कुछ हानि भी होती है, लाभ भी है। (१) इससे प्रत्येक माप अपना स्वरूप खो देता है। वितरण-तालिका से परीक्षा देने वाले व्यक्तियों से सत्ताइसवें व्यक्ति से संबंधित प्राप्तांक नहीं जाना जा सकता। किसी भी विशेष प्राप्तांक (Score) की जानकारी मापों के मूल अभिलेख (Record) से सदा ही प्राप्त की जा सकती है। (२) इससे किसी मापविशेष की स्पष्ट उपयोगिता भी समाप्त हो जाती है। जैसे, सातवें वर्गांतर के अंतर्गत आने वाले पाँच मापों का ठीक-ठीक निर्देश नहीं किया जा सकता। ऐसी विशिष्ट जानकारी कभी-कभी ही किसी काम की होती है; क्योंकि वर्गांतर इतना स्पष्ट होता है कि वह प्राय: सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए पर्याप्त होता है।

आवृत्ति-वितरण से जितनी हानि है, उससे कहीं अधिक लाभ होता है। यह प्राप्त ज्ञान को ऐसे सुचारु रूप में माप साधन पर व्यवस्थित कर देता है कि हम उससे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लक्षणों (Features) को तुरंत समझ सकते हैं। जैसे, हम यह देख सकते हैं कि ०·६० से ०·६२ सेकेंड के वर्गांतर में किसी भी अन्य वर्गांतर की अपेक्षा अधिक प्राप्तांक थे और कुछ ही अपवादों को छोड़कर सभी प्राप्तांक ०.३९ और ०.८९ के बीच थे। तब साधारण-सी गणना के पश्चात् हम देखेंगे कि प्राय: आधे व्यक्तियों (४६ प्रतिशत) ने जो अंक प्राप्त किए, वे ०.५४ और ०.६५ के बीच थे। इस प्रकार मापों के साधारण स्वरूप की विशेषता को शीघ्रता से समझ लेने में आवृत्ति-वितरण सहायता पहुँचाता है।

इस संबंध में यह भी जान लें कि आयत-चित्र अथवा सरल रेखा-चित्र (बार-ग्राफ) ही मात्र ऐसी विधियाँ नहीं हैं, जो आवृत्ति-विभाजन को स्पष्ट कर सकती हैं। वास्तव में उससे भी सरल तरीका यह है कि मापों की आवृत्ति के लिए सरल रेखा

की जगह एक बिंदु रखे और ऐसे बिंदुओं को एक रेखा से मिला दें। इस प्रकार जो ग्राफ बनेगा, उसे **आवृत्ति बहुभुज** (Frequency polygon) कहते हैं (चित्र १३·४); क्योंकि वह आवृत्ति का ही निर्देश करता है, परंतु अब बहुभुज चित्र के माध्यम से। आवृत्ति बहुभुज से बिलकुल वही जानकारी प्राप्त होती है, जो सरल रेखा-चित्र अथवा आयत-चित्र से। आवृत्ति बहुभुज में सरल आयत-चित्र की समानांतर रेखाओं के स्थान पर किसी भी तरह की रेखाएँ काम में आ सकती हैं।

परिमापनों का एक समूह आयत-चित्र अथवा आवृत्ति-बहुभुज के रूप में अंकित किया जा सकता है।
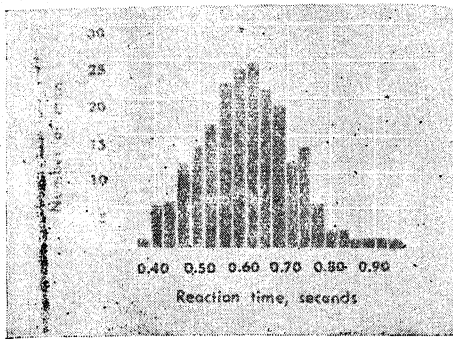
**चित्र १३·४—१३·२ तथा १३.३ सारणियों की दत्त-सामग्री का आयत-चित्र (ऊपर) तथा आवृत्ति-बहुभुज (नीचे)।**
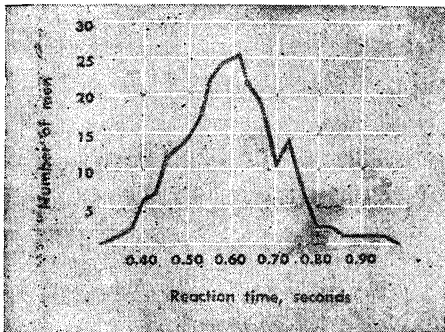
## सामान्य वक्र ( Normal Curve ) :

वास्तविक मापों के आधार पर निर्मित सब आवृत्ति बहुभुजों में कुछ असमता मिलेगी। माप में आने वाली वस्तुओं में बहुत सी विषमताएँ अप्रत्याशित घट-बढ़ का

परिणाम होती हैं, अतः सामान्यतः हम जितने अधिक माप लेंगे, उतना ही हमारा ग्राफ अधिक सम होगा। गणित और प्रसंभाव्यता–प्रयोग, दोनों के द्वारा यह दिखाया जा सकता है कि जब मापों की संख्या बढ़ती है और माप-संबंधी अन्य अवस्थाएँ नियंत्रित रहती हैं, तब प्रायः सभी आदर्श आवृत्ति बहुभुज अंत में एक रूप धारण करते हैं, जिसे **सामान्य वक्र** कहा जाता है। ऐसे वक्र का खाका चित्र १३·५ में दिया गया है। वह बहुभुज क्षेत्र न रहकर घंटी के आकार की वस्तु बन गया है। इस वक्र से ठीक वही परिणाम निकलता है, जो आवृत्ति बहुभुज से वक्र का कोई भी बिंदु मापक या माप या यंत्र के किसी अंतर के मापों की सापेक्ष आवृत्ति बताता है। मापनी पर अंतर प्रदर्शित नहीं किए जाते; क्योंकि वे निर्दिष्ट नहीं रहते हैं और बिलकुल ठीक आवृत्तियाँ भी नहीं दिखायी जातीं; क्योंकि वे लिए गए मापों की संख्या पर निर्भर करती हैं। वक्र की आकृति महत्त्वपूर्ण है।

मनोवैज्ञानिक परिमापन बहुधा घंटी के आकार के वक्र-जैसे या उससे मिलते-जुलते होते हैं।
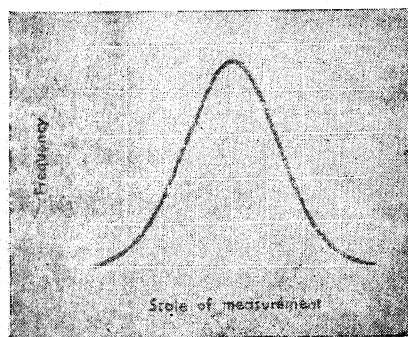
**चित्र १३·५ एक आदर्श आवृत्ति-वितरण, जिसे 'सामान्य प्रसंभाव्यता वक्र' कहा जाता है, वक्र की ऊँचाई किसी भी स्थल पर परिमापनों की सापेक्ष आवृत्ति को प्रस्तुत करती है, जिसमें विशेष माप क्षैतिज अक्ष पर इंगित रहता है।**

सामान्य प्रसंभाव्यता वक्र ( Normal Probability Curve ) आदर्श आवृत्ति-वितरण माना जाता है; क्योंकि वह तभी संभव है जब कोई विशेष माप अनेक असंबद्ध घटनाओं, जिनमें से प्रत्येक में ५०-५० की प्रसंभाव्यता रहती है, का अप्रत्याशित परिणाम होता है। यह स्थिति इस प्रकार की है, जिसके अनुसार हम मान लीजिए कि, एक ही साथ बीस छोटे सिक्के उछालें और हर उछाल के बाद गिनते जाएँ कि कितने सिक्के सीधे (चित) गिरे। इस उदाहरण में यह गणना ही माप है। यह कहीं भी शून्य से लेकर २० तक घट-बढ़ सकता है। साधारण बुद्धि तथा इस तथ्य से हम जानते हैं कि सिक्के के चित गिरने की ५० प्रतिशत संभावना है, अर्थात् हम

जानते हैं कि औसत माप १० होगा। मापों की बहुत बड़ी संख्या होने पर यह आशा की जा सकती है कि वे माप शून्य और २० के बीच रहेंगे। उनसे आवृत्ति-वितरण-तालिका बन जाएगी, जो प्रायः सामान्य वक्र के आकार के सदृश होगी।

बहुत से मनोवैज्ञानिक लक्षण सिक्कों से भरे घड़ों के समान हैं। प्रत्येक बहुत-सी स्वतंत्र इकाइयों से बना हुआ है, जिनका संगठन किसी सांयोगिक रूप में हो गया है, फलतः माप समूह से प्रायः सामान्य प्रसंभाव्यता-वक्र तैयार हो जाता है। उपर्युक्त ब्रेक-प्रतिक्रिया-काल प्रयोग (Braking-reaction-time experiment) ऐसे वितरण का एक उदाहरण था। मानवीय अथवा जैविक विशिष्टताओं के किसी दूसरे माप-समूह से भी इसी प्रकार का वितरण-परिणाम निकलेगा, यदि वे माप-अंतराल-मापनी द्वारा किए जाएँ।

यह तथ्य कि सामान्य वक्र उपलब्ध करने के लिए अंतराल-मापनी पर ही माप बनाए जाएँ, उस विधि की ओर संकेत करता है, जिससे यह निश्चय किया जा सके कि माप अंतर माप हैं अथवा क्रमसूचक। कोई भी परीक्षण आरंभ करने के समय इसकी पूर्व जानकारी का कोई तरीका नहीं है। उदाहरणतः छात्रों के लिए वस्तुनिष्ठ परीक्षा ( Objective Examination ) तैयार करने में शिक्षक जिन मदों का उपयोग करता है, उनमें से प्रत्येक निश्चयपूर्वक एक शाब्दिक माप होता है। परीक्षण में कई मदों का उपयोग करने तथा अनेक सही एवं गलत उत्तरों की गणना करने से वह एक माप पर पहुँचता है, जिसे 'क्रमसूचक माप' कहा जा सकता है, मात्र इसलिए कि उसके आधार पर वह छात्रों को सर्वोत्तम से लेकर निम्नतम तक क्रमबद्ध कर सकता है। इस स्थिति में वह यह जानता भी नहीं है कि उसके परीक्षण द्वारा अंतराल-मापों की प्राप्ति हो रही है। वह नहीं जानता है कि ७० और ८० में वही अंतर है, जो ६० और ७० में है, और इसलिए उनके लिए उपयुक्त किए जाने वाले अक्षर-क्रमों में भी उनके तदनुरूप ही अंतर होना उचित है।

परीक्षण के आँकड़ों के आवृत्ति-वितरण की सामान्य वक्र की आकृति के साथ तुलना करने पर इस तथ्य को जाना जा सकता है। अगर यह सामान्य वक्र के सदृश पाया जाता है, तो यह अंतराल-माप की अपेक्षित शर्तों की उचित रूप में पूर्ति करता है; क्योंकि सामान्य वक्र पर समान अंतर समान रहते हैं। तब इस मान्यता के आधार पर कि आँकड़ों में जो समान अंतर हैं, वे वास्तव में समान हैं, उन्हें क्रम रूप देना औचित्यपूर्ण है। कुछ परीक्षणों से वही आवृत्ति-वितरण प्राप्त होते हैं, जो सामान्य वक्र से और कुछ से ऐसा नहीं होता है। आगे इसका कारण स्पष्ट किया गया है।

यद्यपि प्रशिक्षक को यह करने की आवश्कता कभी-कभी ही होती है, फिर भी ऐसे तरीके है, जिनसे यह जाना जा सकता है कि किसी विशेष आवृत्ति-वितरण

द्वारा सामान्य प्रसंभाव्यता वक्र प्रस्तुत किए जाने की कहाँ तक संभावना है । गणितज्ञों ने ऐसे निकष मालूम किए हैं, जिनसे यह निश्चय किया जा सकता है कि आवृत्ति-वितरण सामान्य वक्र से किस अंश तक भिन्न होने पर भी सामान्य ही माना जा सकता है । इस प्रक्रिया का एक मुख्य अंग है—मापों की संख्या । सिक्कों के उछाल अथवा अन्य कुछ मापों से संयोग से ही वक्र के समान परिणाम निकलेगा. जो बहुत से मापों से प्राप्त परिणाम की अपेक्षा कुछ कम सामान्य वितरण प्रतीत होगा। उसकी प्रक्रिया के चक्कर में पड़ने की जरूरत नहीं है; क्योंकि वह जटिल है । किंतु, हमें जानना चाहिए कि ऐसी सांख्यिकीय पद्धतियाँ हैं, जिनके आधार पर ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है ।

### असममितता [ टेढ़ापन ] ( Skewness ) :

अन्य प्रकार के वक्रों के सामान्य वक्र को भिन्न बनाने वाली दो साधारण विशिष्टताएँ हैं । एक है, उसकी सममिति । इसके केंद्र-बिंदु के दोनों ओर आवृत्ति-संख्या समान रहती है । दूसरी विशिष्टता है, विभाजन के केंद्र में आवृत्तियों का जमाव । इसलिए जब ऐसे आवृत्ति-विभाजन से सामना हो जाता है, जो उचित मात्रा में सममित नहीं है और जिसमें केंद्र के निकट सर्वाधिक आवृत्तियाँ नहीं जुट पातीं, तब यह जान लिया जाता है कि हम सामान्य वक्र से दूर हो गए हैं । ऐसा टेढ़ापन कभी-कभी अंतराल-माप से भी अलगाव की ओर संकेत करता है ।

ऐसे आवृत्ति-विभाजन जो सममित अथवा केंद्रीकृत नहीं हैं, तिरछे अथवा विषम विभाजन कहे जाते हैं । चित्र १३·६ में दो उदाहरण दिए गए हैं । बाएँ उदाहरण में वक्र रेखा बायीं ओर, और दाएँ उदाहरण में वह दायीं ओर झुकी हुई है। विभाजन के उस पक्ष के अनुसार, जिस पर मापों की संख्या सबसे अधिक हो, टेढ़ेपन ( असममितता ) का नामकरण करने की प्रथा हो गई है । यह पक्ष पट होता है। ऐसे वक्र जो चित्र १३·६ में दिखाए गए हैं, सामान्य वक्र की भाँति प्रतीत होते हैं, किंतु वे सामान्य नहीं हैं; क्योंकि संयोगात् हो जाने वाले जितने टेढ़ेपन की आशा की जा सकती है, उतने से उनका टेढ़ापन अधिक है ।

साधारणतया विषमता अथवा टेढ़ेपन का कारण तो रहता है, किंतु वह माप की जाने वाली वस्तु पर निर्भर करता है। कालेज की परीक्षाओं अथवा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों में टेढ़ापन अप्रतिनिधि जनसंख्या, अर्थात् वह जनसंख्या जिसका वितरण किसी कारणवश साधारण रूप में नहीं हुआ है. के कारण हो सकता है, अथवा परीक्षण के लिए काम में लाए गए ऐसे मदों ( Items ) के कारण जो या तो असाधारण रूप से कठिन अथवा सरल हैं । यदि परीक्षण बहुत ही सरल है, तो वितरण

का झुकाव बायीं ओर होता है। वितरण के ऊँचे अंक वाले पक्ष पर अनेक इकाइयाँ एकत्र हो जाती हैं। अगर परीक्षण बहुत कठिन हो, तो वितरण का झुकाव दाहिनी ओर होगा और कम अंक वाले पक्ष पर इकाइयों की संख्या बहुत अधिक रहेगी। जहाँ टेढ़ापन परीक्षण की सरलता अथवा कठिनता के कारण होता है, वहाँ इसका सुधार वितरण को सामान्य बना कर किया जाता है। आँकड़ों के समान अंतरों को श्रेणीगत समान अंतरों के बराबर उपयोगी नहीं माना जाता। परीक्षक 'वक्र' को मोटे तौर पर वितरित कर देता है, ताकि वह क्रम का निर्धारण उसी प्रकार कर सके, जिस प्रकार सामान्य विभाजन के आधार पर करता। यदि वह सकारण विश्वास कर सके कि छात्रों की संख्या ही टेढ़ेपन के लिए उत्तरदायी है, परीक्षण-संबंधी कठिनाई नहीं, तो उसे ऐसा नहीं करना चाहिए।

परिमापनों के वितरणों को दाईं ओर अथवा बाईं ओर तिरछा किया जा सकता है।
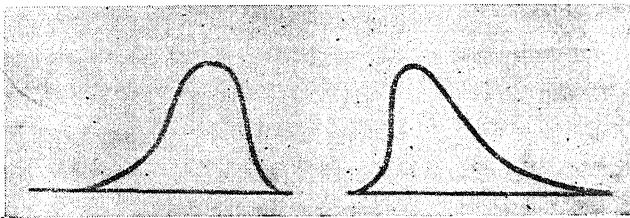
**चित्र १३.६ तिरछेपन के उदाहरण। एक तिरछे वक्र में एक ओर अधिक लंबा सिरा रहता है। बाएँ वक्र में बाईं ओर तिरछापन है और दाएँ वक्र में दाईं ओर।**

## आवृत्ति-वितरण के माप ( Measures of Frequency Distribution ) :

पिछले अनुभाग में हमने आवृत्ति-वितरणों के रूप में माप-विधान की विधियाँ बतायी हैं, ताकि उन्हें सुविधापूर्वक देखा जा सके। पत्रिकाओं के लिए लोकप्रिय लेख लिखना अथवा किसी की दत्त-सामग्री का निरीक्षण करना आदि जैसे कामों के लिए यह पर्याप्त है। किंतु अन्य प्रयोजनों के लिए, विशेषकर मापों के जटिल उपयोग के लिए, यह पर्याप्त नहीं है। तब आवश्यकता है विभाजन के लक्षणों के स्पष्टतर माप की। ऐसा माप, जिसे कभी-कभी प्रतिदर्शज ( Statistic ) कहा जाता है, विभाजन से गणितविधि द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और ठीक रूप में उसके लक्षण प्रस्तुत

करने के काम में लाया जा सकता है। आवृत्ति-विभाजन के मापों के दो प्रकार होते हैं। (१) केंद्रीय प्रवृत्ति का माप और (२) परिवर्तनशीलता का माप।

केंद्रीय प्रवृत्ति के माप ( Measures of Central Tendency ) :

केंद्रीय माप, जिन्हें कभी-कभी केंद्रीय-मान माप भी कहा जाता है, वे संख्याएँ हैं, जो वितरण के केंद्र निश्चित करती हैं। केंद्र-बिंदु का माप यंत्र पर होना आवश्यक है, इसलिए वह माप वास्तविक इकाई का नहीं, तो कम-से-कम परिकल्पित इकाई का है। वितरण का केंद्र-बिंदु नापने के लिए केंद्र की परिभाषा जानना आवश्यक है और यह निर्भर करता है हमारे माप के प्रकार पर।

समांतर माध्य ( Arithmetic Mean ) :

केंद्रीय प्रवृत्ति का माप, जिसका उपयोग अंतराल-मापों के साथ किया जा सकता है, समांतर माध्य है। इसे कभी-कभी 'औसत' भी कहा जाता है। लेकिन, चूँकि 'औसत' का अनुचित प्रयोग नहीं होता है, अतः उसे समांतर माध्य कहना ही उपयुक्त होगा। उसे प्राप्त करने के लिए सभी मापों को जोड़ कर योगफल संख्या से भाग दे देना चाहिए। उदाहरण लीजिए, अगर किसी का प्रत्येक माह का वेतन भिन्न हो और औसत मासिक आय १२ महीनों की निकालनी हो, तो १२ महीनों की सारी आय को जोड़कर उस योगफल में १२ का भाग दे देना चाहिए। भागफल ही औसत आय होगा। अंतराल माप-समूहों के मापों का समांतर माध्य भी उसी प्रकार निकाला जा सकता है। आवृत्ति-वितरण के बिना भी यह किया जा सकता है। किंतु, ऐसे वितरण से इसकी संगणना करने के लिए विशेष सूत्र हैं।

समांतर माध्य का सार्थक प्रयोग केवल अंतराल-मापों के साथ किया जा सकता है; क्योंकि विभाजन के प्रत्येक माप पर वह बराबर भार देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मापों के अंतरों के सभी परिमाणों पर विश्वास किया जा सकता है। किंतु, सामान्य अथवा क्रमसूचक मापों के संबंध में ऐसी बात नहीं है। ऐसे मापों के लिए केंद्रीय प्रवृत्ति की निम्नांकित माप-विधियों में से किसी एक का उनयोग करना आवश्यक है।

माध्यिका (Median) :

माध्यिका वृहत्तम से लघुतम तक क्रमानुसार व्यवस्थित मापों के समूह का मध्य अंक है। यदि मापों की संख्या सम ( Even ) है, तो कोई मध्य माप नहीं होगा। ऐसी स्थिति में दो मध्य मापों का औसत बीच का अंक, माध्यिका है। क्रम-सूचक मापों के लिए केंद्रीय वृत्ति का उचित एवं आदर्श माप माध्यिका ही है; क्योंकि मध्य प्राप्तांक मध्य कोटि (Rank) है। यदि कोई चाहे, तो वह अंतराल-मापों में

भी इसका उपयोग कर सकता है। वास्तव में सामान्य रूप में विभाजित आँकड़ों के संबंध में कोई अंतर नहीं पड़ता, चाहे समांतर माध्य का उपयोग किया जाए, चाहे माध्यिका का। आदर्श सामान्य वक्र में वे दोनों अभिन्न हैं। विषम विभाजनों के माप के लिए माध्यिका अधिक उपयोगी विधि समझी जाती है; क्योंकि चरम मापों से यह प्रभावित नहीं होती।

## बहुलक (Mode) :

प्रायः सभी केंद्रीय प्रवृत्ति के माप के समान यह एक श्रेणी अथवा अंतराल है, जिसमें सबसे अधिक माप-आवृत्ति होती है। बहुलक एक मात्र माप है, जो सामान्य माप के साथ उपयोग में लाया जा सकता है; क्योंकि दो अन्य मापों की गणना के लिए कोई उपयुक्त तरीका नहीं है। अन्य प्रकार के विभाजनों के साथ बहुलक का उपयोग किया जा सकता है, यदि कोई यह जानना चाहता हो कि किस श्रेणी-अंतर में सर्वाधिक विषय हैं। आदर्श सामान्य विभाजन में बहुलक समांतर माध्य या माध्यिका के ही समरूप होगा। प्राप्तांकों अथवा आँकड़ों के सांयोगिक अंतरों के साथ बहुलक किसी ओर थोड़ा-सा सरक सकता है, विशेषकर उस स्थिति में जब बहुलक के उदाहरणों की संख्या कम हों। इसलिए माध्यिका अथवा समांतर माध्यम में, से कोई एक जो उपयुक्त हो, केंद्रीय प्रवृत्ति के लिए श्रेष्ठतर माप है।

## परिवर्तनशीलता के माप (Measures of Variability) :

केंद्रीय प्रवृत्ति के मापों से विभाजन का केवल एक रूप स्थिर होता है, अर्थात् यह कि केंद्र-बिंदु कहाँ है। परिवर्तनशील होने के कारण ये विभाजन भी अपनी परिवर्तशीलता में भिन्न होते हैं। चित्र १३.७ में दो प्रकल्पित विभाजन हैं—एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म। दोनों का समांतर माध्य अथवा माध्यिका एक ही है, दोनों की माप-संख्या भी समान है। दोनों का सामान्य विभाजन है। उनके अंतर को मापने के लिए उनकी सापेक्ष स्थूलता या सूक्ष्मता के माप की जरूरत होगी। यद्यपि वे काल्पनिक हैं, तथापि विरोधी स्थिति प्रायः प्रस्तुत कर देते हैं। उदाहरणार्थ, दासियों में प्रायः उतनी ही माध्य प्रतिभा होती है, जितनी साधारण जनता में। किंतु, साधारण जनता में दासियों के प्रतिनिधि नमूने की अपेक्षा अधिक ऊँची अथवा कमजोर बुद्धि वाले भी होते हैं। एक विद्यालय के छात्रों की औसत योग्यता दूसरे विद्यालय के छात्रों की औसत योग्यता के बराबर हो सकती है, लेकिन यह संभव है कि एक में ऊँची अथवा निम्न बुद्धि के छात्रों की संख्या दूसरे से अधिक हो। प्रत्येक स्थिति में माध्य एक ही है, किंतु माप की परिवर्तनशीलता भिन्न है। इसलिए परिवर्तनशीलता का माप अपेक्षित है।

विभाजन में परिवर्तनशीलता का अंतर भी हो सकता है।
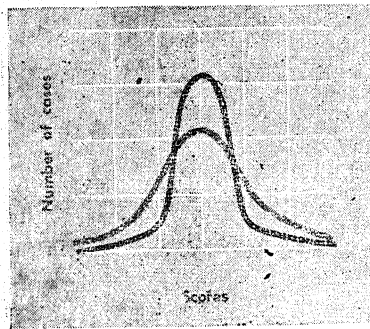
**चित्र १३.७ परिवर्तनशीलता में भिन्न वितरण। दोनों वितरणों में एक ही केंद्रीय प्रवृत्ति है, किंतु एक संकीर्ण है तथा दूसरा विस्तृत। फलस्वरूप उनकी परिवर्तनशीलता भिन्न है (प्रामाणिक विचलन)।**

परास :

उपयोग किए जा सकने वाले अनेक संभव मापों में सबसे सरल है परास, पर यह सर्वश्रेष्ठ नहीं है। यह सर्वोच्च और निम्नतम प्राप्तांकों का अंतर है। क्रम-सूचक मापों के लिए परास उपयोगी नहीं है। इसका कारण यह है कि मात्र प्राप्तांकों का कोई मूल्य नहीं होता, वरन् केवल श्रेणी उपयोगी हैं। अंतराल-मापों के लिए परास एक बहुत भद्दा और अस्थायी माप है; क्योंकि यह दो मापों पर आधारित है जो एक दूसरे से बिलकुल दूर हैं। प्रायः सभी विभाजनों में ये अनियत हैं और उनमें थोड़ा भी परिवर्तन हो जाने पर परास के विस्तार में परिवर्तन हो जाता है। इसलिए सांख्यिकीविद् परास का उपयोग तभी करते हैं, जब परिवर्तनशीलता के बहुत मोटे एवं द्रुत अनुमान की आवश्यकता होती है।

मानक विचलन (Standard Deviation) :

परिवर्तनशीलता के माप के लिए जिस सर्वाधिक उपयोगी एवं स्पष्ट माप को व्यवहार विज्ञानवेत्ता काम में लाते हैं, वह है **मानक विचलन**। उसका निर्देशन करने के लिए छोटे ग्रीक अक्षर $\sigma$ का प्रयोग किया जाता है। उसकी संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार है- **यह मापों के समांतर माध्य से विचलन का मूलमाध्यवर्ग है।** $\sigma$ की गणनाविधि तथा उसकी अधिक स्पष्ट बीजीय (Algebrical) परिभाषा इस अध्याय के अंतिम भाग में दी गई है। यहाँ उसके गुणों एवं उपयोग पर लिखा जाएगा।

मानक विचलन अथवा $\sigma$ एक संख्या है, जो आवृत्ति-वितरण के विस्तार को मापक पर प्रगट करती है। यह वितरण-विस्तार के अनुपात में रहती है तथा इसकी परिवर्तनशीलता को मापती है। एक बड़े $\sigma$ से युक्त वितरण और ऊँची

परिवर्तनशीलता एक ही है, अनुपातत: वे विस्तृत हैं। जिनमें मानक विचलन कम हैं, उनमें परिवर्तनशीलता भी कम हैं। मापों को माध्य के अति निकट व्यवस्थित किया जाता है।

विभाजन में परिवर्तनशीलता के माप के लिए मानक विचलन एक उत्कृष्ट माप साधन है। σ इतना अच्छा माप है कि यदि आवृत्ति-विभाजन उचित रूप में सामान्य हो, तो केवल माध्य और σ इन दो के मालूम होने पर फिर वितरण व्यवस्थित किया जा सकता है। यह सत्य है; क्योंकि सामान्य संभाव्यता वक्र के लिए गणितज्ञों के पास एक स्पष्ट सूत्र है और उसमें केवल माध्य और σ ही अज्ञात रहते हैं। इनके मालूम हो जाने पर सामान्य वक्र रेखा खींची जा सकती है, जो किसी आवृत्ति-वितरण के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। इस प्रकार जहाँ तक वितरण सामान्य है, वहाँ तक माध्य और σ उसका पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हैं।

माध्य एवं प्रामाणिक विचलन देने पर प्राप्तांकों का पूर्ण वितरण एक सामान्य वितरण के रूप में जाना जा सकता है।
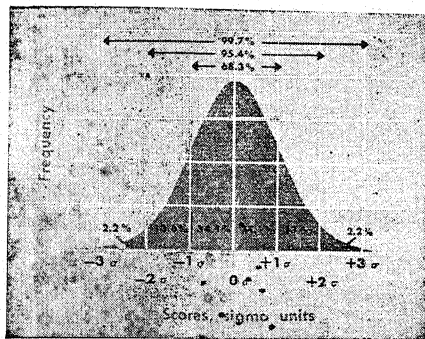
**चित्र १३·८ एक सामान्य वक्र में प्राप्तांकों का वितरण। सामान्य वक्र का आकार ज्ञात रहता है, अतएव प्राप्तांकों के प्रतिशत को कहना संभव होता है, जो एक मानक विचलन के जोड़ने और घटाने के बीच अथवा किन्हीं इकाइयों के बीच रहता है।**

इस गणितीय बारीकी की महत्त्वपूर्ण उपयोगिताएँ हैं। सामान्य संभाव्यता वक्र के संबंध में विभाजन माप पर अंतरों को स्पष्ट करने के लिए σ को एक मापक दंड की भाँति काम में लाया जा सकता है। किन्हीं मानक विचलनों में सम्मिलित की गई आवृत्तियों की ठीक-ठीक संख्या उन तालिकाओं से जानी जा सकती है, जो वक्र संबंधी सूत्र के आधार पर तैयार की गई हैं। तालिकाओं से प्राप्त जानकारी चित्र १३·८ में संक्षेप में दी गई है। उससे पता चलता है कि सामान्य आवृत्ति-विभाजन की ६८·३ प्रतिशत स्थितियाँ माध्य से १σ ऊपर और १σ नीचे के बीच रहती हैं। प्राय: ९५ प्रतिशत २σ ऊपर और २σ नीचे के बीच रहती है और ९९·७ प्रतिशत माध्य से ३σ ऊपर और ३σ नीचे के बीच पड़ती है। माप पर दी गई

सिगमा इकाइयों के रूप में किन्हीं दो अन्य मापों के बीच जितनी भी स्थितियों की अपेक्षा की जा सकती है, उनका प्रतिशत इन तालिकाओं से निश्चित करना संभव है।

**मानक प्राप्तांक (Standard Scores) :**

मानक विचलन की एक और ऐसी उपयोगी विशेषता है कि उसका विशेष उल्लेख वांछनीय है। 'सार्वदेशिक भाषा' में किसी विशेष माप को व्यक्त करने के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है। ऐसा करने के लिए आवश्यकता इतनी ही है कि किसी विशेष माप को सिगमा अंक में परिवर्तित कर दिया जाए (देखिए सूत्र और गणना से संबंधित अनुभाग)। चित्र—१३·१४ में परिवर्तन-संबंधी सिद्धांत देखे जा सकते हैं। वे अध्याय के अंतिम भाग में दिए गए हैं; क्योंकि इनके अतिरिक्त अन्य अनेक तथ्यों को वह स्पष्ट करते हैं। $\sigma$ का मूल्य जान लेने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि प्रत्येक माप का मूल्य $\sigma$ की इकाइयों के रूप में होता है। यह मूल्य **Z प्राप्तांक** कहा जाता है।

Z प्राप्तांक से निकट संबंधित है मानक प्राप्तांक, जिसे कभी-कभी **T प्राप्तांक** कहते हैं। Z प्राप्तांक को आधार मानकर उसके प्रयोग से प्राप्त कोई भी अंक मानक प्राप्तांक है। उदाहरण के लिए, स्वेच्छापूर्वक मान लिया जाए कि किसी विभाजन का माध्य ५० है, और तब प्रत्येक मानक विचलन को १० मान लें। फलतः Z प्राप्तांक और मानक प्राप्तांक के बीच निम्नांकित संबंध होगा—

| Z प्राप्तांक | मानक प्राप्तांक |
|---|---|
| − ३ | २० |
| − २ | ३० |
| − १ | ४० |
| ० | ५० |
| + १ | ६० |
| + २ | ७० |
| + ३ | ८० |

मानक प्राप्तांक निकालने के लिए और कोई भी प्रणाली तब तक बिलकुल सफल रहेगी, जब तक Z प्राप्तांक में एक स्थिरांक (यहाँ ५०) जोड़ा जाता रहेगा अथवा उसमें एक स्थिरांक (इस उदाहरण में १०) से गुणा किया जाता रहेगा।

मानक प्राप्तांक (T) और (Z) प्राप्तांक व्यक्त करने के लिए एक प्रकार की सार्वदेशीय भाषा है; क्योंकि उन मापों की, जिनसे मापन किया जाता है, परवाह न कर वे सभी उचित सामान्य विभाजनों में एक ही अर्थ रखते हैं। उनसे हम तुरंत

समझ सकते हैं कि विभाजन में किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का स्थान कहाँ है और एक या उससे अधिक मापों की तुलना उस वस्तु से कर सकते हैं, जो विभिन्न माध्यों तथा विभिन्न मानक विचलनों से युक्त विभाजनों से ली गई है। इसका उदाहरण है चित्र १३.९ में प्रदर्शित एक व्यक्ति का 'पार्श्व-चित्र', जिसके अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षण किए गए हैं। किन्हीं विशेष परीक्षणों में प्रयुक्त माध्य और मानक विचलनों से कोई संबंध न रखते हुए भी किसी एक व्यक्ति की तुलना अन्य व्यक्तियों से किस प्रकार हो जाती है, इसका पता उस पार्श्वचित्र से लग जाएगा। यदि किसी कारण-वश हम उन्हें जानना न चाहें, तो सामान्य-संभाव्यता वक्र की सारणी से व्यक्तियों की पारस्परिक प्रकर्षता की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

## शतांशपरक प्राप्तांक (Centile Scores) :

अंत में हम शतांशपरक प्राप्तांकों पर आते हैं और प्रायः यही किसी शतांश-परक प्राप्तांक की परिभाषा है। यह मापे गए उन विभिन्न व्यक्तियों का प्रतिशत है, जो विभाजन में किसी विशेष व्यक्ति के प्राप्तांक के समकक्ष अथवा नीचे हैं। इसी को दूसरे रूप में इस प्रकार कहा जा सकता है—यह किसी व्यक्ति का सौ में वह स्थान है, जो उसके स्थान को विभाजन के मापों की योग-संख्या से विभाजित और १०० से गुणा करने पर प्राप्त हुआ है।

शतांशपरक प्राप्तांक जिसे कभी-कभी प्रतिशतांशपरक प्राप्तांक भी कहते हैं, के अनेक उपयोग हैं। यदि विभाजन अत्यधिक टेढ़े हों, अथवा यह मान लेने के लिए कोई उचित कारण न हो कि वे अंतराल-मापों के विभाजन हैं, तो किसी विभाजन में एक व्यक्ति के स्थान का निदेश करने के लिए Z प्राप्तांक से शतांश-परक प्राप्तांक अधिक उपयोगी है। ऐसे भी अवसर उपस्थित हो सकते हैं, जब ऐसे व्यक्तियों को प्राप्तांक बताना हो, जो मानक प्राप्तांक अथवा मानक विचलन समझते ही नहीं हैं और जिनके पास उन्हें जानने के लिए न समय है, न इच्छा। ऐसी स्थिति में शतांशपरक प्राप्तांक का उपयोग अधिक उपयोगी है; क्योंकि सामान्य विभाजन में एक को दूसरे में आसानी से परिवर्तित किया जा सकता है। (देखिए, चित्र १३·१०) ध्यान से देखिए कि माध्यिक (Z प्राप्तांक = ०) पचासवाँ शतांशपरक प्राप्तांक है, – १० सोलहवां और + १०८४ वां शतांशपरक संकेत करता है, इत्यादि।

क्रमसूचक मापों के लिए उपयुक्त परिवर्तन के मापों का वर्णन नहीं किया जाएगा; क्योंकि ऐसे मापों का उपयोग बहुत कम होता है। क्रमसूचक मापों अथवा ऐसे विभाजनों को जो सामान्य नहीं हैं, व्यक्त करने के लिए सबसे सरल तरीका है २५ वाँ, ५० वाँ (माध्यिका) और प्रतिशतांश का ७५ वाँ स्थान बताना। विभाजन

का टेढ़ापन जितना ही बढ़ता जाएगा, उतने ही २५ वें और ५० वें शतांशपरक के तथा ५० वें और ७५ वें शतांशपरक के अंतर बढ़ेंगे। सामान्य विभाजन में ये अंतर समान हैं।

मानक प्राप्तांकों के रूप में अभिव्यक्त करने पर भिन्न परीक्षणों के प्राप्तांकों की तुलना संभव है।
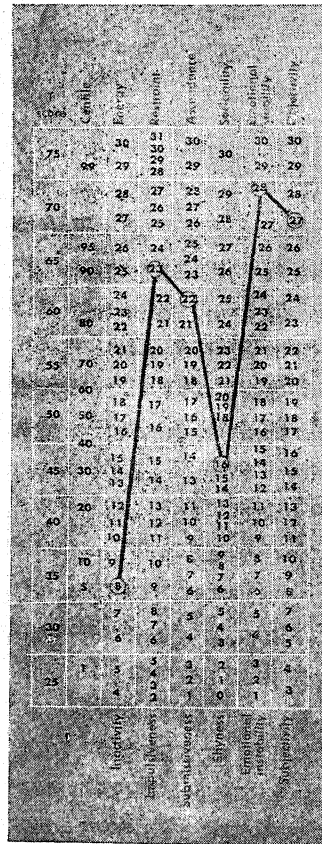
चित्र १३·९ प्राप्तांकों का चित्र। गोले में घिरे हुए और रेखाओं से जुड़े हुए प्राप्तांक गिलफोर्ड जिमेरमन टेम्परामेंट सर्वे द्वारा किए गए किसी एक व्यक्ति के भिन्न परिमापित लक्षण हैं। प्राप्तांकों को इस प्रकार प्रत्येक स्तंभ में लिखा गया है कि वे व्यक्ति के शतांकपरक अथवा सामान्य T प्राप्तांकों की सापेक्ष स्थिति प्रकट करते हैं। ( गिलफोर्ड के अनुसार, १९५९ )।

## सहसंबंध ( Correlation ) :

अब तक हमने आवृत्ति-विभाजनों के संबंध में एक-एक कर सांख्यिकीय विचार किए। अब हम सहसंबंध विषय पर आते हैं। यदि हम उसे सह-अस्तित्व ( Co-relation ) कहें, तो उसकी परिभाषा स्वयं प्रकट हो जाती है; क्योंकि वह

मापों के दो या दो से अधिक वितरणों के पारस्परिक संबंधों को प्रकट करता है। प्रायः सभी विज्ञान किसी-न-किसी रूप में **'सहसंबंध'** से संबंधित हैं। भौतिक विज्ञान में ये संबंध साधारणतया 'क्रियाएँ' ( Functions ) कहे जाते हैं। एक परिवर्तन का व्यवहार दूसरे परिवर्तन के व्यवहार से संबंधित है। अर्थात् एक माप-समूह दूसरे माप-समूह से संबंधित हैं तथा साधारणतया यह संबंध इतना स्पष्ट है कि उसकी सहायता से दो परिवर्तनों को जोड़ने वाले बिंदुओं के बीच से अथवा उनके निकट से एक रेखा खींची जा सकती है, जिससे गणितीय सूत्र के रूप में उस संबंध का संक्षेप स्पष्टतया प्रस्तुत किया जा सकता है।

कभी-कभी मनोविज्ञान में भी यह सूक्ष्मता पायी जाती है। इस पुस्तक में जहाँ-तहाँ, और विशेषकर ज्ञानेंद्रिय संबंधी अध्याय में, इसके उदाहरण मिलेंगे। अस्तु, बहुधा हम लोग 'क्रिया' की परिभाषा नहीं कर पाते। इतना ही नहीं, उस स्थिति पर पहुँचने में असमर्थ भी रह जाते हैं, जहाँ ऐसा करना अनिवार्य है। हमारा काम विशेषतः यह निश्चय करना है कि दो परवर्त्यों में सहसंबंध है या नहीं, और यह कि यदि है, तो कितना है। यद्यपि उनकी जानकारी हो जाने पर मालूम हो जाता है कि उनमें भौतिक क्रियाओं की सूक्ष्मता कभी-कभी ही रहती है, फिर भी मनोवैज्ञानिक घटनाओं के कारण जानने के लिए तथा एक माप-समूह से दूसरे के विषय में उपयोगी पूर्व कथन के लिए वे सशक्त साधन हैं।

यह स्पष्ट करने के लिए कि सहसंबंध के आँकड़ों के संबंध में हम क्या करने की चेष्टा कर रहे हैं, ऊँचाई और वजन का एक साधारण उदाहरण लें। सामान्य ध्यान से देखने पर मालूम होता है कि व्यक्तियों की ऊँचाई एवं वजन में बहुत भिन्नता है। अगर हम चाहें तो व्यक्तियों के किसी विशेष समूह की औसत वजन की पारिवर्तनशीलता भी माप सकते हैं। लेकिन, साथ ही हम यह भी जानते हैं कि ऊँचाई और वजन में एक सहसंबंध या संबंध होना अनिवार्य है। साधारणतया लंबे लोग नाटे लोगों से वज़न में अधिक होते हैं। स्पष्ट है कि यह सहसंबंध पूर्ण नहीं है; क्योंकि बहुत से पाँच फुट लंबे व्यक्ति कितने छह फुट लंबे व्यक्तियों से वजन में भारी होते हैं। इसलिए सहसंबंध मात्रा का संबंध है—सांख्यिकीय संबंध है—और इसीलिए आवश्यकता है एक ऐसे माप की, जो उस मात्रा को बता सके।

गणितीय सुविधा की दृष्टि से सहसंबंध की मात्रा ०.०० और १.०० के बीच की किसी संख्या द्वारा व्यक्त की जाती है। शून्य से कोई भी सहसंबंध प्रकट नहीं होता, १.०० पूर्ण सहसंबंध व्यक्त करता है—ऐसा सहसंबंध जिसकी तुलना उन सूक्ष्म क्रियाओं से की जा सकती है, जो भौतिक विज्ञानों में प्रायः मिलती हैं। इसके तथा ऋणात्मक सहसंबंधों जैसे—.५० के विषय में आगे विचार किया जाएगा।

किन्हीं भी दो माप-समूहों के लिए सहसंबंध माप प्राप्त करना संभव है, चाहे वे सामान्य हों, चाहे क्रमसूचक या अंतराल। एक सामान्य और दूसरा अंतराल, अथवा एक क्रमसूचक और दूसरा अंतराल—इत्यादि ऐसे सम्मिश्रणों के लिए भी उपयुक्त माप मिल सकते हैं। उत्तर निकालने के लिए प्रत्येक सम्मिश्रण के लिए उसके उपयुक्त सूत्र चाहिए। सुविधा की दृष्टि से शुद्ध मिश्रणों पर ही विचार किया जाएगा, जैसे—शाब्दिक-शाब्दिक, क्रमसूचक-क्रमसूचक और अंतराल-अंतराल।

माध्य एवं प्रामाणिक विचलन द्वारा मानक प्राप्तांकों एवं प्रतिशतक प्राप्तांकों की संगणना हो सकती है।
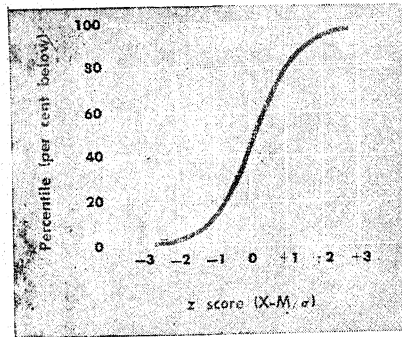
**चित्र १३.१० मानक एवं प्रतिशतक प्राप्तांकों का पता लगाने के लिए प्रामाणिक विचलन का प्रयोग। किसी व्यक्ति के परीक्षण के प्राप्तांक (x) को विचलन प्राप्तांक प्राप्त करने के लिए माध्यम (M) में से घटाया जा सकता है। उसमें प्रामाणिक विचलन (σ) द्वारा भाग देने पर मानक प्राप्तांक ( Z प्राप्तांक ) निकल आता है। इन प्राप्तांकों की पूर्णतः भिन्न परीक्षणों से प्राप्त करने पर भी, परस्पर तुलना की जा सकती है। उपर्युक्त वक्र अथवा संभाव्यता सम्राकल की सारणी को संदर्भगत रखते हुए हम किसी विशेष प्राप्तांक के नीचे आने वालों के प्रतिशत को निर्धारित कर सकते हैं। इसे प्रायः प्रतिशतक प्राप्तांक कहा जाता है।**

## आपात ( Contingency ) :

जब सहसंबंधित होने के कारण सभी माप सामान्य श्रेणी के हों, तब सहसंबंध का जो माप उपयोग में लाया जा सकता है, वह है आपात गुणांक। इसके स्पष्टीकरण के लिए सामाजिक श्रेणियों से उदाहरण लिया जाएगा। (सीगल, १९५६)।

"एल्मसटाउन (Elmstown) नामक जाति के सब परिवारों के ३६० बच्चे हाई स्कूल में थे, जिनका वर्गीकरण पाँच सामाजिक वर्गों में से किसी-न-किसी के अंतर्गत किया गया। उच्च दो वर्गों (I एवं II) के अंतर्गत सांख्यिकीय प्रयोजनों की दृष्टि से बहुत ही कम परिवार थे, इसलिए उन्हें एक साथ

कर दिया गया। अतः, केवल चार सामाजिक वर्ग रह गए। प्रत्येक बालक का, प्रारंभिक, सामान्य या वाणिज्य इन तीन पाठ्य-क्रमों में से किसी एक में नाम दर्ज था। सहसंबंध उपलब्ध करने लिए प्रत्येक बालक की गणना उसके सामाजिक वर्ग एवं उसके पाठ्य-क्रम के अनुसार की गई। चार सामाजिक वर्ग और तीन पाठ्य-क्रम होने के कारण १२ सम्मिश्रण संभव थे।"

सारणी १३.४ में व्यक्तियों के प्रत्येक सम्मिश्रण में—सांख्यिकीय शब्दावली में उसे 'कोष्ठ' कहा जाता है। संख्या ( आवृत्ति ) प्रदर्शित है। इस सारणी से स्पष्ट होता है कि कुछ सहसंबंध है। कालेज के प्रारंभिक पाठ्य-क्रम में अधिकांश वर्ग I-II तथा III से छात्र आए और वर्ग III, IV और V के अधिकांश छात्र कालेज के प्रारंभिक पाठ्य-क्रम में नहीं आए। वाणिज्य पाठ्य-क्रम के अधिकांश छात्र III और IV वर्ग के थे। सहसंबंध के एक विशेष प्रकार—आसंग गुणांक—की संगणना .३९ हैं, जो सहसंबंध की मात्रा का अंकों में अभिव्यक्ति है।

सहसंबंध-परिमापन की आसंग विधि सामान्य वर्गों की दत्त-सामग्री का प्रयोग करती है। दो परिवर्त्यों के बीच की मात्रा वही मात्रा है, जो अलग-अलग मापकों से मापित दो ऐसे सम्मिश्रणों से निर्मित प्रत्येक कोष्ठ की स्थितियों से भिन्न है और जो संयोगात् अपेक्षित है।

सारणी १३.४

| पाठ्य-क्रम | सामाजिक वर्ग | | | | कुल |
|---|---|---|---|---|---|
| | I-II | III | IV | V | |
| प्रारंभिक कालेज | २३ | ४० | १६ | २ | ८१ |
| सामान्य | ११ | ७५ | १०७ | १४ | २०७ |
| व्यावसायिक | १ | ३१ | ६० | १० | १०२ |
| कुल | ३५ | १४६ | १८३ | २६ | ३९० |

**सारणी १३·४ एक नगर के एक हाई स्कूल के भिन्न सामाजिक वर्गों के विद्यार्थियों द्वारा लिए गए पाठ्य-क्रम ( सीगल से, १९५६, पृष्ठ—१९८, होलिंग्सहेड के अनुसार, १९४९ )।**

### स्थिति अंतर या कोटि-अंतर सहसंबंध (Rank-difference Correlation) :

जहाँ सहसंबंध निश्चित करने के लिए क्रमसूचक माप ही दत्त सामग्री हो, वहाँ क्रियाविधि भिन्न है। ऐसी स्थिति के लिए एक सूत्र का आविष्कार किया गया है, जिसके अनुसार दो माप समूहों पर आधारित श्रेणियों के अंतर का उपयोग किया जाता है। सारणी १३.५ और चित्र १३.११ में उदाहरण दिया गया है, जिसका स्पष्टीकरण निम्नांकित रूप में किया जा सकता है। ( गिलफोर्ड, १९५६ )।

> "१५ हास्यप्रद चित्र ( कार्टून ) और १५ निरर्थक एवं भद्दी कविताएँ १५ व्यक्तियों को अलग-अलग दिखायी गईं। ५ प्वाइंट का एक मापक प्रस्तुत किया गया, जिसके अनुसार ५ 'बहुत ही हास्यप्रद' और १ 'बिलकुल हास्यप्रद नहीं' के लिए माप नियत था। कार्टून दिखाकर प्रत्येक व्यक्ति से पंच-बिंदु मापनी पर हास्य का स्थान स्थिर करने के लिए कहा जाता था। यही बात उक्त कविताओं के विषय में भी की गई। जब सभी के सब उत्तर अंकित कर लिए गए, तब कार्टून के संबंध में प्रत्येक व्यक्ति के अंकों को 'कार्टूनपरक प्राप्तांक' प्राप्त करने के लिए जोड़ा गया। 'इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का' कविता-संबंधी प्राप्तांक भी निश्चित हुआ। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए दो प्राप्तांक थे—'कार्टून प्राप्तांक' और 'कविता-प्राप्तांक'। प्रश्न था कि किस मात्रा तक वे दोनों प्राप्तांक सहसंबंधित थे अथवा कार्टूनों तथा कविताओं को देखने से प्राप्त हास्य में क्या संबंध था ? यह विश्वास करने का कारण नहीं था कि ये प्राप्तांक अंतराल-मापों की कसौटी पर खरे उतरे होंगे, अतः उन्हें श्रेणी अथवा कोटि के रूप में बदल दिया गया। सर्वाधिक अंक वाले को १ की कोटि में उसके बाद वाले अंक को २ की कोटि में—इसी प्रकार १५ तक की कोटियों में वे सज्जित किए गए। अन्य प्राप्तांकों के संबंध में भी प्रत्येक व्यक्ति की श्रेणी इस प्रकार नियत की गई। तब श्रेणियों के अंतरों से सहसंबंध—गुणांक जिसे rho कहते हैं, निकाला गया। मालूम हुआ कि वह ७० है, जो मनोवैज्ञानिक मापों के अनुसार निर्धारित सहसंबंध के ही समान ऊँचा है।"

१३.११ चित्र में देखा जा सकता है कि सहसंबंध उपयुक्त है। यद्यपि कुछ व्यक्तिक्रम है, फिर भी इतना है कि एक कार्टून सूची में जिनका स्थान ऊँचा है, दूसरे माप में भी उनका स्थान ऊँचा ही है। इस विषय में कोई विशेष आश्चर्यजनक निष्कर्ष तो नहीं है, पर उससे स्पष्ट है कि भिन्न स्थितियों में अथवा कार्टूनों और

ऊलजलूल कविताओं से जो हास्य-विनोद पाते हैं, उनमें कुछ संगति है। हास्य-विनोद के परीक्षण-संबंधी अनुसंधान में यह प्रयोग कुछ उपयोगी पाया गया।

इस प्रकार दो क्रमसूचक माप-समूहों का सहसंबंध मापने का तरीका यह हुआ कि कोटि-अंतर सहसंबंध ( Rank-difference Correlation ) तैयार किया जाए। क्रमसूचक मापों से प्राप्त श्रेणी करण का उपयोग करने के लिए इस विधि का आविष्कार किया गया।

सारणी १३.५

| व्यक्ति | कार्टून प्राप्तांक | लिमरिक प्राप्तांक | कार्टून क्रम | लिमरिक क्रम |
|---|---|---|---|---|
| A | ४७ | ७५ | ११ | ८ |
| B | ७१ | ७९ | ४ | ६ |
| C | ५२ | ८५ | ९ | ५ |
| D | ४८ | ५० | १० | १४ |
| E | ३५ | ४९ | १४.५ | १५ |
| F | ३५ | ५९ | १४.५ | १२ |
| G | ४१ | ७५ | १२.५ | ८ |
| H | ८२ | ९१ | १ | ३ |
| I | ७२ | १०२ | ३ | १ |
| J | ५६ | ८७ | ७ | ४ |
| K | ५९ | ७० | ६ | १० |
| L | ७३ | ९२ | २ | २ |
| M | ६० | ५४ | ५ | १३ |
| N | ५५ | ७५ | ८ | ८ |
| O | ४१ | ६८ | १२.५ | ११ |

**सारणी १३.५-१५ व्यक्तियों के कार्टून एवं लिमरिक ( निरर्थक कविता) परीक्षणों पर पाए हास्य-प्राप्तांक। दाहिनी ओर इन दो प्रकारों के प्राप्तांकों का कोटि-क्रम दिया गया है (गिल्फोर्ड के अनुसार, १९५६)।**

सहसंबंध गुणांक (Correlation Coefficient) :

अंतराल-माप-साधन पर किए गए मापों के लिए एक दूसरी गणना-विधि उपयोग में लायी जाती है। वास्तव में सहसंबंध की मात्रा निर्धारित करने के लिए काम में लाए गए विभिन्न सिद्धांतों से प्रायः एक ही नतीजा निकलता है; क्योंकि वे इसी काम के लिए बनाए गए हैं। दत्त-सामग्री के भिन्न होने पर वे भी भिन्न होते हैं। इस स्थिति में सहसंबंध की सूची को **गुणनघूर्ण सहसंबंध गुणांक** ( Product-moment Correlation Coefficient ) **कहते हैं**। इसका चिह्न r है, कभी-कभी इसे **पियर्सन का** r (Pearson's r ) कहते हैं; क्योंकि पियर्सन नाम के एक अंगरेज सांख्यिकीय मनोविज्ञानवेत्ता ने इसका आविष्कार किया था। चित्र १३.१२ में ऊँचा सहसंबध बताने वाले आँकड़ों का उदाहरण दिया गया है।

यह उदाहरण (टर्मन और मेरिल्ल, १९३७) बुद्धि-परीक्षण क्षेत्र से लिया गया है (देखिए, अध्याय—१४)। स्टेनफोर्ड-बीने (Stanford-Binet) बुद्धि-परीक्षण के दो प्रकार हैं—एक L और दूसरा M। सात वर्ष के बच्चों के एक दल पर अलग-अलग दो बार में इन दोनों पद्धतियों से परीक्षण किया गया। इस प्रकार प्रत्येक बच्चे से संबंधित दो-दो बुद्धिविषयक प्राप्तांक मिले। प्रत्येक प्राप्तांक युग्म (Pair of Scores) के लिए एक प्वाइंट मानकर उन सभी प्राप्तांकों को ग्राफ १३.१२ पर अंकित किया गया। प्रतिक्रिया समय के आँकड़ों के अनुसार ही वे श्रेणी-अंतर (Class-interval) के रूप में अंकित किए गए। उसमें दो मापों—एक L पद्धति के लिए दूसरी पद्धति M के लिए जो आपस में एक दूसरे के साथ समकोण बनाते हैं—के साथ दो श्रेणी-अंतर कोष्ठ बनाते हैं। जिस बच्चे को L पर ८७ और M पर ९० अंक मिले हैं, उसके लिए एक प्वाइंट दिया गया है, जो उस कोष्ठ में अंकित है जो L पर के श्रेणी-अंतर ८५-८९ और M पर के श्रेणी-अंतर ९०-९४ के कटान से बना है। इसी प्रकार सभी प्राप्तांक युग्मों को अंकित कर दिया गया है।

ये दोनों माप ऐसे बनाए गए थे कि एक व्यक्ति दोनों पद्धतियों (Forms) पर आदर्श रूप में समान अंक प्राप्त कर सके। ऐसा होने पर दोनों पद्धतियों का सहसंबंध पूर्ण हो जाएगा और सह संबंध गुणांक १.०० होगा। और भी, चित्र में दिखायी पड़ेगा कि नीचे के बाएँ कोने से ऊपर के दाहिने कोने तक एक एकदम सीधी रेखा बनी हुई है। चित्र १३.१२ में प्राप्तांक सीधी रेखा के आसपास हैं, किंतु कर्ण से किसी-न-किसी ओर कुछ दूरी पर हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि एक परीक्षण में जो अंक (Sccore) व्यक्ति पाता है, उससे कुछ भिन्न अंक दूसरे परीक्षण में पाने की प्रवृत्ति रखता है—किंतु यह भिन्नता अधिक नहीं होती है। इस प्रकार

सहसंबंध बिलकुल पूर्ण नहीं होता, फिर भी वह बहुत ऊँचा होता है—वस्तुतः लगभग ९० )

क्रम अंतर-सहसंबंध इस रूप में भी प्रदर्शित किया जा सकता है।
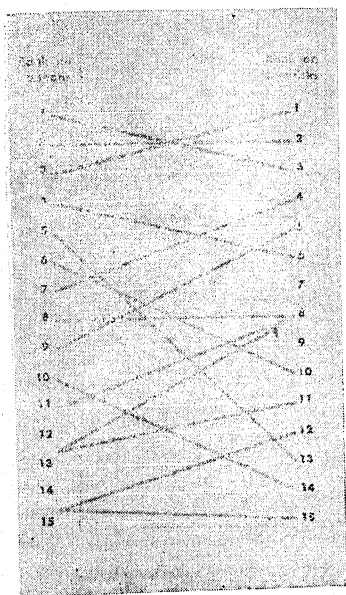
**चित्र १३.११ प्रत्येक रेखा एक व्यक्ति द्वारा पाए गए दो प्राप्तांकों को जोड़ती है (सारणी १३-५ की दत्त-सामग्री से )।**

ऐसे अंकन जो चित्र १३·१२ में प्रस्तुत हैं, **प्रकीर्णन आलेख** (Scatter diagram) कहे जाते हैं। उनसे सहसंबंध की दृश्य मात्रा की प्राप्ति होती है; क्योंकि प्रकीर्णता की मात्रा और उसकी दिशा सहसंबंध के अनुसार बदलती रहती है। चित्र १३.१३ में इसका दिग्दर्शन कराया गया है। जब सहसंबंध शून्य रहता है, तब प्रकीर्णन-आलेख के प्वाइंट अनियमित रूप में बिखरे रहते हैं और किसी व्यवस्थित दिशा में व्यवस्थित नहीं रहते। प्रकीर्णन क्षेत्र के केंद्र पर उससे दूर वाले भाग के आसपास की अपेक्षा अधिक प्वाइंट होते हैं। इसका मात्र कारण यह है कि प्रत्येक सहयोगी आवृत्ति-विभाजन के माप सिराओं की अपेक्षा केंद्र में अधिक एकत्र होते हैं। अगर सहसंबंध सामान्य है—मान लीजिए ५० है—तो प्रकीर्णता किसी-न-किसी दिशा में संकुचित हो जाती है और जैसा पहले बताया जा चुका है, १·०० के पूर्ण सहसंबंध का प्रकीर्णन आलेख एक सीधी रेखा होता है।

एक प्रकीर्ण-चित्र जिसमें प्रत्येक व्यक्ति के दो परीक्षणों के प्राप्तांक एक ही प्वाइंट द्वारा इस प्रकार अंकित किए गए हैं कि वे सहसंबंध के दृष्टिक रूप में प्रस्तुत करते हैं।
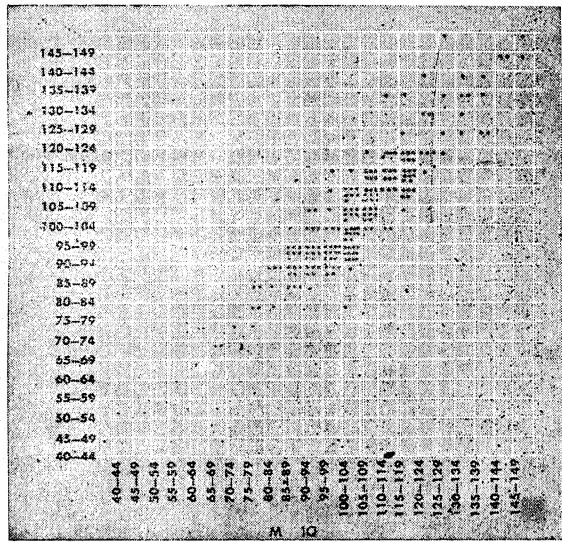
**चित्र १३.१२. स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षण के फार्म एल और फार्म एम पर सात वर्ष की आयु के उपलब्ध किए गए आइ क्यू का प्रकीर्ण-चित्र। ऐसा प्रकीर्ण-चित्र परीक्षण की विश्वसनीयता को व्यक्त करने में सहसंबंध के प्रयोग को स्पष्ट करता है, जो कि इस उदाहरण में पर्याप्त ऊँचा है (टर्मन और मेरिल्ल के अनुसार, १९३७, पृष्ठ ४५)।**

इसे बताने का दूसरा तरीका है—प्रकीर्णन आलेख का वर्णन प्रस्तुत करना। जब सहसंबंध शून्य रहता है, तब यह वृत्ताकार रहता है। ज्यों-ज्यों सहसंबंध बढ़ता है, त्यों-त्यों वह अधिकाधिक दीर्घवृत्त का रूप ग्रहण करता जाता है और जब सहसंबंध पूर्ण हो जाता है, तब वह संकुचित होकर एक सीधी रेखा के आकार का हो जाता है।

चित्र १३.१३ में यह भी ध्यान देने योग्य है कि दीर्घवृत्त अथवा प्रकीर्णन आलेख रेखा की दिशा सहसंबंध का लक्षण निर्देश करती है, अर्थात् वह धनात्मक है या ऋणात्मक। मान लिया जाए कि आलेख माप रूढ़ ( Conventional ) ढंग

व्यवस्थित किए गए हैं, ताकि ऊँचे प्राप्तांक खड़ी स्केल के शीर्ष पर और पड़ी स्केल ( Harizontal Scale ) के दाहिने ओर पड़ते हैं, तब धनात्मक (+) सहसंबंध नीचे के बाएँ कोने से ऊपर के दाहिने कोने तक की दिशा से व्यक्त किए जाते हैं। ऋणात्मक सहसंबंध (−) ऊपर के बाएँ स्थित कोने से नीचे के दाहिने स्थित कोने तक के दीर्घवृत्तों ( Ellipses ) अथवा रेखाओं से व्यक्त किए जाते हैं।

प्रकीर्णन रेखा के जितना निकट आता है, सहसंबंध उतना ही ऊँचा होता जाता है।
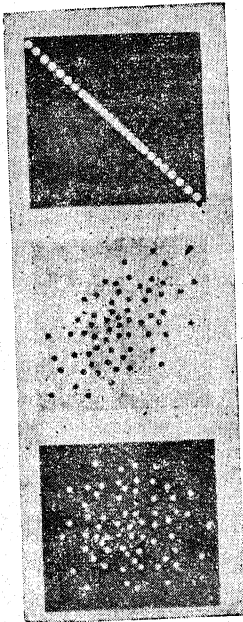
**चित्र १३.१२ सहसंबध की धनात्मक और ऋणात्मक विभिन्न मात्राओं को प्रदर्शित करने वाले प्रकीर्णन-चित्र ।**

जिस प्रकार धनात्मक सहसंबंध की सभी मात्राएँ ·०० से +१.०० के बीच हो सकती हैं, उसी प्रकार ऋणात्मक सहसंबंध की सभी मात्राएँ ·०० से—१·०० के बीच संभव हैं। किसी विशेष माप के सहसंबंध के सम्मुख के ऋण तथा धन चिह्न समान निकट संबंध व्यक्त करते हैं। वास्तव में, चिह्न नहीं, बल्कि संख्या सहसंबंध मात्रा की सूची है। चिह्न तो केवल संबंध की दिशा का संकेत करता है। ऋण चिह्नों से पता चलता है कि एक माप-समूह के ऊँचे प्राप्तांक दूसरे माप-समूह के निम्न प्राप्तांकों से संबंधित हैं। यही बात उसके विलोम रूप के संबंध में है। धनात्मक सहसंबंधों में ऊँचे प्राप्तांक ऊँचे प्राप्तांकों से और निम्न प्राप्तांकों से निम्न प्राप्तांक संबद्ध होते हैं। ऋणात्मक सहसंबंधों में ऊँचे प्राप्तांक निम्न प्राप्तांकों से और निम्न प्राप्तांक ऊँचे प्राप्तांकों से संबद्ध रहते हैं।

## कारणता और सहसंबंध ( Causation and Correlation ) :

यह समझ लेना तो सरल है कि दो माप-समूहों के उच्च सहसंबंध का अर्थ है कि मापे गए कारकों में से एक दूसरे के घटित होने का कारण होते हैं, किंतु प्रायः

ऐसा नहीं होता। जब सहसंबंध ऊँचा रहता है, तब विशेष विभिन्नताओं के दोनों समूह किन्हीं सामान्य कारणों से बनते हैं। उदाहरण लीजिए, ऊँचाई और वजन के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वजन का कारण ऊँचाई है; क्योंकि वे दोनों आनुवंशिकी विरासत, पोषक तत्त्वों तथा रोग इत्यादि की अलग-अलग विभिन्नताओं पर निर्भर करते हैं। संक्षेप में सहसंबंध केवल यह बताता है कि दो माप-समूहों में जो अलग-अलग अंतर हैं के साथ-साथ घटते-बढ़ते हैं, यह आवश्यक नहीं है कि उनमें से एक दूसरे का कारण अथवा जनक है।

कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि सहसंबंध के आधार पर कारण के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। अस्तु, यह निश्चय करने के लिए कि किसका कारण कौन है, सहसंबंधों की बड़ी संख्या की तथा उनमें निहित आधारभूत होने वाले परिवर्त्यों की समुचित व्याख्या अपेक्षित होगी।

### प्रतिचयन ( Sampling ) :

जिन मापों का अभी वर्णन किया गया है, वे वर्णनात्मक सांख्यिकी (Descriptive Statistics) कहे जा सकते हैं; क्योंकि वे एक माप-समूह के लक्षणों को स्पष्ट रूप से बताते हैं। जब हम मापन करते हैं, तब हमारा मतलब मापों के मात्र वर्णन से ही नहीं रहता, बल्कि उनकी **व्याख्या** से भी रहता है। हम उनसे सर्वसाधारण अथवा व्यवहार-संबंधी मूलभूत सिद्धांतों के विषय में अनुमिति निकालना चाहते हैं। ऐसी व्याख्याओं के लिए और सांख्यिकीय की आवश्यकता होगी।

### प्रतिनिधिक प्रतिचयन ( Representative Sampling ) :

सांख्यिकीय वर्णनों की व्याख्या के लिए जिस प्रथम संप्रत्यय की आवश्यकता है, वह है प्रतिचयन की संकल्पना। सारे माप का अभिप्रेत अर्थ है, प्रतिचयन। साधारणतया किसी भी वस्तु की सभी इकाइयों का माप नहीं किया जा सकता, चाहे वह पशुज्ञान हो, चाहे प्रत्यक्षज्ञान, बुद्धि अभिवृत्ति, जनसाधारण का मत या और कोई विषय। संसार में इतने व्यक्ति, पशु तथा घटनाएँ हैं कि हम उनकी सभी इकाइयों को, जिनसे हमारा संबंध हो, माप नहीं सकते। जब हम माप करतें हैं, तब चाहे हम समझें या नहीं, यथाशक्ति किए गए संभव माप योग का प्रतिचयन ही करते हैं।

साधारणतया हम ऐसे प्रतिदर्श के चयन की चेष्टा करते हैं, जो इतना विशाल और प्रतिनिधिक हो कि वह मापन बनाने की हमारी योग्यता से कहीं अधिक माप-समूह की जानकारी दे सके—उदाहरणतः जब राष्ट्रपति-पद के लिए उम्मीदवारों के विषय में मनोविज्ञानवेत्ता जनता की राय मापने की कोशिश करते हैं, तब वे आबादी का एक प्रतिनिधिक प्रतिदर्श अथवा मिश्रित अनुभाग प्रयोगार्थ ले लेते हैं और तब

इस आबादी को प्रस्तुत करने के लिए वे पर्याप्त परिमापन करते हैं। उनके मापों के आधार पर वे मतदाताओं की राय निकाल लेते हैं अथवा उनके विषय में पूर्वकथन करते हैं। बुद्धि-परीक्षण-संबंधी आँकड़ों के हमारे उदाहरण में जिन्होंने माप लिए, उनका मतलब विद्यालय के छात्रों का ऐसा प्रतिदर्श लेना था, जो इतना प्रतिनिधिक हो कि छात्रों की वृहत्तर संख्या की बुद्धि के आवृत्ति-विभाजन का परिज्ञान करा सके।

## प्रतिदर्शों की अभिनति ( Biases of Samples ) :

प्रतिनिधिक प्रतिदर्शों को पाना सर्वदा सरल नहीं है। वस्तुतः मापों के समूह के संबंध में बहुधा जो त्रुटि होती है, वह यह है कि वह माप-समूह प्रतिनिधिक नहीं होता, इसलिए हम उनसे वे अनुमानित परिणाम नहीं निकाल पाते, जिन्हें निकालना चाहते हैं। हमारे सामने यह कठिनाई इसलिए आती है कि उसमें बहुत से 'ढुलमुल' कारक काम करते हैं। यह हो सकता है कि ऐसे कारकों के कारण जिनकी जानकारी हमको न हो, किसी भौगोलिक क्षेत्रविशेष के छात्र साधारणतया छात्र-समाज की अपेक्षा अधिक तेज अथवा मंद प्रतीत होते हों। यदि टेलीफोन पर बातें कर हम राजनीति-संबंधी मत का प्रतिदर्श लेना चाहें, तो ऐसा भी हो सकता है कि टेलीफोन रखने वाले व्यक्ति राजनीति के विषय में इसके मत की अपेक्षा एक ही मत रखते हैं। अगर, जैसा कि बहुत से मनोवैज्ञानिक बाध्य होकर करते हैं, एक माप-समूह प्राप्त करने के लिए कालेज के विद्यार्थियों को लें, तो हो सकता है कि वे साधारण जनता के प्रतिनिधिक न हों। इस प्रकार विविध प्रकार के अनिश्चय अथवा झुकाव प्रतिनिधिक प्रतिदर्श प्राप्त होने में बाधा उपस्थित करते हैं।

## प्रतिचयन की विधियाँ ( Methods of Sampling ) :

यह निश्चय करने के लिए कि प्रतिचयन प्रतिनिधिक है, हम लोगों ने अनेक भिन्न-भिन्न विधियों का आविष्कार किया है। उनमें से कुछ विधियों का विस्तृत वर्णन बाद वाले अध्यायों में प्रस्तुत किया जाएगा (देखिए, अध्याय १७)। साधारणतः वे दो भिन्न प्रकार के होते हैं। उनमें से एक को **यादृच्छिक प्रतिचयन** कहा जा सकता है। इसका उपयोग तब किया जाता है, जब हम माप के अनिश्चित कारकों के बारे में या तो बहुत थोड़ी जानकारी रखते हैं, या एकदम नहीं रखते। यादृच्छिक प्रतिचयन करने में हम लोग चेष्टा करते हैं कि प्रतिदर्श रूप में जो कुछ लिया जाए, वह मात्र संयोग पर ही आधारित हो। उदाहरणार्थ—रेडियो सुनने का सर्वेक्षण करने के लिए टेलीफोन डाइरेक्टरी से प्रत्येक दो सौवाँ नाम चुन लिया जाता है अथवा बुद्धि मापने के लिए किसी राज्य के विद्यालयों में से प्रत्येक से प्रति सौ बच्चों में से किन्हीं दो के नाम मनमाने तौर पर चुन लिए जाते हैं। अथवा चूहों के अधिगम का अध्ययन करने के लिए प्रयोगशाला के प्रति दस चूहों में से एक को चुन लिया जाता है।

प्रतिनिधिक प्रतिदर्श प्राप्त करने के लिए दूसरी साधारण विधि है—**नियंत्रित प्रतिचयन**। इसके लिए कुछ विषम, जैसे, अवस्था, लिंग, आर्थिक स्थिति, शैक्षणिक स्तर, पेशे का प्रकार इत्यादि लेते हैं। प्रतिदर्श को पूर्ण बनाने की दृष्टि से इन सभी विषयों को समझ-बूझ के साथ संतुलित कर देते हैं। जनता के मत का प्रतिचयन करने के लिए इस बात का ध्यान रखना उचित होगा कि पूरी आबादी में भिन्न-भिन्न लोगों की संख्या के अनुपात से व्यक्तियों का चयन प्रयोग के लिए किया जाए। जैसे—छोटे-बड़े शहरों से, धनिकों से, गरीबों से, पूर्व से, और पश्चिम से, मजदूरों से तथा मालिकों से। यदि ठीक-ठीक किया जाए, तो इस प्रकार के प्रतिचयन से यह उचित रूप में निश्चय हो जाता है कि अनिश्चित त्रुटियाँ नियंत्रित कर ली गई हैं। इस प्रकार यह सबसे कम श्रमसाध्य प्रतिचयन-प्रणाली है; क्योंकि यादृच्छिक प्रतिचयन की अपेक्षा नियंत्रित प्रतिचयन के अनुसार कम प्रतिदर्शों के आधार पर सही परिणाम निकालना संभव है।

### प्रतिचयन त्रुटि (Sampling Error) :

प्रतिनिधिक प्रतिदर्श प्राप्त करने के लिए पूर्ण रूप से सचेष्ट रहने के बावजूद प्रतिचयन-संबंधी त्रुटि रह जाती है। जैसा इसके शीर्षक से स्पष्ट है, यह त्रुटि इसलिए होती है कि हम लोग मापों का केवल प्रतिदर्श या नमूना ही लेते हैं, न कि समस्त आबादी का माप। यह त्रुटि पूरी आबादी में से इकाइयों के चुनाव में संयोग-जन्य अंतरों के कारण होती है। नमूना जितना छोटा होगा, त्रुटि उतनी ही बड़ी होगी, जिस अनुपात से नमूना बढ़ेगा, उसी अनुपात से त्रुटि घटेगी। मोटे साधारण नियम के अनुसार प्रतिचयन-त्रुटि-मापों की संख्या के वर्गमूल के विलोम अनुपात में होती है। दूसरे शब्दों में, १० इकाइयों के प्रतिचयन में जो त्रुटि होगी, वह १००० के प्रतिचयन में होने वाली त्रुटि से दसगुनी होगी।

प्रतिचयन-संबंधी त्रुटि के फलस्वरूप आवृत्ति-विभाजन के प्रत्येक माप और विभाजनों के आधार पर स्थापित सहसंबंध के प्रत्येक माप में कुछ-न-कुछ त्रुटि होगी। फलतः प्रयोग में लाए गए प्रतिदर्श के अनुसार आकार माध्य, माध्यिका, मानक विचलन, सहसंबंध अक्षांक तथा अन्य मापों में, जिनकी चर्चा की गई है, कुछ त्रुटि रहती है। त्रुटि का अर्थ है—कि माप और उस मूल्य में कुछ अंतर पड़ जाता है, जो उस आबादी का ठीक-ठीक माप मिलने पर प्राप्त होता, जिसका प्रतिदर्श लिया गया। मापों के एक से अधिक नमूने लेकर इस तथ्य का व्यावहारिक प्रदर्शन किया जा सकता है। यदि ब्रेक प्रतिक्रिया-काल के माप के उदाहरण में विभिन्न लोगों के दो सौ मापों का दूसरा समूह लिया गया होता, तो दो आवृत्ति-विभाजन आपस में थोड़े-बहुत भिन्न होते।

प्रतिचयन-संबंधी त्रुटियों का अनुमान लगाने के लिए गणितज्ञों ने सिद्धांतों या सूत्रों का आविष्कार किया है। इन सूत्रों का उपयोग करने से वे संख्या में प्राप्त होती हैं, जो उस मात्रा का संकेत करती है, जहाँ तक भिन्न-भिन्न नमूनों के मात्र संयोग से भिन्न होने की आशा की जा सकती थी। चाहे हम उन सूत्रों को जानें या न जानें, उनका उपयोग करें या न करें, परंतु इतना ध्यान में सर्वदा रखना ही होगा कि हम जिस किसी भी माप का उपयोग करेंगे, उसमें त्रुटि रहेगी ही। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि एक नमूने पर पुनः माप लिए जाएँ, तो प्रत्येक माप औरों से कुछ थोड़ा-सा भिन्न होगा। यही कारण है कि किसी विभाजन के माध्यों, प्रतिशतों अथवा अन्य मापों के थोड़े-बहुत अंतरों को महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए।

सार्थकता ( Significance ) :

अब हम सार्थकता की अवधारणा पर आते हैं। अगर किसी प्रयोग में मापों के दो समूहों को तुलना की जाए, तो प्रायः प्रत्येक स्थिति में माध्यों में अंतर मिलेगा। उसी प्रकार किन्हीं दो माप-समूहों का सहसंबंध स्थिर करने में केवल कभी-कभी ही शून्य का सहसंबंध मिलता है। प्रश्न है, किसी अंतर अथवा सहसंबंध की सार्थकता कब होती है? इससे अभिप्राय यह है कि किस अवस्था में संयोगात् होने वाले अपेक्षित अंतर की अपेक्षा शून्य से अंतर बड़ा होगा?

इस प्रश्न का उत्तर संभाव्यताओं के रूप में दिया जाना चाहिए। आँकड़ों में नितांत निश्चयात्मकता नहीं रहती। उदाहरणार्थ, यदि दस सिक्के उछाले जाएँ और वे सीधे गिरें, अर्थात् गिरने पर वे सब चित हों, तो प्रश्न उठ सकता है कि यह संयोग का ही फल है, अथवा सिक्के त्रुटिपूर्ण हैं? संभाव्यता की तालिकाओं से पता चलता है कि प्रति १,०२४ बार में केवल एक ही बार १० उछालों में दस बार सिक्कों के सीधा गिरने की आशा की जा सकती है। और दस लाख बार में केवल एक बार २० उछाल में २० बार सीधा गिरने की आशा कर सकते हैं। इसकी संभावना बहुत थोड़ी है. लेकिन यदि लाखों बार सिक्के उछाले जाएँ, तो कभी वही परिणाम संयोग के फलस्वरूप हो सकता है। इसलिए इस प्रश्न का, कि क्या कोई चीज सार्थक रूप में संयोग से भिन्न है, उत्तर संयोग के ही रूप में दिया जाना चाहिए।

व्यवहार में ऐसा होता है कि सार्थकता के दो भिन्न स्तर मनमाने तौर पर चुन लिए जाते हैं एक P=.०५ की असंगठित कसौटी है और दूसरा P=.०१ की संगठित कसौटी है। P का अर्थ संभाव्यता है जो ० ०० और १.०० के बीच की संख्या के रूप में व्यक्त की गई है और जो संयोग के फलस्वरूप प्राप्त है। इन कसौटियों का अर्थ यह है कि संयोग को उस अंतर से भिन्न स्वीकार करेंगे, जिसकी २० में १

अथवा १०० में १ बार होने की संभावना की आशा की जाती है। यदि हम एक ही प्रकार के मापों का प्रतिचयन करते चले जाएँ, तो कभी-न-कभी अंतर की सार्थकता अथवा महत्त्व के विषय में प्रायः निश्चित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। यह मानते हुए भी कि हम गलती पर हैं, असंगठित कसौटी की सहायता से भी हम वही जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। किंतु, असंगठित कसौटी का आधार लेना कम श्रमसाध्य है; क्योंकि इसे स्वीकार कर हम अन्य परीक्षणों की ओर बढ़ सकते हैं। याद रखिए कि त्रुटि प्रयोग में लायी गई इकाइयों की संख्या के वर्गमूल के अनुपात में होती है। अगर और बातें समान हों, तो किसी अंतर को सार्थक सिद्ध करने के लिए .०५ स्तर पर जितने माप लिए जाएँगे, उससे कई गुने माप उसी काम के लिए ०१ स्तर पर लेने की आवश्यकता होगी।

इस विधि से सार्थकता की स्थापना कैसे की जाती है? प्रतिचयन-संबंधी त्रुटियों का अंदाज लगाने वाले सूत्रों का प्रयोग किन्हीं भी आँकड़ों पर किया जा सकता है और उनसे मालूम किया जा सकता है कि एक दिया हुआ अंतर अथवा सहसंबंध का दिया हुआ परिमाण कितनी बार संयोगात् घटित हो सकता है। समय के ·०५ या .०१ से जो मात्रा अपेक्षित है, उससे अधिक किसी अंतर को—शून्य से वास्तविक दूरी की ही भाँति—सार्थक माना जा सकता है। यही कारण है कि सांख्यिकी स्पष्ट दीखने वाले अंतरों--माध्यों के १० या २० प्रतिशत अथवा ·२० या अधिक के सहसंबंध के अंतर—की प्रायः उपेक्षा कर देते हैं। यदि इन अंतरों के मापों की संख्या बहुत बड़ी नहीं है, तो उससे यह प्रकट होता है कि वे शून्य से सार्थक रूप में दूर स्वीकार नहीं किए जा सकते।

### अच्छे मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के लक्षण (Characteristics of good Psychological Tests) :

यदि हमें किसी कमरे की लंबाई-चौड़ाई आदि अथवा अपना बढ़ा हुआ वज़न नापना होता है, तो अभ्यासानुसार रूलर, स्केल अथवा कोई भी सुविधाजनक माप साधन काम में लाते हैं, व्यर्थ के झंझट में नहीं पड़ते। माप-साधनों के विषय में पूछ-ताछ नहीं करते, उन्हें दुरूस्त मान लेते हैं। दुर्भाग्यवश, यही प्रवृत्ति मनोवैज्ञानिक विषयों में भी काम करती है। इधर पिछले कुछ वर्षों में सर्वसाधारण ने मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के संबंध में बहुत कुछ सुना है, और बुद्धि, व्यक्तित्व, वृत्ति-संबंधी योग्यता अथवा अन्य विषयों के माप के लिए सुगमता से आसपास मिलने वाले परीक्षणों के लिए दौड़ता है। इस प्रवृत्ति का कारण है, प्रचलित पत्रिकाओं में बिना सावधानी से किए गए अप्रामाणिक प्रयोगों का प्रकाशन।

मनोवैज्ञानिक अथवा भौतिक—किसी भी प्रकार के—परीक्षणों का उपयोग बुद्धिमत्तापूर्वक करना चाहिए। उनका आविष्कार विशेष काम के लिए किया जाता है। उस काम को करने में कुछ तो सफल होते हैं, कुछ असफल। टेपमाप तथा गहराईमापक ( Bathroom scale ) भी प्राय: अविश्वसनीय सिद्ध हो जाते हैं। अधिक सूक्ष्म मापकों में बहुत से परीक्षण व्यर्थ सिद्ध होते हैं। कुछ मापक बहुत ही महत्त्वपूर्ण होते हैं, किंतु तभी, जब वे कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और उनका उपयोग उन्हीं कामों के लिए किया जाता है, जिनके लिए वे आविष्कृत किए गए हैं। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के संबंध में यह विशेष सत्य है। अतएव, अच्छे परीक्षण के लक्षण जान लेना उचित है।

**विश्वसनीयता :**

अच्छे परीक्षण का पहला लक्षण है, उसकी विश्वसनीयता। दूसरे शब्दों में, उसमें और उसके द्वारा दिए गए परिणामों में सामंजस्य होना चाहिए। यदि उससे किसी वस्तु को दो बार नहीं माप सकते और प्रत्येक माप से प्राय: एक ही उत्तर नहीं पा सकते, तो उसके मापों का मूल्य बहुत नहीं है। यह प्रतिचयन-त्रुटि-संबंधी समस्या से, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है, अलग विषय है। प्रतिचयन में एक ही समूह की दो भिन्न वस्तुओं ( अथवा व्यक्तियों ) को मापते हैं। प्रतिचयन त्रुटि मापी गई वस्तुओं के संयोगजन्य अंतरों के कारण होती है। और यहाँ हम एक ही वस्तु को दो बार मापने एवं दोनों माप-फलों के प्राय: एक ही होने की बात कर रहे हैं।

विश्वसनीयता के संप्रत्यय का प्रदर्शन एक ऐसे उदाहरण पर विचार करने से किया जा सकता है, जो संभवत: बिलकुल अयथार्थ है। एक प्राध्यापक ने अपनी क्लास की परीक्षा ली। अब उसका कुछ विचित्र-सा काम है, उसे क्रमबद्ध करना। चूँकि कक्षा के प्रत्येक छात्र से उसने उत्तर पुस्तिका ले ली है, इसलिए उसके सामने इस उदाहरण में प्रतिचयन की समस्याएँ नहीं हैं। उसे मात्र यही करना है कि वह एक माप-दंड, अर्थात् गणना-प्रणाली, चुन ले। एक संभव तरीका यह हो सकता है कि वह उन्हें सीढ़ियों पर फेंक दे, प्रत्येक सीढ़ी के लिए कोई अंक नियत कर ले और प्रत्येक पुस्तिका को उस सीढ़ी के क्रम के अनुसार व्यवस्थित कर दे, जिस पर वह गिरे। अगर ऐसा किया जाता है, तो संभव है कि एक आवृत्ति-विभाजन ( जो एक सामान्य वक्र भी हो सकता है ) प्राप्त हो जाए, जिससे माध्य और और मान-विचलन की प्राप्ति हो सके।

इस क्रम-व्यवस्था के दो स्पष्ट दोष हैं, यह अमान्य एवं अविश्वसनीय है। ( मान्यता-संबंधी विचार आगे प्रस्तुत किए गए हैं )। यह तरीका मात्र इसलिए अविश्वसनीय होगा कि उससे दो बार एक ही उत्तर नहीं मिल सकता। वह स्वयं

अपना परीक्षण नहीं कर सकता। यदि प्राध्यापक पुस्तिकाओं को एकत्र कर दूसरी बार उसी तरह उन्हें सीढ़ियों पर फेंक दे, तो दूसरी बार भी वह किसी भी पुस्तिका की पहली फेंकान वाली क्रम-संख्या नहीं पा सकता। मान लिया जाए कि पुस्तिकाएँ सीढ़ियों पर यादृच्छिक रूप में गिरीं, तो दूसरी बार की क्रम-व्यवस्था में जो अंक एक आदमी को मिलेंगे, वे उसके पहली बार के प्राप्तांक से बिलकुल भिन्न होंगे। इसीलिए इस पद्धति को अविश्वसनीय कहा जाता है।

मापों के किसी समूह की सापेक्ष विश्वसनीयता अथवा अविश्सनीयता बिलकुल स्पष्ट रूप से निकालने की एक सांख्यिकी पद्धति है। वह है सहसंबंध पद्धति, जिसका वर्णन पहले ही किया जा चुका है। एक ही प्रणाली से मिले हुए प्राप्तांकों के दो समूहों में सहसंबंध स्थापित करने से मापों की विश्वसनीयता की मात्रा की जानकारी होती है। दिए हुए उदाहरण में फार्म L और फार्म M, बुद्धि-परीक्षण के इन दो प्रकारों के उपयोग का मुख्य ध्येय वास्तव में यही था। बुद्धि-परीक्षण के लिए दो प्रकारों का उपयोग करना वैसा ही है, जैसा पुस्तिकाओं को अलग-अलग दो अवसरों पर क्रमानुसार व्यवस्थित करना। अगर परिणामों का सहसंबंध ठीक है, जैसा बुद्धि के उदाहरण में होता है, तो हम मान सकते हैं कि हमारा माप-साधन ( Measuring Instrument ) विश्वसनीयतापूर्वक किसी चीज की माप कर रहा है। अगर ऐसा नहीं होता, तो हमारा माप अविश्वसनीय है—उसी तरह हम पुस्तिकाओं को सीढ़ियों पर फेंकते रह जाएँगे।

मनोवैज्ञानिक माप के लिए विश्वसनीयता एक अनिवार्य शर्त है। यदि माप विश्वसनीय नहीं है, तो वह और किसी बात के लिए बहुत काम का नहीं हो सकता। दूसरे शब्दों में, यदि हम दो क्रमिक ( Successive ) एवं स्वतंत्र मापों से व्यक्ति या व्यक्तियों के लिए एक ही अथवा करीब-करीब एक ही प्राप्तांक नहीं पाते हैं, तो समझना चाहिए कि हम वास्तव में माप कर ही नहीं रहे हैं। ऐसा माप वैसा ही होगा जैसा सिक्के फेंकना, पासे फेंकना अथवा जुए के पहिए घुमाना। दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है—यदि किसी माप-साधन का सहसंबंध स्वयं उसी से संभव न हो, तो अन्य किसी भी विषय से संबंधित अनुमान लगाने की चेष्टा करना व्यर्थ है।

### प्रामाण्य या वैधता ( Validity ) :

एक अच्छे परीक्षण अथवा माप का प्रामाणिक होना भी आवश्यक है। अपने अतिरिक्त इसे किसी अन्य विषय से भी सहसंबंध स्थापित करना चाहिए, ताकि वह किसी सार्थक वस्तु का माप कर सके। सरलतम रूप में 'मान्यता' इस बात का निर्देश

करती है कि जिस वस्तु का माप करना इष्ट है, उसे कोई परीक्षण कितनी अच्छाई के साथ मापने में सफल होता है। अगर हम बुद्धि मापने की कोशिश करें, तो हमारे परीक्षण को बुद्धि का ही माप करना चाहिए न कि प्रतिक्रियाकाल, सांस्कृतिक आधार अथवा किसी अन्य विषय का। यदि वह बुद्धि का माप करने में समर्थ नहीं है, तो हम कहेंगे कि वह बुद्धि का प्रामाण्य परीक्षण नहीं है और साधारण रूप में यह कहा जा सकता है कि कोई परीक्षण मात्र उसी सीमा तक प्रामाण्य है, जिस सीमा तक वह किसी अन्य विषय से सहसंबंध स्थापित करता है। वह परीक्षण जो प्रतिक्रियाकाल से अच्छी तरह सहसंबंधित है, प्रतिक्रियाकाल के लिए अच्छा परीक्षण होगा। किंतु, यदि यह बुद्धि से सहसंबंधित नहीं है, तो यह बुद्धि के लिए प्रामाण्य परीक्षण नहीं होगा।

परीक्षा-क्रम-निर्धारण के उदाहरण की बात फिर उठाएँ। साधारणतः यह माना जाता है कि निबंध-परीक्षा से किसी व्यक्ति की किसी विषय के ज्ञान तथा उस ज्ञान को सुव्यवस्थित करने की योग्यता का माप प्राप्त होता है। जिस सीमा तक वह माप सफल होता है, वहाँ तक वह प्रामाण्य परीक्षण होगा। विद्यार्थी कितने शब्द लिख सकता है, इसके लिए वह माप नहीं माना जाता। शब्द-गणना एक बहुत ही विश्वसनीय माप मानी जाती है और यदि कोई प्रोफेसर गणना को काम में लाए, तो वह किसी बहुत विश्वसनीय क्रम के निर्धारण में सफल हो सकता है। वास्तव में क्रम-निर्धारण का यह तरीका अन्य प्रणालियों की अपेक्षा निःसंदेह सर्वाधिक विश्वसनीय होगा। यदि उसका उपयोग किया जाए, तो 'शब्द-उत्पादन' के लिए कोई प्रामाण्य परीक्षण प्राप्त हो भी सकता है और नहीं भी प्राप्त हो सकता है। एक ऐसा माप भी पाया जा सकता है, जो व्यापकार्थ तथा ज्ञान-संगठन को मापने के लिए कुछ हद तक प्रामाण्य हो; क्योंकि किसी सरल परीक्षा में कोई व्यक्ति जितना लिखता है, और जो कुछ जानता है—इन दोनों के बीच सहसंबंध है। इष्ट वस्तुओं, अर्थात् ज्ञान और संगठन के परीक्षणों के क्रम-निर्धारण का कोई तरीका, अपेक्षाकृत बहुत अधिक प्रामाण्य हो सकता है, प्रोफेसर साधारणतया यही करने की कोशिश करते हैं।

माप के प्रामाण्य की यह समस्या विज्ञानवेत्ताओं के लिए एक गंभीर समस्या है। माप के विश्वसनीय उपकरणों का आविष्कार करना अपेक्षाकृत सरल है, किंतु उतना सरल नहीं, जितने की कल्पना की जा सकती है। प्रामाण्य मापों का आविष्कार करना बहुत ही कठिन है। मापों की विश्वसनीयता प्रमाणित हो जाने पर, उनकी प्रामाण्यता निर्धारित करने के लिए सहसंबंध पद्धति का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इस मामले में किसी ऐसी कसौटी का होना जरूरी है, जो यह बात बता सके कि प्रयुक्त परीक्षण किससे सहसंबंधित है।

उदाहरणार्थ, बुद्धि की एक प्रमुख कसौटी है, सीखने तथा समस्याओं को हल करने की योग्यता। और साधारण रूप में इसे यों कहा जा सकता है—शिक्षा से लाभ उठाने की योग्यता। अतः, बुद्धि-परीक्षण की कसौटी विद्यालय में प्राप्त सफलता हो सकती है। बुद्धि-परीक्षण का प्रामाण्य आँकने के लिए बुद्धि-परीक्षण में किसी व्यक्ति के प्राप्तांक को उसकी शैक्षणिक प्रगति से सहसंबंधित किया जा सकता है। प्रगति से तात्पर्य है—आयु के अनुसार व्यक्ति द्वारा की गई प्रगति। यदि सहसंबंध ऊँचा है, तो यह कहा जा सकता है कि बुद्धि-परीक्षण प्रामाण्य है और अगर ऊँचा नहीं है, तो परीक्षण उतना प्रामाण्य नहीं है।

दूसरा उदाहरण लें, यदि हमें वायुयानचालकों का चुनाव करना हो, तो जहाज चलाने में वे सफल होते हैं या असफल, यही हमारी कसौटी होगी। जब ऐसे परीक्षण प्राप्त हो जाएँ, जो इस सफलता या असफलता से अच्छी तरह सहसंबंधित हों, तब हम उन्हें प्रामाण्य कहते हैं। यदि वे कसौटी से सहसंबंधित नहीं होते, तो वे अमान्य हैं, चाहे वे कितना भी विश्वसनीय हों, चाहे वे आपस में सहसंबंधित भी हों।

इस प्रकार प्रामाण्य उस मात्रा का सूचकांक है, जिससे कोई परीक्षण किसी कसौटी से सहसबंधित होता है। साधारणतया हम जिसका माप करना चाहते हैं, वही हमारी कसौटी है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई परीक्षण उसके कारण नहीं, बल्कि किसी अन्य कसौटी के कारण प्रामाण्य होता है। प्रामाण्य होने के लिए इसे किसी कसौटी से सहसंबंधित अवश्य होना चाहिए। इसलिए कसौटी का माप करने अथवा उसके विषय में पूर्वकथन करने के लिए उसका उपयोग किया जा सकता है।

## कार्य प्रतिचयन :

तृतीय, कार्यों के प्रतिदर्श अच्छे परीक्षण हैं। वे ऐसी बहुत-सी वस्तुओं के प्रतिदर्श हैं, जिनसे कसौटी तैयार होती है। उदाहरणार्थ, हमारी बुद्धि में अनेक वस्तुएँ आती हैं। इसलिए अनेक माप बुद्धि से सहसंबंधित होते हैं। जैसे, समस्याएँ हल करने की गति, स्मरण करने की योग्यता, शब्द-ज्ञान की मात्रा आदि। जितना प्रामाण्य कोई बुद्धि-परीक्षण है, उतना ही इनमें से किसी का परीक्षण भी मान्य है। उनमें से किसी एक पर ही रुक जाने से मान्यता एक बहुत निम्न स्तर तक सीमित रह जाती है। कसौटी में आने वाले व्यवहारों के एक उत्तम प्रतिदर्श के परीक्षण से सर्वोच्च प्रामाण्य की प्राप्ति होती है।

तब आदर्श रूप में, सर्वाधिक प्रामाण्य परीक्षण को विकसित करने के लिए अनंत वस्तुओं का माप करना होगा, या कम-से-कम उतनी वस्तुओं का, जिनमें प्रामाण्य मौजूद है। यह इतना खर्चीला तथा दुस्साध्य कार्य होगा कि हो नहीं पाएगा। और ऐसा कर लेने पर, उसके परीक्षण में इतना समय लग जाएगा कि जिसका परी-

क्षण करना उचित होगा, उसका कर नहीं पाएँगे और सारा उद्योग व्यर्थ सिद्ध होगा। उपयोगी परीक्षण प्राप्त करने के लिए व्यवहार रूप में यह आवश्यक है कि उचित संख्या में वस्तुओं के साथ परीक्षण किया जाए, साथ ही यदा-कदा प्रामाणिक रूप में प्राप्य प्रामाण्य स्थिर भी करते जाएँ। अस्तु, अच्छा परीक्षण—प्रामाण्य परीक्षण, वह है, जिसमें उन कार्यों का यथासंभव उत्तम प्रतिदर्श निहित हो, जिनसे कसौटी बनती है।

कार्यों के उत्तम प्रतिदर्शों की प्राप्ति से अर्थ है—जिस रूप में परीक्षण किया गया हो, उसका मानकीकरण। प्रत्येक वस्तु का परीक्षण एक ही पद्धति से और काल की एक निश्चित मात्रा में किया जाना चहिए, यदि परीक्षण-क्रिया को काल किसी रूप में प्रभावित करता हो। यदि परीक्षण-क्रिया का मानकीकरण नहीं किया जाता है, तो माप अविश्वसनीय एवं अवैध दोनों हो सकता है। चूँकि परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं, इसलिए एक ही माप दो बार पाने की आशा नहीं की जा सकती और न यही आशा कर सकते हैं कि हमारे माप उतने ही ठीक रूप में सहसंबंधित होंगे, जितने वे कसौटी के साथ होते।

## मानकीकरण समूह :

माप-साधन के रूप में साधारण प्रयोग के लिए एक अच्छे परीक्षण का एक बड़े और सुनिर्धारित मानकीकरण समूह पर आधारित होना उचित है। कुछ अनुसंधान-संबंधी प्रयोजनों के लिए यह आवश्यक नहीं भी हो सकता है। किंतु परामर्श, पथ-निर्देशन तथा लोगों के विषय में साधारण पूर्वकथन में प्रयुक्त परीक्षणों के लिए आवश्यक है।

मानकीकरण समूह के प्रयोग का कारण यह है कि मनोवैज्ञानिक माप के विषय में हमारा संबंध मुख्य रूप से लोगों की तुलना करने से रहता है। हमारी रुचि उनके बीच के अंतरों अथवा उसके कोटि-क्रम में रहती है ( क्रमसूचक और अंतराल मापों में )। मनोवैज्ञानिक विशेषता पाउंड और इंच की भाँति नहीं है, यह तो एक सापेक्ष अथवा अनुपाती विषय है। यदि हम यह जान लें कि जॉन ने बुद्धि-परीक्षण से संबंधित ८३ प्रश्न किए, तो यह जानकारी तब तक किसी काम की नहीं होगी, जब तक यह भी न बताया जाए कि औरों द्वारा किए गए प्रश्नों की औसत संख्या ६० है और १० प्रतिशत से कम लोगों ने ८३ से कम प्रश्न किए। इस जानकारी के आधार पर यह ठीक तरह से मालूम हो सकेगा कि औरों की तुलना में जॉन की क्या स्थिति है। इसके बिना हमारी जानकारी अर्थहीन सिद्ध होगी।

इसी कारण से प्रत्येक परीक्षण-व्यवस्था का एक आवश्यक क्रम है—अधिक-से-से अधिक लोगों पर परीक्षण करना। जिस समूह पर वह परीक्षण किया जाएगा, उसे

**मानकीकरण समूह** ( Standardization Group ) कहा जाता है और उन लोगों द्वारा प्राप्त विविध अंकों को परीक्षण मानक ( Test Norms ) कहते हैं। परीक्षण मानक से औसत प्राप्तांक और उनके पारस्परिक अंतरों की जानकारी प्राप्त होती है। ऐसे मानकों को व्यक्त करने के विविध तरीके हैं और किसी भी तरीके को अपनाने से स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ता; क्योंकि मनोविज्ञानवेत्ता एक तरीके को दूसरे में तुरंत बदल देने में समर्थ होता है : यह चित्र संख्या १३·१४ में देखा जा सकता है, जो मानक व्यक्त करने के विविध तरीकों के आपसी संबंध व्यक्त करता है।

एक मानकीकरण समूह के प्राप्तांकों को मानक विचलन (Z प्राप्तांक) मानक प्राप्तांक (T प्राप्तांक) अथवा प्रतिशतक रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है।
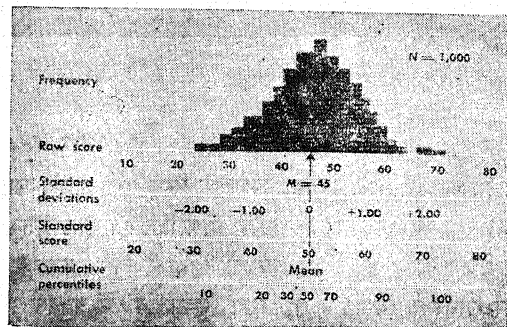
**चित्र १३·१४. मानकीकरण समूह द्वारा उपलब्ध परीक्षण प्राप्तांकों के परिकल्पनात्मक वितरण का सांख्यिकीय विवरण। सबसे ऊपर कच्चे प्राप्तांकों का आवृत्ति-विभाजन है, जिसे मानकीकरण समूह किसी परीक्षण पर कर सकता है। इस विभाजन या बंटन में माध्य ४५ है, मानक विचलन, ११। कच्चे प्राप्तांकों को तीन प्रकारों में से किसी एक में व्यक्त किया जा सकता है : मानक विचलन, प्रतिशतक अथवा मानक फलांक या प्राप्तांक। इस उदाहरण में, उन्हें मानक प्राप्तांकों के रूप में व्यक्त करने के लिए माध्य को स्वेच्छया ५० पर मान लिया है और मानक विचलन को १० पर।**

चित्र १३·१४ में योग्यता के परिकल्पनात्मक परीक्षण पर मानकीकरण समूह द्वारा प्राप्तांकों का वितरण प्रस्तुत किया गया है। ये प्राप्तांक २५ से ७० के बीच हैं। प्राप्तांकों के नीचे तीन पैमाने या मापक हैं। एक उन प्राप्तांकों को बताता है, जो माध्य के ऊपर और नीचे १० और २० के अनुरूप हैं। दूसरे पैमाने

से मानक प्राप्तांक प्रकट होता है। अंतिम पैमाना उन व्यक्तियों का प्रतिशत बताता है, जो किसी विशेष अंक से कम अंक प्राप्त करते हैं। जो इसे समझता है, उसके लिए मानक प्राप्तांक विशेष लाभदायक होगा; क्योंकि यह सीधे किसी प्राप्तांक के मानकीकरण समूह से संबंध बताता है। इस संबंध में माध्य का मानक प्राप्तांक ५० होता है और प्रत्येक दिशा में प्रति १० प्वाइंट मानक-अंतर प्रस्तुत करता है।

इन पैमानों के उदाहरण के लिए हम मान लें कि किसी व्यक्ति ने परिकल्पनात्मक परीक्षण में ५९ अंक प्राप्त किए। मानक परीक्षण को देखने से पता चलता है कि उसका प्राप्तांक माध्य से प्रायः १ ३० ऊपर है, वह मानकीकरण समूह के ९० प्रतिशत द्वारा प्राप्तांक के बराबर अथवा उससे भी ऊँचा है और वह ६३ मानक प्राप्तांक प्रस्तुत करता है। परीक्षण-मानक कभी-कभी इनमें से एक या सभी तरीकों से व्यक्त किए जाते हैं। आयुमानक साधारणतया तब दिए जाते हैं, जब विविध आयु वाले व्यक्तियों पर परीक्षण किया जाता है। यदि परीक्षण सापेक्ष रूप में समान आयु वाले समूह, अर्थात् युवक वयस्क-समूह पर किया जाता है, तब उसे (आयुमानक को) काम में नहीं लाते। विद्यालय की श्रेणियों, व्यावसायिक समूहों, व्यक्तियों के अन्य वर्गीकरण जो संगत हों, में मानक दिए जा सकते हैं।

एक और बात महत्त्वपूर्ण है। वह मानकीकरण समूह से संबंधित है। यदि किसी व्यक्ति के प्राप्तांक की ठीक-ठीक तुलना परीक्षण मानकों से करनी हो, तो हमें मानकीकरण समूह की विशिष्टताओं को अवश्य जानना चाहिए। कोई पुराना समूह काम नहीं करेगा। अगर जॉन की अवस्था दस साल है और हम उस पर बुद्धि-परीक्षण करना चाहते हैं, तो वयस्कों के मानकीकरण समूह के परीक्षण-मानकों का प्रयोग करना उचित नहीं है। वह समूह जॉन की ही अवस्था का होना चाहिए। यदि किसी नीग्रो का, जो दक्षिण के किसी फार्म पर रह कर बड़ा हुआ, बुद्धि-परीक्षण करना हो, तो उत्तर के नगरों में रहने वाले गौरांग व्यक्तियों से प्राप्त मानकों का उपयोग करना उचित नहीं है। इस प्रकार परीक्षण-परिणामों की ठीक-ठीक व्याख्या के लिए यह निश्चय हो जाना आवश्यक है कि परीक्षण-मानक व्यक्तियों के उसी प्रकार का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिससे किसी व्यक्ति के प्राप्तांक की तुलना करना उचित है।

इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि मानकीकरण समूह काफी बड़ा हो, कम-से-कम कई सौ का, अच्छा होगा यदि वह हजारों का हो। यदि समूह बहुत छोटा होगा, तो मानक उसी प्रकार बहुत ऊँचे अथवा निम्न हो सकते हैं, जिस प्रकार समूह के लिए व्यक्तियों के चुनाव में संयोग का घटना।

कारक-विश्लेषण :

व्यावहारिक तथा अनुसंधान-संबंधी अभिप्रायों के लिए परीक्षण का उपयोग करते समय यह प्रश्न प्राय: उठता है—परीक्षण किस चीज का माप करता है ? इसका ढुलमुल-सा उत्तर हो सकता है—बुद्धि का, व्यक्तित्व का, शैक्षिक योग्यता अथवा सब कुछ का, जिसे मापने के लिए परीक्षक उस परीक्षण को समर्थ समझता है । यह उत्तर निश्चित रूप से सही माना जा सकता है यदि प्रामाण्य-संबंधी ऐसा अध्ययन कर लिया गया है जिससे प्रकट होता है कि बुद्धि, व्यक्तित्व आदि के लिए मान्य किसी कसौटी से परीक्षण सह-संबंधित है । यदि ऐसा हो, तो इस प्रकार के प्रश्न का और गहरा और स्पष्टतर अर्थ हो सकता है । इसका अर्थ यह हो सकता है—परीक्षण किस मनोवैज्ञानिक कारक अथवा कारकों का माप करता है ?

इस प्रकार यह प्रश्न एक संप्रत्यय, अर्थात् किसी कारक के संप्रत्यय की भूमिका प्रस्तुत करता है, जो मनोवैज्ञानिक माप के मामले में बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसे निम्नांकित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है :—

प्रत्येक व्यक्ति में बहुत-सी विशिष्टताएँ होती हैं । अर्थात्, उसमें अपनी योग्यताएँ, अभिवृत्तियाँ, सोचने एवं काम करने के ढंग आदि होते हैं और इन सबका उसमें नित्य सापेक्ष सामंजस्य रहता है । एक विश्वसनीय एवं प्रामाण्य मनोवैज्ञानिक परीक्षण इनमें से कुछ विशिष्टताओं का माप करता है, किंतु वह नहीं वता सकता कि वह किन विशिष्टताओं का माप कर रहा है । परीक्षण जिन विशेष विशिष्टताओं का माप करता हुआ मालूम पड़ेगा, उन्हें विशेष संज्ञा देकर उनका अंदाज लगाया जा सकता है । किंतु, यह स्पष्ट अथवा वैज्ञानिक उत्तर नहीं होगा । और भी, शब्दकोश में हजारों लक्षण संज्ञाएँ हैं, जिनमें अनेक परस्पर ऐसी समान हैं कि एक लक्षण का दूसरे से भेद स्पष्ट नहीं किया जा सकता । मानव-व्यवहार के अध्येता के नाते हमें उन लक्षणों को, जिनका मनोवैज्ञानिक परीक्षण होता हो, जानना चाहिए, न कि उनका एक अंदाज भर लगाना चाहिए ।

इस समस्या को सुलझाने के लिए वैज्ञानिक तरीके का आविष्कार किया गया है। इसे कारक विश्लेषण ( Factor Analysis ) कहा जाता है । उस पद्धति का विस्तृत वर्णन इस पुस्तक का विषय नहीं है । किंतु, एक कल्पनात्मक उदाहरण के आधार पर उसके सिद्धांत समझाए जा सकते हैं ।

मान लीजिए कि व्यक्तियों के एक समूह पर छह परीक्षण किए जाते हैं । उन परीक्षणों को **A, B, C, D, E** और **F** की संज्ञा दी जाए । जब परीक्षण संपन्न हो जाए, तब परीक्षणों के प्रत्येक संभव जोड़े के बीच के सहसंबंध गुणांक का हिसाब किया जा सकता है । ऐसे १५ जोड़े हैं । विषय को अत्यंत सरल बनाने की दृष्टि

से मान लिया जाए कि सभी सहसंबंध १.०० या .०० हैं, यद्यपि व्यवहार में वे ऐसे कभी नहीं होंगे। निम्नांकित रूप में वे प्रस्तुत किए जाते हैं :—

| परीक्षण | A | B | C | D | E |
|---|---|---|---|---|---|
| B | १.०० | | | | |
| C | १.०० | १.०० | | | |
| D | .०० | .०० | .०० | | |
| E | .०० | .०० | .०० | १.०० | |
| F | .०० | .०० | .०० | १.०० | १.०० |

सहसंबंधों के ऐसे समूह का अर्थ क्या होगा ? उनमें गुणांकों के दो दल हैं। एक A, B और C परीक्षणें से बना है और दूसरा D, E और F से। एक दल के परीक्षण परस्पर सहसंबंधित हैं, पर दूसरे दल के परीक्षणों से सहसंबंधित नहीं हैं। फलतः परीक्षण के दो कारकों को (कल्पना से) अलग-अलग कर दिया गया है। चूँकि यहाँ केवल दो कारक हैं, इसलिए भविष्य में छह परीक्षणों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं होगी। B और C ठीक-ठीक उसी वस्तु का माप करते हैं, जिसका A और E और F परीक्षण ठीक-ठीक उसी वस्तु का माप करते हैं, जिसका D। प्रत्येक दल में से किसी एक परीक्षण को चुन कर उससे एक कारक का माप कर सकते हैं। प्रारंभ में जहाँ छह विशिष्टताएँ अथवा लक्षण मालूम पड़े होंगे, वहाँ वे घटा कर केवल दो किए जा सकते हैं।

काल्पनिक उदाहरण में जिन वस्तुओं को प्रारंभ में हम कितना सरल मान लेते हैं, वे वास्तविक व्यवहार में उतनी ही सरल नहीं पायी जातीं। कभी-कभी केवल ऐसा होता है कि किसी समूह के सहसंबंध १.०० के बराबर ऊँचे हों और समूहों के बीच के सहसंबंध अथवा विभिन्न समूहों के परीक्षण साधारणतया शून्य (Zero) से बड़े होते हैं। और किसी समूह के भीतर के सहसंबंधों के मूल्य में घट-बढ़ होता रहता है। इसलिए किसी समूह से एक परीक्षण को चुन कर ही किसी उपादान का परीक्षण साधारणतया नहीं किया जा सकता। इस कारण एक नए परीक्षण को तैयार करने के लिए और अधिक कार्य करना आवश्यक होगा। इस नए परीक्षण में भी वही विशेषताएँ होनी चाहिए, जो किसी दल के भीतर के किसी परीक्षण में। काल्पनिक उदाहरण कारक-विश्लेषण का सिद्धांत प्रस्तुत करता है। इस प्रकार के विश्लेषण में बहुत अधिक परीक्षणों के कुछ थोड़े से साधारण उपादानों को उन परीक्षणों की जानकारी प्राप्त कर अलग किया जा सकता है, जो परस्पर भली-भाँति सहसंबंधित हैं, परंतु परीक्षणों के दूसरे समूह से सहसंबंधित नहीं हैं।

प्रामान्य गुणांक से विशेष अनुमान लगाए जा सकते हैं ।
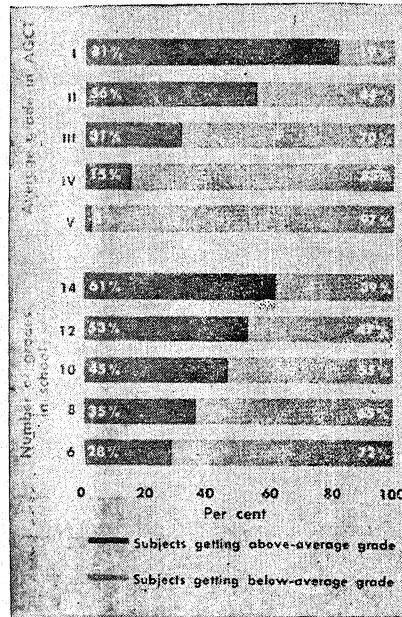
चित्र १३·१५ स्कूलों एवं आर्मी जेनरल क्लासीफिकेशन परीक्षण, के अनेक टैंक-यांत्रिक स्कूल ग्रेडों की सफलता का अनुमान। एक मान्य परीक्षण उस निर्णय का अनुमान कर सकता है, जिसकी उससे आशा की जाती है। इस उदाहरण में आर्मी जेनरल क्लासीफिकेशन परीक्षण स्कूल के अन्य ग्रेडों की अपेक्षा टैंक-यांत्रिक स्कूल की श्रेष्ठतर सफलता की पूर्व-घोषणा करता है (बोरिंग के अनुसार, १९४५)।

कारक-विश्लेषण परीक्षणों से अनावश्यक तत्त्वों को अलग करने में सहायक होता है, ताकि उन परीक्षणों अथवा उनके उन अंगों को अलग किया जा सके, जो ऐसे कारकों के माप के लिए व्यर्थ हों, जिनमें मापक की रुचि हो। कुछ विषयों में कारक-विश्लेषण के द्वारा ऐसे परीक्षण तैयार किए गए हैं कि उनमें से प्रत्येक परीक्षण मुख्य रूप से एक कारक का माप करता है (थर्स्टन, १९३८, थर्स्टन ऐंड थर्स्टन, १९४१)। दूसरे विषयों में यह वांछनीय नहीं है; क्योंकि एक कसौटी में अनेक कारक निहित रहते हैं और इसलिए कसौटी के पूर्वकथन के लिए तैयार किए गए परीक्षण के द्वारा उनका माप किया जाना आवश्यक है। दूसरे उदाहरणों में कारक-विश्लेषण एक सशक्त अनुसंधान-साधन की भाँति काम करता है, ताकि किसी विशेष परीक्षण द्वारा मापे जाने वाले उपादानों को अलग किया जा सके और उनकी संख्या कम की जा सके। इस प्रकार अच्छे परीक्षण को तैयार करने में इससे बड़ी सहायता मिली है। यद्यपि कारक-विश्लेषण एक उलझनपूर्ण प्रक्रम है, तथापि वह मनोविज्ञान में एक मूल्यवान् साधन तथा संप्रत्यय है। जो कारक इससे प्रकट होते हैं, उनमें से कुछ अध्याय २ में पहले ही दिए जा चुके हैं। योग्यता एवं व्यक्तित्व के अध्ययन में उन पर आगे विचार किया जाएगा।

## मापन के आधार पर पूर्वकथन :

अंत में यह बतला देना उचित है कि किसी उत्तम परीक्षण का मंतव्य है, सफल पूर्वकथन करना। यदि परीक्षण कुछ ऐसा पूर्वकथन करने अथवा उसे सरलता-पूर्वक मापने में समर्थ न हों, तो उनके बनाने अथवा काम में लाने का कष्ट करना व्यर्थ है। कभी-कभी पूर्वकथन अनुसंधान अथवा वैज्ञानिक अभिप्राय की पूर्ति के लिए किया जाता है। इसके महत्त्वपूर्ण व्यावहारिक लाभ भी हैं। बाद वाले अध्यायों में पूर्वकथन के संबंध में बहुत कुछ बतलाया जाएगा। यहाँ एक उदाहरण देकर उस विषय को स्पष्ट किया जाता है।

चित्र में विश्वसनीय और प्रामाण्य मापों से प्राप्त पूर्वकथनों का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। किसी सांख्यविद् को किसी कसौटी और परीक्षण के बीच का सहसंबंध गुणांक दे दीजिए, वह चित्र १३·१५ के आरेख के समान एक आरेख तैयार कर लेगा, जो परीक्षण से प्राप्तांक के आधार पर किसी व्यक्ति की सफलता की संभावनाओं के विषय में पूर्वकथन करेगा। वह ऐसा कर सकेगा; क्योंकि उसके पास उपयुक्त सूत्र हैं और गणित तथा व्यावहारिक अनुभव से यह सिद्ध कर दिया गया है कि वे एक माप समूह से दूसरे तक के विषय में पूर्वकथन कर सकते हैं। ऐसे पूर्वकथन का जो उपयोग कोई व्यक्ति करता है, वह बहुत-सी विचारणीय बातों पर आधारित रहता है, जैसे सफलता की निम्न संभावना के साथ लोगों के प्रशिक्षण की लागत अथवा व्यक्तियों के चुनाव में कितना विकल्प सुलभ होता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मान्य मापों से उपयोगी पूर्वकथन प्राप्त होते हैं।

## सूत्र (फार्मूला) और परिकलना (Calculations) :

इस अनुभाग में प्रयुक्त प्रतीकों की सूची एवं उनकी परिभाषा के लिए पृष्ठ ७४८ पर मुद्रित वर्गीकरण को देखिए :

## आवृत्ति-विभाजनों के परिमापन :

समांतर-माध्य निकालने का सूत्र (फार्मूला) इस प्रकार है—

$$M = \frac{\Sigma X}{N} \qquad (1)$$

प्रामाणिक विचलन (Standard Deviation) का सूत्र अनेक रूपों में लिखा जा सकता है। कुछ रूप इस प्रकार हैं—

$$d = \sqrt{\frac{\Sigma X^2}{N}} \qquad (2)$$

$$\sigma d = \sqrt{\frac{\Sigma X^2}{N} - M^2} \qquad (3)$$

फार्मूला (१) द्वारा माध्य की संगणना और फार्मूला (२) द्वारा प्रामाणिक विचलन की संगणना सारणी १३·६ में स्पष्ट की गई है। मापनों की संख्या(योगफल) (ΣX) को प्राप्त करने तथा माध्य (M) की संगणना के उपरांत कार्य प्रारंभ होता है। आगे Xs के वर्ग की पूर्ति प्रत्येक मापन में से माध्य को घटाकर(X – M) की जा सकती है, और उससे $x^2$ वर्ग के मूल्यों को उपलब्ध किया जा सकता है। वर्गांकित विचलन ($X^2$) की संख्या (योगफल) से तब उदाहरणों की संख्या (N) से विभाजन करके तथा वर्गमूल लेकर प्रामाणिक विचलन उपलब्ध किया जा सकता है।

प्रतीकों का स्पष्टीकरण :

X—परिमापन का संख्यात्मक मूल्य।

M—समांतर माध्य।

Σ—ग्रीक दीर्घवर्ण सिग्मा का 'का योगफल' के अर्थ में प्रयोग।

N—विभाजन में उदाहरणों की संख्या अथवा परिमापन-समूह।

$\sigma d$—ग्रीक लघु वर्ण सिग्मा, विभाजन का प्रामाणिक विचलन।

X—समांतर माध्य से विचलन के रूप में अभिव्यक्त एक परिमापन।

Z—विचलन प्राप्तांक में प्रामाणिक विचलन का भागफल या लब्धि, $x/\sigma$।

O—आसंग सारणी के सेल में प्राप्त आवृत्ति अथवा गिने गए उदाहरणों की संख्या।

E—अपेक्षित आवृत्ति अथवा सेल में जिन अंकों की संभावना है, यदि सब सेलों की आवृत्तियाँ संयोग द्वारा नियंत्रित हों और यदि उनमें किसी प्रकार का सहसंबंध न हो।

$X^2$—काई-वर्ग, मात्रा का वह माप जिसके द्वारा प्राप्त आवृत्ति (O) और अपेक्षित आवृत्ति (E) के अंतर को स्पष्ट किया जाता है।

C—आसंग-गुणांक—परिमापनों के सामान्य होने पर अथवा कुछ वर्गों में ही विभाजित होने पर– सहसंबंध का मापन।

P—रो (Rho), क्रम-भिन्नता सहसंबंध गुणांक, परिमाप जब क्रमसूचक मापक पर बने हों, अथवा जब क्रमों की आशा की जाती हो, तो सहसंबंध का मापन।

r—पियरसन, गुणनफल-क्षण सहसंबंध गुणांक, परिमाप जब अंतराल मापक पर बने हों, तो सहसंबंध का मापन।

$\sigma m$—माध्य की प्रामाणिक भूल, परिवर्तनशीलता का मापक, एक ही जन-समूह से एक मात्रा में चुने गए भिन्न प्रतिचयनों से जिसकी आशा की जा सकती है।

यदि अच्छा गणक (Calculator) उपलब्ध हो, तो जैसा कि स्पष्ट किया गया है माध्य की अभिगणना वही रहेगी, किंतु प्रामाणिक विचलन की अभिगणना फार्मूला द्वारा तीव्रतर होती है, जो प्रत्येक विचलन मापन को परिवर्तित करते हुए सोपानों को लुप्त करती जाती है।

Z प्राप्तांक का फार्मूला :

$$Z = \frac{x}{\sigma} \quad Z = \frac{X-M}{\sigma} \qquad (4)$$

Z प्राप्तांक को किसी भी अपेक्षित मानक अंक में परिवर्तित करने की विधि—

$$\text{मानक अंक} = a + bz \qquad (5)$$

## सहसंबंध के माप :

सहसंबंध गुणांक की गणना के लिए प्रथम यह आवश्यक है कि काई-वर्ग ($X^2$) नामक मात्रा को प्राप्त किया जाए। इस गणना को सारणी १३·७ द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है, जो कि सारणी १३·४ की दत्त-सामग्री पर आधृत है। प्रथम सोपान उस संख्या को निर्धारित करता है जो प्रत्येक सेल में अपेक्षित है यदि क्लास और स्कूल पाठ्य-क्रम (इस उदाहरण में) में सहसंबंध न हो। यह पंक्तियों और वर्गों के जोड़ों को कोशिका (सेल) में परिच्छेदन कर, गुणज करके और कुल जोड़ में भाग देकर प्राप्त किया जा सकता है 'क्लास I-II' के विरुद्ध संयोग से सेल में 'कालेज प्रारंभिक कक्षा' द्वारा निर्मित अपेक्षित संख्या है—

$$\frac{35 \times 81}{390} = 7{\cdot}3 \text{ अगली दाहिनी कोशिका के लिए}$$

$$\frac{81 \times 146}{390} = 30{\cdot}3$$ इत्यादि। जब सब अपेक्षित मान—यदि वस्तुतः उनमें सहसंबंध न हो, तो संयोग से अपेक्षित—की संगणना इसी रूप में होती है, काई-वर्ग की संगणना को पूर्ण करने के लिए निम्नलिखित फार्मूला प्रयोग किया जाता है—

$$X^2 = \Sigma \frac{(O-E)^2}{E} \qquad (6)$$

जहाँ O प्रेक्षित-मान है—प्रयोग में जो वस्तुतः उपलब्ध है—वहाँ E केवल संगणित अपेक्षित-मान है। काई-वर्ग ६९·२ में प्रकट होता है। आसंग-गुणांक को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित फार्मूला प्रयोग किया जाता है—

सारणी १३ ६

| X | X − M = x | (X − M)² = x² |
|---|---|---|
| ४० | २२·५ | ५०६·२५ |
| ३५ | १७·५ | ३०६·२५ |
| ३३ | १५·५ | २४०·२५ |
| २० | २·५ | ६·२५ |
| १९ | १·५ | २ २५ |
| १९ | १·५ | २·२५ |
| १६ | − १·५ | २·२५ |
| १६ | − १·५ | २·२५ |
| १४ | − ३·५ | १२·२५ |
| ११ | − ६·५ | ४२ २५ |
| १० | − ७·५ | ५६·२५ |
| ९ | − ८·५ | ७२·२५ |
| ७ | − १०·५ | ११०·२५ |
| ७ | − १०·५ | ११०·२५ |
| ४ | − १३·५ | १८२·२५ |

ΣX = २६३ X² = १,६५३·७५

N = १५

$$M = \frac{२६३}{१५} = १७·५$$

$$\sigma = \frac{१६५३ ७५}{१५} = \sqrt{११०·२५} = १० ५$$

**सारिणी १३·६ गणितीय माध्य और मानक विचलन की संगणना। संगणना x से प्रारभ होती है और उसके माध्य की ओर बढ़ती है। तदंतर $X^2$ का बर्ग पूरित किया जा सकता है और की $x^2$ की मान्यता संगणित हो सकती है। Xs से तब, मानक विचलन σ प्राप्त किया जा सकता हैं।**

काई-वर्ग ७९·२ में प्रकट होता है। आसंग गुणांक को प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित फार्मूला प्रयोग किया जाता है :—

$$C = \sqrt{\frac{X^2}{N+X^2}} \qquad (7)$$

क्रम-भिन्नता गुणांक-रो का फार्मूला है :—

$$\rho = 1 - \frac{6\Sigma D^2}{N(N^2-1)} \qquad (8)$$

इस फार्मूले में D वर्ण क्रम की भिन्नता को प्रकट करता है (देखिए, सारणी १३·५) अतः ρ की संगणना के लिए हम केवल प्रत्येक क्रम-भिन्नता को वर्गीकृत करते हैं, वर्गों को जोड़ते हैं और 6 से गुणा करते हैं तथा $N(N^2-1)$ से भाग देकर १ से परिणाम को निकालते हैं।

सारणी १३·७

| पाठ्यक्रम | सामाजिक वर्ग | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | I-II | III | IV | V | योग |
| प्रारंभिक कालेज | ७·३ | ३० ३ | ३८·० | ५ ४ | |
| | २३ | ४० | १६ | २ | ८१ |
| सामान्य | १८·६ | ७७ ५ | ९७·१ | १३·८ | |
| | ११ | ७५ | १०७ | १४ | २०७ |
| व्यावसायिक | ९ १ | ३८·२ | ४७·९ | ६·८ | |
| | १ | ३१ | ६० | १० | १०२ |
| कुल | ३५ | १४६ | १८३ | २६ | ३९० |

**सारणी १३·७ काई-वर्ग तथा आसंग गुणांक की संगणना। बड़े अंक वे संख्याएँ हैं, जिनकी आशा संयोग से की जाती है। अन्य संख्याएँ उपलब्ध की गई हैं। स्पष्टीकरण के लिए पुस्तक देखें (सीगेल १९५६, पृष्ठ १७७)।**

सहसंबंध गुणांक r, जिसे उसके उपलब्ध करने की विधि के कारण कभी-कभी गुणनफल-क्षण सहसंबंध गुणांक भी कहा जाता है, का एक फार्मूला है, जो अनेक रूपों में से किसी भी एक रूप में लिखा जा सकता है, जो गणना के अन्य मापनों पर निर्भर करता है तथा इस पर भी कि क्या गणक उपलब्ध है। सामान्य फार्मूले हैं—

$$r = \frac{\Sigma xy}{N\sigma_x\sigma_y} \quad \text{or} \quad \frac{\Sigma Z_x \times Z_y}{N} \quad \text{or} \quad \frac{\Sigma xy}{\sqrt{\Sigma x^2 \Sigma y^2}} \qquad (9)$$

इस रूप में लिखे जाने पर यह स्पष्ट है कि गुणांक अनिवार्यतः Z प्राप्तांकों के गुणनफल का औसत होता है। यदि किसी व्यक्ति के एक परिमापन का Z प्राप्तांकों दूसरे परिमापन से यादृच्छिक रूप से संबंधित है, अर्थात् असंदृ-संबंधित है, तो औसत गुणनफल-क्षण शून्य होगा; क्योंकि अविध्यात्मक Z प्राप्तांक हमारे विध्यात्मक प्राप्तांक का निरसन कर देते हैं। दूसरी आर, यदि सहसंबंध विध्यात्मक हो, अविध्यात्मक Z प्राप्तांक के गुणनफल विध्यात्मक होते हैं, तो वे विध्यात्मक प्राप्तांकों के गुणन-फल को जोड़ते हैं और इस प्रकार विध्यात्मक सहसंबंध देते हैं।

जब अच्छी परिकलनात्मक मशीन उपलब्ध हो, तब प्रयोग के लिए सर्वश्रेष्ठ फार्मूला जो देखने में निषेधात्मक प्रकट होने पर भी सुलझाने में सहज नहीं है, इस प्रकार है—

$$r_{zy} = \frac{N\Sigma XY - (\Sigma X)(\Sigma Y)}{\sqrt{[N\Sigma X^2 - (\Sigma X)^2][N\Sigma Y^2 - (\Sigma Y)^2]}} \quad (10)$$

यदि कोई पहले प्रामाणिक विचलन की संगणना दो विभाजनों के फार्मूले से कर चुका है (३), तब केवल अतिरिक्त मात्रा जो स्वयं मापनों से उपलब्ध की जाएगी, वह X और Y के गुणफल का योगफल है। शेष सब सरल अंकगणित है।

ध्यान दें कि C, ρ और r के भिन्न गुणांक बिलकुल समान नहीं हैं। दूसरे शब्दों में गणितीय कारणों से ५० के एक C का पूर्णत: वही अर्थ नहीं होता, जो ·५० के एक r का होता है। किंतु, यह भिन्नता प्राय: बहुत अधिक नहीं होती और सुधार की ऐसी विधियाँ उपलब्ध हैं, जो उस r को निश्चित कर सकती हैं, जो विशेषत: C या ρ के समकक्ष हो।

**प्रतिचयन :**

माध्य की प्रतिचयनात्मक भूल का अनुमान निम्नलिखित फार्मूले से किया जा सकता है :—

$$\sigma m = \frac{\sigma d}{\sqrt{N}} \quad (11)$$

जहाँ परिणाम माध्य के विभाजन का प्रामाणिक विचलन हो, जिसे हम संयोग द्वारा उपलब्ध करने की आशा कर सकते हैं, यदि उसी संख्या के परिमापनों के क्रमिक प्रतिचयन उसी जनसंख्या से प्राप्त किए गए हों। यह भूल-मापन जो यह निर्धारित करने की विधियों में निहित रहता है कि माध्य में प्राप्त अंतर दो प्रकार के परिमापनों में इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है या नहीं कि वह संयोग से प्राप्त किए जाने वाले परिणाम से अधिक होगा।

## सारांश

१. मनोविज्ञान में साधारणतया तीन प्रकार के माप काम में लाए जाते हैं (अ) शाब्दिक माप, जिसमें विभिन्न श्रेणियों के निर्धारण के लिए संख्याओं का प्रयोग किया जाता है। (ब) क्रमसूचक माप, जिसमें मापी जाने वाली वस्तुओं का क्रम संख्या द्वारा स्थिर किया जाता है। और (स) अंतराल माप, जिसमें संख्याओं के द्वारा परिमाण के अंतर प्रस्तुत किए जाते हैं।

२. एक माप-समूह गठित करने के लिए पहला कदम होगा—प्रत्येक श्रेणी अथवा अंतराल के मापों की आवृत्तियों की साधारणतया गणना करना। गणना के

फलस्वरूप प्राप्त संख्याओं को दंड रेखाचित्र अथवा आयत के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। इनसे आवृत्ति-वितरण तैयार होता है।

३. अंतराल-मापों का आवृत्ति-वितरण तैयार करने के लिए स्केल को बराबर नाप के १५ या २० अंतरों में विभाजित कर दिया जाता है और प्रत्येक अंतर के मापों का मिलान कर लिया जाता है।

४. बहुत-सी मनोवैज्ञानिक और जीव-विज्ञान-संबंधी विशिष्टताओं के आवृत्ति-वितरण उस आदर्श वितरण के सन्निकट पहुँच जाते हैं, जिसे सामान्य प्रसंभाव्यता-वक्र कहा जाता है। चूँकि वह पूर्ण रूप से सममित होता है और उसके केंद्र के समीप किनारे की अपेक्षा अधिक माप होते हैं, इसलिए वह घंटी के आकार का होता है।

५. असममित वितरणों को विषम ( Skewed ) विभाजन कहते हैं। इनका एक सिरा दूसरे सिपे से बड़ा होता है और वे पूर्ण रूप से केंद्रित नहीं होते हैं। ऐसे वितरण या तो मापी गई आबादी की थोड़ी बहुत अभिनति (Bias) या बहुत ही सरल अथवा बहुत कठिन परीक्षणों के प्रयोग के फलस्वरूप होते हैं।

६. एक संख्या या आँकड़ा जो किसी आवृत्ति-वितरण से गणित के आधार पर निकाला गया हो और ठीक रूप में उसका लक्षण निर्धारण करने के लिए काम में लाया गया हो, माप कहा जाता है। माप के दो साधारण प्रकारों का सामान्यत: उपयोग किया जाता है : १. केंद्रीय अभिवृत्ति के माप और २. परिवर्तनशीलता या विचलन (Variability) के माप।

७. केंद्रीय अभिवृत्ति के मापों के तीन प्रकार हैं—१. समांतर माध्य २. माध्यिका और बहुलक। इकाइयों की संख्या से विभाजित मापों का पूर्ण योग समांतर माध्य होता है। जब मापों का क्रम-निर्धारण हो जाता है, तब उनका जो मध्य प्राप्तांक होता है, वह माध्यिका कहा जाता है। बहुलक वह माप है, जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक होती है।

८. किसी विभाजन की परिवर्तनशीलता या विचलन के मापों के दो प्रकार हैं—१. सीमांतर और २. मानक विचलन। उच्चतम और निम्नतम प्राप्तांकों का अंतर सीमांतर कहा जाता है। यह एक भद्दा माप है। मानक विचलन समांतर माध्य से प्राप्त मापों का मूल-माध्य-वर्ग विचलन है। यह परिवर्तनशीलता का शुद्ध माप है।

९. माध्य से किसी माप के विचलन को मानक विचलन से विभाजित कर उस माप को Z आँकड़ों में परिवर्तित किया जा सकता है। माप अथवा गणना के लिए काम में लाए गए किसी विशेष स्केल से स्वतंत्र मापों को सर्वदेशीय भाषा में

व्यक्त करने का यह तरीका है। एक मानक आँकड़ा भी वही काम करता है, लेकिन यह Z आँकड़े से निकाला हुआ कोई आँकड़ा हो सकता है।

१०. मापों की योगफल-संख्या से किसी विभाजन के आँकड़े की कोटि को विभाजित कर और उसमें १०० से गुणा कर किसी आँकड़े को शतांशपरक रूप में व्यक्त किया जा सकता है। चूँकि यह प्राय: प्रत्येक व्यक्ति की समझ में तुरंत आ जाता है, इसलिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण में आँकड़ों को व्यक्त करने का प्रचलित तरीका है।

११. सहसंबंध गुणांक उस मात्रा को बताता है, जहाँ तक दो विभाजनों के प्राप्तांकों के युग्म परस्पर संबंधित रहते हैं। यदि सहसंबंध पूर्ण है, जैसा कि कभी-कभी ही होता है, तो गुणांक १०० होगा। यदि दो विभाजनों में आँकड़ों के बीच कोई संबंध नहीं होगा, तो गुणांक .०० होगा। गुणांक का चिह्न, जो + या − हो सकता है, बताता है कि सहसंबंध क्रमशः उच्च-उच्च और निम्न-निम्न है अथवा उच्च-निम्न और निम्न-उच्च है।

१२. सहसंबंध की संगणना के विभिन्न तरीके मापों के विभिन्न प्रकारों के लिए उपयुक्त है: सामान्य मापों के लिए उपयुक्त है आसंग ( Contingency ) गुणांक C क्रमसूचक मापों के लिए कोटि अंतर सहसंबंध और अंतराल मापों के लिए सहसंबंध गुणांक $r$।

१३. मनोवैज्ञानिक मापों के बहुत से मामलों में कुछ लोग एक बहुत बड़ी आबादी के प्रतिनिधिस्वरूप कुछ लोगों का ही माप करना चाहते हैं। इस विषय में सतर्कता की आवश्यकता होगी। या तो मनमाने तौर पर नमूने चुने जाने चाहिए, या बहुत सी उन पद्धतियों में से किसी एक को काम में लाना चाहिए, जिनका आविष्कार नमूने के संभाव्य अभिनतियों (Biases) को नियंत्रित करने के लिए किया गया है।

१४. संभावित नियमों के अनुसार मापों के किसी भी समूह में नमूना-संबंधी त्रुटि तब हो सकती है, जब कि नमूना वास्तविक आबादी से कुछ भिन्न होगा। इसलिए यह निश्चय करने के लिए कि दो नमूनों का अंतर सार्थक है, संभाविता अंतरों को स्वीकार होगा।

१५. एक उपयुक्त माप-साधन होने के लिए किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण में कुछ विशेषताओं का होना आवश्यक है। उनमें प्रमुख हैं :—विश्वसनीयता और प्रामाण्य। विश्वसनीय होने के लिए यह नितांत जरूरी है कि एक ही व्यक्ति अथवा

वस्तु के बार-बार लिए गए मापों के परीक्षण से एक ही फल निकले। प्रामाण्य होने के लिए आवश्यक है कि जिसके माप का वह अभीष्ट माप है, उसका वह अवश्य माप कर सके, अर्थात् किसी कसौटी के साथ उसका पूरा सहसंबंध हो।

१६. और भी, वे परीक्षण जो किसी व्यक्ति की स्थिति का निश्चय करने के लिए काम में लाए जाते हैं, उन्हें मानक स्थितियों में ही लागू करना चाहिए और मानकों को एक बड़े, तुलनीय एवं मानकीकरण समूह पर आधारित होना चाहिए।

१७. परीक्षणों के किसी समूह को परस्पर सहसंबंधित करने से मूल उपादानों को परीक्षणों द्वारा मापे जाने से अलग कर देना संभव है और यदि वांछनीय हो, तो ऐसे परीक्षण फिर से तैयार किए जा सकते हैं, जो ज्ञातव्य उपादानों की एक सीमित संख्या का माप भली-भाँति कर सकें।

## पठनार्थ सुझाव :

Chapanis, A., Garner, W. R., and Morgan, C. T. Applied Experimental Psychology. New York : Wiley 1949.
Chaps. 2+3.
दो अध्यायों में सांख्यिकी विधियों का सारांश, मानव यंत्रशास्त्र के लिए इनके प्रयोगों पर विशेष बल दिया गया है।

Dixon, W. J., and Massey, F. J., Jr. Introduction to Statistical Analysis (2nd Ed.) New York : McGraw-Hill. 1957.
विद्यार्थियों के लिए सब क्षेत्रों में व्यवहार की जाने वाली, जिसमें केवल एलजेबरा के ज्ञान की आवश्यकता है, सांख्यिकी पर प्रारंभिक पुस्तक।

Dornbusch, S. M. and Schmid, C. F. A Primer of Social Statistics. New York : Mc-Graw Hill, 1955.
सामाजिक सांख्यिकी और उसका सामाजिक विज्ञानों में उपयोग।

Guilford, J. P. Fundamental Statistics in Psychology and Education (3rd Ed.) New York : McGraw-Hill, 1956.
मनोवैज्ञानिक सांख्यिकी पर महत्त्वपूर्ण एवं व्यापक अर्थसंकुलित उपयोगी ग्रंथ।

Senders, V. L. Measurement and Statistics : New York : Oxford University Press. 1958.
परिमापन की अवधारणाओं के चारों ओर सांख्यिकी विधियाँ विकसित करने वाली पुस्तक।

Stevens, S. S. Mathematics Measurement & Psychophysics, In S. S. Stevens (Ed.), New York : Wiley, 1951.

परिमापन सिद्धांत पर जिस रूप में यह मनोनिज्ञान के विज्ञान से संबंधित है, एक अध्याय इस पुस्तक में है।

Underwood, B. J., Duncan, C. P., Taylor, J. A., and Cotton, J. W. Elementary Statistics, New York : Appleton-Century-Crofts, 1954.

मूल सांख्यिकी विधियों का प्रारंभिक एवं पठनीय प्रस्तुतीकरण।

Yuker, H. E. A Guide to Statistical Calculation : New York : Putnam, 1958.

परिकल्पना का मार्गदर्शन करने वाली पुस्तक। इस पुस्तक को समझने के लिए गणित का कुछ ज्ञान अपेक्षित है।

●

अध्याय १४

# बुद्धि और अभिक्षमता

मनुष्य अनेक रूपों में एक दूसरे से भिन्न होते हैं—रुचि में, योग्यता में, अभिप्रेरण में, व्यक्तित्व में, शिक्षा में, कौशल में और शौक (Hobbies) में। इन सबमें से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है **योग्यता**। हममें से अधिकांश की यही धारणा है और हम इसे निश्चित रूप से स्वीकार करते हैं। हम कुछ व्यक्तियों को जानते हैं, जो दूसरों से अधिक बुद्धिमान हैं, जो किसी कार्य को शीघ्रता से सीख सकते हैं और समस्याओं का समाधान शीघ्रता से करते हैं। हम कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी जानते हैं जो योग्य संगीतज्ञ, बढ़ई, गोल्फ-खिलाड़ी और कारीगर आदि हैं। कुछ व्यक्तियों में सुविकसित अनेक योग्यताएँ रहती हैं, कुछ में उच्च मात्रा में केवल एक ही योग्यता होती है और कुछ व्यक्तियों में योग्यताओं का पूर्णतः अभाव दृष्टिगत होता है।

### योग्यताओं का परिमापन (Measures of Abilities) :

दैनिक जीवन में व्यक्तियों के विषय में अनेक व्यावहारिक निर्णय उनकी योग्यता के कतिपय अनुमानों पर आधारित रहते हैं। माता-पिता एक बच्चे को संगीत सीखने भेजते हैं या महाविद्यालय में भेजते हैं; क्योंकि वे समझते हैं (और आशा करते हैं) कि उसमें उस प्रकार की शिक्षा से लाभ उठाने की योग्यता है। नियोक्ता उस व्यक्ति को नियुक्त करता है, जिसे वह उस कार्य को करने में सबसे योग्य समझता है। लोग उस राजनीतिज्ञ को मतदान देते हैं, जिस पर उन्हें विश्वास है कि वह उनका प्रतिनिधित्व करने में अत्यधिक योग्य है। अतः, जानते हुए अथवा न जानते हुए हम सदैव ही किसी की योग्यताओं का अनुमान कर लेते हैं। ये अनुमान अपरिपक्व हो सकते हैं। वे व्यक्ति से संबंधित बहुत कम जानकारी पर भी पूर्ण रूप से आधृत हो सकते हैं। अतः, वे प्रायः गलत प्रमाणित हो जाते हैं। किंतु फिर भी हम उन्हें काम में लाते हैं।

मनोवैज्ञानिकों ने ५० से अधिक वर्षों पूर्व यह जानने का प्रयत्न किया था कि क्या वे मानव की योग्यताओं का उचित मापन प्रस्तुत कर सकते हैं अथवा नहीं। इस कार्य में पहले वे शिक्षाविदों द्वारा उत्साहित किए गए, बाद में उन सैनिक नेताओं और व्यापारिकों द्वारा उत्साहित किए गए, जो व्यक्तियों के संबंध में नियुक्ति के निर्णयार्थ परिशुद्ध योग्यताओं का माप चाहते थे। यह सत्य है कि आज हमारे पास

मानव योग्यताओं का माप करने के लिए अनेक परीक्षण-साधन हैं। उनमें से कुछ अधिक अच्छे हैं, कुछ उतने अच्छे नहीं हैं, लेकिन करीब-करीब सभी वस्तुनिष्ठ एवं योग्यताओं-संबंधी प्रतिदिन के अनुमानों से अधिक उपयोगी और अच्छे हैं।

## अच्छे परीक्षण की विशेषताएँ (Characteristics of a Good Test) :

पिछले अध्याय में हमने विस्तार से स्पष्ट किया है कि परीक्षण की वे कौन-सी विशेषताएँ हैं, जिनसे कि वह अच्छा परीक्षण समझा जाए। अच्छा परीक्षण वह है, जिसका प्रयोग विश्वास के साथ समूह में विशेष व्यक्तियों का निर्णय करने के लिए अथवा समूहों की भिन्नता के विषय में किया जाए। अन्य प्रकार की परीक्षाओं की भाँति ही अच्छे परीक्षण की विशेषताओं को बुद्धि-परीक्षा पर भी लागू किया जाता है। हम संक्षेप में उन पर दृष्टिपात करेंगे।

१. परीक्षण विश्वसनीय (Reliable) होना चाहिए। एक ही परीक्षण के विभिन्न रूपों अथवा एक ही व्यक्ति पर परीक्षा द्वारा किए गए बार-बार के प्रयोगों को एक ही निश्चित परिणाम पर पहुँचना चाहिए।

२. परीक्षण प्रामाण्य (Valid) होना चाहिए। इसे उस कसौटी के साथ परस्पर संबंधित होना चाहिए, जिसे परीक्षण ने पूर्व-निर्धारित किया हो। कहने का तात्पर्य है कि इसे निश्चित या निर्धारित कार्य का परिमापन करना चाहिए। एक ही परीक्षण एक उद्देश्य के लिए उपयुक्त हो सकता है और दूसरे के लिए अनुपयुक्त।

३. परीक्षण का मानकीकृत कार्यविधि के अनुसार प्रयोग होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होता, तो परीक्षण की विश्वसनीयता औप प्रामाण्य दोनों ही अवक्रमित होती हैं।

४. परीक्षण के प्रतिमानों को **मानकीकरण समूह** पर आधारित होना चाहिए। मानकीकरण समूह को अपेक्षाकृत बड़ा होना चाहिए। इसे व्यक्तियों के समूह के, जिनके साथ बाद में परीक्षा का प्रयोग होता है—अनुरूप होना चाहिए। मानकीकरण समूह के प्रतिमान किसी व्यक्ति अथवा समूह के प्रयोगानुसार प्राप्त किए गए परिणामों का अर्थनिर्णय करने के लिए निर्देश-तंत्र प्रस्तुत करते हैं।

५. कुछ परिस्थितियों में परीक्षण द्वारा मापित कारकों को जानना वांछनीय है। इस प्रकार का ज्ञान किसी भी परीक्षण के लिए गए अर्थनिर्णय को परिष्कृत (Refine) करता है। यदि परीक्षा-निर्माता (Test-constructor) को विभिन्न उद्देश्यों के लिए उसकी परीक्षण-योग्यता को विकसित

करने में सहायता देता है। इस अध्याय में वर्णित परीक्षणों में प्रथम चार विशेषताएँ हैं और कुछ में पाँचवीं भी है।

## योग्यता बनाम उपलब्धि (Ability versus Achievement) :

**योग्यता** शब्द से जैसा कि स्पष्ट होता है कि यह आवश्यक नहीं है कि व्यक्ति ने क्या किया है अथवा क्या करेगा, उसे यह स्पष्ट करे, वरन् यह इंगित करता है कि वह क्या कर सकता है। दूसरी ओर, **उपलब्धि** शब्द से स्पष्ट होता है कि उसने क्या किया है। इन दोनों शब्दों का प्रयोग दो भिन्न प्रकार के परीक्षणों के अंतर को स्पष्ट करने के लिए होता है : **योग्यता-परीक्षण** तथा **उपलब्धि-परीक्षण**। (अन्य प्रकार के परीक्षण भी हैं, किंतु यहाँ हमारा संबंध इन्हीं दो प्रकार के परीक्षणों से है)।

ध्यान दें कि कोई भी परीक्षण मनुष्य द्वारा किए गए यथार्थ कार्यों का परिमापन करता है; क्योंकि उसकी परीक्षा का कोई अन्य उपाय नहीं है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि हम व्यक्ति की परीक्षा केवल उसे कुछ करने को कह कर करते हैं, और जो कुछ वह करता है, वह उपलब्धि है। अतः, योग्यता-परीक्षण और उपलब्धि-परीक्षण दोनों ही एक प्रकार से उपलब्धि की परीक्षाएँ हैं। हम परिणामों का उपयोग करते हैं—उसी पर दोनों का अंतर निर्भर करता है।

योग्यता-परीक्षण का प्रयोग भविष्य में उपलब्धि अथवा किसी अन्य परिस्थिति में उपलब्धि के पूर्वानुमान के लिए होता है। उदाहरण के लिए, महाविद्यालय जाने के पूर्व विद्यार्थी की अभिरुचि-परीक्षा वह महाविद्यालय में कितनी अच्छी तरह से कार्य करेगा—अर्थात् उसकी महाविद्यालय की उपलब्धि का यह पूर्वकथन करती है। इसलिए यह योग्यता-परीक्षण है। फिर भी, परीक्षा स्वयं उपलब्धि का मापन है। इसमें ज्ञान के प्रश्न अथवा समाधान करने के लिए समस्याएँ होती हैं जैसा कि पाठ्य-क्रम में परीक्षाएँ करती हैं। इस प्रकार की परीक्षा पर प्राप्तांकों का अपने-आप में बहुत कम महत्त्व है। यह परीक्षा में श्रेणी (ग्रेड) का निर्देश करने के लिए अथवा व्यक्ति को उत्तीर्ण करने के लिए प्रयोग नहीं की जाती। इसका महत्त्व महाविद्यालय में उपलब्धि के लिए अथवा इसी तरह की परिस्थिति में पूर्वकथन करने की क्षमता में है। इसलिए इसे हम योग्यता-परीक्षण कहते हैं। दूसरी ओर पाठ्य-क्रम में से विद्यार्थी की ली हुई परीक्षा पाठ्य-क्रम में से अर्जित ज्ञान का माप करने के लिए होती है। इसलिए यह उपलब्धि-परीक्षा है, यद्यपि इसके परिणामों को दूसरे रूपों में भविष्य की उपलब्धि के उचित पूर्वकथन के लिए भी प्रयुक्त कर सकते हैं।

तब योग्यता-परीक्षा और उपलब्धि-परीक्षा में बड़ा ही **सूक्ष्म** अंतर है। दोनों उपलब्धि का माप करती हैं, लेकिन योग्यता-परीक्षा भविष्य की उपलब्धि के

पूर्वकथन के रूप में है और समझी जाती है, जबकि उपलब्धि-परीक्षा का प्रयोग बर्त्तमान ज्ञान अथवा निष्पति के लिए होता है।

**योग्यताओं के प्रकार (Kinds of Ability) :**

योग्यता-परीक्षा को स्पष्ट करने के पश्चात् हम पूछ सकते हैं कि मनुष्य की ऐसी कौन-सी योग्यताएँ हैं, जिनको मापा जा सकता है ? इसका हम उत्तर दे सकते हैं कि योग्यताओं की बहुसंख्या है संभवतः उतनी जितने कि कार्य हैं, अतएव दैनिक जीवन में जितनी उपलब्धियाँ हैं। स्पष्टतः यह व्यावहारिक नहीं है और न ही इन सब विशिष्ट योग्यताओं को माप सकने का प्रयत्न उपयोगी है। इसके अतिरिक्त अनेक कार्य कुछ सामान्य योग्यताओं की अपेक्षा करते हैं। कहने का तात्पर्य है कि एक कार्य में उच्च उपलब्धि दूसरे की उच्च उपलब्धि से सहसंबंधित है। अतएव, मनोवैज्ञानिक अपने-आपको योग्यता-परीक्षण में अपेक्षाकृत कुछ सामान्य योग्यताओं में सीमित कर लेते हैं।

वे योग्यताएँ, जिन्हें वे मापने का प्रयास करते हैं, दो सामान्य समूहों में विभाजित होती हैं। एक है बौद्धिक योग्यता अथवा बौद्धिक (Intellectual) प्रदर्शन की अभिरुचि। अतः, वे परीक्षाएँ जो ऐसी योग्यताओं को मापती हैं, बौद्धिक परीक्षाएँ समझी जाती हैं। लेकिन, ये वे योग्यताएँ हैं, जो वास्तविक परिस्थिति की विस्तृत अनेकरूपता में उपलब्धि का पूर्वकथन करती हैं और सुविधा के लिए हम उन्हें **'बौद्धिक'** शब्द के अंतर्गत एकत्रित करते हैं। दूसरी विशेष योग्यताएँ हैं, जिनकी आवश्यकता विशिष्ट उपजीविकाओं अथवा क्रियाओं में होती हैं—उनमें से कुछ यांत्रिक लिपिक अंकगणित, संगीतात्मक और कलात्मक योग्यताएँ हैं। इस प्रकार की विशेष योग्यताओं की हम परीक्षाओं की **अभिक्षमता-परीक्षाएँ** कहने लगे हैं, चूँकि हम उनका प्रयोग बहुधा विशेष कार्य-प्रणाली अथवा प्रशिक्षण के प्रकार में उपलब्धि के पूर्वकथन के लिए करते हैं। अतः, हमारे पास दो प्रकार की परीक्षाएँ हैं : **बौद्धिक परीक्षाएँ** और **अभिरुचि परीक्षाएँ**, यद्यपि दोनों में कोई कठोर विभाजन-रेखा नहीं है।

**परीक्षणों के प्रकार (Kinds of Tests) :**

आजकल योग्यताओं की अनेक परीक्षाएँ हैं और वे अनेक रूपों में भिन्न हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण रूपों में से कुछ निम्नलिखित हैं—

**१. समूह बनाम व्यक्ति (Group versus Individual) :**

एक प्रशिक्षित परीक्षक के द्वारा एक व्यक्ति की एक समय में कुछ परीक्षाएँ होनी चाहिए और इन्हें 'व्यक्ति-परीक्षाएँ' कहते हैं। कुछ परीक्षाएँ व्यक्तियों के समूहों को कोई भी दे सकता है, जो निर्देश का अनुसरण कर सकते हैं और जो

उन्हें उचित रूप में कार्यान्वित कर सकते हैं। ये 'समूह-परीक्षाएँ' कहलाती हैं। (दोनों प्रकार की परीक्षाओं का अर्थनिर्णय साधारणतया, उचित रूप में प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिकों द्वारा होना चाहिए)।

२ वाचिक बनाम कार्यगत (Verbal versus Performance) :

कुछ परीक्षाओं में लिखित भाषा का प्रयोग निर्देशों में तथा परीक्षार्थी द्वारा दिए गए प्रश्नोत्तरों में होता है। **ये शाब्दिक परीक्षाएँ** कहलाती हैं; क्योंकि उनमें शब्दों का प्रयोग होता है। दूसरी ओर, कुछ परीक्षाओं का प्रारंभ पुरः बच्चों (Preschool Children) अशिक्षितों अथवा विदेशों में उत्पन्न उन बच्चों के लिए, जो अँग्रेजी नहीं पढ़ सकते हैं, के लिए हुआ। ये परीक्षाएँ कार्यगत अथवा **कार्य-संपादन परीक्षाएँ** कहलाती हैं। परीक्षक के द्वारा शाब्दिक रूप में निर्देश दिए जा सकते हैं, लेकिन स्वयं परीक्षा में शब्दों का प्रयोग नहीं होता अथवा जिस व्यक्ति को अँग्रेजी नहीं आती, उसे कठिनाई होती है (देखिए, चित्र १४·१)।

**चित्र १४·१ एक व्यक्ति का बुद्धि-परीक्षण। स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षा के लिए बालिका दाने पिरो रही है। उसका कार्य है कि सामने २२वें प्रतिदर्श के अनुरूप दाने पिरोना (ब्रुक्स, मांकमायर से)। लड़के का कार्य चित्र की भीतरी भित्ति पर बिना किनारों को स्पर्श किए यथासंभव तीव्र गति से रेखा खींचना (न्यूयार्क यूनी० टेस्टिंग एंड एडवाइजमेंट सेंटर)।**

३. क्षिप्रता बनाम क्षमता (Speed versus Power) :

कुछ परीक्षाएँ समय में सीमित होती हैं और समय इस तरह से रखा जाता है कि जो व्यक्ति शीघ्रता से कार्य कर सकते हैं, सबसे अधिक अंक प्राप्त करता है। यह क्षिप्रता-**परीक्षाएँ** कहलाती हैं। दूसरी परीक्षाओं का नियोजन बिना समय-निर्धारण के कार्य की कठिन समस्याओं का समाधान करने की योग्यता की परीक्षा के लिए होता है, यह **क्षमता-परीक्षाएँ** कहलाती हैं। कभी-कभी क्षमता-परीक्षाओं के लिए भी समय की सीमा होती है, लेकिन यदि ऐसा होता है, तो यह केवल प्रबंधात्मक सुविधा के लिए होता है और उन्हें ऐसे रखा जाता है कि समय की सीमा व्यक्ति के कार्य-संपादन में कोई महत्त्वपूर्ण अंतर उपस्थित नहीं करती।

परीक्षाओं के कुछ अन्य प्रकार भी हो सकते हैं और कुछ का वर्णन 'व्यक्तित्व' के अध्याय में हुआ है। लेकिन, बुद्धि और अभिरुचि के अध्ययन में भी इनका महत्त्व है। इसके अतिरिक्त हम ध्यान में रख सकते हैं कि कुछ परीक्षाएँ व्यक्ति को बुद्धि के लिए समग्र रूप में अंक दे सकती हैं, जब कि अन्य परीक्षाएँ विभिन्न योग्यताओं के लिए पृथक्-पृथक् अंक देती हैं। कुछ परीक्षाओं का नियोजन एक विशेष आयु के समूह के लिए होता है और कुछ का अन्य आयु के समूह के लिए होता है। कुछ का नियोजन अन्य बुद्धिवालों के लिए होता है और कुछ का विशेष रूप से बुद्धिमानों के लिए होता है। जैसा कि हमने कहा, वस्तुत: आज सैकड़ों प्रकार की परीक्षाएँ हैं, आज परीक्षा-व्यापार लाखों का व्यवसाय है।
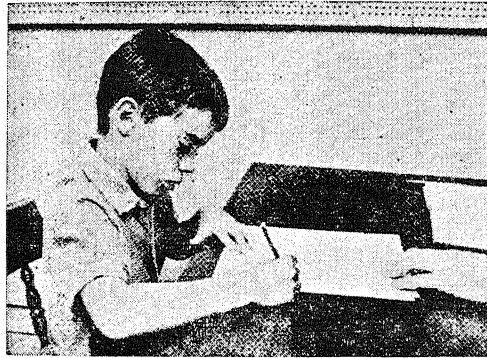
चित्र १४·१ के क्रम में

इस अध्याय का अधिकांश बुद्धि-परीक्षाओं से संबंधित है; क्योंकि ये सामान्य रुचि की हैं और इसलिए भी कि ये सभी प्रकार की बुद्धि-परीक्षाओं को विकसित और प्रयुक्त करने के साधनों को स्पष्ट करती हैं। अंतिम अनुभाग में अभिरुचि की परीक्षाओं का वर्णन किया जाएगा।

## बुद्धि-परीक्षाएँ (Intelligence Tests) :

बुद्धि के मापनार्थ परीक्षाओं की जो विविधता है, वह उस व्यक्ति के लिए भ्रांतिदायक हो सकती है, जो बुद्धि को केवल एक ही 'वास्तविक' योग्यता के रूप में सोचने का अभ्यस्त है और अधिकांश व्यक्ति यही करते हैं। हम प्रश्न कर सकते हैं कि बुद्धि-मापन के लिए एक ही परीक्षा क्यों न हो, जो बुद्धि का 'वास्तविक' मापन कर सके ?

वस्तुतः बुद्धि की अनेक परीक्षाएँ परस्पर भली-भाँति सहसंबंधित हैं, जिसका तात्पर्य है कि वे एक ही बात का मापन करती हैं। दूसरी ओर, मनोवैज्ञानिक अनुसंधान ने यह स्पष्ट कर दिया है कि बुद्धि के एक से अधिक प्रकार हैं—अथवा बुद्धि

के अंतर्गत एक से अधिक योग्यताएँ हैं। अतः, बुद्धि की जिस विशेष परीक्षा का प्रयोग हम करते हैं, वह इस पर निर्भर करता है कि हम किस योग्यता का परिज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। यदि हम विद्यालय के कार्य से संबंधित बुद्धि का मापन करना चाहते हैं, तब हम एक प्रकार की परीक्षा का प्रयोग करेंगे, यदि सैनिक जीवन से संबंधित कार्य में रुचि लेते हैं, तो हम दूसरी प्रकार की परीक्षा का प्रयोग करेंगे और यदि यह बुद्धि सामान्य व्यावसायिक जीवन के लिए लाभदायक है—इसका हम माप करना चाहते हैं, तब हम अन्य प्रकार की परीक्षाओं का प्रयोग करेंगे।

## स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षा (The Stanford-Binet Test) :

बुद्धि की प्रथम परीक्षा की खोज विद्यालय की आवश्यकताओं के लिए की गई थी और इस तरह से प्राथमिक शिक्षा में संबंधित योग्यताओं पर जोर देती हैं। यह परीक्षा १९०५ में एक फ्रेंच मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड बीने (Alfred Binet) द्वारा प्रकाशित हुई थी। बीने ने पेरिस विद्यालय के अधिकारियों की प्रार्थना पर परीक्षा का नियोजन किया था—जिससे वे उन मंद बुद्धिवाले बच्चों को चुन सकें, जो विद्यालय में जाकर लाभांवित नहीं हो सकते। परीक्षा ने अपने उद्देश्य की पूर्ति की और इसने अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों के ध्यान को शीघ्र ही आकर्षित किया। १९१६ में स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के अध्यापक टरमैन ने इसका पुनरावलोकन संयुक्त राज्य अमेरिका में विद्यालय के बच्चों के लिए किया और यह पुनरावलोकन **स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षा** के नाम से प्रसिद्ध हुआ (टरमैन तथा मेरिल्ल, १९३७)। यह परीक्षा अनेक बुद्धि-परीक्षाओं का आदर्श बनी, जिनका विकास इसके बाद से हो रहा है। आजकल की सुपरिचित बुद्धि-लब्धि परीक्षा इसी से विकसित हुई है। अतः, हम इसे अधिक निकटता से परख कर बुद्धि-परीक्षाओं के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

## मानसिक आयु (Mental age) :

स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षा व्यक्ति-परीक्षा है और इसका प्रयोग दो वर्ष से ७ वर्ष की आयु के बच्चों के लिए होता है। इसके अंतर्गत आयु-भेद के अनुसार अनेक उप-परीक्षाएँ होती हैं, अतः प्रश्न उठता है कि इसके अनुसार प्रत्येक आयु के बच्चे से परीक्षा-परिमापनों में पास होने के लिए क्या अपेक्षा की जा सकती है। दो साल के बच्चे के लिए कुछ उप-परीक्षाएँ होती हैं, तीन वर्ष की आयु वालों के लिए कुछ अन्य होती हैं, आदि आदि। एक बच्चे के परीक्षण के लिए उसकी उप-परीक्षाएँ क्रम से कठिनाइयों को बढ़ाते हुए ली जाती हैं, जब तक कि बह उस बिंदु तक पहुँचे, जहाँ विशेष आयु-स्तर की किसी भी परीक्षा को वह पास न कर सके। परिणाम जब एक समान होंगे,

तब वह जो अंक प्राप्त करेगा, वह उसकी मानसिक आयु (MA) को बताएँगे। उदाहरण के लिए यदि एक बच्चा चार बर्ष की आयु की सब परीक्षाएँ पास कर लेता है और पाँचवें वर्ष की आधी पास कर लेता है और ६ वर्ष की आयु की एक भी पास नहीं करता, उसकी मानसिक आयु ४½ वर्ष होगी। साधारणत: इसका रूप इतना सरल नहीं होता, लेकिन मानसिक आयु के मापन का यही सिद्धांत है।

सारणी—१४.१ स्टेनफार्ड-बीने परीक्षाओं की उप-परीक्षाएँ प्रस्तुत करती है। योग्यता के उन प्रकारों पर ध्यान दें, जिनका विभिन्न आयु-स्तरों पर परीक्षण होता है। निम्न आयु-स्तरों में परीक्षाएँ वस्तुओं, चिह्नों और शरीर के अंगों तथा रूपों के प्रत्यक्षीकरण (Perception of Forms) से संबंधित सूचनाओं पर बल देती हैं। उच्च आयु कोष्ठकों में परीक्षाएँ तर्कना समस्याओं में संख्याओं और शब्दों के प्रयोग पर अधिक बल देती हैं। सभी आयु-स्तरों पर शब्द-भंडार, शब्दों के उचित प्रयोग और स्मरण के विन्यास की परीक्षाएँ होती हैं; क्योंकि ये मानसिक योग्यता के अधिक सामान्य प्रश्नों को प्रस्तुत करते हैं।

सारणी—१४.१

| आयु | कार्य-प्रकार | उदाहरण या विवरण |
|---|---|---|
| २. | त्रि-छिद्री आकार बोर्ड ब्लाक-भवन | सही छिद्र में आकार (जैसे, गोला) रखता है। दिखाने पर मॉडल के अनुरूप मीनार बनाता है। |
| ३. | शरीर के अंगों को पहचानना | कागज की गुड़िया के बाल, मुँह आदि बनाता है। |
| ४. | स्मरण-शक्ति से वस्तुओं के नाम बताना | तीन वस्तुओं (जैसे, खिलौना, कुत्ता या जूते) को बच्चे के देख लेने पर छिपा दिया जाता है, तब बच्चा स्मरण-शक्ति द्वारा उनके नाम बताता है। |
| | चित्र पहचानना | पूछने पर कार्ड के सही चित्रों को बताता है, जब पूछा जाता है 'पकाने का यंत्र दिखाओ', या 'वर्षा के समय हम ऊपर क्या लेते हैं ?' |
| ७. | समानताएँ | ऐसे प्रश्नों के उत्तर देता है, "कोयला या लकड़ी में, जहाज और मोटरगाड़ी में क्या समानताएँ हैं ?' |
| | एक हीरे की नकल करना | रिकार्ड बुक में हीरे का चित्र बनाना। |

| | | |
|---|---|---|
| ८. | शब्दावली | एक सूची के आठ शब्दों को स्पष्ट करता है । |
| | कहानी के लिए स्मृति | कहानी सुनता है और तब उसको संक्षेप में सुनाता है । |
| ९. | शाब्दिक भूलें | 'मैंने एक सुंदर वेशधारी युवक को देखा, वह अपनी जेब में हाथों को डाल कर घूम रहा था और एक नई छड़ी को घुमा रहा था । इसमें क्या भूल है ?' |
| | विपरीत अंकगणना | पाँच अंकों को विपरीत रूप में गिनना । |
| | औसत शब्दावली वयस्क | सूची के बीस शब्दों को स्पष्ट करता है । |
| | मुहावरे | अपने शब्दों में दो या अधिक सामान्य मुहावरों को स्पष्ट करता है । |
| | दिक्-स्थापन | 'किस दिशा की ओर अपना मुँह करेंगे कि आपका दाहिना हाथ उत्तर दिशा की ओर होगा ?' |

एक बच्चे की मानसिक योग्यता स्पष्टतः उसके बढ़ने के साथ बढ़ती है । जब हम एक विशेष आयु पर उसकी परीक्षा करते हैं और उसके मानसिक प्राप्तांकों से परिचित होते हैं, तब हम केवल उसी आयु के मानसिक स्तर को जानते हैं । औसतन हम बच्चे की मानसिक आयु को उसकी कालगत आयु के समान ही बढ़ने की आशा करेंगे । वास्तव में परीक्षा आदर्श स्थापित किए जाते हैं, ताकि उनमें परिवर्तन न हो । इसकी ओर तीव्र बुद्धि बालक का मानसिक योग्यता में तीव्र विकास प्रदर्शित करना चाहिए, जिससे कि उसकी मानसिक आयु कालगत आयु से अधिक प्रकट होगी । मंद बुद्धि बालक में इसके विपरीत स्थिति सत्य होगी ।

**बुद्धि-भजनफल या लब्धि (Intelligence Quotient) :—**

इससे हम जान पाते हैं कि सापेक्ष बुद्धि मानसिक आयु और कालगत आयु के मध्य का अनुपात (Ratio) है । दो बालक बुद्धि-परीक्षण में पाँच वर्ष की मानसिक आयु (M A) प्राप्त करते हैं, किंतु एक केवल चार वर्ष का है और दूसरा पाँच वर्ष का, अतः, इससे स्पष्ट है कि दोनों में छोटा बालक अधिक तीव्र बुद्धि वाला है । इस तरह की भिन्नता को अंकों में उचित रूप में व्यक्त करने के लिए हमारे पास बुद्धि-भजनफल की अवधारणा है ।

मानसिक आयु और कालगत आयु का अनुपात बुद्धि-भजनफल है और दशमलव की असुविधाओं को दूर करने के लिए उसे १०० के साथ गुणा किया गया ।

सूत्र यह है—

$$\text{बु० ल० या बु० भ०} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{कालगत आयु}} \times 100 = \frac{\text{मा० आ०}}{\text{का० आ०}} \times 100$$

इस प्रकार देखने पर बु० भ० प्रदर्शित करता है कि कालगत आयु के साथ-साथ बच्चे की योग्यता कितनी तीव्रता से बढ़ती है। बु० भ० सूत्र को ऊपर वर्णित दो बच्चों पर लागू करने पर हम देखते हैं कि तीव्र बुद्धि बालक का १२५ बु० भ० है और दूसरे का १०० बु० भ० है।

बु० भ० आयु से संबंधित मानसिक योग्यता का मापक है; क्योंकि यह भिन्न मानसिक आयु होने पर भी और भिन्न-भिन्न कठिनाई की उप-परीक्षाओं को पास कर लेने पर भी विभिन्न आयु के बच्चों में तुलना करने योग्य हमें बनाता है। उप-परीक्षाओं को चुनने में और उसे संभव बनाने के लिए आयु मापकों को पर्याप्त सावधानी से काम में लेना चाहिए। वास्तव में परीक्षा का नियोजन उस तरफ से होता है कि सभी आयु वालों के लिए बु० भ० का विभाजन करीब-करीब एक समान हो। अतः, यह कहना संभव है कि १३ वर्ष का बालक जिसका १२५ बु० भ० है और पाँच वर्ष का बालक जिसका बु० भ० भी इतना ही है, दोनों एक ही समान तीव्र बुद्धि वाले हैं। वस्तुतः दोनों ही तीव्र बुद्धि हैं। चूँकि केवल पाँच प्रतिशत बच्चों का बु० भ० इतना उच्च या उच्चतर होता है।

परीक्षा की सीमाएँ (Limitations of the Test) :

स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षण जिस कार्य के लिए इसका निर्माण हुआ है—अति उत्तम साधन है। इसके अनेक व्यावहारिक प्रयोग हैं, जिनमें से कुछ का परीक्षण हम आगे करेंगे। पर, उसकी भी कुछ सीमाएँ हैं। प्रथमतः शाब्दिक योग्यता पर यह अधिक बल देता है। अधिकतर मौखिक रूप से निर्देश दिए जाते हैं और अधिकांश उप-परीक्षाएँ शब्दों के प्रयोग की अपेक्षा करती हैं। यदि एक ऐसे व्यक्ति की परीक्षा ली गई है, जिसे किसी कारण से भाषा की कठिनाई है, तो हमें उसके मानसिक विकास का यथार्थ रूप ग्रहण नहीं करना चाहिए। द्वितीय, एक समय में एक ही व्यक्ति की परीक्षा होनी चाहिए और उस परीक्षक को परीक्षा लेनी चाहिए, जो इसके प्रयोग के लिए अच्छी तरह से प्रशिक्षित है; क्योंकि अन्य बातों के साथ, परीक्षा से संबंधित अनेक समस्याएँ हैं। जब बड़े समूह की शीघ्रता से परीक्षा ली जाती है या जब प्रशिक्षित परीक्षक नहीं मिलते, तब यह इसे प्रयुक्त करने में असुविधा उत्पन्न करता है। तृतीय, यह उन प्राप्तांकों को बताता है, जो कि सर्वसाधारण या सामान्य मानसिक विकास के सूचक हैं। लेकिन, यह बौद्धिक योग्यता के विभिन्न प्रकारों के

अवकल विकास का पर्याप्त रूप नहीं बताता। यह बुनियादी मानसिक योग्यताओं पर अनुसंधान के लिए महत्त्वपूर्ण समस्या है और मानसिक रोग के निदान को प्रस्तुत करने में यह प्रायः महत्त्वपूर्ण है।

अभी जिन सीमाओं का हमने निर्देश किया है, उनके अतिरिक्त यह भी सत्य है कि स्टेनफोर्ड-बीने युवकों और प्रौढ़ों के लिए अच्छी परीक्षा नहीं है। यह इसलिए कि मानसिक आयु की अवधारणा द्वारा प्रस्तुत किए गए बौद्धिक कार्य १६ वर्ष की आयु के पश्चात् किसी प्रकार का संगत विकास नहीं दिखाते, जहाँ तक कि स्टेनफोर्ड-बीने का संबंध है। यह बिंदु मानसिक आयु की सीमा है। आप देख सकते हैं कि १६ वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति के लिए बुद्धि-भजनफल निकालने में कठिनाई उपस्थित होती है। इस कठिनाई से छुटकारा पाने के लिए अंकगणित की युक्ति है - स्टेनफोर्ड-बीने प्राप्तांकों में तुम सरलता से अनुमान कर लेते हो कि कोई भी १६ वर्ष से अधिक आयुवाला व्यक्ति केवल १६ वर्ष का ही है— लेकिन यह अधिक अच्छा है कि प्रौढ़ों के लिए बनी हुई विशेष परीक्षाओं का प्रयोग किया जाए।

### वेशलर की वयस्क-बुद्धि मापनी (Wechsler Adult Intelligence Scale) :

बेलवे साइकिआट्रिक औषधालय (Bellevue Psychiatric Hospital) के डॉ० डेविड वेशलर (Dr. David Wechsler, 1958) द्वारा प्रचलित प्रौढ़ों की परीक्षा का प्रयोग सबसे अधिक होता है। यह (वेशलर वयस्क बुद्धि-मापनी) कहलाती है या संक्षेप में (WAIS) स्टेनफोर्ड-बीने की भाँति (WAIS) भी एक व्यक्ति की परीक्षा है, जिसके लिए अनेक आधारों की और इसके प्रयोग के लिए कुशल परीक्षकों की आवश्यकता है। स्टेनफोर्ड-बीने की भाँति ही यह अनेक उप-परीक्षाओं से बनी है। WAIS में उप-परीक्षाएँ दो विभागों में विभाजित होती हैं— एक वाचिक और दूसरी कार्य-संपादन। छह शाब्दिक या वाचिक उप-परीक्षाएँ हैं और पाँच कार्य-संपादन उप-परीक्षाएँ हैं। वे हैं :—

| वाचिक या शाब्दिक उप-परीक्षाएँ | कार्य-संपादन उप-परीक्षा |
|---|---|
| सूचना | चित्र-व्यवस्था |
| सामान्य अर्थग्रहण | चित्र-समापन |
| स्मरणशक्ति विन्यास | गोटी-स्थापना |
| गणितीय तर्कना | वस्तु-संयोजन |
| समानताएँ | अंक-प्रतीक |
| शब्दावली | |

उप-परीक्षाओं को अलग से प्राप्त किया जा सकता है, जिससे कि व्यक्ति की योग्यता की विभिन्न कोटियों में तुलना की जा सके। इसके अतिरिक्त परीक्षा के शाब्दिक और कार्य-संपादन वर्ग स्वतंत्र रूप से प्राप्त किए जा सकते हैं तथा दोनों से पृथक्-पृथक् बुद्धि-भजनफल उपलब्ध हो सकता है। यह परीक्षा विदेशी या कम शिक्षित लोगों की परीक्षा के लिए, जिन्हें अपनी शाब्दिक योग्यता को बढ़ाने का उचित अवसर नहीं मिला है—लाभदायक है। इस तरह के लोग शाब्दिक परीक्षाओं की अपेक्षा कार्य-संपादन की परीक्षाओं में प्राय: अधिक अच्छा करते हैं। यह घायल मस्तिष्क वाले मनुष्य की अथवा मानसिक रोगी की परीक्षा के लिए भी लाभदायक है; क्योंकि यह परीक्षण कभी-कभी व्यक्ति की कठिनाई कहाँ है—इसे भी स्पष्ट करता है।

WAIS के लिए बु० भ० गणना की प्रणाली ऊपर वर्णित स्टेनफोर्ड-बीने प्रणाली से भिन्न है। मा० आ० के प्रयोग और इसके का० आ० द्वारा विभाजन जो कि बच्चों के लिए सबसे अधिक उचित होता है —अतिरिक्त बु० भ० मानक प्राप्तांक प्रणाली से प्राप्त होता है। यह प्रणाली अपेक्षा करती है कि प्राप्तांकों के विभाजन की औसत की और प्रामाणिक विचलन की है तथा T प्राप्तांकों ( T Score ) के पर्याय स्थापित हों। इस स्थिति में T प्राप्तांक बु० भ० कहलाते हैं। बु० भ० गणना की प्रणाली निम्नलिखित है :—

वेशलर ने स्वेच्छया प्राप्तांक क्रिया द्वारा १६ एवं ६० वर्ष की आयु के मध्य के १७०० व्यक्तियों के मानकीकरण समूह पर प्राप्तांकों के वितरण को प्राप्त किया। वह इस वितरण के औसत और प्रामाणिक विचलन की गणना करता है। ये क्या हैं, इसका कोई अंतर नहीं पड़ता; क्योंकि वे केवल समरूप बुद्धि भजनफल प्राप्त करने के लिए बुनियाद का कार्य करते हैं। वह औसत को १०० के बराबर और प्रामाणिक विचलन को १५ रखता है। इस तरह से एक व्यक्ति जिसका बु० भ० औसत से एक प्रामाणिक विचलन कम है, उसका बु० भ० ८५ नियत हुआ और एक व्यक्ति जिसका बु० भ० औसत से एक प्रामाणिक विचलन अधिक है, उसका ११५ नियत हुआ। बु० भ० को इस प्रकार पारिभाषित करने से बु० भ० के विभाजन को सामान्य वक्र से सीधे संबंधित किया है और उन व्यक्तियों की प्रतिशतता जिनका बु० भ० किसी को विशेष बु० भ० से अधिक कम अथवा मध्यवर्त्ती है, सामान्य वक्र द्वारा सुगमता से पूर्व घोषित की जा सकती है ( देखिए, सारणी १४·२ ) बु० भ० का परिणामिक वितरण और विभिन्न क्षेत्रों में बु० भ० के लिए प्रयुक्त वर्णनात्मक रूप सारणी १४·२ में दिए गए हैं।

सारणी १४.२

| बुद्धि-भजनफल | शाब्दिक विवरण | वयस्कों का प्रतिशत |
| --- | --- | --- |
| १३० से ऊपर | बहुत श्रेष्ठ | २ २ |
| १२०-१२९ | श्रेष्ठ | ६.७ |
| ११०-११९ | श्रेष्ठ-सामान्य | १६.१ |
| ९०-१०९ | औसत | ५०.० |
| ८०- ८९ | मंद सामान्य | १६.१ |
| ७०- ७९ | किनारे पर | ६ ७ |
| निम्न ७० | विकृत | २.२ |

**चित्र १४ २ गोटी-स्थापन और वस्तु संयोजन विषयों के उदाहरण प्रदर्शित करता है।**

महाविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए औसत से अधिक बु० भ० के विभाजन का अधिक विस्तार से विश्लेषण रोचक हो सकता है। ११० और उससे अधिक के बु० भ० के लिए अधिक बुद्धि-भजनफल पर जन-संख्या की प्रतिशतता इस प्रकार है :—

| बेशलर बुद्धि-भजनफल— | ११० | ११३ | ११९ | १२५ | १२८ | १३५ |
| --- | --- | --- | --- | --- | --- | --- |
| अधिक प्रतिशत | २५ | २० | १० | ५ | ३ | १ |

इन संख्याओं से तात्पर्य है कि एक प्रतिशत व्यक्तियों का बु० भ० १३५ से अधिक है और १० प्रतिशत का ११९ से अधिक आदि।

१९६० में प्रकाशित स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षण की नवीनतम पुनरावृत्ति में बु० भ० की गणना के प्रकारों के प्रयोग के लिए उसी प्रकार की सामग्री दी गई है, जैसी कि वेशलर के पास वेशलर वयस्क बुद्धि मापक की है। मा० आ० / का० आ० प्रणाली से तुलना करने पर वेशलर प्रणाली में किसी भी प्रयुक्त मानकीकरण समूह के लिए बिलकुल वही साधन (१००) और मानक विचलन (१५) प्रस्तुत करने की सुविधाएँ हैं। वास्तव में मा० आ० / का० आ० में पूर्णत: ऐसा नहीं होता, स्टेनफोर्ड-बीने बुद्धि-भजनफल के माध्य भजनफल तथा मानक विचलन आयु के अनुसार एक समूह से दूसरे समूह में भिन्न होते हैं।

आगे बढ़ते हुए हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि वेशलर (१९४९) ने बच्चों की बुद्धि मापने के लिए भी परीक्षाएँ निर्धारित की हैं, जिन्हें 'बच्चों के लिए वेशलर बुद्धि मापनी' या संक्षेप में WISC कहा गया है। इधर कुछ वर्षों से WISC का प्रयोग विस्तृत रूप से हुआ है, शायद स्टेनफोर्ड-बीने से भी अधिक। अपनी उप-परीक्षाओं में और बुद्धि-भजनफल की भिन्न शाब्दिक क्रियाओं को प्रस्तुत करने में यह WAIS से काफी मिलती-जुलती है।

यथार्थतः परीक्षित बच्चे की आयु और बुद्धि के लिए विषयों की कठिनाई का अनुकलन किया गया है ।

चित्र १४·२ (ऊपर) चित्र में एक विद्वान ब्लाक-प्रतिदर्श को लेता है तथा (नीचे) वयस्कों के लिए वेशलर परीक्षा का वस्तु-एकत्रीकरण विषय लेता है (न्यूयार्क विश्व-विद्यालय, परीक्षण और विज्ञापन केंद्र ) ।

## बुद्धि की समूहगत परीक्षाएँ ( Group Test of Intelligence ) :

औषधालयों और विद्यालयों में जहाँ कि बुद्धि-परीक्षा व्यक्ति की समस्या को समझने का केवल एक भाग है, वहाँ व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षाओं को लेने में सुविधा होती है । इन स्थितियों में भी परीक्षाओं के प्रबंध के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित निपुण कर्मचारी स्टेनफोर्ड-बीने WAIS, WISC या कोई अन्य व्यक्ति परीक्षा देने के लिए प्रायः प्रस्तुत रहते हैं । ऐसी अनेक स्थितियाँ हैं, जिनके लिए समूहगत परीक्षा या तो उचित या नितांत आवश्यक है । सेना में प्रत्येक वर्ष हजारों की संख्या में सैनिकों की वृद्धि होती रहती है । इसके लिए समूहगत परीक्षा आवश्यक है । दूसरी समूह-परीक्षा
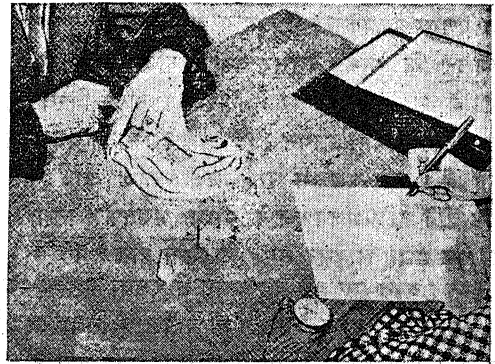
चित्र १४·२ के क्रम में

स्कूल और कालेजों में प्रवेश करने वाले विद्यार्थियों की है। इस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समूह परीक्षाओं की खोज की गई है।

समूह परीक्षाओं को विकसित करने के गहन प्रयास के लिए प्रथम विश्वयुद्ध ने प्रेरणा दी है। हजारों युवक नौकरी पर नियुक्त किए गए थे। युद्ध के लिए मानसिक रूप से अयोग्य व्यक्तियों को छाँटने के लिए और अधिकारियों को प्रशिक्षण-योग्य व्यक्तियों को चुनने के लिए कुछ शीघ्र कार्यान्वित होने वाली प्रणालियों की आवश्यकता थी। अंत में पूर्ण रूप से मानव-शक्ति का उपयोग करने के लिए विभिन्न वेटलियनों के वर्गों और तकनीकी प्रशिक्षण स्कूलों में उनकी योग्यता के अनुसार उन्हें भेजना उचित था।

### सारणी १४.३

**सारणी १४.३ : आर्मी एलफा परीक्षा के कुछ प्रतिदर्श विषय**

A. यदि ५१/२ टन छाल (बार्क) की कीमत ३३ डालर है, तो ३१/२टन की कीमत क्या होगी ?

B. रेलगाड़ी की अपेक्षा एक मोटरगाड़ी को रोकना अधिक सरल है क्योंकि : (i) यह लंबी है, (ii) यह भारी है, (iii) ब्रेक उतने अच्छे नहीं हैं।

C. यदि एक युग्म के दो शब्दों का समान अथवा समान के निकट अर्थ है, तो उसे रेखांकित कीजिए। यदि वे विपरीतार्थक अथवा विपरीतार्थक के निकट हैं, तो विपरीत शब्दों को रेखांकित कीजिए—

| | | | |
|---|---|---|---|
| व्यापकार्थ | सीमित अर्थ | समान अर्थ | विपरीत अर्थ |
| लुभाना | आकर्षण | समान अर्थ | विपरीत अर्थ |
| सुप्त | गुप्त | समान अर्थ | विपरीत अर्थ |
| हँसी उड़ाना | मूर्ख बनाना | समान अर्थ | विपरीत अर्थ |

D. यदि निम्नांकित शब्दों को आप वाक्यों में प्रयोग करें और यदि वह वाक्य शुद्ध ( सत्य ) हो, तो शुद्ध शब्द को रेखांकित करें और यदि वह वाक्य अशुद्ध (मिथ्या) हो, तो अशुद्ध शब्द को रेखांकित करें—

| | | |
|---|---|---|
| लोग शत्रुओं उद्धत अनेक बनाते हैं | शुद्ध | अशुद्ध |
| नहीं कौन लापरवाह वे लड़खड़ाते हैं | शुद्ध | अशुद्ध |
| नहीं मनुष्य दिखाता है कार्य | शुद्ध | अशुद्ध |

E. रेखांकित करें कि :

किस घड़े का टेनिस फुटबाल बेशवाल हैंडबाल में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

F. रेखांकित करें कि :
उदासी/प्रसन्नता को उसी प्रकार आच्छादित करती है जैसे—
हँसी खुशी घर खिन्नता

---

मनोवैज्ञानिकों ने प्रथम विश्वयुद्ध में इन आवश्यकताओं की पूर्ति आर्मी एल्फा परीक्षण और आर्मी बीट परीक्षण की खोज द्वारा की। आर्मी एल्फा परीक्षण उस विशेष व्यक्ति के लिए निर्मित हुआ, जो लिख और पढ़ सकता था। इसमें स्थूल रूप से बुद्धि के अनुसार लोगों को कोटियों में विभाजित करने के लिए अंक होते थे। सारणी १४·३ इस परीक्षा की समस्याओं के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करती है। दो युद्धों के बीच में आर्मी एल्फा के प्रयोग पर प्रायः सैनिक एवं असैनिक कर्मचारियों द्वारा पुनर्विचार किया गया। आर्मी बीटा परीक्षण उन लोगों के लिए निर्मित हुआ, जो अशिक्षित थे और जो विदेशी होने के कारण अंग्रेजी भाषा में निपुण नहीं थे। यह परीक्षा उन अमौखिक समस्याओं पर बल देती है, जिनके लिए मौखिक रूप से साधारण आज्ञाएँ ही दी जा सकती हैं। चित्र १४·३ में आर्मी बीटा से दो उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।

जब द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ, तो सेना के मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक परीक्षा के विस्तृत अनुसंधान का लाभ अधिक उग्र निरीक्षणार्थ उठाया, जिसे उन्होंने आर्मी जनरल क्लासिफिकेशन टेस्ट ( AGCT ) कहा।

यह परीक्षा लाखों सैनिकों को सशस्त्र सेना में प्रेरण के आधार पर दी गई। यह चार विभिन्न रूपों में तैयार की गई, जिन्हें परस्पर बदला जा सकता था। प्रत्येक प्रकार की परीक्षा में एक घंटा लगता था। इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति के कार्यों को चार भिन्न रूपों में विभाजित करने के लिए परीक्षा के दीर्घ रूपों की खोज की गई।

(१) मौखिक योग्यता (२) स्थानीय ज्ञान (३) गणित परिकलन (Arithmatic Computation ) और (४) गणित तर्कना ( Arithmatic Reasoning )

स्टेनफोर्ड-बीने की तरह AGCT में प्राप्तांक इस तरह से होते हैं कि सामान्य व्यक्ति को १०० अंक दिए जाते हैं। स्थूल विभाजन के दृष्टिकोण से प्राप्तांकों के अनुसार सेना इन व्यक्तियों को पाँच समूहों में विभाजित करती है। चित्र १४४ प्रत्येक समूह के लिए सीमित प्राप्तांकों को और प्रत्येक समूह में देखी गई परीक्षा देने वालों के प्रतिशत को प्रदर्शित करता है। फैलाव या विभाजन व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षाओं से काफी मिलता-जुलता है, लेकिन AGCT प्राप्तांक और बुद्धि-भजनफल पूर्णता एक समान तुलनीय नहीं हैं। नौसेना ने इसी प्रकार के NGCT को विकसित एवं प्रयुक्त किया, अंतर केवल यही है—नौसेना परीक्षाओं की औसत ५० है। इधर

कुछ वर्षों में AGCT और NGCT का स्थानापन्न आर्मी फोर्सेज क्वालीफिकेशन टेस्ट ( AFQT ) ने किया है ।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् असैनिकों के लिए अनेक समूह परीक्षाएँ खोजी गईं – मुख्यतः व्यापार और उद्योग में नौकरी के लिए लोगों को चुनने में सहायता देने के लिए ( देखिए, अध्याय १८) । इनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध मानसिक योग्यता का ओटिस सेल्फ-एडमिनिस्टरिंग टेस्ट (Otis S. A. ) है । यह पेंसिल और कागज की चार पृष्ठीय संक्षिप्त परीक्षा है, जिसका प्रबंध साधारणतः उन कालनिष्ठ और परीक्षाधीन अवस्थाओं में हो सकता है, जो मानक को रखने के लिए अपेक्षाकृत सरल है। यह परीक्षा २० या ३० मिनट की सीमावधि में ली जा सकती है या इसी अवधि में अंक प्राप्त किए जा सकते हैं । परीक्षा के प्राप्तांक स्टेनफोर्ड-बीने से सहसंबंधित है, जिससे कि यदि कोई चाहे तो यह संभव है कि उसे बुद्धि—भजनफल के बराबर बदला जा सकता है। परीक्षा इस प्रकार से निर्मित होती है कि यह मौखिक और तर्कना कारकों पर बल देती है, लेकिन कार्य कारकों को बहुत अच्छी तरह से प्रदर्शित नहीं करती है ।

अशाब्दिक कार्य-संपादन परीक्षाओं का उपयोग अनपढ़ एवं अंग्रेजी न जानने वाले व्यक्तियों के लिए किया जाता है ।
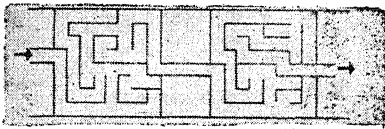
Which is the shortest path through the maze?

Complete the series.
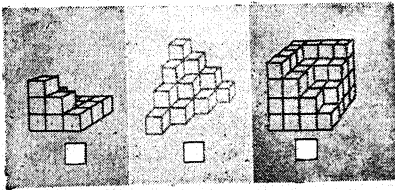
How many cubes in each pile? Write number in appropriate square.

**चित्र १४·३ प्रथम विश्वयुद्ध में आर्मी बीटा परीक्षा के विषयों का उपयोग किया गया था । बीटा परीक्षा का प्रयोग अनपढ़ एवं ऐसे व्यक्तियों के लिए किया गया था, जिनके लिए एल्फा परीक्षा का प्रयोग करना अनुचित था (नेशनल अकादमी ऑफ साइंस) ।**

उच्च शिक्षा से संबंधित अन्य अनेक परीक्षाओं का प्रयोग होता है, जो बुद्धि की समूह परीक्षाओं के सामान्य प्रतिरूप का अनुसरण करती हैं । अमेरिकन काउंसिल ऑन एजुकेशन के प्रयोजकाधीन एक परीक्षा तैयार की गई थी, जो ACE Test

कहलाती है, जिसे अधिकांश कालेज के विद्यार्थी कालेज में प्रवेश करते समय देते हैं। इसी के समान एक का प्रयोग सेलेक्टिव सर्विस द्वारा कालेज के विद्यार्थियों को आस्थगन के लिए आधार के रूप में हुआ। अन्य परीक्षाएँ अधिक उच्च स्तर के उन विद्यार्थियों के लिए प्रयुक्त होती हैं, जो डाक्टरी में या स्नातक स्कूलों में प्रवेश पाना चाहते हैं। जब कि बाद वाली परीक्षाएँ विशेष प्रकार की शिक्षा में सफलता को प्रायुक्त (Predicting) करने के विशिष्ट उद्देश्य के लिए बनी हैं, फिर भी सामान्य बुद्धि-परीक्षाओं की अपेक्षा अभिक्षमता-परीक्षाओं की उस पर अधिक छाप रहती है और हम उन पर बाद में **अभिक्षमता** शीर्षक के अंतर्गत विचार करेंगे।

## बुद्धि का स्वरूप ( The Nature of Intelligence ) :

बुद्धि को योग्यता या गुण के रूप में विचारना स्वाभाविक प्रतीत होता है। मेरी को हम 'तीव्र बुद्धि वाली' और जॉन को 'मंद बुद्धि वाला' समझते हैं। उन शब्दों को हम एक लेबल के रूप में व्यक्ति के लिए प्रयोग करते हैं। हम मेरी को स्कूल में तीव्र बुद्धि पाते हैं, किंतु अन्य स्थितियों में उसे बहुत मंद बुद्धि देखते हैं, अर्थात् बुद्धि के अनेक प्रकार होते हैं। तथ्य की बात यह है कि बुद्धि-सबंधी किए गए हमारे अधिकांश परीक्षण एक समग्रतापरक प्राप्तांक देते हैं अथवा बुद्धि-भजनफल तथा एक कदम और आगे बढ़कर बुद्धि-संबंधी हमारे विचार को एकात्मक रूप देते हैं। विशिष्ट योग्यताओं से भिन्न कोई सामान्य बुद्धि भी है अथवा वह केवल योग्यताओं का समूह ही है ? बुद्धि वास्तव में क्या है ?

कारक-विश्लेषण की प्रणाली इस प्रश्न का उत्तर देती है (देखिए, अध्याय —१३)। कारक-विश्लेषण करने के लिए अनुसंधानकर्त्ता एक ही वर्ग के लोगों की अनेक प्रकार की उचित परीक्षाएँ लेते हैं, यह देखने के लिए कि किस प्रकार से परीक्षाएँ एक दूसरे से संबद्ध हैं। इस उद्देश्य के लिए वे उप-परीक्षाओं के मध्य या प्रत्येक भिन्न विषय की परीक्षाओं के मध्य संबंधों की गणना करते हैं, केवल समग्रतापरक प्राप्तांक के लिए ही नहीं, जितनी अच्छी तरह से वे कर सकते हैं, बुद्धि के तत्त्वों पर सूक्ष्मता से विचार करते हैं। अनेक प्रकार के पारस्परिक संबंधों के कारण वे सांख्यिकीय विश्लेषण से यह देखने के लिए आगे बढ़ते हैं कि कौन से विषय एक ही वर्ग के अंतर्गत आते हैं तथा कौन से एक दूसरे से स्वतंत्र हैं। उदाहरण के लिए यह हो सकता है कि सभी प्रकार की उप-परीक्षाएँ, जिनका संबंध शब्दों से है, परस्पर सहसंबंधित हो सकती हैं, किंतु संख्याओं से मुक्त उप-परीक्षाओं से नहीं। इस प्रकार से अनेक परीक्षाओं में वे 'कारकों' को भिन्न करती हैं। संप्रति उल्लिखित उदाहरण से यह निष्कर्ष निकलेगा कि एक शाब्दिक कारक है और वह संख्यात्मक कारक से सापेक्षतः भिन्न है।

सामान्य वर्गीकरण परीक्षाओं के आधार पर द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सेना और नौसेना के जो अंक प्राप्त किए गए थे, उन्हें तुल्य बुद्धिभजनफल (आई क्यू) में परिवर्तित किया जा सकता है।
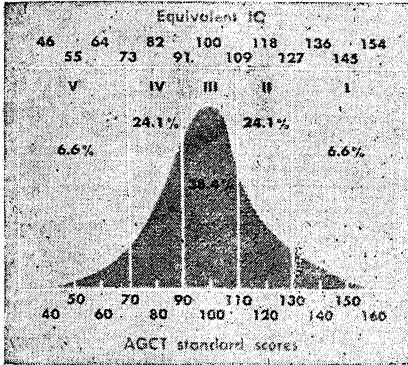
**चित्र १४·४ निचली क्षैतिज रेखा में लिखे गए अंक X/σ, अचर प्रणाली द्वारा, गुणनफल से प्राप्त किए गए हैं (देखिए, अध्याय—१३)। ऊपरी क्षैतिज रेखा में लिखे अंक तुल्य बुद्धि-भजनफल हैं। इस उदाहरण में १०० से ·९ के विचलन द्वारा प्राप्त किए गए हैं। रोमन अंकों में सेना पाँच वर्गों का उपयोग परीक्षार्थियों के वर्गीकरण के लिए करती है। प्रत्येक वर्ग के अंतर्गत आने वाले व्यक्तियों की सापेक्ष संख्या प्रतिशत द्वारा निर्देशित है। नौसेना (NGCT) के अंक AGCT के अंकों से बराबर आधे थे।**

उस प्रकार का अनुसंधान विस्तृत रूप से हुआ है। प्रत्येक अनुसंधानकर्त्ता अपने द्वारा प्रयुक्त परीक्षाओं के आधार पर और उसके द्वारा लिए गए लोगों के प्रतिदर्श के आधार पर भिन्न परिणाम पर पहुँचता है। **अनेक अनुसंधानकर्त्ता बुद्धि के विभिन्न कारक निर्मित होने पर एक मत हैं।** संयुक्त राज्य अमेरिका में सबसे अधिक अध्ययन थर्स्टन (Thurstone) द्वारा किया गया है (थर्स्टन और थर्स्टन, १९४१)। जब उसने स्कूल के बच्चों पर दर्जनों परीक्षाओं का व्यापक कारक-विश्लेषण किया, तब उसने सात कारकों का निष्पादन किया। प्रत्येक कारक उप-परीक्षाओं के मध्य पारस्परिक संबंधों के समुदाय का निरूपण करता है और इस तरह से उनमें जो सामान्य प्रवृत्तियाँ हैं, उन्हें प्रकट करता है। उसके सातों कारकों को निम्नलिखित नाम दिए गए और उनका वर्णन इस तरह से है :

**शाब्दिक ग्रहण योग्यता** (शा) ( Verbal Comprehension. V. ) : शब्द को समझने और परिभाषित करने की योग्यता।

**शब्द-प्रवाह** (श) (Word Fluency — W.) : शब्दों को शीघ्रता से विचारने की योग्यता, जैसा कि तत्काल भाषण में या वर्ग पहेली का समाधान करने में होता है।

अंक (अं) (Number – N) : गणित के सवाल करने की योग्यता।

**स्थान**–(**स्था**) (Space—S) : स्मरणशक्ति से चित्र बनाने की योग्यता या संबंधों को देखना।

**स्मरणशक्ति**– (स्म) ( Memory—M ) : कंठस्थ एवं स्मरण करने की योग्यता।

**प्रत्यक्षीकरण**—(**प्र**) (Perceptual—P) : दृष्टिमूलक विवरणों को समझने की और विभिन्न वस्तुओं में भिन्नताओं और समानताओं को देखने की योग्यता।

**तर्कना** (त) ( Reasoning—R ) : समझने के लिए या समस्याओं का समाधान करने के लिए नियमों, सिद्धांतों या संप्रत्ययों को खोजने की योग्यता।

इन कारकों को खोजते समय थर्स्टन उन उप-परीक्षाओं को पहचान सका, जो प्रत्येक कारक का निरूपण करती हैं; क्योंकि वह जानता था कि कौन-सी उप-परीक्षाएँ परस्पर संबद्ध थीं और कौन-सी नहीं। इस तथ्य ने उन परीक्षाओं को खोजने की क्षमता दी, जो प्रत्येक कारक को जितना संभव हो सके, उतनी स्वतंत्रता से माप सके। ऐसा करने के लिए उसने अपनी उप-परीक्षाओं को पुनः व्यवस्थित किया और उनको एक समूह में बद्ध किया, जो एक ही कारक को निरूपित करती थी। वास्तव में अनेक उदाहरणों में उसने उस प्रविधि से उन अनेक नवीन उप-परीक्षाओं को खोज कर उन्नत करने का प्रयत्न किया, जो उसके द्वारा खोजे हुए कारकों का अच्छा माप दिखायी देती थी। अब उन नवीन परीक्षाओं के समूह से, जो कि प्राथमिक मानसिक योग्यताएँ (Primary Mental Abilities) कहलाती हैं, वह इस प्रश्न को हाथ में ले सका कि सामान्य बुद्धि नाम की कोई वस्तु है या नहीं। चूँकि वह सात कारकों को प्राप्त कर चुका था, उसने निष्कर्ष निकाला कि आंशिक रूप से बुद्धि विभिन्न योग्यताओं से बनी है। प्रश्न यह था कि विशिष्ट कारकों से भिन्न सामान्य कोई कारक है या नहीं ?

इस समस्या का समाधान करने के लिए बच्चों के बड़े समुदाय से प्राथमिक मानसिक योग्यताओं की प्रत्येक परीक्षा से अंक प्राप्त किए और एक दूसरे से इन प्राप्तांकों को पारस्परिक रूप से संबद्ध किया। यदि सामान्य बुद्धि नाम की कोई वस्तु न होती, तो परीक्षा द्वारा मापा हुआ प्रत्येक कारक दूसरों से स्वतंत्र होना चाहिए था और उनमें किसी भी प्रकार का पारस्परिक संबंध नहीं होना चाहिए। वास्तव में विभिन्न परीक्षाएँ पारस्परिक रूप से संबद्ध हैं, कुछ अपेक्षाकृत अधिक और कुछ कम। पारस्परिक संबंध यह बताते हैं कि कुछ सामान्य योग्यताएँ हैं, जो कि प्राथमिक योग्यता की सभी परीक्षाओं में समान हैं। अतः, वह इस परिणाम पर पहुँचा कि मुख्य कारकों में से प्रत्येक को स्वतंत्र मुख्य कारक और सामान्य कारक का मिश्रण समझा जा सकता है, जिसमें वह अन्य मुख्य कारकों के साथ भाग लेता है। तब हमारे

प्रश्न 'बुद्धि क्या है' ? का उत्तर होगा कि यह **कुछ सामान्य योग्यता और कुछ विशिष्ट योग्यता दोनों** है।

## परीक्षाओं का अर्थनिर्णय या भाषांतर व्याख्या (Interpretation of Tests):

बुद्धि-परीक्षाओं के अर्थनिर्णय पर उस परिणाम का पर्याप्त प्रभाव होगा। यद्यपि प्रत्येक बुद्धि-परीक्षा किसी-न-किसी मात्रा में सामान्य बुद्धि का परिमापन कर सकती है और इस तरह से अन्य मापन करने वाली बुद्धि-परीक्षाओं को यह आंशिक रूप में मापती है, यह अपनी विशिष्ट योग्यता के विशेष प्रतिदर्श प्रस्तुत करती है। आज सामान्य प्रयोग में जो व्यक्ति या समुदाय की बुद्धि-परीक्षाएँ हैं, उनमें से कोई भी समान मात्रा में विशिष्ट योग्यताओं को नहीं मापती। कुछ परीक्षाएँ कुछ योग्यताओं की अपेक्षा अन्य योग्यताओं को अधिक महत्त्व देती हैं।

वास्तव में अधिकांश बुद्धि-परीक्षणों को, विशेष कर स्टेनफोर्ड-बीने और ओटिस को शाब्दिक तथ्यों के लिए अधिक महत्त्व दिया जाता है। स्टेनफोर्ड-बीने के संबंध में यह सही प्रमाणित हुआ है; क्योंकि स्कूल के कार्य, जो अपेक्षाकृत शाब्दिक हैं, में परीक्षण के अनेक विषयों के चयन में निकष रूप में इसका प्रयोग किया गया था। ओटिस (Otis) की भाँति समूह-परीक्षण की महत्ता का अंकन आंशिक रूप में शाब्दिक और अंकपरक (Numerical) योग्यता द्वारा हुआ; क्योंकि इन योग्यताओं का परीक्षण अन्य योग्यताओं की अपेक्षा काफी सहज है। प्रत्येक घटना में वास्तविकता यह है कि इस प्रकार की योग्यताओं को अधिक महत्त्व दिया गया। बुद्धि-परीक्षण द्वारा व्यक्ति की योग्यताओं का अर्थनिर्णय करने के लिए इस तथ्य को मस्तिष्क में रखना चाहिए।

बुद्धि-परीक्षणों के संबंध में स्मरण रखने योग्य दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे **तत्काल वर्त्तमान योग्यता का मापन** करते हैं, **जन्मजात क्षमता** (Native Capacity) का नहीं। व्यक्तियों को योग्यता अर्जन करने के विभिन्न अवसर प्राप्त होते हैं। गरीब लोगों को वैसे सांस्कृतिक और शैक्षणिक अवसर प्राप्त नहीं हैं, जैसे कि धनिक वर्ग को। इसके अतिरिक्त बुद्धि-परीक्षण में प्रयुक्त अनेक समस्याएँ सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की पूर्व कल्पना करती हैं। यदि समस्याएँ ऐसी वस्तुओं से संबंधित हैं, जैसे सेब, वाद्ययंत्र मोटरगाड़ी, बेसबॉल और रेलगाड़ी, तब एक ऐसा व्यक्ति, जो ऐसी संस्कृति में बढ़ा हुआ है, जहाँ ये वस्तुएँ नहीं थीं, तो निश्चित रूप से ऐसे परीक्षणों में वह पिछड़ा रहेगा यद्यपि उसकी स्वभावगत क्षमता सामान्य लोगों से अधिक है। किसी एक ही संस्कृति या एक ही शहर में बड़ा होकर एक व्यक्ति ऐसे बुद्धि-परीक्षणों में पिछड़ा रहता है, जो कि भिन्न संस्कृति के लोगों के लिए खोजे गए थे।

वे लोग जो परीक्षाओं का निर्माण करते हैं, वे जहाँ तक संभव हो, इस प्रकार के संस्कृतिपरक प्रभावों से उन्हें मुक्त रखने का प्रयत्न करते हैं, किंतु कोई भी शोध-

कर्त्ता बुद्धि-परीक्षणों के पूर्णतः संस्कृति-मुक्त रखने में सफल नहीं हुआ है। अतः, ये परीक्षण संस्कृति और शिक्षा की सामान्य पृष्ठभूमि को स्वीकार करते हैं। जब किसी व्यक्ति को यह पृष्ठभूमि सुलभ नहीं है या उसका उसे अभाव है, तब उसके बुद्धि-परीक्षण का परिणाम निकालना इन लोगों की तुलना में उचित नहीं है, जिनकी सामान्य पृष्ठभूमि है। फलस्वरूप बुद्धि-परीक्षण विभिन्न जातियों और सांस्कृतिक समूहों की योग्यताओं की तुलना करने के लिए प्रायः उपयोगी नहीं।

## बुद्धि की चरम सीमाएँ (Extremes of Intelligence) :

सारणी १४·२ में संयुक्त राज्य अमेरिका की साधारण जनता में प्राप्त वेशलर बुद्धि-भजनफल (I. Q. S.) के विभाजन को हमने प्रस्तुत किया था। सब प्राप्तांक सात कोटियों में स्वेच्छया वर्गीकृत किए गए थे। ७० से कम, ७०-७९, ८०-८९, ९०-१०९, ११०-११९, १२०-१२९ और १३० से अधिक। सुविधा के लिए इन वर्गों को लाक्षणिक नाम दिए गए थे जैसे—सामान्य, उच्च, आदि। जैसा कि हम थोड़ी देर बाद देखेंगे, प्रत्येक समूह की शैक्षणिक और वृत्तिक सफलताओं का हम कुछ पूर्व-कथन कर सकते हैं। दो चरमसीमा के समूह—जो ७० से कम और जो १३० से अधिक हैं—हमारे समाज की विशेष समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं।

## बुद्धि-दौर्बल्य (Feeble-Mindedness) :

जिनका बुद्धि-भजनफल ७० से कम है, वे बौद्धिक योग्यता की दृष्टि से हीन या विकारग्रस्त माने जाते हैं। बुद्धि-परीक्षणों के आधार पर हम देखते हैं कि जन-संख्या का दो और तीन प्रतिशत इस कोटि में आता है। मानसिक योग्यता की दृष्टि से हीन व्यक्तियों को तीन समूहों में विभाजित किया जाता था :—

१. क्षीण बुद्धि (Morons) बुद्धि-भजनफल ५०-७०
२. मूढ़ (Imbeciles), बुद्धि-भजनफल २०-५०
३. जड़ बुद्धि (Idiots) बुद्धि-भजनफल २० से कम।

यदि आपको स्मरण है कि बुद्धि-भजनफल वास्तव में मानसिक आयु से कालिक आयु तक का अनुपात है और वह मानसिक विकास, जैसा कि स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षण से मापा गया, १६ वर्ष की आयु के लगभग समाप्त हो जाता है, आप इन तीन समूहों की मानसिक आयु की सीमाओं का निर्धारण सुविधा से कर सकते हैं। क्षीण बुद्धि वालों की अंतिम मानसिक आयु ८ से १२ वर्ष है, मूढ़ व्यक्तियों की ३ से ७ वर्ष है और जड़ बुद्धि वालों की ३ वर्ष से कम (देखिए, सारणी १४·४)।

सारणी १४·४

| | क्षीण बुद्धि | मूढ़ | जड़-बुद्धि |
|---|---|---|---|
| बुद्धि-भजनफल | ५०-७० | २०-५० | २० से नीचे |
| अधिकतम आयु | ८-१२ | ३-७ | ३ से नीचे |
| बौद्धिक परिपक्वता की आयु | १५ | १०-१२ | ६-८ |
| अधिकतम सामाजिक आयु | १०-१८ | ४-९ | ४ से नीचे |
| सामाजिक परिपक्वता की आयु | २० | १५ | १० |

**सारणी १४·४ दुर्बल बुद्धि व्यक्तियों की बौद्धिक और सामाजिक परिपक्वता के स्तर।**

मानसिक रूप में हीन व्यक्तियों के लिए मानसिक विकास की इन सीमाओं को जान कर, आप स्वयं यह जान सकते हैं कि हीन लोगों की योग्यता कितनी है। जड़ बुद्धि व्यक्ति अपने संपूर्ण जीवन में ३ वर्ष के बच्चे के ही समान रहेगा। वह कभी भी ठीक से बात नहीं करेगा। यह भी संभावना है कि वह अपनी वेश-भूषा के कुछ भागों पर ध्यान नहीं देगा, जैसे कपड़ों के बटन बंद करना या जूते के फीते को बाँधना। उस पर कभी भी यह विश्वास नहीं किया जा सकेगा कि वह अपने को संकट से बचा कर रखेगा। वह स्कूल के अति सरल कार्य में या अन्य कार्य में भी प्रवीण नहीं होगा। वयस्क होते हुए भी मूढ़ व्यक्ति प्रथम या द्वितीय स्तर के बच्चे के ही सदृश रहता है। वह ठीक से बात कर सकेगा, ठीक से कपड़े पहनेगा और साधारण कौशल सीखेगा, लेकिन वह स्कूल की उच्च कक्षाओं से प्रशिक्षण में अधिक लाभान्वित नहीं होगा। क्षीण-बुद्धि कुछ अधिक अच्छा करेगा और चार से आठ कक्षाओं तक पढ़ सकेगा। वह पढ़ना और लिखना कठिनता से सीख सकेगा। वह साधारण वृत्ति को सीखने योग्य होगा और अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगा।

### सामाजिक परिपक्वता (Social Maturity) :

मानसिक रूप में हीन व्यक्तियों के मानसिक स्तर के ये वर्णन उसकी योग्यता का उचित विवरण नहीं देते। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि बुद्धि-भजनफल परीक्षण उन शाब्दिक कारकों को महत्ता देते हैं, जो शैक्षणिक सफलता में विशेषकर महत्त्वपूर्ण हैं, लेकिन दूसरे सांसारिक दैनिक कार्यों के लिए इतने महत्त्वपूर्ण नहीं होते। यदि कोई सूक्ष्मता से बुद्धि-भजनफल के साथ उच्च स्तरीय क्षीण बुद्धि व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन करे जैसे ६५ से ७० का, तब वह उनमें अत्यधिक व्यक्तिगत अंतर देख सकता है। कुछ अपनी देखभाल दूसरों की अपेक्षा अधिक कर सकते हैं।

कुछ व्यक्ति कार्य और सामाजिक परिस्थितियों में दूसरों की अपेक्षा पर्याप्त अधिक बुद्धिमान दिखायी देते हैं।

इसीलिए एक मनोवैज्ञानिक ने एक अन्य माप-सारणी 'ब्राउनलैंड सामाजिक परिपक्वता माप-सारणी' का आविष्कार किया, जो शाब्दिक बुद्धि की अपेक्षा सामाजिक और व्यावसायिक बुद्धि को अधिक महत्त्व देती है (डॉल, Doll 1936) यह माप-सारणी सामाजिक आयु (S. A) को स्वीकार करती है, जिसकी तुलना स्टेन-फोर्ड-बीने परीक्षण की मानसिक आयु से की जा सकती हैं। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह माप-सारणी विभिन्न सामाजिक योग्यताओं को तुलना के मानक रूप में स्वीकार करती है, जैसे चम्मच से खाना, बिना किसी की सहायता से मुख धोना, रुपयों के संबंध में विश्वास करना, अपने घर को खोजने योग्य होना आदि। इस प्रकार के कार्यों में बच्चे को परख कर, मनोवैज्ञानिक उसी प्रकार प्रत्येक बच्चे की सामाजिक आयु को उसकी मानसिक आयु के सदृश ही निर्धारित करता है।

यद्यपि स्टेनफोर्ड-बीने और वाइंनलैंड माप-सारणी विभिन्न योग्यताओं का मापन करती हैं, फिर भी इसमें आश्चर्य नहीं है कि वे भली-भाँति सहसंबंधित नहीं हैं। सामान्य रूप में मानसिक दृष्टि से हीन व्यक्ति की अंतिम सामाजिक आयु मानसिक आयु की तुलना में अधिक है (देखिए, सारणी १४·४)। क्षीण बुद्धि वालों के लिए यह १० से १८ वर्ष है, मूढ़ व्यक्तियों के लिए ४ से ९ और जड़ बुद्धि वालों के लिए ४ वर्ष से कम। फिर भी सामाजिक विकास प्रायः मानसिक विकास की अपेक्षा अधिक दीर्घ होता है (जैसा कि स्टेनफोर्ड-बीने द्वारा परीक्षण हुआ है)।

सामाजिक आयु और मानसिक आयु के बीच के इस अंतर ने मनोवैज्ञानिकों को मानसिक हीनता और दुर्बल मस्तिष्क के बीच भेद करने में समर्थ बनाया। मानसिक हीनता को बुद्धि-परीक्षण प्राप्तांकों के रूप में प्रकट किया गया। मानसिक दुर्बलता अधिक सामान्य रूप है, जिसमें व्यक्ति की अपनी देखभाल की संपूर्ण योग्यता और संसार में समायोजन करने का उल्लेख है। इसलिए इसमें व्यक्ति के मानसिक और सामाजिक विकास दोनों ही आ जाते हैं। अनेक उदाहरणों में दोनों का वास्तविक अंतर स्पष्ट है। दुर्बल बुद्धि व्यक्ति में सामाजिक विकास मानसिक विकास से प्रायः अधिक है, व्यक्ति की हीन अवस्था उतनी बुरी नहीं है जैसा कि केवल बुद्धि-भजनफल प्राप्तांकों से स्पष्ट होता है।

## बुद्धि-दौर्बल्य का उपचार (Treatment of Feeble-Mindedness) :

बुद्धि-दौर्बल्य हमारे समाज में स्पष्ट रूप से कुछ अनुपात की एक समस्या है। लाखों दुर्बल बुद्धि बच्चे और वयस्क संपूर्ण देश में विशेष संस्थाओं में निरंतर भरती किए जाते हैं। हजारों घरों में रहते हैं, जो अपने परिवार और मित्रों पर बोझ

बने हैं। ये सभी—उन कार्यों में, जिन्हें वे कर सकते हैं, जैसा कि जीवन वे व्यतीत कर सकते हैं, में—पिछड़े रहते हैं। दुर्बल बुद्धि के लिए क्या किया जा सकता है ?

अच्छी तरह से शिक्षित माँ-बाप जो इस सत्य से परिचित हैं कि उनका बच्चा मानसिक रूप से दुर्बल है, यह सोचते हैं कि बच्चे के बुद्धि-भजनफल को विकसित करने के लिए कुछ करना चाहिए। समाचारपत्रों और पत्रिकाओं में प्रकाशित नाटकीय कहानियाँ कभी-कभी इसे स्पष्ट करती हैं; क्योंकि वे यह प्रकट करती हुई दिखायी देती हैं कि दुर्बल बुद्धि बच्चे के लिए काफी प्रयत्न करने की संभावना है। यह संभावना अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में सावधानी से खोजी गई, लेकिन दुर्भाग्यवश यह संभावना सफल होती दिखायी नहीं दी (गुडएनफ, १९४९)। विशेष प्रशिक्षण से बुद्धि-भजनफल में और सामाजिक बुद्धि में थोड़ा-सा परिवर्तन होता है, लेकिन यह नाटकीय परिवर्तन बहुत कम होता है। ( अपवाद के लिए २०वें अध्याय में तड़वामनता के विवेचन में देखिए ) अधिकांश उदाहरणों में बुद्धि-दौर्बल्य शायद क्षमता या योग्यता का विषय है और विकारग्रस्त बालक की मानसिक एवं सामाजिक योग्यता में कुछ थोड़ा-सा ही परिवर्तन कर सकता है। जो लोग सोचते हैं कि योग्यता में अधिक वृद्धि हो सकती है, वे प्रायः अपने को धोखा देते हैं।

दूसरी ओर अनेक दुर्बल बुद्धि वालों की सीमित योग्यता के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। अधिकांश दुर्बल मस्तिष्क वाले व्यक्तियों की क्षीण बुद्धि उच्च स्तर की होती है ( करीब ७० प्रतिशत ) और कुछ निम्न स्तर के जड़-बुद्धि वाले होते हैं ( करीब १० प्रतिशत)। चाहे जो भी स्तर हो, प्रशिक्षण दीर्घ और कठिन हो सकता है, किंतु यह बालक की योग्यता से संबंधित है, तो इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। धीरे-धीरे उसे कुछ सामाजिक कौशल सिखाए जा सकते हैं, जैसे अपने-आप को स्वच्छ रखना, घर के दायित्वों में सहायता करना और अन्य अनेक छोटे-छोटे कार्यों को करना, ताकि वह दूसरों पर भारस्वरूप न बना रहे। यदि उसका विकार अधिक गंभीर नहीं है, तो उसे कुछ व्यावसायिक कौशल सिखाए जा सकते हैं, जैसे बढ़ई का कार्य, छपाई और बुनाई। दुर्बल बुद्धि वालों के लिए अच्छी संस्थाओं में सुविधाएँ रहती हैं और सामाजिक तथा वृत्तिक कौशल के प्रशिक्षण के लिए शिक्षक रहते हैं तथा प्रति वर्ष वे ऐसे हजारों लोगों को समाज में भेजते हैं, जो अपनी जीविका चलाने योग्य होते हैं एवं अपनी देखभाल अच्छी तरह से करते हैं।

### बुद्धि-दौर्बल्य के कारण (Causes of Feeble-Mindedness) :

कुछ मनोवैज्ञानिकों की ऐसी धारणा है कि वे बुद्धि-दौर्बल्य के लिए उपचार खोज सकते हैं। अनुसंधानकर्त्ताओं ने इस दिशा में कार्य करने के लिए वास्तव में

प्रयास किए हैं और अनुसंधान अभी हो भी रहा है ( देखिए, अध्याय—२० )। उपचार खोजने की संभावना बुद्धि-दौर्बल्य के कारणों पर निर्भर है। यद्यपि आंशिक रूप में इन कारणों को समझ लिया गया है, फिर भी इनके विषय में हमें अभी पर्याप्त जानकारी प्राप्त करनी है।

क्रियागत एवं अंगगत या आंगिक मनोविक्षिप्ति ( अध्याय—५ ) के सदृश ही बुद्धि-दौर्बल्य की दो सामान्य कोटियाँ हैं। एक क्रियागत के अनुरूप है और 'प्राथमिक या पारिवारिक बुद्धि-दौर्बल्य' ( Primary or Familiar Feeble-Mindedness ) कहलाती है। इस उदाहरण में हम कोई भी आंगिक विकृति नहीं खोज सकते, न ही चोट या बीमारी के प्रमाण मिलते हैं, जो कि बुद्धि-दौर्बल्य के कारण हैं। बुद्धिहीनता के अतिरिक्त व्यक्ति हर प्रकार से काफी स्वस्थ दिखायी देता है। इस प्रकार के उदाहरणों में हम प्रायः परिवार के अन्य सदस्यों में बुद्धि-दौर्बल्य के कुछ वृत्त खोजते हैं, इसीलिए यह प्रायः पारिवारिक कहलाते हैं। आंशिक रूप में बुद्धि आनुवंशिक है ( देखिए, अध्याय—२ और नीचे ), और हमारा अनुमान है कि जिसकी दुर्बल बुद्धि है—बौद्धिक और सामाजिक दोनों ही, वह दुर्बल बुद्धि लोगों से उत्पन्न बालक ही होगा।

दूसरी प्रकार का बुद्धि-दौर्बल्य जैविक विकार के कारण है। यह गौण बुद्धि-दौर्बल्य कहलाता है। कुछ स्थितियों में बालक का मस्तिष्क गर्भावस्था में आक्सीजन की अत्यधिक कमी से ग्रस्त हो जाता है और यह बुद्धि-दौर्बल्य का कारण बन जाता है। कुछ स्थितियों में बालक का मस्तिष्क प्रसव की असुविधा से विकृत हो जाता है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क में होने वाली प्रतिक्रियाओं से कुछ रासायनिक दोष भी उत्पन्न होते हैं ( देखिए, अध्याय—२० ) गौण बुद्धि-दौर्बल्य के कुछ उदाहरणों में हमने शल्य-चिकित्सा, औषधियाँ या अन्य कारक खोजे हैं, जो स्थिति को ठीक या शमित कर सकते हैं। इस समस्या का उत्तर देने के लिए अनुसंधान-कार्य निरंतर हो रहा है और इसकी संभावना है, यद्यपि इस पर पूर्णतः विश्वास नहीं है कि हम ऐसे साधनों को खोज सकेंगे, जिनसे प्राथमिक और गौण बुद्धि-दौर्बल्य को सहायता मिलेगी।

### प्रतिभासंपन्न व्यक्ति ( The Mentally gifted ) :

भजनफल के विभाजन के शिखर पर अति श्रेष्ठ (१३०-१४०) और प्रतिभासंपन्न ( १४० से अधिक ) व्यक्ति हैं। यह देखना बड़ा ही रोचक है कि ये लोग समाज में क्या महत्त्वपूर्ण योग देते हैं और उनकी समस्याएँ क्या हैं—उनकी असाधारण समस्याएँ अवश्य होती हैं। मनोवैज्ञानिकों ने प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों का अध्ययन तीन प्रकार से किया है : (१) उन प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों की बुद्धि का

आकलन करके जो अनेक वर्ष पहले थे (२) किशोरावस्था में प्रतिभासंपन्न बच्चों की उपलब्धियों का अनुसरण करके और (३) स्कूल में तीव्र बुद्धि बालकों की समस्याओं का अध्ययन करके।

## प्रतिभासंपन्न नेता और लेखक (Gifted Leaders and Writers) :

विश्वसनीय आकलन के लिए कुछ इतिहासप्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन के विषय में पर्याप्त अभिलेखन हो चुका है, जो यह प्रमाणित कर सकता है कि यदि स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षण काल में जीवित रहते, तो उनका बुद्धि-भजनफल क्या होता ? यदि हम यह जानते हैं कि बच्चा किस आयु में पढ़ना प्रारंभ करता है, कब उसने अपनी शब्दावली में कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग किया, कब उसने गणित के कुछ प्रश्नों को पूर्णतः सीखा आदि, आदि। हम इन उपलब्धियों की स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षण से तुलना कर सकते हैं।

ऐसे प्रयोग अनेक व्यक्तियों के संबंध में किए गए हैं। सारणी १४.५ में उनके नाम एवं अनुमानित बुद्धि-भजनफल हैं। उस सूची में इतिहास के सभी बड़े आदमियों के नाम नहीं हैं; क्योंकि हमारे पास उनकी जीवन-संबंधी यह दत्त-सामग्री पर्याप्त नहीं है। फिर भी यह सीधी-सी बात है कि जिन व्यक्तियों ने हमारे साहित्य और हमारी सभ्यता में प्रचुर योगदान दिया है, उन्हें तीव्र बुद्धि होने का वरदान मिला है।

## टरमैन के प्रतिभासंपन्न बच्चे (Terman's Gifted Children) :

स्टेनफोर्ड-बीने-परीक्षण के लेखक टरमैन द्वारा ३५ वर्ष से अधिक किया गया विस्तृत अध्ययन इससे अधिक सूचनात्मक है। टरमैन और उनके साथियों ने हजारों बच्चों का परीक्षण करके ऐसे १५०० से अधिक बच्चों के समूह को उच्चतर अध्ययन के लिए चुना, जिनका बुद्धि-भजनफल १४० या उससे अधिक था। एक प्रतिशत बच्चों में भजनफल सर्वाधिक था। अपनी मृत्यु १९५६ ई० तक टरमैन इन बच्चों में से अधिकांश को किशोरावस्था तक समझने में समर्थ रहे और इनमें से अनेक अब प्रौढ़ावस्था में हैं। वे समय-समय पर उनको प्रश्नावली भेजा करते थे या खोज लेते रहते थे कि वे क्या करते थे और इस तरह से उन्होंने उनके कार्यों का एक लंबा विवरण तैयार किया था। टरमैन के कुछ साथी अब तक इन प्रतिभासंपन्न बच्चों का अनुवर्त्ती अध्ययन (Follow up Study) कर रहे हैं।

इनके विषय में रोचक बात उनके परिवार हैं, जिनसे वे आते हैं। इनमें से एक तिहाई के करीब वृत्तिक व्यक्तियों के बच्चे हैं, लगभग आधे उच्च व्यापारिक घरों से आते हैं और केवल अल्प संख्या में (सात प्रतिशत) कर्मचारी वर्ग के होते हैं। प्रत्येक वर्ग में लोगों की संख्या से इसका अनुपात अनियमित है और यह निर्देशित

करता है कि अपेक्षाकृत अधिक प्रतिभासंपन्न बालक उच्चतर आर्थिक समाज के वर्गों से आते हैं (नीचे देखिए) । । यह तथ्य आनुवंशिकता और पर्यावरण दोनों दृष्टियों से निस्संदेह विचारित है । ये वर्ग बौद्धिक योग्यता के विकास के लिए अधिक अच्छा पर्यावरण प्रस्तुत कर सकते हैं और चूँकि अधिक सफल व्यक्ति अधिक प्रतिभासंपन्न होते हैं, वे इस प्रकार की प्रतिभासंपन्नता को आनुवंशिकता के माध्यम से अपने बच्चों को देने में समर्थ हैं ।

वास्तव में टरमैन के प्रतिभासंपन्न बच्चों की बाद की सफलता उनके अध्ययन की दूसरी महत्त्वपूर्ण खोज है । मूल अध्ययन के करीब ७०० लोगों को २५ वर्ष बाद मिल गया ।

इनमें से करीब १५० अति सफल थे, जैसा कि इस निष्कर्ष से प्रमाणित होता है जैसे कि (१) जिनका नाम '**Who's Who**' या 'American Men of Science' में है (२) जो दायित्वपूर्ण मैनेजर के पद पर हैं (३) जिनको विशिष्ट बौद्धिक और वृत्तिक कार्यों के लिए मान्यता प्राप्त हुई है। दूसरों में से अधिकांश की विशिष्टता न्यून है, लेकिन फिर भी औसत बुद्धि के लोगों से अपेक्षाकृत बहुत अधिक सफल हैं । दूसरी ओर कुछ ऐसे थे, जो निश्चित रूप में अधिक सफल नहीं थे । कुछ वे थे, जिन्होंने अपराध किया था । कुछ ऐसे थे, जिन्होंने जल्दी ही स्कूल में पढ़ना छोड़ दिया था । कुछ वे थे, जो स्पष्टतः वृत्ति के लिए अयोग्य थे और अनेक नौकरियों में असफल रहे थे । सफल लोगों की कम सफल लोगों से सावधानी से की गई तुलना यह प्रदर्शित करती है कि व्यक्तित्व में कुछ कारक अंतर उपस्थित करते हैं । जिन्हें सबसे कम सफलता मिलती है, वे संवेगात्मक रूप में बहुत कम समंजित थे और सफल होने के लिए अति कम अभिप्रेरित थे । अपवाद होने पर भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण

तथ्य था कि उत्कृष्ट योग्यतासंपन्न बच्चे सामान्यतया सामाजिक और बौद्धिक कामों में महत्त्वपूर्ण रिकार्ड प्रस्तुत करते हैं।

प्रतिभाशाली व्यक्तियों के संबंध में सामान्य भ्रांत धारणाओं के विपरीत टरमैन के प्रतिभाशाली बच्चे लंबाई, वजन और शारीरिक आकृति में औसत से अधिक श्रेष्ठ होते थे। सामान्यत: वे अधिक अच्छी तरह समंजित होते थे और सामाजिक रूप में अधिक अनुकुलनीय थे एवं औसत बच्चों की अपेक्षा उनमें नेतृत्व करने की क्षमता अधिक थी। इस तरह टरमैन ने इस विचार को गलत साबित किया कि प्रतिभाशाली लोगों के विचित्र कुसमंजित और सामाजिक रूप में पिछड़े हुए होने की संभावना है। हाँ, कुछ प्रतिभाशाली ऐसे होते हैं—और ऐसे ही कुछ औसत लोग भी होते हैं—लेकिन सामान्यत: प्रतिभाशाली व्यक्ति औसत बौद्धिक योग्यता वालों से अपेक्षाकृत श्रेष्ठतर होते हैं।

सारणी—१४·५

जैविक दत्त सामग्री के आधार पर कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों का अनुमानित बुद्धि-भजनफल (कॉक्स, १९२६)

| | |
|---|---|
| जॉन क्विनसी एडम्स | १६५ |
| फ्रांसिस बेकन | १४५ |
| सेमुएल टेलर कॉलरिज | १७५ |
| रेने डेकार्टेज | १५० |
| चार्ल्स डिकन्स | १४५ |
| बेंजामिन फ्रेंकलिन | १४५ |
| जोहान वुल्फगांग वोन गोथे | १८५ |
| जॉर्ज फ्रेडरिक हाडेल | १४५ |
| डेविड ह्यूम | १५५ |
| थामस जेफरसन | १४५ |
| गाट फ्राइड विलहेल्म वोन लिबनीट्ज | १८५ |
| जॉन स्टुआर्ट मिल | १९० |
| जॉन मिल्टन | १४५ |
| वुल्फगांग एमाडस मोजार्ट | १५० |
| अल्फ्रेड टेनीसन | १५५ |
| डेनिअल वेब्स्टर | १४५ |
| विलियम वर्ड्सवर्थ | १५० |

## प्रतिभासंपन्न बच्चों की समस्याएँ (Problems of the gifted) :

प्रतिभासंपन्न बच्चा अनेक कठिनाइयों का सामना करता है, फिर भी जो कुछ हमने कहा है—सत्य है; क्योंकि वह तीव्र बुद्धि है, संभवतः वह अपनी आयु के बच्चों से ऊब जाता है, शायद वह बड़े बच्चों एवं वयस्कों का साथ खोजता है और उन्हें बौद्धिक प्रश्नों से परेशान करता है। सार्वजनिक स्कूलों में, जिनमें से अधिकांश सामान्य बच्चों के लिए बनाए गए हैं, उसकी समस्या अत्यधिक गंभीर है; क्योंकि उसकी बौद्धिक योग्यता और कार्य उसी की आयु के बच्चों से कहीं अधिक हैं। उसके अतिरिक्त वह प्रायः एक ऐसे शिक्षक द्वारा पढ़ाया जाता है, जो प्रतिभा से बहुत दूर है और वह बच्चे के ज्ञान से या प्रश्न-समाधान की योग्यता से बराबरी करने में प्रायः असमर्थ है।

**चित्र १४·५ प्रतिभासंपन्न बच्चों को विशिष्ट शिक्षा-योजनाओं में भाग लेने के लिए उत्साहित किया जा सकता है। कुछ स्कूलों में बच्चों को नियमित शिक्षा-प्रणाली के बोझ से मुक्त करके उनकी प्रतिभा को, विशिष्ट योजनाओं के अनुसार वैज्ञानिक निर्देशन (एगनेर, मांकमायर के अनुसार) और टाइपराईटिंग (हंटर कालेज एलिमेंटरी स्कूल)—जैसे कार्य करके, विकसित किया जाता है।**

जो शिक्षक अति योग्यता वाले बच्चे का सामना करते हैं, वे संभवतः उसे नौसिखिया, अप्रिय, अभिमानी और आत्मप्रदर्शन करने वाला समझते हैं। अतः, वे

प्राय: उससे कठोर व्यवहार करते हैं। अति तीव्र बुद्धि वाला बालक सामान्य शिक्षा की गति को इतना मंद और सरल समझता है कि वह ऊब जाता है और कक्षा की क्रियाओं में रुचि खो देता है। तब वह व्यक्तित्व की दृष्टि से समस्या बन सकता है और स्कूल-शिक्षक के लिए वास्तविक खोज का विषय बन जाता है। हाँ, कुछ सार्वजनिक स्कूल प्रतिभासंपन्न बच्चे की समस्याओं के लिए उपयुक्त हैं और कुछ और भी ऐसे ही बन रहे हैं। जो अच्छे शिक्षक होते हैं, वे शीघ्र ही खोज लेते हैं कि बच्चे का बुद्धि भजनफल (IQ) कितना है और प्रतिभासंपन्न बच्चे के लिए उपयुक्त कार्य देने का प्रयास करते हैं (देखिए, चित्र—१४·५)। कुछ उदाहरणों में प्रतिभासंपन्न बच्चों को उन्हीं के द्वारा उन विशेष कक्षाओं में रखा जाता है, जिनमें वे अधिक लाभ उठा सकते हैं और उनकी योग्यताओं के अनुकूल कार्य दे सकते हैं। अन्य स्थितियों में विशेष अतिरिक्त कार्यों की योजना प्रतिभासंपन्न बच्चे के लिए बनायी जाती है।

### योग्यताओं में समूहगत अंतर (Group-differences in Abilities) :

विभिन्न समूहों के लोगों की योग्यता के संबंध में प्रतिदिन के विचार विभिन्न धारणाओं से रंजित होते हैं। अनेक लोग यह समझते हैं कि नीग्रो और विदेशी उतने बुद्धिमान नहीं होते, जितने कि गोरे अमेरिकन होते हैं। हम बड़े लोगों को छोटे लोगों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान समझते हैं, चाहे उनमें फुर्ती न हो। नियोक्ता स्त्रियों को और किशोर व्यक्तियों को कुछ विशेष नौकरियों के लिए योग्य समझते हैं और पुरुषों तथा प्रौढ़ व्यक्तियों को कुछ अन्य नौकरियों के लिए। हम यह समझते हैं कि वे लोग जो उच्च आर्थिक वर्ग के 'अच्छे परिवारों' से आते हैं, इन लोगों की अपेक्षा अधिक योग्य होते हैं, जो कि कर्मचारी वर्ग से आते हैं।

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान वास्तव में यह निर्देशित करते हैं कि विभिन्न समूह के लोगों में भिन्नता होती है, लेकिन ये भिन्नताएँ प्राय: वैसी नहीं हैं, जैसी कि साधारण व्यक्ति सोचता है या ऐसी अधिक नहीं है, जैसी कि वह समझ सकता है। दूसरे अध्यायों में (अध्याय, १६ और १७), हम संस्कृति और अभिवृत्तियों में जो भिन्नता है, उसका वर्णन करेंगे। यहाँ हम देखेंगे कि बौद्धिक योग्यताओं में भिन्नता के तथ्य क्या हैं।

### पुरुषों और स्त्रियों के मध्य भिन्नता ( Differences Between Men and Women) :

हमारे समाज में स्त्री-पुरुषों में कार्य का विभाजन है। आदमियों से यह आशा की जाती है कि वे जीविका के लिए अर्जित करें; स्त्रियों से आशा की जाती है कि वे घर की देखभाल करें—यद्यपि नई पीढ़ी में रूप कुछ बदल रहा है। अन्य संस्कृतियों में स्त्री-पुरुषों का आर्थिक कार्य कभी-कभी इसके विपरीत होता है। इस अकेले तथ्य को हमें पुरुष और स्त्री के मध्य क्षमता में अधिक वंशगत भिन्नता

के लिए जिज्ञासु बनना चाहिए। दूसरी ओर, यह सत्य है कि कला और विज्ञान में तथा व्यापार और उद्योग में अधिकांश नेतृत्व करने वाले पुरुष ही हैं। इन क्षेत्रों में कोई प्रसिद्ध स्त्री का होना नियम का एक अपवाद है। क्या हम इससे यह मान सकते हैं कि पुरुष स्त्रियों से अधिक बुद्धिमान होते हैं? जबकि मनोवैज्ञानिकों ने पुरुष और स्त्री दोनों पर ही हजारों प्रकार के बुद्धि-परीक्षण किए हैं, परिमाणात्मक रूप में इस प्रश्न का उत्तर देना सहज है।

### स्त्रियों की योग्यताएँ (Abilities of Women) :

बात करने की योग्यता में स्त्रियाँ प्रसिद्ध हैं--और वे उसके योग्य हैं। औसतन लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा कम आयु में बोलना सीख लेती हैं। बाद में जब बुद्धि-परीक्षण होता है, वे सभी परीक्षणों में भाषा के प्रयोग में अच्छा करती हैं। इस तरह से शाब्दिक योग्यताओं में वे पुरुषों से श्रेष्ठ हैं। इसी से संबंधित यह तथ्य है कि वे प्रायः सामाजिक संबंधों के विषय में बेहतर होती हैं (जॉनसन और हरमैन, १९४०)।

लड़कियाँ अन्य दो प्रकार की योग्यताओं में भी श्रेष्ठतर होती हैं : किसी वस्तु के विस्तार को वे शीघ्र और यथार्थ रूप में देखती हैं और शीघ्र, अपेक्षित शारीरिक चेष्टाएँ करती हैं। आंशिक रूप में, इस तथ्य के लिए यह माना जा सकता है कि व्यापार और उद्योग में नियुक्त अनेक स्त्रियाँ क्लर्की और सेक्रेटरी का कार्य करती हैं, और इसलिए भी कि उन्होंने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अनेक प्रकार के औद्योगिक कार्यों में अच्छा रेकार्ड बनाया है। स्त्रियों के पास पुरुषों की अपेक्षा तुरंत स्मरण शक्ति दिखायी देती है। आप स्मरण करेंगे कि स्टेनफोर्ड-बीने में प्रत्येक आयु-स्तर के लिए परीक्षणों की श्रृंखला (Series) है, जो अंकों और शब्दों की श्रृंखला के लिए तुरत स्मरणशक्ति का अनुमापन करती है। सामान्यतः इन विषयों में स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अच्छी होती हैं।

### पुरुषों की योग्यताएँ (Abilities of Men) :

स्टेनफोर्ड-बीने परीक्षण के आधार पर लड़के उन विषयों में लड़कियों से आगे बढ़ जाते हैं, जिनमें स्थानीय संख्यात्मक और यांत्रिक कार्य निहित रहते हैं। इसी से संबंधित यह तथ्य है कि वे उन कार्यों के अधिक अच्छा करते हैं, जिनका संबंध स्थानीय संबंधों के प्रत्यक्षज्ञान, यांत्रिक औजारों और मशीनों की समझ एवं गणितीय योग्यता से है। लड़के संख्याओं और संख्यात्मक तर्क कार्यों को करने में अधिक अच्छे होते हैं।

### स्त्री-पुरुष की भिन्नताओं का अर्थनिर्णय करना :

हम देखते हैं, कि स्त्री-पुरुष की कुछ विशेष योग्यताओं में महत्वपूर्ण भिन्नता है। इस निर्णय का आधार योग्यता-परीक्षणों का सावधानी से किया गया विश्लेषण

है, जो स्त्री और पुरुष-संबंधी योग्यताओं में अंतर की प्रसिद्ध अवधारणाओं के अनुकूल हैं।

तब यह प्रश्न उठता है कि यह भिन्नता कैसे उत्पन्न होती है—प्रशिक्षण द्वारा या प्रकृति द्वारा ? इसका उत्तर देना कठिन है, चूँकि विशिष्ट योग्यताओं के विकास से आनुवंशिक और पर्यावरण के प्रभाव को अलग करना अति कठिन है। यह संभव दिखायी देता है कि बुद्धि-परीक्षणों द्वारा परिमापित कुछ भिन्नताएँ प्रशिक्षण और पर्यावरण के कारण ही हैं, जैसा कि हम देखेंगे, ये प्रभाव बुद्धि-परीक्षणों द्वारा परिमापित योग्यताओं पर निश्चित रूप से असर करते हैं।

लिगानुसार योग्यताओं का अर्थनिर्णय करने के लिए दो अन्य महत्त्वपूर्ण कारक विचारणीय हैं। एक यह है कि जितनी भी भिन्नताएँ हम परिमापित करते हैं, समूहों की 'सामान्य' भिन्नताएँ हैं। निरपेक्ष रूप से यदि सामान्य भिन्नताओं पर विचार किया जाए, तो वे हमें यह नहीं बताती हैं कि अमुक लड़के और लड़की की योग्यता की तुलना कैसे की जा सकती है। लड़के या लड़की की योग्यता में विविधता है, जो दो विभाजनों के मध्य परस्पर पर्याप्त विस्तार उत्पन्न करती है। उदाहरण के रूप में भाषा-योग्यता के परीक्षणों में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के औसत प्राप्तांक उच्च होते हैं। दो समूहों के प्राप्तांकों के विभाजन पर दृष्टिपात करने पर हम जानते हैं कि औसत लड़कियों की अपेक्षा जो ५० प्रतिशत लड़कियों से उच्च हैं, करीब ४० प्रतिशत लड़के उच्च अंक प्राप्त करते हैं। अतः, समूहों के 'मध्य' औसत भिन्नताएँ समूहों 'में' भिन्नता की तुलना में कम हैं। किसी भी दो व्यक्ति-समूहों के मध्य भिन्नता का अर्थनिर्णय करने के लिए यह महत्त्वपूर्ण कारक हैं।

अंत में बुद्धि में लड़कों की तुलना करते समय यह भी याद रखना चाहिए कि औसत बुद्धि में दोनों समान हैं। अर्थात पुरुष और स्त्री का औसत बुद्धि-भजनफल एक ही है। वास्तव में बुद्धि-परीक्षण इस प्रकार नियोजित रहते हैं कि दोनों समान रहें। अतः, वे योग्यताएँ जिनमें स्त्रियाँ आगे रहती हैं, उन योग्यताओं द्वारा प्रति-संतुलित रहती हैं जिनमें पुरुष-स्त्रियों से आगे रहते हैं। इस प्रकार स्त्री-पुरुष के मध्य भिन्नता केवल विशिष्ट योग्यताओं तक सीमित रहती है, अतः जिसे हम 'बुद्धि' कहते हैं, वह विशिष्ट और सामान्य योग्यताओं का मिश्रण नहीं है।

## योग्यता में आयु का अंतर (Age-Differences in Ability) :

आजकल संयुक्त राज्य अमेरिका में जनसंख्या में परिवर्तन हो रहा है और वह प्रौढ़ व्यक्तियों की बुद्धि के परिशुद्ध मूल्यांकन की अपेक्षा करता है। हम लोग प्रौढ़ व्यक्तियों का राष्ट्र बन रहे हैं। उदाहरण के लिए १८३० में जनसंख्या की माध्यिका आयु १७·२ वर्ष थी। १९५८ में माध्यिका आयु २९·५ तक बढ़ गई है अब ४५ वर्ष की आयु से अधिक व्यक्ति जनसंख्या का २९ प्रतिशत अंश हैं और जो ६० वर्ष से

अधिक हैं वे १३ प्रतिशत। अतः, यह जानना रुचिकर है कि जैसे-जैसे हम बढ़ते हैं, विभिन्न प्रकार की योग्यताओं में क्या परिवर्तन होते हैं।

आयु के साथ योग्यता में परिवर्तन के विषय में जो अत्यधिक सामान्य विवरण हम दे सकते हैं, वह जैसे-जैसे व्यक्ति प्रौढ़ता की ओर बढ़ता है, उसकी सभी योग्यताएँ चरम सीमा तक बढ़ती हैं, फिर उनका पतन होने लगता है। ठीक जहाँ पर चरम सीमा होती है और कितनी तेजी से योग्यताओं का पतन होता है, यह परीक्षण पर निर्भर करता है। यह इस समस्या पर किए गए अध्ययन के दो उदाहरणों से स्पष्ट है :

वयस्क और युवा दोनों शब्दावली तथा सामान्य सूचना परीक्षाओं को भली-भाँति करते हैं, किंतु जिन परीक्षाओं में गति और नवीन समस्याएँ निहित हैं, उनका वे अच्छी तरह नहीं कर पाते।
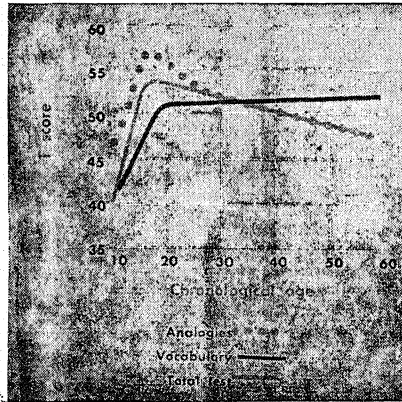
चित्र १४.६ मानसिक योग्यता का आयु से संबंध। (जोंस तथा कोनराड, १९३३)।

न्यू इंगलैंड के गाँव के एक समूह में दस से साठ वर्ष की आयु के सभी निवासियों पर पर्याप्त परीक्षण के पश्चात् सैद्धांतिक अध्ययन किया गया। जो परीक्षण किया गया, वह आर्मी एल्फा था। आर्मी एल्फा की विभिन्न उप-परीक्षाओं का विश्लेषण विभिन्न योग्यताओं को वर्गीकृत करने के लिए किया गया। दो योग्यताओं का परीक्षण परिणाम और साथ ही संपूर्ण परीक्षण के परिणाम चित्र, १४·६ में दिखाए गए हैं। इस चित्र में प्रमुख रेखा यह प्रदर्शित करती है कि आर्मी एल्फा द्वारा परिमापित सामान्य मानसिक योग्यता १६ से २० वर्ष की आयु के मध्य चरम सीमा पर पहुँच जाती है और तब धीरे-धीरे पतन की ओर आती है। उप-परीक्षाएँ बताती हैं कि सब योग्यताएँ इस प्रकार की नहीं होती हैं। उदाहरण के लिए शब्दावली के परीक्षण, जो पूर्व शाब्दिक अधिगम को महत्ता देते हैं, स्वीकृतिजन्य

महत्त्वपूर्ण पतन को प्रदर्शित नहीं करते हैं। सम्मानुमानों ( Analogics ) के उप-परीक्षण जो तर्कना (Reasoning) को महत्ता देते हैं, ठीक चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं। पहले उनकी तीव्र अवनति होती है, फिर मंद गति से।

दूसरे अत्याधुनिक अध्ययन में जो कि वेशलर वयस्क बुद्धि माप-सारणी के लिए आयु-समूहों द्वारा प्रतिमान देने के लिए निर्मित हुआ है, हम प्रायः ऐसे ही परिणाम देखते हैं, यद्यपि इसमें बुद्धि की चरम सीमा देर से पहुँचती है—३० वर्ष के आसपास (देखिए, चित्र १४·७)। क्योंकि वे व्य० वु० सा० (WAIS) भिन्न कार्य और शाब्दिक बु० भ० (आइक्यू) देती है। अतः, बुद्धि के इन दो रूपों का अलग-अलग विश्लेषण हो सकता है। इससे यह फल निकलता है कि 'कार्य-निष्पादन बुद्धि' (Performance Intelligence) की चरम सीमा सबसे पहले २४-२५ वर्ष की आयु में होती है और 'शाब्दिक बुद्धि' ३२-३३ वर्ष की आयु में होती है। और चरम-सीमा पर पहुँचने के पश्चात् कार्य-निष्पादन बुद्धि शाब्दिक बुद्धि की अपेक्षा शीघ्रता से कम होती है, जो प्राचीन दृष्टिकोण के अनुकूल है।

वेशलर की वयस्क बुद्धि माप-सारणी के अनुसार सामान्य मानसिक योग्यता पराकाष्ठा पर २५ से ३० वर्ष की आयु पर पहुँचती है, उसके बाद वह कम होने लगती है।
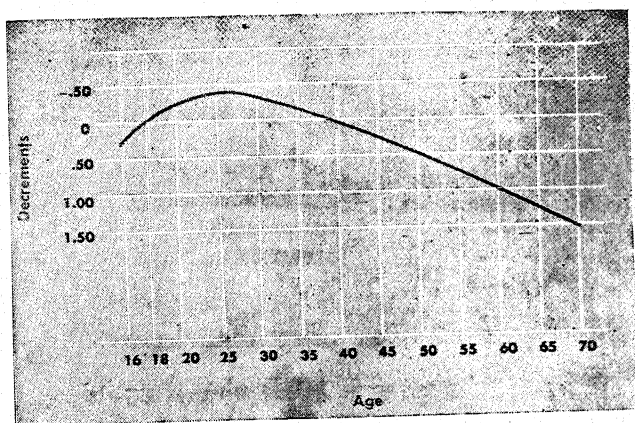
**चित्र-१४.७ आयु के साथ बुद्धि-परीक्षा अंकों का परिवर्तन। साठ वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति और सात वर्ष से कम आयु के व्यक्ति भिन्न प्रतिदर्शों से लिए थे (वेशलर के अनुसार, १९५५)।**

इस प्रकार के सभी अध्ययनों में निश्चित धारणा के लिए हमें असुविधा इसलिए होती है कि विभिन्न आयु-स्तरों पर प्रतिदर्श तुलनात्मक होते हैं; क्योंकि वे

अभिनत हो सकते हैं, जैसे किशोर तीव्र बुद्धिवाले व्यक्तियों की एक विशिष्ट क्षेत्र से चले जाने की प्रवृत्ति से प्रकट होता है। फिर भी सामान्य प्रवृत्तियाँ विश्वसनीय प्रतीत होती हैं। सामान्य परिणाम के रूप में हम कह सकते हैं कि बुद्धि की चरम सीमा २० से ३३ वर्ष की आयु के मध्य होती है, यह परीक्षित-बुद्धि के प्रकारों पर निर्भर करती है। इसके अतिरिक्त यह भी प्रमाणित होता है कि किशोरों के सदृश ही वयस्क लोग भी अच्छी तरह से शब्दावली और सामान्य सूचना परीक्षणों में अच्छी तरह से करते हैं, लेकिन वे उन परीक्षणों में कमजोर रहते हैं, जो व्यक्ति से शीघ्रता से कार्य करने की या उन परिस्थितियों के अनुकूल होने की, जिनसे कि वह अभ्यस्त नहीं हैं—आशा करते हैं।

वृत्तिक समूह परिमापित बुद्धि में भिन्न होते हैं, किंतु बहुत सा भाग परस्पर-व्याप्त रहता है।
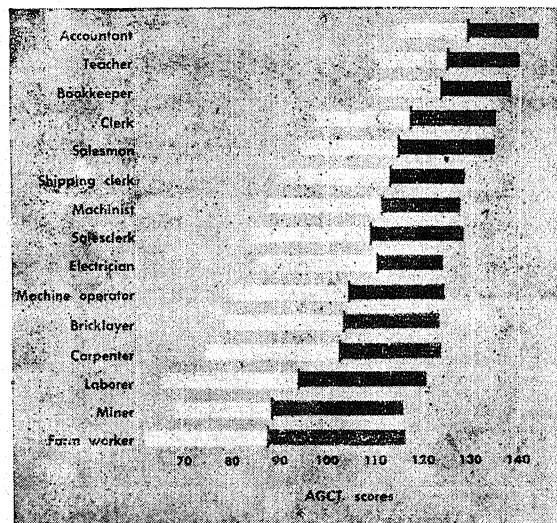
**चित्र-१४.८ विशेष वृत्तियों के AGCT अंकों का क्रम। प्रत्येक रेखा किसी भी वृत्ति के यादृच्छिक रूप से सैकड़ों व्यक्तियों को चुन कर उनके प्रतिदर्श को १० से ९० प्रतिशतता प्रकट करती है। माध्यिका के नीचे के अंक श्वेत रंग में और माध्यिका से ऊपर के अंक काले रंग में दिखाए गए हैं (अनासतासी तथा फोले के अनुसार, १९५८)।**

समूहों के भीतर परिवर्तनशीलता की मात्रा पर ध्यान देना भी आवश्यक है। व्यावहारिक रूप में वय-विकास पर किए गए सभी अध्ययनों के आधार पर, प्रौढ़-समूह

में अनेक ऐसे व्यक्ति हैं, जो श्रेष्ठ समूह के सामान्य कार्यों के समान ही या उनसे भी अच्छा करते हैं। उन उपलब्धियों के आशय महत्त्वपूर्ण हैं। यदि हमें सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक या अन्य किसी प्रकार का महत्त्वपूर्ण निर्णय संपूर्ण समूहों की योग्यता के विषय में निश्चित रूप से करना है, तो हमें समूह की औसतों पर अवश्य निर्भर करना चाहिए। लेकिन, यदि समस्या व्यक्तियों की अपेक्षाकृत अल्पसंख्या को चुनना है, तब किसे चुनना होगा यह निर्णय लिंग, जाति, राष्ट्रीयता, आयु या अन्य समूहगत कारकों पर आधृत न रह कर व्यक्तियों की परीक्षित योग्यताओं पर आधृत होना चाहिए।

व्यावसायिक स्तर (Occupational Level) :

आशानुकूल कुछ व्यवसायों के लोग दूसरे व्यवसायों की अपेक्षा बहुधा अधिक बुद्धिमान होते हैं। हमारे पास अनेक ऐसे प्रमाण हैं, जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। किंतु, इसका एक प्रसिद्ध उदाहरण द्वितीय विश्वयुद्ध के समय की दत्त सामग्री से प्राप्त होता है (हारेल और हारेल, १९४५) [देखिए चित्र १४·८]।

लेखाकार, वकील, अभियंता और शिक्षक औसत AGCT के आधार पर सूची में सबसे पहले आते हैं, १२० से अधिक अंक प्राप्त करते हैं। सूची में सबसे नीचे किसान, खनिजगाड़ी-चालक आते हैं, जिनके अंक ९० के आसपास रहते हैं। फिर भी इनमें परिवर्तनशीलता अधिक है। प्रत्येक व्यवसाय में कुछ ऐसे व्यक्ति हैं, जो १३० से अधिक अंक प्राप्त करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं, जो १०० से या उससे कम अंक प्राप्त करते हैं। यद्यपि समूहों के मध्य बुद्धि में सामान्य भिन्नता है, फिर भी परस्पर-व्याप्ति पर्याप्त रहती है। एक व्यक्ति की बुद्धि के विषय में केवल उसके व्यवसाय को जानकर ही अधिक नहीं कह सकते हैं।

यह समझना कठिन नहीं है कि कैसे यह व्यावसायिक भिन्नताएँ होती हैं। साधारणतः उच्च पद के व्यवसाय में निम्न पद के व्यवसायों की अपेक्षा बहुत अधिक स्कूली शिक्षा की आवश्यकता रहती है। न्यून बुद्धि वाला बच्चा स्कूल में अधिक वर्ष रहने की इच्छा नहीं रखता है। यदि वह रखा जाता है, तो उसे बहुत कम अंक प्राप्त होते हैं। यह अंतिम तथ्य परिणाम को आंशिक रूप में स्पष्ट करते हैं; क्योंकि कालेज और वृत्तिक स्कूल उन्हीं लोगों को भरती करते हैं, जिनके अंक अधिक होते हैं और कम अंक वालों को छाँट देते हैं। इन स्कूलों द्वारा भरती करने के लिए जो विशिष्ट बुद्धि-परीक्षण होते हैं, हमें उन पर भी विचार करना चाहिए। इससे 'मिथ्या सहसंबंध' स्थापित होता है। यदि किसी व्यवसाय में व्यक्ति को भरती करने के लिए बुद्धि का प्रयोग होता है, तो यह व्यवसाय बुद्धि में औसत रूप में उच्च होते हैं, चाहे व्यवसाय और बुद्धि में कोई भी आवश्यक संबंध न हो।

विभिन्न व्यावसायिक समूहों के माता-पिताओं के बच्चों में बुद्धि-भिन्नता अधिक रोचक है और इतनी सरलता से स्पष्ट नहीं हो सकती है। उच्च व्यावसायिक परिवारों के बच्चों में निम्न व्यावसायिक परिवारों के बच्चों की अपेक्षा बुद्धि-भजनफल (IQS) अधिक उच्च होते हैं। इसे स्पष्ट करने के लिए सारणी १४·६ की दत्त-सामग्री है, जो इस समस्या के अध्ययन से ली गई है। व्यावसायिक परिवारों के बच्चों का सामान्य बुद्धि-भजनफल ११५ होता है और दैनिक मजदूरों के बच्चों का सामान्यतः ९५ होता है।

## पारिवारिक पर्यावरण ( Home Environment ) :

व्यावसायिक माता-पिता के बच्चों का बौद्धिक पर्यावरण दैनिक मजदूरों के बच्चों से प्रायः भिन्न होता है। जब हम दो समूहों के बच्चों की बुद्धि-भिन्नता को देखते हैं, तब आनुवंशिकता बनाम पर्यावरण का प्राचीन प्रश्न मस्तिष्क में आ जाता है। इन दो समूहों के माता-पिताओं के बच्चों की बुद्धि में भिन्नता क्या इसलिए है कि उनकी आनुवंशिकता में अंतर है या इसलिए कि उनका भिन्न बौद्धिक पर्यावरण है? यह बड़ा ही महत्त्वपूर्ण किंतु कठिन प्रश्न है और मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रश्न का उतर देने के लिए गहन अध्ययन किया है। लेकिन, फिर भी हमारे पास ऐसा निर्णयात्मक उत्तर नहीं है, जैसा होना चाहिए। इस प्रश्न पर अत्यधिक महत्त्वपूर्ण तथ्यों में से कुछ इस प्रकार हैं :—

सारणी १४·६ में २ से १८ वर्ष के विभिन्न आयु-समूहों में परोक्षित बच्चों के बुद्धि-भजनफल हैं और उनको सात मुख्य व्यावसायिक समूहों(पिताओं के) के अनुसार वर्गीकृत किया है। सबसे छोटे समूह (२ से ५½ वर्ष) में भिन्नताएँ करीब-करीब उतनी ही है, जितनी कि सबसे बड़े समूह (१५ से १८ वर्ष) में हैं। इस दत्त-सामग्री से हमें यह निर्णय लेना चाहिए कि या तो भिन्नताएँ आनुवंशिक हैं या वे जीवन के प्रारंभिक काल में प्रतिष्ठित की गई हैं।

अध्याय दो में जब हमने आनुवंशिकता और पर्यावरण के सामान्य प्रश्नों पर विचार किया, तब हमने इस विषय से संबंधित दो अन्य प्रकार के प्रयोगों पर भी विचार किया था। एक प्रयोग आनुवंशिकता और पर्यावरण में एकरूपता की विभिन्न मात्राओं के रक्त-संबंधियों के मध्य बुद्धि-भजनफल के सहसंबंधों पर आधारित हैं। दूसरा एकरूप जुड़वाँ बच्चों के बुद्धि-भजनफल की तुलना है, जो अलग-अलग पल्लवित हुए थे और जन्म के पश्चात् भिन्न आयु-कालों में अलग रखे गए थे। दोनों अध्ययन आनुवंशिकता को बुद्धि के एक कारक के रूप में संदेहजनक बना देते हैं और उसे पर्यावरण के ही समान या उससे कुछ ही अधिक महत्त्व देते हैं।

दूसरी ओर यह भी सत्य है कि जब बालकों को उनके वास्तविक माता-पिताओं से ले लिया जाता है और पोषकगृहों में रख दिया जाता है, जैसा कि हजारों बच्चों को प्रतिवर्ष रखा जाता है, तब उनकी बुद्धि का पोषक माता-पिताओं (**Foster Parents**) की अपेक्षा वास्तविक माता-पिताओं की बुद्धि और शैक्षिक स्तर से अधिक घनिष्ठ संबंध पाया जाता है।

एक प्रयोग में, एक बच्चे के बुद्धि-भजनफल का उसके वास्तविक माता-पिता की बुद्धि और शिक्षा से सहसंबंध क्रम से .३० से .४० है, जबकि उसके पोषक माता-पिताओं की शिक्षा से सहसंबंध शून्य के आसपास है (हिलगार्ड, १९५७) अन्य प्रयोगों में, पोषित बच्चों के बुद्धि-भजनफल का सहसंबंध पोषक माता-पिताओं के बुद्धि-भजनफल की अपेक्षा वास्तविक माता-पिताओं के बुद्धि-भजनफल से पर्याप्त अधिक निकट रहता है। इससे हम यह निर्णय ले सकते हैं कि बुद्धि में सापेक्ष भिन्नताओं का निर्धारण, पोषकगृह के बौद्धिक प्रभावों की अपेक्षा, मुख्यतः आनुवंशिकता से होता है।

दूसरी ओर ऐसे भी अनेक प्रयोग हैं, जिनमें वास्तविक माता-पिताओं के बुद्धि-भजनफल के आधार पर किए गए पूर्वकथन से पोषित बच्चों की बुद्धि पर्याप्त अधिक पायी गई है। आइओवा बिश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए महत्त्वपूर्ण प्रयोगों (स्कोडक तथा स्कील्स, १९४९) में से एक के आधार पर, बच्चे जिनकी वास्तविक माताओं का सामान्य बुद्धि-भजनफल ९१ है, १०९ से अधिक सामान्य बुद्धि प्रदर्शित करते हैं, जब वे १३ वर्ष की सामान्य आयु में मापित किए जाते हैं, तो उच्च पोषकगृहों में प्रायः १० वर्ष या उससे अधिक रहने के पश्चात् उनका परिमापन होता है। यद्यपि हमें निश्चित रूप में ज्ञात नहीं है कि उनका बुद्धि-भजनफल कितना ऊँचा होता है यदि वे अपने वास्तविक माता-पिता द्वारा बड़े किए जाते, हम निश्चित नहीं कर सकते कि इससे कितना लाभ होता। लेकिन, यही कहनाशायद उचित होगा कि अब सामान्य (**Subnormal**) माता-पिता के बच्चे १० तक बुद्धि-भजनफल प्राप्त कर सकते हैं, यदि उन्हें उच्च गृहों में बड़ा किया जाए।

दूसरों से भिन्न वह अंतिम प्रयोग बौद्धिक पर्यावरण के प्रभाव को प्रस्तुत करता है। फिर भी यह प्रतीत होता है कि पर्यावरण से उतना लाभ नहीं है, जितना कि आनुवंशिकता द्वारा सीमित न होने पर होता। उदाहरण के लिए यदि कोई उस पोषित बच्चे के बुद्धि-भजनफल जिसके वास्तविक माता-पिता अवसामान्य थे, की तुलना उन बच्चों के बुद्धि-भजनफल से करे, जो उसी पर्यावरण में बड़े हुए, तो पोषित बच्चे कुछ पीछे ही रहेंगे। एक प्रयोग के आधार पर पोषित बच्चों की औसत बुद्धि के अंक १०७ होते हैं, जबकि वास्तविक बच्चों के औसत अंक ११५ होते हैं।

गृह-पर्यावरण के प्रभाव पर प्राप्त तथ्य और अनुसंधान पर एक ग्रंथ लिखा जा सकता है, लेकिन जिनको हमने उद्धृत किया है, वे विशेष महत्त्व रखते हैं। उनका हम क्या उपयोग कर सकते हैं ? स्पष्ट है कि आनुवंशिकता और पर्यावरण दोनों परिमापित बुद्धि को निर्धारित करते हैं। उचित पर्यावरण बुद्धि को विकसित कर सकता है, फिर भी हीन आनुवंशिकता उसे सीमित कर देती है कि वह कितनी विकसित हो सकती है। यद्यपि अनुकूल प्रभाव की कोई भी मात्रा हीन आनुवंशिकता को पूर्ण रूप से दूर नहीं कर सकती ; पर, इस तरह के प्रभाव यह बता सकते हैं कि इसकी पूर्ण क्षमता में कितनी अव्यक्त बुद्धि (Latent Intelligence) है और इसमें पर्याप्त अंतर उपस्थित किया जा सकता है कि एक व्यक्ति क्या करने की योग्यता प्राप्त कर सकता है।

सारणी १४·६

| | बालक की आयु | | | |
|---|---|---|---|---|
| पिता की वृत्ति | २-५½ | ६-९ | १०-१४ | १५-१८ |
| वृत्तिक | ११५ | ११५ | ११८ | ११६ |
| अर्द्ध वृत्तिक और व्यवस्थापरक | ११२ | १०७ | ११२ | ११७ |
| क्लर्क, शारीरिक परिश्रमी एवं व्यवसायी | १०८ | १०५ | १०७ | ११० |
| ग्राम-नियोजक | ९८ | ९५ | ९२ | ९४ |
| अर्द्ध-परिश्रमी | १०४ | १०५ | १०३ | १०७ |
| सामान्य परिश्रमी | ९७ | १०० | १०१ | ९६ |
| दैनिक मजदूर | ९४ | ९६ | ९७ | ९८ |

**सारणी १४ ६ पिता की वृत्ति के अनुसार बच्चों के बुद्धि-भजनफल का औसत करके वर्गीकरण किया गया है (मैकनेमार, १९४२)।**

## सांस्कृतिक पर्यावरण (Cultural Environment) :

यदि एक बच्चे का पारिवारिक पर्यावरण उसकी बुद्धि में योगदान देता है, तो यह भी विचारणीय प्रश्न हो सकता है कि क्या उसकी संस्कृति के अन्य अंग भी योगदान देते हैं ? बच्चा घर से बाहर अन्य पर्यावरण में रहता है, विशेषकर इस समय जबकि वह शैशवावस्था से बाल्यावस्था की ओर बढ़ता है। दो या तीन वर्ष की आयु में वह अन्य बच्चों के साथ खेलना प्रारंभ कर देता है और सात वर्ष की आयु तक दिन के अधिकांश भाग को स्कूल में व्यतीत करता है। बड़ा होते समय वह अपने साथियों से अपने स्कूल से यहाँ तक कि जातीय पुस्तकालय की सुविधाओं से बौद्धिक प्रभावों का अनुभव प्राप्त करता है। इन प्रभावों का बुद्धि पर क्या प्रभाव हो सकता है ?

इस प्रश्न को समझने की एक प्रणाली है—नागरिक और ग्राम्य बालकों की तुलना करना; क्योंकि अपनी-अपनी संस्कृतियों में बौद्धिक प्रभावों की श्रेष्ठता में वे पर्याप्त भिन्न होते हैं। वास्तव में यह महत्त्वपूर्ण बात है कि ग्राम्य बच्चों की अपेक्षा नागरिक बच्चे बुद्धि-परीक्षण में सामान्यतः अधिक अंक प्राप्त करते हैं, कितने अधिक करते हैं, यह इस पर निर्भर करता है कि किन विशेष समूहों की तुलना की गई है। किंतु, अंतर प्रायः कई रूपों में होता है। इस प्रकार के अंतर आंशिक रूप में उन तीव्र-बुद्धि परिवारों द्वारा स्पष्ट किए जा सकते हैं, जो मंद बुद्धि वालों को पीछे छोड़ कर स्वयं नगरों में आ गए हैं। इनको आंशिक रूप में बुद्धि-परीक्षणों के सांस्कृतिक पक्षपात द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है। परीक्षणों में इस प्रकार के विषय हो सकते हैं, जो ग्राम्य बालकों की अपेक्षा नागरिक बालकों को अधिक परिचित प्रतीत होते हैं।

निःसंदेह इन दो रूपों के लिए कुछ कहा जा सकता है, लेकिन हमारी वर्त्तमान दत्त-सामग्री कुछ अनिश्चयात्मक है। एक ओर प्रायः यह निश्चित जान पड़ता है कि नागरिक उद्दीपन पर्यावरण, जैसे उच्च गृह, न्यून बुद्धि को विकसित कर सकते हैं। हमारे पास इस दृष्टिकोण के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण प्रमाण, बारह वर्ष के नीग्रो लड़कों पर किए गए प्रयोगों द्वारा प्राप्त हैं। (क्लिनबर्ग, १९३५) :

> "करीब ४०० लड़के का जो नगर में आ गए हैं, बुद्धि-परीक्षण किया गया और उन ३०० विलक्षण लड़कों से तुलना की गई, जिनका जन्म एवं पोषण नगर में ही हुआ था। जितने अधिक दिन लड़के बाहर रहे थे, उतने ही अधिक उनके बुद्धि-प्राप्तांक थे। जो शहर में केवल एक-दो वर्ष तक ही थे, उनका औसत केवल ४० था (परीक्षण में प्राप्तांक, बुद्धि-भजनफल नहीं) जब कि उनका, जो शहर में पैदा हुए थे, औसत ७५ था। यह भिन्नता पर्याप्त है और यह देखना कठिन है कि चयनात्मक देशांतरण कैसे उत्तरदायी हो सकता है। यह स्पष्ट है कि नागरिक प्रभाव मापित-बुद्धि पर प्रभाव डालते हैं।"

सांस्कृतिक प्रभावों की समस्या यह निर्धारित करने के सभी प्रयासों में आ जाती है कि बुद्धि में जातीय भिन्नताएँ हैं या नहीं। जैसा कि शायद आप विश्वास करते हों अनेक वर्षों तक यह एक प्रश्न था कि कुछ जातियाँ दूसरी जातियों से बुद्धि में न्यून हैं या नहीं। जब मनोवैज्ञानिकों ने अनुसंधान से इस प्रश्न को सुलझाने का प्रयास किया और उन्होंने अनेक प्रयोग किए—वे तत्क्षण इस तथ्य पर पहुँचे कि संयुक्त राज्य अमेरिका के बाहर उत्पन्न गौर वर्ण की जातियों के पास वैसा सांस्कृतिक पर्यावरण नहीं था जैसा कि संयुक्त राज्य में उत्पन्न गौर वर्ण व्यक्तियों को प्राप्त था। यह भी एक तथ्य है कि विभिन्न समूह, जो इस शहर में देशांतरण कर रहे हैं, अपनी जन्मभूमि में विभिन्न आर्थिक समाजों और सांस्कृतिक समूहों से आते हैं। अतः, इस प्रश्न पर किए गए अधिकांश प्रयोग अनिश्चयात्मक हैं।

अमरीकी नीग्रो और गौरवर्ण व्यक्तियों के मध्य जिन विभिन्नताओं को पाया गया है, वे समूहगत ऐसी विभिन्नताएँ हैं, जिनका गंभीर अध्ययन किया गया है। इन सबकी जन्मभूमि एक ही है और सब एक ही भाषा बोलते हैं—यद्यपि अधिकांश नीग्रो लोगों की भाषागत आदतें अनेक गौर वर्ण लोगों से बहुत भिन्न होती हैं। सामान्यत: नीग्रो लोगों को निम्नकोटि की शैक्षिक सुविधाएँ मिलती हैं और प्राय: निम्न बौद्धिक पर्यावरण प्राप्त होता है। तब इसमें आश्चर्य नहीं है कि बुद्धि-परीक्षण में नीग्रो लोगों का कोई भी विशाल समूह गौर वर्ण व्यक्तियों के समूहों की अपेक्षा प्राय: औसत में कम अंक प्राप्त करता है। अनिवार्य रूप से इसका यह तात्पर्य नहीं है कि बुद्धि में किसी प्रकार की जैविक आनुवंशिक हीनता है। निश्चित रूप से सांस्कृतिक भिन्नताएँ आंशिक या संपूर्ण भिन्नता को स्पष्ट करती हैं।

जातिगत भिन्नताओं संबंधी हमारी अधिकांश विस्तृत दत्त-सामग्री हमें प्रथम विश्वयुद्ध में लिए गए बुद्धि-परीक्षणों से प्राप्त हुई है। साधारणत: नीग्रो नक्शानवीसों ने गौर वर्ण वालों की अपेक्षा खराब काम किया। दक्षिण के नक्शानवीस औसतन उत्तर के नक्शानवीसों से हीन होते हैं और कुछ उत्तरीय राज्यों में ऐसे नीग्रो भी थे, जो दक्षिण राज्यों के गौर वर्ण वालों से औसतन अच्छे थे। फिर भी जैसा कि अभी हमने ऊपर देखा, नागरिक नीग्रो और नागरिक गौरवर्ण व्यक्ति ग्रामीण नीग्रो और ग्रामीण गौर वर्ण व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक अंक प्राप्त करते हैं। अत: जाति, भूगोल, नागरिक, ग्रामीण उद्‌भव और शैक्षिक सुविधाओं के कारकों को भिन्न करना बड़ा कठिन है। अंतिम तीन कारकों को जातियों में जैव भिन्नताओं से भिन्न सांस्कृतिक प्रभाव समझा जा सकता है।

जब कि सांस्कृतिक प्रभाव प्रामाणिक है, यह मानना सबसे अधिक विश्वसनीय है कि गौरवर्ण व्यक्तियों के और नीग्रों लोगों के मध्य भिन्नता सांस्कृतिक पर्यावरण के कारण है-कम-से-कम उस समय तक, जब तक कि दोनों समूहों की सांस्कृतिक सुविधाएँ एक समान हों या उस समय तक, जब तक कि किसी भी जातीय भिन्नता के संस्कृति-मुक्त परीक्षण प्राप्त करने संभव हों।

### अभिक्षमता और रुचि (Aptitudes and Interests) :

जैसा कि हमने देखा, बुद्धि-परीक्षाओं और अभिक्षमता-परीक्षाओं के मध्य कोई कठोर विभाजन-रेखा नहीं है। हम बुद्धि-परीक्षाओं का प्रयोग बौद्धिक योग्यता के सामान्य निर्धारण को प्रस्तुत करने के लिए करते हैं और अभिक्षमता-परीक्षाओं का प्रयोग विशेष वृत्तियों तथा क्रियाओं में अपेक्षित विशिष्ट योग्यताओं को मापने के लिए। बुद्धि का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् अब हम अभिक्षमताओं और उन्हें मापने के लिए प्रयुक्त परीक्षाओं पर विचार करते हैं।

इस अनुभाग में हम रुचि के विषय में भी विचार करेंगे, इसलिए नहीं कि वह अभिक्षमता है. निश्चित रूप से वह अभिक्षमता नहीं है, लेकिन इसलिए कि अभिक्षमता-परीक्षाओं द्वारा कोई भी निर्णय लेने के लिए रुचि पर भी विचार करना चाहिए। किसी भी दिए हुए कार्य में सफल होने के लिए, एक व्यक्ति में कार्य के लिए अभिक्षमता और रुचि दोनों का होना आवश्यक है। अतः, किसी भी व्यावहारिक प्रयोग में अभिक्षमता और रुचि-परीक्षाएँ साथ-साथ होती हैं। 'व्यक्तित्व' के अध्याय (१५वाँ अध्याय) में रुचि का विभिन्न प्रकार से विवेचन किया गया है, जहाँ ध्यान के केंद्र विषय या लक्षण हैं, जो किसी व्यक्ति के चरित्र का चित्रण करते हैं।

### शैक्षिक अभिक्षमताएँ (Scholastic Aptitudes) :

जैसा कि अभिक्षमता की हमारी परिभाषा में निहित है कि जब हम योग्यता का या उस योग्यता-परीक्षा का उल्लेख करते हैं, जो विशिष्ट प्रशिक्षण या कार्य-प्रणाली की सफलता या असफलता को पूर्वघोषित करने के लिए प्रयुक्त होती हैं, तब अभिक्षमता और अभिक्षमता-परीक्षणों के विषय में कहने की परंपरा बन जाती है। यदि हम प्रशिक्षण में सफलता को पूर्वघोषित करने का प्रयास करते हैं, तब हमारा विषय शैक्षिक अभिक्षमता होता है। यदि हमारा ध्यान व्यवसाय पर है, तो हम व्यावसायिक अभिक्षमता के रूप में अपेक्षित योग्यताओं का उल्लेख करते हैं।

कुछ अभिक्षमता-परीक्षाएँ दो उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं—१. सामान्य बुद्धि-परीक्षण के रूप में और २ शैक्षिक अभिक्षमता-परीक्षण के रूप में। उदाहरण के लिए चित्र १४·८ में दत्त-सामग्री पूर्व उल्लिखित सैनिक सामान्य वर्गीकरण परीक्षा (Army General Classification Test) से ली गई है। यह परीक्षा सामान्य बुद्धि-परीक्षा के रूप में निर्मित है। यह अच्छी तरह से यह भी पूर्वघोषित कर देती है कि किसी व्यक्ति के अधिकारी उम्मीदवार स्कूल में सफल होने की संभावना है या नहीं। अतः, उसका प्रयोग शैक्षिक अभिक्षमता-परीक्षा के रूप में हो सकता है।

इसी विषय पर चित्र १४·९ में द्वितीय विश्वयुद्ध से दत्त-सामग्री प्रस्तुत की गई है। यदि कोई व्यक्ति १४० या इससे अधिक अंक AGCT के आधार पर प्राप्त करता था, तो अधिकारी उम्मीदवार स्कूल में १० में ९ से अधिक सुअवसर प्राप्त करता। यदि उसके प्राप्तांक ११० से कम थे, तब उसके सफल होने की संभावनाएँ १० में से ५ थीं। यह उस पूर्वकथन को स्पष्ट करता है, जो एक अच्छी शैक्षिक अभिक्षमता-परीक्षा से प्राप्त करना संभव है, यद्यपि इस प्रकार के पूर्वकथन उस व्यक्ति की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर, जिसके साथ उनका प्रयोग होता है, और संबद्ध प्रशिक्षण के प्रकार पर निर्भर करते हैं।

अनेक शैक्षिक अभिक्षमता-परीक्षाओं का विकास विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षणों के लिए हुआ। शायद सबसे अधिक व्यापक रूप में प्रयुक्त अमेरिकन काउंसिल ऑन

एजुकेशनल साइकोलॉजी परीक्षा है, जिसका संक्षिप्त रूप ACE है—जिसका प्रयोग उन विद्यार्थियों पर किया गया, जो संयुक्त राज्य अमेरिका के उदारकला महाविद्यालयों में प्रवेश करते हैं। इसी प्रकार की परीक्षाएँ औषधि दंतविज्ञान नर्सिंग के लिए और अन्य अनेक व्यवसायों के लिए होती हैं। प्रत्येक वर्ष अनेक ऐसी नई परीक्षाएँ खोजी जाती हैं। दूसरी ग्रेजुएट रिकार्ड परीक्षा कहलाती हैं, जो उन विद्यार्थियों के विद्यालयों में लिए बनी हैं, जो स्नातक कार्य को मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, अभियांत्रिक और भौतिक विज्ञान की स्नातकोत्तर या डाक्टर की डिग्री के विशेष अध्ययन के लिए नियोजित करते हैं। उन सभी विद्यार्थियों के लिए जो प्रवेश के लिए उन्हें प्रार्थना-पत्रक भेजते हैं, उचित अभिरुचि-परीक्षाओं की आवश्यकता के लिए स्नातक एवं व्यावसायि स्कूलों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। यदि आप भी एक ऐसे विद्यार्थी हैं, तो आपको भी अपने विशेष स्कूल द्वारा घोषित स्थान और समय के अनुसार ऐसी परीक्षा देने के लिए तैयार रहना चाहिए।

स्कूल की सफलता की पूर्वसूचना प्राप्त करने के लिए सामान्य बुद्धि-परीक्षाएँ प्रायः उपयोगी होती हैं।
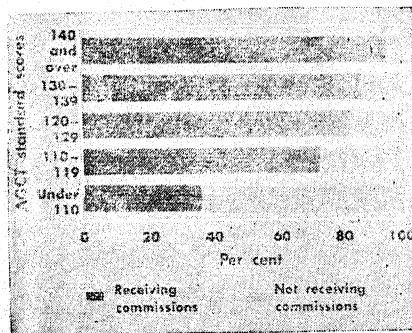
**चित्र १४.९ AGCT अंकों के आधार पर ऑफिसर-आवेदक स्कूल में सफलता की पूर्वघोषणा। यह दृष्टांत शत-प्रतिशत निर्देशित करता है कि AGCT के निश्चित अंक प्राप्त करने वाला ऑफिसर-आवेदक अवश्य कमीशन प्राप्त करेगा। यह १४ स्कूलों के ५.५२० व्यक्तियों की दत्त-सामग्री है। AGCT अंकों के विभाजनार्थ चित्र १४.४ को देखिए ( बोरिंग के अनुसार, १९४५ )।**

## व्यावसायिक अभिक्षमताएँ (Vocational Aptitudes) :

शैक्षिक अभिक्षमता-परीक्षाएँ अपेक्षाकृत दीर्घ प्रशिक्षण, जिसमें तीन चार या अधिक वर्ष लगते हैं, में सफलता के लिए एक व्यक्ति की अभिक्षमता का माप करती है। व्यापार और उद्योग में अधिकांश नियुक्तियों के लिए ऐसे प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है। इन नौकरियों में या इन नौकरियों के लिए प्रशिक्षण में सफलता को, बिना बौद्धिक और शैक्षिक अभिक्षमता को महत्त्व दिए, विशिष्ट व्यावसायिक

अभिक्षमता के ज्ञान से पूर्व घोषित किया जा सकता है। आज व्यावसायिक अभिक्षमता के लिए हजारों परीक्षाएँ उपलब्ध हैं। वे सब इस रूप में अच्छी परीक्षाएँ नहीं हैं कि वे व्यावसायिक सफलता के लिए अच्छी भविष्यवक्ता सिद्ध हुई हैं, पर कुछ ऐसी भी हैं। अनेक उन अन्य परीक्षाओं का थोड़ा-सा परिवर्तित रूप हैं, जो विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्मित की गई हैं। वास्तव में यदि समय, धन और निपुण मनोवैज्ञानिक योग्यता उपलब्ध है, तो प्रचलित परीक्षाओं को विशेष व्यापार और उद्योग की आवश्यकतानुसार सुधार लेना प्रायः बुद्धिमानी है। प्रमाणित परीक्षा को चुनने के लिए आवश्यक साधनों का हम पहले वर्णन करेंगे और तब संक्षेप में अनेकों परीक्षाओं में से उन दो प्रकार की परीक्षाओं पर विचार करेंगे, जो उपलब्ध हैं।

## परीक्षाओं का प्रामाण्य निर्धारण (Validation of Tests) :

नियुक्ति में सफलता को पूर्व-घोषित करने के लिए व्यावसायिक अभिक्षमता परीक्षाओं की योग्यता का मूल्यांकन करने के लिए निम्नलिखित प्रणाली का उपयोग आवश्यक है—

१. सभी आवेदकों की नियुक्ति के लिए प्रश्न में तब तक परीक्षा ली जाए, जब तक पर्याप्त संख्या में विशेषकर हजारों की संख्या में वे परीक्षित न हो गए।

२. बिना परीक्षाफल पर विचार किए नियुक्ति के लिए आवेदकों को चुनना चाहिए।

३. नौकरियों में नियुक्त करने के काफी समय पश्चात् मूल्यांकन करने पर उन्हें दो या अधिक समूहों में कार्यानुसार विभाजित कीजिए। यह विभाजन 'संतोष-जनक' और 'असंतोषजनक' में हो सकता है या अनेक समूहों में हो सकता है। जैसे—'अति उत्तम' 'उत्तम', 'साधारण' और 'तुच्छ'।

४. विभिन्न समूहों के परीक्षाफलों की तुलना कीजिए।

यह विधि, विशेषकर अंतिम, इच्छित उद्देश्यों के लिए परीक्षा के प्रामाण्य को निर्धारित करने के लिए निर्मित हुई है। वास्तव में परीक्षा और कसौटी के मध्य सहसंबंध को प्राप्त करने का यह साधन है, इसका विवेचन तेरहवें अध्याय में किया गया है। यदि इस प्रकार का सहसंबंध है, तब कसौटी-समूह अपने अभिक्षमता प्राप्तांकों में भिन्न होंगे। और केवल तब, जब कि ऐसा सहसंबंध है और एक से अधिक अंतर को अनायास ग्रहण किया जाए, तो उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए परीक्षा प्रामाण्य और समर्थ होगी। नई परीक्षाओं को निर्मित करने के साधन वही हैं, जो परीक्षा का मूल्यांकन करने के लिए हैं। लेकिन, संपूर्ण परीक्षा की अपेक्षा परीक्षा के प्रत्येक विषय के लिए विश्लेषण करना चाहिए। विषय चुने हुए होते हैं, जो निकर्ष समूहों में अंतर स्थापित करते हैं, अन्य विषयों का बहिष्कार कर दिया जाता है।

**यांत्रिक योग्यता परीक्षाएँ ( Mechanical Ability Tests ) :**

अनेक परीक्षाएँ, जो यांत्रिकी, मशीन प्रचालक, सामूहिक-मशीन-कार्यकर्त्ता, मिस्त्रीगण और इसी प्रकार के कार्यकर्त्ताओं के लिए बनी है, यांत्रिक ज्ञान या मशीन में करने की योग्यता से संबद्ध हैं। इस प्रकार की परीक्षाएँ 'यांत्रिक योग्यता परीक्षाएँ' ( Mechanical Ability Tests ) कहलाती हैं। इस प्रकार की परीक्षाओं से हमारा अनुभव सूचित करता है कि इन परीक्षाओं में अपेक्षाकृत असाधारण यांत्रिक योग्यता कारक सामान्यतः रहता है। वे लोग तो एक यांत्रिक योग्यता परीक्षा में उच्च अंक प्राप्त करते हैं, दूसरी में भी करते हैं। दूसरी ओर, विभिन्न नियुक्तियाँ यांत्रिक योग्यताओं के भिन्न मिश्रणों की अपेक्षा करती हैं। अतः, अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार की परीक्षाएँ होती हैं। कुछ उदाहरण चित्र—१४·१० और १४·११ में दिए गए हैं।

यांत्रिक अभिवृत्ति की एक कागज फार्म-बोर्ड पर परीक्षा हो सकती है।
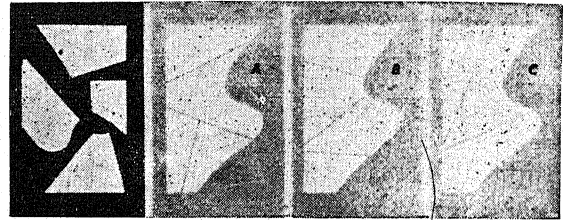
**चित्र १४·१० मिनेसोटा कागज फार्म-बोड का एक उदाहरण, यांत्रिक अभिवृत्ति-परीक्षण। यह उदाहरण परीक्षा के विषयों के अनुरूप है। परीक्षार्थी के लिए यह बताना आवश्यक है कि बाईं ओर जो आकार रखे हैं, उन्हें A. B. या C. रूपों में संबद्ध किया जा सकता है या नहीं।**

धा तु काटने के लिए कौन-सी कैंची श्रेष्ठतर होगी।
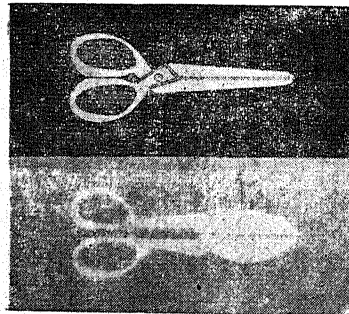
**चित्र १४·११ यांत्रिक ज्ञान के बैनेट्ट-फ्राड परीक्षण के एक विषय का उदाहरण। इस परीक्षा के विषय प्रायः अधिक कठिन होते हैं। (साइकोलॉजिकल कारपोरेशन )**

### मनोपेशीय परीक्षाएँ (Psychomotor Tests) :

प्रत्यक्षणात्मक या यांत्रिक योग्यता की तुलना में मनोपेशीय योग्यता के लिए अब तक बहुत कम प्रमाण प्राप्त हैं। यह आवश्यक नहीं है कि जिस व्यक्ति के पास पुष्ट शारीरिक निपुणता है, ट्रैक्टर और हवाई जहाज चलाने में निहित योग्यता के प्रकार में भी अच्छा होगा। अतः, मनोपेशीय परीक्षाओं को विशेष नौकरी और व्यवसाय के लिए विचारना, विकसित करना और प्रमाणित करना चाहिए। इन परीक्षाओं में मनःप्रेरक कार्य,—जैसे शारीरिक निपुणता, दृढ़ता, मांसपेशीय शक्ति संकेतक (Signal), को प्रत्युत्तर देने की गति, और पूर्ण एकीकृत कार्य ( Unified Whole) में अनेक गतियों की एकसूत्रता आदि निहित हैं। लिपिक और उच्च विशेषज्ञता प्राप्त वृत्ति के लिए अन्य अनेक व्यावसायिक परीक्षाएँ हैं, लेकिन, ये उदाहरण ऐसी परीक्षाओं में प्रयुक्त सामग्री के प्रकारों को स्पष्ट करने में सहायता करते हैं।

### तर्कसंगत चिंतन के लिए अभिक्षमता (Aptitudes for Logical Thinking) :

प्रचलित अभिक्षमता-परीक्षाएँ औद्योगिक क्षेत्र की रूढ़ वृत्तियों के लिए, बिशेषकर निर्माणकारी और कार्यालय वृत्तियों के लिए बनी हैं। आधुनिक तकनीकी विज्ञान उन प्रमुख वृत्तियों को प्रस्तुत करती हैं, जिनके लिए मुख्यतः तर्कसंगत चिंतन और समस्या-समाधान अपेक्षित है। जटिल स्वचालित मशीनें दोषग्रस्त हो जाती हैं, जिनको ठीक करने के लिए दक्ष व्यक्तियों की आवश्यकता है। स्वचालित संगणक की योजना उन लोगों के द्वारा होनी चाहिए, जो जटिल स्थितियों के मध्य चिंतन कर सकते हैं। विविध प्रकार के प्रयोजनों की सिद्धि के लिए सब प्रकार की मशीनों की अभिकल्पना प्रतिष्ठित अभियंताओं द्वारा होनी चाहिए।

अब तक हमारे पास इस प्रकार की नियुक्तियों से संबंधित अभिक्षमताओं को मापने के लिए संतोषजनक परीक्षाएँ नहीं हैं। अभी हमें और आगे बढ़ना है। लेकिन, कुछ निश्चयात्मक परिणाम से यथाशक्ति अनुसंधान किया गया है। चित्र १४.१२ में में प्रदर्शित उदाहरण के लिए एक परीक्षा 'तर्कयुक्त विश्लेषण युक्ति' LAD (Logical Analysis Device) है। यह प्रचालक प्रदर्शन यूनिट और केंद्रीय तर्कशास्त्र यूनिट, समस्या-प्लग बोर्ड तथा नियंत्रण और रेकार्डिंग यूनिट से बना है। एक परीक्षक प्रचालक के समाधान करने के लिए जटिलता की मात्रा में भिन्न विभिन्न प्रमाणीकृत समस्याओं (Standardized Problems) को प्रस्तुत कर सकता है। एक शुद्ध क्रम में तर्कसंगत अनुक्रिया के लिए नियमों को खोजना प्रचालक की समस्या है।

संगणना के लिए नियोजकों को चुनने में LAD को काफी अधिक मान्यता प्राप्त है। इसकी मान्यताओं के फल को और इसके सदृश अन्य प्रविधियों को इंजीनि-

यरों और तकनीशियनों (प्रविधिज्ञों) में समस्या-समाधान की अभिक्षमता को निर्धारित करने के लिए और आधुनिक टैकनोलॉजी की नवीन वृत्तियों की अभिक्षमता के लिए अनुरक्षण अधिकारियों को नवीन परिमापन प्रस्तुत करने चाहिए।
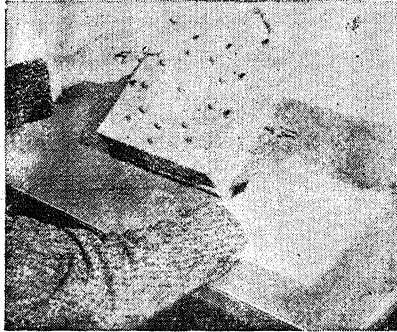
**चित्र-१४.१२ चालक का LAD के लिए प्रदर्शन-फलक। LAD तर्कसंगत तर्कना की अभिक्षमताप्परिमापन के लिए 'लॉजिकल एनालिसिस डिवाइस, अभिकल्पित किया गया है। संगणना योजना आभियंत्रिक विकास एवं कष्ट-निवारण-जैसे कार्यों में इस अभिक्षमता का उपयोग होता है (साइकोलॉजिकल कारपोरेशन)।**

## अभिक्षमता-परीक्षणों का प्रयोग (Use of Aptitude Tests):

अभिक्षमता-परीक्षणों का प्रयोग दोनों के द्वारा नियोक्ता का अपने कार्यों के लिए कर्मचारियों के चुनावार्थ और व्यावसायिक परामर्शदाता का व्यक्ति को भिन्न प्रकार के कार्यों में अपनी अभिक्षमता को निर्धारित करने में सहायतार्थ, प्रयोग किया जाता है। दोनों प्रयोजनों में प्रायः एक ही परीक्षण उपयुक्त नहीं होते। नियोक्ता, जो कार्य उसके मस्तिष्क में है, उसे अच्छी तरह जानते हुए, ऐसी परीक्षा चाहता है, जो उस कार्य में यथासंभव ठीक सफलता की भविष्यवाणी कर सके। अतः, वह उसके निश्चित कार्य के लिए अभिकल्पित परीक्षण चाहेगा जैसे, मक्खन लपेटने के लिए, बिजली की तारों को जोड़ने के लिए या खराद परिचालन के लिए। दूसरी ओर परामर्शदाता व्यक्ति को कार्यचयन में—बहुधा पर्याप्त सामान्य चयन—भिन्न-भिन्न प्रकार के अनेक कार्यों में से चयन में सहायता करता है। इस प्रयोजन के लिए परामर्मदाता अपेक्षाकृत सामान्य परीक्षणों की अपेक्षा करता है, जो विशिष्ट अभि-क्षमताओं के अनेक भिन्न रूपों का प्रतिदर्श उपस्थित करें। उसके पास ऐसे सामान्य परीक्षण बड़ी संख्या में होते हैं, वह उन्हीं में से कुछ को चुन कर प्रयोग करता है।

व्यावसायिक अभिक्षमता-परीक्षाएँ तथा व्यावसायिक रुचि-परीक्षाएँ, जिनका वर्णन हम आगे करेंगे, स्कूलों और संघों में प्रायः उपलब्ध होती हैं। कालेज में यदि मनोवैज्ञानिक निदानशाला या विद्यार्थी परामर्श आयोग होता है, तो वह ऐसे परीक्षणों

का प्रायः प्रबंध करता है। यू० एस० एम्पलॉयमेंट सर्विस और वेटरान्स एडमिनिस्ट्रेशन सहकारी-पद के लिए योग्यता प्राप्त व्यक्तियों की परीक्षाओं की व्यवस्था करते हैं। बड़े नगरों में प्रायः अनेक स्वतंत्र संस्थान और व्यक्ति हैं, जो उपयुक्त फीस पर परीक्षण की उपयुक्त सुविधाएँ देते हैं। प्रत्येक उपागम के अपने लाभ और अपनी सीमाएँ हैं।

## व्यावसायिक रुचियाँ (Vocational Interests) :

किसी नियुक्ति और प्रशिक्षण के पाठ्य-क्रम में सफल होने के लिए एक व्यक्ति में न केवल इसके लिए अपेक्षित अभिक्षमता की आवश्यकता है, लेकिन अनेक ऐसी रुचियों की भी आवश्यकता है, जो उसमें इसके विभिन्न पहलुओं के प्रति रोचकता उत्पन्न करे। अतः, व्यवसाय को चुनने के लिए और उसे सीखने के प्रशिक्षण के लिए रुचियों और अभिक्षमताओं दोनों पर विचार करना चाहिए। मनोवैज्ञानिकों ने उन रुचि-परीक्षाओं को विकसित करने के लिए, जो व्यावसायिक पथ-प्रदर्शन में सहायक हो सकती हैं, दो प्रकार के सामान्य उपायों का प्रयोग किया। स्ट्रांग के द्वारा विकसित एक **आनुभाविक उपागम** (Empirical approach) है, दूसरी कुडर (Kuder) द्वारा विकसित **सैद्धांतिक उपागम** कहलाती है।

## स्ट्रांग की व्यावसायिक रूचि-परीक्षा (Strong Vocational Interest Test)

रुचि-निर्धारण के लिए आनुभविक उपागम की आवश्यकता व्यवसाय के लिए है, जो उन रुचियों का मापन करने के लिए है, जो व्यवसाय में संलग्न सफल लोगों को विशेषताएँ बताती हैं। हम यह खोज लेते हैं कि प्रत्येक व्यावसायिक समूह की रुचियाँ क्या हैं, और तब केवल उनको खोजते हैं, जो अन्य समूहों के अनुकूल व्यक्तियों से इस समूह के अनुकूल व्यक्तियों को भिन्न कर देती हैं। जो निर्णय हम करते हैं, वह यह है कि ये विशिष्ट रुचियाँ व्यवसाय में सफलता प्राप्त करने के लिए वास्तव में आवश्यक हैं। इस तर्कना पर स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रो० स्ट्रांग ने 'स्ट्रांग व्यावसायिक रुचि-परीक्षा' को विकसित किया। उनकी प्रक्रिया का विस्तृत विवरण निम्नलिखित रूप में है—

उन्होंने उन हजारों विषयों को चुन कर कार्य प्रारंभ किया, जो विभिन्न व्यवसायों में रुचियों को काल्पनिक रूप में भिन्न कर सकते हैं (देखिए, सारणी १४·७) परीक्षा के विषय जिन्हें महत्त्व दिया जाता है—मनोरंजन स्कूल के विषय, क्रियाएँ, लोगों के प्रकार आदि हैं। अधिकांश विषयों को प्रस्तुत किया जाता है, जिससे कि वह व्यक्ति, जो लिखित परीक्षा दे रहा है, यह सूचित कर सके कि वह विषय में अरुचि रखता है (अ) या रुचि रखता है (रु) या उससे विरल (वि) है।

सारणी १४७

स्ट्रांग वृत्तिक रुचि परीक्षण के विषयों के प्रतिदर्श और प्रकार (स्ट्रांग १९३८)।

वृत्तिक कार्यों के प्रतिदर्श

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. | अभिनेता (सिनेमा का नहीं) | L | I | D |
| २. | विज्ञापक | L | I | D |
| ३. | शिल्पकार | L | I | D |
| ४. | फौजी अफसर | L | I | D |
| ५. | कलाकार | L | I | D |
| ६. | ज्योतिर्विद | L | I | D |
| ७. | व्यायाम निदेशक | L | I | D |

| विषयों के प्रकार | संख्या |
|---|---|
| वृत्तियाँ | १०० |
| स्कूल के विषय | ३६ |
| मनोरंजन | ४९ |
| क्रियाएँ | ४८ |
| व्यक्तियों के प्रकार | ४७ |
| क्रियाओं के लिए पसंद | ४० |
| विषयों में तुलना | ४० |
| वर्त्तमान योग्यताएँ | ४० |
| कुल | ४०० |

स्ट्रांग ने विशेष वृत्तियों और व्यवसायों से जितने संभव हो सके, हजारों की संख्या में व्यक्तियों को प्रतिनिधियों के रूप में चुना, उनकी परीक्षा ली, जिससे कि वे जान सकें कि सफल व्यक्तियों की वास्तव में रुचियाँ क्या थीं। उनके प्रत्युत्तरों से वह अनेक ऐसे विषयों को निकाल सकने में समर्थ हुए, जिसमें व्यावसायिक समूहों के मध्य काफी भिन्नताएँ नहीं थीं और उन विषयों को रखने में समर्थ हुए, जिनका ऐसे समूहों के मध्य सफलता से विभेदन किया गया। कुछ विषयों का कुछ विशेष समूहों के मध्य विभेदन किया जैसे डाक्टर और वकील। लेकिन, दूसरों के मध्य नहीं जैसे—कायचिकित्सक और रसायनज्ञ वे कभी भी लाभदायक प्रमाणित नहीं होते। अंत में, प्रत्येक व्यवसाय के लिए वे अपनी परीक्षा में उस प्राप्तांक की प्रणाली को

निर्मित करने में समर्थ हुए, जो यह निर्णय करती है कि कितनी अच्छी तरह से परीक्षार्थियों की रुचि प्रत्येक भिन्न व्यवसाय में नियुक्त लोगों के अनुरूप होती है।

जैसा कि कुछ वर्षों से प्रयोग हो रहा है स्ट्रांग की व्यवसाय-परीक्षाओं में ४०० भेदमूलकविषय हैं। यह ४२ ऐसे व्यवसायों के लिए प्राप्त हो सकता है, जिसमें पुरुष नियुक्त हैं और २४ व्यवसाय औरतों के लिए हैं। प्राप्तांक का प्रत्येक साधन एक व्यक्ति के स्तर का परिचय देता है जैसे A,B+,B B—, or C। यदि उसे A प्राप्त होता है, तो उसकी रुचियाँ व्यवसाय में सफल लोगों के अनुरूप उपयुक्त होती हैं और जहाँ तक रुचियों की बात है सफलता का फलानुमान अति उत्तम है। दूसरी ओर C स्तर से तात्पर्य है कि व्यवसाय में नियुक्त लोगों के अनुरूप उसकी रुचियाँ बिलकुल नहीं हैं और जहाँ तक रुचियों की बात है, उसकी सफलता की संभावना बहुत कम है। B+,B, और B—के स्तर कम निश्चित हैं और उनका अर्थ-निर्णय रुचि की अनुरूपता की मध्य कोटि है। कुछ व्यवसायों का प्रतिदर्श, जिसके लिए स्ट्रांग माप सारणी (Scale) उपलब्ध है, सारणी १४·८ में सूचिबद्ध किया गया है।

### सारणी – १४·८

सारणी १४·८ स्ट्रांग वृत्तिक रुचि -परीक्षण द्वारा अंक प्राप्त किए जा सकने वाली कुछ वृत्तियाँ। 'प्रत्येक वृत्ति के लिए पृथक्-पृथक् प्रत्येक स्त्री और पुरुष का परीक्षण किया गया। नीचे लिखी गई वृत्तियों में जिन पर नक्षत्र-चिह्न है, वे केवल स्त्रियों के लिए हैं, और जिन पर कटार-चिह्न हैं वे स्त्री और पुरुष दोनों के लिए हैं तथा शेष केवल पुरुषों के लिए हैं :—

| | |
|---|---|
| लेखाकार | जीबन-वीमाकार† |
| विज्ञापक | गणितज्ञ |
| शिल्पकार | सचिव |
| कलाकार† | संगीतज्ञ |
| लेखक† | नर्स * |
| बिमानक | वृत्तिक – चिकित्सक * |
| बैंकर | कर्मचारी† |
| खरीददार * | कार्मिक प्रबंधक |
| बढ़ई | औषध कारक |
| रसायनज्ञ | काय-चिकित्सक† |
| नगर-स्कूल अधीक्षक | पुलिस कर्मचारी |

| | |
|---|---|
| तट-रक्षक | मुद्रक |
| दंत-चिकित्सक * | उत्पादन-प्रबंधक |
| आहार-विज्ञ * | मनोविज्ञानविद्+ |
| अभियंता | लोक-प्रशासक |
| कृषक | समाज-विज्ञान अध्यापक |
| वन-सेवा | समाज-सेवी * |
| गृहिणी * | स्टेनोग्राफर |
| प्रयोगशाला-तकनीशियन | सेक्रेटरी * |
| वकील+ | पशु-चिकित्सक |
| पुस्तकाध्यक्ष * | YMCA—YWCA सेक्रेटरी+ |

**कुडर अधिमान रेकार्ड (Kuder Preference Record) :**

स्ट्रांग परीक्षा की सुविधा और सीमा दोनों ही हैं कि यह विशिष्ट व्यवसायों के लिए प्राप्तांक उपलब्ध करती है। यदि कोई व्यक्ति इसके परिणामों का प्रयोग करे, तो उसे उस व्यवसाय को बताना होगा जिसमें उसे रुचि है और प्रत्येक व्यवसाय के लिए अलग से परीक्षा में अंक प्राप्त करने चाहिए। भाग्यवश मशीन द्वारा अंक गणना प्रणाली विकसित हो गई है। अतः, विभिन्न भाषासारणियों पर परिणाम को अधिक शीघ्रता एवं सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। फिर भी स्ट्रांग परीक्षा एक व्यक्ति की रुचि का प्रत्यक्ष सामान्य चित्र प्रस्तुत नहीं करती। इसके लिए कुडर अधिमान रिकार्ड (Kuder Preference Record) अधिक उपयुक्त है। यह सब रुचियों को साधारणतः नौ कौटियों में विभाजित कर देता है : यांत्रिक, संगणनात्मक, वैज्ञानिक, प्रवर्त्तक, कलात्मक, साहित्यिक, संगीतात्मक, सामाजिक, लिपिक।

इसमें भी एक व्यक्ति स्ट्रांग की व्यावसायिक परीक्षा के समान ही परीक्षा देता है। वह अपनी रुचि और अरुचि को सूचित करता है (देखिए, चित्र १४·१३) और नौ रुचि-कोटियों में से प्रत्येक के लिए अंक प्राप्त करता है। तब यह देखने के लिए कि उसकी रुचियाँ विभिन्न व्यवसायों में नियुक्त लोगों के कितनी अनुरूप हैं, परामर्शदाता व्यावसायिक मानकों की ओर जाता है, जो यह सूचित करता है कि लोग इन व्यवसाओं में प्रत्येक कोटि में कैसे अंक प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए परीक्षार्थी अभियांत्रिक (Engineering) के व्यवसाय को सोचता होगा। उचित सारणी की ओर जाकर, उसका परामर्शदाता उदाहरण के लिए उसे बता सकता है कि २७ प्रतिशत अभियंता उतने कम अंक प्राप्त करते हैं, जितने वह 'वैज्ञानिक रुचियों' में प्राप्त करता है, ५० प्रतिशत उतने कम जितने वह 'संगणनात्मक रुचियों' में करता

है, आदि, आदि। दूसरी ओर अपने प्राप्तांकों की तुलना मंत्रियों, शिक्षकों या अन्य व्यवसायों के सदस्यों से करके वह एक भिन्न वृत्ति के अनुरूप योग्यता प्राप्त कर सकता है। इन अन्य योग्यताओं की ओर देखकर परामर्शदाता व्यक्तियों को यह सूचित करने के योग्य होता कि उसकी रुचियाँ अभियांत्रिक, विज्ञान या काय-चिकित्सा की अपेक्षा उन लोगों के अनुरूप हैं, जो बिक्री-विभाग में, शिक्षा-विभाग में या सामाजिक सेवा में नियुक्त हैं।

कुडर का प्रेफरेंस रिकार्ड व्यक्ति की रुचियों का सामान्य चित्र प्रस्तुत करता है।

| | Most | | Least |
|---|---|---|---|
| P Visit an art gallery | ● | P | ● |
| Q Browse in a library | ● | Q | |
| R Visit a museum | | R | ● |
| S Collect autographs | | S | ● |
| T Collect coins | ● | T | ● |
| U Collect butterflies | ● | U | |

**चित्र १४·१३ कुडर के रुचि-परीक्षण के विषयों के दो उदाहरण। पात्र छिद्रक द्वारा निदेशित करता है कि तीन विकल्पों में से वह किसको सर्वाधिक पसंद करता है और किसको न्यूनतम। इस उदाहरण में वह Q को सबसे कम और R को P से भी अधिक तथा S.T. और U में 4 V को सबसे कम पसंद करता है (जी० एफ० कुडर तथा साइंस रिसर्च एसोसिएट्स)।**

## रुचि-परीक्षाओं का प्रयोग (The Use of Interest Tests) :

अभिरुचि-परीक्षाओं की भाँति रुचि-परीक्षाएँ अचूक नहीं हैं। कभी-कभी लोग कुछ परीक्षाओं से एक व्यवसाय में सफल हो जाते हैं—यदि रुचियों में से कोई भी रुचि-व्यवसाय में दूसरों के द्वारा नियोजित हो। परामर्शदाता रुचि-परीक्षाओं से जो निर्णय ले सकता है, वह है कि संभवांश अत्यधिक अनुकूल हैं, अत्यधिक प्रतिकूल हैं या शायद करीब-करीब सम हैं जब कि रुचि प्रतिरूप अत्यधिक अनुकूल दिखायी देते हैं, उस समय की अपेक्षा उन लोगों का अध्ययन, जिन्होंने रुचि-परीक्षाएँ दी हैं, यह प्रदर्शित करता है कि और भी अनेक व्यक्ति व्यवसाय में सफल होने में उस समय असमर्थ होते हैं, जब कि उनकी रुचि-परीक्षा अल्प फलानुमान सूचित करती है।

विद्यार्थी या कोई भी व्यक्ति जो रुचि-परीक्षाओं पर आधारित अत्यधिक प्रतिकूल परामर्श प्राप्त करने के पश्चात् एक व्यवसाय को चुनता है, वह चिंताजनक स्थिति अपनाता है और बाद में अपनी पसंद पर पछता सकता है।

## सारांश

१. योग्यता-परीक्षाएँ और उपलब्धि-परीक्षाएँ (Achievement Tests) इस तथ्य में समान हैं कि दोनों वर्त्तमान उपलब्धि या कार्य का परिमापन करती हैं। मुख्यत: योग्यता-परीक्षाएँ अन्य परिस्थितियों में उपलब्धि की पूर्व सूचना देने के लिए बनी हैं।

२. बौद्धिक योग्यता का मापन करने के लिए जो परीक्षाएँ बनी हैं, वे बुद्धि-परीक्षाएँ कहलाती हैं। वे जो विशेष प्रकार के प्रशिक्षण के लिए या व्यवसाय के लिए विशिष्ट योग्यता का मापन करती हैं, अभिक्षमता-परीक्षाएँ कहलाती हैं।

३. योग्यता की परीक्षाओं में अंतर है कि क्या वे (अ) व्यक्ति या समूह की परीक्षाएँ हैं, (ब) क्या वे शाब्दिक कारकों पर या अशाब्दिक कार्य-संपादन कारकों पर बल देती हैं या (स) इस गति का मापन करती हैं जिससे एक व्यक्ति समस्याओं का समाधान करता है या अपेक्षित समय की ओर बिना ध्यान दिए कठिन समस्याओं के समाधान करने की योग्यता का माप करती हैं। बाद की परीक्षाएँ क्षमता-परीक्षाएँ कहलाती हैं।

४. स्टेनफोर्ड-बीने माप-सारणी एकाकी व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षा है, जो स्कूल के बच्चों के लिए खोजी गई है। इसमें प्राप्तांक होते हैं, जिसे मानसिक आयु कहते हैं और इससे बुद्धि-भजनफल की संगणना हो सकती है, यदि कोई कालिक आयु को जानता है वेशलर वयस्क बुद्धि माप सारणी वयस्कों के लिए एकांगा व्यक्ति की परीक्षा है।

५. बुद्धि की समूह परीक्षाएँ हैं, जिनका प्रयोग एक ही समय में एक बड़े समूह की परीक्षा करने के लिए हो सकता है। इनमें से सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं ओटिस और 'सैनिक सामान्य वर्गीकरण परीक्षा'।

६. बुद्धि एक एकांगी योग्यता नहीं है। कारक-विश्लेषण के द्वारा यह प्रदर्शित किया गया कि परंपरागत बुद्धि-परीक्षाओं में सात योग्यताएँ निहित हैं। अन्य परीक्षाओं की अपेक्षा कुछ परीक्षाएँ इन योग्यताओं को निश्चित महत्त्व देती हैं।

७. वे व्यक्ति जिनका बुद्धि-भजनफल (IQ) ७० से कम है, मानसिक रूप से दुर्बल माने गए हैं। उनको तीन भागों में विभाजित किया गया है—क्षीण बुद्धि, मूढ और जड़ बुद्धि। इन समूहों की सामाजिक बुद्धि का मापन करने के लिए

परीक्षाएँ खोजी गई थीं। सामान्यतः दुर्बल बुद्धि व्यक्तियों की सामाजिक बुद्धि, उनकी बौद्धिक योग्यता की अपेक्षा अधिक है।

८. बुद्धि-भजनफल के विभाजन की चरम सीमा पर बौद्धिक प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति हैं। जिनका बुद्धि-भजनफल १३० और १४० के मध्य हैं, वे श्रेष्ठ माने गए हैं। जिनका १४० से अधिक है, वे प्रतिभा-संपन्न माने गए हैं। इतिहास के अनेक अतिविशिष्ट नेता बौद्धिक प्रतिभासंपन्न थे। सामान्य बुद्धि वालों की अपेक्षा प्रायः प्रतिभासंपन्न व्यक्ति अपने कर्म-क्षेत्र में अधिक सफल शरीर के स्वस्थ एवं अधिक अच्छी तरह समंजित होते हैं, यद्यपि कुछ महत्त्वपूर्ण अपवाद भी हैं।

९. जब संख्या में विभिन्न समूहों के मध्य बौद्धिक योग्यताओं में मापने योग्य अंतर हैं! शाब्दिक योग्यताओं में स्त्रियाँ पुरुषों से श्रेष्ठ हैं। लेकिन, पुरुष स्त्रियों से कुछ दिक्-संबंधी और यांत्रिक योग्यताओं में श्रेष्ठ होते हैं। विशिष्ट योग्यताओं में स्त्रियों और पुरुषों के मध्य अनेक अन्य भिन्नताएँ भी हैं।

१०. प्रौढ़ावस्था में बुद्धि का पतन होने लगता है, लेकिन कुछ योग्यताएँ दूसरों की अपेक्षा अधिक तीव्रता से न्यून होने लगती हैं।

११. 'उच्च' व्यावसायिक समूह के लोग निम्न व्यवसायों की अपेक्षा सामान्यतः अधिक बुद्धिमान होते हैं।

१२. एक व्यक्ति की आनुवंशिकता और गृह-पर्यावरण, जिसमें वह पोषित हुआ है, दोनों ही उसकी बुद्धि से संबंध रखते हैं।

१३. महाविद्यालय और अन्य उच्चतर प्रशिक्षण संस्थानों में सफलता के लिए योग्यता का अनुमान लगाने के लिए शैक्षिक अभिक्षमता-परीक्षाएँ विकसित हुई हैं। व्यावसायिक अभिक्षमता-परीक्षाएँ कुछ विशिष्ट व्यवसायों में सफलता की संभावना को निर्धारित करती हैं।

१४. व्यावसायिक रुचि-परीक्षाएँ व्यावसायिक रुचि में उस मात्रा का मापन करके, जिससे एक व्यक्ति की रुचि उनके अनुरूप होती है, जो व्यवसाय में नियुक्त व्यक्तियों के मध्य प्रायः प्राप्त होती है, अतिरिक्त सहायता देती हैं।

## पठनार्थ सुझाव :

Anastasi, A., and Foley, J. P., Jr. Differential Psychology (3rd. ed.), New York : Macmillan, 1958.

समूहगत मनोवैज्ञानिक विभिन्नताओं का विस्तृत अध्ययन।

Cronbacn, L. J. Essentials of Psychological Testing (rev. ed.), New York : Harper, 1959.

मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का प्रारंभिक परिचय।

Freeman, F. S., Theory and Practice of Psychological Testing, New.York : Helt, Rinehart and Winston, 1950.
मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के सिद्धांत पर ग्रंथ ।

Ghiselli, E. E. and Brown, C. W. Personal and Industrial Psychology (2nd ed.) New York : McGraw—Hill 1955.
व्यवसाय और उद्योग में अभिरुचि के सिद्धांतों और परीक्षणों के प्रयोग पर मानक ग्रंथ ।

Goodenough, F., Mental Testing; Its History, Principles and Applications. New York : Holt, Rinehart and Winston, —1949.
मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के विविध अंगों का विवेचन प्रस्तुत करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रंथ ।

Klineberg, O. Race Differences. New York : Harper, 1935.
विभिन्न जातीय समूहों पर किए गए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का विवरण ।

Super, D. E., Appraising Vocational Fitness by Means of Psychological Tests, New York : Harper, 1949.
वृत्तिक परामर्श एवं नियुक्ति में परीक्षाओं का प्रयोग ।

Terman, L. M. and Oden, M. H. The Gifted Group at Mid-life : Thirty-five years' follow up of the superior child Stanford, Calif : Stanford University Press, 1959.
प्रतिभासंपन्न बच्चों को एक बड़े समूह में लेकर उनका ३५ वर्ष तक जो अध्ययन किया गया, उसका सारांश एक ग्रंथ में प्रस्तुत किया गया है ।

Thurstone, L. L. Primary Mental Abilities, Psychometr. Monogr., 1938, No. 1.
बुद्धि की परीक्षाओं के विकास में प्रयुक्त घारक विश्लेषण की प्रविधियों का विवरण ।

Tyler, L. E. The Psychology of Human Differences (2d. ed.) New York : Appleton—Century—Crofts, 1956.
विविध समूहों की मनोवैज्ञानिक विभिन्नताओं का विवरण ।

Wechsler, D. Measurement and Appraisal of Adult Intelligence (4th ed.) Baltimore : Williams & Wilkings, 1958.
वेशलर वयस्क बुद्धि माप-सारणी का विवरण ।

अध्याय १५

# व्यक्तित्व

व्यक्तियों को अच्छी तरह समझने की इच्छा प्राय: प्रत्येक व्यक्ति की, और विशेषत: मनोविज्ञान के विद्यार्थी की, रहती है। मनोविज्ञान के विविध पक्षों का ज्ञान जिसके अंतर्गत विकास, अभिप्रेरण, अधिगम, प्रत्यक्षण, बुद्धि और परिमापन हैं, इस लक्ष्य को तीव्र करता है। व्यक्तियों को हम उनके व्यक्तित्व के अध्ययन द्वारा भी समझना सीखते हैं। मनोवैज्ञानिक के लिए **यह व्यक्ति के समग्र रूप का तथा सामान्य जीवन-क्रम में अन्य व्यक्तियों के साथ उसके संपर्क का अध्ययन है।**

## व्यक्तित्व की विशेषताएँ (Personality Characteristics) :

जब हम व्यक्ति का उसके यथार्थ जीवन-विन्यास में, अध्ययन करने की चेष्टा करते हैं, हमें तत्काल अत्यधिक असंख्य वस्तुओं का, जिन्हें संभवत: हम देखेंगे, सामना करना पड़ता है। दिवस के प्रत्येक क्षण में वह कुछ-न-कुछ करता है—सोना, खाना, लिखना, कार्य करना, खेलना, बोलना, चलना इत्यादि। वह जो कुछ करता है, यदि उसमें से प्रत्येक घटना को समझने और वर्णन करने की चेष्टा की जाए, तो हम अत्यधिक जटिल एवं अंत में असंभव कार्य में फँस जाएँगे। उदाहरणार्थ, एक बार मनोवैज्ञानिकों के एक समूह ने एक सप्तवर्षीय बालक की केवल एक दिन की क्रियाओं का अभिलेखन करने का प्रयत्न किया (बार्कर और राइट, १९५१)। इसमें उन्हें कोई ४३५ पृष्ठों की पुस्तक तैयार करनी पड़ी। कल्पना कीजिए, यदि हम अनेक व्यक्तियों के कुछ अधिक काल के कार्यों का अभिलेखन करने का प्रयास करें, तो वह विवरण कितना वृहद् होगा!

स्पष्ट है कि व्यक्तित्वों को समझने के लिए हमें कुछ विशेषताएँ निर्धारित करनी होंगी। कुछ सीमा तक ये विशेषताएँ स्वच्छंद होंगी और इस पर भी निर्भर करेंगी कि हम व्यक्ति के संबंध में क्या जानने के लिए सर्वाधिक उत्सुक हैं। कुछ परिस्थितियों में व्यवहार के सामान्य लक्षणों से हमें संतुष्ट होना पड़ेगा। कुछ में उसकी अभिवृत्तियों को महत्त्व देना होगा, कुछ में उसकी प्रेरणाओं को और कुछ में वैयक्तिक समस्याओं के सुलझाने की उसकी विधि को।

अध्ययनार्थ व्यक्तित्व की जो भी विशेषताएँ चुनी जाएँ, उनका अर्थपूर्ण और उपयोगी होना अपेक्षित है। प्रथमत:, **व्यक्तित्व विशेषता** को यथार्थत: विशिष्ट होना चाहिए। उदाहरण के लिए यह जानना हमारे लिए विशेष महत्त्व नहीं रखता कि किसी मंगलवार की सुबह मिस्टर 'ए' क्रोधित थे। उस प्रात:काल जैसी स्थिति थी उसमें कोई भी व्यक्ति क्रोधित होता ही, और उसके बाद एक माह बाद तक वे कभी क्रुद्ध नहीं हुए। जब हम मिस्टर 'एवं' के संबंध में यह जानना चाहेंगे कि वह स्वभावत: एक क्रोधी या आक्रामक व्यक्ति है अथवा साधारणत: सौम्य और शांत प्रकृति का है, पर यदा-कदा अथवा अत्यधिक आक्रोशात्मक स्थिति में ही क्रोधित और उत्तेजित होता है। यदि वह प्राय: सौम्य है और यदा-कदा ही क्रुद्ध होता है, तो हम उसे सौम्य व्यक्ति ही कहेंगे।

द्वितीयत: व्यक्तित्व के जिन पक्षों का हम अध्ययनार्थ चुनाव करते हैं, उनका **प्रभेदकारी** होना आवश्यक है। संयुक्त राज्य अमेरिका के प्राय: सभी वयस्क पुरुष जीविका-निर्वाह के लिए कार्य करते हैं, प्राय: सभी नाई की दुकानों पर केश कटाने जाते हैं। यह हमारे लिए कुछ महत्त्व नहीं रखता कि कोई व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए कार्य करता है अथवा अपने केश कटाता है; क्योंकि ये वे विशेषताएँ नहीं हैं, जो उसे अधिकांश अन्य व्यक्तियों से भिन्न करती हैं। दूसरी ओर अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा कुछ व्यक्ति अधिक कठोर कार्य करते हैं अथवा अधिक बार केश कटाते हैं। ये वे प्रभेदक विशेषताएँ हैं जो मनुष्यों की पारस्परिक भिन्नताएँ प्रकट करती हैं। अतएव, हम 'परिश्रमशीलता' या 'सुव्यस्थित केश-विन्यास' को प्रभेदक व्यक्तित्व विशेषताओं के रूप में स्वीकार करेंगे।

अपने अध्ययन को व्यक्तित्व के उन पक्षों पर, जो विशिष्ट और प्रभेदकारी हैं, सीमित रख कर हम व्यक्तित्व के अध्ययन की समस्या को पर्याप्त सरल कर लेते हैं। तब भी, प्रभेदकारी विशेषताओं की विस्तृत संख्या है। इसके अतिरिक्त ये विशेषताएँ एक दूसरे से सदा सुगमता के भिन्न नहीं की जातीं। उदाहरणत: क्या एक ओर ईमानदारी तथा दूसरी ओर चेतना, सत्यनिष्ठा या विश्वसनीय में स्पष्ट भेद है? व्यक्ति की दूसरों पर निर्भर करने की आवश्यकता तथा उसकी स्नेह पाने की आवश्यकता में क्या अंतर है? इस उदाहरण में एवं अन्य अनेक में हम देखते हैं कि व्यक्तित्व की विशेषताएँ प्राय: परस्पर-व्याप्त और निकट सहसंबंधित होती हैं। इस प्रकार हमारे पास अनेक एक दूसरे से पूर्णत: भिन्न विशेषताओं के संभावित विन्यास हैं। प्रत्येक विन्यास व्यक्तित्व के किसी विशेष पक्ष को स्पष्ट करता है। इस अध्याय में हम विशेषताओं के कई विन्यासों का विवेचन निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत करेंगे (१) लक्षण, (२) प्रकार, (३) योग्यताएँ, रुचियाँ और अभिवृत्तियाँ, (४) प्रेरक और (५) समंजन के स्वरूप।

विशेषक (Traits) :

**व्यक्तित्व का कोई भी पक्ष विशेषक हो सकता है, जो पर्याप्त विशिष्ट और प्रभेदकारी हो।** विशेषक संभवतः किसी व्यक्ति को समझने का हमारे पास सर्वाधिक व्यापक साधन है। यह निर्णय करने की समस्या कि कौन से विशेषक उपयोगी हैं और कौन से नहीं, कठिन है। विशद् शब्द-कोश में लगभग अट्ठारह हजार शब्दों का प्रयोग हुआ जिनका व्यवहार हमारी भाषा में व्यक्तियों के कार्य करने, विचारने, देखने, अनुभव एवं व्यवहार करने के लिए होता है (आलपोर्ट और आडवर्ट १९३६)। इसमें लगभग चार हजार शब्द ऐसे हैं, जिन्हें विशेषक के रूप में स्वीकार किया जा सकता है—जैसे विनम्रता, सामाजिकता, ईमानदारी, सचाई। निःसंदेह इनमें से अनेक शब्द समानार्थक अथवा निकट समानार्थक हैं तथा अनेक इतने विरल और अप्रचलित हैं कि उनका बहुत कम मूल्य है। जब ये समानार्थक और विरल शब्द सावधानीपूर्वक संपादित किए जाते हैं, तब हमारे पास ऐसे लगभग १७० शब्द रह जाते हैं। वैज्ञानिक प्रयोजनों के प्रयोगार्थ यह भी अनुपयुक्त संख्या है। इसे भी अनुसंधान द्वारा कम एवं परिष्कृत करना चाहिए। सीमित लक्षण विन्यासों को पृथक् करने के निमित्त जिस सामान्य विधि का प्रयोग किया जाता है, वह कारक-विश्लेषण विधि है, जिसका उल्लेख अन्यत्र किया गया है।

एक प्रयोग में (कैटेल १९४६), यह देखा गया कि कोशगत १७० विचित्र लक्षण संज्ञाओं की संख्या केवल १२ कारकों में बँध सकती है। इस प्रयोग के प्रथम सोपान में १७१ लक्षण, दूसरे लक्षणों के विन्यास से निकट सहसंबंधित सब लक्षण, एक लक्षण के अंतर्गत संघटित किए गए। इस प्रक्रिया से अनुकरण द्वारा ३५ विशद् लक्षण अथवा लक्षण-पुंज प्राप्त किए गए। तदंतर अनुभवी निर्णायकों के एक लघु समूह ने वयस्क व्यक्तियों के एक बड़े समूह का, जिन्हें वे पर्याप्त भली प्रकार से जानते थे, इन ३५ विशद् लक्षणों के अंतर्गत क्रम निर्धारित किया। जब क्रम-निर्धारण पूर्ण हो गया, तो उनका परीक्षण कारक-विश्लेषण द्वारा हुआ। फलस्वरूप ३५ लक्षणों की संख्या संघटित होकर केवल १२ मूल विशेषकों या कारकों में रह गई (द्रष्टव्य : सारणी १५.१) अन्य शब्दों में, व्यक्तित्व के विवेचन में १२ बुनियादी या मूल विशेषक ३५ लक्षणों के ही सदृश महत्त्वपूर्ण हैं; क्योंकि व्यक्ति के ३५ विशेषकों का क्रम-निर्धारण इन १२ मूल विशेषकों के या कारकों के क्रम-निर्धारण से हो जाता है (द्रष्टव्य : चित्र १५.१)।

सारणी १५·१

| बनाम ( **Versus** ) | |
|---|---|
| १. चक्र विक्षिप्ति<br>संवेदनात्मक अभिव्यंजन, निष्कपट, शांत | अंतराबंध<br>आत्मसंयम, मुख-बंद, चिंतित |
| २. सामान्य मानसिक योग्यता<br>बुद्धिमान, चतुर, दृढ़ | मानसिक दोष<br>बुद्धिहीन, मंद, अभिभूत |
| ३. संवेदनात्मक स्थिरता<br>मनःस्तापी लक्षणों से मुक्त जीवन के प्रति यथार्थ दृष्टिकोण । | मनःस्तापी संवेदनात्मकता<br>विविध मनःस्तापी लक्षण, बहानेबाज, अपरिपक्व । |
| ४. प्रबलता<br>आत्मदृढ़ी, आत्मविश्वासी, आक्रामक | अभिभूतता<br>अभिभूत, अनिश्चयी, शिष्टाचारी |
| ५. उल्लास<br>प्रफुल्ल, हर्षित, रसिक, विनोदी | विषाद<br>खिन्न, निराश, मंद, उत्तेजनाहीन |
| ६ विध्यात्मक चरित्र<br>दृढ़व्रती, समाज के प्रति रुचि | आश्रित चरित्र<br>दुर्बल, सामाजिक जीवन के प्रति अरुचि |
| ७. साहसिक चक्र विक्षिप्ति<br>मिलनसार, भिन्न-लिंगी व्यक्तियों में तीव्र रुचि | असाहसिक अंतराबंध<br>लज्जाशील, भिन्नलिंगी व्यक्तियों में बहुत कम रुचि |
| ८. संवेदनशील शैशवकालीन भावुकता<br>निर्भर, अपरिपक्व, यूथचारी, अवधानित | परिपक्व, कठोर अनिर्णय<br>स्वच्छंद प्रकृति, आत्मनिर्भर |
| ९. सामाजिक, सांस्कृतिक<br>परिष्कृत, अनिर्णयी, संयत, अंतर्दर्शी, संवेदनशील | असामाजिक<br>विचित्र, सामाजिक रूप में बेढंगा, रुक्ष |
| १०. विश्वसनीय चक्र विक्षिप्ति<br>विश्वसनीय, समझदार | संविभ्रम<br>संदेही, ईर्ष्यालु |

| | |
|---|---|
| ११. बोहेमियन संबंधहीनता | रूढ़ व्यावहारिकता |
| अरूढ़िवादी, सनकी | रूढ़िवादी, अभावुक |
| १२. परिष्कृति | सारल्य |
| तार्किक मस्तिष्क, शांत, आवेशपूर्ण विकल वातोन्मादी (Hysterical) | भावुकतापूर्ण मस्तिष्क, अन्य व्यक्तियों की बात पर ध्यान देने वाला। |

**कारक-विश्लेषण-विधि द्वारा उपलब्ध व्यक्तित्व के मूल विशेषकों का एक विन्यास। अनुभवी निर्णायकों के समूह ने वयस्क व्यक्तियों का ३५ विशद् विशेषकों के आधार पर क्रम-निर्धारण किया। विशेषकों को पहचानने के निमित्त परिणामों पर कारकों विश्लेषण का प्रयोग किया, जो समस्त व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए दो-दो थे और लक्षणों की लंबी सूची १२ मूल लक्षणों में संघटित हो गई (कैटेल्स से परिष्कृत, १९४६ )।**

इस पर हमें तत्काल यह निर्णय नहीं लेना चाहिए कि बुनियादी विशेषक केवल १२ ही हैं। उल्लिखित केवल एक उदाहरण है, जो इस विषय पर किए गए अनेक प्रयोगों का परिणाम है। इस प्रकार के अध्ययन में विशेषकों की जो संख्या प्राप्त की जाती है वह जिन व्यक्तियों का, जिन परिस्थितियों या विन्यासों में अध्ययन किया जाता है, जो व्यक्ति अध्ययन करते हैं, निर्णायक जिन लक्षणों की संख्या का उपयोग क्रम-निर्धारण में करते हैं इत्यादि अनेक स्थितियों पर आश्रित है।

एक अन्य प्रयोग में (फिस्के, १९४९) नैदानिक मनोविज्ञान के १२८ ग्रेजुएट-छात्र प्रयोग-पात्र थे। इन छात्रों की योग्यता का क्रम-निर्धारण करने में बाइस लक्षणों का उपयोग किया गया था। वास्तव में क्रम-निर्धारण के तीन वर्ग बनाए गए : एक विभागीय सदस्यों का जो विद्यार्थियों को अच्छी तरह जानते थे, दूसरा अन्य ग्रेजुएट सहपाठी छात्रों का और तीसरा विद्यार्थियों का अपना वर्ग। क्रम-निर्धारण के इन तीनों वर्गों का कारक-विश्लेषण हुआ। इस विश्लेषण के फलस्वरूप पाँच बुनियादी लक्षण निर्धारित हुए, जिनका विवरण सारणी १५·२ में किया गया है। यद्यपि तीनों वर्गों के परिणामों में कुछ अंतर था, फिर भी उन सबमें वही पाँचों लक्षण प्रकट हुए।

मनोवैज्ञानिकों ने लक्षणों के किसी एक निश्चित विन्यास को स्वीकार नहीं किया है। इसकी संभावना भी नहीं है; क्योंकि जिस प्रकार किसी व्यक्ति या दृश्य का कोई एक 'परिशुद्ध' चित्र नहीं होता; उसी प्रकार एक लक्षण-विन्यास सर्वश्रेष्ठ नहीं समझा जाता। इस प्रकार के विन्यास को प्राप्त करना महत्त्वपूर्ण है, जो विशेष प्रयोजन के लिए उपयोगी हो तथा जिसका उपयोग व्यक्तियों में तुलनार्थ किया जा सके।

**प्रकार (Types) :**

अन्य व्यक्तित्व-विशेषताओं के विन्यासों का विवेचन करने से पूर्व हमें व्यक्तित्वों के संबंध में की जाने वाली उस सामान्य भूल को समझ लेना चाहिए। हम प्रायः किसी को कहते सुनते हैं—'जॉन अभिभूत (Submissive) प्रकृति का है,' 'हैरी बहिर्मुखी प्रकृति का है,' अथवा 'डिक डान-जान है।' इस प्रकार के कथन अधिक या कम परिशुद्धता से व्यक्ति के प्रभेदक विशेषकों को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं, परंतु उसकी कोटि का निर्धारण करने में वे अति कर जाते हैं।

कारक विश्लेषण द्वारा निहित लक्षणों का अभिज्ञान।
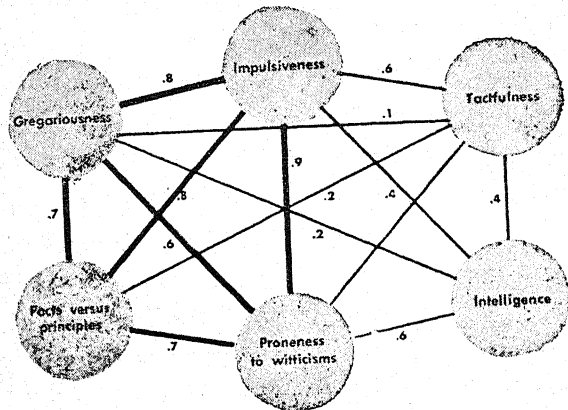
**चित्र १५.१ लक्षणों का संघटन। प्रत्येक गोलाकार संभावित लक्षण को प्रस्तुत करता है, जिसके आधार पर व्यक्ति का योग्यता-क्रम निर्धारित किया गया। जब क्रम-निर्धारण पूर्ण हो गया, तो एक दूसरे से सहसंबंधित कर दिए गए। गोलाकारों को संबद्ध करने वाली रेखाओं पर अंकित संख्या उपलब्ध सहसंबंध है। इस स्थिति में आवेगात्मकता (Impulsiveness), यूथचारिता (Gregariousness) विनोद की ओर उन्मुखता और यथार्थ बनाम सिद्धांत निकट सहसंबंधित है और अनिवार्य रूप में एक लक्षण के रूप में समझे जा सकते हैं (कैटेल्ल के अनुसार, १९५०)।**

किसी व्यक्ति के व्यवहार की कुछ नाटकीय अभिव्यक्तियों से व्यक्तित्व के प्रकारों की ऐसी धारणाएँ उत्पन्न होती हैं। अपेक्षाकृत विरल व्यक्तित्वों के संबंध से अथवा काल्पनिक पात्रों से, जिन्हें सप्रयोजन रोचक और नाटकीय बनाया जाता है। किंतु, हम विरल उदाहरणों का प्रयोग बिना सोचे मॉडल के रूप में अन्य व्यक्तियों के

लिए प्रतिदिन करते हैं। अति कठोर व्यक्ति जो अपने बच्चों को खूब पीटता है, समाज में 'आक्रामक प्रकार' का मॉडल बन जाता है। 'समूह का प्राण माना जाने वाला' अपेक्षाकृत विरल व्यक्ति 'बहिर्मुखी प्रकार' का मॉडल माना जाता है तथा डान-जॉन पौलीना अथवा स्कूज-जैसे औपन्यासिक पात्र ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्वों के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं कि वे अपने-अपने प्रकारों में मॉडल समझे जाते हैं। वास्तव में इस प्रकार के मॉडलों को हम इतना कम देखते हैं कि वे व्यक्तियों के चारित्रिक विशेषकों को स्पष्ट करने वाले प्रामाणिक तरीकों का कार्य शायद ही कर सकें।

व्यक्तियों को प्रकारबद्ध करने में दूसरी बाधा यह है कि यह अनेक भिन्न व्यक्तित्व-विशेषकों को संघटित कर देता है। 'अंतर्मुखी प्रकार' से अभिभूत, आलोचना के प्रति संवेदनशील, भावात्मक अभिव्यक्ति में अंतर्बाधित तथा 'बहिर्मुखी प्रकार' से निर्भय, भावात्मक अभिव्यक्ति में तत्काल स्फूर्त, निजी असफलताओं के बहुत कम प्रभाव की आशा की जाती है। प्रायः यह भी होता है कि एक व्यक्ति अंतर्मुखी के समान संवेदनशील होता है और बहिर्मुखी के समान मिलनसार। दूसरा व्यक्ति बहुमुखी के समान निर्भय होकर भी अंतर्मुखी के समान सामाजिक हास-परिहास से दूर और एकांतप्रिय होता है। अतएव, व्यक्तित्व ऐसी सहज वस्तु नहीं है, जिसे एक मंजूषा में - प्रकार में—भरा जा सके। व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण अनेक विशेषकों में किया जाता है। इनमें से कुछ लक्षण बहिर्मुखी हो सकते हैं और कुछ अंतर्मुखी। इसकी संभावना बहुत कम है कि वे केवल एक ही प्रकार के हों। कुछ विरल उदाहरणों में भी जहाँ उनका संघटन एक प्रतिरूप के अंतर्गत संभव जान पड़ता है, वहाँ भी यह वस्तुतः असंभाव्य है; क्योंकि सभी विशेषक इतने अतिरूप में नहीं होते। अधिकांश व्यक्ति अति प्रकार या अति विशेषक के नहीं होते, वरन् वे दो अति सीमाओं के मध्य कहीं होते हैं (देखिए, चित्र-१५.२)। अतः, व्यक्तियों को प्रकारों में बद्ध करना उपयुक्त नहीं होता।

## योग्यताएँ, अभिवृत्तियाँ और रुचियाँ (Abilities, Attitudes, & Interests) :

योग्यताओं, अभिवृत्तियों और रुचियों के विवेचन के बिना व्यक्तित्व-विशेषताओं का कोई भी विवेचन अपूर्ण है। उदाहरणार्थ, चाहे व्यक्ति की विशेषता यह हो कि वह 'बुद्धिमान', 'संकीर्णमन', और 'क्रीड़ाप्रिय' है। वास्तव में, ऐसी विशेषताएँप्रायः लक्षणों की उस सूची में होती हैं, जिनका प्रयोग व्यक्तित्व के योग्यता-क्रम-निर्धारण में होता है। सारणी १५·१ और १५·२ दोनों में आप देखेंगे कि कुछ लक्षण इन विशेषताओं के लिए प्रयोग किए गए हैं।

योग्यताएँ, अभिवृत्तियाँ और रुचियाँ अन्य व्यक्तित्व-लक्षणों से दो महत्त्वपूर्ण रूपों में भिन्न हैं। प्रथम, वे प्रायः वस्तुनिष्ठ-परीक्षणों ( Objective Tests ) द्वारा

परिमापित किए जाते हैं, अर्थात् ऐसे परीक्षणों द्वारा जो यांत्रिक-निर्णय लेते हैं और निर्णायक की विचारणा का या योग्यता-क्रम-निर्धारण का बिलकुल उपयोग नहीं करते। द्वितीय, वे प्रायः विशिष्ट प्रयोजनों के लिए परिमापित किए जाते हैं। जैसे - विद्यार्थियों या कर्मचारियों का चुनाव, वृत्तिक परामर्श या लोकमत। योग्यताओं, रुचियों और अभिरुचियों का पिछले अध्याय में विवेचन हो चुका है, इसलिए यहाँ उन पर अधिक विस्तार से हम नहीं लिखेंगे (द्रष्टव्य : अध्याय १७ भी)।

सारणी १५·२

| सामान्य लक्षण | वैयक्तिक लक्षण |
|---|---|
| सामाजिक अनुकूलन-क्षमता | प्रसन्न-उदास, वाचाल-मौन, अंतर्दर्शी, साहसिक-संचेत अनुकूलनीय-हठी, शांत-चिंतित, उत्सुक। |
| संवेगात्मक नियंत्रण | दृढ़निश्चयी, सहज-आकुल, आत्मनिर्भर-निर्भर, शांत-चिंतित, उत्सुक, स्पष्ट सीमित, संवेगात्मक अभिव्यक्ति स्पष्ट विस्तृत संवेगात्मक अभिव्यक्ति। |
| अनुरूपता | सहयोग की तत्परता-प्रतिबंधता, गंभीर-चंचल, विश्वसनीय-संदिग्ध, सुस्वभाव, सहज-प्रकृति-स्वकेंद्रित, स्वार्थी, अंतर्भावनाशील-अंतर्भावनाहीन। |
| जिज्ञासु-बुद्धि | विपुलरुचियाँ-सीमित रुचियाँ, स्वच्छंद प्रवृत्ति-निर्भर प्रवृत्ति, कल्पनाशील-कल्पनाहीन। |
| विश्वस्त आत्माभि-व्यक्ति | दृढ़-अभिभूत, वाचाल-मौन, अंतर्दर्शी, भिन्नलिंगी में तीव्र स्पष्ट रुचि-भिन्नलिंगी में अल्प स्पष्ट रुचि, स्पष्टवादी, मुखर-गोपनशील, आत्मसंयमी। |

**सारणी—१५·२ पाँच सामान्य व्यक्तित्व-विशेषक। दाईं ओर प्रदर्शित बाइस वैयक्तिक विशेषक हैं, जिनका प्रयोग १२८ व्यक्तियों के योग्यता-क्रम-निर्धारण में किया गया था। बाईं ओर लिखित योग्यता-क्रम-निर्धारण के कारक-विश्लेषण द्वारा पाँच सामान्य अथवा बुनियादी विशेषकों की सूची है। (फिस्के, १९४९)**

अभिप्रेरक ( Motives ) :

जिन व्यक्तित्व-विशेषताओं का हम उल्लेख कर चुके हैं, उनके अतिरिक्त हम किसी व्यक्ति का विवेचन उसके प्रेरकों और उद्देश्यों की दृष्टि से—वह क्यों करता है और क्या करता है—करना भी संभव है। उदाहरणार्थ, जॉर्ज का व्यवहार मैत्री-पूर्ण एवं हितैषी-सा हो सकता है। ये वांछित लक्षणों को प्रदर्शित करता है, किंतु इसके इस प्रकार के व्यवहार का हेतु यह हो सकता है कि वह मुझे एक बड़ी बीमा पॉलिसी बेचना चाहता हो। दूसरी ओर देवे में ये ही लक्षण केवल इसलिए हो सकते हैं; क्योंकि

उसे मेरी संगति पसंद है। इन दोनों में विशाल अंतर है। जॉन मेरा मित्र होने का बहुत इच्छुक हो सकता है। किंतु, गंभीर और एकांतप्रिय होने के कारण मित्रता को प्रदर्शित करने के लिए अपेक्षित सामाजिक कौशल का उसमें अभाव है। फलस्वरूप मैं उसके प्रेरक को समझने में पूर्णतः भूल कर सकता हूँ, यदि मैं उसके कृत्रिम लक्षणों पर ही विचार करूँ। अतएव, हमें व्यक्तित्व के प्रत्ययों की आवश्यकना है, जो प्रेरकों एवं लक्षणों दोनों को स्पष्ट करते हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि प्रेरक और लक्षण परस्परबाधक विशेषताएँ हैं। इसके विपरीत अनेक लक्षण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रेरकों को स्पष्ट करते हैं। यदि हम किसी व्यक्ति को ईमानदार, योग्य और परिश्रमी समझते हैं, हम निश्चित रूप से उसके प्रेरकों के संबंध में कुछ कहते अथवा संकेत करते हैं। दूसरी ओर, प्रेरकों पर अधिक प्रत्यक्ष रूप से ध्यान को केंद्रित करना भी संभव है और कुछ देर के लिए हमें यह विचार छोड़ देना होगा कि ये प्रेरक अन्य व्यक्तित्व-विशेषताओं से किस प्रकार संबद्ध हैं।

संकीर्ण वर्गीकरण में व्यक्ति को प्रकारबद्ध नहीं किया जा सकता।
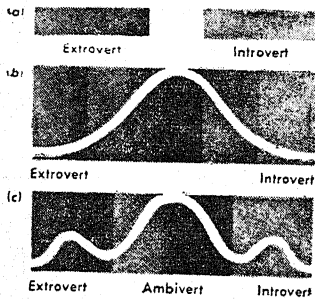
**चित्र १५·२ प्रकारों के प्रत्यय। व्यक्तियों को इन दो प्रकारों में से एक में वर्गीकृत करना सामान्य है, किंतु अशुद्ध है (अ) अथवा अधिकांश को तीन प्रकारों में वर्गीकृत करना (ब) भी अशुद्ध है। उन्हें (ब) के समान, दो चरम सीमाओं के मध्य अधिकांश व्यक्तियों को रखना सातत्यक के साथ वर्गीकृत करना, अधिक शुद्ध है (स्टेग्नर के अनुसार, १९४८)।**

विशेषकों के ही सदृश मनोवैज्ञानिक अब तक भिन्न व्यक्तियों की तुलना के प्रतिमान के रूप में प्रेरकों के किसी विशेष विन्यास पर सहमत नहीं हैं। प्रयुक्त विन्यास व्यक्ति के सैद्धांतिक दिशाज्ञान और वह किसी व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह में क्या खोज रहा है, पर निर्भर करता है। जिस विन्यास का प्रचुर प्रयोग विशेषतः अंतश्चेतनाभिबोधन परीक्षण (Thematic Apperception Test) में किया गया है उसे सारणी १५.३ में स्पष्ट किया गया है।

प्रेरकों का यह विन्यास, कारक-विश्लेषण अथवा किसी सांख्यिकी-विधि द्वारा नहीं चुना गया (मरे, १९३८), वरन् इस पर, व्यक्तित्व के विस्तृत अनुसंधान-कार्य द्वारा जो हारवर्ड साइकोलॉजिकल क्लिनिक में हुआ, पहुँचा गया है। अनेक युवकों का पूर्णतः परीक्षण किया और नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के समूह ने उनसे समालाप किया

तथा उनका अध्ययन किया। शोधकर्त्ताओं ने अनुभव किया कि प्रेरकों का वह विन्यास, जो सारणी में प्रदर्शित है, प्रयोग-पात्र के रूप में चुने गए युवकों के वर्गीकरण एवं योग्यता-क्रम-निर्धारण में संतोषजनक सिद्ध हुआ।

जब से इस प्रकार का अध्ययन किया गया है, व्यक्तित्व के अध्ययन में निपुण मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के संबंध में उपयुक्त तथा उनके योग्यता के क्रम-निर्धारण में पर्याप्त विश्वस्त सूचनाएँ दे सके हैं और व्यक्ति की प्रत्येक आवश्यकता की प्रबलता बता सके हैं।

सारणी १५·३

| अभिप्रेरक | लक्ष्य और प्रभाव |
|---|---|
| अवमान (Abasement) : | दूसरों की अधीनता निष्क्रिय भाव से स्वीकार करना। आघात, दोष और आलोचना को पाना और स्वीकार करना। |
| उपलब्धि (Achievement) : | कठिन कार्यों को करना। दूसरों से प्रतिस्पर्धा करना और उनसे आगे बढ़ना। |
| संबद्धीकरण (Affileation) : | दूसरों का सहयोग पाना और स्वीकार करना। मित्र बनाना। |
| आक्रमण ( Aggression) : | विरोध पर तीव्रता से विजय प्राप्त करना। आघात मिलने पर लड़ना और प्रतिकार करना। दूसरों का अपमान करना, गाली देना या मजाक उड़ाना। |
| स्वायत्तता (Autonomy) : | नियंत्रणों और बंधनों से मुक्त। अपने आवेगों के अनुसार कार्य करने के लिए स्वच्छंद और मुक्त। |
| प्रतिकार ( Counteraction) : | असफलताओं पर पुनर्प्रयत्नों द्वारा अधिकार या विजय पाना। दुर्बलता पर विजय प्राप्त करना और गर्व तथा आत्मसम्मान को उच्च स्तर पर रखना। |
| मतानुवर्तिता (Deferonce) : | श्रेष्ठ व्यक्ति की प्रशंसा करना तथा उसकी सहायता करना। अन्य व्यक्तियों के समक्ष सहज पराजय स्वीकार कर लेना। |

| | |
|---|---|
| प्रतिवाद ( Defendence ) : | आक्रमण, आलोचना या दोष से अपनी रक्षा करना। अपने को निर्दोष एवं न्यायसंगत सिद्ध करना। |
| प्रभुत्व ( Dominance ) : | दूसरों के व्यवहार को नियंत्रित एव प्रभावित करना। नेता होना। |
| प्रदर्शन (Exhibition) : | प्रभाव जमाना। दूसरों द्वारा सुना एवं देखा जाना। प्रदर्शन करना। |
| हानि-निवारण(Harmavoidance): | दुःख, शारीरिक चोट, रोग एवं मृत्यु से दूर रहना। |
| हीनता-निवारण (Infavoidancc): | अवमानना से दूर रहना। असफलता के भय से कार्य न करना। |
| सुश्रूषा (Nurturance) : | रोगी एवं निःसहाय व्यक्ति की सहायता करना एवं सेवा करना। जो कठिनाई में हों, उनकी सहायता करना |
| व्यवस्था ( Order ) : | वस्तुओं को व्यवस्थित ढंग से रखना। स्वच्छता, सुव्यवस्था एवं संगठन प्राप्त करता। |
| खेल-क्रीड़ा (Pely ) : | अवकाशकाल को खेल, क्रीड़ा एव सभाओं में व्यतीत करना। प्रत्येक बात पर हँसना और मजाक करना। प्रफुल्ल एवं प्रसन्न रहना। |
| अस्वीकरण (Rejection) : | अपने से निम्न स्तर के व्यक्ति से दूर एवं उदासीन रहना। दूसरों का तिरस्कार करना और गाली देना। |
| स्ववेदनशीलता (Sentience) : | ऐंद्रिय सुखों एवं संवेदनों को पाने की चेष्टा करना और उनमें आनंद लेना। यथार्थतः कलाओं में आनंद प्राप्त करना। |

**सारणी १५·३ प्रधान वैयक्तिक प्रेरकों का वर्गीकरण (मरे के अनुसार, १९३८)**

## समायोजन की विधियाँ :

व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण का परिज्ञान उनके समायोजन की विशेष विधियों से भी होता है। समायोजन का अर्थ है—परिस्थितियों से किसी व्यक्ति का समझौता करना, विविध परिस्थितियों में आवश्यकताओं और प्रेरकों के अनुकूल समझौता। समायोजन की अनेक चारित्रिक विधियाँ प्रकार हैं। इनका अध्याय ५ में सविस्तर विवेचन किया गया है (मरे, १९३८)। अधिकांश व्यक्ति कभी-न-कभी सभी प्रकार

को विधियों का प्रयोग करते हैं, तथापि वे एक विधि पर दूसरे की अपेक्षा अधिक विश्वास कर सकते हैं।

एक व्यक्ति समायोजन की अंधराबंधवत् ( अंतराबंध) विधि का आश्रय ले सकता है, अर्थात्, अपनी निजी दुनिया में लीन रहना, दूसरा व्यक्ति मनस्तापी विधाओं को अपना सकता है, जैसे अपने व्यवहार में अति बाध्यताकारी या व्यवस्थित होकर, अथवा यह कल्पना करके कि उसे शारीरिक कष्ट हैं और वे ही उसकी असफलताओं के कारण हैं। ये असामान्य व्यक्तित्वों के दुर्बल समायोजन के उदाहरण हैं। परंतु, महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भिन्न व्यक्ति, जिनकी आवश्यकताएँ एक सदृश हैं, अपने पर्यावरण में समायोजन की भिन्न चारित्रिक विधियों को अपना सकते हैं। समायोजन की इन चारित्रिक विधियों के परिमापनार्थ अनेक व्यक्तित्व-परीक्षण अभिकल्पित किए गए हैं।

### व्यक्तित्व-परिमापन :

किसी व्यक्तिविशेष के हित व्यक्तित्व-विशेषताओं का कोई व्यावहारिक उपयोग या विश्लेषण करने के लिए हमारे पास उन्हें मापित करने के साधन होने आवश्यक है। शायद ही कभी हमें व्यक्तित्व के संपूर्ण परिमापनों की आवश्यकता होती है। बहुधा, किसी विशेष प्रयोजनार्थ कुछ विशेष विशेषताओं का ज्ञान अपेक्षित रहता है। उदाहरणार्थ, वैयक्तिक मनोवैज्ञानिक ऐसे व्यक्तियों को चुनना चाहेंगे, जिनकी व्यक्तित्व-विशेषताएँ उन्हें सफल विक्रेता सिद्ध करें। एक सैनिक मनोवैज्ञानिक मनस्तापी प्रवृत्तियों का परिमापन करेगा, जो व्यक्तियों को संकटमय कर्म के लिए असमर्थ बना देती हैं। प्रयोगात्मक मनोवैज्ञानिक चिंता के प्रभाव को अपने प्रत्यक्षीकरण या अधिगम के प्रयोगों पर नियंत्रण करने के लिए चिंता का परिमापन करना चाहेंगे। इन विशेष प्रयोजनों के लिए उपयोगी होने वाली विविध भिन्न विधियाँ हैं।

### पेंसिल-एवं-कागज परीक्षण :

प्राय: किसी भी मनोवैज्ञानिक प्रयोजन के लिए परिमापन का सर्वाधिक सहज प्रकार पेंसिल-एवं-कागज परीक्षण है। यह बहुत सुगमता एवं शीघ्रता से व्यक्तियों के एक बड़े समूह को एक साथ दिया जा सकता है। अत:, पेंसिस-एवं-कागज परीक्षण अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय हैं और गत २० वर्षों में मनोवैज्ञानिकों ने बड़ी संख्या में इनका निर्माण किया है (गिलफोर्ड, १९५९ )।

### प्रश्नावलियाँ :

व्यक्तित्व-विशेषताओं के पेंसिल-एवं-कागज परीक्षण प्राय: प्रश्नावलियों के रूप में होते हैं और जिस व्यक्ति का परीक्षण किया जाता है, उसे प्रश्नों के सहज

उत्तर के रूप में 'हाँ' अथवा 'नहीं' लिखना या कहना पड़ता है। इसके उदाहरण यहाँ दिए जा रहे हैं—

मैं प्रायः अकेले चलचित्र देखना पसंद करता हूँ।

मैं कभी-कभी किसी परिचित से मिलना नहीं चाहता, इसलिए सड़क पार कर लेता हूँ।

मैं अपनी प्रेमिका के साथ बाहर बहुत कम अथवा कभी नहीं जाता।

ऐसे प्रत्येक कथन के प्रति उत्तर में प्रयोग-पात्र 'हाँ' या 'नहीं' या 'सत्य' या 'मिथ्या' लिखेगा और संकेत करेगा कि वह कथन उस पर लागू होता है या नहीं। कुछ प्रश्नावलियों में व्यक्ति को 'संदिग्ध' या 'अनिश्चित' लिखने की सुविधा भी मिलनी चाहिए।

इस प्रकार के व्यक्तित्व-परीक्षण में प्रथम विश्वयुद्ध के समय सर्वप्रथम मान्यता प्राप्त हुई थी। उस समय इसका प्रयोग संवेगात्मक रूप में अस्थिर-मन सैनिकों को सेना से निकालने के लिए किया गया था। परीक्षण में ऐसे वाक्य चुने गए थे, जो ऐसे मनोविकारात्मक लक्षणों को प्रकट कर सकें, जो भविष्य में भावात्मक-विघटन का संकेत देते थे। इसमें इस प्रकार के वाक्य थे—

मैं स्वयं को बहुत अधीर-मन अनुभव करता हूँ।

मैं प्रायः विमन और निराश अनुभव करता हूँ।

### प्रामाण्य समस्या :

किसी भी मनोवैज्ञानिक परीक्षण के निर्माण में प्रामाणिकता का प्रश्न उत्पन्न होता है। व्यक्तित्व-परीक्षणों के संबंध में प्रामाणिक परिमापन का अर्थ है, एक या अधिक व्यक्तित्व-विशेषताओं को संघटित करने वाले परिमापन। किसी भी व्यक्तित्व-परीक्षण को पूर्ण प्रामाणिकता प्राप्त नहीं है। परंतु, प्रश्न यह है कि क्या उस परीक्षण में इतनी प्रामाणिकता है कि उसके परिणामों के आधार पर निर्णयों को प्राप्त किया जा सके ?

प्रथम विश्वयुद्ध के समय से व्यक्तित्व-प्रश्नावलियों में विशद् वृद्धि हुई है। उनकी अभिकल्पना प्रायः संवेगात्मक कुसमायोजन अथवा वहिर्मुखता-अंतर्मुखता-जैसे लक्षणों के परिमापनार्थ की गई है। प्रामाणिकता की समस्या से भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने जब इनका निर्माण किया, तब इनकी प्रामाणिकता किसी-न-किसी रूप में सिद्ध करने की चेष्टा की गई, ताकि प्रामाणिकता की मात्रा एवं जिन परिस्थितियों में वे प्रामाणिक सिद्ध हुई हैं, ज्ञात रहें।

परंतु, लोकप्रिय पत्रिकाओं में लिखित अनेक प्रश्नावलियाँ, जो आपको यह कहने के लिए अभिकल्पित की गई हैं कि क्या आप अच्छे पति, प्रसन्न व्यक्ति, एक

अन्तर्मुखी व्यक्ति इत्यादि हैं, प्रामाणिक नहीं होतीं। उद्योग के क्षेत्र में कर्मचारियों या अधिकारियों के चयनार्थ व्यक्तियों अथवा 'परीक्षण संस्थाओं' द्वारा बनाए गए परीक्षणों की प्रामाणिकता भी ज्ञात नहीं है। यद्यपि परीक्षण के तथ्य प्रामाणिक दृष्टि-गोचर होते हैं, उनकी प्रतिभूति संभव नहीं है। यथार्थतः जब प्रामाणिकता की सिद्धि इतनी कठिन है, तब सर्वाधिक मान्य धारणा यह है कि प्रामाणिक सिद्ध होने के पूर्व तक व्यक्तित्व-परीक्षण अप्रामाणिक रहता है।

व्यक्तित्व-परीक्षणों के प्रामाणिक विकास में वस्तुतः एक गहन समस्या यह है कि व्यक्ति इस परीक्षण के प्रश्नों के **अस्पष्ट-से** उत्तर देता है। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति जिसे यह ज्ञात हो कि भावात्मक कुसमंजन में अधिक अंक प्राप्त करने पर उसे सेना में भरती नहीं किया जाएगा, तो वह जान-बूझ कर इस प्रकार के अधिक अंक प्राप्त कर सकता है। विलोमतः एक व्यक्ति जो पर्याप्त कुसमंजित है, यदि वह उस नौकरी को पाने के लिए कम अंक पाना आवश्यक हो, तो वह प्रायः न्यून अंक प्राप्त कर सकता है। उदाहरणार्थ, प्रथम विश्वयुद्ध में सैनिकों के एक समूह ने युद्ध के प्रारंभ में व्यक्तित्व-परीक्षण में असामान्य अंक प्राप्त किए थे, युद्ध समाप्त होने पर उसी में वह प्रायः सामान्य अंक प्राप्त कर सका।

## मिनीसोटा बहुरूपात्मक व्यक्तित्व सूची (MMPI) :

उपर्युक्त उल्लिखित उदाहरणों के बावजूद पर्याप्त प्रामाणिक व्यक्तित्व-परीक्षणों का निर्माण संभव है। प्रथम, जब परीक्षा देने वाले व्यक्ति अपने उत्तर में ईमानदार हों, तो परीक्षणों और निकष में सहसंबंध प्रदर्शित करना आवश्यक है। द्वितीय, परीक्षणों का स्वरूप इस प्रकार निर्मित होना चाहिए कि उत्तर को अस्पष्ट करना कठिन हो और यदि अस्पष्ट उत्तर दिया भी जाए तो तत्काल पकड़ में आ जाए। ऐसे अनेक परीक्षण हमारे पास है किंतु मिनीसोटा बहुरूपात्मक व्यक्तित्व सूची इसका एक अच्छा उदाहरण है ( हथवे तथा मैककिनले, १९४३ )।

**MMPI** का निर्माण सर्वप्रथम सात नैदानिक वर्गों में वर्गीकृत अनेक सामान्य और असामान्य व्यक्तियों को बड़ी संख्या में प्रश्न देकर किया गया था ( आगे इसका विवरण दिया गया है )। ये प्रश्न विशिष्टतः व्यक्तित्व-प्रश्नावली के रूप में थे और उनमें से अनेक का प्रयोग अन्य परीक्षणों में किया जा चुका था। सदा की भाँति प्रश्नों के उत्तर 'सत्य', 'कह नहीं सकता', या 'मिथ्या' के रूप में थे। प्रत्येक प्रश्न में प्राप्त सामान्य व्यक्तियों के अंकों से, जिनमें उत्तर 'सत्य' था, नैदानिक वर्ग के व्यक्तियों के अंकों की तुलना की। ऐसे प्रश्न, जिनमें सामान्य और असामान्य में अंतर नहीं किया था, अप्रामाणिक घोषित कर के पृथक् कर दिए गए और जिन प्रश्नों में

सामान्य समूह से एक या एक से अधिक नैदानिक समूहों ने अंतर किया था, उन्हें रखा गया। अन्य शब्दों में, जिन प्रश्नों ने सामान्य-असामान्य के निकष से सहसंबंध स्थापित किया, उन्हें प्रामाणिक प्रश्नों के रूप में स्वीकार किया।

अंतिम परीक्षण में ५५० प्रश्न हैं। कुछ प्रश्न किसी एक नैदानिक वर्ग के लिए प्रामाणिक हैं और कुछ अन्य मिश्रित वर्गों के लिए। अंकों के द्वारा इस तथ्य पर विचार किया गया है। सात अंक-श्रेणियाँ हैं, अर्थात् प्रश्नों में सात विविध प्रकारों से अंक दिए जाते हैं, प्रत्येक वर्ग के लिए एक-एक अंक-श्रेणी है। अंक-श्रेणियों के नाम एवं उनके द्वारा परिमापित विशेषताओं का विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

१. रोग भ्रमात्मकता—अपने स्वास्थ्य के प्रति अतिशय चिंता, साधारण लक्षणों का निराशापूर्ण एवं अतिशयोक्तिपूर्ण अर्थ ग्रहण करना।

२. वातोन्माद (हिस्टिरिया)—विविध पीड़ाएँ, जैसे सिर-दर्द और पक्षाघात, जिनका कोई शारीरिक आधार नहीं होता।

३. मनोरोगमय विचलन—असामाजिक एवं अनैतिक आचरण।

४. संविभ्रम – अन्य व्यक्तियों के उद्देश्यों में अति संदेह करना। प्रायः इस प्रकार का विश्वास करना कि कुछ लोग अवश्य उसके विरुद्ध षड्यंत्र-रचना कर रहे हैं।

५. मनोदौर्बल्य—निरर्थक दृष्टिगत होने वाले कार्यों को पुनः करने के लिए असंगत विचार और अथवा तीव्र बल-प्रयोग करना।

६. अंतराबंध—प्रायः विभ्रम और उनके व्यवहार के साथ स्वनिर्मित जगत में अपने को बंदी बना लेना।

७. अवोन्माद (हाइपोमेनिया)—अल्प उल्लास और बिना किसी स्पष्ट कारण के उत्तेजना।

इनके अतिरिक्त नारी और पुरुष की भिन्नताओं को स्पष्ट करनेवाले प्रश्नों को निश्चित करके पुरुषत्व-नारीत्व ( Masculinity-Feminity ) अंक-श्रेणी का निर्माण किया जा सका है। अंत में, झूठ का और स्वयं को अति अनुकूल स्थिति में रखने की कल्पना का पता लगानेवाली अंक-श्रेणियों का निर्माण हुआ है। उदाहरणार्थ, इस प्रश्न को लीजिए : 'मैं कभी-कभी आज किए जाने वाले कार्य को कल पर टाल देता हूँ।' वह व्यक्ति जो स्पष्ट कहने में झिझकता है अथवा परीक्षण के परिणाम को अपने अनुकूल करने की चेष्टा करता है, वह इस प्रश्न का उत्तर देगा, 'मिथ्या', जब कि अधिकांश व्यक्तियों का ईमानदारी से दिया गया उत्तर 'सत्य' होगा। इस प्रकार के अनेक गलत उत्तर, परीक्षक को किसी व्यक्ति को दिए गए परीक्षण की प्रामाणिकता का सही अंकन करने में, असमर्थ कर देते हैं। जिस व्यक्ति के परीक्षण

प्रामाणिक परिणाम प्रस्तुत करते हैं, उसके लिए परीक्षक विविध अंक-श्रेणियों में उसके सापेक्ष स्तर को प्रदर्शित करते हुए एक रूपरेखा बना कर आगे बढ़ सकता है।

( एक अन्य परीक्षण की एक रूपरेखा का उदाहरण चित्र १५.३ में नीचे दिया गया है )

आलपोर्ट-वर्नन-लिंजे अंक-मापनी :

आलपोर्ट-वर्नन-लिंजे स्टडी ऑफ वेल्यूज (आलपोर्ट एट एल, १९५१) व्यक्तित्व-परीक्षण की पेंसिल-एवं-कागज प्रश्नावली का एक अन्य उदाहरण है। यह व्यक्ति के प्रमुख रुचि-क्षेत्रों का परिमापन करती हैं : सैद्धांतिक, आर्थिक, सौंदर्यबोधी, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक।

ऑलपोर्ट-वर्नन-लिंजे स्टडी ऑफ वैल्यूज् व्यक्ति की रुचि के प्रमुख क्षेत्रों का चित्र उपस्थित करता है।

**चित्र-१५ ३ ऑलपोर्ट-वर्नन-लिंजे स्टडी ऑफ वेल्यूज के आधार पर अंकों की रूपरेखा का एक उदाहरण।**

परीक्षण के प्रथम भाग में प्रयोग-पात्र को 'हाँ' या 'नहीं' के रूप में प्रश्नावली का उत्तर देना होगा, जैसे, 'वैज्ञानिक शोध का' प्रमुख उद्देश्य विशुद्ध सत्य की खोज होना चाहिए न कि उसका व्यावहारिक प्रयोग। यदि प्रयोग-पात्र इस कथन से सहमत हो, उसका उत्तर सैद्धांतिक रुचियों में अधिक अंक प्राप्त करने में सहायता देगा, यदि वह असहमत हो, उसका उत्तर आर्थिक रुचियों में अंक प्राप्त करने में अधिक सहायक होगा। परीक्षण के दूसरे भाग में प्रयोग-पात्र को उनके साथ सहमत होने के लिए चार विकल्पों को भी क्रमिक स्थान देना होगा। उदाहरणार्थ, वह अपनी सहमति को आगे दिए गए कथनों द्वारा उनके क्रम-निर्देशन द्वारा अभिव्यक्त करता है।

क्या आप सोचते हैं कि अच्छी सरकार का मुख्य उद्देश्य—

(अ) गरीबों, रोगियों और वृद्धों की अधिक सहायता करना है ?

(ब) निर्माण-कार्य और व्यवसाय का विकास करना है ?

(स) अपनी नीतियों और राजनयिक नीति में अधिक नैतिक सिद्धांतों को प्रविष्ट करना है ?

(द) राष्ट्रों के मध्म सम्मान और प्रतिष्ठा को सुस्थित करना है ?

MMPI के ही सदृश परिणामों की रूपरेखा निर्मित करना संभव है। इस उदाहरण में रुचि के छह मुख्य क्षेत्रों के निमित्त रूपरेखा प्रस्तुत है। इस प्रकार की रूपरेखा का स्वरूप आप चित्र १५.३ में देख सकते हैं।

## परिवेशी परीक्षण (Situational Tests) :

अपनी श्रेष्ठतम स्थिति में भी पेंसिल-एवं-कागज प्रश्नावलियाँ कुछ कृत्रिम रहती हैं। वे व्यक्तित्व के परिमापन का प्रयत्न उसके संबंध में प्रश्नों को पूछ कर करती हैं। व्यक्तित्व-परिमापन की सर्वश्रेष्ठ विधि होगी व्यक्तित्व को ही प्रतिरूप बनाकर, व्यक्तियों को यथार्थ जीवन की स्थितियों में व्यवहाररत् देखना। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए परिवेशी परीक्षणों को साधन बनाया गया है। इनमें परीक्षक या प्रयोक्ता किसी प्रकार की यथार्थ जीवन की स्थिति का निर्माण करके उसके मध्य व्यक्तित्व का प्रेक्षण करता है।

इस प्रकार के परिमापन का एक प्रसिद्ध उदाहरण बच्चों पर ईमानदारी और बेईमानी का प्रयोग है :

"परीक्षक उन्हें देख रहा है, इस ज्ञान के बिना बच्चों को बेईमानी करने की सुविधा देने वाली विविध स्थितियों में रखा गया। एक स्थिति में बच्चों को कुछ मुद्राएँ (सिक्के) प्रतिरूपों में व्यवस्थित करने के लिए दी गईं। इस कार्य को पूर्ण करने के उपरांत उन सिक्कों को एक आलमारी में रखने के लि कहा गया। सिक्कों के अस्पष्ट संकेतों द्वारा प्रयोग-कर्त्ता यह बता सका कि कौन से सिक्के वापस लौटाए गए हैं और कौन से 'चुराए' गए हैं। एक अन्य कठिन स्थिति बालक के समक्ष प्रस्तुत की गई—एक जटिल व्यूह को आँख बंद करके अंगुली से बनाना था—बालक धोखा देकर या 'बेईमानी' से इसमें ऊँचे अंक प्राप्त कर सकता था।

ऐसी अनेक स्थितियों के द्वारा प्रयोक्ता ने बालकों में व्यक्तित्व-विशेषक के रूप में ईमानदारी का पूर्ण अध्ययन किया। उन्होंने अनुभव किया कि ईमानदारी एक एकात्मक विशेषक नहीं है। वे बालक जो एक स्थिति में

प्रामाणिक परिणाम प्रस्तुत करते हैं, उसके लिए परीक्षक विविध अंक-श्रेणियों में उसके सापेक्ष स्तर को प्रदर्शित करते हुए एक रूपरेखा बना कर आगे बढ़ सकता है।

( एक अन्य परीक्षण की एक रूपरेखा का उदाहरण चित्र १५.३ में नीचे दिया गया है )

आलपोर्ट-वर्नन-लिंजे अंक-मापनी :

आलपोर्ट-वर्नन-लिंजे स्टडी ऑफ वेल्यूज (आलपोर्ट एट एल, १९५१) व्यक्तित्व-परीक्षण की पेंसिल-एवं-कागज प्रश्नावली का एक अन्य उदाहरण है। यह व्यक्ति के प्रमुख रुचि-क्षेत्रों का परिमापन करती हैं : सैद्धांतिक, आर्थिक, सौंदर्यबोधी, सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक।

ऑलपोर्ट-वर्नन-लिंजे स्टडी ऑफ वैल्यूज़ व्यक्ति की रुचि के प्रमुख क्षेत्रों का चित्र उपस्थित करता है।

**चित्र-१५ ३ ऑलपोर्ट-वर्नन-लिंजें स्टडी ऑफ वेल्यूज के आधार पर अंकों की रूपरेखा का एक उदाहरण।**

परीक्षण के प्रथम भाग में प्रयोग-पात्र को 'हाँ' या 'नहीं' के रूप में प्रश्नावली का उत्तर देना होगा, जैसे, 'वैज्ञानिक शोध का' प्रमुख उद्देश्य विशुद्ध सत्य की खोज होना चाहिए न कि उसका व्यावहारिक प्रयोग। यदि प्रयोग-पात्र इस कथन से सहमत हो, उसका उत्तर सैद्धांतिक रुचियों में अधिक अंक प्राप्त करने में सहायता देगा, यदि वह असहमत हो, उसका उत्तर आर्थिक रुचियों में अंक प्राप्त करने में अधिक सहायक होगा। परीक्षण के दूसरे भाग में प्रयोग-पात्र को उनके साथ सहमत होने के लिए चार विकल्पों को भी क्रमिक स्थान देना होगा। उदाहरणार्थ, वह अपनी सहमति को आगे दिए गए कथनों द्वारा उनके क्रम-निर्देशन द्वारा अभिव्यक्त करता है।

क्या आप सोचते हैं कि अच्छी सरकार का मुख्य उद्देश्य—

(अ) गरीबों, रोगियों और वृद्धों की अधिक सहायता करना है ?

(ब) निर्माण-कार्य और व्यवसाय का विकास करना है ?

(स) अपनी नीतियों और राजनयिक नीति में अधिक नैतिक सिद्धांतों को प्रविष्ट करना है ?

(द) राष्ट्रों के मध्म सम्मान और प्रतिष्ठा को सुस्थित करना है ?

MMPI के ही सदृश परिणामों की रूपरेखा निर्मित करना संभव है। इस उदाहरण में रुचि के छह मुख्य क्षेत्रों के निमित्त रूपरेखा प्रस्तुत है। इस प्रकार की रूपरेखा का स्वरूप आप चित्र १५.३ में देख सकते हैं।

## परिवेशी परीक्षण (Situational Tests) :

अपनी श्रेष्ठतम स्थिति में भी पेंसिल-एवं-कागज प्रश्नावलियाँ कुछ कृत्रिम रहती हैं। वे व्यक्तित्व के परिमापन का प्रयत्न उसके संबंध में प्रश्नों को पूछ कर करती हैं। व्यक्तित्व-परिमापन की सर्वश्रेष्ठ विधि होगी व्यक्तित्व को ही प्रतिरूप बनाकर, व्यक्तियों को यथार्थ जीवन की स्थितियों में व्यवहाररत् देखना। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए परिवेशी परीक्षणों को साधन बनाया गया है। इनमें परीक्षक या प्रयोक्ता किसी प्रकार की यथार्थ जीवन की स्थिति का निर्माण करके उसके मध्य व्यक्तित्व का प्रेक्षण करता है।

इस प्रकार के परिमापन का एक प्रसिद्ध उदाहरण बच्चों पर ईमानदारी और बेईमानी का प्रयोग है :

> ''परीक्षक उन्हें देख रहा है, इस ज्ञान के बिना बच्चों को बेईमानी करने की सुविधा देने वाली विविध स्थितियों में रखा गया। एक स्थिति में बच्चों को कुछ मुद्राएँ (सिक्के) प्रतिरूपों में व्यवस्थित करने के लिए दी गई। इस कार्य को पूर्ण करने के उपरांत उन सिक्कों को एक आलमारी में रखने के लि कहा गया। सिक्कों के अस्पष्ट संकेतों द्वारा प्रयोग-कर्त्ता यह बता सका कि कौन से सिक्के वापस लौटाए गए हैं और कौन से 'चुराए' गए हैं। एक अन्य कठिन स्थिति बालक के समक्ष प्रस्तुत की गई—एक जटिल व्यूह को आँख बंद करके अंगुली से बनाना था—बालक धोखा देकर या 'बेईमानी' से इसमें ऊँचे अंक प्राप्त कर सकता था।
>
> ऐसी अनेक स्थितियों के द्वारा प्रयोक्ता ने बालकों में व्यक्तित्व-विशेषक के रूप में ईमानदारी का पूर्ण अध्ययन किया। उन्होंने अनुभव किया कि ईमानदारी एक एकात्मक विशेषक नहीं है। वे बालक जो एक स्थिति में

ईमानदार रहते हैं, दूसरी में बेईमान भी हो सकते हैं और इसका विपरीत भी सत्य हो सकता है ।"

व्यक्तित्व-अध्ययन में कृत्रिम स्थितियों के प्रयोग का अन्य उदाहरण स्ट्रैटेजिक सेवाओं के कार्यालय (आफिस ऑफ स्ट्रटेजिक सर्विसेज असेसमेंट स्टॉफ, १९४८) में देखा जा सकता है ।

"द्वितीय विश्वयुद्ध OSS का कार्य था, शत्रुरेखा के पीछे कार्य करने वाले व्यक्तियों का चुनाव करना । इस प्रकार के कार्य के लिए मनोवैज्ञानिकों ने विविध प्रकार की स्थितियाँ विकसित कीं, जो महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व-लक्षणों को परिमापित कर सकें । प्रयोग-पात्रों को, सैनिकों की टुकड़ी को ड्रिल कराना, उन्हें युद्धाभ्यास के प्रयत्न में व्यस्त करना, भारी अस्त्रों को नाले के उस पार ले जाने के लिए अस्थायी पुल का प्रबंध करना, जैसे कार्य दिए गए । स्थिति को यथासंभव प्रबल करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कार्य को जानबूझ कर अधिक कठिन बनाया । उदाहरणार्थ, एक स्थिति में एक व्यक्ति को बहुत अल्प समय में मोटे लट्ठों से दो सहायकों की सहायता से एक बुर्ज बनाने के लिए कहा गया था । वे दोनों नाम मात्र के सहायक थे और वे जानबूझ कर कार्य करने में असफल रहते थे । वे बुर्ज के पूर्ण हो चुके भाग को धक्का देते और प्रयोग-पात्र के साथ कुतर्क करते या उसकी बुद्धि, रूपाकृति या गति की कटु आलोचना करते । ऐसी हताशाओं का सामना करने पर अनेक प्रयोग-पात्र रो पड़े अथवा क्रोध से चिल्ला उठे ।"

परिवेशी-परीक्षणों की 'प्रत्यक्ष प्रामाणिकता' बहुत है; क्योंकि वे वास्तविक वस्तुओं के समान होते हैं । उनकी कोई वास्तविक प्रामाणिकता है या नहीं, यह विवाद का विषय है । OSS प्रयोगों के उदाहरणों में युद्ध की अपेक्षाओं ने परीक्षणों की प्रामाणिकता को अव्यावहारिक बना दिया । उक्त उदाहरण में तथा अन्यों में भी अधिक प्रामाणिकता उपलब्ध करने में अनेक बाधाएँ हैं: (१) संभवतः प्रयोग-पात्रों को उस रूप में अभिप्रेरित करना संभव नहीं होता, जिस रूप में वे वास्तविक जीवन में अभिप्रेरित होते हैं । (२) अनेक उदाहरणों में स्थितियों को प्रयोग-पात्रों से छिपाया नहीं जा सकता कि वे उसे समझ न सकें । और समझ लेने पर पूर्ण स्थिति उन्हें उपहासास्पद प्रतीत होने लगती है । प्रेक्षकों के निर्णयों में प्रायः मतभेद होता है और उससे विश्वसनीय या प्रामाणिक परिमापन स्थिर करना कठिन हो जाता है । इन कारणों के फलस्वरूप परिवेशी परीक्षणों की व्यावहारिक उपादेयता प्रतिपादित होने में कमी रह जाती है । संभवतः अधिक शोध द्वारा इस प्रकार के परीक्षण धीरे-धीरे प्रामाणिक परिमापन साधनों के रूप में विकसित हो सकेंगे ।

**प्रयोगात्मक परिमापन :**

मूल ( बुनियादी ) सिद्धांतों की खोज में रत वैज्ञानिक प्राय: प्रयोगात्मक परिमापनों का प्रयोग करते हैं। ये परिमापन बड़ी मात्रा में व्यावहारिक नहीं होते। व्यक्तित्व के अध्ययन की यही स्थिति है। व्यक्तित्व के अनुसंधान में प्रयुक्त अनेक प्रकार के प्रयोगात्मक परिमापनों में से हम यहाँ दो के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

एक प्रयोग (बोस्टमैन एट० एल०, १९४८) इस सिद्धांत को स्पष्ट करता है कि प्रत्यक्षीकरण को प्रेरक प्रभावित करते हैं—

"कालेज-विद्यार्थियों के एक समूह को पहले आलपोर्ट-वर्नन-लिंजे स्टडी ऑफ वेल्यूज परीक्षा दी गई। यह परीक्षा, आप स्मरण करेंगे कि छह भिन्न रुचियों के क्षेत्रों के आँकड़ों को देती है। प्रयोक्ता प्रत्येक रुचि-क्षेत्र को प्रकट करने वाले शब्दों का चयन करता है। आर्थिक क्षेत्र को प्रस्तुत करने के लिए वे 'डालर'-जैसे शब्द को, और धर्मक्षेत्र के लिए वे 'प्रार्थना' और 'देवता'-जैसे शब्दों को चुनते हैं। तदंतर वे इन शब्दों को संक्षेप में प्रक्षेपण स्क्रीन पर प्रकट करते हैं और प्रत्येक विद्यार्थी को उस शब्द को स्क्रीन पर शुद्ध रूप में पहचानने में जितनी देर लगती है, उसे परिमापित करते हैं। सब परिमापन करने के उपरांत उन्होंने देखा कि प्रदर्शन-काल और रुचि-क्षेत्र सहसंबंधित थे। अर्थात् जिन प्रयोग-पात्रों में आर्थिक रुचियों की प्रधानता थी, वे अर्थ-संबंधी शब्दों को कम रुचि-क्षेत्रों को प्रस्तुत करने वाले शब्दों की अपेक्षा अल्प प्रदर्शन-काल में पहचान गए। अत: रुचि या प्रेरक शब्दों की गति को, जो इन रुचियों या प्रेरकों से संबंधित थे, पहचानने में प्रकट हुए।"

व्यक्तित्व के प्रयोगात्मक परिमापन का दूसरा उदाहरण (माइजेंक, १९४७) इस प्रकार है —

"एक प्रयोग-पात्र आँखों पर पट्टी बाँधे खड़ा है, उसके कालर में एक हुक और धागा लगा है। धागे का दूसरा छोर काइमोग्राफ पर एक पेन से बँधा है, यह रिकार्डिंग कागज को ड्रम के चारों ओर निरंतर घुमाता है। अतएव, वह प्रयोग-पात्र की प्रत्येक गति को या उसके झूमने को अभिलिखित करता है। तदंतर प्रयोक्ता प्रयोग-पात्र से कहता है—वह पीछे गिर रहा है। यदि वह सुझाव-ग्राही होगा, तो वह झूमने लगेगा। वस्तुत: कुछ व्यक्ति इतने सुझाव-ग्राही होते हैं कि यदि उन्हें सँभालने के लिए प्रयोक्ता तैयार न रहे, तो वे गिर पड़ेंगे। प्रत्येक स्थिति में व्यक्ति की सुझाव-ग्राह्यता की मात्रा प्रयोगात्मक विधि से काइमोग्राफ रेकार्ड पर अंकन द्वारा परिमापित की जाती है। इस सुझाव-ग्राह्यता का यह परिमापन अन्य स्थितियों की सुझाव-

ग्राह्यता से सहसंबंधित किया जा सकता है। सामान्यत: ये सहसंबंध अल्प होते हैं और ये निर्देशित करते हैं कि ईमानदारी के सदृश 'सुझाव-ग्राह्यता' भी एकात्मक लक्षण नहीं है।"

जैसा कि आप देख सकते हैं, व्यक्तित्व के अधिकांश प्रयोगात्मक परिमापनों में विशद् यंत्र और प्रक्रिया अपेक्षित हैं। अतएव, वे दैनिक स्थितियों में उपयोगी नहीं हो सकते। व्यक्तित्व के सिद्धांतों को निरूपित करने में एवं अन्य अधिक व्यावहारिक व्यक्तित्व-परीक्षणों को अभिकल्पित करने में सुझाव देने के लिए वे उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

वैयक्तिक प्रत्यक्षालाप :

अब तक जिन व्यक्तित्व-परिमापनों का विवेचन हुआ है, वे वस्तुनिष्ठ परिमापन हैं। वस्तुनिष्ठ परिमापन में प्रयोक्ता को बहुत कम अथवा बिलकुल निर्णय की आवश्यकता नहीं होती, उसे केवल आँकड़ों को पढ़ना या गिनना पड़ता है। उदाहरणार्थ, वह यह गणना कर सकता है कि व्यक्ति ने 'आर्थिक' से 'सैद्धांतिक' कार्यों को कितनी बार अधिक महत्त्व दिया अथवा व्यक्ति ईमानदारी-परीक्षण में कितनी बार धोखा देता है। अथवा प्रयोग-पात्र सुझाव-ग्राह्यता-परीक्षण में कितना झूम उठा है, उसके इंचों की गणना कर सकता है। परीक्षण-स्थिति कोई भी क्यों न हो, जब तक उसके अंकों को सरल-गणना या अंकीय परिमापन-पठन से प्राप्त किया जा सकता है, परिमापन वस्तुनिष्ठ होता है। वस्तुनिष्ठ परिमापन किसी भी सामान्य बुद्धि के व्यक्ति द्वारा जो शुद्ध पठन और गणना कर सकता है, किया जा सकता है।

दूसरी ओर जब कि परिमापन में कोई निर्णय क्रम-निर्धारण या व्यक्ति द्वारा क्रिया विश्लेषण अपेक्षित होता है, तब यह **व्यक्तिनिष्ठगत परिमापन** कहलाता है। संभवत: विद्यार्थी के लिए इसका सर्वाधिक परिचित उदाहरण है, अध्यापक द्वारा निबंध-प्रश्न में उसे दिया गया स्थान। अध्यापक किसी वस्तु की गणना नहीं करता, वह उत्तर पढ़ता है और उसके स्तर पर व्यक्तिनिष्ठ निर्णय लेता है। सामान्यत: व्यक्तिनिष्ठ परिमापन वस्तुनिष्ठ परिमापन की अपेक्षा कम विश्वसनीय होता है। परीक्षकों के मध्य इसमें वस्तुनिष्ठ परिमापन की अपेक्षा सहमति की कम संभावना है। तथापि यह अंतर हमेशा बहुत अधिक नहीं रहता। कुछ निपुण परीक्षक व्यक्तिनिष्ठ आँकड़ों को पर्याप्त विश्वसनीयता से उपलब्ध कर सकते हैं। जब परिमापन के वस्तुनिष्ठ साधनों का अभाव रहता है, जैसा कि कुछ स्थितियों में होता है, तब हम व्यक्तिनिष्ठ परिमापनों से ही यथासंभव लाभ उठाने के लिए विवश होते हैं।

वैयक्तिक प्रत्यक्षालाप व्यक्तित्व-परिमापन के प्राचीनतम साधनों में से एक है। यह स्पष्टत: व्यक्तिनिष्ठ होता है। फिर भी प्रत्यक्षालाप कभी-कभी पर्याप्त

अच्छे परिमापक यंत्र बनाने में सफल होते हैं। यद्यपि मनोवैज्ञानिक और मनश्चिकित्सक वस्तुनिष्ठ परीक्षणों से जितनी सूचना प्राप्त कर सकते हैं, करते हैं, फिर भी प्रायः एक व्यक्तित्व के चित्र को पूर्ण करने के लिए वे प्रत्यक्षालाप पर विश्वास करते हैं। प्रत्यक्षालापकर्त्ता व्यक्ति की संवेगों और अभिवृत्तियों का यथासंभव विस्तृत विन्यास उसके व्यक्तिगत अनुभवों के कहने की सुविधा के लिए, प्रस्तुत करता है। ऐसा करने में प्रत्यक्षालापकर्त्ता न केवल उन बातों पर ध्यान देता है जिन्हें सुनता है, वरन् अधिक अप्रत्यक्ष व्यवहार का भी अवलोकन करता है : व्यक्ति किसी विषय पर किस ढंग से बात करता है—उदाहरणार्थ जब-जब 'माता' का उल्लेख होता है, कंठ-ध्वनि की कोमलता प्रकट होती है और अन्य व्यक्तियों के उल्लेख के साथ एक तनाव प्रकट होता है—अनेक स्थितियों में व्यक्ति सावधानी रखता है कि उसे क्या नहीं बोलना चाहिए। इन विभिन्न प्रकार के अवलोकनों से नैदानिक व्यक्ति के प्रमुख प्रेरकों के, उसके द्वंद्व के हेतुओं के, उसकी समंजन-विधियों और सर्वाधिक उसके समायोजन के औचित्य के चित्र का पुनः निर्माण करने का प्रयत्न करता है।

सारणी १५.४

क्रम-निर्धारण-मापन का एक उदाहरण, जिसका प्रयोग अन्य व्यक्तियों के प्रति आक्रमणकारी व्यवहार के परिमापनार्थ किया गया था।

निर्देशन :—व्यक्ति के व्यवहार का अत्यधिक निकट-वर्णन करने वाले प्रत्येक वर्ग के बाद परीक्षण-चिह्न लगाएँ।

(अ) व्यक्ति (प्रयोग-पात्र) के अन्य व्यक्तियों के प्रति प्रदर्शित विरोधी या आक्रमणकारी व्यवहार की मात्रा :

१. आवश्यक होने पर भी वह क्रोध का परिहार करता है। वह दूसरों पर क्रुद्ध नहीं होता, उनकी आलोचना नहीं करता।
२. बहुत कम क्रुद्ध होता है या अन्य व्यक्तियों की आलोचना करता है। अत्यधिक सताए जाने पर या वस्तुतः आक्रमण किए जाने पर ही वह ऐसा व्यवहार करता है।
३. परिस्थितियों के अनुसार सामान्य मात्रा में क्रोध करता है। क्रोध को प्रकट करने में न तो वह अनिच्छा व्यक्त करता है और न तत्परता।
४. झगड़े और तर्क में प्रायः पड़ता है। बहुधा व्यंग्य करता है। अनेक बातों की जब-तब आलोचना करता है।
५. प्रायः सदैव क्रोध में रहता है। व्यक्तियों के साथ उनका झगड़ा रहता है; क्योंकि सदा तर्क के लिए तत्पर रहता है और अति सामान्य बात पर लड़ने लगता है।

यद्यपि व्यक्तित्व के अध्ययन में प्रत्यक्षालाप का उपयोग किसी अन्य एक विधि की अपेक्षा अधिक विस्तृत रूप में किया जाता है, किंतु इसकी कुछ गंभीर सीमाएँ भी हैं। प्रथम, यह प्रायः पूर्णतः प्रत्यक्षालापकर्त्ता के कौशल पर निर्भर करता है—और समालापन-कौशल को सिखाना एक कठिन कार्य है। इससे भी अधिक कठिन है किसी प्रत्यक्षालाप परिणामों को आँकड़ों में अभिव्यक्ति करना। सामान्यतः परिणामों को केवल वर्णनात्मक शब्दों में अभिव्यक्त किया जा सकता है, वस्तुनिष्ठ आँकड़ों में नहीं। यह प्रत्यक्षालाप के माध्यम से व्यक्तियों की तुलना को कठिन कर देता है अथवा यह कहना भी कठिन होता है कि वास्तव में प्रत्यक्षालापकर्त्ता ने कोई प्रामाणिक परिमापन बनाया भी है। इसका प्रमाण है कि प्रत्यक्षालाप अपने में जितना उपयोगी हो सकता है, वस्तुनिष्ठ परीक्षणों के साथ वह उससे अधिक प्रामाणिक निर्णय पर पहुँच सकता है।

## निर्धारण-मापनी :

वस्तुनिष्ठ रूप में प्रत्यक्षालाप परिमापन की समस्या को अभिव्यक्त करने का आंशिक समाधान निर्धारण-मापनी में प्राप्त किया जा सकता है। इसका उपयोग प्रत्यक्षालाप से अथवा अनौपचारिक अवलोकन से प्राप्त व्यक्तित्व के प्रभावों के अभिलेखन में हो सकता है। निर्धारण-मापनी के अनेक प्रकार हैं।

इनमें से एक सरल मान अनेक व्यक्तित्व-विशेषताओं को अभिलिखित करता है। जैसे—ईमानदारी, विश्वसनीयता, सामाजिकता, परिश्रमशीलता और भावुकता, तथा निर्धारण-मापनी से उस व्यक्ति के विषय में जिज्ञासा करता है, जिसका प्रत्येक विशेषता के लिए १ और ७ के मध्य मान निर्धारित किया गया है। एक अन्य विधि है, निर्धारक को विविध वैकल्पिक विवरण देना और उससे जिज्ञासा करना कि उनमें से मान-निर्धारित किए जाने वाले व्यक्ति के लिए कौन-सा विकल्प सर्वोत्तम होगा। ऐसे परीक्षणों द्वारा परिणामों को ५ या ७ क्रम के मान पर आँकड़ों में परिवर्तित करना प्रायः संभव होता है। ऐसे मानों के निर्माण में, हम प्रायः एक सीमा १ की संख्या और दूसरी सीमा ७ की संख्या स्वीकार करते हैं और साधारण मात्रा का निर्धारण ४ की संख्या से करते हैं। आक्रमणकारी व्यवहार के एक प्रतिमान का उदाहरण आप सारणी १५.४ में देखते हैं (चित्र, १५.४ भी देखिए)।

निर्धारण-मापनी-प्रतिमान इतने सरल हैं कि हम भी उनका प्रयोग किसी व्यक्ति की व्यक्तित्व-संबंधी अपनी धारणाओं को आलिखित करने में कर सकते हैं। किंतु, उनकी सुगमता के कारण हमें मूर्ख नहीं बनाना चाहिए। व्यक्तित्व-परिमापन के अन्य प्रकारों के ही समान ये भी अविश्वसनीय एवं अप्रामाणिक हो सकते हैं।

अपरिपक्व व्यक्तियों के हाथों में आकर वे प्राय: अविश्वसनीय एवं अप्रामाणिक बन जाते हैं। क्रम-निर्धारण-मान प्रविधियों को भी व्यक्तित्व-परिमापनों के अन्य वस्तु-निष्ठ प्रकारों के ही समान प्रामाणिकता के कठोर विश्लेषण को ग्रहण करना चाहिए।

क्रम-निर्धारण-मान सुगमता से अनेक स्थितियों में प्रयोजन एवं अनुयोज्य हैं।
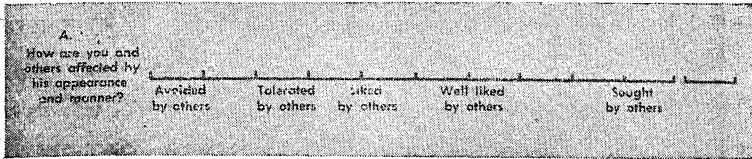
**चित्र १५·४ निर्धारण-मापनी का एक विषय। निर्धारक मान के क्रमों का परीक्षण प्रयोग-पात्र के संबंध में अपनी राय प्रकट करने के निर्देशन में करता है। अंतिम रिक्त स्थान का अर्थ है कि 'प्रेक्षण की कोई सुविधा नहीं है।'**

प्रक्षेपी विधियाँ (Projective Methods) :

व्यक्तित्व-परिमापन की अंतिम विवेच्य विधि **प्रक्षेपी विधि** है। यह विधि प्रक्षेपी कहलाती है; क्योंकि यह प्रयोग-पात्र के समक्ष प्राय: चाक्षुष वस्तु या चित्र की ऐसी स्थिति प्रस्तुत करती है, जो अज्ञात रूप से उसकी व्यक्तित्व-विशेषताओं को इस स्थिति पर प्रक्षेपण द्वारा अभिव्यक्त कर देती है। उसके समक्ष कोई वस्तु या चित्र उपस्थित किया जाता है और उससे कहा जाता है कि वह जो देखता है, उसे अभिव्यक्त करे अथवा उसके संबंध में कोई कहानी कहे। अपने कथन में वह उस वस्तु या जिनके विषय में कह रहा है, उन व्यक्तियों की कुछ ऐसी विशेषताओं का उल्लेख करता है कि उसकी अपनी विशेषताएँ अभिव्यक्त हो जाती हैं। कम-से-कम प्रक्षेपी परीक्षण का यही सिद्धांत है और इसीलिए इसे प्रक्षेपी कहा जाता है।

प्रक्षेपी विधियों के अनेक प्रकार हैं। इनमें से अंतश्चेताभिबोधन परीक्षण (थैमेटिक ऐपर्सेप्शन टेस्ट, TAT) और रोश परीक्षण (Rorshach Test) द। अति प्रसिद्ध हैं और नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इनका बारंबार प्रयोग किया जाता है।

अंतश्चेताभिबोधन परीक्षण में २० चित्र हैं (मौरगन और मरे, १९३५)। प्रत्येक चित्र इस प्रकार से अस्पष्ट होता है कि उसकी अनेक प्रकार से व्याख्या की जा सकती है। ऐसे चित्रों का एक उदाहरण चित्र १५.५ में दिखाया गया है, यद्यपि यह परीक्षण-चित्रों में से नहीं है। परीक्षार्थी के समक्ष चित्र प्रस्तुत करके उससे पूछा जाता है कि

चित्र में उसे जो कुछ दिखायी देता है, उस पर वह एक कहानी की रचना करे। कहानी ऐसी घटनाओं से प्रारंभ होती है, जिनका अंत चित्र के दृश्य में होता है। अधिकांश व्यक्ति जब इस प्रकार की कहानी की रचना करते हैं चित्र के किसी एक पात्र से अपना तादात्म्य कर लेते हैं और प्राय उनकी कहानियाँ बारीक आवरण से आवृत्त आत्मकथाओं से अल्प ही भिन्न हो सकती हैं। इस प्रकार परीक्षार्थी अपनी उन भावनाओं और इच्छाओं को अभिव्यक्त कर देता है, जिन्हें संकोचवश स्पष्ट नहीं कह सकता या स्वेच्छा से उन्हें अपनी इच्छाओं के रूप में स्वीकार नहीं कर सकता।

**चित्र १५.५ अंतश्चेताभिबोधन-परीक्षण का एक उदाहरण। प्रयोग-पात्र को एक कार्ड दिखाकर इस चित्र के विषय में उसे कहानी कहने के लिए कहा गया। उससे कहा गया कि चित्र में प्रदर्शित स्थिति उस स्थिति तक पहुँचने वाली घटनाओं, चित्र के पात्रों की भावनाओं और विचारों को तथा इस स्थिति के परिणाम को स्पष्ट करे (मरे, १९४३)।**

TAT का जिस प्रकार प्रयोग होता है उसका कोई प्रतिमानित प्रतिमान नहीं है। परीक्षक इसकी व्याख्या कहानियों की कथावस्तुओं के आधार पर करता है: नायक की इच्छाएँ और हताशाएँ, नायक का भिन्न-लिंगी व्यक्तियों, माता-पिता अथवा अन्य शक्तिशाली व्यक्तियों से संबंध और कहानियों में व्याप्त भावात्मक ध्वनि, निराशामय है अथवा अति आशामय, इत्यादि।

**रोशा परीक्षण :**

(TAT) की अपेक्षा अधिक वस्तुनिष्ठ है. और उससे अधिक अस्पष्ट भी।

रोशा परीक्षण (१९४२) में चित्र १५.६ के सदृश स्याही के १० धब्बे थे, यद्यपि इन धब्बों के कुछ भाग रंगीन थे। प्रयोग-पात्र के समक्ष प्रत्येक कार्ड प्रस्तुत किया गया और उससे पूछा गया, 'यह क्या हो सकता है?' अथवा 'इसे देखकर

आपको क्या स्मरण आता है ?' १० कार्डों के इन प्रश्नों के उत्तरों के उपरांत प्रयोग-पात्र उन्हें फिर से देखता है कि धब्बों के किन भागों ने उसे अपने उत्तरों के लिए सुझाव दिए ।

कुछ आँकड़ों की गणना वस्तुनिष्ठ रूप में की गई कि प्रयोग-पात्र धब्बे के किसी **अंश** के आधार पर कितनी बार उत्तर देता है और **पूर्ण** धब्बे के आधार पर कितनी बार। अन्य बातों के आधार पर भी गणना की जा सकती है, जैसे रंग के आधार पर (रंगीन धब्बे में)। उत्तरों की संख्या और गति का सुझाव देने वाले उत्तरों की संख्या। दूसरी ओर, नैदानिक मनोवैज्ञानिक न केवल भिन्न प्रकार के उत्तरों की व्याख्या करता है, वरन् उन उत्तरों के प्रतिरूपों का भी विवेचन करता है। यह कुछ व्यक्तिनिष्ठ या आत्मनिष्ठ हो जाता है। अन्य संकेतों पर आधृत विश्लेषण और भी आत्मनिष्ठ होते हैं, जैसे परीक्षण के बीच में कही गई सहज उक्तियाँ, भावात्मक अस्थिरता के चिह्न एवं उत्तरों के प्रतीकात्मक अर्थ।
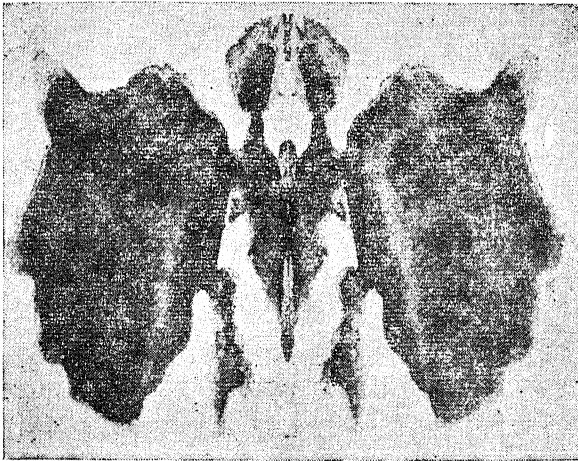
**चित्र १५·६ रोशा स्याही के धब्बे का एक उदाहरण। इसके सदृश धब्बे प्रयोग-पात्र को दिखाए गए और उससे पूछा गया कि वह इनमें क्या देखता है? अंत में प्रयोग-पात्रों के उत्तरों को अभिलिखित किया गया। परीक्षक अधिक गहराई से उनका पता लगाता है कि प्रयोग-पात्र प्रत्येक कार्ड-सबधी अपने उत्तर को किस आधार पर निर्धारित करता है।**

नैदानिक मनोवैज्ञानिक नियमित रूप से रोशा और टीएटी-जैसे प्रक्षेपी परीक्षणों का प्रयोग करते हैं तथा उनका विश्वास है कि उनके द्वारा वे व्यक्ति के व्यक्तित्व

के संबंध में ज्ञान प्राप्त करते हैं। संभवतः वे ऐसा करते हैं। अंततः प्रक्षेपी परीक्षण सूक्ष्म प्रकार का समालाप है। दुर्भाग्य से इन परीक्षणों की प्रामाणिकता के प्रत्यायक प्रमाणों का अभाव है। अतएव, हमें उनके महत्त्व-संबंधी निर्णयों को व्यक्तित्व-परिमापनों के साधन रूप में सोच-समझ कर प्रयोग करना चाहिए। इस संबंध में अभी और अनुसंधान की आवश्यकता है।

## व्यक्तित्व का विकास किस प्रकार होता है :

हमने व्यक्तित्व को देखने के विविध दृष्टिकोणों का एवं उसके परिमापन की विविध प्रणालियों का वर्णन किया है। अब कारण और कार्य के विषय में प्रश्न उठाना न्यायसंगत होगा। किस प्रकार एक ओर जैविक आनुवंशिकता और दूसरी ओर सामाजिक पर्यावरण व्यक्तित्व के विकास में योग देते हैं? जहाँ तक अधिगम का महत्त्व है, किस प्रकार के प्रभाव व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं? व्यक्ति जो कुछ बाल्यकाल में अधिगत करता है, उसका अधिक महत्त्व है अथवा परवर्त्ती अधिगम का, अथवा प्रतिक्रम ठीक है? व्यक्तित्व की भिन्नताओं के कारण क्या हैं? किस प्रकार कुछ व्यक्ति 'सबल' व्यक्तित्व विकसित करते हैं और अन्य 'निर्बल'?

इन प्रश्नों के सामान्य और विशिष्ट दोनों प्रकार के उत्तर हैं। किसी व्यक्तिविशेष को समझने के लिए, यह जानना आवश्यक है कि उसके जीवन पर किन विशेष प्रभावों का प्रभाव रहा है तथा ये प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर भिन्न होंगे। दूसरी ओर, हम सभी किसी-न-किसी मात्रा में ऐसे अनेक प्रभावों से प्रभावित होते हैं। अतएव, व्यक्तित्व-विकास में प्रमुख प्रभावों का वर्णन संभव है। इस अनुभाग में हम यही स्पष्ट करेंगे।

## आनुवंशिक पूर्वानुकूलता :

प्रभावित करने वाले कारकों में आनुवंशिकता एक है। जैसा कि अनेक मनोवैज्ञानिक तथ्यों के लिए सत्य है, व्यक्तित्व भी प्रत्यक्ष रूप से आनुवंशिक नहीं है, केवल व्यक्तित्व के किसी विशेष प्रकार से विकसित होने की **पूर्वानुकूलता** आनुवंशिक है। इसका अर्थ है कि एक व्यक्ति पूर्णतः पूर्वनिर्धारित प्रतिरूप या विशेषक को नहीं, वरन् प्रवृत्तियों को जन्म से प्राप्त करता है। व्यक्तित्व के पूर्वानुकूलित रूप को कितनी मात्रा तक वस्तुतः वह प्राप्त करता है, यह पर्यावर्णीय कारकों पर निर्भर करता है। अधिगम के विशेष अवसर की प्राप्ति के पूर्व ही आप शिशु में पूर्वानुकूलन के कुछ रूपों को देख सकते हैं। आप शिशुओं में कुछ प्रमुख अंतर प्रायः पाएँगे। एक बालक अति क्रियाशील होता है और दूसरा बहुत शिथिल। एक बालक अधिकांश समय रोता और जिद्द करता है, जब कि दूसरा इतना अधिक शांत रहता है कि उसकी

माता उसे बाल-रोग-विशेषज्ञ के पास ले जाती है कि बालक को कोई रोग तो नहीं है। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार के कुछ अंतर कुछ सीमा तक अंतर्जात होते हैं।

आनुवंशिक पूर्वानुकूलता के वैज्ञानिक प्रमाण कुछ प्रकार के व्यक्तित्वों के तथाकथित 'मानसिक रोगों' के अध्ययन से प्राप्त होते हैं। अध्याय—५ में विवेचित इनमें अनेक प्रकार के मानसिक रोगों की आनुवंशिकता का अध्ययन प्राप्त होता है, किंतु एक का उल्लेख उदाहरण के लिए पर्याप्त होगा (कालमन, १९५१)।

संयुक्त राज्य अमरीका में अंतराबंध के सामान्य रोगी एक प्रतिशत से भी कम हैं। यदि माता-पिता में से कोई एक रोगी है, तो उसके बच्चे में संख्या १० प्रतिशत बढ़ जाएगी। यदि परिवार में एक बालक में यह रोग होता है, तो संख्या १५ प्रतिशत हो जाएगी और उसके भाई या बहन में भी रोग प्रकट होने लगेगा। बंधुल-जुड़वाँ बच्चों में जो साधारण भाई-बहनों के ही सदृश आनुवंशिकता में भिन्न होते हैं, यह विषमता १०० में १५ ही रहती है, अर्थात् जुड़वाँ बच्चों में से एक तो अंतराबंधी होगा ही, दूसरे के भी होने की संभावना रहती है। एकरूप-जुड़वाँ में यह विषमता बढ़ जाती है तथा १०० में ८५ हो जाती है, और उनमें से एक के अंतराबंधी होने पर दोनों ही अंतराबंधी हो जाते हैं। कुछ भिन्न संख्या से इसी के सदृश परिणाम अन्य दो व्यक्तित्व-प्रतिरूपों के अध्ययन से भी प्राप्त हुआ है (द्रष्टव्य, सारणी-१५·५)।

इस प्रकार के चित्र अंतराबंध एवं कुछ अन्य 'मानसिक रोगों' के विकास में आनुवंशिक पूर्वानुकूलता को बलपूर्वक प्रमाणित करते हैं। यह निश्चित है कि एक परिवार के सदस्य कुछ एक ही प्रकार का पर्यावरण प्राप्त करते हैं, बंधुल-जुड़वाँ तथा एकरूप जुड़वाँ में विषमता के अंतर—१०० में ८५ की तुलना में केवल १५—का दायित्व इस पर नहीं है। इसके अतिरिक्त एकरूप जुड़वां बच्चों का **भिन्न पालन-पोषण** करके भी अध्ययन किया गया है। उनमें लगभग विषमता की वही मात्रा रहती है, जो एक साथ पालित एकरूप-जुड़वाँ में होती है। अतएव, हमें यह निर्णय लेना पड़ता है कि कुछ असामान्य व्यक्तित्व-प्रतिरूपों के विकास में आनुवंशिक जैविक साधनों का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। तथापि यह तथ्य, कि एकरूप जुड़वाँ में भी यह विषमता १०० न होकर ८५ ही होती है, पर्यावरण के लिए कुछ स्थान छोड़ देता है।

अब तक हम यह नहीं जानते कि ये पूर्वानुकूलन आनुवंशिक किस प्रकार होता है। यह संभव है कि यह प्रक्रिया संबद्ध जीन से एंजाइम और मस्तिष्क में उपाय-चयनीय प्रक्रिया तक है, किंतु यह केवल अनुमान है। इसमें संभवतः अंतःस्रावी ग्रंथियों का भी योग है।

## सारणी १५·५

### सामान्य जनता में मानसिक रोग के तथा मानसिक रोगियों के रक्त-संबंधियों के उदाहरण (कालमन, १९५१)।

| मानसिक व्याधियों के प्रकार | सामान्य जनता के उदाहरण प्रतिशत | संबंधियों से उदाहरण प्रतिशत | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | | माता-पिता | अर्द्ध रक्त-संबंध | पूर्णरक्त-संबंध | भ्रातृ जुड़वें | समरूप जुड़वे |
| अंतराबंध उन्मत्तीय-पीड़ा | ०९ | ९.३ | ७·१ | १४ २ | १४·५ | ८६ २ |
| मनोविक्षिप्ति | ०४ | २३·४ | १६.४ | २३·० | २६·३ | ९५·७ |
| अंतर्वलित-विषण्णता | १·० | ६·४ | ४·५ | ६ ० | ६.० | ६०·९ |

### अंतःस्रावी ग्रंथियाँ :

कुछ उदाहरणों में अंतःस्रावी ग्रंथियों की असामान्यताएँ व्यक्तित्व में स्पष्ट देखी जाती हैं। गलग्रंथि के न्यून-स्राव के फलस्वरूप शिथिलता और निष्क्रियता होती है और इस न्यूनता के अधिक बढ़ने पर मानसिक विकार या मनोवैकल्य भी हो जाता है। गलग्रंथि के अति-स्राव के फलस्वरूप अतिक्रियाशीलता, कूदना-फाँदना और ऐसे अन्य क्रियाएँ होती हैं। अंतःस्रावी ग्रंथियों के महत्त्व को अध्याय-१९ में प्रतिपादित किया गया है। अब तक व्यक्तित्व की विभिन्नताओं को निर्देशित करने के लिए केवल अति-न्यून स्राव अथवा अत्यधिक स्राव का ही निदेशन किया गया है। यह विचारणीय है कि अंतःस्रावी क्रियाएँ व्यक्तित्व के सामान्य परिवर्तनों को सूक्ष्मता से प्रभावित कर सकती हैं, किंतु इसके अधिक प्रमाण अभी उपलब्ध नहीं हैं।

'व्यक्तित्व-सिद्धांतों' के अंतर्गत आगे शारीरिक संरचना और व्यक्तित्व के संबंध का विवेचन किया गया है।

### योग्यताएँ :

प्रत्येक व्यक्ति में कुछ जन्मजात योग्यताएँ होती हैं, जो धीरे-धीरे परिपक्वता एवं अधिगम द्वारा विकसित होती हैं। इसमें संदेह की संभावना कम है कि आनुवंशिकता इन योग्यताओं को आंशिक रूप में निर्धारित करती है (अध्याय—२)। बुद्धि-जैसे विषयों को अधिगम करने-समझने और सुलझाने के निमित्त मनोवैज्ञानिक अधिक सामान्य योग्यताओं का उल्लेख करते हैं, वे उन्हें विशेष योग्यताएँ कहते हैं, जैसे संगीत या यांत्रिक कार्यों के लिए प्रतिभा, अभिक्षमता (अध्याय—१४)। ये योग्यताएँ,

जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, कुछ सीमा तक व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंश होती हैं। व्यक्तित्व-विकास में इनका महत्त्वपूर्ण प्रभाव भी रहता है।

एक गलत, किंतु प्रचलित धारणा है कि अति बुद्धिसंपन्न बच्चे शरीरिक दृष्टि से दुर्बल होते हैं या उनका व्यक्तित्व कुछ विचित्र अथवा रूग्नतंत्री होता है। कुछ उदाहरण इसके हैं, परंतु सामान्य नियम के रूप में यह धारणा गलत है। मनोवैज्ञानिकों ने अत्यधिक बुद्धिसंपन्न—प्रतिभाशाली बालकों का विस्तृत अध्ययन किया है और वे इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि ऐसे बालक सामान्य बालकों की अपेक्षा सामान्यतः शारीरिक दृष्टि से अधिक बलशाली एवं स्वस्थतर होते हैं, संवेगात्मक दृष्टि से अधिक संयत होते हैं और उनका समायोजन भी अपेक्षाकृत अच्छा होता है (चित्र—१५·७)। अधिक बुद्धिसंपन्नता की श्रेष्ठता केवल बालकों तक ही सीमित नहीं है, वरन् वयस्कों के लिए भी यह सत्य है। इस सहसबंध के संभवतः दो सामान्य कारण हैं। एक **जैवि** और दूसरा **सामाजिक**। कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा जैविक दृष्टि से सब रूपों में श्रेष्ठतर प्राणी होते हैं। श्रेष्ठतर शारीरिक शक्ति और स्वास्थ्य के हेतु तंत्रिका-तंत्र की श्रेष्ठतर क्रिया भी उत्पन्न कर सकते हैं और अप्रत्यक्ष रूप से श्रेष्ठतर बुद्धि के भी कारण बनते हैं। दूसरी ओर, श्रेष्ठतर बुद्धि व्यक्ति की श्रेष्ठतर सामाजिक समंजन में सहायता करती है। व्यक्तित्व को जब हम ऐसे समंजनों का संश्लिष्ट रूप स्वीकार करते हैं, तब श्रेष्ठतर बुद्धि को 'श्रेष्ठतर' व्यक्तित्व के विकास का एक महत्त्वपूर्ण कारक होना चाहिए। उदाहरणार्थ, बुद्धिमान बालक जॉनी शीघ्र ही यह ज्ञान सीख लेता है कि उसके शैतान और अप्रिय होने के कारण नहीं, वरन् सिर की पीड़ा के कारण माता क्रुद्ध और खिन्न हो उठेगी। बालक जितना बुद्धिमान होगा, उतनी ही जल्दी वह भविष्य के परिणामों को देख सकेगा और संतोष को पाने के लिए वह सांप्रतिक आवश्यकता को एक या दो दिन के लिए स्थगित कर देगा। व्यक्तित्व को मान्यता या प्रशंसा दिलवाकर बुद्धि उसे प्रभावित करती है। बुद्धिमान बालक अपनी उपलब्धियों के लिए अपने माता-पिता एवं अध्यापकों से पुरस्कृत होता है। यांत्रिक योग्यता से युक्त बालक एक अपरिपक्व रेडियो-यंत्र बनाने में रुचि लेता है और इस प्रकार अपनी उपलब्धि के लिए अपने बड़ों से तथा मित्रों से मान्यता या प्रशंसा प्राप्त करता है। बुद्धि और विशेष योग्यताएँ बालक या वयस्क को ऐसी क्षमता के विकास की सुविधा देती हैं जिनसे वह विश्वास, आत्मयोग्यता एवं आत्मसम्मान की भावना अर्जित करता है।

योग्यताएँ अपना अभिप्रेरण भी प्रस्तुत करती प्रतीत होती हैं। विशेष प्रतिभासंपन्न व्यक्ति में प्रायः उसे व्यक्त करने का तीव्र प्रेरक भी रहता है। उदाहरणार्थ, प्रसिद्ध संगीतज्ञ हाडेल का पिता ऐसा था, जो अपने पुत्र की संगीत-रुचि

का तीव्र विरोध करता था। बालक हांडेल कठोर दंड के उपरांत भी रात्रि के समय छिप कर छत पर चला जाता और संगीत ( Harpsichord ) का अभ्यास करता। ऐसे प्रबल प्रेरकों के फलस्वरूप बालकों की असाधारण योग्यता बाल्यकाल से ही प्रदर्शित होने लगती है।

बहुत बुद्धिमान बालक शारीरिक शक्ति में सामान्य बालकों की अपेक्षा श्रेष्ठतर होते हैं।
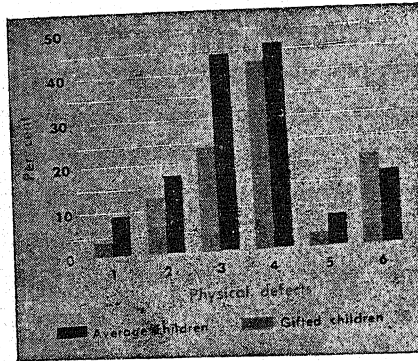
**चित्र १५.७ प्रतिभा-संपन्न एवं सामान्य बालकों (नियंत्रित-समूह) के शारीरिक विकारों की तुलना। हल्के रंग की रेखाएँ प्रतिभाशाली बालकों और काली रेखाएँ सामान्य बालकों के लिए हैं। प्रत्येक उदाहरण में रेखा की ऊँचाई बालकों के विशेष विकार के प्रतिशत प्रस्तुत करती है!**

**१. बार बार सिर-पीड़ा, सामान्य दुर्बलता के लक्षण, ३. मुख-श्वास क्रिया, ४. कभी-कभी अथवा बार-बार शीत, ५. दुर्बल या अति दुर्बल श्रवण ६. कुछ बिकारग्रस्त या दुर्बल दृष्टि (टर्मन के अनुसार, १९४३)।**

संस्कृति (Culure) :

व्यक्तित्व का विकास इस पर निर्भर करता है कि व्यक्ति का पालन-पोषण संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ, या न्यू गिनिया के जंगलों में अथवा उच्च अर्थ-संपन्न परिवार में हुआ या निम्न परिवार में। ये तथा अन्य परिस्थितियाँ, जिनमें व्यक्ति रहता है, संस्कृति और उप-संस्कृति को निर्मित करती हैं। संस्कृति पर्याप्त मात्रा में व्यक्ति के अनुभवों को निर्धारित करती है, जैसे उसकी कुंठाएँ और समा-योजन जिनका उसे सामना करना पड़ता है तथा उसके लिए अपेक्षित आचरण के प्रतिमान। प्रत्येक संस्कृति के मूल्य, शिक्षाएं एवं व्यवहार के रूप भिन्न होते हैं। यह बालक के प्रशिक्षण पर एव परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ उसके संबंध पर कुछ नियमों को निर्देशित करती है। अतएव, विभिन्न रूपों में यह व्यक्तित्व को प्रभावित करती है (लिंटन, १९४५)।

ऐसे प्रभाव प्रत्यात्मक रूप से आदिम समाजों और उनसे संबंधित व्यक्तित्व की विशेषताओं से संस्कृति की विभिन्नताओं द्वारा सर्वाधिक प्रतिपादित होती हैं।

उदाहरणार्थ, बाली-निवासी अंतर्मुखी कहलाते हैं और उनकी संवेगात्मकता मंद होती है। उनमें स्नेहशील आसक्ति का अभाव रहता है, प्रायः प्रत्येक व्यक्ति अपने-आप में सीमित रहता है। नावाहो इंडियन्स ( Navaho Indians ) शारीरिक कष्टों के समक्ष शांत और सहनशील रहते हैं। एस्किमो रुक्ष व्यक्तिवादी होते हैं। न्यू-गिनिया की आर्पेश जाति अहं और स्पर्धाहीन प्रतीत होती है।

बाली-निवासियों में संवेगात्मक अनुक्रिया के अभाव का हेतु बालक की पोषण-विधि में देखा गया है। अधिकांश बच्चों का पोषण नन्हीं लड़कियों द्वारा होता है। प्रत्येक बालक अनेक नन्हीं 'माताओं' द्वारा पाला जाता है। इस प्रकार की प्रणाली परिवार में निकट संबंध-स्थापना की भावना को अवरुद्ध कर देती है। इसके अतिरिक्त अपने बच्चे को चिढ़ा कर, बाली-माता स्थिति को जान-बूझ कर अधिक खराब कर देती है। वह उसके साथ स्नेह या क्रोध के भाव के उद्दीप्त होने तक खेलती है और उसके बाद उसमें रुचि लेना छोड़ देती है या उसकी ओर से उदासीन हो जाती है। परिणाम-स्वरूप बाली-बालक दूसरों के प्रति अपनी संवेगात्मक अनुक्रियाओं को दबाना शीघ्र ही सीख लेता है।

व्यक्तित्व और संस्कृति के प्रभावों के परस्पर संबंध के विस्तृत विवेचन के लिए अध्याय—१६ देखिए।

## परिवार :

परिवार अनेक सांस्कृतिक प्रभावों का प्रयोग करता है; क्योंकि यह बच्चों के प्रारंभिक जीवन के पर्यावरण को विस्तृत रूप से नियंत्रित करता है और यह भी निर्धारित करता है कि सांस्कृतिक प्रतिमानों को किस प्रकार उन पर आरोपित किया जा सकता है एवं उन्हें ग्रहणीय बनाया जा सकता है!

परिवार का एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव स्नेह है, जिसे वह देता है एवं प्राप्त करता है। प्रमाण सिद्ध करते हैं कि यह प्रभाव बाल्य जीवन में विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। इस काल में यदि बालक स्नेह और दुलार प्राप्त करता है, तो भावी जीवन में उसके भावात्मक अनुक्रियाशीलन होने की संभावना अधिक रहती है। विलोमतः यदि उसे बचपन में दुलार नहीं मिलता, तो उसकी भावात्मक अनुक्रियाशीलता कुंठित हो सकती है। उदाहरणतः अनाथालय में जन्म से ही पले हुए बालक, जिनकी शारीरिक स्वास्थ्य-रक्षा तो की जाती है, किंतु जिन्हें वैयक्तिक दुलार और ध्यान कम मिलता है, उन बालकों की अपेक्षा कम अनुक्रियाशील होते हैं, जो दो वर्ष की आयु में अनाथालय में गए हैं (गोल्डफार्ब, १९४७)। अतएव, व्यक्तित्व के विकास में बाल्यकाल के माता-पिता के प्रभावों का महत्त्व रहता है।

माता-पिता द्वारा दिए गए प्रशिक्षण एवं निर्देशन भी व्यक्तित्व के विकास में सहायक होते हैं। माता-पिता शिक्षक हैं। किसी प्रकार के व्यवहार को पुरस्कृत करके और किसी प्रकार के व्यवहार को दंडित करके वे बालक के लक्ष्यों, उद्देश्यों और प्रतिमानों को निर्धारित करने में सहायक होते हैं। एक बालक यह जान लेता है कि यदि उसने क्रोधपूर्ण आवेश को प्रकट किया, तो अपनी माता से वह इच्छित वस्तु प्राप्त कर लेगा। दूसरे परिवार में दूसरा बालक जानता है कि उसका क्रोधावेग अर्थहीन है, मगर रोग का अभिनय फलप्रद हो सकता है। अपने माता-पिता से व्यवहार करने में जिन प्रविधियों को वह सीखता है, आगे चल कर अन्य व्यक्तियों के संपर्क में आने पर वह उनका ही व्यवहार करता है। एक वयस्क व्यक्ति, उदाहरणार्थ, अपनी पत्नी से क्रुध होकर मुँह फुला लेता है। संभवत: उसने यह व्यवहार बचपन में अपनी माता से व्यवहार करते समय सीखा था।

संभवत: बच्चों के प्रति माता-पिता की अभिवृत्ति उनके **व्यक्तित्व** के विकास में उतनी ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कोई अन्य तथ्य। जो माता-पिता सुसमंजित हैं, वे अपने बच्चों को स्नेह और आदर देते हैं, उनमें आत्म-योग्यता एवं आत्मविश्वास के भाव भरते हैं। इससे अपनी समस्याओं का सामना करने में बालक को बहुत लाभ होता है। दुर्भाग्य से अनेक माता-पिता अपने बच्चों की उपेक्षा करते हैं, अपनी भावात्मक समस्याओं की विषम ज्वाला में उन्हें झुलसा देते हैं, अथवा बचपन में जिस दुर्व्यवहार को उन्होंने स्वयं पाया था, अपने बच्चों के साथ वे वही करते हैं। अध्ययन द्वारा प्रमाणित हुआ है कि वस्तुत: अनेक माता और पिता अज्ञात रूप से अपने बाल्य-जीवन की समस्याओं से अपने बच्चों के माध्यम से मुक्त होते हैं (हिलगार्ड, १९५३)।

माता की, अनजाने ही पुत्र के प्रति वह प्रतिक्रिया उन्हीं संवेगों और भावनाओं के साथ हो सकती है, जो बचपन में उसके बड़े भाई के प्रति उसकी थी। यदि उसे भाई के प्रति स्पर्धा और घृणा थी, तो पुत्र के प्रति वही द्वंद्व हो सकता है। वह उससे प्रतिस्पर्धा करने लगती है और उत्साह, स्नेह एवं प्रशंसा देने में असमर्थ हो जाती है। ऐसी स्थिति में बच्चों के लिए यह अनुभव करना सरल हो जाता है कि वे अनचाहे और अप्रिय हैं, फलस्वरूप उनमें विश्वास तथा भावात्मक सुरक्षा का अभाव हो जाता है, जो उनके वयस्क जीवन में भी साथ चलता है।

अंत में, **'आदर्श'** के रूप में भी माता-पिता व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं। बालक का अधिकांश अधिगम अनुकरण द्वारा होता है। अपने पिता को देख कर वह एक पुरुष के सदृश व्यवहार करना सीखता है और एक लड़की अपनी माता से सीखती है कि एक पत्नी और माँ का व्यवहार कैसे करना चाहिए। यदि माता-

पिता अच्छे आदर्श नहीं होंगे, तो संभावना है कि बच्चा बुआ, चाचा, दादी-दादा में प्रतिस्थापन पाएगा, अथवा रूपकों, चलचित्रों या टेलिविजन में आदर्श की खोज करेगा। किसी-न-किसी रूप में बच्चे ऐसे आदर्श की खोज करते हैं, जिनसे वे तादात्म्य स्थापित कर सकें। ऐसा करने में वे अपने माता-पिता के अनेक व्यक्तित्व-लक्षणों का अनुकरण करेंगे, उनके नैतिक एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों को ग्रहण करेंगे तथा समस्याओं को समायोजित करने के उनके विशेष प्रकारों को सीखेंगे।

## व्यक्ति और उसका स्वरूप (The Individual and the Self):

पूर्ववर्ती अनुभाग में हमने सीखा है कि व्यक्तित्व का वर्णन कैसे किया जाता है, इसका परिमापन कैसे होता है तथा यह पर्यावरण और आनुवंशिक प्रभावों से किस प्रकार प्रभावित होता है। हमारे सामने अब किसी **व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्व को समग्र रूप में समझने का प्रश्न** है। यह कार्य किसी नैदानिक अथवा परामर्शदाता मनोवैज्ञानिक को उस समय करना चाहिए, जब वह किसी व्यक्ति की उसकी समस्याएँ सुलझाने में सहायता करना है। जिन व्यक्तियों को हम निकट से जानते हैं, उनके लिए हममें से भी प्रत्येक व्यक्ति यह करने की चेष्टा करता है। किसी व्यक्ति को समझने का कोई निश्चित रूप नहीं है और न ऐसे नियम ही हैं, जिनसे उनसे समझा जा सके, तथापि कुछ विचारणीय तथ्य हैं और उनका विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जाएगा।

### (अ) वैयक्तिकता (Individuality):

एक व्यक्ति परीक्षणों या आँकड़ों द्वारा परिमापित विशेषताओं का चित्र नहीं है और न ही वह पर्यावरणीय परिस्थितियों द्वारा निर्मित कोई प्रतिमा है। व्यक्तित्व-परीक्षण केवल व्यवहार के प्रतिरूप हैं और पर्यावरणीय प्रभाव विभिन्न रूपों में संघटित होकर व्यक्तित्वों को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं। हमें व्यक्तित्व-विशेषताओं तथा पर्यावरणीय प्रभावों से जो दत्त-सामग्री उपलब्ध होती है, वह केवल वातायन का कार्य करती है, उसके माध्यम से हम अंतर्निहित व्यक्तित्व का सूक्ष्म आभास (झलक) पाते हैं। इन आभासों को व्यक्ति के सुसंगठित चित्र के रूप में किसी प्रकार संघटित करना होगा।

### 'अद्वितीय व्यक्तित्व':

यह विचारणीय है कि प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय होता है। कोई भी दो व्यक्तित्व यहाँ तक कि एकरूप जुड़वाँ बालक जिसका पोषण भी एक साथ होता है—बिलकुल एक सदृश नहीं होते। एकरूप जुड़वाँ के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति का योग्यताओं और आदतों का विन्यास अपना अद्वितीय होता है तथा उसकी आनुवंशिक संपन्नता भी अद्वितीय होती है। एक सदृश पालित दो व्यक्ति भिन्न होते हैं; क्योंकि उनकी

आनुवंशिक संपन्नता उनसे पर्यावरणीय प्रभावों के प्रति भिन्न प्रतिक्रिया करवाती है। जिन्हें आनुवंशिक संपन्नता समान-रूपा मिलती है, वे इसलिए भिन्न हो जाते हैं; क्योंकि उन्हें भिन्न या किंचित भिन्न पर्यावरणीय प्रभाव प्राप्त होते हैं। इसलिए व्यक्तियों के साथ व्यवहार करते हुए एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति का सामान्यीकरण करने की शीघ्रता करना बुद्धिमानी नहीं है; क्योंकि टाम और डिक का वातावरण एक समान है और देखने में उनके व्यक्तित्व भी एक सदृश हैं। इससे यह निर्णय नहीं लिया जा सकता कि दोनों व्यक्तियों को एक ही विधि से समझा जा सकता है। उनके प्रेरकों, लक्षणों, समंजन-विधियों का निकट ज्ञान उनके विभेद को स्पष्ट कर देगा और प्रमाणित करेगा कि उनमें से प्रत्येक का अद्वितीय व्यक्तित्व है।

## 'व्यक्तित्व-संगति' :

किसी व्यक्तिविशेष को समझने के लिए यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि व्यक्तित्व की एक आधारभूत संगति होती है। अनेक दीर्घ वर्षों में अधिगत आदतें और प्रेरक सहज ही भुलाए या परिवर्तित नहीं किए जा सकते। किसी व्यक्ति के जीवन में सहस्र-सहस्र अधिगम प्रयोग होते हैं। जैविक कारकों में जो आंशिक रूप से व्यक्ति के विकास के हेतु हैं, विशेष परिवर्तन नहीं होता, कम-से-कम वयस्कों में यह अंतर नहीं होता। अधिगम एवं आनुवंशिक उपलब्धि के अतिरिक्त व्यक्ति जो कुछ करता है, उससे उसके व्यक्तित्व को संगति प्राप्त होती है। उसका परिवार, मित्र, सामाजिक श्रेणी और आर्थिक परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत स्थायी रहती हैं। वे उससे व्यवहार के विशेष प्रकारों की आशा करते हैं, इन्हें हम 'कार्य (Roles) कहते हैं। ये कार्य परिवर्तित नहीं होते, कम-से-कम तीव्रता से परिवर्तित नहीं होते (कार्यों के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए, अध्याय—१६)।

## तीन कारक :

आनुवंशिक उपलब्धि, अधिगम तथा सामाजिक कार्य—हमें व्यक्तित्व में कुछ तारतम्य, संगति और स्थायित्व पर विचार करने की ओर ले जाते हैं। अतएव, हम किसी व्यक्ति से तीव्र अथवा अधिक परिवर्तन की आशा नहीं कर सकते। वह जो कुछ कल होगा, वह आज का ही विकास होगा। यदि वह कभी डॉ० जेकिल और कभी मि० हाइड दिखायी देता है—सतत् परिवर्तनशील व्यक्ति—तो उसका यह रूप धोखा देने वाला है। वाह्य आवरण के नीचे एक ऐसा व्यक्ति है, जिसकी आदतें और प्रेरक उसके गत जीवन का इतिहास बताते हैं। अतः, यह विश्वास करना सर्वोचित है कि भावी व्यक्तित्व अनिवार्य रूप से उसके गत-जीवन का ही परिणाम होगा।

'व्यक्तित्व-परिवर्तन' :

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि व्यक्तित्व कभी परिवर्तित ही नहीं होता। कुछ कालोपरांत यह प्रायः होता है। कुछ व्यक्तियों में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा यह परिवर्तन अधिक होता है। प्रायः सब व्यक्ति धीरे-धीरे पुरानी आदतों के स्थान पर नवीन आदतें अर्जित कर लेते हैं। बहुधा वे उन प्रेरकों को तृप्त करने की विधि जान लेते हैं, जो पहले हताश या अतृप्त रहते थे। कभी-कभी वे अपनी जीवन-विधि को इतना परिवर्तित कर देते हैं कि जिसे पहले वे कभी नहीं जानते थे अथवा वे नवीन व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणार्थ, विवाह प्रायः व्यक्तित्व में अत्यधिक परिवर्तन उपस्थित कर देता है—यद्यपि व्यक्तित्व-समस्या के लिए कोई उपचार का साधन नहीं है; क्योंकि यह जीवन के नवीन रूप को प्रस्तुत करता है तथा व्यक्ति को भिन्न प्रकार के प्रभाव-विन्यास में ले आता है। कभी-कभी गंभीर धार्मिक अनुभूति, कार्य-परिवर्तन, नए समाज में पदार्पण, कार्य में सफलता की उपलब्धि आदि के कारण भी व्यक्तित्व में परिवर्तन हो जाते हैं। इन सब स्थितियों में परिवर्तन का कारण है—कुछ ऐसा घटित होना जिससे प्रेरकों में परिवर्तन, प्रेरकों की तृप्ति नवीन आदतों का बनना अथवा संक्षेप में व्यक्ति के समंजन की आधारभूत विधियों में परिवर्तन का होना।

व्यक्तित्व में अधिकांश परिवर्तन धीरे-धीरे और बिना चेतन इच्छा के होते हैं। यद्यपि कभी-कभी जान-बूझ कर भी व्यक्तित्व को परिवर्तित करने की चेष्टा की जाती है। व्यक्ति स्वतः ही परिवर्तित हो जाता है अथवा कोई निकट का व्यक्ति उसे इस प्रकार प्रभावित करता है कि वह परिवर्तित हो जाता है। मनश्चिकित्सा एवं परामर्श मनोविज्ञान, जिनका विवेचन हम अध्याय ६ में कर चुके हैं, इस प्रकार के परिवर्तनों को करने की व्यवस्थित प्रणालियाँ हैं। इन प्रणालियों का उस समय प्रयोग किया जाता है, जब व्यक्ति के समक्ष ऐसी समस्याएँ आती हैं, जिन्हें वह स्वयं सुलझा नहीं सकता अथवा वह सामाजिक समंजन में इतना असमर्थ हो जाता है कि महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व-परिवर्तन तत्काल अपेक्षित होता है। सफल मनश्चिकित्सक एवं परामर्श-प्रविधियाँ उसकी पुरानी आदतों का अंत करके और उसके अभिप्रेरणात्मक द्वंद्व को कम करने वाली नवीन आदतों को सिखा कर तथा उसकी आवश्यकताओं की तृप्ति की व्यवस्था करके, व्यक्तित्व को परिवर्तित करती हैं। इस प्रकार के व्यक्तित्व-परिवर्तन अपेक्षाकृत तीव्र अधिगम के उदाहरण के रूप में स्वीकार करने चाहिए।

व्यक्तित्व-संलक्षण (Personality Syndromes) :

संलक्षण-संप्रत्यय द्वारा भी किसी व्यक्ति को समझने में सहायता मिलती है। यह चिकित्सा-शब्दावली का पारिभाषिक शब्द है। यह रोग के लक्षणों और कारणों के प्रतिरूपों की ओर निर्देश करता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अद्वितीय

होता है, व्यक्ति में ऐसे संलक्षण प्रदर्शित हो सकते हैं, जो अनेक रूपों में अन्य व्यक्तियों में पाए जाने वाले विशेषताओं के प्रतिरूपों के सदृश होते हैं।

अनेक व्यक्तित्व-संलक्षणों का विवेचन एवं परिमापन हो चुका है। वस्तुतः कुछ व्यक्तित्व-परीक्षणों का जैसे MMPI एक लक्ष्य ऐसे संलक्षणों का पता लगाना है। उदाहरणार्थ, रोग भ्रमात्मक संलक्षण ( Hypochondriacal Syndrome ) में अनेक विशिष्ट लक्षण हो सकते हैं, शारीरिक स्वास्थ्य के लिए वह एक असामान्य स्थिति है। मनोदौर्बल्यपूर्ण संलक्षण (Psychasthenic Syndrome) के लक्षण हैं अति संदेह, बाध्यता, ग्रस्तता और असंगति। (संलक्षण के ये दोनों प्रकार MMPI द्वारा परिमापित हैं) संलक्षण का एक अन्य प्रकार है **सत्तावादी व्यक्तित्व** (Authoritarian Personality)। इसके लक्षण हैं अति परंपरावादी व्यवहार, अधिकारेच्छा, विरोध, पूर्वाग्रह और असहिष्णुता। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के व्यक्तित्व का कारण उसके बाल्यकाल में उसके माता-पिता द्वारा उसकी अति-उपेक्षा अथवा उस पर अति-अधिकार है।

संलक्षण संप्रत्यय का उपयोग हम व्यक्तित्व के प्रकारों के वर्गीकरण में, जिसका विवेचन इस अध्याय के प्रारंभ में किया जा चुका है, नहीं कर रहे हैं, यद्यपि देखने में ऐसा ही प्रतीत होता है। प्रत्येक व्यक्तित्व संलक्षित नहीं होता। अतः, संलक्षण का प्रयोग व्यक्तियों के वर्गीकरण में नहीं किया जा सकता। संलक्षण की केवल इतनी ही उपादेयता है कि यह स्पष्ट करता है कि व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार सह-संबंधित होती हैं कि वे एक प्रतिरूप में संघटित हो जाती हैं। फलस्वरूप कुछ व्यक्तियों में संलक्षण प्रकट होने लगते हैं, जो अन्य व्यक्तियों के ही सदृश होते हैं। यदि हमें संलक्षणों का ज्ञान होगा, तो हम व्यक्ति को जितना समझते हैं, उससे अपेक्षाकृत बेहतर रूप में समझ सकेंगे।

### स्व (The Self) :

अपने 'स्व' के प्रति हममें से प्रत्येक की एक अवधारणा होती है। अनेक व्यक्तियों के लिए 'स्व' ही व्यक्तित्व का वास्तविक प्राण है। दुर्भाग्य से वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण से यह 'स्व' ज्ञानातीत है। हम सब अपने 'स्व' के अस्तित्व पर विश्वास करते हैं, फिर भी उसके वस्तुनिष्ठ अध्ययन में अनेक बाधाएँ उपस्थित हैं। तथापि 'स्व' से संबंधित कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं और उनसे व्यक्तित्व को समझने में सहायता मिलती है।

### 'स्व' का उदभव :

मनोवैज्ञानिक के लिए 'स्व' का तात्पर्य व्यक्ति का अपने व्यक्तित्व का ज्ञान या प्रत्यक्ष ज्ञान है। बाह्य जगत में वस्तुओं और घटनाओं के देखने के सदृश ही हम

अपने शरीर और व्यवहार को भी देखना सीखते हैं ( देखिए, अध्याय—१० 'अवधान और प्रत्यक्ष ज्ञान') । स्व के प्रत्यक्षीकरण का प्रारंभ शिशुकाल में ही देखा जा सकता है, जब शिशु अपने शरीर एवं पर्यावरण की अन्य वस्तुओं के अंतर को समझना सीखता है । जन्म के समय शिशु को अधिक-से-अधिक सुख और कष्ट की अस्पष्ट भावना हो सकती है । तदंतर ज्यों-ज्यों अधिगम एवं स्मरण की उसकी योग्यता विकसित होती है और उसके अनुभवों में वृद्धि होती है, बालक अनुभव करने लगता है कि उसके शरीर के अनेक अंग उसके अनुभवों के ही समान हैं । मांसपेशीय और आंगिक संवेदनाएँ उसकी सब क्रियाओं में होती हैं और वह यह ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है कि अन्य वस्तुओं को कुछ चुभाने से पीड़ा नहीं होती, जैसे गुड़िया को कुछ चुभाने से पीड़ा नहीं होगी, किंतु उसके अपने शरीर में कुछ चुभाने पर पीड़ा होगी । जब बालक दो वर्ष का होता है, उसे अपने शरीर और अन्य वस्तुओं का अंतर सामान्यत: अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है ।

## आत्म-प्रेक्षण (Self-Perception)

परिवर्तनशील वातावरण में एक इकाई के रूप में अपने शरीर का प्रत्यक्षीकरण संभवत: वह बिंदु है, जिसके चतुर्दिक आगे चल कर उसका आत्म-प्रेक्षण विकसित होता है । किंतु, अन्य अनेक प्रभाव भी हैं जो उसके आत्मज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं । इस प्रकार का ज्ञान, बालक को नाम देकर, उसके व्यवहार का उसे दायित्व देकर तथा उसके अधिकार की वस्तुओं एवं उसके माता-पिता, भाई-बहन की वस्तुओं में अंतर द्वारा विकसित किया जा सकता है । समाज और परिवार बालक को एक इकाई के रूप में सोचता है, इसलिए वह स्वयं को इसी रूप में देखता है ।

अनुभवों के प्रकारों के आधार पर बालक यह समझ लेता है कि उसका आत्म-प्रेक्षण किस प्रकार का होगा । बालक अनुभव करता है कि उसके व्यवहार और प्रतीति माता-पिता एवं साथियों की दया या शत्रुता, सम्मान या अपमान, ध्यान या उपेक्षा आदि को अभिव्यक्त करते हैं । अपने संबंध में वह अपने माता-पिता एवं साथियों से विविध व्यक्तित्व-लक्षणों की चर्चा सुनता है और ये लक्षण जब बराबर प्रयोग किए जाते हैं, वह उन्हें अपने वर्णन के रूप में स्वीकार कर लेता है । माता-पिता की प्रशंसा एवं स्नेह तथा साथियों का सम्मान और ध्यान एक वांछित व्यक्ति के रूप में उसके चित्र के विकास में सहयोग देंगे । दूसरी ओर घर में उपेक्षा और कटु आलोचना एवं बाहर की अवहेलना स्व-चित्र को अप्रतिष्ठाजनक बना देती है, फलस्वरूप हीन भावना विकसित हो जाती है ।

व्यक्ति जो व्यवहार अन्य लोगों से प्राप्त करता है, निश्चय ही उसका कुछ संबंध उसके लक्षणों एवं उसकी योग्यताओं से है। शारीरिक शक्तिसंपन्न बालक अपने साथियों से एक दुर्बल बालक की अपेक्षा अधिक प्रशंसा प्राप्त करता है। एक बुद्धिमान बालक स्कूल में सफलता और प्रशंसा के अधिक अवसर प्राप्त करेगा। अतएव, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्यक्ति का अपने व्यक्तित्व का प्रत्यक्षीकरण उससे मिलता-जुलता ही होता है जो अन्य व्यक्ति उसके संबंध में सोचते हैं। किंतु, यह सदैव सत्य नहीं होता। संभवतः हम किसी भी स्थिति में अपने को पूर्णतः उस रूप में नहीं देखते, जिस रूप में अन्य व्यक्ति हमें देखते हैं। कुछ उदाहरणों में प्रेक्षित व्यक्तित्व तथा वास्तविक या वस्तुनिष्ठ व्यक्तित्व में बहुत अंतर होता है।

यद्यपि एक बालक बुद्धिसंपन्न एवं शारीरिक दृष्टि से भी स्वस्थ होता है, किंतु यदि वह ऐसे माता-पिता द्वारा पाला जाए, जो उसकी अवहेलना करते हैं, उसे निरंतर कटुक्तियाँ सुनने को मिलती हैं, वह अपमानित किया जाता है, तो वह अपने को विचित्र एवं अवांछनीय दृष्टि से देखने लगता है। हम ऐसे व्यक्तियों को जानते हैं, जो अपने कार्यों को स्वयं उचित महत्त्व नहीं देते। साथ ही, हम ऐसे व्यक्तियों को भी देखते हैं, जो अपने कार्यों और अपनी योग्यताओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा करते हैं। जो बालक ऐसे पारिवारिक वातावरण में रहते हैं, जिन्हें निरंतर साधारण कार्यों के लिए भी अति प्रशंसा प्राप्त मिलती है, वे प्रायः आत्म-मूल्यांकन भी अतिरूप में करते हैं।

### 'स्व' एवं संवेगात्मक समायोजन :

ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिनमें व्यक्ति के आत्म-रूप का ज्ञान उसके व्यवहार को समझने में हमारी सहायता करता है। यह विशेष रूप से उन उदाहरणों के लिए और भी सत्य है, जहाँ व्यक्ति जिस रूप में अपने को देखता है और अन्य व्यक्ति उसे जिस रूप में देखते हैं, उसमें बहुत अंतर हो। व्यक्ति का व्यवहार बहुत सीमा तक इससे निर्धारित होता है कि वह परिस्थिति को अपने संदर्भ में किस रूप में देखता है। अपने सहज दृष्टिकोण से हम यह सोच लेंगे कि जॉन को लड़कियों के मध्य लोकप्रिय होना चाहिए—आखिर वह देखने में रूपवान है तथा प्रत्युत्पन्नमति है—किंतु 'यदि जॉन अपने इन गुणों को नहीं देख सकता, तो वह केवल एक भित्तिपुष्प ही होगा।'

यदि व्यक्ति का स्व-चित्र यथार्थ या वस्तुनिष्ठ व्यक्तित्व से बहुत भिन्न है, तो समायोजन की गंभीर समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। व्यक्ति उन प्रमाणों से निरंतर पीछा छुड़ाएगा या उनकी उपेक्षा करेगा, जो अपने संबंध में दृष्टिकोण के अनुरूप नहीं होंगे। एक साधारण विद्यार्थी जो अपने को अति-बुद्धिमान समझता है, वस्तुनिष्ठ प्रमाण के रूप में कम नंबर और असफलता प्राप्त करता है। प्रायः ऐसे विद्यार्थी

आत्म-मूल्यांकन में परिवर्तन न करके तर्क का प्रयोग (बुद्धिमान विद्यार्थी अच्छे अंक प्राप्त करने के पीछे नहीं रहते, उनकी रुचियाँ विस्तृत होती हैं) इन प्रमाणों को गलत सिद्ध करने में करेंगे अथवा उनकी पूर्णतः उपेक्षा करेंगे और अपने मस्तिष्क में उनका विचार भी नहीं आने देंगे। विकृत आत्म-प्रत्यक्षीकरण को स्थिर रखने के लिए जिन साधनों का उपयोग किया जाता है, उन्हें **आत्म-रक्षात्मक** प्रक्रियाएँ कहते हैं, जैसा कि अध्याय—५ में हम देख चुके हैं। अपने को धोखा देने में व्यक्ति बहुत निपुण होते हैं और इसीलिए अनेक प्रकार की आत्मरक्षात्मक प्रक्रियाएँ हैं।

## व्यक्तित्व के सिद्धांत (Theories of Personality) :

व्यक्तित्व का यहाँ तक अध्ययन करने के उपरांत विद्यार्थी व्यक्तित्व के संघटित चित्र का अभाव अनुभव कर सकता है। हम व्यक्तित्व के विविध पहलुओं तथा उनके परिमापन के प्रकारों का वर्णन कर चुके हैं। किंतु, ये विविध भाग किस प्रकार संघटित होते हैं? किसका क्या परिणाम होता है? व्यक्तित्व के संबंध में हमारा सामान्य सिद्धांत क्या है?

सत्य यह है कि व्यक्तित्व के संबंध में हमारा कोई सामान्य सिद्धांत नहीं है, जिस पर मनोवैज्ञानिक सहमत हों। अब तक व्यक्तित्व अति जटिल प्रमाणित हुआ है। इसकी अभिव्यक्तियाँ अति विशद् हैं, इसके निष्कर्ष अगणित हैं और इसके पहलुओं को एक स्पष्ट चित्र के रूप में संघटित करना हमारे लिए संभव नहीं है। अतएव, व्यक्तित्व के अनेक सिद्धांत हैं। प्रत्येक सिद्धांत विषय को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है। सबको संतोष हो सके, ऐसा कोई सिद्धांत नहीं है। एक भी ऐसा पूर्ण नहीं है, जो व्यक्तित्व-संबंधी हमारे पूर्ण ज्ञान का संघटन करता हो। प्रत्येक सिद्धांत कुछ कारकों पर बल देता है और कुछ को छोड़ देता है।

एक दिन शोधकार्य एवं सामान्य सिद्धांत निर्माण के नवीन प्रयत्नों द्वारा इस समस्या का समाधान निःसंदेह होगा। सामान्य सिद्धांत उपलब्ध होने तक विविध सिद्धांतों को ही हम प्रस्तुत कर सकते हैं। वस्तुतः सभी प्रस्तावित सिद्धांतों का उल्लेख करने के लिए स्थान भी नहीं है। उनकी संख्या अत्यधिक है। हम केवल उन सात सिद्धांतों का संक्षिप्त विवेचन करेंगे, जिनका हमारे वर्त्तमान व्यक्तित्व-प्रत्यय पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

## मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत (Psychoanalytic Theory) :

प्रथम अध्याय में मनोविश्लेषण का उल्लेख करते हुए हमने संकेत दिया था कि यह मनश्चिकित्सा विधि भी है और व्यक्तित्व का सिद्धांत भी। विधि के रूप में मनोविश्लेषण का विवेचन षष्ठ अध्याय में हो चुका है। सिद्धांत के रूप में सभी

व्यक्तित्व सिद्धांतों में यह सर्वाधिक प्रभावशाली है। अतएव, अन्य सिद्धांतों की अपेक्षा इसका विवेचन विस्तार से करना अपेक्षित है। मनोविश्लेषण के दो क्षेत्र हैं: प्रथम, यह व्यक्तित्व-संरचना का सिद्धांत है, द्वितीय, यह व्यक्तित्व-विकास का सिद्धांत है (फ्रायड, १९३८)।

व्यक्तित्व-संरचना :

मनोविश्लेषण के प्रणेता फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व-संरचना के तीन भाग है: इद (**Id**), अहम् (**Ego**) और अत्यहम् (**Super Ego**) उनके अनुसार इद प्रेरकों और प्रेरकों को तृप्त करने वाली 'सहज' प्रतिक्रियाओं का भंडार-गृह है। ये प्रेरक सम्मिलित रूप में लिबिडो ( **Libido** ) कहलाते हैं। यदि इद को उस पर ही छोड़ दिया जाए तो भी वह उत्पन्न होने वाले प्रेरकों को, जीवन की यथार्थता या किसी प्रकार की नैतिकता के संदर्भ के बिना ही, तत्काल तृप्त कर लेगा।

इद की बागडोर प्राय: अहम् के हाथ रहती है। इसके अंतर्गत व्यवहार और चिंतन के विविध प्रकार हैं, जिन्हें जगत से प्रभावपूर्ण व्यवहार करते हुए हमने अधिगत किया है। यह प्रेरकों की तृप्ति में विलंब उत्पन्न करता है अथवा उन्हें समाज द्वारा स्वीकृत किए जा सकने वाले तृप्ति के भागों की ओर मोड़ता है। यह व्यक्ति को जीवन के लिए कार्यरत रखता है, उसे अन्य व्यक्तियों से संपर्क बनाए रखने में सहायता देता है तथा उसे सामान्यत: जीवन की वास्तविकताओं से समंजित रखता है। वास्तव में, फ्रायड ने अहम् को स्पष्ट करते हुए कहा है कि यह 'यथार्थता के सिद्धांत की सेवा में रत है।'

अंत में, अत्यहम् प्रचलित भाषा के 'अंत:करण' का निकट तदनुरूपी है। इसके अंतर्गत अहम् और इद की क्रियाओं पर आधृत व्यक्ति के विकास-क्रम में अर्जित संयम है। अत्यहम् उन कार्यों को भी गलत कह सकता है, जिन्हें अहम् ने इद के प्रेरकों की तृप्ति में उपयोग किया हो। इसके अतिरिक्त, अत्यहम् व्यक्ति को उन आदर्शों की ओर बढ़ने में सहायता देता है, जिन्हें उसने बाल्यकाल में अर्जित किया था।

फ्रायड की व्यक्तित्व-संरचना का संप्रत्यय व्यक्तित्व के तीन प्रमुख पहलुओं को स्पष्ट करता है। प्रारंभिक अध्यायों में, विशेषत: तृतीय अध्याय में हम भिन्न शब्दों में इन पहलुओं का उल्लेख कर चुके हैं। प्रथम रूप में, जो इद का पर्यायवाची है, अनधिगत शरीर क्रियात्मक प्रेरक और उसकी तृप्ति की अनधिगत प्रतिक्रियाएँ हैं। द्वितीय, जो अहम् के तदनुरूप है, प्रेरकों की तृप्ति के लिए अधिगत साभिप्राय क्रियाओं एवं उक्त अनुभाग में उल्लिखित प्रेक्षित 'स्व' द्वारा निर्मित है। तृतीय, अत्यहम का समरूप है, उसके अंतर्गत समाज से प्राप्त प्रेरकों का विन्यास है। वह

प्रथम दो कारकों को प्रभावित करता है और कभी-कभी इसका उनसे संघर्ष भी होता है। फ्रायड की व्यक्तित्व-संरचना की मूल धारणा अपरिचित शब्दावली के परिधान में आवृत्त होने पर भी, सामान्यः प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के निष्कर्षों के ही समरूप है।

यह आपत्ति की गई है कि फ्रायड का व्यक्तित्व-संरचना-दृष्टिकोण व्यक्तित्व को तीन भागों में विभाजित करता है और प्रत्येक भाग अपने में एक भिन्न व्यक्तित्व के रूप में प्रकट होता है। वस्तुतः सहज ही हम इस रूप में इद से अहम् और अत्यहम् तक बढ़ सकते हैं, किंतु फ्रायड का यह तात्पर्य नहीं था। ये तीन शब्द केवल व्यक्तित्व के तीन प्रमुख पहलुओं को सहज अवधारणाओं के रूप में व्यक्त करते हैं। इनमें कोई स्पष्ट विभाजन-रेखा नहीं है। ये एक सामान्य चित्र प्रस्तुत करते हैं, जो विस्तृत रूप में बहुत जटिल हो जाता है।

इनके अतिरिक्त दो बातें और ध्यान में रखनी चाहिए, यद्यपि अन्यत्र उनका विस्तृत विवेचन किया गया है। प्रथम इद का लिबिडो (प्रेरक, सहज-वृत्तियाँ) प्रायः अहम् और अत्यहम् द्वारा अवरुद्ध कर दिया जाता है। अवरुद्ध होने पर यह अन्य दिशाओं की ओर अंतरित होता है और अहम् तथा पराहम् द्वारा स्वीकृत भागों को प्राप्त कर सकता है। द्वितीय; क्योंकि इद प्रायः अहम् और अत्यहम् से **संघर्षरत** रहता है, परिणामतः **चिंता** उत्पन्न होती है। तब व्यक्ति इस चिंता को कम करने के उपायों की खोज करता है और कुछ उपायों को अधिगत भी करता है। चिंता कम करने वाले ये उपाय **'रक्षात्मक-प्रक्रियाएँ'** कहलाते हैं। इनका विवेचन पंचम अध्याय में हो चुका है।

**व्यक्तित्व-विकास :**

फ्रायड ने शैशव से वयस्कता तक परस्पर-व्याप्त चार सोपानों में व्यक्ति के विकास पर विचार किया है। प्रथम तीन सोपान जनन-पूर्व स्थिति के हैं: चूषण अवस्था, गुदा अवस्था और लिंग अवस्था। चतुर्थ सोपान, जनन अवस्था, यौवनारंभ में उत्पन्न होती है। फ्रायड के अनुसार व्यक्ति के किसी भी जनन-पूर्व अवस्था में गत्यावरोध की संभावना रहती है, यदि उस अवस्था में वह अति हताशा, अरक्षा या चिंता अनुभव करता है। जनन-पूर्व अवस्था में गत्यावरोध के लक्षण वयस्क व्यक्ति में कुछ व्यक्तित्व-संलक्षणों द्वारा प्रकट होते हैं।

**चूषण अवस्था :**

जीवन के प्रथम वर्ष के अधिकांश भाग को अपने में निहित करती है। इस काल में शिशु चूषण द्वारा एवं मुख की अन्य क्रियाओं द्वारा सुख प्राप्त करता है। यदि इस समय उसे चूषण से रोका जाए या चूषण के लिए उसे दंड दिया जाए, तो

वह चूषण अवरोध अर्जित कर सकता है। वयस्क व्यक्ति के चूषण-संलक्षण के अंतर्गत अति मौलिक व्यवहार, लोभ पर निर्भरता और निष्क्रियता के व्यवहार आते हैं।

जीवन के द्वितीय और तृतीय वर्षों में चूषण अवस्था की प्रधानता रहती है। इस अवस्था में बहुधा माता-पिता ही उसे स्वच्छ रहने का प्रशिक्षण देते हैं और उत्सर्जन-संबंधी उसके 'शैतानीपूर्ण' व्यवहार को प्रश्रय नहीं देते। वह अपनी रुचियों को चूषण क्रियाओं पर केंद्रित करता है। यदि यह प्रशिक्षण अति कठोर हो और इन क्रियाओं के संबंध में चिंता उत्पन्न करे, तो वयस्क संलक्षण एक बाध्यता (विवशता) और अति-अनुरूपता या आत्मसंयम हो जाता है।

शारीरिक स्वच्छता के प्रशिक्षण एवं भोजन की औपचारिकता को भली प्रकार से सीख लेने के उपरांत बालक अपने यौन-अंगों पर ध्यान केंद्रित करता है। इस जनन-पूर्व **लिंग अवस्था** में बालक में भिन्न-लिंगी माता-पिता की ओर 'स्नेहपूर्ण' व्यवहार विकसित होता है—लड़के का अपनी माता के प्रति और लड़की का अपने पिता के प्रति। फ्रायड ने इसे राजा इडिपस की कथा के अनुसार, जिसने बिना अपने इस भाव को जाने ही अपने पिता की हत्या करके अपनी माता से विवाह किया था, **इडिपस-मनोग्रंथि (मातृ मनोग्रंथि)** कहा है। सामान्य विकास में व्यक्ति इस ग्रंथि पर विजय प्राप्त कर लेता है, जैसा कि अन्य प्रारंभिक अवस्थाओं में करता है। यदि चिंताओं और कुंठाओं के फलस्वरूप इस अवस्था पर गत्यावरोध हो जाए, तो व्यक्ति में 'मातृ-मनोग्रंथि' 'पितृ-मनोग्रंथि' अथवा अपने परिवार के अन्य व्यक्तियों और भिन्न लिंगी व्यक्तियों के संबंध में विकृत अभिवृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

जनन-पूर्व अवस्थाओं के काल में व्यक्ति स्वयं को अपने आकर्षण का केंद्र बनाता है। जब वह **जनन अवस्था** में प्रवेश करता है और सामान्य विलिंगकामी रुचियाँ उत्पन्न होती हैं, उसकी रुचियाँ अधिक-से-अधिक दूसरों पर केंद्रित होने लगती हैं और समाज में वह वयस्क के रूप में सामान्य व्यवहार करने लगता है। यह विवरण किसी वास्तविक तथ्य का नहीं, वरन् फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत का है। अनेक मनःचिकित्सकों का विश्वास है कि उन्होंने अपने रोगियों से जो अनुभव प्राप्त किए हैं, वे फ्रायड की प्रमुख धारणाओं की पुष्टि करते हैं। अनेक मनःचिकित्सक इसे पूर्णतः अस्वीकार करते हैं, तथा कुछ अधिक-से-अधिक इतना ही स्वीकार करते हैं कि यह सिद्धांत अपेक्षाकृत विरल व्यक्तित्व-संलक्षणों को स्पष्ट करता है। अंत में वैज्ञानिक अनुसंधान इस सिद्धांत का मूल्यांकन प्रस्तुत करेगा।

### श्रेष्ठता और क्षति-पूर्त्ति (Superiority and Compensation) :

फ्रायड का सिद्धांत प्रधानतः जैविक प्रेरणों—क्षुधा, उत्सर्जन और यौन—पर विशेष बल देता है। अन्य अनेक सिद्धांत सामाजिक कारकों पर अधिक बल देते हैं।

इनमें से एक सिद्धांत फ्रायड के प्रारंभिक शिष्य अलफ्रेड एडलर का है, जिसने बाद में फ्रायड के सिद्धांत को अस्वीकार किया और **श्रेष्ठता** के प्रेरण या प्रयत्न पर बल दिया।

हीन-भाव ग्रंथि के संप्रत्यय का श्रेय एडलर को है और आज यह शब्द दैनिक जीवन की वार्ता का अंग बन गया है। एडलर का तर्क था; क्योंकि हम श्रेष्ठता के लिए प्रयत्नशील रहते हैं, हम साथ-साथ यह भी देखते हैं कि हमारे प्रयत्नों में हम कहाँ दुर्बल रहते हैं और किस प्रकार हीन हैं। स्वयं में यह एक स्वस्थ भावना है, हमें अपनी कमजोरी बताकर 'कार्यरत' करती है। हम निरंतर अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाने का प्रयत्न करते हैं, किंतु जब हम अपनी दुर्बलताओं पर विजय पाने में बराबर असमर्थ रहते हैं या किसी कारण से हम किसी विशेष हीन भावना को प्रश्रय देने लगते हैं, तो हीन-भाव ग्रंथि विकसित हो जाती है।

एडलर ने ही **क्षति-पूर्ति** संप्रत्यय भी दिया है। दुर्बलता का ज्ञान होने पर हम उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। थियोडोर रूजवेल्ट-जैसा व्यक्ति जो बचपन में दुर्बल और रोगी था, अपने को शारीरिक क्रियाओं को सौंप देता है और अपनी हीनता या विकार की **अत्यधिक क्षति-पूर्ति** करता है। अनेक उदाहरणों में, अत्यधिक क्षति-पूर्ति के कारण अंत में व्यक्ति उन बातों में पर्याप्त श्रेष्ठ हो जाता है, जिनमें वह मूलतः हीन था। इसके अतिरिक्त व्यक्ति हीनता की क्षति-पूर्ति किसी अन्य क्षेत्र में श्रेष्ठता उपलब्ध करके भी करते हैं। उदाहरणतः एक घरेलू लड़की जो किताबी कीड़ा है, सामाजिक संबंधों में असफल होने के कारण शैक्षिक क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त करती है। यह क्षति-पूर्ति फ्रायड के विस्थापन ( Displacement ) सिद्धांत के सदृश है, परंतु अभिप्रेरण में अंतर है। फ्रायड का विस्थापन लिबिडोपरक प्रेरकों की अभिव्यक्ति है, एडलर की क्षति-पूर्ति श्रेष्ठता की तृप्ति का साधन है।

### चिंता सिद्धांत (Anxiety Theory) :

अधिकांश सिद्धांत अपनी योजना में चिंता को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं। फ्रायड के अनुसार चिंता इद (Id) और अहम् ( Ego ) के बीच द्वंद्व का परिणाम है। एक अन्य सिद्धांतवादी, करेन होर्नें ( Karen Horney, 1937) अपने सिद्धांत का केंद्रीय संप्रत्यय **मूल चिंता** को मानती हैं। इसके अतिरिक्त वे चिंता को बालक के विकास में होने वाले सामाजिक प्रभावों के परिणाम के रूप में स्वीकार करती हैं न कि जैविक प्रेरकों और अहम् या अत्यहम् (Super-ego) मध्य द्वंद्व का परिणाम।

होर्नें के अनुसार मूल चिंता का बालक में सर्वप्रथम उद्भव किसी ऐसी सामाजिक स्थिति द्वारा होता है, जो उसे भयभीत कर देती है। यह माता-पिता द्वारा आतंक या बल-प्रयोग माता-पिता के मध्य तनाव और द्वंद्व उससे बहुत अधिक

परिश्रम की अपेक्षा करके या अविश्वास द्वारा, कटु आलोचना द्वारा, निष्ठुरता या उदासीनता इत्यादि से उत्तेजित की जा सकती है। चिंता के एक बार उत्तेजित हो जाने पर 'प्रयत्न और भूल' व्यवहार द्वारा उससे मुक्त होने की चेष्टा करता है, जैसे कोई प्राणी किसी समस्या के समाधान का प्रयत्न करता है। इस प्रकार, बालक चिंता को समझने की कुछ विधियाँ अधिगत करता है और ये विधियाँ मनस्तापी आवश्यकताओं का रूप धारण कर लेती हैं।

अतः, मनस्तापी आवश्यकता एक अधिगत आवश्यकता है। यदि बालक माता का स्नेह और अनुमोदन प्राप्त कर चिंता को शमित करता है, तो उसमें स्नेह और अनुमोदन की मनःस्तापी आवश्यकता विकसित होगी। यदि वह किसी चिंताजनक स्थिति पर सम्मान या वैयक्तिक प्रशंसा की उपलब्धि द्वारा अधिकार प्राप्त करता है, तो उसमें इन बातों की मनःस्तापी आवश्यकता होगी। इस सिद्धांत के अनुसार मनः-स्तापी आवश्यकताएँ अनेक हो सकती हैं, यह इस पर निर्भर करता है कि बालक ने अपनी चिंता को शमित करना किस आवश्यकता के आधार पर सीखा है। प्रत्येक समाज में इन आवश्यकताओं के कुछ प्रतिरूप विकसित हो जाते हैं; क्योंकि चिंता के कारण एक परिवार से दूसरे परिवार में और एक बालक से दूसरे बालक में दोहराए जाते हैं। अतएव, होर्ने ने १० आवश्यकताओं की सूची बनायी हैं, जैसे स्नेह, निर्भरता, शक्ति, सम्मान, उपलब्धि और आत्मनिर्भरता आदि।

होर्ने के सिद्धांत में, फ्रायड एवं अन्य मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांत के सदृश, अंतर्द्वंद्व का महत्त्व है। होर्ने के अनुसार मुख्य द्वंद्व आवश्यकताओं के मध्य होता है, केवल इसलिए कि कुछ आवश्यकताएँ अपूर्ण रह जाती हैं। उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति में किसी पर आश्रित रहने की आवश्यकता एवं साथ ही आत्मनिर्भर और स्वतंत्र रहने की आवश्यकता विकसित हो जाए, तो दोनों में संघर्ष होगा ही। अधिकांश व्यक्तियों में मनःस्तापी आवश्यकताएँ किसी-न-किसी मात्रा में होती हैं, परंतु जब वे उनके परस्पर द्वंद्व का समाहार करने में असमर्थ हो जाते हैं, तब कुछ आवश्यकताएँ उनके जीवन पर प्रभुत्व जमा लेती हैं। तब वे 'मनःस्तापी' व्यक्ति हो जाते हैं।

**मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ :**

एक अन्य मनोवैज्ञानिक, हेनरी मरे (१९३८) की आवश्यकताओं की सूची होर्ने से भी से भी लंबी है, मगर वह भिन्न प्रणाली से उन तक पहुँचा है। यद्यपि वह फ्रायड द्वारा पर्याप्त प्रभावित है, पर उसने अनुभव किया कि अभिप्रेरण का एक हेतु, जैसे फ्रायड का इद, एडलर का श्रेष्ठता के लिए प्रयत्न, या होर्ने की मूल चिंता, स्थितियों को अत्यधिक सुगम बना देता है। उसने यथासंभव अनुभवाश्रित रूप में उन आवश्यकताओं को व्यक्तियों के प्रतिनिधि प्रतिरूपों में स्पष्ट करके निर्धारित करना

चाहा। विशद् सामग्री के आधार पर जिसमें जीवन-वृत्त, प्रक्षेपी-परीक्षण दत्त-सामग्री और ५१ युवकों के समालाप की सामग्री है, उसने २८ आवश्यकताओं की सूची तैयार की। इनमें से कुछ सारणी १५·३ में प्रदर्शित हैं। उसने अनुभव किया कि व्यक्तियों में अवलोकित प्रयत्नों के स्पष्टीकरण के लिए आवश्यकताओं की बड़ी संख्या अपेक्षित है।

मरे के सिद्धांत में जो मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ उसने स्पष्ट की हैं, वे प्रायः प्रत्येक व्यक्ति में पायी जा सकती हैं, किंतु उनकी प्रबलता में अंतर होता है। एक व्यक्ति में आवश्यकताओं का एक प्रतिरूप प्रबल हो सकता है और दूसरे में अन्य। मरे के अनुसार आवश्यकताओं की प्रबलता और उनसे निर्मित प्रतिरूप ही किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताओं को प्रतिपादित करते हैं। उसका TAT (नीचे देखिए) इन आवश्यकताओं को परिमापित करता है।

## आत्म-क्रियात्मकता (Self-actualization) :

अब्राहम मासलो ( १९५४ ) ने एक नए सिद्धांत की कल्पना की है, संक्षेप में उसे **आत्म-क्रियात्मक** सिद्धांत कहा है। प्रथम दृष्टि में यह एडलर के श्रेष्ठता के लिए प्रयत्न सिद्धांत के सदृश एक-कारक परक सिद्धांत प्रतीत होता है, किंतु यह है नहीं। यह बहु-कारक परक सिद्धांत है, जिसमें आवश्यकताओं के पाँच क्रमिक सोपान हैं। निम्नतर से उच्चतर सोपानों में वे इस प्रकार व्यवस्थित हैं—

> "शारीरिक आवश्यकताएँ, जैसे क्षुधा, पिपासा और यौन निरापद आवश्यकताएँ, जैसे सुरक्षा, स्थिरता, स्थान, संपत्ति और अनुराग आवश्यकताएँ, जैसे स्नेह, संबंध पहचान, प्रतिष्ठा, आवश्यकताएँ, जैसे सम्मान, सफलता, आत्मसम्मान, आत्म-क्रियात्मक आवश्यकता।

यह क्रम दो प्रकार से महत्वपूर्ण है। इसी क्रम में आवश्यकताएँ व्यक्ति के सामान्य विकास में प्रकट होती हैं। आवश्यकताओं की तृप्ति का क्रम भी यही है। सूची के निम्नतर क्रम की आवश्यकताएँ यदि तृप्त नहीं होतीं, तो वह उच्चतर की आवश्यकताओं में विशेष सफलता नहीं प्राप्त करता। अतः, इससे यह निष्कर्ष मिलता है कि दुर्बल समाज के व्यक्ति अधिकांशतः शारीरिक एवं निरापद आवश्कताओं तक ही सीमित रहते हैं। दूसरी ओर 'सपन्न' समाज में व्यक्ति निम्नतर क्रम की आवश्यकताओं की तृप्ति कर लेता है और अनेक स्थितियों में वह आत्म-क्रियात्मक आवश्यकताओं की तृप्ति में व्यस्त हो जाता है। अतएव, यह अनुमान किया जा सकता है कि व्यक्ति और समाज दोनों निम्न सोपानों से उच्चतर सोपानों की 'उत्तरोत्तर' प्रगति करते हैं।

आत्म-क्रियात्मकता की आवश्यकता का अर्थ है—मनुष्य की क्षमताओं का पूर्ण विकास। स्वाभाविक है कि इस आवश्यकता का अर्थ व्यक्ति-व्यक्ति के लिए

भिन्न होगा; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की क्षमताएँ भिन्न होती हैं। इसका तात्पर्य कुछ व्यक्तियों के लिए साहित्य या विज्ञान के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करना है, कुछ अन्य व्यक्तियों के लिए इसका अर्थ राजनीति या धर्म के क्षेत्र में नेता बनना हो सकता है, कुछ व्यक्ति केवल सामाजिक नियमों से मुक्त अपना जीवन-यापन ही इसका अर्थ समझेंगे। व्यक्ति अपना 'आत्म क्रिया-कारक' ( Self-actualizers ) अध्यापकों, उद्योगपतियों, राजनीतिज्ञों, मिशनरियों, कलाकारों में अथवा गृहिणियों में भी प्राप्त करते हैं। किंतु, सब व्यक्ति इनमें से किसी एक वर्ग में आत्म-क्रियात्मकता उपलब्ध नहीं कर सकते। अनेक व्यक्तियों की असंख्य अतृप्त आवश्यकताएँ हैं और उनकी उपलब्धियाँ केवल क्षति-पूर्तियाँ हैं, जो उन्हें अनेक रूप में हताश और दुखी करती हैं।

### लक्षण सिद्धांत ( Trait Theory ) :

एक अन्य सिद्धांत, जिसे **लक्षण-सिद्धांत** कहा गया है, जिसकी कल्पना गार्डन अलपोर्ट (१९३७) ने की है, हमें आवश्यकताओं या लक्षणों की सीमित सूची नहीं देता। यह सिद्धांत अगणित आवश्यकताओं का अनुमान करता है और मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति में वे भिन्न होती हैं। अन्य सिद्धांतों से यह दो रूपों में भिन्न है।

इसकी एक अवधारणा है **व्यक्तित्व की अद्वितीयता**। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अद्वितीय बाल्यकालीन अनुभवों की भूमिका होती है और लक्षणों के विन्यास का विकास भी अद्वितीय होता है। तुलनार्थ हम कुछ लक्षणों को ले सकते हैं, जो अनेक व्यक्तियों में सामान्य प्रतीत होते हैं, और यह भी हम देखेंगे कि व्यक्ति इन लक्षणों को किस रूप में ग्रहण करता है। तथापि उसमें ऐसे लक्षण भी हो सकते हैं, जो केवल उसमें ही अद्वितीय रूप में हों।

द्वितीय, इस सिद्धांत से संबंधित दूसरी अवधारणा है—**प्रेरकों की क्रियात्मक निररंकुशता**। विकास-क्रम में प्रत्येक व्यक्ति ऐसे प्रेरकों को अर्जित करता है जो अन्य प्रेरकों की तृप्ति में सहायक होते हैं। अलपोर्ट की क्रियात्मक निरंकुशता की अवधारणा के अनुसार ये प्रेरक निरंकुश रूप से शारीरिक प्रतिबंधों, जो उन्हें प्रारंभ में पाने अपेक्षित थे, के प्रबलन के बिना ही क्रियाशील रहते हैं।

प्रेरकों की क्रियात्मक निरंकुशता के उदाहरण दैनिक जीवन में प्रचुर मात्रा में देखे जा सकते हैं। एक गरीब लड़का जो पहला पैसा अपनी क्षुधा की तृप्ति और कष्ट से मुक्त होने के लिए अर्जित करता है, आगे चलकर शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य पर्याप्त धनार्जन के उपरांत भी रात-दिन धन एकत्रित करने में रत रहता है। पर्याप्त राशि के रहते हुए एक उद्योगपति जो निवृत्ति-आयु के निकट पहुँच गया है, कार्य करना चाहता है, संभवतः वह अनुभव करना है कि अब उसका कार्य उसके मित्रों की एवं क्रिया करने की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, यद्यपि

**प्रारंभ** में जीविकोपार्जन के मूल अभिप्रेरण से उसने कार्य किया था। प्रौढ़ावस्था में यौन-रुचि का बना रहना, जबकि हारमोनों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता, क्रियात्मक निरंकुशता का ही एक उदाहरण है।

## काय-प्ररूप सिद्धांत (Constitutional Theory) :

अंत में एक पूर्णतः भिन्न सिद्धांत की ओर हम आते हैं—इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्तित्व का निर्धारण, कम-से-कम आंशिक रूप में व्यक्ति के शरीर-गठन के आधार पर होता है (शैल्डोन और स्टीवन्स, १९४२)। शताब्दियों से यह एक सामान्य विश्वास रहा है कि शरीर-गठन और व्यक्ति एक दूसरे से निकट संबंधित हैं। उदाहरणतः क्या आप एक दृढ़-मांसपेशियों वाले बलवान व्यक्ति को प्रबल और आक्रांता के रूप में नहीं देखते ? अथवा, मोटे व्यक्ति को हँसमुख और सहज जीवन-यापन करने वाला नहीं समझते ? अथवा एक दुर्बल व्यक्ति को गंभीर और चिड़चिड़े स्वभाव का नहीं समझते ? उदाहरणतः शेक्सपियर ने सीजर के मुख से कहलवाया है –

"अपने निकट मैं ऐसे आदमी रखना चाहता हूँ जो मोटे हों,
चिकने सिर वाले, आदमी और जो रात में सोते हों।
उस कैसिअस का चेहरा कितना रीता और भूखा लगता है,
वह सोचता बहुत है, ऐसे आदमी खतरनाक होते हैं।"

व्यक्तित्व के काय-प्ररूप सिद्धांतों के अनेक प्रयत्न रूप-विज्ञान की भूलें करते हैं। व्यक्तियों को दो या तीन वर्गों में विभाजित करते हैं। उनकी संवीक्षा करने पर तर्क या तथ्य के आधार पर ये गलत सिद्ध हुए। संप्रति शेल्डन ने संघटन-सिद्धांत को बेहतर ढंग में, यद्यपि अनिवार्यतः परिशुद्ध रूप में नहीं, पुनर्गठित किया है। शेल्डन का सिद्धांत तीन सोपानों में विकसित होता है : प्रथम, वह शारीरिक गठन के वर्गीकरण की प्रणाली प्रस्तावित करता है। द्वितीय, स्वभाव-मापन की एक तुल्य प्रणाली भी उसने निर्धारित की। (स्वभाव व्यक्तित्व का मूल अंग स्वीकार किया गया है, पर उसका पर्यायवाची नहीं ) तृतीय, उसने शारीरिक गठन और स्वभाव के मध्य एक संबंध की कल्पना की है।

## शरीर-गठन के अंग :

शेल्डन ने शरीर-गठन के तीन प्रकार नहीं, वरन् तीन भाग स्वीकार किए हैं। एक भाग गोलाकृत ( Endomorphy ) है, जिसका संबंध किसी भी व्यक्ति के बढ़े हुए पेट, मुटापे और गहरे ऊत्तकों से है। दूसरा भाग आयताकृति ( Meso-morphy ) है। यह मांसपेशियों, हड्डियों और जोड़ने वाले ऊत्तकों से संबंधित है। तृतीय लंबाकृति ( Ectomorphy ) है और उसका संबंध शरीर-गठन की सापेक्ष कठोरता और 'रेखाकृति' ( Linearity ) से संबंधित है। वस्तुतः तीनों भागों की

उपर्युक्त परिभाषा थोड़े से शब्दों में दे सकना असंभव है, परंतु इन्हें लगभग अनुमानित परिभाषाएँ मात्र मानना चाहिए।

## सारणी १५·६

सारणी १५·६ स्वभाव-मापक यंत्र के कुछ तथ्य। एक मापनकर्त्ता जो पूर्णतः व्यक्ति से परिचित है, नीचे लिखी प्रत्येक विशेषता के लिए उसका मापन करता है। विशेषता की उच्चतम संभाव्य मात्रा के लिए मापनकर्त्ता ७ की संख्या और निम्नतम के लिए १ निर्धारित करता है (शेल्डन एवं स्टीवंस, १९४२)।

| अभ्यंतरांगनुरूपता | शरीरानुरूपता | प्रमस्तिष्कानुरूपता |
| --- | --- | --- |
| —— १. मुद्रा और गति में विश्राम | —— १. मुद्रा और गति के लिए स्वाग्रहिता | —— १. मुद्रा और गति में अवरोध |
| —— २. शारीरिक सुविधा के लिए मोह | —— २. शारीरिक साहस-कर्म के लिए मोह | |
| —— ३. मंद प्रतिक्रिया | —— ३. शक्तिपरक विशेषता | —— ३. अतितीव्र प्रतिक्रियाएँ |
| | —— ४. व्यायाम की आवश्यकता और आनंद | —— ४. गोपनता के लिए मोह |
| | | —— ५. मानसिक अति गहनता, अति अवधानता, बोधता |
| | —— ६. जोखिम और अवसर के लिए मोह | —— ६. भावना की गोपनता, भावात्मक अवरोध |
| —— ७ सरल उत्सवों के लिए प्रेम | —— ७ व्यवहार की सबल स्पष्टता | ७. नेत्र और मुख का चेतन चालन |
| —— ८. समाज से प्रेम, सामाजिकता | —— ८. संघर्ष के लिए शारीरिक साहस | —— ८. समाज का समाज भीति |

| | | |
|---|---|---|
| | ——९. स्पर्धायुक्त आक्रामकता | ——९. अवरोधपूर्ण सामाजिक संबोधन |
| ——१२. भावात्मक प्रवाह की समता | | |
| ——१३ सहिष्णुता | ——१३. अनवरोधित ध्वनि | ——१३. वाचिक अवरोध एवं ध्वनि का सामान्य अवरोध |
| ——१४. आत्मसंतोष (Complacency) | ——१६. आकृति की अति परि-पक्वता | ——१६. व्यवहार और रूप की युवकोचित इच्छा |
| ——१७. सहज भावनाओं का सुगम आदानप्रदान, अभ्यंतरा-गनुरूपता की बहिर्मुखता | | |

इससे सहायता मिल सकती है यदि कोई अति गोलाकृत के व्यक्ति को गोलाकार, अति आयताकृति के व्यक्ति को आयताकार और अति लंबाकृति वाले व्यक्ति को बहुत दुबले पतले रूप में सोच सके। चित्र १५·८ में आप इन अतिरूपों के कुछ चित्र देखेंगे। अतिरूप विरल होते हैं, अधिकांश व्यक्ति प्रायः इन तीनों का मिश्रण हैं। प्रत्येक व्यक्ति का पर्याप्त परिशुद्धता से आँकड़ों में वर्णन किया जा सकता हैं। इन भागों में व्यक्ति अधिकतम ७ अंक और निम्नतम अंक प्राप्त कर सकता है। औसत अंक लगभग ४ हैं। परिमापन में दक्ष व्यक्ति व्यक्तियों को नग्न करके उनके मानक फोटो ले सकता है, वस्त्र शरीर के आकार को आवृत्त नहीं कर सकेंगे—और वह प्रत्येक भाग को अंक दे सकेगा। एक व्यक्ति को ४-५-२ अंक दिए जा सकते हैं, जिसका अर्थ होगा गोलाकृत का मापन ४, आयताकृत का ५ और लंबाकृति का २। इस प्रकार का मापक विन्यास **देहाकृति** कहलाता है।

एक व्यक्ति का शरीर-गठन तीन सापेक्ष मात्राओं के भागों में स्पष्ट किया जा सकता है ।
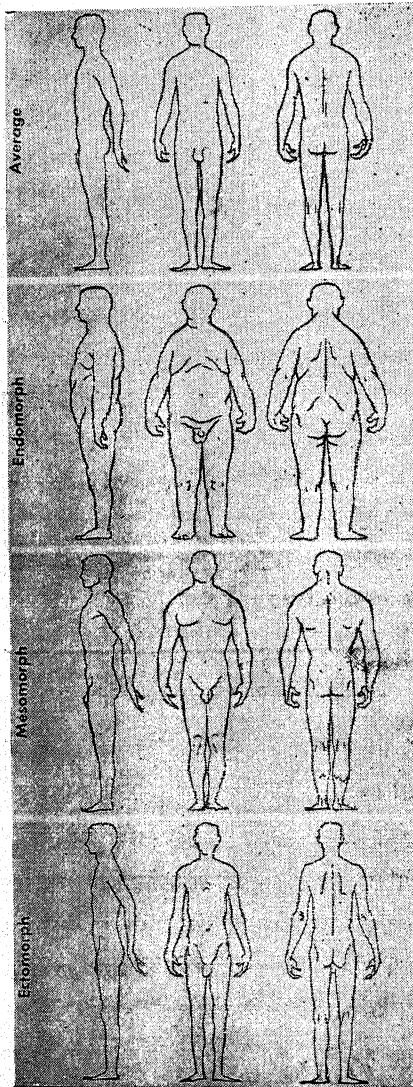
**चित्र १५·८ शेल्डन की शरीर के भागों की प्रणाली । ये रेखाचित्र गोलाकृति, आयताकृति और लंबाकृति के अतिरूपों को प्रदर्शित करते हैं और साधारण व्यक्ति को भी, जिसमें ये तीनों भाग प्राय: बराबर अनुपात में हैं ।**

स्वभाव के अंग :

यह शरीर-गठन की भिन्नताओं को व्यक्त करने की आधुनिक, वैज्ञानिक और अपेक्षाकृत विश्वसनीय पद्धति है । उसके तदनुरूप व्यक्तित्व-परिमापन की समस्या रह जाती है । इस समस्या में शोध करने वाले अनुसंधानकर्त्ताओं ने अपने को कुछ सरल लक्षणों तक जिन्हें एक शब्द में 'स्वभाव' कहा गया है, सीमित रखा । इस उदाहरण में उन्होंने स्वभाव के तीन भिन्न अंगों को लिया, जिन्हें उन्होंने क्रमानुसार अभ्यंतरांगनुरूप (Viscerctonia), शरीरानुरूपता (Somatotonia) और प्रमस्तिष्कानुरूपता ( Ceretororotina ) कहा । एक व्यक्ति का इन तीनों स्वभावगत परिवर्त्य

पर मापन हो सकता है। यह परिमापन प्रत्येक उदाहरण में २० लक्षणों पर आधृत है, इनमें से कुछ सारणी १५·६ में प्रदर्शित हैं। जैसे एक व्यक्ति का देहाकृति के लिए १ से ७ तक के स्वभाव के मापक पर मापन किया।

काय-प्ररूप सिद्धांत का सार यह है कि व्यक्तित्व अथवा स्वभाव किसी प्रकार से आंशिक रूप में शरीर-गठनात्मक कारकों से निर्धारित होता है। यदि यह सत्य है, तो शरीर-गठन के तथा स्वभाव के मापनों में सहसंबंध होना चाहिए।

शेल्डन एवं उनके सहयोगियों ने इन मापनों में सहसंबंध की सूचना दी है और उनका यह सहसंबंध पर्याप्त ऊँची मात्रा में हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके परिणाम कभी दोषपूर्ण समझे गए हैं; क्योंकि उनके स्वभाव का मापन उन व्यक्तियो द्वारा किया गया था, जो काय-प्ररूप सिद्धांत से परिचित एवं प्रभावित थे। अन्य अनुसंधानकर्त्ताओं ने जो उन दोषों से दूर रहने का प्रयत्न करते प्रतीत होते हैं—मुख्यत: मापन के स्थान पर परीक्षणों का प्रयोग किया—उन्होंने कम मात्रा में, किंतु महत्त्वपूर्ण सहसंबंध सूचित किया (टाइलर, १९५६)। हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि शरीर-गठन और स्वभाव के मध्य कुछ सहसंबंध हैं, किंतु वे सहसंबंध अल्प हैं। अतएव, शरीर-गठन से संबंधित कारक स्वभाव के महत्त्वपूर्ण निर्णायक नहीं हैं।

## सारांश

१. व्यक्तित्व के अध्ययन में, हम उन विशेषताओं पर ध्यान देते हैं, जो व्यक्तियों को एक दूसरे से भिन्न करती हैं। विशेषताओं का एक विन्यास एक प्रयोजन को और दूसरा विन्यास दूसरे प्रयोजन को सिद्ध करता है।

२. विशेषक व्यक्तित्वों की विशेषताओं को स्पष्ट करने का एक साधन है। योग्यताएँ, अभिवृत्तियाँ और रुचियाँ भी महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं। व्यक्ति के विशेष प्रेरक और उसकी समायोजन की रीतियाँ भी अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

३. व्यक्तित्व के परिमापनों का प्रयोग व्यक्तित्व के शोधकार्य और व्यावहारिक स्थितियों के उपयोग दोनों में किया जाता है। दोनों प्रयोजनों के लिए 'पेंसिल-और-कागज परीक्षण' की बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं।

४. परिवेशी-परीक्षण ऐसे परीक्षण हैं, जिनमें व्यक्ति को यथार्थ जीवन की समस्यापरक स्थिति में अन्य व्यक्तियों के साथ रखा जाता है और उनके समस्याओं को सुलझाने के ढंग का अवलोकन किया जाता है।

५ प्रत्यक्षालाप, यद्यपि प्राय: प्रयोग किए जाते हैं, किंतु वे व्यक्तित्व-मापन के विश्वसनीय और प्रामाणिक मापक नहीं हैं। कुछ अधिक वस्तुनिष्ठ और प्रामाणिक क्रम निर्धारित करने वाले मापक हैं, जिनके लिए विशिष्ट विशेषताओं की उपस्थिति या उनकी कुछ मात्रा में उपस्थिति अपेक्षित है।

६. पिछले वर्षों में प्रक्षेपी परीक्षण-जैसे रोशा एवं अंतश्चेताभिबोधन परीक्षणों का व्यापक प्रयोग हो रहा है, विशेषत: नैदानिक कार्यों में।

७. व्यक्तित्व का विकास अनेक कारकों से प्रभावित होता है, जैसे (अ) योग्यताएँ, (ब) संस्कृति और (स) परिवार और माता-पिता द्वारा दिया गया शिक्षण।

८. व्यक्तित्व के संबंध में निम्नलिखित तथ्यों को स्मरण रखना चाहिए— (अ) प्रत्येक व्यक्तित्व अद्वितीय है. (ब) व्यक्तित्व में तारतम्य और संगति होती है, (स) व्यक्तित्व में परिवर्तन प्राय: बहुत धीरे होते हैं और (द) कुछ व्यक्तियों में विशेषताओं के प्रतिरूप होते हैं, जिन्हें संलक्षण कहते हैं।

९. 'स्व' का विकास अपने शरीर की चेतना से और बाल्यकाल में एक इकाई के रूप में व्यवहार पाने से होता है। एक व्यक्ति के आत्म-प्रेक्षण का उसके दूसरे व्यक्तियों के संबंधों तथा संवेगात्मक समायोजन को प्रभावित करता है।

१०. फ्रायड ने व्यक्तित्व-संरचना के तीन प्रमुख पहलुओं पर विचार किया (अ) इद–प्रेरकों और सहज प्रतिक्रियाओं का भंडार-गृह (ब) अहम्—चेतन 'स्व' के रूप में जो जगत की वास्तविकताओं से सामंजस्य रखता है और (स) अत्यहम्—सद्-विवेक के रूप में अहम् और इद को नियंत्रित रखता है और व्यक्ति को बाल्यकालीन आदर्शों को अर्जित करने की ओर अग्रसर करता है।

११. फ्रायड एवं मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत व्यक्तित्व-विकास में निम्नांकित क्रमिक सोपानों की भी कल्पना करते हैं—(अ) चूषण अवस्था (ब) गुदा अवस्था और (स) लिंग अवस्था।

१२. व्यक्तित्व के अन्य सिद्धांत जो अभिप्रेरणा को महत्त्व देते हैं—(अ) एडलर का श्रेष्ठता के लिए प्रयत्न सिद्धांत, (ब) होर्नें का चिंता सिद्धांत (स) मरे का आवश्यकता सिद्धांत और (द) मासलो का आत्म-क्रियात्मक सिद्धांत।

१३. आलपोर्ट का व्यक्तित्व-सिद्धांत विशेषकों को महत्त्व देता है।

१४. काय-प्ररूप-सिद्धांत के अनुसार स्वभाव और शारीरिक गठन में संबंध है। अब तक के प्रमाण निर्देशित करते हैं कि यह संबंध विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है।

## पठनार्थ सुझाव :

Allport, V. W. Personality, New York : Holt, Rinehart and Winston, 1937.

व्यक्तित्व का मौलिक विवेचन, व्यक्तित्व-संबधी नवीन अवधारणाएँ प्रतिष्ठित कीं।

Ferguson, L. Personality Measurement. New York: McGraw-Hill 1952.
इस पुस्तक में व्यक्तित्व-परिमापन की विविध विधियों का विवेचन किया गया है।
Guilford. J. P. Personality. New York : McGraw-Hill, 1959.
इस पुस्तक में व्यक्तित्व को समझने और उसके मापन में लक्षणों का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।
Hall, C. S. and Lindzey, G. Theories of Personality. New York : Wiley, 1957.
व्यक्तित्व के सिद्धांतों की विस्तृत एवं पठनीय सामग्री।
Kluckhohn, C., and Murray, H. A. Personality : In Nature, Society and Culture, New York : Knopf, 1948.
सामाजिक मानवविज्ञान-विद् एवं मनोविज्ञानविद् के दृष्टिकोण से व्यक्तित्व का विवेचन।
McClelland, D. C. Personality. New York : Sloane, 1951.
व्यक्तित्व की कुछ समस्याओं पर नवीन दृष्टिकोणों से विचार प्रस्तुत किए गए हैं।
Murphy, G., Personality. New York : Harper, 1947.
व्यक्तित्व पर विस्तृत विवेचनपूर्ण और महत्त्वपूर्ण पुस्तक।
Nunnally, J. C. Tests and Measurements : Assessment and Prediction, New York : McGraw-Hill, 1959.
सांख्यकीय विधियों एवं व्यक्तित्व-रुचियों और योग्यताओं की परिमापन-विधियों का विवेचन।
Stagner, R. Psychology of Personality. (3rd. ed.) New York: McGraw-Hill, 1961.
व्यक्तित्व के अध्ययन में बहुव्यवहृत पुस्तक।
White, R. W. Lives in Progress : A Study of the Natural Growth of Personality, New York : Dryden, 1952.
तीन स्वस्थ व्यक्तियों को दो भागों में किया गया विस्तृत और रोचक अध्ययन, प्रथम जब ये व्यक्ति कालेज के विद्यार्थी थे, पुनः ५ से १० वर्ष उपरांत।

# भाग : ६

## व्यवहार पर सामाजिक प्रभाव

## अभिवृत्तियाँ, विश्वास और सामाजिक पूर्वग्रह

## वृत्तिक या व्यावसायिक समायोजन

अध्याय १६

# व्यवहार पर सामाजिक प्रभाव

क्या कभी क्षण भर रुक कर आपने यह विचार किया है कि अन्य व्यक्तियों के पास इस संबंध में कितना कहने के लिए है कि आप क्या करते हैं? यदि आप इक्कीस वर्ष के हो चुके हैं और माता-पिता के नियंत्रण से पर्याप्त मुक्त हैं, तो भी समाज के नियंत्रण से मुक्त नहीं हैं। इसका दबाव आपके संपूर्ण व्यवहार पर होता है, यहाँ तक कि किस सूट के साथ कौन-सी टाई लगानी होगी-जैसी साधारण बात से लेकर नैतिक जीवन के नियमों तक पर इसका प्रभाव रहता है। मंत्रीगण और बड़े लोग आपको नैतिक व्यवहार का उपदेश देते हैं, आपके नियोक्ता और पड़ोसी स्नेहपूर्वक रेड क्रॉस की सहायता करने का आपसे आग्रह करते हैं तथा बहुत कोमल ढंग से लोग आपको आदेश देते हैं कि आप कैसे वस्त्र पहनें, आप क्या पीएँ और अपना मनोरंजन आप कैसे करें। वस्तुत: जिस क्षण से हममें से प्रत्येक व्यक्ति जन्म लेता है, समाज हम पर प्रभाव डालता है, हमारा पथ-प्रदर्शन करता है, परामर्श देता है और जीवन के सही तथा उपयुक्त ढंग को अपनाने के लिए हमें बाध्य करता है। जैसा कि रूथ बेनेडिक्ट नामक सामाजिक मानव-विज्ञानशास्त्री (१९३४) ने कहा है :

> "किसी व्यक्ति का जीवन-इतिहास सर्वप्रथम उसके समाज द्वारा परंपरा से प्रदत्त प्रतिरूपों और मानकों से समझौता है। उसके जन्म के क्षण से, जिन रूढ़ियों में वह उत्पन्न होता है, वे उसके जीवनानुभव एवं व्यवहार को प्रभावित करती हैं। जब तक वह बोलना प्रारंभ करता है, वह अपनी संस्कृति का एक लघु प्राणी बन जाता है और जब वह बड़ा होता है, तो सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने लगता है, समाज की आदतें उसकी आदतें बन जाती हैं तथा समाज के विश्वास उसके विश्वास, समाज के असंभाव्य उसके असंभाव्य। प्रत्येक शिशु, जो अपने समाज के परिवेश में उत्पन्न होता है, उसमें भाग लेता है और कोई बालक जो विश्व के दूसरे कोने में पैदा हुआ है, उसका सहस्रवाँ भाग भी उपलब्ध नहीं कर सकता।"

हमारे व्यवहार पर सांस्कृतिक प्रभाव इतने स्थायी, इतने दृढ़ और इतने व्यापक होते हैं कि हम शायद ही कभी उनका विश्लेषण करने या उनकी प्रकृति पर विचार करने के लिए अवकाश प्राप्त करते हैं। यदि हम सागर-तल के निवासी होते, तो संभवतः अंतिम वस्तु, जिसकी हम खोज करते, जल होता। वास्तव में वायु की खोज करने में मनुष्य को दीर्घ काल लगा। इसी भाँति संस्कृति को खोजना और समझना भी कठिन है, जो हमारे व्यवहार को आकार या रूप देती है। किंतु, यदि हम मानव-व्यवहार को कुछ भी समझना चाहते हैं, तो उसे खोजना भी आवश्यक है।

## संस्कृति :

वैज्ञानिक अर्थ में प्रयुक्त **संस्कृति** शब्द किसी **जाति (समाज) के रीति-रिवाज तथा परंपराओं से और उसके जीवन के महत्त्वपूर्ण अंगों के विषय में उसकी अभिवृत्तियों एवं विश्वासों से संबंधित है।** संस्कृति को कभी-कभी 'सामाजिक दाय' भी कहा जाता है। किंतु, यह शब्द कुछ गलत धारणा प्रकट करता है कि संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपरिवर्तित रूप से वंशागत होती है। संस्कृति की अधिक उपयुक्त, तथापि प्रभावशाली, परिभाषा है जो मानवविज्ञानशास्त्री राल्फ लिंटन द्वारा दी गई है—'यह व्यवहार-प्रतिरूपों, अभिवृत्तियों और मूल्यों का कुल-योग है, जो किसी समाज के सदस्यों द्वारा उपभोग और पारेषित किया जाता है।' यह परिभाषा संस्कृति को मनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण विषय बनाती है।

हममें से अधिकांश व्यक्ति संस्कृति के विषय में जो कुछ जानते हैं, वह सामाजिक मानवविज्ञानशास्त्रियों द्वारा सिखाया गया है। उन्होंने अपने ध्यान को तथाकथित 'आदिम' समाजों या 'पिछड़े हुए' व्यक्तियों—अमेरिकन इंडियंस साउथ-सी आइलैंडर्स, अफ्रीकी जातियों इत्यादि—पर केंद्रित किया है, किंतु उन्होंने अपनी विधियों का उन्नत समाजों पर भी यहाँ तक कि अपने समाज (अमेरिकन) पर भी प्रयोग किया है।[1] अतएव, वे भिन्न समाजों की तुलना कर सके हैं तथा उनकी समानताओं और असमानताओं के संबंध में निष्कर्ष पर पहुँच सके हैं।

## संस्कृति के प्रतिमान :

उनके निष्कर्षों में संभवतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष है कि **भिन्न समाज जीवन की एक ही महत्त्वपूर्ण और आवर्तक समस्याओं का पूर्णतः भिन्न समाधान विचार सकते हैं। साथ ही, इस विषमता के बावजूद प्रत्येक समाज के सदस्य सोचते हैं कि उनके व्यवहार के प्रतिमान स्वाभाविक और सर्वोत्तम हैं।**

१. अमेरिकन समाज के प्रसिद्ध प्रयोगों के उदाहरण 'लिंड ऐंड लिंड' (१९२९) और हालिंगशीड (१९४९) हैं।

उदाहरणस्वरूप, किसी समाज द्वारा उसके पुरुषों आर स्त्रियों को सौंपे गए कार्यों पर विचार कीजिए। प्रसिद्ध मानवविज्ञानशास्त्री मार्गरेड मीड (१९३५) ने निरीक्षण किया कि एक आदिम समाज, न्यू गिनी की ट्चांबुली जाति, में संस्कृति के आर्थिक कार्यों को पुरुषों के स्थान पर स्त्रियों को सौंपा जाता है, जैसा कि हमारे देश (अमेरिका) में रिवाज है। इसके अतिरिक्त ट्चांबुली जाति के पुरुष ऐसी क्रियाओं को करते हैं, जिनकी आशा हम अपने देश की स्त्रियों से करते हैं, जैसे उत्सव मनाना, अपना शृंगार करना। ट्चांबुली संस्कृति के विश्वास कार्यों के इस विभाजन को संगत प्रमाणित करते हैं। स्त्रियाँ स्वभावतः आरामप्रिय, आत्मविश्वस्त एवं व्यवहार-पटु मानी जाती हैं, जब कि पुरुषों को जन्मजात अभिमानी और कलाप्रिय माना जाता है। अनेक अमेरिकन समाजों की पुरुषों और स्त्रियों की 'मूल प्रकृति' के संबंध में पूर्णतः भिन्न अवधारणा है। किंतु, ये विश्वास क्या हमारे व्यवहार-प्रतिमानों को संगत स्वीकार करने और उनका वर्णन करने के अतिरिक्त कुछ और हैं?

संभवतः, यह सत्य है कि अधिकांश (किंतु निश्चित रूप से सब नहीं) ट्चांबुली वयस्कों के व्यक्तित्व, उनकी संस्कृति की लिंगगत मूल विशेषताओं से संबंधित विश्वासों के अनुरूप होते हैं। इसी तरह, अनेक (किंतु पुनः, सब नहीं) अमेरिकन वयस्क प्रायः उसी के अनुरूप व्यवहार करते हैं, जिसकी हम उनसे आशा करते हैं। किसी संस्कृति के अधिकांश सदस्य जीवन भर समान सामाजिक प्रभावों में रहते हैं, वे उन विशेषताओं को विकसित करते हैं, जो उनके समाज के अनुरूप और उपयुक्त हैं।

एक समाज में विस्तृत रूप से उपभोग किए गए इन व्यवहार-प्रतिमानों और उनसे संबंधित विश्वासों को मिलाकर सुविधा के लिए **सांस्कृतिक** प्रतिमान की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार का सांस्कृतिक प्रतिमान समाज की केवल एक सामान्य विशेषता है और प्रत्येक व्यक्ति उसके अनुरूप कार्य नहीं करता। उदाहरणतः' सब इतालवी (इटेलियन्स) गीति-रूपक पसंद नहीं करते और कुछ अमरीकन भी करते हैं। तथापि प्रत्येक संस्कृति का विशिष्ट प्रतिमान होता है, प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार करने और विश्वास करने के ऐसे रूप होते हैं, जो उस संस्कृति के अधिकांश सदस्यों में पाए जाते हैं। अतः, प्रत्येक संस्कृति के अपने कुछ ऐसे प्रतिमान होते हैं, जो उसे दूसरी संस्कृतियों से भिन्न करते हैं। यह कहना संभवतः उपयुक्त है कि संगीत और गीतिरूपक के रूप के प्रति स्नेह अमरीकी संस्कृति के प्रतिमान की अपेक्षा इतालवी प्रतिरूप के रूप में अधिक महत्त्व रखता है।

भिन्न संस्कृतियों के नवीन और रहस्यपूर्ण जीवन-प्रतिरूपों का अध्ययन आकर्षक विषय है (चित्र, १६.१)। किंतु, मानव-व्यवहार के अध्येता केवल इसीलिए

भिन्न सांस्कृतिक प्रतिमानों का अध्ययन नहीं करते। उनके लिए सांस्कृतिक वैविध्य व्यक्ति के व्यवहार और व्यक्तित्व के विकास पर समाज के प्रभावों को अध्ययन करने का अवसर प्रदान करता है। एक ही समाज की आंतर भिन्नताओं की अपेक्षा एक समाज से दूसरे समाज सें विभिन्नता अधिक होती है, जैसे हमारे अपने ही समाज में। मानव-विज्ञानशास्त्रियों ने कहा है, उदाहरणतः, समाज उस मात्रा तक अधिक भिन्न होते हैं, जिस मात्रा तक उनके सदस्य सांस्कृतिक लक्ष्य और पुरस्कार प्राप्त करने की परस्पर स्पर्धा करते हैं। कुछ समाज, जैसे उत्तर-पश्चिम पैसिफिक के क्वाक्यूतल इंडियन 'सामाजिक पद और' जीवन की उत्तम वस्तुओं' के लिए तीव्र स्पर्धा करते हैं। इस संबंध में क्वाक्यूतल इंडियन हमसे भिन्न नहीं हैं। हमारे समाज में भी वैयक्तिक उपक्रम द्वारा ही पुरस्कार प्राप्त किए जाते हैं। इस प्रकार समाज अपने सदस्यों के मध्य अति स्पर्धा की भावना का पोषण करता है। अमरीकन दक्षिण-पश्चिम की जूनी (Zuni) इंडियन जाति में, दूसरी ओर 'अति वैयक्तिक उपक्रम और प्रतियोगिता को अनुचित समझा जाता है। इसलिए वे मूलतः विनम्र और शांत प्रकृति के होते हैं। उनकी संस्कृति व्यक्तिवाद या प्रतियोगिता से भिन्न उत्सवों और कार्यों को कलात्मक ढंग से करने में अधिक व्यस्त रहती है।

**चित्र १६ १ भोजन करने के व्यवहार में सांस्कृतिक अंतर। ( बाएँ ) सुमात्रानिवासी घर की चित्रकला का उत्सव मना रहे हैं, बच्चे और स्त्रियाँ तब तक प्रतीक्षारत खड़े रहेंगे, जब तक पुरुषवर्ग भोजन समाप्त न कर दे (स्टैंडर्ड आयल को० एन० जे०) ( पृष्ठ ८७३ पर ) एक जापानी परिवार रात्रिभोज करता हुआ ( जापान टूरिस्ट एसोसिएशन)।**

संस्कृति के निर्धारक तत्त्व :

हमारा विश्वास है कि संस्कृति की भिन्नताओं का कोई कारण अवश्य है। ये कारण दो स्थितियों में हो सकते हैं : प्राकृतिक परिस्थितियाँ, जिनमें व्यक्ति रहते हैं — कैसा भोजन उन्हें उपलब्ध है, प्राकृतिक स्रोतों की बहुलता या कमी, जलवायु, अन्य

व्यक्तियों का सान्निध्य इत्यादि तथा समाज की पूर्व प्रतिस्थापित परंपराएँ, जो उसके सदस्यों के व्यक्तियों और आदतों को प्रभावित करती हैं। दूसरे शब्दों में संस्कृति की बाह्य और आंतर दोनों परिस्थितियों में संस्कृति के निर्धारक तत्त्व हो सकते हैं। दुर्भाग्य से संस्कृति के विविध निर्धारक तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करने में हमें विशेष सफलता उपलब्ध नहीं हुई है, तथापि हम उन निर्धारकों के उदाहरण प्रस्तुत कर सकते हैं, जिनका अध्ययन किया गया है।

समाज में प्राकृतिक स्रोतों की कमी एक संभाव्य निर्धारक हो सकता है। यदि खाद्य-पदार्थ एवं अन्य आवश्यक वस्तुओं का अभाव रहे, तो हम उस समाज के व्यक्तियों के स्पर्धापरक होने की आशा कर सकते हैं; क्योंकि उन्होंने सीमित प्राकृतिक स्रोतों के कारण, जीवित रहना प्रतियोगिता से ही सीखा है। इस प्राक्कल्पना की सत्यता निर्धारित करने के लिए १३ आदिम समाजों का अध्ययन करके खाद्य-पदार्थों की बहुलता और उनकी संस्कृतियों में प्रतिस्पर्धा की भावना के आधार पर कोटि-क्रम निर्धारित किया (न्यूकांब, १९५० )। इस प्राक्कल्पना के विपरीत इस अध्ययन का सुझाव है कि समाज की स्पर्धा-भावना तथा उसके प्राकृतिक स्रोतों की कमी में कोई संबंध नहीं है। 'उत्तम वस्तुओं' का अभाव, जिनके लिए समाज में व्यक्ति प्रतिस्पर्धा करता है, वह स्पष्टतः समाज अथवा आंतरिक सांस्कृतिक प्रभावों द्वारा उत्पन्न किया जाता है एवं अनिवार्यत. वह प्राकृतिक वंचन का परिणाम नहीं है।

हम सांस्कृतिक प्रतिमानों में विभिन्नता के अधिक ठोस उदाहरण पर विचार करेंगे। समाज-वैज्ञानिकों (ह्वाइटिंग एट० एल०, १९५८) ने इसकी खोज करने का प्रयत्न किया है कि क्यों कुछ समाजों में लड़का जब यौवनारंभ अवस्था को प्राप्त करता है, तब उत्सव मनाए जाते हैं और कुछ समाजों में ये 'यौवनारंभ उत्सव' नहीं होते।

"छप्पन समाजों का, छोटे-छोटे कबीलों के दलों से लेकर संश्लिष्ट सभ्य समाजों, जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका, तक का वर्गीकरण इस कसौटी पर किया गया कि किन समाजों में कठोर पुरुष-संस्कार विधियाँ प्रायः यौवनारंभ-काल के निकट होती हैं (जैसे सुन्नत करना या अन्य कठोर परीक्षण करना) और किन समाजों में ऐसे कठोर विधान नहीं हैं। शोध-कर्त्ताओं ने देखा कि इन यौवनारंभ संस्कारों के साथ संयोग की आकृति की अपेक्षा कुछ यौन-रिवाज अधिक संबंधित है। सांस्कृतिक भिन्नताओं का और अधिक विश्लेषण करने पर उन्होंने अनुभव किया कि जिन समाजों में ये कठोर संस्कार हैं, उनमें प्रसव के उपरांत दीर्घकाल तक पति-पत्नी में संभोग-संबंध भी वर्जित है। इसके अतिरिक्त ये समाज विशेष रूप से आदेश देते हैं कि पुत्र को माता के साथ जन्म के बाद दीर्घकाल तक सोना चाहिए। यह सहसंबंध शोधकर्त्ताओं को इस निष्कर्ष पर पहुँचने में सहायता देता है कि यौवनारंभ संस्कार एक प्रकार से लड़के पर व्यक्त पुरुष-अधिकार का प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किए जाते हैं। ये संस्कार लड़के की माता से भावात्मक निर्भरता को पृथक् करने का एक प्रयत्न है। संभवतः वे पिता और पुत्र में माता के संबंध में विशेष स्पर्धा को भी अभिव्यक्त करते हैं।"

## सांस्कृतिक परिवर्तन :

यद्यपि संस्कृतियों के निश्चित प्रतिमान रहते हैं, किंतु ये प्रतिमान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को पैतृक संपत्ति के रूप में प्रदान नहीं किए जाते, वरन् वे निरंतर परिवर्तित होते रहते हैं—कभी धीरे-धीरे और कभी पर्याप्त तीव्रता से। पाश्चात्य सभ्यता में मध्ययुग सांस्कृतिक प्रतिमानों के मंद परिवर्तन का युग था, जबकि आधुनिक काल तीव्र और नाटकीय परिवर्तनों का युग कहा जाता है। अन्य संस्कृतियाँ भी इसी प्रकार कभी तीव्र गति से और कभी मंद गति से परिवर्तित होती हैं।

सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण पर्याप्त जटिल होते हैं। कभी-कभी ये परिवर्तन **जलवायु-संबंधी स्थितियों, प्राकृतिक स्रोतों के समाप्त** होने या मुख्यतः आधुनिक युग में, **औद्योगिक परविर्तनों** के कारण होने के लिए बाध्य होते हैं। आज उद्योगविद्या सांस्कृतिक परिवर्तनों के क्षेत्र में प्रवेश कर रही है और यहाँ तक कि कुछ एकांतप्रिय समाज भी इसके कुछ प्रभावों से बच नहीं सके हैं। अंतिम, सांस्कृतिक परिवर्तनों का एक हेतु **'विचारधारा'** है। विचारों के कुछ प्रतिमान महत्त्व प्राप्त करते हैं, जिनकी संस्कृति में आवश्यकता होती है और वे संस्कृति में महान् परिवर्तन उपस्थित करते हैं। ईसाई धर्म और साम्यवाद इसके महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

दूसरी ओर, यह मानना ठीक नहीं है कि संस्कृतियाँ बहुत तीव्रता से परिवर्तित होती हैं या उनके सब अंग परिवर्तित हो जाते हैं; क्योंकि सांस्कृतिक प्रतिमान में सदैव कुछ निरंतरता रहती है। कुछ प्रतिमान यथार्थतः अपरिवर्तित रह जाते हैं, जब कि अन्य प्रतिमान उग्र रूप से बदल जाते हैं (देखिए, चित्र—१६.२)। ध्यान से देखिए सम्राट्-पूजा के साथ जापान का बढ़ता हुआ औद्योगीकरण और उसका सांस्कृतिक परिणाम। संस्कृतियों में संगीत की भाँति परिवर्तन होता है, व्यवस्था और लय बदल जाएँ, किंतु अंतर्निहित सुरीलापन प्रायः वही रहता है।
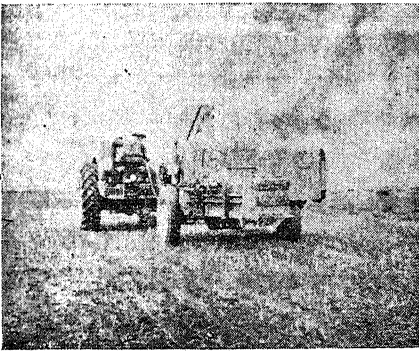
चित्र १६.२ उत्तरमध्य संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा का हटराइट नामक धार्मिक संप्रदाय परंपरागत वेशभूषा के, कपड़ा बुनने और बत्तक पालने के प्रतिरूपों का अनुकरण करता है तथा साथ ही कृषि के आधुनिक साधनों का एवं आधुनिकतम वाणिज्य-उत्पादनों का भी प्रयोग करता है ( जे० डब्ल्यू० ईटन, साइंटिफिक अमेरिकन )।

## संस्कृति की चेतना :

हम उल्लेख कर चुके हैं कि कुछ लोग उस समाज के सांस्कृतिक प्रतिमानों के प्रति जागरूक होते हैं, जिसमें वे रहते हैं। जन्म के क्षण से ही जिनका व्यवहार संस्कृति

द्वारा आकार ग्रहण करता है, वे अपनी संस्कृति द्वारा स्वीकृत अपरिवर्तनीय व्यवहारों और अभिवृत्तियों को स्वीकार करते हैं। वे इस तथ्य से अपरिचित हैं कि किस सीमा तक संस्कृति उनकी आदतों और मूल्यों को प्रभावित करती है।

यह भी संस्कृतियों की विशेषता है कि समाज का एक भी व्यक्ति अपनी संस्कृति को सर्वांग ग्रहण नहीं करता। वरन्, कुछ अपवादों को छोड़कर प्रत्येक सदस्य केवल अपनी उप-संस्कृति से परिचित रहता है। यह इसलिए कि साधारणतः संस्कृति के केवल कुछ अंग किसी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं और वह अपनी संस्कृति के अन्य मुख्य अंगों का भाग नहीं बनता अथवा उनसे अधिक प्रभावित नहीं होता।

इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए हम वर्ग या संस्कृति की गतिशीलता का उदाहरण लें। कुछ समाजों को जाति या वर्ग प्रणालियों में किसी व्यक्ति के लिए एक वर्ग से दूसरे उच्चतर वर्ग की ओर बढ़ना वस्तुतः असंभव होता है। कुछ अन्य समाजों में जिनमें कुछ कानूनी और आर्थिक बाधाएँ होती हैं, यह और भी सत्य होता है; क्योंकि समाज के निम्न स्तर के लोग उच्च वर्ग के सांस्कृतिक रूपों (तरीकों) से अज्ञात रहते हैं। यहाँ तक कि हमारे जैसे समाज में भी, जहाँ वर्ग-रेखा को अन्य समाजों की अपेक्षा पार करना अधिक सरलता से होता है, यह इतना सुगम नहीं है जितना प्रतीत होता है। उसे पार करने के लिए व्यक्ति को अपने बचपन की ओर यौवनारंभ-काल की आदतों और अभिवृत्तियों को अनिवार्य रूप से त्यागना होगा और जिस वर्ग में वह प्रवेश कर रहा है, उसकी संस्कृति को अपनाना सीखना होगा। यह कभी कभी कठिन और असंभव होगा। वस्तुतः ज्ञान की ये बाधाएँ और संस्कृति के आंतरिक गुण इन कथनों की भूमिकाएँ हैं जैसे—'मादा सूअर के कान से आप रेशमी पर्स नहीं बना सकते' ( चूहे के चाम से चंग नहीं बन सकता ) और 'वह पथ की विपरीत दिशा में चल रहा है।'

सामाजिक संरचना :

जैसा कि हम बता चुके हैं कि प्रत्येक संस्कृति की अपनी **सामाजिक संरचना** भी होती है। इसका तात्पर्य है कि इसमें व्यक्तियों के लिए श्रेणियाँ निर्धारित रहती हैं, यह कुछ व्यक्तियों से एक विशेष प्रकार के कार्य की आशा करती है और कुछ व्यक्तियों से दूसरे प्रकार के कार्यों की। यह अपने परिवारों से विशेष रूप में संगठन की आशा करती है और यह अपने सदस्यों से विशेष अभिवृत्तियों और विश्वासों को ग्रहण करने की आशा करती है। कुछ समाजों में यह सामाजिक संरचना बहुत कठोर होती है और कुछ में यह नम्य (लचीली) होती है, किंतु इससे पूर्णतः युक्त कोई समाज नहीं है।

इस संरचना का अधिकांश व्यक्तियों द्वारा किए गए कार्यों तथा उत्पाद्य-वस्तुओं पर निर्भर करता है। एक व्यक्ति सस्ते अभूषण बनाता है, दूसरा जूते और और तीसरा भाप के इंजन का आविष्कार करता है। सस्ते आभूषण कुछ व्यक्तियों की अनावश्यक आवश्यकताओं को तृप्त कर सकते हैं, जब कि भाप का इंजन सैकड़ों भिन्न वस्तुओं को अपने में समाहित करता है, जो आवश्यकताओं को तृप्त करती हैं। अतएव, व्यक्तियों की परस्पर निर्भरता का सम-विभाजन नहीं है और समाज के लिए कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व रखते हैं।

वे सब प्रकार की विधियाँ, जिनमें समाज के लिए असमान कार्य होते हैं, लिंग-भेद और आयु से उत्पन्न होने वाली सर्वाधिक सामान्य हैं। अतएव, ये भिन्नताएँ सब समाजों की कुछ मात्रा में संरचना करती हैं। स्पष्टतः शिशुओं का योगदान न्यूनतम और उनकी माँग अधिक होती है और माताओं को उनकी देखभाल का कार्य सौंपा जाता है। शिशुओं का कुछ योग हो सकता है, किंतु अधिक नहीं, और इसीलिए उनसे आशा की जाती है कि वे वयस्कों का उनके भिन्न स्तरों के अनुरूप सम्मान करें। प्रायः प्रत्येक समाज में युवकों के आपतकाल में योद्धा होने की आशा की जाती है। वृद्ध व्यक्ति प्रायः बुद्धि और नेतृत्व के स्रोत माने जाते हैं। अतएव, समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति की योग्यता में विभिन्नताओं का समाज की संरचना में महत्त्वपूर्ण योग रहता है। इसी के समान समाजों में औद्योगिक विभिन्नताओं का भी महत्त्व है, जिन समाजों में विस्तृत औद्योगीकरण तथा कार्य की अधिक विशिष्ट प्रणालियाँ हैं, उनकी सामाजिक संरचनाएँ भी व्यापक हैं।

पद और कार्य ( Status and Role ) :

जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं कि वृत्तियाँ सामाजिक संरचना के स्वरूप में सहायता करती हैं। इसी प्रकार पारिवारिक इकाई में स्थान, सामाजिक समूह में सदस्यता तथा अनेक कारक, जो विशेष समाज पर निर्भर करते हैं, भी सहायक हैं। सामाजिक संरचना का गठन समाज के सदस्य व्यक्तियों का वर्गीकरण उन विभिन्नताओं के अनुसार करके करते हैं, जो उनकी आवश्यकताओं के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव, वे समाज में प्रत्येक व्यक्ति को एक स्थान देते हैं जिसे समाज-वैज्ञानिक 'पद' कहते हैं—वायु-पद, लिंग-पद, वृत्तिक-पद, सामाजिक-पद इत्यादि। प्रत्येक पद **एक स्थान है, जो उन विभिन्नताओं को प्रस्तुत करता है, जो वस्तुओं और सेवाओं ( या कार्यों ) के परिवर्तन में एवं समाज में आवश्यकताओं की तृप्ति के लिए महत्त्वपूर्ण है।**

विशेष व्यक्ति विशेष कालों में किसी एक ही पद को प्राप्त कर सकते हैं एवं समय-समय पर उनके पदों में अंतर हो सकता है। पद के साथ-साथ **कार्य** का भ

महत्त्व है। यह व्यवहार का विशेष प्रतिमान है, जिसके करने की आशा विशेष पद में व्यक्ति से की जाती है। पद में 'गृहस्वामी' होने के नाते पिता का विशेष व्यवहार-कार्य है, जिसे इस पद में उसे करना पड़ता है। इसी प्रकार नियोक्ता या माता या अध्यापक इत्यादि पदों में भी उन्हें अपने-अपने कार्य करने पड़ते हैं। अतः, पद और कार्य में स्पष्ट अंतर समझना आवश्यक है। एक का संबंध समाज-संरचना में प्राप्त स्थान से है और दूसरे का संबंध उस स्थान में होने के कारण किए गए व्यवहार से है। पद और कार्य की ये अवधारणाएँ सामाजिक संरचना को समझने की कुंजी हैं। (देखिए, चित्र १६·३)।

सैनिक संस्थान पद-प्रणाली की चरम सीमा का उदाहरण है।
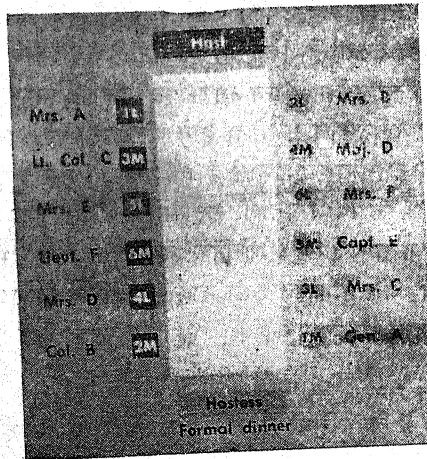
चित्र १६.३ बैठने की औपचारिक व्यवस्था में पदों को दिखाया गया है। सैनिक अफसरों की पुस्तिका में छपा हुआ यह रेखाचित्र औपचारिक रात्रिभोज में बैठने की व्यवस्था को प्रस्तुत करता है (फोर्ट बेनिंग, गा० इन्फैंटरी स्कूल)।

## बहुमुखी पद (Multiple Status):

जिस प्रणाली के द्वारा सामाजिक संरचना में पदों का वर्गीकरण किया जाता है, वह प्रायः किसी व्यक्ति का विविध दृष्टिकोणों से वर्गीकरण करती है। जैसे—गृह-स्वामी, अध्यापक, कर्मचारी, चर्च का सदस्य। अतएव, एक व्यक्ति के समाज-संरचना में अनेक पद होते हैं। अपने जीवन के कुछ भाग में वह एक पद प्राप्त करता है, दूसरे भाग में दूसरा पद। इसके अतिरिक्त इनमें से प्रत्येक पद में उसे पदोनुकूल विशेष कार्य करना पड़ता है। अतः, वह अपने को बहुमुखी पदों और बहुमुखी कार्यों के मध्य पाता है। लिटन (१९४५) से लिया गया निम्नलिखित उदाहरण व्यक्ति द्वारा ग्रहण किए हुए बहुमुखी पदों का चित्र प्रस्तुत करता है—

"हम स्वीकार करें कि एक व्यक्ति किसी दुकान में एक क्लर्क के रूप में दिन व्यतीत करता है। जब वह खिड़की के ऊपर होता है, उसका क्रियाशील पद एक क्लर्क का रहता है, स्थान जो कि हमारी सामाजिक प्रणाली में विशिष्ट वृत्तियों के लिए उसके स्थान द्वारा स्थिर किया गया है। इस पद से संबंधित क्रिया ग्राहकों के उसके संबंध-प्रतिमानों की व्यवस्था करती है। ये प्रतिमान उसे एवं उसके ग्राहक दोनों को पूर्णतः ज्ञात होंगे और दोनों को न्यूनतम विलंब या गलतफहमी के बिना व्यापार की सुविधा देंगे। जब वह सिगरेट पीने के लिए विश्राम-कक्ष में जाता है, वहाँ वह अन्य कर्मचारियों से मिलता है, तब उसका क्लर्क-पद गौण हो जाता है और वह दूसरा सक्रिय पद प्राप्त करता है, जो उस दुकान के कर्मचारी वर्ग निर्मित समूह से संबंधित उसके स्थान पर आधृत है। इस पद में अन्य कर्मचारियों के साथ उसके संबंध उन व्यवहार-प्रतिमानों से भिन्न होंगे, जो ग्राहकों के साथ उसके संबंध-प्रतिरूप थे। इसके अतिरिक्त; क्योंकि वह संभवतः अन्य अनेक कर्मचारियों से परिचित है, इसलिए इन सांस्कृतिक प्रतिमानों का व्यावहारिक रूप उनसे संबंधित उसकी निजी पसंद और नापसंद द्वारा तथा दुकान के कर्मचारी-वर्ग में सापेक्ष-प्रतिष्ठा में उसके क्रमिक स्थान से संबंधित विचारों द्वारा परिष्कृत होगा। दुकान को बंद करने के समय वह इन दोनों पदों को क्लर्क और—दुकान-संस्थान का सदस्य, एक ओर रख देता है और अपने घर की ओर जाते हुए वह केवल समाज की आयु-लिंग पद्धति के अनुरूप व्यवहार करता है। अतः, यदि वह एक युवा व्यक्ति है, तो वह अनुभव करेगा कि उसे अपनी सीट से किसी महिला के लिए उठ जाना चाहिए और यदि वह वृद्ध व्यक्ति है, तो उस सीट पर वह आराम से बैठा रह सकता है। जैसे ही वह अपने घर पहुँचता है, पदों का नवीन विन्यास क्रियाशील हो जाता है। ये पद स्नेह-संबंधों से प्रकट होते हैं, जो उसे परिवार-संस्थान के विभिन्न सदस्यों से संबंधित करते हैं। इन परिवार-पदों से संबंधित क्रियाओं को करते समय वह अपनी सास के प्रति विनम्र, अपनी पत्नी के प्रति स्नेहशील और अपने से छोटों के लिए कट्टर अनुशासनवादी रहता है। यदि घटनावश वह लॉज-रात्रि का दिन हो, तो लगभग आठ बजे उसके सब पारिवारिक पद गौण हो जाते हैं। जैसे ही वह लॉज-कक्ष में प्रवेश करता है, वह एन्सेंट आर्डर ऑफ डिनो-सार्स में ग्रैंड इंपीरियल लिजार्ड की वर्दी पहनता है और एक नवीन पद को प्राप्त करता है, ऐसे पद को जो पिछली बैठक के बाद से ही सुप्त पड़ा था

और वह उस पद के अनुकूल तब तक क्रिया करता है, जब तक पुनः वर्दी बदलने और घर लौटने का समय नहीं हो जाता।''

### क्रियाओं में द्वंद्व :

जब किसी व्यक्ति को क्रियाओं के द्वंद्व का सामना करना पड़ता है, तब गंभीर परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है, इसकी संभावना हमारे जैसे-जटिल और गतिशील समाज में हो सकती है। कठोर फोरमैन जो अपने कर्मचारियों से कठोरता से कार्य लेता है, अपनी विधियों को उस समय असफल पाता है, जब किसी कार्य को करने के लिए स्वयं उसे सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है। वह विद्यार्थी-नेता, जो किसी छोटे नगर के हाई स्कूल में कक्षा का नेता रहने का अभ्यस्त है किसी महान् विश्वविद्यालय में साधारण छात्र के रूप में जाने पर दुखी होता है। काकटेल के रीति-रिवाज और सभ्यता से अभ्यस्त महिला को यदि कृषकों और मजदूरों की सभा में पहुँचना पड़े, तो वह अशांत हो जाती है।

पदों के ऐसे परिवर्तन व्यक्ति में कार्यों के द्वंद्व को उत्पन्न कर देते हैं। वह अनुभव करता है कि एक पद के अनुकूल उसने जो कार्य सीखा था, वह नवीन पद के बिलकुल अनुरूप नहीं है। वह अनिश्चित हो जाता है कि उसे क्या कार्य करना चाहिए और ऐसी परिस्थिति में जब उसे एक कार्य का निर्णय लेने के लिए बाध्य होना पड़ता है, तो उसे अपने निर्णय पर बहुत कम विश्वास रहता है। ऐसी स्थिति में वह पूर्वोल्लिखित अभिप्रेरणात्मक द्वंद्व (देखिए, अध्याय—५) में पड़ सकता है। इसके परिणाम कुंठा, चिंता, विद्वेष और समायोजन की असफलता हो सकते हैं।

कार्य-द्वंद्व उस समय भी हो सकता है, जब कोई व्यक्ति एक साथ दो पदों को सभालता है और ये पद उससे परस्पर-विरोधी कार्यों की आशा करते हैं। यह निम्नलिखित उदाहरण में देख सकते हैं, जिसे शोधकर्त्ता ने अपने प्रयोग पात्रों के लिए उपस्थित किया था (स्टाफर, १९४९) :

> ''कालेज के विद्यार्थियों से यह कल्पना करने के लिए कहा कि मानो वे उनके साथियों द्वारा दी गई परीक्षा का कार्यभार सँभाल रहे हैं। उनसे यह भी सोचने के लिए कहा कि उन्होंने एक छात्र को नकल करते हुए देखा, और उनसे पूछा गया कि उस स्थिति में वे क्या करेंगे, अर्थात् वे उस स्थिति में किस रूप में कार्य करेंगे। उनके प्रत्युत्तरों को सारणीवद्ध किया गया और उनका विश्लेषण किया गया। यह देखा गया कि उनके प्रत्युत्तर इस पर निर्भर करते थे कि अन्य विद्यार्थी किस बात का अनुमोदन करेंगे और काल्पनिक नकलकर्त्ता कौन था। यदि नकलकर्त्ता एक साधारण छात्र था, तो स्पष्टतः

प्रोक्टर-छात्र अधिक दुविधा में नहीं पड़ेगा। अधिकांश प्रयोग-पात्रों ने अनुभव किया कि अधिकारी-वर्ग एवं अन्य विद्यार्थी सभी इस नकल की सूचना देने का अनुमोदन करेंगे। दूसरी ओर, यदि नकलकर्त्ता कोई मित्र है, तो प्रोक्टर-छात्र द्वंद्वात्मक स्थिति में पड़ जाएगा, प्रोक्टर के पद एवं मित्र के पद में द्वंद्व उत्पन्न होगा। इस द्वंद्व में सब प्रयोग-पात्रों ने स्वीकार किया कि अधिकारी वर्ग उनसे नकल की सूचना देने की आशा करेगा, किंतु अन्य छात्र चाहेंगे कि मित्र को 'मुक्त' रखा जाए।"

बहुमुखी कार्य सदैव द्वंद्वात्मक नहीं होते। वस्तुतः सुव्यवस्थित समाजों में कार्य-संबंधी द्वंद्व अपेक्षाकृत विरल होते हैं। ऐसी समाजों की संरचना पदों को इस प्रकार सुरक्षित और पृथक् रखती है कि उनमें द्वंद्व केवल अपेक्षाकृत असाधारण और असंगत स्थितियों में ही होते हैं। उदाहरणतः एक स्काटवासी की कहानी है, जिसे अपने भाई के घातक का आतिथ्यक (मेजबाज) बनना पड़ा था। आतिथ्य की परंपराओं में बँधा हुआ, वह आतिथ्यक और भाई की मृत्यु का बदला लेने के कार्यों के द्वंद्व को, घातक बदला लेने से पूर्व अपने दल की सीमा से बाहर उसे पहुँचा कर, दूर कर सकता है। ऐसे द्वंद्व अपेक्षाकृत बहुत विरल होते हैं।

कार्यों के द्वंद्वों की विरलता का एक कारण यह है कि व्यक्ति प्रायः उस विशेष पद को केवल देखते हैं, जो स्थिति के लिए सर्वाधिक उपयुक्त हो। एक निर्भीक व्यापारी, जो नियमित रूप से चर्च भी जाता है, संभवतः अपने व्यवसाय-व्यवहार में और अपने विश्वास में, जिसे वह प्रति रविवार चर्च में स्वीकार करता है, में कोई असंगति नहीं अनुभव करता है। सप्ताह भर व्यवसायी के पद में कार्य करते हुए वह कभी अपने को चर्च जाने वाले के रूप में नहीं सोचता। वस्तुतः उसे अपने अन्य पदों का ध्यान ही नहीं रहता, जब तक कि परिस्थितियों द्वारा या अन्य संकेतों द्वारा उसे स्मरण न दिलाया जाए (चार्टर्स और न्यूकांब, १९५८)।

## सामाजिक वर्ग :

अब तक हम सामाजिक संरचना का पदों और कार्यों के संबंध में वर्णन कर रहे थे। पदों की रचना के अतिरिक्त सामाजिक संरचना के अंतर्गत अन्य तथ्य भी हैं। प्रत्येक समाज में ये **पद सम्मान के मापक के अनुसार व्यवस्थित रहते हैं।** इसका अभिप्राय है समाज में व्यक्ति कुछ पदों को अन्य पदों की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं अथवा वे अपनी इच्छा के अनुरूप पदों का क्रम निर्धारित करते हैं (देखिए, सारणी १६·१)। तदंतर समाज को धन, शक्ति, सम्मान और पुरस्कार, के रूप में जो देन देनी होगी, वह इस सम्मान-मापक के ही अनुसार होगी। वस्तुतः एक-का-एक

से कोई सहसंबंध नहीं है, जैसे सम्पत्ति और सम्मान में; क्योंकि समान सम्मान के व्यक्ति संपत्ति का कुछ भिन्न भाग प्राप्त कर सकते हैं। किंतु, सामान्यतः समाज की देन पर्याप्त मात्रा में सम्मान-मापक के पदों के तदनुरूप होती है।

अतएव, यह सम्मान-मापक सामाजिक वर्गों या स्तरों का आधार बनता है। जिनका स्थान इस पर ऊँचा है, वे मुख्यतः एक वर्ग के अंतर्गत आते हैं और जिनका स्थान इस पर नीचा है, वे प्रधानतः दूसरा वर्ग निर्मित करते हैं। अनेक समाजों में यह वर्ग-प्रणाली इतनी महत्त्वपूर्ण हो गई है कि यह सब सामाजिक संस्थानों एवं व्यवहारों पर छा गई है। उदाहरणतः, अनेक प्राचीन राज्यों में सब सदस्यों का वर्गीकरण तीन वर्गों में से किसी एक के अंतर्गत—सुप्रतिष्ठित मुक्त नागरिक और गुलाम—असंदिग्ध रूप से होता था। प्रत्येक व्यक्ति इन तीनों में से किसी एक वर्ग का होता था। प्रायः उसका वर्ग-भेद उसकी भाषा, वेश-भूषा या अन्य प्रतीकों द्वारा किसी भी प्रेक्षक को ज्ञात हो जाता था। प्रत्येक वर्ग के लिए कोई विशेष वृत्ति और वस्तुतः निश्चित प्रकार के सामाजिक व्यवहार निर्धारित थे, उदाहरणतः मुक्त नागरिक व्यक्ति का सुप्रतिष्ठित व्यक्तियों के प्रति एक प्रकार का व्यवहार होता था, दूसरे मुक्त नागरिकों के प्रति अन्य प्रकार का और गुलामों के प्रति तीसरे प्रकार का।

हमारा समाज वर्गों को इतनी कठोरता से विभाजित नहीं करता। किसी व्यक्ति का सामाजिक वर्ग बताना सदैव सरल नहीं होता और न किसी वर्ग के सदस्यों को उस वर्ग में और उसकी विशेष वृत्ति में उतनी कठोरता से रहना पड़ता है, जितनी कठोरता से भारत में किसी जाति के व्यक्तियों को रहना पड़ता है। दूसरे शब्दों में हमारे यहाँ वर्ग अधिक परिवर्तनशील हैं। किंतु, अमरीकन समाज में निश्चित वर्ग-संरचना है। इसका एक रोचक उदाहरण एक अमरीकन समाज, जिसे औपन्यासिक रूप में जोंसविले कहते हैं कि सामाजिक संरचना के अध्ययन ( वार्नर, १९४९ ) में मिला। मिस्टर वाल्टर जोंस, जोंसविले के एक प्रतिष्ठित नागरिक, ने नगर के अनेक व्यक्तियों की भावनाओं को निम्नलिखित ढंग से संक्षेप में कहा है :

> "इस नगर में प्रायः प्रत्येक व्यक्ति का किसी-न-किसी रूप में मूल्यांकन होता है, लोग आपसे केवल कुछ मिनट बात करके आपका मूल्यांकन कर सकते हैं। यह महत्त्वपूर्ण है कि आप तीव्रता से व्यक्तियों का मूल्यांकन, किस प्रकार कर सकते हैं—मान लीजिए कि मैं शून्य से १०० अंकों के मूल्यांकन-मापक का प्रयोग करके व्यक्तियों का उस पर मूल्यांकन करता हूँ। आप निश्चित हो सकते हैं कि यह कोई परिकल्पित वस्तु नहीं है। जोंस विला के व्यक्तियों के लिए तो नहीं है। काल्डवेल्स और वाल्मेर्स (जोंसविला के

सारणी १६·१

| वृत्ति | स्नातक विद्यार्थियों द्वारा स्थान-निर्धारण | दैनिक मजदूरों द्वारा स्थान-निर्धारण |
|---|---|---|
| चिकित्सक | १ | २½ |
| बैंकर माल और कर्ज का दलाल | २ | २½ |
| राज्य संस्थान का सुपरिंटेंडेंट | ३ | ५ |
| सेना या नौसेना में कैप्टन | ४ | ४ |
| व्यवसाय का मैनेजर | ५ | १ |
| होटल वाला | ६ | ७ |
| उच्च स्कूल का अध्यापक | ७ | १० |
| मूल स्टेट और बीमा एजेंट | ८ | १४ |
| खुदरा विक्रेता | ९ | ९ |
| औद्योगिक भ्रमणकर्त्ता | १० | ८ |
| पुस्तक वाला, खजांची और मुनीम | ११ | ११ |
| फोरमैन | १२ | ६ |
| क्षेत्र-स्वामी | १३ | १६ |
| क्लर्क और स्टेनोग्राफर | १४ | १२ |
| पुलिसमैन | १५ | १३ |
| कुशल कारखाना-मजदूर | १६ | १५ |
| विक्रेता और क्लर्क | १७ | १७ |
| ट्रेन, बस और मोटरगाड़ीचालक | १८ | १८ |
| होटल और घरेलू नौकर | १९ | २० |
| द्वारपाल | २० | १९ |
| धोबी | २१ | २४ |
| कारखाने का अनाड़ी मजदूर | २२ | २३ |
| खेती करने वाला मज़दूर | २३ | २१ |
| साधारण मजदूर | २४ | २५ |
| कोयले की खान का मजदूर | २५ | २२ |
| बेकार | २६ | २६ |

**चित्र १६·१ वृत्तियों के अनुसार सामाजिक पद। जब बिभिन्न वृत्तियों के अनुसार सामाजिक पद का क्रम निर्धारित करने के लिए कहा गया, तो अधिकांश समूहों ने प्रायः समान क्रम निर्धारित किया। यहाँ स्नातक विद्यार्थी-वर्ग एवं मजदूर-वर्ग द्वारा दिए गए क्रमों को तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है (कैटेल के अनुसार, १९४२)।**

लोवैल्स और केबाट्स )-जैसे लोग ७०० अंक प्राप्त करते हैं। शॉ लोग भी वहाँ तक पहुँच जाएँगे। मेरे जैसे व्यक्ति को, ओह, ७० अंक मिल जाएँगे और जॉन ( द्वारपाल ) जैसे व्यक्तियों को ४० से अधिक अंक प्राप्त नहीं होंगे। स्मरण रखें कि यह सामाजिक मूल्यांकन है। यदि उनका अंकन आर्थिक दृष्टि से किया जाए, तो वे भिन्न अंक प्राप्त करेंगे।''

यह उद्धरण इस तथ्य को स्पष्ट तो करता है किंतु उसे प्रमाणित नहीं करता। प्रमाण के लिए हमें अन्य प्रयोगों को देखना होगा, जिनमें व्यक्तियों की अभिवृत्तियों का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। ऐसा एक प्रयोग (वार्नर और लुण्ट, १९४१) यांकी नगर ( Yankee City ) में किया गया था और उसने जिस वर्ग-संरचना को प्रदर्शित किया, वह चित्र १६.४ में अंकित है। यह चित्र यांकी नगर के अनेक नागरिकों से वार्तालाप करके प्राप्त किया गया है। उनसे पूछा गया कि सामाजिक पद के अनुसार वे अपने साथी-नागरिकों का मूल्यांकन करें। अधिकांशतः व्यक्तियों ने सामाजिक वर्गों का उन संज्ञाओं में विचार नहीं किया, जिनका प्रयोग चित्र में किया गया है। ये नाम बाद में शोधकर्त्ताओं ने दिए। फिर भी यह पर्याप्त स्पष्ट था कि लोगों ने तीन मुख्य वर्गों का विभेद किया था और उनमें एक उच्च और एक निम्न भाग थे। इनके अंतर्गत वे नगर के प्रायः प्रत्येक व्यक्ति का वर्गीकरण कर सके थे। चित्र १६.४ में प्रदर्शित प्रतिशत एक नगर से दूसरे नगर का, अथवा नगर के एक भाग से दूसरे भाग का भिन्न हो सकता है।

प्रत्येक समाज और संप्रदाय की सामाजिक वर्ग-संरचना होती है।
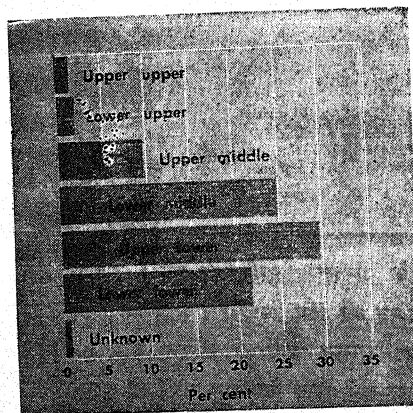
**चित्र १६.४ यांकी नगर की वर्ग-संरचना। यांकी नगर के नागरिकों का एक उदाहरण, यह न्यू इंगलैंड का लगभग पंद्रह हजार व्यक्तियों का एक नगर है। इनका विभाजन वार्तालाप के आधार पर तथा उनसे संबंधित अन्य सामाजिक-आर्थिक पदों और सामाजिक कार्यों के आधार पर ६ वर्गों में किया गया (वार्नर और लुण्ट से प्राप्त दत्त-सामग्री, १९४१ )।**

## वर्ग की विशेषताएँ :

इस प्रकार के प्रयोगों में प्रश्न उत्पन्न होता है कि किसी वर्ग के सदस्य अपने साथियों का सामाजिक वर्गों में अंकन करने के लिए किस कसौटी का प्रयोग करते हैं ? उत्तर बहुत सरल है। **आर्थिक कसौटी** संभवतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, किंतु इस मूल्यांकन में अन्य अनेक कारकों का भी सहयोग रहता है। उदाहरणतः यांकी नगर में व्यक्तियों ने स्पष्ट किया कि अपने निर्णयों में निम्नांकित इन सब कसौटियों का उपयोग उन्होंने किया—वृत्ति, वेतन का स्वरूप ( मासिक वेतन, कमीशन, लाभांश इत्यादि ), नैतिक प्रतिष्ठा, जन्म और वंश इतिहास, सामाजिक संबंध और संगठन तथा किस प्रकार के क्षेत्र में वह रहता है।

किंतु, समाज-वर्ग सदस्यता के वर्गीकरण के लिए चाहे जिस विशेष निकष का प्रयोग किया गया हो, जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, ये वर्ग अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा या सम्मान में भिन्न होते हैं। हम सभी इस व्यापक सिद्धांत के उदाहरणों से परिचित हैं, इसलिए संभवतः यह स्पष्ट करना अधिक महत्त्वपूर्ण होगा कि पदों के अंतर किन रूपों में व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

किसी वर्ग में हम जिस पद-उत्क्रम को देखते हैं, वह हमारे संपूर्ण समाज की सामाजिक वर्ग-संरचना के प्रतिरूप को लघुरूप में प्रस्तुत करता है। इसी हेतु किसी विशेष वर्ग के सदस्यों के प्रेक्षण द्वारा हम पदों की विभिन्नताओं के प्रभावों का अध्ययन कर सकते हैं। वर्ग से समाज की सादृश्यता अशुद्ध-सादृश्यता से अधिक है। यथार्थतः सामाजिक वर्ग विभिन्नताओं और छोटे वर्गों की पद-विभिन्नताओं में अनेक समानताएँ हैं। उदाहरणार्थ, यह बारंबार प्रदर्शित किया गया है कि उच्च सामाजिक वर्गों के व्यक्ति सामान्यतः अन्य लोगों के लिए निम्न वर्ग के सदस्यों की अपेक्षा अधिक आकर्षक होते हैं, यहाँ तक कि स्कूल-स्तर की आयु में भी ( बोनी, १९४४ )। यह तथ्य अनिवार्यतः विभिन्न वर्गों के लिए सत्य है, सैनिक यूनिटों (मश्लिंग एट० एल०, १९५५ ) एवं मानस-स्वास्थ्य के समूहों ( हरविट्ज एट० एल०, १९५३) के लिए भी सत्य है। पद-विभेदन का चाहे जो भी आधार हो, चाहे पहलवानी योग्यता, सैनिक स्तर या वृत्ति, अनेक भिन्न प्रकार के वर्गों में उच्चपदीय व्यक्ति अपने समाज के व्यक्तियों से निम्नपदीय व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त करते हैं। व्यक्तियों को सम्मान-मापक पर तौलने की यह प्रवृत्ति स्पष्टतः इतनी अधिक व्यापक है कि कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि हम विश्वास करना चाहते हैं कि हम सामाजिक वर्ग-प्रभावों से मुक्त हैं। निम्नांकित प्रयोग (स्ट्रोड्टबैक एट० एल०, १९५८) इस तथ्य को स्पष्ट करता है :

"शोधकर्त्ताओं के एक दल ने माक जूरी ( Mock Jury ) विमर्शों का अध्ययन किया, उन्होंने दो बड़े—मध्य-पश्चिमी नगरों के नियमित जूरी-निकाय के कुछ जूरी सदस्यों का उपयोग किया। उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्गों की अपेक्षा उच्च प्रतिष्ठा अनेक रूपों में प्रकट हुई। एक बात यह थी कि जूरी फोरमैन के रूप में उच्च वृत्तिक वर्ग के व्यक्ति के चुने जाने की, अन्य वृत्तियों की अपेक्षा, अधिक संभावना थी। द्वितीयतः, प्रायः सब वृत्तिक समूह यह कहने के लिए तत्पर थे कि यदि उनके परिवार का कोई व्यक्ति जूरी-परीक्षण में फँसा है, तो वे चाहेंगे कि उच्चतम वृत्तिक स्तरों के व्यक्तियों से जूरी बने।"

उच्च प्रतिष्ठा के उच्च पदों से संबंध का तात्पर्य है कि उच्चपदीय व्यक्तियों को सामान्यतः वे अधिकार प्राप्त होते हैं, जिनसे निम्नपदीय व्यक्ति वंचित रहते हैं। एक ऐसा अधिकार है, वाणी की स्वतंत्रता। उच्चपदीय व्यक्ति ऐसी धारणा उत्पन्न करता है कि वह बहुत कुछ कह सकता है। हम अनेक प्रयोगों के परीक्षण द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं, इनमें ऊपर उल्लिखित जूरी-सदस्यों एवं मानसिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं पर किए गए परीक्षण हैं। इन उदाहरणों में स्पष्ट है कि व्यक्ति का पद वर्ग में जितना ऊँचा था, उतना ही अधिक वह वर्ग की चर्चाओं में भाग लेता था।

उच्च पद कुछ स्थितियों में व्यक्ति को यह अनुभव करवाता है कि वह वर्ग के कुछ नियमों का उल्लंघन करने के लिए स्वतंत्र है और उसके वर्ग द्वारा सामान्यतः स्वीकृत धारणाओं से भिन्न वह विचार सकता है ( डिटे और केले, १९५६ )। उच्च पदाधिकारियों का यह 'अधिकार' आंशिक रूप से उन सामाजिक वर्ग-विभिन्नताओं को स्पष्ट कर सकता है, जिन्हें हम बाल-संबंधी उपचार रूप में देखते हैं। निश्चय ही मध्यवर्गीय बालकों को कभी-कभी पुलिस ऐसे अपराधों और अपचारों के लिए क्षमा कर देती है, जिनके लिए निम्नवर्गीय बालकों को जेल में भेज देती है।

इस सिद्धांत का एक महत्त्वपूर्ण अपवाद यह है कि उच्च पदाधिकारी व्यक्ति व्यवहार के वर्गगत-मूल्यों से भिन्न मूल्य अपनाने के लिए अधिक स्वतंत्र है। यदि उच्च पदाधिकारी व्यक्ति ऐसे पद का अधिकारी है, जो उसके वर्ग के आदर्शों का प्रतीक है, तो वह उसके अनुरूप व्यवहार करने के लिए निम्नवर्ग के व्यक्ति की अपेक्षा अधिक दबाव अनुभव करता है। संभवतः इसीलिए कुछ वर्ष पूर्व इंगलैंड की राजकुमारी मारग्रेट ने तलाक-प्राप्त व्यक्ति से विवाह नहीं किया था। इस विवाह के द्वारा इंगलैंड के चर्च के सिद्धांतों का उल्लंघन होता तथा उसे इन सिद्धांतों का उल्लंघन करने की, उसी धर्म के पालन करने वालों साधारण ब्रिटिश व्यक्ति की अपेक्षा कम स्वतंत्रता थी।

उच्च पदाधिकारी व्यक्ति की प्रतिष्ठा के साथ यह भी है कि उसमें अपने वर्ग के अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करने की योग्यता रहती है। वह इस योग्यता को अधिक चर्चा करने की स्वतंत्रता के द्वारा अर्जित करता है। इसके अतिरिक्त, व्यक्तियों के वह जो कहता है, उससे सहमत होने की और उसके कथन पर विश्वास करने की अधिक संभावना है। दूसरे शब्दों में उच्च पदाधिकारी व्यक्तियों को नेता के रूप में स्वीकार करने की अधिक संभावना है। इस अध्याय के अंतिम अनुभाग में हम नेतृत्व का विवेचन करेंगे।

## सामाजिक वर्ग और व्यवहार :

सामाजिक वर्ग केवल वर्ग और उससे संबंधित बातों में ही भिन्न नहीं है, वे अपने सदस्यों की अभिवृत्तियों और व्यक्तित्वों में भी भिन्न होते हैं। अभिवृत्तियों के संबंध में राजनीति-वैज्ञानिकों, समाज-वैज्ञानिकों और लोक-मतदाताओं ने बहुत पहले ही जान लिया था कि सामाजिक वर्ग अपने राजनैतिक विश्वासों एवं सामाजिक सिद्धांतों में भिन्न होते हैं। सरलतम और स्पष्टतम सहसंबंधों में से एक यह है कि व्यक्ति का पद जितना ऊँचा होता है, चाहे वृत्तिक मापक की दृष्टि से अथवा सामाजिक वर्ग की दृष्टि से, वह सोचता है और मानता भी है कि उतना ही वह परंपरागत राजनैतिक सिद्धांतों के पक्ष में है।

कम परिचित तथ्य यह है कि विविध सामाजिक वर्गों के सदस्य कुछ भिन्न व्यक्तित्वों को अपनाने की ओर प्रवृत्त होते हैं। यह इसलिए, कि व्यक्तित्व के विकास के शारीरिक और सामाजिक दोनों पर्यावरण प्रधानतः वर्ग द्वारा नियंत्रित रहते हैं। वस्तुतः जिस प्रकार का घर का परिवेश जिसमें व्यक्ति रहता है, जिस प्रकार के कार्य, क्रीड़ाएँ और सुविधाएँ उसे प्राप्त हैं और उसकी मूल आवश्यकताओं को तृप्त करने वाली न्यूनतम सुविधाएँ—ये सब सामाजिक वर्ग से संबंधित हैं। यहाँ तक कि अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य, बालक का प्रशिक्षण और शिक्षण भी, सामाजिक वर्ग के अनुसार होता है।

यह प्रयोग एक मॉडल का कार्य कर सकता है, जो अनेक प्रकार की सामाजिक विभिन्नताओं, जिनके अंतर्गत विशेष सांस्कृतिक प्रतिरूपों का ग्रहण करना भी हैं, को स्पष्ट करने में सहायता करता है। अपने पारस्परिक व्यवहार में समाज के सदस्य अपने जगत और उसकी वस्तुओं को देखने का एक विशेष प्रकार विकसित करते हैं। संभवतः ट्चांबुली समाज की यह अवधारणा कि स्त्रियाँ स्वभावतः व्यवसाय-पटु और पुरुष कला-कुशल होते हैं, इसी प्रकार विकसित हुई है।

प्रत्यक्षीकरण में साझा करने से यह केवल एक कदम और आगे है कि उस समाज के किसी भी पद के सदस्यों के व्यवहार पर अनुशासन करने वाले नियमों और आदर्शों

में साझा करना। अंतर केवल इतना ही है कि आदर्शों के गुण की अपेक्षा रहती है। व्यक्ति केवल अपने समाज के व्यक्तियों को देखने और उनका अनुकरण करने की ओर प्रवृत्त ही नहीं होता, वरन् अनिवार्य रूप से उसे करना ही होगा। इस अपेक्षित व्यवहार को प्रचलित करने के लिए समाज के सदस्य विभिन्न मात्राओं में मृत्युदंड से लेकर क्षतिरहित सामाजिक डाँट तक, दंड-विधान करते हैं। इनके मध्य सामाजिक आदर्शों की माँग को अपनाने का प्रचार करने की अनेक व्यक्त और प्रभावशाली विधियाँ हैं। उदाहरणार्थ, कुछ वर्ष पूर्व फ्लोरिडा में एक गोरा डाक्टर अपने मुख्य डाक्टर के पद से हटा दिया गया था; क्योंकि उसने नीग्रो नर्स के साथ दोपहर का भोजन किया था। डाक्टर का व्यवहार उस समय के मान्य गोरे-नीग्रो संबंधों के विरुद्ध था, इसलिए उस मान्यता को तोड़ने वाले को सामाजिक और आर्थिक दंड दिया गया। उन्नीसवीं शताब्दी में तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जो स्त्रियाँ खुले आम सिगरेट पीती थीं, उन्हें साधारण दंड दिया जाता था। उन्हें केवल 'शिष्ट समाज' से बहिष्कृत कर दिया गया था।

### अनुमोदन या संगति को प्रभावित करने वाले कारक :

इसके कम-से-कम दो महत्त्वपूर्ण कारक हैं कि लोग क्यों समाज के आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करने की ओर प्रवृत्त होते हैं। एक का पूर्वोल्लेख कर चुके हैं : जो लोग सामाजिक आदर्शों के विपरीत जाते हैं, उन्हें विविध मात्राओं में सामाजिक अननुमोदन या दंड भोगना पड़ता है। यह तथ्य व्यापक रूप से ज्ञात है और आदर्शों की अनुरूपता के लिए अभिप्रेरित करता है। अनुरूप व्यवहार करने का दबाव केवल उन्हीं तक सीमित नहीं है, जिन्हें हम जानते हैं अथवा जो प्रसिद्ध हैं कि आदर्शों को लागू करने की शक्ति से संपन्न हैं। सामाजिक अनुमोदन की चाह समाज या जाति के सदस्यों में इतनी प्रबल और व्यापक है कि हम पूर्णत: अपरिचित व्यक्ति से भी अनुमोदन की कामना करते हैं। इस तथ्य को सामाजिक मनोविज्ञान के प्रारंभिक प्रयोगों में से एक में प्रदर्शित किया गया था (आलपोर्ट, १९२४)। इसे प्रयोग में देखा गया कि प्रयोग-पात्र एकांत में जितने उग्र निर्णय देते थे, उसकी अपेक्षा दूसरों की उपस्थिति में अपने निर्णय अपेक्षाकृत कम उग्र देते थे। हम इससे केवल यही अनुमान कर सकते हैं कि उन्हें भय था कि उग्र निर्णय देने से वे दूसरों से अननुमोदन पाएँगे और दूसरों के अपरिचित होने पर भी वे उनके अननुमोदन से बचना चाहते हैं।

सामाजिक अनुरूपता को स्वीकार करने का दूसरा कारक भी इतना ही स्पष्ट है। व्यक्ति अपने समाज के विचारों के आधार पर 'आगे बढ़ता' जा सकता है; क्योंकि वह विश्वास करता है कि ये विचार उपयुक्त हैं अथवा उनके उपयुक्त होने की संभावना है।

व्यवहार की अनुरूपता के इन दो आधारों को स्पष्ट करना महत्त्वपूर्ण है, यद्यपि कभी-कभी यह कहना कठिन होता है कि **क्यों** कोई व्यक्ति उस व्यवहार को स्वीकार करता है। अनुरूपता 'कायरता' समझी जाती है, इसलिए लोग जानते हुए भी इच्छा से यह बताना नहीं चाहेंगे कि वे दूसरों के मत से सहमत क्यों हो जाते हैं। व्यक्तियों की यह अनिच्छा निम्नलिखित उदाहरण द्वारा स्पष्ट की जा सकती है (एश्च,१९५८) :

> "प्रयोग-पात्रों से रेखाओं की लंबाई के विषय में निर्णय देने के लिए कहा गया। प्रत्येक प्रयोगात्मक सत्र में केवल एक यथार्थ प्रयोग-पात्र को ऐसे व्यक्तियों के एक समूह में नियुक्त किया गया, जिन्हें कुछ विचार व्यक्त करने के लिए प्रशिक्षित किया था। अतः, वास्तविक प्रयोग-पात्र को प्रायः ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता था, जिसमें उसके नेत्र एक बात कहते थे जब कि समूह के अन्य व्यक्तियों के अनुसार कुछ और बात शुद्ध होती। केवल अल्पसंख्यक प्रयोग-पात्र समूह के गलत मत को बराबर स्वीकार करते रहे। बाद में जब उन लोगों से समालाप किया गया, जो बहुसंख्यकों के मत को स्वीकार करते रहे थे, तब प्रकट हुआ कि 'स्वीकार करने वाले' अधिकांश व्यक्तियों ने विचारा कि उनकी दृष्टि में कोई दोष था और संभवतः बहुसंख्यक लोग सही बात कह रहे हैं।"

कई वर्षों बाद दो प्रयोगकर्त्ताओं (ड्यूटश्च और गेरार्ड,१९५५) ने इस प्रयोग को आवश्यक सूक्ष्मता के साथ दोहाराया, किंतु इसमें कुछ और प्रयोगात्मक प्रतिबंध जोड़ दिए :

> "इन प्रतिबंधों में से एक में प्रयोग-पात्र यह विश्वास करने के लिए प्रवृत्त किए गए थे कि दूसरों के निर्णयों को जान लेने के उपरांत वे अपने निर्णयों को गुमनाम ढंग से व्यक्त कर सकते हैं। इस अवस्था में प्रयोग-पात्रों ने बहुसंख्यकों के गलत विचारों को 'अगुमनाम' अवस्था की अपेक्षा बहुत कम अपनाया। तथापि कुछ 'गुमनाम' प्रयोग-पात्रों ने भी समूह के मत को अपनाया। अतः अधिकांश प्रयोग-पात्रों ने, जिन्होंने बहुसंख्यकों के विचार को ही व्यक्त किया, स्पष्टतः इसलिए ऐसा नहीं किया कि वे भिन्न प्रकट होना नहीं चाहते थे (अतः अननुमोदन प्राप्त करना नहीं चाहते थे?), वरन् उनका विश्वास था कि बहुसंख्यक लोग ठीक कहते थे।"

जैसा कि इन प्रयोगों से प्रकट है कि अनुरूपता के दोनों कारणों को अननुमोदन का भय और यह विश्वास कि समाज ठीक कहता है, सुगमता से पृथक् करना सदैव संभव नहीं होता। वस्तुतः अधिकांश स्थितियों में, जिनमें व्यक्ति समाज के निर्णय को अपनाते हैं, ये दोनों कारक संभवतः क्रियाशील रहते हैं।

इन कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य भी हैं, जो अनुरूपता-व्यवहार को प्रभावित करते हैं। हम ऐसे तीन कारकों पर विचार करेंगे : १. समाज के प्रति आकर्षण, २. समाज की आंतरिक सहमति की अनुभूति और ३. समाज द्वारा स्वीकृति। इनमें से प्रत्येक कारक में, जैसा कि आगे हम देखेंगे, अननुमोदन का भय और समाज के निर्णय में विश्वास—दोनों का किसी मात्रा में मिश्रण रहता है।

## समाज के प्रति आकर्षण :

यदि किसी व्यक्ति में समाज के प्रति तीव्र आकर्षण है, इस आकर्षण का कारण यह भी हो सकता है कि वह उसे पसंद है अथवा इसलिए कि समाज उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तो वह उसकी मान्यताओं को अपनाने के लिए अधिक इच्छुक रहता है और यदि समाज के प्रति उसमें आकर्षण नहीं है, तो वह इतना इच्छुक नहीं रहता। जितना अधिक उसका आकर्षण होगा, अर्थात् जितना अधिक वह समाज का अंग बनना चाहता है, उतना ही अधिक यह संभव है कि वह समाज के अन्य सदस्यों के विचारों से सहमत होगा। यह निष्कर्ष प्रयोगों पर आधृत है, परंतु यह दैनिक अनुभवों से भी प्रकट होता है। जिन लोगों को हम पसंद करते हैं, प्रायः उनके विचारों का हम, उन लोगों के विचारों की अपेक्षा, जिन्हें हम पसंद नहीं करते, अधिक सम्मान करते हैं। यह विशेषतः उस स्थिति में होता है, जब हमारे पास कोई वस्तुनिष्ठ विधि यह निर्धारित करने के लिए नहीं होती कि क्या वे विचार शुद्ध हैं, और प्रायः ऐसी विधि का अभाव ही रहता है।

अननुमोदन का भय निश्चय ही एक कारण है, जिसके लिए हम समाज के विचारों को अपनाते हैं। जिस समाज का हम अंग होना चाहते हैं, यदि उससे हम अपमान या अननुमोदन का दंड प्राप्त करें, तो वह अधिक गंभीर प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। अतएव, जब परिशुद्धता के प्रतिमान का कोई प्रश्न नहीं रहता, हम उस समाज के, जिसके प्रति हमारा आकर्षण है, आदर्शों को स्वीकार करने के लिए प्रवृत्त होते हैं। निम्नलिखित प्रगोग में यह तथ्य स्पष्ट किया गया है (बर्कोविट्ज, १९५४) :

> "ऐसी व्यवस्था की गई कि कुछ प्रयोग-पात्रों में समूह के दो व्यक्तियों के प्रति तीव्र आकर्षण उत्पन्न हुआ, जब कि अन्य प्रयोग-पात्रों को उन दो व्यक्तियों के प्रति साधारण रुचि थी। तब प्रयोग-पात्रों को कोई कार्य करने के लिए दिया गया। कुछ स्थितियों में समूह के अन्य सदस्यों ने यह स्पष्ट किया कि वे कार्य से अधिक उत्पादन चाहते हैं और इस प्रकार अपने समूह

के लिए उच्च-उत्पादन का आदर्श उन्होंने प्रतिष्ठित किया। कुछ अन्य स्थितियों में समूह के सदस्यों ने स्पष्ट किया कि वे निम्न-उत्पादन चाहते हैं और इस प्रकार अपने समूह के लिए निम्न-उत्पादन का आदर्श उन्होंने प्रतिष्ठित किया। अन्य शब्दों में प्रयोगात्मक प्रतिवर्त्य समूह के अन्य सदस्यों के प्रति रुचि बनाम अरुचि और समूह के आदर्श के रूप में उच्च-उत्पादन बनाम निम्न-उत्पादन थे। प्रयोग-पात्रों ने कार्य को कितनी कुशलता से किया, वह अनुमोदन-व्यवहार का परिमापक प्रमाणित हुआ। परिणाम ये हुए कि जिन प्रयोग-पात्रों को अपने समूह के अन्य सदस्य पसंद थे, उन्होंने समूह के आदर्शों का उन प्रयोग-पात्रों की अपेक्षा अधिक अनुमोदन किया, जिन्हें अपने समूह के अन्य व्यक्तियों के प्रति बहुत कम रुचि थी, चाहे वे आदर्श उच्च-उत्पादन के थे या निम्न।"

समाज की आंतरिक सहमति की अनुभूति—अनुमोदन को प्रभावित करने वाला दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक है—समाज के सदस्यों में विद्यमान सहमति की मात्रा। यदि कोई व्यक्ति अनुभव करता है कि उसके संबंध में किसी निर्णय या व्यवहार के प्रति सर्वसम्मति के सहमत हैं, तो वह उनके दृष्टिकोण को अधिक सरलता से अपनाने को तत्पर होगा और यदि वह अनुभव करता है कि उनमें मतभेद है, तो वह उतनी सरलता से तत्पर न होगा। यह निष्कर्ष अनेक प्रयोगों का परिणाम है। एक प्रयोग में, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है, प्रत्येक प्रयोग-पात्र से रेखाओं की लंबाई का अनुमान अभिव्यक्त करने के लिए कहा गया और उस समूह के अन्य व्यक्तियों से विरोधी मत व्यक्त करने के लिए कहा। जब समूह के सब व्यक्ति एक ही उत्तर की परिशुद्धता पर सहमत थे, ऐसी स्थिति की अपेक्षा उस समय प्रयोग-पात्र ने अनुमोदन के विषय में कम सोचा, जब उस समूह का एक और व्यक्ति भी भिन्न बात कहता था (एश्च १९५८, देखिए चित्र १६.५)।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस निष्कर्ष का एक कारण यह है कि सर्वसम्मति से स्वीकृत तथ्य से भिन्न बात कहने पर अननुमोदन की संभावना उस स्थिति की अपेक्षा अधिक होती है, जब कि कम लोगों की सहमति से भिन्न विचार हो। किंतु, यह भी सत्य है कि व्यक्ति अधिक तत्परता से उस विचार की परिशुद्धता पर विश्वास कर लेगा, यदि वह विचार समूह के अधिकांश व्यक्तियों द्वारा परिशुद्ध माना गया है (फेस्टिन्गर एट० एल०, १९५२)।

### समूह-अभिविन्यास (Orientation to the Group) :

अनुमोदन का एक अन्य कारक है, व्यक्ति का उस समूह में अभिविन्यास, जिसमें वह है। यह अभिविन्यास अनेक रूपों में परिवर्तित हो सकता है, किंतु यहाँ

हम दो का विवरण देंगे १. एक है, किस सीमा तक वह समूह द्वारा अपनी स्वीकृति या अस्वीकृति अनुभव करता है। २. द्वितीय है, समूह में व्यक्तियों के प्रति अभिन्यास बनाम समूह के व्यक्तियों द्वारा किए गए कार्यों के प्रति अभिन्यास।

अधिकांश व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के विचारों का अनुमोदन करते हैं।

**चित्र १६.५ समूह के विचार के अनुमोदन पर एक प्रयोग। प्रथम चित्र में प्रयोग-पात्र को नियम समझाए गए। उसके समक्ष कुछ रेखाओं को प्रस्तुत करके उनकी लंबाई पर निर्णय देने के लिए उससे कहा। वह नहीं जानता है कि अन्य प्रयोग-पात्र उसे 'मूर्ख बनाने वाले' हैं। दूसरे चित्र में वह एक निर्णय देता है, जिससे अन्य व्यक्ति सर्वसम्मति से असहमत होते हैं। अगली बार वह और सावधानी से देखता है, किंतु वे फिर असहमत होते हैं। चौथे चित्र तक वह निरंतर अन्य प्रयोग-पात्रों से असहमत होने पर भी अपनी बात कहता है। अब अधिकांश प्रयोग-पात्र बहुसंख्यक व्यक्तियों के निर्णय को अपनाने लगते हैं। यह प्रयोग-पात्र स्थिर रहता है (अंतिम चित्र), वह कहता है, 'वह जो देखता है, वही कह सकता है।' (एश्च १९५५, विलियम बेंडिवट, साइंटिफिक अमेरिकन)।**

इनमें से प्रथम, समूह द्वारा स्वीकृति या अस्वीकृति की भावना, महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यह निर्धारित करती है कि व्यक्ति का अनुमोदन यथार्थतः है अथवा मात्र

जनता में कहने के लिए है। यदि व्यक्ति अपने समूह द्वारा तिरस्कृत अनुभव करता है, तो वह संभवतः अननुमोदन के भय से, इस विश्वास की अपेक्षा कि संभवतः समूह ठीक है, अधिक अभिप्रेरित होता है। और यदि व्यक्ति तिरस्कार के भय से समूह के अन्य व्यक्तियों के दृष्टिकोण को स्वीकार करता चले, तो स्पष्ट है कि वह उनके दृष्टिकोण को अपना नहीं सकता। उसकी स्थिति उस बालक की भाँति है, जो अपने दुष्ट व्यवहार के लिए दंड की आशा करता है। दंड का भय दिखाने पर वह अपने माता-पिता की बात मान सकता है केवल इसलिए कि उसे दंड न मिले, इसलिए नहीं कि उसे विश्वास हो गया है कि वे ठीक कहते हैं। इसी भाँति वह व्यक्ति, जो मुख्यतः अननुमोदन से दूर रहना चाहता है, जनसमूह के सम्मुख केवल इसलिए समूह की बात मान लेता है कि वह पकड़ा न जाए। वैयक्तिक जीवन में वह विपरीत मत या अननुमोदित दृष्टिकोण को ही रख सकता है। दूसरी ओर, जो व्यक्ति अपने समूह के प्रति आकर्षित है अथवा जो विश्वास करता है कि समूह का दृष्टिकोण ठीक है, वह उसके दृष्टिकोण को अपने ही दृष्टिकोण के रूप में अपना लेता है।

चित्र १६·५ का शेषांश

संक्षेप में, हम यह कहना चाहते हैं अननुमोदन के भय से अभिप्रेरित अनुमोदन केवल कृत्रिम होता है। यह अनुमोदन सत्य नहीं होता। इस धारणा का परीक्षण किया जा सकता है, और अननुमोदन से दूर रहने के अभिप्रेरण द्वारा परीक्षण किया भी गया है। व्यक्ति में यह भावना जागृत करके कि वह समूह द्वारा स्वीकृत है अथवा तिरस्कृत है, यह परीक्षण हो सकता है। यदि वह तिरस्कृत अनुभव करे, इस धारणा के अनुसार उसे अननुमोदन का अधिक भय होना चाहिए। निम्नलिखित उदाहरण ( डीटेस और केले, १९५६ ) इस तथ्य को स्पष्ट करता है—

> "इस प्रयोग में कुछ प्रयोग-पात्रों के साथ इस प्रकार व्यवहार किया गया कि वे अनुभव करने लगे कि वे समूह द्वारा तिरस्कृत हैं। कुछ अन्य प्रयोग-पात्रों को यह अनुभव करवाया गया कि वे समूह द्वारा स्वीकृत हैं। किस मात्रा तक उन्होंने समाज के दृष्टिकोण का अनुमोदन किया, उसका परिमापन किया गया। परिणाम यह हुआ कि कम स्वीकृत प्रयोग-पात्र समूह

के 'पथ का दबे पाँव' अनुकरण करते। पूर्णतः बहिष्कृत होने की भावना तक वे बहुत दूर तक समूह की धारणाओं का अनुमोदन करते रहे। यह अनुमोदन मात्र प्रदर्शन और कृत्रिम था। वैयक्तिक रूप में वे उसका उन लोगों की अपेक्षा कम अनुमोदन करते थे, जो समाज द्वारा स्वीकृत अनुभव करते। स्पष्टतः समूह द्वारा उनकी न्यून स्वीकृति ने उनमें समूह के अन्य व्यक्तियों के प्रति उपेक्षा की भावना जागृत की और यह उपेक्षा सच्चे अनुमोदन की पोषक नहीं थी।"

हम देखते हैं कि जहाँ अननुमोदन का भय तीव्र होता है, अनुमोदन के वास्तविक या सच्चे होने की संभावना नहीं होती। प्रायः आंतरिक अनुमोदन नहीं, वरन् वाह्य अनुमोदन ही परिणाम होता है।

दूसरा रूप जिसमें समूह-अभिन्यास अनुमोदन को प्रभावित करता है, इससे संबंधित है कि व्यक्ति समूह-अभिन्यासित है अथवा कार्य-अभिन्यासित है। कुछ व्यक्ति समूह में कार्य करते हुए समूह के व्यक्तियों से नहीं, वरन् उस कार्य से अधिक संबद्ध हैं, जो समूह को पूर्ण करना है—कार्य पूर्ण होना चाहिए। यह उस स्थिति में होता है, जब व्यक्ति समूह अभिन्यासित की अपेक्षा कार्य-अभिन्यासित अधिक होता है; क्योंकि समूह के उद्देश्य में उसे गंभीर रुचि है अथवा समूह के व्यक्ति किसी प्रकार उसमें यही अनुभव करने की भावना जागृत करते हैं। किसी भी रूप में हम कार्य-अभिन्यासित व्यक्ति से समूह के दबावों से कम प्रभावित होने की आशा करेंगे, जबकि समूह-अभिन्यासित व्यक्ति, जो समूह से वैयक्तिक संबंधों से संबद्ध है, अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित होगा। यह धारणा शोध का परिणाम है ( थिबाट और स्ट्रिकलैंड, १९५६ ) :

> "शोधकर्त्ताओं ने ऐसी व्यवस्था की कि उनके कुछ प्रयोग-पात्र समूह-अभिन्यासित थे और कुछ कार्य-अभिन्यासित थे। कार्य-अभिन्यासित प्रयोग-पात्रों से कहा गया कि उनके वहाँ रहने का प्रयोजन है—प्रस्तुत की गई समस्याओं के सर्वोत्तम समाधानों की खोज करना। समूह-अभिन्यासित व्यक्तियों को समूह के अन्य व्यक्तियों के साथ उनके संबंधों के प्रति सचेत कर दिया गया था, जिससे कि वे इस पर अधिक ध्यान देते थे कि वे सदस्य उन्हें स्वीकार करें। तदंतर सब प्रयोग-पात्रों से प्रस्तुत की गई समस्या के समाधान के संबंध में उनके मतों को पूछा गया। इसके बाद उन्हें इस स्थिति में रखा कि समूह के कुछ अन्य व्यक्तियों के दृष्टिकोणों के विभिन्न मात्राओं के दबाव के कारण उन्हें वे अपनाएँ। दोनों प्रकार के प्रयोग-पात्र दबाव को

किस मात्रा तक अपनाते हैं, उसका परिमापन किया गया। समूह-अभिन्यापित प्रयोग-पात्र, जो समूह के व्यक्तियों के साथ अपने निजी-संबंधों से संबद्ध थे, इस दबाव से अधिक प्रभावित हुए। वस्तुतः उनके लिए दबाव जितना अधिक था, उनकी स्वीकृति उतनी ही अधिक थी। कार्य-अभिन्यामित व्यक्तियों की यह स्थिति नहीं थी।"

हमने समूह के आदर्शों एवं अनुमोदन-व्यवहार का कुछ विस्तार से विवेचन किया है; क्योंकि ये व्यक्ति पर समूह के प्रभावों को समझने की मूल अवधारणाएँ हैं। वस्तुतः हमारे जीवन पर समाज का व्यापक प्रभाव--जिस विषय से हमने यह अध्याय प्रारंभ किया था—ऐसे समूह-आदर्शों और उन्हें करने के हमारे अभिप्रेरण द्वारा विस्तृत रूप से डाला जाता है। किंतु सामाजिक प्रभाव के अन्य प्रकार भी हैं, जिन पर हमें विचार करना चाहिए। इनमें से एक **वार्तालाप** है।

## समूह के मध्य वार्तालाप :

समूहों में व्यक्ति प्रायः बातचीत करते हैं। कुछ वार्तालाप केवल समय व्यतीत करने, मैत्रीभाव बढ़ाने अथवा सरल संदेश देने के लिए होते हैं। समूह के मध्य अधिकांश वार्तालाप की योजना समझ-बूझ कर समूह के सदस्यों को प्रभावित करने के लिए की जाती है। वस्तुतः समूह में होने वाला लगभग संपूर्ण वार्तालाप उसके सदस्यों के व्यवहार को प्रभावित करता है। अतः, वार्तालाप पर समूह के सदस्यों पर प्रभावकारी साधन के रूप में विचार करना महत्त्वपूर्ण है। कुछ वे ही कारक, जो अनुमोदन को प्रभावित करते हैं, समूह में वार्तालाप को भी प्रभावित करते हैं (फेस्टिंगर, १९५०)।

हम ऊपर देख चुके हैं कि समूह के प्रति आकर्षण अनुमोदनकारी व्यवहार का एक कारक है। यह समूह में वार्तालाप की प्रभावपरकता का भी कारक है। यदि समूह के सदस्य अत्यधिक रूप से समूह की ओर आकर्षित हों और उनमें मतांतर हों, तो वे एक दूसरों को प्रभावित करने का उस स्थिति की अपेक्षा अधिक प्रयत्न करेंगे, जिस स्थिति में वे आकर्षित नहीं हैं ( बैक, १९५८ )।

संभवतः यह निष्कर्ष स्पष्ट प्रकट होता है। वस्तुतः इसमें कोई विचित्रता नहीं है कि हम जिन व्यक्तियों या जिस समूह को पसंद करते हैं, उनसे अधिक बातचीत या बार्तालाप करें। इस व्यवहार का कारण इतना स्पष्ट नहीं है। यह प्रकट कारक है कि जिन व्यक्तियों को हम चाहते या पसंद करते हैं उनसे किसी प्रकार का विरोध, हमें उन व्यक्तियों या समूहों के विरोध से जो हमें आकर्षित नहीं करते हैं, अपेक्षाकृत अधिक विकल कर देता है। समूह में वार्तालाप सर्वाधिक उन लोगों में होता है, जिनमें

मतांतर भी सर्वाधिक रहता है। अपेक्षाकृत अल्पकाल के लिए समूह-वार्तालाप पर किए गए प्रयोगों से कम-से-कम यही प्रमाणित हुआ है।

प्रथम दृष्टि में विचार करने पर ऐसे परिणाम विचित्र जान पड़ते हैं। दैनिक जीवन में हम सामान्यतः ऐसे व्यक्तियों से वार्तालाप करना चाहते हैं, जिनके विचार हमारे विचारों से साम्य रखते हैं। उदाहरणतः गणतंत्रीय व्यक्ति प्रायः दूसरे गणतंत्रीय व्यक्तियों से ही राजनीति की चर्चा करते हैं, जब कि लोकतंत्रीय व्यक्ति राजनीति की चर्चा मुख्यतः अपनी विचारधारा के व्यक्तियों से करते हैं (लेजार्सफेल्ड एट० एल०, १९४०)।

इसके अनेक कारण हैं कि दैनिक जीवन के वार्तालाप में और प्रयोगशाला के वार्तालाप में क्यों अंतर रहता है। ये कारण सामाजिक वार्तालाप में क्रियाशील कारकों पर कुछ प्रकाश डालते हैं। एक कारक है, जिसका उल्लेख हो चुका है, कि प्रयोगात्मक समूह के सदस्य प्रायः एक दूसरे से अपेक्षाकृत केवल अल्पकाल के लिए एक दूसरे से वार्तालाप करते हैं; क्योंकि वार्तालाप काल इतना अल्प होता है कि उनमें से अनेक व्यक्ति इसका पता लगाने का भी समय नहीं पाते हैं कि जिन लोगों का उनसे मतभेद था, उन्होंने अपने विचार बदल लिए हैं अथवा नहीं। एक बार यदि प्रयोग-पात्र जान लेते हैं कि उनसे विरोध बना ही रहेगा, तो उनसे बात करने में उनकी रुचि कम हो जाती है (शेस्टर, १९५१)। ऐसी ही प्रक्रिया हमारे राजनैतिक वार्तालाप को भी प्रभावित करती है। हममें से अधिकांश व्यक्ति इसे जान लेते हैं कि हम दूसरे लोगों के राजनैतिक विश्वासों को परिवर्तित नहीं कर सकते, चाहे हमारे विश्वास कितने ही परिशुद्ध और महान हों, इसलिए हम प्रयत्न भी नहीं करते। एक अर्थ में हम ऐसे व्यक्तियों को 'जानना नहीं चाहते', जिनके मत भिन्न रहते हैं।

दूसरा विचारणीय कारक है, विश्वास की वह मात्रा जो किसी व्यक्ति को अपनी धारणा में होती है। किसी व्यक्ति के ऐसे व्यक्यों के साथ वार्तालाप करने की कम संभावना रहती है जिनके विचार उसके विचारों से बहुत भिन्न होते हैं, विशेषतः ऐसी स्थिति में जब कि वह पूर्णतः निश्चित नहीं होता कि उसका विचार ठीक है और यदि उसे विश्वास है कि वह ठीक है, तो वह वार्तालाप करेगा। इस निष्कर्ष का समर्थन अनेक प्रयोग करते हैं। उदाहरणस्वरूप यहाँ एक प्रयोग प्रस्तुत किया जा रहा है (ब्राडबेक, १९५६):

> "इस प्रयोग में प्रयोग-पात्रों ने एक कानून-विशेषज्ञ के कानून-प्रवर्तन एजेंसी द्वारा गुप्त रूप से तार के प्रयोग पर टेप रेकार्ड किए हुए भाषण को सुना। समूह के कुछ व्यक्तियों ने अनुभव किया कि वह भाषण उनके विचारों का समर्थन करता है और उन्होंने सामान्यतः अपने विचारों की

परिशुद्धता में विश्वास प्रकट किया। कुछ अन्य व्यक्तियों ने अनुभव किया कि कानून-विशेषज्ञ का मत उनके विचारों से भिन्न है और उनमें से अनेक व्यक्तियों ने कहा कि अब उन्हें अपने मूल विचारों पर कम विश्वास रह गया है। तब प्रयोग के दूसरे सोपान में प्रयोग-पात्र उस विषय का आगे विवेचन करने के लिए छोटे-छोटे समूहों में एकत्रित हुए और प्रत्येक व्यक्ति के विचार समूह के अन्य सदस्यों के सम्मुख स्पष्ट व्यक्त किए गए। प्रयोगकर्त्ता ने प्रयोग-पात्रों से पूछा कि वे समूह के किन व्यक्तियों के साथ उक्त विषय का विवेचन करना पसंद करेंगे ? जिन्हें अपने विचारों की परिशुद्धता पर संदेह था, वे अपने विचारों से साम्य रखने वाले व्यक्तियों से उनकी अपेक्षा चर्चा करना कहीं अधिक चाहते थे, जिन्हें अपने विचारों की परिशुद्धता पर विश्वास था।"

संभवतः इन परिणामों की स्पष्टता प्रकट है। जो व्यक्ति अपने विचारों की सत्यता के प्रति निश्चित नहीं होता, वह अन्य लोगों से उनकी चर्चा केवल समर्थन प्राप्त करने के लिए करता है। जिस व्यक्ति को अपने विचारों पर अधिक विश्वास है, वह ऐसे समर्थन की आवश्यकता अनुभव नहीं करता। इससे प्रकट होता है कि हम विवादग्रस्त विषयों की ऐसे व्यक्तियों से चर्चा करना नहीं चाहते, जो हमसे असहमत होते हैं; क्योंकि हमें भय रहता है कि वे हमारे विश्वासों को, जो वैसे ही दृढ़ नहीं हैं, और भी दुर्बल कर देंगे।

वार्तालाप-संरचनाएँ :

किसी समूह में वार्तालाप केवल इससे ही प्रभावित नहीं होता कि समूह के किन लोगों से व्यक्तियों की इच्छा वार्तालाप करने की होती है, वरन् इससे भी प्रभावित होता है कि किन लोगों से वार्तालाप करने की अनुमति उन्हें दी जाती है। अनेक समूह सर्व-स्वतंत्र वार्तालाप की अनुमति नहीं देते। उनके समूह में अनुशासन रखने वाला अध्यक्ष रहता है, जो यह आदेश देता है कि कौन बात करे और कब बात करे। उनके समूह में इसके नियम भी हो सकते हैं कि कौन किससे बात करे। कर्मचारी को कंपनी के अध्यक्ष से वार्ता करने का बहुत कम अवसर मिलता है। अवर कार्यकारी अधिकारी अपने उच्चाधिकारी से वार्तालाप कर सकता है, किंतु सामान्यतः वह अपने उच्चाधिकारी के पास नहीं जा सकता। अतएव, वार्तालाप के पथ प्रायः सीमाबद्ध रहते हैं। समूह में वार्तालाप-धाराओं को बद्ध और मुक्त रखने के प्रतिरूप को **वार्तालाप-संरचना** कहते हैं।

हम एक उदाहरण लें। पुरुषों के दो भिन्न समूह हैं और प्रत्येक समूह किसी व्यावसायिक समस्या के समाधान में व्यस्त है। एक समूह में प्रत्येक व्यक्ति अपने

समूह के किसी भी व्यक्ति से वार्ता करने के लिए स्वतंत्र है। (संबद्ध) प्रत्येक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति से 'पूर्णतः संबद्ध' होने के कारण समाज-मनोवैज्ञानिक इस प्रकार की वार्तालाप-संरचना को 'कॉम-कॉन' ( Com-Con ) कहते हैं। इससे बिलकुल भिन्न वह संरचना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति केवल एक मध्यस्थ व्यक्ति से वार्ता कर सकता है, लेकिन प्रत्येक से नहीं। यदि वे परस्पर संदेश भेजना चाहें, उनको किसी मध्यस्थ व्यक्ति के माध्यम से ही भेजना होगा, जो उसे पहुँचा भी सकता है और नहीं भी, जैसा वह उचित समझे। यह प्रतिरूप प्रायः 'नक्षत्र' (स्टार) वार्तालाप-संरचना कहलाता है। स्पष्टतः वार्तालाप-संरचना के अनेक अन्य प्रकार भी हो सकते हैं, किंतु सुगमता के लिए हम यहाँ केवल इन दो का ही विवेचन करेंगे ( देखिए, चित्र १६·६ )।

एक समूह की वार्तालाप-संरचना का प्रतिरूप इसकी वार्तालाप-धाराओं के बद्ध और मुक्त रूप में है।
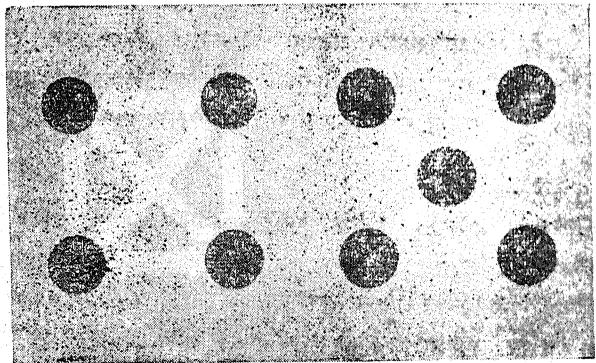
**चित्र १६·६ वार्तालाप-संरचना के दो प्रकार। दाहिनी ओर 'स्टार' प्रतिदर्श है, जिसमें सदस्य केवल मध्यस्थ व्यक्ति से वार्ता कर सकते हैं, बाईं ओर पूर्णत संबद्ध (कॉम-कॉन) संरचना है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति परस्पर किसी भी व्यक्ति से वार्तालाप कर सकता है।**

क्या किसी कार्य के संपन्न होने में एक संरचना दूसरी से श्रेष्ठतर होती है ? दुर्भाग्य से इसका कोई सरल एवं स्पष्ट उत्तर नहीं है। हमने दोनों संरचनाओं की तुलना करते हुए अनेक प्रयोग किए हैं और परिणाम अनेक कारकों पर आधृत प्रतीत होते हैं। दो महत्त्वपूर्ण कारक हैं—किए जाने वाले कार्य की कठिनता या जटिलता तथा समूह के प्रत्येक सदस्य पर दिया गया कार्य-भार। एक बात हम निश्चित रूप से

कह सकते हैं कि व्यक्ति स्टार-प्रतिरूप की अपेक्षा कॉम-कॉन संरचना को अधिक पसंद करते हैं।

कॉम-कॉन संरचना में सामान्यत: लोग अपने कार्यों को स्टार प्रतिदर्श के अमध्यस्थ सदस्यों की अपेक्षा अधिक संतोषजनक अनुभव करते हैं तथा उनका मनोबल भी स्वस्थतर रहता है (शॉ, १९५५)।

इस भिन्नता के लिए प्राय: जो कारण दिया जाता है, वह है कॉम-कॉन प्रतिरूप में समूह के सदस्यों को अधिक **स्वतंत्रता** का दिया जाना (शॉ, १९५५)। कॉम-कॉन संरचना में अपना कार्य करने के लिए समूह के सभी सदस्य परस्पर समान रूप से निर्भर रहते हैं। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है, प्रत्येक व्यक्ति अपने समूह में दूसरे व्यक्तियों से अपेक्षाकृत स्वतंत्र है। एक व्यक्ति, जिससे इच्छा हो, बात कर सकता है। किसी भी समय, किसी भी व्यक्ति से, जब वह चाहे, सूचना ले सकता है या उसका मत जान सकता है। स्टार-संरचना में अमध्यस्थ सदस्यों की यह स्थिति नहीं है। अपने कार्य के लिए अनिवार्य सूचना के लिए उन्हें मध्यस्थ व्यक्ति पर ही निर्भर रहना होगा। हमारे समाज में अधिकांश व्यक्ति अपने कार्यों में स्वतंत्रता की कुछ मात्रा अवश्य चाहते हैं। वे विश्वास करना चाहते हैं, कि अपने कार्य के संबंध में वे कुछ कह सकते हैं। वह वार्तालाप-संरचना जो इस इच्छा में बाधक हो, उन्हें असंतुष्ट करती है। यह निष्कर्ष निम्नलिखित उदाहरण द्वारा समर्थित है (ट्रा, १९५७):—

> "प्रयोग को प्रारंभ करने से पूर्व यह परिमापित करने के लिए कि प्रत्येक प्रयोग-पात्र को स्वतंत्रता की कितनी मात्रा चाहिए, उनका व्यक्तित्व-परीक्षण किया गया। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक प्रयोग-पात्र को यह अनुभव कराया गया कि वह वार्तालाप-संरचना में या तो मध्यस्थ के स्थान पर है अथवा उसके परिवेश में (अमध्यस्थ रूप में)। इन दोनों स्थानों के मध्य कुछ व्यक्तियों को विश्वास दिलाया गया कि वे समूह के किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर नहीं हैं, जब कि दूसरे व्यक्ति उन पर निर्भर करते हैं। **परिणाम**—कार्य के प्रति संतोष-भावना पर प्रयोग-पात्रों के स्वतंत्र होने का या दूसरों पर निर्भर होने का प्रभाव पड़ा। यह केवल मध्यस्थ अथवा परिवेशी स्थान देने से ही प्रभावित नहीं हुआ। और, उन प्रयोग-पात्रों को इसने सर्वाधिक प्रभावित किया, जिनमें स्वतंत्रता की अपेक्षाकृत तीव्र इच्छा थी। ये प्रयोग-पात्र उस समय सर्वाधिक प्रसन्न होते हैं, जब वे अपने कार्य में अन्य सदस्यों से पूर्णत: स्वतंत्र होते हैं और वे उस समय सर्वाधिक दुखी होते हैं, जब उन्हें कार्य-संबंधी सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है।"

साधारण दृष्टि से देखने पर स्टार-वार्तालाप-संरचना कुछ सत्तावादी समाज की भाँति प्रकट होती है, जिसमें समूह किसी 'तानाशाही' या कठोर शासक द्वारा शासित होता है, और कॉम-कॉन लोकतंत्रीय समाज के सदृश्य जान पड़ता है, जिसमें व्यक्तियों को 'भाषण की स्वतंत्रता' रहती है। वस्तुतः लोकतंत्रीय समाज की अपेक्षा वार्तालाप सत्तावादी समाज में अधिक प्रतिबद्ध रहता है। पुनः निहित भिन्नताएँ स्वतंत्रता की भावना के साथ अधिक संबद्ध हैं और ये भावनाएँ वार्तालाप-संरचना से भिन्न वातावरण उत्पन्न करती हैं। लोकतंत्रीय समूह के व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता की इच्छा को अधिक तृप्त कर सकते हैं। फलतः वे सामान्यतः अधिक प्रसन्न रहते हैं। कुर्त लेविन (लेविन एट० एल०, १९३९) ने विद्यार्थियों में प्रयोगात्मक ढंग से बालकों के खेल-समूहों में भिन्न वातावरण उत्पन्न किया :

> "प्रयोगकर्त्ताओं ने तीन प्रकार के समूहों का निर्माण किया, निरंकुश-समूह, लोकतंत्रवादी समूह और यथेच्छावादी समूह (देखिए, चित्र १६·७)। लोकतंत्रवादी समूहों में नेता या मुखिया परामर्शदाता के रूप में कार्य करता, वह सुझाव देता, प्रेरित करता और सहायता करता, किंतु आधिपत्य-प्रदर्शन से दूर रहता। निरंकुश समूहों में वह आदेश देता, प्रभुत्व प्रदर्शित करता और समूह के किसी सदस्य को कोई सुझाव देने की अनुमति नहीं देता। यथेच्छावादी समूहों में वह समूह के सदस्यों की ओर बहुत कम अथवा बिलकुल ध्यान न देता। जो वे चाहते, उन्हें करने की स्वतंत्रता रहती।"

यथेच्छावादी समूहों की, जैसी कि आशा की जा सकती है, रचनात्मक उपलब्धि अपेक्षाकृत न्यून थी वे। प्रायः थकान अनुभव करते और बारंबार धमाचौकड़ी करने लगते। लोकतंत्रीय समूहों में, दूसरे दोनों समूहों की तुलना में और विशेषतः निरंकुशतावादी समूहों की तुलना में, कम मतभेद था, अधिक मनोरंजन और अधिक रचनात्मक कार्य था तथा नेता के छोड़ कर चले जाने पर समूह भंग नहीं होता। प्रयोगकर्त्ता निर्देश करते हैं कि लोकतंत्रीय वातावरण की श्रेष्ठता में कुछ विशेषता थी।

### नेतृत्व :

समूहों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक विशेषता यह है कि उनके नेता होते हैं। एक व्यक्ति जलते हुए घर में से निकल कर अपने को बचा सकता है, किंतु ५०० स्कूल के बच्चों को बिना किसी सहायता के नहीं निकाला जा सकता। बच्चे अपने-आप दीर्घकाल तक रस्सी पर चढ़ने या बिल्ली रूपा खिलौने से खेल सकते हैं, किंतु अधिकांश खेलों में उन्हें एक नेता की आवश्यकता होती है। आप बिना कैप्टन के फुटबाल का खेल खेल सकते हैं, परंतु यदि कोई संकेत

निरंकुशतावादी नेता आदेश देता है, लोकतंत्रीय नेता परामर्श देता है और यथेच्छावादी नेता केवल चाहने पर सहायता करता है।
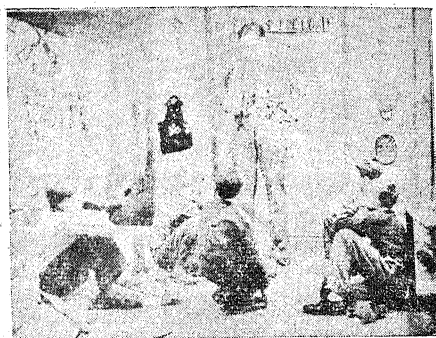
चित्र १६·७ निरंकुशतावादी, लोकतंत्रीय और यथेच्छावादी समूह। सत्तावादी समूह में (प्रथम चित्र) नेता बालकों को बताता है कि उन्हें क्या करना है। लोकतंत्रीय समूह (द्वितीय चित्र) में वह परामर्शदाता के रूप में कार्य करता है। यथेच्छावादी समूह (तृतीय चित्र) में नेता केवल चाहने पर सहायता करता है। बच्चे प्रायः ऊब जाते हैं और धमा-चौकड़ी मचाने लगते हैं (रोनॉल्ड लिपिट्ट)।

बोलता जाए, तो यह खेल कहीं अधिक मनोरंजक हो जाता है। अराजकतावादी लोग राजा को मारते समय या रेलगाड़ी को पटरी पर से उतारते समय भले ही

कुशल व्यक्तिवादी हो सकते हैं, किंतु जब अराजकता किसी सैनिक-संस्थान से सबद्ध होती है, तो परिणामस्वरूप अनेक सैनिकों की मृत्यु और कुछ की विजय होती है। नैतिकता : समूहों को नेताओं की आवश्यकता होती है यदि वे टीम महत्त्वपूर्ण ढंग से कार्य करना चाहते हैं।

## नेतागण और सामाजिक परिवर्तन :

मानव-व्यवहारों के अध्येताओं ने दीर्घकाल से समूह के नेताओं के महत्त्व का मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया है, किंतु वे किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं। कार्लाइल से मार्क्स तक विद्वान नेताओं के संबंध में दो विपरीत मतों में से कभी एक को और कभी दूसरे को मान्यता देते रहे हैं : (१) नेता अनिवार्य हैं, इतिहास की गति उन पर निर्भर रहती है। (२) नेता केवल लोकप्रचलित आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति हैं, वे इतिहास की गति के साथ प्रवाहित होते हैं, किंतु उसे प्रभावित नहीं करते।

प्रथम दृष्टिकोण को 'नेता-सिद्धांत' अथवा 'महान-व्यक्ति-सिद्धांत' कहा जा सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार जनसमूह तब तक एक उद्देश्यहीन परिभ्रांति में पड़ा रहता है, जब तक कोई प्रतिभाशाली नेता उसकी बागडोर नहीं सँभालता और उसका मार्गदर्शन नहीं करता। इस 'बागडोर का स्वामी' सदैव नाटकीय महत्त्व से संपन्न होता है। वह सामाजिक परिवर्तन (अच्छा या बुरा) कर सकता है, किंतु सत्य यह है कि जितना वह वस्तुतः करता है, उससे कहीं अधिक उसकी उपलब्धि प्रकट होती है। उदाहरणार्थ, कहा जाता है कि हिटलर ने पोलैंड पर विजय प्राप्त की, हिटलर ने लाखों व्यक्तियों को मरवाया। सत्य यह है कि हिटलर ने इनमें से कुछ नहीं किया। अधिकांशतः उसने केवल कथन किया। किंतु, क्या हिटलर के बिना ये घटनाएँ घटित होतीं ? हम कह नहीं सकते; क्योंकि इतिहास एक अनियंत्रित प्रयोग है। तथापि इतिहास के महान-व्यक्ति-सिद्धांतानुसार इन घटनाओं के घटने का श्रेय हिटलर को है।

द्वितीय दृष्टिकोण को 'सामाजिक दृष्टिकोण' कहा जा सकता है। इसके अनुसार, इतिहास व्यक्ति का निर्माण अथवा चुनाव करता है, न कि व्यक्ति इतिहास का। सामाजिक और सांस्कृतिक विकास अपने ही नियमों का पालन करते हैं और नेता के रूप में किसी व्यक्ति का आविर्भाव मात्र संयोग होता है।

इसके अनुसार समाज एक अस्त-व्यस्त प्रणाली है, जो धीरे-धीरे पर्यावरणीय परिवर्तनों को ग्रहण कर लेता है। इसकी संस्कृति ही इसकी आदतें और रिवाज हैं। यदि सामाजिक संस्थान अपने को युद्ध के सम्मुख पाता है, तो शांतिप्रिय नेता असह्य

होगा, पराजय की स्थिति में कोई भी राष्ट्र षडयंत्रकारी बुद्धिपरक नेता की अपेक्षा करता है। कोई भी नेता अपने समाज की आवश्यकता की उपेक्षा करके नेता नहीं रह सकता। अतः, इस मत के अनुसार जर्मन लोगों ने, न कि हिटलर ने, पोलैंड पर विजय प्राप्त की और यहूदी लोगों की हत्या की। इस सिद्धांत के अतिवादी अनुयायी नेता के क्षणिक प्रभाव को भी स्वीकार नहीं करेंगे। उनके अनुसार वह जनसमूह की वाणी भले ही हो, पर उनका मस्तिष्क कभी नहीं हो सकता।

नेतृत्व-संबंधी इन सिद्धांतों के पक्ष और विपक्ष दोनों के तर्क हैं। किसी भी मत को प्रमाणित या अप्रमाणित नहीं किया जा सकता। अतः ऐसे कारण हैं, हमें विश्वास दिलाते हैं कि सत्य इन दोनों मतों के मध्य कहीं है। सामाजिक परिवर्तन, संभवतः नेताओं, समाजों और परिस्थितियों के सामूहिक कार्य का परिणाम है। नेताओं के कारण कुछ परिवर्तन अवश्य होते हैं। कभी अधिक, कभी कम। दूसरी ओर समाज की आवश्यकताएँ और अभिवृत्तियाँ निर्धारित करती हैं कि वह किसे अपना नेता चुने या किसका वह अनुकरण करे। किंतु, नेता और समाज दोनों का व्यवहार उन परिस्थितियों पर निर्भर करता है, जिनका सामना उन्हें करना पड़ता है।

मनोवैज्ञानिकों को इतिहासज्ञों के रूप में कार्य करने और इतिहास को स्पष्ट करने का कोई अधिकार नहीं है। वे विभिन्न प्रकार के समूहों और परिस्थितियों पर नेतृत्व के महत्त्व को प्रतिपादित करने के लिए केवल प्रयोग कर सकते हैं। इस प्रकार का एक प्रयोग (हेथार्न, १९५८) प्रदर्शित करता है कि नेतागण और उनके अनुयायी किस प्रकार परस्पर प्रभावित करते हैं :

> "चार-चार व्यक्तियों के समूहों को एकत्रित किया गया और प्रत्येक में एक व्यक्ति को नेता के रूप में नियुक्त किया। समूहों का गठन इस प्रकार से किया गया था कि नेता और उसके अनुयायियों के व्यक्तित्वों में विभिन्नता थी। प्रयोग-पात्रों का पहले व्यक्तित्व-परीक्षण उनकी 'सत्तावादी' प्रवृत्तियों के परिमापनार्थ किया गया, अर्थात् वे किस सीमा तक समाज के सत्तावादी स्वरूप को स्पष्टतः चाहते हैं। इस परीक्षण के परिणामों के आधार पर प्रयोगकर्त्ता ने चार प्रकार के समूहों का निर्धारण किया : (१) अत्यधिक सत्तावादी नेता के साथ अत्यधिक सत्तावादी अनुयायी, (२) अत्यधिक सत्तावादी नेता के साथ कम सत्तावादी अनुयायी, (३) कम सत्तावादी नेता के साथ अत्यधिक सत्तावादी अनुयायी और (४) कम सत्तावादी नेता के साथ कम सत्तावादी अनुयायी। इन समूहों में जो वाद-विवाद हुए, उनका अध्ययन किया गया। प्रमाणित हुआ कि ये वाद-विवाद नेता के व्यक्तित्व एवं अनुयायियों के व्यक्तित्व दोनों से प्रभावित थे। जिन समूहों के नेता सत्ता-

वादी थे, वे अपनी संरचना में अधिक औपचारिक थे और कम सत्तावादी नेताओं की अपेक्षा अधिक व्यक्तित्वशाली थे और अनुयायियों का व्यक्तित्व जो भी रहे, इनका कार्य-विभाजन अधिक असमान था। किंतु, अनुयायियों का कुछ प्रभाव नेता के व्यवहार पर अवश्य था। अपने व्यक्तित्वों से निरपेक्ष, जिन नेताओं के अनुयायी सत्तावादी थे वे, कम सत्तावादी अनुयायियों की अपेक्षा अधिक निरंकुश व्यवहार करते थे। नेता और समूह ने परस्पर प्रभावित किया था।"

नेताओं के व्यक्तित्व :

यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि व्यक्ति के यदि कोई गुण हैं, तो वे कौन से गुण हैं, जो नेताओं के विशेषण हैं। हमारे पुस्तकालय अर्थसंपन्न ग्रंथों से भरे हैं, जिनमें इस विषय पर अनेकानेक मत मिलेंगे, किंतु निश्चित रूप से कुछ नहीं मिलता। वे प्राय: हमारे समाज के नवयुवकों के लिए हैं, जो वयस्कता के आकर्षणों से प्रेरित हैं। तथ्य-निरपेक्ष-सिद्धांत किसी भी विज्ञान के लिए व्यर्थ है और नेतृत्व पर लिखे गए अधिकांश ग्रंथ इसी कोटि के हैं। पिछले कुछ वर्षों से वैज्ञानिक इस समस्या का अध्ययन कर रहे हैं और अब हमें इस संबंध में कुछ तथ्य प्राप्त होने लगे हैं।

अपने अध्ययन द्वारा वैज्ञानिक व्यक्तित्व की कुछ ऐसी विशेषताओं को खोज सके हैं, जो नेताओं में हैं और अ-नेताओं में नहीं हैं। किंतु, शोध के परिणाम परस्पर विरोधी प्रकट हुए हैं (जेनकिंस, १९४७), अंशत:; क्योंकि बहुत अधिक प्रकारों के 'नेताओं' को एक साथ समूहबद्ध कर दिया गया है जैसे वे केवल एक प्रकार के नेतृत्व को अभिव्यक्त करते हों। स्पष्टत: जो व्यक्ति अमूर्त अवधारणाओं में रत बुद्धिपरक व्यक्तियों के समूह का नेता है, वह उस नेता से अवश्य ही भिन्न होगा, जो किसी व्यायामशाला का नेता है। नेताओं और नेतृत्व के स्वरूप को जानने के लिए हमें उस परिस्थिति पर भी विचार करना चाहिए, जिसका समूह को सामना करना पड़ता है; क्योंकि वह परिस्थिति, जिसमें नेता नेतृत्व करता है, बहुत सीमा तक यह निर्धारित करती है कि नेता में वैयक्तिक गुण होने चाहिए।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि दो भिन्न समूहों के नेताओं में अनिवार्य रूप से सामान्य गुण नहीं होंगे, अथवा कि एक व्यक्ति जो एक दल का नेता बन गया है, वह दूसरे किसी दल का नेता नहीं हो सकता। वस्तुत: ऐसे कुछ गुणों का उल्लेख करना संभव है जो नेता बनने वाले व्यक्ति में प्राय: पाए जाते हैं। बहुत दूर तक यह सत्य है कि **नेताओं के अपने समूह के कार्यों में सक्रिय भाग लेने की अधिक संभावना रहती है, वे विश्वसनीय, दृढ़ाग्रही दक्ष, आत्मविश्वासी और समाज में** लोकप्रिय होते हैं (स्टागडिल, १९५८)। इनमें से प्रत्येक गुण का विवेचन किया जाएगा। किंतु, इन

गुणों के होने से ही कोई व्यक्ति किसी दल का नेता नहीं हो जाता। लेकिन, यदि परिस्थिति अनुकूल है, तो जिस व्यक्ति में ये गुण होते हैं, वह नेतृत्व प्राप्त कर सकता है।

## औपचारिक और अनौपचारिक नेतागण :

यह समझने से पहले कि क्यों ये गुण महत्त्वपूर्ण हैं और किन परिस्थितियों में ये सर्वाधिक प्रभावशाली हैं, हमें यह समझ लेना चाहिए कि नेता **किसे** कहते हैं? मूलतः नेता वह व्यक्ति है, जो समूह के लिए किसी कार्य को निर्धारित करता है तथा उसकी कार्य-विधि को प्रभावित करता है। किंतु, हम इस शब्द के अर्थ को सीमित कर देते हैं कि नेता वह है जो प्रभाव उत्पन्न करने में बार-बार सफल रहता है। उसे ऐसे समूह के सदस्यों की अपेक्षा है, जो एक से अधिक बार या बार-बार उसके सुझावों को ग्रहण करें। यदि कोई अन्य व्यक्ति किसी नवीन विचार के साथ आता है और संपूर्ण विवेचनकाल में समूह को प्रभावित करता है, तो उस विचार को भी स्वीकार करने के लिए नेता का समर्थन प्राप्त करना अनिवार्य है। अतः, इस स्थिति में नेता वस्तुतः प्रधान प्रभावसंपन्न व्यक्ति है, उसने विचार की स्वीकृति को प्रभावित किया है।

अब हमें नेताओं के दो मूल प्रकारों को स्पष्ट करना चाहिए—इस अर्थ में कि उनके सफल और प्रभावशाली होने के भिन्न कारण हैं।

## औपचारिक नेता निर्णीत :

नेता का एक प्रकार है 'औपचारिक नेता'। एक औपचारिक नेता अपने समूह को प्रधानतः प्रभावित करता है; क्योंकि उसे नियमानुसार एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। वह अध्यक्ष, सभापति या राजाहै। इस रूप में प्रभावित करना उसका स्वाभाविक कार्य है और अनुयायियों का कार्य है अनुकरण करना। अनुयायी अपने औपचारिक नेता के विचारों को पुनः-पुनः स्वीकार करते हैं; क्योंकि नेता का उन पर अधिकार है, वह उन्हें पुरस्कृत और दंडित कर सकता है।

जैसा कि हम देख चुके हैं कि दंड के भय पर आधारित प्रभाव दीर्घकाल तक नहीं रहता। अनुयायी केवल तब तक आदेश का पालन करेंगे, जब तक उन्हें पकड़े जाने का भय है। यह नेतृत्व बहुत प्रभावशाली नहीं होता, तथापि कुछ स्थितियों में, जैसे युद्ध, यह अनिवार्य भी होता है। सामान्यतः वह नेता सर्वाधिक प्रभावशाली होता है, जब उसके अनुयायी उसके विचारों को अपना लेते हैं; क्योंकि वे वस्तुतः उसमें विश्वास रखते हैं। निर्णीत नेता अंततोगत्वा अपनी सत्ता और अपना प्रभाव उस स्थान से प्राप्त करता है, जो उसे उपलब्ध है।

निम्नलिखित प्रयोग (रावन और फ्रेंच; १९५८) प्रदर्शित करता है कि एक व्यक्ति का निर्णीत स्थान किस प्रकार समूह के अन्य सदस्यों को उसके विचारों को स्वीकार करने के लिए प्रभावित करता है :

> "इस प्रयोग में एक व्यक्ति (प्रयोगकर्त्ता का मित्र) ने वास्तविक प्रयोग-पात्रों को दो भिन्न स्थितियों में प्रभावित करने का प्रयत्न किया। प्रत्येक स्थिति में प्रयोग-पात्रों के भिन्न समूह थे। एक स्थिति में, वह नेतृत्व को अनाधिकार ग्रहण करता है, उस समूह के लिए उसे 'विधानानुसार' यह अधिकार नहीं दिया गया था। दूसरी स्थिति में इस अधिकार के लिए वह प्रायः चुना गया था, निर्णीत था। समूह को प्रभावित करने के उसके प्रयत्नों में उसे निर्णीत अवस्था में अधिक सफलता प्राप्त हुई। इस परिणाम से प्रयोग-कर्त्ता इस निर्णय पर पहुँचा कि चुनाव-प्रक्रिया एक औपचारिक विधि है, जिसके द्वारा किसी कार्यालय के न्यायोचित अधिकारी को स्थान दिया जाता है और उस कार्यालय के वैधानिक अधिकारों के लिए उस पर प्रयोग किया जा सकता है।"

### अनौपचारिक या अनिर्णीत नेतागण :

नेता का द्वितीय प्रकार है—'अनिर्णीत या अनौपचारिक नेता'। अनौपचारिक नेता अपने समूह को बार-बार प्रभावित करने में सफल हो सकता है, किंतु उसका प्रभाव उसके औपचारिक पद के कारण नहीं रहता। किसी भी तथ्य से अधिक, समूह के अन्य सदस्य उसके आदेश का पालन उसके वैयक्तिक गुणों के कारण करते हैं, जो उन्हें विश्वस्त करते हैं कि उसके विचारों को स्वीकार करके वे अपनी आवश्यकताओं को तृप्त कर सकते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि समूह के सदस्य इस तथ्य के प्रति अनिश्चित रहें कि वे अपने लक्ष्य को कैसे प्राप्त कर सकते हैं। समूह के समक्ष आने वाली समस्याओं को स्वयं न सुलझा सकने के कारण वे समूह के उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनिर्णीत नेता का आश्रय लेते हैं।

इस स्थिति में समूह किसी एक व्यक्ति का आधार क्यों लेता है ? वे कौन से महत्त्वपूर्ण गुण हैं, जो उस व्यक्ति में होने चाहिए ? निश्चय ही एक गुण है—उसकी कार्यदक्षता, जिसे समूह की समस्याओं के उसके सुलझाने के ढंग में वह उसमें अनुभव करता है। प्रायः यह इस रूप में घटित होता है कि समूह के सदस्यों के लिए इसे जानने का उपाय भी नहीं रहता। अतः, किसी व्यक्ति की कार्यदक्षता के मूल्यांकन की वस्तुनिष्ठ विधि के अभाव में समूह प्रायः व्यक्ति के द्वारा किए गए पूर्व-कार्यों पर विश्वास करता है। समूह के सदस्य प्रायः कहते हैं, 'वह पहले सफल रहा है, अतः

संभावना है कि वह अब भी सफल रहेगा।' संभवतः यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है कि क्यों कोई व्यक्ति, जिसने पहले सफलतापूर्वक कार्य किया है, परवर्त्ती अवसरों पर उस व्यक्ति की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो सकता है, जिसने पहले कोई सफल कार्य न किया हो (मासनर, १९५४)।

किंतु पूर्व-कार्य-संपादन ही अनिर्णीत नेता को स्वीकार करने का एकमात्र हेतु नहीं है। दूसरा कारण है उसे पसंद करना, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार अनुरूपता-व्यवहार में होता है। जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों द्वारा अधिक पसंद किया जाता है, उसके विचारों को स्वीकार करने की अधिक संभावना रहती है और इस प्रकार कम लोकप्रिय व्यक्ति की अपेक्षा लोगों को उसके प्रभावित करने की अधिक संभावना रहती है। अंशतः इस कारण से सामाजिक निपुणता और वैयक्तिक लोकप्रियता नेतृत्व के लिए चुने गए व्यक्ति में प्रायः रहती हैं। इसके अतिरिक्त नेता का बार-बार एक कार्य रहता है—समूह के सदस्यों के मध्य मैत्रीभाव को बनाए रखना और उसे विकसित करना। अतः, सामाजिक निपुणतापरक लोकप्रिय व्यक्ति समूह के सदस्यों के मध्य मैत्रीभाव स्थापित करने में उस व्यक्ति की अपेक्षा अधिक सफल हो सकता है, जो कम सामाजिक निपुणतापरक है।

जैसी कि आशा की जा सकती है कि एक व्यक्ति जो एक समूह के सदस्यों में अत्यधिक लोकप्रिय है, वह अन्य समूहों के मध्य भी लोकप्रिय होगा। जो व्यक्ति सामाजिक-निपुणतापरक है और सहज ही दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट करता है, वह विस्तृत क्षेत्र से मित्रों का चुनाव कर सकता है—किंतु, आवश्यक नहीं कि वह प्रत्येक व्यक्ति को आकृष्ट करे ही। इसका अभिप्राय यह है कि एक व्यक्ति, जो एक समूह का नेता बन गया है, वह अन्य समूहों का भी नेता बन सकता है; क्योंकि अनुमानतः अन्य समूहों के कार्य एवं व्यक्ति भी उसी समूह के सदृश होते हैं ( बेल और फ्रेंच, १९५० )।

अंत में इसका प्रमाण है कि दृढ़निश्चयी व्यक्ति के नेता चुने जाने की संभावना कम दृढ़निश्चयी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक रहती है, कम-से-कम समूह की प्रारंभिक अवस्था में। दृढ़निश्चयी व्यक्ति वह है, जो पर्याप्त वार्तालाप कर सकता है और अपने अनेक विचारों को प्रकट करता है। यदि वह अपने विचारों को प्रकट करने में उद्धत (अक्खड़) और आक्रामक नहीं है, तो उसका सक्रिय भाग लेना समूह में उसे उच्च स्थान दिलाता है। यह उसके नेता चुने जाने की संभावना में भी वृद्धि करता है। वार्तालाप करना और समूह के कार्यों में सक्रिय भाग लेना भी इसमें सहायक होता है कि समूह की समस्याएँ कैसे सुलझायी जा सकती हैं।

इसके अतिरिक्त, दृढ़निश्चयी व्यक्ति अपने विचारों को प्राय: इस विश्वास के साथ प्रस्तुत करता है कि वे उपयुक्त हैं तथा समूह के सदस्य भी अनुभव करने लगते हैं कि उसके विचार वस्तुत: उपयुक्त हैं।

अत्यधिक दृढ़तावादी होने से हानि की भी आशंका रहती है। कार्यविधि के कई कालों में किसी व्यक्ति का बराबर समूह की क्रियाओं को अनुशासित करना समूह के कुछ व्यक्तियों की स्वतंत्रता की इच्छाओं को हताश कर देता है। समूह अपने कार्यों में जैसे-जैसे प्रगति करता है, उसकी अनेक मूल समस्याओं का समाधान हो जाता है और स्थिति कम संदिगध हो जाती है। ऐसी स्थिति आने पर अन्य सदस्य अपने कार्यों पर अपना अधिक नियंत्रण रखना चाहते हैं। पहले उन्हें जितने सुझावों की आवश्यकता रहती थी, अब नहीं रहती। ऐसी स्थिति में दृढ़तावादी व्यक्ति मूल लोकप्रियता खो सकता है यदि वह अपने विचारों पर ही बल देता रहे। इसी हेतु कुशल नेता अनुभव कर लेता है कि अब समूह के अन्य व्यक्तियों को अवसर मिलना चाहिए कि वे अपने कार्यों के विषय में अधिक कह सकें।

## सारांश

१. विभिन्न समाजों की संस्कृतियों के विशिष्ट प्रतिमान होते हैं। उनसे संबद्ध विश्वासों के साथ उन्हें व्यवहार-रूप में विस्तार से अपनाया जाता है।

२. संस्कृतियाँ परिवर्तन से दूर रहना चाहती हैं, किंतु कभी-कभी उनमें परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन धीरे-धीरे होते हैं या तीव्र गति से, यह इस प्रकार के कारकों पर निर्भर करता है। जैसे—सामाजिक परिवर्तन के प्रति समाज के दृष्टिकोण, इसके औद्योगिक विकास और व्यक्तियों का अंतर्मिश्रण।

३. किसी संस्कृति से संबद्ध व्यक्ति प्राय: इससे अनभिज्ञ रहते हैं कि किस सीमा तक वह संस्कृति उनकी आदतों और उनके मूल्यों को प्रभावित करती है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी उप-संस्कृति रहती है और वह उन छोटे समूहों से भी प्रभावित होता है, जिनमें वह रहता है तथा व्यापक-संस्कृति के मुख्य आदर्शों से भी।

४. एक समाज में व्यक्तियों का समूह में अपनी इच्छाओं की पूर्ति की योग्यता में असमान रहना स्वाभाविक है। यही तथ्य समाज-संरचना के विकास का प्रमुख कारण है।

५. सामाजिक संरचनाएँ विभिन्न पदों से निर्मित होती हैं। विभिन्न पदों पर नियुक्त व्यक्तियों से अपना-अपना कार्य करने की आशा की जाती है। एक व्यक्ति के अनेक पद और कार्य हो सकते हैं। कभी-कभी इनमें विरोध उत्पन्न हो जाता है, किंतु प्राय: वे एक दूसरे के पूरक होते हैं अथवा विविध भागों में साथ-साथ रहते हैं।

६. विशिष्ट पद क्रम सम्मान-मापक पर इस प्रकार व्यवस्थित रहते हैं कि वे सामाजिक वर्गों के विभाजन का आधार बनते हैं। सामाजिक वर्ग में अनेक परस्पर संबंध रहते हैं : सामाजिक-आर्थिक विभिन्नताएँ, वृत्तिक विभिन्नताएँ और सामाजिक अधिकार, जैसे भाषण की स्वतंत्रता, समाज के आदर्शों से भिन्न व्यवहार करना तथा दूसरों को प्रभावित करने की क्षमता।

७. सामाजिक वर्गों के सदस्यों में बच्चों की पालन-पोषण की विधियों में वृत्तियों के लक्ष्यों में, प्रधान अभिप्रेरणों में और दूसरों के लिए अपनी आकर्षणशक्ति में विभिन्नताएँ रहती हैं।

८. समूह के आदर्श व्यवहार के प्रत्याशित तरीके हैं और समूह, वर्ग या संस्कृति के सदस्यों द्वारा वे विस्तृत रूप से अपनाए जाते हैं। उनके विशेष गुणों की आशा की जाती है, अतः अधिकांश व्यक्ति उनके अनुरूप व्यवहार करते हैं। जब-जब व्यक्तियों के मध्य परस्पर क्रियाएँ होती हैं, समूह आदर्श विकसित होते प्रतीत होते हैं।

९. व्यक्ति समूह के आदर्शों के अनुरूप व्यवहार करता है; क्योंकि ( अ ) समूह के सदस्यों के अननुमोदन का उन्हें भय रहता है, और ( ब ) यह विश्वास करने की उनकी प्रवृत्ति रहती है कि समूह उचित कहता है।

१०. समूह के आदर्शों के अनुरूप कुछ मात्रा में व्यवहार को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक : ( अ ) समूह के प्रति आकर्षण ( ब ) समूह के मध्य एकता की अनुभूति ( स ) समूह में अभिन्यास ( Orientation )। अंतिम कारक समूह द्वारा स्वीकार करने या तिरस्कृत करने की भावना से संबद्ध है तथा यह भी कि व्यक्ति कार्य-अभिन्यासित है अथवा समूह-अभिन्यासित।

११. व्यक्ति समूह में कितना वार्तालाप करने का प्रयत्न करता है तथा किस सीमा तक वह अन्य सदस्यों को प्रभावित करता है, यह प्रधानतः इन तथ्यों पर निर्भर करता है—( अ ) समूह का आकर्षण तथा ( ब ) अपने विचारों पर आत्मविश्वास।

१२. किसी समूह में वार्तालाप की धाराएँ प्रायः कुछ रूपों में सीमाबद्ध रहती हैं। वे किस प्रकार परिसीमित रहती हैं, यह वार्तालाप-संरचना द्वारा निर्धारित रहता है। स्टार-संरचना में समूह के सदस्य केवल एक मध्यस्थ व्यक्ति से ही वार्तालाप कर सकते हैं, 'कॉम-कॉन' संरचना में वे किसी के भी साथ वार्तालाप कर सकते हैं। द्वितीय संरचना में लोग अधिक संतुष्ट रहते हैं तथा उनके मनोबल का स्तर भी अपेक्षाकृत ऊँचा रहता है।

१३. अधिकांश समूह जटिल परिस्थितियों में केवल तभी उचित कार्य कर सकते हैं, यदि उनके नेता हों। नेता वह व्यक्ति है, जो समूह के व्यक्तियों को बार-

बार प्रभावित करता है; क्योंकि दूसरों के द्वारा समझा जाता है कि वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सहायता अधिक कर सकता है।

१४. नेतृत्व समूह और परिस्थितयों पर निर्भर करता है। इसलिए अपेक्षाकृत बहुत कम गुण नेताओं को अ-नेताओं से भिन्न करते हैं। सामान्यत: नेतागण समूह के कार्यों में सक्रिय भाग लेते हैं, वे अ-नेताओं की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय, दृढ़, शिष्ट, आत्मविश्वासी एवं सामाजिक दृष्टि से लोकप्रिय होते हैं।

पठनार्थ सुझाव :

Benedict R. Pattern of Culture, Boston : Houghton Miffin, 1934.

आदिम समाजों में संस्कृति के प्रतिरूपों का शास्त्रीय विवेचन और विश्लेषण। सामाजिक मानव-विज्ञानशास्त्री द्वारा प्रस्तुत।

Cartwright, D., and zander, A. Group Dynamics (2nd.ed.) Evanston, III : Row, Peterson, 1960.

समूहों में व्यक्तियों के व्यवहार एवं उस व्यवहार की कुछ सैद्धांतिक व्याख्या पर किए गए सांप्रतिक शोधकार्य की रिपोर्टों का संचयन।

Festinger, L., Schachter, S-, and Back, K.—Social Pressures in Informal Groups, New York : Harper, 1950.

सामाजिक प्रभाव प्रक्रियाओं का सैद्धांतिक विश्लेषण, तथा 'प्राकृत' समूहों पर किए गए शोधकार्य की रिपोर्ट।

Hartley, E., and Hartley, R.—Fundamentals of Social Psychology, New York : Knopf, 1955. Chps 8—11.

मानव-विकास और व्यवहार पर, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और मानव-वैज्ञानिक सामग्री का उपयोग करते हुए, सांस्कृतिक और अन्य सामाजिक प्रभावों का विवेचन।

Kluckhohn, C. Mirror For Man—New York : McGraw-Hill, 1949. (Also published as a paperback, Premier Books by Fawcett Publications, 1957 )

समाज-मानवशास्त्री द्वारा लिखित व्यवहार और अभिवृत्तियों में सांस्कृतिक विभिन्नताओं का प्रसिद्ध सर्वेक्षण।

Krech, D., and Crutchfield, R. S.—Theory and Problems of Social Psychology—New York : McGraw—Hill, 1948 Chaps 10 and 11.

सामाजिक मनोविज्ञान का ग्रंथ। इसमें सामाजिक समूहों एवं नेतृत्व पर अध्याय हैं।

Maccoby, E., Newcomb, T. M., and Hartley, E.—Readings in Social Psychology (3rd ed.) New York : Holt, Rinehart and Winston, 1958.

आधुनिक समाज-मनोविज्ञान के सभी क्षेत्रों में हुए मुख्य शोधकार्य और दृष्टि-कोणों का सर्वेक्षण।

Newcomd, T. M., Social Psycholoy—New York : Dryden, 1950.

समाज-मनोविज्ञान की सामान्य भूमिका, विभिन्न मनोवैज्ञानिक प्रणालियों में संबंध स्थापित करने का प्रयत्न।

Sherif, M., and Sherif, C.—An Outline of Social Psychology ( Rev. Ed. ) New York : Harper, 1956, Chaps 5—8.

समूहों पर किए गए प्रयोगात्मक शोधकार्य एवं 'दैनिक जीवन' के प्रेक्षण पर आधृत समूह-आदर्शों के विकास एवं सामाजिक संरचनाओं का विवेचन।

Warner, W. L., and Lunt, P. S.—The Social Life of a Modern Community, New Haven, Conn. Yale University Press,, 1941

न्यू इंगलैंड नगर की वर्ग-संरचना और सामाजिक अभिवृत्तियों का गंभीर अध्ययन।

●

अध्याय १७

# अभिवृत्तियाँ, विश्वास और सामाजिक पूर्वग्रह

यद्यपि अन्य व्यक्तियों की अभिवृत्तियाँ देखी या अनुभव नहीं की जातीं—वे केवल अनुमानित की जाती हैं—वे प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को पर्याप्त प्रभावित करती हैं। व्यवसाय या राजनीति के क्षेत्र में ये सफलता और असफलता में अंतर उपस्थित कर सकती हैं। व्यवसायी अपने ग्राहकों की अनुकूल अभिवृत्तियों पर, उत्पादन एवं उसके निरंतर विकास के लिए निर्भर करता है। राजनीतिज्ञ को पुनर्निर्वाचन का विश्वास करने के लिए अपने व्यक्तित्व, योग्यताओं और राजनीतिक व्यवहार के प्रति अनुकूल अभिवृत्तियों की अपेक्षा रहती है। इसी प्रकार हममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने मित्रों, परिचितों, नियोक्ताओं एवं अन्य व्यक्तियों के मध्य अपने प्रति अनुकूल अभिवृत्तियों के विकास एवं अननुकूल अभिवृत्तियों के विनाश का प्रयत्न करता है। वस्तुतः दैनिक जीवन के कार्यों में बहुत कम कार्य अथवा निर्णय ऐसे होते हैं जो इसका आधार नहीं लेते कि वे किसी-न-किसी रूप में अभिवृत्तियों को प्रभावित करेंगे।

## अभिवृत्तियों की प्रकृति :

मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रायः अभिवृत्ति को इस रूप में परिभाषित किया गया कि 'यह कुछ विशेष वस्तुओं,' व्यक्तियों या परिस्थितियों के प्रति विध्यात्मक (अनुकूल) अथवा निषेधात्मक (अननुकूल) प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति है।' यद्यपि यह उपयुक्त परिभाषा है, हमें अभिवृत्ति के पूर्ण अर्थ को ग्रहण करने के लिए दो अन्य बातों को भी स्मरण रखना होगा : वर्ग और लक्ष्य। एक अभिवृत्ति जिस व्यवहारी प्रतिक्रिया के प्रति उद्दीप्त होती है, अपनी उद्दीपन वस्तु को किसी-न-किसी वर्ग के अंतर्गत रखती है। यह एक प्रकार का स्पष्टीकरण है कि जिस उद्दीपन के प्रति वह अभिवृत्ति है, मानो वह उद्दीपनों के एक विशेष वर्ग का है तथा वह उद्दीपनों के अन्य वर्गों का नहीं है। उद्दीपन का यह स्पष्टीकरण अथवा वर्गीकरण व्यक्ति के लक्ष्य से संबंधित है। अतएव, अभिवृत्तियों को समझने के लिए हमें वस्तुओं के वर्गीकरण की प्रक्रिया एवं वर्गों द्वारा व्यक्ति के अभिप्रायों तथा लक्ष्यों से निर्मित संबंध पर विचार करना चाहिए।

## कोटि एवं लक्ष्य :

अभिवृत्तियों के इस संप्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए हम मिस्टर स्मिथ के प्राक्कल्पिक उदाहरण पर विचार करेंगे, जिसकी लोकतंत्रवादियों के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति थी।

> "एक दिन मि० स्मिथ ने देखा कि उनका एक नया पड़ोसी मि० जॉन्स है। उनकी भेंट के तत्काल बाद ही मि० स्मिथ ने मि० जॉन्स से पूर्व राष्ट्रपति हैरी ट्रूमेन के प्रति सम्मान के वाक्य सुने। संभावना है कि स्मिथ की प्रथम प्रतिक्रिया अपने पड़ोसी का एक लोकतंत्रवादी के रूप में वर्गीकरण करना—उसे लोकतंत्रवादी के वर्ग के अंतर्गत रखना। जब तक वह जॉन्स को भली प्रकार से नहीं समझ लेता, वह उसे बहुत कुछ उस वर्ग के व्यक्तियों के ही समान समझेगा। एक वर्ग के अंतर्गत रखे गए उद्दीपन अनिवार्यतः प्रायः समान समझे जाते हैं। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि स्मिथ लोकतंत्रवादियों की चिंता नहीं करता। हम संदेह कर सकते हैं कि लोकतंत्री उसके लक्ष्य में कहीं व्यवधान उपस्थित करते हैं। उदाहरणतः उसका यह विश्वास हो सकता है कि लोकतंत्रवादी समाजवाद (जो उसके लिए व्यवधान है ) को लाने में प्रयत्नशील है तथा उनकी कर-योजना उसके धनी बनने की आकांक्षा में बाधक होगी। इस अभिप्रेरण के कारण जॉन्स के प्रति उसके हृदय में घृणा का अल्प भाव जागृत होता है। स्मिथ की यह अनुक्रिया जॉन्स के प्रति एक निरपेक्ष व्यक्ति के रूप में नहीं है। वह जॉन्स को भली-भाँति नहीं जानता कि उसकी असाधारण विशेषताएँ क्या हैं। उसके प्रति स्मिथ की प्रतिक्रिया एक लोकतंत्री के रूप में है, एक बाधक व्यक्ति के रूप में है अथवा व्यक्तियों के मूलतः दंडनीय कोटि के व्यक्ति के रूप में है।"

अब हम अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे कि किसी के प्रति विध्यात्मक या निषेधात्मक अनुक्रिया की प्रवृत्ति को अभिवृत्ति कहते हैं, का क्या अभिप्राय है। प्राक्कल्पिक मि० स्मिथ की अपने पड़ोसी के प्रति प्रतिकूल (निषेधात्मक) अभिवृत्ति है। इस अभिवृत्ति का कारण यह है कि उसने अपने पड़ोसी को अन्य वस्तुओं के साथ उस कोटि के अंतर्गत रखा, जिनके प्रति उसमें प्रतिकूल प्रतिक्रिया होती थी; क्योंकि वे उसके लक्ष्य में बाधक थीं। विलोमतः, यदि मि० जॉन्स ने कुछ ऐसा कार्य किया होता अथवा कुछ ऐसी बात कही होती, जो उसे मि० स्मिथ के विध्यात्मक (अनुकूल) लक्ष्य और प्राप्ति के वर्ग के अंतर्गत रखती, तो उसके प्रति अभिवृत्ति भी अनुकूल होती।

## प्रतिकूल अभिवृत्तियाँ और सामाजिक पूर्वग्रह :

मि० स्मिथ के व्यवहार को देखने का दूसरा दृष्टिकोण यह है कि 'वह पूर्वग्रहग्रसित है।' इस शब्द का सामान्यतः अल्पसंख्यकों के लिए, जैसे यहूदी या नीग्रो लोगों के लिए, प्रतिकूल अभिवृत्ति के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। किंतु, यह समाज वैज्ञानिक परिभाषा है, मनोवैज्ञानिक नहीं। यदि हम केवल सामाजिक पूर्वग्रह के **प्रवर्त्तन** पर विचार करें, यह अन्य प्रतिकूल अभिवृत्तियों से भिन्न नहीं है। स्मिथ अपने पड़ोसी जॉन्स का वर्गीकरण एक यहूदी के रूप में कर सकता था यदि वह उसमें 'यहूदीपन' के कोई चिह्न देखता। यदि वह यहूदी-विरोधी होता, तो वह अपने पड़ोसी को **इस** वर्ग का होने के कारण ही घृणा करता। मनोवैज्ञानिक रूप में, जिस प्रकार अभिवृत्ति प्रवर्तित होती है, सामाजिक पूर्वग्रह भी प्रतिकूल अभिवृत्ति से भिन्न नहीं है। व्युत्पत्ति-विज्ञानानुसार 'पूर्वग्रह' ( Prejudice ) का अर्थ है 'पूर्व-निर्णय' (Pre-judgment)। इस अर्थ में पूर्वग्रह का अर्थ है किसी व्यक्ति, वस्तु या परिस्थिति के संबंध में पूर्व निश्चित धारणा का प्रयोग करना। मि० स्मिथ के उदाहरण में उसकी लोकतंत्रवादियों के प्रति पूर्व-धारणा थी, जिसका प्रयोग उसने मि० जॉन्स पर किया। यह पूर्व-निर्णय अनुकूल भी हो सकता है और प्रतिकूल भी और ऐसा ही पूर्वग्रह भी हो सकता है। किसी भी स्थिति में मि० स्मिथ का अपने पड़ोसी के प्रति पूर्वग्रह उस वर्ग से उत्पन्न होता है, जिसके अंतर्गत वह उसे रखता है ( यदि पूर्व-धारणा अनुकूल हो, उस वर्ग से 'दोषों' के स्थान पर 'गुण' संबंधित होते हैं )।

## कोटि और रूढ़ धारण :

व्यक्तियों को वर्गों में विभाजित करने का एक अन्य महत्त्वपूर्ण परिणाम भी है। इसमें त्रुटिपूर्ण चिंतन और विश्वास निहित है। मि० स्मिथ मि० जॉन्स को एक विशिष्ट व्यक्ति नहीं मानता, वरन् वह उसे एक लोकतंत्री के रूप में वर्गीकृत करता है और ऐसा करने में वह मि० जॉन्स के संबंध में भूल भी कर सकता है। वस्तुतः लोकतंत्र—पार्टी में सभी प्रकार के व्यक्ति रहते हैं। मि० जॉन्स लोकतंत्री हो सकता है, फिर भी समाजवाद का विरोध कर सकता है। यदि मि० स्मिथ द्वारा निर्धारित, लोकतंत्र, के अंतर्गत केवल वे ही व्यक्ति आते हैं, जो समाजवाद का पक्ष लें, तो वह अपने पड़ोसी को समाजवाद का पोषक समझ कर भूल करेगा। परिणामतः वह मि० जॉन्स के साथ ऐसे गुणों को संबद्ध करेगा, जिनसे उसका कोई संबंध नहीं।

इस विशेष उदाहरण में लोकतंत्री-कोटि के अति-सरलीकरण की भूल हुई है। वर्ग को उपवर्गों में विभाजित होना चाहिए अर्थात् उसके अंतर्गत लोकतंत्रवादियों

के विभिन्न प्रकारों को होना चाहिए। स्मरण रखें, एक कोटि के अंतर्गत वर्गीकृत उद्दीपन अनिवार्यतः समान समझे जाते हैं। एक सामान्य वर्ग में वर्गीकृत व्यक्तियों में सादृश्यता समझी जाती है। इस उदाहरण में वे एक राजनैतिक विचारधारा को स्वीकार करने वाले समझे गए हैं, जब कि वस्तुतः लोकतंत्रवादियों के विचारों में विशद् अंतर रहता है।

इस प्रकार की विचारणा प्रायः रूढ़िगत होती है। कोई भी व्यापक, अति-सरलीकृत, अतः त्रुटिपूर्ण विचार रूढ़िगत होता है (क्रैच और क्रट्चफील्ड, १९४८)। सामान्यतः इसका संबंध व्यक्तियों के एक वर्ग से समझा जाता है। ऐसी रूढ़ि का एक उदाहरण यह है कि लाल केशों वाले लोग स्वभावतः क्रोधी होते हैं। यह इसलिए रूढ़िगत है; क्योंकि कम से-कम कुछ संस्कृतियों में यह व्यापक विचार है तथा यह अति-सरलीकृत है। वस्तुतः कुछ लाल केशधारी व्यक्ति सहज-क्रोधी होते हैं और कुछ नहीं। कुछ ऐसे रूढ़िगत विचार भूरे केश वालों के लिए, वैज्ञानिकों, इतालवी लोगों, यहूदियों, आयरिश लोगों एवं अन्य अनेक समूहों के लिए भी प्रचलित हैं।

१९३२ में शोधकर्त्ताओं ने प्रिंसटन विश्वविद्यालय में व्यवस्थित रूप से विभिन्न राष्ट्रीय समूहों के प्रति अपने विद्यार्थियों की अभिवृत्तियों का अध्ययन किया। उन्होंने प्रयोग-पात्रों से पूछा कि प्रत्येक समूह की विशेषताओं को बताएँ। सारणी १७·१ में इस प्रयोग के कुछ परिणाम दिए गए हैं। इस सारणी को देख कर आप अपने अनुभवों से निर्णय कर सकते हैं कि ये रूढ़ धारणाएँ आज भी वर्त्तमान हैं या नहीं।

कुछ वर्षों के उपरांत एक अन्य शोधकर्त्ता ने एक अन्य विधि से रूढ़ धारणाओं का अध्ययन किया। प्रयोग का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

> "शोधकर्त्ता ने १०० लड़कों और लड़कियों को तथा ५० वयस्क व्यक्तियों को 'अविशिष्ट समूह' की कालेज-छात्राओं के चित्र दिखाए। उसने अपने प्रयोग-पात्रों से कहा कि वे उन छात्राओं को रूप, बुद्धि, चरित्र और आकांक्षा की दृष्टि से अंक दें। दो माह उपरांत उन्हीं चित्रों को पुनः प्रयोग-पात्रों को दिखाया गया, किंतु उनकी स्मृति, को भ्रमित करने के लिए कुछ अन्य चित्र भी उनमें मिला दिए थे। प्रयोग-पात्रों से पुनः अंक देने के लिए कहा गया। इस बार, यद्यपि, उन्हें कुछ यादृच्छिक नाम दे दिए गए थे, अर्थात् लड़कियों की वास्तविक जातीय विशेषताओं से असंबद्ध नाम दिए गए थे। पाँच को यहूदी नाम दिए, पाँच को आयरिश, पाँच को इतालवी और बाकी को एंग्लो-सेक्शन नाम।

सारणी १७·१

| समूह विशेषक | विद्यार्थियों के प्रतिशत आँकड़े, जिन्होंने इन विशेषकों को विभिन्न समूहों में स्वीकार किया |
|---|---|
| जर्मन : | |
| व्यवस्थित बुद्धि वाले | ७८ |
| परिश्रमी | ६५ |
| भावशून्य | ४४ |
| बुद्धिमान | ३२ |
| इतालवी : | |
| कला-प्रेमी | ५३ |
| भावुक | ४४ |
| रसिक | ३७ |
| संगीत-प्रेमी | ३२ |
| यहूदी : | |
| चालाक | ७९ |
| धनलोलुप | ४९ |
| परिश्रमी | ४८ |
| बुद्धिमान | २९ |
| महत्वाकांक्षी | २१ |
| नीग्रो : | |
| अंधविश्वासी | ८४ |
| आलसी | ७५ |
| आरामप्रिय | ३८ |
| आयरिश : | |
| उग्र | ४५ |
| सहज क्रोध | ३९ |
| विनोदप्रिय | ३८ |
| ईमानदार | ३२ |

**सारणी १७·१ कुछ अतिसामान्य विशेषक, जिनके संबंध में अनुमान किया जाता है कि विविध जातीय एवं राष्ट्रीय समूहों में वर्त्तमान हैं।**

दूसरी बार दिए गए अंक इन नामों से प्रभावित थे। अनुमानित यहूदी लड़कियों के प्रति स्पष्टतः वे ही निर्णय थे, जो सारणी १७.१ में प्रदर्शित यहूदियों के लिए रूढ़ हैं। प्रथम अंकन के विपरीत, जब उन्हें नाम नहीं दिए गए थे, इस बार वे कम रूपवती, कम चरित्रवान्, किंतु अधिक बुद्धिमान और अधिक महत्त्वाकांक्षी समझी गईं। परिवर्तन का यह प्रतिरूप अनुमानित आयरिश और इतालवी लड़कियों के लिए नहीं हुआ।"

यहूदी प्रायः बुद्धिमान और महत्त्वाकांक्षी समझे जाते हैं। सारणी १७.१ प्रदर्शित करती है कि ये लक्षण यहूदियों के लिए रूढ़ लक्षणों में से हैं। उपर्युक्त प्रयोगों में लड़की के नामकरण ने उसे विशेष वर्ग (यहूदी) के अंतर्गत रखने का कार्य किया। फलस्वरूप इस वर्ग से संबंधित गुणों को उनके साथ संबद्ध किया गया। (यहूदी महत्त्वाकांक्षी होते हैं, वह यहूदी है। इसे महत्त्वाकांक्षी होना ही चाहिए।)

उपर्युक्त वर्णित विधि केवल किसी वर्गविशेष या जातीय समूह तक ही सीमित नहीं है। ऐसी स्थिति का सामना होने पर हम उद्दीपनों को वर्गों के अंतर्गत रखने की ओर प्रवृत्त होते हैं, चाहे वे व्यक्ति हों, वस्तु या प्रतीक हों, हम उन्हें अपने को उपर्युक्त प्रतीत होने वाले वर्गों के अंतर्गत रखते हैं। एक बार जब इस रूप में हम उन्हें वर्गीकृत कर लेते हैं, तो उनके प्रति हमारी प्रतिक्रियों वैसी हो होने लगती है, जो उस वर्ग के उद्दीपनों के प्रति थी (देखिए उद्दीपन, सामान्यीकरण तथा प्रत्यय-निर्माण)। अतः, एक रूढ़ विचार वर्ग का केवल एक विशेष प्रकार है—जो कि विशेष समूह से संबंधित है। वर्गों की विशेषताएँ व्यापक रूप से मान्य होती हैं और उनका यथार्थ से अति-सरलीकरण किया गया होता है।

## विश्वास, अभिवृत्तियाँ और मत :

दैनिक व्यवहार में विश्वास, अभिवृत्ति और मत शब्द अपने अर्थों में अति निकट व्यवहृत होते हैं—इतने निकट कि प्रायः एक के स्थान पर दूसरे का व्यवहार किया जाता है। यद्यपि उनके अंतर को समझना संभव है। किसी कथन या प्रस्ताव की स्वीकृति विश्वास है। इसमें अनिवार्यतः 'पक्ष' या 'विपक्ष' की अभिवृत्ति निहित नहीं है। मेरा विश्वास है कि सूर्य कल प्रभात में उदित होगा। कुछ लोग चर्च में व्यक्तियों के हैट पहनने पर विश्वास करते हैं। ऐसे विश्वास अभिवृत्ति के बिना किसी संवेदनात्मक आभास के भी हो सकते हैं। विश्वास और अभिवृत्ति के मध्य कुछ अस्पष्ट विचार हैं, जिन्हें 'मत' कहा जाता है। इसमें प्रायः कुछ योग विश्वास का रहता है और कुछ अभिवृत्ति के 'कारण' और 'कार्य' का, किंतु आवश्यक नहीं कि अभिवृत्ति दृढ़ हो और विश्वास भी दुर्बल हो सकता है।

यथार्थ व्यवहार में इन शब्दों का अंतर विशेष महत्त्व नहीं रखता। अधिकांश विश्वास और मत अभिवृत्तियों से निकट संबद्ध रहते हैं। वस्तुतः किसी भी स्थिति में इन्हें पूर्णतः पृथक् करना कठिन है। यही कारण है कि विश्वास और मत भी वस्तुओं के वर्गों में विभाजन को विशेष रूप से स्वीकार करते हैं, जो व्यक्ति के लक्ष्यों से संबंधित रहते हैं।

### अभिवृत्तियों और विश्वासों का विकास :

यह समझ लेने के उपरांत कि अभिवृत्तियाँ और विश्वास क्या हैं, हम इस स्थिति में हैं कि इसका विवेचन कर सकें कि वे कैसे निर्मित और परिवर्तित होते हैं। अध्याय के इस परिच्छेद में हम बालकों और नवयुवकों में अभिवृत्तियों एवं विश्वासों के विकास पर विचार करेंगे। अगले परिच्छेद में हम अभिवृत्तियों को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों पर विचार करेंगे, जो युवावस्था में विशेष रूप से महत्त्व रखते हैं। उसके अनुवर्त्ती परिच्छेद में शिक्षा और प्रचार के माध्यम से अभिवृत्तियों के परिवर्तन पर विवेचन करेंगे। अध्याय के अंतिम दो परिच्छदों में अभिवृत्ति परिमापन और जातीय अभिवृत्तियों तथा अंतद्वन्द्वों की विशेष समस्या पर विवेचन किया गया है।

### संस्कृति :

१६ वें अध्याय में हम पढ़ चुके हैं कि संस्कृति का निर्माण व्यक्तियों के रीति-रिवाजों तथा परंपराओं से एवं जीवन की मुख्य समस्याओं के प्रति उनकी अभिवृत्तियों एवं विश्वासों से होता है। हम यह भी सीख चुके हैं कि ये रीति-रिवाज परंपराएँ, अभिवृत्तियों और विश्वास प्रत्येक व्यक्ति को अनेक भिन्न रूपों में उसकी जाति, उसके सामाजिक समूहों, उसके विद्यालयों और उसके परिवार आदि के माध्यम से प्रभावित करते हैं। व्यक्ति चूँकि इन प्रभावों को साथ-साथ या एक दिन या सप्ताह के अंतर से अनुभव करता है, इन्हें एक दूसरे से पृथक् करना कठिन होता है। अंततः वे उसकी अभिवृत्तियों और विश्वासों को प्रभावित करते हैं. रूप देते हैं।

### सांस्कृतिक विभिन्नताओं की तुलना :

अभिवृत्तियों पर संस्कृति के प्रभाव को निर्धारित करने के लिए एक विधि यह है कि यह निश्चित किया जाए कि क्या विविध समाजों के विश्वासों और अभिवृत्तियों के प्रति रूपों में अंतर है। इन विभिन्नताओं के विवेचन में अस्पष्टता आ-ही जाती है; क्योंकि रूढ़ियों और अति-सरलीकृत विचारों में फँसना स्वाभाविक है, जिससे जटिल यथार्थ अझल हो जाता है। उदाहरणतः, यदि हमें यह कहना हो कि जर्मनी एक 'सत्तावादी समाज है तो हम इस प्रकार की रूढ़ि का ही वर्णन करेंगे। यद्यपि ऐसे जर्मन लोग भी हैं, जो सत्तावादी शासन पसंद करते हैं और जिनका विश्वास

है कि कुछ शक्तिशाली नेताओं को सामान्यतः यह अधिकार होता है कि दूसरों का मार्गदर्शन करें। किंतु, इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रत्येक जर्मन व्यक्ति यह अभिवृत्ति रखता है या अन्य राष्ट्रीय समूहों में यह अभिवृत्ति नहीं होती।

यह जिज्ञासा करना संभव है कि क्या जर्मन लोग (या किसी अन्य समाज के सदस्य) अपने विश्वासों में अपेक्षाकृत समान हैं तथा किसी अन्य समाज के व्यक्तियों से औसतन भिन्न हैं? इस सांख्यिकीय अर्थ में हम समूहगत विभिन्नताओं को वैज्ञानिक ढंग से स्पष्ट कर सकते हैं और हम कह सकते हैं कि किसी निश्चित विशेषता की दृष्टि से एक समाज दूसरे से भिन्न है; क्योंकि भिन्न समाजों की विभिन्नताओं में एक ही समाज की आंतर विभिन्नताओं की अपेक्षा अधिक अंतर रहता है।

दुर्भाग्य से, राष्ट्रों और समाजों के मध्य इन विभिन्नताओं से संबंधित कुछ शोधकार्य इस सांख्यिकीय आधार पर ही आधृत होता है। इनमें से अधिकांश राष्ट्रीय समूह के अपेक्षाकृत कुछ सदस्यों के प्रमाणहीन यादृच्छिक प्रेक्षण होते हैं, जो अपने समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अतिरिक्त, लेखक ने साधारणतः अपने निष्कर्षों को जिन कुछ व्यक्तियों का अध्ययन किया है, उन्हीं तक सीमित नहीं रखते, वरन् संपूर्ण समाज पर बिना विश्लेषण किए उनका सामान्यीकरण करते हैं। इसे अनियंत्रित और अव्यवस्थित प्रणाली की न्यूनताओं को निम्नलिखित कल्पित, किंतु विशिष्ट उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है :

> "मान लीजिए कि एक प्रेक्षक, जिसकी प्रिय धारणा है कि अमरीका के लोग अति उग्र स्वभाव के होते हैं, आपके स्कूल की दो या तीन कक्षाओं में जाता है। उसे यह देखने का अवसर भी मिलता है कि विद्यार्थी अपने अध्यापक के विचारों का खंडन करते हैं। वह अनुभव करता है कि उसकी धारणा पुष्ट हो गई, वह अपने घर लौटता है और एक निबंध लिखता है। उस निबंध में वह इस निष्कर्ष को प्रतिपादित करता है कि अमरीका के लोग सामान्यतः अपने माता-पिता के प्रति अति उग्र होते हैं; क्योंकि उसकी एक या दो वर्ष की अवस्था में उनके माता-पिता ने कठोरता से उन्हें टायलेट प्रशिक्षण ( Toilet training ) दिया था। इस उग्रता को वह सब अधिकारी व्यक्तियों के प्रति सामान्यीकृत करता है और इस प्रकार अमरीकावासी जिसे अपने से अधिक सत्ताधारी समझता है उसका विरोध, आलोचना और अपमान करता है।"

अब हम देखें कि इस कल्पित प्रेक्षक ने क्या किया।

(१) उसने कुछ उदाहरणों की व्याख्या (उग्र के रूप में) केवल अपनी सैद्धांतिक धारणाओं के अनुसार की, बिना यह अनुभव किए कि अन्य व्याख्याएँ भी संभवत: हो सकती हैं (२) उसने जिस व्यवहार को देखा, उसे हमारे समाज के विशिष्ट व्यवहार के रूप में प्रतिपादित किया, बिना यह निरीक्षण किए कि वह व्यवहार हमारे देश में व्यापक या सामान्य है अथवा नहीं (३) उसने बिना किसी वैज्ञानिक प्रमाण के यह अनुमान किया कि इस व्यवहार-प्रतिरूप की जड़ें बाल्यकालीन अनुभवों ( टायलेट-प्रशिक्षण ) में है (४) पुन: बिना किसी प्रमाण के उसने स्वीकार कर लिया कि सामान्यत: ये बाल्यकालीन अनुभव अधिकांश अमरीकन लोगों के होते हैं।

अशुद्धियों की इस माला का यह अभिप्राय नहीं है कि राष्ट्रीय और जातीय विभिन्नताओं का वैज्ञानिक अध्ययन असंभव है। ऐसे शोधकार्य की कठिनाइयों को स्पष्ट किया गया है, तो इस प्रकार की तुलना करने में जिस सतर्कता की अपेक्षा है, उसका निर्देशन भी किया गया है। वैज्ञानिक अनुसंधान संभव हो सकता है, किंतु वह व्ययसाध्य है तथा उसमें बहुत सावधानी की भी आवश्यकता रहती है। एक प्रयोग (मैकग्रानाहन, १९४६ ) द्वितीय विश्वयुद्ध के तत्काल बाद किया गया था, व्यवस्थित विधि को अधिक स्पष्टता से प्रदर्शित करता है, यद्यपि इसके परिणामों की व्याख्या भी सतर्कता से करनी होगी :

> "१४ से १८ वर्ष की आयु के बैडहैंबर्ग नगर के १९१ जर्मन नवयुवकों से समालाप किया गया और उनके उत्तरों की तुलना अमरीका के समान-रूपा समझे जाने वाले नगर ओक पार्क, इलीनायज, के नवयुवकों के उत्तरों से की गई। दोनों समूहों में सत्तावादी विश्वासों का अंतर बार-बार स्पष्ट हुआ। बैडहैंबर्ग से अधिकांश नवयुवकों ने अनुभव किया कि जो लोग 'अनुचित रूप से देश के शासन की आलोचना करते हैं, उन्हें जेल में डाल देना चाहिए ( जर्मन युवकों में ३६ प्रतिशत ने और ओक पार्क के २१ प्रतिशत युवकों ने यह विचारा), अनेक युवकों ने यह भी अनुभव किया कि समाचारपत्रों को, जो वे चाहते हैं उसे प्रकाशित नहीं करना चाहिए, वरन् जिसे वे 'जन समूह के लिए हितकर' समझते हैं, उसे प्रकाशित करना चाहिए (जर्मन ४३ प्रतिशत, अमेरिकन १७ प्रतिशत)।"

इन दो राष्ट्रीय समूहों की ये एवं अन्य विभिन्नताएँ इस सिद्धांत का समर्थन करती हैं कि अमेरिकन लोगों की अपेक्षा जर्मन लोगों में सत्तावादी सामाजिक संगठन की अधिक प्रवृत्ति है। इस प्रयोग के परिणाम केवल स्वयं इस सिद्धांत की पुष्टि नहीं करते। हम यह नहीं जानते कि जिन व्यक्तियों को इस प्रयोग में चुना गया, वे सामान्य जर्मन और सामान्य अमरीकन लोगों का अथवा वहाँ के नवयुवकों का प्रति-

निधित्व किस सीमा तक करते हैं। यह भी संभव है कि ये विभिन्नताएँ आज प्राप्त न की जा सकें। यह प्रयोग कालविशेष की दोनों जातियों के व्यक्तियों की औसत विभिन्नताओं को प्रदर्शित करता है, किंतु इससे यह भी प्रकट है कि प्रत्येक समूह में भी मतभेद था। सब जर्मन नवयुवक, जिनसे साक्षात्कार किया गया था, सत्तावादी नहीं थे, यद्यपि अनेकों की प्रवृत्ति थी, साथ ही अमरीकन नवयुवकों में इस प्रवृत्ति का पूर्णतः अभाव नहीं था।

यह स्वीकार कर लेने पर भी कि अभिवृत्तियों और विश्वासों में राष्ट्रीय या सांस्कृतिक सहयोग भी रहता है, हमें इन विभिन्नताओं के मूल को खोज निकालने में महत्त्वपूर्ण समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पिछले अध्याय में आदिम समाजों की सांस्कृतिक विभिन्नताओं की तुलना अध्ययन की इस दिशा का प्रारंभ है।

अभिवृत्तियों पर सांस्कृतिक प्रभाव—अभिवृत्तियों पर संस्कृति के प्रभाव का सही अनुमान करने की दूसरी विधि है—अभिवृत्तियों को समाज के ही मध्य वर्त्तमान विभिन्नताओं से सहसंबंधित करना। यदि कोइ विशेष अभिवृत्ति एक सांस्कृतिक वर्ग में दूसरे वर्ग की अपेक्षा अधिक सामान्य रूप से जनसाधारण द्वारा ग्रहण की जाती है, तो यह अनुमान किया जा सकता है कि संस्कृति अभिवृत्ति को प्रभावित करती है। सोशल साइंस रिसर्च काउंसिल (१९४७) द्वारा कुछ वर्ष पूर्व किए गए प्रयोग में इस प्रकार के सहसंबंध का उदाहरण मिल सकता है। यह प्रयोग सैनिक साम्राज्यवाद से संबंधित था। लगभग एक सहस्र व्यक्तियों से यह प्रश्न किया गया, 'कुछ व्यक्तियों का कहना है कि हमें अपनी सेना और नौसेना का उपयोग अन्य देशों पर उनसे अपने आदेश मनवाने के लिए करना चाहिए। आपका इस संबंध में क्या विचार है?' जैसा कि सारणी १७.२ में देखा जा सकता है, सामान्यतः व्यक्तियों ने इस विचार का अनुमोदन नहीं किया। किंतु, यह महत्त्वपूर्ण है कि कालेज के उच्च शिक्षा प्राप्त एवं उच्च आर्थिक स्थिति वाले व्यक्तियों ने कम शिक्षा और कम आय वाले व्यक्तियों की अपेक्षा इसका अधिक खंडन किया। प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक धर्मावलंबियों में इस विचार के संबंध में कोई विशेष अंतर नहीं पाया गया। ऐसे प्रयोगों से निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि शैक्षणिक तथा सामाजिक-आर्थिक प्रभाव सेनाओं के प्रयोग से संबंधित अभिवृत्ति को निर्धारित करने में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

पिछले कुछ वर्षों में बहुत बड़ी संख्या में. अभिवृत्तियों और संस्कृति को सहसंबंधित करते हुए, प्रयोग किए गए हैं (मर्फी एट० एल०, १९३७)। जिन समूहों से प्रश्न किया गया था, उनमें से प्रायः प्रत्येक जनसाधारण.मतगणना का जब शिक्षा-स्तर, आय-स्तर और धार्मिक पृष्ठभूमि आदि के आधार पर निरीक्षण किया गया, इस प्रकार के संबंध की सूचनाएँ प्राप्त हुईं। कालेजों में इस प्रकार के अनेक प्रयोगात्मक

अध्ययन किए गए हैं। कुछ प्रश्नों पर जैसे संतति-निग्रह, युद्ध और राजनीतिक प्रश्नों पर धार्मिक प्रभाव महत्त्वपूर्ण प्रमाणित होते हैं: कैथोलिक प्रायः यहूदियों की अपेक्षा अधिक रूढ़िवादी होते हैं और जिन्हें धार्मिक शिक्षा प्राप्त हुई है, वे उन लोगों की अपेक्षा अधिक रूढ़िवादी होते हैं, जिन्हें धार्मिक प्रशिक्षण नहीं मिला।

सारणी १७·२

| उत्तर देने वाले | सामान्य अनुमोदन, प्रतिशत | सामान्य अननुमोदन, प्रतिशत | कोई उत्तर नहीं प्रतिशत | उत्तर देने वालों की संख्या |
|---|---|---|---|---|
| शिक्षा : | | | | |
| ग्रेड स्कूल | १९ | ५७ | २४ | ५०० |
| हाई स्कूल | १३ | ७७ | १० | ४५५ |
| कालेज | ८ | ८३ | ९ | २१३ |
| आय : | | | | |
| २००० से कम डालर | १९ | ५८ | २३ | ४४० |
| २००० से ३९९९ डालर | १६ | ७३ | ११ | ४७८ |
| ४००० और उससे अधिक डालर | ८ | ८६ | ६ | २१६ |
| धर्म : | | | | |
| प्रोटेस्टेंट | १४ | ७० | १६ | ८५५ |
| कैथोलिक | १८ | ६८ | १४ | २४५ |

**सारणी १७·२ सैनिक साम्राज्यवाद के प्रति अभिवृत्तियों का शिक्षा, आय और धर्म से संबंध। व्यक्तियों से पूछा गया : 'कुछ व्यक्तियों के अनुसार हमें अपनी सेना और नौसेना का उपयोग अन्य देशों पर अपने आदेश को मनवाने के लिए करना चाहिए। आपका इस संबंध में क्या विचार है?' (सोशल साइंस रिसर्च काउंसिल, १९४७)।**

प्रायः सब विश्वासों और अभिवृत्तियों में सामाजिक-आर्थिक अवस्था महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती है। उच्च सामाजिक-आर्थिक वर्ग युद्ध और सैनिक उपयोग के संबंध

में अधिक 'उदार' प्रमाणित हुए हैं, जैसा कि उक्त प्रयोग में प्रदर्शित है, किंतु वे राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोण में अधिक अनुदार या रूढ़िवादी हैं। संभवतः इसका अभिप्राय यह है, जैसा कि अन्य विद्वानों ने कहा है, ( एलिनस्मिथ और एलिनस्मिथ, १९४८ ) कि 'उदारतवाद' के कम-से-कम दो प्रकार हैं, एक आर्थिक समस्याओं से संबंधित और दूसरा अनार्थिक प्रश्नों से संबद्ध। मध्य और उच्च सामाजिक वर्ग राजनीतिक-आर्थिक अभिवृत्तियों में निम्न वर्गों की अपेक्षा अधिक अनुदार हैं, किंतु अन्य विश्वासों में जैसे अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में, वे कम अनुदार हो सकते हैं। अभिवृत्तियों और विश्वासों पर सामाजिक-वर्ग के प्रभावों के अन्य उदाहरणों का उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

किंतु, हमें तुरंत यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि व्यक्ति केवल अपने वर्ग या समाज की विशेषताओं से ही अभिवृत्तियाँ ग्रहण करता है; क्योंकि यह सत्य नहीं है। हमें स्मरण रखना चाहिए कि ये सहसंबंध कभी-कभी ही बहुत ऊँचे होते हैं। अन्यथा वे प्रायः केवल साधारण सांख्यिकीय प्रवृत्तियाँ ही निर्देशित करते हैं। इस प्रकार के अपूर्ण सहसंबंध की ही संभावना की जा सकती है; क्योंकि व्यक्ति असंख्य सांस्कृतिक प्रभावों और अनेक विभिन्न अभिवृत्तियों तथा विश्वासों से प्रभावित होता है। यद्यपि एक व्यक्ति को एक विशेष धर्म में प्रशिक्षण प्राप्त हुआ हो, वह साधारणतः अन्य धार्मिक पृष्ठभूमियों के व्यक्तियों से मिलता है। यद्यपि वह एक किसी विशेष सामाजिक-आर्थिक स्तर का व्यक्ति है, किंतु उसका कुछ संबंध प्राय अन्य सामाजिक-आर्थिक वर्गों से भी रहता है। इस भाँति एवं अन्य रूपों में भी उसकी संस्कृति किसी भी तरह मात्र सजातीय नहीं रहती। यदि यह ऐसी रहती, तो भी एक ही सांस्कृतिक समूह के सदस्यों में भी पर्याप्त विभिन्नताएँ रहती हैं, जो उसके समक्ष अभिवृत्तियों और विश्वासों की विविधता प्रस्तुत करती हैं।

## पारिवारिक प्रभाव :

सांस्कृतिक शक्तियों के जमघट में जो व्यक्तियों पर निरंतर प्रभाव डालती रहती हैं, कुछ ऐसी भी हैं, जो विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण होती हैं; क्योंकि वे व्यक्ति और उसकी संस्कृति में मध्यस्थता करती हैं। ये उसके माता-पिता और निकट संबंधियों के प्रभाव हैं। एक बालक के माता-पिता उसकी संस्कृति की उपज हैं, उनकी अभिवृत्तियाँ और विश्वास संस्कृति द्वारा प्रभावित हुए हैं और बराबर प्रभावित हो रहे हैं; क्योंकि उनके सामाजिक संबंध, उनका ज्ञान, उनके मनोरंजन एवं संस्कृति के साथ उसके अन्य संबंध पर्याप्त विस्तृत हैं तथा बालक के संबंधों की अपेक्षा अधिक वैविध्यपूर्ण हैं, वे उसकी अपेक्षा संस्कृति से सीधे प्रभावित होते हैं। तथापि विचार

करने पर प्रकट है कि वे दिन के अनेक घंटे बालक के संपर्क में व्यतीत करते हैं, सब समय वे उसके व्यवहार को नियंत्रित करते हैं और उसमें विशेष अभिवृत्तियाँ एवं विश्वास उत्पन्न करने की चेष्टा करते हैं। अत:, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है कि **बालक की अभिवृत्तियाँ और विश्वास उसके माता-पिता की अभिवृत्तियों और विश्वासों से सहसंबंधित होंगे।** उदाहरणत: नॉर्थ-वेस्टर्न विश्वविद्यालय के २०० विद्यार्थियों पर किए गए एक प्रयोग में (हीरश्चवर्ग और गीलिलैंड, १९४२) उनकी न्यूडील शासन (New Deal Administration) आर्थिक अवनमन और ईश्वर के प्रति अभिवृत्तियों को उनके माता-पिता की अभिवृत्तियों से २९ से ·५८ की सीमा तक सहसंबंधित किया गया।

अमरीकन राजनीतिक व्यवहार के एक अध्येता ने राजनीतिक अभिवृत्तियों पर माता-पिता के प्रभाव पर अनेक प्रयोगों का परीक्षण किया (हीमैन, १९५९)। उसने अनुभव किया कि प्रत्येक प्रयोग में निर्विवाद रूप से माता-पिता के राजनीतिक विश्वासों से उनके बच्चों के विश्वास कुछ मात्रा में साम्य अवश्य रखते हैं और 'इस सिद्धांत के विपरीत कि राजनीतिक अभिवृत्तियाँ प्राय: माता-पिता से विरोधात्मक एवं विद्रोहात्मक रूप में विकसित होती हैं' प्रचुर प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त यह शोध प्रदर्शित करता है कि माता-पिता और बच्चों में राजनीतिक विश्वासों की सादृश्यता की अपेक्षा राजनीतिक-पार्टी में रुचि की सादृश्यता अधिक होती है। लेखक के अनुसार राजनीतिक दृष्टिकोण से एक व्यक्ति अपनी राजनीतिक पार्टी में प्राय: उसी प्रकार जन्म लेता है, जिस प्रकार वह अपने धार्मिक-संस्थान की सदस्यता में। वह अपने परिवार की राजनीतिक पार्टी को उसी प्रकार ग्रहण करता है, जिस प्रकार उसके धर्म को।

अभिवृत्तियों की सादृश्यता का एक प्रमुख कारण यह है कि बच्चे उसी सामाजिक-आर्थिक स्तर में रहेंगे, जिसमें उनके माता-पिता हैं। यदि किसी व्यक्ति को अपने माता-पिता के स्तर से भिन्न सामाजिक वर्ग में प्रवेश करना हो, तो वह अपनी पार्टी-रुचि को भी परिवर्तित कर सकता है।

इस तथ्य को कालेज-स्नातकों का सर्वेक्षण ( हीमैन, १९५९ ) स्पष्ट करता है, जिसमें राजनीतिक अभिस्थापन के परिवर्तनों को सामाजिक गतिशीलता से संबंधित किया गया है। इन स्नातकों में जो लोकतंत्री परिवारों (अर्थात् अपेक्षाकृत निम्न आय) के थे, जो स्नातक स्वयं लोकतंत्री थे, उनका समानुपात उनकी आय की तीव्रता की वृद्धि के साथ तीव्रता से कम होता गया। परिवर्तन का यह प्रतिरूप गणतंत्री परिवारों से आने वाले स्नातकों में प्रकट नहीं हुआ और उनकी आय उनके माता-पिता की

आय से कम थी। इन व्यक्तियों में सामाजिक स्तर की न्यूनता ने गणतंत्री पार्टी के प्रति उनकी रुचि को परिवर्तित नहीं किया।

यह विश्वास करने का भी कारण है कि माता-पिता एवं सामाजिक वर्ग दोनों राजनीतिक अभिवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। उदाहरणार्थ, १९५२ में राष्ट्रपति के चुनाव के लिए की गई गणना में अनुभव हुआ कि वह व्यक्ति उन दो मुख्य पार्टियों की ओर से निरपेक्ष था, जिनकी ओर से उसके माता-पिता भी उदासीन थे।

पारिवारिक प्रभाव हमारी राजनीतिक अभिवृत्तियों की अपेक्षा हमें अधिक प्रभावित करते हैं। अन्य बातों के साथ वे अन्य जातीय समूहों एवं धार्मिक समूहों के प्रति हमारी अभिवृत्तियों को भी निर्धारित करते हैं :

ग्रामर स्कूल के गोरे बच्चों से शृंखलाबद्ध समालापों में नीग्रो लोगों के संबंध में उनकी अभिवृत्तियों का पता लगाया गया। एक शोधकर्त्ता को इस प्रकार के उत्तर मिले (होरोविट्ज से उद्धृत, १९३६) —

"प्रथम ग्रेड की छात्रा :—माँ कहती है कि मुझे काले बच्चों के साथ नहीं खेलना चाहिए, उनसे दूर रहना चाहिए। माँ कहती है, वह मुझे उनके साथ खेलने के लिए मना कर चुकी है।

द्वितीय ग्रेड की छात्रा : —काले बच्चे ! माँ नहीं चाहती कि मैं काले बच्चों के साथ खेलूँ।··मैं कभी-कभी काले बच्चों के साथ खेलती हूँ और माँ मुझे मारती है।

द्वितीय ग्रेड का छात्र :—काले बच्चे, माता और पिता मुझे बताते हैं। वे मुझसे कहते हैं कि काले व्यक्तियों के साथ या काले लोगों की वस्तुओं के साथ मैं न खेलूँ।

तृतीय ग्रेड की छात्रा :—माँ ने मुणे उनसे खेलने के लिए मना किया; क्योंकि कभी-कभी वें रुग्ण होते हैं और उनमें रोग की कीटाणु होते हैं और उनकी छूत तुम्हें लग जाती है।"

### साथियों का प्रभाव :

जैसे-जैसे व्यक्ति की आयु बढ़ती है, वह अपने परिवार के परिवेश के बाहर अधिक-से-अधिक मिलता है और धीरे-धीरे अपनी आवश्यकताओं की तृप्ति के लिए वह अपने माता के आधार से स्वतंत्र होने लगता है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह सामान्य रूप से सब व्यक्तियों से मुक्त है, वरन् वह अपने प्रयत्नों पर निर्भर करने लगता है और परिवार के लोग जिस तृप्ति में सहायक होते थे, अब उसके लिए वह परिवार से बाहर प्रयत्न करता है। वह अपने साथियों,

मित्रों और परिचितों पर मैत्री एवं मनोरंजन के लिए निर्भर करता है। वह उनसे भावात्मक और सामाजिक समर्थन की भी अपेक्षा करता है, अपनी योजनाओं के असफल हो जाने पर उनसे सांत्वना चाहता है कि उसके व्यवहार में त्रुटि नहीं थी तथा अपने दृष्टिकोण की उपयुक्तता के समर्थन में उनके अनुमोदन की कामना करता है। इस प्रकार ये मित्र और परिचित उसकी अभिवृत्तियों और विश्वासों पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालने वाले बन जाते हैं।

इस प्रभाव के स्पष्टीकरण के लिए पिछले अध्याय में दो मुख्य कारण बताए गए थे। व्यक्ति अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करके भी अपने साथियों के मतानुसार कार्य करता है; क्योंकि (१) वह विश्वास करता है कि उनके दृष्टिकोण और कार्य संभवतः ठीक हैं और अथवा (२) उसे भय रहता है कि उसका व्यतिक्रम अननुमोदन तथा तिरस्कार उत्पन्न कर देगा। किसी कार्य को करने का कारण जो भी हो, निष्कर्ष यह है कि व्यक्ति के दृष्टिकोणों को, जिन्हें वह प्रतिष्ठित व्यक्ति समझता है, वे लोग एवं उसका अपना व्यवहार उसके माता-पिता की अपेक्षा अधिक प्रभावित करते हैं, विशेषतः जब उसका संपर्क प्रतिष्ठित व्यक्तियों से पर्याप्त रहता है।

सामाजिक मनोविज्ञान का एक प्रसिद्ध उदाहरण ( न्यूकाम्ब, १९४३ ) प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार एक युवा-व्यक्ति के राजनीतिक और आर्थिक विश्वासों को उसके साथी इस सीमा तक प्रभावित करते हैं कि पारिवारिक प्रभाव गौण हो जाते हैं। यह प्रयोग १९२५ के आसपास वरमोट (Vermont) में बेनिंगटन कालेज (**Bennington College**) की लड़कियों पर किया गया था।

> "अधिकांश लड़कियाँ कालेज में प्रवेश करते समय सामाजिक-आर्थिक उच्च वर्ग या मध्य वर्ग से आई थीं और उनके राजनीतिक एवं आर्थिक विचार उनके परिवारों के रूढ़िगत विचार ही थे। जिस कालेज में उन्होंने प्रवेश लिया, वह अत्यधिक आत्मनिष्ठ था और राजनीतिक दृष्टि से 'न्यू डील ( उदारवाद ) का तीव्र समर्थक था। इस पर्यावरण में आने वाली 'अनुदारवाद' में विश्वास करने वाली नवीन छात्राओं का क्या हुआ? अभिवृत्ति-सर्वेक्षण ने प्रमाणित किया कि जो लड़कियाँ जितने अधिक दीर्घकाल तक कालेज में रहीं, वे प्रायः उतनी ही अधिक उदार हो गईं। अतः, उच्च कक्षा और निम्न कक्षा की छात्राओं के रूप में वे उस समय की अपेक्षा अधिक उदार हो गईं, जब कि उनका कालेज में प्रथम और द्वितीय वर्ष था।
>
> लड़कियों ने किस मात्रा तक अपनी सहपाठिनियों की अभिवृत्तियों को अपनाया, उसमें अंतर था। वे लड़कियाँ, जो अपनी मित्रों द्वारा कालेज के आदर्शों के निकटतम समझी जाती थीं, उनमें प्रो-न्यू डील विश्वास सर्वा-

धिक विकसित थे। वे लड़कियाँ, जो अपनी मित्रमंडली में व्यापक उदारवाद के बावजूद अनुदारवादी रहीं, वे कालेज के कार्यों में पूर्णतः भाग लेने में अयोग्य रहीं या उनकी इच्छा उनमें भाग लेने की नहीं रही। प्रायः वे सामाजिक दृष्टि से दूर रहीं, इसका कारण चाहे उनकी अरक्षित भावना हो, उनमें सामाजिक कौशल का अभाव हो अथवा कालेज में प्राप्त व्यवहार से हताशा हो। कुछ लड़कियाँ अपनी दूसरे समूहों जैसे परिवार, से आसक्ति के कारण कालेज-जीवन को पूर्णतः स्वीकार रहीं कर सकीं। किसी कारण से भी, जो लड़कियाँ बेनिंग्टन कालेज के प्रचलित विश्वासों को ग्रहण नहीं कर सकीं, वे अपनी मित्रों के कार्यों में भी प्रायः अत्यधिक कम भाग लेती थीं।''

## वयस्क व्यक्तियों की अभिवृत्तियाँ और विश्वास :

अब तक हम बालक और किशोर की अभिवृत्तियों के विकास पर होने वाले तीन प्रकार के प्रभावों का वर्णन कर चुके हैं। ये थे—संस्कृति, परिवार और साथी-समूह; और ये व्यक्ति के जीवन में बराबर महत्त्व रखते हैं। वयस्क अवस्था में कुछ और कारकों का महत्त्व भी बढ़ जाता है, जो व्यक्ति की अभिवृत्तियों को प्रभावित करते हैं और स्थिर रखते हैं : ( १ ) उसका व्यक्तित्व, ( २ ) सूचनाएँ जिन्हें वह प्राप्त करता है, ( ३ ) जिन अधिकारियों के प्रभाव में वह है, उनके कथन और उनकी अभिवृत्तियाँ तथा ( ४ ) अनौपचारिक लघु-समूह, जो मुख्य-समह कहलाता है, जिसका वह सदस्य है। इस अनुभाग में इन कारकों का विवेचन किया जाएगा।

### व्यक्तित्व :

यह कहने का, कि संस्कृति अभिवृत्तियों और विश्वासों को प्रभावित करती है, यह अर्थ नहीं है कि संस्कृति केवल उन्हें किसी जड़ और क्रियाहीन व्यक्ति को देती या पारेषित करती है। अभिवृत्तियाँ विकसित हुई हैं या नहीं, यह प्रायः व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। कुछ व्यक्ति किसी भी समय अनेक अभिवृत्तियों और विश्वासों के प्रति अपेक्षाकृत अप्रभावित रहते हैं, किंतु वे कुछ अन्य के प्रति तीव्र ग्रहण-क्षम रहते हैं। अतः, संस्कृति के प्रभाव में रहने वाले व्यक्ति के व्यक्तित्व पर यह अत्यधिक निर्भर करता है। इस तथ्य को एक ओर व्यक्तित्व तथा दूसरी ओर अभिवृत्तियों और विश्वासों के मध्य संबंध के अनेक प्रयोगों द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

### व्यक्तित्व-विशेषक :

व्यक्तित्व के अध्याय से आप स्मरण करेंगे कि विशेषकों का मापन उन व्यक्तियों द्वारा संभव हो सकता है, जो व्यक्ति को भली प्रकार से जानते हैं अथवा उन

परीक्षणों द्वारा हो सकता है, जो इसी प्रयोजन के लिए निर्धारित किए गए हैं। एक परीक्षण व्यक्ति की सापेक्ष अंतर्मुखता या वाह्य-मुखता परिमापित करता है, दूसरा उसकी प्रभुत्व-भावना या पराभव-भावना को और अन्य परीक्षण अन्य लक्षणों को परिमापित करते हैं। यदि व्यक्तियों के किसी समूह को ये परीक्षाएँ दी जाएँ और साथ ही उनकी विविध विषयों से संबंधित अभिवृत्तियों को भी निर्धारित किया जाए, तो अभिवृत्तियों को व्यक्तित्व विशेषकों से सहसंबंधित से करना संभव है।

एक प्रयोग में (डेक्सट्र, १९३९) अनेक राजनीतिक और सामाजिक विषयों से संबंधित अभिवृत्तियों के आधार पर विद्यार्थियों का वर्गीकरण 'आमूल परिवर्तन-वादी', 'रूढ़िवादी' और अधिक साधारण समूहों में किया गया। इन अभिवृत्तियों को व्यक्तित्व-लक्षणों से संबंधित करते हुए शोधकर्त्ता ने पाया कि वे छात्राएँ जो अपनी अभिवृत्तियों और विश्वासों में आमूल परिवर्तनवादी थीं, अपने समूह की अन्य छात्राओं की अपेक्षा अधिक अंतर्मुखी और आत्मनिर्भर प्रधान थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के व्यक्तित्व-लक्षण व्यक्ति को कम रूढ़िवादी विश्वासों और अविृत्तियों को सहजरूप से अपनाने की योग्यता देते हैं।

दुर्भाग्य से ऐसे सामान्य नियम बहुत कम हैं, जिनका प्रयोग व्यक्तित्व और अभिवृत्तियों पर किया जा सकता है। एक सांस्कृतिक समूह के लिए जो 'आमूल परि-वर्तनवादी' अभिवृत्तियाँ होंगी, वे दूसरे के लिए रूढ़िवादी हो सकती हैं। अतएव, वे व्यक्तित्व-विशेषताएँ जो एक समूह में एक प्रकार की अभिवृत्तियों से संबंधित रहती हैं, दूसरे समूह में दूसरे प्रकार की अभिवृत्तियों से संबंधित हो सकती हैं। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि व्यक्ति जिन विशेष अभिवृत्तियों और विश्वासों को पुनः-पुनः ग्रहण करता है, वे उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं से संबंधित हैं।

पाठक ध्यान दें कि यह अंतिम वाक्य यह स्वीकार **नहीं** करता कि व्यक्ति की व्यक्तित्व-विशेषताएँ **सदैव** उसके विश्वासों और उसकी अभिवृत्तियों की प्रकृति को नियंत्रित करती हैं। अनेक स्थितियों में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व-लक्षणों से निरपेक्ष अन्य व्यक्तियों की अभिवृत्तियों और विश्वासों को अपना लेता है। जैसा कि पिछले अध्याय में निर्देशित किया जा चुका है कि इस स्थिति की संभावना विशेषतः तब होती है, यदि वह उस वस्तु या विषय के संबंध में कम जानकारी रखता है, यदि अन्य लोग स्वीकार करते हों और यदि उनकी उपेक्षा न की गई हो।

व्यक्तित्व-विशेषक उस स्थिति में अभिवृत्तियों से सर्वाधिक संबंधित प्रतीत होते हैं, जब व्यक्ति के चतुर्दिक अन्य व्यक्तियों का समूह विवेच्य विषय के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण अपनाने के लिए स्वतंत्र हो। यदि किसी व्यक्ति से संबंधित लोग

इस बात पर दबाव न डालें कि विवेच्य स्थिति पर कार्य करने का केवल एक ही ढंग समाज द्वारा उपयुक्त समझा जाएगा, तो उसके व्यक्तित्व-लक्षणों द्वारा उसकी अभिवृत्तियों के निर्धारित होने की संभावना अधिक रहती है। दूसरी ओर जब सामाजिक दबाव अधिक रहता है, तब जिन अभिवृत्तियों को वह अभिव्यक्त करता है, वे उसकी अतिबद्ध होने की कामना में बाधक हो सकती हैं। ये उसके समूह-संबंधी आकर्षण के फलस्वरूप विकसित होती हैं।

जातीय-केंद्रस्थ व्यक्तित्व (Ethnocentric Personality) :

संयुक्त राज्य अमरीका के अनेक भाग ऐसे हैं, जहाँ विशेष लघु समूहों, जैसे नीग्रो और यहूदियों के सांस्कृतिक आदर्शों को निम्न और विषम नहीं समझा जाता। तथापि इन भागों में सामाजिक पूर्वग्रहग्रसित व्यक्ति भी रहते हैं। इसकी संभावना नहीं है कि इन व्यक्तियों में अल्पसंख्यक समूहों के प्रति घृणा की भावना केवल उनसे प्राप्त अप्रिय व्यवहारों के कारण विकसित हुई है; क्योंकि वे केवल किसी विशेष समूह के प्रति ही नहीं, वरन् प्रत्येक लघुसंख्यक समूह के प्रति तीव्र पूर्वग्रह से ग्रसित हैं तथा पूर्वग्रह का प्रतिरूप इतना सामान्य और देश भर में इतना व्यापक है कि हम उन्हें अल्पसंख्यक समूहों से प्रत्यक्षतः स्वीकार नहीं कर सकते। पूर्वग्रहग्रसित व्यक्तियों का, उन सब समूहों से, जिन्हें वे घृणा करते हैं, मिलना संभव नहीं है। उनकी प्रतिकूल अभिवृत्ति को स्पष्ट करने वाला एक अधिक संतोषजनक कारण यह हो सकता है कि अपने व्यक्तित्व-लक्षणों के कारण वे भिन्न प्रवृत्ति के व्यक्तियों पर अविश्वास करते हैं तथा उनसे घृणा करते हैं।

इन व्यक्तित्व-लक्षणों की प्रकृति पर प्रसिद्ध विस्तृत प्रयोग (एडोनो एट० एल०, १९५०) द्वारा, जो समाज-वैज्ञानिकों के एक दल ने केलिफोर्निया विश्वविद्यालय में किया था, प्रचुर प्रकाश डाला गया है :

> "विविध प्रकार के व्यक्तियों पर किए गए अध्ययन और परीक्षण द्वारा शोधकर्त्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कुछ व्यक्तियों को सामान्यतः पूर्वग्रहग्रसित कहा जा सकता है; क्योंकि वे विभिन्न प्रकार के समूहों के प्रति विशद् रूप से अभिनत हैं। ये पूर्वग्रहग्रसित लोग अतिवादी ढंग से अपने समूह को महिमामंडित करने का प्रयत्न करते हैं (संयुक्त राज्य अमरीका भी इसमें सम्मिलित है)। साथ ही, जिन समूहों से उनका संबंध नहीं है, उनके प्रति वे विरोधी भाव रखते हैं। उन्हें **जातीय-केंद्रित** की संज्ञा दी गई है। अति जातीय-केंद्रित व्यक्तियों को अनुसंधान करने के लिए पृथक् किया गया।

अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षाएं उनको और कम पूर्वग्रहग्रसित व्यक्तियों को दी गईं, यह निर्धारित करना संभव था कि उनके व्यतित्व कम-जातीय-केंद्रित व्यक्तियों से किस रूप में भिन्न थे।"

इस शोध ने एवं परवर्त्ती प्रयोगों ने अति-जातीय-केंद्रित व्यक्ति का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है :—

(१) वह **सत्तावादी** है। संभवत: इसलिए कि वह विश्व को तथा उसके अधिकांश व्यक्तियों को भयप्रद एवं शत्रु के रूप में देखता है। वह किसी शक्तिशाली अधिकारी की शरण बिना किसी शर्त के संरक्षण की कामना से स्वीकार करता है, मानो वह सत्ताधारी व्यक्ति से शक्ति बटोरता है। इसी हेतु जातीय-केंद्रित व्यक्ति को प्राय: 'सत्तावादी व्यक्तित्व' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। ऐसे व्यक्ति के विश्वास इस प्रकार होने की संभावना रहती है (ऐडोर्नो एट० एल०, १९५०, आलपोर्ट और क्रेमूर १९४६) : 'संसार संकटमय है, जहाँ लोग मूलत: दुष्ट और भयानक हैं, 'तथा' हमारी अमरीकन जीवन-प्रणाली में पर्याप्त अनुशासन नहीं है।' 'सत्तावादी व्यक्ति चाहता है कि लोग वही करें जो उपयुक्त सत्ताधारी व्यक्ति उन्हें करने के लिए कहे। वह प्राय: निश्चित सामाजिक सोपानात्मक संगठन भी चाहता है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का निर्धारित स्थान रहता है और वह जानता है कि नेता कौन है और अनुकर्त्ता कौन है।

(२) वह **दृढ़ नीतिवादी** है। जातीय-केंद्रित व्यक्ति प्राय: संरक्षण की खोज दृढ़तापूर्वक नीति और औचित्य के प्रतिमानों में भी करता है। वह अनुभव करता है कि वह जब तक परंपरा का पालन करता है, वह सुरक्षित है और वह उस व्यवहार का परित्याग करता है, जिसे मध्यवर्ग के लोग सामान्यत: सामाजिक दृष्टि से अग्राह्य मानते हैं। वह उन व्यक्तियों की निंदा करता है, जो नीति-संहिता का अतिक्रमण करते हैं।

केलिफोर्निया के एक प्रयोग में अति-पूर्वग्रहग्रसित (जातीय-केंद्रित) और कम-पूर्वग्रहग्रसित महिलाओं से पूछा गया, 'आपको सर्वाधिक आकुल किस अनुभव ने किया ?' जातीय-केंद्रित महिलाओं ने प्राय: कहा कि सामाजिक नियमों और अधिनियमों का प्रकट रूप से अतिक्रमण करना। इसके विपरीत, कम-पूर्वग्रहग्रसित समूह ने कहा कि उनको सर्वाधिक व्याकुल करने वाले अनुभवों के अंतर्गत वे अनुभव हैं, जिनमें वे परस्पर संबंधों का निर्वाह करने में असफल रहीं, जैसे मित्र का प्रत्याशानुकूल व्यवहार में असमर्थ रहना।

(३) **वह दृढ़तापूर्वक समाज द्वारा अननुमोदित अपनी प्रवृत्तियों का दमन करता है और दूसरों पर उनका प्रक्षेपण करता है :** परंपरावादी एवं अनुमोदित व्यवहार के लिए आतुर यह व्यक्ति न केवल समाज द्वारा अननुमोदित प्रत्येक कार्य से दूर रहने का ही प्रयत्न करता है, वरन् वह इस विचार से भी विकल हो जाता है कि कहीं वैसा कार्य करने की इच्छा उसमें जागृत न हो जाए। यद्यपि कम पूर्व-ग्रहग्रसित लोग इसे सहज स्वीकार कर सकते हैं कि उनमें रति-कामनाएँ या आक्रामक इच्छाएँ हैं, पर अति पूर्वग्रही व्यक्ति अपने समक्ष एवं अन्य व्यक्तियों के समक्ष बार-बार अस्वीकार करेगा कि उसमें इस प्रकार के आवेग हैं। किंतु, इससे अधिक महत्त्व-पूर्ण यह तथ्य है कि ये अननुमोदित प्रवृत्तियाँ प्रायः अन्य व्यक्तियों के सिर मढ़ दी जाती हैं (प्रक्षेपण कर दी जाती हैं), विशेषतः अल्पसंख्यक समूहों पर। जैसा कि एक अति-पूर्वग्रही व्यक्ति अपने से कहता है, 'मुझमें ये यौन-कामनाएँ या आक्रामक-इच्छाएँ नहीं हैं, ये नीग्रो (या अन्य किसी अल्पसंख्यक समूह) लोगों में हैं।'

जातीय-केंद्रित व्यक्तियों में एक प्रवृत्ति प्रायः होती है और साथ ही जिसका वे अननुमोदन भी करते हैं, वह है माता-पिता के प्रति विरोध-भाव। कैलिफोर्निया के शोधकर्त्ताओं के अनुसार अति-पूर्वग्रहग्रसित व्यक्तियों के माता-पिता प्रायः कठोर और असंभव व्यवहार की अपेक्षा रखने वाले होते हैं। माता-पिता का कठोर व्यवहार उनमें विरोधी भाव उत्पन्न करता है, किंतु वे ऐसे भाव को अभिव्यक्त करने का साहस नहीं करते।

उक्त वर्णित पूर्वग्रहग्रसित महिलाओं के अध्ययन में मनोवैज्ञानिकों ने खोज की कि इन महिलाओं ने प्रकट रूप से अपने माता-पिता के प्रति श्रद्धा व्यक्त की, किंतु व्यक्तित्व-परीक्षणों ने उनके प्रच्छन्न विरोधी भावों को अभिव्यक्त किया। कम-पूर्वग्रहग्रसित महिलाओं से दूसरी ओर अधिक मुक्त रूप से अपने माता-पिता के प्रति अपने विद्वेष-भाव को अभिव्यक्त किया।

(४) **वह प्रायः व्यक्तियों को अति-सरलीकृत, काले-और-गोरे, वर्गों में विभाजित करता है :** अति-जातीय-केंद्रित व्यक्ति प्रायः व्यक्ति में सूक्ष्म अंतर नहीं करता। ऐसे कथनों से सहमत होने की उसकी संभावना है, 'केवल दो प्रकार के लोग हैं, १. दुर्बल और २. बलवान।' उसके मतानुसार लोग बहुत कम वर्गों में विभाजित किए जा सकते हैं। अतएव, अल्पसंख्यक समूहों के सदस्य उन्हें 'समान' प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त, ये वर्ग सरल और स्पष्ट हैं : व्यक्ति पूर्णतः दुष्ट हैं

अथवा पूर्णतः सज्जन हैं। अपने कम-पूर्वग्रही साथियों के समान उसके यह विश्वास करने की संभावना नहीं है कि सज्जनता और दुष्टता दोनों लक्षण एक ही व्यक्ति में साथ-साथ भी हो सकते हैं ( स्टेनर, १९५४ ) ।

**(५) उसमें प्रायः रूढ़िवादी राजनीतिक एवं आर्थिक अभिवृत्तियाँ होती हैं :** यह रूढ़िवादिता 'यथार्थ' रूढ़िवादिता प्रतीत नहीं होती, जैसी कि कुछ अट्ठारहवीं शती के दार्शनिकों द्वारा अथवा अनेक आधुनिक अबंध नीति के प्रचारकों द्वारा अभिव्यक्त की जाती है, वरन् राजनीति और आर्थिक लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए शक्ति के प्रयोग की तत्परता को यह छिपा देती है। अत्यधिक जातीय-केंद्रस्थ स्थितियों में अति-जातीय-केंद्रित व्यक्ति देशभक्ति-पूर्ण भाषण दे सकता है, किंतु अपने राजनीतिक लक्ष्यों की पूर्ति की चेष्टा में वह अ-लोकतंत्री आंदोलक का कार्य कर सकता है।

जातीय-केंद्रित सत्तावादी व्यक्ति के विवरण का संक्षेप में उपसंहार हम इस क्षेत्र में कार्य करने वाले मनोवैज्ञानिकों के एक समूह-निष्कर्ष के साथ कर सकते हैं (आलपोर्ट और क्रेमर, १९४६) :—

> "पूर्वाग्रही अनुक्रियाएँ वैयक्तिक जीवन के संपूर्ण प्रतिरूप से पृथक् नहीं की जा सकतीं। 'वह व्यक्ति जो संसार को एक जंगल के रूप में देखता है, जहाँ यात्री को दो में से एक पथ चुनना पड़ता है, या तो वह दूसरों का भोजन बने अथवा दूसरों को अपना भोजन बनाए।"........जो अपने दृष्टिकोण में सत्तावादी हैं, पर जीवन की दौड़ में पिछड़ने वालों के लिए जिसे बिलकुल सहानुभूति नहीं, जो अल्पसंख्यक समूहों को संरक्षण देने की कानूनी योजनाओं को अस्वीकार करता है, जो अपने पूर्वग्रहों के लिए लज्जित नहीं है..........ऐसा व्यक्ति अपने जीवन-दर्शन में पूर्वग्रहों को समाहित करता है।"

## सूचनाएँ :

हम निर्देशित कर चुके हैं कि व्यक्ति के विश्वास उन पर आधृत होते हैं, जिन्हें वह तथ्यपूर्ण समझता है। अतः, वह किस प्रकार विश्वासों और उनसे संबंधित अभिवृत्तियों को अर्जित करता है, यह समझने के लिए हमें इस पर विचार करना चाहिए कि वह अपने तथ्यों को किस प्रकार अर्जित करता है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि किसी भी व्यक्ति को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, उनसे संबंधित अपनी अभिवृत्तियों, दृष्टिकोणों एवं विश्वासों के लिए अपने ही अनुभवों से सामग्री प्राप्त नहीं होती। यह निर्णय लेने के

लिए कि वह गणतंत्रियों को मतदान दे अथवा लोकतंत्रियों को, उसने उम्मीदवार व्यक्ति को शायद ही कभी देखा है अथवा वह निश्चित रूप से जानता भी नहीं कि उसका व्यवहार कैसा रहा है अथवा किसी समस्या को उसने किस रूप में सुलझाया था। नीग्रो लोगों के लिए किसी धारणा को बनाने के लिए उसका नीग्रो लोगों से विशेष संपर्क नहीं था। सब प्रकार की स्थितियों में ऐसे अनेक तथ्यों का अभाव रहता है, जिस पर उसे बहुत बुद्धिमानी से निर्णय लेना चाहिए।

केवल सापेक्ष तथ्यों का ही अभाव नहीं रहता, वरन् जो तथ्य उपलब्ध भी होते हैं, वे भी प्रायः भ्रमोत्पादक होते हैं। एक व्यक्ति जो नीग्रो लोगों के संबंध में कोई धारणा बनाता है; उसने यह 'तथ्य' ग्रहण किया होगा कि नीग्रो को जब बुद्धि-परीक्षण दिए गए, उन्हें गोरे लोगों की अपेक्षा कम अंक प्राप्त हुए। अब उसे यह जानना होगा कि ऐसे नीग्रो लोगों को निम्न कोटि की शिक्षा स्कूलों में मिली थी और उनकी सामाजिक-आर्थिक अवस्था निम्न थी अथवा वे परीक्षाएँ देने के लिए बहुत कम अभिप्रेरित थे—ये सभी प्रसंगानुकूल तथ्य थे जो इस कथन को, कि उन्हें कम अंक प्राप्त हुए थे, पुष्ट करते। अनेक स्थितियों में अल्पज्ञान विपत्तिजनक होता है; क्योंकि यह ऐसे विश्वासों को उत्पन्न करता है, जो पूर्ण तथ्यों के ज्ञात होने पर असंगत प्रमाणित होते हैं। किंतु, लोग केवल कुछ ही तथ्यों के आधार पर नियमित रूप से धारणाएँ बनाते हैं। फलस्वरूप वे गलत विश्वासों तथा दृष्टिकोणों को एवं अप्रत्यक्षतः पूर्वाग्रही अभिवृत्तियों को अर्जित करते हैं।

### अधिकारी वर्ग :

हमारे विश्वासों के आधारभूत तथ्य जिनका हमें पूर्णज्ञान हो, अपेक्षाकृत बहुत कम होते हैं, हम वस्तुतः तथ्यों के स्थान पर अधिकारियों पर विश्वास करते हैं। यथार्थतः अनेक तथाकथित 'तथ्य' प्रत्यक्ष अनुभव के अर्थ में तथ्य नहीं होते। वे केवल तथ्यों के संबंध में अधिकारी-वर्ग के कथन होते हैं। अधिकारी-वर्ग पर हमारे विश्वास करने में कहीं कोई अंतर्भूत भूल है; क्योंकि उसके बिना हमारा कार्य नहीं चलता। हम विशेषज्ञों, अधिकारी व्यक्तियों या 'प्रत्यक्ष-साक्षी' पर विश्वास करने के लिए बाध्य होते हैं। ज्ञान की ऐसी विशेषज्ञता हमारी संश्लिष्ट सभ्यता के विकासार्थ अनिवार्य है।

अधिकारी-वर्ग पर इस विश्वास में कुछ त्रुटियाँ भी हैं। निश्चय ही, **सर्वाधिक सतर्क व्यक्ति के लिए भी सब समय तथ्यों की वस्तुगत सूचना देना संभव नहीं होता।** अधिकारियों की अभिवृत्तियाँ और विश्वास प्रायः उसके तथ्यों के प्रत्यक्षीकरण को एवं उनके संबंध में हमें सूचित करने के उसके ढंग को प्रभावित करते हैं। इसके अति-

रिक्त अधिकारी अन्य तथ्यों से अपरिचित हो सकते हैं और उस स्थिति में वे हमें उनकी सूचना नहीं दे सकते। किंतु, उनके बिना हम उचित दृष्टिकोण निर्धारित नहीं कर सकते। प्रायः अधिकारी व्यक्तियों तथ्यों के संबंध परस्पर मतभेद होता है और हमें दो द्वंद्वात्मक अधिकारियों में से एक को चुनना पड़ता है।

उचित दृष्टिकोण बनाने में हमारी कठिनाइयों में अधिकारियों की एक प्रवृत्ति और भी है, **वे अपनी निपुणता के क्षेत्र के बाहर भी सम्मान और उच्च स्तर प्राप्त करना चाहते हैं**। साधारण लोग प्रायः एक सफल उद्योगपति के शासन की व्यवस्था कर सकने वाला श्रेष्ठतम व्यक्ति समझने लगते हैं, वस्तुतः व्यवसाय और शासन को अपनी सफल कार्य-विधि के लिए भिन्न प्रकार के ज्ञान और योग्यता की आवश्यकता होती है। वह व्यक्ति जिसने भौतिक-विज्ञ के रूप में यश-अर्जन किया है, यदि धर्म और राजनीति पर भाषण देगा, तो भी लोग उसे महत्त्व देंगे। जब कि वह सामान्यतः इन विषयों पर उन लोगों से अधिक जानकारी नहीं रखता, जो विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हैं। **सब** प्रकार के अधिकारी लोग यह भूल करते हैं,— और यह भूल करना बहुत ही सरल है - फलस्वरूप लोग बिना गंभीर विचार किए उन व्यक्तियों के वक्तव्यों पर अपने विश्वासों को आधृत कर लेते हैं, जो उन विषयों के विशेषज्ञ नहीं होते।

उचित विश्वास और दृष्टिकोण-निर्माण में अन्य बाधा है, अधिकारियों की तथ्यों को जानबूझ कर विरूपित करने की प्रवृत्ति। यह वे इसलिए करते हैं कि हम उनकी बातों पर उस रूप में विश्वास करें जिस रूप में वे चाहते हैं। निर्माता अपनी-अपनी उत्पाद्य वस्तुओं के विषय में सब तथ्य पूर्णतः जानता है, किंतु उसके विज्ञापक हैं, जो हमारे समक्ष केवल कुछ तथ्यों को ही प्रस्तुत करते हैं, जिससे उस उत्पाद्य वस्तु के संबंध में हमारी अनुकूल धारणा निर्मित होती है। राजनीतिक नेता अपनी पार्टी के कुछ सदस्यों की भ्रष्टता से भली-भाँति परिचित होता है. किंतु वह केवल अपनी शासन व्यवस्था के 'अच्छे' तथ्यों को ही, हममें अनुकूल धारणा उत्पन्न करने के लिए व्यक्त करता है, जिससे कि वह अगली बार पुनः निर्वाचित हो सके। इस समाज में तथ्यों को जान-बूझ कर चुनने और विरूपित करने का अभ्यास प्रायः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भ्रामक, विश्वासों को प्रोत्साहित करने के साधन के रूप में किया जाता है, जिससे तथ्यों को एकत्रित करने वाले को लाभ होता है।

## मुख्य समूह :

समाजविज्ञ प्रायः **मुख्य समूहों** का प्रयोग उन लघु-समूहों के लिए करते हैं जिनसे हमारा बार-बार एवं औपचारिक संबंध होता है जैसे परिवार, मित्र-मंडली,

और सहकारी-वर्ग। वे इस अर्थ में प्रमुख हैं; क्योंकि हमारी अभिवृत्तियों और विश्वासों पर उनका महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहता है। प्रायः इन मुख्य समूहों के माध्यम से ही सांस्कृतिक-कारक और अधिकारी-वर्ग चतुर्दिक विश्व-संबंधी हमारे दृष्टिकोणों को प्रभावित करते हैं।

अमरीकन निर्वाचन-व्यवहार के अध्ययन ने व्यक्ति की राजनीतिक अभिवृत्तियों और क्रियाओं पर परिवार, मित्रमंडली और सहयोगियों के प्रभाव को अभिलिखित किया है, आंशिक रूप से इस प्रभाव का मूल कारण है कि अमरीकन निर्वाचक-मंडल का एक बड़ा भाग अपेक्षाकृत राजनीति और निर्वाचन-कार्यक्रम के प्रति उदासीन रहता है, यहाँ तक कि राष्ट्रपति के निर्वाचन के प्रति भी। वे बहुधा समाचारपत्र और निर्वाचन से संबंधित पत्रिकाओं से लेख उम्मीदवारों के परिचय पढ़ने का कष्ट भी नहीं करते, और न ही वे रेडियो तथा टेलिविजन से राजनीतिक भाषणों को सुनना चाहते हैं। फिर भी ये लोग निर्वाचन-कार्यक्रम की कुछ सूचनाएँ मित्रों एवं सहयोगियों से अनौपचारिक वार्तालाप द्वारा प्राप्त कर लेते हैं।

एरी काउंटी, ओहिओ ( Erie County. Ohio.) में, १९४० में, राष्ट्रपति के निर्वाचन पर किए गए राजनीतिक दृष्टिकोण के गहन सर्वेक्षण ने प्रमाणित किया कि समाज के प्रत्येक स्तर में कुछ व्यक्ति राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय एवं रुचि लेने वाले रहते हैं। ये लोग इस कार्यक्रम में उत्सुकता से भाग लेते हैं, वे मुख्य केंद्र से राजनीतिक समाचार प्राप्त करते हैं और उन्हें अपने मित्रों, पड़ोसियों और सहकर्मियों तक अनौपचारिक वार्तालाप द्वारा फैला देते हैं। ऐसे लोग अन्य व्यक्तियों के राजनीतिक विश्वासों को प्रभावित करने में इतने महत्त्वपूर्ण हैं, विशेषतः जब अन्य व्यक्ति इस ओर से उदासीन, तटस्थ अथवा अनिश्चित हों ( ये तीनों राजनीतिक विशेषताएँ प्रायः साथ रहती हैं), कि शोधकर्त्ता मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि वे 'दृष्टिकोण-निर्माता' का कार्य करते हैं।

ये अनौपचारिक मुख्य-समूह सूचना-संचरण माध्यम के अतिरिक्त भी महत्त्व रखते हैं। जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, ये अपने समूह के सदस्यों के दृष्टिकोणों को प्रभावित कर सकते हैं। स्वभावतः यह राजनीतिक अभिवृत्तियों तथा दृष्टिकोणों के लिए भी सत्य है। मतदान-विधि के अध्ययन (किट और ग्लेचेर, १९५०) का विवरण, जो एलमिरा, न्यूयार्क ( Elmira, New York ) में १९४८ के राष्ट्रीय चुनाव में किया गया था, नीचे दिया जा रहा है :—

> "चुनाव से पूर्व अगस्त माह में, एलमिरा के नागरिकों से अन्य बातों के साथ यह भी पूछा गया कि उनके निकटतम तीन मित्र किस प्रकार

मतदान करेंगे। अधिकांश व्यक्ति जो अपने मित्रों के दृष्टिकोणों को जान सके, उन्होंने कहा कि उनके मित्र उम्मीदवारों में से किसी एक को मतदान करने में सहमत हैं। जब उनका अपना दृष्टिकोण पूछा गया, उन्होंने भी उसी उम्मीदवार का समर्थन करना चाहा, जिन्हें उनके मित्रों ने पसंद किया था। अतएव, '९० प्रतिशत से अधिक तीन गणतंत्री मित्रों के साथ, प्रत्यर्थियों (उत्तर देने वाले) ने स्वयं भी गणतंत्री मतदान इच्छा प्रदर्शित की।' 'यह संख्या केवल ६८ प्रतिशत गणतंत्र समर्थित रह गई, जब लोगों ने कहा कि 'उनके तीन निकटतम मित्रों में से एक लोक-तंत्री है'। जिन व्यक्तियों के मित्रों ने लोकतंत्री उम्मीदवार का पक्ष लिया था, उनमें लोकतंत्र के समर्थन की ऐसी ही प्रवृत्ति पायी गई।

इसी कार्यक्रम में बाद में कुछ व्यक्तियों से यह जानने के लिए समालाप किया गया कि क्या उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ था? कुछ उदाहरणों में परिवर्तन हुआ था। ऐसे अधिकांश उदाहरणों में परिवर्तन की दिशा मित्रमंडली से सहमत होने की ओर थी। इस अध्ययन के परिणामों को सारणी १७·३ में दिया गया है।"

सारणी १७·३

| अगस्त माह में तीन निकटतम मित्रों का राजनैतिक झुकाव | अक्टूबर तक गणतंत्री की ओर परिवर्तन प्रतिशत | अक्टूबर तक लोकतंत्री की ओर परिवर्तन प्रतिशत |
|---|---|---|
| ग ग ग | ५६ | ४४ |
| ग ग लो<br>लो लो ग | ४९ | ५१ |
| लो लो लो | ३९ | ६१ |

सारणी-१७·३ एलमिरा, न्यूयार्क में, १९४८ के चुनाव में अगस्त से अक्टूबर तक होने वाले परिवर्तन।

ग - गणतंत्री

लो - लोकतंत्री

**अभिवृत्ति-परिवर्तन और प्रचार :**

अब हम अभिवृत्ति के परिवर्तनों एवं ये परिवर्तन शिक्षा एवं प्रचार द्वारा किस प्रकार होते हैं, पर विचार करेंगे। पहले हम उन कारकों का विवेचन करेंगे, जो

अभिवृत्तियों को परिवर्तनों के प्रतिरोध की क्षमता देते हैं—अभिवृत्तियों के स्व-परीक्षण के कारक। इसके उपरांत हम शिक्षा, प्रचार और विज्ञापन द्वारा अभिवृत्तियों के परिवर्तनों के आयोजित प्रयत्नों के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण का सर्वेक्षण कर सकते हैं।

## अभिवृत्तियों का परिरक्षण :

हम यह आशा कर सकते हैं कि व्यक्ति के व्यक्तित्व की परिपक्वता के साथ उसकी संस्कृति परिवर्तित हो सकती है तथा उसकी ज्ञानवृद्धि के साथ उसकी अभिवृत्तियाँ एवं उसके विश्वास भी परिवर्तित हो सकते हैं। वे परिवर्तित होते हैं। दूसरी ओर, ये परिवर्तन उस तीव्र गति से नहीं होते, जिसकी कि हम आशा करते हैं; क्योंकि उनमें परिवर्तन का प्रतिरोध करने की योग्यता होती है, साथ ही एक बार उनके अच्छी तरह निर्मित हो जाने पर वे अपना परिरक्षण चाहते हैं। अभिवृत्तियों के स्व-परिरक्षण के तीन प्रमुख कारण हैं (१) चयनात्मक अर्थनिर्णय, (२) उन सूचनाओं का परिहार, जो विश्वासों और अभिवृत्तियों को परिवर्तित कर सके तथा (३) अभिवृत्तियों के परिरक्षणार्थ सामाजिक दबाव।

## चयनात्मक अर्थनिर्णय :

अभिवृत्तियाँ और विश्वास परिरक्षित किए जाते हैं; क्योंकि वे नए अनुभवों के प्रत्यक्षीकरण को परिवर्तित कर देते हैं। वे ऐसे तथ्यों को महत्त्व देते हैं, जो प्रचलित अभिवृत्तियों और विश्वासों में संगति पा सकते हैं और उन तथ्यों को महत्त्वहीन मानते हैं, जो संगति नहीं पा सकते। यदि मैं सोचता हूँ कि नीग्रो लोग गंदे होते हैं और मैं किसी नीग्रो को सीधे कारखाने से उन्हीं कपड़ों में आते देखता हूँ, तो मैं तत्काल इस तथ्य पर ध्यान देता हूँ कि उसके कपड़े गंदे हैं। एक गोरे व्यक्ति की ओर, जो ठीक उसी स्थिति में है, बिलकुल ध्यान नहीं जाता अथवा ध्यान जाता भी है, तो इस रूप में कि दिन भर के बाद वह परिश्रम करके घर लौट रहा है। यदि कोई व्यक्ति सरकार के व्यय करने के ढंग का तीव्र विरोधी है और वह समाचारपत्र में शीर्षक देखता है, 'कांग्रेस ने सशस्त्र सेना के व्यय के लिए २० बिलियन डालर स्वीकार किए' उसका ध्यान २० बिलियन डालर की बड़ी राशि की ओर जाएगा, किंतु वह इस ओर ध्यान नहीं देता, या भूल जाता है कि यह व्यय उसके देश की सुरक्षा के लिए हो रहा है। दूसरी ओर यदि कोई व्यक्ति संयुक्त राज्य अमरीका की सुरक्षा के निकट संबंधित है, वह इस मुख्य समाचार को काँग्रेस के देश की सुरक्षा के प्रयत्न के रूप में देखता है और निहित धनराशि की मात्रा की ओर उसका ध्यान भी नहीं जाता। अतएव, प्रस्तुत तथ्यों का व्यक्ति अपनी अभिवृत्तियों और विश्वासों के अनुकूल

अथवा अपनी अभिवृत्ति के प्रसंगानुकूल अर्थ-ग्रहण करता है और वह अन्य तथ्यों की ओर बहुत कम ध्यान देता है। इस प्रकार उसके प्रत्यक्षीकरण द्वारा अभिवृत्तियाँ और विश्वास प्रबलित होते हैं न कि परिवर्तित।

यह संप्रत्यय इस अध्याय के प्रथम भाग में वर्णित वर्गीकरण प्रक्रिया द्वारा सरलता से समझी जा सकती है। एक व्यक्ति नीग्रोविरोधी अभिवृत्तियों के कारण नीग्रों लोगों को भयप्रद और दुखद घटनाओं से ही संबद्ध नहीं करता, वरन् 'नीग्रो' की संज्ञा प्राप्त लोगों को प्रतिकूल-गुणों से भी विभूषित करता है। उसके मतानुसार इस वर्ग में 'दुर्गुण' भरे हैं। किसी ऐसे व्यक्ति को देख कर, जो उस वर्ग का है, वह अनुमान करता है कि उस व्यक्ति में वे दुर्गुण हैं, जिन्हें वह उस वर्ग के सदस्यों में सामान्यतः मानता है। इसलिए मिट्टी से भरे कपड़ों से वह अर्थ-ग्रहण करता है—'नीग्रों गंदे होते हैं।' गोरे व्यक्ति के मिट्टी से सने वस्त्रों को अन्य अर्थ दिया जाता है। 'गंदे' एवं इसी प्रकार के अन्य प्रतिकूल लक्षण अनेक व्यक्तियों के लिए 'गोरे' वर्ग के अंग नहीं होते। अतएव, जब मजदूर दूसरे वर्ग के अंतर्गत जाता है, उसके कपड़ों का अर्थ भिन्न प्रकार से लिया जाता है।

इसी प्रकार समाचारपत्र के सरकार द्वारा धन-व्यय सरलेख की व्याख्या उसी रूप से की जाती है, जिस रूप में व्यक्ति 'सरकार' के वर्ग को निर्धारित करता है। यदि यह वर्ग अति विशाल गुण के अंतर्गत आता है, 'सरलेख' का अर्थ इस रूप से लिया जाता है, 'विशाल सरकार का यह एक और उदाहरण है।'

अधिकांश सामाजिक स्थितियाँ अपेक्षाकृत अस्पष्ट होती हैं और प्रायः विभिन्न अर्थों में उनकी व्याख्या संभव होती हैं। यह अनेकार्थकता इस संभावना को और बढ़ाती है कि इससे अभिवृत्ति और विश्वास स्थायी रहेंगे; क्योंकि इससे व्यक्ति में स्थिति (अथवा अभिवृत्ति के उपयुक्त जो भी उद्दीपन रहे) को समझने की योग्यता उसकी अभिवृत्ति के अनुकूल रहती है। इस रूप में अर्थ लेने पर वह स्थिति को अपने दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए देखता है।

सूचना का परिहार किसी-न-किसी कारण से लोगों में प्रायः अपनी अभिवृत्तियों और अपने विश्वासों को परिवर्तित करने की इतनी अनिच्छा रहती है कि वे ऐसी सूचनाओं से दूर रहने का प्रयत्न करते हैं, जो उनकी अभिवृत्तियों और विश्वासों के प्रतिकूल हों। दैनिक जीवन में इस विस्तृत प्रवृत्ति के अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं कि हमारे विश्वासों से मतभेद रखने वाली प्रत्येक बात से हम दूर रहना चाहते हैं। जो व्यक्ति पक्का उदारवादी है, वह अनुदारवादी पत्रिका या समाचारपत्र पढ़ना अस्वीकार करता है। जो व्यक्ति यहूदियों का विरोधी है, वह उनसे कोई संपर्क

नहीं रखता और इस प्रकार वह अपने को ऐसा कोई अवसर नहीं देना चाहता कि वह ऐसे तथ्य अर्जित कर सके, जिनसे उसका पूर्वाग्रह दूर हो जाए। जो व्यक्ति 'हियरस्ट प्रेस' या 'वेस्टबुक बेग्लर' या 'रीडर्स डाइजेस्ट' या 'वाल्टर विंचेल' के मतों को पसंद नहीं करता, वह उन्हें पढ़ने या सुनने से अस्वीकार कर देता है। अतः, वह ऐसी अभिवृत्तियों और विश्वासों के संपर्क से दूर रहता है, जिनका उसकी अभिवृत्तियों और विश्वासों से मतभेद हो। दूसरी ओर, वह अपने को केवल ऐसे दृष्टिकोणों के समक्ष प्रकट करता है जो उसके दृष्टिकोणों से सहमत हों और इस प्रकार अपनी अभिवृत्तियों और विश्वासों को वह और भी पुष्ट करता है।

उपर्युक्त वर्णित उदाहरणों में व्यक्ति के पास ऐसी सूचनाओं से शारीरिक रूप से दूर रहने का अवसर था, जो उसे अशांत करें। इस प्रतिरोध को ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है, जब व्यक्ति 'बद्ध श्रोताओं' में से एक से और उसे अपने विचारों से प्रतिकूल सामग्री सुननी या पढ़नी पड़ती है।

यह तथ्य नाटकीय ढंग से निम्नलिखित प्रयोग में स्पष्ट किया गया है (लेवीन और मर्फी, १९४३) :

> "यह प्रयोग कालेज के विद्यार्थियों पर किया गया था। कुछ विद्यार्थी साम्यवादी विचारों से सहमत थे और कुछ नहीं। सबने एक ऐसे लेख के कुछ भागों को सुना, जिसमें से कुछ साम्यवाद का समर्थन करते थे और कुछ नहीं। इसके उपरांत विद्यार्थियों की परीक्षा, यह निर्धारित करने के लिए, ली गई कि लेख के उन भागों से उन्होंने कितना सीखा है। उन विद्यार्थियों ने जो साम्यवाद के समर्थक थे, साम्यवाद-संबंधी सामग्री के विषय में, साम्य-वाद विरोधी सामग्री की अपेक्षा बहुत अधिक सीखा था। दूसरी ओर जो विद्यार्थी साम्यवाद के विरोधी थे, उन्होंने अपने दृष्टिकोण को पुष्ट करने वाली सामग्री को अधिक अच्छी तरह सीखा था।"

यह प्रयोग प्रदर्शित करता है कि लोग विरोधी सूचना का प्रतिरोध, उसके संपर्क में आने के लिए बाध्य होने पर भी, किस प्रकार करते हैं। एक पुरानी लोकोक्ति को स्पष्ट करते हुए हम इस प्रसंग को समाप्त कर सकते हैं, 'आप किसी व्यक्ति को सूचना तक पहुँचा सकते हैं, किंतु आप उसे सीखने के लिए बाध्य नहीं कर सकते।' यदि यह सूचना उसकी अभिवृत्तियों अथवा उसके विश्वासों के विपरीत है, वह उसे उस सामग्री की अपेक्षा जो उसके मतों के अनुकूल है, तो बहुत धीरे-धीरे सीखता है।

सामाजिक समर्थन :

अभिवृत्तियों और विश्वासों के परिरक्षण का एक और शक्तिशाली प्रभाव है, सहयोगियों का सामाजिक अनुमोदन। जैसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं, व्यक्ति अपने विशेष समूह या संस्कृति के सदस्यों की अभिवृत्तियों और विश्वासों को ग्रहण करना चाहता है। सामाजिक अनुमोदन की इच्छा सामान्यतः पर्याप्त तीव्र अभिप्रेरण है। जब तक व्यक्ति की अभिवृत्तियाँ उसके सहयोगियों से सहमत हैं, वह उनका अनुमोदन प्राप्त करता है। दूसरी ओर, वह उनके मत के विपरीत अभिवृत्तियाँ और विश्वास अभिव्यक्त करता है। वह उनके क्रोध और अननुमोदन का भाजन बनता है। अतः, वह अपने को दंड देता है और अनुमोदन प्राप्त करने के लिए वह अपने विचारों का परित्याग करता है। फलस्वरूप चैतन्यभाव से अथवा अचैतन्य भाव से मित्रों का अनुमोदन पाने के लिए वह उन्हीं बातों पर विश्वास करना चाहता है, जिन पर उसके मित्र विश्वास करते हैं। समान सांस्कृतिक प्रभावों के कारण वैसे भी वह उनकी अभिवृत्तियों और विश्वासों को प्राप्त करता है और सामाजिक अनुमोदन की इच्छा उसकी अभिवृत्तियों को अतिरिक्त समर्थन देती है तथा यह उसके लिए अपनी अभिवृत्तियों को परिवर्तित करना और कठिन कर देता है।

प्रचार :

परिवर्तन का प्रतिरोध, किंतु, अभिवृत्तियों और विश्वासों को दैनिक घटनाओं के संघटन तथा निरंतर प्रचार की वर्षा के फलस्वरूप परिवर्तित होने से पूर्णतः नहीं रोकता। वस्तुतः 'प्रचार'—जो अब एक परिचित घरेलू शब्द हो गया है—अभिवृत्तियों और विश्वासों को परिवर्तित करने का विमर्शपूर्ण एवं आयोजित प्रयत्न है। अधिनायक (डिक्टेटर), एवं गूढ़ अभिप्राय और सामाजिक दृष्टि से शंकास्पद प्रयोजन रखनेवाले व्यक्ति प्रचार ( प्रोपेगैंडा ) का इतना अधिक प्रयोग करते हैं कि इस शब्द का अर्थ कुछ घृणित अभिधार्यपरक बन गया है। सिद्धांततः अच्छा या बुरा प्रचार आवश्यक नहीं है (देखिए चित्र १७.१)। इसका प्रयोग अभिवृत्तियों और विश्वासों को शुद्ध करने के लिए किया जा सकता है जिससे कि ये 'तथ्यों' के निकट पहुँच सकें, साथ ही इनका प्रयोग उन्हें विकृत करने के लिए भी किया जा सकता है, जिससे कि वे तथ्यों से दूर हो जाएँ।

इसके अतिरिक्त शिक्षा और प्रचार में वस्तुतः स्पष्ट अंतर कर सकना संभव नहीं होता। शिक्षा में, हम तथ्यों पर बल देने का प्रयास करते हैं, किंतु इन तथ्यों का अर्थनिर्णय या इनकी व्याख्या सदैव करनी होगी। उनका अर्थ स्पष्ट करते हुए अध्यापक को अपनी अभिनत अभिवृत्तियों और विश्वासों को बीच में घुसाने का अवसर

मिल जाता है, फलस्वरूप शिक्षा व्यक्तियों की अभिवृत्तियों और विश्वासों को परिवर्तित कर देती है। यद्यपि व्यवहार में शिक्षा को हम तथ्यों से संबंधित अभिवृत्तियों और विश्वासों को परिवर्तित करने का एवं ज्ञान सिखाने का वैध प्रयास समझते हैं, जब कि प्रचार मुख्यतः प्रचारक के प्रयोजनों का समर्थन सिखाने के लिए ही प्रधानतः अभिकल्पित किया जाता है, वे चाहे तथ्यों के अनुकूल हों अथवा न हों ( देखिए चित्र १७·२ ),

**चित्र १७ १ शिक्षा अथवा प्रचार ? दैनिक समाचारपत्र में एक व्यंग्यचित्र प्रकाशित हुआ : अध्यापकों के वेतन की वृद्धि के लिए अनुकूल** अभिवृत्ति उत्पन्न करने के लिए (**वाल्ट पार्टीमिलर, गजट ऐंड डेली, यार्क, पा**)।

प्रचारकों द्वारा अभिवृत्तियों और विश्वासों को प्रभावित करने के लिए अनेक भिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग किया गया है। हम इन प्रविधियों में से केवल कुछ का विवेचन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत करेंगे :—

(१) बोझिल शब्द (२) सुझाव (३) आवश्यकताएँ।

### बोझिल शब्द :

नवम् अध्याय में हम देख चुके हैं कि शब्द वस्तुओं और अनुभवों को प्रकट करने वाले प्रतीकों का कार्य करते हैं। हम अभिवृत्तियों और विश्वासों को निर्मित करने वाले आवश्यक तथ्यों में से केवल कुछ को ही प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। जगत-संबंधी हमारा अधिकांश ज्ञान हमें किसी के द्वारा प्रयुक्त घटनाओं को लक्षण रूप में

प्रकट करने वाले शब्दों से प्राप्त होता है। शब्दों के चयनकर्ता—विज्ञापक समाचार-पत्र-रिपोर्टर, पत्रिका-लेखक, रेडियो-विवरणकार, राजनीतिज्ञ—की भाषा बहुत समृद्ध होती है, जो उसे इसकी विशद् स्वतंत्रता देती है कि वह किसी तथ्य या विचार का वर्णन हमें किन शब्दों में दे। इस प्रकार के असंख्य तटस्थ शब्द हैं, जो तथ्यों का उपयुक्त वर्णन, बिना किसी प्रकार की अभिवृत्ति को उद्दीप्त किए, करते हैं। ऐसे भी अनेक शब्द हैं, जिनसे पूर्व अभिवृत्तियों के निर्माण द्वारा, अधिकांश व्यक्तियों में, जो उसे सुनते हैं, प्रायः उसी अभिवृत्ति को उद्दीप्त करने की आशा की जा सकती है।

**चित्र १७.२ प्रचार का उदाहरण। स्तालिनग्राद के कर्मचारी विज्ञापनों की प्रदर्शनी के सामने खड़े हैं, जो अधिक उत्पादन और कोयला, लोहा और तेल के क्षेत्रों में प्रचलित सप्तवर्षीय योजना में विस्तार-योजनाओं की प्रेरणा देने के लिए है ( डेविड बर्ड )।**

ये बोझिल शब्द प्रचारकों के व्यावसायिक कोश में रहते हैं। यदि वह प्रतिकूल अभिवृत्ति को उद्दीप्त करना चाहें, तो वह 'जारशाही, 'तानाशाही', 'अविशासन' 'आंदोलक', 'बुद्धिकोश' शब्दों का प्रयोग कर सकता है, जिनके प्रति बहुसंख्यक अमरीकन जनता की प्रतिक्रिया तीव्र प्रतिकूल अभिवृत्तियों में होगी। यदि प्रचारक अनुकूल अभिवृत्ति उत्पन्न करना चाहे, ठीक उन्हीं घटनाओं का वर्णन करने में, वह 'लोकतंत्र', स्वतंत्रता,' 'नियमन', 'करदाता' और 'परामर्शदाता' शब्दों का प्रयोग करेगा, जिनका अनुमोदन विशद् जनसमूह करता है।

आप संभवत: ऐसे बोझिल शब्दों से परिचित होंगे, जिन्हें आप नियमित रूप से देखे जाने वाले समाचारपत्र, पत्रिकाओं एवं प्रसारण-कार्यक्रमों में पाएँगे। यदि आप उनके द्वारा अभिव्यक्त दृष्टिकोण से सहमत होंगे, तो संभवत: आपका ध्यान उनके बोझिल स्वरूप की ओर नहीं जाएगा और आप उन्हें उपयुक्त तथ्यपरक समझेंगे। किंतु यदि आप उससे असहमत हों, तो इसकी संभावना अधिक है कि आप उन भारी-भरकम शब्दों को प्रोपेगैंडा या सत्य की विकृति मानें। जिस व्यक्ति की किसी विषय से संबंधित अभिवृत्तियाँ या विश्वास दृढ़ नहीं हैं, उसकी अभिवृत्तियाँ भारी शब्दों द्वारा, जिन्हें वह पढ़ता या सुनता है, सहज प्रभावित हो सकती हैं। हम ऐसा एक उदाहरण देखें, जो मनोवैज्ञानिक अध्ययन में पुराना होने पर भी सतर्कता से लिया गया है ( सार्जेन्ट, १९३९ ) :

"शोधकर्त्ता ने शिकागो ट्रिब्यून के समाचार-स्तंभ से ४० शब्द चुने, उनमें से २० का प्रयोग समाचारपत्र ने उन नीतियों के संबंध में किया था, जिनका समर्थन वह नहीं करता था और २० का प्रयोग ऐसी घटनाओं या नीतियों के संबंध में था, जिनका वह समर्थन करता था। इन ४० शब्दों में शोधकर्त्ता ने १० निरपेक्ष शब्द जोड़ दिए। उसने इन शब्दों को मिश्रित रूप में व्यक्तियों के अनेक समूहों के समक्ष प्रस्तुत किया, जिनके अंतर्गत माता-पिता, अध्यापकों, कालेज विद्यार्थियों, हाई स्कूल विद्यार्थियों मजदूरों, श्वेत-कालर कर्मचारियों के समूह भी थे। उसने प्रत्येक व्यक्ति से पूछा कि वह बताए कि उसने शब्द को पसंद किया, नापसंद किया या उससे अप्रभावित रहा। परिणामों के आधार पर प्रत्येक शब्द को 'भावना-तान' को प्रस्तुत करने वाले अंक दिए जा सकते हैं,—१०० अति प्रतिकूल, और + १०० अति अनुकूल।

इस अध्ययन से प्राप्त कुछ भावना-तान मूल्यों को इस रूप में शोधकर्त्ता ने पाया था :—

| | | | |
|---|---|---|---|
| जारशाही : | —८४ | सहकारिता | + ९५ |
| अधिनायकशाही : | —८४ | स्वतंत्रता : | + ९२ |
| अभिभावन : | —७९ | पुनर्नियुक्ति : | + ८८ |

कोई समस्या नहीं थी, किंतु 'शिकागो ट्रिब्यून' सफलतापूर्वक ऐसे शब्दों का चयन करता था, जो उसके दृष्टिकोण के समर्थन में तीव्र प्रतिकूल या अनुकूल अभिवृत्तियों को उद्दीप्त करते थे।

"इसी प्रकार के अध्ययन में शोधकर्त्ता ने १२ बोझिल शब्द 'शिकागो ट्रिब्यून' से और १२ शब्द 'न्यूयार्क टाइम्स' से चुने, जिनका प्रयोग एक ही

घटना के संबंध में बताने के लिए दोनों समाचारपत्रों ने किया था। पहले की भाँति उसने इन शब्दों की भावना-तान परिमापित कर ली थी। सारणी १७.४ में एक ही घटना के वर्णनार्थ प्रयुक्त शब्द-युग्मों के भावना-तान मूल्य प्रदर्शित हैं। पुनः यह स्पष्ट था कि वही घटना एक समाचार-पत्र द्वारा एक ओर मोड़ दी गई थी और दूसरे समाचारपत्र द्वारा दूसरी ओर। अतएव, बोझिल शब्दों का प्रयोग उनके द्वारा घटनाओं के प्रति वांछित अभिवृत्तियों को उत्पन्न करने के लिए किया गया था।''

सारणी—१७.४

| शिकागो ट्रिब्यून | | न्यूयार्क टाइम्स | |
|---|---|---|---|
| शब्द | मूल्य | शब्द | मूल्य |
| आमूल परिवर्तन | —५३ | प्रगतिशील | +९२ |
| अधिशासन | —५३ | नियमन | +३२ |
| सरकारी अभि—<br>चार-प्रभाव | —३८ | सीनेट—<br>अनुसंधान | +५७ |
| बेकारी अनुदान | —३५ | गृह-सहायता | +२७ |
| अन्यदेशीय | —३५ | विदेशी | ० |

**सारणी १७·४ एक ही घटना का वर्णन करने में 'शिकागो ट्रिब्यून' तथा 'न्यूयार्क टाइम्स' द्वारा प्रयुक्त शब्दों का भावना-तान मूल्य (सार्जेन्ट, १९३४)।**

## संसूचन ( Suggestion ):

मनोवैज्ञानिकों ने 'संसूचन' की परिभाषा 'किसी कथन की आलोचना-दृष्टि-शून्य स्वीकृति' कह कर दी है। इसका अभिप्राय है कि केवल किसी के कथन को स्वीकार करके बिना तथ्यों या प्रमाणों की अपेक्षा किए ही कोई व्यक्ति किसी विश्वास को स्वीकार कर ले, कोई अभिवृत्ति बना ले अथवा किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित हो। कुशल विज्ञापक, प्रचारक और राजनीतिक नेता इसे जानते हैं एवं अपने लाभार्थ अन्य लोगों की अभिवृत्तियों तथा विश्वासों को परिवर्तित करने में इसका प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त वे यह भी भली-भाँति जानते हैं कि किन परिस्थितियों में संसूचन प्रभावित कर सकता है।

इनमें से एक है, **प्रतिष्ठा** का उपयोग करना। यदि एक विज्ञापक एक विशेष प्रकार के सिगरेट बेचना चाहता है, वह इस तथ्य का प्रयोग करना चाहता है कि कुछ प्रसिद्ध व्यक्ति उस सिगरेट का उपयोग करते हैं। इसी भाँति राजनीतिज्ञ जॉर्ज वाशिंगटन, एब्राहिम लिंकन एवं अन्य प्रतिष्ठित नेताओं के नामों का प्रयोग मुक्त रूप से अपने विचारों का अनुमोदन पाने के लिए करते हैं यदि आप टेलिविजन को केवल कुछ घंटों के लिए देखें अथवा संयुक्त राज्य अमरीका की किसी प्रसिद्ध सड़क से विज्ञापनों को देखते हुए मोटरगाड़ी से गुजरें, तो आप देखेंगे कि सामान्य लोगों को किसी उत्पादन को खरीदने के लिए, किसी राजनीतिक व्यक्ति को मतदान देने के लिए प्रभावित करने के लिए अथवा उनकी अभिवृत्तियों और व्यवहारों को अन्य रूपों से परिवर्तित करने के लिए अनेक दृष्टांतों में प्रतिष्ठा का प्रयोग किया गया है।

कुछ सीमा तक प्रतिष्ठा-संसूचन तथ्यों के लिए हमारे विश्वासों के पीछे अधिकारियों पर हमारे विश्वास का केवल एक उदाहरण है। तथ्यों और विश्वासों के मध्य की विभाजन-रेखा प्रायः धूमिल होती है। यह स्वाभाविक है कि कभी-कभी हम किसी विश्वास को बिना किसी तर्क के सहज स्वीकार कर लेते हैं; क्योंकि हम अधिकारी वर्ग पर विश्वास करने के लिए बाध्य हैं। कुछ सीमा तक प्रतिष्ठा-संसूचन में किसी नेता या देवता से तादात्म्य भी निहित रहता है। वह लड़की जो सुंदर होना चाहती है, अपने सौंदर्य के प्रतिमान के रूप में मार्लेन ग्रेबल को स्वीकार कर सकती है और यदि मार्लेन 'ब्यूटीफेस' कोल्ड-क्रीम का उपयोग करती है, वह लड़की भी अपने प्रतिमान के सौंदर्य से प्रेरित होकर उसी क्रीम का उपयोग करने लगती है। प्रतिष्ठा-संसूचन पूर्व विद्यमान अभिवृत्तियों पर भी प्रभाव डालते हैं और उनका ही उपयोग नई अभिवृत्तियों के निर्माणार्थ करते हैं। यदि लोगों की साम्यवाद के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति हो, तो इस प्रकार का संसूचन दिया जा सकता है कि अमुक-अमुक राजनीतिक विश्वास 'साम्यवादी' हैं अथवा साम्यवादी प्रेस द्वारा निरूपित हैं। यह एक ढंग से जिसमें आप—प्रायः सरल व्यक्ति की—पूर्व विद्यमान अभिवृत्ति को लेते हैं और उसे दूसरी दिशा की ओर मोड़ देते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में जिस प्रतिकूल शब्दावली अथवा 'प्रशंसा' का प्रयोग हम देखते हैं, उसमें ऐसे संसूचनों का जाने या अनजाने प्रयोग किया जाता है।

प्रतिष्ठा-संसूचन का अन्य महत्त्वपूर्ण स्वरूप है कि यह व्यक्ति के वस्तु या स्थिति के प्रत्यक्षीकरण को परिवर्तित कर देता है। जब प्रतिष्ठा-संसूचन किसी वस्तु से संलग्न कर दिया जाता है, वह उसे नए रूप में देखने लगता है। अगले पृष्ठ का प्रयोग इसे स्पष्ट करता है ( एश्च एट० एल०, १९४० ) :

"विद्यार्थियों से कहा गया कि वे ऐसी वृत्तियों को, जैसे उद्योग, दंत-विज्ञान, पत्रकारिता, डाक्टरी, राजनीति को ( १ ) उनकी दृष्टि में अपेक्षित बुद्धि की मात्रा के एवं ( २ ) वृत्ति की सामाजिक उपयोगिता के अनुसार, क्रमबद्ध करें। कुछ विद्यार्थियों ने बिना किसी संसूचन के क्रम निर्धारित किया। विद्यार्थियों के अन्य समूहों को यह कह कर संसूचन दिया गया कि दूसरे समूह के विद्यार्थियों ने, मान लीजिए, सबसे ऊँचा स्थान ( या नीचा स्थान ) राजनीति को दिया था। ये संसूचन प्रभावशाली हुए। जिस समूह से कहा गया था कि राजनीति को अन्य विद्यार्थियों ने क्रम में सबसे नीचे स्थान दिया था, उन्होंने उसे नीचा स्थान दिया और जिनसे कहा था कि उसे सबसे ऊँचा स्थान दिया था, उन्होंने भी उसे ऊँचा स्थान दिया। बाद में जब इन समूहों से पूछा गया कि राजनीति का क्रम निर्धारित करते समय विशेष कौन से राजनीतिज्ञ उनके मन में थे, तब जिस समूह ने राजनीति को नीचा स्थान दिया था, ऊसने कहा, उनके मन में 'टमानी हॉल के राजनीतिज्ञ' और 'सामान्य पड़ोसी राजनीतिज्ञ'-जैसे राजनीतिज्ञ थे। जिन्होंने राजनीति को उच्च स्थान दिया था, उनके मन में राष्ट्रीय राजनीति थी और उन्होंने रूजवेल्ट हल्ल, स्टिम्सन, लेमन लागार्दिया-जैसे उदाहरण दिए। अतएव, संसूचन का प्रभाव विद्यार्थियों को राजनीतिज्ञों के अच्छे और बुरे उदाहरणों पर विचार करने और उसके अनुसार अपनी अभिवृत्तियों को अभिव्यक्ति देना था।"

'प्रत्येक व्यक्ति यह कर रहा है' अथवा 'किसी भी अन्य सिगरेट से नोकोफ सिगरेट अधिक लोग पीते हैं' **सामाजिक** संसूचन के उदाहरण हैं। यह संसूचन का दूसरा प्रकार है, जो अपेक्षाकृत प्रायः प्रभावशाली रहता है। यह सामान्य प्रवृत्ति को स्वीकार करने की अपील करता है तथा व्यक्ति के अपने निर्णय के प्रति आत्मविश्वास के अभाव को भी। अनेक परिस्थितियों में, हम अपने को, हम क्या सोचते हैं और हमें क्या सोचना चाहिए, के संबंध अनिश्चित पाते हैं तथा इस प्रकार हम समुदाय के विचारों की ओर आकृष्ट होते हैं और अपने साथियों द्वारा दिए गए किसी भी अन्य संसूचन को हम स्वीकार कर लेते हैं। हमारी अनिश्चितता का कारण हमारी अनुभवहीनता भी हो सकती है अथवा केवल हमारी कोई पूर्व-अभिवृत्ति या विश्वास का न होना भी कारण हो सकता है। दूसरी ओर, जिन वस्तुओं या परिस्थितियों पर हमें विचार करना है, उनकी **अस्पष्टता** भी हो सकती है। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, जब किसी स्थिति के अनेक संभावित अर्थ हो सकते हैं, व्यक्ति प्रायः उसे उसी रूप में ग्रहण कर लेता है, जिस रूप में उसके साथियों ने उसे ग्रहण किया था, विशेषतः जब वे परस्पर सहमत होते हैं अथवा जब वे उसे प्रिय होते हैं।

## आवश्यकताएँ :

संभवतः यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सुझाव एवं अभिवृत्तियों और विश्वासों को परिवर्तित करने वाली अन्य विधियों का व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुकूल होना अनिवार्य है। पाठक स्मरण करेंगे कि अभिवृत्ति में अभिवृत्ति की वस्तु के वर्ग एवं व्यक्ति के लक्ष्यों या मूल्यों के मध्य, संबंध निहित रहता है। इस प्रकार जिन वस्तुओं के प्रति हम अनुकूल भाव रखते हैं, वे सुखद घटनाओं से अथवा किसी विध्यात्मक लक्ष्य की प्राप्ति से संबंधित होती हैं और जिन वस्तुओं के प्रति हम प्रतिकूल-भाव रखते हैं, वे भयप्रद और दुखद घटनाओं से संबद्ध होती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि वस्तुओं या विषयों के वर्गों के प्रति अभिवृत्ति को विकसित या परिवर्तित करने के लिए उन्हें व्यक्ति के लक्ष्यों या मूल्यों से संबंधित करना चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो ऐसे लक्ष्यों और मूल्यों को उत्पन्न भी करना चाहिए, जिससे कि उन्हें अभिवृत्ति-वर्ग से संबद्ध किया जा सके।

आजकल के अधिकांश विज्ञापन ऐसे संबंधों को स्थापित करने के प्रयास हैं। किसी विशेष छाप की कोल्ड-क्रीम को हालीवुड सुंदरी, मार्लेन ग्रेबल, से संबंधित करके विज्ञापक सार रूप में अपने श्रोताओं से कहता है कि इस कोल्ड-क्रीम का प्रयोग उस रूपसी अभिनेत्री के सदृश बनने के लक्ष्य की पूर्ति (उदाहरणतः संबंध) कर सकता है। एक लड़की जो इस कोल्ड-क्रीम के प्रति विध्यात्मक अभिवृत्ति विज्ञापन के कारण विकसित करती है, वह सौंदर्य के इस साधन में और अपने लक्ष्यों में (वह अपने रूप को विकसित करने या मार्लेन ग्रेबल की भाँति बनने में) कोई संबंध अनुभव करती है। स्पष्ट है कि जिस समाज में स्त्रियाँ अपने रूप की चिंता नहीं करती, वहाँ सौंदर्य के साधनों के विज्ञापन का कोई महत्त्व नहीं है। मेडिसन एवेन्यू को इन महिलाओं में सौंदर्य-वृद्धि की आवश्यकता को, उस आवश्यकता की पूर्ति के साधनों की बिक्री कर सकने से पूर्व, विकसित करना होगा।

## आवश्यकता उद्दीपन :

इसी हेतु प्रचारक प्रायः आवश्यकता उत्पन्न करने का कुछ कष्ट करते हैं। अपनी उत्पाद्य वस्तुओं की बिक्री बढ़ाने के लिए विज्ञापक भी यही करने का प्रयत्न करते हैं। कपड़े धोने की मशीन की बिक्री करने के लिए वे इस पर बल देंगे कि कपड़े धोने की मशीन द्वारा धुलाई का कितना परिश्रम बच जाता है। श्रमिक-व्यवस्थापक संबंधों में भी जहाँ कोई आवश्यकता या समस्या प्रतीत नहीं होती, जन-साधारण को श्रमिकों के अधिकारों को सीमित करने वाले कानूनी नियमों के अनुकूल

करने के लिए व्यवस्थापक श्रमिकों में अशांति को उत्तेजित करना या श्रमिक-विद्रोह की कहानियाँ आदि गढ़ना आवश्यक समझते हैं।

अनेक सांप्रतिक मनोवैज्ञानिक प्रयोग अभिवृत्ति-परिवर्तन के लिए इस साधन के विस्तृत प्रयोग को प्रकट करते हैं। ऐसे दो अनुसंधान कार्य स्पष्ट करते हैं कि किसी विषय से संबंधित अभिवृत्ति को विषय और श्रोता के लक्ष्यों और मूल्यों के दृष्ट संबंधों को परिवर्तित करके, परिवर्तित करना संभव है।

इनमें से एक प्रयोग (कार्लसन, १९५६) में प्रयोगकर्त्ता ने कालेज के विद्यार्थियों के जातीय दृष्टिकोण से घरों के अपृथक्करण के प्रति अभिवृत्ति को परिवर्तित किया। यह उसने दूसरों में यह विश्वास उत्पन्न करके किया कि इस प्रकार की गृह-योजना कुछ लक्ष्यों को उपलब्ध करने में सहायक होगी (जैसे अन्य राष्ट्रों की दृष्टि में अमरीका की प्रतिष्ठा में वृद्धि) और अन्य लक्ष्यों (जैसे, संपत्ति के मूल्यों का अनिवार्य रूप से अवमूल्यन नहीं) की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न नहीं करेगी।

दूसरे प्रयोग (डीवेस्टा और मरवीन, १९६०), जो विद्यार्थी उपलब्धि अभि-प्रेरण में ऊँचे थे, उन्हें 'अध्यापन: एक वृत्ति के रूप में' विषय पर भाषण दिए गए। जिस भाषण ने अध्यापन एवं उपलब्धि इच्छाओं की तृप्ति के संबंध को स्पष्ट किया, उसने इस संबंध से इतर भाषणों की अपेक्षा उनकी अभिवृत्तियों को अधिक प्रभावित किया, यद्यपि सब भाषण अध्यापन के प्रति अनुकूल तथ्यपूर्ण थे। अन्य शब्दों में, वह भाषण अध्यापन-संबंधी अभिवृत्तियों को सर्वाधिक परिवर्तित करता है, जिसने श्रोताओं को इस वर्ग और उनकी अपनी आवश्यकताओं के मध्य संबंध के प्रति परिचित किया।

एक अन्य प्रयोग (विस और फाइन, १९५८) प्रदर्शित करता है कि एक ही सिद्धांत निषेधात्मक एवं विध्यात्मक लक्ष्यों पर लागू हो सकता है :

> "प्रयोग-पात्रों के एक समूह के विरोधभाव को जागृत करने के लिए अभिकल्पित किए गए अपमानजनक और अभिभूत करने वाले अनुभव उसे दिए गए और दूसरे समूह को शांतिदायक एवं तृप्तिप्रद अनुभव दिए गए। तब प्रत्येक समूह के आधे व्यक्तियों ने एक संदेश पढ़ा, जो अल्प-वयस्क अपचारी बालकों के प्रति कठोर दंडात्मक व्यवहार को उत्तेजित करता था, दोनों समूहों के बाकी आधे व्यक्तियों ने ऐसा वक्तव्य पढ़ा, जो व्यक्त करता था कि अमरीका को अपने मित्र-राष्ट्रों के प्रति बहुत उदार होना चाहिए। इस प्रयोग के अध्ययन ने प्रमाणित किया कि क्रोधित व्यक्ति अपचारियों के प्रति कठोर व्यवहार की धारणा को अक्रोधित व्यक्तियों की अपेक्षा स्वीकार

करने के लिए अधिक तत्पर थे। दूसरी ओर वे इस पर कम विश्वास करते थे कि संयुक्त राज्य अमरीका को अपने मित्र-राष्ट्रों के प्रति उदार होना चाहिए। श्रोताओं ने अपनी संवेदनात्मक स्थिति के अनुकूल दृष्टिकोणों को सहज तत्परता से स्वीकार किया और साथ ही अपनी आवश्यकताओं से असंगति रखने वाले व्यवहार को उत्तेजित करने वाले वक्तव्यों का प्रतिरोध किया।"

## रक्षात्मक निवारण (Defensive Avoidance) :

यहाँ जिस तथ्य को स्पष्ट किया गया है, उससे प्रकट है कि यह 'साधारण-बुद्धि' धारणा की ओर बढ़ने का केवल एक त्वरित मार्ग है, जिसका प्रयोग रक्षा-अभियानों में प्रायः किया जाता है। इस धारणा के अनुसार आप लोगों को रक्षा-आदेशों का, उन्हें अनुकरण न करने से होने वाली विपत्तियों का भय दिखा कर, अनुकरण करवा सकते हैं। यही कारण ऐसे नारों के पीछे कार्य करता है जैसे 'तीव्र गति का परिणाम मृत्यु है' अथवा ट्रैफिक में मरने वाले व्यक्तियों की संख्या जिसे हम प्रतिदिन रेडियो या टेलिविजन पर सुनते हैं। इसकी मान्यता है कि भयभीत व्यक्ति सावधानी से मोटरगाड़ी चलाने की अपील पर अधिक ध्यान देंगे। दुर्भाग्य से इस विषय पर किए गए प्रयोगों के प्रमाण इसका समर्थन नहीं करते। वस्तुतः 'उन्हें भयभीत करो' विधि अपील को स्वीकार करने के स्थान पर उसके प्रति विरोध उत्पन्न कर देती है, जैसा कि निम्नलिखित प्रयोग ( जेनीस और फैशबैक, १९५३ ) से प्रकट है :

> "हाई स्कूल के विद्यार्थियों ने दंत-स्वास्थ्य-विज्ञान पर तीन प्रकार के भाषण सुने—तीव्र भय उद्दीप्त करने वाले, साधारण भय उत्पन्न करने वाले और अल्प भयकारी। तीव्र भयकारी में विद्यार्थियों को उनके मुखों की अवस्था के प्रति अतिचिंतित किया गया और अल्प भयकारी में इस प्रकार की चिंता उत्पन्न करने का कोई प्रयास नहीं किया। सभी प्रकार के भाषणों में विद्यार्थियों को कुछ दंत-अभ्यास अपनाने की प्रेरणा दी गई थी। परिणामों ने स्पष्ट किया कि भय उत्पन्न करने की मात्रा जितनी अधिक थी, भाषणकर्त्ता के दृष्टिकोण को अपनाने की भावना विद्यार्थियों में उतनी ही कम थी।"

इस प्रयोग के परिणाम एवं अन्य परिणाम जो इसी तथ्य को प्रदर्शित करते हैं—स्पष्ट करते हैं कि भयकारी 'रक्षात्मक निवारण' प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं। वक्तव्य द्वारा उत्पन्न भय से अपने को बचाने के लिए श्रोता वक्ता के निर्णयों को स्वीकार करने से बचता है। मानो श्रोतागण विश्वास करते हैं कि वे लोग नहीं, वरन् अन्य व्यक्ति घायल होंगे या मरेंगे।

'रक्षात्मक-निवारण' के उदाहरण दैनिक जीवन में देखे जा सकते हैं। एक सिगरेट पीने वाले की कहानी है, जिसने कहा था कि समाचारपत्र में इस विषय पर एक लेख देख कर कि सिगरेट पीने से फेफड़े का कैंसर होता है, वह इतना अशांत हो गया था कि वह समाचारपत्रों का पढ़ना ही बंद करने वाला था। यह व्यक्ति न केवल अशांतिकारी सूचनाओं को दूर करना चाहता है, वरन् वह यह भी सोचता है कि अन्य व्यक्तियों को भले ही फेफड़ों का कैंसर हो जाए, पर उसे नहीं।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि लोग सदैव भयप्रद वक्तव्यों को स्वीकार करने से बचना चाहते हैं। कुछ अवस्थाओं में वे वक्ता के निर्णयों का प्रतिरोध, उनके चिंता उत्पन्न करने पर भी, संभवतः नहीं करते। वे उन्हें स्वीकार करते हैं या नहीं, यह निस्संदेह उनके विपद में पड़ने की दृष्ट संभावना पर निर्भर करता है। उदाहरणतः अपेक्षाकृत बहुत कम व्यक्तियों को कैंसर होता है और बहुत कम व्यक्ति मोटरगाड़ी की दुर्घटनाओं में घायल होते या मरते हैं। अतः, उस व्यक्ति के लिए अपने को समझाना संभव है कि जो चेतावनियाँ वह सुनता है, वे वस्तुतः उस पर लागू नहीं होतीं। दूसरी ओर यदि वह जानता या अनुभव करता है कि वह वास्तविक विपद में है, वह चेतावनियों की उतनी उपेक्षा या प्रतिरोध नहीं करता। किसी निपुण उत्तर-ध्रुवीय गवेषक से कहा जाए कि उसे उपयुक्त बूट पहनने चाहिए अन्यथा यह निश्चित है कि वह तुषार-दर्शन का शिकार हो जाए। बहुत संभव है कि उस कथन की उपेक्षा न करके वह उसे स्वीकार करेगा।

## अभिवृत्तियों और मतों का परिमापन :

अभिवृत्तियाँ, मत और विश्वास व्यक्ति की सामाजिक परिस्थिनयों के प्रति प्रतिक्रियाओं को इतना अधिक नियंत्रित करते हैं कि इसमें आश्चर्य नहीं है कि अभिवृत्तियों के सूक्ष्म परिमापन में पर्याप्त रूचि होनी चाहिए। सरकारी और सामाजिक जीवन में जो लोग नेता होते हैं, वे जनसाधारण की अभिवृत्तियों और विश्वासों को जानना चाहते हैं। इसी प्रकार जो व्यवसाय करते हैं, उन्हें अपने ग्राहकों की अभिवृत्तियों और विश्वासों को जानना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी और शोधकार्य करने वाले, यह जानते हुए कि शिक्षा का अधिकांश अभिवृत्तियों को तथा ज्ञान को प्रभावित करता है, अभिवृत्तियों एवं विश्वासों पर विविध शिक्षण-विधियों और पर्यावरणों के प्रभावों को जानना चाहते हैं।

## अभिवृत्ति मापक :

शिक्षक और शोधकर्त्ताओं को अभिवृत्तियों के अनुसंधान की अपेक्षाकृत अधिक अनुकूल सुविधाएँ प्राप्त करती हैं; क्योंकि उनकी पहुँच प्रायः विद्यार्थियों के समूहों

तक रहती है, जिनका वे पर्याप्त गहन अध्ययन कर सकते हैं। इसीलिए उनकी विधियाँ उन लोगों की अपेक्षा अधिक शुद्ध और सूक्ष्म रहती हैं, जिन्हें राजनीतिक और औद्योगिक क्षेत्रों को अपने प्रयोगों के लिए चुनना पड़ता है। शिक्षकों एवं शोधकर्त्ताओं द्वारा प्रयुक्त विधियों में कुछ ऐसी हैं, जो अभिवृत्तियों के परिमापनार्थ अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध मापक प्रस्तुत करती हैं। उनमें से दो का विवरण हम देंगे।

थर्स्टन (Thurstone) :

अभिवृत्तियों के परिमापन की एक विधि की खोज एल० एल० थर्स्टन (थर्स्टन और चेव, १९२९) ने की थी। इसके निम्नलिखित सोपान हैं :—प्रथम, कुछ विषयों का स्पष्टीकरण आवश्यक है, जिनसे संबंधित अभिवृत्तियों का परिमापन किया जाएगा। ऐसे विषयों का एक उदाहरण युद्ध है। एक बार विषय को स्पष्ट कर देने के उपरांत आगामी सोपान होगा, जिसमें विषय से संबंधित यथासंभव प्राप्त संगत सूचनाओं को एकत्रित किया जाएगा। परिमापन में उपयोग सिद्ध होने के लिए आवश्यक है कि इन सूचनाओं को सरल और स्पष्ट होना चाहिए और उन्हें भिन्न अभिवृत्तियों को मानने वाले व्यक्तियों में अंतर करने में सक्षम होना चाहिए। ऐसे कथन जैसे, 'जब युद्ध की घोषणा हो जाए, हमें भी सेना में भर्ती होना चाहिए' अथवा 'दुर्बल राष्ट्रों के रक्षार्थ किए गए युद्ध ही केवल न्यायसंगत होते हैं' अनुकूल या प्रतिकल अभिवृत्तियों को उद्दीप्त करने तथा युद्ध के विभिन्न रूपों के प्रति अभिवृत्तियों को निर्धारित करने के लिए पर्याप्त निश्चित एवं स्पष्ट हैं।

विषय पर विचारपूर्ण सूचनाओं को एकत्रित कर लेने के उपरांत अगला सोपान होगा, उन्हें निर्णायकों की विशद् संख्या के समक्ष प्रस्तुत करे। निर्णायकों की संख्या सौ या उससे अधिक हो, तो उपयुक्त होगा। प्रत्येक निर्णयकर्त्ता से कहा जाएगा कि वह उन कथनों या सूचनाओं को ११ भागों में पृथक् करे, जो एक मापक का कार्य देगा, विषय-संबंधी अति अनुकूल अभिवृत्तियों से अति प्रतिकूल अभिवृत्तियों को प्रस्तुत करेगा। इस प्रकार भिन्न सूचनाओं के मापक-मूल्य ( Scale Values ) निर्धारित किए जाते हैं। इसका अभिप्राय है, प्रत्येक सूचना को एक अंक दिया जाता है जो यह निर्देशित करता है कि सूचना के अनुमोदन या अननुमोदन की मात्रा वस्तु या विषय-संबंधी अभिवृत्ति की अनुकूलता या प्रतिकूलता को किस मात्रा तक प्रस्तुत करती है। आखिर निर्णय भी समाप्त होता है। कथनों या सूचनाओं की सीमित संख्या, मान लीजिए २० चुनी, गई जो (1) निर्णायकों में पर्याप्त सहमति प्रदर्शित करती है और (२) और उसके मापक-मूल्य हैं, जो १ से ११ की संख्या तक एक रेखा में बने हैं, ( देखिए, सारणी १७·५ )।

एक बार अभिवृत्ति-मापक के बन जाने पर हम उसका प्रयोग अपनी इच्छानुसार किसी भी समूह पर कर सकते हैं। जिस व्यक्ति की परीक्षा ली जाए, उससे कहा जाता है कि जिन सूचनाओं से वह सहमत है, उन्हें चिह्नित करे। परिणामों के आँकड़े पाने का एक ढंग यह है कि व्यक्ति द्वारा चिह्नित कथनों के मापक-मूल्यों का औसत निकाल लिया जाए। इस प्रकार हम व्यक्ति की विवेच्य विषय से संबंधित अभिवृत्तियों और विश्वासों को संख्यात्मक मापन में प्राप्त कर लेते हैं।

सारणी १७·५

| मापक-मूल्य | | विषय |
|---|---|---|
| १·३ | १ | राष्ट्रीय सम्मान के बिना कोई राष्ट्र बहुत गौरव अनुभव नहीं कर सकता, इसके परिरक्षण का एकमात्र साधन युद्ध है। |
| २·५ | २ | जब युद्ध की घोषणा हो, तो हमें सेना में भर्ती होना चाहिए। |
| ५ २ | ३ | युद्ध केवल तभी न्यायसंगत है जब दुर्बल राष्ट्रों के रक्षार्थ किया जाए। |
| ५·४ | ४ | प्रगति के लिए युद्ध और शांति दोनों अनिवार्य हैं। |
| ५·६ | ५ | अधिक-से-अधिक हम इतना ही प्रयत्न कर सकते हैं कि आंशिक रूप से युद्ध का अंत हो जाए। |
| ८·४ | ६ | युद्ध में होने वाला मानव-जीवन और अधिकारों का निरादर पाप-धारा को जन्म देता है। |
| १०·६ | ७ | सब राष्ट्रों को तुरंत निरस्त्रीकरण कर देना चाहिए। |

**सारणी १७·५ युद्धसंबधी अभिवृत्तियों को मापित करने वाले मापक से लिए गए स्पष्ट करने वाले कुछ विषय १ से ११ अंकों वाले मापक का प्रयोग करके अनेक निर्णायक प्रत्येक विषय का क्रम उस मात्रा तक निर्धारित करते हैं, जिस मात्रा तक वे किसी क्रिया के अनुकूल या प्रतिकूल अभिवृत्ति को निर्देशित करते हैं। निर्णायकों का सामान्य क्रम-निर्धारण किसी वस्तु या विषय का निर्धारण मापक मूल्य है ( ड्रोबा १९३० )।**

लिकर्ट माप (Likert Scale) :

अभिवृत्ति-मापक बनाने की अनेक विधियाँ हैं। सभी प्रारंभ में अपेक्षाकृत कथनों की दीर्घ संख्या की अपेक्षा करती है, तदंतर उनमें से ऐसे कथनों को चुन लेती हैं जो किसी विवेच्य अभिवृत्ति के विश्वसनीय निर्देशक हों। लिकर्ट (१९३२) द्वारा विकसित हम एक ऐसी विधि का वर्णन करेंगे।

कथनों की एक श्रृंखला प्रयोग-पात्रों के सम्मुख इस निर्देशन से प्रस्तुत की जाती है कि निम्नलिखित रूपों में से किसी एक में वे अपनी प्रतिक्रियाओं को स्पष्ट करें : तीव्र अनुमोदन, अनुमोदन, अनिश्चित, अननुमोदन या तीव्र अननुमोदन। तब उनकी अनुक्रियाओं का यह देखने के निमित्त विश्लेषण किया जाता है कि वे एक दूसरे से सबद्ध कैसे करते हैं (देखिए, अध्याय—१३)। जो विषय परस्पर अधिक सहसंबंधित होंगे—जैसे जब व्यक्ति एक कथन का तीव्र अनुमोदन करता है और दूसरे का भी तीव्र अनुमोदन करता है, अथवा इसके विपरीत करता है—विवेच्य अभिवृत्ति के किए प्रसंगानुकूल समझे जाएँगे। जब विषय दूसरे विषयों से सहसंबंधित नहीं होते, तो वे अभिवृत्ति-मापक के लिए असंगत होने के कारण छोड़ दिए जाते हैं। इस प्रकार दो उपब्धियाँ होती हैं : (१) असंगत कथन पृथक् कर दिए जाते हैं और (२) परीक्षा में छोड़े गए कथनों में विषयों के समूह होते हैं।

हम इन सोपानों की व्याख्या लिकर्ट के विदेशी युद्धों पर निर्मित अभिवृत्ति-मापक के वर्णन के आधार पर कर सकते हैं। विषयों की बड़ी संख्या से प्रारंभ करके और उन्हें चुने हुए जनसमूह को देकर, उसने अनेक ऐसे विषयों को पृथक् कर दिया, जो कुल-संख्या से सहसंबंधित नहीं हुए। जब उसका विश्लेषण समाप्त हुआ, उसने अनुभव किया कि उसके पास विषयों के दो पुंज या समूह थे। एक समूह का संबध विदेशी मामलों में साम्राज्यवाद की समस्याओं से संबंधित प्रतीत होता था और दूसरे का ऐसे मामलों में अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं से। अतः, उसने एक ऐसा मापक प्राप्त किया, जिसे विदेशी मामलों की अभिवृत्तियों के दो विन्यासों में विभाजित किया जा सकता था, **साम्राज्यवाद** की ओर एवं **अंतर्राष्ट्रीयता** की ओर।

अभिवृत्ति-मापकों के निर्माण पर अधिक विस्तार से विचार करना इस ग्रंथ के क्षेत्र के बाहर का विषय है। हमने यहाँ दो प्रमुख और विशद् रूप से प्रयुक्त दो मापकों का विवरण दिया है, किंतु इन विधियों में और अन्य मापक प्रविधियों में अनेक विविधता है। प्रत्येक विधि का अंतिम परिणाम है 'परीक्षा' को उपलब्ध करना, जो कुछ अभिवृत्ति या अभिवृत्तियों के पर्याप्त विश्वसनीय और प्रामाणिक मापक हैं (देखिए अध्याय-१३)। एक बार ऐसे मापक के निर्मित हो जाने पर, विविध प्रयोजनों में इसका उपयोग हो सकता है। इस अध्याय के प्रथम दो परिच्छेदों में प्रस्तुत अभिवृत्तियों पर संस्कृति के प्रभाव, सामाजिक-आर्थिक स्तर, परिवार, शिक्षा से संबंधित तथ्य अभिवृत्ति-मापकों के प्रयोग द्वारा ही उपलब्ध किए गए हैं। पूर्वग्रहों से संबंधित अनेक निष्कर्ष भी ऐसे मापकों के प्रयोग पर ही आधृत हैं।

## जनमत और बाजार-अनुसंधान (Public Opinion & Market Research) :

यद्यपि, मनोविज्ञान के विद्यार्थियों से भिन्न, अपेक्षाकृत बहुत कम व्यक्तियों ने अभिवृत्ति-मापकों के विषय में सुना है, संयुक्त राज्य अमरीका के अधिकांश नागरिक अब एक अन्य प्रकार के अभिवृत्ति-मापक से परिचित हैं—जनमत-मतांकन। उनके लिए इस प्रकार का मतांकन राजनीतिक चुनावों के परिणामों की भविष्यवाणी का एक प्रयास है। वे जान गए हैं कि ये भविष्यवाणियाँ पर्याप्त सही हो सकती हैं जब चुनाव बहुत निकट न हो। निकट चुनाव में मतांकन गलत हो सकता है। ये मतांकन; क्योंकि कभी-कभी गलत सिद्ध होते हैं अथवा बहुत सफल प्रमाणित नहीं होते, अनेक लोग इन पर विश्वास करने की ओर प्रवृत्त नहीं होते।

दुर्भाग्य से जनता की जनमत-मतांकन-संबंधी धारणा अत्यधिक सरलीकृत है। सर्वाधिक उल्लेखनीय मतांकन की 'असफलता' का कारण, १९४८ की यह भविष्यवाणी कि राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने वाला गणतंत्रीय उम्मीदवार थामस ई० ड्यवी चुना जाएगा, पूर्णतः मतांकन-विधि के अंतर्निहित दोष नहीं हैं। इसका कुछ दायित्व व्यावसायिक मतांकन एजेंसियों द्वारा प्रयुक्त अनुपयुक्त कुछ प्रणालियों पर भी है (मोस्टैलर एट० एल०, १९४९)। वर्षों से अनेक आलोचकों ने इस ओर ध्यान आकर्षित कराते हुए बताया है कि इन प्रणालियों द्वारा निरंतर गणतंत्रीय मतदानों की अतिगणना की जाती रही है। प्रणाली की भूलों को सुधारा जा सकता था, किंतु उन एजेंसियों को अपने व्यय को बढ़ाना पड़ता।

मतगणना करने वालों के पक्ष में १९४८ का चुनाव भी एक असाधारण चुनाव था। प्रथमतः एक अत्यंत बड़ी संख्या में व्यक्तियों ने चुनाव के पहले तक यह निश्चित नहीं किया था कि वे मतदान कैसे करेंगे। पूर्ववर्त्ती और परवर्त्ती चुनावों के विपरीत इन लोगों में से अधिकांश ने अंत में लोकतंत्रीय उम्मीदवार को मतदान किया। द्वितीयतः मतगणना करने वालों की कठिनाई को बढ़ाते हुए आश्चर्यजनक रूप से मतदाताओं की बड़ी संख्या ने चुनाव से ठीक पहले अपने चुनाव-निर्णयों को परिवर्तित कर दिया, विशेषतः कृषि-राज्यों में। १९४८ के पहले और बाद के चुनावों में कभी इतनी बड़ी मात्रा में ऐसा नहीं हुआ। इस बीच व्यावसायिक एजेंसियों ने भी अपनी विधियों में उन्नति कर ली। अब वे विजय प्राप्त करने वाले उम्मीदवार की राष्ट्रीय चुनाव में की गई अपनी भविष्यवाणी में कुछ ही प्रतिशत अधिक होती हैं। फलस्वरूप, राजनीतिज्ञ जनमत-सर्वेक्षण का प्रयोग, केवल अपने चुने जाने की संभावनाओं को निर्धारित करने के लिए ही नहीं, अपने कुशल अभियान का मार्गदर्शन करने के लिए भी, दिन-प्रतिदिन अधिक करने लगे हैं।

चुनावों की भविष्यवाणी ही केवल—संभवतः सर्वाधित कठिन, उपयोग जनमत-मतांकन का नहीं है। इसका उपयोग नियमित रूप से अनेक समस्याओं के संबंध में अभिवृत्तियों की जानकारी के लिए भी होता रहा है, जैसे कृषकों को भूमि बाँटना, निर्वाह-व्यय, सड़क-निर्माण योजनाएँ, संयुक्त राष्ट्र, संयुक्त राज्य अमरीका के सरकारी बांड खरीदना, उद्योगपतियों के लाभ, स्फीति और अवस्फीति, बेकारी और जनसाधारण से संबंधित अनेक समस्याएँ (लिकर्ट, १९४७)। मतांकन की व्यवस्था सरकारी एजेंसियों द्वारा भी की जाती है और मनोवैज्ञानिकों के दलों द्वारा भी—जैसे नेशनल ओपिनियन रिसर्च सेंटर, अमेरिकन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ओपि-नियन और यूनिवर्सिटी ऑफ मिचिगन सर्वे रिसर्च सेंटर। ये विविध व्यावसायिक समूह एक विज्ञापन और उत्पादनकारी समूहों की सहायता करते हैं तथा इनके अतिरिक्त अपना शोधकार्य भी करते हैं।

प्रश्न :

अभिवृत्ति-मापकों से भिन्न, मतांकन ऐसे व्यक्तियों के साथ करना चाहिए, जो किसी विशेष समूह का पर्याप्त प्रतिनिधित्व करते हों, ऐसे व्यक्ति जो किसी विशेष जिले में मतदान करते हैं, जो कृषि करते हैं, जो दंतमंजन 'ए' खरीदते हैं अथवा जो सिगरेट पीते हैं। ऐसे व्यक्तियों को आप सरलता से बिठा कर किसी जटिल अभिवृत्ति-मापक की पूर्ति करने के लिए प्रेरित नहीं कर सकते। उनसे किसी स्थिति पर आमने-सामने ही वार्तालाप हो सकता है, उनकी रूचि और सहयोग को, बिना उनके समय या स्वतंत्रता के नष्ट किए सुरक्षित करना होगा। उनसे ऐसे प्रश्न पूछने होंगे, जो सुगम हों और शीघ्रता से बताएँ जा सकें।

मतांकन की इन सीमाओं की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि साक्षात्कार अल्पकालिक हों तथा प्रत्येक प्रश्न किसी विशेष अभिवृत्ति से संबंधित हो। अतः, जन-मत-मतांकन में एक प्रश्न को निश्चय ही एक अभिवृत्ति का मापक होना पड़ेगा, जब कि अभिवृत्ति-मापक में अनेक कथनों का प्रयोग हो सकता है। यद्यपि मतांकन में एक से अधिक प्रश्नों का प्रयोग हो सकता है, किंतु प्रश्नों या विषयों की संख्या को अति सीमित करना होगा। इसी हेतु प्रश्न-रचना का मुख्य महत्त्व है और इससे मतांकन के परिणाम में बहुत अंतर उपस्थित हो जाता है (देखिए : चित्र १७.३)। सामान्यतः मतांकनार्थ रचित प्रश्नों के दो प्रकार हैं :—निश्चित विकल्प-प्रश्न तथा मुक्त-मुख प्रश्न। प्रथम प्रकार का प्रश्न प्रतिवादी को विकल्पों की निश्चित संख्या देता है। उदाहरणार्थ, "आप श्रमिक-संघों पर अधिक नियंत्रण, कम नियंत्रण या जितना अभी है, उसके ही लगभग नियंत्रण देखना चाहेंगे ?' मुक्त-मुख प्रश्न प्रतिवादी को अपने

ही शब्दों में अपने उत्तर की रचना करने की सुविधा देता है। जैसी कि आप तत्क्षण कल्पना कर सकते हैं, कभी-कभी यह कठिन होता है कि मुक्त-मुख प्रश्नों के उत्तरों का अभिप्राय क्या है ? व्यवहार में, प्रश्नकर्त्ता के पास रचित प्रश्न के संभावित विकल्पों की संख्या रहती है और प्रतिवादी के उत्तरों को सुन कर वह केवल एक विकल्पक को चिह्नित करता है। इन वैकल्पिक प्रश्नों का प्रयोग प्रयोग-पात्रों के छोटे-छोटे समूहों पर परीक्षण के रूप में किया और उनके उत्तरों को कुछ सीमित वर्गों के अंतर्गत वर्गीकृत किया।

ऐसा प्रतीत हो सकता है कि निश्चित विकल्प प्रश्न मुक्त-मुख प्रश्न की अपेक्षा बेहतर होता है। निश्चय ही समालाप-स्थिति में उसका प्रयोग सरलतर है और समालापक को उसे प्रस्तुत करने एवं उत्तरों को रिकार्ड करने में अति अल्प प्रशिक्षण की आवश्यकता रहती है। इस प्रकार के प्रश्न में एक कठिनाई यह है कि यह प्रतिवादी के उत्तर को बहुत सीमित कर देता है, प्रायः उसे इस रूप में उत्तर देने के लिए बाध्य करता है जो उसके यथार्थ दृष्टिकोण को अभिव्यक्त नहीं करता। ऊपर उल्लिखित श्रमिकों के उदाहरण में, प्रतिवादी यह भी सोच सकता है कि कुछ अवस्थाओं में श्रमिकों को अधिक नियंत्रित एवं कुछ में कम नियंत्रित करना चाहिए। ऐसी अभिवृत्ति की अभिव्यक्ति का यही रूप नहीं है कि नियंत्रण जितना है, प्रायः वही रहे। किंतु, उसके समक्ष अपनी यथार्थ अभिवृत्ति को अभिव्यक्त करने का उपाय भी नहीं है। निश्चित- विकल्प प्रश्न में दूसरी कठिनाई है, शब्दों का सूक्ष्म अंतर परिणाम को बहुत अधिक प्रभावित कर सकता है, इसके कारण प्रतिवादी की अभिवृत्तियों का प्रायः गलत विश्लेषण हो जाता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत दो प्रसिद्ध मतांकन एजेंसियों ने प्रायः एक ही समय में निम्नलिखित प्रश्न किए :

> युद्ध के बाद आप संयुक्त राज्य अमरीका का किसी विश्व-संघ (गुट) का सदस्य बनना पसंद करेंगे अथवा आप चाहेंगे कि हम उनसे पृथक् रहें ?" (अमेरिकन ओपिनियन रिसर्च सेंटर, जनवरी, १९४५)।

> "क्या आप सोचते हैं कि संयुक्त राज्य अमरीका को पुलिस-शक्ति-संपन्न किसी विश्व-संघ का सदस्य, विश्व में शांति रखने के लिए, बन जाना चाहिए ?" (अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक ओपिनियन, अप्रैल, १९४५)।

यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि जनवरी और अप्रैल १९४५ के मध्य मनोभाव तीव्रता से परिवर्तित हो गए थे अथवा जनसाधारण के प्रतिनिधियों के दृष्टिकोणों में विशद अंतर था। ६४ प्रतिशत व्यक्तियों ने प्रथम प्रश्न के उत्तर में

'हाँ' कहा, और ८१ प्रतिशत में द्वितीय प्रश्न के उत्तर में 'हाँ' कहा, जबकि २६ प्रतिशत लोगों ने प्रथम प्रश्न के उत्तर में 'नहीं' कहा और ११ प्रतिशत ने द्वितीय प्रश्न के उत्तर में 'नहीं' कहा। बहुत संभव है कि 'विश्व-शांति रखने के लिए' वाक्यांश ने स्वीकारात्मक उत्तरों की संख्या में वृद्धि की हो; क्योंकि मतांकनकर्त्ता जानते हैं कि सामान्यतः अनुमोदित किसी वाक्यांश को जोड़ने से पूर्ण प्रश्न के समर्थकों की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

शब्दों के महत्त्व के कारण मतांकनकर्त्ता अपने प्रश्नों की रचना करने के लिए प्रचुर अनुसंधान करते हैं। प्रायः वे छोटे-छोटे समूहों पर प्रारंभिक मतांकन करते हैं, जिसमें वे एक प्रश्न को विविधि वाक्य-रचनाओं में प्रस्तुत करते हैं, तब वे यह देखने के लिए परिणामों का अध्ययन करते हैं कि वाक्य-रचना से क्या अंतर होता है। ऐसे प्रारंभिक अध्ययनों द्वारा वे ऐसे वैकल्पिक वाक्यों की रचना का प्रयत्न करते हैं, जो व्यक्तियों को अपनी अभिवृत्तियों को व्यक्त करने का अवसर दें। वे ऐसे वाक्य-गठन से दूर रहने का प्रयत्न करते हैं, जो किसी उत्तर का भ्रामक रूप से अधिक या भ्रामक रूप से कम प्रतिशत प्रस्तुत करें। उन्हें समय का ध्यान रखते हुए एक ही मतांकन में या क्रमागत मतांकनों में विभिन्न प्रश्नों का प्रयोग करने का प्रयास करना चाहिए, ताकि कि वे अपने उपलब्ध परिणामों की स्पष्ट व्याख्या कर सकें।

वैज्ञानिक विधि से तैयार करने और प्रयोग करने पर जनमत-मतांकन पर्याप्त शुद्ध परिणाम प्रस्तुत करता है।
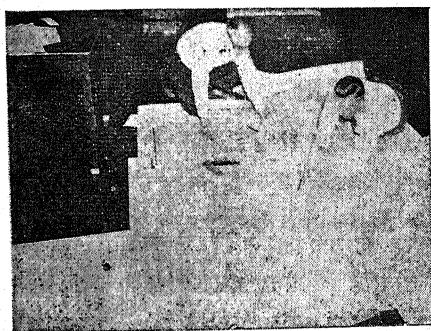
**चित्र १७·३ जन-मत-मतांकन के सोपान। (यू० एस० ब्यूरो ऑफ द सेंसस, अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑफ पब्लिक ओपिनियन)।**

प्रतिचयन (Sampling) :

एक बार जनमत-मतांकन प्रश्नावली के तैयार हो जाने पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि किन व्यक्तियों पर उसका प्रयोग करना चाहिए। अधिकांश मतांकन

परीक्षण में हम किसी विशेष जनसमूह की अभिवृत्तियों को जानना चाहेंगे। कभी-कभी यह जन समूह संयुक्त-राज्य अमेरिका के समस्त वयस्क व्यक्तियों का भी हो सकता है। किंतु, अधिक शितःहमें सीमित जन-समूह में रुचि होती है। राजनीतिक चुनावों में भी हम जिले-दर-जिले के परिणामों को जानना चाहते हैं; क्योंकि चुनावों के परिणाम राष्ट्रीय परिणाम से ज्ञात नहीं होते, वरन् कांग्रेस-चुनाव क्षेत्रों, निर्वाचक क्षेत्रों, और राज्यों पर निर्भर करते हैं। अन्य प्रसंगों में यह जनसमूह कृषकों, फुटकर-स्टोर विक्रेताओं, करदाताओं, स्कूल-अध्यापकों आदि का हो सकता है।

चित्र १७ ३ के क्रम में
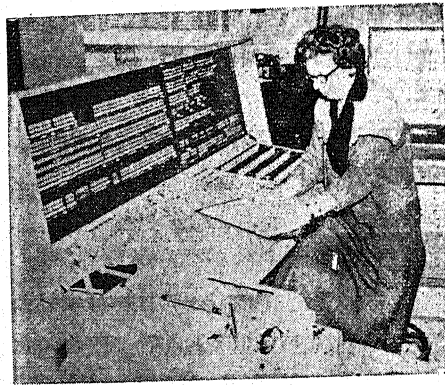
चित्र १७.३ का अंतिमांश

जनसमूह चाहे जो हो, संपूर्ण समूह का मतांकन सदैव अव्यावहारिक होता है, केवल इसलिए कि समूह बहुत विशद् होता है। अतः, हमारे समक्ष संपूर्ण जन-समूह में से कुछ व्यक्तियों के प्रतिचयन की समस्या उपस्थित होती है। निश्चय ही अंत में हम उन चुने हुए कुछ व्यक्तियों के लघु समूहों से संपूर्ण जनसमूह के संबंध में निष्कर्ष निकालना चाहते हैं। सौभाग्य से, सांख्यिकी-विदों ने विश्वसनीय नियमों की खोज की है, जिनसे चुने हुए व्यक्तियों के समूहों के आधार पर संपूर्ण जनसमूह का अनुमान किया जा सकता है। यह अनुमान किस मात्रा तक शुद्ध प्रमाणित होगा,

यह अनेक कारकों पर निर्भर करता है। सामान्यत: यद्यपि सैकड़ों उदाहरणों के प्रतिदर्श का प्रयोग संभव हो सकता है और पर्याप्त शुद्धता से भविष्यवाणी की जा सकती है कि संपूर्ण जनसमूह की अनुक्रिया क्या होगी। इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रतिदर्श जनसमूह का यथार्थ प्रतिनिधित्व करने वाला हो। सांख्यिकीय विधियों से अनभिज्ञ व्यावहारिक व्यक्ति प्राय: आश्चर्य करते हैं कि कोई लघु-प्रतिदर्श संपूर्ण जनसमूह से संबंधित निष्कर्ष पर कैसे पहुँच सकता है। वस्तुत:, यदि प्रतिदर्श यथार्थ प्रतिनिधित्व करने वाला हो, तो कोई कठिनाई इसमें नहीं होती। यह प्रतिनिधि प्रतिचयन का कारक है, जिस पर मतांकन की प्रमुख समस्या अपनी सफलता और असफलता के लिए निर्भर करती है।

सामान्यत: प्रतिदर्शों के निर्माण की दो प्रणालियाँ हैं, जिनसे कि वे जनसमूह का पर्याप्त प्रतिनिधित्व करने वाले हो सकते हैं। (१) संभाव्यता प्रतिचयन (२) यथांश प्रतिचयन।

संभाव्यता प्रतिचयन में जनसमूह का प्रत्येक व्यक्ति इस संभावना से परिचित होता है कि वह भी प्रतिदर्श के रूप में चुना जा सकता है। परिणामस्वरूप सामान्यीकरण में, प्रतिदर्श से जनसमूह पर पहुँचने में मूल की संभाव्य मात्रा को सांख्यिकी ढंग से संगणित किया जा सकता है।

इस प्रणाली को स्पष्ट करने के लिए, अनुमान कीजिए कि, कोई संख्या एक विशद् समूह के सब संपत्ति-स्वामियों के दृष्टिकोणों का सर्वेक्षण करना चाहती हैं। इस समूह पर प्रतिदर्श के निष्कर्षों का वह सामान्यीकरण करना चाहती है और प्रतिदर्श को इसी समूह का प्रतिनिधि होना चाहिए। मतांकनकर्त्ता आय-कर कार्यालय जाता है और संपत्ति-स्वामियों की पूरी सूची वहाँ से प्राप्त करता है, अनेक नामों को बिना किसी क्रम के लिखता है, तदंतर प्रत्येक म-वां क्रम के (दसवें, सौवें और हजारवें, इत्यादि), नामों को सूची से चुन लेता है। इस प्रकार प्रत्येक संपत्ति-स्वामी जिसका नाम म-वां क्रम में आता है, प्रतिदर्श के रूप में चुने जाने का अवसर पाता है।

सूचीपत्रों के आधार पर प्रतिचयन की विधि का व्यापक प्रयोग किया जाता है, यदि लक्षित जनसमूह पूर्णत: सूचीबद्ध हो। इस विधि का प्रमुख दोष यह है कि वह सूची जनसमूह को पूर्णत: प्रस्तुत करने वाली न हो। प्रसिद्ध 'लिटररी डाइजेस्ट' मतांकन में यही हुआ था। इसने १९३६ (न्यूकांब, १९५०) के चुनाव के परिणामों की कितनी गलत भविष्यवाणी की थी। इस मतांकन में टेलीफोन सूचियों का उपयोग किया था और परिणामों ने संभवत: यह पर्याप्त शुद्धता से बताया था कि जिनके पास टेलीफोन थे, वे किस प्रकार मतदान करेंगे। कठिनाई यह थी कि संयुक्त राज्य

अमेरिका में उस समय आधे से कुछ ही अधिक मतदाताओं के पास टेलीफोन की सुविधा थी। ये जनसमूह के अर्थसंपन्न सदस्य थे और शेष मतदाताओं से इनकी राजनीतिक अभिवृत्तियाँ भिन्न थीं। प्रायः ऐसा होता है कि संपत्ति-स्वामियों, टेलीफोन रखने वालों, तुष्टि-गुण उपयोक्ताओं आदि की सूचियाँ समाज के उच्च सामाजिक-आर्थिक स्तर को प्रस्तुत करती हैं और उन्हें संपूर्ण जनसमूह का प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता।

सूचियों से प्रतिचयन करने में दूसरी मुख्य कठिनाई स्पष्टतः यह है कि जिस जनसमूह में हमें रुचि है, उसकी सूची ही न हो। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमेरिका में योग्यता-प्राप्त प्रत्येक मतदाता की कोई सूची नहीं है और ऐसी कोई सूची तैयार करना अत्यधिक व्यय-साध्य है। यदि मतांकनकर्त्ता पूर्वकथन करना चाहे कि राष्ट्रपति-निर्वाचन में राष्ट्र किस प्रकार मतदान करेगा, तो उसे दूसरी विधि का प्रयोग करना पड़ेगा। सामान्यतः जब अपेक्षित जनसमूह की अच्छी सूची न हो, तो उसे कोई उपाय करना ही होगा।

बहुधा इसका विकल्प जनसमूह सूची के स्थान पर क्षेत्रों से प्रतिचयन होता है। १९४८ के एमलिरा, न्यूयार्क के राष्ट्रपति-चुनाव-अभियान-अनुसंधान में, जिसका पूर्वोल्लेख हो चुका है, **क्षेत्र-प्रतिचयन** प्रविधि का उपयोग किया गया था। देश छोटे-छोटे क्षेत्रों में, जैसे नगर ब्लाकों में, विभाजित किया गया था। इनमें से प्रत्येक प्रतिचयन-यूनिट को बेतरतीब क्रम दिया गया। तीन क्षेत्रों में एक को सूक्ष्म अध्ययन के लिए चुना गया और तदंतर प्रत्येक क्षेत्र के निवास स्थान-यूनिटों की सूची तैयार की। इस सूची का उपयोग करते हुए शोधकर्त्ताओं ने यादृच्छिक कुछ निवास स्थान यूनिटों (कक्षों या गृहों) का चयन किया, जिनमें प्रत्येक क्षेत्र में वे निरीक्षणार्थ गए।

अन्य प्रयोगों में मतांकन एजेंसियाँ घरों के पतों को चुन सकती हैं, जिससे कि वे विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में यादृच्छिक रूप से विभाजित हों, वे विविध सामाजिक आर्थिक स्तरों का प्रतिनिधित्व करें तथा अन्य जनांकिकीय कारकों का भी उसी अनुपात में प्रतिनिधित्व करें, जिसमें वे जनसमूह में विद्यमान हैं। तदंतर प्रश्नकर्त्ताओं को विशिष्ट पतों पर भेजा जाता है।

यह क्षेत्र-प्रतिचयन-विधि सर्वाधिक प्रतिनिधिक संतोषप्रद प्रतिदर्श प्रस्तुत करती है, जिसे पाने की कोई आशा कर सकता है और इसीलिए इसके परिणाम बहुत उचित होते हैं। यद्यपि यह व्ययसाध्य है; क्योंकि इसके लिए प्रश्नकर्ताओं को पर्याप्त भ्रमण करना पड़ता है और अपने प्रतिवादी से उपयुक्त उत्तर पाने के पूर्व उन्हें बार-बार जाना पड़ता है। इस विधि का तर्क है कि जो व्यक्ति यादृच्छिक रूप से प्रतिदर्श

के लिए चुना गया है उससे समालाप करना अनिवार्य है, चाहे वह, पहली बार जाने पर घर पर न भी मिले। जो लोग दिन में घर में रहते हैं अथवा जो सहज उपलब्ध हैं, वे अनिवार्यतः सब दृष्टिकोणों से उन लोगों के सदृश नहीं होते, जो घर से दूर रहते हैं अथवा जो प्रश्नकर्ता को सहज-प्राप्य नहीं हैं। इन घर न मिलने वाले व्यक्तियों को छोड़ देने पर प्रतिदर्श में पूर्वग्रह का समावेश हो जाता है और यह जनसमूह का पूर्ण प्रतिनिधिक नहीं रहता ( हिलगार्ड और पेनर, १९४४)।

दो सामान्य विधियों में से द्वितीय विधि इस अनुमान पर आधृत है कि प्रतिदर्श विशद् जन-समूह का सही लघुरूप होगा यदि महत्त्वपूर्ण सामाजिक समूह उसी अनुपात में प्रतिदर्श में प्रस्तुत है, जिसमें वे विशद् जनसमूह में विद्यमान हैं। इस प्रकार के प्रतिनिधित्व को प्राप्त करने के लिए मतांकन एजेंसी निश्चित यथांश निश्चित वर्गों जैसे आयु, लिंगभेद, सामाजिक-आर्थिक स्तर और भौगोलिक क्षेत्रों के लिए निर्धारित कर देती है। तब प्रश्नकर्ताओं को बताया जाता है कि प्रत्येक वर्ग में वे प्रतिवादियों से कितने समालाप या प्रश्न करें। अपने यथांश की पूर्ति वे किस प्रकार करेंगे, इसको कुछ मात्रा में प्रश्नकर्त्ताओं के निर्णय पर छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार यथांशों को निर्धारित करने पर एजेंसी जनसमूह के उपयुक्त अनुप्रस्थ-काट को प्राप्त करने की आशा करती है। प्रश्नकर्त्ताओं की इच्छा पर छोड़ देने पर वे प्रायः ऐसे व्यक्ति का चुनाव करते हैं, जो अपेक्षाकृत अधिक सहयोग देने वाला प्रतीत हो अथवा उस घर को चुनते हैं, जो अधिक सुचारु रूप से व्यवस्थित दिखायी दे। अतः, प्रतिदर्शों में पूर्वग्रहों के उत्पन्न होने की संभावना रहती है। जब कभी इन पूर्वग्रहों का संबंध अभिवृत्तियों से रहता है, यथांश-प्रतिचयन-विधि अनुचित परिणाम देती है। राष्ट्रीय चुनाव के संबंध में भविष्यवाणी के प्रयासों में कुछ मात्रा में अज्ञात भूल होने का यह एक कारण है।

जनमत-मतांकन संबंधी इस संक्षिप्त विवरण से यह देखा जा सकता है कि मतांकनार्थ प्रश्नों का निर्माण एवं उसकी व्यवस्था करना सरल कार्य नहीं है। अभिवृत्तियों के परिमापन के प्रचुर ज्ञान एवं अनुभव के साथ-साथ मतांकन अभियान अभिकल्पित करने एवं उसका प्रबंध करने के लिए सांख्यिकीय योग्यताएँ भी अपेक्षित हैं। अतः, अनिपुण व्यक्तियों को मतांकन करने का प्रयास करने का परामर्श नहीं दिया जा सकता। सुप्रशिक्षित व्यक्तियों के निरीक्षण में जनमत-मतांकन अपेक्षाकृत बहुत कम भूलों के साथ पर्याप्त सूचनाएँ प्रस्तुत कर सकते हैं। अनुभवहीन व्यक्ति के हाथ में आने पर उनके केवल गलत सूचनाएँ देने की ही संभावना है।

**बाजार-अनुसंधान :**

जनमत मतांकन से निकट संबंधित एक विशिष्ट विषय, जो पिछले वर्षों में बहुत विकसित हुआ है, बाजार-अनुसंधान है। दोनों में प्रमुख अंतर है, उनके द्वारा

भिन्न प्रकार की अभिवृत्तियों को परिमापित करने का प्रयत्न। बाजार-अनुसंधान में विशिष्ट वस्तुओं के उत्पादन या उत्पाद्य वस्तुओं से संबंधित अभिवृत्तियों को परिमापित किया जाता है न कि जनसाधारण से संबंधित अभिवृत्तियों को। इसके अतिरिक्त बाजार-अनुसंधान प्रायः **विशिष्ट सूचनाओं को प्रकाशित करता है**, जैसे पिछली बार गृहिणी ने कौन-सा दंतमंजन खरीदा था, संप्रति उसने कौन सा विज्ञापन देखा, वह कौन-सी पत्रिकाएँ नियमित रूप से पढ़ती है अथवा वह रेडियो के किन कार्यक्रमों को सुनती है। ऐसी तथ्यपूर्ण सूचनाएँ एवं किसी विशेष उत्पाद्य वस्तु के प्रति लोगों की रुचि और अरुचि की सूचनाएँ विज्ञापकों को, अधिक ग्रहणीय विज्ञापनों को, नियोजित करने की सुविधा देती हैं। यह निर्माताओं को भी उत्पाद्य पदार्थों को अभिकल्पित करने में सहायता देता है, जिससे कि वे वस्तुएँ अधिक रुचि के साथ ग्रहण हों। इन भिन्नताओं को छोड़ कर बाजार-अनुसंधान और जनमत-मतांकन की विधियों और समस्याओं में बहुत निकट सादृश्यता है।

## दर्शक-श्रोता परिमापन :

विज्ञापकों को केवल इसमें ही रुचि नहीं रहती कि वे किसका विज्ञापन करते हैं और वे कैसे विज्ञापन करते हैं, वरन् जिस माध्यम द्वारा विज्ञापन करते हैं, उसमें भी रुचि रखते हैं,—समाचारपत्र, पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो और टेलिविजन। वस्तुतः ये माध्यम पूर्णतः अथवा अंशतः विज्ञापनों से प्राप्त धनराशि से ही चलते हैं। सभी संबंधित विज्ञापक अपने विज्ञापनों को देखने-सुनने वालों की संख्या को जानना चाहेंगे। अतएव, संप्रति कुछ वर्षों में दर्शक-श्रोताओं की सीमा प्रकृति और अभिवृत्तियों के परिमापन की चेष्टाओं में पर्याप्त वृद्धि हो रही है।

अनेक प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाएँ, उदाहरणतः, निरंतर इस सर्वेक्षण की व्यवस्था करते कि यह निर्धारित हो सके कि कितने लोग उन्हें पढ़ते हैं और वे किस प्रकार के हैं—उनकी खरीदने की आदतें, उनका शिक्षा-स्तर, उनकी रुचियाँ एवं उनकी पढ़ने की आदतें। इसके अतिरिक्त वे इसकी भी खोज करेंगे कि पत्रिका का कौन-सा भाग अधिक पढ़ा जाता है, किस प्रकार की कहानियाँ अधिक लोकप्रिय हैं और किन विज्ञापनों को अधिक देखा जाता है। इनसे वे यह अधिक अच्छी तरह जान सकते हैं कि पत्रिकाओं में विभिन्न स्थलों पर प्रकाशित विभिन्न विज्ञापनों का क्या प्रभाव होता है।

रेडियो और टेलिविजन स्टेशनों की कुछ भिन्न समस्याएँ हैं। उन्हें सर्वप्रथम पता लगाना होगा कि किस प्रकार के लोग दिन के किन विभिन्न कालों में और किन कार्यक्रमों के लिए उन्हें सुनते हैं। यह जानने की सर्वाधिक सामान्य विधि है कि

( सूचियों की विधि का उपयोग करते हुए ) जिन घरों में टेलीफोन हैं, उनसे इस प्रकार के प्रश्न किए जाएँ (हूपर, १९४६) :

१. क्या अभी आप रेडियो सुन रहे थे (या टेलिविजन देख रहे थे) ?
२. कृपया बताएँ कि आप कौन-सा कार्यक्रम सुन रहे थे ?
३. किस स्टेशन से सुन रहे थे ?
४. उसमें किसका विज्ञापन था ?
५. आपके घर में कितने पुरुष, कितनी महिलाएँ और बच्चे वस्तुतः सुन रहे थे ?

इस प्रकार के मतांकन द्वारा हम 'हूपर-निर्धारण' (Hooper rating ) पर पहुँच सकते हैं, जिससे पता चलता है कि कितने प्रतिशत घरों में किन विशेष स्टेशनों पर रेडियो लगाया जाता है। ऐसी गणना का विज्ञापकों के इस निर्णय में पर्याप्त महत्त्व रहता है कि वह श्रोताओं की उस संख्या और उस प्रकार तक पहुँच पाता है या नहीं, जिसकी वह उस कार्यक्रम द्वारा इच्छा करता है और जिसके लिए वह व्यय करता है।

## जातीय अभिवृत्तियाँ और द्वंद्व :

'जाति' शब्द का साधारणतः अर्थ होता है, **मनुष्यों का वह समूह जिसकी अंतर्जात शारीरिक विशेषताएँ सामान्य और विशिष्ट होती हैं।** यह अति विवादग्रस्त विषय है, जिसका विवेचन हम यहाँ नहीं करेंगे, कि क्या वस्तुतः कोई 'जातियाँ' हैं और यदि हैं, तो वे कौन-सी हैं और कितनी हैं (क्लीनेबर्ग, १९५४)। जब हम जातीय द्वंद्व की चर्चा करेंगे, हम सामाजिक द्वंद्व का उल्लेख करेंगे, जो किसी विशिष्ट सामान्य विशेषतापरक सामाजिक समूह के विरुद्ध पूर्वाग्रह का परिणाम होता है। वह सामान्य विशेषता जातीय, धार्मिक, राष्ट्रीय जात है अथवा उसका मूल कुछ और है। इस परिच्छेद के अधिकांश उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रच-लित नीग्रो-विरोधी पूर्वग्रहों से लिए गए हैं; क्योंकि यह पूर्वग्रह इस देश में सर्वाधिक गहन है तथा इसलिए भी कि इस पूर्वग्रह का मनोवैज्ञानिकों एवं अन्य विद्वानों द्वारा सर्वाधिक अध्ययन किया गया है। किंतु, जो सिद्धांत नीग्रो और गोरे लोगों के मध्य द्वंद्व के हैं, वे ही अन्य 'जातीय' द्वंद्वों पर भी लागू होते हैं।

## पूर्वग्रह-अर्जन :

पूर्वग्रह क्या है ? हम पहले इसकी परिभाषा इस प्रकार दे चुके हैं यह किसी व्यक्ति, किसी चेतन अथवा जड़ वस्तु के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति है। यहाँ हम इसका प्रयोग जिस रूप में कर रहे हैं, वह **किसी सामाजिक-समूह के प्रति विरोधी अभिवृत्ति** के अर्थ में है। अतः नीग्रो, जर्मन, राजनीतिज्ञों, साम्यवादियों या अन्य किसी समूह के प्रति आक्रामक अभिवृत्ति ही पूर्वग्रह है। अन्य शब्दों में, इसका कोई महत्त्व नहीं है

कि पूर्वग्रह का कोई वस्तुनिष्ठ आधार है अथवा नहीं। यदि किसी समूह के प्रति विरोधी भाव है, तो वह पूर्वग्रह है।

पूर्वग्रह अभिवृत्तियाँ हैं और अन्य अभिवृत्तियों के ही सदृश वे पूर्व-विवेचित अभिवृत्ति के विकास और स्थायित्व के सिद्धांतों का पालन करते हैं। विशेष तथ्य यह है कि **वे अधिगत किए जाते हैं।** यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि पूर्वग्रहों को अधिगत किस प्रकार किया जाता है, जब कि उन्हें समाप्त करने का सबसे अच्छा तरीका है, प्रथम स्थल पर ही उन्हें अधिगत करने से रोक देना।

तर्कयुक्त दृष्टि से दो संभावित तरीके हैं, जिनसे पूर्वग्रह सीखा जा सकता है: (१) पूर्वग्रह की वस्तु के संपर्क से अथवा (२) उन व्यक्तियों के संपर्क से, जिनमें पूर्वग्रह है। वस्तुतः पूर्वग्रह दोनों तरीकों से सीखे जाते हैं, किंतु विविध प्रयोगों ने प्रमाणित किया है कि **वे पूर्वग्रहग्रसित व्यक्तियों के संपर्क से अधिक सामान्य रूप में अर्जित किए जाते हैं।**

ग्रामीण टेनीसी (Tennessee) बच्चों पर किए गए प्रयोग (होरोविट्ज और होरोविट्ज, १९३८) ने प्रदर्शित किया कि उनके माता-पिताओं ने उन्हें नीग्रो-बालकों से दूर रहने के लिए आदेश दिया था और इस आदेश का उल्लंघन करने पर कभी-कभी उनके माता-पिता उन्हें कठोर दंड देते थे। अनेक प्रयोगों ने सिद्ध किया है कि चाहे जिन अभिवृत्तियों का अध्ययन किया जाए, माता-पिता एवं उनके बच्चों की अभिवृत्तियों में निकट सहसंबंध अन्य अभिवृत्तियों की अपेक्षा अधिक होता है। (न्यूकाम्ब और स्वेहला, १९३८)।

पूर्वग्रह सिखाने वाले शिक्षक केवल माता-पिता ही नहीं होते। स्कूल के साथी, अध्यापक एवं संपर्क में आने वाली अन्य सामान्य वस्तुएँ, जैसे समाचारपत्र और टेलीविजन भी प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त जिन व्यक्तियों से हम मिलते हैं, उनमें से भी अधिकांश हमारी अभिवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। अतः, हम पूर्वग्रह-शिक्षकों के संमुख निरंतर रहते हैं। यदि ये विविध स्रोत एक ही संदेश दें, तो इसमें आश्चर्य नहीं कि अनेक नन्हें बालक उसे स्वीकार करेंगे।

इस तथ्य का विशेष रूप से नाटकीय प्रदर्शन, कि पूर्वग्रह प्रायः पूर्वग्रहग्रसित व्यक्ति के संपर्क से अधिक अधिगत किया जाता है, बनिस्पत उन व्यक्तियों के, जिनके विरुद्ध यह होता है, बहुत तीव्र साम्यवाद-विरोधी पूर्वग्रह है, जो आज प्रायः सब अमरीकन लोगों द्वारा स्वीकार किया गया है। बहुत कम अमरीकन ऐसे हैं, जो कभी साम्यवादियों से मिले हों। जो कुछ वे साम्यवादियों के संबंध में जानते हैं, उन्होंने समाचारपत्रों, टेलिविजन और सूचनाओं के अन्य सरकारी माध्यमों से सीखा है।

यदि कभी यह वांछनीय हो—जैसा कि द्वितीय विश्वयुद्ध में हुआ था, जब रूस वाले हमारे मित्र थे—कि साम्यवादियों के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति विकसित की जाए, तो संभवतः सरकारी माध्यमों का इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भरसक उपयोग किया जाएगा। पूर्वग्रह के संबंध में बालक प्रथम बात यह सीखता है कि विवेच्य समूह 'दोषपूर्ण' है। बाद में वह उस समूह के संबंध में अधिक सूक्ष्म बातों को सीखता है।

उदाहरणतः एक प्रयोग द्वारा प्रकट हुआ कि दक्षिणी ( अमरीका के ) गोरे बच्चों का विश्वास था कि नीग्रो लोग गोरे लोगों की अपेक्षा अनेक विशेषकों ( Trait ) में, यहाँ तक कि धार्मिकता के 'विशेषक' में भी निम्न होते हैं ( ब्लेक और डेनिस, १९४३ )। बड़े बच्चों ने नीग्रो लोगों के संबंध में विश्वासों का अधिक स्पष्ट प्रतिरूप प्रकट किया, जैसे उन्होंने नीग्रो लोगों को गोरे लोगों की अपेक्षा अधिक धार्मिक निर्धारित किया।

किसी समूह के विरुद्ध पूर्वग्रह विकसित होने का कारण वैयक्तिक अनुभव भी हो सकता है, किंतु पूर्वग्रह का यह कारणभूत स्रोत संभवतः विरल होता है। वास्तव में उस समूह के साथ सीधा संपर्क होना कभी-कभी पूर्वग्रह का उपचार बन जाता है।

उदाहरणार्थ, सेना ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय नीग्रो और गोरे सैनिकों के मिश्रित यूनिट बनाने के प्रयोग का प्रयत्न किया। ऐसे यूनिटों में कार्य करने वाले गोरे लोगों की नीग्रो लोगों के प्रति अभिवृत्तियों को कार्य करने के पहले और बाद में भी परिमापित किया गया। लगभग सभी उदाहरणों में मिश्रित यूनिटों में कार्य करने पर गोरे लोगों के पूर्वग्रह पहले की अपेक्षा कम हो गए एवं मिश्रित यूनिटों में जो नीग्रो थे, आकस्मिक रूप में, वे युद्ध में पृथक् यूनिटों के नीग्रो सैनिकों की अपेक्षा अधिक योग्य प्रमाणित हुए।

## पूर्वग्रह के लिए समर्थन :

एक बार जिन पूर्वग्रहों को अधिगत कर लिया जाता है, उन्हें विस्मरण अथवा अप्रयोग द्वारा समाप्त नहीं कर दिया जाता। **वरन् वे व्यक्ति की आवश्यकताओं की तृप्ति के प्रयोजन की पूर्ति करते रहते हैं**। इसके अतिरिक्त, वे उसके प्रत्यक्षीकरण और स्मरण को इस प्रकार परिवर्तित कर देते हैं, जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके कि उसके दैनिक जीवन के अनुभव भी उसके पूर्वग्रहों का समर्थन करते हैं। फलस्वरूप, अपनी आवश्यकताओं और अपने प्रत्यक्षीकरण के मध्य व्यक्ति अपने पूर्वग्रहों को प्रायः दृढ़तापूर्वक प्रोत्साहित करता रहता है।

आवश्यकताएँ :

पूर्वग्रह द्वारा पोषित सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता संभवत: 'प्रतिष्ठा' या 'स्तर' है। पूर्वग्रह एक सामाजिक सोपानात्मक-क्रम का निर्माण करता है, जिसमें पूर्वग्रहग्रसित व्यक्ति का श्रेष्ठ स्तर रहता है। यदि कोई नीग्रो लोगों के विरुद्ध पूर्वग्रहग्रसित है, तो उसका विश्वास है कि नीग्रो लोगों का स्तर उससे निम्न है और इसलिए कि वह उनसे श्रेष्ठ है। कुछ व्यक्तियों को अपनी श्रेष्ठता के संबंध में सोचने की आवश्यकता रहती है—अपने को अन्य व्यक्तियों से श्रेष्ठतर सोचते हैं (देखिए : अध्याय—३)। सदर्न नगर की गंदी बस्ती में रहने वाले सबसे अधिक गरीब, अशिक्षित और महत्त्वहीन गोरे व्यक्ति को यह 'जान कर' संतोष होता है कि वह उस क्षेत्र में रहने वाले अधिकांश व्यक्तियों से मानसिक दृष्टि से, नैतिक दृष्टि से एवं सामाजिक दृष्टि से श्रेष्ठतर है।

पूर्वग्रह आक्रामकता क्रोध को अभिव्यक्त करने की आवश्यकता की भी पूर्ति करता है। मनोवैज्ञानिकों के पास यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं, जैसा कि अध्याय-४ और ५ में हम लिख चुके हैं कि शत्रुता ( अथवा आक्रामकता ) आवश्यकताओं की हताशा में प्राय: उत्पन्न होती है। साधारण अनुभवों से इस विचार की संगति प्रतीत होती है; क्योंकि हम व्यक्तियों को अपनी वांछित वस्तु न प्राप्त करने पर खिन्न और क्रोधित होते देखते हैं अथवा उनके प्रयत्नों में किसी वस्तु या किसी व्यक्ति द्वारा व्यवधान उपस्थित करने पर भी उन्हें क्रोधित होते देखते हैं।

हताशा से उत्पन्न क्रोध प्राय: सरलता से उसी पर उबल पड़ता है, जो हताशा का हेतु हो। जब उच्चतर स्तर का कोई व्यक्ति अथवा व्यक्ति की सामर्थ्य के परे की कोई स्थिति हताशा उत्पन्न करे, तो क्रोध किसी अन्य रूप में अभिव्यक्त होना चाहिए। फलस्वरूप **विस्थापित क्रोध** (देखिए अध्याय—५) होता है।

> "एक प्रयोग में ( सीअर्स एट० एल०, १९४० ) मनोवैज्ञानिकों ने विद्यार्थियों को दीर्घकाल तक निद्रा, भोजन, सिगरेट, और यहाँ तक कि वार्तालाप की सुविधा से भी वंचित रखा, एक विद्यार्थी ने अपने क्रोध को विरोधी-चित्रों में अभिव्यक्त किया। अन्य उदाहरणों में यह क्रोध किसी ऐसे 'निम्न' समूह के विरुद्ध पूर्वग्रह के रूप में अभिव्यक्त हो सकता है, जो प्रतिकार नहीं कर सकता। इस प्रकार का विस्थापित क्रोध इस उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है, लेफ्टिनेंट सारजेंट पर क्रोध करता है, सारजेंट किसी गाड़ी के ड्राइवर पर और ड्राइवर किसी कुत्ते पर उसे मार कर। यह अधिक वैज्ञानिक ढंग से एक ग्रीष्म-शिविर में लड़कों पर किए गए प्रयोग द्वारा स्पष्ट

किया गया है। लड़कों में हताशा को, उन्हें चलचित्र देखने की अनुमति न देकर, उत्पन्न किया गया। हताशा के पूर्व और उसके उपरांत उनकी मेक्सिकोवासियों और जापानियों के प्रति अभिवृत्तियों को परिमापित किया और इन परिमापनों ने स्पष्ट किया कि प्रयोग-पात्र हताशा के पूर्व की अपेक्षा बाद में पर्याप्त अधिक पूर्वग्रहित थे (मीलर और बुगेलस्की, १९४८)।"

**बलिदान का बकरा बनना (Scape Goating) :**

इस विस्थापित क्रोध का जातीय द्वंद्व में विशेष महत्त्व है। इस रूप में यह दूसरों के अपराध का दंड भोगना (स्केप गोटिंग) कहलाता है। पूर्वग्रहग्रसित व्यक्ति जो आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक कुंठाएँ सहन करता है, अपने क्रोध को किसी सहज उपलब्ध वस्तु या व्यक्ति के विरुद्ध अभिव्यक्त करता है और सर्वाधिक सहज उपलब्ध वस्तु वह समूह है, जिसके विरुद्ध वह पहले से ही पूर्वग्रहित है। इसकी संभावना और अधिक होती है यदि वह तथ्यों को इस प्रकार विकृत कर सके कि उसकी हताशा का कारण वही समूह है। इस प्रकार के विस्थापन का अति प्रसिद्ध उदाहरण है जर्मनी द्वारा १९३० में यहूदियों पर किया गया अत्याचार। हिटलर अपने अनुयायियों को यह विश्वास दिलाने में सफल रहा (जो प्रारंभ से ही सेमिटिक-विरोधी थे) कि जर्मनी के अधिकांश आर्थिक और सामाजिक अभिशापों के लिए यहूदी लोग उत्तरदायी हैं। इस प्रकार उसने यहूदियों को विस्थापित-क्रोध का शिकार बनाया।

निरपराध को दंडित करना, शत्रुता का विस्थापन किसी अल्पसंख्यक समूह पर ही संभव है, किंतु वह क्रोध जो कुंठित करने वाले पर न हो सके, वह किसी अल्प-संख्यक समूह पर अनिवार्यतः विस्थापित नहीं होता। पूर्वोल्लिखित ग्रीष्म-शिविर के अनेक लड़कों ने विस्थापित क्रोध (पूर्वग्रह) प्रकट नहीं किया। जब उसी प्रयोग को दूसरे जनसमूहों पर दोहराया, तो अल्पसंख्यक समूहों के प्रति पूर्वग्रह में सदैव वृद्धि नहीं हुई।

यहाँ 'बलि का बकरा बनाने' वाले कुछ प्रभावशाली कारकों का विवेचन किया जा सकता है, यद्यपि उनका पूर्ण विवेचन हमारे क्षेत्र के बाहर का विषय है। 'निरपराध को दंडित करने' को अच्छी तरह **सामान्यीकरण उद्दीपन** (देखिए अध्याय-७) के संप्रत्यय द्वारा समझा जा सकता है। कुंठा जागृत करने वाला व्यक्ति, जो दूसरे व्यक्ति में शत्रुता या विरोध उद्दीप्त करता है, मूल उद्दीपन कहा जा सकता है। हम अनुबंधन-प्रयोगों में सामान्यीकरण उद्दीपन के विवेचन में देख चुके हैं, एक बार प्राणी इस अनुक्रिया को सीख लेता है, तो अन्य उद्दीपन भी उसे उद्दीप्त कर सकते हैं। अन्य उद्दीपनों में मूल उद्दीपन से जितनी अधिक निकट सादृश्यता होगी, उस अनुक्रिया

को उतना ही अधिक उत्पन्न करने की संभावना रहेगी। अतएव, हताशा उत्पन्न करने वाले मूल व्यक्ति के सदृश लोग भी कुंठाग्रहित व्यक्ति में शत्रुता उद्दीप्त कर सकते हैं।

आवश्यक नहीं कि यह सादृश्यता शारीरिक हो। कुंठा उत्पन्न करने वाले व्यक्ति में और जिन लोगों की ओर यह हो गई है, उनमें शारीरिक सादृश्यता के बहुत कम होने अथवा बिलकुल न होने पर भी शत्रुता सामान्यीकृत हो सकती है। क्रोधित व्यक्ति के लिए यह सादृश्यता गुणमूलक भी हो सकती है। उदाहरणतः, केवल एक बात में साम्य होना चाहिए कि वह दोनों से घृणा करता है। अतएव, शत्रुता एक कुंठा उत्पन्न करने वाले से दूसरी वस्तु पर सामान्यीकृत हो सकती है; क्योंकि दोनों के प्रति घृणा एक ऐसा गुण है, जो दोनों को एक सदृश बना देता है (बर्कोविट्ज और होल्म्स, १९५९)। यह विश्लेषण प्रकट करता है कि ग्रीष्म-शिविर के लड़कों में मेक्सिकोवासियों और जापानियों के प्रति पूर्व-घृणा रही होगी और बिना उस समूह के प्रति पूर्व-घृणा के वे परिणाम नहीं हो सकते थे।

इस विश्लेषण में प्रमुख तथ्य अब तक यह मिलता है कि यदि सीधे आक्रमण के लिए हताशा उत्पन्न करने वाला व्यक्ति न मिले, तो शत्रुता ऐसे व्यक्ति पर विस्थापित होती है, जो उससे अत्यधिक साम्य रखता है (अर्थात्, उसकी अनुपस्थिति के कारण) यदि क्रोधित व्यक्ति को यह भय हो कि हताशा उद्दीप्त करने वाला व्यक्ति चोट खाने पर प्रतिकार ले सकता है, तो परिणाम भिन्न होगा। इस स्थिति में वह व्यक्ति संभवतः हताशा उत्पन्न करने वाले एवं उससे साम्य रखने वाले, दोनों के प्रति अपने क्रोध को पी लेगा। और बहुत अधिक संभावना है कि उनके स्थान पर वह ऐसे लोगों पर आक्रमण करे, जिसका हताशा उत्पन्न करने वाले से साधारण साम्य है।

क्रोधित व्यक्ति के व्यक्तित्व-लक्षण भी उसके क्रोध को अल्पसंख्यक समूहों पर विस्थापित करने के लिए प्रभावित कर सकते हैं। हमारे तीव्र-जातीय-केंद्रित ( Ethnocentric ) व्यक्तियों के विवेचन में यह भी स्पष्ट था कि इस प्रकार के व्यक्ति में क्रोध को विस्थापित करने की तत्परता रहती है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि तीव्र-जातीय-केंद्रित व्यक्ति ने अपने क्रोध के तनाव को कम करने के लिए ऐसे व्यक्तियों पर आक्रमण करना सीखा है, जो अपेक्षाकृत शक्तिहीन होते हैं, विशेषतः अल्पसंख्यक समूहों पर, अतएव पूर्वग्रह घनीभूत क्रोध की अभिव्यक्ति का साधन हो सकता है।

उदाहरणार्थ, एक प्रयोग में नीग्रो के प्रति पूर्वाग्रहित बच्चों में जो दमित क्रोध से मुक्त थे, उन्होंने यह कहीं अधिक सरलता से सीखा कि पूर्वग्रह नहीं होना

चाहिए। जिनके व्यक्तित्व का विद्रोही प्रतिरूप था, शिक्षण-प्रविधियों का उन पर केवल यही प्रभाव हुआ कि वे और अधिक पूर्वग्रहित हो गए, अपने अध्यापकों एवं समाज दोनों के विरुद्ध (बर्कोविट्ज, १९५९)। अतः, पूर्वाग्रहित अभिवृत्तियों के सुधार के साधन के रूप में शिक्षा का मूल्य उस व्यक्ति पर निर्भर करता है, जिसे 'शिक्षित' किया जाए।

मि० बिगौट
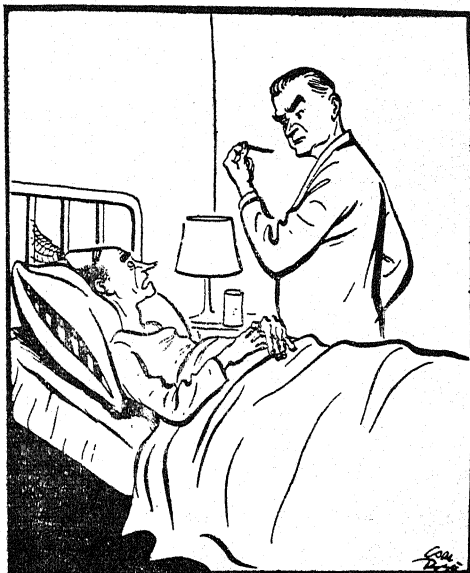
"डाक्टर, यदि मुझे रुधिर-आधान की आवश्यकता है, तो मैं निश्चित करना चाहता हूँ कि मुझे नीले छठी-पीढ़ी अमरीकी-रक्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया जाएगा।"

**चित्र १३४ पूर्वग्रह के अध्ययन में मि० बिगौट के कार्टूनों के उपयोग का उदाहरण (अमेरिकन जेविश कमिटी एंड कार्ल रोज)।**

## प्रत्यक्षीकरण एवं निर्णय :

पूर्वग्रह केवल **आवश्यकताओं** द्वारा ही समर्थित नहीं होता, वरन् प्रत्यक्षीकरण और निर्णय के परिवर्तनों द्वारा भी। हम इसका उल्लेख ऊपर कर चुके हैं, किंतु इसका पुनर्निरीक्षण आवश्यक है; क्योंकि पूर्वग्रह के परिरक्षण से निकट संबंधित है। पूर्वग्रह प्रत्यक्षीकरण को परिवर्त्तित कर देता है जिससे कि हम जो देखना चाहते हैं, वही देखते हैं अथवा हम विश्वास करते हैं कि हम वह देखेंगे। यदि हम विश्वास

करते हैं कि नीग्रो लोग गंदे और मूर्ख होते हैं, तो हम नीग्रो लोगों की गंदगी और मूर्खता की घटनाओं पर विशेष ध्यान देते हैं, जब कि गोरे लोगों की वैसी ही घटनाओं पर या नीग्रो लोगों की स्वच्छता और बुद्धिमता की स्पष्ट घटनाओं पर हम कम ध्यान देंगे। वस्तुत: अभ्यास द्वारा हम अपने पूर्वग्रहों से संगत बातों को देखने में बहुत कुशल हो जाते हैं।

मि० ब्रिगौट
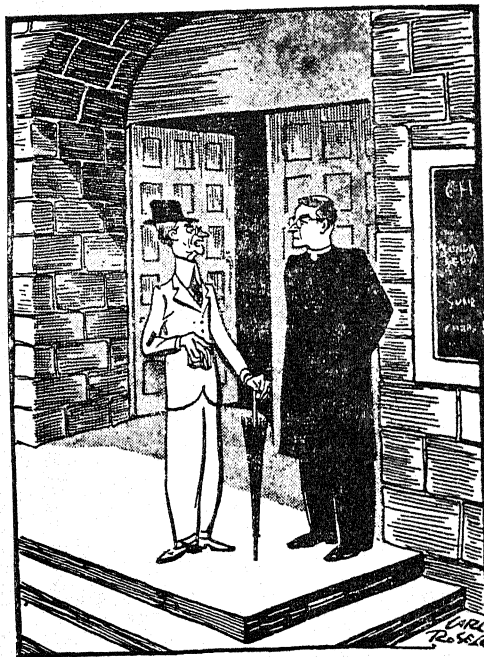
चित्र १७.४ का शेष भावांश

मि० बिगौट "श्रद्धेय, क्या आपके प्रवचन में यहूदी पृष्ठभूमि में—लार्ड के—पर पर बल देना आवश्यक था?"

एक प्रयोग इसे स्पष्ट करता है कि पूर्वग्रह किस तरह स्थिति के निर्णय और स्पष्टीकरण को विकृत कर सकता है (कूपर और जहोडा, १९४७)। इस प्रयोग में, प्रयोग-पात्रों को मिस्टर बिगौट के चरित्र प्रकट करने वाले अनेक कार्टूनों को दिखाया गया। इन कार्टूनों से होने वाली प्रतिक्रियाओं को उनसे व्यक्त करने के लिए कहा गया। एक प्रयोग-पात्र, जो पूर्वग्रहित था, उसने चित्र १७.४ के कार्टून को निम्नलिखित ढंग से स्पष्ट किया, यदि मि० बिगौट केवल छठी-पीढ़ी के अमरीकी हैं, तो वे नवागंतुक है और वे इतना महत्त्व पाने के अधिकारी नहीं हैं।

## सामाजिक बाधाएँ (Social handicaps) :

पूर्वग्रह को बनाए रखने वाले प्रतिबंधों की सूची में अंतिम, पर कम महत्त्व-पूर्ण नहीं, है पूर्वग्रह पर सामाजिक प्रभाव। जिस सीमा तक सामाजिक अवस्थाओं में पूर्वग्रह को क्रियाशील होने की अनुमति दी जाती है, उस सीमा तक यह ठीक उस संसार को उत्पन्न करता है, जिसकी पूर्वग्रहित व्यक्ति कल्पना करता है। उदाहरणतः नीग्रो-विरोधी पूर्वग्रहित व्यक्ति विश्वास करते हैं कि नीग्रो लोग गोरे लोगों की अपेक्षा कम बुद्धिमान होते हैं। यह विश्वास करके वे नीग्रो लोगों को स्कूलों में उचित शिक्षा लेने, पुस्तकालयों की सुविधाओं, अच्छे घरों की सुविधाओं एवं अन्य सांस्कृतिक सुविधाओं से रोकते हैं। फलतः नीग्रो लोगों को सामाजिक बाधा मिलती है, जो उन्हें गोरे लोगों के सदृश सुशिक्षित एवं 'बुद्धिमान' बनने से रोकती है। अतः, पूर्वग्रह 'सत्य' सिद्ध होता है। यह ऐसी सामाजिक स्थिति उत्पन्न करता है, जो पूर्वग्रह को संगत प्रमाणित करता है। स्पष्ट ही यह दुश्चक्र है, जिसमें पूर्वग्रह के प्रभाव, पूर्वग्रह के बने रहने में प्रेक्षणीय आधार प्रस्तुत करके सहायक होते हैं।

## पूर्वग्रहों के सामाजिक प्रभाव :

हमने अभी पूर्वग्रह के केवल एक प्रभाव का उल्लेख किया है, ऐसी सामाजिक अवस्थाओं का निर्माण, जो पूर्वग्रह को पुष्ट करें। किंतु, अब हम पूर्वग्रह के सामाजिक परिणामों पर विस्तार से विचार करेंगे।

संभवतः पूर्वग्रह का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव है कि पूर्वग्रहित व्यक्ति उनसे दूर रहना चाहते हैं, जिनके विरुद्ध उनमें पूर्वग्रह है। इस तथ्य को हजारों या लाखों व्यक्तियों पर लागू करके मापक पर परीक्षा करने से बहुत सहज परिणाम मिलता है **पृथक्करण** (Segregation)। मध्यकाल में तथा पूर्वी यूरोप में संप्रति भी यहूदियों से घेटो (यहूदियों की विशेष बस्तियाँ) में रहने की अपेक्षा की जाती है। आजकल ऐसी बहुत बस्तियाँ नहीं हैं, किंतु अमरीका में आज भी बड़े-बड़े क्षेत्र हैं, जिनमें केवल नीग्रो रहते हैं और उनसे कहीं बड़े क्षेत्र हैं, जहाँ नीग्रो को रहने की अनुमति नहीं है। किंतु, पृथक्करण केवल इसी में नहीं है कि नीग्रो कहाँ रहें। उन्हें गोरे लोगों के स्टोर से वस्तुएँ क्रय करने का भी अधिकार नहीं है, वे गोरे लोगों के मनोरंजन-स्थलों में नहीं जा सकते, गोरे लोगों की प्राप्त सुविधाएँ भी उन्हें नहीं हैं, जैसे—रेल-रोड, गाड़ियों का एवं बसों में अगली पंक्ति की सीटों का उपयोग तथा सबसे महत्त्वपूर्ण है, अनेक नौकरियों को स्वीकार करना। कभी-कभी पृथक्करण हास्यास्पद अति-सीमा तक पहुँच जाता है। उच्च जाति के हिंदू निम्न जाति के हिंदुओं के साथ भोजन करना अपमान समझते हैं। संभवतः नीग्रो लोगों के पृथक्करण का सर्वाधिक

उल्लेखनीय कार्यक्रम आधुनिक विश्व में दक्षिण-अमरीका में पूर्ण पृथक्करण का है—जातीय **पृथग्वासन** (apartheid)।

समान सुविधाओं के साथ पृथक्करण सैद्धांतिक रूप से संभव हो सकता है। इसलिए १८९६ में संयुक्त राज्य सर्वोच्च न्यायालय ने पृथक्, किंतु समान, सुविधाओं की अनुमति का निर्णय दिया था। किंतु, इसका भी व्यावहारिक रूप नहीं हुआ। पृथक् किया गया अल्पसंख्यक समूह अनिवार्यतः असुविधाजनक, कष्टकर या अस्वास्थ्यकर अवस्थाओं में निम्न सुविधाओं को स्वीकार करने के लिए बाध्य हुआ; क्योंकि पृथक्करण बहुसंख्यक समूहों को अल्पसंख्यकों के प्रति अपने पूर्वाग्रहों की 'पूर्ति' की सुविधा देता है। इस स्थिति को स्वीकार करके अंत में सर्वोच्च न्यायालय ने १९५४ में शिक्षा के क्षेत्र में पृथक्करण को समाप्त किया। इसने केवल इस सामाजिक सत्य को कानूनी स्वीकृति दी कि पृथक्—सुविधाएँ शायद ही कभी समान होती हैं।
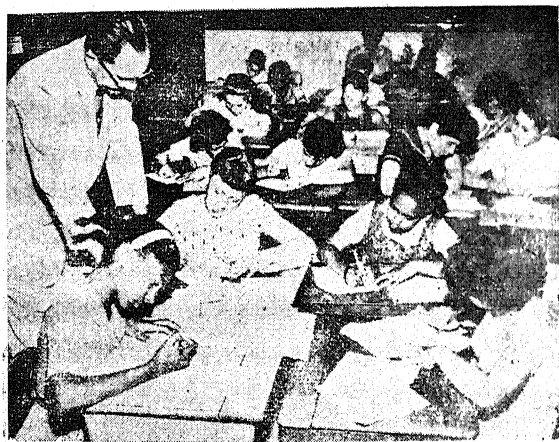
**चित्र १७·५ अध्यापक पूर्वग्रह को, उसकी शिक्षा न देकर और जातीय भिन्नताओं की उपेक्षा करके, समाप्त कर सकते हैं** (हंटर कालेज एलिमेंटरी स्कूल)

### जातीय द्वंद्व को रोकना :

हम देख चुके हैं कि जातीय द्वंद्व की जड़ें जातीय पूर्वग्रह में रहती हैं। जातीय द्वंद्व को रोकने या उसको उपशमित करने के लिए जातीय पूर्वग्रह को मिटाने की चेष्टा की अपेक्षा है। पूर्वग्रह-संबंधी हमारे विश्लेषण से उसका सहयोग देने के लिए अनेक नियमों को सहज ही बनाया जा सकता है। इन नियमों को कहना उनको व्यवहार में लाने की अपेक्षा सरल है :

**१. माता-पिता एवं अध्यापकों को पूर्वग्रहों की शिक्षा बच्चों को देने से रोकना।** यह करना कठिन है, किंतु संप्रति कुछ वर्षों में इसमें अधिक-से-अधिक सफलता मिल रही है (देखिए, चित्र १७·५)।

**२. पूर्वग्रहों के समथनों को समाप्त कर दीजिए तथा पूर्वग्रहित व्यक्ति को पर्वग्रह के विपरीत प्रमाण दीजिए।** प्रत्यक्षीकरण तथा निर्णय पर पूर्वग्रह के विकृत प्रभावों के कारण इसके प्रभावशाली होने की संभावना नहीं है।

**३. पूर्वग्रह का तीव्र आवश्यकताओं से संघष उत्पन्न कीजिए।** द्वितीय विश्व-युद्ध में व्यापक अभियान का उपयोग किया गया, जिसने लोगों को यह समझाने की चेष्टा की कि पूर्वग्रहित होना देशभक्ति-विरोधी अधार्मिक या अप्रजातंत्रवादी है, यह पर्याप्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ। यह प्रविधि विपरीत प्रभाव भी डाल सकती है। यदि किसी व्यक्ति को प्रचार द्वारा यह विश्वास दिलाया जाए कि पूर्वग्रह अप्रजातंत्र-वादी है, उसकी प्रतिक्रिया यह भी हो सकती है कि पूर्वग्रह को छोड़ने के स्थान पर वह प्रजातंत्र की अंतर्निहित अवधारणा का ही परित्याग कर सकता है।
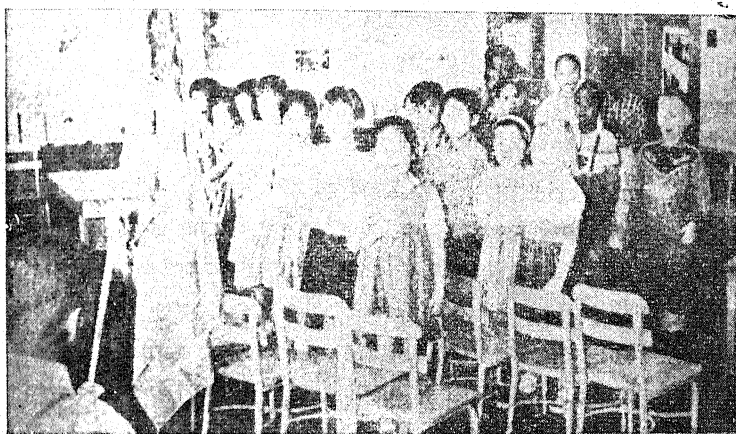
**चित्र १७·६ मिश्रित समूहों में परस्पर व्यवहार से, विशेषत: बच्चों या वयस्क लोगों के समूहों में जो साथ-साथ काय करते हैं, पूर्वग्रह प्राय: कम हो जाता है।**

४. **लोगों को पूर्वग्रहित न होने की शिक्षा दीजिए :** यह प्रभावशाली सिद्ध होती है, किंतु वयस्कों को ऐसी शिक्षण-संस्थाओं में जिसका पूर्वग्रहों को परिवर्तित करना ही लक्ष्य है, पाना कठिन है। फलस्वरूप, इस तथ्य को छिपा कर दी गई शिक्षा सर्वाधिक प्रभावशाली है। टेलिविजन का बीच-बीच में नीग्रो लोगों को स्वीकार करना इसका एक उत्तम उदाहरण है।

५ **मूलतः विरोधी समूहों में निकट संपर्क स्थापित करना :** सेना के मिश्रित यूनिटों की सफलता ने प्रमाणित किया कि संपर्क द्वारा पूर्वग्रह को कम करने में सहायता मिलती है (देखिए, चित्र १७·६) फिर भी, यह निश्चित करना आवश्यक होता है कि संपर्क उस समूह के निम्नतम प्रकार के व्यक्तियों के साथ नहीं हो रहा है, जिसके विरुद्ध पूर्वग्रह हैं।

## सारांश

१. अभिवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थिति के प्रति अनुकूल अथवा प्रतिकूल अनुक्रिया की प्रवृत्ति है। यह उद्दीपन विभेद प्रस्तुत करती है, जिसमें वस्तुओं को व्यक्ति के उद्देश्यों से संबंधित वर्गों में विभाजित किया जाता है।

२. पूर्वग्रह प्रतिकूल अभिवृत्ति का एक विशेष उदाहरण है, जिसका विषय प्रायः अल्पसंख्यक समूह होता है। पूर्वग्रह में व्यक्ति प्रायः उस वर्ग के प्रति, जिसके अंतर्गत वह अल्पसंख्यक समूह को वर्गीकृत करता है, अति सरलीकृत तथा फलतः भ्रांतिपूर्ण विचार रखता है। विशद् रूप से स्वीकृत भ्रांतिपूर्ण विश्वास रूढ़िगत कहलाते हैं।

३. यद्यपि सिद्धांत रूप में विश्वासों और अभिवृत्तियों को भिन्न किया जा सकता है—विश्वास किसी वाक्य या कथन की स्वीकृति है, जिसका अनुकूल या प्रतिकूल होना अनिवार्य नहीं, व्यावहारिक रूप में अधिकांश विश्वास संवेदनाओं से रंजित होते हैं और उन्हें अभिवृत्तियों से पृथक् करना कठिन होता है।

४. संस्कृति अभिवृत्तियों और विश्वासों के विकास को प्रभावित करती है। विरोधी संस्कृतियों की अभिवृत्तियों की तुलना संकटपूर्ण है; क्योंकि एक ही संस्कृति में भी अन्य संस्कृतियों की तुलना की अपेक्षा अधिक विभिन्नताएँ होती हैं। अभिवृत्तियों को प्रायः सामाजिक-आर्थिक एवं अन्य भिन्नताओं से सहसंबंध रहता है।

५. अभिवृत्तियों पर सांस्कृतिक प्रभाव अधिकतर परिवार एवं साथियों के समूहों द्वारा पारेषित किए जाते हैं। बच्चों की अभिवृत्तियाँ उनके माता-पिता एवं उनके संपर्क में आने वाले व्यक्तियों से सहसंबंधित रहती हैं।

६. अभिवृत्तियों का व्यक्तित्व—लक्षणों से भी संबंध है। एक व्यक्तित्व-प्रतिरूप, जिसे जातीय-केंद्रित कहा जाता है, सभी अल्पसंख्यक समूहों के विरुद्ध पूर्वग्रहित रहता है, वह अपने दृष्टिकोण में सत्तावादी है और व्यक्तियों को अति-सरलीकृत 'काले और गोरे' वर्गों में विभाजित करता है।

७. यदि व्यक्ति जिन सूचनाओं को प्राप्त करता है, वे प्रायः विकृत अथवा अनुपयुक्त हों, तो उसकी अभिवृत्तियाँ एवं विश्वास भी उसी प्रकार विकृत होंगे। वे उन अधिकारी व्यक्तियों से भी प्रभावित होते हैं, जिनकी सूचनाओं पर वह विश्वास करता है।

८. मुख्य समूह, जिनमें मित्र और निकट परिचित रहते हैं, व्यक्ति की अभि-वृत्तियों को रूप देने में सहायक होते हैं।

९. एक बार बन जाने पर अभिवृत्तियाँ परिवर्तनों का प्रायः प्रतिरोध करती हैं। वे (अ) सूचनाओं के चयनात्मक अर्थनिर्णय एवं प्रत्यक्षीकरण (ब) विद्यमान अभिवृत्तियों से विरोधी सूचनाओं का निवारण तथा (स) व्यक्ति के संपर्क में आने वाले व्यक्तियों का अनुमोदन और अननुमोदन।

१०. शिक्षा और प्रचार (प्रोपेगैंडा) दोनों अभिवृत्तियों को प्रभावित और परिवर्तित करते हैं, किंतु प्रचार अभिवृत्तियों को प्रचारक के प्रयोजनों की अनुकूल दिशा में परिवर्तित करने का जान-बूझ कर किया गया प्रयास है। प्रचारक के तीन महत्त्वपूर्ण साधन हैं (अ) बोझिल शब्द (ब) संसूचन और (स) आवश्यकताओं को जागृत करना या विकसित करना।

११. बोझिल शब्द, अर्थात् वांछित अभिवृत्ति विकसित करने के लिए भावुकता से रंजित शब्दकोश प्रचारकों का प्रमुख साधन है।

१२. सुझाव किसी कथन या विचार की बिना किसी आलोचना के स्वीकृति है। प्रतिष्ठा-सुझाव में प्रतिष्ठित व्यक्तियों से संबंधित बातें कही जाती हैं, सामाजिक सुझाव में, यह कथन कि 'सभी लोग ऐसा कर रहे हैं' व्यक्ति की इच्छा को ऐसी स्थितियों में सहारा देता है, जहाँ उसकी अपनी भावनाएँ अस्पष्ट हों।

१३. अधिकांश प्रचार और विज्ञापन आवश्यकताओं को अपील करके अभि-वृत्तियों को प्रभावित करते हैं। सामान्यतः अनुकूल अभिवृत्ति का विकास, आवश्यकता को उद्दीप्त करके उसे अभिवृत्ति के विषय से संबद्ध करके, किया जा सकता है। अभिवृत्तियों को, लोगों को भयभीत करके, परिवर्तित करने के प्रयास-जैसे रक्षा-अभियानों में, प्रायः प्रभावहीन रहते हैं।

१४. अभिवृत्तियों के परिमापन की अनेक विधियाँ विकसित हो चुकी हैं। अभिवृत्ति-मापक किसी विषय से संबंधित अभिवृत्ति की मात्रा का परिशुद्ध मापन प्रस्तुत करता है, किंतु यह केवल उन्हीं व्यक्तियों के साथ संभव है, जिन्हें समय है और जिन्हें इसमें रुचि है।

१५. अनेक व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए हम जनमत मतांकन (परीक्षा) पर निर्भर करते हैं, जिसमें एक प्रश्नमाला रहती है और उसका उत्तर एक संक्षिप्त प्रत्यक्ष समालाप में दिया जाता है। प्रश्नों की रचना, वह संदर्भ जिसमें वे पूछे गए हैं एवं प्रतिनिधिक प्रतिचयन, परिणामों की प्राप्ति के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

१६. पूर्वग्रहों को, पूर्वग्रह के विषयों से अथवा अधिक सामान्य रूप में पूर्व-ग्रहित व्यक्तियों के संपर्क से, सीखा जाता है।

१७. एक बार अधिगत हो जाने पर पूर्वग्रह—(अ) जिन आवश्यकताओं की तृप्ति में वे सहायक होते हैं (ब) वे तथ्य, जिन्हें वे एक के अपराध पर दूसरे को दंडित करने के साधन रूप में प्रस्तुत करते हैं, अर्थात् विस्थापित क्रोध, जिसे वे अन्यथा अभिव्यक्त नहीं कर पाते, (स) प्रत्यक्षीकरण और निर्णय को इस रूप में विकृत करना कि पूर्वग्रह 'सत्य' प्रकट हो और (द) अल्पसंख्यक समूहों के लिए, पूर्वग्रहों को उचित प्रमाणित करने वाली सामाजिक बाधाएँ उत्पन्न करते हैं—के द्वारा परिरक्षित और समर्थित होते हैं।

१८. पूर्वग्रह के मुख्य सामाजिक परिणाम हैं—अल्पसंख्यक समूह के लिए पृथक्करण और निम्न सुविधाएँ।

**पठनार्थ सुझाव :**

Allport, G.W., The Nature of Prejudice, Cambridge, Mass: Addison—Wesley, 1954.

समूह पूर्वग्रह के साहित्य का पठनीय सारांश एवं विश्लेषण।

Campbell, A., Converse, P. E., Miller, W. E., and Stokes, D. E. The American Voter, New York : Wiley, 1 60.

अभिवृत्ति-सर्वेक्षण प्रविधियों द्वारा निर्वाचन-व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों की खोज पर विवेचन।

Harding, J., Kutner, B., Proshansky, H., and Chein, I. Prejudice and Ethnic Relations. In G. Lindzey (ed.) Handbook of Socisal Psychology. Cambridge, Mass : Addison—Wesley, 1954.

जातीय पूर्वग्रहों के विकास और ह्रास को प्रभावित करने वाले कारकों पर १९५४ तक किए गए शोधकार्य का सारांश।

Hovland, C. I. Effects of the Mass-media of Communication, In G. Lindzey ( ed. ) Handbook of Social Psychology, Cambridge, Mass: Addison—Wesley, 1954.

अभिवृत्तियों के परिवर्तन में सामूहिक माध्यमों (Mass-media) की प्रभावोत्पादकता पर किए गए शोधकार्य का महत्त्वपूर्ण सारांश तथा विश्वासों को परिवर्तित करने वाले प्रविधियों से संबंधित प्रयोगों का विवेचन।

Hyman, H. Political Socialization, Glencoe, III: Free Press, 1959.

राजनीतिक विश्वासों और अभिवृत्तियों के विकास तथा परिवर्तन पर हुए शोधकार्य का विवेचन।

Katz., D., Cartwright, D., Eldersveld, S., and Lee, A. M. (eds.) Public Opinion and Propaganda, New York : Dryden 1954

वार्तालाप, प्रचार एवं जनमत-संबंधी भाषणों का संकलन।

Krech, D., and Crutchfield, R. S. Theory and Problems of Social Psychology. New York : McGraw-Hill, 1948, Chaps 5—9

अभिवृत्तियाँ और विश्वास किस प्रकार कार्य करते हैं, उनका परिमापन और अध्ययन किस प्रकार किया जाता है तथा उन्हें परिवर्तित करने की कुछ विधियाँ।

Mosteller, F., Hymar, H., McCarthy, P. J., Marks, E. S., and Truman, D. B. The Pre-election Polls of 1948. New York : Social Science Research Council, 1949.

१९४८ में हैरी ट्रूमेन के चुनाव में मतांकन की भविष्यवाणी की असफलता के कारणों का विश्लेषण ।

Parten, M. Surveys, Polls and Samples: New York; Harper, 1950.

मतांकन एवं सर्वेक्षण-प्रविधियों का परिचय ।

Schettler, C. Public Opinion in American Sociery. New York : Harper, 1960,

राजनीतिक वैज्ञानिक के दृष्टिकोण से जनमत की प्रकृति, निर्माण और कार्यविधि पर विवेचन ।

अध्याय १८

# वृत्तिक या व्यावसायिक समायोजन

व्यवसाय, उद्योग, सरकार और विविध कार्यों की समस्याओं का उल्लेख अनेक विषयों में अभिव्यक्त हुआ है, जिनका अध्ययन करने का अवसर विद्यार्थियों को मिलता है। मनोविज्ञान ऐसे ही विषयों में से एक है। वृत्तिक जीवन के प्रायः प्रत्येक अंग का मनोवैज्ञानिक स्वरूप रहता है। इस अध्याय में हमने पाँच व्यावसायिक क्षेत्रों को चुना है, जिन पर मनोवैज्ञानिक ज्ञान का प्रभावपूर्ण प्रयोग हो सकता है, और हुआ है। ये हैं—(१) कर्मचारियों का चुनाव, (२) कर्मचारियों का निरीक्षण और व्यवस्था (३) कार्य के संतोष में निहित कारक (४) कार्य को निपुणता से करने में निहित कारक और (५) मानवीय व्यवहार के लिए यंत्रशास्त्र। औद्योगिक मनोविज्ञान के क्षेत्र के ये कुछ महत्त्वपूर्ण विषय हैं। इसके अतिरिक्त, विद्यार्थियों को ध्यान रखना चाहिए कि अध्याय १४ में हमने अभिक्षमताओं और रुचियों का जो विवेचन किया है, उसका भी वृत्तिक समायोजन से संबंध है, व्यक्ति को सर्वोत्तम बृत्ति के चयन में और नियोक्ता को कार्यविशेष के लिए सर्वोपयुक्त व्यक्ति के चयन में सहायता देना है।

## कर्मचारी का चयन :

व्यक्ति के समक्ष एक कार्य रहता है, अपनी अभिक्षमताओं और रुचियों के अनुकूल वृत्ति या नौकरी की खोज करना तथा नियोक्ता की समस्या है—अपने कार्य-विशेष के लिए उपयुक्त व्यक्ति का चयन करना। एक ओर कर्मचारी यदि गलत कार्य चुनता है, तो उसे असंतोष और असफलता का भय रहता है। दूसरी ओर, नियोक्ता यदि गलत व्यक्तियों को अपने कार्य सौंप देता है, तो उनकी अयोग्यता के कारण वह अकारण धन व्यय करेगा और उसकी संस्था में विघटन भी हो सकता है। अतएव, कर्मचारी और नियोक्ता दोनों ही भूलों से बचना चाहते हैं अथवा वे चाहते हैं कि भूले अल्पतम हों।

## कार्य-विश्लेषण :

यह जानने के लिए कि उसके कार्य को सर्वोत्तम रूप में कौन कर सकता है, नियोक्ता को प्रथमतः भली-भाँति जान लेना चाहिए कि वह क्या कार्य करवाना चाहता

है। कार्य को जाने बिना यह कोई नहीं बता सकता कि उस कार्य के लिए सर्वोपयुक्त व्यक्ति कौन है। कार्य को समझने की प्रक्रिया को **कार्य-विश्लेषण** कहते हैं। कई लोगों की यह धारणा है कि यह एक सरल कार्य है, केवल उसमें यही करना होगा कि किसी कर्मचारी या परिवीक्षक से कहा जाए कि वह कार्य के विषय में आपको बता दे। अनुभव ने स्पष्ट किया कि इतना ही पर्याप्त नहीं है।

उदाहरणतः एक प्रसिद्ध प्रयोग में सेक्रेटेरियों से कहा गया कि वे यह लिखें कि प्रतिदिन के कार्य में वस्तुतः उन्होंने क्या-क्या किया ( चार्टर्स और ह्विटले, १९२४)। जब उनके लेखों को एकत्रित करके उन्हें सारणीबद्ध किया, तो स्पष्ट हुआ कि उनके कार्यों में आठ सौ से अधिक भिन्न-भिन्न कार्य थे। सेक्रेटेरी और उनके परिवीक्षक पहले इनमें से केवल कुछ को छोड़कर स्मरण नहीं रख सके थे।

कार्य-विश्लेषण करने की अनेक विधियाँ हैं। किसी विशेष कार्य के लिए कुछ विधियाँ अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त होती हैं, कुछ विधियाँ व्यय-साध्य होती हैं तथा तभी प्रयोग में लायी जाती हैं, जब कि वांछित लाभ द्वारा उनका व्यय युक्ति संगत हो। मुख्य विधियाँ हैं

१. कर्मचारी किसी विशेष दिन या सप्ताह में जो कुछ करते हैं, उसे लिखते हैं। ऊपर उल्लिखित उदाहरण में इसी विधि का प्रयोग किया गया था।
२. एक दक्ष कार्य-विश्लेषक कुछ दिनों के लिए स्वयं कार्य करता है, जिससे कि वह कार्य की सूक्ष्मताओं को स्वयं देख सके।
३. कार्य के चलचित्र लिए जाते हैं और बाद में सूक्ष्मता से उनका विश्लेषण किया जाता है। यह विधि आवृत्तिपरक कार्यों के लिए, जैसे संघटन-कार्य, विशेष उपयुक्त होती हैं।
४. कार्य के उत्पादन या परिणाम की कुछ मात्रा का भी उपयोग किया जाता है। मशीन-कार्यकर्त्ताओं और दस्तकारों के लिए विशेष उपयोगी है, जिनके परिश्रम का ज्ञान उत्पाद्य वस्तुओं के पूर्ण होने पर ही होता है।

अधिकांश, कार्य-विश्लेषण इस प्रकार किया जाता है कि उसमें निहित कार्यों की पूर्ण सूची तैयार हो सकती है। ये सूचियाँ, जैसा कि सेक्रेटेरी के उदाहरण का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, प्रायः बहुत लंबी होती हैं। तब प्रश्न उपस्थित होता है, इनमें से कौन से कार्य सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं ? बहुत से काम ऐसे होते हैं, जो एक कार्य से दूसरे की भिन्नता को स्पष्ट नहीं करते अथवा यदि वे करते भी हैं, तो वे विशेष महत्त्व नहीं रखते; क्योंकि प्रायः कोई भी व्यक्ति उन्हें कर सकता है। अतएव, वे उस कार्य की सफलता या असफलता को प्रभावित नहीं करते। इसी हेतु मनोवैज्ञानिकों ने संप्रति एक नवीन विधि का निर्माण किया, जिसे **आपाती प्रकरण** (Critical Incidents) कहते हैं (फ्लेनगन, १९५१)। इस विधि के प्रयोग द्वारा

विश्लेषक, कार्य के उन आपाती प्रकरणों को निर्धारित करता है, जो उसके सर्वोत्तम निष्पादन के लिए महत्त्वपूर्ण हैं ।

इस विधि का प्रयोग विशेष रूप से उन कार्यों से होता है, जहाँ सुरक्षा पर ध्यान देना आवश्यक है, जैसे ट्रक चलाना या हवाई जहाज उड़ाना । इन कार्यों में, महत्त्व उसका नहीं है जिसे चालक प्रतिक्षण करता है, वरन् उसका है जो वह आपाती क्षण में अथवा विशेष भयपूर्ण परिस्थिति में करता है, जो यह निर्धारित करता है कि वह सफल रहा या नहीं अथवा वस्तुतः यह कि वह और उसके उपकरण बच गए हैं या नहीं । आपाती-प्रकरण प्रविधि अन्य अनेक कार्यों में भी उपयोगी सिद्ध हो रही है । जैसे, औद्योगिक-सचिवालय-संबंधी एवं प्रबंध-संबधी कार्य ।

एक बार कार्य-विश्लेषण हो जाने पर इसका उपयोग **कार्य-विवरण** लिखने के लिए किया जा सकता है, जो कार्य से संबंधित सभी उपयुक्त तथ्यों का विस्तृत वर्णन है । इसके उपरांत कार्य-विवरणों की तुलना यह देखने के लिए की जा सकती है कि उसमें से भिन्न कौन से हैं और बिलकुल समान कौन से हैं । समान विवरण वाले कार्य भिन्न नामों के होने पर भी समान ही समझे जाएँगे—और प्रायः उनके नामों में देश के किसी क्षेत्र के कारण या विशेष व्यवसाय या उद्योग के कारण अंतर रहता है । वे वृत्तियाँ (Jobs), जिनमें स्पष्ट भिन्नताएँ होते हुए भी कुछ समानताएँ रहती हैं, उप-वृत्तियों (Occupations) के अंतर्गत वर्गीकृत की जाती हैं । इन उप-वृत्तियों की आगे तुलना करके इन्हें मुख्य वृत्ति परिवारों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है ।

यूनाइटेड स्टेट्स एम्प्लॉयमेंट सर्विस ने उद्योग व्यवसाय और सरकारी क्षेत्रों की ३०,०००से अधिक उप-जीविकाओं या उप-वृत्तियों का अध्ययन किया और उनका वर्गीकरण 'डिक्शनरी ऑफ ऑक्यूपेशनल टाइटिल' (१९४९) में किया । यह अमूल्य कोश प्रदर्शित करता है कि संयुक्त राज्य अमरीका के सब कार्य विभिन्न उप-जीविकाओं में किस प्रकार वर्गीकृत हैं तथा यह प्रत्येक के नाम और विशेष कार्यों को भी स्पष्ट करता है । इसने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय एवं उसके उपरांत बराबर पथ-प्रदर्शक का कार्य किया है कि किन कार्यों के लिए कौन से व्यक्ति उपयुक्त होंगे तथा यह खोजने में भी इसने सहायता की कि कहाँ और कैसी मुख्य मानव-शक्ति का हमारे यहाँ अभाव है ।

## कार्यकर्त्ता की विशेषताएँ :

कार्य-विवरण के अंतर्गत कार्य-संबंधी सूचनाएँ एवं उस कार्य के लिए अपेक्षित कार्यकर्त्ता-संबंधी सूचनाएँ रहती हैं । एक ओर यह सूचित करता है कि किस प्रकार का कार्य है, उसमें परिवीक्षण की दी गई एवं ग्रहण की गई मात्रा, कार्य की कठिनाई की सीमा, कार्य करने की सुविधाएँ और मशीनें, यंत्र उपकरण एवं कार्य-

कर्त्ता द्वारा अनिवार्यतः प्रयुक्त अन्य सामग्री। दूसरी ओर, यह कार्य-संबंधी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को, पूर्व अनुभव की अपेक्षित मात्रा, प्रयोजनीय प्रशिक्षण का प्रकार और मात्रा—संक्षेप में, कार्य के लिए अपेक्षित कार्यकर्त्ता की विशेषताओं को सूचित करता है।

कार्यकर्त्ता की विशेषताओं के अंतर्गत यह वक्तव्य भी रहता है कि कार्य के लिए उसका प्रत्येक लक्षण और योग्यता कितनी महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक कार्य के लिए लक्षणों, रुचियों और योग्यताओं के अपने विशेष समूह की अपेक्षा रहती है। ऐसी विशेषताओं की अपेक्षाकृत पूर्ण सूची में, हाथों, अंगुलियों, टांगों और भुजाओं की शक्ति, विविध प्रकारों की दक्षता, इंद्रियों की ग्रहणशीलता, जैसे दृष्टि की संवेदनशीलता, वर्ण-प्रत्यक्षीकरण, चेहरों, सूक्ष्म विवरणों और मौखिक तथा लिखित आदेशों-जैसी बातों के लिए स्मरण, गणित अभिगणना, बुद्धि, मौखिक अभिव्यक्ति की योग्यता एवं व्यक्तियों से व्यावहारिक-योग्यता, आदि का विवरण रहता है। चित्र १८·१ द्वितीय विश्वयुद्ध में प्रयुक्त मानक युद्ध 'मानवशक्ति (मैन-पावर) आयोग-पत्र' प्रदर्शित है और इन विविध विशेषताओं के क्रम-निर्धारण की विधि भी।

## चयन-विधियाँ :

जब एक नियोक्ता जान लेता है कि जिन कार्य स्थानों की वह पूर्ति करना चाहता है, उनके लिए कार्यकर्त्ताओं की किन विशेषताओं की आवश्यकता है, तब उसका अगला कार्य होता है—उन आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले या सर्वोत्तम रूप से पूर्ति करने वाले आवेदकों का चयन करना। इस प्रविधि को **कार्मिक-चयन** कहा जाता है। शताब्दियों से नियोक्ता कर्मचारियों का चयन करते रहे हैं और वैज्ञानिक विधियाँ केवल कुछ दशकों से ही प्राप्त हैं। अतः, यह स्वाभाविक है कि चयन की आधुनिक विधियाँ दृष्टिकोणों और तथ्यों का मिश्रण हैं। कुछ तथ्य नियुक्ति के दीर्घकालीन अनुभव पर और कुछ आधुनिक वैज्ञानिक शोध पर आधृत हैं।

## आवेदन-पत्र (Application blanks) :

किसी कार्य-आवेदक की विशेषताओं की सूचनाओं को प्राप्त करने का सामान्यतः सर्वाधिक प्रयुक्त स्रोत है—आवेदन-पत्र प्रश्नावली। यह आवेदक द्वारा भी लिखी जा सकती है और कार्यालय के किसी कर्मचारी द्वारा भी वह आवेदक से से प्रश्न करता है और उसके उत्तरों को रिक्त स्थानों में लिखता है। विस्तार से प्रयोग करने पर यह कार्यकर्त्ता के संबंध में कुछ वांछित सामग्री प्राप्त करने की सरलतम विधि है। जैसे, आयु, लिंग, शिक्षा और अति सांप्रतिक कार्य। आवेदन-पत्र के रिक्त स्थान प्रायः ऐसे तथ्यों से भरे रहते हैं, जिनका प्रस्तुत कार्य से कोई संगत संबंध नहीं

रहता। जैसे—जन्मस्थान, लंबाई, वजन और भाई-बहनों की संख्या। आवेदन-पत्र के रिक्त स्थान, इसके अतिरिक्त, शिक्षा और पिछले कार्य के संबंध की **विशेषताओं** के उपयुक्त विवरण की सुविधा नहीं देते। कुछ आवेदकों की शिक्षा और कार्य अनुभव पर्याप्त अधिक हो सकते हैं, किंतु उनका लाभ वे संभवतः उतना नहीं उठा सकते, जितना उन्हें उठाना चाहिए। अतः आवेदन-पत्र के रिक्त-स्थलों की अपनी सीमाएँ हैं।

आवेदन-पत्र का प्रयोग कर्मचारियों के चयन में इतना अधिक होता है, कि विद्यार्थियों और भावी कर्मचारियों को उस सूचना के लिए तैयार रहना हितकर होगा, जिसकी अपेक्षा यह करे। सर्वोत्तम स्मरणशक्ति भी ऐसे रिक्त स्थानों के सब प्रश्नों के उत्तर देने में सफल नहीं होती। अतः, उपयुक्त विचार यह है कि पहले से ही ऐसे सब तथ्यों की सूची तैयार करते रहना चाहिए जिसमें आपके इस प्रकार के रिकार्ड रहें,—कार्य को प्रारंभ करने और समाप्त करने की तिथियाँ, परिवीक्षक का नाम, पद का नाम और प्राप्त वेतन।

विद्यार्थी के लाभार्थ सारणी १८·१ में ऐसे अनेक तथ्यों का उल्लेख है जो आवेदन-पत्र के रिक्त-स्थानों में प्रायः पूछे जाते हैं। यह विविध विशिष्ट रिक्त स्थानों के संघटन का उदाहरण है।

सारणी १८·१

कार्य शीर्षक : इंजन लेथ परिचालक, प्रथम श्रेणी

| मात्रा | | | | अपेक्षित विशेषताएँ |
|---|---|---|---|---|
| O | C | B | A | |
| | √ | | | १. दीर्घकाल तक तीव्र गति से कार्य करना |
| | √ | | | २. हाथों की शक्ति |
| | √ | | | ३. भुजाओं की शक्ति |
| | √ | | | ४. पृष्ठ-देश (पीठ) की शक्ति |
| | √ | | | ५. टांगों की शक्ति |
| | √ | | | ६. अंगुलियों की निपुणता |
| | | √ | | ७. हाथ और भुजाओं की निपुणता |
| √ | | | | ८. पैर और टांगों की निपुणता |
| | | √ | | ९. नेत्र और हाथों का सहसंबंध |
| √ | | | | १०. पैर, हाथ और नेत्रों का सहसंबंध |

| मात्रा | | | | अपेक्षित विशेताएँ |
|---|---|---|---|---|
| O | C | B | A | |
| | √ | | | ११. दोनों हाथों का सहसंबंध |
| | √ | | | १२. वस्तुओं के आकार की अनुमान-क्षमता |
| | √ | | | १३. वस्तुओं के परिमाण की अनुमान-क्षमता |
| | | √ | | १४. वस्तुओं के रूप को देखना |
| | √ | | | १५. गत्यात्मक वस्तुओं की गति का अनुमान |
| | √ | | | १६. दृष्टि की तीव्र संवेदन-शक्ति |
| | √ | | | १७. श्रवण की तीव्र संवेदन-शक्ति |
| √ | | | | १८. गंधबोध |
| √ | | | | १९. रसबोध |
| | √ | | | २०. स्पर्श-संवेदन |
| | | √ | | २१. मांसपेशीय-संवेदन |
| √ | | √ | | २२. (वस्तुओं की) सूक्ष्म स्मृति |
| | √ | | | २३. (अमूर्त) विचारों की स्मरण-शक्ति |
| | √ | | | २४. मौखिक निर्देशनों के लिए स्मरण-शक्ति |
| | √ | | | २५. लिखित निर्देशनों के लिए स्मरण-शक्ति |
| | √ | | | २६. अंकगणित अभिगणना |
| | √ | | | २७. बुद्धि |
| | √ | | | २८. समायोजन |
| | √ | | | २९. निर्णय लेने की योग्यता |
| | | √ | | ३०. योजना बनाने की योग्यता |
| | | √ | | ३१. कार्यारंभ-क्षमता |
| | | √ | | ३२. यांत्रिक उपकरणों का ज्ञान |
| | √ | | | ३३. अनेक विषयों का अवधान |
| | √ | | | ३४. मौखिक अभिव्यक्ति |

| मात्रा | | | | अपेक्षित विशेषताएँ |
|---|---|---|---|---|
| O | C | B | A | |
| √ | | | | ३५. लिखित अभिव्यक्ति में क्षमता |
| | | √ | | ३६. व्यक्तियों से व्यावहारिक योग्यता |
| √ | | √ | | ३७. नामों और और व्यक्तियों को स्मरण करने की शक्ति |
| | | √ | | ३८. व्यक्ति का प्रकट रूप |
| | | √ | | ३९. विविध आकर्षणों के मध्य ध्यान केंद्रित करने की क्षमता |
| | | √ | | ४०. संवेगात्मक स्थिरता |
| | | √ | | ४१. संकटमय स्थिति में कार्य करना |
| | | √ | | ४२. वस्तुओं की विशेषताओं का अनुमान |
| | | √ | | ४३. अप्रिय शारीरिक अवस्थाएँ |
| | | √ | | ४४. वर्ण-विभेद |
| | | √ | | ४५ जनता के साथ मिलने एवं कार्य करने की योग्यता |
| √ | | | | ४६. लंबाई |
| √ | | | | ४७. वजन |
| | | | | ४८ ............................ |
| | | | | ४९. ...................... |
| | | | | ५०. ...................... |

**चित्र १८·१ कार्यकर्त्ता की विशेषताओं का फ़ार्म । अक्षरों के अर्थ कार्य के संतोषजनक रूप से होने के लिए इस प्रकार हैं : O, अनपेक्षित, C मध्यम या निम्न मात्रा अपेक्षित, B सामान्य स्तर से ऊपर मात्रा अपेक्षित, और A अति उच्च मात्रा अपेक्षित (यू० एस· डिपार्टमेंट ऑफ लेबर) ।**

## प्रत्यक्षालाप (Interview) :

चयन में बहुत वर्षों से प्रयुक्त द्वितीय विधि नियुक्ति प्रत्यक्षालाप है । १९४७ में कार्मिक चयनार्थ ३२५ प्रमुख औद्योगिक कंपनियों में प्रयुक्त विधियों का सर्वेक्षण किया गया था । फलस्वरूप ज्ञात हुआ कि इनमें से ९६ प्रतिशत कंपनियों में प्रत्यक्षालाप का प्रयोग उनकी नियुक्ति विधियों के एक अंग की भाँति किया जाता है ( स्प्रीगेल और वालेस, १९४८ )

सारणी-१८.१

**आवेदन-पत्र के लिए प्रायः अपेक्षित कुछ सूचनाएँ**

| | | |
|---|---|---|
| नाम | व्यक्तिगत सूचनाएँ : | लिखित लेख अथवा पुस्तकें |
| पता | नाम | कंपनी में नौकरी चाहने का |
| जन्म-स्थान | पता | कारण, कार्य के लिए प्राप्त |
| आयु | कब से परिचय और किस रूप में, तिथि | |
| लंबाई | व्यवसाय | |
| वजन | शिक्षा | |
| लिंग | ग्रेडस्कूल : | |
| स्वास्थ्य | नाम | |
| शारीरिक विकार | वर्ष | |
| पिता का व्यवसाय | उच्च स्कूल : | |
| भाई और बहनों | | |
| की संख्या | मुख्य पाठ्यक्रम | |
| अति सांप्रतिक नौकरी: | व्यावसायिक और संध्याकालीन स्कूल : | |
| नियोक्ता | मुख्य पाठ्यक्रम | |
| पता | कालेज : | |
| नियुक्ति की तिथि | मुख्य पाठ्यक्रम | |
| वेतन | प्राप्त डिग्री | |
| | विशिष्ट योग्यताएँ : | |
| नौकरी का पद | प्राप्त की हुई विशिष्ट योग्यता अथवा | |
| | पद-निर्वाह | |
| कार्य का संक्षिप्त | संस्थाओं और समितियों आदि की सदस्यता | |
| विवरण | | |
| परिवीक्षक | शौक | |
| (अन्य पूर्व नौकरी के | स्थान, जिनका भ्रमण किया गया है | |
| ही सदृश्य) | | |

इसके व्यापक प्रयोग के बावजूद समालाप प्रायः चयन का उतना उपयुक्त साधन नहीं है जितना उसके प्रयोक्ता उसे समझते हैं ( देखिए, अध्याय – १५ में इस विषय से संबंधित विवेचन) । उदाहरणतः एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टांत (हालिंगवर्थ, १९२९) इसे स्पष्ट करता है कि कुछ परिस्थितियों में क्या हो सकता है ।

"बारह विक्रय-मैनेजरों ने ५७ का इंटरव्य, यथार्थ किंतु नियंत्रित अवस्थाओं में, एक वास्तविक कार्य के लिए लिया। विक्रय-मैनेजर अनुभवी प्रत्यक्षालापक (इंटरव्यूकर्त्ता) थे, क्योंकि उनको अपने पदों में इंटरव्यू बराबर लेना पड़ता था, किंतु वे अनिवार्यतः इसमें प्रशिक्षित नहीं थे। उन्हें जिस प्रकार वे उचित समझते, उस प्रकार इंटरव्यू लेने की सुविधा प्राप्त थी। उनसे अपेक्षा की जाती थी कि वे कार्य की उपयुक्तता के अनुसार आवेदकों का क्रम निर्धारित करेंगे और इंटरव्यू समाप्त होने पर उनके क्रम-निर्धारण को एकत्रित करके तुलना की गई। उसके परिणामों को सारणी १८·२ में प्रदर्शित किया गया है। उदाहरणतः, आवेदक 'ए' एक इंटरव्यूकर्त्ता से छठा स्थान प्राप्त करता है और दूसरे से छप्पनवाँ। आवेदक 'बी' एक इंटरव्यू-कर्त्ता से सर्वोत्तम व्यक्ति का स्थान प्राप्त करता है और दूसरे के हाथों निम्नतम व्यक्ति का।

सारणी १८·२

| आवेदक | प्रश्नकर्त्ता | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ |
| ए | ३३ | ४६ | ६ | ५६ | २६ | ३२ | १२ | ३८ | २३ | २२ | २२ | ९ |
| बी | ५३ | १० | ६ | २१ | १८ | ९ | २० | २ | ५७ | २८ | १ | २६ |
| सी | ४३ | ११ | १३ | ११ | ३७ | ४० | ३६ | ४६ | २५ | १५ | २९ | १ |

**सारणी १८·२ इंटरव्यू की प्रभावात्मकता के प्रयोग के प्रति-रूयात्मक परिणाम। बारह विक्रय मैनेजरों ने सत्तावन आवेदकों का इंटरव्यू लिया और कार्य की आवश्यकता के अनुसार उनका क्रम निर्धारित किया। इस सारणी में तीन आवेदकों के निर्धारित क्रमों को प्रदर्शित किया गया है। इंटरव्यू लेने वालों की सहमति स्पष्टतः संतोषजनक नहीं है (होलिंगवर्थ, १९२९)**

ये परिणाम इंटरव्यू के अनेक प्रयोगों में प्रायः सामान्य देखे गए हैं। जहाँ इंटरव्यू 'सामान्य' स्थितियों में लिए जाते हैं, वहाँ इंटरव्यू लेने वालों में बहुधा बहुत कम सहमति पायी जाती है। यह तथ्य स्पष्ट करता है कि यदि इंटरव्यू को प्रभाव-शाली चयन-विधि के रूप में कार्य करना है, तो कुछ सतर्कता अनिवार्य है।

तीन प्रमुख कारक हैं, जो सफल इंटरव्यू और निरर्थक प्रायः इंटरव्यू में भेद करते हैं।

१. इंटरव्यूकर्त्ता को उस कार्य से सुपरिचित होना चाहिए, जिसके लिए वह इंटरव्यू ले रहा है।

२. उसे उपयुक्त प्रविधि अर्जित करनी चाहिए। यह प्रायः कुछ अप्रत्यक्ष होती है ( देखिए, अध्याय—६ ), सीधे प्रश्न न पूछ कर उसे आवेदक से ही तथ्य निकलवाने चाहिए। दूसरी ओर, उसे इंटरव्यू को स्पष्ट रेखा पर रखना चाहिए और समाप्त करने से पूर्व सूची के पूर्व-निर्धारित प्रश्नों को उत्तर उसे प्राप्त कर लेने चाहिए।

३. इस कार्य के लिए उसका चुनाव भली प्रकार से किया जाना चाहिए। कुछ व्यक्ति आवेदकों को शांत-मन-नहीं रहने देते या उनसे सद्भाव स्थापित नहीं कर पाते। कुछ व्यक्ति प्रत्येक स्थिति में लोगों के असफल निर्णायक रहते हैं।

अनेक इंटरव्यूओं में इन महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया जाता, अतएव वे विश्वसनीय नहीं होते। यदि इन पर ध्यान दिया जाए, तो चयन में इंटरव्यू मूल्यवान सहायता प्रदान कर सकता है। (गीसेली और ब्राउन, १९५५)

### अभिस्ताव-पत्र (सिफारिशी-पत्र) :

अभिस्ताव का पत्र, आवेदन-पत्र के रिक्त-स्थान पूर्ति और इंटरव्यू के सदृश कर्मचारियों के चयनार्थ व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है। कालेजों और व्यावसायिक स्कूलों के लिए विद्यार्थियों के चुनाव तथा क्लर्क, वाइट कालर ( संयुक्त राज्य में कुछ ऐसी वृत्तियाँ हैं, जिनमें कर्मचारियों को परंपरागत श्वेत-कालर की वर्दी पहननी पड़ती है ) एवं व्यावसायिक कार्मिकों के चयनार्थ इसका विशेष प्रयोग किया जाता है।

व्यापक प्रयोग के उपरांत भी, अभिस्ताव-पत्र की आवेदन-पत्र, इंटरव्यू एवं कुछ अन्य विधियों के सदृश सीमाएँ हैं। ऐसे पत्रों को लिखने वाले प्रायः व्यस्त लोग होते हैं और उनके दैनिक कार्यों की शृंखला का वे पत्र भी अंग होते हैं। लेखक संभवतः उस कार्य को भली-भाँति जानता भी नहीं, जिसके लिए आवेदक अपना आवेदन-पत्र दे रहा है अथवा उस कार्य के लिए अपेक्षित योग्यता से भी वह परिचित नहीं होता। वह आवेदक के प्रति सदय भी रहता है; क्योंकि आवेदक को अन्यत्र कहीं कार्य करना है। इसके अतिरिक्त ऐसे पत्र का लेखक अपने परिवीक्षक के उच्च पद के कारण प्रायः अभिस्तावक चुना जाता है, यह आवश्यक नहीं कि वह आवेदक से संबंध में वस्तुतः विशेष जानकारी रखे। अंत में, वे शब्द जो ईमानदारी, विश्वसनीयता कार्यारंभ योग्यता-जैसे लक्षणों को बताने के लिए प्रयोग किए जाते हैं अपेक्षाकृत अस्पष्ट रहते हैं, भिन्न व्यक्तियों के लिए उनका भिन्न अर्थ होता है। सुयोग्य और अयोग्य आवेदक में उनके आधार पर स्पष्ट अंतर करना अति कठिन है।

अभिस्तावों का उपयोग करने वाले उनकी न्यूनताओं से दीर्घकाल से परिचित हैं और पिछले कुछ वर्षों से उन्होंने उनके सुधार का प्रयत्न किया है। 'पत्र' में अब लक्षणों की परीक्षण-सूची भी रहती है, जिसके आधार पर अभिस्तावक से आवेदक के गुण-निर्धारित करने की अपेक्षा की जाती है। इसमें लाघव की सुविधा रहती है तथा भिन्न आवेदकों के निर्धारित गुणों की तुलना की जा सकती है। इसमें एक से होने और अभिस्तावक को महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को छोड़ देने की सुविधा देने और उसे गुण-निर्धारण में सदय होने के लिए उत्साहित करने की न्यूनताएँ भी हैं। इन न्यूनताओं को दूर करने के लिए अभिस्ताव-पत्र के रिक्त स्थल, जो गुण-निर्धारण-क्रम की अपेक्षा करते हैं, भी प्रायः अभिस्तावक से पत्र के ही सदृश स्वतंत्र सम्मति की आशा करते हैं। तब भी, अभिस्ताव शायद ही कभी कर्मचारियों के चयन की सूचनाप्राप्ति का विशेष विश्वसनीय स्रोत हो सकता है।

## व्यवसाय परीक्षण (ट्रेड टेस्ट) :

कर्मचारियों के चुनाव में सूचना के तीन सर्वाधिक सामान्य स्रोत हैं आवेदन-पत्र, इंटरव्यू और अभिस्ताव-पत्र, विशेषतः अधिक वेतन की उप-वृत्तियों के लिए। वैज्ञानिक परीक्षणों का अभी उतना प्रयोग नहीं होता जितना भविष्य में हो सकता है, किंतु उनका प्रयोग सब प्रकार के अर्द्ध निपुण तथा कार्यकारी अधिकारियों के चयन में वर्ष प्रति बढ़ रहा है। विविध प्रकार के परीक्षणों का उपयोग होता है, किंतु दो प्रकार के परीक्षण सर्वाधिक मान्य प्रमाणित हुए हैं। वे हैं—१. व्यवसाय परीक्षण और २. अभिक्षमता-परीक्षण।

व्यवसाय-परीक्षण एक प्रकार का उपलब्धि-परीक्षण है, व्यक्ति अपने कर्म में कितना निपुण है, इसका परिमापन यह करता है ( अथवा परिमापित करने का प्रयत्न करता है)। यह अधिकारी वर्ग के इंटरव्यूकर्ता द्वारा मौखिक रूप में दिया जाता है, किंतु यह कागज-और-पेंसिल परीक्षण के रूप में भी दिया जा सकता है। इसमें कुछ ऐसे विषय होते हैं, जो विशेष कार्य से संबंधित ज्ञान और अनुभव को सहसंबंधित करते हैं। आजकल जितने व्यवसाय-परीक्षण उपलब्ध हैं. उनमें से अनेक यू० एस० एंपल्यॉयमेंट सर्विस के दक्ष कार्य-विश्लेषकों द्वारा परीक्षणों की सूची को अपेक्षाकृत पूर्ण करने के कार्यक्रम के अंगरूप में निर्मित किए गए हैं ( स्टेड एट० एल०, १९४० )।

"व्यवसाय-परीक्षण के कुछ प्रश्नों को स्पष्ट करने की आवश्यकता है। उदाहरणतः बढ़ई से पूछा जा सकता है, 'टेक ( Shore) से आप क्या समझते हैं ?' ( उत्तर : 'सीधा आधार ( Brace, )। कुछ परीक्षण-कार्य में प्रयुक्त

विधियों से संबंधित हैं। उदाहरणार्थ, किसी नल कार ( नल ठीक करने वाला ) से पूछा जाए कि नलकारी-प्रणाली परीक्षण की सर्वाधिक सामान्यत: प्रयुक्त विधियाँ क्या हैं ? ( उत्तर : 'वायु, जल, धूम्र, पीपरमेंट।') अन्य प्रश्न प्रयोग, प्रविधि, स्थान, नाम, प्रयोजन और संख्या से संबंधित हैं। एक प्रश्न में संख्या का आधारभूत तथ्य के रूप में उदाहरण है, 'एक सामान्य चक (Chuck) में कितने दंतुल होते हैं ?' (उत्तर 'तीन'।)"

इस प्रकार के प्रश्न और परीक्षण अधिकांश सामान्य कार्यों के लिए तैयार किए गए हैं, उन्हें परिमापित किया गया है और उन्हें मान्यता दी गई है। कार्य-विशेष में भिन्न स्तरों को स्पष्ट करने की क्षमता में इन्हें विशेष मान्यता प्राप्त हुई है। सुबिधा के लिए इन्हें तीन स्तरों में विभाजित किया गया है, विशेषज्ञ, जिन्हें उस कार्य में दीर्घकालीन अनुभव प्राप्त हैं, कार्य-शिक्षार्थी ( अप्रेंटिस ), जो उस कार्य को सीखने की दिशा में गतिशील है तथा संबंधित कर्मचारी, जो विशेषज्ञों और शिक्षार्थियों के साथ या निकट कार्य करते हुए उस कार्य से संबंधित सीमित ज्ञान प्राप्त कर चुका है।

सारणी १८·३ इसका प्रमाण है कि एक व्यवसाय-परीक्षण प्रशिक्षण के इन तीन स्तरों को कितनी अच्छी तरह स्पष्ट कर सकता है। इस उदाहरण में चित्रकारी का कार्य है। उच्चतम आँकड़ों के वर्ग में, हम ७८ प्रतिशत विशेषज्ञों को पाते हैं, जबकि कोई संबंधित-कर्मचारी उच्च अंक प्राप्त नहीं करता। दूसरी ओर बहुत कम विशेषज्ञ कम अंक प्राप्त करते हैं, जब कि लगभग सब संबंधित कर्मचारी कम अंक प्राप्त करते हैं।

सारणी १८·३

| अंक समूह | श्रेणी-विभाग प्रतिशत में | | |
|---|---|---|---|
| | विशेषज्ञ | शिक्षार्थी | संबंधित कर्मचारी |
| ९ — १५ | ७८ | १७ | ० |
| ६ — ८ | १४ | ४० | ० |
| ० — ५ | ८ | ४३ | ९६ |

**सारणी १८·३ अंकों का श्रेणी-विभाग 'चित्रकारों के लिए व्यावसायिक प्रश्नों' के आधार पर विशेषज्ञों, शिक्षार्थियों और संबंधित कर्मचारियों द्वारा निर्मित।**

**अभिक्षमता-परीक्षण :**

अध्याय १४ में हम अभिक्षमता-परीक्षणों का विवेचन कर चुके हैं। इनका प्रयोग दोनों रूपों में हो सकता है, व्यक्ति को उसकी व्यावसायिक योग्यताओं के संबंध में परामर्श देकर तथा नियोक्ता की, उसके कार्यों के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्तियों को निर्धारित करने में सहायता देकर, (देखिए, चित्र १८·२)।

नियोक्ता के समक्ष सैकड़ों अभिक्षमता-परीक्षणों में से कार्यविशेष के लिए उपयुक्त परीक्षण को निश्चित करने की समस्या रहती है। इसके लिए उसे जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं, पहले उस कार्य के लिए कार्यकर्त्ता की विशेषताओं पर विचार करना चाहिए। इस समस्या का समाधान प्रतिक्रियालेखा चित्र (साइकोग्राफ) के निर्माण द्वारा किया।

प्रतिक्रिया-लेखाचित्र दो प्रकार के हैं, १. कार्य-प्रतिक्रिया-लेखाचित्र तथा व्यक्ति २. प्रतिक्रिया-लेखाचित्र। चित्र १८·३ में प्रदर्शित कार्य-प्रतिक्रिया-लेखाचित्र किसी कार्य अथवा कार्य-परिवार के लिए अपेक्षित व्यक्तित्व-लक्षणों तथा योग्यताओं को स्पष्ट करता है। यह जैसा कि चित्र में देखा जा सकता है, जन समूह के प्रतिशत के रूप में चित्रित है। कार्य के लिए अपेक्षित व्यक्तित्व-लक्षण और योग्यता की मात्रा जिन लोगों में उपयुक्त अथवा अपेक्षित से अधिक मात्रा में है, वृहद् जनसमूह में उनके प्रतिशत को दिखाया गया है। इस प्रकार के प्रदर्शन को यथासंभव सरल बनाने के लिए यू० एस० एंपलायमेंट सर्विस ने योग्यताओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। ए श्रेणी की मात्रा जनसमूह के दो प्रतिशत उच्च वर्गीय व्यक्तियों में पायी जाती है, बी श्रेणी की मात्रा २८ प्रतिशत व्यक्तियों में और सी श्रेणी की मात्रा शेष ७० प्रतिशत लोगों में रहती है। ये तीनों श्रेणियाँ अनेक कार्यों के लिए अपेक्षित लक्षणों या योग्यताओं को तौलने या मापित करने में एक दूसरे के पर्याप्त निकट रहती हैं।

अनेक जीविकाओं की खोज यह निर्धारित करने के लिए की गई है कि क्या योग्यताओं का कोई विशेष प्रतिरूप है, जिसके आधार पर प्रत्येक जीविका के अंतर को समझा जा सकता है ? चित्र १८·३ में तीन कर्मचारियों के चित्र दिए गए हैं : आफिस क्लर्क, गैरेज मिस्त्री और फुटकर विक्रेता। प्रतिक्रिया-लेखाचित्र के ऊपर और नीचे लिखे गए आँकड़े सब क्षेत्रों के कर्मचारियों के चुने हुए मानक-प्रतिरूप पर आधृत हैं। बुद्धि क्लर्की योग्यता और नियम-पुस्तका रखने के परीक्षणों में सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा क्लर्क अधिक अंक प्राप्त करते हैं, किंतु यांत्रिक योग्यता में वे लगभग औसत रहते हैं। क्लर्क के आँकड़ों के विपरीत गैरेज मिस्त्री के आँकड़े हैं।

कर्मचारी का चुनाव करते समय यह जानना आवश्यक है कि क्या आवेदक की योग्यताएँ अपेक्षित योग्यताओं की रूपरेखा अथवा प्रतिक्रिया-लेखाचित्र के

अनुरूप हैं। इसका तात्पर्य है कि आवेदक के लिए व्यक्ति-प्रतिक्रिया-लेखाचित्र निर्मित करने की कोई विधि ढूँढ़नी चाहिए और उससे मेल खाता हुआ कार्य प्रतिक्रिया-लेखाचित्र भी। कुछ परिस्थितियों में आवेदक का योग्यता-निर्धारण उससे संबंधित आवेदन-पत्र, इंटरव्यू और अभिस्ताव-पत्र से उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर करके यह किया जा सकता है। बेहतर यह होगा कि अपेक्षित योग्यताओं को परिमापित करने वाले निर्धारित परीक्षणों द्वारा यदि यह किया जाए।

**चित्र १८·२ वृत्तिक-अभिक्षमता-परीक्षणों के उदाहरण। परीक्षार्थी का कार्य है कील-बोर्ड पर यथासंभव तीव्रता से कीलों और छल्लों को उपयुक्त स्थानों में लगाना। आकृति बोर्ड (फॉर्म-बोर्ड) पर उसका कार्य है साँचों या आकृतियों को यथासंभव तीव्रता से यथास्थान लगाना (ग्रण्डी, [आचरण परीक्षण की संस्था], प्री लायंस) (न्यूयार्क विश्वविद्यालय, परीक्षण और विज्ञापन केंद्र)।**

चयन में प्रामाण्य :

कर्मचारियों के चयनार्थ चाहे जिस विधि अथवा विधि-समूह का प्रयोग किया जाए, चयन-प्रक्रिया की प्रामाणिकता सदैव एक समस्या है (देखिए, अध्याय-१३)। व्यावहारिक जगत में, व्यक्ति सदा ऐसे कार्य नहीं कर सकता, जैसे वे कार्य किए जाने चाहिए तथा किसी की चयन-प्रक्रिया प्रामाणिक है, यह जानना प्रायः अति

व्ययसाध्य होगा या अति शोधपरक। फिर भी यह स्वीकार करना चाहिए कि व्यक्ति इस प्रामाणिकता के प्रति असंदिग्ध हो सकता है यदि उसने किसी विशेष जनसमूह के लिए एक निकष को पूर्व निर्धारित करने के लिए विधि की प्रामाणिकता को स्थापित करने के लिए आवश्यक प्रक्रियाओं का विधिवत् अनुसरण किया है इसमें कोई कमी रह जाए, तो वह संदिग्ध हो सकती है। कभी-कभी समान दिखाई देने वाली परिस्थितयों में प्रक्रियाओं की प्रामाणिकता के प्रति सफल अनुमान किया जा सकता है। किंतु, शोध-अनुभव प्रदर्शित करता है कि ये प्रक्रियाएँ केवल इसलिए अनिवार्यत: प्रामाणिक नहीं होती कि वे नियोक्ता या मनोवैज्ञानिक को प्रामाणिक प्रतीत होती हैं। इसलिए सर्वोचित यह होगा कि कर्मचारियों के चयनार्थ प्रयोग की जाने वाली क्रिया-विधियों की वास्तविक परिशुद्धता के प्रति सतर्क और पूर्ण प्रयत्नशील रहा जाए।

भिन्न वृत्तिक समूहों के योग्यता-प्रतिरूप भिन्न होते हैं।
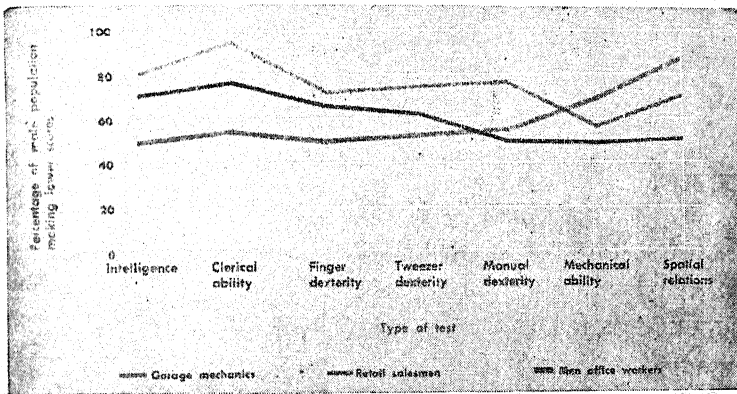
चित्र १८·३ तीन वृत्तियों की योग्यताओं की रूपरेखा। यह प्रतिशतक मापक है और सब वृत्तिक स्तरों के पुरुषों के मानक प्रतिरूपों पर आधृत है। प्रत्येक वृत्तिक समूह के आँकड़े औसत आँकड़े हैं, जो सामान्य प्रतिशतक मापक पर रूपांतरित किए गए हैं। अतएव, कार्यालय में कार्य करने वाला औसत पुरुष बुद्धि में सामान्य जनसमूह का ८० प्रतिशतक है, औसत गैरेज मिस्त्री दिक्-संबंधी-योग्यता में सामान्य जनसमूह का लगभग ८० प्रतिशतक होता है (गिसेली और ब्राउन, १९५५)।

**पर्यवेक्षण (Supervision) :**

किसी कर्मचारी का चुनाव करना और उसके द्वारा कार्य को स्वीकार करना व्यावसायिक समायोजन की समस्या का प्रारंभ मात्र है। इसके उपरांत यह देखना शेष रहता है कि क्या उस पर नियोक्ता का पर्यवेक्षण प्रभावप्रक होगा। लाखों शब्द – जिनमें से अधिकांश अलंकृत व्यवहार-बुद्धि से अधिक नहीं होते—'सफल कैसे हों' के संबंध में लिखे गए हैं। उनमें से अधिकांश की पुनरावृत्ति हम यहाँ नहीं करेंगे। फिर भी प्रभावपरक पर्यवेक्षण के कुछ सिद्धांत हैं तथा कुछ वैज्ञानिक सूचनाएँ भी, व्यक्ति के अपने कार्य से संतोष लाभ करने के संबंध में हैं।

यदि आप एक कालेज-विद्यार्थी हैं, तो इसकी संभावनाएँ अधिक हैं कि आप अनुभव करेंगे कि आपकी वृत्ति का प्रबंध लोगों के पर्यवेक्षण द्वारा होता है। अधिकांश कालेज-स्नातक व्यवसाय और उद्योग में प्रारंभ में पर्यवेक्षी कार्यों में नियुक्त किए जाते हैं। किंतु डाक्टर, वकील, अध्यापक तथा अन्य स्वतंत्र कार्यकर्ता जिन्हें सेक्रेटेरियों, सहायकों एवं विद्यार्थियों पर पर्यवेक्षण करना पड़ता है; इस तथ्य के बावजूद अपेक्षाकृत बहुत कम व्यक्ति पर्यवेक्षण की कला और उसके विज्ञान का व्यवस्थित प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। फलस्वरूप अनेक पर्यवेक्षक अपने कार्य के लिए समुचित योग्य नहीं होते। हम यहाँ जिन कुछ सिद्धांतों का विवरण दे रहे हैं, वे पर्यवेक्षण के पूर्ण प्रशिक्षण का स्थान नहीं ले सकते। किंतु, यदि उन पर ध्यान दिया जाए, तो वे सहायक हो सकते हैं।

**प्रशिक्षण :**

एक पर्यवेक्षक, सर्वप्रथम, एक शिक्षक है। वह नए कर्मचारी का उसके कार्य के निर्देशन से शिक्षण प्रारंभ करता है, तथा वह इस शिक्षण को निरंतर जारी रखता है, नई विधियाँ विकसित होती हैं, संस्था में परिवर्तन होते हैं और दिन-प्रतिदिन समस्याएँ सुलझती रहती हैं। प्रशिक्षण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग उसके प्रथम कुछ सप्ताह हैं, जब कोई कर्मचारी कार्य प्रारंभ करता है। किंतु, उसके बाद वह अपनी गति से चलता रहता है, माह-पर-माह बीतने लगते हैं। कर्मचारी अपने कार्य को धीरे सीख रहा है या तीव्र गति से, सही सीख रहा है या गलत तथा कार्य-परिवर्तन के साथ-साथ वह उसे समझ रहा है या नहीं; यह सब अधिकांश मात्रा में पर्यवेक्षक के शिक्षक-रूप पर निर्भर करता है।

**परिणामों का ज्ञान :**

संभवतः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत, जिसे पर्यवेक्षक को ध्यान में रखना चाहिए—और प्रायः जिसे वह नहीं रखता—वह यह है कि अधिगम सर्वोत्तम रूप से तब प्रगतिशील होता है, जब व्यक्ति को परिणामों का ज्ञान रहता है। उसे क्या करना चाहिए और अपनी भूलों को सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को ज्ञात

रहे कि उसने तत्काल क्या किया है और वह सही है या गलत। इस विषय पर मानव-अधिगम (अध्याय-८) के अध्याय में विस्तार से लिखा गया है। परिणामों का ज्ञान मुख्यतः अपने कार्य के फल की जानकारी है कि वह उचित है अथवा अनुचित, मान्य है अथवा अमान्य, उपयुक्त है अथवा अनुपयुक्त। इस सिद्धांत को स्पष्ट करने वाले अनेक उदाहरण पर्यवेक्षण के व्यावहारिक अनुभवों से खोजे जा सकते हैं, किंतु यहाँ एक का ही उल्लेख पर्याप्त होना चाहिए, (लिंडाल, १९४५)।

परिणामों का ज्ञान प्रशिक्षण में सहायक होता है।
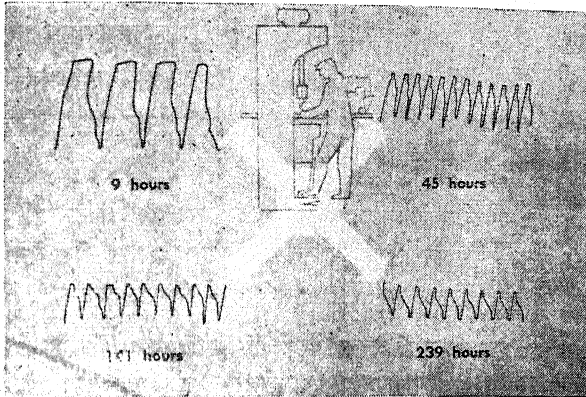
**चित्र १८·४ मंडलक काटने वाली मशीन पर पद-गति प्रतिरूपों के अभिलेख। प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले व्यक्ति के समक्ष अनुभवी चालक के अभिलेख मार्ग-दर्शक के रूप में हैं और वह वैसे ही अभिलेखों को आवृत्ति का प्रयत्न करता है। पर्यविक्षी प्रशिक्षण के २३९ घंटों में हुई प्रगति पर ध्यान दें (लिंडाल के अनुसार, १९४५)।**

"इस उदाहरण में खराद (लेथ) को अति कौशल से चलाने का कार्य था। वस्तुतः चालक को हाथ और पैर की जटिल गतिविधियों को विशेष गति, लय, दबाव की रीति के साथ सीखना पड़ा था। चालकों के लिए इस कौशल को अधिगत करना कठिन था, जब तक पर्यवेक्षण उसमें समाविष्ट नहीं हुआ और उसने समस्या का विश्लेषण नहीं किया। प्रथमतः एक ऐसा यंत्र बनाया गया, जो एक **कुशल** चालक की गतिविधियों का ग्राफिक अभिलेख प्रस्तुत करे। तदंतर उस ग्राफ का विश्लेषण किया और उस पर नामांकित किए, जिससे कि शिक्षार्थी देख सके कि अभिलेख में कौन-सी गति-

विधियाँ प्रस्तुत हैं। तब शिक्षार्थियों से मशीन चलाने के लिए कहा गया तथा वे उसी प्रकार का अभिलेख यथासंभव बनाएँ जैसा कि विशेषज्ञ का अभिलेख उन्होंने देखा है। परिणामों को चित्र-१८·४ में दिखाया गया है। शिक्षार्थियों को एक बार अपने कार्यों के परिणामों का ज्ञान हो जाने पर उन्होंने जितना पहले सीखा था, उसकी अपेक्षा पर्याप्त तीव्र गति से सीखा।"

अपेक्षाकृत बहुत कम विषयों में पर्यवेक्षक को अभिलेखन मशीन निर्मित करने की आवश्यकता परिणामों के ज्ञान को प्रस्तुत करने के लिए होती है। बहुधा वह अपने सतर्क निर्देशनों द्वारा आवश्यक ज्ञान दे सकता है, एक शिक्षक के समान वह भूलों की ओर संकेत करेगा और कर्मचारी को यथासंभव बताएगा कि उसके कार्य की स्थिति क्या है।

अधिगम मनोविज्ञान से अनेक अन्य तथ्य भी स्पष्ट हुए हैं, जिनका पालन पर्यवेक्षक को, शिक्षक के रूप में, करना चाहिए:

१. सामान्यतः अधिगम के प्रारंभ में मार्ग-दर्शन बाद की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है, फलतः किसी व्यक्ति को गलत आदत सीख लेने से पूर्व ही प्रारंभ में बता देना उपयुक्त है कि सही कार्य कैसे करना चाहिए।

२. लोग प्रायः एक समय में अनेक विषयों की अपेक्षा एक विषय पर भली-भाँति अधिकार प्राप्त करते हैं। अतएव, प्रशिक्षण को एक समय में कार्यों की उपयुक्त संख्या तक तथा जटिलता की उचित मात्रा तक सीमित रखना चाहिए।

३. प्रशिक्षण का अंतरण विचारणीय शक्तिशाली सहायक है। जब व्यक्ति एक कार्य सीख लेता है, तब उस कार्य से मिलते-जुलते अन्य कार्यों की ओर अथवा जिन कार्यों में वही सिद्धांत निहित रहता है, उनकी ओर उसका ध्यान आकर्षित करने का अवसर आता है। इस प्रकार व्यक्ति विध्यात्मक अंतरण को ग्रहण कर सकता है तथा निषेधात्मक अंतरण से दूर रह सकता ( देखिए, अध्याय-८) है।

हमने इन तथ्यों का संक्षेप में विवरण दिया है; क्योंकि ये मात्रा उन सिद्धांतों के व्यावहारिक रूप हैं, जिनका विस्तृत उल्लेख पहले किया जा चुका है। सतर्क पर्यवेक्षक भली-भाँति अधिगम के सिद्धांतों को जानेगा तथा उनके उपयोग का अवसर अपने कर्मचारियों को उचित कार्य करने में सहायता देने के लिए बराबर खोजता रहेगा।

## संवाद या संचार :

पर्यवेक्षक के शिक्षक के दायित्व के निकट ही उसका संवाद करने का दायित्व भी है (वीलोज १९४९) । प्राय: सब निर्देशन और सूचनाएँ कर्मचारी को संवाद के माध्यम से, लिखित अथवा मौखिक रूप में, दी जाती हैं । वह उतना ही सीखता है, जिसकी उससे अपेक्षा की जाती है और उसे वह पर्यवेक्षक के शब्दों से जानता है । अतएव, यदि पर्यवेक्षक को प्रभावशाली सिद्ध होना है, तो उसे भाषा से संबंध रखना होगा और उन विधियों से परिचित होना होगा, जिनके द्वारा वह वार्तालाप अथवा संवाद में भाषा का प्रभावपरक रूप में व्यवहार करे । दुर्भाग्य से, पर्यवेक्षक बहुधा संवाद की समस्या से पूर्णतः अपरिचित रहते हैं । यहाँ तीन सिद्धांतों का उल्लेख किया जा रहा है, जिनका पालन करना चाहिए ।

१. पर्यवेक्षक उस तथ्य को अपने कर्मचारियों पर व्यक्त करके उनके लिए यह निश्चित कर देता है कि उन्हें क्या जानना चाहिए। उन्हें क्या जानना चाहिए इसके लिए उन्हें उसके विचारों का अनुमान करने 'अथवा' चयन करने के लिए वह उन्हीं पर नहीं छोड़ता । वह ध्यान रखता है कि उनके कार्य से संबंधित प्रत्येक संगत सूचना उन्हें शीघ्र और शुद्ध रूप में मिलती है ।

२. पर्यवेक्षक अपने संवाद को अल्प मात्राओं में अभिव्यक्त करता है; क्योंकि अधिकांश लोगों में एक साथ दी गई विशद् सूचनाओं में से सीमित सूचनाएँ ग्रहण करने की क्षमता रहती हैं । अतएव, लंबे संवाद बहुत कम पढ़े या सुने जाते हैं । यदि वे व्यक्त किए भी जाएँ, तो विरल ही ग्रहण करते हैं । एक समय में केवल कुछ ही महत्त्वपूर्ण तथ्य अभिव्यक्त किए जाने चाहिए ।

३. पर्यवेक्षक अपने संवाद को सरल और स्पष्ट शैली में अभिव्यक्त करना सीखता है । उसके कर्मचारी बहुधा इतने तीव्र बुद्धि, सुशिक्षित या अनुभवी नहीं होते जितना वह स्वयं है । यदि हैं भी, तो भी वे वांछित संदेश को सही अर्थ में ग्रहण करेंगे, यदि वह स्पष्ट शैली में व्यक्त किया गया है ।

## सरल भाषा का उपयोग :

यह अंतिम विषय विस्तार से विवेचना करने योग्य है । व्यक्तियो की अपने विचारों को विस्तार से अभिव्यक्त करने की योग्यता में विशद् अंतर पाया जाता है । कुछ लोग भाषा को समझने के लिए अपेक्षाकृत सरल बनाने में सफल होते हैं और कुछ उसे असहनीय रूप से कठिन बना देते हैं । भाषा और मनोविज्ञान के अध्येताओं ने इस समस्या का विस्तार से अध्ययन किया है । एक प्रयोग के निष्कर्षों का विवरण

रुडॉल्फ फ्लेश्च (१९४६ ) की पुस्तक 'द ऑर्ट आफ प्लेन टॉक' में दिया गया है । फ्लेश्च ने भाषा-अभिव्यक्ति के तत्वों का, जो पठन और अर्थग्रहण को सुगम बनाते हैं, वर्णन सामान्य रूप में किया है (उनके कुछ सिद्धांतों का उपयोग इस पुस्तक में हमने इसे समझने में सरल बनाने के लिए किया है । वे तत्त्व निम्नांकित हैं :

**एक वाक्य में शब्दों की संख्या** वाक्य जितना छोटा होगा उतनी ही अच्छी तरह समझा जाएगा ।

**एक वाक्य से अक्षरों** ( Syllables ) **की संख्या** : शब्दों जितने छोटे होंगे—अक्षरों द्वारा परिमापित किंतु आवश्यक नहीं कि **वर्णों** ( Letters ) द्वारा भी—उतनी ही सरलता से वे समझे जाएँगे ।

**निजी शब्दों और वाक्यों की संख्या** : निजी शब्दों तथा/अथवा निजी वाक्यों की संख्या गैर-बैयक्तिक एवं अमूर्त-रचना की अपेक्षा जितनी अधिक होगी, पठन उतना ही सरल होगा ।

फ्लेश्च ने इन तत्त्वों को सूची में जोड़ दिया है, जिनकी संगणना उसके द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करके कोई भी कर सकता है । सूची पूर्णतः निर्दोष नहीं तो भी वह, सापेक्ष कठिनाई या सुगमता जिसके द्वारा लिखित या मौखिक प्रतिरूप का अर्थ-ग्रहण किया ज़ा सकता है, का पर्याप्त सफल मापक है । फ्लेश्च ने अपने सूचीमापक द्वारा निर्णीत अच्छे संवाद बनाम निम्न संवाद के अनेक उदाहरण दिए हैं, किंतु यहाँ कानूनी गद्य का एक अस्पष्टप्राय प्रतिरूप उदाहरणार्थ दिया जा रहा है :

> "अंतिम उपभोक्ता का अर्थ है एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों का समूह, जो सामान्यतः घरेलू धंधे करता है, जो प्रायः भिन्न फुटकर दुकानों से अंडे खरीदता है या वह अंडों को उत्पादक या फुटकर बिक्रेता से किसी व्यक्ति या गृहस्थ के वासस्थान पर खरीदता और प्राप्त करता है तथा जो ऐसे अंडों का अपने भोजन के रूप में उपभोग करता है ।"

फ्लेश्च समीक्षा करता है :

"यह एक बहु-शब्द समूह है, हम उनका विश्लेषण करेंगे । हम 'व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह, के स्थान पर 'लोग' शब्द का प्रयोग करें, और सामान्यतः शब्द से प्रारंभ होने वाले सब वाक्यांश को छोड़ दें ( वे परिभाषा का किसी प्रकार भी अंग नहीं हैं ) और अंत में 'भोजन के रूप में उपभोग' के स्थान पर 'खाते' कहें । अब हम देखें कि उस कथन का क्या स्वरूप होता है—

'अंतिम उपभोक्ता वे लोग हैं, जो अंडों को खाने के लिए खरीदते हैं।'

ध्यान दें कि फ्लेश्च ने कितनी अच्छी तरह अपने सिद्धांतों का अनुकरण यह स्पष्ट करने में किया है कि संवाद को किस प्रकार अधिक ग्रहणीय बनाया जा सकता है।"

## मूल्यांकन :

एक शिक्षक और संवादक के अतिरिक्त पर्यवेक्षक को मूल्यांकनकर्त्ता भी होना चाहिए। उसे अपने पर्यवेक्षण के अंतर्गत आने वाले कार्यों का मूल्यांकन तथा उन कार्यों को करने वाले कर्मचारियों का भी मूल्यांकन करना चाहिए।

इनमें से प्रथम मूल्यांकन **'कार्य-मूल्यांकन'** कहलाता है और यह निर्धारित करता है कि किस कार्य के लिए कितना वेतन बताया जाएगा और दिया जाएगा। वेतन-निर्धारण की परंपरागत विधि है कि कार्य-संबंधी सामान्य बाजार-भाव को स्वीकार किया जाए। उदाहरणतः, पर्यवेक्षक जानकारी प्राप्त करता है कि सामान्यतः सेक्रेटेरियों ( कार्यकर्त्ताओं ) या मिस्त्रियों को क्या वेतन दिया जा रहा है और जब वह किसी व्यक्ति को ऐसे कार्य के लिए नियुक्त करना चाहता है, तो वही वेतन देता है। यह किसी कार्य के मूल्यांकन की अवैज्ञानिक विधि है और जो नियोक्ता कर्मचारियों को पाने के लिए इसका आधार लेता है, बहुधा अपेक्षित गुण-संपन्न व्यक्तियों को पाने में असफल रहता है। यह विधि प्रायः इस प्रश्न की ओर से भी उदासीन रहती है कि कार्य में निहित निपुणताओं और योग्यताओं का उपयुक्त प्रतिदान क्या है। इसका स्थान धीरे-धीरे मूल्यांकन की अन्य वैज्ञानिक विधियाँ लेती जा रही हैं, मूल्यांकन कभी-कभी इन विधियों के विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है।

विशेषज्ञों का, जिन्हें कार्य-मूल्यांकनकर्त्ता कहा जाता है सामान्य उद्देश्य है—कार्य के लिए अपेक्षित कार्यकर्त्ता-विशेषताओं को निर्धारित करना और तब सामान्य जनसमूह में इन विशेषताओं से युक्त सापेक्ष प्राप्ति के आधार पर वेतन की दर को निर्धारित करना। यदि, उदाहरणतः किसी कार्य में बुद्धि की उस उच्च मात्रा की अपेक्षा है जो अपेक्षाकृत विरल होती हैं, वे ऐसे कार्य के लिए उच्च-वेतन निर्धारित करते हैं। किंतु यदि दूसरी ओर, उसके लिए ऐसी दक्षता या योग्यताओं की आवश्यकता है, जो प्रायः प्रत्येक व्यक्ति में होती हैं, तो वेतन अपेक्षाकृत निम्न होता है। इस मूल्यांकन तक पहुँचने की अनेक भिन्न प्रविधियाँ हैं, लेकिन किसी भी स्थिति में इनका उद्देश्य अच्छी तरह हुए कार्य का मूल्यांकन करना है, न कि कार्यकर्त्ता का।

मूल्यांकन का दूसरा कार्य कार्य कर्त्ता से संबंधित है। वह अपना कार्य संतोष-जनक रूप से कर रहा है अथवा नहीं ? क्या वह उसे असाधारण रूप से अच्छी तरह कर रहा है ? क्या वह किसी दूसरे कार्य को इस कार्य से, जिसे वह कर रहा है, अधिक अच्छी तरह करता है ? क्या वह इस योग्य है कि दूसरे कार्य के लिए उसकी पदोन्नति की जाए ? ये प्रश्न कठिन हैं और इनका उत्तर, कर्मचारी को अपने प्रयासों के लिए पुरस्कृत करने एवं उसकी अधिकांश योग्यताओं को सुसंगठित करने के लिए विचारणीय है।

उत्पादन :

उद्योग अथवा व्यवसाय में, जहाँ कर्मचारी कुछ ऐसी वस्तु का उत्पादन करते हैं जो मापनीय है, वहाँ केवल उत्पादन के परिमाण और स्वरूप के आधार पर भी मूल्यांकन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अनेक अनुषंगी निकष हैं, जिनका प्रयोग किया सकता है जैसे कार्य में प्रवरता, कार्य करने के लिए व्यक्ति की अनिच्छा के अवसरों की संख्या, दुर्घटनाओं की संख्या तथा कार्य के प्रशिक्षण में समय की मात्रा की आवश्यकता। जब ऐसे निकषों का प्रयोग किया जाता है, एक ऐसी विधि को खोजना अनिवार्य है, जो इनमें से प्रत्येक को संश्लिष्ट निर्णय के रूप में तौल सके और ऐसा करने वाली प्रणालियाँ हैं।

क्रम-निर्धारण :

कार्य के अनेक प्रकारों में, मुख्यत: कार्यालय के कार्यों में अपेक्षित उपक्रमण और दायित्व, उत्पादन अथवा अनुषंगी निकष में से कोई उपयुक्त नहीं होते। तब पर्यवेक्षक को आसन्न पर्यक्षक अथवा संबधित व्यक्ति द्वारा निश्चित की गई क्रम-निर्धारण विधि का आधार लेना पड़ता है ( देखिए, चित्र-१८·५ )।

एक सामान्य विधि है, जिसमें असैनिक और सैनिक नियुक्तियों में योग्यता-रिपोर्ट का प्रयोग किया जाता है। यह विधि प्राय: 'अति उत्तम', 'संतोषजनक' या असंतोष-जनक' के रूप में व्यक्ति के विविध कार्यों का क्रम निर्धारित करती है और यह निर्णय आसन्न अधिकारी करता है। पर्यवेक्षक प्राय: उदार होता है और ऐसा मूल्यांकन प्राय: अतिशयोक्तिपूर्ण होता है, अतएव, 'असंतोषजनक' टिप्पणियाँ बहुत कम व्यक्त होती हैं और 'अति उत्तम' की संख्या विभिन्न कर्मचारियों की नियुक्ति में उपयोगी विशेषताएँ बताने की अपेक्षा बहुत अधिक होती है।

## कर्मचारी का कार्य और कार्य-मूल्यांकन फार्म

दिनांक ~~~~~~~~~~~~~~~~ १९

कर्मचारी के वर्त्तमान कार्य के आधार पर उसकी योग्यता की जाँच करें। ध्यान रखें कि प्रत्येक विशेषता पर पृथक् रूप से विचार हो। इस ओर से निरपेक्ष रहें कि अन्य विशेषताओं का मूल्यांकन कहाँ तक हुआ है। शब्द-समूह के नीचे बने चौकोरे में एक चिह्न (✓) लगाएँ जो व्यक्ति का सर्वोत्तम रूप में वर्णन करे, किंतु प्रत्येक पंक्ति के केवल एक ही चिह्न होने चाहिए। परंतु, यह आवश्यक है कि प्रत्येक पंक्ति को ध्यान से देखा एवं चिह्नित किया जाए।

नाम ________ कार्य का नाम ________ विभाग ________

आपके परिवीक्षण में कितने दिन से हैं? ________ कार्यारंभ की तिथि ________

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. कार्य का ज्ञान : व्यक्ति के कार्य के लिए अपेक्षित ज्ञान विचार करें। | कार्य का असाधारण रूप से पूर्ण ज्ञान है। ☐ | कार्य का अच्छा ज्ञान है। ☐ | पर्याप्त प्रशिक्षण की आवश्यकता है। ☐ | कार्य का अपर्याप्त ज्ञान है। ☐ |
| २. कार्य का स्तर : योग्यता पर विचार करें, जो कार्य को मानक स्तर पर लाती है। | उच्चतम स्तर ☐ | भली-भाँति किया ☐ | चलाया जा सकता है। ☐ | असंतोषजनक ☐ |
| ३. कार्य का परिमाण : सामान्य स्थितियों में किए गए कार्य की मात्रा पर विचार करें। | विशद् मात्रा ☐ | संतोषजनक मात्रा ☐ | औसत मात्रा से कुछ कम ☐ | असंतोषजनक मात्रा ☐ |

[शेष अगले पृष्ठ में देखें]

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ४. **उपस्थिति और नियमितता :** उसकी अनुपस्थिति के अंतर, और विलंब से आगमन पर विचार करें। | उपस्थिति अति उत्तम ☐ | कभी-कभी अनुपस्थित या विलंब से आना ☐ | बार-बार अनुपस्थित या बिलंब से आना ☐ | अविश्वसनीय, बिना सूचना के अनुपस्थित या बिलंब करना। ☐ |
| ५. **अभिवृत्ति :** कार्य के प्रति एवं साथियों एवं सहयोगियों के प्रति उसकी अभिवृत्ति, तथा अन्य लोगों के साथ एवं उनके लिए कार्य करने की इच्छा पर विचार। | असाधारण रूप से अच्छी अभिवृत्ति ☐ | अच्छी अभिवृत्ति ☐ | कामचलाऊ ☐ | असंतोषजनक अभिवृत्ति ☐ |
| ६. **निर्णय :** उसके निर्णय लेने की योग्यता, और सर्वोत्तम रूप से कार्यकाल का उपयोग। | अत्यधिक विश्वास के योग्य सिद्ध होना। ☐ | स्वयं कार्य करता है, परिवीक्षण की अपेक्षा नहीं करना ☐ | बार-बार उस पर ध्यान रखने की आवश्यकता रहती है। ☐ | विश्वास नहीं किया जा सकता, निरंतर परिवीक्षण अपेक्षित ☐ |

[ शेष अगले पृष्ठ में देखें ]

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ७. **विश्वसनीयता :** व्यक्ति की, कठिनाई से कार्य को निकालने और पूर्ण करने की योग्यता पर विचार करें। | सदैव विश्वसनीय ☐ | सामान्यत: विश्वसनीय ☐ | कठिन स्थिति में संदिग्ध ☐ | कठिन स्थिति में विकल हो जाता है। ☐ |
| ८. **अनाग्रह-अनुकूलता :** उस गति पर विचार करें, जिसमें वह कार्य सीखता है, तथा निर्देशन की वह मात्रा जिसकी आवश्यकता उसे नए कार्य को सिखाने में पड़ी। | बहुत तीव्र गति से अधिगत करता है। ☐ | तीव्रगति से सीखता है। ☐ | सीखने में मंद गति ☐ | सीखने में असमर्थ ☐ |
| ९. **वैयक्तिक विशेषताएँ :** रूप, व्यक्तित्व, निष्ठा और 'गृहाविक्षण' पर विचार करें। | निश्चित रूप से अनुकूल ☐ | अच्छा ☐ | कामचलाऊ ☐ | सामान्यत: असंतोषजनक ☐ |

**चित्र १८·५ किसी कर्मचारी के कार्य का मूल्यांक करने में सामान्यत: प्रयुक्त फार्म।**

सरल योग्यता-रिपोर्ट की कमियों को दूर करने लिए मनोवैज्ञानिकों ने अधिक सूक्ष्म विधियों की खोज की है। एक विधि है **'व्यक्ति-से-व्यक्ति' मूल्यांकन** जिसमें पर्यवेक्षक प्रत्येक व्यक्ति की तुलना उन अनेक व्यक्तियों से करता है, जिन्हें वह जानता है अथवा जो उसके पर्यवेक्षण में कार्य करते हैं। यह विधि, यद्यपि व्यक्तियों की तुलना के लिए बाध्य करती है, इसका दोष यह है कि पर्यवेक्षक उन सब व्यक्तियों से समान रूप से परिचित नहीं होता जिनकी वह तुलना करता है दूसरी विधि **'बलपरक-चयन'** क्रम-निर्धारण रिक्त-स्थान की पूर्ति है (१९४८)। इस विधि में पर्यवेक्षक के संमुख विशेषणों के युग्म रहते हैं और इस युग्म के प्रत्येक खंड की परीक्षा वह इस रूप में करता है कि वह व्यक्ति का सर्वाधिक विवरण प्रस्तुत करें। युग्म के खंडों का चयन बहुत सतर्कता से शोध द्वारा किया जाता है, जिससे कि वे पर्यवेक्षक को समान रूप से आकर्षक अथवा अनाकर्षक प्रतीत होते हैं किंतु ऐसे कि एक कर्मचारी की योग्यता-निर्धारण में महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है और दूसरा महत्त्वहीन ( देखिए, चित्र १८·६ )। पर्यवेक्षक को बलपरक-चयन ( Forced-Choice) प्रविधि से प्रायः आपत्ति रहती है; क्योंकि वह यह तब जान नहीं पाता कि उसका क्रम-निर्धारण उस व्यक्ति के लिए, जिसका मूल्यांकन किया जा रहा है, अनुकूल होगा या प्रतिकूल होगा जब तक कि वे योग्यताएँ समक्ष न आ जाएँ। शोध द्वारा प्रकट होता है कि यह विधि सफल हो सकती है यदि पर्यवेक्षकगण सतर्कता एवं ईमानदारी से बलपरक-चयन फार्म को अच्छी तरह बनाएँ।

कर्मचारी की योग्यता का मूल्यांकन करने की वैज्ञानिक विधियों के ये कुछ प्रतिरूप हैं। सफल पर्यवेक्षक दायित्व को स्वीकार करता है और सदैव श्रेष्ठतर विधि के लिए, जिसका उपयोग वह कर सके, सतर्क रहता है। इस प्रकार वह योग्य लोगों को पुरस्कृत करता है तथा अपने समूह की प्रभावशीलता और उत्साह को बनाए रख सकता है।

**परामर्श :**

अब संक्षेप में हमें पर्यवेक्षक के चतुर्थ एवं प्रायः विस्मृत, मनोवैज्ञानिक दायित्व का विवेचन करना चाहिए। यह दायित्व है, परामर्श। कर्मचारी मात्र यंत्र नहीं होते, जिन्हें कहीं से तोड़ देने पर भी उन्हें तीव्र गति से चला दिया जाता है कि जिस वस्तु का उत्पादन वे कर सकते हैं, करें। कर्मचारी चेतन प्राणी हैं और चेतन प्राणियों की अपनी समस्याएँ रहती हैं, जिनका उल्लेख इस पुस्तक में हम अन्यत्र कर चुके हैं। ये समस्याएँ उनके कार्य पर प्रभाव डालती हैं। एक व्यक्ति की रुग्णा पत्नी, सहयोगियों के साथ उसके संबंध, उसके बच्चों के स्वास्थ्य के संबंध में उसकी चिंता एवं अन्य असंख्य निजी समस्याएँ उसके कार्य को गंभीरता से प्रभावित करती हैं और अप्रत्यक्ष रूप से उससे संबंधित व्यक्तियों के कार्यों को भी।

यह तथ्य कई वर्ष पूर्व-वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कंपनी (रोथलिस्बर्गर और डिकसन, १९३९) के प्रसिद्ध हार्थोन प्रयोग द्वारा भली-भाँति स्पष्ट हुआ था। इस प्रयोग में यह प्रकट हुआ कि कारखाने के उत्पादन में निजी समस्याओं का उतना ही महत्त्व है, जितना किसी भी अन्य कारक का। व्यवस्थापकों ने कुछ प्रयोगों के उपरांत अनुभव किया कि परामर्श प्रणाली द्वारा वे कर्मचारियों की समस्याओं को सुनते हैं और उन्हें मनोवैज्ञानिक सहायता देकर उन्हें अधिक प्रसन्न तथा उत्पादनकारी बनाते हैं। अन्य अनेक संस्थानों ने भी परामर्श-सेवा को संस्थित एवं प्रतिष्ठित किया है।

निर्देशन : चार वाक्यांशों में से प्रत्येक समूह को सावधानी से पढ़िए, तत्पश्चात् उनमें एक पर चिह्न लगाइए, जो उस व्यक्ति का सर्वाधिक या सर्वन्यून विवरण प्रस्तुत करता है, जिसकी योग्यता का क्रम निर्धारित किया जा रहा है।

| | सर्वाधिक | सर्वन्यून |
|---|---|---|
| ए : अति उत्साही व्यक्ति जो सदैव भली-भाँति कार्य करता है | ☐ | ☐ |
| बी : सभी परिस्थितियों में शांत रहता है | ☐ | ☐ |
| सी : सुझावों पर ध्यान नहीं देता | ☐ | ☐ |
| डी : पथ-प्रदर्शन के स्थान पर प्रेरित करता है | ☐ | ☐ |
| ए : आलोचना सदैव करता है, प्रशंसा कभी नहीं | ☐ | ☐ |
| बी : 'औपचारिक रूप' में आदेशों का पालन करता है | ☐ | ☐ |
| सी : अपने कार्य को भली-भाँति जानता है | ☐ | ☐ |
| डी : किसी प्रकार का पक्षपात नहीं करता | ☐ | ☐ |
| ए : निरंतर नवीन ज्ञान और नए विचारों के लिए प्रयास करता है | ☐ | ☐ |
| बी : उसकी प्रवृत्ति व्यावसायिक है | ☐ | ☐ |

**चित्र १८·६ ये बलपूर्वक चयन के कुछ उदाहरण हैं, जिनका उपयोग यूनाइटेड स्टेट्स आर्मी द्वारा कार्यदक्षता के लिए अधिकारी-योग्यता रिपोर्ट के एक भाग के संबंध में पहले किया जाता था।**

हम अन्यत्र इस पुस्तक में (अध्याय—१२) देख चुके हैं कि परामर्श भी एक वृत्ति है, जिसमें विशेष निपुण तथा प्रशिक्षित व्यक्ति अपेक्षित है, यदि इसे बहुत प्रभावपूर्ण बनाना हो। इसलिए सुलभ होने पर स्टॉफ के सदस्यों में से ही किसी अधिकारी को चुनना वांछित होगा, जिसका मुख्य कार्य परामर्श देना हो। दूसरी

ओर, प्रत्येक पर्यवेक्षक को अपने कर्मचारियों की व्यक्तिगत समस्याओं से परिचित होना चाहिए। उदाहरणत: उसे अनुभव करना चाहिए कि कोई कर्मचारी कब मदिरापान करता है, कोई कर्मचारी कब उद्विग्न और उदास होता अथवा कब दो व्यक्तियों में अनबन हो जाती है, उनकी भावात्मक समायोजन की समस्या क्या है। उसे समस्या को समझने का प्रयत्न करना चाहिए और उसके निवारणार्थ सहायता करनी चाहिए।

**कार्य-संतोष :**

'अभिप्रेरण' के अध्याय में हमने इस तथ्य पर बल दिया था कि लोगों की सामाजिक एवं शारीरिक आवश्यकताएँ होती हैं। फलस्वरूप, हम आशा कर सकते हैं, कार्य एवं मनोरंजन दोनों में उनके प्रयत्न अपनी आवश्यकताओं की तृप्ति की दिशा में रत रहते हैं और केवल भोजन, वस्त्र तथा वासस्थान तक ही प्रयत्न सीमित नहीं रहते। यह आशा अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हो चुकी है, जिनमें लोग अपने कार्यों से तृप्ति को पाने में सफल ( अथवा असफल ) होते हैं। ऐसे प्रयोगों में कर्मचारियों से पूछा गया कि अपने कार्य में सर्वाधिक महत्त्व वे किस बात को देते हैं। यद्यपि एक वर्ग से, दूसरे वर्ग के व्यक्तियों के, एक कार्य से दूसरे प्रकार के कार्य के उत्तरों में विभिन्नता पायी गयी है, फिर भी कुछ निष्कर्षों पर पहुँचना हमारे लिए न्यायसंगत है और उन्हें कार्य करने वाले अधिकांश व्यक्तियों पर सामान्यत: लागू किया जा सकता है।

**वेतन :**

हममें से जो लोग जीविकोपार्जन के लिए कार्य करते हैं, वेतन उनके लिए इच्छित वस्तुओं को खरीदने की सुविधा देता है और इसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। अत:, आप सोच सकते हैं कि अपने-अपने कार्यों में महत्त्वपूर्ण बातों की सूची में वेतन का सर्वोच्च स्थान लोग सोचते हैं। किंतु यह सत्य नहीं है (स्मिथ, १९५७)। कार्य संबंधित अनेक विषयों के संदर्भ में जब व्यक्तियों को वेतन का क्रम निर्धारित करने के लिए कहा जाता है, तो क्रम में वेतन का स्थान अधिकांश लोग पर्याप्त नीचे रखते हैं और बहुत कम लोग उसे सर्वोच्च स्थान देते हैं (देखिए, सारणी—१८·४)।

जब वे वेतन को उच्च स्थान देते हैं, तब भी वे असाधारण रूप से निर्देशित करते हैं कि केवल उच्च वेतन की ही इच्छा उनकी नहीं है, वरन् वे उतना ही वेतन पाना चाहते हैं जितना अन्य व्यक्ति उस कार्य अथवा उद्योग के लिए पाते हैं, जिसे वे करते हैं। अत:, अधिकांश व्यक्ति उचित वेतन की ही आकांक्षा करते हैं न कि बहुत अधिक वेतन की। प्राप्त वेतन की मात्रा से अधिक महत्त्व उचित व्यवहार का है।

## सारणी १८·४

औद्योगिक कर्मचारी कहते हैं कि उन्हें कार्य चाहिए। निम्नांकित सारणी विविध सर्वेक्षणों का सार है। इन सर्वेक्षणों में विविध भाषाओं और अनेक विकल्पों का उपयोग किया गया था : बाईं ओर लिखित कारकों का विश्लेषण किया गया था। किंतु वे लोग लगभग सर्वेक्षित क्षेत्रों को प्रस्तुत करते हैं। इस सारणी के अंक प्रत्येक विवेचित प्रयोग के कारकों का निर्धारित क्रम प्रकट करते हैं।

| | स्त्रियाँ, कारखाने में कार्य करनेवाली | यूनियन कर्मचारी | बिना यूनियन के कार्य करनेवाले | पुरुष | स्त्रियाँ | पाँच कारखानों के कर्मचारी |
|---|---|---|---|---|---|---|
| स्थिर कार्य— | १ | १ | १ | १ | ३ | १ |
| कार्य का प्रकार | | | | ३ | १ | ३ |
| प्रगति के अवसर | ५ | ४ | ४ | २ | २ | ४ |
| अच्छे सहयोगी कार्यकर्त्ता | ४ | | | ४ | ५ | |
| उच्च वेतन | ६ | $२\frac{१}{२}$ | २ | $५\frac{१}{२}$ | ८ | २ |
| अच्छे अधिकारी | ३ | $५\frac{१}{२}$ | ५ | $५\frac{१}{२}$ | ४ | ६ |
| कार्य करने की उचित सुविधाएँ | २ | $२\frac{१}{२}$ | ३ | $८\frac{१}{२}$ | ६ | ७ |
| लाभ | | $५\frac{१}{२}$ | ६ | $८\frac{१}{२}$ | ९ | ५ |
| कार्य सीखने की सुविधाएँ | ८ | | | | | |
| सुखद काल | ९ | $७\frac{१}{२}$ | ७ | ७ | ७ | |
| अपने विचारों का उपयोग करने की सुविधाएँ | ७ | $७\frac{१}{२}$ | ८ | | | |
| सरल कार्य | १० | | | | | |

इस तथ्य से कि वेतन को बहुत कम बार कार्य में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में स्थान दिया जाता है हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि यह महत्त्वहीन है। संभवतः बहुत लोग यह अनुमान करते हैं कि उन्हें अपनी मूल आवश्यकताओं की

पूर्ति के योग्य उपयुक्त वेतन दिया जाएगा। इसके उपरांत भी वेतन अपेक्षाकृत महत्त्वहीन होता है। यदि वेतन-स्तर अपने वर्त्तमान-स्तर से किसी व्यक्ति के लिए कम कर दिया जाए, तब वेतन पुनः महत्त्वपूर्ण कारक बन जाएगा। यह देखना भी रोचक है कि कितनी बार लोग प्रायः वेतन के अतिरिक्त अन्य आधारों पर यह निर्णय लेते हैं कि कौन-सा कार्य स्वीकार किया जाए अथवा रखा जाए।

सुरक्षा :

संभवतः कार्य में बहुधा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में कार्य-सुरक्षा का स्वीकार किया गया है। लोग यह जानना चाहते हैं कि उनका कार्य स्थिर रहेगा और अनेक वर्षों तक निरंतर रहेगा। वे व्यक्तिगत रूप में भी सुरक्षा चाहते हैं, वे सुरक्षित कार्यों को करना चाहते हैं। कार्य-संबंधी किसी दुर्घटना के कारण उपार्जन क्षमता को खोने की आपत्ति मोल लेना नहीं चाहते। कार्य में सुरक्षा-तृप्ति का महत्त्व इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि क्यों उच्च वेतन अति महत्त्वपूर्ण समस्या नहीं है। अधिकांश लोग अल्पकालीन उच्च वेतन वाले कार्य की अपेक्षा सुरक्षित कम वेतन वाले दीर्घकालीन कार्य को अधिक पसंद करते हैं। ऐसे विषय मनुष्य जाति के लिए सामान्य हैं। लोग तत्काल संतोष से आगे की तृप्ति पर विचार कर सकते हैं और भविष्य में कभी अपनी इच्छाओं की पूर्ति की कल्पना कर सकते हैं। वे कम वेतन के कार्य को दीर्घकाल तक सुरक्षित रहे, तत्काल और अल्पकालीन अधिकतम वेतन पाने वाले कार्य की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं।

कार्य करने की उचित सुविधा :

कार्य करने में उचित सुविधाओं को बारंबार महत्त्व दिया जाता है। लोग साफ-सुथरे क्षेत्रों में कार्य करना पसंद करते हैं। यदि वे किसी औद्योगिक प्लांट (संयंत्र) में कार्य कर रहे हों, तो वे यह अवश्य चाहते हैं कि वह ऐसा हो, जो उन्हें यह अनुभूति दे कि वे सुखद पर्यावरण में कार्य कर रहे हैं, जिस पर वे गर्व कर सकते हैं। सुखकर कार्य प्रायः महत्त्वपूर्ण होते हैं तथा उच्च वेतन की अपेक्षा कम घंटे तक किए जाने वाले कार्य को प्रायः महत्त्व दिया जाता है।

लोगों का एक बड़ा वर्ग, जिसे 'ह्वाइट कालर' कर्मचारी कहा जाता है, इसका अच्छा उदाहरण है, उनके लिए उच्च वेतन की अपेक्षा उचित सुविधाओं का अधिक महत्त्व है। कार्यालयों में कार्य करने वाले, क्लर्क और आशुलिपिक (स्टेनोग्राफर) प्रायः उन लोगों की अपेक्षा बहुत कम वेतन पाते हैं, जो परिश्रम और मजदूरी करते हैं। किंतु, वे फिर भी प्रायः अपने कार्य के प्रकार को परिवर्तित नहीं करते। इसके ह्वाइट कालर कर्मचारियों के कार्य प्रायः स्थायी होते हैं तथा वे उसी कार्य में निरंतर बढ़ते हुए अपने भविष्य को देख सकते हैं।

## प्रगति के अवसर :

लोग वर्त्तमान की अपेक्षा भविष्य को अधिक महत्त्व देते हैं, इसकी पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि वे प्रगति की संभावना को क्रम में उच्च स्थान देते हैं। व्यक्ति प्रायः ऐसे कार्य को स्वीकार करने की ओर प्रवृत्त होता है, जो कम वेतन से प्रारंभ होता है, किंतु जिसमें शीघ्र ही विकास की संभावना निश्चित रहती है। कभी-कभी विकास का प्रश्न निश्चित अवधि के उपरांत पदोन्नति की गारंटी का रूप भी लेता है। कुछ उदाहरणों में लोग केवल इतना ही विश्वास चाहते हैं कि उन्हें उन्नति के अवसरों की सूचना दी जाएगी और वे उसके लिए अपने को योग्य सिद्ध कर सकेंगे। कुछ अन्य उदाहरणों में वह इस पर सर्वाधिक महत्त्व देता है कि कंपनी कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करती है, जिससे कि वह उन्नति के लिए अपेक्षित कार्यों को सीख सकता है।

उन्नति के विशेष रूप पर नहीं, वरन् उन्नति पर ही ध्यान दिया जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि लोग जितना वर्त्तमान को महत्त्व देते हैं, उतना ही भविष्य को भी। यह भी प्रकट है कि लोग उन्नति के अवसर अथवा अधिगम की सुविधा के संबंध में कहते हैं, तो वे उचित व्यवहार की अवधारणाओं को महत्त्व देते हैं। ऐसी स्थितियों में लोग उन्नति की गारंटी नहीं माँगते, किंतु केवल उपयुक्त सुविधा चाहते हैं। ऐसे स्थान में कोई कार्य करना नहीं चाहता, जहाँ अधिकारी का 'दामाद' बिना योग्यता के ही पदोन्नति पाता है।

## कर्मचारियों का आपसी संबंध :

अनेक लोगों के लिए उनके कार्य से संबंधित कर्मचारियों के आपसी संबंधों का भी महत्त्व है (मेक्ग्रेगर, १९६०)। लोग ऐसे साथियों और सहयोगियों के साथ कार्य करना चाहते हैं, जिन्हें वे पसंद करते हों। वे एक अच्छे अधिकारी के लिए कार्य करेंगे और यदि वे अधिकारी को पसंद न करते हों, तो वे कार्य छोड़ देंगे। वे प्रबंधकों से अपने कार्य में सहायता की अपेक्षा करते हैं और अपने कार्य की प्रगति के विषय में भी जानना चाहते हैं। वे निश्चित होना चाहते हैं कि अपने कष्टों को वे किसी से कह सकते हैं, और कष्ट होने पर उनकी उपयुक्त सहायता की जाएगी। इसी हेतु जिन संस्थानों में कर्मचारियों को कष्ट के समय सहायता देने की विशेष व्यवस्था रहती है, कर्मचारी उनके प्रति अधिक आकर्षित होते हैं। अंतिम, किंतु कम महत्त्वपूर्ण नहीं, यह तथ्य है कि वे चाहते हैं कि उनके कार्य को भी महत्त्व दिया जाए। वे चाहते हैं कि उनसे कहा जाए कि वे कब अच्छा कार्य करते हैं, तब उनकी सहायता भी की जाए और जब वे अच्छा कार्य नहीं करते, तब भी उन्हें सूचित किया जाए।

वे अनुभव करना चाहते हैं कि उनके कार्य और अच्छा कार्य करने के उनके प्रयास दोनों की ही प्रशंसा की जाती है।

कार्य के लिए प्रशंसा की चाह का कारक औद्योगिक क्षेत्र में प्रयोग करने वाले प्रयत्न मनोवैज्ञानिकों के लिए अनेक समस्याओं को उत्पन्न करता है। ऊपर दिए हाथोर्न प्रयोग में दो वर्ष से अधिक समय तक अनेक लड़कियों पर प्रयोग किया गया।

> "लड़कियों को एक पृथक् कक्ष में रखा गया, जहाँ विविध कार्य स्थितियों को नियंत्रित किया जा सकता था। प्रथम प्रकाश को परिवर्तित कर दिया और उत्पादन तत्काल बढ़ गया। तब अन्य कारकों को भी परिवर्तित किया गया : लड़कियों को विश्राम-काल दिया गया, कभी ५ मिनट और कभी १० मिनट। उन्हें निःशुल्क भोजन दिया गया और एक बार यह भी अवसर दिया गया कि वे जल्दी घर लौट जाएँ। जब-जब कोई परिवर्तन किया गया, उत्पादन में वृद्धि हुई। इसके उपरांत विश्रामकाल, निःशुल्क भोजन आदि सब समाप्त कर दिए और उत्पादन में फिर भी वृद्धि हुई।"

यहाँ क्या हुआ था ? उत्तर, बाद में ज्ञात हुआ कि लड़कियाँ विशेष **अवधान** प्राप्त कर रही थीं। जब-जब परिवर्तन किया जाता, लड़कियों को स्मरण दिलाया जाता कि वे जो कुछ करती हैं, लोग उस पर ध्यान देते हैं और इस प्रशंसा से ही वस्तुतः उत्पादन में वृद्धि हो रही थी।

ये सब बातें इन तथ्यों को प्रकट करती हैं कि धन के अतिरिक्त और अनेक वस्तुओं के लिए कार्य करते हैं। वे सुरक्षा, भविष्य में सुअवसर, कार्य जहाँ किया जाए वहाँ की सुखकर अवस्था, अपने सहयोगियों तथा अधिकारियों के साथ अच्छे संबंध चाहते हैं। शारीरिक कारक आधारभूत होते हैं, किंतु हमें भूलना नहीं चाहिए कि लोगों के जटिल प्रेरक भी होते हैं और उन्हें तृप्ति की अपेक्षा रहती है।

## कार्य में निपुणता :

कार्य संतोष और उसको प्रभावित करने वाले कारकों पर विचार कर लेने के उपरांत अब हम कार्य में निपुणता की समस्या पर विचार करेंगे। नियुक्त व्यक्ति प्रायः अपने जागृत घंटों के आधे से अधिक समय में किसी-न-किसी प्रकार का कार्य करते हैं। जीविकोपार्जन के कार्य के अतिरिक्त वे इस प्रकार के कार्यों में व्यस्त रहते हैं, जैसे अध्ययन करना, पढ़ना, लिखना, लॉन की घास काटना, घर में सुधार करना या मोटरगाड़ी को ठीक करना। ऐसी अधिकांश क्रियाओं में निपुणता का प्रश्न उपस्थित होता है : अल्पतम प्रयास के द्वारा तीव्रतम गति से कार्य करने की विधि क्या है ? यह प्रश्न मनोवैज्ञानिक प्रश्न का भाग है; क्योंकि इसका संबंध उन

स्थितियों से है, जिनमें हम सर्वोत्तम रूप से विचार कर सकते हैं या अपने अधिगत कौशल का प्रयोग कर सकते हैं। अतएव, इन स्थितियों पर हम विचार करेंगे।

## कार्य-वक्र :

लोग बहुत कम अवसरों पर एक ही गति से दीर्घ काल तक कार्य करते हैं। कार्य के अपने चढ़ाव और उतार होते हैं। उदाहरणतः आप जिस प्रभावपूर्ण गति से अपने अध्ययन को प्रारंभ करते हैं, दीर्घकाल उपरांत अध्ययन के अंत में संभवतः आपकी वही गति नहीं रहती। वस्तुतः संभव है, आप अध्ययन के प्रारंभ में उतनी अच्छी तरह अध्ययन न कर सकें, जितना प्रारंभ करने के थोड़ी देर उपरांत। इस प्रकार आप जानते हैं कि कार्य की क्षमता काल के अनुसार परिवर्तित होती है। जब कार्य की योग्यता के मापक हमारे पास रहते हैं और मिनटों या घंटों के आधार पर हम परिमापन करते हैं, तो फलस्वरूप जो ग्राफ बनते हैं, उन्हें 'कार्य-वक्र' कहा जाता है। भिन्न प्रकार के कार्यों के कार्य-वक्र भी भिन्न-भिन्न होते हैं, किंतु चित्र-१८·७ में प्रदर्शित वक्र अनेक उद्योगों एवं अनेक कार्यों में देखा गया है।

विशेष कार्य-वक्र, जिसका सर्वोच्च लगभग प्रभात के घंटों के मध्य पहुँचता है।
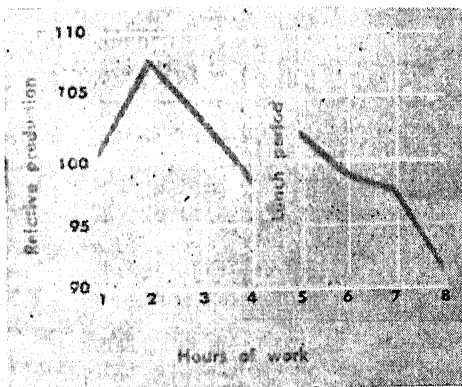
**चित्र १८-७ हाथों से किए जाने वाले परिश्रमसाध्य कार्य का विशेष वक्र। यह वक्र परिश्रमी कार्यों में प्रायः देखा गया है। आठ घंटे के कार्य काल में औसत कार्य १०० की संख्या से प्रकट है।**

चित्र-१८·७ का विशेष वक्र अनेक वर्ष पूर्व हाथों से किए जाने वाले एक परिश्रमसाध्य कार्य का वक्र है। ध्यान दें दिवस के प्रथम घंटे में उत्पादन औसत से कुछ अधिक था, किंतु दूसरे घंटे में, उसमें और उन्नति हुई। तीसरे घंटे में औसत से कुछ और उन्नति हुई, किंतु इसके बाद दूसरे घंटे से भी कम स्तर आ गया। चौथे घंटे में उत्पादन और भी कम हो गया। दोपहर के भोजन के उपरांत उत्पादन में पुनः

वृद्धि हुई, किंतु उसके उपरांत दिन के ढलने के साथ-साथ उत्पादन की मात्रा भी कम होती गई।

इस प्रकार के सामान्य कार्य-वक्र हमें प्रायः उद्योग तथा अन्य कार्यों में मिलते। वक्र का स्पष्ट आकार अनेक कारकों पर निर्भर करता है, जिनका विवेचन हम आगे करेंगे। कार्य-वक्र पर इन कारकों के प्रभाव का अध्ययन करने पर हम वक्र का चार भागों में विश्लेषण कर सके हैं, जिनमें से प्रत्येक भाग कार्य में एक कारक को प्रस्तुत करता है। ये चार भाग हैं, पूर्व-तत्परता, प्रारंभ स्फुरण, अंत स्फुरण और श्रांति। इस भाग में हम प्रथम तीन कारकों पर विचार करेगें और अगले भाग में श्रांति पर विवेचन करेंगे।

एक कार्य-वक्र का विश्लेषण चार भागों में हो सकता है।
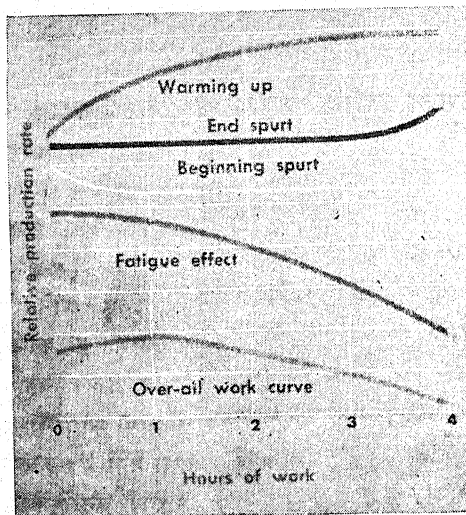
**चित्र १८८ कार्य-वक्र के भाग। किसी विशेष कार्य-वक्र का आकार विविध भागों के सापेक्ष महत्त्व पर निर्भर करता है।**

## पूर्व तत्परता :

पूर्व-तत्परता-प्रभाव एक ऐसा लक्षण है, जो कार्य-वक्र में प्रकट हो सकता है। यह चित्र-१८८ की सबसे ऊपरी रेखा में व्यक्त है। हममें से बहुत लोग पूर्व-तत्परता की धारणा से परिचित हैं और सोच-समझ कर इसका उपयोग करते हैं। एक बॉक्सर (मुक्केबाज) झगड़ा प्रारंभ करने से पहले तत्पर होने के लिए चारों ओर चक्कर काटता है आर हवाई मुक्केबाजी करता है। एक धावक (रनर) धीरे-धीरे आगे आर पीछे दौड़ता है। फुटबॉल खिलाड़ी खेल प्रारंभ करने से पहले बॉल को फेंकते

हैं। इन उदाहरणों में वास्तविक खेल प्रारंभ होने से पूर्व ही खिलाड़ी अपने को तत्पर करता है; क्योंकि वह जानता है कि यदि उसने अपने को पहले से तत्पर न किया, तो वह अपनी सर्वोत्तम योग्यता प्रदर्शित न कर सकेगा।

अन्य प्रकार की क्रियाओं में भी इसी प्रकार की पूर्व-तत्परता होती है, यहाँ तक कि परीक्षा के लिए अध्ययन या किस पत्र के लिए लेख लिखने-जैसी बौद्धिक क्रियाओं में भी होती है। जब आप कार्य प्रारंभ ही करते हैं, आप पूर्णत: व्यवस्थित नहीं होते, वस्तुत: आप कार्य के लिए तैयार नहीं होते और संभवत: आप चंचल हो उठते हैं, कार्य करना छोड़कर इधर-उधर घूमने लगते हैं। पूर्व-तत्परता-काल कुछ व्यक्तियों में दूसरों की अपेक्षा दीर्घकालीन होता है और यह भी संभव है कि कुछ क्रियाओं में अन्य क्रियाओं की अपेक्षा पूर्व-तत्परता में दीर्घ काल लगता है। किंतु, लगभग प्रत्येक प्रकार की क्रिया में पूर्व-तत्परता महत्त्वपूर्ण है।

चित्र १८७ के आधार पर यह देखा जा सकता है कि प्रथम घंटे की अपेक्षा द्वितीय घंटे की उत्पादन-वृद्धि का कारण पूर्व-तत्परता है। यदि पूर्व-तत्परता की गति बहुत मंद हो कार्य-वक्र संपूर्ण प्रभातकाल में बढ़ता रहेगा। दूसरी ओर, यदि इसकी गति बहुत तीव्र हो, यह प्रारंभिक कुछ मिनटों में ही पूर्ण हो जाती है और प्रथम घंटे की उत्पादन की मात्रा को विशेष प्रभावित नहीं करती।

**प्रारंभ-स्फुरण**—चित्र-१८८ का मध्य वक्र कार्य-वक्र के द्वितीय कारक **प्रारंभ-स्फुरण** को स्पष्ट करता है। यह ठीक पूर्व-तत्परता प्रभाव के विपरीत है और उसे पूर्णत: समाप्त कर देता है। हम किसी कार्य को पूर्ण उत्साह और पूर्ण प्रयास के साथ प्रारंभ कर सकते हैं। तब यह अनुभव, कि यह कार्य दीर्घकाल तक चलने वाला है, हमारे उत्साह को कम कर देता है और हम एक स्थिर गति पर चलने लगते हैं—ऐसी गति जो दीर्घकाल तक चलने के लिए सुविधाजनक रहती है। एक ही कार्य पर अनेक बार काम करने पर लोगों में प्रारंभिक स्फुरण की संभावना कम रहती है। यह नवीन कार्य या क्रिया की विशेषता है और कुछ कार्यों में यह बिलकुल नहीं होता।

## अंतस्फुरण :

जब कार्य के अंत में क्रिया में वृद्धि हो जाती है, तो उसे हम **अंतस्फुरण** कहते हैं। दिवस के अंत की समीपता के साथ उत्साह में वृद्धि होती है और ऊर्जा का अंतिम प्रवाह उत्पादन की वृद्धि को बढ़ा देता है। अंतस्फुरण प्राय: शारीरिक प्रयासों में घटित होता है और संभवत: कर्त्ता की शेष समस्त ऊर्जा का उपयोग करने की इच्छा को व्यक्त करता है; क्योंकि वह जानता है कि किसी अन्य प्रयास के लिए

उसे बचाने की अब आवश्यकता नहीं है। लंबी दौड़ दौड़ने वाला व्यक्ति, उदाहरणत: दौड़ के अंत में प्राय: अपनी गति को बढ़ाने में अपनी अतिरिक्त शक्ति लगा देता है और एक मुक्केबाज खेल के अंत में प्राय: अपने सब प्रत्यनों से अधिक प्रबलता के साथ प्रयास करता है।

कभी-कभी अंतस्फुरण दिनांत में इतना अधिक हो जाता है कि पूरे दिन की तुलना में उत्पादन उस समय अधिकतम हो जाता है। इसका घटित होना यह स्पष्ट करता है कि कर्त्ता ने वस्ततु: अपनी संपूर्ण शक्ति से दिन भर कार्य नहीं किया है। व्यक्ति कितना कर सकता है और कितना करने का इच्छुक है, इस अंतर के महत्त्व को हम श्रांति के प्रसंग में देखेंगे।

### श्रांति का प्रभाव :

कार्य-वक्र में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति प्राय: श्रांति की दिखायी देती है। इसी प्रवृत्ति पर पूर्व-तत्परता, प्रारंभ-स्फुरण, अंत-स्फुरण-जैसे अन्य कारकों का प्रभाव आधृत रहता है। कार्य-वक्र की उच्चतम सीमा को देखते हुए कर्त्ता की जिस कार्य-क्षमता की हम आशा करते हैं, वह श्रांति द्वारा बहुत कम हो जाती है।

श्रांति एक बहुप्रचलित शब्द है और इसीलिए हम सोचते हैं कि हम इसके अर्थ से परिचित हैं। निश्चय ही हम श्रांति अनुभव करते हैं और इस अनुभूति को व्यक्त करने के लिए हमारे पास अनेक शब्द हैं—जैसे थका हुआ, चिन्तित, श्रांत, शक्तिहीन, दुर्बल, पराजित, मृतप्राय। इस प्रकार की स्वसंवेद्य अभिव्यक्तियाँ आज तक प्रस्तुत की जा सकने वाली श्रांति की श्रेष्ठतम परिभाषा बना सकती हैं। **श्रांति थकान की अनुभूति है।** आगे हम देखेंगे कि श्रांति को परिमापित करने की कोई पूर्णत: स्थायी विधि नहीं है।

### उत्पादन :

कभी-कभी कार्य के ह्रास में श्रांति प्रकट होती है। यह ह्रास उत्पादन की मात्रा में कमी के द्वारा अथवा भूलों की संख्या में वृद्धि के द्वारा परिमापित किया जा सकता है। बहुधा उत्पादन का ह्रास तब प्रकट होता है, जब कार्य मुख्यत: शारीरिक होता है। यदि कोई व्यक्ति कोयला तोड़ रहा है, श्रांत होने पर टूटे हुए कोयले की मात्रा उससे कम होगी, जब वह श्रांत नहीं था। यदि वह टंकन (टाइप) कर रहा है, तो श्रांत होने पर शब्दों की संख्या उससे कम हो जाएगी, जो श्रांत अवस्था में थी। यहाँ हम पूर्ण हो चुके कार्य की मात्रा की बात कहते हैं और इसे मापना सरल है। हम टूटे हुए कोयले के वजन को माप-तौल सकते हैं अथवा शब्दों की संख्या को गिन सकते हैं। जब क्रिया या कार्य इस प्रकार का है, जिसकी मात्रा मापी जा सकती है,

तो श्रांति को मापित करने का हमारा प्रथम प्रयत्न सदैव हो चुके कार्य की मात्रा को मापने का होगा।

विशेषतः मात्रा पहले धीरे-धीरे कम होती है या इतनी धीरे कि यह ह्रास दिखायी नहीं देता। इसके उपरांत ह्रास की गति तीव्रतर होती जाती है, जैसा कि चित्र १८·८ में दिखाया गया है। कार्य दीर्घकाल तक चलता रहे, तो फलस्वरूप श्रांति इतनी बढ़ जाती है कि कोई कार्य नहीं हो सकता। हम कहते हैं कि व्यक्ति पूर्णतः थक गया, जब वह इतना थक जाता है कि और कोई कार्य नहीं कर सकता।

भूलें और काल :

मनोगति (साइकोमोटर) संपृक्त कार्यों में—ऐसे कार्य जिनमें शारीरिक कार्यों से भिन्न कौशल, गति या परिशुद्धता अपेक्षित हैं—श्रांति की वृद्धि के साथ होने वाले कार्य की मात्रा में प्रायः ह्रास नहीं होता। कभी-कभी यह इसलिए भी कि कार्य के परिमाण को मापित नहीं किया जा सकता। परीक्षा के लिए अध्ययन ऐसी क्रिया है, जिसके परिमाण को शायद ही मापा जा सके। दूसरी ओर ऐसे कार्य में शारीरिक प्रयास इतनी अल्प मात्रा में निहित रहता है कि उत्पादन की मात्रा में कोई विशेष अंतर नहीं आता। ऐसी स्थितियों में उत्पादन की मात्रा नहीं, वरन् बारंबारी होने वाली भूलों (अशुद्धियों) का परिमापन, श्रांति को प्रकट करता है। उदाहरणतः, व्यक्ति जब टेलीग्राफिक् कोड प्राप्त कर रहा हो, तो उसकी श्रांति का मापन बढ़ने वाली भूलों की संख्या मे होता है।

एक प्रयोग में ( मैकवर्थ, १९५० ) प्राप्ताओं ने पहले घंटे में प्राप्ति-कोड में जितनी भूलें की थी, तीसरे घंटे में उससे तीन और चार गुना अधिक भूलें कीं। टंकन भूलों के एक प्रयोग में (राबिनसन और बिल्स, १९२६) क्रमागत पंक्तियों को टंकित करने में अपेक्षित काल को परिमापित किया गया, यद्यपि प्रत्येक पंक्ति के लिए अपेक्षित समय ( कार्य की मात्रा का मापन ) पहले अधिक हुआ, किंतु बाद में कम होता गया। भूलों के विश्लेषण करने पर ज्ञात हुआ कि प्रत्येक पंक्ति की भूलों की संख्या में, उस समय पर पहुँचने पर जहाँ तक प्रत्येक पंक्ति का समय निर्धारित था, निरंतर वृद्धि होती रही।

कार्य की निश्चित मात्रा को करने में अधिक **काल** के रूप में श्रांति प्रकट होती है या बढ़ती हुई **भूलों** के रूप में यह कार्यकर्त्ता की अभिवृत्ति पर निर्भर करता है। यदि उसे पूर्व परिशुद्धता से कार्य करने का निदेश मिला है, वह उसे अधिक समय तक करके कर सकता है। तब जैसे-जैसे वह अधिक-से-अधिक श्रांत होता जाता है, उसके लिए भूलों से बचने के लिए कार्य को और धीरे करना आवश्यक हो जाता है। दूसरी ओर यदि कार्यकर्त्ता को मुख्यतः तीव्र गति से कार्य करने का निदेश

दिया गया हो तो वह उसी गति से दीर्घ काल तक कार्य करता रहेगा, किंतु उसकी भूलों में अधिक-से-अधिक वृद्धि होती रहती है।

अतएव, हम देखते हैं कि श्रांति एक से अधिक रूपों में व्यक्त हो सकती है और श्रांति के प्रभावों को देखने में तथा क्रिया के सब संभावित परिवर्तनों की परीक्षा में सतर्क रहना चाहिए। यदि हम एक वस्तु का मापन करें और दूसरी को छोड़ दें, तो संभव है हम देखें कि जिसका हम मापन कर रहे हैं, उसमें संभवतः कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। परिवर्तन किसी ऐसे भाग में हो सकता है, जिसका मापन करने में हम असफल रहे हैं। यह विशेषतः उस अवस्था में सत्य होता है, जब कार्यकर्त्ता जानता है कि मापन किस वस्तु का किया जा रहा है; क्योंकि तब वह उस भाग में अपनी क्रिया को ठीक रखने का प्रयत्न करता है। किंतु, यदि वह वस्तुतः श्रांत होता है, तो उसके कार्य का किसी और रूप में ह्रास होने लगेगा।

### शारीरिक प्रभाव :

अधिक विस्तार में जाकर हमें इस पर ध्यान देना चाहिए कि श्रांति शारीरिक क्रियाओं में भी प्रतिबिंबित हो सकती है। मांसपेशीय तनाव बढ़ सकता है, हृदगति रक्तचाप में और थकान के अन्य मापकों में वृद्धि हो सकती है। प्रस्तुत कार्य की मात्रा को करने के लिए आक्सीजन की अपेक्षित मात्रा भी बढ़ सकती है। अतएव, इन परिवर्तनों के शारीरिक मापन श्रांति को उस अवस्था में प्रदर्शित कर सकते हैं, जब व्यक्ति के व्यवहार में अल्प या कोई प्रमाण न मिले।

### अभिप्रेरण में परिवर्तन के रूप में श्रांति :

और भी ऐसी विधि है, जिसमें श्रांति प्रकट होनी है। मान लीजिए, आप देखते हैं कि लोग दीर्घकाल तक कार्य कर रहे हैं और उनका उत्पादन निरंतर कम होता जाता है, तब आपके समक्ष श्रांति का स्पष्ट प्रमाण है। मान लीजिए, आप कार्यरत व्यक्तियों का कार्य बंद करवा देते हैं और उन्हें कुछ योग्यता-परीक्षण देते हैं। सभावनाएँ हैं कि इन परीक्षणों की योग्यता कार्य के अनेक घंटों के बाद उतनी ही अच्छी आप पाएँ, जितनी वह उस समय थी, जब उन्होंने कार्य प्रारंभ ही किया था। आप यह भी अनुभव कर सकते हैं कि बिना शारीरिक योग्यता के ह्रास के उनका कार्य हो जाता है। अतः, लोग अब भी अनेक घंटों के उपरांत वैसा ही कार्य कर सकते हैं, जैसा पहले घंटे में वे करते थे, किंतु वैसा वे उतनी अच्छी तरह वस्तुतः कार्य नहीं करते। तब उनके उत्पादन के ह्रास का कारण क्या है? यह अनुमान करने में संभवतः आप गलती नहीं करेंगे कि यह श्रांति के कारण नहीं वरन् **अभिप्रेरण** में परिवर्तन के कारण है—कि लोग केवल उतना परिश्रम नहीं करते, जितना वे कर

सकते थे। वैकल्पिक रूप से, आप कह सकते हैं कि श्रांति की क्षतिपूर्ति के लिए अधिक अभिप्रेरण अपेक्षित है, ( मैकवर्थ, १९४८ ) दोनों ही कथन शुद्ध हैं।

इस स्थिति को सुव्यवस्थित रूप से चित्र-१८-९ में दिखाया गया है। कार्य-उत्पादन का वक्र निरंतर नीचे की ओर मुड़ता जाता है, किंतु प्रयोगशाला-परीक्षणों द्वारा परिमापित योग्यता का वक्र नीचे नहीं जाता। परिवर्तन केवल, आवश्यक क्या है या कार्य करने की इच्छा के संबंध में, व्यक्ति की भावना में होता है।

श्रांति का यह प्रभाव हमारे दैनिक जीवन में बहुत साधारण है। यदि आप एक मोटरगाड़ी कई घंटों से चला रहे हों और तब आपको रोक कर आपकी गाड़ी चलाने की परीक्षा ली जाए, तो आप संभवत: उतनी ही अच्छी तरह चलाएँगे जितनी अच्छी तरह बिना अनेक घंटे तक चलाए हुए आप चलाते। फिर भी, जब आप वस्तुत: गाड़ी चला रहे हों, आप इस संबंध में संभवत: अपने विचार में परिवर्तन कर सकते हैं कि आवश्यक क्या है। आप कम सतर्क रहते हैं, आप चौराहा आने पर उतनी जल्दी गाड़ी को धीरे नहीं करते और दूसरी गाड़ी के आने पर आप आगे निकलना चाहते हैं—यह सब आप इसलिए नहीं करते कि आप सही कार्यों को करने में असमर्थ हैं, वरन् इसलिए कि वह सब करना आपको आवश्यक प्रतीत नहीं होता।

'सतर्कता' शब्द का प्रयोग इस प्रभाव को कम करने के विवरण में किया जाता है और यह बहुत उपयुक्त है। आप उतनी ही अच्छी तरह उसे कर सकते हैं, किंतु आप कम सतर्क हैं।

श्रांति के इस प्रभाव की यह प्रकृति ही इसे इतना महत्वपूर्ण बनाती है। यदि आप कई घंटे में एक खाई खोद रहे हों, आप थक गए हैं और आप इसे जानते हैं। यदि आप गाड़ी चला रहे हैं, आप थकान अनुभव नहीं करते; क्योंकि श्रांति का एक मात्र प्रभाव आपके सचेष्ट कार्य से आपको विश्राम देने का होता है। आप उतनी अच्छी तरह गाड़ी नहीं चलाते; क्योंकि आप सोचते हैं कि उसकी आवश्यकता नहीं है और असावधानी के कारण दुर्घटनाग्रस्त होने पर आप निश्चित हो जाएँगे कि आप सब कुछ वैसा ही कर रहे थे, जैसा आप करना चाहते थे। किंतु, जब आप श्रांत होते हैं, आपको क्या करना चाहिए इस पर जो **विचार** करते हैं, और आप **वस्तुत:** जो करते हैं, दोनों में अंतर होता है।

## निद्रा :

किसी व्यक्ति को थकाने या श्रांत करने का एक सरल तरीका है। उसे निद्रा से वंचित करना। वैसे निद्रा का न होना और श्रांति शरीर-क्रियात्मक रूप में एक ही नहीं हैं। फिर भी निद्रावंचित व्यक्ति, केवल जागृत रहने और निद्रा द्वारा प्राप्त होने

वाले विश्राम के बिना क्रियारत रहने पर बहुत श्रांत हो जाता है। अतएव, यह पूछना महत्त्वपूर्ण है कि निद्रावंचन के प्रभाव क्या होते हैं ?

परिवर्तनशील अभिप्रेरण क्रिया में ह्रास कर सकता है, जबकि योग्यता अपरिवर्तित रहती है।
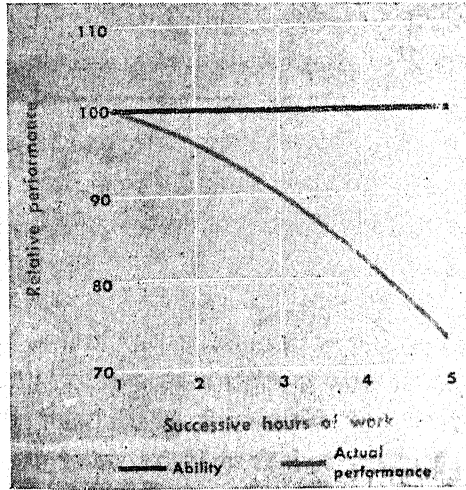
चित्र १८-९ परीक्षण से प्रकट हो सकता है कि कार्यकर्ता की योग्यता में परिवर्तन नहीं हुआ, किंतु यह तथ्य कि कार्य-काल में कार्य में ह्रास हुआ है, निदेशित करता है कि अभिप्रेरण में परिवर्तन हुआ है।

इस समस्या पर दर्जनों शोध-प्रयोग हुए हैं। उन्हें उन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनका हम श्रांति परिमापन के अन्य प्रयासों में कर चुके हैं। यदि कोई व्यक्ति एक रात बिना निद्रा के व्यतीत करता है, तो दूसरे दिन अधिक अंतर बताना कठिन है। संभवतः वह स्वीकार करे कि उसे सिर कुछ खाली-खाली लगता है, उसका ध्यान कुछ भटकता है और बैठने या लेटने की उनकी असाधारण इच्छा है। पर, उसका कार्य प्रायः वैसा ही रहता है; क्योंकि वह दैनिक कार्य ठीक से करता है, परीक्षा देता है, पत्र लिखता है और अन्य कार्य स्वाभाविक रूप में करता है।

मान लीजिए, हम उस व्यक्ति को दूसरे दिन और उसके बाद तीसरे दिन भी सोने नहीं देते। अनेक प्रयोगों में व्यक्तियों को लगातार तीन रातों तक सोने नहीं दिया, चौथे दिन उन्हें सब प्रकार के परीक्षण दिए गए—मनोशारीरिक (Psychc-motor) बुद्धि, गणित आदि। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे इन वस्तुनिष्ठ परीक्षणों को उतनी ही अच्छी तरह करते हैं, जितनी अच्छी तरह विश्राम लेने पर करते। हम देखेंगे कि दीर्घकाल तक का निद्रावंचन उनकी योग्यता में कोई विघ्न नहीं डालता, यदि हम उसके मापनार्थ व्यवस्थित रूप से परीक्षण लें।

किंतु, इसके अनेक प्रभाव हैं, जिनको अन्य विधियों से हम जान सकते हैं। लोग मूर्ख, चिड़चिड़े और अशांत हो जाते हैं। कुछ लोगों में ऐसे लक्षण प्रकट हो सकते हैं जो मानसिक विकारों के सदृश हों -ऐश्वर्य या उत्पीड़न या कुछ व्यक्तियों को मिथ्या स्मृतियों और अतीत की बातों का विभ्रम हो जाता है। उनका निर्णय विकृत हो जाता है और यदि वे मोटरगाड़ी चलाएँगे, तो दूसरों से आगे निकलने की चेष्टा करेंगे। सामान्यत: जिन लोगों को दीर्घकाल तक निद्रा से वंचित रखा गया है, उनमें वे सब लक्षण दिखायी देते हैं, जो अनेक घंटों तक कठिन कार्य करने वाले या कम आक्सीजन के वतावरण में रहने वाले व्यक्तियों में होते हैं। संभवत: सर्वाधिक स्पष्ट लक्षण होता है कि वे कार्य करना नहीं चाहते, वस्तुत: वे केवल इतना ही चाहते हैं कि वे लेट जाएँ और सो जाएँ। अतएव निद्रावंचन, श्रांति के अन्य प्रभावों के समान ही, व्यक्ति की कार्य-योग्यता को परिवर्तित नहीं करना, वरन् वह उसकी कार्य करने की इच्छा या अभिप्रेरण को बदल देता है।

## कार्य और विश्राम :

हम देख चुके हैं कि अनेक कारक हैं, जो प्रभावित करते हैं कि हम कैसे काय करते हैं। श्रांति इनमें से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारक है। इसका प्रभाव हम अनेक रूपों में दिखा सकते हैं। श्रांति इतनी महत्त्वपूर्ण है, इसलिए इसे रोकने के उपायों पर हम विशेष ध्यान देते हैं और हो जाने पर उसके निवारण के उपायों पर भी।

## श्रांति से स्वस्थ होना :

संभवत: श्रांति को रोकना या दूर करना सीखने का सर्वोत्तम ढंग यह खोजना है कि कितनी तीव्रता से हम उससे स्वस्थ होते हैं। चित्र १८·१० विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों पर किए गए एक प्राचीन प्रयोग ( मेंजर, १९२७ ) के परिणामों को प्रदर्शित करता है।

> 'विद्यार्थियों से अंगुलियों से वजन उठाने के लिए कहा गया और जिस ऊँचाई तक वे वजन को उठाते, उमे प्रत्येक बार मापित किया गया। उनसे वजन को तब तक लगातार उठाने में लिए कहा गया, जब तक वे वजन उठाने में असमर्थ न हो गए। तब उन्हें भिन्न-भिन्न अवधियों में विश्राम दिया गया और उसके बाद उन्हें वजन उठाने के लिए पुन: कहा गया। पहली बार में जिस ऊँचाई तक वे वजन उठा सके थे, विश्राम के उपरांत श्रांति से उनके सापेक्ष स्वास्थ्य को मापा गया। यदि वे उसे फिर बिलकुल उठा नहीं सके, तो समझना चाहिए कि उन्होंने बिलकुल स्वस्थता प्राप्त नहीं की है। यदि वे उसे उतना ही ऊँचा उठा सकें, जितना पहली बार में उठाया, तो उन्होंने शत-प्रतिशत स्वास्थ्य लाभ कर लिया।"

विश्राम के प्रारंभिक कुछ मिनटों में श्रांति तीव्र गति से दूर होती है।
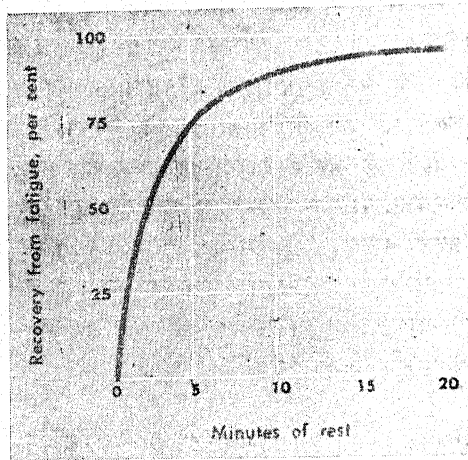
**चित्र १८·१० श्रांति से स्वास्थ्य-लाभ के परीक्षणों के ये परिणाम हैं। प्रयोग-पात्रों ने अपनी अंगुलियों से तब तक वजन उठाया, जब तक वे और उठाने में असमर्थ नहीं हो गए। तब, भिन्न-भिन्न कालों के विश्राम के उपरांत उनसे फिर वजन उठाने के लिए कहा गया। वक्र प्रदर्शित करता है कि कितना ऊँचा प्रथम बार वजन उठाने की तुलना में, वे वजन को विश्राम के बाद उठा सके (मेंजर के अनुसार १९२७)।**

चित्र १८·१० प्रदर्शित करता है कि श्रांति से स्वस्थता प्रथमतः तीव्र गति से प्राप्त होती है, किंतु उसके बाद वह पर्याप्त मात्रा में कम हो जाती है। २० मिनट के विश्राम के उपरांत विद्यार्थियों ने श्रांति से स्वास्थ्य-लाभ नहीं किया था। वस्तुतः जिस गति से वे स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे, उससे प्राकृत अवस्था तक पहुँचने के लिए कुल ४० मिनट अपेक्षित थे।

यदि विद्यार्थियों को पूर्ण श्रांति तक पहुँचने से पहले ही रोक दिया जाए, और तो वे दिए गए विश्रामकालों के फलस्वरूप तीव्रता से स्वस्थ्य लाभ करते हैं। उदाहरणतः जितना ऊँचा वजन उन्होंने पहली बार उठाया था, उससे उन्हें आधी ऊँचाई पर ही वजन उठाते समय रोक दिया जाए। इस स्थिति में बहुत कम समय के विश्राम से वे पूर्णतः स्वस्थ हो जाएँगे। वस्तुतः श्रांति से स्वस्थता अल्पकालों के कार्य के बाद दीर्घकाल के कार्यों की अपेक्षा इतनी तीव्रता से होती है कि कहीं अधिक समग्र योग्यता दीर्घ कार्यकालों की अपेक्षा लघु कार्यकालों के साथ उपलब्ध की जा सकती है।

उदाहरणतः. मान लीजिए आपके पास कुछ बर्फ है, जिसे तोड़ना है। यदि आप तुरंग उसे तोड़ना प्रारंभ करें और तब तक तोड़ते रहें, जब आप केवल बर्फ काटने के

साधन को उठा भर सकें, तब आपको बर्फ तोड़ना बंद करना होगा और विश्राम लेना होगा। आपको श्रांति से स्वस्थ होने और पुनः कार्य करने के लिए दीर्घकाल की आवश्यकता होगी। दूसरी ओर, यदि आप अल्पकाल के लिए बर्फ काटें और फिर कुछ देर विश्राम कर लें, फिर बर्फ काटें, आदि, तब आपको दीर्घकालीन विश्राम की आवव्यकता न होगी; क्योंकि केवल अल्पकार्य करने पर थकान शीघ्र दूर हो जाती है। इस प्रकार आप दृढ़तापूर्वक दीर्घकाल तक बर्फ तोड़ सकेंगे और यथार्थतः आप संपूर्ण कार्य को भी, पूर्णतः श्रांत हो जाने तक तोड़ते रहने की अपेक्षा, शीघ्र समाप्त कर सकेंगे।

## विश्रामकाल :

यह कथन निश्चित ही नीतिसंगत है। श्रांति का परिहार करने और फिर भी कार्य को पूर्ण करने के लिए व्यक्ति को बहुत थकने से पूर्व ही विश्राम की उचित व्यवस्था कर लेनी चाहिए। कितनी बार और कितनी देर तक उन्हें विश्राम लेना चाहिए, यह कार्य के प्रकार पर निर्भर करता है। शारीरिक अति परिश्रमसाध्य कार्यों में बार-बार और दीर्घकालीन विश्राम की आवश्यकता रहती है। जो कार्य परिश्रम-साध्य नहीं हैं, उनमें बार-बार तथा दीर्घकालीन विश्रामों की आवश्यकता नहीं रहती (देखिए, अधिगम में अभ्यासकाल से संबंधित अध्याय ८ का विवेचन)।

संप्रति कुछ वर्षों में उद्योग के क्षेत्र में इन सिद्धांतों का अधिक-से-अधिक प्रयोग दिन भर में नियमित विश्रामकालों की व्यवस्था करके किया जा रहा है। औद्योगिक संस्थाओं ने अनुभव एवं प्रयोग द्वारा सीख लिया है कि ऐसे विश्रामकाल श्रांति का निवारण और उत्पादन में वृद्धि करते हैं। अपेक्षित विश्रामकार्य के लिए हानिप्रद नहीं, वरन् लाभप्रद है। उन्हें प्रायः व्यावहारिक निर्णय लेने पड़ते हैं कि विश्रामकाल कब और कितने समय तक दिया जाए। बहुधा विश्रामकाल १० या १५ मिनट के दिए जाते हैं। उत्पादन-अभिलेखों का सावधानी से अध्ययन करके विश्रामकालों को उन अवसरों पर निर्धारित करना संभव हो सकता है, जब उत्पादन में ह्रास होने लगे। लिपिक कार्यकर्त्ताओं अथवा शारीरिक परिश्रम न करने वालों के लिए एक विश्राम-काल प्रभात के कार्यकाल के मध्य और दूसरा दोपहर के कार्यकाल के मध्य देना प्रायः पर्याप्त होता है।

औद्योगिक श्रांति के प्रयोगों द्वारा हम एक बात यह सीखते हैं कि कार्य-कर्त्ताओं की अनियमित उपस्थिति को स्वीकार करने की अपेक्षा उनके लिए विश्राम-कालों की व्यवस्था करना अधिक अच्छा है। उदाहरणतः, एक प्रयोग में निश्चित विश्रामकालों की व्यवस्था होने पर उत्पादन पहले की अपेक्षा अधिक हुआ,

जब कि कुल समय विश्राम देने के कारण दूसरी स्थिति में कुछ अधिक ही था (मैक्गेही और ओवन, १९४० ) । इसका कारण स्पष्टतः कार्य करने वाले व्यक्तियों के समूह पर निर्भर करता है । हममें से अधिकांश व्यक्ति संपूर्ण कार्य के परिमाण को पूर्ण करने का या निश्चित समय में पूर्ण करने के लिए अपने प्रयास के स्तर को समायोजित करने की व्यवस्था कर लेते हैं । उदाहरणतः यदि आप एक मील की दौड़ प्रारंभ करते हैं, आप उतनी तीव्र गति से प्रारंभ नहीं करते, जितनी १०० गज लंबी दौड़ के लिए करते हैं । इसी तरह, यदि किसी व्यक्ति के पास कार्य करने के लिए १० मिनट का समय है, तो उसके अधिक परिश्रम से कार्य करने की संभावना होगी, उस तुलना में जब कि उसके पास कार्य करने के लिए मात्र दो घंटे का समय हो । अतएव, जब किसी व्यक्ति के पास विश्रामार्थ निश्चित समय है, तो वह अपना कार्य उस स्थिति की अपेक्षा तीव्रतर गति से करेगा, जब बिना विश्राम के थक जाने तक स्वतः कार्य छोड़ने तक उसे कार्य करना पड़े ।

## कार्य-दिवस और कार्य-सप्ताह की लंबाई :

कार्य के भली-भाँति होने के लिए दूसरा कारक है—कार्य-दिवस की लंबाई । इससे संबंधित तथ्य बहुत रोचक हैं । बहुत लोगों का अनुमान है और वह अनुमान स्वाभाविक है कि यदि हम किसी कर्मचारी से अधिक कार्य लेना चाहते हैं, तो हमें उसके कार्य के प्रतिदिन के या प्रति सप्ताह के घंटे बढ़ा देने चाहिए । संप्रति कुछ वर्षों में यह और भी स्पष्ट हो गया है कि अधिकांश व्यक्तियों में एक दिन में या एक सप्ताह में कुछ निश्चित घंटे कार्य कर सकने की यथार्थ सीमा होती है और पर्याप्त कुशलता से वे यह कार्य करते हैं । संभवतः यह स्पष्ट है कि यदि कोई व्यक्ति ८ घंटें के स्थान पर प्रतिदिन १० घंटे कार्य करने लगे, तो उसकी योग्यता में प्रति घंटे कमी होने लगती है । बहुत काल तक जिस बात को अनुभव नहीं किया गया, वह यह है कि व्यक्ति की योग्यता में इससे इतनी कमी आती रहती है कि १० घंटे के दिन में कुल कार्य जितना वह करता है, वह ८ घंटे के दिन में किए गए कुल कार्य की अपेक्षा कम होता है ।

अनेक प्रयोगों ने इन दोनों तथ्यों को प्रमाणित किया (गिसेली और ब्राउन, १९५५) । यदि अधिकतम उत्पादन प्रति घंटा हमारी इच्छानुसार होता है, तो ३६ से ४४ घंटे तक का कार्य-सप्ताह सर्वोत्तम होता है । यदि हम अधिकतम उत्पादन प्रति कार्य-सप्ताह के अनुसार चाहते हैं, तो सर्वोत्तम कार्य-सप्ताह ४८ से ५४ घंटे का होता है । इस अंतर का कारण है कि प्रति घंटे की कार्य-क्षमता में ह्रास हो जाता है, जब कार्य-सप्ताह ४० से ५० घंटे का बढ़ जाता है, किंतु कार्य-क्षमता का ह्रास इतना

अधिक नहीं होता कि घंटों की अधिक संख्या का स्थान ले सके। यदि कार्य-सप्ताह को इस सीमा से आगे बढ़ा दिया जाए, तो प्रति घंटा कार्य-क्षमता का ह्रास इतना अधिक हो जाता है कि यह घंटों की बढ़ी हुई संख्या का पूर्णतः स्थान ले लेता है।

## मानव उपयोगार्थ इंजीनियरी :

हम जिस वैज्ञानिक युग में रहते हैं, उसमें व्यक्तियों के अपने कार्य में समायोजन का एक और पहलू भी है। यह है, मशीनों के साथ उनका संबंध। मशीनें ऐसे अगणित कार्यों को करने लगी हैं जिन्हें पहले मनुष्य करते थे और वे ऐसे कार्य भी करती हैं, जिन्हें पहले कभी करना संभव न था। मशीनें अपने चालन के लिए मनुष्यों को नियुक्त करती हैं और उनके व्यवहार को नियंत्रित करती हैं। कुल परिणाम यह होता है कि लोग मशीनों से या मशीनों द्वारा अधिक-से-अधिक कार्य कर रहे हैं। उन्हें किसी भा भाँति मशीनों से 'काम चलाना' है और कार्य को सुव्यवस्थित एवं निपुणतापूर्वक करने के लिए तथा अपनी इच्छा के अनुरूप मशीनों से कार्य करवाने के लिए उन्हें सावधानी से कार्य करना पड़ता है।

## मनुष्य-मशीन समस्याएँ :

मानव और मशीनों के संबंध नवीन समस्याओं को उत्पन्न कर रहे हैं—मनुष्यों और मशीनों के सहयोग की समस्याएँ। समस्याओं का एक प्रकार, जिसका उल्लेख हम कर चुके हैं, मनुष्यों को मशीने चलाने के लिए चयन करने और प्रशिक्षण देने का है। दूसरे प्रकार की समस्याएँ मनुष्यों के उपयोगार्थ मशीनों का परिरूप इस प्रकार निर्मित करना है, जिससे कि मशीनें मनुष्यों का कार्य करें। इन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने वाले ज्ञान के क्षेत्रों के विविध नाम हैं। एक है, **मानव इंजीनियरी**। किंतु, बहुधा इसका विस्तार इसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए मानव-कारकों के यंत्र-शास्त्र तक है। ऐसी इंजीनियरी के अंतर्गत अनेक विषय आते हैं, किंतु यहाँ केवल **इंजीनियरी-मनोविज्ञान** का महत्त्व है। यह मनोविज्ञान का तीव्र विकासशील क्षेत्र है–अधिकांशतः प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का—इसका संबंध इंजीनियरी परिरूप की समस्याओं से है। इंजीनियरी मनोविज्ञान का प्रारंभ द्वितीय विश्वयुद्ध के समय से हुआ, जब युद्धकालीन आवश्यकताओं ने मनोवैज्ञानिकों का इंजीनियरी समस्याओं से संपर्क स्थापित किया (चेपानीस एट० एल०, १९४९)। इस संपर्क ने प्रदर्शित किया कि मनोविज्ञान के पास इंजीनियरी परिरूप की प्रयोग में आने वाली सूचनाएँ हैं और वह इन परिरूपों को आवश्यकता होने पर प्रयोगों और परीक्षणों द्वारा और भी विकसित कर सकता है। इस प्रकार इंजीनियरी मनोविज्ञान विकसित

होने लगा और तब से तीव्र गति मे बढ़ रहा है। आज अधिकांश बड़े उद्योग संस्थान जो वायुयान, मिसाइल ( अस्त्र ), योजकप्रणाली ( काम्यूनिकेशन सिस्टम ), संगणक आदि जटिल उपकरणों का निर्माण करते हैं, वे इंजीनियरी मनोवैज्ञानिकों को ऐसे उपकरणों के परिरूपों को तैयार करने वाले इंजीनियरों के समूह के सदस्य के रूप में नियुक्त करते हैं। अब इस विषय पर अनेक पाठ्य-पुस्तकें एवं लघु पुस्तिकाएँ गर्व करने योग्य उपलब्ध हैं। यहाँ हम इसका केवल संक्षिप्त विवरण देने का प्रयत्न करेंगे।

मशीनों के चलाने में अनेक प्रकार के कार्य निहित रहते हैं—शारीरिक, मनोप्रेरक का मानसिक—किंतु यह मुख्यत: मनोप्रेरक वर्ग के अंतर्गत आते हैं। सामान्य रूप से ऐसे कार्यों के मापन की दो विधियाँ है : भूलें और कार्य-परिमाण। विलोमत: जब मशीन के यंत्र प्रभावशाली रूप से कार्य करने में असफल रहते हैं, तो असफलता का कारण चालक की भूल भी हो सकता है अथवा उसकी क्षमता से अधिक उसके कार्यभार का होना भी। ये दोनों कारण परस्पर-क्रिया करते हैं। धीरे कार्य करने पर व्यक्ति प्राय: अपने कार्य में अधिक परिशुद्ध हो सकता है, तीव्रता से करने पर वह प्राय: अधिक कार्य कर सकता है, किंतु उसके लिए परिशुद्धता का त्याग करना पड़ता है। अत:, ये दो कारक और इनकी परस्पर-क्रिया इंजीनियरी मनोवैज्ञानिकों की सामान्य समस्याएँ हैं। वह मशीनों के परिरूप बनाने या पुन: उन्हें सुधारने का इस प्रकार प्रयत्न करता है जिससे भूलें यथासंभव कम हों और उत्पादन यथासंभव अधिक हो। प्रत्येक का सापेक्ष महत्त्व मशीन पर आर उसके प्रयोजन पर निर्भर करता है।

इंजीनियरी मनोविज्ञान के कार्य को अन्य प्रकार से भी दो सामान्य भागों में विभाजित किया जा सकता है : प्रतिरूप ( Display ) और नियंत्रण (Control)। मशीन-प्रणाली में मनुष्य को एक अंग या कारक माना जा सकता है। ऐसे कारक के रूप में वह मशीन के भागों से तथा अपने भौतिक पर्यावरण से 'अंतर्गामी' सूचनाएँ प्राप्त करता है। दूसरे शब्दों में, वह अपनी इंद्रियों के माध्यम से सूचनाएँ प्राप्त करता है। ऐसी सूचनाएँ उसके समक्ष किसी प्रकार के **प्रदर्शन** द्वारा प्रस्तुत की जाती हैं। दूसरी ओर उसका 'उत्पादन' ऐसी वस्तुएँ हैं, जिन्हें वह मशीन को और मशीन से नियंत्रित करके करता है। इस प्रयोजन के लिए जिन 'वस्तुओं' का वह उपयोग करता है, वे 'नियंत्रित' हैं। अतएव, इंजीनियरी मनोवैज्ञानिक जिन समस्याओं पर कार्य करता है, उनमें से अधिकांश में प्रतिरूप अथवा नियंत्रण या दोनों निहित रहते हैं।

## मशीनों की तुलना में मनुष्य :

हम प्रतिरूपपों और नियंत्रणों के परिरूपों के उदाहरणों पर विचार करेंगे। यह करने से पूर्व एक अधिक सामान्य प्रश्न का विवेचन आवश्यक है। यह प्रश्न है कि व्यक्ति भिन्न कार्यों को करने की योग्यता की मशीनों से तुलना कैसे करता है ? कुछ मशीनों के लगभग आश्चर्य में डालने वाले कार्यों के बावजूद ऐसे अनेक कार्य हैं, जिन्हें मशीनों की अपेक्षा मनुष्य अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं। मानव-मशीन प्रणाली को सर्वोत्तम रूप से निर्मित करने के लिए हर एक को ऐसे कार्य सौंपने चाहिए, जो वह श्रेष्ठतम रूप में कर सके।

## बोध ग्रहण करना (संवेदनशीलता) :

इस विषय पर तुलना करते हुए कुछ सामान्य बातें कही जा सकती हैं ( विलियंस एट० एल०, १९५६ )। बोधग्राहक ( Sensor ) के रूप में मनुष्य प्रकाश या ध्वनि के वर्ग-क्रम में सीमाबद्ध रहता है, जिसके प्रति वह अनुक्रियाशील होता है, जबकि मशीनों को संकेतों के बोध को ग्रहण करने योग्य भी बनाया जा सकता है, जैसे अवरोक्त ( Infrared ), जिसके प्रति मनुष्य पूर्णतः अपरिचित है। दूसरी ओर, भौतिक ऊर्जा के अनेक रूपों के प्रति मानव-संवेदनशीलता अत्यधिक तीव्र होती है और बहुधा बोधग्राहक उपकरणों से श्रेष्ठतर होती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य संवेदना की तीव्रताओं के कहीं अधिक विस्तृत विन्यास के मध्य कार्य करता है और बहुत दुर्बल तथा बहुत तीव्र उद्दीपनों के लिए बोध-ग्राहक उपकरणों की अपेक्षा उत्तम अनुक्रिया प्रकट करता है। यह समझना महत्त्वपूर्ण है कि एक संवेदना विशेष प्रकार की सूचना को ग्रहण करने में दूसरी संवेदना की अपेक्षा श्रेष्ठतर हो सकती है—उदाहरणतः, दिक् सूचना ( Spatial ) को ग्रहण करने में श्रवण की अपेक्षा नेत्र कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं—और प्रतिरूपों को चुनने एवं परिरूपित करने में इस तथ्य पर विचार करना आवश्यक है :

## दत्त-सामग्री प्रक्रम :

दत्त-सामग्री के प्रक्रम में—सूचना को स्मरण करने और उसकी व्याख्या करने में भी मनुष्य में मशीनों की तुलना में गुण और दोष हैं। मनुष्य निम्नांकित बातों में श्रेष्ठतर है : उदाहरणतः, उसे संगणक की भाँति विस्तृत कार्यक्रम नियोजित करने की आवश्यकता नहीं रहती। वह अधिक परिवर्तनशील है तथा अप्रत्याशित स्थितियों का सामना कर सकता है। वह निर्णय ले सकता है और शीघ्रता से समस्याओं के

समाधान प्रस्तुत करने वाली विधियों और तथ्यों का उपयोग कर सकता है। किंतु, विस्तृत सूचनाओं में जमा रखने ( स्मरण रखने ) में तीव्र गति और जिस परिशुद्धता से वे समाधान तक पहुँच सकती हैं, दत्त-सामग्री को विभाजित और वर्गीकृत करने में, सामान्य कार्यों के विश्वसनीय परिणाम प्रस्तुत करने में तथा बिना श्रांति, पूर्वग्रह या निर्णय और निष्कर्षों को विकृत करने वाले कारकों का शिकार हुए दीर्घकाल एवं तीव्र गति से कार्य करने में मशीनें मनुष्यों से श्रेष्ठतर हैं।

नियंत्रित करना :

जब वस्तुओं को नियंत्रित करने की स्थिति आती है, तो सामान्यतः मनुष्य मशीनों की अपेक्षा निम्न रहता है और जिन नियंत्रणों का वह उपयोग करता है, उनको परिरूपित करने में मनुष्य की इस सीमा को ध्यान में रखना आवश्यक है। वह अपेक्षाकृत दुर्बल होता है, उसकी गति मंद होती है। वह केवल उन गतिविधियों तक सीमित रहता है, जिन्हें वह कर सकता है और वह नियंत्रणों की केवल उस संख्या तक सीमिति रहता है, जिन्हें एक साथ अथवा तीव्र क्रम से चला सकता है। वह समय, जिसमें वह बिना श्रांति के अथवा बिना ध्यान के चंचल हुए कार्य कर सकता है, वह अपेक्षाकृत बहुत कम होता है। इन्हीं कारणों से मानव-नियंत्रण को सौंपे जाने वाले कार्यों का चयन और उनका परिरूपण सावधानी से होना चाहिए।

ऐसे वाक्य केवल सामान्य पथ-प्रदर्शक हैं। विशिष्ट दत्त-सामग्री युक्त लघु-पुस्तिका उपलब्ध है, जिससे यह जाना जा सकता है कि मनुष्य बोध-ग्रहण करने, निर्णय लेने और नियंत्रण-कार्यों को कितनी अच्छी तरह कर सकता हैं ( वुडसन, १९५४ )। यदि उपलब्ध दत्त-सामग्री विशिष्ट प्रश्नों के उत्तर देने में असमर्थ रहे, तो इंजीनियरी मनोवैज्ञानिक वांछित उत्तर प्राप्त करने लिए परीक्षण और प्रयोग करते हैं। तदंतर, परिकल्पना-टीम के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर वह मानव-मशीन प्रणाली का सामान्य परिरूप अंकित करता है। यह परिरूप, कम-से-कम मोटे तौर पर, स्पष्ट करता है कि मानव से क्या आशा की जाती है और मशीन से क्या। इस प्रणाली के विशिष्ट अंगों के विकासार्थ यह पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है।

मोटे तौर पर ही कम-से-कम यह जान लेने पर कि मानव-मशीन प्रणाली में मनुष्य से क्या करने की आशा की जाती है। इंजीनियरी मनोवैज्ञानिक आगे अपने ध्यान को मानव के कार्यों में निहित प्रतिरूपों और नियंत्रणों के परिरूपों पर केंद्रित कर सकता है। इस कार्य में आगे बढ़ने के लिए उसे किसी प्रकार से मनुष्य के कार्यों का पूर्ण विवरण प्राप्त करना आवश्यक है, विशेषतः वांछित सूचनाएँ ( प्रतिरूपार्थ ) और जो निर्णय उसके लिए लेने आवश्यक हैं ( नियंत्रणार्थ ) कार्य-विवरण प्राप्त करने की अनेक विधियाँ हैं, कुछ पूर्वोल्लिखित कार्य-विश्लेषण तैयार करने की

विधियों के समान हैं। यह कर लेने पर इंजानियरी मनोवैज्ञानिक इस प्रणाली के प्रतिरूपों के परिरूप और नियंत्रण तैयार करने की स्थिति में आता है।

फोटोग्राम।
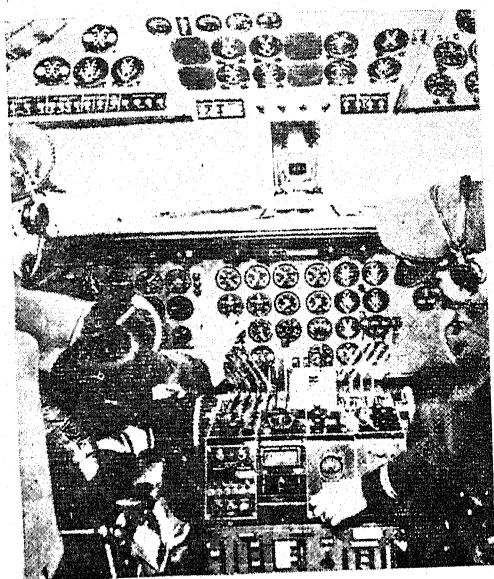
चित्र १८.११ मानव-इंजीनियरी की एक समस्या। मानव-इंजीनियरी के क्षेत्र में विशेषता प्राप्त करने वाले मनोवैज्ञानिक उत्तोलकों, मूठों और डायलों का पुनर्व्यवस्थापन तथा सरलीकरण करते हैं, जिससे कि उनका उपयोग करने वाला व्यक्ति अपने कार्य को अधिक सरलता, अधिक निपुणता और अधिक निर्भयता से कर सकता है (अमेरिकन एयर लाइंस)।

### प्रतिरूपों की रचना ( Design of Displays ) :

किसी जटिल प्रणाली में व्यक्ति को जिन प्रतिरूपों का उपयोग करना चाहिए, उनके परिरूपार्थ परिरूपकर्त्ता को एक या अधिक संवेदनाओं के अति-कार्य-भार की संभावना पर विचार करना आवश्यक है। बहुधा कार्य-भार से ग्रसित संवेदना दृष्टि हैं, उसके बाद श्रवण का स्थान रहता है। उदाहरणार्थ, चित्र-१८·११ में वायुयान के चालक-स्थान ( काकपिट ) के चित्र पर विचार करें। आप तुरंत देख सकेंगे कि चाक्षुष-संवेदन पर अत्यधिक कार्य-भार आ गया है। इसमें व्यक्ति की देखने की सीमा से कहीं अधिक डायल हैं। वस्तुतः अध्ययन से प्रकट हुआ है कि अनेक दुर्घटनाएँ घटित होने या दुर्घटनाओं के निकट तक पहुँचने का कारण यही है। इस चित्र को लेने के बाद से परिरूप बनाने वालों ( डिजाइनर ) ने चालक-स्थान के परिरूप में सुधार किया है, विशेषतः जेट-वायुयान में। इसके लिए उन्होंने अनेक मानव-इंजीनियरी के सिद्धांतों का उपयोग किया है, जिनमें से कुछ का विवरण आगे दिया जा रहा है।

जहाँ एक संवेदना पर अत्यधिक कार्य-भार हो, इंजीनियरी मनोवैज्ञानिक ऐसी विधियों की व्यवस्था कर सकता है कि कुछ सूचनाएँ दूसरी संवेदनाओं से प्राप्त हो सकें। उदाहरणत:, सरल चेतावनी सिगनल बहुधा श्रवण-सिगनल के रूप श्रेष्ठतर ढंग से दिए जा सकते हैं, जैसे प्रकाश की अपेक्षा गुंजक से। कुछ विशिष्ट स्थितियों में नियंत्रण के कंपन (वाइब्रेशन) के रूप में, जिसे चालक निरंतर पकड़ता है, सूचना प्रस्तुत की जा सकती है, परंपरा और अभ्यास प्राय: ऐसे विकल्पों को स्वीकार करने में बाधक होते हैं। किंतु, उनका प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

जब सूचनाओं को प्रस्तुत करने की विधि पर निर्णय ले लिया जाता है, तो अगला कदम होता है कि उसके लिए प्रयोग किए जाने वाले प्रतिरूप के प्रकार पर निर्णय लिया जाए। अधिकांश प्रतिरूप चाक्षुष होते हैं, इसलिए हम अपने को चाक्षुष-प्रतिरूपों तक ही सीमित रखेंगे। किसी भी जटिल स्थिति में जैसा काकपिट में, दर्जनों प्रतिरूप हो सकते हैं। चाक्षुष-प्रतिरूपों के समूह के परिरूप बनाने में इंजीनियरी-मनोवैज्ञानिक को अनेक निर्णय लेने आवश्यक हैं।

### चित्रात्मक बनाम प्रतीकात्मक प्रतिरूप :

एक निर्णय यह लेना होता है कि दिया गया प्रतिरूप चित्रात्मक हो अथवा प्रतीकात्मक। चित्रात्मक प्रतिरूप वह है, जो प्रस्तुत की जाने वाली स्थिति को कुछ यथार्थता के साथ पुनर्प्रस्तुत करता है। उदाहरणत: मानचित्र चित्रात्मक प्रतिरूप हैं। एक वायुयान में, कृत्रिम क्षितिज सूचक चित्रात्मक प्रतिरूप हो सकता है; क्योंकि क्षितिज के संदर्भ में वह वायुयान की स्थिति और दिक्-स्थापना की सूचना चित्रित करता है। प्रतीकात्मक प्रतिरूप वे उपकरण हैं, जो सूचना को अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करते हैं, प्राय: डायलों, संकेतकों या प्रकाशों के रूप में होते हैं। मोटरगाड़ी का गति-मापक (चालमापी) एक प्रतीकात्मक प्रतिरूप है और लाइसेंस प्लेट भी। एक उसकी गति को प्रकट करता है, दूसरा मोटरगाड़ी और उसके चालक का अंकों में, जो प्रतीक रूप हैं, परिचायक है, किंतु वे प्रस्तुत वस्तु को चित्रित नहीं करते।

प्रतीकात्मक प्रतिरूपों में सरल बहुमुखी, ठोस और सर्वोपरि, परिशुद्धता के गुण होते हैं। दूसरी ओर चित्रात्मक प्रतिरूप प्राय: प्रतीकात्मक प्रतिरूपों की अपेक्षा शीघ्रता से तथा बहुत कम प्रशिक्षण अथवा बिना प्रशिक्षण के चालक द्वारा समझे जा सकते हैं। उदाहरणत:, यदि आपको एक मानचित्र दिखाया जाए, जिस पर मोटरगाड़ी का लघुरूप चित्र हो (चित्रात्मक प्रतिरूप), तो आप तुरंत बता सकेंगे कि मोटरगाड़ी कहाँ पर है। वही सूचना डायल पर रेखांश और अक्षांश (प्रतीकात्मक प्रतिरूप) द्वारा दिखाने पर इस विधि में प्रयुक्त अंकों को शीघ्रता और परिशुद्धता से समझने के लिए आपको कुछ प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। यह निर्णय लेने के

लिए कि किस प्रकार के प्रतिरूप का प्रयोग किया जाए, इंजीनियरी मनोवैज्ञानिक के लिए यह जानना आवश्यक है कि उसका उपयोग किस प्रकार के लोग करेंगे और उनसे क्या आशा की जाएगी।

## सूचकों के प्रकार :

चित्रात्मक प्रतिरूपों के परिरूपों में अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याएँ हैं, किंतु प्रतीकात्मक प्रतिरूपों का प्रयोग अधिकतर होता है, प्रथमतः क्योंकि वे ठोस होते हैं। सर्वाधिक व्यावहारिक प्रश्न प्रतीकात्मक प्रतिरूपों, विशेषतः डायलों, के संबंध में उत्पन्न होते हैं।

### (१) स्थिति-पठन सूचक (Check-reading Indicator) :

स्थिति-पठन डायल चालक को बतलाता है कि कोई वस्तु चल रही है या बंद है, कार्य कर रही है या नहीं। मोटरगाड़ी के डैस बोर्ड का ब्लिंकर घूमने वाले सूचकों के साथ यह कार्य करता है। यह चालक (ड्राइवर) को केवल इतना बतलाता है कि सूचक कार्य कर रहे हैं या नहीं। कुछ मोटरगाड़ियाँ तेल की मात्रा या बैटरी चार्ज की स्थिति उपयुक्त है या नहीं, इसे लाल प्रकाश से सूचित करती हैं। इसे स्थिति-पठन सूचक कहते हैं।

### (२) गुणात्मक सूचक :

कुछ सूचक चालक को यह बताने का कार्य करते हैं कि क्या वस्तुएँ ठीक हैं, और यदि वे ठीक नहीं हैं, तो वे किस दिशा में ठीक नहीं हैं। अधिकांश मोटरगाड़ियों में तापमान-सूचक एक ऐसा ही सूचक है। वह यह सूचित नहीं करता कि तापमान ठीक कितना है; क्योंकि उसका विशेष महत्त्व नहीं है, वरन् वह यह सूचित करता है कि क्या मोटर गाड़ी ठंडी है, या गर्म हो रही है और सामान्य स्थिति में है अथवा वह अति गर्म हो रही है।

### (३) परिमाणात्मक सूचक :

कुछ सूचनाओं के स्पष्ट होने की आवश्यकता है। उदाहरणतः, यदि मोटरगाड़ी चलाते समय हमें पोस्ट पर लिखित गतिसीमा का पालन करना है, तो हमारे लिए यह जानना आवश्यक है कि हम किस गति से गाड़ी चला रहे हैं। ओडोमीटर ऐसी परिमाणात्मक सूचना देता है।

मोटरगाडी का प्रयोग उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए किया गया है; क्योंकि यह पाठकों के लिए परिचित वस्तु है, किंतु डायलों और सूचकों के यह वर्गीकरण सब प्रकार के चाक्षुष प्रतीकात्मक प्रतिरूपों के लिए उपयुक्त है। चालक को अधिक कार्य-भार से मुक्त रखने के लिए यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि किस प्रकार के सूचक की आवश्यकता है। यदि केवल स्थिति-पठन की आवश्यकता है, तो उससे अधिक

सूचना देने वाले सूचकों का उपयोग नहीं करना चाहिए। इसी तरह गुणात्मक सूचना से काम चल जाने पर परिमाणात्मक सूचक का प्रयोग नहीं करना चाहिए। जिन्होंने आधुनिक मोटरगाड़ी के फलक के विकास का निरीक्षण किया है, वे अनुभव करेंगे कि इन सिद्धांतों का प्रयोग कुछ वर्ष पूर्व की अपेक्षा आजकल अधिक प्रभावशाली रूप में होने लगा है।

डायल परिरूप :

एक बार जब सूचक का चयन हो जाता है, तो समस्या प्रत्येक डायल के प्रयोजनानुसार, परिरूप की सूक्ष्मता पर केंद्रित हो जाती है। यह समस्या स्थिति-पठन या गुणात्मक सूचक के संबंध में गंभीर नहीं है, किंतु परिमाणात्मक सूचक के संबंध में गंभीर हो सकती है। ध्यान दें कि **काउंटर** और **डायल** में से एक का चयन करना होगा [ एक साथ मीलों को प्रकट करने वाला चक्कर-मापी ( ओडोमीटर ) काउंटर है, गतिमापी (स्पीडोमीटर) प्रायः डायल है। ] ऐसे प्रयोग हैं जो स्पष्ट हैं कि डायल की अपेक्षा काउंटर शीघ्र और परिशुद्ध रूप में पढ़े जा सकते हैं। दूसरी ओर, यदि चालक उन्हें एक निश्चित संख्या पर स्थिर कर दे, तो उसका उपयोग असंभव हो जाएगा अथवा अनेक अंकों की परिवर्तशीलता के कारण उनको पढ़ना असंभव होगा। अतएव, यह चयन पुनः चालक के कार्य की प्रकृति पर निर्भर करता है।

विशेष कार्य के लिए कुछ डायल अन्य डायलों की अपेक्षा श्रेष्ठतर होते है।
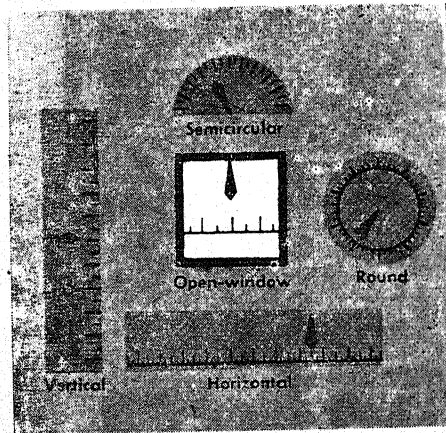
**चित्र १८·१२ पाँच भिन्न आकारों का प्रयोग डायल आकारों की तुलना के लिए किया गया है (स्लैट के अनुसार, १९४८)।**

यदि डायल का चयन करना हो, तो डायलों के अनेक प्रकार हैं, जिनमें से चयन करना होगा। चित्र—१८·१२ में उदाहरणार्थ, पाँच भिन्न प्रकार के डायल हैं :

गोलाकार, अर्द्ध गोलाकार, गतिशील-मापक और स्थिरता-सूचक से युक्त आपावृत-वातायन डायल, गतिशील सूचक से मुक्त ऊर्ध्वाकार डायल तथा गतिशील सूचक से युक्त समस्तराकार डायल। डायलों का यह विशिष्ट समूह विशद् प्रयोगों में उपयोग में लाया गया और सहस्रों मापन इस पर किए गए। इनकी भूलों का विश्लेषण किया (स्लैट, १९४८)। परिणामों से प्रकट हुआ कि अपावृत-वातायन डायल का माप सर्वाधिक परिशुद्ध था और ऊर्ध्वाकार गतिशील सूचक सर्वाधिक अशुद्ध था। यह परिणाम विशेप प्रकार की प्रयोगात्मक स्थितियों में उपलब्ध किया गया था तथा उसका सामान्यीकरण प्रत्येक स्थिति के लिए नहीं किया जा सकता। किंतु, यह स्पष्ट करता है कि व्यक्ति को कार्यविशेष के अनुरूप डायल के प्रकार विशेष का चयन किस प्रकार करना चाहिए।

डायल परिरूप में दूसरी समस्या यह है कि डायल पर मापक विभाजनों को किस प्रकार किया जाए। अपेक्षाकृत कम अंकित चिह्नों वाले डायल का परिशुद्धता से पठन कठिन होता है। दूसरी ओर जो मापक बहुत सूक्ष्मता से चिह्नित रहता है, अस्पष्ट हो जाता है। उसका पठन भी कठिन होता है और वह भूलें उत्पन्न कर सकता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य अंनर्वेशन में पर्याप्त दक्ष होता है। वह दो चिह्नों के मध्य सूचक की स्थिति का प्रचुर परिशुद्धता से अनुमान लगा सकता है। मनोवैज्ञानिकों ने इस विषय का कुछ विस्तार से अध्ययन किया है और विविध डायलों के परिरूपों की संख्या उपलब्ध है। सामान्यतः काकपिट या मोटरगाड़ी-फलक में प्रयुक्त विशिष्ट डायल के लिए मापक पर लगभग आधे-आधे इंच की दूरी पर चिह्न अंकित होने चाहिए। इससे अधिक या कम घने चिह्नों वाले डायलों की अपेक्षा ये परिरूप अधिक परिशुद्ध होते हैं।

डायल प्रतिरूपों की और भी अनेक समस्याएँ हैं, विशेषतः जब प्रकट की जाने वाली सूचना जटिल हो और जिसमें अंकों का विस्तृत विन्यास निहित हो। मानव-प्रयोगार्थ प्रतिरूपों के परिरूप के अंतिम उदाहरणस्वरूप हम ऐसी साधारण समस्या पर विचार करें, जो डायलों की विशद् संख्या द्वारा प्रस्तुत होती है।

चित्र १८.१३ के ऊपरी भाग में डायलों का प्रतिरूप इस प्रकार प्रतीत होता है, जैसे वह काकपिट-फलक पर मनुष्यों के द्वारा प्रयोग करने के दृष्टिकोण के बिना ही व्यवस्थित किया गया हो। वस्तुतः ऐसे प्रतिरूप आज अनेक स्थितियों में पाए जा सकते हैं, जब कि प्रत्येक डायल एक भिन्न प्रकार की सूचना प्रदर्शित करता है। सूचक का सामान्य स्थल एक डायल को दूसरे डायल से भिन्न करता है। कोई भी देख सकता है कि इनमें से प्रत्येक डायल को पढ़ सकना और यह निर्णय कर

सकना कि सब वस्तुएँ ठीक हैं अथवा यदि वे ठीक नहीं हैं, तो जैसा उन्हें होना चाहिए, उनसे वे किस प्रकार भिन्न हैं, चालक के लिए कठिन और समय-साध्य हैं।

स्थिर-रूप डायल परीक्षण को बहुत सरल बना देता है।
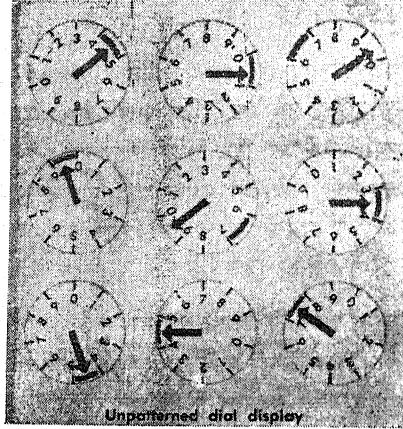
चित्र १८.१३ डायलों का स्थिर-रूप करना। स्थिर-रूप चालक को एक दृष्टि में यह देखने में सहायता करता है कि कौन से डायल अपने सामान्य मापन की ओर निर्देशित नहीं कर रहे हैं।
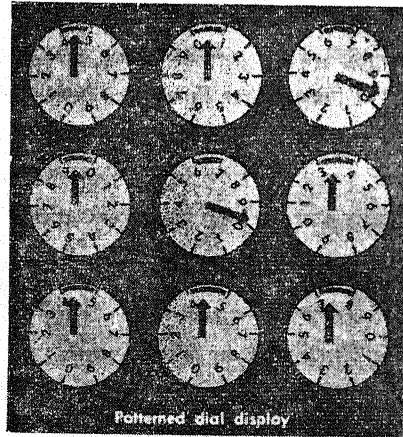
इस कार्य का बहुत दूर तक, डायल प्रतिरूपों को स्थिर-रूप देकर, सरलीकरण किया जा सकता है ( वुडसन, १९५४ )। यह प्रत्येक डायल के दिक्स्थापन द्वारा हो सकता है, जिससे कि सूचक की, सामान्यतः अथवा बहुधा, प्रत्येक डायल पर वही स्थिति रहेगी। केवल जब डायल किसी भिन्न अथवा असाधारण बात की ओर इंगित करता है, तो सूचक अपने सामान्य स्थान से दूर हटता है। अतः, डायलों

के पठन का कार्य सरल हो जाता है। संक्षेप में, चालक देख सकता है कि कौन से डायल 'रेखा के बाहर' है और तब वह यह जानने के लिए पढ़ता है कि इस भिन्नता का अभिप्राय क्या है। वायुयानों एवं अनेक डायलों का प्रयोग करने वाले अन्य यंत्रों में इस सिद्धांत का प्रयोग किया जाता है।

## नियंत्रकों के परिरूप :

हमने प्रतिरूपों का और विशेषत: डायलों का, संगति देने के लिए कुछ विस्तार से विवेचन किया है, यद्यपि वह केवल स्थूल रेखाचित्र है, इंजीनियरी मनोविज्ञान का केवल एकांगी चित्र है। यद्यपि नियंत्रकों का परिरूप भी एक विस्तृत विषय है, हम इसका विवेचन संक्षेप में करेंगे और केवल कुछ तथ्यों का उल्लेख करेंगे।

## नियंत्रकों के वर्ग :

सूचकों के वर्गों के सदृश ही नियंत्रकों के वर्ग भी विभाजित किए जा सकते हैं। **क्रियाशील-अक्रियाशील** नियंत्रक (On-off Controls) स्थिति-पठन सूचकों के सदृश हैं। घर में प्रकाश के नियंत्रणार्थ प्रयुक्त टॉगल स्विच एक ऐसा ही नियंत्रक है। **स्थिति-नियंत्रक** गुणात्मक सूचक के समान है। तीन या चार स्थितियों में से वे एक हैं। टेलिविजन सेट पर स्टेशन चयनकर्त्ता इसका उदाहरण है। **निरंतर-नियंत्रक** परिमाणात्मक सूचक के सदृश हैं। नियंत्रित वस्तु में परिवर्तन नियंत्रक की गति के अनुपात में होते हैं। मोटरगाड़ी के फुट ब्रेक और स्टियरिंग चक्र इसके उदाहरण हैं।

प्रतिरूपों के ही समान यहाँ भी कार्यकर्त्ताओं ( चालकों ) के कार्यों का विश्लेषण करना आवश्यक है और कार्य के अनुरूप नियंत्रक का चयन होना चाहिए। सामान्यत: इंजीनियरी मनोवैज्ञानिक को निरंतर-नियंत्रण का प्रयोग तब तक नहीं करना चाहिए, जब तक क्रियाशील-अक्रियाशील अथवा स्थिति-नियंत्रक से काम चल जाए।

## नियंत्रकों का नियत स्थान ( Placement of Controls ) :

नियंत्रकों का नियत स्थान बहुधा एक समस्या उत्पन्न करता है, विशेषत: जहाँ अनेक नियंत्रक अपेक्षित हों तथा स्थान बढ़ती पर हो। इसके दो कारण हैं। प्रथम, मनुष्य उस परिवेश में सीमित रहते हैं, जिसे वे बना सकते हैं और फिर नियंत्रक को भी भली प्रकार से संचालित कर सकते हैं। भुजाओं के अति निकट नियंत्रकों को रखने पर वे सरलता से अनावश्यक टकराते हैं। जो अति पृथक् रखे जाते हैं, गति में व्यवधान उपस्थित करते हैं अथवा चालक को दूसरे हाथ या पैर द्वरा चलाए जाने वाले नियंत्रकों से आगे बढ़ने या संपर्क छोड़ने के लिए बाध्य करते हैं। जो नियंत्रक

सीट या फलक के नीचे हैं, उन्हें बहुधा उपयुक्त ढंग से घुमाया या दबाया नहीं जा सकता ।

नियंत्रकों की ठीक प्रकार से स्थापना में दूसरा कारक चालक की पूर्वार्जित आदतों से संबंधित है । यदि वह विशेष नियंत्रक को एक स्थान पर पाने का अभ्यस्त है, तो उसे दूसरे स्थान पर प्राप्त करने पर उसे नए स्थान का अभ्यास करना होगा और इस प्रक्रिया में वह कोई गंभीर भूल भी कर सकता है । बहुत संभव है कि संकट-काल में पुराने अभ्यास का ही वह प्रयोग करे । निम्नांकित विवरण इस तथ्य को स्पष्ट करता है :—

आदत की बाधा कभी-कभी घातक प्रमाणित होती है ।
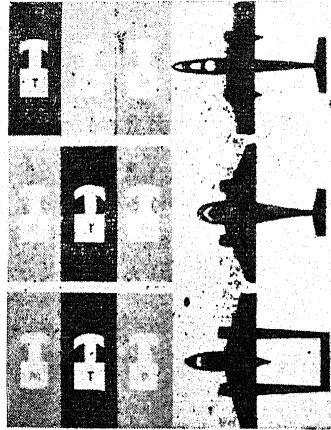
**चित्र १८·१४ तीन भिन्न वायुयानों में नियंत्रकों की स्थिति । नियंत्रक वाष्परोदन, नोदन तथा ईंधन मिश्रणार्थ हैं । एक ही व्यवस्था के अभाव के कारण चालक गलत नियंत्रक को चलाने की भूल कर सकता है ।**

**T वाष्परोधी नियंत्रक**
**P नोदक नियंत्रक**
**M गैस मिश्रक नियंत्रक**

कुछ वर्ष पूर्व वायुयान दुर्घटनाओं के कारणों की खोज करते हुए वायुसेना-मनोवैज्ञानिकों ने पाया कि अनेक दुर्घटनाएँ अथवा दुर्घटनाओं से बाल-बाल बचने वाली घटनाएँ घटित हुईं जब वायुयान-चालकों को निम्नलिखित वायुयानों में से एक से दूसरे पर स्थानांतरित किया गया : बी—२५, सी—४७ और-सी—८२ । विशेषतः, चालकों की भूलें प्रायः गलत नियंत्रकों के प्रयोग की थीं । कठिनाई यह थी कि भिन्न किंतु संबंधित नियंत्रक भिन्न क्रम से इन विविध वायुयानों में लगे थे (देखिए, चित्र—१८·१४ ) । बी—२५ में वाष्परोधी (थ्राटल) बाईं ओर था और सी—४७ तथा सी

८२ में मध्य में। बी—२५ में नोदक नियंत्रक ( प्रोपेलर) मध्य में था, सी—४७ में बाईं ओर तथा सी—८२ में दाहिनी ओर। गैस-मिश्रक नियंत्रक की स्थिति बी—२५ में और सी—४७ में दाहिनी ओर थी, किंतु सी—८२ में बाईं ओर।

विद्यार्थियों को पूर्व अध्यायों में निषेधात्मक स्थानांतर अथवा आदत-व्यवधान पर किए गए विवेचन को स्मरण करना चाहिए। निषेधात्मक स्थानांतरण के कारण वायुयान-चालक बारंबार उन नियंत्रकों को चलाते हैं, जिनसे वे पहले अन्य वायुयानों में अभ्यस्त थे। आजकल वायुयानों में नियंत्रकों के नियत स्थान का मानकीकरण करने का गंभीर प्रयास किया गया है।

## नियंत्रकों का संकेतीकरण (Coding of Controls):

जब ऐसा करना संभव न हो अथवा जब चालक तत्क्षण नियंत्रक को देख न सके और भूल से दूसरे गलत नियंत्रक को चला दे, तो नियंत्रकों के आकार अथवा बनावट विभेद के संकेतक से सहायता मिलती है। ( प्रतिरूपों का वर्ण या आकार से संकेतीकरण करना भी एक उपयोगी साधन है। ) प्रत्येक नियंत्रक को स्पष्ट रूप से भिन्न करने पर चालक जब नियंत्रक पर हाथ रखेगा, तो 'स्पर्श' द्वारा बता सकेगा कि वह उपयुक्त नियंत्रक पर है या नहीं।

वायुयान-काकपिट में प्रयुक्त नियंत्रकों के संकेतीकरण के उद्देश्य से वायुसेना मनोवैज्ञानिकों ने २२ संभावित आकारों की खोज की। यह यथासंभव अधिक संख्या थी, जिसमें कोई एक दूसरे से भिन्न रूपों के नियंत्रक या आकार बना सकता था। इन आकारों का उपयोग विभेदन-प्रयोग में किया गया, जिसमें आँखों पर पट्टी बाँध कर प्रयोग-पात्रों ने स्पर्श द्वारा प्रत्येक नियंत्रक को पहचानने का प्रयत्न किया। विविध आकारों के मध्य उपस्थित होने वाली उलझनों पर ध्यान दिया गया, १ प्रतिशत के अधिक बार उलझन पैदा करने वाले आकारों को पृथक् कर दिया। फलस्वरूप जब भी नियंत्रकों के प्रतिरूप में आकार के संकेत अपेक्षित हुए, चित्र—१८·१५ में प्रदर्शित ११ भिन्न आकारों को उपयोग के उपयुक्त स्वीकार किया गया।

ऐसी अनेक में से केवल कुछ ही विधियाँ हैं, जिनमें मनोविज्ञान का उपयोग मानव द्वारा व्यवहृत मशीनों के प्रतिरूप में किया जाता है। कभी-कभी इंजीनियरी मनोवैज्ञानिक सामान्य-बोध से कुछ ही अधिक कार्य करता है। तब उसका कार्य प्रहरी-कुत्ते का होता है कि वह ध्यान से देखे कि इंजीनियरी उद्देश्यों की पूर्ति के निमित्त मानवीय कारकों की अपेक्षा नहीं की जा रही है। इससे अधिक महत्त्वपूर्ण है, वह मानव-योग्यताओं और सीमाओं के ज्ञान को संचित करता है और अधिक सूचनाओं और प्रयोगों के द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।

सांकेतिक-आकार नियंत्रक चालक को बिना देखे उपयुक्त नियंत्रक के चयन की सुविधा देता है।
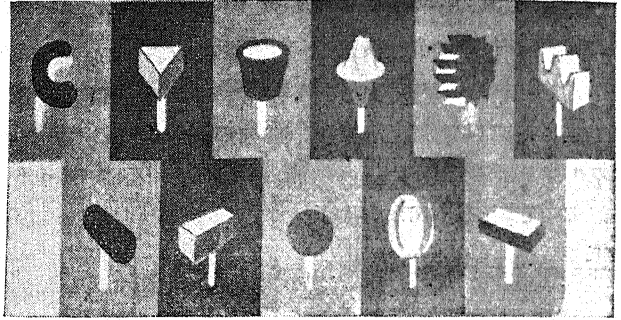
**चित्र १८·१५ नियंत्रकों के संकेतीकरण के लिए सर्वोत्तम माने गए ग्यारह आकार (जेंकिस के अनुसार, १९४७)।**

तुलनात्मक दृष्टि से इंजीनियरी मनोवैज्ञानिकों की संख्या अधिक नहीं है। बहुत उदारता से गणना करने पर केवल कुछ सौ ऐसे वैज्ञानिक होंगे। कुछ वर्ष पूर्व उनकी संख्या बहुत कम थी, अतः इस क्षेत्र में तीव्र प्रगति हुई है। वर्त्तमान गति से थोड़े ही समय बाद इंजीनियरी मनोविज्ञान का क्षेत्र बढ़ जाएगा और हमारी आधुनिक टेकनोलॉजी के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में इसका उपयोग और महत्त्व हम देखेंगे।

## सारांश

१. कर्मचारियों के वैज्ञानिक चयन में प्रथम सोपान है, कार्य की आवश्यकताओं को सही रूप से निर्धारित करने के लिए कार्य-विश्लेषण करना। द्वितीय, कार्य करने के लिए कार्यकर्त्ता की विशेषताओं को समुचित रूप से निर्धारित करना।

२. कर्मचारी के चयन की परंपरागत विधियाँ आवेदन-पत्रों की पूर्ति, इंटरव्यू एवं अभिस्ताव-पत्र अपेक्षाकृत तब तक अविश्वसनीय है, जब तक कि वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए इनमें बहुत सतर्कता का व्यवहार न किया गया हो।

३. कुशल कर्मचारियों के चयनार्थ व्यावसायिक परीक्षण भी सहायक हो सकते हैं। अभिक्षमता-परीक्षण भी अनेक प्रकार के कर्मचारियों के चयन में औचित्यपूर्ण हो सकते हैं, यदि परीक्षणों का चुनाव उचित रूप से हुआ हो एवं सतर्क शोध द्वारा वे प्रामाणिक सिद्ध हो चुके हों।

४. कर्मचारियों के पर्यवेक्षण के कार्यों के अनेक मनोवैज्ञानिक स्वरूप हैं। एक है शिक्षक और प्रशिक्षणकर्त्ता का, केवल कर्मचारी को नियुक्त करते समय ही नहीं, वरन् दिन-प्रतिदिन के पर्यवेक्षण में भी।

५. पर्यवेक्षक में अपने निर्देशनों की शीघ्रता से एवं बुद्धिमता से अभिव्यक्त करने की योग्यता भी होनी चाहिए और कर्मचारियों को उन अधिकांश विषयों से उसे सूचित करना चाहिए, जिन्हें अपने कार्यों से संबद्ध अनुभव करते हैं।

६. उसे कार्य और कार्य के कर्त्ता दोनों का मूल्यांकन करना चाहिए, जिससे कि वह कर्मचारियों की योग्यताओं का अधिकतम उपयोग कर सके और उनके कार्यों के लिए उन्हें उचित रूप से पुरस्कृत कर सकें।

७. अंत, में पर्यवेक्षक को कर्मचारी की ैयक्तिक एवं संवेगात्मक समस्याओं पर भी विचार करना चाहिए; क्योंकि ये उसके कार्य को गंभीरता से प्रभावित करती हैं, उसकी समस्याओं के निवारणार्थ पर्यवेक्षक को परामर्श अथवा अन्य सहायता भी देने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

८. कर्मचारी केवल वेतन के लिए ही कार्य नहीं करते, वरन् अपनी सब आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करते हैं। वस्तुत: एक बार उचित और उपयुक्त वेतन मिलने पर अन्य कारक, जैसे कार्य की सुरक्षा का विश्वास, उपयुक्त कार्य-अवस्थाएँ, प्रगति की सुविधाएँ, अच्छे कार्मिक संबंध पर्याप्त महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

९. कार्य-चक्र, जो दिन भर के कार्य की मात्रा प्रकट करता है, में चढ़ाव और उतार होते हैं। वे चार भागों में विभाजित किए जा सकते हैं :

(a) पूर्व-तत्परता, (b) प्रारंभ-स्फुरण, (c) अंत-स्फुरण, (d) श्रांति-प्रभाव।

१०. श्रांति को कई रूपों में परिमापित किया जा सकता है, (a) उत्पादन की मात्रा से (b) भूलों द्वारा या कार्य के स्वरूप द्वारा, (c) शरीरगत प्रभावों द्वारा (d) अभिप्रेरण में परिवर्तनों द्वारा।

११. बहुधा जब श्रांति का उत्पादन पर मापनीय प्रभाव नहीं होता, तो श्रांति कार्य के लिए कम होती हुई अभिप्रेरणा या कार्य के निम्न होते हुए स्तर के द्वारा प्रकट होती है।

१२. सामान्यत: कम श्रांति होने पर स्वस्थता गंभीर श्रांति की अपेक्षा तीव्र गति से होती है। अत:, बार-बार लघुकालीन विश्राम लेना कम और दीर्घकालीन विश्रामों की अपेक्षा श्रेष्ठ है।

१३. यदि कोई कार्य-दिवस अथवा कार्य-सप्ताह के काल को दीर्घ करने का प्रयास करता है, तो यह अनुभव करता है कि एक ऐसा बिंदु है, जिसके उपरांत सब

उत्पादन कम होने लगता है। फलतः सर्वोत्तम कार्य-दिवस और कार्य-सप्ताह होते हैं।

१४. इंजीनियरी मनोविज्ञान तीव्र प्रगतिशील क्षेत्र में, जिसमें मनोवैज्ञानिक विधियों और अनुसंधान का प्रयोग मशीनों के परिरूपों को सुधारने में किया जा रहा है जिससे कि वे मानव-चालक की योग्यताओं के अधिक अनुकूल बन सकें।

१५. मानव-चालकों का स्थान ले सकने वाली मशीनों के परिरूप भी तैयार हो रहे हैं, किंतु अनेक ऐसी बातें हैं, जिनमें मशीनों की अपेक्षा मानव अधिक कुशल है। मानव-मशीन प्रणाली का सर्वोत्तम परिरूप तैयार करने के लिए इस पर ध्यान देना चाहिए कि किस कार्य को कौन श्रेष्ठतम रूप में कर पाएगा।

१६. मानव-चालक को सूचना देने वाले प्रतिरूपों को मानव की विविध संवेदनाओं को इस प्रकार उपयोग में लाना चाहिए कि किसी भी एक संवेदना पर अधिक कार्य-भार न पड़े। प्रतिरूप इस प्रकार परिरूपित करने चाहिए कि चालक शीघ्रता से सूचना को ग्रहण कर सके, किंतु न्यूनतम भूल के साथ।

१७. इसी प्रकार, नियंत्रकों का परिरूपण भी चालकों को ध्यान में रख कर करना चाहिए। मानव-मशीन प्रणाली को सर्वोत्तम रूप से कार्यशील बनाया जा सकता है, (a) सर्वोत्तम प्रकार के नियंत्रक के चयन द्वारा, (b) नियंत्रकों को उपयुक्त रूप में स्थापित और व्यवस्थित करके, (c) नियंत्रकों के संकेतीकरण द्वारा, जिससे कि उन्हें बिना देखे भी पहचाना जा सके।

पठनार्थ सुझाव :

Bingham, W. V. D., Moore, B. V., and Gustad, J. W. How to Interview (rev. ed-), New York : Harper, 1959.

समालाप पर मानक पाठ्य-पुस्तक की पुनरावृत्ति।

Burtt, H. E. Applied Psychology ( 2nd. ed.) Englewood Cliffs, N. J. : Prentice-Hall, 1957.

प्रयुक्त मनोविज्ञान के विविध उपयोगों पर पाठ्यग्रंथ। इसके अंतर्गत वृत्तिक समायोजन और औद्योगिक प्रयोग भी हैं।

Chapanis, A. The Design and Conduct of Human Engineering Studies. Baltimore : Johns Hopkins Press, 1959.

मानव-इंजीनियरी में प्रयुक्त विधियों का पठनीय विवरण।

Chapanis, A., Garner, W. R., and Morgan, C. T. Applied Experimental Psychology : New York : Wiley, 1949.

मानव-इंजीनियरी, कार्य और निपुणता पर ग्रंथ।

Ghiselli, E. E., and Brown, C. W. Personnel and Industrial Psychology (2nd. ed.) New York McGraw--Hill 1955:
औद्योगिक मनोविज्ञान के सामान्य क्षेत्र पर व्यापक रूप से प्रयुक्त पुस्तक।

Haire, M. Psycology in Management, New York : McGraw-Hill; 1956
व्यवस्थापक और परिवीक्षक के कार्यों का संक्षिप्त और रोचक विश्लेषण।

Karn, H. W , and Gilmer, B. von H. Readings in Industrial and Business Psychology, New York : McGraw--Hill, 1952.
विभिन्न लेखकों के इस क्षेत्र में आधुनिक विकास-संबंधी चुने हुए लेखों का संग्रह।

Maier, N. R. F. Principles of Human Relations, New York : Wiley, 1952.
उद्योग में मानव-संबंधों का महत्त्व और उन्हें उन्नत करने की विधियाँ।

McCormick, E. J. Human Engineering, New York: McGraw-Hill, 1957.
मानव-इंजीनियरी पर प्रारंभिक पुस्तक।

Shartle, C. L. Occupational Information (rev. ed.) Eng'e-wood Cliffs, N. J. Prentice-Hall, 1952.
इस पुस्तक से विभिन्न वृत्तियों की प्रकृति तथा उनके वर्गीकरण से संबंधित सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

Smith, H. C. Psychology of Indutrial Behaviour. New York : McGraw-Hill, 1957.
उद्योग में अभिप्रेरणात्मक एवं सामाजिक कारकों के महत्त्व को प्रतिपादित करने वाली पुस्तक।

# भाग : ७

## तंत्रिका-तंत्र और आंतरिक पर्यावरण

## व्यवहार का कायिक आधार

अध्याय १९

# तंत्रिका-तत्र और आंतरिक पर्यावरण

इस पुस्तक के प्रारंभ में ही हमने मनोविज्ञान को 'मानव और जान्तव-व्यवहार का विज्ञान' कहा है। अब हमने इस विज्ञान का विस्तृत सर्वेक्षण समाप्त कर लिया है। इस सर्वेक्षण द्वारा यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि व्यवहार का आधार शरीर क्रियात्मक होता है। व्यवहार वास्तव में पेशियों का संकुचन है। व्यवहार जिन उद्दीपनों की प्रतिक्रिया है, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, वे अपना प्रभाव विविध ज्ञानेंद्रियों द्वारा डालते हैं। पेशियों और ज्ञानेंद्रियों के मध्य स्नायु-मंडल में रुधिर प्रवाह और अनेक ग्रंथियों में अनेक घटनाएँ घटती रहती हैं।

इन मध्यवर्त्ती शरीर-क्रियात्मक घटनाओं के बिना किसी प्रकार का व्यवहार नहीं होगा, जैसा कि हम इस अध्याय में और अगले अध्याय में देखेंगे। हमें केवल इन घटनाओं को, किसी प्रकार व्यावहारिक अनुक्रियाओं को, परिवर्तित करने या अंत करने के लिए बदलने की आवश्यकता है। अतः, हम व्यवहार और मनोविज्ञान को पूर्णतया समझ नहीं सकते जब तक हम इन घटनाओं के विषय में कुछ न जानें। दूसरे शब्दों में व्यवहार का शरीर-क्रियात्मक आधार है और हमारे 'मनोविज्ञान की भूमिका' के प्रसंग में हमें इसका अध्ययन करना चाहिए। हम यह कह सकें कि व्यवहार के शरीर-क्रियात्मक विश्लेषण को हमें समझना चाहिए, जिससे हम उसे स्पष्ट कर सकें या कम-से-कम कुछ विषयों को अच्छी तरह समझ सकें, जिसे हमने उसमें निहित शरीर-क्रियात्मक प्रक्रम द्वारा अध्ययन किया है। किसी भी रूप में हम व्यवहार के कुछ शरीर-क्रियात्मक सहसंबंधों के विषय में सीखेंगे।

इसके लिए हम दो रूपों में आगे बढ़ेंगे। इस अध्याय में हमें शरीर-क्रियात्मक विज्ञान और रचना-विज्ञान के विषय में कुछ सीखना चाहिए। हमें व्यवहार में महत्त्व रखने वाले कुछ अंगों के नाम, संरचना, बनावट एवं कार्य अवश्य जानने चाहिए। ज्ञानेंद्रियों के विषय में अधिक नहीं लिखेंगे; क्योंकि इन पर १० वें, ११ वें एवं १२ वें अध्यायों में विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है। तो भी हम स्नायु-संस्थान से ज्ञानेंद्रियों तक पहुँचने वाले संवेदना-पथों का अध्ययन करेंगे। इस पुस्तक के अंतिम

अध्याय १९

# तंत्रिका-तंत्र और आंतरिक पर्यावरण

इस पुस्तक के प्रारंभ में ही हमने मनोविज्ञान को 'मानव और जान्तव-व्यवहार का विज्ञान' कहा है। अब हमने इस विज्ञान का विस्तृत सर्वेक्षण समाप्त कर लिया है। इस सर्वेक्षण द्वारा यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि व्यवहार का आधार शरीर क्रियात्मक होता है। व्यवहार वास्तव में पेंशियों का संकुचन है। व्यवहार जिन उद्दीपनों की प्रतिक्रिया है, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, वे अपना प्रभाव विविध ज्ञानें-द्रियों द्वारा डालते हैं। पेशियों और ज्ञानेंद्रियों के मध्य स्नायु-मंडल में रुधिर प्रवाह और अनेक ग्रंथियों में अनेक घटनाएँ घटती रहती हैं।

इन मध्यवर्त्ती शरीर-क्रियात्मक घटनाओं के बिना किसी प्रकार का व्यवहार नहीं होगा, जैसा कि हम इस अध्याय में और अगले अध्याय में देखेंगे। हमें केवल इन घटनाओं को, किसी प्रकार व्यावहारिक अनुक्रियाओं को, परिवर्तित करने या अंत करने के लिए बदलने की आवश्यकता है। अतः, हम व्यवहार और मनोविज्ञान को पूर्णतया समझ नहीं सकते जब तक हम इन घटनाओं के विषय में कुछ न जानें। दूसरे शब्दों में व्यवहार का शरीर-क्रियात्मक आधार है और हमारे 'मनोविज्ञान की भूमिका' के प्रसंग में हमें इसका अध्ययन करना चाहिए। हम यह कह सकें कि व्यव-हार के शरीर-क्रियात्मक विश्लेषण को हमें समझना चाहिए, जिससे हम उसे स्पष्ट कर सकें या कम-से-कम कुछ विषयों को अच्छी तरह समझ सकें, जिसे हमने उसमें निहित शरीर-क्रियात्मक प्रक्रम द्वारा अध्ययन किया है। किसी भी रूप में हम व्यवहार के कुछ शरीर-क्रियात्मक सहसंबंधों के विषय में सीखेंगे।

इसके लिए हम दो रूपों में आगे बढ़ेंगे। इस अध्याय में हमें शरीर-क्रियात्मक विज्ञान और रचना-विज्ञान के विषय में कुछ सीखना चाहिए। हमें व्यवहार में महत्व रखने वाले कुछ अंगों के नाम, संरचना, बनावट एवं कार्य अवश्य जानने चाहिए। ज्ञानेंद्रियों के विषय में अधिक नहीं लिखेंगे; क्योंकि इन पर १० वें, ११ वें एवं १२ वें अध्यायों में विस्तारपूर्वक विचार किया जा चुका है। तो भी हम स्नायु-संस्थान से ज्ञानेंद्रियों तक पहुँचने वाले संवेदना-पथों का अध्ययन करेंगे। इस पुस्तक के अंतिम

अध्याय में हम विचार करेंगे कि कुछ इंद्रियों के कार्यों का संबंध व्यवहार से किस प्रकार है।

## आंतरिक पर्यावरण :

शरीर की प्रत्येक इंद्रिय का व्यवहार से किसी-न-किसी रूप में कुछ सीमा तक संबद्ध है; क्योंकि व्यक्ति के कल्याण के लिए इसकी सामान्य क्रिया अपेक्षित है। कुछ इंद्रियाँ दूसरों की अपेक्षा व्यवहार में अधिक अंतर्ग्रस्त हैं; क्योंकि वे उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया में प्रत्यक्ष रूप से निहित हैं। **ज्ञानेंद्रियाँ, तंत्रिका-तंत्र** और **संवेदनग्राही** ऐसे अंग हैं। कभी-कभी उद्दीपन अनुक्रिया प्रक्रिया के इन तीनों अंगों को क्रमशः **संग्राहक, समायोजक** और **संवेदनग्राही** कहा जाता है। **ग्रंथियाँ** और **पेशियाँ** संवेदनग्राही के दो सामान्य प्रकार हैं। जैसा कि अन्यत्र बतलाया गया है कि संवेदनग्राही ग्रंथि के दो प्रकार हैं जैसे—**बहिःस्रावी** या 'डक्ट ग्रंथि। जैसे—लार-ग्रंथियाँ जो शरीर के खोखले स्थानों को अपने स्राव से भर देती हैं और अंतःस्रावी या वहिःस्रावी ग्रंथियाँ जैसे गल-ग्रंथि, जिसका स्राव रुधिर-प्रवाह में मिल जाता है। अंतःस्रावी ग्रंथियाँ हमारे लिए विशेष महत्त्वपूर्ण ग्रंथियाँ हैं; क्योंकि उनका व्यवहार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

सब नहीं, किंतु लगभग सब अंतःस्रावी ग्रंथियाँ स्नायु से संबंधित होती हैं। इसलिए सभी संवेदग्राही नहीं हैं। चाहे वे संवेदनग्राही हों या न हो, तब भी उनके स्राव-संचार का रुधिर-प्रवाह में प्रभाव दूसरी ग्रंथियों की क्रियाशीलता पर उद्दीपन या अवरोध द्वारा पड़ सकता है। हम आगे देखेंगे कि उनका स्राव बहुत से दूसरे तंतुओं की क्रियाओं को विशेषकर स्नायु-संस्थान और पेशियों को क्रियाओं को भी प्रभावित करता है। फलस्वरूप वे शरीर के विविध अंगों के लिए एक प्रकार का **आंतरिक पर्यावरण** तैयार कर देते हैं। अतः, आंतरिक पर्यावरण का शरीर की अंतःस्थित **उन सभी रासायनिक, तापक्रम एवं उत्तेजक दशाओं से सबंध है, जो उसके अंगों के लिए पर्यावरण बनाती** हैं। जिस प्रकार उद्दीपनों का वातावरण एवं बाह्य संसार प्राणी के वाह्य पर्यावरण को निर्मित करता है।

जैसा कि इस परिभाषा में निहित है कि आंतरिक पर्यावरण अंतःस्रावी स्रावों से अधिक संबद्ध है। शरीर का तापक्रम और विविध रासायनिक दशाएँ, जैसे भोजन, जल, मलोत्सर्जन और स्नान भी, इसके अंतर्गत आती हैं तथा शरीर की अपनी रासायनिक और शरीर-क्रिया वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा उत्पन्न अवस्थाएँ भी हैं। इस प्रकार आंतरिक पर्यावरण के विविध अंग व्यवहर को गंभीरता से प्रभावित करते हैं। अतः हमें इस पर सूक्ष्मता से विचार करना होगा।

## उपापचयन प्रक्रिया :

सर्वप्रथम, आंतरिक पर्यावरण महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यह शरीर के विविध अंगों को ऊर्जा प्रदान करता है। मांसपेशियों को यदि कार्य करना है, तो स्पष्ट है कि उन्हें ऊर्जा प्राप्त करनी ही होगी। इसी प्रकार तंत्रिका-तंत्र की कोशिकाओं और ज्ञानेंद्रियों को भी। ये अंग, वस्तुतः कुछ ईंधन जलाने वाले इंजनों के सदृश हैं। रक्त के माध्यम से वे भोजन प्राप्त करते हैं और उसे एकत्रित करते हैं। वे आक्सीजन का उपयोग करते हैं और लोहिताणुओं ( रेड कार्पसल्स ) के रुधिरवर्णिका (हेमोग्लोबिन) नामक तत्त्व को रक्त में उनके ईंधन को जलाने के लिए परिवाहित किया जाता है, कुछ वैसे ही जैसे इंजन अपने ईंधन को जलाता है। इस प्रकार मांसपेशियाँ आकुंचन की योग्यता प्राप्त करती हैं और तंत्रिका-तंत्र तंत्रिका-आवेगों को उत्पन्न तथा पारेषित करता है।

शरीर निरंतर ईंधन जलाता है, जब पूर्णतः निद्रालीन होता है उस समय भी। फिर भी कभी-कभी तात्कालिक उपयोग के लिए अपेक्षाकृत अधिक कोशिक्य ईंधन होना चाहिए। इसीलिए शरीर के अनेक ऊत्तक ईंधन एकत्रित करते हैं तथा उसे जलाते भी हैं। दोनों प्रक्रियाओं को, (ऊर्जा के भंडार को बनाने वाली एवं समाप्त करने वाली) एक साथ मिला कर **उपापचयन** कहा जाता है।

उपापचयन सरल कार्य नहीं है। हम जो भोजन खाते हैं, वह इस रूप में नहीं होता कि शरीर उसका उपयोग कर सके, उसे सरल रासायनिक तत्त्वों के रूप में बारीक करना होगा—पचाना होगा—जिससे कि वह आंत्रों की दीवारों के माध्यम से रक्त में पहुँच सके। वहाँ पहुँचने पर वह अनेक रूपों में परिवर्त्तित होता है और संग्रहार्थ उपयुक्त स्थानों में भेजा जाता है। इस संचयन में अनेक रासायनिक सोपान हैं। और आवश्यकता होने पर इन संग्रहालयों से ईंधन निकाला जाता है—और अधिक रासायनिक सोपान—और इसके उपयोग के स्थान तक परिवाहित किया जाता है। इस बिंदु पर, उसे प्रयोग योग्य रूप देने के लिए कुछ अन्य रासायनिक सोपानों की अपेक्षा रहती है।

अतः, उपापचयन में अनेक रासायनिक प्रतिक्रियाएँ तथा अनेक भिन्न रासायनिक तत्त्व निहित हैं। खाद्य पदार्थ एवं आक्सीजन, जिनका अंतिम प्रयोग उन्हें जलाने के लिए किया जाता है, उपापचयन के लिए अनिवार्य हैं। इस प्रक्रिया में अन्य तत्त्व भी सन्निहित होते हैं। ये तत्त्व हैं, हार्मोन, विटामिन तथा प्रकिण्व (एंजाइम)। इन तत्त्वों के बिना उपापचयन की क्रिया संभव नहीं तथा हमारे अंग कार्य नहीं कर सकते थे। अतएव, वे हमारे लिए विशेष महत्त्व रखते हैं।

### हार्मोन ( Hormone ) :

हार्मोन एक रासायनिक तत्त्व है, जो अंत:स्रावी ग्रंथियों द्वारा स्रावित होता है। इस प्रकार की ग्रंथि अपने स्राव को सीधे रक्त में मिलाती है। हार्मोनों के अनेक प्रकार हैं। यद्यपि शरीर-क्रिया वैज्ञानिक उन सबको अब तक पहचान नहीं सके हैं, किंतु वे अनेक हार्मोनों से भली-भाँति परिचित हैं, इस सीमा तक परिचित हैं कि उनका संश्लेषण करने में भी वे समर्थ हैं। उन्हें यह भी ज्ञात है कि उपापचयन में बहुत से हार्मोन क्या करते हैं। चित्र—१९.१ में उन प्रमुख ग्रंथियों के नाम और स्थान दिए गए हैं, जो हार्मोन उत्पन्न करती हैं। हम केवल उनका ही वर्णन करेंगे, जिनका व्यवहार पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

### गलग्रंथि (थायरायड ग्रंथि) :

गलग्रंथि, श्वासनली के चतुर्दिक कंठ के ऊत्तक में अवस्थित, **थायरोक्सिन** नामक हार्मोन को उत्पन्न करती है। यह हारमोन उस सामान्य गति को नियंत्रित करता है, जिससे शरीर में ऊर्जा उत्पन्न होती है। यदि थायरोक्सिन की मात्रा न्यून रहती है, तो ऊर्जा धीरे-धीरे जलती है चाहे शरीर में खाद्य-सामग्री के पर्याप्त साधन रहें। व्यक्ति आलसी होगा और न्यून उपापचयन के अनेक चिकित्सा-संबंधी लक्षण दिखायी देंगे। यदि थायरोक्सिन अत्यधिक मात्रा में हो, तो व्यक्ति प्राय: अति क्रियाशील होता है और उसमें अति उपापचयन के लक्षण दिखायी देंगे। अत:, थायरोक्सिन उपापचयन की मात्रा को नियंत्रित करता है।

### उपगलग्रंथियाँ (पैराथायरायड ग्रंथियाँ) :

थायरायड ग्रंथियों के निकट ही लघु ग्रंथियों के दो युग्म हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से पैराथायरायड ग्रंथियाँ कहा जाता है। इनसे स्रावित हार्मोन, जिसे **पैराथोरमोन** कहा जाता है, तंत्रिका क्रिया के दो महत्त्वपूर्ण तत्त्वों—कैलशियम ( चूना ) और फास्फोरस की मात्रा—को नियंत्रित करता है। पैराथोरमोन शरीर में कैलशियम की मात्रा को अधिक तथा उसकी तुलना में फास्फोरस की मात्रा को अल्प रखता है। यदि शरीर में पैराथोरमोन में न्यूनता आ जाए, तो कैलशियम की मात्रा कम हो जाती है और फास्फोरस की मात्रा बढ़ जाती है।

### अग्न्याशय ग्रंथि (पैनाक्रियाटिक ग्रंथि) :

आमाशय की निचली दीवार के निकट अग्न्याशय अवस्थित है। यह **इंसुलिन** नामक हार्मोन स्रावित करती है। यह तत्त्व मुख्यत: रक्त-शर्करा स्तर को नियंत्रित करता है। यदि इंसुलिन न्यून हो, तो रक्त-शर्करा सामान्य मात्रा से अधिक बढ़ जाती है, यदि इसका आधिक्य हो, तो रक्त-शर्करा सामान्य मात्रा से कम हो जाती है।

तदंतर रक्त-शर्करा-स्तर निदेशित करता है कि ऊतक ईंधनार्थ कितनी शर्करा प्राप्त कर सके हैं। जब रक्त-शर्करा अधिक मात्रा में हो, इसका अर्थ है रक्त से मस्तिष्क में पहुँचने के लिए पर्याप्त मात्रा में शर्करा प्राप्त नहीं होती, फलस्वरूप मस्तिष्क भोजनार्थ 'क्षुधित' होता है। रक्त-शर्करा के कम होने पर इसकी विपरीत स्थिति सत्य होती है; क्योंकि इंसुलिन हार्मोन की मात्रा अत्यधिक हो जाती है। अतः, इंसुलिन नियंत्रित करता है कि ईंधनार्थ मस्तिष्क अपने कार्यों के लिए कितनी शर्करा प्राप्त करता है।

## अधिवृक्क ग्रंथियाँ (ऐड्रिनल ग्लैंड्स) :

हम अधिवृक्क ग्रंथियों का उल्लेख संवेग दशा में शारीरिक परिवर्तनों के प्रसंग (अध्याय—४) में कर चुके हैं। ये ग्रंथियाँ शरीर के पिछले भाग में वृक्क के ऊपर अवस्थित हैं। इनका एक भाग **ऐड्रिनलिन** नामक हार्मोन स्रावित करता है। तीव्र संवेगों में यह हार्मोन प्रवाहित होता है। दूसरा भाग, सवल्क भाग, अनेक हार्मोनों को स्रावित करता है, जिन्हें सामूहिक रूप में **कार्टिन** कहा जाता है। यह आंतरिक पर्यावरण में सोडियम तथा जल की मात्रा को नियंत्रित करता है।

## जनन-ग्रंथियाँ (गोनद) :

पुरुष और नारी की यौन-ग्रंथियों का वैज्ञानिक नाम **गोनद** है। पुरुष के गोनद **वृषण** और नारी के डिंब ग्रंथि या अंडाशय कहलाते हैं। दोनों में ये गोनद युग्म-रूप में रहते हैं। वे अनेक संबंधित हार्मोनों को स्रावित करते हैं, किंतु पुरुष के हार्मोन नारी के हार्मोनों से कुछ भिन्न होते हैं। यौन-हार्मोन छोटे बालकों में बहुत क्रियाशील नहीं होते। यौवनारंभ (जब बालक लगभग बारह वर्ष की अवस्था का होता है) में वे क्रियाशील होने लगते हैं। और, वे ही लड़के और लड़की में इस आयु में होने वाले महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के हेतु हैं: स्तनों का उभरना, रजःस्राव, दाढ़ी का उगना, कंठ-स्वर में परिवर्तन—ये सब तथाकथित 'गौण यौन-विशेषताएँ' कहलाते हैं, जो लड़कियों को लड़कों से भिन्न करते हैं।

## पिट्यूटरी ग्रंथि :

यौन-हार्मोन पहले पिट्यूटरी ग्रंथि के नियंत्रण में प्रसुप्त रहते हैं। ग्यारह या बारह वर्ष की आयु से पहले गोनदों को सक्रिय रूप से स्रावित होने के लिए पिट्यूटरी ग्रंथि उद्दीप्त नहीं करती। वस्तुतः पिट्यूटरी ग्रंथि अनेक हार्मोनों का उदासर्जन करती है, जो शरीर की अन्य ग्रंथियों में स्राव (उदासर्जन) को उद्दीप्त या बाधित करते हैं। इसी हेतु यह कभी-कभी 'प्रधान ग्रंथि' कहलाती है। इसके अतिरिक्त श्लेष्माग्रंथि ( पिट्यूटरी ग्रंथि ) अन्य हारमोन भी उदासर्जित करती है, जो उपापचयन में प्रत्यक्ष भाग लेते हैं। इनमें से एक 'वृद्धि कारक' हार्मोन है, जो बालक

की वृद्धि की सामान्य गति को नियंत्रित करता है। यदि इसकी मात्रा बहुत न्यून हो तो बौना रह जाता है और यदि वह अत्यधिक हो, तो व्यक्ति दीर्घकाय हो जाता है

इस संक्षिप्त सर्वेक्षण से यह देखा जा सकता है कि शरीर के उपापचयन में हार्मोनों का अनेक रूपों में योग रहता है। जीव-रसायनज्ञ कुछ वर्षों से इस पर गंभीर अध्ययन कर रहे हैं कि वे ज्ञात कर सकें कि उपापचयन के रासायनिक रूपों में यथार्थतः हार्मोन किस प्रकार भाग लेते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया है कि सामान्य उपापचयन को स्थिर रखने के लिए अपेक्षाकृत उनकी लघुमात्रा ही अपेक्षित है और उपापचयन की क्रिया में उनकी कुछ मात्रा ही व्यय होती है। अतः, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हार्मोन ऐसे अभिकर्ता हैं, जो बिना प्रत्यक्ष रूप से उन्हें ऊर्जा दिए ही विशेष रासायनिक क्रमों की सहायता करते हैं या उनमें बाधा उपस्थित करते हैं ( डेंप से, १९४६ )

अंतःस्रावी ग्रंथियाँ हार्मोनों का उदासर्जन करती हैं, जो उपापचयन एवं अन्य शारीरिक क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।
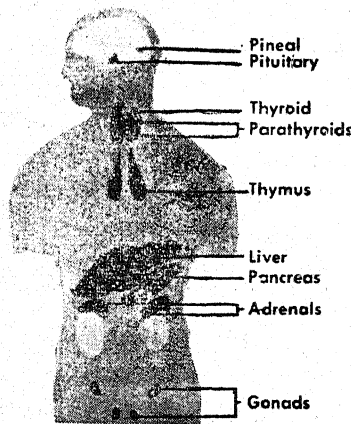
**चित्र १९.१ हार्मोनों का उदासर्जन करनेवाली अंतःस्रावी ग्रंथियों के नाम और शरीर में उनका स्थान।**

## प्रकिण्व (एंजाइम्स) :

केवल हार्मोन ही उपापचयी प्रतिक्रियाओं को व्यवस्थित करने का कार्य नहीं करते। वस्तुतः वे संभवतः अन्य अभिकर्ताओं के जैसे **प्रकिण्व** प्रदाय को बढ़ा कर या घटा कर कार्य करते हैं। शरीर की विविध कोशिकाओं में होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाओं से प्रकिण्व उदासर्जित होता है। ये प्रकिण्व मध्यस्थ अभिकर्त्ता या

उत्प्रेरक हैं, जो उपापचयन में विशेष रासायनिक क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। प्रकिण्वों के अनेक ज्ञात प्रकार हैं और प्रत्येक प्रकिण्व किसी विशेष प्रतिक्रिया में भाग लेता है। उदाहरणतः मस्तिष्क को शर्करा पहुँचाने में अपेक्षित रासायनिक प्रतिक्रियाओं में अथवा जलती हुई शर्करा की उपजात प्रतिक्रियाओं के उपयोग में अनेक विशिष्ट प्रकिण्व रहते हैं और प्रत्येक क्रम में एक-न-एक का प्रयोग होता है। यदि इनमें से कोई भी प्रकिण्व न्यून हो जाए, तो जिन रासायनिक प्रतिक्रियाओं से वह संबंधित है, वे अवरुद्ध हो जाएँगी। हम आगे पढ़ेंगे कि ऐसा अवरोधन किस प्रकार दुर्बल-मनस्कता उत्पन्न करता है।

## विटामिन :

प्रकिण्वों से निकट संबद्ध तत्त्व विटामिन हैं। जनसाधारण अब पूर्णतः विटामिनों के महत्त्व को समझता है तथा प्रति वर्ष विशद् मात्रा में उनको ग्रहण करता है, बहुधा बिना यह जाने कि वह क्यों लेता है। हार्मोन और एंजाइम से भिन्न विटामिन शरीर में उत्पन्न नहीं होते, वरन् उन्हें खाद्य पदार्थों के साथ अथवा दवाओं की दुकानों में केपसूल के रूप में शरीर में पहुँचाना पड़ता है। यद्यपि शरीर को इनकी लघुमात्रा में ही आवश्यकता होती है, **विटामिन शरीर में होने वाली कुछ सूक्ष्म रासायनिक प्रतिक्रियाओं को नियंत्रित करते हैं।** वस्तुतः आधुनिक जीव-रासायनिक अनुसंधान स्पष्ट करता प्रतीत होता है कि संभवतः शरीर में प्रकिण्व बनाने के लिए विटामिन अन्य उदासर्जनों के साथ मिल जाते हैं। प्रत्येक घटना में प्रकिण्व और विटामिन निकट संबद्ध रहते हैं।

## जीन (Genes) :

तीन प्रकार के रसायन—हार्मोन, विटामिन तथा एंजाइम—ऐसे अभिकर्ता हैं जो शरीर की जटिल, रासायनिक मशीनरी को नियंत्रित करते हैं। नियंत्रित करने वाले अभिकर्त्ताओं की ये श्रेणियाँ जनन कारकों (जिनेटिक फैक्टर्स) का परिणाम हैं (बीडल, १९४५)। हम देख चुके हैं (अध्याय २ में) कि आनुवंशिकता के अभिकर्त्ता जीन हैं—ये वह माध्यम हैं, जिनके द्वारा शारीरिक विशेषताएँ एक पीढ़ी से दूसरी को दी जाती हैं। आनुवंशिक विशेषताओं का यह पारेषण रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा ही संभव है। प्राणी एक कोशिका के रूप में जीवनारंभ करता है, वह अनेक प्रकारों से अनेक रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा तब तक गुणित और विभाजित होता रहता है, जब तक फलस्वरूप वह शरीर के ऊत्तकों और अंगों का रूप धारण नहीं कर लेता। अतएव, जीन ही शरीर के अंतिम स्वरूप को हार्मोनों, एंजाइमों और विटामिनों के माध्यम से नियंत्रित करते हैं।

चित्र १९.२ में जीन और व्यवहार के मध्य जो संबंध है, उसका चित्रण किया गया है। जीन न केवल स्वयं को पुनरोत्पन्न करते हैं, वरन् एंजाइमों को भी उत्पन्न करते हैं अथवा उत्प्रेरित करते हैं। और वे विविध प्रतिक्रियाओं को, जो कोशिक्य उपापचयन में निहित हैं, उत्प्रेरित करते हैं और इस प्रकार कोशिकाओं की क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। परस्पर क्रिया द्वारा अनेक रचना-विकास (मार्फोजेनेलिस जेनेसिस) की प्रक्रिया में अर्थात् रचना को आकार देने में—भाग लेती हैं, जिनके द्वारा शरीर के अंग आकृति ग्रहण करते हैं। इनमें से कुछ अंग, जैसा कि हम देख चुके हैं, व्यवहार में भाग लेते हैं। अगले अध्याय में, हम देखेंगे कि ग्रंथीय स्राव, एंजाइम्स, तथा विटामिन व्यवहार से किस प्रकार सीधे संबंधित हैं, अब हम ऐसे अंग पर विचार करेंगे, जिसका व्यवहार में सर्वाधिक महत्त्व है, स्नायु-संस्थान (तंत्रिका-तंत्र) तथा उसे निर्मित करने वाली तंत्रिका कोशिकाएँ।

प्रक्रियाओं की शृंखला, जो जीन और व्यवहार को जोड़ती हैं।
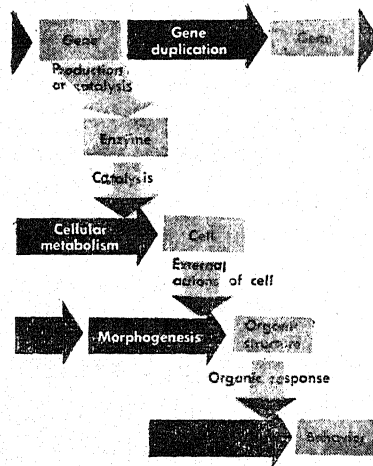
चित्र १९.२ प्रक्रियाओं की शृंखला, जिस क्रम से जीन और एंजाइम्स व्यवहार से संबंधित है (जुबेक तथा सोलबर्ग के अनुसार, १९५४)।

## तंत्रिका-कोशिकाएँ तथा अंतर्ग्रंथन (Neurons and Synapses) :

हम (अध्याय २ में) स्पष्ट कर चुके हैं कि प्राणी किस प्रकार एक कोशिका के रूप में जीवन प्रारंभ करता है। यह मूल कोशिका तब तक बारंबार विभाजित और गुणित होती है, जब तक शरीर के विविध अंग आकार ग्रहण नहीं कर लेते। गुणन-क्रिया में, कोशिकाएँ अपनी संरचना एवं अपनी क्रियाओं को स्पष्ट करती हैं, शरीर की क्रियाओं में प्रत्येक एक विशेष भाग लेती है। यद्यपि शरीर का प्रत्येक अंग अंततः

अनेक प्रकार की कोशिकाओं से संघटित होता है, तथापि प्रायः उनमें एक प्रकार की ऐसी कोशिकाएँ रहती हैं, जो उस अंग के प्रमुख कार्य को करती हैं। तंत्रिका-तंत्र के संबंध में यह कोशिका **तंत्रिका कोशिका** है और इसका कार्य है--तंत्रिका-आवेगो के संदेश का संचालन करना।

## तंत्रिका-कोशिकाएँ :

चित्र १९·३ तंत्रिका-कोशिकाओं का आयोजन-चित्र प्रस्तुत करता है। वस्तुतः तंत्रिका-कोशिकाएँ रूप और आकार में विविधतापूर्ण हैं और इस चित्र में अंकित तंत्रिका अन्य तंत्रिका-कोशिकाओं से भिन्न प्रेरक-तंत्रिका कोशिका का विशिष्ट उदाहरण है, जो मेरूदंड से प्रारंभ होकर किसी मांसपेशी में पहुँचती है। यह आरेख विविध तंत्रिका-कोशिकाओं के मुख्य लक्षणों को स्पष्ट करता है। सब तंत्रिका-कोशिकाओं के दो सामान्य भाग होते हैं : **कोशिकापिंड** और **तंतु**। कोशिकापिंड में तंत्रिका-कोशिका को जीवित और क्रियाशील रखने वाली संरचनाएँ रहती हैं। तंत्रिका-तंतु दो प्रकार के होते हैं :**अभिवाही प्रवर्ध**, जो निकटवर्त्ती तंत्रिका-कोशिकाओं द्वारा या शारीरिक उद्दीपनों द्वारा उद्दीप्त होते हैं, तथा **अक्षतंतु**, जो तंत्रिका आवेगों को निकटवर्त्ती तंत्रिका-कोशिकाओं या कारकों, जैसे मांसपेशी, को प्रदान करते हैं। अभिवाही-प्रवर्ध या अक्षतंतु सापेक्षतः बड़े या छोटे हो सकते हैं, उनकी लंबाई उन्हें जोड़ने वाली कोशिकाओं पर निर्भर करती है। मस्तिष्क के ही अंदर अनेक अतिनिकट तंत्रिका-कोशिकाओं को जोड़ने का कार्य करने वाली अनेक तंत्रिका कोशिकाओं के तंतु अति लघु होते हैं। कुछ तंत्रिका—कोशिकाओं के जो पैर के अंगूठे की त्वचा को पोषित करती हैं, अभिवाही-प्रवर्ध अति दीर्घ और अक्षतंतु लघु होते हैं, जब कि प्रेरक तंत्रिका कोशिकाओं के, जो बड़े अंगूठे की मांसपेशियों से जुड़े रहते हैं, अक्षतंतु अतिदीर्घ होते हैं और अभिवाही-प्रवर्ध लघु।

चित्र १९·३ के आरेख में ध्यान से देखें कि अक्षतंतु एक आवरण में घिरा हुआ है। इसे माइलिन पिधान ( Myelin Sheath ) कहते हैं। यह अधिकांश इन बड़े तंतुओं को ढक देता है यदि वे कोशिका पिंड से, जो आवृत्त नहीं है, बहुत बाहर निकल आएँ। तंत्रिका-तंत्र के अति लघु तंतुओं के, विशेषतः स्वायत्ततंत्र में, माइलिन पिधान नहीं रहता, इस विषय के गंभीर अनुसंधान के बावजूद माइलिन-पिधान की यथार्थ क्रिया अब तक ज्ञात नहीं है। जिन तंतुओं को यह आवरण ढकता है, उनकी प्राकृत क्रिया के लिए इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मस्तिष्क के अनेक तंतुओं पर जन्म के समय यह माइलिन-पिधान नहीं रहता और तंतुओं को माइलिन करने की क्रिया एक या दो वर्ष तक चलती रहती है। कुछ वैज्ञा-

निकों का विश्वास है कि माइलिन-क्रिया के विलंब के फलस्वरूप मानव-शिशुओं की अनेक संवेदनात्मक तथा प्रेरक क्रियाओं की परिपक्वता अपेक्षाकृत मंद हो जाती है।

तंत्रिका-तंत्र की आधारभूत इकाई तंत्रिका-कोशिका है।
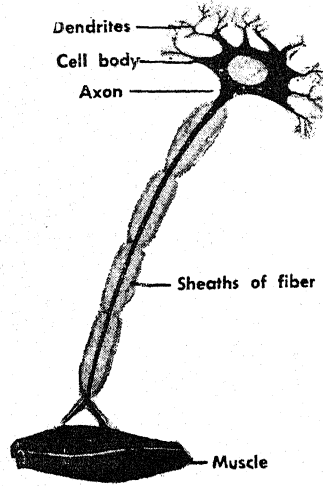
चित्र १९·३. तंत्रिका-कोशिका का रेखाचित्र।

## तंत्रिका आवेग :

तंत्रिका-कोशिका की प्रमुख क्रिया तंत्रिका-आवेगों को संचालित करना है। ये बहुत छोटी नाड़ियाँ हैं, जो तंतुओं के साथ-साथ अपेक्षाकृत तीव्र गति से चलती हैं—लगभग १ से १०० मीटर प्रति सेकेंड, की गति से ऐसी नाड़ी निःसंदेह तंतु के मध्य किसी प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रिया को प्रस्तुत करती है, किंतु इसमें विद्युतीय परिवर्तन भी निहित हैं। इस परिवर्तन को वोल्ट मीटर पर अभिलिखित किया जा सकता है, यदि विद्युद्ग्रों को तंत्रिका-कोशिका पर लगा दिया जाए और किसी उपयुक्त परिवर्द्धक-यंत्र द्वारा स्पष्ट किया जाए। चित्र १९·४ में ऐसे आवेग का विद्युतीय अभिलेख प्रदर्शित किया गया है। जैसे ही यह दो विद्युद्ग्रों में से एक में पार होती है, वाल्टेज व्याकुंचन एक दिशा में अभिलिखित होता है, तब वह दूसरे विद्युद्ग्र में जाती है, वोल्ट मीटर विपरीत दिशा की ओर व्याकुंचित (मुड़ता) होता है। तंतु के किसी विशेष बिंदु तक पहुँचने में इसे लगभग एक सेकेंड का हजारवाँ भाग लगता है।

वाल्टेज व्याकुंचन को, जो तंत्रिका-आवेग को प्रकट करता है, स्पष्ट करने में कायिकीविदों ने सावधानी से अनेक प्रकार से तंत्रिका-तंतु का परीक्षण किया है।

रासायनिक अध्ययन द्वारा वे जान सके हैं कि तंतु की झिल्ली प्रायः अभिस्पंदित (विद्युत् शक्ति की उत्पत्ति) की जाती है। इसमें बाहर की ओर विध्यात्मक विद्युद्णु गुणों की अत्यधिकता रहती है तथा भीतर की ओर निषेधात्मक विद्युद्णु की (देखिए, चित्र १९·५)। विद्युतीय अध्ययन द्वारा उन्होंने खोज की कि झिल्ली का यह अभिस्पंदन स्थिर विद्युतमात्र ·विश्रांति-विभव (वोल्टेज) द्वारा झिल्ली के बाहर प्रकट किया जाता है। इसका अभिलेखन, एक विद्युद्ग्र झिल्ली के बाहर और दूसरा उसके अंदर अथवा कटे हुए तंतु के छोर में लगा कर किया जा सकता है (देखिए, चित्र १९·५)। तब प्रत्यक्षतः तंत्रिका-आवेग में यह होता है कि झिल्ली का अभिस्पंदन टट जाता है, जो स्थिर-विद्युत् मात्रा विश्रांति-विभव को नीचे शून्य तक पहुँचा देता (अथवा विपरीत दिशा में भी मोड़ सकता है) है।

विद्युतीय रूप में तंत्रिका आवेग एक बाल्टेज परिवर्तन है, जो तंत्रिका-तंतु की झिल्ली को नीचे की ओर गतिशील बनाती है।
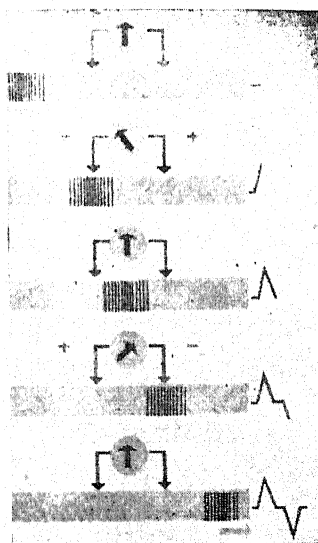
**चित्र १९·४ तंत्रिका-आवेग का विद्युतीय अभिलेख। गोलाकार में शरचिह्न बाल्ट मीटर की सुई को प्रकट करता है, जो तंत्रिका-तंतु के साथ दोनों विद्युद्ग्रों से चक्र बनाती है ( झिल्ली के संपर्क में शरचिह्न हैं)। दाहिनी तथा नीचे की ओर आवेग से पहले एक विद्युद्ग्र में से तब दूसरे में से गुजरने का सुई की गति का अभिलेख है ( गार्डनेर के अनुसार, १९५८ )।**

## संपूर्ण-अथवा-बिलकुल नहीं का सिद्धांत

यद्यपि तंतु की झिल्ली में घटित होने वाली अधिकांश घटनाएँ आज तक अस्पष्ट हैं, फिर भी कुछ ज्ञात हैं। जब झिल्ली पर किसी उद्दीपन का व्यवहार किया जाता है, तो यह झिल्ली के पार विद्युद्णुओं के संतुलन में विघ्न उपस्थित करता है और विश्रांति-विभव का अवपातन करता है। यदि उद्दीपन दुर्बल है, तो यह अवपातन

अल्प और क्षणिक होता है; क्योंकि झिल्ली शीघ्र ही अपनी सामान्य स्थिर स्थिति को प्राप्त करती है। यदि उद्दीपन अपेक्षाकृत तीव्र है, तो विभव का पूर्ण अवपातन होता है और वह झिल्ली के साथ-साथ बढ़ते हुए तंतु के अंतिम छोर तक पहुँच जाती है। तंतु तक बढ़ने वाले **इसी विभव-परिवर्तन को हम तंत्रिका-आवेग** कहते हैं। यह प्रसारण-आवेग विश्रांति-विभव में पूर्ण अवपातन अथवा उसका विपर्यय प्रस्तुत करता है, इसलिए हम जानते हैं कि "यह 'संपूर्ण-अथवा-बिलकुल नहीं' के सिद्धांत का पालन करता है। या तो यह घटित होता है, अथवा घटित नहीं होता, और दोनों के बीच की स्थिति नहीं रहती।"[१]

जब तंत्रिका-तंतु स्थिर स्थिति में रहता है, तंतु का बाह्य भाग विध्यात्मक और भीतरी भाग निषेधात्मक होता है।
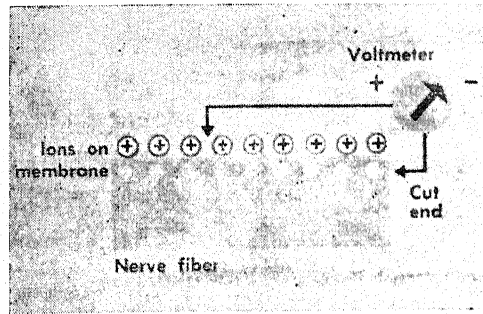
**चित्र १९.५ तंत्रिका-तंतु की स्थिर विद्युत् मात्रा। विध्यात्मक विद्युद्णु तंत्रिका झिल्ली के बाहर अत्यधिक हैं और निषेधात्मक विद्युद्णु भीतर की ओर अत्यधिक हैं। परिणामतः एक ऐसी विद्युत् मात्रा है, जिसका परिमापन एक विद्युद्ग्र को तंतु के बाहर लगा कर तथा दूसरे को तंतु के कटे हुए छोर पर लगा कर कर सकते हैं।**

आवेग का आकार और गति :

इसे अंतिम निर्णय के रूप में हमें स्वीकार नहीं करना चाहिए कि सब तंतुओं के लिए सब आवेग एक ही आकार के होते हैं; क्योंकि वस्तुतः वे ऐसे नहीं होते। झिल्ली के निकटवर्ती विद्युद्णुओं से उत्पन्न विश्रांति-विभव (Resting-potential)

---

१. कुछ प्रयोगों में तंत्रिका-आवेग में विश्रांति-विभव की अपेक्षा वाल्टेज परिवर्तन अधिक होता है। इसका कारण अब तक स्पष्ट नहीं है। विश्रांति-विभव प्रायः सब तंत्रिका-आवेगों को स्पष्ट करता है।

जिस तंतु में पाया जाता है, उसी के अनुरूप परिवर्तित होता रहता है। लंबे तंतुओं में यह लंबा होता है और छोटे तंतुओं में छोटा। फलस्वरूप तंत्रिका-आवेग तंतु के आकार के अनुसार परिवर्तित होता है। वस्तुत: यह तंतु के व्यास के चतुर्भुज के अनुपात में होने के लिए स्थूल नियम का अनुकरण करता है। तंत्रिका-आवेग का आकार तंतु की स्थिति पर भी निर्भर करता है। यदि यह औषधियों से प्रभावित किया जाए, आक्सीजन से वंचित हो, श्रांत हो या किसी अन्य असामान्य स्थिति में हो, इसके आवेगों में फलतः परिवर्तन होगा। किंतु इसकी स्थिति जो भी होगी, तंतु की अनुक्रिया 'संपूर्ण-अथवा-बिलकुल नहीं' नियम के अनुसार ही होगी। यह अपना समस्त देता है अथवा बिलकुल नहीं। यहाँ यह भी स्पष्ट किया जा सकता है कि आवेग के भ्रमण की गति भी तंतु की स्थिति पर उसी प्रकार निर्भर करती है, जिस प्रकार आवेग का आकार तंतु-के आकार पर। छोटे आवेगों की अपेक्षा लंबे आवेग तीव्रता से भ्रमण करते हैं।

## आवेग की क्रम-गति ( Impulse rates ) :

किसी ऐसी विधि से, जिसे हम पूर्णतः अब तक समझ नहीं पाए हैं, तंतु तीव्र-गति से पुनः अपनी स्थिति को एक बार प्रस्राव होने पर प्राप्त कर लेता है। एक सेकेंड के कुछ हजारवें अंश में अपने विश्रांति-विभव को वह प्राप्त कर लेता है और किसी भी नए आने वाले उद्दीपन के लिए प्रस्तुत करता है। यदि उद्दीपन पर्याप्त सबल हो, तो इसका प्रयोग उस काल में भी हो सकता है, जब वह स्वस्थ हो रहा हो। इस अवधि में उद्दीपन को, उस स्थिति की अपेक्षा जब ततु विश्राम-स्थिति में रहता है, पर्याप्त अधिक तीव्र या सबल होना चाहिए यदि उसे प्रभावशाली प्रमाणित होना हो। स्वस्थ होने का यह काल, जिसमें प्रायः दृढ़ उद्दीपनों की आवश्यकता रहती है, **दुर्जेय-काल** (Refactory Period ) कहलाता है।

संभवत: यह स्पष्ट है कि दुर्जेय-काल की लंबाई तंत्रिका-कोशिका के जलने की गति को नियंत्रित करती है। जिस प्रकार एक बंदूकचालक, जो अपनी बंदूक को पुनः शीघ्रता से भर सकता है, वह बंदूक को बहुधा अधिक चला सकता है, अत: जिन तंत्रिका-कोशिकाओं की क्षतिपूर्ति अन्यों की अपेक्षा तीव्र गति से होती है, वे तंत्रिका-आवेगों को अधिक तीव्र गति से उत्पन्न करती हैं। तंत्रिका-कोशिकाओं की क्षति-पूर्ति की गति उन्हीं प्रतिबंधों के अनुसार परिवर्तित होती है, जो आवेग के आकार को प्रभावित करती है। बड़ी तंत्रिका-कोशिकाएँ प्रति सेकेंड के लगभग सहस्रांश में पूर्वावस्था को प्राप्त करती हैं और प्रति सेकेंड प्राय: १,००० बार दीप्त हो सकती है। कुछ लघु तंतु प्रति सेकेंड में कुछ आवेगों को ही उत्पन्न कर सकते हैं।

**अंतर्ग्रंथन संबंध ( Synaptic Connections ) :**

यह जान लेने पर कि तंत्रिका-आवेग तंतुओं के साथ-साथ भ्रमण करते हैं, यह जिज्ञासा करना स्वाभाविक है कि वे कहाँ से उत्पन्न होते हैं और कहाँ विलीन हो जाते हैं। इस प्रश्न के अनेक उत्तर हैं। एक उत्तर है कि आवेग विविध ज्ञानेंद्रियों के संग्राहकों में उत्पन्न होते हैं। कुछ संग्राहक, जैसे दृष्टिपटल की शलाकाएँ और शंकुओं घ्राण-इंद्रिय के केश-कोशाणु. और त्वचा एवं अंतःसंवेदनों के मुक्त तंत्रिका-छोर, स्वयं ही विशेषता-प्राप्त तंत्रिका-कोशिकाएँ हैं। कुछ अन्य इंद्रियों के संग्राहक तंत्रिका-कोशिकाएँ नहीं हैं, किंतु वे तंत्रिका-कोशिकाओं से संबंधित हैं। जब कोई उद्दीपन उन्हें विश्रृंखल करता है, वे किसी भाँति इन तंत्रिका-कोशिकाओं में आवेगों को प्रविष्ट कर देते हैं। किसी भी स्थिति में क्रिया प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष, आवेग को संचालित करने वाली तंत्रिका-कोशिका, **संवेदी-तंत्रिका-कोशिका** कहलाती है।

प्रत्येक संवेदी-तंत्रिका-कोशिका के अंत में रिक्त-स्थान में आवेग आता है, उसे वह पार नहीं कर सकता। **यह रिक्त-स्थान, एक तंत्रिका-कोशिका के अंत और दूसरी के प्रारंभ के बीच होता है, अंतग्रंथन कहलाता है।** यद्यपि एक आवेग इस संधि-स्थल को पार नहीं कर सकता, उसका विद्युतीय क्षेत्र इस रिक्त-स्थान को निकटवर्ती तंत्रिका-कोशिका को उद्दीप्त करने के लिए तथा उसके तंतु में नए आवेग को उत्पन्न करने के लिए भली-भाँति पारगमन करता है। इस पर एक नवीन आवेग अंतर्ग्रंथन में प्रविष्ट होता है, जहाँ दो तंत्रिका-कोशिकाओं के छोर एक दूसरे के निकट रहते हैं।

अधिकांश संवेदी तंत्रिका-कोशिकाएँ एक ज्ञानेंद्रिय से—चाहे वह जितनी ही दूर क्यों न हो, केंद्र स्नायु-संस्थान तक विस्तृत रहती है, जो खोपड़ी अथवा रीढ़ की अस्थियों के मध्य रहता है। अतः, वे अपना अंतर्ग्रंथन केंद्रीय-तंत्रिका-तंत्र (Central Nervous System ) में भी करती हैं। कुछ उदाहरणों में, उदाहरणतः जैसे नेत्र में, ज्ञानेंद्रिय में ही अनेक अंतर्ग्रंथन रहते हैं तथा केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र में प्रवेश करने वाली तंत्रिका-कोशिकाओं का श्रृंखला में तृतीय या चतुर्थ स्थान रहता है।

केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र में अनेक अंतर्ग्रंथनों की संभावना है। संभवतः कुछ विशेष स्थितियों में; संवेदी तंत्रिका-कोशिकाएँ सीधे किसी प्रेरक तंत्रिका-कोशिका के सहयोग से किसी तंतु को मांसपेशियों या ग्रंथियों तक भेजती हैं। प्रायः एक अथवा अनेक मध्यवर्ती तंत्रिका-कोशिकाएँ हैं, जो **सहचारी-तंत्रिका कोशिकाएँ कहलाती हैं। अतएव, हम किसी उद्दीपन के प्रति व्यावहारिक अनुक्रिया की सरलसम पूर्ण व्यवस्था पर विचार करते हैं, जिसके अंतर्गत संवेदी तंत्रिका-कोशिका** एवं प्रेरक-तंत्रिका

कोशिका है। यह व्यवस्था **प्रतिवर्त चाप** (Reflex arch) कहलाती है, (देखिए १९·६) और यह कुछ अन्य अधिक प्रारंभिक प्रतिवर्तों के लिए उत्तरदायी हैं।

अति सहज प्रतिवर्तों में भी तीन प्रकार की तंत्रिक-कोशिकाएँ निहित रहती हैं।
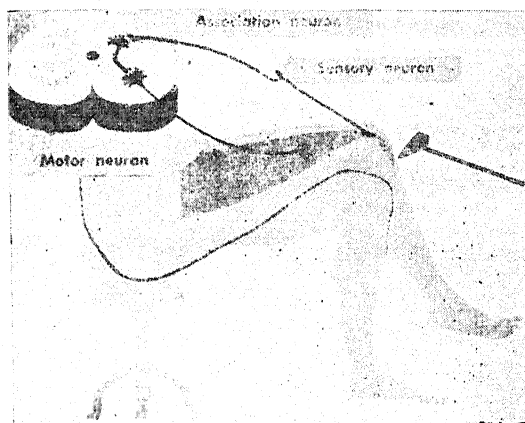
**चित्र १९. ६ संवेदी-प्रेरक प्रतिवर्त-चाप। संवेदी तंत्रिका-कोशिकाएँ (इस उदाहरण में, जानु-स्नायु में) आवेगों को मेरु-स्तंभ में संचालित करती हैं। ये प्रायः मध्यवर्त्ती सहचारी तंत्रिका-कोशिकाओं के द्वारा आगे बढ़ाए जाते हैं। इसके बाद आवेग प्रेरक तंत्रिका कोशिकाओं पर से भ्रमण करते हुए प्रतिवर्त अनुक्रिया उत्पन्न करने के लिए मांसपेशियों तक पहुँचते हैं।**

प्रतिवर्त-चाप विशिष्ट अथवा सामान्य नहीं होता। अंतर्ग्रंथन संबंध प्रायः उससे अधिक जटिल होते हैं ( देखिए, चित्र १९.७ )। बहुधा अनेक संवेदी तंत्रिका-कोशिकाएँ एक सहचारी-तंत्रिका कोशिका के सहयोग से अंतर्ग्रंथन करती हैं, हम इसके उदाहरण दृष्टिपटल (रेटिना) के द्विध्रुवीय कोषाणुओं पर अनेक शलाकाओं और शंकुओं के छोरों में देख चुके हैं (अध्याय-११ )। इसका अभिप्राय है कि केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र में सहचारी तंत्रिका-कोशिकाओं का प्रायः अपेक्षाकृत विशद् **संग्रहणशील क्षेत्र** रहता है। वे आवेगों को ज्ञानेंद्रिय में अनेक संग्राहकों द्वारा प्राप्त करती हैं। इसके अतिरिक्त, सहचारी तंत्रिका-कोशिकाएँ आवर्तक तंत्रिका परिधि ( Recu-rrent Nerve Circuit) निर्मित करने के लिए एक दूसरे पर चाप बनाती हैं। ऐसी व्यवस्था में आवेग अपने को आंगता संवेदी आवेगों की बहुत कम सहायता से अथवा

बिना सहायता के क्रियाशील रखते हैं। इस प्रकार एक बार जो क्रिया तंत्रिका-तंत्र में प्रारंभ होती है, निरंतर अनिश्चित काल तक चल सकती है। यह व्यवस्था अधिकांश तंत्रिका क्रिया को पर्याप्त मात्रा में स्पष्ट करती है।

तंत्रिका-कोशिकाएँ प्रायः सदैव जटिल रूप से संबद्ध रहती हैं।
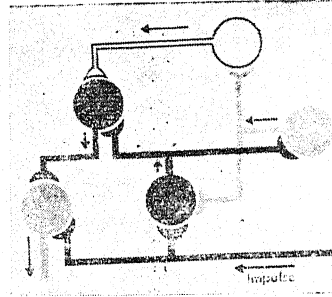
चित्र १९·७ यह रेखाचित्र प्रदर्शित करता है कि किस प्रकार तंत्रिका-कोशिकाएँ आवर्तक तंत्रिका परिधि बनाती हैं, जो आवेग के क्रियाशील करने पर क्रिया को कुछ काल तक बनाए रखती हैं।

प्रतिवर्त :

यद्यपि प्रतिवर्त-चाप प्रतिवर्त प्रतिक्रियाओं में निहित परिपथ के ढाँचे को प्रस्तुत करता है, अधिकांश प्रतिवर्तों में एक से अधिक मध्यवर्त्ती सहचारी तंत्रिका-कोशिका अंतर्भुक्त रहती हैं, बहुधा वे आवर्त्ती तंत्रिक परिपथ के रूप में व्यवस्थित रहती हैं और प्रतिवर्त को उद्दीप्त करने वाले उद्दीपन की क्रिया को दीर्घकालिक बनाती हैं। विविध संमिश्रणों के प्रतिवर्त परिपथ तंत्रिका-तंत्र के विभिन्न भागों में पाए जाते हैं। वे इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं के हेतु हैं, जैसे नेत्र के कोर्निआ (स्वच्छमंडल) के स्पर्श होने से पलकों का झपकना, तीव्र प्रकाश में नेत्र-तारा का विस्तारण, मुख में भोजन रखने पर लार का स्रावित होना, अपरिचित ध्वनि सुनने पर कुत्ते के कानों का सतर्क होना एवं अन्य अनेक स्वचल क्रियाएँ।

उपरोल्लिखित सब प्रतिवर्त मस्तिष्क के परिपथों में निहित हैं। अन्य प्रतिवर्त केवल मेरू-स्तंभ में रहते हैं तथा उन्हें दो सामान्य वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है :

आकुंचन प्रतिवर्त (Flexion Reflexes) :

**आकुंचन प्रतिवर्त** तथा **विस्तरण प्रतिवर्त** असावधानी से गर्म स्टोव को छूने पर या नुकीली वस्तु पर पैर रखने पर हम आकुंचन प्रतिवर्त अनुभव करते हैं। प्रत्येक स्थिति में प्रतिक्रिया होती है कि संबंधित हाथ या पैर को तीव्रता से दुखद उद्दीपन से पृथक् करने के लिए मोड़ना या खींचना। विस्तरण प्रतिवर्त आकुंचन प्रतिवर्तों की अपेक्षा अधिक सामान्य रहते हैं, किंतु उनके 'स्वचल' होने के कारण हम उनके विषय में

कम ज्ञान रखते हैं : उदाहरणत:, जब किसी की टांग जमीन को स्पर्श करती है, पैर पर दबाव प्रतिवर्ती रूप से विस्तृत होता है और उसे शरीर का भार उठाने में सहायतार्थ टांग को स्थिर बनाता है और जब कोई अपने एक पैर को जमीन से ऊपर उठाता है, तो दूसरी टांग शरीर को सहायता देने के लिए प्रतिवर्ती रूप से दृढ़ होती है। इस दूसरे उदाहरण में प्रतिवर्त का उद्दीपन झुकी हुई टांग के गतिबोधक संग्राहकों में रहता है, ('देखिए, अध्याय—१२)। दोनों विस्तरण प्रतिवर्त के उदाहरण हैं। वे हमारी सहायता खड़े होने, चलने और भागने में करते हैं तथा वे इतने नियमित रूप से होते हैं कि हमारा ध्यान उनकी ओर बहुत कम जाता है।

प्रतिवर्तों के ये कुछ उदाहरण हैं, अधिक जटिल प्रतिवर्तों में अनेक सहचारी तंत्रिका-कोशिकाएँ निहित हो सकती हैं। जिनके तंतु तंत्रिका-तंत्र में कुछ दूरी पर फैले रहते हैं। एक उदाहरण है खरोंच प्रतिवर्त, जिसे हम अपने पालतू जानवरों में देख सकते हैं अथवा स्वयं अनुभव कर सकते हैं। खरोंच प्रतिवर्त आकुंचन और विस्तरण प्रतिवर्तों का भली-भाँति किया गया वैकल्पिक रूप है।

## पारस्परिक अंतर्बाधा (Reciprocal Inhibition) :

प्रतिवर्त-क्रिया की गति और सहजरूपता मांसपेशियों की व्यवस्था के स्वरूप पर एवं उनके उत्तेजना प्राप्त करने की विधि पर (तंत्रिका-तंतुओं से संबद्ध) निर्भर करती है। शरीर की मांसपेशियाँ एवं विशेषत: हाथ-पाँव के विरोधी युग्मों के रूप में व्यवस्थित रहती हैं। मांसपेशियों का एक वर्ग हाथ-पाँव को विस्तार देता है, दूसरा वर्ग विरोधी वर्ग, उसे आकुंचित करता है। विरोधी मांसपेशियों के दो वर्ग एक ही समय में बहुत कम अवसरों पर क्रियाशील होते हैं। जब वितानक (Extensor) मांसपेशियाँ आकुंचित होती हैं, तब आकोचक (Flexor) मांसपेशियाँ विश्राम करती हैं एवं जब आकोचक मांसपेशियाँ आकुंचित होती हैं, तब वितानक मांसपेशियाँ विश्राम करती हैं। इस प्रकार विरोधी मांसपेशियों को एक दूसरे के विरुद्ध कार्य करने से पृथक् रखा जाता है तथा एक समय में केवल एक प्रतिवर्त प्रमुख रहता है। विरोधी मांसपेशियों का यह समकालिक आकुंचन एवं विश्रांति **पारस्परिक अंतर्बाधा** कहलाता है।

यह अंतर्बाधा का एक विशेष प्रकार है। अंतर्बाधा अंतर्ग्रंथन क्रिया का एक व्यापार है, जिसमें एक स्रोत के आवेग एक तंत्रिका-कोशिका को कम उत्तेजनीय बनाते हैं तथा दूसरे स्रोत के आवेगों के प्रति उन्हें अनुक्रिया नहीं करने देते। निरोधात्मक आवेग ( Imhibitory Inpulses) उन मांसपेशियों (गतिबोधक संग्राहकों) से भी उत्पन्न हो सकते हैं, जो प्रतिवर्त में निहित हैं तथा स्नायु-संस्थान के विविध अन्य परिपथों और केंद्रों से भी।

चालक-इकाई :

यह महत्त्वपूर्ण है कि प्रतिवर्त-क्रिया का आकार मांसपेशियों के उत्तेजित होने की विधि पर निर्भर हैं। तंत्रिका-तंतुओं के सदृश मांसपेशीय तंतु भी अनेक कोशिक्य इकाइयों (Cellular Units) से बनते हैं, इस रूप में ये मांसपेशीय तंतु कहलाते हैं, जो चालक-तंत्रिका कोशिकाओं के अक्षतंतु से जुड़े हुए हैं। एक अक्षतंतु अनेक छोरों में विभाजित होकर एक से अधिक मांसपेशीय तंतु का कार्य करता है, प्रत्येक छोर एक भिन्न मांसपेशीय तंतु का कार्य करता है। फलस्वरूप एक चालक अक्षतंतु में एक आवेग अनेक मांसपेशीय तंतुओं को आकुंचित होने के लिए प्रेरित करता है। एक अक्षतंतु से संबंधित सब तंतु एक समूह के रूप में आकुंचित होते हैं। अतएव, एक चालक अक्षतंतु एवं जिन्हें वह प्रेरित करता है, वे सब मांसपेशीय तंतु **चालक-इकाई** कहलाते हैं।

चालक इकाई कितनी लंबी है, यह सतंत्रिक अनुपात (Innervation Ratio) पर निर्भर करता है। यह अनुपात मांसपेशीय तंतुओं और अक्षतंतु के मध्य रहता है। शरीर के कुछ भागों में अनुपात इतना अधिक रहता है जैसे १५० :१; दूसरे भागों में यह इतना कम भी रहता है जैसे ३ : १; उच्च अनुपात, शरीर की लंबी मांस-पेशियों की विशेषता है, जैसे चलने में प्रयुक्त होने वाली मांसपेशियाँ। इसमें अपेक्षा-कृत दीर्घ आकुंचन होता है। निम्न अनुपात, लघु मांसपेशियों की विशेष्ता है, जैसे अंगुलियों और पलकों की मांसपेशियाँ। इनमें लघु आकुंचन होता है। अतएव, किसी भी मांसपेशीय समूह की गति की सूक्ष्मता और स्पष्टता सतंत्रिक अनुपात पर निर्भर करती है। सतंत्रिक अनुपात द्वारा स्थापित यह सीमा न केवल, जैसा कि हम देखेंगे, प्रतिवर्त प्रतिक्रियाओं पर लागू होती है, वरन् तंत्रिका-तंत्र की उच्च स्तर की अधिगत और निपुण गतिविधियों को भी नियंत्रित करती है।

प्रतिक्रिया-काल :

उद्दीपन के प्रति होने वाली प्रत्येक प्रतिक्रिया को निश्चित काल की अपेक्षा रहती है, तथा उद्दीपन और अनुक्रिया के मध्य का काल **प्रतिक्रिया** काल कहलाता है। सरल प्रतिवर्ती के लिए यह काल १/१० सेकेंड रहता है, तथापि प्रतिवर्त के अनुरूप यह परिवर्तित होता है।

सरल ऐच्छिक प्रतिक्रियाओं, जैसे प्रकाश के चमकने पर कुंजी दबाना या घंटी बजाना, में प्रतिक्रिया-काल लगभग २/१० सेकेंड रहता है। अधिक जटिल प्रतिक्रियाओं, जैसे मोटरगाड़ी के ब्रेक पैडल को दबाना, में प्रतिक्रिया-काल लगभग एक सेकेंड रहता है।

तंत्रिका क्रियाओं के अध्ययन द्वारा हम जानते हैं कि प्रतिक्रिया-काल प्रतिक्रिया में निहित अधिकांशतः अंतर्ग्रंथनों की संख्या पर निर्भर करता है। यद्यपि तंत्रिका-आवेगों को तंत्रिका-तंतुओं के साथ भ्रमण करने में समय लगता है, भ्रमण की गति इतनी तीव्र होती है कि प्रतिक्रिया-काल, यदि वे निर्धारक कारक थे, की अपेक्षा बहुत कम होगा यदि वे हैं। अतः, यह संभवतः अंतर्ग्रंथन का विलंब है, जो निर्धारक कारक हैं और जितने अधिक अंतर्ग्रंथन होंगे, उतना ही अधिक विलंब होगा।

## तंत्रिका-तंत्र (Nervous System) :

तंत्रिका-तंत्र को अनेक विधियों से स्पष्ट किया जा सकता है, जिनमें से प्रत्येक एक उपयोगी सूचना प्रस्तुत करती है। एक विधि है—इसका केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र तथा परिधि-तंत्रिका-तंत्र में विभाजन। **केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र** तंत्रिका-तंत्र का वह भाग है, जो खोपड़ी और रीढ़ द्वारा निर्मित अस्थि-पुटिका के मध्य अवस्थित है। तंत्रिका-कोशिकाएँ अथवा उनके भाग इस अस्थि-पुटिका में रहने वाले अन्य सहायक तंतुओं के साथ **केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र को** तथा इस पुटिका से बाहर अवस्थित तंतु **परिधि** तंत्रिका-तंत्र को निर्मित करते हैं। इस अध्याय में आगे तंत्रिका-तंत्र को स्पष्ट करने वाली अन्य विधियों का विवेचन किया गया है।

## परिधि तंत्रिका-तंत्र :

परिधि तंत्रिका-तंत्र संवेदी और चालक तंत्रिका-कोशिकाओं के तंतुओं के भागों से बना है। ये तंतु सदैव पुंजीभूत होते हैं और तंत्रिकाएँ या स्नायु (Nerves) कहलाते हैं। केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र से और वहाँ तक के भ्रमण के लिए ये तंत्रिकाएँ संवेदी और चालक दोनों प्रकार की रहती हैं। खोपड़ी से आने और जाने वाली कुछ तंत्रिकाएँ केवल संवेदी या केवल चालक भी होती हैं। इसके अतिरिक्त सब तंत्रिकाएँ केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र के ठीक बाहर दो भागों में विभाजित हो जाती हैं, १. संवेदी-तंत्रिका तथा २. चालक तंत्रिका (देखिए चित्र १९·८)। उनके विभाजित होने का कारण यह है कि वे तंत्रिका-तंत्र में भिन्न स्थलों से उत्पन्न होती हैं तथा भिन्न स्थलों की ओर जाती हैं।

उक्त विवरण परिधि-तंत्रिका-तंत्र के तंतुओं पर लागू होता है। इस तंत्र के दो मुख्य भाग हैं : १. स्वायत्त (Autonomic) एवं २. कायिक (Somatic)। स्वायत्त का संक्षिप्त विवेचन संवेगों (अध्याय—४) के प्रसंग में किया गया था। यह चालक-तंत्र है जो रक्त-वाहिनियों, हृदय, ग्रंथियों एवं शरीर के अन्य आंतरिक अंगों की सहायता करता है। संवेगदशा में यह गतिवान रहता है। दूसरी ओर कायिक-तंत्र संवेदी और चालक दोनों है। यह विविध ज्ञानेंद्रियों, जिनका वर्णन हम कर चुके हैं,

की एवं खड़े होने, चलने, लिखने एवं सामान्य साधनभूत व्यवहार (Instrumental Behavior) में निहित शरीर की कंकाल-मांसपेशियों की सहायता करता है।

स्वायत्त और कायिक दोनों तंत्रों में कोशिकापिंड एवं तंतु होते हैं। कोशिकापिंडकों को एकत्रित करने पर सामूहिक रूप से गुच्छिका (Ganglia) कहा जाता है। मेरु-स्तंभ के साथ-साथ दो श्रेणियाँ गुच्छिका की रहती हैं, एक **स्वायत गुच्छिका** है जिनमें स्वायत्त-चालक-तंतु रहते हैं और दूसरी में परिधि तंत्र की संवेदी-गुच्छिक रहती है ( देखिए, चित्र १९·८)। कायिक-तंत्र में कोई चालक-गुच्छिका नहीं है; क्योंकि चालक-तंत्रिका तंतुओं के कोशाणु केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र के भीतर पाए जाते हैं।

परिधि स्नायु-तंत्र के अंतर्गत कायिक-तंत्र है, जो संवेदी और चालक दोनों है तथा स्वायत्त तंत्र हैं, जो केवल चालक है।
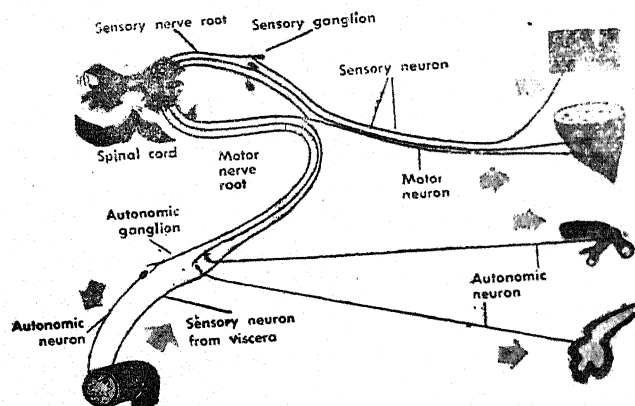
**चित्र १९·८ तंत्रिका-तंत्र के परिपथ। विविध संग्राहकों से आने वाली संवेदी तंत्रिका की शिकाओं के ऊपरी मेरू-रज्जु-गुच्छिका में उसके कोशिकापिंड रहते हैं। चालक-तंत्रिका कोशिकाओं के मूल तंतुओं को कंकाल-मांसपेशियों तथा स्वायत्त गुच्छिका तक भेजते हैं। स्वायत्त-ग्रंथिका से तंतु कोमल मांसपेशियों ( जैसे, आंत एवं रुधिर वाहिनियों) तथा विविध ग्रंथियों (वहिःस्रावि ग्रंथि तथा निःस्रोत ग्रंथि दोनों) में जाते हैं।**

## केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र :

केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र में तंत्रिका-कोशिकाएँ अधिक या कम रूप में केंद्रों एवं परिपथों में विच्छिन्न रहती हैं। परिपथ तंतुओं के समूहों से एवं केंद्रक कोशिका पिंडकों से निर्मित हैं। बहुधा केंद्रों के कोशिका पिंडकों के तंतु छोटे होते हैं, जो

केंद्रक में निकटवर्त्ती तंत्रिका-कोशिकाओं से अंतर्ग्रंथन करते हैं। परिपथों के तंतु भी प्रायः इन केंद्रकों में अन्य तंत्रिका-कोशिकाओं से अंतर्ग्रंथन करते हैं। अतएव, ये केंद्र कोशिका पिंडकों तथा तंतुओं के कुछ मिश्रित रूप हैं। केंद्रकों के कुछ विशिष्ट नाम हैं, जो इस पर आधृत हैं कि वे कहाँ और किस प्रकार अवस्थित एवं व्यवस्थित हैं। कभी-कभी उन्हें न्यूक्ली (Nuclei) कहा जाता है, कुछ अन्य केंद्रकों को कभी **गुच्छिका** एवं कुछ को केवल क्षेत्र (Area)। इन तीनों शब्दों का व्यवहार हम आगे करेंगे, किंतु यह स्मरण रखें कि ये केंद्रकों या कोशिका-पिंडकों के समूहों के संदर्भ में प्रयोग होते हैं, जहाँ प्रायः अंतर्ग्रंथन होता है।

### श्वेत तथा धूसर द्रव्य :

तंत्रिका-तंत्र को खाली आँखों से अथवा सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देख कर केंद्रकों एवं परिपथों को भिन्न करना प्रकृति के संपात ने अपेक्षाकृत सरल बना दिया है। तंत्रिका-कोशिकाओं का सामान्य वर्ण धूसर है। जैसा कि ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, तंत्रिका-तंत्र में अधिकांश तंतुओं के चतुर्दिक माइलिन-पिधान है और इसका वर्ण श्वेत है। दूसरी ओर कोशिका-पिंडकों के चारों ओर यह पिधान नहीं है। फलस्वरूप प्रेक्षक के समक्ष परिपक्ष श्वेत एवं कोशिका-पिंडकों के केंद्रक श्वेत वर्ण में प्रकट होते हैं। इसी हेतु हम परिपथों का उल्लेख श्वेत द्रव्य एवं केंद्रकों का धूसर द्रव्य के रूप में करते हैं।

### मेरु-रज्जु (Spinal Cord) :

केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र के दो मुख्य भाग हैं, मेरु-स्तंभ के भीतर **मेरु-रज्जु** तथा खोपड़ी के भीतर मस्तिष्क। चित्र १९.९ मेरु-रज्जु का अनुप्रस्थ-काट है। ध्यान दें कि इसका मध्य भाग धूसर है और बाह्य भाग श्वेत। अतः मध्य-धूसर भाग तंत्रिका-कोशिकाओं के कोशिका-पिंडकों से निर्मित है, जबकि वाह्य संवाहन परिपथ श्वेत हैं। ध्यान दें, चालक परिपथ, जो आवेगों को मस्तिष्क से नीचे लाते हैं, वे शरीर के सामने वाले भाग में हैं। दूसरी ओर, संवेदी अथवा अधिरोही परिपथ (Ascending Pattiways) अनेक बंडलों के रूप में श्वेत द्रव्य में हैं, अंतःसंवेद के परिपथ शरीर के पिछले भाग को ओर हैं, त्वचा संवेदों के परिपथ दो बंडलों में पार्श्वों में हैं।

मेरु-रज्जु की दो सामान्य क्रियाएँ हैं : मस्तिष्क से आने और मस्तिष्क तक जाने वाले संवाहन परिपथ के रूप में तथा प्रतिवर्त क्रिया को प्रभावित करने वाले अंग के रूप में। शायद ही कोई प्रतिवर्त मस्तिष्क से आने वाले आवेगों से अप्रभावित रहता है, किंतु अनेक ऐसे प्रतिवर्त देखे जा सकते हैं, जो विशुद्ध मेरुदंडीय क्रियाएँ

हैं, जिनमें मेरु-रज्जु मस्तिष्क से असबद्ध रहती है। वस्तुतः विस्तरण, आकुंचन तथा खरोंच प्रतिवर्त, जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है तथा चलते समय एक के बाद एक पद बढ़ाने के मूल प्रतिवर्त मेरुदंडीय स्तर पर व्यवस्थित होते हैं।

मेरु-रज्जु प्रतिवर्त क्रिया को तथा मस्तिष्क से आने और उस तक जाने के संवाहन परिपथ को नियंत्रित करने वाला अंग है।
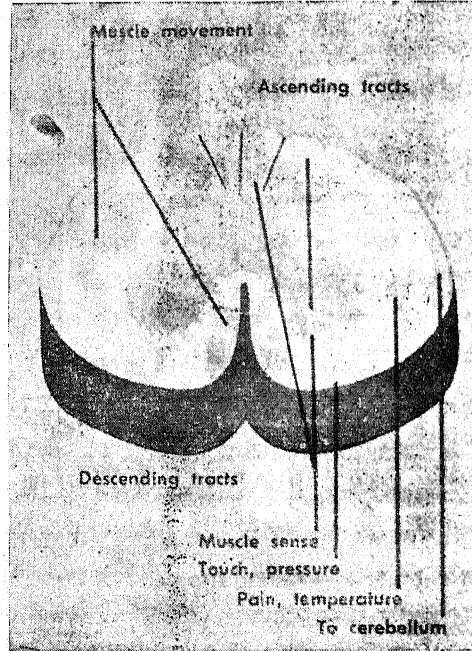
**चित्र १९.९ मेरु-रज्जु का अनुप्रस्थ-काट।**

मस्तिष्क :

तंत्रिका-तंत्र के दो प्रमुख भागों, मेरु-रज्जु तथा मस्तिष्क, में मस्तिष्क अधिक महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि सब जटिल क्रियाओं में इसका केंद्रीय भाग रहता है: जैसे अधिगम, चिंतन, प्रत्यक्षीकरण इत्यादि। इन प्रक्रियाओं में मस्तिष्क का सहयोग अगले अध्ययन का विषय रहेगा। इसे समझने के लिए हमें मस्तिष्क की सामान्य रचना की रूपरेखा बनानी चाहिए। मस्तिष्क के प्रमुख भागों को चित्र १९.१० में चित्रित किया गया है। मुख्य तीन समूहों में इन पर विचार किया जा सकता है: १. पश्चमतिष्क, २. मध्य मस्तिष्क तथा ३. अग्र मस्तिष्क।

१. पश्च मस्तिष्क में अनुमस्तिष्क एवं मज्जका (Medulla) हैं। मज्जका में श्वसन तथा हृदय की गति से जीवाधार केंद्र हैं, किंतु इसमें वे केंद्र भी हैं जो संवेदी आवेगों को ऊपर मध्य मस्तिष्क एवं अग्र मस्तिष्क में भेजते हैं। चालक समन्वय के लिए अनुमस्तिष्क एक केंद्र है, किंतु केवल यही एक केंद्र नहीं है, यह हमारी गति-विधियों को सहज और शुद्ध बनाने में सहायता देता है। प्रयाण एवं गतिबोधक आवेगों का प्रयोग करते हुए यह अंग स्थिति एवं संतुलन बनाए रखने के लिए भी एक अनिवार्य अंग है।

२. मध्य-मस्तिष्क एक सेतु के सदृश है, जो अग्रमस्तिष्क एवं पश्च मस्तिष्क को जोड़ता है। अतएव, इसमें आवेगों को ऊपर और नीचे लाने ले जाने वाले अनेक पथ हैं, किंतु इसमें दृष्टि तथा श्रवण के महत्त्वपूर्ण केंद्र भी हैं और इनका उल्लेख पुनः आगे किया जाएगा।

३. अग्रमस्तिष्क का 'उच्चतम' भाग है। यद्यपि प्राणी-जगत में इसका विकास मंद गति से होता है, किंतु अंत में मनुष्य तथा उच्च जान्तवों में यह मस्तिष्क का सर्वाधिक विकसित भाग बन जाता है। जैसा कि मस्तिष्क के रेखाचित्र ( चित्र-१९·१० ) में देखा जा सकता है कि इसका पिंड मध्य मस्तिष्क या पश्च-मस्तिष्क की अपेक्षा पर्याप्त बड़ा है। जटिल व्यवहार में अग्रमस्तिष्क अनेक रूपों में भाग लेता प्रकट होता है, किंतु हमारे लिए उसके भाग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तीन समूहों में वर्गीकृत किए जा सकते हैं—

प्रमस्ष्तिक प्रांतस्था, चेतक ( Thalmus ) तथा एक समूह के अंतर्गत आने वाली तीन निकट संबंधित संरचनाएँ,—अधश्चेतक, विभाजक भित्ति, वानामी ( एमिग्डाला )। अग्रमस्तिष्क के बाहर, पश्च मस्तिष्क एवं मध्य मस्तिष्क के मध्य से एक और संरचना, उत्प्रेरक जालीदार तंत्र (Reticular Activating System ) जाती है, जिसके महत्त्व की संप्रति खोज हुई है। इन चार क्षेत्रों का विवेचन बारी-बारी से किया जाएगा।

## प्रमस्तिष्क प्रांतस्था :

मानव-मस्तिष्क का फोटोग्राफ, जैसा कि आप चित्र १९-११ में देखते हैं, किसी भी अन्य भाग से अधिक प्रमस्तिष्क प्रांतस्था का चित्र है; क्योंकि प्रांतस्था प्रायः समस्त अग्रमस्तिष्क एवं मध्य-मस्तिष्क को आवृत्त कर देती है। प्रांतस्था, जैसा कि चित्र स्पष्ट करता है, मुड़े हुए कपड़े के टुकड़े के सदृश है जिसमें अनेक ऊँचे शिखर एवं नीची घाटियाँ हैं रचना-विज्ञानविद् इन शिखरों में से एक को **कर्णक** ( Gyrus) कहते हैं, घाटी या दरार को कभी **परिखा** ( Salcus ) और कभी **विदर दरार** (Fissure) कहा जाता है।

अग्रमस्तिष्क मानव एवं उच्च जान्तवों के मस्तिष्क का सर्वाधिक विकसित भाग है।
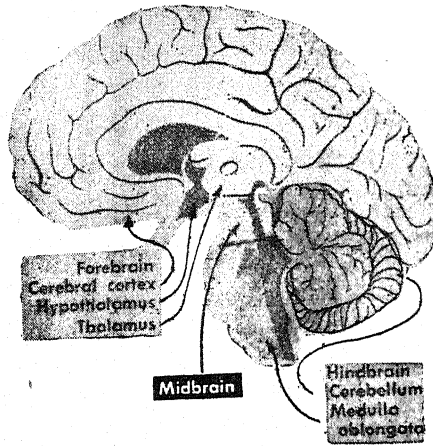
**चित्र १९·१० मानव-मस्तिष्क के प्रमुख भाग।**

दीर्घ परिखाओं या विदर-दरारों का प्रयोग प्रमस्तिष्क-प्रांतस्था को विभाजित करने के लिए किया जा सकता है। मस्तिष्क को दो सममित भागों में विभाजित करने वाली मध्य रेखा के साथ **प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध** नाम **अनुदैधर्य विदर** (Longitudinal Fissure ) है। इस विदर से प्रारंभ होती हुई ऊपर और बीच दोनों गोलार्द्धों के पाश्र्वों में **केंद्रीय परिखा** है। इस विदर के सामने का संपूर्ण भाग **ललाट-पालि** कहलाता है और इस पालि पर मस्तिष्क के अभिव्यंजक भाग के रूप में विचार किया जा सकता है; क्योंकि गतिविधियों और क्रियाओं को नियंत्रित करने वाले चालक-केंद्रक इसी में हैं। केंद्रीय परिखा के पीछे का प्रांतस्था का भाग उसका **संग्रहणशील भाग** कहलाता है; क्योंकि इसमें वे केंद्रक हैं; जिनमें भीतर आने वाले संवेदी आवेग आते हैं। (इन कथनों के कुछ अपवाद भी हैं, किंतु वे प्रमस्तिष्क प्रांतस्था ( Cereтial Cortex) की क्रियाओं को विभाजित करने वाले अच्छे साधन का कार्य करते हैं। ) अंत में प्रत्येक गोलार्द्ध के पार्श्व में विदर ( Crevice ) है, जिसे **पार्श्व-परिखा** ( Lateral Sulcus ) कहते हैं। इसके नीचे और पार्श्व को प्रांतस्था भाग **शंख-पालि** (Temporal Lobe) बनाता है। प्रमस्तिष्क प्रांतस्था की दो और पालियाँ हैं, इस प्रकार कुल चार पालियाँ हैं जिनसे प्रत्येक मुख्य विदर-दरार संबंधित है। ये दो पालियाँ हैं, पार्श्विका पालि (Parietal Lobe) एवं पश्चकपाल पालि (Occipital Lobe )। पार्श्विकापालि केंद्रीय परिखा के एकदम पीछे अवस्थित है तथा

पश्चकपाल पालि प्रांतस्था का वह भाग है, जो खोपड़ी के नीचे पिछले भाग में अवस्थित है। इन विभिन्न पालियों के कार्यों का वर्णन अगले अध्याय में किया जाएगा।

प्रमस्तिष्क प्रांतस्था मुड़े हुए कपड़े के टुकड़े के समान है, जिसमें अनेक ऊँचे शिखर तथा नीची घाटियाँ हैं।
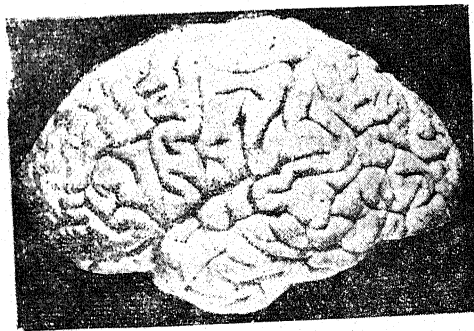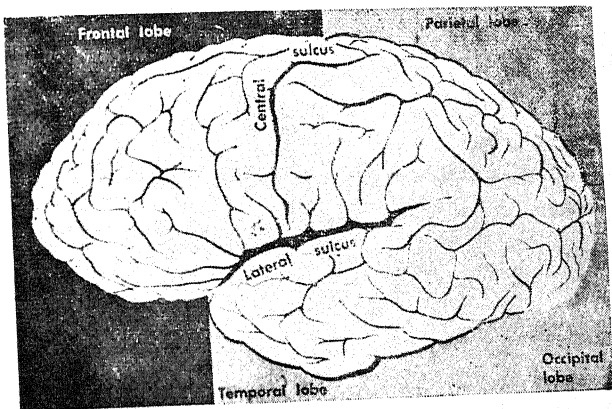
**चित्र १९.११ (ऊपर) प्रमस्तिष्क प्रांतस्था की पालियाँ। (नीचे) प्रमस्तिष्क प्रांतस्था का यथार्थ फोटोग्राफ किया गया है (गार्डनर १९५८)।**

चेतक ( Thalamus ) :

चेतक ( देखिए, चित्र १९.१० ) मध्य मस्तिष्क के बिलकुल ऊपर अवस्थित है तथा प्रांतस्था और अग्र मस्तिष्क की संरचनाओं द्वारा भली-भाँति आच्छादित है। इसे सर्वोत्तम रूप से प्रसारण-स्टेशन कहा जा सकता है, यद्यपि इसके कुछ भाग अन्य कार्य भी करते हैं। मेरु-रज्जु, पश्च-मस्तिष्क और मध्य मस्तिष्क में आने वाले संवेदी-

आवेग अंतर्ग्रंथनों को पार करके, चेतक के केंद्रकों में आने का अपना मार्ग बनाते हैं। एक स्थिति में, दृष्टि में, संवेदी तंत्रिका सीधे चेतक तक जाती है, किंतु बहुधा चेतकीय केंद्रक आवेगों को नीचे से लेकर प्रांतस्था के विविध भागों को—संग्रहणशील प्रांतस्था को प्रसारित करते हैं।

## उत्प्रेरक-जालीदार तंत्र (Reticular Activating System):

RAS का वर्णन यहाँ आवश्यक है; क्योंकि इसकी क्रिया चेतक की क्रिया के सदृश है, (देखिए, चित्र १९.१२)। यह संवेदी प्रसारण-स्टेशन है, जो प्रमस्तिष्क प्रांतस्था की ओर उन्मुख है (लिंडस्ले १९५८)। चेतक प्रमस्तिष्क प्रांतस्था को सीधे सूचना पहुँचाता है और इसका प्रक्षेपण पूर्णतः निर्धारित है। उदाहरणतः चाक्षुष-आवेग चेतक में चाक्षुष-केंद्रक पर आते हैं और प्रांतस्था के चाक्षुष-क्षेत्र के लिए प्रसारित किए जाते हैं। श्रवण एवं अन्य संवेगों के भी इसी प्रकार चेतकीय केंद्रक हैं और प्रांतस्था में उनके संबंधित प्रक्षेपण के क्षेत्र हैं। किंतु, RAS की स्थिति भिन्न है। यह तंत्र अपेक्षाकृत विसरण करने वाला है। यह संवेदी तंत्रों से आवेगों को 'पथ में' प्राप्त करता है जब संवेदी तंतु चेतक की ओर जाते हैं। यह प्रमस्तिष्क-प्रांतस्था को भी आवेग भेजता है, किंतु अधिकांश आवेग प्रांतस्था को भेजता है। यद्यपि अधिकांश चाक्षुष-आवेग अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा प्रमस्तिष्क-प्रांतस्था के चाक्षुष-प्रदेश में ही भेजे जाते हैं, RAS आवेगों को एक दूसरे से पूर्णतः पृथक् नहीं रखते, वरन् यह प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के लिए एक सामान्य प्रेरक-तंत्र है, इसीलिए इसे यह संज्ञा दी गई है।

RAS का वह भाग, जो संवेदी आवेगों को प्रमस्तिष्क प्रांतस्था तक पहुँचाता है, **अधिरोही उत्प्रेरक**—जालीदार-तंत्र कहते हैं (दूसरा भाग, अवरोही-तंत्र, नीचे मेरु-रज्जु की ओर आवेगों को भेजता है।) इसके अतिरिक्त, प्रमस्तिष्क प्रांतस्था भी RAS की ओर पुनः आवेगों को भेजता है। अतएव, RAS तथा प्रमस्तिष्क-प्रांतस्था एक संवृत्त चाप बनाते हैं, जिसमें RAS में जो आवेग हैं, वे प्रमस्तिष्क-प्रांतस्था को उद्दीप्त करते हैं, किंतु प्रांतस्था में जो आवेग हैं, वे भी RAS को उद्दीप्त करते हैं। आगे हम देखेंगे कि निद्रावस्था एवं जागृतावस्था में RAS की क्रिया क्या होती है।

## अधश्चेतक, विभाजक-भित्ति और वातामी (Hypothalamus, Septum and Amygdala):

मस्तिष्क का चतुर्थ प्रदेश—अग्र-मस्तिष्क-विशेष महत्त्वपूर्ण है, वह अनेक परि-पथों और केंद्रकों का, जिनके पृथक्-पृथक् पारिभाषिक नाम हैं, एक जटिल तंत्र है। अपने विवरण को अनावश्यक जटिल न बनाने के लिए हम इस तंत्र की व्यवहार में,

विशेषतः संवेग एवं अभिप्रेरित व्यवहार में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण केवल जिन तीन संरचनाओं का विवेचन करेंगे, वे हैं अधश्चेतक, विभाजक-भित्ति और वातामी (ब्रेडी एवं बनैल, १९६०)। अधश्चेतक के सामान्य आकार और स्थिति को चित्र १९.१० में देखा जा सकता है। जैसा कि इसके नाम में ही निहित है कि यह चेतक के नीचे, खोपड़ी के तले के एक कोने में इस स्थिति में अवस्थित है कि एक शल्य-चिकित्सक इसके निकट, मुख के ऊपरी भाग में से उसे पार करता हुआ, सरलता से पहुँच सकता है। इसका अपेक्षाकृत लघु आकार, मूंगफली से शायद ही कुछ बड़ा हो, पर ध्यान दें; क्योंकि इसकी अनेक महत्त्वपूर्ण बड़ी क्रियाओं की तुलना में यह विचारणीय है।

जाली-तंत्र प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के लिए एक सामान्य उत्प्रेरक तंत्र है
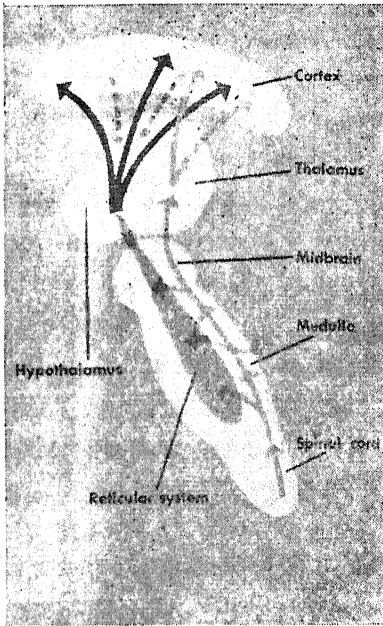
चित्र १९·१२ उत्प्रेरक जालीदार-तंत्र का आयोजन-आरेख। तंत्र (काला भाग) में एक अप्रत्यक्ष संवेदी परिपथ (गहरे काले शर) है, जो प्रांतस्था के अनेक प्रदेशों में जाता है और प्रत्यक्ष संवेदी परिपथ (हल्के काले शर) से समपार्श्विकों (Collaterals) को ग्रहण करता है। परिपथ पीछे की ओर भी (विच्छिन्न शर) प्रांतस्था से जाली-तंत्र की ओर लौटते हैं और चाप बनाते हैं।

अधश्चेतक का विभाजक-भित्ति और वातामी से जो संबंध है, वह चित्र १९.१३ में प्रदर्शित किया गया है। विभाजक भित्ति, जिसका आकार भी लघु है, अधश्चेतक के मध्य-क्षेत्र के सामने एवं ऊपरी भाग में अवस्थित है। वातामी (अथवा वातामीय केंद्रक) अधश्चेतक के पीछे पार्श्व की ओर स्थित है। वस्तुतः ये तीन प्रारूप,

मस्तिष्क के अन्य प्रारूपों के ही सदृश्य समस्थित रूप से युग्मित हैं। विभाजक भित्ति और अधश्चेतक मध्यरेखा के साथ अवस्थित हैं जिससे कि उनके दोनों पार्श्व निकट-स्थित हैं। वातामी मध्यरेखीय प्रारूप नहीं है, अतएव वातामीय केंद्रक दो हैं। यह तथ्य, कि सब अंगों या प्रारूपों के दो भाग हैं, विस्मृत नहीं करना चाहिए; क्योंकि मध्यरेखीय प्रारूपों में भी विविध केंद्रक सदैव युग्मों में पाए जाते हैं।

इन प्रारूपों के मध्य रहने वाले सूक्ष्म संबंध अब तक अज्ञात हैं। वे परस्पर प्रत्यक्ष एवं घुमा-फिरा कर दोनों रूपों में संबंधित हैं, किंतु विभाजक भित्ति और वातामी—दोनों अधश्चेतक में तंतुओं को भेजते प्रतीत होते हैं। विभाजक भित्ति से आने वाले तंतु निरोधात्मक होते हैं, जब कि वातामी से आने वाले उत्तेजनात्मक; दूसरे शब्दों में, विभाजक भित्ति की क्रिया अधश्चेतक को दमित करती है, जबकि वातामी की क्रिया स्पष्टतः उसे उत्तेजित करती है।
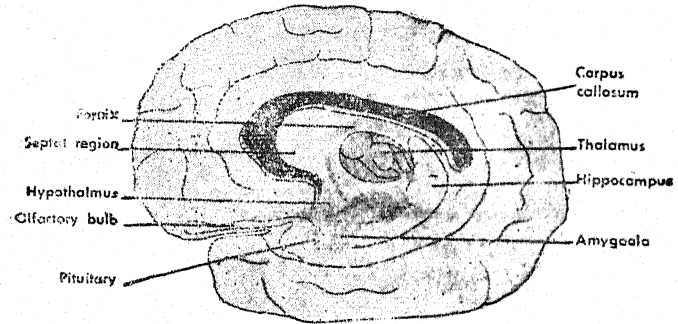
**चित्र १९·१३ अंग-तंत्र (Limbic system) के कुछ भाग। विभाजक प्रदेश, वाताभी एवं अधश्चेतक पर विशेष ध्यान दें (ब्रैडी एवं बनैल के अनुसार, १९६०)।**

## अध्ययन की विधियाँ :

ऊपर उल्लिखित परिच्छेद व्यवहार में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंगों तथा क्रियाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है। अतिरिक्त विस्तार आवश्यकतानुसार अगले अध्याय में दिया जाएगा।

मनो-शरीर-वैज्ञानिक की सामान्य समस्या शरीर के अंगों और क्रियाओं को व्यवहार की घटनाओं से सहसंबंधित करने की है। यह करने के लिए उसे साधारणतः अध्ययन की विधियों के मिश्रण का प्रयोग करना होगा, शरीर-रचनाविद् एवं शरीर-क्रिया वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों की विधियों का उपयोग करना होगा। मनो-

वैज्ञानिक की विधियों का वर्णन इस ग्रंथ में सर्वत्र विस्तार से किया गया है, किंतु अधिक जीव-वैज्ञानिक विधियों का वर्णन नहीं हुआ है। अतएव, अगले अध्याय में जो लिखा जाएगा, उसे समझने के लिए यह आवश्यक है कि उससे संबंधित संगत विषयों का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाए।

### तंत्रिक-रचना-वैज्ञानिक विधियाँ ( Neuranatomical Methods ) :

तंत्रिका-तंत्र की संरचना के अध्ययनार्थ-तंत्रिक-रचना-वैज्ञानिक को सर्वप्रथम तंत्रिका-तंत्र के तंतु-परक परिपथों को केंद्रकों, ( न्यूक्ली और गुच्छिका ) जिनमें कोशिका पिंड से भिन्न करने की विधियों को खोजना होगा और तब केंद्रकों तथा परिपथों के विविध संबंधों की खोज करनी होगी। इसके उपरांत ही वह तंत्रिका-तंत्र के तंतुमय और तंत्रिकामय चित्र को समझने का प्रयास कर सकता है।

ऐसे रेखाचित्र के सामान्य लक्षणों को, एक बार तंत्रिका-तंत्र को दृष्टि के समक्ष प्रस्तुत करने पर, खुली आँखों से भी देखा जा सकता है; क्योंकि जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, तंत्रिका-तंत्र के अधिकांश तंतु श्वेत माइलिन-पिधान में आवृत्त हैं और माइलिन से अनावृत कोशिका-पिंडक धूसर हैं, यह मोटे तौर पर केवल उनके वर्णों को देखकर बताया जा सकता है कि परिपथ क्या है और केंद्रक क्या है। इस विधि द्वारा तंत्रिकाओं के मध्य संबंधों के विषय में बहुत कम अथवा बिलकुल नहीं बताया जा सकता और न ही केंद्रकों के सूक्ष्म कणों के संयुजन तथा परिपथों के उप-भागों को स्पष्ट किया जा सकता है। इसके लिए अन्य प्रणालियों की आव-श्यकता है।

एक विधि यह है कि तंत्रिका-तंत्र को **रंजित** ( Stain ) करके तब सूक्ष्मदर्शी-यंत्र से उसका विस्तृत अध्ययन किया जाए। इस प्रयोजन के लिए विविध प्रकार के रंग उपलब्ध हैं। कुछ रंग केवल कोशिका-पिंडकों में कणिकाओं ( Granules ) द्वारा ही ग्रहण किए जाते हैं और इस प्रकार तंतुओं को ही प्रभावित करते हैं, प्रायः तंतुओं के माइलिन-पिधान को रंजित करते हैं तथा व्यक्ति को न केवल तंतुओं से कोशिका-पिंडकों को भिन्न करने की योग्यता देते हैं, वरन् तंतुओं के परिपथों को भी प्रारंभ से अंत तक स्पष्ट करने की क्षमता देते हैं। इन रंगों की सहायता से तंत्रिका-तंत्र के विषय में बहुत ज्ञान अधिगत किया गया है।

रंग-विधि प्रायः **अपकर्ष विधि** ( Degeneration ) से संबद्ध रहती है। जब एक तंतु काटा जाता है, तो यह सदैव पुनः अपनी कोशिका में अपकर्षित होता है। यह कम-से-कम थोड़ी देर के लिए तंतु-परिपथ को मिटा देता है। यदि कोई तंतु को कहीं से उसकी लंबाई में काटे, तो वह तंतुओं के अथवा उनके कोशिका-पिंडकों के

अपकर्ष के स्वरूप को देख सकता है। केंद्रीय-तंत्रिका-तंत्र की अधिकांश तंत्रिका-कोशिकाओं के संबंध में यह सत्य है कि तंतु के काटने से जो अपकर्ष होता है, उसका प्रभाव संपूर्ण तंत्रिका-कोशिका पर पड़ता है और फलतः उसका अंत हो जाना है। अतएव, परिपथ या उसके भाग को काट कर और यह निर्धारित करके कि कौन से कोशिका—पिंड अपकर्ष करते तथा मर जाते हैं, परिपथों और केंद्रकों के संबंध को स्थापित किया जा सकता है ( देखिए, चित्र—१९·१४ )। परिधि-तंत्रिका कोशिकाओं का इस प्रकार अंत नहीं होता, उपयुक्त सुविधा देने पर वे पुनर्उत्पन्न हो सकती हैं। परिधि एवं केंद्रीय कोशिका-तंत्रिकाओं के इस अंतर को अभी पूर्णतः नहीं समझा गया हैं, किंतु तंत्रिका-तंत्र के अध्ययन में यह सहायक है।

मनो-शरीर-क्रिया वैज्ञानिक तंत्रिका-तंत्र की विविध क्रियाओं के अध्ययनार्थ प्रायः इसी के सदृश विधि, **उन्मूलन-विधि**, का प्रयोग करते हैं। उदाहरणतः, वह प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के किसी भाग को, चेतक के किसी केंद्रक को अथवा केवल किसी तंत्रिका या परिपथ को निकाल देते हैं, इसके बाद एक ही कार्य से संबंधित जंतु की आपरेशन (शल्य) से पूर्व एवं पश्चात् की क्रियाओं को, जैसे चाक्षुष-विभेद, परिमापित करते हैं। जिन परिणामों को यह उपलब्ध करता है, वे प्रायः इस पर निर्भर करते हैं कि वह प्रसंग-गत क्षेत्र का उन्मूलन कितनी अच्छी तरह से करने में सफल रहा है। बहुधा वह आपरेशन करते समय इसको निर्धारित नहीं कर सकता है। अतः, प्रयोग के अंत में यह आवश्यक है कि जंतु की बलि दे दी जाए और तंत्रिका-तंत्र का सूक्ष्म-दर्शीय काट तैयार किया जाए, उसे रंगों से रंजित करके उस क्षेत्र को भली-भाँति मापित किया जाए, जिसका उन्मूलन किया गया है।

तंत्रिका-तंत्र के भागों के उन्मूलन अथवा नष्ट करने की अनेक विधियाँ विकसित हो चुकी हैं। प्राचीनतम एवं इन भागों तक सरलता से पहुँचने वाली अपेक्षाकृत सर्वाधिक प्रयुक्त विधि शल्य औजारों द्वारा सरल अपच्छेदन ( काट देना ) की है। यदि कोई प्रदेश तंत्रिका-तंत्र में बहुत गहरा हो और अपेक्षाकृत छोटा हो, तो यह विधि उपयोगी नहीं होगी। ऐसी स्थिति में विद्युत् विश्लेषी क्षत-स्थलों ( **Electrolytic Lesion** ) (क्षतों) का प्रायः प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार क्षत-स्थल बनाने के लिए मनोशरीर-क्रिया वैज्ञानिक एक बारीक तार या सुई को अपेक्षित स्थल की नोक में नहीं, वरन् उसके पार्श्व में पृथग्न्यस्व ( इंसुलेट करके ) रूप से घुसाता है और उस सुई में से विद्युत् धारा को उसमें तथा उसकी नोक को घेरने वाले तंतुओं में पहुँचाता है। यदि विद्युत्-धारा पर्याप्त तीव्र एवं दीर्घ काल तक रहने वाली हो, तो सुई की नोक के चारों ओर जो तंतु रहते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार से

निर्मित क्षत-स्थल प्रयोग की गई सुई के आकार, विद्युत्-धारा की मात्रा और उसके काल पर निर्भर करता है। सुई इतनी बारीक होती है कि उसके घुसने के परिपथ में प्राय: तंतुओं की कोई महत्वपूर्ण मात्रा नष्ट नहीं होती।

संपूर्ण तंत्रिका-कोशिका के अपकर्ष में तंतु की क्षति प्रदर्शित है।
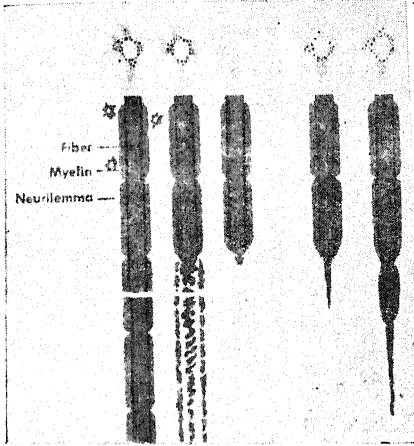
**चित्र १९·१४ तंत्रिका-तंतु के अपकर्ष और उसके बाद होने वाली पुनरोत्पत्ति को प्रस्तुत किया गया है तथा इसके कोशिका-पिंडक को तंत्रिका-तंतु के अनुरूप काट दिया है।**

## विद्युतीय अभिलेखन :

जैसा कि हम देख चुके हैं कि तांत्रिक आवेगों का तंत्रिका-तंतुओं में अभिलेखन विद्युद्ग्रों द्वारा तथा उपयुक्त विस्तारण तथा अभिलेखन-प्रणाली द्वारा किया जा सकता है। बड़े परिमाण के विक्षोभों का अभिलेखन भी संभव है। ये विक्षोभ **विभव-परिवर्तन** (Potential Changes) अथवा 'विभव' कहलाते हैं। इनमें अनेक तंत्रिका-आवेग ऋण-विभव ( Spike Potentials ) समाहित होते हैं, जो एक ही काल और स्थान में एक या अनेक तरंगों में क्रियाशील हो सकते हैं। इनमें तंत्रिका-कोशिकाओं के बड़े समूहों के विराम-विभवों में अपेक्षाकृत मंद लयात्मक परिवर्तन भी रहते हैं। प्रत्येक स्थिति में तंत्रिका-तंत्र की क्रियाओं से संबंधित उपयोगी सूचनाएँ उपलब्ध करने के लिए विभवों के अभिलेखन का उपयोग किया गया है। सामान्यत: अभिलेखन की सूक्ष्मता के तीन स्तर अथवा सोपान स्पष्टत: भिन्न किए जा सकते हैं।

## इलेक्ट्रोएंसेफेलोग्राम :

अभिलेखन की स्थूलतम विधि एवं जो जंतु या मनुष्य पर अविकल रूप से सरलता से की जा सकती है, इलेक्ट्रोएंसेफेलोग्राम ( EEG ) कहलाती है। EEG

उपलब्ध करने के लिए अनुसंधानकर्त्ता दो विद्युद्ग्रों को दृढ़ता से शिरोवल्क पर लगाता है, विद्युद्ग्रों के संकेतों को वर्धित करके टेप पर अभिलिखित किया जाता है, विद्युद्ग्रों की स्थिति कुछ अंतर उपस्थित करती है; क्योंकि EEG में अभिलिखित कुछ विभव मस्तिष्क के कुछ भागों में कुछ विभवों की अपेक्षा अधिक तीव्र हैं। किंतु उपयुक्त स्थिति में रखने पर, स्थूल परिवर्तन, जो मस्तिष्क-तरंगें कहलाते हैं, अभिलिखित हो सकते हैं। इन तरंगों की आवृत्ति और आकार परिवर्तित होते हैं, जैसा कि हम अगले अध्याय में देखेंगे, अनेक अवस्थाओं से तथा कुछ सीमा तक प्रयोग-पात्र क्या करता है, उससे इसे सह-संबंधित किया जा सकता है ( देखिए, चित्र २०.५, अध्याय—२० )

## क्रिया-विभव (Action Potential ) :

अभिलेखन की अधिक परिष्कृत विधि यह है कि विद्युद्ग्रों को, तंत्रिका-तंत्र के जिस भाग का अध्ययन किया जाए उस पर या उसमें सीधे, लगाया जाए। ऐसी स्थिति में विद्युद्ग्र प्रायः अध्ययन के भाग में लगाया जाता है और दूसरा विद्युद्ग्र शरीर के किसी तटस्थ भाग में। प्रथम या क्रियाशील विद्युद्ग्र अपनी अवस्थिति के क्षेत्र में कोई विभवात्मक परिवर्तन चुनता है। जो तरंग अभिलिखित होती है, वह प्रायः जटिल होती है, उसमें मंद विभव एवं तंत्रिका आवेगों के पिंड दोनों ही रहते हैं। इसका प्रयोग क्रियाशील विद्युद्ग्र में क्रिया की उपस्थिति के संकेत के रूप में भी किया जा सकता है।

इस प्रकार का विद्युतीय अभिलेखन तंत्रिका-तंत्र के 'मानकरण' के लिए उपयोगी है। उदाहरणतः विद्युद्ग्र को प्रमस्तिष्क में लगाकर विभिन्न प्रकार के स्फुरणों को ध्वनित किया जा सकता है। यह निर्धारित करके कि किस स्थल का विद्युद्ग्र स्फुरण की ध्वनि की अनुक्रिया में विद्युतीय क्रिया प्रदर्शित करता है, प्रांतस्था के श्रवण प्रदेश की सीमाओं को निर्धारित किया जा सकता है। वस्तुतः यह विधि प्रांतस्था के प्रत्येक भिन्न स्फुरण पर सर्वाधिक अनुक्रियाशील होने वाले बिंदुओं द्वारा मानकरण तक परिष्कृत की गई है।

तंत्रिका-तंत्र में अनुक्रिया के क्षेत्रों के मान-चित्रण में विद्युतीय अभिलेखन का उपयोग, प्रायः विशुद्ध तंत्रिका-शरीर-रचना वैज्ञानिक विधियों द्वारा प्राप्त परिणामों का समर्थन करने अथवा उन्हें शुद्ध करने में किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह बहुधा उन क्षेत्रों एवं परिपथों को भी स्पष्ट करता है, जो तंत्रिका शरीर-रचना वैज्ञानिक विधियों द्वारा छूट जाते हैं। आज हमारा मस्तिष्क के संवेदी एवं चालक

प्रदेशों से संबंधित ज्ञान पर्याप्त मात्रा में विद्युतीय अभिलेखन विधि पर निर्भर करता है।

## सूक्ष्म-विद्युद्ग्र ( Microelectrodes ) :

विद्युतीय अभिलेखन विधियों में सर्वाधिक विकसित प्रणाली 'सूक्ष्म विद्युद्ग्र प्रविधि' है। यह ऐसे विद्युद्ग्र का प्रयोग करती है, जिसकी नोक इतनी बारीक होती है कि वह एक कोशिका-पिंड से बड़ी नहीं होती। अतएव, जब यह तंत्रिका-तंत्र में प्रवेश किया जाता है, यह अनुसंधानकर्त्ता की एक तंत्रिका-कोशिका से ऋण-विभव को 'देखने' और अभिलेखन करने में सहायता करता है। बहुधा अभिलेखन में एक से अधिक तंत्रिका-कोशिका ऋण-विभव का अंशदान करती है, किंतु विद्युद्ग्र के जो तंत्रिका-कोशिका निकटतम रहती है, वह सर्वाधिक विभव देती है,। 'संपूर्ण-अथवा बिलकुल-नही' नियम के अनुसार प्रयोगकर्त्ता विभिन्न आकारों के ऋणों ( Spikes ) को स्पष्ट करता है। वह जानता है कि उन्हें पृथक्-पृथक् तंत्रिका-कोशिकाओं से आना चाहिए। इस विधि से आवेगों के अभिलेखन द्वारा किसी परिचित उद्दीपन को जंतु की ज्ञानेंद्रिय अथवा तंत्रिका-तंत्र के विशिष्ट-क्षेत्र में प्रस्तुत करते हुए, तंत्रिका-तंत्र के अति सूक्ष्मकण का अध्ययन किया जा सकता है तथा यह भी निर्धारित किया जा सकता है कि किसी विशेष प्रकार के उद्दीपन के प्रति कौन सी तंत्रिका-कोशिकाएँ अनुक्रिया करती हैं। संवेदी प्रक्रम के अध्ययन में यह विधि सर्वाधिक उपयोगी है। इसके प्रयोग के उदाहरण अध्याय—११ में दिए गए हैं।

## उद्दीपन विधियाँ ( Stimulation Methods ) :

विद्युद्ग्रों का उपयोग तंत्रिका-तंतुओं को उद्दीप्त करने में तथा उनके अभिलेखन दोनों में हो सकता है। वस्तुत: वही विद्युद्ग्र भिन्न कालों में कभी उद्दीपन और कभी आलेखन दोनों में प्रयोग किए जा सकते हैं। बहुधा एक युग्म का प्रयोग एक स्थान पर उद्दीपनार्थ किया जाता है और दूसरी ओर, दूसरा युग्म अभिलेखनार्थ प्रयोग होता है। इस प्रकार तंत्रिका-तंत्र में एक बिंदु से दूसरे बिंदु तक क्रिया का अनुरेखण संभव होता है। प्रयुक्त उद्दीपन प्राय: विशेषरूप से अभिकल्पित उद्दीपन यंत्र से उत्पन्न एक विद्युतीय स्पंदन अथवा स्पंदनों की शृंखला होता है।

विद्युतीय उद्दीपन विधि का संभवत: प्राचीनतम प्रयोग प्रांतस्था के तथाकथित 'चालक-प्रदेशों' को उत्तेजित करने का है (देखिए, अगले अध्याय में, चित्र—२०.२ ) वस्तुत: इसी विधि से सर्वप्रथम इन क्षेत्रों का मानकरण किया गया था। तटस्थ अथवा निष्क्रिय विद्युद्ग्र खोपड़ी से या शरीर से संबद्ध किए जाते हैं और सक्रिय विद्युद्ग्र प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के खुले भाग को स्पर्श करता है। प्रांतस्था के

चालक-प्रदेश (Motor-area) का उद्दीपन व्यक्ति को विविध प्रकार की गतिविधियों के लिए उत्तेजित करता है; क्योंकि एक परिपथ है, जो चालक-प्रांतस्था ( मोटर कोर्टेक्स ) से प्रारंभ होकर नीचे की ओर शरीर की मांसपेशियों तक जाता है। प्रांतस्था के एक बिंदु के उद्दीप्त होने से शरीर के किसी विशेष भाग में एक गति होती है और दूसरे बिंदु के उद्दीप्त होने पर किसी दूसरे भाग में गति होती है। विविध बिंदुओं पर उद्दीपन द्वारा होने वाली गतियों पर ध्यान रख कर शरीर के विविध भागों का, जो चालक-प्रांतस्था द्वारा नियंत्रित होते हैं, मानचित्र तैयार किया जा सकता है (चित्र २०-२ )।

संप्रति इस विधि का प्रयोग चेतन मनुष्यों पर प्रांतस्था के संवेदन और स्मरण से संबंधित क्षेत्रों के अनुसंधानार्थ किया गया है (पेनफील्ड और रसमुसेन, १९५०)। यह उस समय किया जाता है, जब रोगी का किसी अन्य कारण से आपरेशन हो रहा हो, बहुधा मस्तिष्क की रसौली (ट्यूमर) का आपरेशन खोपड़ी को स्थानीय संवेदन-हरण द्वारा खोला जाता है, जिससे कि रोगी दर्द अनुभव नहीं करता, पर साथ ही पूर्णतः चेतन रहता है। विद्युद्ग्रों का प्रयोग तब प्रांतस्था के विविध भागों को उद्दीप्त करने के लिए किया जाता है जब कि रोगी अपने अनुभवों को व्यक्त करता जाता है। यह विधि प्रमस्तिष्क प्रांतस्था की क्रियाओं के संबंध में पर्याप्त सूचनाएँ देती हैं। यह शल्य-चिकित्सक की, संवेदी अनुभवों तथा स्मरण से संबंधित क्षेत्रों की न्यूनतम हानि द्वारा रसौली को पृथक् करने में भी सहायता करती है।

विद्युद्ग्रों के स्थायी रूप से निरोपण की विधि भी विकसित हो गई है। एक बारीक तार या सुई, जैसी अभिलेखन के लिये प्रयोग की गई थी, मस्तिष्क में निवेशित की जाती है। इसे भली-भाँति एक गर्त (साकेट) या जोड़ द्वारा त्वचा के बाहर खोपड़ी से संबद्ध किया जाता है। इसके उपरांत प्रयोगकर्ता जब विद्युद्ग्र की नोक के निकटवर्ती स्थल को उद्दीप्त करना चाहता है, तो उसे केवल इतना ही करना होगा कि संयोजक को उद्दीपक से लगा दे (द्रष्टव्य, चित्र १९.१५)। इस विधि का प्रयोग अब साधारणतः मस्तिष्क के गहरे भागों की क्रियाओं के अध्ययनार्थ किया जाता है। विद्युद्ग्र द्वारा लगाया गया उद्दीपन प्रयोक्ता या प्रयोग-पात्र में से किसी के द्वारा भी नियंत्रित किया जा सकता है। कुछ भागों में हम देखेंगे, विद्युतीय उद्दीपन निश्चित रूप से प्रयोग-पात्र (मानव या जंतु के लिए 'सुखद' होता है और वह स्वेच्छा से स्विच को दबाता है, जिससे वह स्वयं को उद्दीप्त कर सके ( ओल्ड्स, १९५६ )।

यद्यपि स्थानीय उद्दीपन की विधि प्रायः विद्युतीय उद्दीपन का प्रयोग करती है, इसका प्रयोग रासायनिक उद्दीपनों द्वारा भी हो सकता है। उस दशा में विद्युद्ग्र

के स्थान पर पिपेट निवेशित की जाती है। इस नलिका द्वारा प्रयोक्ता घोल के रूप में लघुमात्रा में रासायनिक तत्त्वों को पहुँचाता है और भिन्न तत्त्वों के प्रति विशेष भाग की अनुक्रिया का अध्ययन करता है। इस विधि का प्रयोग अभी विस्तृत रूप से नहीं हुआ है किंतु पिपासा-अभिप्रेरण-प्रक्रम के प्रयोगों में उपयोगी रूप से इसका प्रयोग किया गया है।

स्थायी रूप से निरोपित विद्युद्‌ग्र, मस्तिष्क को इच्छानुसार उद्दीप्त किया जा सकता है।
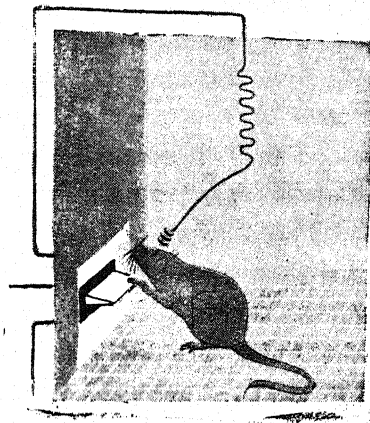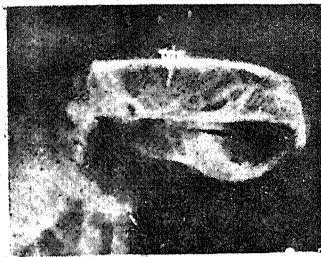
**चित्र १९.१५ मस्तिष्क में विद्युद्‌ग्र निरोपण की विधि, एवं उसे स्वउद्दीपन परिपथ द्वारा प्रयोग करने का चित्र, एक एक्स-रे चित्र, लगे हुए विद्युद्‌ग्र को प्रदर्शित करता है। (ओल्ड्स, १९५६, मिचिगन विश्वविद्यालय)।**

## हार्मोनगत एवं जीव रासायनिक (Harmonal and Biochemical) विधियाँ :

व्यवहार एवं उससे संबंधित क्रियाओं पर विविध हार्मोनों तथा रासायनिक तत्त्वों के प्रभावों का अध्ययन करने वाली विभिन्न प्रकार की अनेक विधियाँ हैं और उनका वर्गीकरण सरलता से नहीं हुआ है। कुछ उल्लेखनीय विधियों के संबंध में संक्षेप में इस परिच्छेद में लिखा गया है।

### ग्रंथि को निकालना :

अंतःस्रावी ग्रंथि की क्रिया को निर्धारित करने की प्राचीनतम विधि है—शल्य-चिकित्सा द्वारा ग्रंथि को निकालना। कुछ परिमापनों को चुन कर प्राणी पर ग्रंथि के निकालने के पूर्व और उपरांत उसके निकालने के प्रभाव को निर्धारित किया जा सकता है। इनमें से कुछ परिमापन व्यवहारी भी हो सकते हैं। उदाहरणतः

यौन-व्यवहार में नारी और पुरुष की लिंग-ग्रंथियों (गोनदों) का अध्ययन, यौन-क्रिया के किसी परिमापन द्वारा जैसे संगणना की संख्या अथवा यौन-क्रिया के विषयों की संख्या द्वारा जो उस काल में प्रदर्शित की गई है, किया गया है।

## प्रतिस्थापन चिकित्सा ( Replacement Therapy ) :

वह विधि जो ग्रंथि के निकालने की पूरक है तथा जो एक प्रयोक्ता को ग्रंथि के निकालने के कुछ परिणामों के परीक्षण की सुविधा देती है, प्रतिस्थापन चिकित्सा है। एक ग्रंथि के निकाल देने के उपरांत, ग्रंथि के हार्मोनों का 'प्रतिस्थापन' प्रायः उसे सीधे रक्तधारा में इंजेक्ट करके किया जाता है। यह विधि जहाँ ग्रंथि अनेक विभिन्न हार्मोनों को स्रावित करती है, जैसा कि अनेक ग्रंथियाँ करती हैं, विशेष रूप से उपयोगी है; क्योंकि यह हमें भिन्न हार्मोनों के प्रभावों को पृथक् करने की सुविधा देती है। यह इसलिए भी सुविधाजनक है; क्योंकि यह प्रतिवर्ती है, इसमें केवल हार्मोनों को सुई द्वारा निवेशित करके या न निवेशित करके उसी जंतु पर किसी विशेष हार्मोन के प्रयोग या बिना प्रयोग की स्थिति में बार-बार तुलना की जा सकती है।

## सारांश

१. आंतरिक पर्यावरण के अंतर्गत रक्त एवं ऊत्तकों की रासायनिक स्थितियाँ आती हैं, जो तंत्रिक-क्रियाओं को प्रभावित करती हैं। ये हार्मोनों, एंजाइमों तथा विटामिनों द्वारा नियंत्रित होती हैं।

२. हार्मोन अंतःस्रावी ग्रंथियों द्वारा, जैसे श्लेष्मा-ग्रंथि, अधिवृक्क, गलग्रंथि, उप-गलग्रंथि, अग्न्याशय ग्रथि तथा जनन-ग्रंथियाँ उत्पन्न होते हैं। इन ग्रंथियों के हार्मोन इन तत्त्वों के स्तर को नियंत्रित रखते हैं, जैसे जल, शर्करा, लवण, केल्शियम, फास्फोरस एवं रक्त के अन्य खनिज।

३. हार्मोन संभवतः अपना कार्य एंजाइमों के स्राव को, जो शरीर में निर्मित उत्प्रेरक हैं और विशेष रासायनिक प्रतिक्रियाओं की सहायता करते हैं अथवा बाधा पहुँचाते हैं, नियंत्रित रख कर करते हैं।

४. इस क्रिया में एंजाइमों के सहायक विटामिन हैं, प्राणी विटामिनों को, विटामिनयुक्त भोजन खा कर प्राप्त करता है। आंतरिक पर्यावरण को व्यवस्थित रखने के लिए हार्मोनों, एंजाइमों तथा विटामिनों की अपेक्षाकृत लघु मात्रा ही पर्याप्त होती है।

५. तंत्रिका-तंत्र की आधारभूत इकाई तंत्रिका-कोशिका है। यह कोशिका-पिंड—एक अक्षतंतु तथा एक या अधिक अभिवाही प्रवर्ध तंतुओं द्वारा निर्मित है, इन दोनों तंतुओं को एक साथ तंत्रिका-तंतु कहा जाता है।

६. तंत्रिका तंतु के उद्दीपन द्वारा तंत्रिका-आवेग उत्पन्न होता है, जो 'सपूर्ण-अथवा बिलकुल नहीं' नियम का पालन करता है। यह पूर्ण आकार को प्राप्त करता है अथवा बिलकुल विकसित नहीं होता।

७. एक तंतु के अंत तथा दूसरे के प्रारंभ में रिक्त-स्थान रहता है, जिसे अंतर्ग्रंथन कहते हैं। इस स्थल पर पुराने आवेग के समाप्त होने पर दूसरा आवेग उद्दीप्त होता है।

८. तंत्रिका-कोशिकाएँ विभिन्न प्रकार के अनेक अंतर्ग्रंथन संयोजक बनाती हैं। एक है प्रतिवर्त-चाप, जिसके अंतर्गत संवेदी तंत्रिका-कोशिका, सहचारी तंत्रिका-कोशिका एवं प्रेरक तंत्रिका-कोशिका रहती हैं। आकुंचन एवं विस्तरण प्रतिवर्तों में प्रतिवर्त-चाप निहित रहता है।

९. अधिकांश प्रतिवर्तों में मांसपेशियाँ विरोधी युग्मों के रूप में व्यवस्थित रहती हैं, ताकि जब एक विरोधी वर्ग आकुंचित हो, तो दूसरा विश्राम करता है। यह विश्राम मांसपेशियों के आकुंचन द्वारा संवेदी तंतुओं से उत्पन्न होने वाले आवेगों की पारस्परिक अंतर्बाधा द्वारा होता है।

१०. एक चालक-इकाई में एक अक्षतंतु एवं अनेक पेशीय तंतु होते हैं, जिन्हें यह उत्तेजित ( सतंत्रिक ) करती है। सतंत्रिक अनुपात, जैसे अक्षतंतु द्वारा सतंत्रिक पेशीय तंतुओं की संख्या, मांसपेशियों की गतिविधियों की सूक्ष्मता या स्थूलता को नियंत्रित करती है।

११. तंत्रिका-तंत्र के दो मुख्य भाग हैं (a) परिधि तंत्रिका केंद्र, जिसके अंतर्गत स्वायत्त और कायिक केंद्र हैं तथा (b) केंद्रीय तंत्रिका केंद्र, जिसके अंतर्गत खोपड़ी और मेरु-स्तंभ के अस्थिमय विवर हैं।

१२. परिधि तंत्रिका-तंत्र आवेगों को केंद्रीय तंत्रिका केंद्र से लाता है और ले जाता है। केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र में मस्तिष्क तथा मेरु-रज्जु में केंद्रक और परिपथ हैं। मेरु-रज्जु का कार्य है मस्तिष्क से आवेगों को लाना और ले जाना किंतु यह मेरु प्रतिवर्तों के लिए भी उत्तरदायी है।

१३. मस्तिष्क के तीन मुख्य भाग हैं—अग्र मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क एवं पश्चमस्तिष्क। इन भागों में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं—प्रमस्तिष्क प्रांतस्था, चेतक, जालीदार उत्प्रेरित केंद्र, केंद्रकों का समूह जिसे अधश्चेतक कहा जाता है तथा विभाजक भित्ति, तथा वाताभी। तंत्रिक एवं ग्रंथीय क्रियाओं के अध्ययन की विधियाँ, जो व्यवहार से उनके सहसंबंधों को स्पष्ट करने में प्रयोग की जाती हैं, निम्नलिखित हैं—(a) तंत्रिक रचना वैज्ञानिक विधियाँ, इनमें तंत्रिका-तंत्र में प्रयोगात्मक आघात दिए जाते हैं और उनके प्रभावों की खोज की जाती है, (b) तंत्रिका-तंत्र की सूक्ष्म एवं स्थूल क्रियाओं का विद्युतीय अभिलेखन, (c) मस्तिक के

निश्चित क्षेत्रों का विद्युतीय एवं रासायनिक उद्दीपन, तथा (d) शल्य-चिकित्सा द्वारा अंतःस्रावी ग्रंथियों को निकाल कर इंजेक्शन द्वारा हार्मोनों को रक्तधारा में मिलाना।

पठनार्थ सुझाव :


Brazier, M. A. B. The Electrical Activity of the Nervous System. London : Pitman 1951.

तंत्रिका-तंत्र के विद्युतीय व्यवहार का प्रारंभिक विवेचन।

Field, J., Magoun, H. W., and Hall, V. E. (eds) Hand Book of Physiology : Neurophysiology. Vol. 1 Washington, D. C., American Physiological Society, 1959.

तंत्रिका-तंत्र की क्रियाओं के सब रूपों का महत्त्वपूर्ण एवं अधिकारिक विवेचन।

Gardner, E. Fundamentals of Neurology ( 3rd. ed. ) Philadelphia Saunders, 1958.

तंत्रिका-तंत्र की संरचना और क्रिया का परिचयात्मक विवेचन।

Langley, L. L., and Cheraskin, E. The Physiology of Man. New York : McGraw-Hill, 1954

शरीर-क्रिया-विज्ञान की कालेज के पाठ्य-क्रम की पुस्तक है। इसमें तंत्रिका-तंत्र एवं अंतःस्रावी-ग्रंथि तंत्र पर अनेक अध्याय हैं।

Morgan, C. T., and Stellar, E., Physiological Psychology (2nd. ed.) New York : McGraw-Hill, 1950.

व्यवहार के क्रिया-वैज्ञानिक प्रक्रम पर मानक ग्रंथ। इसमें तंत्रिका-तंत्र एवं आंतरिक पर्यावरण पर अध्याय हैं।

Stevens, S. S. (ed.) Handbook of Experimental Psychology New York : Wiley, 1951 Chap. 2-6.

तंत्रिका-तंत्र के क्रिया-विज्ञान और आंतरिक पर्यावरण पर सुसंहत प्रामाणिक अध्याय।

अध्याय २०

# व्यवहार का कायिक आधार

पिछले अध्याय ने उस भूमिका को प्रस्तुत किया है, जो इस अध्याय को समझने के लिए आवश्यक है। यद्यपि जो चित्र वह तंत्रिका-तंत्र और आतंरिक पर्यावरण का प्रस्तुत करता है, वह अति स्थूल है, किंतु हमारे उपयोग के लिए वह पर्याप्त होना चाहिए। इस अध्याय में हम व्यवहार के कायिक आधार का अध्ययन करेंगे, जिसका उल्लेख इस ग्रंथ में अन्यत्र हम कर चुके हैं।

## संवेदी प्रेरक प्रक्रम :

तंत्रिका-तंत्र के संवेदी और प्रेरक परिपथों का तंत्रिक-रचना-वैज्ञानिक विधियों द्वारा पता लगाना अपेक्षाकृत सरल है। इसीलिए अन्य भागों की अपेक्षा वे अध्ययन का विषय अधिक रहे हैं और उनकी क्रियाएँ अपेक्षाकृत अधिक ज्ञात हैं। अतः, हम उन्हीं से प्रारंभ करते हैं।

चित्र २०.१ में प्रांतस्था के संवेदी और प्रेरक प्रदेश प्रदर्शित हैं। ध्यान दें कि संवेदी प्रदेश प्रांतस्था में केंद्रीय परिखा के पीछे अवस्थित है। चित्र में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द का अर्थ, जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे, स्पष्ट किया जाएगा। मनुष्य के प्रमस्तिष्क प्रांतस्था को चिंपांजी और कुत्ते की तुलना में यहाँ दिखाया गया है और यह तथ्य स्पष्ट किया गया है कि निम्न जंतुओं के संवेदी और प्रेरक प्रदेश, मनुष्य की अपेक्षा, पूर्ण-प्रांतस्था के बड़े भाग को अधिकृत करते हैं। दूसरे शब्दो में कहेंगे, मनुष्य की प्रांतस्या का बड़ा भाग उन क्रियाओं से, चिंपांजी या कुत्ते के प्रांतस्था की अपेक्षा अधिक संबंधित है, जो संवेदी या प्रेरक नहीं है। यह मनुष्य की उच्चतर योग्यताओं को, जटिल क्रियाओं में, जैसे अधिगम और चिंतन में, प्रकट करता है।

## कौशलपूर्ण गतिविधियाँ :

प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के दो क्षेत्र गतिविधि तथा प्रेरक क्रियायों में विशेष महत्त्वपूर्ण है। ये **प्रेरक क्षेत्र** तथा **पुनः प्रेरक** क्षेत्र हैं और केंद्रीय परिखा के सामने अवस्थित हैं।

विविध प्रयोगों ने प्रमाणित किया है कि प्रेरक-क्षेत्र प्रांतस्था का कार्यकारी क्षेत्र है। इसके द्वारा ही व्यक्ति गतियों के विविध प्रतिरूपों को कार्यान्वित कर

सकता है। इसी क्षेत्र में प्रेरक—तंत्रिक—कोशिकाएँ हैं, जो उन तंतुओं को नीचे की ओर पश्च-मस्तिष्क तथा मेरु-रज्जु की प्रेरक—तंत्रिक—कोशिकाओं के पास भेजती हैं, जो कंकाल-पेशियों को उद्दीप्त करते हैं। अतः यहाँ सीधा, द्वि-तंत्रिक कोशिका संयुजन है, प्रेरक-क्षेत्र से परिधि—पेशी तक। यह तथ्य कि यह संयुजन गतियों के लिए आवश्यक है, दो प्रकार के प्रयोगों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

मनुष्य का मस्तिष्क चिंपांजी या कुत्ते के मस्तिष्क से बड़ा है तथा उनकी अपेक्षा कम भाग संवेदी-प्रेरक क्रियाओं के लिए रखता है।
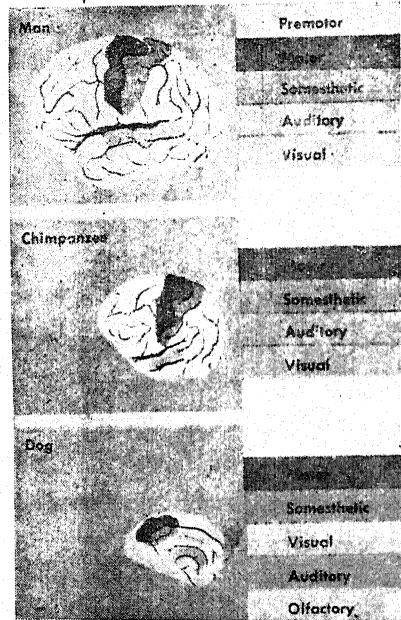
चित्र २०.१ एक कुत्ते, एक चिपांजी और एक मनुष्य की प्रमस्तिष्क प्रांतस्था। इनके आकार पर तथा चाक्षुष, श्रवण और बोधन क्षेत्रों की स्थिति पर ध्यान दें। यह चित्र तीनों प्राणियों के प्रेरक-क्षेत्र प्रकट करता है तथा कुत्ते का घ्राण-क्षेत्र भी। ध्यान दें कि चिपांजी और कुत्ते के मस्तिष्क की अपेक्षा मनुष्य का मस्तिष्क कितना बड़ा है।

एक प्रयोग है—प्रेरक-क्षेत्र का सीधे विद्युतीय उद्दीपन करना। इस क्षेत्र में चेतन व्यक्ति में अथवा संवेदन-हरण औषधि के हल्के प्रभाव में किसी जानवर में विद्युतीय उद्दीपन का प्रयोग शरीर के किसी भाग में दिखायी देने वाली गतियों को उद्दीपित करता है। गति का प्रकार और स्थान प्रेरक-क्षेत्र के उद्दीप्त किए गए बिंदु पर निर्भर करता है। क्षेत्र के ऊपरी भाग में और बंध के चारों ओर अनुदैर्ध्य विदर प्रांतस्था के दोनों भागों के मध्य, उद्दीपन टांगों की गतिविधियाँ उत्पन्न करता है। इससे थोड़ा हट कर, उद्दीपन धड़ में गतियों को उद्दीप्त करता है और आगे हटाने पर वह क्षेत्र है जहाँ से हाथ और बाँहों में गतियाँ होती हैं। क्षेत्र

के पार्श्व भाग और निचले भाग में, पार्श्व-परिखा की दिशा में ( देखिए, चित्र १९·११ ) चेहरे और मुख की गतियाँ उद्दीप्त होती हैं। प्रांतस्था पर प्रत्येक बिंदु के सतर्क मानकरण द्वारा, अनुसंधानकर्ता प्रांतस्था का मानचित्र तैयार कर सकता है। यह मानचित्र चित्र : २०.२ में आयोजित रूप में स्पष्ट किया गया है। यह प्रदर्शित करता है कि धड़ और टांगों की गतियों से संबद्ध क्षेत्र अपेक्षाकृत लघु है, हाथ का क्षेत्र कुछ बड़ा है तथा चेहरे और मुख की गतियों का क्षेत्र तुलनात्मक दृष्टि से विशाल है।

दूसरा प्रयोग, जो प्रेरक क्षेत्र की क्रियाओं को स्पष्ट करता है, वह है जिसमें क्षेत्रों का उन्मूलन किया जाता है अथवा उनको किसी अन्य ढंग से नष्ट किया जाता है। यदि शल्य-चिकित्सा, मस्तिष्क रक्त-स्राव या अन्य चोट द्वारा कोई भाग विनष्ट किया जाता है, परिणामस्वरूप पक्षाघात होता है। यदि एक ओर का संपूर्ण क्षेत्र क्षत हो जाए तो शरीर के एक भाग में, पूर्ण पक्षाघात हो जाता है; क्योंकि प्रेरक-क्षेत्र के तंतु अवरोही परिपथ में एक ओर से दूसरी ओर अन्योयगमन (क्रास ओवर) करते होंगे। यदि प्रेरक-क्षेत्र का केवल एक अंश क्षत होता है, तो शरीर के तदनुरूपी भाग में आंशिक पक्षाघात होता है।

चित्र २०.१ में दूसरा क्षेत्र, जिसमें प्रेरक क्रिया है, पुर:प्रेरक क्षेत्र कहलाता है। यह मस्तिष्क में जटिल-तंत्र का एक भाग है, जिसके अंतर्गत अनुमस्तिष्क ( देखिए, चित्र—१९.१० ) तथा अग्र-मस्तिष्क के अंत:प्रातंस्थ केंद्र (Subcortical Centres) आते हैं। अत:, इसकी क्रियाओं का वर्णन करना कठिन है। सामान्यत: यह शरीर के विविध भागों के तनावों और अंग स्थितियों को नियंत्रित करता है तथा प्रेरक-क्षेत्र के नियंत्रण में जो विशेष गतियाँ हैं, उन्हें सुगम बनाता है। यदि पुर:प्रेरक क्षेत्र को निकाल दिया जाए या क्षत कर दिया जाए, तो व्यक्ति की गतिविधियाँ विचित्र हो जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वह जानता है कि वह क्या करना चाहता है किंतु उसे भली-भाँति करने में उसे कठिनाई होती है। उसकी प्रसारिणी पेशियों ( Extensor Muscles) में निरंतर तनाव उसे सहज और शुद्ध गतियाँ करने में बाधा पहुँचाता है।

प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के अन्य क्षेत्र भी प्रेरक क्रियाओं में सन्निहित हैं तथा प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के बाहर भी अनेक केंद्र हैं, जो इन गतियों से संबंधित हैं। उनकी क्रिया मनोवैज्ञानिकों के लिए विशेष महत्त्व नहीं रखती है। हमने प्रेरक तथा पुर:-प्रेरक क्षेत्रों के कार्यों का संक्षेप में, गति-प्रक्रम को स्पष्ट करने के लिए, वर्णन किया है। अब हम संवेदनात्मक प्रक्रिया पर विचार करेंगे।

शरीर के भागों को प्रमस्तिष्क प्रांतस्था में दिखाया गया है, किंतु समानुपात में नहीं।
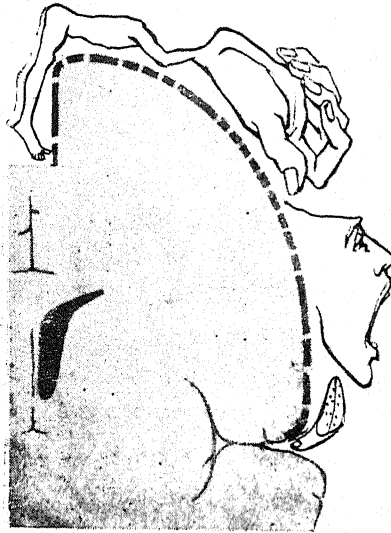
चित्र २०.२ इस लघुचित्र में प्रेरक-क्षेत्र की स्थल रूपरेखीय व्यवस्था प्रदर्शित की गई है। केंद्रीय परिखा के सामने एवं बोधन क्षेत्र के पीछे दोनों ही में प्रेरण-क्षेत्र इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि टांगे क्षेत्र के शिखर भाग के निकट दिखायी देती हैं, भुजाएँ मध्य भाग में तथा चेहरा और मुख निचले भाग के निकट (पेनफील्ड तथा रसमुसेन के अनुसार, १९५०)।

## संवेदी केंद्र और परिपथ :

संवेदी प्रक्रम पर विचार करते हुए उन विधियों का ध्यान रखना चाहिए, जिनके द्वारा ज्ञानेंद्रियों का वर्गीकरण किया जा सकता है (अध्याय १०)। हमारे उपयोगार्थ चार मुख्य समूहों में किया गया वर्गीकरण सर्वाधिक सहज है : दृष्टि, श्रवण, बोधन क्षेत्र तथा रासायनिक बोध। बोधन-क्षेत्र के अंतर्गत त्वचा के दबाव, पीड़ा, ताप और शीत के बोध तथा गतिबोधक दबाव बोध हैं। रासायनिक बोध के अंतर्गत स्वाद और गंध हैं। यहाँ हम जो कुछ कहेंगे, वह प्रायः एक समूह के बोधों के लिए और कभी-कभी एक समूह से अधिक के बोधों के लिए सत्य होता है (जैसा कि अध्याय १२ में इंगित किया गया है, संभवतः हमें प्रधाण ज्ञानेंद्रियों की घटनाओं का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता। इसी हेतु, प्रघाण-बोध पर यहाँ विचार नहीं किया गया है)। इनमें से ज्ञानेंद्रियों के तीन समूहों दृष्टि, श्रवण और रासायानिक की अवस्थिति मस्तिष्क में है। अतएव, यह आशा की जा सकती कि उनकी कोशिकाएँ, केंद्रक और परिपथ सिर और मस्तिष्क में ही पाए जाएँगे और मेरू-रज्जु से, उनका कोई संबंध नहीं है। जिन कोशिकाओं द्वारा संवेदी सूचना मस्तिष्क में जाती है, उनका कुछ परिचय देने के लिए चित्र २०.३ चित्रित किया गया है। यथार्थता के लिए, यहाँ १२ कपाल-तंत्रि-

काओं में से, जो मस्तिष्क को सूचना देती हैं, प्रत्येक का शुद्ध नाम दिया गया है, किंतु महत्त्वपूर्ण बात है—प्रत्येक इंद्रिय-समूह के परिपथ पर ध्यान देना।

मस्तिष्क में बारह तंत्रिकाएँ हैं, कुछ संवेदी, कुछ प्रेरक और कुछ मिश्रित।
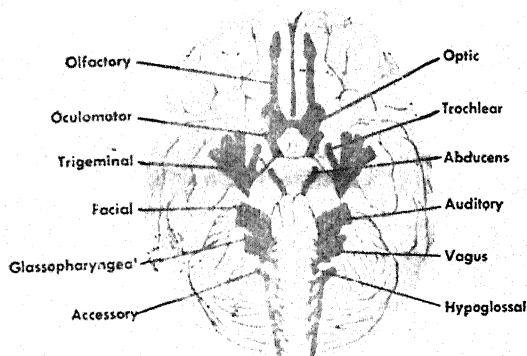
**चित्र २०·३ मस्तिष्क का चित्र, जैसा कि नीचे से देखा जाता है, कपाल-तंत्रिकाओं को प्रदर्शित करता है।**

घ्राण-तंत्रिका घ्राण-इद्रिय से प्रारंभ होकर नासिका-सेतु के पीछे से सीधे प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के मूल तक तीव्रगति से जाती है। दृष्टि-तंत्रिका दृष्टि-पटल के अंध-बिंदु से प्रारंभ होती है और नेत्र-कोटर के एक खुले भाग में से होती हुई चेतक में समाप्त होती है। श्रवण-तंत्रिका एवं स्वाद-तंत्रिकाएँ पश्चमस्तिष्क में प्रविष्ट होती है, वहाँ से आवेग ऊपर की ओर मध्य मस्तिष्क तथा अग्रमस्तिष्क के चेतक में जाती है और वहाँ से उनका प्रक्षेपण प्रमस्तिष्क प्रांतस्था में होता है।

तंत्रिकाओं के इन समूहों के लिए जो कुछ सत्य है, वह पूर्ण शरीर में अवस्थित बोधन क्षेत्रों के लिए पूर्णतः सत्य नहीं है। ये इंद्रियाँ सिर और मुख तथा साथ ही धड़ और बाँहों एवं टांगों का कार्य करती हैं, उनकी तंत्रिकाएँ भी ऐसी हैं, जो श्रवण और स्वाद के सदृश, पश्चमस्तिष्क में प्रवेश करती हैं, किंतु उनमें ऐसी तंत्रिकाएँ भी हैं जो मेरु-रज्जु की पूर्ण लंबाई में, मेरू के मूल से कपाल के मूल तक, प्रवेश करती हैं। ये द्वितीय तंत्रिकाएँ सिर को छोड़कर शरीर की अन्य ज्ञानेंद्रियों का कार्य करती हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं, मेरू-संवेदी-तंत्रिकाएँ प्रतिवर्त-चाप का भाग हैं तथा वे अनेक मेरु-प्रतिवर्तों में निहित हैं। इसके अतिरिक्त वे अनेक शाखाएँ पश्चमस्तिष्क की ओर भेजती हैं जहाँ वे सिर की बोधन इंद्रियों से तंतुओं को जोड़ती हैं। फलस्वरूप सब इंद्रियों के परिपथ मस्तिष्क में मिलते हैं चाहे वे सीधे प्रवेश करें अथवा मेरु-रज्जु के माध्यम से।

यद्यपि गंध और स्वाद रासायनिक इंद्रियाँ हैं तथा उन मानवीय अनुभवों से निकट संबद्ध हैं, जिनके विषय में हम कभी-कभी यह नहीं बता सकते कि हम किसी वस्तु का स्वाद पा रहे हैं या उसकी गंध। मस्तिष्क में उनका एक ही परिपथ अथवा दूसरे के सदृश परिपथ नहीं है। गंध परिपथ मस्तिष्क के निचले भाग में प्रवेश करते हैं तथा वहीं प्रांतस्था में समाप्त हो जाते हैं। दूसरी ओर स्वाद के केंद्रक और परिपथ वही हैं, जो सिर की बोधन इंद्रियों के, जब यह बोधन इंद्रियाँ नहीं वरन् रासायनिक हैं। पश्चमस्तिष्क में स्वाद और बोधन इंद्रियों के भिन्न केंद्रक हैं, किंतु इसके बाद इन दोनों संवेदी समूहों के तंतु इस प्रकार पूर्णतः परस्परमिश्रित होते हैं कि चेतक और प्रमस्तिष्क प्रांतस्था में उनके केंद्रकों और परिपथों को भिन्न नहीं किया जा सकता; क्योंकि वे पूर्णतः एक समान प्रकट होते हैं।

घ्राण के अतिरिक्त सब इंद्रियों के प्रसारण केंद्र चेतक में हैं। एक केंद्र दृष्टि के लिए है, दूसरा श्रवण और तीसरा बोधन और स्वाद की मिश्रित इंद्रियों के लिए है। ये केंद्र प्रसारण-केंद्र कहलाते हैं; क्योंकि प्रमस्तिष्क प्रांतस्था तक आवेगों को प्रसारित करने के अतिरिक्त उनका कोई दूसरा कार्य नहीं है। प्रांतस्थ स्थल पर इन तीन समूहों के तीन ओर मुख्य यंत्र हैं (देखिए, चित्र २०१)। केंद्रीय परिखा के ठीक पीछे बोधन और स्वाद का क्षेत्र है। प्रांतस्था के पीछे पश्चकपाल-पालि में दृष्टि का क्षेत्र है और कपालस्थि पालि में पार्श्विकविदर में श्रवण का क्षेत्र है। हम इन क्षेत्रों को **मूल संवेदी क्षेत्र** (Primary Sensory Areas) कहते हैं; क्योंकि वे संबंधित ज्ञानेंद्रियों से सीधे परिपथों में तंतुओं को ग्रहण करते हैं। जैसा कि हम अगले अनुभाग में देखेंगे कि प्रांतस्था के कुछ अन्य क्षेत्रों के कुछ परोक्ष परिपथ भी हैं।

दृष्टि और श्रवण अन्य इंद्रियों से भिन्न हैं; क्योंकि मध्य मस्तिष्क में उनके अतिरिक्त केंद्र भी हैं (बोधन तंतु कुछ शाखाओं को मध्य मस्तिष्क में भेजते हैं, किंतु उनके केंद्रक वहाँ नहीं हैं) मध्य मस्तिष्क के ऊपरी भाग पर पिंडकों के दो युग्म हैं। सामने वाला पिंड दृष्टि से संबंधित है और पश्च पिंड श्रवण से। भिन्न जंतुओं में, जैसे मछली, जिनमें कहने के लिए प्रमस्तिष्क प्रांतस्था नहीं होती, मध्य मस्तिष्क के केंद्र ही दृष्टि के केंद्र ही दृष्टि और श्रवण के प्रमुख केंद्र होते हैं। स्तनपायी प्राणियों में, जैसे चूहा, बंदर और मनुष्य, में प्रमस्तिष्क प्रांतस्था में पाए जाने वाले केंद्रों के वैकल्पिक केंद्र हैं।

### स्थलाकृति संबंधी व्यवस्था ( Topographical Arrangements )

यहाँ घ्राण इंद्रिय के संबंध में हम कुछ नहीं कहेंगे; क्योंकि हमें इसके संबंध में अब तक बहुत कम ज्ञात है और दूसरी इंद्रियों के संबंध में भी हम जो कुछ कहेंगे,

वह बहुधा घ्राण पर लागू नहीं किया जा समता है। अन्य इंद्रियों की यह विशेषता है कि उनके केंद्रकों की एक व्यवस्थित **स्थल-रूपरेखीय व्यवस्था** है, बहुत कुछ मानचित्रों के सदृश। उदाहरणतः दृष्टि में चेतक केंद्र तथा मूल प्रांतस्था क्षेत्र दोनों इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि उनके भिन्न बिंदु दृष्टिपटल के भिन्न बिंदुओं को प्रस्तुत करते हैं। विद्युदग्रों के अभिलेखन द्वारा अथवा रचना-वैज्ञानिक प्रविधियों के प्रयोग द्वारा यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि दृष्टिपटल के प्रत्येक बिंदु के तदनुरूप बिंदु चेतक और प्रांतस्था क्षेत्र में भी हैं। हम इस व्यवस्था को प्रायः बिंदु-से-बिंदु प्रक्षेपण कहते हैं।

इतना परिशुद्ध न होने पर भी श्रवण एवं बोधन इंद्रियों में भी प्रक्षेपण हैं। हम देख चुके हैं कि ध्वनि-तरंगों की विविध बारंबारता कर्णावर्त के भिन्न भागों को उद्दीप्त करती हैं। यह स्वरीय व्यवस्था ( Tonotopic ) श्रवण-तंत्र में सुरक्षित रहती है, जिससे कि यह श्रवण प्रांतस्था तथा कर्णावर्त दोनों को प्रभावित करती है। यदि इस प्रांतस्था पर विद्युदग्र लगाए जाएँ, जब कि विभिन्न स्वर ध्वनित हो रहे हों, विद्युतीय अभिलेखन स्पष्ट करता है कि कर्णावर्त के तदनुरूप प्रांतस्था में भी क्रमबद्ध व्यवस्था है। इसी प्रकार की क्रमबद्धता बोधन प्रांतस्था में भी रहती है, किंतु इस रूप में शरीर के जिन भागों को वह प्रस्तुत करती है, उन्हीं भागों में होती है। चित्र २०.१ में बोधन प्रांतस्था का रेखांकित ऊपरी भाग टांगों को एवं शरीर के निचले भाग को प्रकट करता है, मध्यभाग बाँहों और धड़ को तथा निचला भाग सिर, चेहरा, मुख; जिह्वा आदि को। यह क्रमबद्धता चित्र २०.२ में चित्रित केंद्रीय परिखा के ठीक पार प्रेरक क्षेत्र की गतिविधियों की क्रमबद्धता के समकक्ष के हैं। संक्षेप में, चेतक के परिपथ से होती हुई प्रांतस्था में प्रक्षेपित सब इंद्रियाँ स्थलाकृति विधि से प्रस्तुत रहती हैं।

### संवेदी अनुभव :

विविध ज्ञानेंद्रियों के केंद्रकों और परिपथों को जान लेने के उपरांत हम यह प्रश्न कर सकते हैं कि वे संवेदी अनुभवों में किस प्रकार भाग लेते हैं? इस प्रश्न का अध्ययन करने की दो सामान्य विधियाँ हैं : उद्दीपन तथा धमन (विनाश)। एक का प्रयोग विभिन्न केंद्रकों तथा परिपथों को उद्दीप्त करने लिए होता है और दूसरी का उन्हें पृथक् करने के लिए।

उद्दीपन-विधि का प्रयोग मानव-प्रयोग-पात्रों पर किया गया है, जिनके मस्तिष्कों को स्थानीय संवेदनहरण औषधियों के प्रभाव में खुला रखा जाता है। जब विद्युतीय उद्दीपन लगाया जाता है, प्रयोग-पात्र से पूछा जाता है कि जो कुछ

वह अनुभव कर रहा है, उसे अभिव्यक्त करे (पेनफील्ड और रसमुसैन, १९५०)। प्रयोग-पात्र ताप या दबाव के संवेदन को बोधन प्रांतस्था के उद्दीप्त करने पर अभिव्यक्त करता है, दृष्टिक प्रांतस्था के उद्दीप्त होने पर वह दृष्टिक अनुभवों को और श्रवण प्रांतस्था के उद्दीप्त होने पर विविध ध्वनियों के संवेदन को अभिव्यक्त करता है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि बोधन क्षेत्र के उद्दीप्त होने पर वह पीड़ा को अभिव्यक्त नहीं करता। पीड़ा की सूचना तभी मिलती है, जब किसी प्रकार उससे चेतक संबंधित हो। अतएव, ऐसा प्रतीत होता है कि बोधन तंत्र के पीड़ा तंतु केवल चेतक तक पहुँचते हैं और प्रांतस्था तक नहीं पहुँचते।

मस्तिष्क की संवेदनात्मक क्रियाओं के अध्ययन की द्वितीय विधि है—किसी केंद्रक का शमन (विनाश) और उसके शमन से पूर्व तथा उपरांत प्रयोग-पात्र की संवेदनात्मक क्षमता का परीक्षण। इस विधि का प्रयोग साधारणतः केवल जानवरों पर किया जाता है। कभी-कभी इसका प्रयोग मनुष्यों पर भी किया जाता है, जब किसी चोट या रोग के कारण मस्तिष्क की शल्यचिकित्सा आवश्यक हो। सामान्यतः इस प्रकार के प्रयोग प्रदर्शित करते हैं कि प्रमस्तिष्क प्रांतस्था प्रत्यक्षीकरण के दिक्-पक्ष (क्षेत्रीय पक्ष) से संबंधित है, जब कि प्रांतस्थ-केंद्रक का अनुभव की तीव्रता में अधिक महत्त्व रहता है (लैशले, १९३७)। यह केवल एक सामान्य कथन है, अतः प्रत्येक दृष्टिकोण से यह सत्य नहीं है।

इस सामान्य नियम का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उदाहरण संभवतः दृष्टि है। जिन जंतुओं का अध्ययन किया गया है, उनमें मूल दृष्टिक प्रांतस्था का होना प्रतिरूपों और दृष्टिक सूक्ष्मताओं को देखने के लिए आवश्यक है (क्लुवेर, १९४२)। इस प्रांतस्था भाग को निकाल दीजिए, और वह जंतु त्रिकोण और गोलाकार में अथवा समानांतर और ऊर्ध्वरेखाओं में अंतर नहीं कर सकता (देखिए, चित्र-२०.४)। उसी जंतु में प्रकाश के जलने-बुझने की प्रतिक्रिया हो सकती है और प्रकाश के इन दोनों रूपों में वह अंतर समझ सकता है। अतएव, तीव्रता (Intensity) को अनुभव करने की योग्यता, दिक्-संबंधी सूक्ष्मताओं से भिन्न, अतः प्रांतस्था केंद्रकों की विशेषता है—संभवतः मध्य मस्तिष्क की—न कि दृष्टिक प्रांतस्था की। किंतु मनुष्यों में, ऐसा प्रतीत होता है कि प्रांतस्था ने अतः प्रांतस्था की कुछ क्रियाओं को अपना लिया है; क्योंकि लोग जब अपनी दृष्टिक प्रांतस्था खो देते हैं, तो वे पूर्णतः अंधे होने की सूचना देते हैं, यद्यपि हम पूर्णतः इस संबंध में निश्चित नहीं हैं।

श्रवण और बोधन दोनों इंद्रियों की सामग्री विशेष स्पष्ट नहीं है। दृष्टि के समान दिक्-प्रत्यक्षीकरण में ये दोनों इंद्रियाँ बहुत अधिक भाग नहीं लेतीं और

इनके संबंध में यह कहना अधिक कठिन प्रमाणित हुआ है कि उनका प्रांतस्था क्षेत्र कहाँ तक निहित है। यद्यपि हम जानते हैं कि विशेष प्रांतस्था क्षेत्रों को निकाल देने से उद्दीपन के प्रति संवेदनात्मकता कम हो जाता है। किंतु, हानि विशेष नहीं होती। वस्तुत: इन इंद्रियों के सब केंद्रकों को अग्र-मस्तिष्क और मध्य-मस्तिष्क से निकाल देने पर भी जंतु में पर्याप्त तीव्र उद्दीपन के प्रति प्रतिक्रिया करने की क्षमता रह जाती है। अतएव, ऐसा प्रतीत होता है इन संवेदनात्मक तंत्रों के सब भाग एवं पश्च मस्तिष्क के भाग भी, संवेदी अनुभवों में कुछ योग देते हैं।

दृष्टिक प्रांतस्थाविहीन जंतु प्रकाश को देख सकते हैं, किंतु प्रतिरूपों (आकारों) को नहीं।
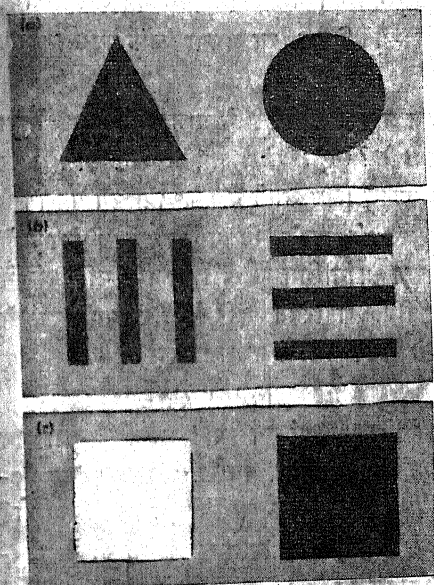
चित्र २०·४ मूल दृष्टिक प्रांतस्थाविहीन जंतुओं में दृष्टिक प्रत्यक्षीकरण। दृष्टिक प्रांतस्था के अभाव में चूहे (a) और (b) युग्मों के अंतर को नहीं समझ सकते। पर, वे (c) के युग्मों को काले और सफेद के अंतर को देख सकते हैं।

## अभिप्रेरण और संवेग :

ऊपर हमने संवेदी और प्रेरक प्रक्रियाओं के संबंध में जो कुछ लिखा है, वह बहुत समय से ज्ञात है, और संप्रति कुछ आश्चर्यजनक विकास इस क्षेत्र में हुआ है। यह अभिप्रेरण और संवेग की सांप्रतिक खोजों के तीव्र विरोध में है। अनेक वर्षों तक हम इससे कुछ ही अधिक जानते थे कि कुछ अभिप्रेरणात्मक तथा संवेगात्मक केंद्रक अधश्चेतक में अवस्थित हैं। पिछले कुछ वर्षों में, एक के बाद एक तीव्र खोजों ने, अधश्चेतकीय प्रक्रियाओं को एवं उन केंद्रकों और परिपथों के, जिनके सहयोग पर

विश्वास नहीं था, स्पष्ट किया है। परिणामतः इस अनुमान में हम जो लिख रहे हैं, उसका अधिकांश बीस वर्ष पूर्व ज्ञात नहीं था।

### निद्रा एवं जागरण (Sleep and Arousal) :

कायिक आवश्यकता के रूप में निद्रा का वर्णन किया जा चुका है (अध्याय ३)। अधिकांश प्राणियों के लिए जीवित रहने तथा अन्य कार्यों को करने की सामान्य क्षमता बनाए रखने के लिए सोना अनिवार्य है। अनेक प्राणी, जिनमें मनुष्य, पक्षी एवं पालतू जानवर भी हैं, प्रतिदिन एक बार दीर्घकाल तक सोते हैं। अन्य प्राणी, जैसे चूहे, बिल्लियाँ और मनुष्यों के बच्चे दिन में कई बार खाते हैं, बारी-बारी से कुछ घंटे सोते हैं और कुछ जगते हैं। निद्राकाल दीर्घ हो अथवा लघु, हर स्थिति में वे निद्रा और जागरण के किसी नियम का अथवा चक्र का अनुकरण करते हैं।

वैज्ञानिकों को दीर्घकाल तक जिस प्रश्न ने उलझन में डाला, वह है— निद्रा और जागरण के इस चक्र का कारण क्या है ? एक संभावना, अर्थात रक्त और मस्तिष्क में रासायनिक तत्त्व हैं, जिनके कारण निद्रा आती है, का विवेचन पहले हो चुका है, (अध्याय ३) किंतु वस्तुतः हम अब भी उनके विषय में कुछ विशेष नहीं जानते। दो अन्य संभावनाएँ अधिक साधार प्रामाणिन हुई हैं। प्रथम, मस्तिष्क में निद्रा और जागरण के केंद्रक हैं, और द्वितीय, शरीरगत इंद्रियों और पर्यावरण से होने वाला संवेदनात्मक उद्दीपन निद्रा को नियंत्रित या प्रभावित करता है।

### निद्रा और जागरण-केंद्र :

मस्तिष्क में निद्रा के केंद्र हैं, इस ओर कई वर्ष पूर्व ध्यान आकर्षित हुआ जब ऐसे रोगियों को देखना पड़ा, जिनमें निद्रा की असाधारण प्रवृत्ति, तंद्रा, (**Somnolence**) थी। इन रोगियों में से कुछ के अधश्चेतक में रसौली (ट्यूमर) या कोई अन्य रोग पाया गया। इसकी खोज करते हुए कुछ प्रयोगात्मक वैज्ञानिकों ने अधश्चेतक पर, जानवरों के अधश्चेतक के विविध भागों में नियंत्रित क्षत (चोटें) देकर, विशेष अध्ययन दिया। उन्हें परिश्रम का फल मिला और वे खोज सके कि एक छोटा केंद्र है, जिसके विनाश से अति तंद्रा होती है। उदाहरणतः बंदर प्रायः— ४ से ८ दिन तक इस केंद्र के विनाश के उपरांत निरंतर सोता है और अनेक माह तक वह अति निद्रालु अनुभव करता रहता है (रेनसन, १९३९)। बंदरों को ध्वनियों द्वारा अथवा किसी अन्य संवेदी उद्दीपन द्वारा थोड़ी देर के लिए जागृत किया जा सकता है, किंतु अकेले छोड़ते ही वे पुनः सो जाते हैं। दूसरे जंतुओं पर भी प्रयोग द्वारा इसी प्रकार के परिणाम मिले हैं। अतः, इसमें संदेह नहीं है कि इस प्रकार के केंद्रक अधिकांश जंतुओं में हैं (नांता, १९४६)। इस केंद्र के विनाश से अति तंद्रा

होती है, इसलिए हम अनुमान करते हैं कि यह जंतु को, सामान्य रूप में क्रियाशील रहने पर, जागृत रखता है। इसीलिए यह **जागरण केंद्रक** कहलाता है।

एक बार जागरण-केंद्र के स्थिर हो जाने पर, एक अनुसंधानकर्त्ता ने विचारा कि कोई निद्रा केंद्र भी न हो (नांता, १९४६)। अधश्चेतक में भिन्न-भिन्न नियंत्रित क्षतस्थलों की खोज द्वारा जागरण-केंद्र से कुछ दूरी पर उसने ऐसे केंद्र की खोज की।

> "अनुसंधानकर्त्ता ने देखा कि निद्रा-केंद्र का विनाश जंतु (चूहा) को निद्रा से दूर रखता है। निद्रा-केंद्र विहीन जंतु खाते हैं, जीते हैं तथा अन्यथा सामान्य रहते हैं, किंतु वे सोते नहीं हैं। वे तब तक जागृत और क्रियाशील रहते हैं, जब तक वे पूर्णतः थक नहीं जाते और तब वे अतिमूर्च्छा में पड़ कर अंत में मर जाते हैं। अन्य प्रयोगों में इस अनुसंधानकर्ता ने जागरण और निद्रा दोनों केंद्रों को नष्ट कर दिया और उसने देखा कि परिणाम अति तंद्रा रहा, वैसी ही तंद्रा-जैसी केवल जागरण-केंद्र के पृथक् करने पर होती है।"

इसके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि जागरण-केंद्र प्रधान केंद्र प्रतीत होता है तथा यह भी कि निद्रा-केंद्र के अस्थायी रूप से जागरण केंद्र को शमित करने पर संभवतः निद्रा उत्पन्न होती है।

### उत्प्रेरित जाल-तंत्र ((Recticular Activating System) :

निद्रा और जागरण की कहानी केवल इतनी ही नहीं है। इसका शेष भाग उत्प्रेरित जाल-तंत्र (RAS) से संबंधित है। किंतु इसे कहने से पूर्व हमें इलेक्ट्रोएंसकैलोग्राम (EEG) के विषय में जान लेना चाहिए, जिसे अक्षत प्रयोग-पात्र के कपाल (खोपड़ी) से अभिलिखित किया गया है। कुछ वर्षों से यह ज्ञात है कि EEG प्रतिरूप व्यक्ति की जागरण अवस्था से सहसंबंधित है।

जैसा कि चित्र २०·५ में प्रदर्शित किया गया है कि सामान्य, विश्रांत, किंतु जागृत व्यक्ति का विशिष्ट EEG लयात्मक तरंग, जिसे **एल्फा तरंग** कहते हैं, प्रति सेकेंड लगभग दस चक्र का होता है। यह प्रतिरूप प्रकाश या ध्वनि के तीव्र प्रवाह द्वारा नष्ट या 'अवरुद्ध' कर दिया जाता है। व्यक्ति के आशंकित या चिंतित होने पर भी यह समाप्त हो जाता है। इसके स्थान पर हम कोई तरंग नहीं देखेंगे अथवा अनियमित, लघु और तीव्र तरंगें देखेंगे। मनुष्य के निद्रालीन होने पर भी एल्फा-लय लुप्त हो जाती है। प्रथमतः जब वह निद्रालु होता है, तो तरंगे मंद और बड़ी हो जाती हैं, वह जैसे गहरी नींद में लीन होता है, तरंगों का आकार और बढ़ जाता है, किंतु वे मंद और बहुत विशृंखल हो जाती हैं।

मस्तिष्क की तरंगें जागरण, निद्रालुता और निद्रा में भिन्न-भिन्न होती हैं।
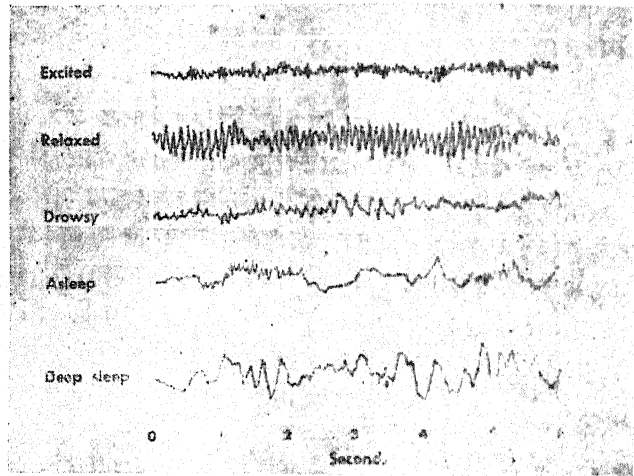
**चित्र २०.५ सतर्कता की विभिन्न अवस्थाओं में मस्तिष्क-तरंगों का स्वरूप (जेस्पर के अनुसार, १९४१)**

निद्रा और जागरण से संबंधित ये परिवर्तन प्रायः विश्वसनीय हुए हैं और उनका प्रयोग बार-बार वस्तुगत दृष्टि से यह निर्धारित करने में किया जाता है कि व्यक्ति केवल निद्रालु है अथवा गहन निद्रालीन। वे RAS की आंतरिक क्रियाओं से भी संबंधित हैं जैसा कि निम्नांकित प्रयोग में स्पष्ट किया गया है (मोरूजी और मागाँव, १९४९) :

"अनुसंधानकर्ता मस्तिष्क के सीधे विद्युतीय उद्दीपन के प्रभावों की खोज, विद्युद्ग्रों को विविध स्थलों पर लगाकर और उद्दीपन के प्रभावों को लिख कर, कर रहे थे। उन्हें इस खोज पर आश्चर्य हुआ कि RAS के उद्दीपन ने दो कार्य किए : प्रथम, इसने एक बिल्ली को जगाया, जो निद्रालीन या निद्रालु थी और दूसरी बिल्ली को, जो जग रही थी, सचेत किया। द्वितीय, इसने EEG को परिवर्तित किया, EEG में वे ही परिवर्तन किए जो जागृति या जागरण के साथ होते हैं। इससे यह प्रकट हुआ कि RAS प्रत्यक्ष रूप से जागरण और निद्रा-प्रक्रिया में निहित है। अनुसंधान करने पर अन्य अनेक तथ्य भी स्पष्ट हुए। प्रथम जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है,

प्रमस्तिष्क प्रांतस्था की ओर भ्रमणशील संवेदी आवेगों का भी RAS में अभिलेखन हो सकता था। यह तथ्य कि RAS का उद्दीपन प्रमस्तिष्क प्रांतस्था में क्रिया उत्पन्न करता है, RAS को संवेदी आवेगों के लिए एक पृथक् प्रसारण स्टेशन के रूप में प्रतिपादित करता है। अनुसंधान-कर्त्ता ने खोज की कि प्रमस्तिष्क प्रांतस्था का उद्दीपन RAS में क्रिया को उत्पन्न करता है और इस प्रकार निदेशित करता है कि प्रांतस्था और RAS के मध्य संवृत-माला ( Closed loop ) है। इसके उपरांत भी अनुसंधान-कर्त्ता अक्षत प्रांतस्था पर उन्मूलन विधि का प्रयोग करते हुए अन्य प्रयोग करते रहे (लिंडस्ले एट० एल०, १९५० )।"

अनुसंधानकर्त्ता ने प्रांतस्था की ओर जाने वाले संवेदी परिपथों को काट दिया और RAS से प्रांतस्था की ओर जाने वाले परिपथों को अक्षत रहने दिया। उसने देखा कि इस क्रिया का बिल्ली के जागरण और निद्रा प्रतिरूप पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

EEG प्रतिरूप तथा बिल्ली के निरीक्षण ने विशिष्ट जागृत अवस्था निदेशित की। दूसरी ओर, जब RAS को काट दिया गया, तो बिल्ली निद्रालीन हो गई और दीर्घकाल तक उसी अवस्था में रही। तंद्रा कितनी गहरी और दीर्घकालीन हुई, यह इस पर निर्भर था कि RAS को किस स्तर से काटा गया है। यदि उसे अपेक्षाकृत ऊँचाई से काटा गया है (मध्य मस्तिष्क और अधश्चेतक के संधिस्थल के निकट से), तो RAS से प्रमस्तिष्क प्रांतस्था की ओर जाने वाले प्रायः सब आवेगों का मार्ग अवरुद्ध हो जाएगा और तंद्रा अति गहरी होगी। यदि नीचे से उसे काटा जाए और कुछ RAS को प्रांतस्था से संबद्ध रहने दिया जाए, तो तंद्रा अपेक्षाकृत कम गहरी होगी।

RAS अधश्चेतक में निद्रा और जागरण केंद्रकों से किस रूप में संबद्ध है, यह अभी स्पष्ट नहीं है। यह निश्चित है वि उनमें अवश्य ही निकट संबंध होगा। यह स्पष्ट है कि मस्तिष्क के लिए RAS आधारभूत जागरण-प्रक्रम है। यदि यह प्रांतस्था को उत्प्रेरित न करे, तो व्यक्ति गहरी तंद्रा में ही पड़ा रहेगा चाहे संवेदी आवेग प्रांतस्था में चेतक पथ ( थैलमिक पथ ) में जाते रहें, पर वे प्रांतस्था द्वारा क्रियाशील नहीं होते। निद्रा में यह अवस्था रहती है। अतः RAS प्राणी की निद्रा या जागरण की सामान्य अवस्था को नियंत्रित करता है।

**संवेग :**

अधश्चेतक का क्षेत्र अपेक्षाकृत लघु है, किंतु अपने आकार की तुलना में यह कहीं अधिक प्रभावशाली है, जब हम संवेग का अथवा अभिप्रेरित व्यवहार के किसी

भी पक्ष का अध्ययन करते हैं, हम बार-बार देखते हैं कि इसकी महत्त्वपूर्ण योजना रहती है।

अधश्चेतक :

संवेग में अधश्चेतक के योग को सर्वप्रथम केनन (१९२७) और वार्ड (१९२८) के, अब महत्त्वपूर्ण समझे जाने वाले, प्रयोगों ने प्रतिपादित किया था :

"बिल्लियों को प्रयोगात्मक जंतुओं के रूप में प्रयोग करके उन्होंने उनके अग्रमस्तिष्क को अनेक स्थलों से काटा, प्रत्येक बार वे मस्तिष्क का कुछ अधिक भाग काटते गए, जब तक कि संपूर्ण अग्र-मस्तिष्क को मध्य और पश्च-मस्तिष्क से पृथक् नहीं कर दिया। बहुधा किसी एक प्रयोग-पात्र पर एक प्रयोग के लिए केवल एक स्थल के काट (Section) का उपयोग किया। प्रत्येक जंतु का परीक्षण उसके क्रोधी व्यवहार के लिए आपरेशन से पहले और उसने बाद, कभी उसकी पूँछ नोंच कर, कभी कुत्ते को उसके समक्ष उपस्थित करके, कभी बिगुल बजाकर आदि विधियों द्वारा किया गया। क्रोधी बिल्लियों का विशिष्ट व्यवहार गुर्राने, सिसकारी लेने, चटचटाने, काटने, पूँछ से मारने, अग्र टांगें उछालने, पंजा पटकने, पेशाब करने, तीव्रता से श्वास लेने के विविध रूपों में प्रकट हुआ। अनुसंधानकर्त्ताओं ने देखा कि क्रोध-भय व्यवहार तब तक बराबर उपस्थित रहा, जब तक अधश्चेतक था। जब आपरेशन द्वारा अधश्चेतक को पृथक् कर दिया गया, केवल मध्य मस्तिष्क और पश्च मस्तिष्क को रहने दिया, तब क्रोध-अनुक्रिया का प्रतिरूप भी समाप्त हो गया। कभी-कभी बिल्लियाँ (प्रयोग-पात्र) आंशिक संवेग प्रकट करतीं जैसे गुर्राना, सिसकारी लेना या खरोंचना, किंतु अधश्चेतक के बिना विशिष्ट रोष प्रतिरूप नष्ट हो गया।"

अनुसंधानकर्त्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अधश्चेतक वह क्षेत्र है, जिसमें विरोधी व्यवहार के विविध तत्त्व एक प्रतिरूप में व्यवस्थित रहते हैं। इस निष्कर्ष में संप्रति नवीन प्रयोग द्वारा सुधार हुआ है, जिनमें केवल अधश्चेतक में क्षत किए गए और अग्र-मस्तिष्क को अक्षत रखा गया (बार्ड और माउंटकासल, १९४७)। हमने अभी जो कहा है, उसके आधार पर यह विचारा जा सकता है कि इस प्रकार के क्षत क्रोधी व्यवहार को नष्ट कर देंगे, किंतु यह केवल आंशिक रूप से सत्य है। ये जंतु अधिक अचेत, अधिक तंद्रालीन रहते हैं तथा सामान्यतः उन्हें जगाना सामान्य जंतुओं की अपेक्षा अधिक कठिन रहता है। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि रोषपूर्ण अनुक्रियाएँ कभी-कभी, महत्त्वपूर्ण अधश्चेतक केंद्रकों के अभाव में भी, प्रकट हो सकती हैं। अतः, स्पष्ट है कि संवेगों को नियंत्रित करने वाला एकमात्र केंद्र अधश्चेतक ही नहीं है। अन्य केंद्र भी हैं, जो इस प्रक्रिया में भाग लेते हैं।

## विभाजक भित्ति तथा चेतक :

संवेगों को नियंत्रित करने वाले अन्य अन्य दो केंद्र विदित हैं .. वे हैं विभाजक भित्ति (Septum) और चेतक (Amygdala)। इन भागों को क्षत करके, व्यवहार पर उसके प्रभावों के आधार पर, संवेग में उनके महत्त्व का अध्ययन किया गया है। इस प्रकार के अनेक प्रयोग किए गए हैं, प्रायः चूहे या बिल्ली पर : उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया जा रहा है (किंग, १९५८) :

> "चूहे की संवेगात्मकता को परिमापित करने के लिए एक मापक का निर्माण किया गया है। चूहे को अनेक मानक स्थितियों में रख कर कुशल माप-कर्त्ता के निष्कर्ष के आधार पर यह चूहे की संवेगात्मकता की मात्रा को बिंदु-प्रणाली में, इसमें पेंसिल लगा कर, रूपांतरित करता है। संवेगात्मकता का मापन चूहों के एक समूह का आपरेशन से पूर्व और उसके उपरांत किया और एक नियंत्रित समूह का कोई आपरेशन नहीं किया। एक समूह के भित्तिक भाग को क्षत किया और दूसरे समूह के वातामी केंद्रक को क्षत किया। सब क्षतों को सममितीय संरचना की युग्मता के कारण द्विपार्श्विक बनाया गया।
>
> भित्तिक क्षेत्र के क्षतों का परिणाम हुआ—रोष का ह्रास। पहले पालतू जानवरों के साथ व्यवहार में भारी दस्ताने पहनने आवश्यक थे, वे तुरंत आक्रमण कर देते थे और पिंजरे में पेंसिल डालते ही उसे काटने लगते, वे प्रायः उत्तेजित होकर कूदते और रोषपूर्ण रहते थे। उनके वातामी में क्षत करने पर विपरीत प्रभाव दृष्टिगत हुआ। जो जंतु प्रारंभ में अत्यंत रोषपूर्ण नहीं थे, वे बहुत शांत हो गए, वे सब प्रकार की खीझ और कठोर व्यवहार को बिना क्रोध किए स्वीकार करने लगे। बाद में, दूसरे प्रयोग में कुछ जंतुओं का पहले भित्तिक का आपरेशन किया, जिसने उन्हें क्रोधी बना दिया। बाद में उनके वातामी का आपरेशन किया, जिसने उन्हें शांत और शिथिल बना दिया। इसने प्रकट किया कि दोनों क्षेत्र परस्परविरोधी हैं। दोनों के नष्ट करने पर वही प्रभाव होगा, जो केवल वातामी क्षेत्र के नष्ट होने से होता है।"

किसी क्षेत्र की सामान्य क्रिया का जो परिणाम होता है, उस क्षेत्र के विनाश का परिणाम ठीक उसके विपरीत होगा। अतः हम उपर्युक्त प्रयोग द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भित्तिक-क्षेत्र (Septal area) साधारणतः रोषपूर्ण व्यवहार को शमित करता है, जब कि वातामी उसे प्रायः उग्र करता है या उसे उत्तेजन-योग्य बनाता है। यह संभव है कि ये दोनों क्षेत्र अपनी क्रियाओं को संवेग के अधश्चेत-कीय केंद्रों पर करते हैं। अतएव, हम कह सकते हैं कि भितिक अधश्चेतक को शांत

करती है और वातामी उसे उत्तेजित करता है। इतना कहने से ही यह निष्कर्ष निश्चित रूप से प्रमाणित नहीं होता। किंतु, संवेग में निहित केंद्रकों और परिपथों को समझने में हम प्रगति कर रहे हैं।

**सुख और पीड़ा (Pleasure and Pain) :**

अभिप्रेरण-प्रक्रिया-संबंधी हमारे ज्ञान की प्रगति संप्रति विद्युद्‌ग्र-रोपित प्रयोगों द्वारा हुई है। इस प्रविधि का वर्णन इसके पहले भी किया गया है। इस विधि में बारीक विद्युद्‌ग्रों की नोक को वांछित बिंदु पर मस्तिष्क के भीतर गहराई में लगाया जाता है और बाहर एक संयोजक की व्यवस्था रहती है, जिसका प्रयोग उस वांछित बिंदु पर प्रयोगकर्ता इच्छानुसार विद्युत-आघात देने के लिए कर सकता है। इन आघातों का उपयोग जंतु द्वारा पूर्व निर्धारित अनुक्रिया के प्रबलनार्थ भी किया जा सकता है, जैसे उत्तोलक को दबाना, चक्र को घुमाना अथवा किसी व्यूह के विशेष मोड़ पर मुड़ना। इन प्रयोगों के संबंध में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि केंद्रीय उद्दीपन विध्यात्मक प्रबलन अथवा निषेधात्मक प्रबलन के रूप में कार्य कर सकता है, यह मस्तिष्क के उस भाग की अन्य बातों पर भी निर्भर करता है, जो उद्दीप्त किया गया है। दोनों प्रकार के प्रबलनों के प्रयोग चूहों, बिल्लियों और बंदरों पर किए गए हैं। हम विध्यात्मक और निषेधात्मक प्रबलनों पर पृथक्-पृथक् विचार करेंगे।

**पीड़ा :**

जब कोई उद्दीपन निषेधात्मक प्रबलन का कार्य करता है, हम अनुमान करते हैं कि वह किसी प्रकार से पीड़ाजन्य अथवा दुखद होता है। अतः, केंद्रीय उद्दीपन के निषेधात्मक प्रबलन प्रभावों के संबंध में विचार करते हुए हम 'पीड़ा' शब्द का व्यापक अर्थ में प्रयोग करेंगे, जिसके अंतर्गत केवल पीड़ा संग्राहकों के परिधि उद्दीपन द्वारा उत्पन्न पीड़ा के प्रकार आएँगे, वरन् सुख के विपरीत जो कुछ भी है, जिनसे बचने का व्यक्ति प्रयास करता है वह भी इसके अंतर्गत समझा जाएगा। केंद्रीय उद्दीपन के निषेधात्मक प्रबलन प्रभावों को निम्नांकित प्रयोगों द्वारा स्पष्ट किया गया है (मिलकर, १९५८) :

> "प्रयोगकर्त्ता ने बिल्लियों का प्रयोग-पात्र के रूप में प्रयोग किया। प्रत्येक बिल्ली एक ऐसे ढाँचे में रखी गई, जिसके नीचे का तला जालीदार था और जिसके पार्श्व में पहिया लगा था और पहिये को घुमा कर बिल्ली स्विच को बंद कर सकती थी। बिल्लियाँ, जिनके मस्तिष्क में पहले से ही विद्युद्‌ग्र रोपित थे, पहिया चलाने के लिए प्रशिक्षित थीं। वे पहिये को घुमाकर विद्युत् आघात से बचना सीख गई थीं। जब वे यह सीख गईं, तो केंद्रीय उद्दीपन के स्थान पर जाली में से आघात दिया जाने लगा और

केंद्रीय उद्दीपन तब तक निरंतर किया गया, जब तक बिल्ली ने पहिये को घुमाया। इस प्रक्रिया के प्रथम कुछ प्रयत्नों में बिल्ली कुछ 'आश्चर्यचकित' एवं अशांत-सी प्रकट हुई, किंतु उसने शीघ्र ही परिधि से पहिये को घुमाने की अपनी आदत को केंद्रीय उद्दीपन पर स्थानांतरित कर लिया। स्पष्ट है, केंद्रीय उद्दीपन पीड़ाजन्य अथवा दुखद है।"

दूसरे प्रयोग में विद्युद्ग्ररोपित चूहों को व्यूह में रखा गया। चूहा जब व्यूह में चक्कर लगाता और जब गलत पथ में जाने लगता, तो प्रयोगकर्त्ता केंद्रीय आघात का स्विच लगा देता और उसे तब तक लगा रहने देता, जब तक चूहा गलत पथ को छोड़ कर सही पथ में न चला जाता और सही पथ पर जाते ही स्विच बंद कर दिया जाता। यदि विद्युत् आघात को परिधीय ढंग से गलत मोड़ पर जाने पर लगाया जाता, तो भी चूहे व्यूह को कुछ इसी विधि से अधिगत करते। केंद्रीय उद्दींपन पुनः निषेधात्मक प्रबलन के रूप में प्रकट हुआ।"

मस्तिष्क के केंद्रकों और परिपथों की खोज में जहाँ उद्दीपन का दुखद और पीड़ाजन्य प्रभाव होता है, अनेक प्रयोग किए और उनमें विविध स्थलों पर विद्युद्ग्रों को रोषित किया। ऐसे अनेक स्थल हैं एवं हम यह बता सकने में असमर्थ हैं कि वे सब प्रभावपरक क्यों हैं। हम यह आशा करते हैं कि यह विधि मस्तिष्क में पीड़ाजन्य और दुख की प्रक्रिया का मानचित्र तैयार करने में महत्त्वपूर्ण सहायक प्रमाणित होगी।

केंद्रीय उद्दीपन के दुखद प्रभावों का अध्ययन अपने में विशेष आश्चर्यजनक नहीं है। अंत में, विद्युत्-आघात उद्दीपन की सामान्य विधियों का स्थान लेता है और हम आशा कर सकते हैं कि हम केंद्रीय उद्दीपन के पीड़ा-परिपथों द्वारा उन्हीं प्रभावों को उत्पन्न कर सकते हैं, जिन्हें पीड़ा संग्राहकों के परिधि-उद्दीपन द्वारा कर सकते हैं। कुछ स्थितियों में, संभवतः यही होता है। कुछ अन्य स्थितियों में, जब विद्युद्ग्र ऐसे स्थलों पर रोषित होते हैं, जो किसी परिपथ के निकट न हो, तो केंद्रीय उद्दीपन का प्रभाव सामान्य अशांति के रूप में प्रकट होता है।

सुख ( Pleasure ):

केंद्रीय विद्युतीय उद्दीपन के दुखद प्रभाव न तो मनोवैज्ञानिकों के लिए विशेष आश्चर्यजनक होते हैं और न अमनोवैज्ञानिकों के लिए; क्योंकि हम सब परिधि आघात ( Peripheral Shock ) को दुखप्रद या पीड़ाजनक के रूप में जानते हैं। जो पूर्णतः आशातीत या आश्चर्यजन्य हैं, वह यह कि केंद्रीय उद्दीपन सुखकर भी हो सकता है और विध्यात्मक प्रवलन का कार्य भी कर सकता है। इस विषय को

इसके एक अनुसंधानकर्ता के ही शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है ( ओल्ड्स, १९५५ पृष्ठ ८३ ff )

"१९५३ के प्रयोग ( फॉल ) में हमने जाल-उत्प्रेरित तंत्र संबंधी अधिक सूचनायें पाने की कल्पना की थी। हमने विद्युदग्रों को स्थायीरूप से स्वस्थ और कुशल चूहों के मस्तिष्क रोपित किया—संयोगवश एक विद्युदग्र अग्र-तंतुबंध ( Auterior Commissure ) क्षेत्र ( भित्तिका के निकट एक स्थल ) में रोपित हो गया।

इसका परिणाम आश्चर्यजनक हुआ। जब जंतु को खुले मैदान में विशेष स्थल पर उद्दीप्त किया गया, वह कभी कभी दूर भाग जाता। किंतु, उस स्थल पर लौट आता और उसे सूँघता। उस स्थान पर अधिक उद्दीपन पाने पर वह अपना अधिक समय वहीं व्यतीत करने लगा।

बाद में हमने अनुभव किया कि उसी जंतु को व्यूह में किसी भी स्थल पर आकर्षित किया जा सकता है, प्रत्येक अनुक्रिया के बाद लघु विद्युतीय आघात देकर उसे सही दिशा की ओर ले जाया जा सकता है। यह बालक के साथ 'गर्म और ठंडा' खेल खेलने के सदृश था। प्रत्येक सही अनुक्रिया से विद्युतीय स्पंदन होते, जो जंतु को यह निदेशित करते प्रतीत होते कि वह सही पथ की ओर बढ रहा था।

इसके उपरांत, उसी जंतु को उत्थित T व्यूह में रखा गया। उसमें क्योंकि दाहिने मोड़ की ओर प्राथमिक सुविधा थी, इसलिए उसे बाईं ओर प्राथसिक सुविधा थी इसलिए उसे बाईं ओर मुड़ने के लिए बाध्य किया और बाईं भुजा के अंत में उसे उद्दीप्त किया। ऐसे तीन परीक्षणों के उपरांत वह लगातार दस बार बाईं ओर केवल विद्युतीय उद्दीपन के लिए गया और प्रत्येक बार जाने के समय ह्रास होता गया। तब बाईं ओर के उद्दीपन को बंद कर दिया गया और उसे ६ बार दाहिनी ओर जाने के लिए बाध्य किया और दाहिनी भुजा में विद्युतीय आघात लगाया गया। इसके बाद जतु ने १० बार दाहिनी ओर विद्युतीय उद्दीपन की दिशा में चक्कर लगाए।"

इस अवस्था में उस व्यूह में भोजन नहीं रखा गया था। इस प्रयोग के अनु-करज के द्वारा तबा अन्य अनुसंधानात्मक परीक्षणों द्वारा प्रयोगकर्त्ताओं ने इस विषय का अध्ययन व्यवस्थित रूप से करने का निर्णय किया। उन्होंने अपने अध्ययन को आगे बढ़ाया, चूहों को स्कीनर-बक्स में रखा, जिसके द्वारा अनुक्रियाओं का और बहुत ऊँची मात्रा में अनुक्रियाओं का अभिलेखन स्वयं ही हो जाता था।

स्कीनर-बक्स का उत्तोलक एक स्विच को दबाता है, जो चूहे के लिए केंद्रीय उद्दीप को उद्दीप्त करता है ( देखिए, चित्र १९.१५ ) । तदंतर चूहों को अनेक विद्युद्‌ग्र से लैस किया तथा प्रत्येक पर स्कीनर-बक्स अभिलेखन किए गए । यह निश्चित ह जाने पर कि विशेष स्थल पर लगाया विद्युद्‌ग्र लाभप्रद है अथवा नहीं, उस जं की बलि दे दी गई और विद्युद्‌ग्र का सही स्थल शरीर-रचना पद्धतियों द्वारा स्थि किया । जैसा कि हम अनुमान कर सकते हैं कि ये जंतु कुछ विद्युद्‌ग्रीय स्थलों प्रति विरोधी हो उठे और कुछ केंद्रीय उद्दीपन को अनुभव कर लेने पर उत्तोल को दबाने से बचने लगे । स्पष्टतः ये विद्युद्‌ग्र पीड़ाजन्य या दुखप्रद थे (ओल्ड्‌ १९५५, पृष्ठ ९०-९१ से उद्धृत) :—

> "चूहे के मस्तिष्क का निरंतर पुरस्सर परिणाम देने वाला प्रथम वृह संरचना क्षेत्र पट-क्षेत्र ( Septal area ) था—(पट) चूहे दीर्घकाल त नियमित क्रमों में अनुक्रियाओं को उत्पन्न करते हैं (द्रष्टव्य, चित्र २०.६) ये क्रम लगभग एक अनुक्रिया प्रति दो सेकेंड से लगभग एक अनुक्रिया प्र दस सेकेंड तक में परिवर्तित होते हैं ।"

प्रयोगार्थ लिए गए चूहे का क्रम पर्याप्त स्थिर रहता है । पट-चूहे ( Septa Rats ) अपने समय का तिहाई भाग इन स्थिर क्रमों के प्रति अनुक्रिया करने व्यतीत करते हैं चाहे उन्हें एक दिन में चार घंटों के लिए व्यस्त रखा जाए । दूसर ओर जब वाल्टेज बंद कर दिया जाता है और अनुक्रिया मस्तिष्की उद्दीपन नह उत्पन्न करती, फलस्वरूप उत्तोलक - दबाना भी अचानक बंद हो जाता है । जं झपटता है, घूमता है अथवा सो जाता है । प्रयोगकर्त्ता पुनः वाल्टेज चला दे और जं को एक या दो आघात यह बताने के लिए दे दे, कि वह चल रहा है । जंतु जो कु करता होगा, उसे छोड़ देता है । वह उत्तोलक के निकट आता है और पुनः उसे दबान प्रारंभ करता है ।

यह प्रभाव उत्पादन करने वाले विद्युद्‌ग्र स्थलों में अधिकांश अवयवी-तं ( Limbic System ) की संरचना में अवस्थित हैं । यह ऐसा संस्थान है, जिस अंतर्गत विभाजक-भित्ति है और जो अधश्चेतक से निकट संबद्ध । ( चित्र, १९.६ अवयवी-तंत्र का आरेख देखिए ) कुछ स्थल जो सुखप्रद है, इस तंत्र के बाहर हैं ।

केंद्रीय उद्दीपन के पुरस्कारजन्य अथवा सुखद प्रभावों के इन प्रारंभि प्रयोगों का विवरण कुछ विस्तार से दिया गया है; क्योंकि ये रोचक और महत्त्वपू दोनों हैं । वे मस्तिष्क की अभिप्रेरणात्मक प्रक्रियाओं को अधिक अच्छी तर समझने की अनेक संभावनाओं को प्रस्तुत करते हैं तथा इस ज्ञान के व्यावहारि प्रयोग के अवसर भी उपस्थित करते हैं । यह संभव है कि केंद्रीय उद्दीप

प्रणाली अत्यधिक निराशाजनक रोगों के उपचार के लिए उपयोगी प्रमाणित हों, यद्यपि अभी इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना संभव नहीं है। विध्यात्मक और निषेधात्मक प्रवलन के लिए रोपित विद्युद्ग्रों का उपयोग नवीन चिकित्सा औषधियों की खोज में भी किया जा रहा है। इस अनुसंधान का उद्देश्य ऐसी औषधियों की खोज करना है, जो विशेष रूप से मस्तिष्क के कुछ संवेगात्मक केंद्रकों को प्रभावित करती हैं, और विशेषतः उनकी खोज करना जो केंद्रीय उद्दीपन के सुखद प्रभावों को बढ़ाती अथवा दुखद भावों को कम करती हैं। अतः, यह प्रणाली नवीन औषधियों की खोज में स्क्रीन का कार्य करती है और मानव उपयोगार्थ लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं।

मस्तिष्क के कुछ भागों में विद्युत्-आघात प्राप्त करने पर जंतु परिश्रम से कार्य करेंगे।
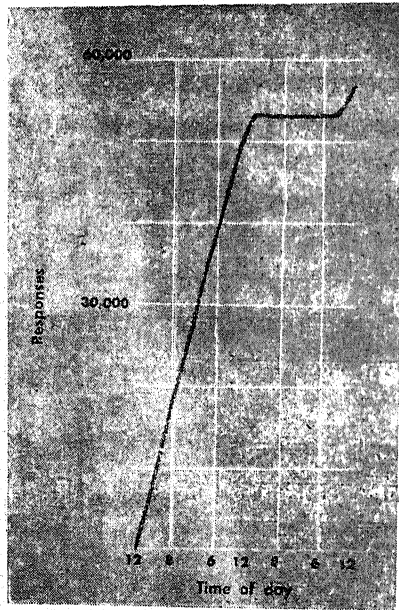
**चित्र २०·६ स्कीनर-बक्स में, मस्तिष्क के भीतर हल्के विद्युत्-आघात के प्रबलन के साथ, उत्तोलक दबाने का अभिलेख। एक दिन दोपहर से प्रारंभ करके चूहे ने प्रति घंटे २,००० अनुक्रियाओं से अधिक की गति से २६ घंटे तक स्वयं को उद्दीप्त रखा, तब १९ घंटे तक वह सोया और फिर उसी गति से स्व-उद्दीपन प्रारंभ किया (ओल्ड्स के अनुसार, १९५८)।**

## आवश्यकताएँ (Needs) :

अभिप्रेरण के अध्याय में जब हमने शारीरिक आवश्यकताओं के संबंध में विवेचन किया था, यह स्पष्ट किया था कि वे शरीर में होने वाली रासायनिक क्रियाओं से उत्पन्न होती है, किंतु वहाँ हमने यह नहीं बताया था कि ये क्रियाएँ

अभिप्रेरित व्यवहार में किस रूप में अभिव्यक्त होती हैं। यहाँ हम जिस प्रश्न पर संक्षेप में विचार करेंगे, वह हमें पुनः अवश्चेतक की ओर ले जाता है; क्योंकि यह केंद्रक शारीरिक आवश्यकताओं में तथा साथ-साथ निद्रा और संवेग में भी महत्त्वपूर्ण प्रमाणित होता है। तीन आवश्यकताएँ जिनमें इसका महत्त्व प्रमाणित हो चुका है, वे यौन, क्षुधा और पिपासा हैं। हम क्रम से इन पर विचार करेंगे।

## यौन-व्यवहार :

यौन-व्यवहार में तंत्रिका-तंत्र किस रूप में क्रियाशील रहता है, इस तथ्य की खोज करने वाले अनुसंधानकर्त्ता प्रयोगों को बहुत कुछ संवेगात्मक व्यवहार में वर्णित प्रयोग के सदृश ही करते हैं। निम्नांकित प्रयोग (डेम्पसे एवं रायच; १९३९) इसका एक उदाहरण है :

> "मादा जंतुओं के अग्र-मस्तिष्क और मध्य-मस्तिष्क को बीच से काटा गया और तब उनमें विशेष मैथुन-व्यवहार उद्दीप्त करने का प्रयत्न किया गया। मैथुन-व्यवहार तब तक सामान्य रहा, जब तक अधश्चेतक का पश्च भाग और अधश्चेतक के पीछे का क्षेत्र ( जो स्तनाकार पिंड कहलाता है ) अक्षत रहे। यदि किसी प्रकार वह काट मध्य मस्तिष्क से होता हुआ इन स्थलों को भी पार कर गया, तो जंतु पूर्ण मैथुन-व्यवहार में लीन नहीं रह सके।"

इस प्रकार के प्रयोगों के उपरांत अगला कदम है अधश्चेतक में सीमित क्षतों को करना। यह प्रयोग विभिन्न जंतुओं पर, नर और मादा दोनों पर किया गया। एक बहुत स्पष्ट प्रयोग (ब्रुक हार्ट और डे, १९४१ डे एट० एल०, १९४०) में अधश्चेतक के क्षतों ने नर और मादा दोनों के यौन-व्यवहार को समाप्त कर दिया और यौन-व्यवहार को उद्दीप्त करने वाले हार्मोनों (देखिए, अध्याय ३) की कोई मात्रा पुनः उनमें उसे उद्दीप्त न कर सकी। इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा शरीर-क्रिया-वैज्ञानिक यह विश्वास कर सके कि हार्मोन अधश्चेतक को तथा सहचारी संरचनाओं को उद्दीप्त करते हैं तथा इसी स्थल से यौन-अनुक्रियाएँ व्यवस्थित होती हैं।

## क्षुधा ( Hunger ) :

हमें महत्त्वपूर्ण प्रमाण उपलब्ध हैं, जो सिद्ध करते हैं कि क्षुधा को अधश्चेतक नियंत्रित करता है। इस प्रमाण को उपस्थित करने में प्रयुक्त प्रमुख प्रविधि हैं कि अवश्चेतक में अपेक्षाकृत लघु क्षत किए जाएँ और खाने की क्रिया पर उनके प्रभावों को परिमापित किया जाए। एक केंद्रक, जो अधश्चेतक की मध्यरेखा के निकट

अवस्थित है, क्षुधा और खाने की क्रिया को नियंत्रित करता है, जब वह नष्ट कर दिया जाता है, तो जंतु में अति तीव्र क्षुधा जागृत हो जाती है। ब्रोबेक; १९४६)।

ये जंतु, आपरेशन से स्वस्थ होने के पूर्व ही, प्रायः भोजन पर टूट पड़ते हैं और बड़ी मात्रा में उसे खाते हैं। उनकी अत्यधिक भूख दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है, उनका वजन तीव्रता से बढ़ने लगता है और वे अपने सामान्य वजन से तिगुने वजन को प्राप्त कर लेते हैं। तब उनकी गति कुछ कम होती है और वे उतने वजन को बनाए रखते हैं। चित्र २०.७ में आप एक चूहे का चित्र देखते हैं, जिनमें अधश्चेतक में एक लघु क्षत द्वारा अति स्थूलता उत्पन्न की गई है।

प्रयोगकर्त्ताओं ने ऐसे जंतुओं का अध्ययन यह जानने के लिए किया है कि उनमें क्या क्षति हुई है। उनका उपापचयन सामान्य है और शरीर-यंत्र की अन्य वस्तुएँ भी प्रायः सामान्य हैं, प्रत्यक्षतः मुख्य तथ्य यही दिखायी देता है कि उनकी क्षुधा नियंत्रण की सीमा से बाहर पहुँच गई है। संभवतः यह अधश्चेतक केंद्रक ही है, जो कुछ स्थूल मनुष्यों में क्षत हो जाता है। दूसरी ओर इसकी भी संभावना है कि मनुष्यों में अति स्थूलता का कारण क्षत अधश्चेतक न होकर प्रायः भोजन की बुरी आदतें और व्यक्तित्व की कठिनाइयाँ हों।

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि अधश्चेतक में एक दूसरा केंद्रक भी है, जिसका कार्य ठीक इसके विपरीत है। जब प्रयोगकर्त्ता अत्यधिक क्षुधा उत्पन्न करने वाले क्षत (**Lesion**) के पार्श्व में एक इंच के लघु अंश की दूरी पर दूसरा क्षत करता है, तो परिणामस्वरूप जंतु की भूख बिलकुल समाप्त हो जाती है (टेटलबाम और स्टेलर, १९५४)। ऐसे जंतु, जब तक विशेष सावधानी न रखी जाए, पुनः कभी भोजन को स्पर्श भी नहीं करते और यदि उन्हें एकाकी छोड़ दिया जाए, तो वे अंत में 'ऐच्छिक' बुभुक्षा (अनशन) से मर जाते हैं। कृत्रिम उपायों ( आमाशय ट्यूब ) से जंतुओं को बचाकर और विशेष रूप से वांछित भोजन, जैसे चाकलेट, देकर प्रयोगकर्त्ता उनमें से कुछ जंतुओं को पुनः भोजन खाना सिखा सके। महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि निद्रा के ही समान क्षुधा के भी केंद्रकों के दो युग्म हैं, एक नियंत्रित प्रभाव उत्पन्न करता है और दूसरा उद्दीपनकारी प्रभाव।

तृषा (**Thirst**) ;

हम तृषा के केंद्रीय प्रक्रमों के संबंध में अपेक्षाकृत बहुत कम जानते हैं, किंतु वे भी कुछ यौन और क्षुधा के प्रक्रमों के ही सदृश प्रतीत होते हैं। अधश्चेतक में एक स्थूल है, जिसे नष्ट कर देने पर जंतु अतिशय प्यास अनुभव करता है। यह स्थूल तंतुओं को नीचे पिट्यूटरी ग्रंथि की ओर भेजता है, जिसका जल-उपापचयन में महत्त्व-

पूर्ण भाग रहता है। वस्तुतः पिट्यूटरी के एक भाग के क्षत होने पर जल की खपत अतिशय बढ़ जाती है, जिसे **अतितृषा** (Polydipsia) कहते हैं। इसका संबंध पिट्यूटरी के एक हारमोन से है, जो जल के उत्सर्जन को नियंत्रित करता है। जब इस हार्मोन का अभाव हो, जल का उत्सर्जन बहुत तीव्रता से होने लगता है और फलस्वरूप शरीर में जल की कमी हो जाती है। जल की कमी ही बढ़ी हुई तृषा का कारण है; क्योंकि यह तृषा के उत्पन्न होने से पूर्व होती है। तथ्यों का यह क्रम हमें तृषा-प्रक्रम के निकट नहीं ले जाता। हम तब भी नहीं जान सकते कि शरीर में जल की कमी तृषा को किस प्रकार उत्पन्न करती है।
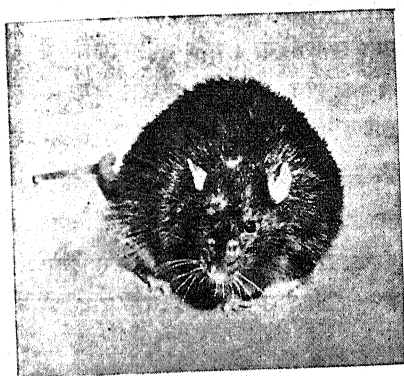
**चित्र २०·७ एक अति-स्थूक चूहा। यह चूहा अतिशय पेटू है, और अधश्चेतक में क्षुधा-संबंधी लघु शल्य-क्षत के परिणामस्वरूप इसका वजन प्रायः दुगना हो गया है।**

एक महत्त्वपूर्ण अनुमान यह है कि रक्त में लवण के बढ़ने से अधश्चेतक में तृषा-केंद्रक सीधा उद्दीप्त होता है। जब शरीर पसीने और उत्सर्जन द्वारा जल खो देता है, तो यह रक्त में सामान्यतः पाए जाने वाले लवणों को जमा करने की ओर प्रवृत्त होता है, जिससे उनका जमाव बढ़ जाता है। हम यह नहीं जानते कि यह स्थिति अधश्चेतक को सीधे उद्दीप्त करती है या नहीं, किंतु हम इतना अवश्य जानते हैं कि अधश्चेतक में उपयुक्त बिंदु पर प्रयोग किया गया लवण-घोल तृषा को बढ़ाता है। अगले अनुभाग में हम इस पर विचार करेंगे।

### केंद्रीय उद्दीपन (Central Stimulation) :

केंद्रीय उद्दीपन विधि का प्रयोग यौन, क्षुधा एवं तृषा के केंद्रीय प्रक्रमों के अध्ययनार्थ किया गया है। हमने इसका उल्लेख पहले नहीं किया; क्योंकि पृथक् रूप से यह अधिक सुगमता से स्पष्ट किया गया है। इसका उपयोग दो रूपों में किया गया है : विद्युतीय उद्दीपन के रूप में, प्रायः अधश्चेतक बिंदु पर अथवा उसके निकट तथा घोल या हार्मोन के साथ जीव-रासायनिक उद्दीपन। विद्युत्-उद्दीपन का उपयोग

क्षुधा के अध्ययन में और जीव-रासायनिक उद्दीपन का यौन और तृषा के अध्ययन में किया गया है। शृंखलाबद्ध प्रयोगों में (मिलर, १९५८), जिनका विवरण हम यहाँ देंगें, विद्युद्ग्रों को चूहों के अधश्चेतक में रोपा गया था :

> "जब विद्युद्ग्रों को विशेष स्थलों पर रोपा गया, जो उन स्थलों के पर्याप्त तदनुरूपी प्रतीत हुए जिनके विनाश मे क्षुधा उत्पन्न होती है, तब विद्युतीय उद्दीपन ने उस स्थिति को उत्पन्न किया जिसमें क्षुधा का बढ़ना प्रकट हुआ। यह अनेक रूपों में प्रदर्शित किया गया। चूहे के पूर्ण तृप्ति से भोजन करने के उपरांत विद्युतीय उद्दीपन को चालित किया। उसके तुरंत बाद चूहे ने पुनः खाना प्रारंभ किया, यदि खाने योग्य भोजन उसे न प्राप्त हुआ तो जो कुछ भी उसे उस समय मिलेगा, उसे कुतरने लगेगा। जब उद्दीपन बंद कर दिया गया, तो चूहे ने कुतरना और खाना छोड़ दिया। यदि उद्दीपनकाल में दूध उपलब्ध था, तो चूहे ने उसे पिया। उद्दीपन तृपा की अपेक्षा क्षुधा उत्पन्न करता था; क्योंकि चूहे ने शुद्ध पानी नहीं पिया।
>
> विद्युतीय उद्दीपन का प्रयोग तृप्त चूहे को अभिप्रेरित करके किसी अनुक्रिया को सिखाने में अथवा अधिगत अनुक्रिया को करने में भी किया जा सकता है। चूहा T व्यूह को उद्दीपनकाल में सरलता से पार कर लेगा और अंत में भोजन का पुरस्कार प्राप्त करेगा, किंतु उसके पहले या बाद में वह उसे नहीं करेगा।"

एक प्रयोग में (एंडरसन, १९५३) रासायनिक उद्दीपन के प्रयोग के लिए एक बकरी में पतली नली लगायी गई, जिसका एक छोर अधश्चेतक के सामान्य क्षेत्र में लगाया गया। बकरी को अपेक्षित जल दिया गया और उसके बाद इस नली द्वारा लवण-घोल उसे दिया। इस पर बकरी ने पुनः तीव्रता से जल पीना प्रारंभ कर दिया।

बिल्लयों पर, तुलना योग्य किंतु विपरीत, प्रभाव देखा गया। जल-वंचन द्वारा तृषित रखी गई बिल्लियों ने लघु मात्रा में जल शरीर में पहुँचने (इंजेक्ट) पर जल पीना बंद कर दिया ( मिलर, १९५८)। ऐसे ही प्रयोग हार्मोनों के साथ भी किए गए हैं ( फिशर, १९५६ )। यौन-व्यवहार से संबंधित नर हार्मोन की लघु मात्रा को मस्तिष्क में इनसे संबंधित स्थल पर इंजेक्शन देने से यौन-व्यवहार उद्दीप्त हो जाता है और कुछ उदाहरणों में मातृत्व व्यवहार भी उद्दीप्त होता है। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि उसी स्थल पर विद्युतीय उद्दीपन ऐसा प्रभाव उत्पन्न नहीं करता। इससे यह प्रकट होता है कि अपेक्षित रासायनिक उद्दीपन में निहित तंत्रिका कोषाणु विद्युतीय की अपेक्षा अधिक संवेदनशील हैं।

संप्रति केवल कुछ वर्षों में इस प्रकार के प्रयोग प्रारंभ किए गए हैं और उनके पूर्ण उपयोग में अभी कुछ समय लग जाएगा। ऐसे प्रयोगों के साथ जो विनाशक विधि का प्रयोग करते हैं, वे अपेक्षाकृत विशेष केंद्रकों के विषय में बतलाते हैं, प्रायः केंद्रकों के युग्मों के संबंध में, जो परस्पर एक दूसरे को संतुलित करते हैं तथा विभिन्न शारीरिक प्रेरणों को नियंत्रित करते हैं। अब तक महत्त्व अधश्चेतक को दिया गया था और हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि तंत्रिका-तंत्र का यह लघु भाग ऐसे केंद्रकों को अपने में स्थान दिए हुए हैं, जो संभवतः नियंत्रण के प्रमुख स्थल हैं। यह भी निश्चित है कि मस्तिष्क के अन्य भाग भी इन केंद्रकों पर कुछ प्रभाव डालते हैं, किंतु भविष्य के अनुसंधान हमें बता सकेंगे कि वे क्या हैं तथा अभिप्रेरण के प्रक्रमों में वे किस रूप में समायोजित होते हैं।

## अधिगम तथा चिंतन :

संभवतः तंत्रिका-तंत्र की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह हमें सीखने एवं चिंतन करने की योग्यता देता है। इसी हेतु अधिगम और चिंतन को स्पष्ट करने वाले तंत्रिका-प्रक्रमों पर बहुत अनुसंधान किया गया है। यह अनुसंधान दो सामान्य प्रश्नों पर विशेष रूप से किया गया है, प्रथम सूक्ष्म स्तर पर है और द्वितीय स्थूल स्तर पर। प्रथम प्रश्न है, अधिगम को संभव बनाने के लिए तंत्रिका-कोशिकाओं अथवा उनके संदृढ़ संयोजन में क्या परिवर्तन होते हैं? यद्यपि इस पर भिन्न रूपों में विचार हो चुका है, फिर भी इस प्रश्न का कोई निश्चित उत्तर नहीं है। सामान्य दृष्टिकोण, यद्यपि इसका कोई प्रमाण नहीं है, यह है कि अधिगम में संदृढ़ संयोजन में किसी प्रकार का परिवर्तन निहित रहता है, जो आवेगों के पथ को पहले की अपेक्षा अधिक सुगम बना देता है। संभवतः उस क्षण तंतु निकट आ जाते हैं। किंतु, यह केवल अनुमान है। दूसरा प्रश्न तंत्रिका-तंत्र के केंद्रकों और परिपथों से संबंधित है: तंत्रिका-तंत्र के कौन से भाग विशेष प्रकार के अधिगम में निहित रहते हैं? इस द्वितीय प्रश्न का कुछ उत्तर हम दे सकते हैं और इस अनुभाग में हम उसका विवेचन करेंगे।

## अनुबंधन :

अनुबंधन को प्रायः अधिगम का सरलतम प्रकार कहा गया है(देखिए, अध्याय ७)। इसी हेतु हम अनुमान कर सकते हैं, कोई प्राणी, यदि वह कुछ सीख सकता है, तो वह अनुबंधित अनुक्रिया सीख सकता है। इसीलिए अनुसंधानकर्त्ताओं ने अनुबंधन विधि का प्रयोग यह खोजने की चेष्टा में किया है कि तंत्रिका-तंत्र के कौन से भाग अधिगम में सक्षम हैं। उनकी विधि विशेषतः तंत्रिका-तंत्र के किसी भाग को पृथक् करने की—यह उसे तंत्रिका-तंत्र के अन्य भागों से अलग काट देने की—रही है और

इसके उपरांत जंतु की अनुबंधित प्रतिक्रिया सीखने की योग्यता का परीक्षण किया जाता है।

अनेक वर्षों तक यह धारणा थी कि तंत्रिका-तंत्र का सर्वोच्च भाग प्रमस्तिष्क प्रांतस्था, अत्यधिक प्रारंभिक अनुबंधन के लिए भी आवश्यक था। अब हम जानते हैं कि यह आवश्यक नहीं है। प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के बिना जो व्यक्ति उत्पन्न होते हैं अथवा जिन जंतुओं के प्रमस्तिष्क प्रांतस्था प्रयोगार्थ काट कर अलग कर दिए हैं, वे भी दोनों अनुबंधित किए गए हैं। किंतु, इस अनुबंधन की भी सीमाएँ हैं। सामान्य जंतु अपने पंजे को तत्परता एवं सुगमता से उठाना सीख लेता है, जब उसे उपस्थित आघात का संकेत मिलता है। दूसरी ओर छिन्न प्रांतस्थ (Decorticate) जंतु विशेष प्रकार मे चीखना और चिल्लना सीखता है किंतु वह सुगम 'अनुकूल' (Adaptive) अनुक्रिया नहीं सीखता(कूलर, १९३८)। अतः, छिन्न-प्रांतस्थ जंतु अनुकूलन में सामान्यतः पायी जाने वाली कुछ योग्यता को खो देता है, तथापि वह अनुबंधन उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया करना सीख सकता है।

और भी अनेक प्रयोग हैं, जिनकी अभिकल्पना यह निर्धारित करने के लिए की गई है कि किसी विशेष प्रकार के अनुबंधन के लिए कुछ विशेष संवेदी केंद्रक आवश्यक हैं या नहीं। उदाहरणतः क्या दृष्टि-प्रांतस्थ (Visual Cortex) दृष्टिक अनुबंधित प्रतिक्रिया के लिए आवश्यक है ? दृष्टि में एवं अन्य इंद्रियों में भी उत्तर 'नहीं' के रूप में प्रकट होता है। दृष्टि प्रांतस्था की अनुपस्थिति में भी एक कुत्ते को प्रकाश के चमकने पर आँख झपकाना सिखाया जा सकता है। (इस उदाहरण में अननुबंधित-उद्दीपन; नेत्र-गोलक के लिए; वायु का झोंका है।) न ही अनुबंधित प्रतिक्रियार्थ स्मृति में, दृष्टि प्रांतस्था के पृथक् करने पर, किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित होता है। इन तथ्यों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि सामान्यतः कुछ अनुबंधन उप-प्रांतस्था केंद्रकों (Sub-cortical Centres) में घटित होता है।

### भेदमूलक अधिगम :

किंतु, यह कथन अधिक जटिल अधिगम के लिए सत्य नहीं है। जंतु के समक्ष अनुबंधन की अपेक्षा भेद समझने के कार्य का उदाहरण लिया जाए। दो खिडकियों में से एक को चुनना हो, एक प्रकाशयुक्त हो और दूसरी प्रकाशहीन हो; तो सही खिड़की के चुनने पर उसे पुरस्कृत और गलत खिड़की को चुनने के लिए दंडित करना आवश्यक हो सकता है। एक जंतु जिसे यह भेद करना सिखाया गया हो, और यदि बाद में उसकी दृष्टि-प्रांतस्था को पृथक् कर दिया जाए, तो उसका यह सीखा हुआ ज्ञान 'विस्मृत' हो जाता है। उसी अंतर को समझने का यदि उसे पुनः अवसर दिया जाए, तो वह उसे सीखने में उतनी ही बार प्रयत्न एवं भूलें करेगा, जितनी उसने आपरेशन से

पूर्व उसे सीखने में की थी (लेशले, १९३५)। फलतः ऐसा प्रतीत होगा कि **संवेदी** प्रांतस्था भेदमूलक **अधिगम** के लिए आवश्यक **नहीं** है, किंतु उसे **स्मरण** रखने के लिए यह आवश्यक है यदि वह मस्तिष्क के क्षत करने से पूर्व अधिगम किया गया है। स्पष्टतः उप-प्रांतस्थीय केंद्रक प्रांतस्थीय स्तर पर हुए अधिगम कार्यों का स्थान ले सकते हैं।

इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए हमने दृष्टि को लिया है,किंतु अन्य इंद्रियों पर किए गए अनेक प्रयोग हैं, जो इसी परिणाम को पुष्ट करते हैं। हम अब तक यह समझ नहीं सके हैं कि तंत्रिका-तंत्र का एक भाग दूसरे के क्षत होने पर क्यों उसका स्थान ले लेता है। तथापि यह तथ्य तंत्रिका-तंत्र की क्रिया को समझने के लिए महत्त्व-पूर्ण है। इसका अर्थ है-कि कुछ सीमाओं में क्रिया का संतुलन ( Equivalence of Function) है एक प्रकार का क्षतिपूरक आश्वासन—जो किसी विशेष केंद्रक या क्षेत्र के क्षत से हुई अक्षमता का पूरक होता है (लेशले, १९२९)।

तंत्रिका-तंत्र की वह क्षमता हर प्रकार के अधिगम पर लागू **नहीं** होती। यदि हम चूहे को भिन्न प्रतिरूपों में भेद करना सिखाएँ जैसे एक त्रिकोण से एक गोलाकार की भिन्नता और यह सिखाने के बाद उसकी प्रांतस्था को नष्ट कर दें, तो वह फिर कभी इस अंतर को नहीं सीख सकेगा। इस उदाहरण में दृष्टि-प्रांतस्था प्रतिरूपों में भेद करने की योग्यता के लिए परम आवश्यक है और इस योग्यता का स्थान दृष्टि-तंत्र का कोई अन्य भाग नहीं ले सकता।

प्राथमिक संवेदी क्षेत्रों के अतिरिक्त प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के अन्य क्षेत्र भी हैं, जो भेदमूलक अधिगम में निहित रहते हैं (द्रष्टव्य, चित्र २०.८)। दृष्टि प्रांतस्था के ठीक सामने और उसे कुछ अधिक या कम घेरे हुए क्षेत्र हैं, जिसे कभी-कभी **दृष्टि-साहचर्य क्षेत्र** (Visual-Association Area) अथवा (शरीर-रचना वैज्ञानिकों द्वारा) प्रेस्ट्रेट क्षेत्र (Prestriate Area) कहा जाता है, जो बोधन-अधिगम (Somesthetic Learning) से संबंधित है। और शंखपालि के प्राथमिक श्रवण क्षेत्र के निकट का **श्रवण-साहचर्य क्षेत्र** का कार्य करता है। अतः, प्रत्येक इंद्रिय का उसके प्राथमिक प्रांतस्था क्षेत्र के निकट एक क्षेत्र होता है, जो साहचर्य-क्षेत्र का कार्य कर सकता है।

अभी भी इन साहचर्य-क्षेत्रों के संबंध में बहुत कुछ जानना शेष है और अभी यह संभव नहीं है कि हम उनकी वस्तुतः निश्चित क्रियाओं को निर्धारित कर सकें। पर, उनके संबंध में दो सामान्य बातें कही जा सकती हैं। प्रथम, कभी-कभी उनमें प्राथमिक क्षेत्रों के साथ संतुलन की क्रिया होती है। अगले पृष्ठ के उदाहरण में यह तथ्य स्पष्ट किया गया है (अडेल, १९४६) :

प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के भिन्न साहचर्य-क्षेत्रों के कार्य भिन्न रहते हैं।
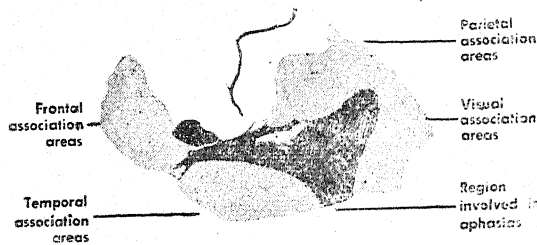
चित्र २०·८ प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के साहचर्य-क्षेत्र।

"प्रयोगकर्त्ता ने बंदरों को आकार, रंग और रूप के भेदों को सिखाया, तब उसने उनके दोनों ओर के प्रेस्ट्रेट क्षेत्रों को काट कर पृथक् कर दिया। शल्यचिकित्सा के क्षतों को स्वस्थ होने का पर्याप्त समय देकर उसने उनकी भेद करने की आदतों का परीक्षण किया। उसने देखा कि उनका उन आदतों का पूर्णतः स्मृति-लोप—स्मृति का विनाश—हो गया था। गहन पुनर्भ्यास द्वारा वे उन आदतों को प्रायः उसी तीव्र गति से सीख सके, जिस गति से आपरेशन से पूर्व उन्होंने सीखा था। अतः, प्रयोगकर्त्ता ने प्रमाणित किया कि प्रेस्ट्रेट साहचर्य-क्षेत्र उस आदत को मूलतः सीखने में महत्त्वपूर्ण थे, किंतु दृष्टि-तंत्र का शेष भाग उनकी अनुपस्थिति में उनके स्थान को ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त कर सकता है। ये ही परिणाम अन्य साहचर्य-क्षेत्रों और उन पर आधृत उनके भेद-ज्ञान के संबंध में भी प्राप्त हुए।"

द्वितीय सामान्य वक्तव्य प्रांतस्था के इन संवेदी साहचर्य-क्षेत्रों के संबंध में हम यह दे सकते हैं कि वे अधिक जटिल संवेदी भेद ज्ञान में निहित हैं। निम्नांकित प्रयोग इस कथन को स्पष्ट करता है—(रच० एट० एल०, १९३८)।

"एक अनुसंधानकर्त्ता ने एक चिंपांजी को केवल स्पर्श द्वारा कोन और पिरामिड-आकारों में भेद करना सिखाया। जंतु वस्तुओं को देख नहीं सकता था और केवल स्पर्श द्वारा उसे उनमें भेद करना था। उसने चिंपांजी को फन्नी और पिरामिड-आकारों का अधिक कठिन भेद भी सिखाया। इसके उपरांत उसके पश्च पार्श्विक क्षेत्र को काट दिया। आपरेशन के बाद जंतु दोनों विभेद भूल गया, पुनर्शिक्षण के उपरांत वह कोन और पिरामिड-विभेद को पुनः अधिगत करने में सक्षम हो सका। किंतु, पुनर्शिक्षण की कोई मात्रा उसे पुनः फन्नी और पिरामिड के भेद को नहीं सिखा सकी, जो जटिल विभेद था। अतः, ऐसा प्रतीत होता है कि कठिन विभेदों को सीखने के लिए साहचर्य-क्षेत्रों का होना आवश्यक है।"

**स्मृति-विकार (Memory-disorders) :**

यद्यपि मनुष्य की अपेक्षा जंतुओं पर मस्तिष्क की क्रियाओं के अधिक निश्चित प्रयोग किए जा सकते हैं, किंतु मनुष्य-प्रयोग-पात्र सामान्यतः अनेक ऐसे जटिल कार्य सीख लेते हैं, जिन्हें जंतु बहुत अधिक परिश्रम से ही सीख पाते हैं अथवा उसके बाद भी नहीं सीख पाते। एक बार यह जान लेने पर कि वे क्षत हुए हैं, उन पर पर्याप्त गहन और सरलता से परीक्षण किया जा सकता है। इसी हेतु, स्मृति एवं मस्तिष्क की क्रियाओं के संबंध में हमारा अधिकांश ज्ञान उन व्यक्तियों से प्राप्त किया हुआ है, जिन्हें मस्तिष्क-आघात या चोट सहन करनी पड़ी है।

मस्तिष्क-क्षत व्यक्तियों में जो स्मृति-विकार देखे जाते हैं, उन्हें तीन सामान्य वर्गों में विभाजित किया गया है : वाचाघात ( Aphasia ) प्रत्यक्ष अक्षमता (Agnosia) और चेष्टा-अक्षमता (Apraxia)। **वाचाघात** का संबंध भाषागत क्रियाओं से है, जिसके अंतर्गत अंकगणित, गणित तथा शब्द और नाम आते हैं। भाषागत योग्यता और स्मृति की कोई भी हानि वाचाघात कहलाती है। दूसरी ओर प्रत्यक्ष अक्षमता अभाषागत है। यह किसी वस्तु को पहचानने की अक्षमता है, उदाहरणार्थ कांटा (फोर्क), मोटरगाड़ी या पेंसिल को पहचानने की अक्षमता—उनके नाम नहीं पर उनके उपयोग को पहचानने का विस्मरण। अंत में, चेष्टा-अक्षमता का संबंध चेष्टाओं से है, किसी कार्य को किस प्रकार करना चाहिए इसका विस्मरण, जैसे, गेंद को कैसे फेंका जाता है, दरवाजा कैसे खोला जाता है, वस्त्र कैसे पहने जाते हैं अथवा मोटरकार कैसे चलायी जाती है। इनमें प्रत्येक स्मृति-विकार अनेक प्रकारों में उप-विभाजित किया जा सकता है। उदाहरणतः वाचाघात को संवेदी-वाचाघात, जो भाषा को समझने की अक्षमता है, चालक-वाचाघात जो भाषा को वाणी या लेखन द्वारा प्रकट करना है, में विभाजित किया जा सकता है। किंतु, अधिकांश प्रकारों का यहाँ विवेचन आवश्यक नहीं है।

स्मृति-विकारों को एक और प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है, अभि-व्यंजक-विकार तथा संग्रहणशील विकार। सामान्यतः अभिव्यंजक-विकार (चेष्टा-अक्षमता और चालक वाचाघात) ललाट-पालि पर आधृत हैं और संग्रहणशील विकार (प्रत्यक्ष अक्षमता और संवेदी वाचाघात) अन्य पालियों पर आधृत हैं। उदाहरणतः, जब हमें किसी ऐसे व्यक्ति का सामना करना पड़ता है, जो न कुछ बोल सकता है या न कुछ लिख सकता है, जबकि वह उन्हें समझता है और अन्य योग्यताएँ भी उसमें हैं, हम अपेक्षाकृत निश्चित रूप से कह सकते हैं कि उसकी ललाट-पालियों में चोट लगी है या क्षत हुआ है। दूसरी ओर यदि सुनने पर वह भाषा का अर्थ ग्रहण न करे या

परिचित वस्तुओं और व्यक्तियों के नामों को न पहचाने, तो इसकी संभावना अधिक रहती है कि चोट उसके मस्तिष्क के सुदूर पश्च भाग में लगी है ।

तंत्रिका-वैज्ञानिकों के मध्य इसमें पर्याप्त मतभेद है कि स्मृति-विकारों को किस निश्चय के साथ प्रांतस्था के किन विशेष भागों पर आधृत किया जा सकता है । पर, यह पर्याप्त निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि प्रांतस्था के पार्श्व-ललाट-क्षेत्र में **वाणी का क्षेत्र** है । जब यह क्षेत्र क्षत हो जाता है, व्यक्ति को वाचाघात हो जाता है, वह स्मरण नहीं कर पाता कि बोलने के लिए अपेक्षित ध्वनियाँ वह कैसे उत्पन्न कर सकता है । यह भी संभवतः सत्य है । संभवतः यह भी सत्य है कि उससे कुछ आगे **ललाट-पालि में लेखन** का क्षेत्र है । व्यक्ति के लिए भाषा लिखने और चित्र बनाने-जैसे संश्लिष्ट कार्य को करने की विधि को स्मरण रखने के लिए; आवश्यक है कि उसका यह क्षेत्र अक्षत रहे । संवेदी वाचाघात और प्रत्यक्ष अक्षमता के क्षेत्रों की अवस्थिति और भी विवादग्रस्त है, किंतु कुछ तंत्रिका-वैज्ञानिक अनेक उदाहरणों के पर्यवेक्षण के उपरांत विश्वास करते हैं कि उनके क्षेत्रों का भली-भाँति वर्णन किया जा सकता है ।

मनुष्य में स्मृति-क्रियाओं की अवस्थिति पूर्णतः निश्चित नहीं हो सकती; क्योंकि मनुष्य के लिए प्रायः—किसी 'विस्मृत' क्रिया को पुनः सीखना संभव रहता रहता है । संवेदी अधिगम के ही समान विस्मृत और बचे हुए भागों के तुल्य कुछ भाग होते हैं । व्यक्ति को केवल पुनः अधिगम की दीर्घकालीन परिश्रमशील प्रक्रिया का प्रारंभ करना होगा, जिसे बचपन में उसने महीनों या वर्षों में सीखा था । यदि वह पढ़ना भूल गया है—उसे पुनः वर्णमाला सीखनी होगी, तब सरल शब्द, उसके बाद सरल वाक्य और फिर अधिक जटिल वाक्य । जब तक चोट बहुत गहरी न हो अथवा कोई दूसरी चोट उसे न लगी हो, जैसा कि वृद्ध व्यक्तियों में रुधिर-स्राव से हो जाता है, तो इसकी पर्याप्त संभावना रहती है कि कम-से-कम वह विस्मृत क्रिया को आंशिक रूप से अवश्य अधिगत कर सकता है ।

### ललाट साहचर्य क्षेत्र (Frontal Association Areas) :

चित्र २०·८ में ललाट-पालि के अपेक्षाकृत बड़े क्षेत्र प्रदर्शित हैं, जो विशिष्ट प्रकार की स्मृतियों से संबंधित हैं, किंतु वे बौद्धिक प्रक्रियाओं से भी संबंधित हैं । ये **अग्रललाट क्षेत्र** अथवा **ललाट साहचर्य क्षेत्र** कहलाते हैं । जंतु अथवा मनुष्य के मस्तिष्क से इन्हें काट कर अलग कर देने के फलस्वरूप उनकी योग्यता और व्यक्तित्व में अनेक परिवर्तन होते हैं । अग्रललाट क्षेत्रों के विनाश का एक परिणाम होता है—किसी कार्य को भली-भाँति कर सकने की अयोग्यता का प्रकट होना ।

इस तथ्य को प्रयोगों द्वारा प्रायः प्रदर्शित किया गया है ( जेकबसन १९३५, हार्लो और जांनसन, १९४३ ), जो प्राय : बंदरों पर विलंबित प्रयोगों के रूप में किए गए हैं ।
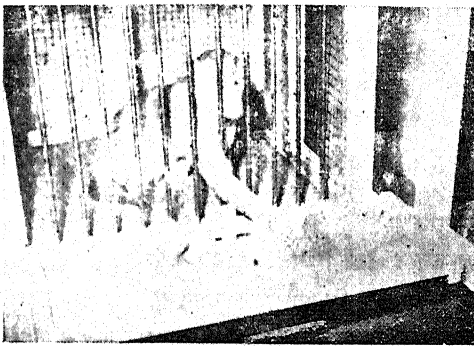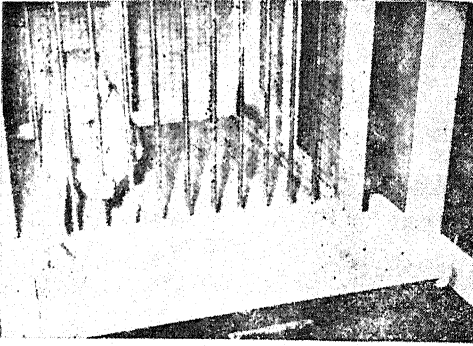
**चित्र २०.९ एक विलंबित-प्रतिक्रिया-समस्या को सुलझाने में लीन एक बदर। ऊपर वाले चित्र में बंदर को सही उद्दीपन (धूसर वर्ण का त्रिकोण) दिखाया गया है और उसके नीचे उसे भोजन खोजने की सुविधा दी गई। कुछ विलंब के उपरांत बंदर (नीचे वाले चित्र में) के समक्ष अनेक उद्दीपन ( धूसर गोला, श्वेत क्रॉस, धूसर त्रिकोण और श्वेत गोला) प्रस्तुत किए। वह धूसर त्रिकोण को पीछे धकेल कर और उसके नीचे से भोजन प्राप्त करके प्रदर्शित करता है कि उपयुक्त उद्दीपन उसे स्मरण है।**

"बंदर को दिखाया जाता है कि भोजन किसी विशेष वस्तु के नीचे रखा गया है (देखिए, चित्र २०.९) तब उसके समक्ष एक पर्दा खींच दिया जाता है कि जिससे वह उसकी ओर देखता न रहे। थोड़ी देर बाद पर्दा उठा दिया जाता है, बंदर का कार्य है विभिन्न वस्तुओं में से उस सही वस्तु का चयन करे, जिसके नीचे भोजन पड़ा है। सामान्य बंदर इसे कुछ मिनटों के विलंब से सीख लेते हैं (देखिए, अध्याय—७)। अग्र ललाटी बंदर—जिनमें अग्रललाट क्षेत्रों का अभाव है—प्रायः उसे करने में असफल रहते हैं, यदि यह विलंब कुछ सेकेंडों से अधिक हो। बिलंब-काल में प्रकाश को बुझा कर अथवा किसी अन्य क्रिया द्वारा जंतु के ध्यान को किसा अन्य वस्तु की ओर

आकर्षित होने से बचा कर प्रयोगकर्त्ता संभवतः अग्रललाटी जंतुओं से कुछ कार्य करवा सकने में सफल हो सकता है।"

अतः, हम यह नहीं कह सकते कि यह समस्या बिना ललाट-पालि के कभी सुलझ नहीं सकती। तथापि उसके बिना यह बहुत कठिन अवश्य है। इस प्रयोग से तथा अन्य उदाहरणों से हम अग्र-ललाटी जंतुओं (Pre-frontal Animals) के संबंध में जो कुछ जानते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें किसी भी कार्य को करने में कठिनाई होती है।

अग्र-ललाट क्षेत्र में जिन व्यक्तियों के क्षत हो जाते हैं, वे विलंबित प्रतिक्रिया समस्या को सुलझा सकते हैं, स्पष्टतः उनके लिए बंदरों की अपेक्षा कोई भी ऐसा कार्य करना कम कठिन होता है। अनेक साधारण रूपों में वह किसी कार्य को करने, उसकी योजना बनाने एवं अपने ध्यान को केंद्रित करने में अक्षमता अभिव्यक्त करता है। उत्तरदायित्व से उसके दूर भागने की अधिक संभावना रहती है, भविष्य के लिए वह चिंतित नहीं होता, अन्य व्यक्तियों के प्रति अनुदार रहता है तथा अपनी वर्त्तमान प्रवृत्ति के प्रति वह सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक आवेगशील रहता है। कुछ निरीक्षक इन सब परिवर्तनों को संक्षेप में इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं कि अग्र-ललाट क्षेत्रों का संबंध मनुष्य की योजनाओं से तथा भविष्य के विचारों से रहता है और जो व्यक्ति अग्र-ललाट क्षेत्रों के रोगों से ग्रसित रहता है, वह भविष्य की चिंताओं से विरक्त हो जाता है।

१९३० के अंत में जब अग्र-ललाट क्षेत्रों से संबंधित यह संप्रत्यय विकसित हो रहा था, उसने यह संभावना भी प्रकट की थी कि मानसिक रोगों के कुछ प्रकारों का अग्र-ललाट क्षेत्रों को मस्तिष्क के निचले केंद्रकों से पृथक् करके या काट कर अलग कर देने से उपचार हो सकेगा। मानव रोगियों पर किए इस आपरेशन को **अग्र-ललाट शल्य** अथवा सामान्य भाषा में **साइको-सर्जरी** कहा जाता था (फ्रीमैन और वाट्स, १९५०)। इसका प्रयोग कभी-कभी ऐसे व्यक्तियों पर किया गया, जो भविष्य के लिए इतने अधिक चिंतित, दुखी और आतुर हो उठे थे कि वे मानसिक रोगी हो गए और उपचार की साधारण विधियाँ उनकी सहायता करने में सफल न हुईं। तंत्रिका-शल्य चिकित्सकों ( Neuro-surgeons ) ने कभी-कभी यह सूचना दी कि आपरेशन द्वारा रोगी की स्थिति में सुधार हुआ....कभी-कभी यह लाभ प्रचुर मात्रा में भी हुआ। किंतु, नियंत्रकों के तथा उन रोगियों के व्यवस्थित अध्ययन से इस कथन की पुष्टि नहीं हुई। सामान्यतः ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे रोगियों में जिनका आपरेशन हुआ हो और जिनका आपरेशन न हुआ हो, कुछ महीनों या वर्षों के उपरांत सुधार होने

लगता है (मैटलर, १९४९)। अतः, अब इस विधि को अन्यथा गंभीर और असाध्य रोगों के उपचारार्थ विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता।

**बुद्धि :**

एक ओर अधिगम और चिंतन और दूसरी ओर बुद्धि के मध्य कोई निश्चित विभाजन-रेखा नहीं खींची जा सकती। वस्तुतः बुद्धि का सामान्य अर्थ व्यक्ति की अधिगम-योग्यता और समस्याओं को सुलझाने की क्षमता से लिया जाता है। मनुष्यों में बुद्धि का परिमापन परीक्षणों के माध्यम से किया जाता है, जो सीधे अधिगम की योग्यता का परीक्षण नहीं करते, वरन् उन योग्यताओं को परिमापित करते हैं, जो पूर्वाधिगम द्वारा विकसित हुई हैं। जंतुओं में तुलनात्मक दृष्टि से अपक्व परिमापन उपलब्ध करने का प्रयत्न किया गया है। हम 'बुद्धि' का क्रम किसी कार्य को सीखने की योग्यता के परिमापन द्वारा करते हैं अथवा कार्य की जटिलता को निर्धारित करके, जिसे जंतु करना सीख सकते हैं, करते हैं। किसी भी स्थिति में अधिगम-प्रक्रिया की अपेक्षा हम सीखने की योग्यता से संबंध रखते हैं।

अतः, हम यह प्रश्न भी कर सकते हैं कि बुद्धि के लिए कौन-से शारीरिक कारक महत्त्वपूर्ण हैं। हमें इस संबंध में विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं है, किंतु हम कुछ ऐसे कारक खोज सके हैं जो बुद्धि के **अभाव** को स्पष्ट कर सके हैं, जैसे बुद्धि-दौर्बल्य (Feeble-mindedness)। इसके अतिरिक्त बुद्धि को विकसित करने के शारीरिक साधनों को खोजने का भी प्रयत्न किया गया है, जो अब तक असफल सिद्ध हुए हैं। हम दोनों का विवेचन करेंगे।

**बुद्धि-दौर्बल्य :**

संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग चालीस लाख व्यक्ति ऐसे हैं, जिनमें इतनी कम बुद्धि है कि उन्हें दुर्बल-बुद्धि (Feeble-minded) समझा जा सकता है (देखिए, अध्याय-१४)। जन्म के समय मस्तिष्क में क्षत होने से कुछ व्यक्ति दुर्बल-बुद्धि हो जाते हैं। किंतु अधिकांश दुर्बल-बुद्धि व्यक्तियों के इस रोग का कारण सहज ही नहीं बताया जा सकता। निम्न-बुद्धि कुछ परिवारों में ही देखी जाती है, अतः बहुत से दुर्वल-बुद्धि व्यक्ति सभवतः आनुवंशिक रूप से रुग्ण तंत्रिका-तंत्र प्राप्त करते हैं। ऐसे व्यक्तियों में हम अनुमान कर सकते हैं कि तंत्रिका-तंत्र की विकास-संरचना में और आंतरिक पर्यावरण में जीन (Genes) ने कुछ भूल की है, जिस पर वह निर्भर करता है। किंतु, अधिकांश ऐसे उदाहरणों में हम अब तक यह बताने में असमर्थ हैं कि वस्तुतः वह भूल क्या हुई है।

एक प्रकार की दुर्बल-बुद्धि आनुवंशिक होती है और उसका कारण है आंतरिक पर्यावरण में किसी दोष का होना, इसे **फेनिल-पाइरुविक मंद** बुद्धिता (Phenyl-

pyruvic Digophrenia) (जर्विस, १९३९) कहते हैं । यह अपेक्षाकृत बहुत विरल होती है, किंतु इसका आनुवंशिक प्रक्रम पर्याप्त स्पष्ट है । ऐसा प्रतीत होता है कि वह **एकाकी दोषपूर्ण जीन** के कारण उत्पन्न होती है, जो फेनिलपाइरुविक अम्ल को उपयोग में लाने वाले प्रकिण्व (एनजाइम) के लिए उत्तरदायी होता है । यह अम्ल मस्तिष्क के जलने वाले ईंधन से उत्पन्न होता है । साधारणत; यह रासायनिक प्रतिक्रिया द्वारा, जो एक विशिष्ट एनजाइम-नियंत्रित होता है, नष्ट कर दिया जाता है । यदि यह प्रतिक्रिया अवरुद्ध हो जाए और मस्तिष्क में अम्ल संचित हो जाए, तो फलस्वरूप व्यक्ति दुर्बल-बुद्धि हो जाता है । ऐसी दुर्बल-बुद्धिता का नैदानिक लक्षण है—फेनिलपाइरूविक अम्ल का उत्सर्जन । कुछ संचित अम्ल वृक्क के पथ से बाहर निकलता है और इसे उत्सर्जित करने वाले व्यक्ति निर्पवाद रूप से दुर्बल-बुद्धि होते हैं ।

चित्र २०·१० एक सत्रहवर्षीय, विकलांग लड़का, जो तीन वर्ष के लड़के के सदृश है । जन्म से ही इस लड़के में गल-ग्रंथि की कमी थी । गलग्रंथि की कमी ने इसके शारीरिक विकास का गतिह्रास कर दिया और यह मानसिक रूप से अविकसित रहा ।

एक अन्य प्रकार की दुर्बल-बुद्धिता, जुड़वामनता, में भी आंतरिक पर्यावरण स्पष्टत: निहित रहता है (देखिए, चित्र—२०·१०) । इसमें गलग्रंथि (Thyroid) हार्मोन की कमी रहती है । जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कि थायराइड हार्मोन उपापचयन की गति को व्यवस्थित करता है—ऊर्जा का उपयोग करता है—और जब उसकी कमी हो जाए, तो मस्तिष्क एवं शरीर के अन्य ऊत्तक सामान्य रूप में विकसित या क्रियाशील नहीं हो सकते । इस अभाव से ग्रस्त बालक जड़-वामन (क्रेटिन) हो जाता है—एक दुर्बल-बुद्धि बौना, उसका पेट खूब बढा हुआ और त्वचा मोटी एवं शुष्क होती है । सौभाग्य से इस रोग को हम बहुत पहले पहचानने में सफल हुए और

उसके उपशमन के लिए थायरायड हार्मोन का उपयोग करने लगे। थायरायड हार्मोन की कमी के मस्तिष्क पर कुछ ऐसे भी प्रभाव हैं, जो असाध्य हैं, विशेषतः यदि यह अभाव गंभीर हों, किंतु हार्मोन-चिकित्सा जड़वान् को अधिक सामान्य रूप से विकसित होने में सहायता करती है तथा सामान्य बुद्धि के निकट उसे ला देती है, जिसे वह अन्यथा प्राप्त नहीं कर सकता। थायरायड की कमी वयस्कों और बालकों दोनों में विकसित हो सकती है। उस रूप में उसे **मिक्सेडेमा** ( Myxedema ) कहते हैं।

ऑक्सीजन की कमी ( जिसे ऊत्तक-औक्सी क्षीणता, ऐनोविसया कहते हैं ) भी एक अन्य प्रकार की दुर्बल-बुद्धिता उत्पन्न करती है। यह समझ में आ सकती है; क्योंकि ऊर्जा प्राप्त करने और सामान्य क्रिया करने के लिए मस्तिष्क के लिए आक्सीजन प्राप्त करना आवश्यक है। यदि व्यक्ति दीर्घकाल तक आक्सीजन की अपेक्षित मात्रा प्राप्त करने से वंचित रखा जाए (अथवा कुछ मिनटों के लिए आक्सीजन से वह पूर्णतः वंचित रखा जाए ) और फिर भी वह जीवित रह जाए, तो इसकी संभावना रहती है कि वह बुद्धि की गंभीर क्षति से ग्रस्त हो जाएगा। यह रोग प्रायः नैदानिक अवस्था में उत्पन्न हो जाता है, जैसे जब कोई व्यक्ति श्वासावरोधन से प्रायः मरणासन्न हो जाता है अथवा किसी शल्य-चिकित्साकाल में दीर्घकाल तक उसके मस्तिष्क में जाने वाला रुधिर-प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है।

आक्सीजन-क्षीणता जन्म से पूर्व होने पर अथवा जन्म के समय होने पर अत्यधिक गंभीर होती है; क्योंकि मस्तिष्क का उस समय विकास हो रहा होता है और इसी समय में आक्सीजन-क्षीणता होने की संभावना भी अधिक रहती है। कभी कभी गर्भ की रक्त-प्राप्ति भी उपयुक्त मात्रा में नहीं होती है और फलस्वरूप आक्सीजन-क्षीणता हो जाती है। दुर्बल-बुद्धि व्यक्तियों का एक बड़ा वर्ग, मांगोलायइडो (Mongoloido) संभवतः इसी प्रकार विकसित हुआ है ( इंगालस, १९५२ )। कुछ स्थितियों में माता को ऐसी औषधि दी जाती है, जिससे यह रोग न हो। अन्य प्रभाव आक्सीजन की मात्रा की कमी से होता है और यह गर्भ को भी प्रभावित करता है। कुछ अन्य स्थितियों में शिशु का श्वास थोड़ी देर के लिए अवरुद्ध हो जाता है; क्योंकि माता के पास से आक्सीजन लाने वाली नाभिकी नाल उसके श्वास लेना प्रारंभ करने से पहले बंद हो जाती है। किसी भी स्थिति में जन्म के पूर्व अथवा जन्म के समय आक्सीजन की क्षीणता तंत्रिका-तंत्र में भयानक उपद्रव उत्पन्न कर सकती है और फलस्वरूप दुर्बल-बुद्धिता घटित हो सकती है।

साधारणतः हम कह सकते हैं कि इस विषय पर जंतुओं पर किए गए प्रयोगों द्वारा हमने पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध कर लिए हैं ( विंडल, १९५८ )। जिन

चूहों और गिनी पिग्ज का जन्म के समय आंशिक श्वासावरोधन हो जाता है, फिर उनका सामान्य विकास नहीं होता। वे व्यूह अथवा अन्य ऐसे विषयों को सामान्य क्रम से सीखने में असमर्थ रहते हैं। उनमें अन्य तंत्रिका-दोष (Neurological Defects) प्रकट होने लगते हैं। जैसे—आंशिक पक्षाघात, अंधापन, बहरापन एवं साथ-ही-साथ न्यून-बुद्धि।

### बुद्धि की उन्नति (Improving Intelligence) :

संभवतः पाठकों को यह जानने की उत्सुकता रही होगी कि क्या कोई औषधि अथवा रासायनिक तत्त्व बुद्धि को विकसित करने के लिए उपयोग किए जा सकते हैं; क्योंकि आज हमारे पास प्रायः प्रत्येक 'ऐसी बात के लिए जो आपके लिए कष्टकर हो' अद्भुत औषधियाँ हैं, तब बुद्धि के ही लिए क्यों न होंगी?' वैज्ञानिकों ने यह प्रश्न किया है और ऐसी अद्भुत औषधि को खोजने की चेष्टा भी की है। जड़वामन के उदाहरण में, हम जानते हैं कि थायरोक्सिन की क्षीणता की कठिनाई है और प्रारंभ में ही जड़वामन को थायरोक्सिन देकर वस्तुतः आश्चर्यजनक लाभ देखा जाता है। यह एक विशेष स्थिति की बात है। वस्तुतः यह विषय इतना सरल नहीं रह जाता, जब हम अन्य प्रकार की दुर्बल-मनस्कता पर विचार करते हैं अथवा सामान्य व्यक्तियों की बुद्धि को विकसित करने की बात सोचते हैं।

अनेक तत्त्व, एंजाइम के साथ जो उनके उपापचयन के लिए अपेक्षित हैं, मस्तिष्क प्रक्रियाओं में विवेचनीय होते हैं। उनके अभाव में मस्तिष्क की क्रियाओं में और साथ ही बुद्धि में भी बाधा उपस्थित होगी। इनमें से किसी एक तत्त्व की मात्रा और उपयोगिता की कमी क्रिया को यदि बाधा पहुँचाती है और यह विचारणीय प्रश्न भी कर सकते हैं कि क्या उस तत्त्व का आधिक्य लाभदायक होगा और उस स्थिति में उसका उपयोग बुद्धि को विकसित करने में हो सकता है? समय आने पर इस प्रश्न का उत्तर अनुसंधान द्वारा दिया जा सकेगा, जो मस्तिष्क-रसायन में भाग लेने वाले विविध तत्त्वों के प्रभावों का वैज्ञानिक परीक्षण करते हैं। अब तक इस विषय पर बहुत कम शोध हुआ है। दो तत्त्वों के प्रभावों पर ग्लूटैमिक अम्ल और विटामिन थियामिन पर—शोधकार्य हुआ है।

### ग्लूटैमिक अम्ल :

ग्लूटैमिक अम्ल प्रोटीन की बहु-संयुक्त उपज (Decomposition Product) है। यह और इससे संबद्ध यौगिक भाग अधिकांश ऊत्तकों के उपापचयन में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं और विशेष रूप से मस्तिष्क में एमोनिया, एक बहु-संयुक्त उपज, को पृथक् करने में इसका विशेष योग रहता है। इसी हेतु ग्लूटैमिक अम्ल को ऐसे तत्त्व के

रूप में चुना गया, जो बुद्धि के विकास में उपयोगी प्रमाणित हो सके, विशेषत: मंद-बुद्धि व्यक्तियों की बुद्धि के विकास में। इस अम्ल का प्रयोग करके जो अनुसंधान हुआ, उससे प्रारंभ में ऐसा प्रकट हुआ कि वह बालकों की बुद्धि को और चूहों की अधिगम-योग्यता को उन्नत कर सकता है। दोनों प्रयोगों में, एक दुर्बल-बुद्धि बालकों पर और दूसरा चूहों पर, ग्लूटैमिक अम्ल का लाभप्रद प्रभाव प्रकट हुआ। किंतु, ये प्रयोग पूर्णत: विश्वसनीय सिद्ध नहीं हुए; क्योंकि वे पूर्णत: नियंत्रित नहीं किए गए थे। अनेक परवर्त्ती प्रयोगों ने उनकी पुष्टि नहीं की (आर्बिटमैन, १९५२)। अत:, बुद्धि को उन्नत कर सकने वाले तत्त्व या औषधि की खोज हमें अन्यत्र करनी होगी।

## थियामिन (Thiamin) :

जीव-रासायनिक जानते हैं कि थियामिन (जिसे बिटामिन 'बी'[1] कहते हैं) मस्तिष्क की एक रासायनिक प्रतिक्रिया के लिए अनिवार्य है। अत:, बुद्धि को उन्नत करने वाला यह दूसरा तत्त्व है। अनुसंधान-कार्यों ने प्रदर्शित किया है कि कुछ स्थितियों में यह प्रभावशाली हो सकता है।

> "एक प्रयोग में अनाथालय के बच्चों को एक वर्ष तक प्रतिदिन थियामिन दी गई। इन बच्चों ने अनेक कौशलपूर्ण कार्यों, उपलब्धियों एवं बुद्धि में उस समूह के बच्चों की अपेक्षा प्रगति दिखायी, जिन्हें केवल बहकाने के लिए औषधि दी गई थी (हारेल, १९४७)। एक अन्य प्रयोग में ९० मानसिक विकारग्रस्त बच्चों में से थियामिन के प्रयोग द्वारा १५ प्रतिशत में बुद्धि में कुछ विकास प्रकट हुआ, (र्‍युडाल्फ, १९४९)।

इन प्रयोगों से प्रकट होता है कि कुछ व्यक्तियों में थियामिन औषधि बुद्धि को कुछ विकसित करती है, विशेषत: यदि इसका प्रयोग बहुत छोटे बालकों पर किया जाए। बच्चे जब पाँच या छह वर्ष के हो जाते हैं, तो संभवत: अतिरिक्त थियामिन विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होती। चूहों पर किए गए प्रयोगों के परिणाम प्रकट करते हैं कि यदि जीवन के बहुत प्रारंभ में विटामिन दिया जाए, तो सहायक सिद्ध होता है (ओ नेल, १९४९)। गर्भावस्था में चुहिए को अतिरिक्त थियामिन देने और जन्म के बाद चूहे के बच्चों को माता का दूध छोड़ने तक थिवामिन देने से प्रकट हुआ कि चूहों की व्यूह-अधिगम की योग्यता में बहुत उन्नति हुई। हम अब तक यह नहीं जानते कि मनुष्य के संबंध में भी ये परिणाम स्वीकार किए जा सकते हैं या नहीं।

अब तक का निष्कर्ष इस संबंध में यह है कि दुर्बल-बुद्धि व्यक्तियों के लिए अथवा बुद्धि को विकसित करने वाली कोई अद्भुत औषधि नहीं है। किंतु, ऐसी

औषधि कभी नहीं हो सकती, यह नहीं कहा जा सकता। बहुत संभव है कि निकट भविष्य में उसकी खोज हो सके ।

## औषधियाँ और व्यक्तित्व :

गत ३० वर्षों में संक्रामक रोगों के उपचार में हमने असाधारण प्रगति देखी है। प्रथमतः सल्फा औषधियाँ (Sulfa-drugs) उनके बाद पेनसिलिन और अब अद्भुत औषधियाँ हैं जो या तो उन रोगों का विनाश कर देती हैं या तीव्रता से उनका उपचार कर देती हैं, जो लाखों व्यक्तियों को मार देते थे अथवा विकलांग कर देते थे। इन औषधियों की एक विशिष्टता यह है कि वे कुछ विशेष रोगों का ही उपचार करती हैं। एक औषधि एक विशेष रोग अथवा संबंधित रोगों के समूह का ही नाश करती है, किंतु अन्य रोगों के संबंध में जिनके लिए अन्य औषधियाँ अधिक प्रभावशाली हैं, ये प्रभावहीन रहती हैं।

आगामी ३० वर्षों में हम इसी के समानांतर मनोवैज्ञानिक प्रभाव से युक्त औषधियों के विकास की कल्पना कर सकते हैं। ऐसी औषधियों की खोज गत दस वर्षों से प्रगति की ओर बढ़ रही है और इस दिशा में अत्यधिक परिश्रम किया जा रहा है, कुछ आशाप्रद परिणाम भी मिल रहे हैं। वस्तुतः औषधिप्रभाव-विज्ञान की एक नवीन शाखा, **मनःऔषध प्रभाव-विज्ञान**, का जन्म हो चुका है। इसमें ऐसी औषधियों का अध्ययन होता है, जो मुख्यतः व्यवहार और व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं। इस क्षेत्र में ऐसी औषधियों के अनुसंधान की और आविष्कार की चेष्टा की जा रही है, जो प्रतिजीवाणु (Antibiotics) औषधियों के समान किसी विशेष प्रयोजन के लिए प्रयोग की जा सकें, जैसे चिंता को कम करने, मानसिक रोगी को अधिक स्वस्थ करने, थकान को कम करने और खिन्न व्यक्ति को प्रफुल्ल करने में काम आ सकें।

आज तो इस क्षेत्र की स्थिति कुछ अस्पष्ट-सी है। जिन औषधियों का पता लग चुका है, उनकी उपादेयता का मूल्यांकन करने का समय नहीं मिल रहा है, किंतु प्रायः प्रतिदिन नवीन औषधियाँ प्रकट होती जा रही हैं। कुछ औषधियों के संबंध में किया गया दावा नितांत अतिशयोक्तिपूर्ण एवं भ्रामक है। जब सब प्रमाण एकत्रित हो जाएँगे, तो इनमें से अनेक औषधियाँ अस्थायी सनक प्रमाणित होंगी। दूसरी ओर, सनसनीपूर्ण प्रगति हो रही है और हम सापेक्षतः निश्चिन्त हो सकते हैं कि भविष्य में अवश्य ही व्यवहार के उपचार एवं उसे नियंत्रित करने वाली औषधियों का नाटकीय आविष्कार होगा। अतः, हम मनः-औषधि-प्रभाव-विज्ञान का संक्षिप्त विवरण यहीं समाप्त करेंगे (विक्लर, १९५७)।

मनोवैज्ञानिक प्रभाव उत्पन्न करने वाली औषधियाँ सामान्यतः दो वर्गों में विभाजित की जाती हैं, **साइकोटोमिमेटिक औषधियाँ** तथा **साइकोथेराप्यूटिक** औषधियाँ। जैसा कि इनके नामों से ही प्रकट है, प्रथम ऐसे लक्षण या प्रभाव उत्पन्न करती हैं जो कुछ रूपों में मानसिक रोग के लक्षणों के सदृश होते हैं। वे मुख्यतः अनुसंधान के साधनों के रूप में उपयोगी होती हैं। दूसरे वर्ग की औषधियों के अंतर्गत वे औषधियाँ हैं, जिनका प्रयोग व्यवहार के विकारों के उपचारार्थ अथवा अधिक सामान्य शब्दों में, व्यवहार में कुछ सुधार के प्रयोजनार्थ किया जाता है।

### साइकोटोमिमेटिक औषधियाँ :

पहले इस पर विचार किया जाए कि कुछ औषधियाँ हम पर किस प्रकार प्रभाव डालती हैं। एलकोहल (Alcohol) को यदि काफी मात्रा में लिया जाए, तो वह बहुधा असंबद्धता और निर्मूल भ्रम उत्पन्न करता है, जो मनोविक्षिप्ति में भी देखा जाता है। नाइट्रस आक्साइड (Nitrous Oxide) अथवा 'हास गैस' (Laughing Gas) अनियंत्रण-योग्य संवेगों के आवेश को उत्पन्न कर सकता है जो केवल अत्यधिक गंभीर मानसिक विकृतियों में ही होता है। अनेक निद्राजनक (Norcotics) औषधियाँ व्यक्ति को ऐसी भाव-समाधि की स्थिति में ले आती हैं कि वह उसमें अपने स्वप्नों को 'जीवित' रखता है और यथार्थ से पूर्णतः अनभिज्ञ हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह उन रोगियों से भिन्न प्रतीत नहीं होगा, जिन्हें हम अंतराबंध वार्ड में देखते हैं। आक्सीजन की सामान्य क्षीणता, जैसी कि ऊँचाई पर अनुभव की जाती है, भी व्यक्ति को परिभ्रांत कर देती है और वह उचित निर्णय लेने में असमर्थ हो जाता है, और उसी प्रकार संवेगात्मक नियंत्रण खो बैठता है जैसा कि वह व्यक्तित्व-विकारों में करता। वस्तुतः ऐसी औषधियों, निद्राजनक एवं रासायनिक द्रव्यों की लंबी सूची है, जो आश्चर्यजनक मानसिक रोगों के लक्षणों को प्रकट कर सकते हैं। यह तथ्य इस संभावना की ओर निदेशित करता है कि आंशिक रूप से मानसिक रोग आंतरिक पर्यावरण में किसी कुसमंजन द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं।

संप्रति जिस साइकोटोमिमेटिक औषधि ने महत्त्व प्राप्त किया है, वह लाइसरगिक एसिड डाइथाइलामाइड (Lysergic Acid Diethylamide) सामान्यतः, LSD-25 अथवा और संक्षेप में केवल LSD के नाम से प्रसिद्ध है (रुवेन, १९५७)। मनुष्यों पर इसके प्रभावों का वर्णन कुछ व्यक्तियों ने औषधि से उत्पन्न मनोविक्षिप्ति के रूप में किया है, किंतु यह संभवतः अतिशयोक्ति है। लेकिन, यह अंतराबंध के अनेक लक्षणों को उत्पन्न करती है। जिन्होंने LSD ली है, उनके वर्णन जिन्होंने उसे लेने वाले व्यक्तियों के व्यवहार को देखा है, उनके वर्णन के अंतर्गत निम्नलिखित

प्रतिक्रियाएँ उल्लिखित है : तीव्र चिंता, सुखप्राप्ति की भावना, मन:स्थिति में परिवर्तन, विचारों और कल्पनाओं की उड़ान, मूर्खता और मूर्खतापूर्ण हँसी, दृष्टि-भ्रम और निर्मूल भ्रम, ध्यान केंद्रित करने की अयोग्यता, व्यक्तित्व-निरपेक्ष एवं विरक्ति की भावनाएँ तथा काल-बोध का विरूपण। प्रेक्षित विशेष प्रभाव औषधि की मात्रा के अनुपात में भिन्न-भिन्न होते हैं, किंतु वह व्यक्ति के अनुसार भी भिन्न होते हैं, व्यक्ति अँधेरे में है अथवा प्रकाश में—अंधकार में निर्मूल-भ्रम अधिक देखे गए हैं—प्रयोगकर्त्ता के व्यक्तित्व अथवा निकट उपस्थित व्यक्तियों के कारण भी औषधि के प्रभाव में अंतर देखा गया है। वह एकाकी होता है, तो प्रभाव उस स्थिति से भिन्न होते हैं, जब वह अन्य व्यक्तियों के साथ होता है। इनमें से कुछ प्रभाव चित्र, २०·११ में दिखाए गए हैं।

मनोविक्षिप्ति से ग्रस्त व्यक्तियों को LSD देने पर, कहा जाता है, कि उनकी विक्षिप्ति और बढ़ जाती है और प्राय: अतिरिक्त विचित्र लक्षण भी उत्पन्न होने लगते हैं। कुछ मनश्चिकित्सक इसका उपयोग मनश्चिकित्सा में करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनका कहना है कि रोगी को कुछ अधिक चिंतित और कल्पना की ओर अधिक प्रवृत्त करके LSD व्यक्ति को अधिक मुक्त रूप से समालाप करने में सहायता देता है और उन बातों को कहने के लिए उसे तैयार करता है जिन्हें अन्यथा वह दमित कर लेता। तथापि अभी यह देखना शेष है कि क्या इस औषधि का चिकित्सा में कोई महत्त्व होगा।

आज तक उपलब्ध प्रमाणों का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन इसे स्पष्ट करता है कि LSD अभी पूर्ण साइकोटोमिमेटिक औषधि से बहुत दूर है। इसके प्रभावों में और वास्तविक मनोविक्षिप्ति में बहुत अंतर है। अन्य औषधियाँ भी हैं, विशेषत: नारकोटिक आषधियाँ, जो विचित्र और विक्षिप्ति-व्यवहार उत्पन्न करने में प्राय: वही कार्य करती हैं, पर भिन्न रूप में। तथापि LSD व्यवहार-विकारों के शारीरिक प्रक्रमों के अध्ययन में महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश करता है। बहुत संभव है कि निकट भविष्य में औषधि-निर्माण प्रयोगशालाओं में अधिक और श्रेष्ठतर साइकोटोमिमेटिक औषधियों की खोज हो सके।

### मनश्चिकित्सीय औषधियाँ :

ऐसी कुछ औषधियाँ हैं, जो मानसिक रोगों में सहायक प्रतीत होती हैं। उदाहरणत:, मेट्रजोल (Metrazol) के इंजेक्शन उग्र ऐंठन उत्पन्न कर सकते हैं, जो कभी-कभी मनोविक्षिप्ति के उपचार में सहायक होती हैं। इसी प्रकार इंस्यूलिन (Insulin) (अरन्याशय का हार्मोन) को अधिक मात्रा देने पर ऐंठन तथा गहरी निश्चेतना उत्पन्न

होती है, जिसे मनश्चिकित्सक ने मनोविक्षिप्ति के कुछ रोगियों के संबंध में बहुत प्रभावशाली अनुभव किया है।

एक औषधि किसी व्यक्ति पर ऐसा प्रभाव डाल सकती है कि वह मनोविक्षिप्त की भाँति व्यवहार करने लगे।

चित्र २०·११ औषधि लेने-वाले व्यक्तियों द्वारा कथित कुछ निर्मूल-भ्रम एवं काल्पनिक-भ्रम (डेविड लिन्टन)।

मनश्चिकित्सा में कुछ वर्षों तक उपयोग की गई दूसरी औषधि सोडियमएमिटल ( Sodium Amy al ) है। यह मस्तिष्क में उपापचयन पर प्रभाव डालती है। यह कभी-कभी ऐसे रोगियों को दी जाती है, जो वास्तविक जगत से पूर्णतः विच्छिन्न हो गए हों। रोगी इतने अधिक विकारग्रस्त भी हो सकते हैं कि वे न हिलेंगे, न बोलेंगे, खाएँगे भी नहीं। उन्हें भोजन कराने की नाली से आहार दिया जाता है। ऐसी स्थिति में भी सोडियम एमिटल देने पर उनमें असाधारण सुधार प्रकट होता है। वे फुर्ती से उठते हैं, उत्सुकता से और प्रायः सुसंगत वार्तालाप करने लगते हैं एवं क्षुधातुरता से खाने लगते हैं। दुर्भाग्य से सोडियम एमिटल का प्रभाव थोड़ी देर में समाप्त हो जाता है और रोगी पुनः जड़ता की स्थिति प्राप्त कर लेता है। तथापि यह औषधि डाक्टर को कम-से-कम रोगी के साथ संपर्क स्थापित करने, समालाप करने और उसकी स्थिति को भली-भाँति जानने का अवसर देती है।

औषधियाँ-संबंधी हमारी खोज में नवीनतम और सर्वाधिक प्रचलित साइको-थेराप्यूटिक औषधियाँ—तथाकथित 'प्रशांतिकारी' (Tranquilizers) औषधियाँ हैं अथवा अधिक वैज्ञानिक भाषा में, शमपरक (Ataractic) औषधियाँ हैं। ऐसी औष-धियों की संख्या और नामों में इतनी तीव्र गति से वृद्धि हो रही है कि उनका लेखा-जोखा रखना कठिन है। तीन ऐसी अत्यधिक प्रचलित औषधियाँ हैं—रजरपाइन,

(Reserpine) क्लोरप्रोमाजीन (Chlorpromazine) तथा मैप्रोबामेट या मिलटोन (Meprobamate or Miltown) भिन्न औषधियों का कुछ भिन्न प्रभाव होता है कि उनका सामान्य प्रभाव है कि अनुकंपी तंत्र (Sympathetic System) के अवसादकों के रूप में कार्य करती हैं, फलतः, चिंता और संवेगात्मकता को कम करती हैं। अतः, वे चिंताकुल व्यक्ति के तनाव और दुःख को कम करके उसे शांत होने में सहायता देती हैं। ध्यान देने की बात है कि वे स्वयं में चिंता को या चिंता के मूल कारण को कम नहीं करतीं। फलस्वरूप वे रोग का नहीं, रोग के लक्षणों का उपचार करती हैं।

चित्र २०·११ के क्रम में

प्रशांतिकारी औषधियाँ चिंता और संवेगात्मक व्यवहार को कम करती हैं, यह तथ्य जंतुओं पर किए गए प्रयोगों द्वारा प्रमाणित हुआ है। एक प्रयोग में उस प्रविधि का प्रयोग किया गया, जो आज संवेगात्मक व्यवहार पर औषधियों के प्रभाव में अत्यधिक रूप से प्रयोग की जाती हैं।

चित्र २०·११ के क्रम में

इस प्रविधि द्वारा अनुकूलित, संवेगात्मक अनुक्रिया (CER) को विकसित किया जाता है, जिसमें स्कीनर-बक्स में दबा कर एक छड़ का अधिलंघन करना अनुक्रिया है। स्कीनर-बक्स में एक चूहे को

आंशिक प्रबलन के नियमानुसार रखा जाता है और छड़ को दबाकर भोजन (या पेय) प्राप्त करना उसे सिखाया जाता है। इसके बाद उसे अनुकूलन के कुछ अवसर दिए जाते हैं, जिसमें कुछ काल तक एक क्लिक ध्वनित किया जाता है और उसके अंत में विद्युत्-आघात दिया जाता है। इस प्रकार चिंता ( CER ) को क्लिक की ध्वनि से अनुकूलित किया जाता है। इसके उपरांत जब-जब क्लिक-ध्वनि होती है, सामान्य जंतु छड़ को दबाना छोड़ देता है और तब तक पुनः उसे नहीं दबाता, जब तक क्लिक बंद नहीं होता। अतः, CER ( Coditioned Motion Respones ) का परिमापन छड़ दबाना छोड़ने पर किया जा सकता है।

चित्र २०·११ का अंतमांश

चित्र—२०·१२ एक ग्राफ है, जो CER पर दो औषधियों के प्रभाव को प्रदर्शित करता है (ब्रेडी, १९५६)। एम्फेटामिन ( बेनजेड्रीन), केफीन के ही सदृश, एक उत्तेजक द्रव्य है, प्राणी में शक्ति का संचार करता है, रेजरपाइन एक प्रशांतिकारी औषधि है और सेलाइन (Saline) नियंत्रण के रूप में कार्य करता है। वक्रों में निम्नगामी सोपान क्लिक के ध्वनित होने को प्रकट करता है और उर्ध्वगामी सोपान उसके बंद होने को। जब यह सोपान चपटा रहता है, इसका अर्थ है कि चूहा छड़ को, क्लिक के ध्वनित काल में, दबाना बंद कर देता है। यदि यह चपटा न रहे, किंतु अन्य रेखा की तुलना में कम ढाल में रहे, तो यह निर्देशित करता है कि चूहे ने छड़ को दबाने की गति केवल मंद की है।

अंतिम उदाहरण सामान्य सेलाइन नियंत्रक का है, क्लिक-प्रवृत्त संवेगात्मक अनुक्रिया केवल छड़ को दबाना प्रदर्शित करती है। ऐम्फेटामिन के साथ क्लिक-काल का अभिलेखन मूलतः चपटा रहता है, जो निदेशित करता है कि चूहे की संवेगात्मक स्थिति उत्तेजित है। इस पर भी ध्यान दें कि क्लिक-काल में छड़ को दबाना भी सामान्य स्थिति से अधिक तेजी से होता है, अभिलेखन-रेखा की ढलान बहुत हो जाती है। प्रशांतिकारी रेजरपाइन का प्रभाव इसके विपरीत होता है। अनुक्रिया की गति सामान्य से मंदतर होती है—प्रशांतिकारी औषधि का सामान्य प्रभाव चाहे शांति

परक हो, विशेषतः अधिक मात्रा में लेने पर—किंतु दोनों अवसरों पर बिलकुल एक-सा प्रभाव रहता है। दूसरे शब्दों में, प्रशांतिकारी औषधि क्लिक से संबंधित अनुकूलित संवेगात्मक अनुक्रिया को पूर्णतः शमित कर देती है।

उत्तेजक औषधि अनुकूलित संवेगात्मक अनुक्रिया को उग्र करती है, प्रशांतिकारी औषधि उसे शमित करती है।
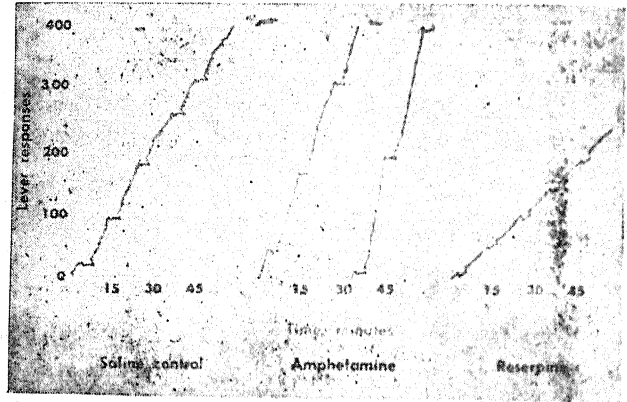
**चित्र २०·१२ एक उत्तेजक औषधि ( एम्फटामाइन ) के और एक प्रशांतिकारी औषधि ( रेजरपाइन ) के अनुकूलित संवेगात्मक अनुक्रिया पर प्रभाव (ब्रेडी के अनुसार, १९५६)।**

इस प्रयोग के परिणाम से यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रशांतिकारी औषधियाँ प्राणी को शांत या शमित करने की ओर प्रवृत्त होती हैं। मानव-रोगियों पर इनका प्रयोग करने से यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम होता है। कुछ रोगियों पर यह प्रशांतिकारी प्रभाव इतना पर्याप्त होता है कि उन्हें हॉस्पिटल से मुक्ति मिल जाती है; क्योंकि उनके उत्तेजनापूर्ण व्यवहार के कारण वे हॉस्पिटल में लाए गए थे। कुछ उदाहरणों में प्रशांतिकारी प्रभाव रोगियों के साथ व्यवहार करने में अन्य व्यक्तियों को सुविधा देता है और उन पर मनश्चिकित्सा का प्रयोग संभव हो जाता है। हॉस्पिटलों में रोगियों के उपचार और व्यवस्था के लिए प्रशांतिकारी औषधियों के विविध महत्त्वपूर्ण प्रयोग किए गए हैं। इस प्रकार की अनेक सूचनाएँ उपलब्ध हुई हैं कि प्रशांतिकारी औषधियों ने हॉस्पिटल के स्टॉफ ( कर्मचारियों ) की, उत्तेजित रोगियों को विविध रूपों में शारीरिक नियंत्रण में रख कर, सहायता की है। अनेक व्यक्ति प्रशांतिकारी औषधियों के महत्त्व के संबंध में अत्यधिक उत्साही हैं। तथापि

किसी नियंत्रित समूह पर अथवा द्विपक्षीय अज्ञानात्मक (Double-blind) प्रविधियों से बहुत कम प्रयोग किए गए हैं, जिनमें न चिकित्सक और न रोगी को ही बताया जाता है कि कौन से रोगियों को कौन-सी औषधियाँ दी गई हैं और कौन से रोगियों को नहीं दी गई। निम्नांकित प्रयोग (हॉलिस्टर एट० एल०, से उद्धृत, १९५६ पृष्ठ ७२-७४) तक उल्लेखनीय अपवाद हैं :—

द्विपक्षीय अज्ञानात्मक (Double-blind) प्रविधि का प्रयोग २४ से ४२ रोगियों के समूहों पर रेजरपाइन और क्लोरप्रोमेजाइन के प्रभावों के लघु-कालिक अध्ययन में किया गया। रेजरपाइन के प्रभाव का प्रयोग सामान्य व्यक्तियों, अतिचिंता के कारण हॉस्पिटल में भरती रोगियों एवं अंतराबंध प्रतिक्रियाओं से दीर्घकाल से ग्रसित रोगियों पर किया गया....।

मनोरोगियों के उपचार में इन औषधियों का स्पष्ट महत्त्व देखा गया। चिंता-ग्रस्त प्रतिक्रियाओं तथा साधारण अंतराबंध प्रतिक्रियाओं के कारण हॉस्पिटल में भरती रोगियों पर रेजरपाइन तथा क्लोरप्रोमेजाइन के मिश्रित प्रयोग का अनुकूल प्रभाव हुआ। इन दोनों औषधियों के मिश्रण का कोई विशेष लाभ दृष्टिगोचर नहीं हुआ। ऐसा अनुभव किया गया कि उपयुक्त मात्रा में ये औषधियाँ देने पर संभवतः इस समूह के रोगियों का हॉस्पिटल-काल कम हो गया। ...रेजरपाइन के नियमित देने पर उपचार किए गए दीर्घकालीन अंतराबंध प्रतिक्रियाओं से ग्रसित रोगियों में से दो-तिहाई पर हितकर प्रभाव हुआ। रेजरपाइन तुलनात्मक मात्रा में क्लोरप्रोमेजाइन नियमित देने पर उपचार किए गए अंतराबंध प्रतिक्रियाओं से ग्रसित रोगियों में से आधे रोगियों को लाभ हुआ। एक-चौथाई रोगियों को इन दोनों औषधियों से महत्त्वपूर्ण लाभ हुआ। यह लाभ इस प्रकार के रोगियों पर अब तक किए गए उपचारों के लाभ से बहुत अधिक लाभकारी प्रमाणित हुआ।

इन औषधियों के अब तक किए गए प्रयोग निदेशित करते हैं कि वे मनश्चिकित्सक औषधियों में महत्त्वपूर्ण विकास प्रस्तुत करती हैं। सर्वाधिक अविश्वासी को भी स्वीकार करना होगा कि कभी-कभी वे उन रोगियों पर भी अनुकूल प्रभाव डालने में सफल होती हैं, जिन पर इनसे पूर्व अन्य उपचार असफल सिद्ध हुए थे। तथापि द्विपक्षीय-अज्ञानात्मक प्रयोगों के आधार पर इनके उत्साही समर्थक को बारंबार तथा लाभदायक उपलब्धियों की मात्रा के संबंध में अपने निष्कर्षों का पुनर्परीक्षण कर लेना चाहिए। रोगियों के उपयुक्त चयन, विशेष रोगी के लिए औषधि की मात्रा उपचार के निश्चित काल से संबंधित अनेक प्रश्न आज भी अनुत्तरित हैं।

इन औषधियों का प्रयोग पहले की अपेक्षा अधिक रोगियों का मनश्चिकित्सा के प्रभाव से उपचार करने का आश्वासन देता है। मानसिक चिकित्सालयों को

संरक्षणीय की अपेक्षा चिकित्सीय बनाने की प्रवृत्ति इनके तीव्र विकास में निश्चित योग देगी।

## सारांश

१. प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के संवेदी क्षेत्र संग्राहक प्रांतस्था में केंद्रीय परिखा के पीछे, तथा प्रेरक क्षेत्र अभिव्यंजक प्रांतस्था (Expressive Cortex) में केंद्रीय परिखा के सामने अवस्थित हैं।

२. प्रेरक-क्षेत्र एवं पुरःप्रेरक-क्षेत्र दो प्रमुख प्रांतस्थीय क्षेत्र है, जो गतिशील एवं चालक क्रियाओं से संबंधित हैं। प्रेरक-क्षेत्रों का विद्युत् उद्दीपन गति उत्पन्न करता है और इसका विनाश पक्षाघात। क्षेत्र में शरीर की स्थल-रूपरेखीय व्यवस्था रहती है। पुरःप्रेरक-क्षेत्र शरीर के भिन्न भागों के तनावों और मुद्राओं को व्यवस्थित करता है।

३. घ्राण-इंद्रिय एवं प्रघ्राण इंद्रिय के अतिरिक्त सब इंद्रियों के परिपथ, चेतक की ओर जाते हैं तथा प्रमस्तिष्क प्रांतस्था को प्रसारित करता है। दृष्टि और श्रवण के अतिरिक्त केंद्रक मध्य मस्तिष्क में भी है। इनमें से प्रत्येक इंद्रिय का प्रांतस्था में व्यवस्थित स्थल-रूपरेखीय क्रम है, जो ज्ञानेंद्रियों के बिंदु-से-बिंदु प्रक्षेपण को प्रस्तुत करता है।

४. यदि किसी व्यक्ति के प्रांतस्था का संवेदी-क्षेत्र विद्युतीय रूप से उद्दीप्त किया जाता है, तो यह तदनुरूपी संवेदी अनुभव को सूचित करता है। दूसरी ओर यदि इसे पृथक् कर दिया जाए, तो दिक्-प्रत्यक्षीकरण में इंद्रिय का प्रयोग करने की उसकी योग्यता प्रायः नष्ट हो जाती है। तथापि अनुभव की तीव्रता आंशिक रूप से अधः-प्रांतस्थ केंद्र पर आधृत है।

५. निद्रा, चलना और सतर्कता के प्रक्रमों के अंतर्गत अधश्चेतक, उत्प्रेरित जाल-तंत्र एवं प्रमस्तिष्क प्रांतस्था आते हैं। अधश्चेतक में निद्रा औत जागरण के केंद्र हैं। जाल-तंत्रों से आवेगों कों संग्रहित करता है एवं प्रांतस्था को क्रियाशील बनाता है। प्रांतस्था में भी उत्प्रेरित जाल-तंत्र में प्रत्यावर्तन करने वाले परिपथ हैं।

संवेगों से संबंधित प्रमुख केंद्रक अधश्चेतक, विभाजक-भित्ति एवं वातामी हैं। विभाजक-भित्ति अधश्चेतक को दबाती प्रतीत होती हैं और वातामी उसे उद्दीप्त करता है।

७. मस्तिष्क में प्रत्यक्ष विद्युतीय उद्दीपन कभी-कभी दुखद अथवा असुखकर होता है। कुछ स्थलों पर लगाए गए विद्युद्ग्र निवारण-अधिगम में निषेधात्यक प्रबलन के रूप में कार्य करते हैं और अन्य स्थलों में लगाए गए विद्युद्ग्र विध्यात्मक रूप में प्रबलन करते हैं; क्योंकि जंतु मात्र प्रबलन के रूप में मस्तिष्क में विद्युत्-

आघात के फलस्वरूप आदतों को सीखेंगे और बार-बार उन्हें करेंगे। इस प्रभाव को उपलब्ध करने के लिए विभाजक-भित्ति सर्वाधिक श्रेष्ठ स्थल है।

८. प्रमुख शारीरिक आवश्यकताओं, क्षुधा, पिपासा और यौन के केंद्रक अधश्चेतक में हैं। प्रायः वे युग्मों में रहते हैं, एक उत्तेजनकारी होता है और दूसरा शमनकारी। एक का विनाश आवश्यकता को बढ़ा देता है, दूसरे का विनाश उसे बहुत कम कर देता है। उपयुक्त केंद्रकों में प्रत्यक्ष विद्युतीय अथवा रासायनिक उद्दीपन आवश्यकताओं को अभिप्रेरित कर सकता है।

९. प्रमस्तिष्क प्रांतस्था के बिना अनुबंधन हो सकता है। संबद्ध प्रांतस्था क्षेत्रों के बिना भी अनेक प्रकार के विभेद सीखे जा सकते हैं। तथापि संबद्ध क्षेत्र के नष्ट हो जाने पर विभेद-संबंधी स्मृति बार-बार लुप्त हो जाती है। ऐसे विनाश के उपरांत पुनर्प्रशिक्षण द्वारा स्मृति को पुनर्स्थापित किया जा सकता है। अतः, अधः-प्रांतस्था केंद्रक कुछ स्थितियों में स्मृति-संबंधी प्रांतस्था क्रियाओं का स्थान लेने में सक्षम रहते हैं।

१०. पर्याप्त जटिल भेदमूलक अधिगम में संभवतः प्रांतस्था के अन्य क्षेत्र निहित रहते हैं, जिन्हें संवेदी साहचर्य क्षेत्र कहा जाता है। प्रत्येक इंद्रिय के एक या अधिक साहचर्य क्षेत्र होते हैं। व्यक्ति में स्मृति-विकार का कारण इन क्षेत्रों में किसी प्रकार की क्षति का होना है। सामान्यतः अभिव्यंजक विकार ललाट-पालियों पर आधृत होते हैं और संग्राहक विकार प्रमस्तिष्क प्रांतस्था की अन्य पालियों पर।

११. अधिगम एवं बुद्धि-व्यवहार में आंतरिक पर्यावरण महत्त्वपूर्ण है। हार्मोन, एन्जाइम तथा आक्सीजन की क्षीणता दुर्बल-बुद्धिता उत्पन्न कर सकती है। हम अब तक ऐसे तत्त्व की खोज नहीं कर सके हैं, जो बुद्धि को विकसित कर सके, यद्यपि किसी दिन हमें इसमें सफलता मिल सकती है।

१२. व्यक्तित्व-विकारों के अध्ययन और उपचारार्थ औषधियों का तीव्र गति से विकास हो रहा है। जो औषधियाँ ऐसे विकारों पर अनुहारक प्रभाव डालती हैं, वे साइकोटोमिमेटिक औषधियाँ हैं। उनके अंतर्गत एलकोहल, एनेस्थेटिक और नारकोटिक हैं, किंतु, इनका सर्वोत्तम उदाहरण लाइसर्गिक एसिड डाइथाइलेमाइड (LSD—25 अथवा LSD) है। व्यक्तित्व-विकारों के उपचार में सहायक साइकथेराप्यूटिक औषधियों के अंतर्गत सोडियम एमिटल तथा संप्रति प्रशांतिकारी औषधियाँ हैं।

पठनार्थ सुझाव :

Beach, F. A. Hormones and Behavour, New York : Hoeber—Harper, 1948

व्यवहार पर हार्मोनों के प्रभाव के संबंध में किए गए प्रयोगों का संक्षिप्त विवरण।

Morgan, C T., and Stellar, E. Physiological Psychology (2nd ed.)New York : McGraw-Hill, 1950.

व्यवहार के शारीरिक प्रक्रमों पर मानक ग्रंथ।

Stevens, S. S. (ed.) Handbook of Expermental Psychology. New York : Wiley, 1951, Chaps 7, 12, 14, 20, 24 and 28.

विकास, अभिप्रेरण, अधिगम और प्रत्यक्षीकरण के शारीरिक आधार को स्पष्ट करनेवाले महत्त्वपूर्ण अध्याय।

Stone, C. P. ( ed. ) Comparative Psychology ( 3d. ed. ) Englewood Cliffs, N. J. : Prentice Hall, 1951 Chaps 5 and 9.

आंतरिक उत्सर्जन और अधिगम के तंत्रिका-विज्ञान पर अध्याय।

Wenger, H. A., Jones, F. N., and Jones, M. H. Physiological Psychology, New, York : Holt, Rinehart and Winston, 1956.

तंत्रिका-तंत्र, आंतरिक उत्सर्जन और व्यवहार के शारीरिक आधारों के संबंध में प्रारंभिक पुस्तक।

Wikler, A. The Relation of Psychiatry to Pharmacology. Baltimore : Williams and Wilkins, 1957.

व्यवहार पर औषधियों के प्रभाव से संबंधित संप्रति उपलब्ध सामग्री का संक्षेप में सारभूत विवरण।

# हिंदी-अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली

| | |
|---|---|
| अकरणरूप लक्ष्य | Negative Goal |
| अंगगृह | Penwrap |
| अग्रतंतुबंध | Auterior Commissure |
| अग्रललाटि | Pre-frontal |
| अग्न्याशय | Pancreas |
| अर्जित भय | Acquired Fear |
| अंतर्नोद | Drive |
| अंतप्रांतस्थ | Subcortical |
| अंतःस्रावी ग्रंथि | Endocrine Gland |
| अंतर्जात | Innate |
| अंतराबंधी | Schizophrenic |
| अतितृष्णा | Polydipsia |
| अतिपायिता | Alcohalism |
| अर्थग्रहण | Comprehension |
| अंधनाभिक | Dark Nucleus |
| अधश्चेतक | Hypothelamus |
| अधिरोही परिपथ | Ascending Pathways |
| अधीर प्रस्वेद | Nervous Perspiration |
| अनधिगत | Unlearned |
| अननुबंधित प्रतिक्रिया | Unconditioned Response |
| अन्यारोपण | Transference |
| अनुकंपी तंत्र | Sympathetic-system |
| अनुदैर्घ्य | Longitudinal |

| | |
|---|---|
| अनुकूलन | Adaptive |
| अनुरागात्मक प्रेरण | Affectional-drive |
| अनुकूलन लक्षण-समुह | Adaptation Syndrome |
| अनृतदर्शनी | Lie-Detector |
| अपतंत्रिका पक्षाघात | Histerical Paralysis |
| अपकर्षकारी परिवर्तन | Degenerative Change |
| अभिव्यंजक प्रांतस्था | Expressive Cortex |
| अभियांत्रिक मनोविज्ञान | Engineering Psychology |
| अभिप्रेरणात्मक चक्र | Motivational Cycle |
| अभिविन्यास | Orientation |
| अभिवृति | Attitude |
| अभिघातज | Traumetic |
| अभिप्रेरण | Motivation |
| अवधना-वर्जन | Attention Rejection |
| अवयबीतंत्र | Limbic System |
| अविवृक्क ग्रंथि | Adernal Gland |
| आकस्मिक प्रेक्षण | Casmal Observation |
| आकांक्षा स्तर | Level of Aspiration |
| आघात-चिकित्सा | Shock-Therapy |
| आंतरागज लक्षण | Visceral Symptoms |
| आनंदांक | Happiness Score |
| आनुवंशिक तत्त्व | Genetie material |
| आनुवंशिकी विज्ञ | Geneticist |
| आपाती प्रकरण | Critical Incidents |
| आयतनमंडल | Inosphere |
| आवर्तन | Repetition |

| | |
|---|---|
| आवेगी | Impulsive |
| आवेशित कण | Charged-particle |
| इष्टतम समय | Optimum Time |
| उत्परिवर्तन | Mutation |
| उपापचयन | Metabolism |
| उपागम-उपागम-द्वंद्व | Approach-approach Conflict |
| उत्तुंगताभीति | Acrophobia |
| ऐंद्रिक विक्षिप्ति | Organic Psychosis |
| औषधि-चिकित्सा | Drug-therapy |
| कर्णक | Gyrus |
| कर्षणशक्ति | Velence |
| कार्य-शिक्षार्थी | Apprentice |
| कणिकाएं | Granules |
| क्रिया-संतुलन | Equivalence of Function |
| किरणीयन | Irradition |
| कुसमायोजन | Maladjustment |
| कृत्रिम भावाभिव्यक्ति | Posed Expression |
| ग्रहपरता अस्त्र | Homing Missile |
| गतिक विकास | Motor Development |
| गुणसूत्र | Chromosomes |
| चर | Variable |
| चर्मांकुरण | Goose-pimples |
| चालक-प्रदेश | Motor-Area |
| चकित प्रतिमान | Startle Pattern |
| चकित प्रतिक्रिया | Startle Response |
| चेतक | Amygdala |
| छिन्न-प्रांतस्थ | Decorticate |

११३

| | |
|---|---|
| जननिक परिवर्तन | Genetic Change |
| जातीय पृथग्वासन | Aparthocid |
| जान्तव मनोविज्ञान | Animal Psychology |
| डिंबाशयोच्छेदन | Ovariectomy |
| तंद्रा | Somnolence |
| तंत्रिकातंत्र | Nervous System |
| दत्तकार्य | Assignment |
| दृष्टि-संवेदनशीलता | Visual Sensitivity |
| दृष्टि प्रांतस्था | Visual Cortex |
| दृष्टि-साहचर्य-क्षेत्र | Visual-Association-Area |
| दुर्भीति प्रतिक्रियाएँ | Phobic-Reaction |
| निगमनिक मार्गदर्शक | Deductive Guide |
| निरर्थक | Unsavory |
| निष्पादन-स्तर | Level of Performance |
| नियत-व्यवहार | Regulatory Behaviour |
| निकाय-कक्ष | Pool-room |
| निद्रा-विश्लेषण | Narcoanalysis |
| निवारण-निवारण-द्वंद्व | Avoidence-avoidence Conflict |
| प्रत्यक्ष अक्षमता | Agnosia |
| प्रत्यक्षीकरण | Perception |
| परस्पर-क्रिया | Interaction |
| प्रशांतिकारी | Tranguilizer |
| प्रसारिणी पेशी | Extensor Muscle |
| पश्चकपाल पालि | Occipital Lobe |
| प्रकार्यवाद | Functionalism |
| प्रकाशसंवेदी | Photosensitiveness |
| प्रमस्तिष्क-वल्कुट | Cerebral Cortex |

| | |
|---|---|
| प्रक्षेपण | Projection |
| पर्यावरणपरक अंतर्नोद | Environmental Drive |
| प्रतिष्ठा-अभिप्रेरक | Status Motives |
| प्रतिष्ठा-प्रणाली | Status System |
| प्रतिबल प्रतिरोधक | Resistance of Stress |
| प्रतिगमन | Regression |
| प्रतिक्रिया-विधान | Reaction-formation |
| परिखा | Salcus |
| परिधि आघात | Peripheral Shock |
| परिच्छेदन | Operation |
| परिग्रहण | Prehension |
| परिश्रांति | Exhaustion |
| पार्श्व-परिखा | Lateral Salcus |
| पार्श्विका पालि | Parictal Lobe |
| प्रारंभिक वाचोच्चारण | Early Vocalization |
| पितृ-बालक युग्म | Parent-child Pairs |
| पिपासा अंतर्नोद | Thurst Drive |
| पुनर्बलन सिद्धांत | Reinforcement Principle |
| प्रेत-विज्ञान | Demonology |
| बलपरक चयन | Forced Choice |
| बहि:स्रावी ग्रंथि | Exoerine |
| बहुसंयुक्त उपज | Decomposition Product |
| बहुगुण निर्णय | Multiple Determination |
| बोधन-अधिगम | Somethetic Learning |
| बोलने वाले जंतु | Orangutam |
| भातृ जुड़वाँ | Fraternal Twins |
| भीड़भीति | Ochlophobia |

| | |
|---|---|
| भ्रूण-गर्भ | Fetus |
| मज्जका | Medu'la |
| मनस्तापीय | Neurotic |
| मनःश्रांत | 'eurasthenic |
| मनःशारीरिक | sychosometic |
| मनस्तंत्रिका ताप | Psychoneurosis |
| मनोशल्य | Psychosurgery |
| मनोरूपक | Psychodrama |
| मनोग्रस्ति | Obsession |
| मनोविकार-विज्ञान | Psychiatry |
| मानसिक दौर्बल्य | Feeble-mindedness |
| मात्रामूलक | Quantitiveness |
| मातृक प्रेरणा | Maternal Drive |
| मातृपुतला | Mother-Surrogate |
| यदृच्छ | Arbitrary |
| यौवनारंभ | Puberty |
| यौन-प्रशीतन | Sex-Frigidity |
| रंजकता | Pigmentation |
| रंजित | Stain |
| ऋण-विभव | Spike-potential |
| ऋत-आवश्यकता | Tissueneed |
| लार-ग्रंथियाँ | Salivary Glands |
| लिंग-निर्णय | Sex-determination |
| लिंग-सहलग्नी विशेषगुण | Sex-linked Characteristics |
| वंचन | Deprrivation |
| वर्णांधता | Colour-blindness |
| वस्तुनिष्ठ प्राप्तांक | Objective Score |